भारत में उद्योगों का संगठन, वित्त व्यवस्था एवं प्रबन्ध

(ORGANISATION, FINANCE & MANAGEMENT OF INDUSTRIES IN INDIA)

[भारतीय विश्वविद्यालयों के एम० कॉम० के विद्यार्थियों के लाभार्थ एक विस्तृत एवं आलोचनात्मक अध्ययन]

लेखक
डा० एस० सी० सक्सेना,
एम० ए०, एम० कॉम०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०,
असिस्टेन्ट प्रोफेसर ऑफ कॉमर्स, वाणिज्य विभाग,
महारानी लक्ष्मीबाई कॉलिज ऑफ आर्टस् एण्ड कॉमर्स,
ग्वालियर (मध्य-प्रदेश)

प्रथम संस्करण
१९६२

आगरा
नवयुग साहित्य सदन,
उच्च कोटि के शिक्षा सम्बन्धी साहित्य के प्रकाशक
मूल्य : १२ रु० ५० न० पै०

भूमिका

प्रारम्भिक—

'भारत में उद्योगो का संगठन, वित्त व्यवस्था एवं प्रबन्ध" शीर्षक पुस्तक को प्रस्तुत करते हुये मुझे अत्यन्त हर्ष एव सन्तोष अनुभव होता है, क्योंकि यह विद्यार्थियो की उस मांग को पूरा करने का प्रयास है, जिसके विषय मे वे बहुत दिनो से मुझसे पत्र-व्यवहार करते रहे हैं। उनकी यह उत्कृष्ट अभिलाषा थी कि राष्ट्रभाषा हिन्दी मे इस विषय पर एक उच्च स्तरीय पुस्तक लिखी जाय। समयाभाव के कारण मैं अपने प्रिय विद्यार्थियो की शीघ्र सेवा न कर सका। कुछ समय मिलने पर अपनी अनेक पुस्तको की बिखरी हुई सामग्री को एक शृङ्खला मे पिरो कर नवीनतम तथ्यो सहित इस पुस्तक मे प्रस्तुत किया गया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वाणिज्य-साहित्य का एक बहुत बडा अभाव दूर हो जायेगा एव विद्यार्थी-समुदाय इससे बहुत लाभान्वित होगा।

विशेष आकर्षण—

प्रस्तुत पुस्तक के कुछ उल्लेखनीय आकर्षण, जिनके आधार पर अन्य पुस्तको की अपेक्षा इसे श्रेष्ठ कहा जा सकता है, निम्नलिखित हैं :—

(१) 'विषय प्रवेश' शीर्षक पहली पुस्तिका मे औद्योगीकरण के अर्थ एवं महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। इसके एकमात्र अध्ययन से विद्यार्थियो के मस्तिष्क मे औद्योगीकरण की महिमा का चित्र स्पष्ट हो जाता है। अर्द्ध-विकसित देशों की समस्याओ एव उनके हल का अध्ययन भी इसी पुस्तिका मे किया गया है।

(२) 'भारत मे उद्योगों का प्रादुर्भाव एवं विकास' शीर्षक दूसरी पुस्तिका मे भारतीय उद्योगो के जन्म की कहानी की चर्चा की गई है। इस पुस्तिका से भारत की प्राचीन आर्थिक समृद्धि का आभास मिलता है एव यह भी ज्ञात होता है कि बाद में हमारे उद्योगो का क्योंकर पतन हुआ ? प्रथम एव द्वितीय महायुद्धों तथा सन् १९४७ मे होने वाले देश के अनार्थिक विभाजन का भारत के उद्योग धन्धो पर क्या प्रभाव पडा, इसका विस्तृत अध्ययन भी इस पुस्तिका मे किया गया है। दासत्व की शृङ्खलाओ से छूटने के बाद स्वतन्त्रताकाल मे हमारे उद्योग धन्धो ने आज तक जो प्रगति की है, उसके भी दर्शन इस पुस्तिका में होते हैं।

(३) 'आर्थिक नियोजन एवं भारतीय उद्योग' सम्बन्धी तृतीय पुस्तिका में प्रथम एव द्वितीय पच वर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत देश की औद्योगिक प्रगति का आभास मिलना है। इसके अतिरिक्त, इसमे तृतीय पच-वर्षीय योजना के अन्तगत होने वाली सम्भावित औद्योगिक प्रगति का भी चित्रण किया गया है।

(४) 'भारत सरकार की औद्योगिक नीति' शीर्षक चौथी पुस्तिका में स्वतन्त्रता के पूर्व भारत सरकार की औद्योगिक नीति का संक्षिप्त परिचय देते हुये सन् १९४८ व सन् १९५६ की औद्योगिक नीतियों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। इसके अतिरिक्त औद्योगिक (विकास एव नियमन) अधिनियम, सन् १९५१ के प्रभावो पर भी प्रकाश डाला गया है।

(५) 'भारत सरकार की प्रशुल्क नीति' सम्बन्धी पाँचवी पुस्तिका में भारत की वर्तमान प्राशुल्किक एव वाणिज्यिक नीति का विश्लेषात्मक अध्ययन किया गया है। एक अध्याय मे करो के स्वरूप एवं उद्योगो पर उनके प्रभाव की भी चर्चा की गई है।

(६) 'विवेकीकरण एव औद्योगिक उत्पादकता आन्दोलन' सम्बन्धी छठी पुस्तिका मे इस बात को समझाने का प्रयास किया गया है कि विवेकीकरण एव आधुनिकीकरण की दिशा मे अभी तक हम बहुत पीछे हैं एवं इसकी आवश्यकता पर बल देते हुये औद्योगिक उत्पादकता आन्दोलन का भी विस्तृत अध्ययन किया गया है।

(७) 'भारत मे औद्योगिक सयोग' शीर्षक सातवी पुस्तिका मे सयोग आन्दोलन की धीमी गति के कारणो एव उसकी वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

(८) 'श्रम समस्यायें' सम्बन्धी आठवी पुस्तिका मे अनेक महत्त्वपूर्ण श्रम समस्याओ एव उनके उपचारो का अध्ययन किया गया है।

(९) 'औद्योगिक वित्त व्यवस्था' सम्बन्धी अगली पुस्तिका मे औद्योगिक सस्थाओ के लिये उपलब्ध पूँजी के विभिन्न साधनो का आलोचनात्म अध्ययन किया गया है।

(१०) 'उद्योगो का स्थानीयकरण' शीर्षक दसवी पुस्तिका मे औद्यो स्थानीयकरण के विभिन्न घटको एव सिद्धान्तो के अध्ययन के उपर यह बताने का प्रयास किया गया है कि हमारे देश मे उद्योगो प्रादेशिक वितरण नितान्त आवश्यक है।

(११) 'उद्योगो के परिमाण' से सम्बन्धित ग्यारहवी पुस्तिका मे उद्योगो के परिमाण का अध्ययन किया गया है।

(१२) 'भारत मे उद्योगों का प्रबन्ध' शीर्षक १२वी पुस्तिका मे प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली का आलोचनात्मक विवरण दिया गया है तथा इसकी वर्तमान स्थिति एव भविष्य पर भी प्रकाश डाला गया है।

(१३) 'राजकीय उद्योगो का प्रबन्ध' शीर्षक तेरहवी पुस्तिका मे अनेक महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो व समितियो (जैसे गोरवाला, अप्पलबी, गालब्रेथ, इकेफी आदि) की रिपोर्टों के सन्दर्भ मे राजकीय उपक्रमो की व्यवस्था एव प्रबन्ध का अध्ययन किया गया है।

(१४) 'आधुनिक उद्योगों के आधार' शीर्षक अगली पुस्तिका मे देश के प्राकृतिक एव मानवीय प्रसाधनो का विशद विवेचन किया गया है।

(१५) 'भारत के कुटीर एव लघु उद्योग' से सम्बन्धित पन्द्रहवी पुस्तिका मे कुटीर एव लघु उद्योगो के गौरवमय अतीत, वर्तमान स्थिति, भविष्य आदि का अध्ययन किया गया है। कर्वे समिति की रिपोट एव राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम के कार्यों को भी इसमे चर्चा की गई है।

(१६) 'भारतीय सगठित उद्योग' शीर्षक सोलहवी पुस्तिका मे देश के प्रमुख सगठित उद्योगो का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

(१७) प्रत्येक अध्याय के अन्त मे कुछ प्रश्न दिये गये हैं, जिनका चुनाव भारतीय विश्वविद्यालयो के एम० कॉम० के प्रश्न-पत्रो से किया गया है।

उपयोगिता का क्षेत्र—

यद्यपि यह पुस्तक मुख्यत एम० कॉम० के विद्यार्थियों की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखकर लिखी गई है, किन्तु मेरा विश्वास है कि उद्योगपति, व्यापारी एव सामान्य जनता भी इससे लाभान्वित होगी।

आभार प्रदर्शन—

पुस्तक के लिखने मे अनेक प्रमाणिक पुस्तको, पत्र पत्रिकाओ तथा सरकारी रिपोर्टों से सहायता ली गई है, जिनके लेखकों एव प्रकाशको के प्रति मैं अपना आभार प्रदर्शित करता हूँ। कुमारी मधुबाला ने पुस्तक के लेखन काय मे जो सहयोग दिया है उसके लिये वह आशीर्वाद की पात्र है।

सुझाव के लिये आमन्त्रण—

पुस्तक की उपयोगिता की वृद्धि के लिये जो भी सुझाव मिलेंगे उनका सहर्ष स्वागत किया जायगा।

आनन्द निवास,
जेकब परेड,
गलियर।

एस० सी० सक्सेना

विषय-सूची

अध्याय १

औद्योगीकरण का अर्थ एवं महत्त्व

(Meaning & Importance of Industrialisation)

प्रारम्भिक—

वर्तमान युग 'औद्योगिक युग' (Industrial Age) कहा जाता है। आज विश्व के सभी देशो मे 'औद्योगीकरण' (Industrialisation) का बडा बोलबाला प्रतीत होता है। यदि हम विश्व के विभिन्न देशो की आर्थिक प्रगति की झाँकी करें, तो प्रतीत होगा कि विश्व के सभी राष्ट्र औद्योगिक विकास की दौड मे एक दूसरे से आगे बढने मे निरन्तर प्रयत्नशील है। औद्योगिक साधनो की दृष्टि से सम्पन्न देश ही नही वरन् आज वे देश भी औद्योगीकरण की दौड मे भाग ले रहे है, जिनकी अर्थ-व्यवस्था अत्यन्त प्राचीन समय से कृषि प्रधान रही है। उदाहरण के लिये, भारत को ही ले लीजिये, आज से १४-१५ वर्ष पूर्व भारत की ८०% जन-सख्या कृषि पर अवलम्बित थी। परन्तु जब से हम स्वतन्त्र हुए है, तब से पच-वर्षीय आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत देश के औद्योगीकरण के लिये भरसक प्रयत्न किये जा रहे हैं। हमारी तृतीय पच-वर्षीय योजना, जो अभी हाल मे प्रारम्भ हुई है, का प्रमुख उद्देश्य तीव्र गति से देश का औद्योगीकरण करना है। इसी प्रकार हमारा पडौसी देश पाकिस्तान भी अपने औद्योगिक विकास के लिये प्रयत्नशील है। उसने अपनी औद्योगिक प्रगति के लिये पूँजी एव विशेषज्ञो को विदेशो से आमत्रित किया है। सयुक्त अरब गणराज्य मे भी जो अभी तक कृषि-प्रधान देश रहा है, अनेक बृहत उद्योगो की स्थापना की जा रही है। सक्षेप मे हम यह कह सकते है कि आज विश्व के अधिकाश देशो को औद्योगीकरण का नशा चढा हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकतम औद्योगिक विकास की एक 'दौड' हो रही है, जिसमे कुछ पाश्चात्य राष्ट्र (जैसे सयुक्त राष्ट्र अमेरीका, सोवियत रूस आदि) अग्रणी है और पूर्वी देश भी उनका अनुकरण कर रहे है। अब यह प्रश्न पैदा होता है कि 'औद्योगीकरण' जिसका आज विश्व मे नारा बुलन्द है, का वास्तविक अर्थ क्या है ?

'औद्योगीकरण' से आशय

सामान्यत: 'औद्योगीकरण' से हमारा आशय निर्माणी उद्योगो की स्थापना एव विकास से है। इस सकुचित आशय के सदर्भ मे औद्योगीकरण को विकास की उस व्यापक प्रक्रिया का एक अग कहा जा सकता है जिसका उद्देश्य

उत्पादन के साधनो की कुशलता मे वृद्धि करके जीवन-स्तरो को ऊँचा उठाना है।[1] यह औद्योगीकरण का सकुचित अर्थ है। इसमे हम औद्योगीकरण के वास्तविक क्षेत्र का आभास नही मिलता। यदि हम व्यापक दृष्टि से देखे एव जरा गम्भीरता मे विचार कर तो यह अनुभव होगा कि विस्तृत अर्थ मे 'औद्योगीकरण' का प्रभाव देश के आर्थिक जीवन के समस्त पहलुओ पर पडना चाहिये। उदाहरण के लिये, यह कहा जा सकता है कि कृषि उद्याग (Agriculture) भी 'औद्योगीकरण' के द्वारा लाभान्वित किया जा सकता है, यदि इसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन कला मे सुधार, उन्नत औजार एव कृषि साज-सज्जा तथा श्रम-विभाजन प्राप्त हो सके, जिससे कृषक भूमि से अधिक उत्पादन प्राप्त करने मे समर्थ हो जाय। यूजेन स्टेले[2] (Eugene Staley) ने इसको कृषि का औद्योगीकरण' (Industrialisation of Agriculture) कहा है। औद्योगीकरण के द्वारा ही कृषि की उत्पादन कला मे विकास किया जा सकता है। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप हमको ऐसे अनेक उपकरण व यन्त्र उपलब्ध होते है, जिनकी सहायता से 'गहन खेती' (Intensive Farming) करके कृषि उत्पादन को बहुत अधिक बढाया जा सकता है। उन्नत रासायनिक खाद भी 'औद्योगीकरण' की ही देन है। उन्नत सिंचाई की सुविधाओ, कृत्रिम वर्षा आदि वैज्ञानिक आविष्कारो (जिन्होने कृषि उत्पादन के क्षेत्र मे एक इकलाब पैदा कर दिया है) का श्रेय औद्योगीकरण को ही प्राप्त है।

इसी प्रकार, किसी देश का व्यापाराधिक्य (Balance of Trade) भी औद्योगीकरण पर निभर करता है। तीव्र औद्योगीकरण उत्पादन की मात्रा प्रोत्साहित करता है और जब उत्पादन अधिक होता है, तो राष्ट्रीय आवश्यकता की सन्तुष्टि के बाद 'शेष' भी बहुत बचता है, जिसको निर्यात करके बहुमूल्य विदेशी विनिमय कमाया जा सकता है। यही नही, यातायात का विकास भी औद्योगीकरण' की ही देन है। *कच्चे माल को कारखानो तक लाने के लिय एव कारखानो से उपभोक्ताओ तक निर्मित* माल को ले जाने के लिय यातायात के साधनो की आवश्यकता पडती है और यह आवश्यकता उतनी ही अधिक बलवती होगी जितना तीव्र औद्योगीकरण होगा। दूसरे शब्दो म, 'औद्योगीकरण' वह क्रिया है, जो उन्नत यातायात को प्रोत्साहित करती है। किसी देश म पूँजी का निमार्ण भी औद्योगीकरण की गति पर ही निर्भर करता है। कोई देश जितना अधिक उद्योग-प्रधान होगा, वहाँ पूँजी का निर्माण भी उतना ही अधिक होगा। विश्व का वतमान इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिन देशो मे

1 U N Report—' Processes and Problems of Industrialisation in Under developed Countries," p 2.

2 Eugene Staley—' The Future of Under developed Countries " p. 300

औद्योगीकरण की गति मन्द है, वहाँ पूँजी का निर्माण भी 'केंचुये की चाल' की भाँति होता है।

'औद्योगीकरण' के इस व्यापक स्वरूप के आधार पर ही 'लीग ऑफ नेशन्स' (League of Nations) ने 'औद्योगीकरण व विदेशी व्यापार' शीर्षक पुस्तक में स्पष्ट लिखा है कि औद्योगीकरण की क्रिया केवल निर्माणी उद्योगों की स्थापना तक ही सीमित नहीं है, वरन् इसके द्वारा किसी भी देश का सम्पूर्ण आर्थिक कलेवर परिवर्तित किया जा सकता है।"[1] अब हम औद्योगीकरण की कुछ विशिष्ट परिभाषाओं पर विस्तार से प्रकाश डालेंगे :—

(१) पी कांग चांग (Pei-Kang-Chang) के शब्दों में —"औद्योगीकरण से तात्पर्य उस क्रिया से है, जिसके अन्तर्गत सामरिक उत्पादन कार्य से सम्बन्धित अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों में कुछ मूलभूत परिवर्तन वे है, जिनका सम्बन्ध किसी उद्योग के यन्त्रीकरण से होना है तथा जिनके द्वारा किसी नवीन उद्योग की स्थापना, किसी नये बाजार की खोज एवं किसी नवीन क्षेत्र का शोषण होना है। एक प्रकार से 'औद्योगीकरण' एक वह साधन है जिसके द्वारा पूँजी का विस्तार एवं विकास किया जाता है।"[2]

इस परिभाषा के विश्लेषण से यह स्पष्ट पता लगता है कि औद्योगीकरण का क्षेत्र केवल निर्माणी उद्योगों की स्थापना तक ही सीमित नहीं है, वरन् व्यापक दृष्टि से, यह एक ऐसा साधन है जिसकी सहायता से किसी भी देश में पूँजी का विस्तार एवं विकास किया जा सकता है। इस व्यापक दृष्टिकोण से यह भी कहा जा सकता है कि 'औद्योगीकरण' एवं 'यन्त्रीकरण' एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। 'औद्योगीकरण' 'यन्त्रीकरण' को प्रोत्साहित करता है एवं नये-नये यन्त्रों व उपकरणों के आविष्कार से नवीन उद्योगों की स्थापना को प्रेरणा मिलती है। जब उत्पादन बढ़ता है तो नये बाजारों की खोज भी शुरू हो जाती है। इस प्रकार यन्त्रीकरण, पूँजी का विस्तार, नये बाजारों का अनुसन्धान, आदि सभी औद्योगीकरण के अन्तर्गत आते हैं।

(२) ए० एच० हनसेन (A. H. Hansen) ने एक स्थान पर लिखा है कि

---

1. League of Nations—"Industrialisation and Foreign Trade, p. 30"

2 In the words of Pei Kang Chang, "Industrialisation is a process in which changes of a series of strategical production functions are taking place. It involves those basic changes that accompany the mechanisation of an enterprise, the building of a new industry, the opening of a new market and the exploitation of a new territory This is, in a way, a process of 'deepening' as well as 'widening' of Capital"—"Agriculture and Indusrialisation" p. 69.

"किसी देश मे पूँजी के निर्माण का विश्वसनीय साधन औद्योगीकरण ही है।"[1]

श्री हनसेन के इन थोड से शब्दो से भी 'औद्योगीकरण' की व्यापकता का परिचय मिलता है। औद्योगीकरण के द्वारा उत्पादकता मे वृद्धि होती है और उत्पादकता मे वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय भी बढती है। फलत. लोगो की 'बचत' (Savings) मे भी वृद्धि होती है। 'बचत' के द्वारा ही 'पूँजी का निर्माण' प्रेरित होता है। इसी आधार पर हनसेन ने लिखा है कि औद्योगीकरण किसी देश मे पूँजी के निर्माण को प्रोत्साहित करता है।

(३) यूगेन स्टेले (Eugene Staley) के मतानुसार औद्योगीकरण एव उत्पादकता मे बडा घनिष्ट सम्बन्ध है। औद्योगीकरण के बिना उत्पादकता मे वृद्धि करना असभव है। दूसरे शब्दो मे, औद्योगीकरण के द्वारा ही उत्पादकना बढाई जा सकती है एव उत्पादकता की वृद्धि के साथ राष्ट्रीय आय भी बढती है। ये दोनो ही कथन सत्य है कि (अ) औद्योगीकरण से उत्पादकता बढती है एव (ब) उच्च उत्पादकता से औद्योगीकरण प्रोत्साहित होता है।[2]

कुछ लेखको ने, जिनमे मे कोन्डलिफ (Condliffee) व रोसेन्सटीन (Rosenstein Rodan) प्रमुख है, एक आर्थिक दृष्टि से कम विकसित देश के लिये औद्योगीकरण की ही सिफारिश की है, जिसके द्वारा जन सख्या का भार कम किया जा सकता है, रोजगार के साधनो मे वृद्धि की जा सकती है एव जनसाधारण के रहन-सहन का स्तर ऊँचा किया जा सकता है।

(४) मनुभाई शाह के शब्दो मे 'कृषि का यन्त्रीकरण भी औद्योगीकरण का ही अङ्ग है।

वास्तव मे कृषि व औद्योगीकरण मे बडा घनिष्ट सम्बन्ध है। दोनो ही परस्पर एक दूसरे के सहायक हैं। स्पष्ट शब्दो मे, हम इस प्रकार कह सकते है कि कृषि का विकास औद्योगीकरण पर एव औद्योगीकरण की सफलता कृषि पर अवलम्बित है। यदि प्रथम वाक्यांश पर हम गम्भीरता से विचार करें, तो पता लगता है कि वास्तव मे कृषि की प्रगति औद्योगीकरण के विकास पर निर्भर करती है। यदि किसी देश मे उद्योग धन्धे बहुत अधिक बढे-चढे व विकसित होगे, तो हमको उन्नत कृषि के हेतु भी

---

1 Fiscal Policies and Business Cycles, p 355

2 "The two are parts of an interlinked process, one does not proceed very far without the other It is equally true to say (i) that high productivity produces industrialisation and (ii) that industrialisation produces high productivity"

तरह-तरह के उपकरण व यन्त्र उपलब्ध होगे । इस प्रकार, उन्नत बीज, उन्नत खाद, उन्नत सिचाई-साधनो, उन्नत कृषि उपकरणो व यन्त्रो आदि की सहायता से कृषि का भी विकास किया जा सकता है । इसके विपरीत, जब हम दूसरे वाक्यांश पर मनन करते है, तो पता लगता है कि औद्योगीकरण भी काफी सीमा तक कृषि पर अवलम्बित है । उद्योग धन्धो का प्रमुख भोजन होता है कच्चा माल । कच्चे माल के बिना हम निर्मित माल की कल्पना भी नही कर सकते और यह कच्चा माल हमको उन्नत कृषि से ही उपलब्ध होता है । अत. स्पष्ट है कि कृषि एव उद्योग दोनो ही परस्पर एक दूसरे के सहायक है । अनेक उद्योग प्रधान देशो के आर्थिक विकास के ऐतिहासिक अवलोकन से यह स्पष्ट है कि कृषि मे सुधार के द्वारा ही वहाँ की औद्योगिक प्रगति सम्भव हो सकी है ।[1] पी-काँग चाँग (Pei-Kang Chang) ने तो यहाँ तक लिखा है कि, 'कोई भी देश कितना ही उद्योग-प्रधान क्यो न हो, वह अपनी आर्थिक क्रियाओं को चालू व विकासत नही कर सकता, यदि वह साथ ही साथ अपनी सीमाओं के अन्तर्गत कृषि एव उद्योग मे उचित सन्तुलन नही बनाए रखता है, अर्थात् निर्यात् एव आयात द्वारा अन्य देशो के कृषि सम्बन्धी व्यवसायो से घनिष्ट सम्बन्ध नही रखता है ।[2] "इस प्रकार औद्योगीकरण, कृषि पुर्ननिर्माण (Agricultural Revolution) का एक अध्याय है, अथवा कृषि उत्पादन की उन्नति को ही औद्योगीकरण का एक अध्याय कहा जा सकता है । यहाँ यह स्मरणीय है कि दोनो ही एक ही समस्या के पारस्परिक सम्बन्धित भाग है ।"[3]

सक्षेप मे, हम इस प्रकार कह सकते है कि 'औद्योगीकरण' एक अत्यन्त व्यापक शब्द है, जिसके अन्तर्गत केवल निर्माणी क्रियाओं का ही समावेश नही किया जाता, वरन् कृषि का विकास, व्यापार एव यातायात की वृद्धि, यन्त्रीकरण, पूँजी का निर्माण आदि सभी बातें इसके अन्तर्गत आती है । औद्योगीकरण की सहायता से ही बडी मात्रा मे वास्तुओ का उत्पादन सम्भव होता है एव उद्योग मे क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि नियम लागू किया जा सकता है ।

औद्योगीकरण का उद्गम—

यद्यपि आधुनिक युग मे औद्योगीकरण का बडा बोलबाला है, परन्तु इसका यह आशय नही है कि हम सदैव से ही उद्योग प्रधान रहे है । औद्योगीकरण का जन्म

1 The Economics of Under developed Countries, By. P. T. Bauer and B S Yamey, P ge 235.

2 Pei Kang Chang, Page 23

3 'Industrialisation is one chapter of agrarian reconstruction or one might treat the improvement of agrarian production as one chapter of industrialisation What matters is to remember that the two are inter connected parts of one problem'

वास्तव मे १८वी शताब्दी के मध्य मे हुआ, जबकि इगलैंड मे एक महत्त्वपूर्ण क्रान्ति हुई, जो औद्योगिक क्राति के नाम से विख्यात है। इस क्राति के पूव इगलैंड के लागो का प्रमुख व्यवसाय खेती करना ही था। परन्तु औद्योगिक क्रान्ति मे कृषि को गौण एव उद्योग धन्धो का प्रमुख स्थान दया गया। औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ अनेक वैज्ञानिक अनुसन्धानो एव आविष्कारा के परिणामस्वरूप हुआ जिन्होने उत्पादन विधिया मे एक क्राति पैदा कर दी। य आविष्कार तीन प्रकार के थ—(१) श्रम बचान वाल, जैसे स्टीम की शक्ति से चलने वाल यन्त्र (२) समय बचाने वाले, जैसे सूत कातने की नई मशीनें और (३) दूरी कम करन वाले आविष्कार जैसे यातायात एव सन्देशवाहन के साधन। इन समस्त आविष्कारो ने उद्याग, कृषि तथा यातायात के क्षत्रो मे एक क्राति मचा दी। खेती को छोडकर लोग कारखानो म काम करने लगे और शनै शनै औद्योगीकरण को बल मिलने लगा। यद्यपि औद्योगीकरण की बेल सवप्रथम इगलैंड मे प्रारम्भ हुई, परन्तु धारे धीरे समस्त विश्व म इसका विस्तार हो गया ज्ञान, विज्ञान व टैकनोलोजी के साथ-साथ औद्योगीकरण की गति भी तज होती गई। विज्ञान के आधुनिक चमत्कारो ने इसको और भी प्ररणा प्रदान की और आज ता सव-मगलकारी राष्ट्र की स्थापना के लिए औद्योगीकरण ही एकमात्र साधन समझा जाने लगा है। औद्योगीकरण के ही आधार पर आज हम प्राकृतिक साधना का सदुपयोग करने वजर भूमि व मरुस्थलो को कृषि योग्य बनाने तथा विश्व से दरिद्रता का उन्मूलन करने, आदि मे प्रयत्नशील है। हमारे आधुनिक विज्ञान ने स्वचालन (Automation) नामक एक नया आविष्कार प्रदान किया है, जिसके द्वारा औद्योगीकरण की गति और भी तेज हो गई है। आज एसा अनुभव होने लगा है कि हम सभवत एक नवीन औद्योगिक क्रान्ति के दरवाजे पर खड हुय है। स्वचालित यत्रा व एलेक्ट्रोनिक के प्रयोग से हमारी उत्पादन प्रणाली मे बहुत अन्तर आगय है। एक प्रमुख अमरीकन उद्योगपति ने कहा है कि स०रा० अमेरिका के आधे श्रमिक उन वस्तुओ का निर्माण अथवा वितरण करते हैं, जिनकी ५० वर्ष पूव लश मात्र भी जानकारी नही थी। उसने यहाँ तक लिखा है कि सन् १६८० तक अमेरिका मे ऐसी वस्तुओ का निर्माण होगा जिनकी आज हम कल्पना भी नही कर सकते।[1] यह सब कुछ औद्यागीकरण की ही दन है।

औद्योगीकरण का स्वरूप—

देश-देश म औद्यागीकरण का स्वरूप भिन्न भिन्न देखा जाता है। नाचे कुछ प्रमुख स्वरूपो पर प्रकाश डाला गया है—

(१) व्यक्तिगत, सावजनिक एव मिश्रित अर्थ व्यवस्था—सरकार अथवा प्राइवेट उपक्रम द्वारा की गई पहल (initiative) की मात्रा के अनुसार औद्यागी

---

1 United Nations' Review, Article on "The New Industrial Revolution," May, 1956, p 37

करण व्यक्तिगत (Private) हो सकता है या सरकारी अथवा संयुक्त। किसी देश का औद्योगीकरण किस श्रेणी मे आता है, इसे निर्दिष्ट कर देना सरल नही है क्योकि औद्योगीकरण की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे सरकार एव व्यक्ति दोनो के ही प्रयत्न आवश्यक होते ह। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि इगलैन्ड, अमेरिका और फ्रान्स प्रथम श्रेणी मे, सावियत रूस व चीन द्वितीय श्रेणी मे और जर्मनी, जापान एव भारत तृतीय श्रेणी म आते है।

(२) **विकासात्मक एवं क्रान्तिकारी औद्योगीकरण**—सोवियत रूस मे जिस भाँति का औद्योगीकरण हुआ है उसे 'क्रान्तिकारी औद्योगीकरण' (Revolutionary Industrialisation) कहते ह, जबकि इगलैन्ड का औद्योगीकरण 'विकासात्मक' (Evolutionary) कहा जा सकता है। लेकिन य दोनो शब्द एक दूसरे से बिलकुल पृथक नही है। वरन् वे सम्बन्धित हे। उदाहरण के लिये, इगलैण्ड मे आधुनिक उद्योग के विकास के काल को 'औद्योगिक क्रान्ति' (Industrial Revolution) की सज्ञा दी गई थी जब कि सोवियत रूस मे औद्योगीकरण की क्रान्तिमय प्रक्रिया स्वभाव से बहुत कुछ विकासात्मक थी, क्योकि वह आयात की गई टेक्नोलॉजी से आरम्भ हुई थी।

औद्योगीकरण की गति—

कहा जाता है कि औद्योगीकरण की गति सबसे तेज उन देशों मे है जहाँ कि औद्योगीकरण देर से आरम्भ हुआ, क्योकि उन्हे आधुनिकतम टेक्नोलॉजी के प्रचलन का लाभ प्राप्त है। सामान्यत: किसी देश मे औद्योगीकरण की गति निम्न घटको से प्रभावित होती है —

(१) **टेक्नोलॉजिकल विकास का स्तर**—जिस टेक्नोलॉजिकल विकास के स्तर पर कोई देश औद्योगीकरण की प्रक्रिया मे प्रविष्ट होता है उस पर उसके औद्योगीकरण की गति निर्भर होती है। जो देश इस प्रक्रिया मे अन्य देशो की अपेक्षा देर से प्रविष्ट होते है उनमे यह गति अधिक तेज होती है, क्योकि वे आधुनिकतम टेक्नोलॉजिकल आविष्कारो और नवीनतम प्रकार के सगठन का प्रयोग अधिक प्रभावशाली ढग से कर सकते है।

(२) **सरकार की नीति**—सरकार की नीति भी औद्योगीकरण की गति पर प्रभाव डालती है। जब सरकार औद्योगिक विकास मे स्वय भाग लेती है तो औद्योगिक प्रगति की गति उस दशा से अधिक होती है जबकि वह इस प्रकार भाग नही लेती।

(३) **माल का स्वभाव**—यदि औद्योगीकरण की प्रक्रिया उपभोग वस्तुओ के उत्पादन से आरम्भ होती है, तो उसकी गति कम होगी और यदि वह पूँजी-वस्तुओ के उत्पादन से आरम्भ हो, तो उसकी गति तेज होगी।

(४) **पूँजी जुटाने का ढंग**—जिस ढग से पूँजी एकत्र की जाती है वह भी औद्योगीकरण की गति को प्रभावित करती है। यदि आन्तरिक साधनो की कमी को

पूरा करने के लिये सही प्रकार की और पर्याप्त मात्रा मे विदेशी पूँजी उपलब्ध हो, तो देश औद्योगीकरण की राह पर तेज़ी से बढ सकता है।

(५) **भूमि पर जन-सख्या का भार**—अन्य बाते समान रहने पर, जिन देशो मे भूमि पर जन-सख्या का भार कम है तथा वृद्धि की दर भी नीचे है वहाँ औद्योगीकरण की गति तेज होगी, किन्तु जिन देशो मे जन सख्या का भार अधिक है और वृद्धि की दर भी ऊँची है वहाँ औद्योगीकरण की गति धीमी होती है।

(६) **युद्ध का प्रभाव** यह माना जाता है कि युद्ध भी औद्योगीकरण की गति को तीव्र करता है। इस सम्बन्ध मे कुछ औद्योगिक देशो के उदाहरण दिये जा सकते हैं। अमेरिका ने सन् १८६५ के गृह युद्ध के पश्चात् औद्योगीकरण आरम्भ किया, जर्मनी ने सन् १८७० के फ्रेन्को प्रसियन युद्ध के बाद और चीन ने द्वितीय महायुद्ध के बाद औद्योगीकरण के मार्ग पर कदम रखा। अपनी पुस्तक 'प्रशुल्क नीति (Fiscal policy) मे हनसेन ने बताया है कि औद्योगिक क्रान्ति औद्योगीकरण को जितना प्रोत्साहन देती है उतना ही प्रोत्साहन युद्ध भी औद्योगीकरण को देता है। युद्ध माग पैदा करता है और नई उत्पत्ति के प्रचलन को बढावा देता है, वह रोजगार को प्रोत्साहित करता है तथा टेक्नोलॉजिकल परिवर्तन करने की आवश्यकता पैदा करता है तथा आय के वितरण एव सम्पत्ति के स्वामित्व मे सम्बन्धित सामाजिक सुधारो के मार्ग मे आने वाली संस्थागत बाधाओ को दूर करता है। अत यह निसकोच कह सकते है कि युद्ध आर्थिक विकास को बढावा देता है तथा विजेता देश के लिये औद्योगीकरण आरम्भ करने के लिय और (यदि औद्योगीकरण आरम्भ हो चुका है तो) उसकी गति तेज करने के लिये अनुकूल दशायें उत्पन्न करता है।

(७) **औद्योगीकरण की बाधायें एव औद्योगीकरण के प्रोत्साहन**—औद्योगिक प्रगति की बाधायें औद्योगिक विकास की गति को घटाने की प्रवृत्ति रखती है, जबकि कुछ कार्य ऐसे किये जा सकते हैं जिनसे विकास की गति बढ जाय। औद्योगिक विकास की गति तीव्र होगी या धीमी, यह बहुत कुछ किसी विशेष समय पर प्रस्तुत औद्योगिक बाधाओ के आकार पर निभर करता है।

यह उल्लेखनीय है कि गति का सम्बन्ध विकास की दर से है न कि विकास की निरपेक्ष मात्रा से। औद्योगीकरण की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे छोटे नये विकासो के फलस्वरूप विकास की गति तीव्र हो जानी है, जबकि विकास की दर को कायम रखने के लिये नवीन औद्योगिक विनियोग की सदा बढती हुई मात्रा आवश्यक होती है। *वास्तव मे औद्योगीकरण की सुविधायें औद्योगीकरण की गति के साथ-साथ बढती* है। इस प्रकार औद्योगीकरण एक वृद्धिमूलक प्रक्रिया है। एक उद्योग के सफल सचालन से दूसरे उद्योग को पूँजी आदि प्राप्त करना सरल हो जाता है। *यही कारण है कि* प्रारम्भिक अवस्थाओ मे औद्योगीकरण की गति कुछ धीमी होती है।

(८) कृषि की उन्नति— औद्योगीकरण की गति कृषि उत्पादन की दर से भी प्रभावित होती है, क्योकि कृषि से ही उद्योगो के लिये मुख्य कच्चे माल प्राप्त होते है। कृषि उत्पादन मे तुरन्त या अचानक वृद्धि नही की जा सकती है।.

(९) मानवीय साधन—औद्योगिक विकास की गति समाज द्वारा अपने रहन-सहन के ढग मे व सम्बन्धो और स्थितियो मे आवश्यक समायोजन कर सकने की क्षमता से भी सीमित होती है। यदि देश मे पर्याप्त पूँजी उपलब्ध है, किन्तु जनता मे उसके प्रयोग करने की योग्यता नही हैं, तो औद्योगीकरण की गति तेज नही हो सकती है।

औद्योगीकरण के लाभ

वर्तमान औद्योगिक युग मे औद्योगीकरण की महिमा के विषय मे जो कुछ भी कहा जाय, कम ही होगा। औद्योगीकरण किसी भी राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि के हेतु 'सजीवनी' है। इसके द्वारा केवल आर्थिक विकास ही नही, वरन् सामाजिक एव राजनैतिक प्रगति भी सभव होती है। औद्योगीकरण के कुछ प्रमुख लाभ निम्नलिखित है—

औद्योगीकरण के प्रमुख ११ लाभ

१ उत्पादन शक्ति मे वृद्धि।
२. राष्ट्रीय आय मे वृद्धि।
३ कृषि पर जन-सख्या के भार मे कमी।
४. रोजगार के साधनो मे वृद्धि।
५. सतुलित आर्थिक विकास की सभावना।
६. पूँजी के निर्माण मे वृद्धि।
७ श्रमिको के रहन-सहन के स्तर मे वृद्धि।
८ जन साधारण के जीवन स्तर मे वृद्धि।
९ कर-देय क्षमता मे वृद्धि।
१० राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे वृद्धि।
११ राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण।

(१) उत्पादन शक्ति मे वृद्धि— किसी भी देश की उत्पादन-शीलता को बढाने का एकमात्र साधन तीव्र औद्योगीकरण ही है। विश्व का वर्तमान आर्थिक विकास इस बात का साक्षी है कि जिन देशो ने औद्योगीकरण को अपनी आर्थिक समृद्धि का आधार माना है, वे ही आज प्रगति की पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए है। औद्योगीकरण के नारे से समस्त देश मे एक चेतनता पैदा हो जाती है, जिससे उत्पादन शक्ति की वृद्धि में बडा योग मिलता है।

(२) राष्ट्रीय आय मे वृद्धि — उद्योग धन्धो के विकास से राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होना स्वाभाविक ही है। उदाहरण के लिये, भारतवर्ष को ही लीजिये, सन् १९५०-५१ मे हमारी

प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय केवल २६५ रु० थी, परन्तु प्रथम व द्वितीय पंच-वर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत तीव्र औद्योगीकरण के परिणाम-स्वरूप आज हमारी राष्ट्रीय आय २९९ रु० हो गई है।[1]

(३) कृषि पर जन संख्या के भार में कमी—औद्योगीकरण के द्वारा कृषि पर जन-संख्या के भार को भी कम किया जा सकता है। औद्योगीकरण के विकास से केवल कृषि पर लोगों की निर्भरता न रहेगी वरन् विभिन्न उद्योग-धन्धों में उनको काम भी मिल सकता है।

(४) रोजगार के साधनों में वृद्धि—औद्योगीकरण का सर्वश्रेष्ठ लाभ यही है कि इससे बेरोजगारी जो किसी भी सभ्य राष्ट्र के लिए अभिशाप है, दूर की जा सकती है। वृहत् उद्योग, लघु उद्योग एवं कुटीर उद्योगों में अनेक लोगों को काम मिल सकता है।

(५) सन्तुलित आर्थिक विकास की सम्भावना—किसी देश की सन्तुलित आर्थिक प्रगति के लिए भी औद्योगीकरण नितांत आवश्यक है। बिना औद्योगीकरण के यह सम्भव है कि जन-संख्या का भार अधिकांशतः कृषि उद्योग पर ही बना रहे। औद्योगीकरण के द्वारा यह दोष दूर किया जा सकता है। किसी राष्ट्र की स्थायी आर्थिक समृद्धि के लिए सन्तुलित विकास बहुत जरूरी है और यह केवल औद्योगीकरण की योजना द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

(६) पूँजी के निर्माण में वृद्धि—पूँजी का संचय व इसका निर्माण भी काफी सीमा तक औद्योगीकरण की गति पर निर्भर करता है। यदि हम किसी राष्ट्र की विनियोग शक्ति को बढ़ाकर पूँजी के निर्माण को प्रोत्साहित करना चाहते हैं, तो इसका एकमात्र उपाय है—औद्योगीकरण।

(७) श्रमिकों के रहन-सहन के स्तर में वृद्धि—औद्योगीकरण के द्वारा श्रम-जीवियों को केवल रोजगार ही नहीं मिलता, वरन् उनके रहन-सहन के स्तर में भी वृद्धि होती है। नगद मजदूरी के अतिरिक्त उनको असल मजदूरी भी मिलती है, जैसे—रहने के लिए अच्छे मकान की व्यवस्था, खाने के लिए सस्ता अनाज, पहनने के लिए सस्ते व अच्छे कपड़े एवं मनोरंजन की सुविधाएं इत्यादि। इन सब बातों का सामूहिक प्रभाव उनके रहन-सहन के स्तर पर पड़ता है।

(८) जनसाधारण के जीवन स्तर में वृद्धि—औद्योगीकरण के द्वारा केवल श्रमिक वर्ग ही लाभान्वित नहीं होता, वरन् इससे सम्पूर्ण समाज का हित होना है। विभिन्न उद्योग-धन्धों के विकास से देश में स्वस्थ प्रतिद्वन्द्विता पैदा हो जाती है, जिससे परिणामस्वरूप वस्तुओं के मूल्य स्वतः कम हो जाते हैं। इस प्रकार जनता को सस्ती

1. India 1960, Page 183.

व अच्छी वस्तुएँ मिलने लगती है एव उनके उपभोग का स्तर व जीवन स्तर उन्नत हो जाता है।

(९) **कर-देय क्षमता में वृद्धि**—औद्योगीकरण मे देश भर की कर-देय क्षमता बढ जाती है तथा सरकार को अधिक आय प्राप्त होती है जिससे वह जन साधारण की अधिक सेवा करने मे समर्थ होती है। सरकार के खजाने मे जो अतिरिक्त आय आती है उसका उपयोग सडके बनवाने पटरियाँ बिछवाने आदि जन कल्याण के कार्यो मे किया जाता है।

(१०) **व्यापार में वृद्धि**—औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप प्रमुख देश को अतिरिक्त वस्तुएँ उपलब्ध होने लगती है जिनको बेचकर वह बहुमूल्य विदेशी विनिमय एकत्रित कर सकता है। औद्योगीकरण के द्वारा केवल आंतरिक व्यापार ही नहीं वरन् अतर्राष्ट्रीय व्यापार भी प्रोत्साहित होता है।

(११) **राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण**—औद्योगीकरण के द्वारा राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण मे भी बडा योग मिलता है। विभिन्न उद्योग मे काम करने वाले कर्मचारी तथा उनके सेवायोजक सभी नियत नियमो के अनुसार एक दृढ अनुशासन के अन्तर्गत कार्य करते है, इससे उनके चरित्र पर बडा अच्छा प्रभाव पडता है।

औद्योगीकरण के कुछ सामाजिक दोष

राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि के लिये अनिवार्य होते हुए भी औद्योगीकरण के मार्ग मे कुछ दुर्बलताये भी है। यदि इससे एक ओर समाज को सस्ती अच्छी व अधिक मात्रा मे वस्तुएँ उपलब्ध होने लगती है तो दूसरी ओर अनेक दोषो का भी शिकार होना पडता है। गहन प्रतिस्पर्धा एव व्यक्तिवाद की भावना बढने से सामूहिक जीवन को बडी ठस पहुँचती है। ग्रामीण एकता को औद्योगीकरण के द्वारा बडा आघात पहुँचा है। गाँव की आत्म निर्भरता समाप्त होने लगती है और उन पर नगरो तथा विश्व के अन्य देशो का प्रभाव पडने लगता है। औद्योगीकरण से पूर्व गाव एक सम्पूर्ण इकाई थी और गाँव के सभी लोग एक परिवार के सदस्यो की भाति जीवन व्यतीत करते थे, परन्तु औद्योगीकरण ने इस पर भी आघात किया। सामूहिक जीवन छिन्न-भिन्न हो गया एव कारखानो का वातावरण पनपने लगा। कारखाना के विकास से श्रमिको तथा कारीगरो की भी समस्याएँ बढने लगी। कुटीर एव दस्तकारी उद्योगो पर इसका सबसे बुरा प्रभाव पडा है। विशाल उद्योगो की प्रतिस्पर्धा मे ये लघु उद्योग टिक नही पाते। फलत उनके विनाश व अवनति के कारण अनेक व्यक्ति बेरोजगार हो जाते हैं। बेरोजगारी के कारण समाज मे निराशा का वातावरण पैदा हो जाता है। औद्योगीकरण का एक अन्य दोष यह है कि इससे बीमारी व गृह समस्या को भी बढावा मिलता है। जो श्रमिक गाँवो के स्वच्छन्द वातावरण को छोडकर नगरो मे

आकर कारखानो म काम करते है, उनके लिये यहाँ रहने की पर्याप्त व्यवस्था नही होती। एक छोटे से कमरे मे अनेक परिवारो को अपना दु खद जीवन व्यतीत करना पडता है। अनेक व्यक्तियो के एक साथ रहने के कारण अस्वास्थ्यप्रद वातावरण रहता है, जिससे तरह तरह की बीमारियाँ बढती है।

उपरोक्त विवरण से हमको ऐसी धारणा नही कर लेनी चाहिये कि 'औद्योगीकरण हानिकारक है। किंचित सामाजिक दोषा के होते हुए भी इससे राष्ट्र का कल्याण ही होता है अहित नही। विश्व का आर्थिक इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिन देशो ने औद्योगीकरण का आश्रय लिया, उन्होने निश्चय प्रगति की और आज भी वे ही उन्नति की पराकाष्ठा पर हैं। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका ग्रेट ब्रिटेन, सोवियत रूस जर्मनी आदि देश की आधुनिक समृद्धि का एकमात्र कारण वहाँ का औद्यागीकरण ही है।

भारत मे औद्योगीकरण की आवश्यकता

भारतवष की वतमान आर्थिक सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियो को देखते हुए यह निश्चयपूवक कहा जा सकता है कि हमको औद्योगीकरण की विशेष आवश्यकता है। यद्यपि भारतवर्ष की गणना दुनिया के ८ बडे-बडे औद्योगिक देशो मे की जाती है किन्तु फिर भी औद्योगिक दृष्टि से हम बहुत पिछड हुए है। यदि हम दुनिया के अन्य उन्नतशील देशो के साथ कदम बे-कदम मिलाकर चलना चाहते ह तो इसका एकमात्र उपाय तीव्र गति से औद्योगीकरण करना ही है। हमारी निम्नलिखित समस्याओ को हल करने के लिय औद्योगीकरण बहुत जरूरी है—

भारत में औद्योगीकरण की प्रमुख ६ आवश्यकतायें

१ बेरोजगारी का दूर करने के लिये।
२ सतुलित आर्थिक प्रगति के लिय।
३ प्राकृतिक सपदा का सदुपयोग करने के लिये।
४ राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करन के लिये।
५ श्रमिका व जन-साधारण के रहन सहन के स्तर मे वृद्धि के लिय।
६. करदेय क्षमता म वृद्धि के लिये।

(१) बेरोजगारी को दूर करने के लिये—किसी भी सभ्य देश के लिये बेरोजगारी एक बहुत बडा अभिशाप है। जिस देश म बेरोजगार लोगो की सख्या अधिक होती है अथवा जो देश अपने यहाँ के निवासियो का पूर्ण रोजगार नही दे सकता, वह कभी भी प्रगति नहीं कर सकता। हमारे देश मे भी आज अनेक व्यक्ति बेरोजगार है। बेरोजगारी का रोग केवल अशिक्षित वर्ग मे ही नही बरन् *शिक्षित वर्ग म* भी है। यदि इस समस्या का पूर्णत उन्मूलन करना है तो इसका एकमात्र उपाय औद्योगीकरण ही हो सकता है।

(२) संतुलित आर्थिक प्रगति के लिये—भारतवर्ष के आर्थिक विकास के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारी आर्थिक प्रगति सतुलित नही है। कृषि पर जन-सख्या का अत्यधिक भार है । उद्योग-धन्धो मे काम करने वाले लोगो की सख्या बहुत ही कम है। इसी प्रकार विभिन्न सेवाओ मे भी देश की कुल जन-सख्या का बहुत थोडा भाग लगा हुआ है। सतुलित आर्थिक प्रगति के लिये यह आवश्यक है कि कृषि, उद्योग-धन्धो, व्यापार, यातायात, सेवाओ आदि सभी का पर्याप्त विकास हो। अतएव कृषि पर स जन-सख्या के भार को कम करने के लिये एव सतुलित आर्थिक विकास के उद्देश्य से भारत का 'औद्योगीकरण' नितात आवश्यक है।

(३) प्राकृतिक सम्पदा का सदुपयोग करने के लिये—प्राकृतिक सम्पदा की दृष्टि से हमारा देश बडा धनी है और इस दृष्टि से तो दुनिया के थोडे ही ऐसे देश होगे जिनकी तुलना भारत से की जा सकती है । परन्तु दुर्भाग्य का विषय यह है कि सन् १६४७ तक दासत्व की श्रृखला मे जकडे रहने के कारण हम अपनी प्रकृति-दत्त सपदा का उपयोग नही कर सके। इसके पर्याप्त विदोहन (Exploitation) के लिये कभी भी योजना नही बनाई गई । हाँ, जब से शासन की बागडोर जन-प्रिय सरकार के हाथो मे आई है, तब से अवश्य नियाजित विकास की दशा मे हम प्रयत्नशील है। अतएव यदि हम अपने प्रकृतिदत्त पदार्थों का सदउपयोग करना चाहते है, तो यह केवल औद्योगीकरण की विस्तृत योजना द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

(४) राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने के लिये—देश की राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करने के लिये भी औद्योगीकरण नितान्त आवश्यक है । औद्योगीकरण के द्वारा उत्पादन शक्ति मे वृद्धि होगी एव परिणामस्वरूप राष्ट्र की आय भी बढेगी। यही नही, पूँजी के निर्माण मे भी इससे बडी सहायता मिलेगी।

(५) श्रमिकों व जन-साधारण के रहन-सहन के स्तर मे वृद्धि के लिये—औद्योगीकरण की देशव्यापी योजना मे श्रमिको को नही भुलाया जा सकता। *इससे उनकी कार्य-कुशलता ही नही बढेगी वरन् जीवन स्तर भी उन्नत होगा।* आजकल श्रमिको की काम करने की दशाएँ अधिक सन्तोषजनक नही कही जा सकती, यद्यपि उनमे सुधार के लिय अनेक प्रयत्न किये जा रह है, परन्तु फिर भी अब तक जो कुछ भी किया गया है, वह सागर मे एक बूँद के समान है। यदि हम भारतीय श्रमिको के रहन-सहन के स्तर मे वृद्धि करना चाहते है एव जन साधारण को सस्ती व अच्छी वस्तुएँ प्रदान करना चाहते है, तो इसका एकमात्र उपाय है—'औद्योगीकरण'।

(६) कर-देय क्षमता में वृद्धि के लिये—भारतवासियों की कर देय क्षमता बहुत ही कम है। मध्यम वर्ग तो कर के भार से बहुत ही दबा हुआ है। यदि हम चाहते हैं कि हमारा कर-दाता स्वस्थ व हृष्ट पुष्ट हो एवं सरकारी खजाने में अधिक पैसा जमा कराने में समर्थ हो सके तो यह केवल आद्योगीकरण के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। औद्योगीकरण से केवल कर दाता ही अधिक कर देने में समर्थ न होगा *वरन् सरकार की व्यय क्षमता भी बढ़ जाएगी। वह भी फिर जनता की सुख-सुविधाओं के लिये अधिक व्यय कर सकेगी।*

संक्षेप में देश की जन संख्या के लगभग **३/४ भाग की कृषि जैसे जोखिम** पूर्ण व मौसमी उद्योग पर निर्भरता भूमि पर जन-संख्या का अत्यधिक भार, अत्यन्त निम्न स्तर तथा निर्जीव करने वाली भयानक दरिद्रता शिक्षित मध्यम वर्ग के नवयुवकों में बेकारी तथा कृषकों की अर्द्ध रोजगारी इत्यादि देश को कमी की अर्थ व्यवस्था से निकाल कर एक बचत की अर्थ व्यवस्था में लाने के लिये एक आयोजित औद्योगिक अर्थ व्यवस्था की परम आवश्यकता की ओर संकेत करते हैं।

प्रशुल्क आयोग सन् १९४९–५० के शब्दों में औद्योगीकरण की देश व्यापी *योजना में भारत को निम्नलिखित लाभ होने की आशा है* —

(अ) *औद्योगीकरण से देश की उत्पादन शक्ति बढ़ेगी,* जिससे राष्ट्रीय सम्पत्ति में वृद्धि होगी।

(ब) कृषि के ऊपर वर्तमान जन संख्या का जो भार है वह कम होकर, कृषि निर्भरता नहीं रहेगी।

(स) औद्योगीकरण से श्रमिकों को अनेक काम मिलेंगे एवं बेकारी की समस्या दूर हो सकेगी।

(द) उद्योगों के बढ़ते हुए लाभ से देश में पूँजी का अधिक निर्माण हो सकेगा, जिससे विनियोग शक्ति बढ़ेगी।

(य) औद्योगिक विकास से श्रमिकों की नगद मजदूरी बढ़ सकती है, क्योंकि ऐसे विकास में श्रमिकों के परिवार को भी काम करने के अवसर मिल सकते हैं।

(र) औद्योगीकरण से देश की कर-देय क्षमता बढ़ेगी तथा राज्य को अधिक आय हो सकेगी।

(ल) इन लाभों का हितकर प्रभाव देश के चरित्र-निर्माण पर भी पड़ेगा, क्योंकि सुदृढ़ एवं अच्छे चरित्र निर्माण के लिए देश का औद्योगीकरण एवं प्रत्येक व्यक्ति के लिए अवसर प्राप्त होना, ये दोनों बातें आवश्यक होती हैं।

भारत मे औद्योगीकरण के साधन

औद्योगिक विकास के लिए जिन साधनो की आवश्यकता होती है, वे सभी साधन भारत मे उपलब्ध है। प्रकृति की इस देश पर अत्यन्त अनुकम्पा है, इसी कारण यह कहा जाता है कि "भारत एक धनी देश है, जिसमे निर्धन व्यक्ति रहते है।" औद्योगीकरण के लिए कच्चा माल, जन-सम्पत्ति, विद्युत-शक्ति, खनिज-सम्पत्ति, धन-सचय, विस्तृत बाजार, क्रय-विक्रय की सुविधाये, प्रबन्ध एव साहस आदि साधनो की आवश्यकता पडती है और य सभी प्रचुर मात्रा मे हमारे देश मे उपलब्ध है। सन् १९५१ की जन-गणना के अनुसार भारत की जन-सख्या ३५·६८८ करोड है। जनशक्ति की दृष्टि से चीन के बाद दूसरा नम्बर भारत का है। कच्चे माल की दृष्टि से भी भारत किसी बात म कम नही है, यहा तक कि हमारे यहाँ के निर्यात माल मे कच्चे माल की ही अधिकता होती है, जिसको कि औद्योगीकरण द्वारा ही देश मे खपाया जा सकता है। भाज्य पदार्थ के उत्पादन मे भी देश लगभग सम्पन्न है। यहाँ विश्व के सर्वोत्तम सिचाई के साधन विद्यमान है। पशु सम्पत्ति मे भी भारत सर्वश्रेष्ठ है। हमारी वन-सम्पत्ति विस्तृत तथा विशाल है, जिसमे बहुमूल्य लकडी का भण्डार है। लाख के उत्पादन मे भारत को एकाधिकार प्राप्त है। खनिज सम्पत्ति की दृष्टि से भी भारत धनाढ्य है। भारत-भूमि को रत्नगर्भा कहा जाता है। यहाँ दुनियाँ मे सबसे ज्यादा अभरक निकलता है। मैंगनीज के उत्पादन मे भी इसका विश्व मे दूसरा नम्बर है। इसके अलावा यहाँ कोयला, लोहा, बाक्साइट, क्रोमाइड, चूने का पत्थर, अल्यूमिनियम आदि भी अधिक परिमाण मे निकलती है। जल-विद्युत के लिए भी भारत मे अपार धन है। बम्बई मे गटर के पानी से जलाने के लिए गैस भी तैयार होती है, जो आगे चलकर औद्योगिक उत्पादन के कार्य मे भी आन लगेगी। इसके अतिरिक्त भारत को देशी तथा निकटवर्ती विदेशी विशाल बाजार भी उपलब्ध है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राकृतिक साधनो का भारत मे अभाव नही है, किन्तु आवश्यकता है उनके सदुपयोग करने की। विदेशी शासन तथा आर्थिक परतन्त्रता के कारण अभी तक इन स्रोतो का उचित तथा पूर्ण उपयोग नही हो सका है। तभी तो यद्यपि भारत की गणना विश्व के आठ बडे बडे औद्योगिक देशो मे की जाती है, किन्तु फिर भी औद्योगिक दृष्टि से यह प्रगतिशील राष्ट्र नही है। अब आशा की जाती है कि राष्ट्रीय सरकार के अन्तर्गत हमारा भारत दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करेगा।

STANDARD QUESTIONS

1. Define the term 'Industrialisation'. Discuss its scope and importance

2. Summarise carefully the various advantages that are likely to accrue from Industrialisation
3. Are there any disadvantages of Industrialisation ? If so, what are they ? How far they are real ?
4. Discuss the need and importance of Industrialisation in India How far she is going to be benefitted by it ?
5. What do you mean by the term 'Pattern of Industrialisation' ? Discuss the factors which affect the speed of Industrialisation in a country

---

अध्याय २

अर्द्ध-विकसित देशों की समस्यायें

(Problems Of Underdeveloped Countries)

अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था से आशय—

एक अर्द्ध विकसित अर्थ-व्यवस्था (Underdeveloped Economy) **से आशय ऐसे देश अथवा देशों की अर्थ-व्यवस्था से है जिनका आर्थिक विकास या तो अभी प्रारम्भ ही नहीं हुआ है, और यदि हुआ भी है, तो अभी अत्यन्त प्रारम्भिक अवस्था में है।** एक अर्द्ध विकसित अर्थ-व्यवस्था वाले देश का अर्थ भली प्रकार समझने के लिये 'विकसित अर्थ-व्यवस्था' (Developed Economy) एवं 'अविकसित अर्थ-व्यवस्था' (Undeveloped Economy) का अर्थ देना आवश्यक है। जैसा कि इन शब्दों से स्पष्ट है ' एक विकसित अर्थ-व्यवस्था वाला देश वह है, जिसने अपनी प्राकृतिक सम्पदा एवं अन्य सम्पत्तियाँ (जैसे, जन-शक्ति, जल-शक्ति, विविध कच्चे पदार्थ, खनिज सम्पत्ति, वन सम्पत्ति, इत्यादि) का भरपूर शोषण किया हो एवं जो समृद्धि के मार्ग पर अग्रसर हो। जिस देश में कृषि व उद्योग धन्धों का उत्पादन उन्नति की पराकाष्ठा पर होता है, अत्यन्त तीव्र गति से पूँजी का निर्माण होता है एवं चारों ओर सुख एवं समृद्धि छायी होती है, ऐसे देश को प्रायः विकसित देश कहा जाता है। ये समस्त लक्षण आज संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, सोवियत रूस आदि औद्योगिक राष्ट्रों में

विद्यमान हैं। यही कारण है कि इन्हे विकसित देश की सज्ञा दी जाती है। इसके विपरीत 'अविकसित देश' उसे कहा जा सकता है जहाँ कि प्राकृतिक सम्पदा बिल्कुल सुप्त दशा मे पडी हुई हो, जहाँ के निवासियो के रहन सहन के स्तर अत्यन्त निम्न हो और जहाँ सामान्यत निराशावाद छाया हो। अफ्रीका महाद्वीप के कुछ देश इस दृष्टि से अविकसित कहे जा सकते है। एक अर्द्ध विकसित देश की अर्थ-व्यवस्था इन दोनो प्रकार के देशो की (विकसित तथा अविकसित) अर्थ-व्यवस्थाओ के मध्य मे कही जा सकती है। एक अर्द्ध-विकसित व्यवस्था वाले देश मे प्राकृतिक प्रसाधनो का अभाव नही होता वरन् उसका पर्याप्त शोषण नही हो पाता है। यही कारण है कि वहाँ प्रति व्यक्ति उत्पादन बहुत कम होता है। घरेलू बचत इतनी कम होती है कि आर्थिक विकास के लिये पर्याप्त पूँजी का अभाव होता है।

कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषायें—

'अर्द्ध विकसित अर्थ-व्यवस्था' के सम्बन्ध मे यहाँ किंचित परिभाषाये देना अनावश्यक न होगा—

(१) **प्रो० हिक्स (Prof Hicks)** के शब्दो मे, एक अर्द्ध-विकसित देश वह है जिसमे तान्त्रिक एवम् मौद्रिक साधनो की मात्रा उत्पादन एवम् बचत के वास्तविक स्तर से कुछ ही अधिक होती है, जिसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक को पुरष्कार उस राशि से बहुत कम मिलता है, जो कि उसे तब मिलता जबकि सम्पूर्ण ज्ञान तत्र-कला का उत्पादन मे उपयोग किया जाता।[1] प्रोफेसर हिक्स द्वारा दी गई यह परिभाषा मुख्यत औद्योगिक घटको (Technological Factors) पर अवलम्बित है।

(२) **प्रोफेसर वाइनर (Prof Viner)** ने अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था को निम्न शब्दो मे परिभाषित किया है—"एक अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था से अभिप्राय उस अर्थ-व्यवस्था का है, जिसमे आर्थिक विकास की सम्भावनाओ का अभी पूर्ण शोषण नही हो पाया है।'[2]

---

1 "An underdeveloped country is one in which the technical and monetary ceilings are as low as practically to coincide with the actual level of output and savings, with the result that the aver ge remuneration per unit of labour (or per working person) is lower than what it could be if known technology were applied to known resources "

—*A contribution to the theory of Trade Cycle, by Prof Hicks*

2 "An underdeveloped economy is one which has good potential prospects for using more capital or more labour or more available natural resources or of all these to support pres nt population in a higher level of living "

—*Prof Viner*

अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था की विशेषतायें—

उपरोक्त परिभाषाओं का सार यह है कि एक अर्द्ध विकसित देश में आर्थिक विकास की सम्भावनाओं का पूर्ण शोषण नहीं होता है। पूँजी का निर्माण या तो बिल्कुल ही नहीं होता या बहुत थोड़ा होता है। उपलब्ध भूमि के क्षेत्रफल एवम् निष्क्रिय जन शक्ति की मात्रा को देखते हुये कृषि की उत्पादकता कम होती है। काम करने वाली जन-संख्या थोड़ी किन्तु पलने वाली जन-संख्या अधिक होती है, जिसके फलस्वरूप रहन सहन का स्तर बहुत नीचा पाया जाता है। ऐसे देशों में आर्थिक संस्थाओं का विकास या तो हुआ नहीं है अथवा वे अभी विकास की प्रारम्भिक अवस्था में ही है। एक अर्द्ध विकसित देश की विशेषतायें इतनी अधिक हैं कि उनको किसी एक परिभाषा के अन्दर स्थान देना कठिन है। इससे तो उस परिभाषा का महत्त्व ही जाता रहेगा। फिर भी एक अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है कि यह वह अर्थ-व्यवस्था है जिसमें जनता का जीवन-स्तर बहुत नीचा होता है विनियोग की विशाल सम्भावनायें उपस्थित हैं किन्तु पूँजी का लगभग अभाव होता है लोगों की उपभोग की वृत्ति ऊँची होती है बचत लगभग शून्य होती है, छिपी हुई बेरोजगारी का बोलबाला होता है कृषि कार्य पुराने तरीकों से किया जाता है सहायक उद्योग व्यापार व वाणिज्य का बहुत कम विकास होता है।

विश्व के कुछ अर्द्ध-विकसित देश—

बोअर और यामे (Bauer and Yamey) के शब्दों में 'मोटे तौर पर, एक अर्द्ध-विकसित देश से तात्पर्य उन देशों का है जिनकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय और पूँजी उत्तरी अमेरिका पश्चिमी योरोप व आस्ट्रेलिया की तुलना में कम हो।'[1] इससे यह प्रगट होता है कि अधिक विकसित और कम विकसित देशों के बीच अन्तर केवल डिग्री का ही है। अर्द्ध-विकसित देशों में अत्यधिक गरीबी पाई जाती है, जो कि किसी अस्थाई दुर्भाग्य का परिणाम न होकर अर्थ व्यवस्था के स्थाई दोष का फल होती है और वहाँ उत्पादन व सामाजिक संगठन के तरीके बड़े अप्रचलित होते हैं। ऐसे देशों में उन्नत वैज्ञानिक एवम् औद्योगिक तरीकों का किसी बड़े पैमाने पर प्रयोग नहीं किया जाता है। वास्तव में वहाँ उत्पादन केवल जीवन निर्वाह के लिये किया जाता है और बाजार का क्षेत्र अपेक्षित संकीर्ण होता है। 'अर्द्ध-विकास' शब्द का तात्पर्य केवल आर्थिक और टक्नीकल सफलता के निम्न स्तर से है, किन्हीं अन्य बातों से इसका

---

1 "The term 'under developed countries' refers loosely to countries or regions with levels of real income and capital per head of population which are low by the standards of North America Western Europe and Australia"

—*Bauer and Yamey*

तात्पर्य नहीं होता। उदाहरण के लिये, अर्द्ध-विकसित देश होते हुये भी भारत और चीन की सभ्यताएँ व संस्कृतियाँ ५,००० वर्ष से भी अधिक पुरानी हैं।

प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के आधार पर विश्व के विभिन्न देशों को बहुत अधिक विकसित, साधारण रूप से अधिक विकसित एवम् अर्द्ध-विकसित देशों में वर्गित किया जा सकता है। अर्द्ध विकसित देशों में एशिया के समस्त देश (जापान को छोड़कर), अफ्रीका, लेटिन अमेरिका (अर्जेन्टइना को छोडकर) और पूर्वी व दक्षिणी योरोप सम्मिलित किये जाते है। इन देशों की कुल जन-संख्या लगभग १,६०० मि० है। साधारण रूप से विकसित देशों मे सोवियत रूस, दक्षिणी अफ्रीका संघ, योरोप के ७ देश, लेटिन अमेरिका के ५ देश, जापान और इसराइल सम्मिलित है और इनकी जन-संख्या ४२५ मि० के लगभग है, जबकि अत्यधिक विकसित देशों (उत्तर-पश्चिम योरोप, अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड) की जन-संख्या ३७५ मि० है। इस प्रकार विश्व की लगभग २/३ जन-संख्या उन देशों मे निवास करती है जो कि मिलकर विश्व आय का १/६ से भी कम भाग पैदा करते है। संयुक्त-राष्ट्र के सांख्यिकी विभाग के अनुसार विश्व की आधी जन-संख्या १०० डालर से भी कम की प्रति व्यक्ति आय वाले देशों म रहती है। ६०० डालर वार्षिक से अधिक की प्रति व्यक्ति आय वाले देशों मे तो विश्व की केवल १/१० जन-संख्या का ही निवास है। अकेले संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की राष्ट्रीय आय सन् १६५० मे कुल विश्व आय का ४०% थी, किन्तु वहाँ विश्व की लगभग ६% जन-संख्या का ही निवास था।

अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था की मौलिक समस्यायें

एक अर्द्ध-विकसित अर्थ व्यवस्था की अनेक मौलिक समस्यायें हैं, जिनमे से कुछ प्रमुख समस्याओं का उल्लेख नीचे किया जाता है:—

(१) **पूँजी के निर्माण की मन्द गति**—एक अर्द्ध विकसित अर्थ व्यवस्था वाले देश मे अधिकांश जनता की आमदनी इतनी कम होती है कि बचत की बात तो दूर रही, वे लोग अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की भी संतुष्टि नही कर पाते। इनका रहन-सहन का स्तर इतना नीचा होता है कि यदि आय मे थोडी सी भी वृद्धि हो जाय, तो बचाने की अपेक्षा उसे अतिरिक्त उपभोग मे ही प्रयोग कर लिया जाता है। इस प्रकार पूँजी के निर्माण की गति बहुत धीमी रहती है। सच बात तो यह है कि पूँजी का जो थोडा बहुत निर्माण होना भी है वह बडे ही

अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था की मौलिक समस्यायें हैं चार

१. पूँजी के निर्माण की मन्द गति।
२. बेरोजगारी की समस्या।
३. कृषि-क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तनो की समस्या।
४. उद्योग, व्यापार, यातायात एवं सामाजिक सेवाओं का पिछडा होना।

विचित्र ढग से होता है। अर्थ-शास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार अधिक विनियोग तभी संभव हो सकता है जबकि अधिक पूँजी हो, पूँजी उसी दशा मे अधिक हो सकती है जबकि अधिक बचत हो और अधिक बचत तभी सभव हो सकती है जबकि नियमित रूप से पर्याप्त आय होती रहे। किन्तु आय स्वय भी विनियोग पर ही निर्भर करती है। अतः जब तक यह विचित्र दूषित चक्र (Vicious Circle) नही तोडा जाता, तब तक अर्थ-व्यवस्था का विकास आरम्भ नही हो सकता।

इस समस्या को हल करने के लिये घाटे के अर्थ-प्रबन्धन की नीति (Policy of Deficit Financing) को अपनाना होगा अथवा विदेशी सहायता लेनी पडेगी।

(२) **बेरोजगारी की समस्या**—एक अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था की दूसरी महत्त्वपूर्ण समस्या बेरोजगारी की है। अर्द्ध-विकसित देशो मे प्रायः छिपी हुई बेरोजगारी दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार की बेरोजगारी तब उदय होती है जबकि लोग किसी न किसी पेशे या धन्धे मे तो लगे हुये है, लेकिन उनकी वास्तविक आय उस आय से बहुत कम है जो कि एक साधारण व्यक्ति के लिये आवश्यक है। उदाहरण के लिये, एक व्यक्ति मछली पकडने के काम म दिन भर लगा रहता है, लेकिन इसमे उसे इतनी कम आय होती है कि एक दिन के लिये भी पर्याप्त नही है। यह छिपी हुई बेरोजगारी है। अर्द्ध-विकसित देशो के आर्थिक विकास से सम्बन्धित सयुक्त राष्ट्रो की रिपोर्ट मे छिपी हुई बेरोजगारी की परिभाषा इस प्रकार की गई है,– "अदृश्य बेरोजगार व्यक्ति वे हैं जो कि अपनी जोखिम पर कार्य करते हैं और कार्य मे सम्बन्धित प्रसाधनो की तुलना मे इतनी अधिक सख्या म है कि उनमे से अनेक व्यक्तियो को अर्थ व्यवस्था के अन्य क्षेत्रो मे काम करने के लिये हटा लिया जाय, तो जिस क्षेत्र से उन्हे हटाया गया है उस क्षेत्र का उत्पादन बहुत प्रभावित नही होगा।"[1] डॉ० राव के शब्दो मे, "अदृश्य बेरोजगारी तब विद्यमान कही जाती है जबकि ऐसे मजदूर हो जिन्हे लगातार रोजगार प्राप्त है, किन्तु यदि उन्हे उस कार्य से हटा दिया जाय, तो उत्पादन पर कोई प्रभाव नही पडेगा।"[2]

---

1 "The disguised unemployed are those persons who work on their own account and who are so numerous, relatively to the resources with which they work in other sectors of the economy, the total output of the sector from which they were withdrawn would not be diminished even though no significant reorganisation occured in this sector"

—*U N O. Report on Measures for the Economic Development of Underdeveloped Countries.*

2 "Disguised unemployment exists when there are workers who are constantly employed in the sense that their time is occupied but whose contribution to output is nil in the sense that their ceasing to work [illegible] leave the total output unchanged."

—*Dr. V. K. R V. Rao*

एक अर्द्ध-विकसित अर्थ-व्यवस्था मे व्यापक रूप से फैली हुई अदृश्य बेरोजगारी को दूर करने का एक उपाय अर्थ-व्यवस्था का पुनर्गठन करना है।

(३) कृषि क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तनो की समस्या—प्राय: सभी अर्द्ध-विकसित देशो मे कृषि-कार्य करने की प्रणाली अत्यन्त प्राचीन एव अवैज्ञानिक है। अशिक्षित, अज्ञानी एव रूढिवादी होने के कारण वे आधुनिकतम साधनो को अपनाने मे सकोच करते हैं। अत: अर्द्ध-विकसित देशो मे औद्योगीकरण प्रारम्भ करने के पूर्व यह नितान्त आवश्यक है कि वहाँ के कृषि-क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन किये जाये। कृषि के वैज्ञानिकरन व यन्त्रीकरण के बिना कृषि की उत्पादकता नही बढाई जा सकती। अतएव कृषि के क्षेत्र मे आधुनिकीकरण व वैज्ञानिकता का होना नितान्त आवश्यक है।

(४) उद्योग, व्यापार, यातायात एवं सामाजिक सेवाओं का पिछड़ा होना—जैसा कि हम ऊपर सकेत कर चुके है, अर्द्ध विकसित देशो मे समाज-सेवाओ, उद्योग-धन्धो, उन्नत यातायात आदि का प्रायः अभाव होना है। ऐसे क्षेत्रो के आर्थिक विकास के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि कृषि पर से जन-सख्या का भार कम किया जाय एवम् कृषि से उद्योगो एवम् सामाजिक सेवाओ मे कृषि श्रमिको का स्थानान्तरण किया जाय। वास्तव मे कृषि-क्रान्ति एवम् औद्योगिक क्रान्ति एक दूसरे की पूरक हैं। यदि कृषि-क्रान्ति श्रमिको को कार्य से मुक्त करती है, तो औद्योगिक क्रान्ति उनके लिए रोजगार के सुअवसरो मे वृद्धि करती है। यही कारण है कि प्राय: सभी अर्द्ध-विकसित देशो की सरकारें औद्योगिक विकास के साथ-साथ कृषि के कार्यक्रमो को भी कार्यान्वित करती हैं। यातायात एवम् अन्य सामाजिक सेवाओ का भी बहुत अधिक महत्त्व है; सडको एवम् रेलो का विकास न होने के कारण लोग परस्पर मिल-जुल नही सकते। इससे व्यापार के विकास में भी बाधा होती है और उद्योगो को कच्चा माल मिलने मे असुविधा रहती है। यही नही, निर्मित माल के लिए पर्याप्त मण्डियाँ भी सुविधा से नही मिल पाती। स्वास्थ्य सम्बन्धी दशाओ के ठीक न होने की दशा मे लोगो की कार्यक्षमता बहुत कम हो जाती है।

इन दोषो के निवारणार्थ कृषि एवम् उद्योग के विवेकीकरण, यातायात की सुविधाओ के विकास व समुचित योजनाकरण की आवश्यकता है।

औद्योगीकरण ही अर्द्ध-विकसित देशो की समस्याओ का हल है—

अर्द्ध-विकसित देशो की उपरोक्त समस्याओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगीकरण से इन देशो की उन्नति मे बडा योग मिल सकता है। कृषि पर जन-सख्या का जो दबाव है वह श्रमिको को उद्योगो मे काम मिल जाने से कम हो जायगा, आर्थिक सस्थाओ का विकास भी होगा, लोगो की आय मे वृद्धि हो जायेगी, पूँजी के निर्माण पर इसका सुप्रभाव पडेगा, न केवल रोजगार के अवसर बढ़ेंगे वरन्

अदृश्य बेरोजगारी भी घटेगी तथा अर्थ-व्यवस्था का भुकाव पूर्ण रोजगार के स्तर पर सतुलित होने की ओर हो जायगा।

औद्योगीकरण के विरुद्ध आपत्तियाँ—

अर्द्ध-विकसित देशो के तीव्र औद्योगिक विकास के विरुद्ध कई आपत्तियाँ प्रस्तुत की गई है, जो कि इस प्रकार हैं'—

(१) **औद्योगीकरण को प्राथमिकता देना आवश्यक है**—यह कहा जाता है कि औद्योगीकरण को आर्थिक अवनति और दरिद्रता का अचूक इलाज नही माना जा सकता। इनके अतिरिक्त, उद्योग केवल एक प्रकार की आर्थिक क्रिया है। अत: यह आवश्यक नही है कि अन्य क्रियाओ की अपेक्षा साधनो को अधिकतम उपयोग करने मे इसे ही सफलता मिले। वास्तव मे औद्योगीकरण के समर्थक इस भ्रम के शिकार है कि चूँकि अधिकाश धनाढ्य देश "द्योगिक देश भी है इसलिए उनका देश भी धनी बन सकता है, यदि उसका औद्योगीकरण हो जाय। यह तर्क उसी प्रकार त्रुटिपूर्ण है, जिस प्रकार यह कहना कि चूँकि अधिकाश धनाढ्य व्यक्ति सिगार पीते हैं इसलिये धनाढ्य बनने के लिए व्यक्ति को सिगार पीना चाहिए। इस प्रकार यह सुझाव दिया गया है कि अर्द्ध विकसित देशो को प्रकृति ने कृषि देश ही बनाया है, इनके लिये औद्योगीकरण को प्राथमिकता देना आवश्यक है।

किन्तु इस औद्योगीकरण के विरुद्ध एक उचित आपत्ति नही माना जा सकता, क्योंकि यह आवश्यक नही है कि जा देश कृषि सम्बन्धी विशेष सुविधायें रखते हो वे औद्योगिक विकास के लिए अनुपयुक्त होगे। वास्तव मे ऐसे देशो मे तो अर्थ व्यवस्था को सतुलित करने के लिए कृषि और उद्योग दोनो के सह-विकास की आवश्यकता विद्यमान होती है।

(२) **औद्योगीकरण को उच्च आय का कारण नहीं माना जा सकता**—यह भी कहा जाता है कि आर्थिक औद्योगिक देशो मे वास्तविक आय का ऊँचा स्तर केवल उनके अधिक औद्योगीकरण के कारण ही नही है। वास्तविक आय का ऊँचा स्तर तथा अधिक औद्योगीकरण दोनो एक ही घटको के समूह की प्रतिक्रिया का फल है। (ये घटक हैं— सस्ती शक्ति, सम्पन्न खनिज पदार्थ, पूँजी का भण्डार, टैक्नीकल योग्यता आदि।) लेकिन यह आलोचना भी सही नही प्रतीत होती है, क्योंकि इन

औद्योगीकरण के विरुद्ध पांच आपत्तियाँ

१ औद्योगीकरण को प्राथमिकता देना आवश्यक है।
२ औद्योगीकरण को उच्च वास्तविक आय का कारण नही माना जा सकता।
३. कृषि क्षेत्र के विस्तार से कम व्यय पर ही अधिक रोजगार सम्भव है।
४ अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण।
५ विविधमुखी अर्थ-व्यवस्था मे अधिक व्यय।

घटको के समूह को बढावा देने मे औद्योगीकरण महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।]

(३) कृषि क्षेत्र के विस्तार से कम व्यय पर ही अधिक रोजगार संभव है— जन-सख्या का भूमि पर अधिक दबाव होना औद्योगीकरण की अनिवार्यता प्रमाणित नही करता है। जो भूमि विशेष परिस्थितियो के कारण बिना जोती हुई पडी है उसे भी पूँजी व्यय करके या टैक्नोलोजी अथवा सरकारी नीति के परिवर्तन द्वारा कृषि कार्य मे लाया जा सकता है। इसमे अतिरिक्त जन-सख्या को कम व्यय पर ही रोजगार मिल सकेगा, जबकि नये कारखाने खोलकर रोजगार देने मे व्यय अधिक करना पडता है। [यह तर्क इस गलत मान्यता पर आधारित है कि अर्द्ध-विकसित देशो मे बहुत सी बिना जोती भूमि पडी हुई है। यही नही, इस भूमि के विकास के लिए भी कृषि यन्त्र-औजार आदि बनाने के लिए कारखाने खोलने की आवश्यकता होगी।]

(४) अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण की नीति—औद्योगीकरण के विरुद्ध एक तर्क यह भी दिया गया है कि अर्द्ध-विकसित देशो को अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण के नियमो के अनुसार प्रारम्भ उत्पादो (primary products) का निर्यात करने की दिशा मे ही अपने प्रयत्न केन्द्रित रखने चाहिए और वह माल आयात करना चाहिए जो कि उनके 'सतुलित भोजन' के लिए आवश्यक हो अर्थात् अर्द्ध-विकसित देशो को कच्चा माल निर्यात करना चाहिए तथा निर्मित माल मँगाना चाहिए, क्योकि उनकी परिस्थितियाँ इसके लिये विशेष रूप से सुविधाजनक है। [यह तर्क देने वाले भूल जाते है कि कच्चे माल का निर्यात बढाने की दौड आरम्भ होने से विश्व-बाजार मे मूल्य सम्बन्धी दशाये बिगडने की आशका है।]

(५) विविध मुखी अर्थ-व्यवस्था का अत्यधिक व्यय—यदि अर्द्ध-विकसित देशो ने अपने घरेलू अर्थ-व्यवस्थाओ को विविधमुखी बनाया, तो इसमे उनका व्यय बहुत होगा तथा अन्त मे इस प्रयत्न के अनार्थिक प्रमाणित होने की सम्भावना है। इस बात का भी भय है कि उनकी अर्थ-व्यवस्था के विद्यमान ढाँचे मे इतने परिवर्तन हो जायेंगे कि वह छिन्न-भिन्न हो सकती है।

औद्योगीकरण के विरोध मे दिये गये उपरोक्त तर्को के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमे कोई सार नही है। अधिकाश तर्क उन औद्योगिक देशो के अर्थ-शास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत किये गये है जो कि विश्व मे अपनी ही प्रमुखता बनाये रखना चाहते है। लेकिन यह नही भूलना चाहिए कि आज की बदली हुई परिस्थितियो मे उन्नत देशो की उन्नति अर्द्ध-विकसित देशो की उन्नति पर ही निर्भर है। वे दिन बीत गये जबकि अर्द्ध विकसित देशो को शोषण का क्षेत्र माना जाता था। अब तो पारस्परिक लाभ के सिद्धान्त का बोलबाला है। अतः आज का नारा 'सब की प्रगति हमारी प्रगति' होना चाहिए। उन्नत देशो का यह नैतिक कर्तव्य है कि वे उन देशो की

उन्नति में सहायता करें जिनके शोषण द्वारा वे उन्नत हुए हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध तभी वास्तविक होंगे जबकि ये बराबरी के आधार पर निर्मित होंगे। हर्ष का विषय है कि विश्व के अधिकाश उन्नत देश इस बात को समझने लगे है और अर्द्ध-विकसित देशो को यथासम्भव सहायता देने के लिए प्रयत्नशील हैं।

अर्द्ध-विकसित देशों के औद्योगीकरण मे बाधा डालने वाले तत्त्व—

अर्द्ध-विकसित देशो के औद्योगीकरण मे जो बाधायें सामने आ रही है उनको ४ श्रेणियो मे वर्गित किया जा सकता है—(i) आर्थिक वातावरण, (ii) सामाजिक कारण, (iii) सार्वजनिक प्रशासन, व (iv) अन्तर्राष्ट्रीय कारण। इन पर नीचे विस्तार से प्रकाश डाला गया है—

(अ) आर्थिक वातावरण—

आर्थिक वातावरण के अन्तर्गत निम्न औद्योगिक बाधाओ को सम्मिलित किया जाता है—

(१) **मौलिक आर्थिक सुविधाओ की अनुपयुक्तता**—अर्द्ध-विकसित देशो मे उद्योगो के विकास के मार्ग मे एक सबसे बडी बाधा वहाँ कुछ मौलिक आर्थिक सुविधाओ का अभाव होना है। उदाहरणार्थ, यातायात की सुविधाओ का इन देशो मे अत्यन्त अभाव है। उद्योगो की दृष्टि से यातायात सुविधाओं का विशेष महत्त्व है, क्योकि कारखानो के लिए कच्चा माल, मशीनें आदि जुटाना तथा फिर निर्मित माल को मण्डियो मे भेजने की विकट समस्या होती है। अत: उद्योगो का स्थानीयकरण यातायात-व्यवस्था की उपलब्धि, लागत और प्रभावपूर्णता पर निर्भर होता है। शक्ति एक अन्य सुविधा है, जिसके अभाव मे अर्द्ध-विकसित देशो का औद्योगिक विकास रुका पडा है। युद्ध-काल मे और युद्धोत्तर काल मे कारखानो मे बिजली से चलने वाली मशीनें लगने के कारण शक्ति का

औद्योगीकरण मे बाधा डालने वाले विभिन्न कारण

(अ) आर्थिक वातावरण—
१. मौलिक आर्थिक सुविधाओ की अनुपयुक्तता।
२ जीवन निर्वाह अर्थ-व्यवस्था।
३. घरेलू बाजार की अपर्याप्तता।

(ब) सामाजिक कारण—
१. जनसख्या सम्बन्धी कारण।
२ योग्य साहसियो की समस्या।
३. श्रम सम्बन्धी सामाजिक बाधायें।
४. पूँजी को प्रवाहित करने वाली बाधायें।

(स) सार्वजनिक प्रशासन—

(द) अन्तर्राष्ट्रीयकरण—
१. उन्नत देशो पर निर्भरता।
२. औद्योगिक देशो के प्रतिबन्ध।
३. विदेशी पूँजी का प्रवाह।

अभाव बहुत बढ गया है। यातायात और शक्ति-साधनो के विकास के लिए भारी मात्रा मे विनियोग करने की आवश्यकता होती है तथा इनका धीरे-धीरे विकास नही किया जा सकता, क्योकि सम्पूर्ण इकाई एकबारगी जमानी पडती है। चूँकि अर्द्ध-विकसित देशो मे पूँजी की कमी होती है, इसलिए इन सुविधाओ को बढाना एक कठिन बात है। परेलू उद्योगो का विकास बहुत सीमा तक स्थानीय बाजार के आकार पर निर्भर करता है और बाजार का आकार वितरण-व्यवस्था की कुशलता पर निर्भर है। लेकिन व्यापारिक संस्थाओं की अपर्याप्तता न केवल बाजार तक पहुँचने की समस्या को कठिन बनाती है वरन् कच्चे माल की पूर्ति को भी दुर्लभ कर देती है। साज-सामान व मशीनो का दुहरा-तिहरा स्टाक रखना पडता है, क्योकि मरम्मत की सुविधाओं का प्रायः अभाव होता है। इसके अतिरिक्त श्रमिको को कुशल बनाने वाली संस्थाओ तथा पूँजी के संग्रह मे सुविधा देने वाले बैंकिंग, बीमा व अन्य साख सगठनो के अभाव से भी औद्योगीकरण मे बाधायें उपस्थित हो जाती हैं।

(२) जीवन निर्वाह अर्थ व्यवस्था—अर्द्ध-विकसित देशो मे प्रायः जीवन निर्वाह भर के लिये ही उत्पादन किया जाता है। इसमे श्रमिको के विशिष्टीकरण की मात्रा बहुत थोडी होती है तथा वे औद्योगिक चतुराई वाले धन्धो को अपनाने के अयोग्य होते हैं। उनकी आय थोडी होने से वे औद्योगिक उत्पादन को खरीदने मे भी असमर्थ होते है। विनिमय अर्थ-व्यवस्था के अभाव के कारण अर्द्ध-विकसित देशो की अधिकांश जन-सख्या उन्नत देशो की अपेक्षा बहुत कम उत्पादक, बहुत कम शिक्षित, बहुत अधिक गरीब तथा बहुत कम समायोजनीय होती है। इन्ही बातो के कारण अर्द्ध-विकसित देशो का औद्योगिक विकास उचित गति से नही होने पाता।

(३) घरेलू बाजार की अपर्याप्तता—अर्द्ध-विकसित देशो मे प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय बहुत कम होती है। आय कम होने के कारण लोग अपने उपभोग पर अधिक व्यय नही कर पाते। फल यह होता है कि निर्मित वस्तुओ का बाजार अत्यन्त सीमित हो जाता है। बाजार का सीमित होना तीन तरीको से औद्योगिक विकास पर प्रभाव डालता है: (i) औद्योगिक पूँजी के लिए कोई आकर्षण नही रहता है, (ii) प्लाट का आकार छोटा रखना पडता है, जिससे बडे पैमाने के उत्पादन की मितव्ययताओ का लाभ उठाने का अवसर नही मिलता, और (iii) वस्तुओ की माग पर भी प्रभाव पडता है। ऐसे बाजारो के लिये प्रायः घटिया व इनी-गिनी किस्मो का उत्पादन किया जाता है।

(ब) सामाजिक कारण—

अर्द्ध-विकसित देशो के औद्योगीकरण पर सामाजिक कारणो का प्रभाव भी कुछ कम नही पडता है। सामाजिक कारणो को इस प्रकार बताया जा सकता है—

(१) जन-सख्या सम्बन्धी कारण—एक कम पूँजी और प्रति व्यक्ति कम आय वाले देश मे जन-संख्या की तेजी से वृद्धि होना औद्योगिक विकास के लिये बचत व

विनियोग करने की कठिनाइयो मे वृद्धि कर देता है। ये कठिनाइयाँ निम्न ५ तरीको से उदय होती है (i) प्रति वर्ष नई पूँजी का काफी भाग प्रति व्यक्ति पूँजी सम्पत्तियो के विद्यमान स्तर को बनाये रखने मे ही खर्च कर देना पडता है, जिसमे नय औद्योगिक विनियोग के लिए कुछ भी नही बचना। (ii) जिन देशो म जन्म-दर बहुत ऊँची है वहाँ उसकी जन-सख्या का बहुत थोडा भाग उस आयु-सीमा मे होता है, जिसमे व्यक्ति अधिक क्षमता से काम कर सकता है। उत्पादक जन-सख्या की इस सापेक्षिक कमी के कारण उपभोग पर उत्पादन का आधिक्य बहुत थोडा वन पाता है। (iii) जन संख्या के बढने की तीव्र गति के प्रभाव उस देश मे अधिक भयकर रुप धारण कर लेते है जहाँ भूमि सम्बन्धी साधन जन-सख्या की तुलना म कम होते है। ऐसे देशो मे प्रति व्यक्ति औसत उत्पादन बहुत कम होता है, जिसम औसत आय कम रहती है, निर्मित वस्तुओ की माँग बहुत कम होती है और बचत भी कम हो जाती है। इस प्रकार जन-सख्या की तेजी से वृद्धि उपलब्ध पूँजी की मात्रा को घटा कर कम आय वाले देशो के औद्योगीकरण मे बाधा डालती है। ऐसे देशो मे भोजन पर अधिक ध्यान दिया जाता है तथा निर्माताओ के लिए प्रोत्साहन की कमी रहती है।

(२) *योग्य साहसियो का अभाव*—अर्द्ध विकसित देशो म सामाजिक रचना की विषमताओ के कारण औद्योगिक नेताओ का अभाव होता है। भारत की जाति-प्रथा इस विषय म एक ज्वलन्त उदाहरण है, जिसके अन्तर्गत निम्न जाति के व्यक्तियो को उच्च धन्धे करने की स्वतन्त्रता नही है, भले ही वे इनके लिए उपयुक्त हो। इस प्रकार सही नेतृत्व से वचित रहना पडता है। कुछ काम विदेशी ही करते आये है और स्थानीय जनता उन्हे अपनाने मे सकोच अनुभव करती है। आचार-विचार भी औद्योगिक साहस के विकास मे बाधक होते हैं। स्वार्थपरता की भावना भी लोगो को व्यापक दृष्टि मे विचार करने मे रोकती है और उद्योगो के सचालन मे वे सकीर्णता से काम लेते है। उनका यही प्रयास रहता है कि आय का अधिक भाग अपने लिये ही रख ले, श्रमिको को निर्वाह योग्य मजदूरी देने की चिन्ता उन्हे नही होती। अर्द्ध-विकसित देशो मे जमीदार, सामन्त, जागीरदार आदि प्रकृति से ही स्वार्थी होते है। वे उत्पादन की टेक्नीक मे सुधार करके अपनी आय बढाने के बजाय लगान बढाने को ही अच्छा समझते है। अत ऐसे समाज मे जब उद्योगो की स्थापना की जायगी, तो उनमे वह गति न होगी जो कि उन्नत देशो के उद्योगो व उद्योगपतियो मे देखी जाती है। एक नया उद्योगपति सम्पूर्ण टेक्नीक को अपनी प्राइवेट सम्पत्ति मानेगा और अन्य लोगो मे उसका प्रसार करने के लिए प्रयत्नशील न होगा। यदि सरकारी स्वामित्व के अन्तर्गत भी उद्योगो की स्थापना की जाय, तो साहस सम्बन्धी उक्त समस्याओ मे कोई विशेष सुधार होने की आशा नही की जा सकती है।

(३) **श्रम सम्बन्धी सामाजिक बाधायें**—श्रम सम्बन्धी निम्न सामाजिक कारण भी अर्द्ध-विकसित देशो के औद्योगीकरण मे बाधा डालते है:—(i) शिक्षा का अभाव होने से श्रमिक अपने आपको फैक्टरी कार्य से समायोजित करने मे तो असमर्थ रहता ही है, साथ ही वह नगरी जीवन मे घुलने-मिलने मे भी कठिनाई अनुभव करता है। (ii) श्रमिको का गिरा हुआ स्वास्थ्य उनकी उत्पादन क्षमता का कम करता है तथा अनुपस्थितियो मे वृद्धि करता है। (iii) सामाजिक बन्धनो के कारण उनकी गतिशीलता मे भी बाधा पडती है। (iv) अमौद्रिक प्रकार के आर्थिक वातावरण मे रहने वाले श्रमिक परम्परागत पुरस्कार से, जो कि उन्हे वस्तुओ के रूप मे मिलता है, सतुष्ट रहते है तथा कारखानो मे नकद मजदूरी पर जाकर काम करने को अच्छा नही समझते। इस प्रकार श्रमिको की पूर्ति सीमित हो जाती है। विचित्र सामाजिक वातावरण के कारण अर्द्ध-विकसित देशो मे उद्योगो को स्थायी श्रमिक वर्ग उपलब्ध नही होने पाता। नये श्रमिको को ट्रेनिंग देने मे उनका पैसा बेकार हो जाता है, क्योकि ट्रेनिंग पाने के बाद श्रमिक काम छोड कर नही जायेगे, इसकी गारण्टी नही होती है।

(४) **पूजी सम्बन्धी सामाजिक कारण**—अर्द्ध-विकसित देशो का सामाजिक वातावरण पूँजी के सग्रह एव प्रयोग करने म बाधक प्रमाणित हुआ है—(i) इने-गिने धनिक व्यक्तियो को जो अधिक आय हाती है उसे वे शानदार खान-पान मे या स्थानीय मनोरजनो मे अथवा विलासिता की वस्तुओ पर खच कर देते है। इस परम्परागत प्रवृत्ति के कारण समाज के उत्पादक प्रयासो द्वारा जो थोडी-बहुत अतिरिक्त आय हाती है वह भी औद्योगिक पूँजी मे परिणित नही हो पाती। (ii) अधिकाश अर्द्ध विकसित देशो मे भूमि के स्वामित्व को बहुत सामाजिक महत्त्व प्राप्त है। परिणामस्वरूप बचत का काफी भाग भूमि के क्रय मे व्यय कर दिया जाता है। सुरक्षा व सरलता के दृष्टिकोण से बचत को मुद्रा के रूप मे ही सचित करके रखने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है।

सामाजिक कारणो के उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अर्द्ध-विकसित देशो का औद्योगीकरण करने के लिये सामाजिक परिवर्तनो को भी महत्त्व देना होगा।[1]

---

1 "Industrialisation is not merely a technological revolution, it involves profound social changes which must be fully taken into account if the process is to result in higher material standard and a greater degree of human welfare"

—*U N Process and Problems of Industrialization in Underdeveloped Countries, p 24.*

(स) सार्वजनिक प्रशासन—

सार्वजनिक प्रशासन (Public Administration) के दोष भी औद्योगिक विकास मे बाधक पाये गये है। अनेक अर्द्ध विकसित देशो मे योग्य सिविल सर्विस (Civil Service) का सगठन करना एक कठिन समस्या होनी है, जबकि अकुशल या अर्द्ध-कुशल सिविल सर्विस लाभ की जगह हानि ही अधिक पहुँचा सकती है, क्योकि एक अकुशल सिविल सर्विस अधिकारी औद्योगिक विकास का उपयुक्त कार्यक्रम तैयार करने मे असमर्थ रहता है। यदि सार्वजनिक प्रशासन योग्य और ईमानदार है तो इसका अर्थ-व्यवस्था पर अच्छा प्रभाव पडता है और उसमे स्थिरता आने लगती है। किन्तु इसका अभाव आर्थिक पहलपन (economic initiative) की भावना को गम्भीर ठेस पहुँचा सकता है। अर्द्ध विकसित देशो मे औद्योगिक जानकारी का अभाव होने से भी सरकारी कार्यक्रमो की उपयोगिता कम हो गई है। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा मनमाने कदम उठा लेने, कर-नीति मे अचानक और बार-बार परिवर्तन कर देने, विदेशी व्यापार सम्बन्धी नियन्त्रणो चुगी, उत्पादन-करो आदि मे जब चाहे तब घटा-बढी कर देने ने भी विनियोगो को बहुत निरुत्साहित किया है। मुआविजा के बिना औद्योगिक सम्पत्ति छिन जाने की आशका से असुरक्षा की भावना अधिक बढ जाती है। उद्योगो की स्थापना के लिए लाइसेन्स देने की नीति मे कडाई अपनाना भी औद्योगिक विकास को ठेस पहुँचाता है। कभी-कभी श्रम कानून इस प्रकार लागू किये जाते हैं कि सेवायोजको के लिये अपने उद्दण्ड व अकुशल कर्मचारियो को भी अलग करना बहुत कठिन हो जाता है। इससे औद्योगिक प्रगति मे बहुत बाधा पडती है। अनेक अर्द्ध-विकसित देशो मे सार्वजनिक प्रशासन के फलस्वरूप अत्यधिक केन्द्रीयकरण भी हो गया है, जिससे सरकार के विभिन्न अगो पर बहुत भार पडा है। जिन देशो मे सरकार ने औद्योगिक इकाइयो की स्थापना व प्रबन्ध करने की जिम्मेदारी भी ले ली है वहाँ तो इसके नागरिक प्रशासन सेवा अधिकारियो का कार्य बहुत ही बढ गया है।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय कारण—

निम्न अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ भी, जो कि उनके नियन्त्रण के बाहर है, अर्द्ध-विकसित देशो के औद्योगीकरण मे बाधक सिद्ध हुई है। अर्द्ध-विकसित देशो को अपने पूँजीगत सामान के लिये औद्योगिक देशो पर निर्भर रहना पडता है। इससे पूँजीगत सामान की कमी समय-समय पर उनके औद्योगिक विकास मे बाधायें डालती

रहती है । यह कमी विदेशो से प्रायः निम्न कारणो से पूरी नही होने पाती है :—
(i) कभी-कभी औद्योगिक देश नई मशीनो के निर्यात को जान-बूझ कर रोक देते है, ताकि उनके लिये प्रतिद्वन्द्विता पैदा न हो सके , (ii) कुछ दशाओ मे अर्द्ध-विकसित देशो के निर्माताओ को भी नवीनतम मशीनो के विषय मे पर्याप्त सूचना नही होती है , (iii) औद्योगिक देश कभी-कभी निजी आवश्यकताओ के दबाव के कारण भी अपने आश्रित अर्द्ध विकसित देशो की पूँजीगत आवश्यकतायें पूरी करने मे असमर्थ हो जाते है, (iv) अर्द्ध-विकसित देशो को विदेशो से पूँजीगत सामान प्राप्त करने मे बहुत व्यय करना पडता है, क्योकि उनके यातायात साधन अधिक विकसित नही होते हैं, (v) कभी-कभी पूँजीगत सामान (मशीनो) की रचना उनकी विशेष आवश्यकताओ के अनुकूल नही होती है , (vi) अर्द्ध विकसित देश प्राय. विकसित देशो की अपेक्षा टेक्नीकल प्रगति मे बहुत पीछे होते है , (vii) विदेशो से मँगाई हुई मशीनो द्वारा उपयोग मे आने वाला विशेष कच्चा माल भी कभी-कभी आयातक देश मे उपलब्ध नही होता , (viii) औद्योगिक देशो मे नई मशीना के पेटेन्ट करा लिये जाते है , (ix) विकसित देशो की प्रतियोगिता देशी उद्योगो के लिये बहुत असहनीय होती है ।

औद्योगीकरण को बढावा देने के उपाय

औद्योगीकरण को बढावा देने के लिए अनेक उपायो व नीतियो का सुझाव दिया जाता है । किस विशेष उपाय अथवा नीति को अपनाया जाय, यह प्रत्येक अर्द्ध-विकसित देश की परिस्थितियो पर निर्भर होता है । किन्तु इतना निश्चित है कि औद्योगिक विकास का कोई प्रभावपूर्ण कार्यक्रम बनाने के लिए कई उपयुक्त नीतियो व उपायो के एक साथ अपनाने की आवश्यकता पडेगी । अर्द्ध-विकसित देशो के औद्योगीकरण को बढावा देने वाले विभिन्न उपायो को दो मुख्य शीर्षको के अन्तर्गत रखा जा सकता है—(१) घरेलू उपाय, एव (२) अन्तर्राष्ट्रीय उपाय । नीचे इन पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है ।

(अ) घरेलू उपाय (Domestic Measures)—

घरेलू उपायो के अन्तर्गत हम उन उपायो को सम्मिलित करते है जो कि उत्पादन के साधनो के प्रवाह की वृद्धि से, टैक्नीलोजीकल उन्नति की समस्याओ व राज्य की नीतियो से सम्बन्ध रखते है ।

(१) उत्पादन के साधनो के प्रवाह मे वृद्धि—

उत्पादन के साधनो को चार वर्गो मे बाँटा जा सकता है—(i) साहसी कुशलता, (ii) प्लान्ट, साज-सामान व अन्य पूँजी, (iii) श्रम आदि एव (iv) कच्चा माल व अन्य प्राकृतिक साधन।

अर्द्ध-विकसित देशों के औद्योगीकरण को बढ़ावा देने वाले उपाय

(अ) घरेलू उपाय—
- (१) उत्पादन के साधनो के प्रवाह मे वृद्धि—
  - (i) साहसियो की यात्यना।
  - (ii) प्लान्ट, साज-सामान व अन्य पूँजी।
  - (iii) श्रम आदि।
  - (iv) कच्चा माल व प्राकृतिक साधन।
- (२) उत्पादन-टैक्नीक मे सुधार
- (३) राज्य-नीतियाँ :
  - (i) प्रशुल्क नीति
  - (ii) साख नीति।
  - (iii) भुगतान सतुलन सम्बन्धी नीति।
  - (iv) औद्योगिक नियोजन।

(ब) अन्तर्राष्ट्रीय उपाय —
- (१) उन्नत देशों का सहयोग .
  - (i) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार।
  - (ii) अन्तर्राष्ट्रीय आवास-प्रवास।
  - (iii) पूँजी का अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह।
  - (iv) टैक्नीकल सहायता।
- (२) अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो का सहयोग।

(i) साहसी-कुशलता (Enterpreneurial Ability) साहसी के चार प्रमुख कार्य हैं—व्यापार की स्थापना, पूँजी की पूर्ति, जोखम उठाना तथा प्रबन्ध सचालन। उन्नत देशो मे अलग-अलग व्यक्ति इन कामो को करते है, लेकिन अर्द्ध-विकसित देशो मे एक ही व्यक्ति को ये सारे कार्य करने पडते है, और, चूँकि कई बातो का अनुभव व ज्ञान न होते हुए भी उसे सम्पूर्ण जिम्मेदारी उठानी पडती है, इसलिए उसे बहुत जोखिम का सामना करना पडता है। साहसियो की इस समस्या के दो पहलू है—

(१) उनकी ट्रेनिंग की इन देशो मे कोई व्यवस्था नही होती है तथा वहाँ का आर्थिक वातावरण भी इनके लिए उत्साहप्रद नही होता, और

(२) यदि ऐसे व्यक्ति पर्याप्त मात्रा म उपलब्ध भी हो तो भी उनके कार्य की जटिलता मे कमी नही आ सकती है। वास्तव मे एक विषम चक्र सा सस्थापित हो गया है, क्योंकि आर्थिक विकास बहुत कुछ साहसियो की कुशलता पर निर्भर करता है और साहसियो की कुशलता आर्थिक विकास

द्वारा प्राप्त अनुभव पर निर्भर होती है। इस विषम चक्र को निम्न उपायो द्वारा तोडा जा सकता है—(अ) सामान्य व टैक्नीकल शिक्षा की सुविधायें देकर शिक्षा । स्तर ऊँचा किया जाय, (ब) औद्योगिक विकास निगम जैसी सस्थाये औद्योगिक इकाइयो की स्थापना को प्रोत्साहन द, जिससे साहसियो को विभिन्न क्षेत्रो मे विशिष्टता प्राप्त होने लगे, (स) सरकार स्वय भी औद्योगिक इकाइयो की स्थापना करके साहसियो के अभाव की पूर्ति करे। जिन उद्योगो मे विशाल विनियोग करना पडता है अथवा ऐसा सामान उत्पन्न किया जाता है जोकि सरकार के उपयोग मे आयगा अथवा राष्ट्रीय महत्व के उद्योगो मे, सरकार को विशेष रूप से पहल करनी चाहिए। जैसे-जैसे आर्थिक विकास की गति बढती जायगी वैसे वैसे योग्य साहसी अधिकाधिक सख्या मे उपलब्ध होने लगेंगे। लेकिन यह स्मरणीय है कि सरकार द्वारा साहसी की भूमिका अदा करने से प्रबन्ध की समस्या हल नही हो जायगी। योग्य प्रबन्धको का अभाव सरकारी योजना को व्यर्थ कर सकता है। अत सरकार को साथ ही साथ प्रबन्ध व साहस की ट्रेनिंग की व्यवस्था करनी पडेगी, स्थानीय साहस का अधिकतम उपयोग करना होगा तथा विदेशी साहस को भी आमन्त्रित करना होगा।

(ii) पूंजी (Capital)—निर्माणी उद्योगो के लिए कृषि या व्यापारिक फर्मों की अपेक्षा अधिक पूँजी की आवश्यकता पडती है, किन्तु एक अर्द्ध-विकसित देश मे औद्योगिक पूँजी का नितान्त अभाव होता है, क्योकि (अ) अधिकाश जनता को आय और व्यय के मध्य बिलकुल मार्जिन नही रहता या बहुत थोडा रहता है, (आ) बहुत थोडे व्यक्तियो को नियमित आय प्राप्त होती है, (इ) जन-सख्या मे उस आयु के लोगो की सख्या बहुत थोडी होती है जो कि कुछ बचत कर सकता है, क्योकि जन्म-दर व मृत्यु-दर बहुत ऊँची हुआ करती है, (ई) आय का वितरण भी बहुत असमान होता है, चूँकि अर्द्ध-विकसित देशो मे पूँजी की बहुत कमी होती है, इसलिये साहसी ऐसे उद्योग ही अधिक स्थापित करते हैं जिनमे पूँजी की कम आवश्यकता हो। प्राय. उपभोग वस्तुयें बनाने वाले उद्योग ही खाले जाते है, क्योकि इनमे पूजी की कम किन्तु श्रम की अधिक आवश्यकता पडती है। यदि अर्द्ध-विकसित देश अपने यहाँ पूँजी की कमी दूर करने के लिये विशेष सस्थाए स्थापित कर लें, तो उन्हे बहुत लाभ हो सकता है। निस्सदेह यह कार्य सरल नही होगे, किन्तु इस सुझाव का तात्पर्य यह है कि ऐसी सस्थाओ की स्थापना के लिये प्रत्येक सम्भव प्रोत्साहन देना चाहिये। इन सस्थाओ के सचालन की सुविधा के लिए उपयुक्त कानूनी व्यवस्था की जानी चाहिए। सरकार प्राइवेट विनियोगको को सयुक्त या मिश्रित इकाइयो मे सहयोग देने के लिये अपनी गारन्टी प्रदान करके प्रोत्साहित कर सकती है, विकास निगमो की स्थापना कर सकती है और न्यूनतम आय की गारन्टी दे सकती है।

(iii) श्रम (Labour)—औद्योगीकरण कार्य-क्रम के उपयुक्त एक श्रम-नीति के दो उद्देश्य होने चाहिये—श्रमिक जनता की ट्रेनिंग का स्तर ऊँचा उठाना तथा भौगोलिक गतिशीलता मे वृद्धि करना। अधिकाश अर्द्ध विकसित देशों मे सरकार चार तरीको से उद्योगो को श्रमिक प्राप्त करने मे सहायता कर सकती है—(अ) आन्तरिक भरती का सगठन व निरीक्षण, (ब) उपयुक्त श्रमिकों की विदेशो से भरती, (स) रोजगार कार्यालयो की स्थापना, और (द) पर्याप्त शैक्षिक एव ट्रेनिंग सुविधाओं की व्यवस्था।

(iv) कच्चा माल एव प्राकृतिक प्रसाधन (Raw Materials and Natural Resources)—विभिन्न देशो के औद्योगिक विकास मे भिन्नता होने का एक कारण स्थानीय प्रसाधनो की मात्रा, किस्म एव उपलब्धता मे अन्तर होना है। प्राकृतिक साधनो का अभाव औद्योगीकरण मे बहुत बडी अड़चन है। इसे दूर करने के लिए सरकार जो भी उपाय करेगी उससे औद्योगीकरण मे सुविधा ही होगी। सरकार इस सम्बन्ध मे निम्न उपाय कर सकती है—(अ) खनिज, जल-शक्ति, मिट्टी, लकडी आदि प्राकृतिक प्रसाधनो की सर्वे करावे, (आ) प्रसाधनो के सदुपयोग के सम्बन्ध मे प्राइवेट व्यक्तियों, फर्मो, विश्वविद्यालयो एव वैज्ञानिक सस्थाओ द्वारा अनुसधान की व्यवस्था की जाय, (इ) कच्चा माल उत्पादन करने वाले साधनो की कुशलता मे वृद्धि करके उसकी किस्म व मात्रा मे वृद्धि की जाय, (ई) कच्चे माल की कीमत को घटाने के लिए खनिज-कर्म एव कृषि-कार्यो की उत्पादकता म वृद्धि की जानी चाहिए, (उ) विदेशी मुद्रा सम्बन्धी कठिनाइयो से बचने के लिए यथासम्भव घरेलू कच्चे माल का ही प्रयोग करना चाहिए, भले ही कुछ अधिक व्यय पड जाय। ऐसी दशा मे घरेलू कच्चा माल उत्पादन करने वालो का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि अपनी कुशलता मे वृद्धि करके उद्योगो की सहायता करे।

(२) उत्पादन करने की टैक्नीक मे सुधार—

अनुकूलतम परिमाण की फर्में स्थापित करके औद्योगीकरण की गति को बढाया जा सकता है। इसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि बाजार के क्षेत्र के अनुसार फर्म के उत्पादन का पैमाना निश्चित किया जाय। फर्म के आकार मे इस प्रकार का सशोधन करने के लिए यन्त्रीकरण को कम करना पड सकता है। औद्योगिक देशो के लिए ऐसा करना एक प्रतिक्रियावादी कदम होगा, लेकिन अर्द्ध-विकसित देशो के लिए यह बहुत उचित कदम है। सामान्यतः लागत के दृष्टिकोण से पूँजी का अपेक्षत. कम प्रयोग करना आवश्यक होगा। स्थानीय कच्चे माल की विशेषताओ के अनुसार प्लान्ट मे कुछ टैक्नीकल परिवर्तन करना भी आवश्यक हो सकता है। स्थानीय श्रमिको मे कुशलता व अनुभव की कमी को ध्यान मे रखते हुए जटिल मशीनो की अपेक्षा साधारण मशीनों का प्रयोग करना अधिक उपयोगी प्रमाणित होगा। यद्यपि उत्पादन की प्रक्रिया मे संशोधन करने की कुछ टैक्नोलोजीकल सीमायें होती है तथापि इन सीमाओ

के भीतर ही उत्पादन का पैमाना कुछ संशोधित करने से बहुत लाभ होने की सम्भावना है। एक उन्नत देश के लिए जो प्लान्ट बनाया गया है उसे ज्यो का त्यो एक अर्द्ध-विकसित देश मे प्रयोग किये जाने से अनेक अडचनें पैदा हो सकती है जैसे अनावश्यक टूट-फूट, बरबादी, पूँजी का दुरुपयोग। इन समस्याओ का हल तभी हो सकता है जबकि उत्पादन की टैक्नीक मे उपयुक्त सुधार कर लिये जायें। इस सम्बन्ध मे अनुसन्धान के लिए बहुत क्षेत्र है, जिसका वैज्ञानिको, इजीनियरो व टैक्नीकल विशेषज्ञो को लाभ उठाना चाहिए। इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि लघु व कुटीर उद्योगो मे आधुनिक टैक्नीक का प्रयोग करने से बहुत लाभ हो सकता है। इन उद्योगो के द्वारा अर्द्ध-विकसित देशो मे, जिन्होने अभी हाल म ही विनिमय अर्थ व्यवस्था मे प्रवेश किया है, औद्योगिक सगठन व टैक्नीक का सुविधा से विस्तार किया जा सकता है। यदि इनको व्यापक फ्रन्ट पर औद्योगिक प्रगति के साथ समन्वित नही किया गया, तो ये कम से कम उस देश मे जहाँ अधिकाश जन-सख्या इन पर निर्भर है, उद्योग के आधुनिक प्ररूपो के विकास मे रोडा अटका सकते है।

(३) **राज्य की नीतियाँ** (State Policies) —

इन नीतियो के अन्तर्गत सरकार की उन प्रत्यक्ष कार्यवाहियो को सम्मिलित किया जाता है, जिनका उद्देश्य उत्पादन के साधना के उचित प्रवाह मे पडी हुई बाधाओ को हटाना है। ये नीतियाँ निम्नलिखित है:—

(i) **प्रशुल्क नीति** (Fiscal Policy)—एक स्वस्थ प्रशुल्क नीति का उद्देश्य, जो कि औद्योगीकरण के प्रोत्साहन के लिए निर्धारित की जाय, नई व पुरानी दोनो ही औद्योगिक सस्थाओ मे विनियोग की वृद्धि करना, अनुत्पादक कार्यो मे सट्टे की प्रकृति के विनियोग को निरुत्साहित करना और उद्योगो मे सलग्न उत्पादन के साधनो की उत्पादकता को बढाना होना चाहिए। लाभ को निकाल कर ले जाने के बजाय उद्योग मे ही फिर से विनियोग कर देने की प्रवृत्ति को प्रोत्सहित करने के लिए आय-कर से कुछ छूट दी जा सकती है। ऐसी प्राशुल्किक युक्तियाँ की जायें जिनसे बचत करने वाले व्यक्तियो को सयुक्त स्कन्धीय औद्योगिक सस्थाओ की पूँजी मे भाग लेने का प्रात्साहन मिले तथा एक स्थानीय पूँजी-बाजार का निर्माण हो। यह स्मरणीय है कि कर सम्बन्धी प्रोत्साहनो का सरकार की आय पर और इस कारण विकास योजनाओ के अर्थ-प्रबन्धन पर कुप्रभाव पडता है। अत. उनकी उपयुक्तता पर सावधानी से सोच-विचार करना चाहिए।

(ii) **साख-नीति**—अर्द्ध-किसित देशो मे सरकार को चाहिए कि मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियो की रोक-थाम के लिए जो कि अत्यधिक विनियोग वाले औद्योगिक विकास-कार्यक्रम को शीघ्र कार्यान्वित करने की अवधि में प्रायः उत्पन्न हो जाया करती हैं,

साख नीति का उचित प्रकार से नियमन करे। दुर्भाग्य से अर्द्ध-विकसित देशो मे मुद्रा बाजार इतना असंगठित होता है कि उस पर सही-सही नियन्त्रण स्थापित करना कठिन होता है। फिर भी औद्योगिक विकास के लिए साख प्रसार की नीति तो अपनानी ही पड़ती है। साख प्रसार की नीति को, मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियो के खतरनाक बनने के पहले, किस सीमा तक कार्यान्वित किया जा सकता है, यह कई बातो पर निभर है, जैसे— देश के निष्क्रिय प्रसाधनो की प्रकृति, उसकी निर्यात क्रियाओं की क्षमता, उसकी औद्योगिक परम्परा आदि। साख का प्रसार करने की नीति को अपनाते समय बजट एव भुगतान सतुलन सम्बन्धी तत्त्वो को भी ध्यान मे रखना चाहिए, जिससे औद्योगिक कार्यक्रम द्वारा उत्पन्न की हुई मूल्य बढने की प्रवृत्ति को नियन्त्रण मे रखा जा सके।

(iii) **भुगतान-सतुलन सम्बन्धी नीति**—विभिन्न अर्द्ध-विकसित देशो की आर्थिक परिस्थितियो मे बहुत अन्तर पाया जाता है, इसलिये सब के लिये किसी एक भुगतान सतुलन सम्बन्धी नीति का सुझाव नही दिया जा सकता। प्रत्येक देश को अपनी बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियो के अनुसार कोई उपयुक्त नीति निश्चित करनी होगी। औद्योगीकरण योजना के कारण भुगतान सतुलन मे जो प्रारम्भिक घाटा हो उसे विदेशो से ऋण लेकर पूरा किया जा सकता है। इसमे निश्चय ही बाद को देश पर बहुत उत्तर-दायित्व आ जायगा, जबकि उस यह धन ब्याज सहित लौटाना होगा। लेकिन, देश को इस भुगतान मे कोई कठिनाई नही होगी, क्योकि यदि उधार ली गई पूँजी को निर्यात करने वाले उद्योगो मे अथवा आयात की आवश्यकता को कम करने वाले उद्योगो मे लगाया गया है, तो देश की आर्थिक अवस्था पहले की अपेक्षा बहुत अच्छी होगी। औद्योगीकरण के कारण भुगतान सतुलन सम्बन्धी कठिनाइयां तो उस दशा मे पैदा होती हैं जबकि विकसित होने वाले उद्योग विक्रय योग्य मूल्य पर माल पैदा करने मे अकुशल प्रमाणित हो अथवा यदि घरेलू बचत की तुलना मे अधिक विनियोग कर दिया गया हो। उपयुक्त भुगतान सतुलन की स्थापना के लिये विदेशी विनिमय की माँग करने वाले नये उद्योगो पर नियन्त्रण लगाना अथवा विनिमय नियन्त्रण की समुचित व्यवस्था करना इतना अच्छा उपाय नही है जितना f। मौद्रिक स्थिरता और कुशल विनियोग की दिशा मे प्रयत्न करना है।

(iv) **औद्योगिक नियोजन**—औद्योगीकरण स अर्थ-व्यवस्था तो विविधमुखी (Diversified) बन सकती है, लेकिन इसमे ही औद्योगिक विकास की नीति का मुख्य उद्देश्य पूरा नही हो सकता है। यदि औद्योगीकरण का कार्यक्रम अनियोजित ढग से कार्यान्वित किया गया, तो उसमे निम्न खतर पैदा होने की आशका है—साधनो का दुरुपयोग वे वास्तविक आय मे कमी आना, एकाधिकारो का निर्माण, भुगतान सतुलन की स्थिति बिगडना, मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियो का उत्पन्न होना। अतः यह अवश्यक है

कि औद्योगिक विकास की एक योजना बनाई जाय और निम्न बातो का विशेष ध्यान रखा जाय—अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न अगो का संतुलित विकास; औद्योगिक विकास की उचित गति, उद्योगो की स्थापना मे प्राथमिकता का क्रम और औद्योगीकरण की उचित सीमा।

(ब) अन्तर्राष्ट्रीय उपाय—

अन्तर्राष्ट्रीय उपायो के अन्तर्गत उन्नत देशो द्वारा तथा अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो द्वारा दिये जाने वाले सहयोग को सम्मिलित किया जाता है। इसका बिस्तृत विवरण इस प्रकार है।

(१) उन्नत देशो का सहयोग—

विश्व के औद्योगिक देश वस्तु एव साधनो के आदान-प्रदान द्वारा अर्द्ध-विकसित देशो के औद्योगीकरण को प्रभावित कर सकते है। इस प्रभाव का अध्ययन निम्न चार शीर्षको के अन्तर्गत किया जा सकता है:—

(i) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार**—अर्द्ध-विकसित देशो के लिये अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार औद्योगीकरण का एक प्रमुख जरिया है। इसकी सफलता प्रत्यक्ष रूप से निर्यात् की गई वस्तुओ की प्रकृति, निर्यात से होने वाली आय, करैन्सी जिसमे कि आय प्राप्त होनी है, इस आय की स्थिरता, आयात की गई वस्तुओ का स्वभाव व व्यापार की शर्तो पर तथा अप्रत्यक्ष रूप से पूँजी के आगमन और आन्तरिक मौद्रिक स्थिरता पर निर्भर होती है।

(ii) **अन्तर्राष्ट्रीय आवास-प्रवास**—देश मे बाहर से आकर बसने वाले व्यक्ति प्राय: अधिक ज्ञान, योग्यता व पूँजी रखते है, जिससे अर्द्ध विकसित देश की समस्याओ का वे अच्छी तरह सामना कर सकते हैं। उन्होंने विद्यमान उद्योगो मे नई टेक्नीक का प्रचलन किया है, पूर्णत: नये उद्योग भी स्थापित किये है तथा देशवासियो ने भी उनकी विशेष आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये विशेष प्रकार के नये उद्योग आरम्भ किये। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय आवास-प्रवास का औद्योगीकरण पर गहरा असर पडता है।

(iii) **पूँजी का अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह**—विदेशी पूँजी के आगमन से दो उद्देश्य पूरे होते हैं—(१) इसकी सहायता से उद्योगो मे विनियोग करने के लिये स्थानीय साधन खरीदे जा सकते है और (२) विदेशी साधनो को प्राप्त करने के लिये आवश्यक विनिमय उपलब्ध हो जाता है। विदेशी पूँजी घरेलू पूँजी के संकोच को दूर करती है और उसे अपने साथ औद्योगिक सस्थाओ के प्रवर्तन मे भाग लेने को प्रोत्साहित करती है। उदाहरण के लिये, भारत मे कई नये उपक्रम विदेशी विनियोगको द्वारा आरम्भ किये गए और इनमे भारतीय पूँजी ने भी सहयोग दिया।

(iv) **टेक्नीकल सहायता**—उन्नत देश कम विकसित देशो को टेक्नीकल सहायता देकर भी उन्हे औद्योगीकरण के मार्ग पर आगे बढ़ा सकते है। इस टेक्नीकल

सहायता के दो रूप हो सकते है—अपने यहाँ के विशेषज्ञों की सेवायें उधार देना तथा उनके कर्मचारियों की विशिष्ट ट्रेनिंग के लिये अपने यहाँ सुविधायें देना।

(२) अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का सहयोग—

अन्तर्राष्ट्रीय सगठन अर्द्ध-विकसित देशो के औद्योगीकरण मे बहुत महत्त्वपूर्ण सहायता पहुँचा सकते हैं, जिसके निम्न तरीके हो सकते हैं—वित्तीय अथवा टेक्नीकल सहायता देना, विचार-विमर्श के अवसरो की व्यवस्था करना, विभिन्न देशो के अनुभव एक दूसरे को प्रसारित करना व अनुसन्धान की व्यवस्था करना। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, आर्थिक विकास के लिये विशेष सयुक्त राष्ट्रीय फण्ड अर्द्ध-विकसित देशो को उनके औद्योगीकरण मे अपूर्व सहायता दे सकते हैं और दे रहे हैं, किन्तु यह नही भूलना चाहिये कि इन अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो के साधन बहुत सीमित हैं। इसलिए इनका समुचित उपयोग किया जाना आवश्यक है।

STANDARD QUESTIONS

1 Define an 'underdeveloped economy' What are the principal characteristics of such an economy ?
2 Discuss carefully the basic problems of underdeveloped countries How can they be solved ?
3 What are the forces inhibiting the industrialisation of underdeveloped countries ? Suggest measures conducive to their industrialisation

---

अध्याय ३

प्राचीन युग में भारतीय उद्योग

(Indian Industry In The Past)

भारतीय उद्योग—सन् १८५७ से पूर्व—

भारतीय उद्योगो का अतीत अत्यन्त गौरवमय रहा है। १९वी शताब्दी के आरम्भ मे, हमारे उद्योग-धन्धे उन्नति के शिखर पर थे और हमारे देश का बना हुआ माल दुनियाँ के कोने-कोने मे निर्यात किया जाता था। इतिहास हमारे गौरवमय अतीत के प्रमाणो

मे भरा पडा है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र, जातक कहानियो तथा मिलिन्द पान्ह आदि ग्रन्थो मे प्राचीन भारत की औद्योगिक अवस्था की झलक मिलती है। हीरोडोटस नामक यूनानी लेखक (४८५ ई० पूर्व) का कथन है कि भारत मे उत्तम कोटि की कपास जो कि भेड की ऊन से भी श्रेष्ठ है, भारतीयो के वस्त्रो के निर्माण मे प्रयोग की जाती है। मैगस्थनीज के अनुसार भी, "भारतीय अच्छे पदार्थों तथा आभूषणों को पसन्द करते है। उनके वस्त्रो पर सुनहला काम होता है तथा बहुमूल्य रत्न जडे जाते है।" १३वी शताब्दी मे श्री मार्कोपोलो हमारे देश मे आया था, उसके कथनानुसार "प्राचीन भारत एशिया का सबसे प्रसिद्ध बाजार था।" सन् १९१८ के औद्योगिक आयोग ने भी अपनी रिपोर्ट मे लिखा है कि—"जिस समय आधुनिक उद्योग-धन्धो की जन्मभूमि पश्चिमी योरोप मे असभ्य जातियाँ निवास करती थी, उस समय भारतवर्ष अपने शासको की सम्पत्ति व शिल्पियो की उच्चकोटि की कला के लिए प्रसिद्ध था।[1]

इसी बात की पुष्टि एडवर्ड थार्नटन नामक अग्रेज इतिहासकार ने भी की है, जो यह लिखता है कि, 'नील नदी की घाटी मे जब पराामिड देखने को न मिलते थे, जब आधुनिक सभ्यता के केन्द्र इटली व ग्रीस जगली अवस्था मे थे, उस समय भारत वैभव और सम्पत्ति का केन्द्र था।"[2] ह्वेनसाग ने ६३० ई० मे लिखा था कि सम्राट हर्षवर्द्धन ने प्रयाग मे महात्मा बुद्ध की प्रतिमा पर सहस्रो रत्नजटित रेशमी वस्त्र चढाये थे। इसी प्रकार अध्यापक बेवर का कथन है, 'बहुत प्राचीन काल से बारीक कपडा बुनने, रगो का मिश्रण करने, धातुओ और बहुमूल्य रत्नो पर काम करने और इसी भाति अन्य प्रकार की कलाओ मे निपुणता दिखाने मे भारतवर्ष के शिल्पी विश्व मे प्रसिद्ध रहे है।" इस प्राचीन इतिहास को देखकर श्री मोन्टगामरी का कहना था कि, "भारत जितना कृषि प्रधान देश है उतना ही उद्योग प्रधान भी। यदि कोई व्यक्ति उसे केवल कृषि देश ही कहता है, तो सभ्यता के स्तर मे उसे (भारत को) नीचे गिराता है।"

हमारे अतीत का प्रसिद्ध उद्योग सूत व वस्त्र सम्बन्धी था। सन् १८५१ मे फास निवासी श्री एम० ब्लाकी ने देश के कला-कौशल को देख कर उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशसा की। उस समय गाँव के प्रत्येक घर मे कोई न कोई व्यक्ति चरखा चला कर

1, "At a time when the West of Europe, a birth place of modern industrial system was inhabited by uncivilised tribes, India was famous for the wealth of her rulers and for the high artistic skill of her craftsmen And, even at a much later period, when the merchant adventurers from the West made their first appearance in India, industrial advancement of this country was, ‹t any rate, not inferior to those of the more advanced Europeon nations"

—Report of the Indian Industrial Commission 1916 18 Page 6.

2. History of British Empire in India by Edward Thornton.

सूत तैयार करता हुआ पाया जाता था। वस्तुतः भारत में वस्त्र-उद्योग अत्यन्त प्राचीन काल से अपनी उन्नत दशा में था। मोहनजोदडो के ध्वसावशेषों में सूती वस्त्रों के अवशेष प्राप्त किए गए हैं। इन अवशेषों के आधार पर प्रसिद्ध वैज्ञानिक जेम्स टर्नर व ए० एल० गुलाटी ने यह परिणाम निकाला है कि ऐसे वस्त्र रुई के बनाए गए होंगे। मोहनजोदडो की सस्कृति ५ हजार ईसा पूर्व और अनेक इतिहासकारों के अनुसार १० हजार वर्ष पूर्व मानी जाती है। ऋग्वेद, महाभारत, रामायण इत्यादि के कुछ वाक्याश इस बात को भली भाँति दर्शाते हैं कि उस युग में भी सूती कपडे का व्यवसाय उन्नति के शिखर पर था। ऋग्वेद के एक मन्त्र में ऋषि विलाप करता है कि मैं धार्मिक कर्तव्यों का न ताना जानता हूँ न बाना। ऋग्वेद में विवाह-सस्कार में वस्त्र परिवर्तन के समय बोले जाने वाले मत्र में स्पष्ट कहा गया है कि हम वह कपडा पहने जो देवियों ने अपने हाथ से काना तथा बुना है। वेदो तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में कपडा सीने की सुई के लिए 'सूची' और 'वेशी' का नाम मिलता है।

वैदिक साहित्य के अतिरिक्त अन्य अनेक ऐतिहासिक प्रमाणो से भी प्राचीन भारत मे वस्त्र-कला के विकास का उदाहरण मिलता है। अजन्ता की गुफा के कुछ चित्रो मे भी इस उद्योग के गौरव-पूर्ण अतीत का अनुमान लगाया जा सकता है। राज्यश्री के विवाह के लिए तैयार किए गए वस्त्रों का उल्लेख करते हुए बाण लिखता है, "रेशम, रुई, ऊन, साँप की केंचुली के समान महीन श्वाँस से उड जाने वाले, स्पर्श से ही अनुमेय और इन्द्र धनुष के समान रग वाले कपडो से घर भर गया।" मैनचेस्टर के रहने वाले एक कारीगर की दृष्टि से इगलैंड मे बना हुआ कपडा ढाका की मलमल की तुलना मे छाया मात्र ही था। ढाका के अतिरिक्त कृष्णनगर, चन्देरी इत्यादि भी वस्त्र-कला के लिए प्रसिद्ध थे। छीटो के लिए लखनऊ प्रसिद्ध था। अहमदाबाद धोती तथा दुपट्टो के लिये प्रसिद्ध था। बेल-बूटेदार काम के लिए बनारस तथा नागपुर अधिक प्रसिद्ध थे। रेशमी वस्त्रो के लिए मुर्शिदाबाद, मालदाह तथा बगाल के अन्य नगर प्रसिद्ध थे।[1] काश्मीर के दुशालो की माँग विदेशो मे अधिक थी। फ्रास के व्यापारियो की इतनी माँग थी कि वे लोग अग्रिम रुपया देकर भी व्यवहार कर लेते थे। ताँबा, पीतल एव काँसे के बने हुए बर्तनो के लिए बनारस, पूना, नासिक, हैदराबाद, विसाखा-पत्तम तथा तजौर प्रसिद्ध थे। राजपूताने मे पत्थरो की खुदाई तथा रत्नो पर मीनाकारी का उत्तम काम होता था। संगमरमर के काम के लिए आगरा प्रसिद्ध था। चाकू, कैंची तथा लोहे की बनी अन्य छोटी-मोटी वस्तुओ के लिए पजाब का नाम विख्यात था। इसी प्रकार सिन्ध मे अस्त्र-शस्त्र का काम उत्तम कारीगरी का था। जहाज उद्योग के सम्बन्ध मे श्री अशोक मेहता ने लिखा है, "समुद्री यातायान एव जहाज

---

1. Industrial Evolution of India, by Dr. Gadgil, Page 34.

निर्माण मे भारत का प्रथम स्थान था। जब वास्कोडिगामा भारत मे आया, तब उसने देखा कि यहाँ के लोग जहाजी नौ वहन (Shipping) के विषय मे इतने कुशल थे जितना कि वह स्वयं भी नही जानता था।

देहली का लौह स्तम्भ हमारे इस्पात उद्योग की उन्नत दशा का प्रतीक है। प्रोफेसर बेलसन का कथन है कि, "हिन्दुओं के पास लोहे के गलाने, मोडने तथा स्टील बनाने की कला विद्यमान है, जो बहुत वर्षो ग है।" श्री रानाडे के शब्दो मे, "लोहे के कारखानो ने न केवल स्थानीय सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति की किन्तु विदेशो को निर्यात करन योग्य अवसर भी भारत को दिये। परसिया के व्यापारी हमारे देश से लोहे की वस्तुएँ खरीद कर एशिया के अन्य भागो को निर्यात करते थे। यहाँ के स्पात की माँग इङ्गलैंड मे चाकू, कैंची आदि कटलरी की वस्तुएँ तैयार करने के लिये बहुत थी।" इसके अतिरिक्त हाथी दाँत का काम, काँच का सामान, चमडे का काम, कागज बनाने का उद्योग, सुगन्धित तेल, साबुन, इत्र-फुलेल आदि सुगन्धित वस्तुएँ भी इस देश मे प्रसिद्ध थी।

यह तो रही मध्य काल के पूर्व की कहानी। मध्य काल मे भी भारतीय उद्योग काफी उन्नत दशा मे थे। टूर्वनियर नामक यात्री, जिसने मुगल काल मे भारत की यात्रा की थी, सूती वस्त्र उद्योग के सम्बन्ध मे लिखता है, "भारत निर्मित वस्तुएँ इतनी सुन्दर होती थी कि वे तुम्हारे हाथ मे हैं, इसका ज्ञान भी न होता था व वस्त्र अत्यन्त कोमलता से बुने जाते थे एक पौंड रुई से २५० मील लम्बा कपडा बुना जाता था।" अबुलफजल ने, 'आइने अकबरी' मे लिखा है कि, "बादशाह सलामत विभिन्न वस्तुओं का बडा घ्यान रखते हैं। कुशल कारीगर व कलाकार इस देश मे लोगो को शिल्प तथा कला का प्रशिक्षण देने के लिए आकर बस गये है। आगरा, लाहौर, फतहपुर, अहमदाबाद तथा गुजरात आदि नगरो के शाही कारखानो मे कला के उत्कृष्ट नमूने उत्पन्न किये जाते है व उनके रग-रूप, प्रकार तथा श्रेष्ठता को देख कर विदेशी यात्री भी चकित हो जाते हैं।' बर्नियर ने १७वी शताब्दी के मध्य मे कुछ कारखानो का आँखो देखा हाल इस प्रकार लिखा है, "अनेक स्थानो पर बडे विशाल भवन बने हुए हैं, जिन्हे 'कारखाना' कहा जाता है। किसी भवन मे जरी का काम करने वाले व्यक्ति कार्य-सलग्न हैं, जिनका मालिक के द्वारा निरीक्षण हो रहा है, दूसरे मे स्वर्णकार, तीसरे मे चित्रकार, चौथे मे रगसाज, पाँचवें मे सिलाई करने वाले दर्जी, मोची तथा अन्य कारीगर और छटवें मे रेशमी वस्त्र तथा महीन मलमल बुनने वाले कारीगर दिखाई देते हैं।"

उस समय देश के प्रत्येक गाँव मे कारीगरो का एक समुदाय भी रहता है, जो किसी न किसी उद्योग मे लगे रहते हैं। इनमे से प्रत्येक गाँव मे कुम्हार, सुनार, लोहार, बढई, बुनकर, रगरेज, तेली आदि मुख्य थे। इनमे मे कुम्हार, सुनार, लोहार,

चमार आदि जो गाँव के कृषकों के सेवकों की श्रेणी मे आते थे, जिन्हे सेवा के बदले फसलो के पकने पर निर्धारित अनाज दिया जाता था। इन लोगों को खेती करने के लिये गाँव वालो की ओर मे भूमि भी दी जाती थी। नियमित कार्य के अतिरिक्त सेवा करने पर उन्हे अतिरिक्त मजदूरी मिलती थी। अन्य प्रकार के कारीगरो की आवश्यकता समय-समय पर पड़ा करती थी। अत' उनकी मजदूरी अन्य ढग से निर्धारित की जाती थी। यह कोई आवश्यक नही था कि प्रत्येक गाँव म सभी कारीगर हो। यदि कोई गाँव छोटा होता, तो वहाँ हो सकता था कि बुनकर, जुलाहा या रंगरेज न हो। इसके विपरीत एक बडे गाँव मे एक से अधिक तेली, जुलाहे व रगरेज भी हो सकते थे। किन्तु उस समय उन कारीगरो मे पारस्परिक प्रतिस्पर्धा न थी, क्योकि प्रत्येक का कार्यक्षेत्र भिन्न-भिन्न होता था। हमारे देश के प्रत्येक गाँव मे यह विशेष प्रकार की व्यवस्था थी, जिसके कारण हमारा प्रत्येक गाँव सगठित तथा सबल था। प्रत्येक गाँव स्वावलम्बी था, किन्तु इसका प्रभाव ग्रामीण उद्योग-धन्धो पर अच्छा नही पडा। वे पिछडे ही रह गये।

१६वीं शताब्दी के आरम्भ मे कुल जन-सख्या का लगभग १०वा भाग ही नगरो मे रहता था। उस समय बडे नगर वे ही थे जो केन्द्रीय सरकार या प्रान्तीय सरकार की राजधानी थे, जैसे - आगरा, देहली, लखनऊ, पूना आदि। दूसरे प्रकार के प्रसिद्ध नगर व थे, जो धार्मिक तीर्थ स्थान थे, जैसे गया, बनारस, प्रयाग, अयोध्या, हरिद्वार, पुरी, नासिक, कुरुक्षेत्र आदि। तीसरे प्रकार के वे नगर थे जो व्यापारिक केन्द्र थे, जैसे मिरजापुर, बंगलौर आदि। उस समय के बडे नगरो के बनने का कारण व्यापार एव उद्योग नही था। इसका अर्थ यह नही है कि उनमे व्यापार एव उद्योग था ही नही। यो तो सारे बडे-बडे नगरो मे कुछ न कुछ धन्धा उन्नत दशा मे था, किन्तु उस समय के नगर आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी नही थे। अनाज एव अन्य आवश्यक वस्तुएं आस-पास के गाँवो से आती थी।

उस समय के उद्योग धन्धो का सगठन अच्छा था। बडे-बडे नगरो मे प्रत्येक व्यवसाय का एक सघ होता था। वास्तव मे वह एक प्रकार की मैत्री समितियाँ थी जो सदस्यता, वस्तुओ के गुण आदि पर नियन्त्रण रखती थी। इनके पास पूंजी की कमी थी। कारीगर बहुधा अपने ग्राहको की माँग पर, उनके द्वारा दिए हुए कच्चे माल को सहायता से, उनकी इच्छानुसार वस्तुओ का निर्माण करते थे। नगरो में साख का भी अच्छा प्रबन्ध था, अत छोटे-छोटे कारीगर अपने-अपने साहूकारो मे ऋण लेकर भी अपना उद्योग छोटे पैमाने पर स्वतन्त्र रूप से चलाते थे। उस समय मध्यस्थ नही होते थे। उस समय के कारीगरो का व्यवसाय परम्परागत था, अतः उनका कला-कौशल एव होशियारी एक प्रकार से पैतृक सपत्ति का ही रूप है। जितना ज्ञान पिता को होता था, उतना ही ज्ञान उनके वशजो को प्राप्त होता था। अत. उनके

कार्य करने की पद्धति मे कोई विशेष अन्तर नही हो पाता था। उस समय के महाजन, साहूकार तथा पेढियाँ कारीगरो को कच्चा माल देते तथा उनके द्वारा बनी हुई वस्तुओं को खरीदने मे सहायता देते थ।

STANDARD QUESTIONS

1. "Indian industries had a glorious past" Discuss it with special reference to the industries which flourished in the past
2 Discuss carefully the organisation of Indian industries in the past

---

अध्याय ४

अतीत के उद्योगों की अवनति

(Decline of Early Industries)

प्रारम्भिक—

१७वी शताब्दी के मध्य से भारत के उद्योग धन्धो ने प्रसशनीय प्रगति की। योरोपीय देशो मे भारत का बना हुआ माल बहुत बडी मात्रा म आयात किया जाता था। इङ्गलैण्ड हमारा प्रमुख खरीददार था। इङ्गलैण्ड मे भारतीय वस्त्रो की बहुत माँग थी, और घर-घर मे भारतीय वस्त्रो का प्रयोग किया जाता था। परन्तु कुछ समय बाद भारतीय उद्योगो का एकाधिकार समाप्त होने लगा। इङ्गलैण्ड के व्यापारियो मे प्रतिस्पर्धा की भावना पैदा होने लगी। अपने देशी उद्योगो को सरक्षण देने हेतु सन् १७०१ व १७२० मे उन्होने पार्लियामेट को प्रभावित करके ऐसे कानून बनवाये जिनके द्वारा भारतीय वस्त्रो का प्रयोग वर्जित हो गया। उन दिनो भारतवर्ष मे विदेशो से इतनी अधिक मात्रा मे विदेशी मुद्रा आती थी कि विदेशी व्यापारी भारत से ईर्ष्या करने लगे। फलतः उन्होंने अपने देश मे औद्योगिक विकास के प्रयत्न शुरू किये एव भारतीय आयात कम कर दिये। शनैः-शनैः भारतीय उद्योगो का पतन होने लगा। भारतीय उद्योग-धन्धो की अवनति के अनेक कारण थे, जिनमे से प्रमुख निम्नलिखित है—

भारतीय उद्योगो की अवनति के कारण

(१) इगलैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति

भारतीय उद्योग धन्धा के एकाधिकार पर सबसे गहरा आघात इगलैण्ड म प्रारम्भ हाने वाली औद्योगिक क्रान्ति का पडा। यह क्रान्ति ग्रेट ब्रिटन म १८वी शताब्दी के मध्य मे शुरू हुई इस क्रान्ति ने इगलेंड के आर्थिक कलेवर को पूर्णरूपेण बदल दिया। इसके पूव इगलैड के लोगा का प्रमुख व्यवसाय कृषि करना ही था। परन्तु औद्योगिक क्रान्ति न कृषि को गौण एव उद्योग ध धो को प्रमुख स्थान दिया। औद्योगिक क्रान्ति का प्रारम्भ अनेक वज्ञानिक अनुसधाना एव आविष्कारा के परिणाम स्वरूप हुआ। उद्योग के क्षत्र म हुए कुछ प्रमुख आविष्कार निम्न थे—

(अ) सन् १७३३ म श्रीयुत के (Kay) के फलाइग शटिल' ने बुनने की कला मे एक क्रान्ति सी मचा दी जिससे ताने की कमी का अनुभव होने लगा।

(ब) सन् १७५३ मे श्रीयुत हार ग्रीब्ज (Har Greabes) की 'स्पिनिंग जेनी' के द्वारा ८ से ५४ तागे एक साथ बुने जाना सम्भव हो गया।

(स) सन् १७६६ मे श्री आक राइट (Ark Wright) ने वाटर फ्रम का आविष्कार किया जिसके द्वारा स्पनिग जेनी चलती थी।

(द) सन् १७८६ मे श्री जेम्स वाट (James Watt) ने 'स्टीम इ जन' का आविष्कार किया।

(य) श्री डर्बी (Derby) ने कोयले के साथ लाहा गलाने की और श्री हेनरी कोट (Henry Cort) ने लोहे मे से अशुद्ध भाग निकालने की नयी युक्ति मालूम की। इसी प्रकार श्री डाडस्ले ने अनेक सुन्दर यन्त्रो व औजारो का आविष्कार किया।

इन विभिन्न आविष्कारो ने उद्योग कृषि तथा यातायात के क्षेत्र मे एक क्रान्ति मचा दी। यन्त्रीकरण की सुविधा ने औद्योगीकरण का विशेष बल दिया। उद्योग धधो की स्थापना के लिए पैस की भी वहाँ कोई कमी नही थी। भारत के साथ व्यापार मे इगलेंड के व्यापारियो ने बहुत धन कमाया जिसको वे विनियोग करना चाहते थे। अत भारत से कच्चा माल इगलड मे लाकर यन्त्रो की सहायता स उसका यहा निर्माण किया जाने लगा। यन्त्र निर्मित वस्तुएँ भारतीय हस्त निर्मित पदार्थों की अपेक्षा अधिक सस्ती थी, इस कारण भारतीय माल इनकी प्रतिद्वन्दिता म टिक न सका। इस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप ग्रट ब्रिटेन का तो यन्त्रीकरण व औद्योगीकरण होने लगा व भारतीय उद्योग शनै शनै अवनति के गडढ मे गिरने लगे। यद्यपि कला की दृष्टि से भारतीय माल यन्त्र निर्मित माल की अपेक्षा

कहीं अधिक श्रेष्ठ था, परन्तु अत्यन्त सस्ता होने के कारण यन्त्र-निर्मित माल ही लोकप्रिय हुआ। पहले तो विदेशी मण्डियो से भारतीय माल हटने लगा और कुछ समय बाद तो भारत के बाजारो मे भी विदेशी माल छा गया और यहाँ की हस्त-निर्मित वस्तुएँ लोप होने लगी। यातायात के क्षेत्र मे भी अनेक उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। भारत के अन्दर रेलो व सडको का जाल बिछने लगा। स्वेज नहर के निर्माण से यूरोपीय देश भी भारत के बहुत निकट आ गये। इस यातायात के विकास एव जहाजी भाडो मे कमी के परिणाम स्वरूप ग्रेट-ब्रिटेन का यन्त्र-निर्मित माल बडी तेजी से भारत के विभिन्न नगरो मे आने लगा। औद्योगिक शक्ति के क्षेत्र मे भी परिवर्तन हुए। उद्योगो मे भाप की शक्ति का प्रयोग किया जाने लगा। इससे उत्पादन प्रणाली और भी सरल और सुगम हो गयी। इसके विपरीत भारतवर्ष मे उद्योग धन्धे परम्परागत प्रणाली के आधार पर चलाए जाते थे। हमारा औद्योगिक सगठन भी अपेक्षाकृत अधिक शिथिल था। यद्यपि इगलैंड मे भी नए-नए आविष्कारो के कारण उद्योगो के सगठन मे विशेष दृढता नही थी, किन्तु फिर भी वहाँ के नागरिको व व्यवसायियो की कार्यकुशलता एव दृढ निश्चय के कारण औद्योगिक विकास बडी तेजी से हुआ। उस समय इगलैंड व भारत की आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक दशाएँ एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न थी। इगलैंड मे औद्योगिक क्रान्ति ने सभी लोगो को औद्योगीकरण मे भाग लेने के लिए प्रेरित किया। उदाहरणार्थ, पूँजीपतियो को नए-नए उद्योगो मे विनियोग करने का स्वर्ण अवसर मिला, श्रमिको को कारखानो मे ऊँची मजदूरी पर रोजगार मिला विशेषज्ञो को अपनी कला का प्रदर्शन करने का अवसर मिला, इत्यादि। इन सब घटको का सामूहिक परिणाम यह हुआ कि इगलैंड मे बडी तेजी के साथ औद्योगिक प्रगति होने लगी। इसके विपरीत भारत मे राजनैतिक अशान्ति होने के कारण विकास की गति बहुत धीमी रही। यही नही, भारतीय मण्डियो मे यन्त्र-निर्मित सस्ता माल आ जाने के कारण देशी उद्योग धन्धो पर भी इसका कुप्रभाव पडा। हमारे उद्योग-धन्धो का उत्पादन गिरने लगा एव श्रमिको की छटनी शुरू हो गई। इस छटनी व बेरोजगारी ने समाज मे एक हलचल पैदा कर दी एव चारो ओर निराशा का वातावरण छा गया। अत: स्पष्ट है कि हमारे अतीत के उद्योगो के विनाश का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण औद्योगिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव था।

(२) भारत को ब्रिटेन का उपनिवेश माना गया--

हमारे उद्योगो के विनाश का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी था कि ग्रेट ब्रिटेन ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए भारत को उपनिवेश बनाया। उसकी आर्थिक व औद्योगिक नीति भारतीय हितो के विरुद्ध थी। भारत से कच्चा माल ले जाकर इगलैंड म यन्त्रो की सहायता से उससे विभिन्न प्रकार के निर्मित पदार्थ बनाए जाते थे और फिर बरबस भारतीयो को ही बेचा जाता था। भारत के प्राचीन आर्थिक

व सामाजिक कलेवर को भी उन्होंने बिगाड दिया एव इस देश मे भी पूंजीवाद के अंग को पैदा कर दिया। पूजीवाद के विकास के परिणामस्वरूप समाज दो खण्डो मे विभक्त हो गया—पूंजीपति और श्रमजीवी। इन दोनो वर्गो मे पारस्परिक कलह के कारण औद्योगिक उत्पादन को बडी क्षति पहुँची। भारत की सीधी-सादी व्यवस्था पर नवीन परिवर्तनो व पूंजीवाद का बहुत बुरा प्रभाव पडा, यहाँ की आन्तरिक अर्थ-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। यहाँ के लोगो के पास न तो तान्त्रिक ज्ञान था और न पर्याप्त पूंजी ही, फलतः हमारे उद्योग नए परिवर्तनो का सामना न कर सके और कुछ समय तक लडखडाने के बाद उनका विनाश होने लगा।[1]

(३) भारतीय माल पर प्रतिबन्धात्मक कर—

इतना ही नही, अपितु इगलैंड मे कानून द्वारा भारतीय वस्तुएँ, जैसे छीट, कैलिको आदि का उपयोग रोकने के लिये प्रयत्न किये गये तथा इन वस्तुओं का उपयोग करने वालो को दण्ड दिया गया। इसका भी एक उदाहरण मिलता है, जब एक अँग्रेज महिला ब्रिटिश सभा-गृह मे गई, तब उसके पास भारतीय कैलिको का रूमाल था, इसलिये उसे ५० पौंड से दंडित किया गया। भारतीय हितो के विरुद्ध प्रतिबधात्मक कानून पास कराने मे इगलैंड के उद्योगपति इस कारण और भी सफल हुए, क्योंकि औद्योगिक क्रान्ति ने उनके हाथ बहुत मजबूत कर दिये थे। इगलैंड मे पूंजीपतियो का एक ऐसा शक्तिशाली वर्ग पैदा हो गया था, जो अपनी इच्छानुसार कठपुतली की भाँति शासन को नचा सकता था। ऐसे कानूनो का कुप्रभाव यह हुआ कि भारतीय माल के लिये ब्रिटेन का बाजार बिलकुल बन्द हो गया। इससे हमारे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बहुत बडा धक्का लगा एव उद्योग-धन्धो का विकास रुक गया। वास्तव में भारतीय निर्माताओ के त्याग के परिणामस्वरूप ही मेनचेस्टर आदि के उद्योग पनपे एव भारतीय उद्योगो की अवनति होती गई।[2]

---

1 'The sudden impact of the new order of things on the placid and easy going life of India produced disastrous results, its whole internal economy was thrown out of gear and the people had just then neither the knowledge nor the capital to evolve new types of Industry suited to the altered times'

—P P Pillaiquoting A K Connel in 'Economic Conditions of India', Page 27.

2 'Had not such prohibitory duties and decrees existed, the mills of Paesley and Manchester would have stopped in their outset and could hardly have been again set in motion, even by the powers of steam. They were created by the sacrifice of Indian manufacturers "

—Quoted by S C. Kuchhal in the Industrial Economy of India, Page 45.

(४) ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एजेंटों द्वारा अत्याचार व ब्रिटिश-शासन की घातक आर्थिक नीति—

भारतीय उद्योगो की अवनति का प्रारम्भ ईस्ट इ डिया कम्पनी के आगमन से हुआ। शुरू मे इस कम्पनी का उद्देश्य भारतीय उद्योग निर्मित माल को विदेशो मे निर्यात करके लाभ कमाना था, किन्तु इस नीति मे क्रमश परिवर्तन होने लगा, जिसका प्रभाव हमारे उद्योग धन्धो पर बहुत बुरा पडा। बदलती हुई नीति का मूल उद्देश्य ही भारत से कच्चा माल निर्यात करना एव निर्मित माल आयात करना हो गया। अत्याचार करके तथा अनेक कूटनीतिया के सहारे भारतीय उद्योगो को गिराया गया। सन् १८१३ मे तो यह बिलकुल ही निश्चय कर लिया गया कि भारत के उद्योग धधो को नष्ट कर दिया जाये, व इ गलैड के व्यापार को बढाने के लिये वहाँ का बना हुआ माल भारतवासिया के सिर बलात मढ दिया जाये। जिस समय पालिया-मेट मे इस विषय पर बहस हो रही थी, तो एक सदस्य श्री टीरने[1] ने अपने व्याख्यान मे स्पष्ट कहा था —"अब से सामान्य सिद्धान्त यह होगा कि इ गलिस्तान अपने यहाँ का बना हुआ माल बलात भारत मे बेचे और उसके बदले मे भारत की बनी एक भी वस्तु न ले। यह सच है कि हम रुई अपने यहाँ आने देंगे, किन्तु जब हमे पता लगेगा कि हम मशीनो के द्वारा भारतवासियो की अपेक्षा अधिक सस्ता कपडा बुन सकते है, तब हम उनसे यह कहेगे कि तुम कपडा बुनने का काम छोड दो और हमे कच्चा माल दो, हम तुम्हारे लिये कपडा बुन देंगे।' ईस्ट इ डिया कम्पनी के सचालको ने कम्पनी के भारत स्थित अधिकारियो को यह आदेश दिया कि भारत मे वस्त्र-शिल्पियो पर कडा नियन्त्रण रखा जावे, जिससे वे केवल विशेष प्रकार का कपडा, विशेष नम्बर के सूत से ही बुन सकें। बुनने की मात्रा भी नियन्त्रित कर दी गई। भारत के अच्छे-अच्छे कारीगरो को कम्पनी की इच्छानुसार काम करने एव अपने द्वारा निर्मित वस्तुओ को निश्चित मूल्यो पर बेचने के लिये बाध्य किया गया। इस प्रकार ईस्ट इ डिया कम्पनी ने भारतीय शिल्पियो को चारा ओर से कडे नियन्त्रण मे रख कर भारतीय कला-कौशल का गला [illegible] या।

(५) सन् १८३३ मे ईस्ट इ डिया कम्पनी के व्यापारिक एकाधिकार का समापन—

ईस्ट इ डिया कम्पनी ने भारत के साथ व्यापार करके खूब लाभ कमाया। इस कम्पनी के सचालको व व्यापारियो की आर्थिक समृद्धि को देख कर इ गलैंड के अन्य लोगो मे भी भारत के साथ व्यापार करने की उत्कठा पैदा हुई। उन्होंने अपनी सरकार से प्रार्थना की कि ईस्ट इ डिया कम्पनी का व्यापारिक एका-धिकार समाप्त होना चाहिये एव अन्य लोगो को भी भारत के साथ व्यापार करने

1 Mr Tierney in the House of Commons, 1813

का अधिकार मिलना चाहिये। फलतः सन् १८३३ मे भारतीय व्यापार सबके लिये खुल गया। अकेली व्यापारिक संस्था के रूप मे ईस्ट इडिया कम्पनी का अस्तित्व समाप्त हो गया। भारत के आर्थिक विकास का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। भारत के साथ व्यापार करने की स्वतन्त्रता की घोषणा के साथ, विदेशी पूँजी व निजी उपक्रम का भारत मे आयात शुरू हो गया। ईस्ट इडिया कम्पनी ने तो अपना परंपरागत व्यापारिक क्षेत्र कायम रखा एव पुराने ढगो से वह व्यापार करती रही। परन्तु जो नये व्यवसायी व साहसी भारत मे आये, उनका उद्देश्य ही भिन्न था। वे केवल व्यापारी ही नही, वरन् वास्तव मे भारत मे ब्रिटिश माल के लिये बाजार खोजने के लिये आये थे। ये नये उपक्रमी पुराने व्यापारियो की भाँति माल खरीदने के लिये नही वरन् इगलैड का यन्त्र निर्मित माल बेचने के लिये आये थे। इनकी कुचेष्टाओ ने भारतीय उद्योगो पर बजूपात किया। जैसे-जैसे इनको सफलता मिलती गई, वैसे-वैसे भारतीय उद्योगो की अवनति होती गई।

(६) भारतीय अर्थव्यवस्था का विशिष्टीकरण—

लकाशायर व मैनचेस्टर की सूती वस्त्र मिलो के लिये पर्याप्त मात्रा मे निरन्तर भोजन (अर्थात् कपास) प्राप्त करने के लिये भारतीय अर्थ व्यवस्था का कलेवर बदल दिया गया। यद्यपि पहले भारत जितना कृषि-प्रधान था उतना ही उद्योग प्रधान भी था, परन्तु ईस्ट इडिया कम्पनी तथा इसके बाद ब्रिटिश शासन ने हमारी अर्थ-व्यवस्था के विशिष्टीकरण पर अधिक बल दिया। ऐसा कहा गया कि भारत केवल कृषि-प्रधान देश ही है, अतएव कपास, जूट, चमडा, तिलहन आदि कच्चे औद्योगिक पदार्थो के उत्पादन म विशिष्टता प्राप्त करनी चाहिये। भूमि की उत्पादकता को बढाने के लिय व उन्नत बीज, उन्नत खाद आदि के लिये अनेक प्रयत्न किये गये। सिंचाई की सुविधाओ की वृद्धि की गई। कहने का तात्पर्य यह है कि कृषि-पदार्थों की किस्म व मात्रा को बढाने की दिशा मे समस्त शक्तियाँ केन्द्रित हो गई। इस केन्द्रीय-करण का दुखद परिणाम यह हुआ कि भारत केवल कृषि प्रधान देश ही रह गया और हमारे उद्योग-धन्धे एक-एक करके नष्ट होने लगे। अधिक आय के कारण भारतीय कृषको की क्रय-शक्ति भी बहुत बढ गई और वे विदेशी वस्तुओ के खरीदने मे समर्थ हो गये। अतः देश से कच्चे माल का निर्यात शुरू हो गया एव विदेशी माल का आयात शुरू हो गया।

(७) विविध कारण—

भारतीय उद्योगो के पतन के उपर्युक्त कारणो के अतिरिक्त कुछ अन्य घटक भी इसके लिए उत्तरदायी है, जिनमे से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैः—

(अ) राजा व नवाबो का अन्त—ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने भारत मे राजनैतिक शासन जमाने के बाद अपना रुख आर्थिक शासन जमा कर भारत क आर्थिक शोषण

की ओर किया। ईस्ट इन्डिया कम्पनी के पास राजनैतिक सत्ता जाने से भारतीय राजा व नवाबो की स्थिति बिगड गई। परिणामस्वरूप राजा महाराजाओ द्वारा कलात्मक व दस्तकारी की वस्तुओ की जो माँग थी, वह नष्ट प्राय: हो गयी। इससे भारतीय उद्योगो को गहरा आर्थिक धक्का पहुँचा। लार्ड डलहौजी की विनाशकारी नीति के कारण देश की छोटी-छोटी राजधानियाँ भी लुप्त हो गयी, जो प्राचीन कला-कौशल की केन्द्र थी और जहाँ हमारे शिल्पियो को आश्रय मिलता था। इससे बची हुई कला-कौशल की माँग भी लुप्त हो गई।

(ब) नये सामन्तवादी वर्ग का उदय—राजनैतिक सत्ता जाने के परिणामस्वरूप भारतीय राजा व नवाबो की सत्ता का अन्त हो गया और एक नये समाज का उदय हुआ, जिसे हम सामन्तवादी वर्ग कह सकते है, इस वर्ग का उदय ब्रिटिश शासको ने अपनी शासन-प्रणाली का सचालन करने के लिए किया, जो शरीर से एव जन्म से भारतीय थे, परन्तु उनकी आत्मा व विचारधारा अपने शासको की भाँति अग्रेजियत मे ओत-प्रोत थी।[1] यह सामन्तवादी वर्ग 'काला आदमी' होते हुए भी भाषा, रहन-सहन तथा अँग्रेजो की अन्धी नकल करने मे अपना गौरव समझता था। भारतीय उद्योग-धन्धो पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पडा। ये लोग 'साहब की मरजी सम्पादन करने के लिए साहबी ठाट-बाट मे एव विलायती लिबास मे रहने लगे, जिससे देशी वस्तुओ की अपेक्षा विदेशी वस्तुएँ ही उनके द्वारा अधिक प्रयोग की जाने लगी। यदि इस वर्ग द्वारा कुछ देशी वस्तुएँ खरीदी भी जाती थी तो वे विशेष कलात्मक एव मूल्यवान न होते हुए सस्ते मूल्यो की थी। इन सब कारणो का सामूहिक परिणाम यह हुआ कि भारतीय उद्योगो मे कलात्मक एव मौलिक वस्तुओ के उत्पादन को गहरा आघात पहुँचा।

(स) व्यापारिक गिल्डस् का पतन व्यापारिक गिल्डस् से तात्पर्य उन सस्थाओ का है, जो माल की किस्म, मूल्य, बिक्री का स्थान, श्रमिको के काम के घन्टे तथा काम की अन्य शर्ते, सभी कुछ निर्धारित करती थी। गिल्ड समान पेशे के लोगो मे सहयोग, भ्रातृत्व तथा मैत्री की भावना प्रोत्साहित करते थे एव बाहरी लोगो से अपने सदस्यो की रक्षा करते थे। परन्तु जब से भारत मे ब्रिटिश शासन की नीव जमने लगी तब से व्यापारिक गिल्डस् का सगठन शिथिल पडने लगा। व्यापारिक गिल्डस् के विनाश से भी हमारे औद्योगिक सगठन को बहुत बडा धक्का लगा और उनकी अवनति होने लगी।

---

1 Evolution of Industries in India by Dr Gadgil

(द) यन्त्रो के निर्यात पर प्रतिबन्ध—यदि भारत भी औद्योगिक क्रान्ति द्वारा प्रदान किये हुए यन्त्रो व आविष्कारो का प्रयोग करता तो भी हमारे उद्योगो को दुर्दिन न देखन पडते। परन्तु जितने भी नये आविष्कार हुए वे सब ग्रेट-ब्रिटेन तक ही सीमित रहे तथा नयी मशीनो का प्रयोग भी केवल ब्रिटेन के ही कारखाना मे किया गया। ब्रिटेन से यन्त्रो के निर्यात पर कठोर नियन्त्रण लगाया गया, परिणाम यह हुआ कि भारत यन्त्रो की सहायता म बड पैमाने पर उत्पादन न कर सका, अत इसका निर्माणी व्यय बहुत अधिक होता था जबकि इङ्गलैंड मे उत्पादन के व्यय बहुत कम थे। इन प्रतिबन्धो ने भी भारतीय उद्योगो पर कुठाराघात किया।

(य) यातायात के साधनो मे वृद्धि—इसी युग मे यातायात व सन्देश-वाहन के क्षेत्रो मे भी अनेक उल्लेखनीय परिवतन हुए। उदाहरण के लिये सन् १८६९ म स्वेज नहर के निर्माण से योरोपीय देश भारत के बहुत निकट आ गये। भारत मे भी सडको व रेलो के जाल क कारण प्राय सभी नगर एक दूसरे स सम्बद्ध हो गये। फल यह हुआ कि यन्त्र निर्मित विदेशी माल बडी सुविधा से भारत म आने लगा एव आतरिक यातायात के साधनो ने देश के सभी बाजारो म उसे बिछा दिया। इससे भी भारतीय उद्योगपति हतोत्साहित हो गये एव भारतीय उद्योग अवनति की ओर अग्रसर होने लगे।

इस प्रकार सन् १८८० तक भारतीय हस्तकला का पूण विनाश हो गया और उनकी सुरक्षा के लिये कोई भी माग नही रहा। मुक्त व्यापार (Free Trade) की नीति ने जल पर नमक छिडकने का काय किया। रेलवे भाडानीति ने भी भारतीय उद्योगो के विनाश एव विदेशी वस्तुओ के वितरण मे योग दिया।

STANDARD QUESTIONS

1 D fine Industrial Revolution How far it has been responsible for the decay of Indi n Industries ?

2 Summarise carefully the various factors which have brought about the decay of Indian Industries

3 ' It is said that the establishment of the East India Company is associated with the down fall of Indian Industries" Comment

अध्याय ५

आधुनिक उद्योगों का प्रादुर्भाव एवं विकास

(Evolution and Development of Modern Indusustries)

प्रारम्भिक—

हमारे उद्योग-धन्धो का विनाश गाँवों की अपेक्षा नगरो म ही अधिक प्रबल था। इस विनाश का सबसे भयकर परिणाम यह हुआ कि जो कारीगर नगरो मे रहकर अपने हस्त-कौशल से अपना तथा अपने कुटुम्ब का जीवन निर्वाह कर रहे थे, अब उस साधन के छिन जाने के कारण नगर छोडकर गाँवो म जाकर बसने लगे। वहाँ जाकर कुछ कारीगर तो अपनी भूमि पर कृषि करने लगे और जो गरीब थे तथा जिनके पास भूमि खरीदने के लिए धन नही था, वे खेतो म मजदूरी करन लगे। इस प्रकार कृषि भूमि-पर जन सख्या का भार बढने लगा। इ गलैण्ड मे भी औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप वहाँ के हस्त-कौशल कारीगरो को अपने उद्योग-धन्धा का छोडना पडा था, किन्तु वहाँ हमारे देश की तरह कारीगर गाँव की ओर नही गय। हाँ, कुछ समय के लिए व बेकार अवश्य हो गये। किन्तु उस देश की औद्योगिक नीति एव आर्थिक स्थिति दूसरे प्रकार की थी जब यत्रो की सहायता से वस्तुओ का उत्पादन बडी मात्रा मे होने लगा, तो कारीगरो की अधिक आवश्यकता हुई। अत. कुछ लागा ने, जो बेकार हुए, कारखाना मे मजदूरी करना आरम्भ कर दिया। यन्त्र निर्माण करने वाले कारखानो मे भी बहुत से मजदूर काम पर लग गये। यन्त्रो की सहायता से बनी वस्तुएँ हाथ की बनी हुई वस्तुओ से काफी सस्ती होती थी। अत: उन वस्तुओ की माँग देश और विदेश मे अधिक होने लगी। इस बढती हुई माँग का पूरा करने के लिए अधिक उत्पादन होन लगा, जिसके लिए अधिक मजदूरो की आवश्यकता हुई। इतना ही नही, रेलो के कारखानो मे, जहाजो के कारखाना मे, रेलो मे काम करने के लिए, जहाजो तथा बन्दरगाहो मे काम करने के लिए मजदूरो की अधिकाधिक आवश्यकता बढ गई। व्यापार मे भी वृद्धि हुई। इसी प्रकार खाना म, सडकें बनाने आदि के लिए भी मजदूरो की माँग बढी। सक्षेप मे, वहाँ चारो ओर से मजदूरो की माग दिन प्रति दिन बढने लगी। अत: जो कारीगर बेकार हुए उन्ह किसी कारखाने मे काम न मिला, क्योकि उस समय कोई भी कारखाना नही खोला गया। जिन वस्तुओ की प्रतियोगिता हमारे

देश के बाजारो मे होती थी, उनका निर्माण इगलैण्ड मे होता था। अत: यहाँ के कारीगरो के लिए कृषि के अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यवसाय नही था जिसको वे अपनाते। इगलैंड मे औद्योगिक क्रांति का वहाँ की जनता पर अच्छा प्रभाव पडा। इन लोगो की आर्थिक दशा उन्नत हुई, किन्तु हमारे देश की जनता की स्थिति दिन प्रति दिन गिरने लगी।

आधुनिक उद्योगो का प्रादुर्भाव—

समय परिवर्तनशील है। इसी सिद्धान्त के अनुसार हमारे देश मे भी समय की गति के साथ परिवर्तन आने लगा। सन् १८५० के बाद विदेशियो ने अपने स्वार्थ के लिये लाभ कमाने की दृष्टि से, इस देश के उद्योग-धन्धो मे परिवर्तन करना आरम्भ किया और अब यहाँ भी धीरे-धीरे आधुनिक उद्योग बढने लगे। हमे अब देखना है कि इन आधुनिक उद्योगो का जन्म किस प्रकार हुआ और वे धीरे-धीरे किस प्रकार उन्नत हुए।

इन उद्योगो को हम दो भागो म विभाजित करते हैं—बगीचा उद्योग (Plantation Industry) और निर्माणी उद्योग (Factory Industry)। प्र श्रेणी के उद्योगो मे नील, चाय और कॉफी मुख्य है। यो तो उपर्युक्त दोनो देन यूरोप की हैं, किन्तु दूसरे प्रकार के उद्योग का सम्बन्ध यूरोप मे हुए आर्थिक सक्रमण से है।

बगीचा-उद्योग का श्रीगणेश—

बगीचा-उद्योग का प्रारम्भ यूरोपीय लोगो द्वारा ही हुआ। इन्होने १९वी शताब्दी के मध्यकाल के बाद अधिक उत्साह से कार्य करना प्रारम्भ किया, क्योकि इस समय के पूर्व उन्हे अनेक कठिनाइया का सामना करना पडता था, जिनमे (अ) ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा अधिकार पर रोक लगाई जाना, (ब) आवागमन के उपयुक्त साधनो मे कमी होना, (स) जन-समूह का दूर-दूर के स्थानो पर रहना, आदि मुख्य थीं।

नील की कृषि भारतीय अनेक वर्षा से करते आ रहे थे और विदेशी व्यापार भी उन्नत दशा म था। जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी इस देश मे आई, तो उसने भी नील के रग का काफी व्यापार किया। कम्पनी न नील की उन्नति करने के लिए पश्चिमी द्वीप समूह से होशियार लागो का बगाल मे लाकर बसाया। किन्तु खेती करने वालो की आर्थिक दशा भी बिगडती गई। यूरोपीय लोगो ने जबरदस्ती अग्रिम रकमे देकर खेती करवाई। चाहे जो हो, सन् १८६० मे बगीचा उद्योग उन्नति के शिखर पर पहुँच गया और भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओ मे यह भी एक महत्त्वपूर्ण वस्तु गिनी जाती थी। सन् १८८० से सन् १८९५ तक इस उद्योग मे स्थिरता रही। सन् १८९४-९५ मे नील का व्यापार अपने पिछले वर्षों से सबसे अधिक था। सन् १८९७

के बाद इस उद्योग की खेती और निर्यात का पतन होने लगा।[1] सन् १९१३-१४ में तो नील का निर्यात सन् १८९५ के निर्यात का ½ ही रह गया।

भारत मे चाय की खेती का पहली बार जन्म सन् १८२० मे हुआ था। सन् १८३५ मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने प्रयोग करने के लिए एक खेत लगाया। पाँच वर्ष के पश्चात् यह काम 'आसाम टी कम्पनी' (Assam Tea Company) को दे दिया गया। सन् १८५२ मे पहला निजी बगीचा प्रारम्भ हुआ। इसके बाद चाय की कृषि दिन प्रति दिन बढने लगी।

सन् १८६० के बाद आसाम के चाय के खेतो पर काम करने वाले मजदूरो की सख्या कम पडने लगी, अतः बगाल की ओर से मजदूर लाए जाने लगे। उनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही शोचनीय थी। उनके साथ गुलामो जैसा व्यवहार होता था। बहुत से उद्योगो को बडा धक्का लगा। किन्तु सन् १८६८ के बाद सुधार होने के कारण चाय की खेती देश के अन्य भागो मे, जैसे—पजाब एवं नीलगिरी की ओर की जाने लगी। १९वी शताब्दी के अन्तिम तीस वर्षा मे न केवल चाय की कुल उत्पादन मात्रा ही बढी, वरन् कृषि के ढगो मे परिवर्तन हाने के कारण तथा यन्त्रो के उपयोग से प्रति बीघा उत्पादन मात्रा मे भी वृद्धि हुई। सयुक्त राज्य के बाजारा मे भारतीय चाय ने चीन की चाय को प्रतियोगिता मे बिठा दिया। सन् १९०३ मे भारतीय चाय की माँग बहुत बढी। सन् १८९५ के बाद जब उत्पादन अधिक हुआ, तब मूल्य मे कमी हो गई, सन् १९०२ से १९०६ तक खेती कम हो गई और बाजार मे भी मन्दी छा गई। किन्तु कुछ समय बाद पुन' बगीचा-उद्योग उन्नति करने लगा और भारतीय चाय विदेशो को निर्यात की जाने लगी।

कॉफी की खेती का आरम्भ १७वी शताब्दी मे मूर (Moor) व्यापारियो द्वारा हुआ था और इसकी खेती दक्षिणी भारत के कई भागो मे हाती थी। यो तो पहला बगीचा यूरोप के लोगो के द्वारा सन् १८४० मे लगाया गया, किन्तु सन् १८६० तक काई विशेष उन्नति नही हुई। इसी बीच यूरोप के लोग दक्षिण-पश्चिम शिमोगा, मन्जिराबाद के दक्षिण भाग मे, कुर्ग तथा वयानद के हिस्सो मे बस गये। सन् १८६० से लेकर सन् १८७९ तक कॉफी का निर्यात पहले से दस गुना हो गया। इस प्रकार इस अवधि मे यथेष्ठ उन्नति हुई। किन्तु सन् १८७९ से १८८८ तक कॉफी के पतो मे बीमारी फैलने से भारत एव लका मे खेती रुक गई। दूसरी ओर ब्राजील की कॉफी भी प्रतियोगिता मे आ गई। किन्तु थोडे समय बाद वहाँ कुछ राजनैतिक अडचनो के कारण, भारतीय कॉफी के मूल्य मे फिर वृद्धि हो गई। यह उन्नति सन् १८८९ से १८९६ तक होती रही। काफी के खेतो मे काम करने वाले मजदूरो मे बहुत से ऐसे

1. The Industrial Evolution of India By. Dr. Gadgil, Page 49.

मजदूर थे, जो आसपास के गाँव से अपनी खेती से अवकाश मिलने पर अपनी आय बढाने के लिए आ-जाया करते थे।

इस सम्बन्ध में एक स्मरणीय बात यह है कि अब तक जो यूरोप निवासी केवल व्यापार तक ही सीमित थे, वे १६वी शताब्दी के मध्य से उत्पादन मे भी प्रत्यक्ष रूप मे पूँजी लगाने लगे। इससे पूँजी के साथ भारत को औद्योगिक प्रबन्ध का भी एक नवीन दृष्टिकोण मिलता है।

निर्माण उद्योगो का श्रीगणेश—

जहाँ तक निर्माण उद्योगो (Manufacouring Industries) का सम्बन्ध है, उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ मे इनकी स्थापना न हो सकी। नील के कुछ कारखानो को छोडकर शेष सभी उद्योग छोटे स्तर पर कुटीर उद्योगो के अन्तर्गत होते थे। लेकिन रेल-मार्ग के विकास के साथ एव यातायात की सुलभता के कारण सन् १८५१ मे पहला वस्त्र कारखाना 'दी बोम्बे स्पिनिंग एण्ड वीविंग कम्पनी' बनाया गया, जिसने सन् १८५४ म उत्पादन आरम्भ किया। प्रारम्भिक प्रगति इतनी मन्दी थी कि सन् १८६१ तक केवल १२ वस्त्र-मिल खुल पाये। इसके बाद अमरीकन गृह-युद्ध समाप्त होते ही परिस्थिति म सुधार होने पर इस उद्योग ने आशातीत उन्नति की, जो १६वी शताब्दी के अन्त तक जारी रही। सन् १८८५ से सन् १८६० तक पाँच वर्षो के बीच देश मे ५० सूती-मिल और खुल गये। सन् १८६६ म अकाल तथा महामारी के कारण वस्त्र-मिल उद्योग को क्षति पहुँची। इसी प्रकार सन् १६१४ तक विभिन्न बाधाओ का सामना करते हुए यह उद्योग धीरे-धीरे बढता ही गया।

सूती-वस्त्र मिल उद्योग के बाद जूट-उद्योग का नम्बर आता है। सन् १८५४ म ही पटसन उद्योग की भी स्थापना आधुनिक ढग पर की गई तथा सन् १८६३-६४ म उद्योग की अच्छी तरह उन्नति होने लगी। सन् १६१४ तक मिलो की सख्या सन् १८६६ मे २८ से बढकर ६४ हो गई।

इसी प्रकार खानो म कोयला निकालने म आधुनिक मशीनो का प्रयोग गत शताब्दी के मध्य म होने लगा। यद्यपि रानीगज की खानो से सन् १८२० मे ही कोयला निकालना शुरू हो गया था, किन्तु सन् १८५४ तक केवल तीन खानो से ही कोयला निकलता था। इसके बाद रेलो की प्रगति ने इस उद्योग को बडा प्रोत्साहन दिया और सन् १८८० तक रानीगज तथा निकटवर्ती भागो मे लगभग ५६ खानो से कोयला निकलने लगा। सन् १८८० म इस उद्योग मे लगभग २० हजार श्रमिक काम करते थे। सन् १६१४ म श्रम-जीवियो की सख्या १½ लाख से भी ऊपर हो गई।

इन तीन वृहत् उद्योगो के अतिरिक्त कुछ अन्य उद्योगो की भी स्थापना कारखाना-प्रणाली के आधार पर की गई, जैसे—सन् १८६६ म कानपुर म चमडे का एक बडा कारखाना 'हारनेस एण्ड सैडलरी फैक्ट्री' के नाम से सरकार ने खोला। इसके

अतिरिक्त उत्तर-प्रदेश मे एक कांच का कारखाना और मद्रास प्रान्त मे लोहे तथा चमडे के कारखाने खोले गए। इस प्रकार सन् १६१४ तक प्राय. अधिकतर उद्योगो का सूत्रपात कारखाना-प्रणाली के आधार पर हो चला था। हाँ, विकास की गति अवश्य धीमी रही।

सन् १८८० तथा १६०१ के दुर्भिक्ष आयोगो ने एव भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस ने देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए औद्योगीकरण पर बल दिया। २०वी शताब्दी के प्रारम्भ मे स्वदेशी आन्दोलन ने भी देश के औद्योगीकरण के लिए आवाज उठाई। विदेशी माल का बहिष्कार करके स्वदेशी वस्त्रो का प्रचार तथा कुटीर-धन्धो के विकास के लिए प्रयत्न किए जाने लगे। परिणामस्वरूप देश मे अनेक विनियोग सस्थाएँ खुली, जैसे—बैंक, बीमा कम्पनियाँ आदि और साथ ही कागज, पैंसिल, दियासलाई, साबुन, काँच आदि के कारखाने भी खुले।

इस प्रकार भारत म आधुनिक उद्योगो का विकास १६वी अर्द्ध शताब्दी के बाद प्रारम्भ होना है और वह भी मुख्यत योरोपीय पूँजी एवं योरोपीय विशेषज्ञों द्वारा। सन् १६११ की औद्योगिक गणना के अनुसार, उस समय भारत मे ७,११३ कारखाने थे, जिनमे १० लाख से अधिक व्यक्ति काम करते थे। इनमे म ४,५६६ कारखाने ऐसे थे, जिनमे यान्त्रिक या अन्य शक्ति का प्रयोग होता था। इसी गणना के अनुसार उद्योगो पर निर्णय जन-सख्या २१,०५ ८२४ थी, जिसम स बगीचा उद्योग, वस्त्र उद्योग, खान उद्योग तथा यातायात सम्बन्धी उद्योगो मे क्रमश. ८,१०,४०७, ५,५७,५८१, २,२४,०८७ और १,२५,११७ व्यक्ति काम करते थे, अर्थात् औद्योगिक जनसख्या का ८१% भाग केवल इन चार बडे उद्योगो मे लगाया था।[1]

औद्योगिक विकास को प्रेरित करने वाले घटक—

वे विभिन्न घटक, जिन्होने प्रथम महायुद्ध तक भारत म औद्योगिक विकास को प्रेरित किया, निम्न-लिखित थे .—

औद्योगिक विकास को बढावा देने वाले घटक

१. ग्रामीण सगठन व दस्तकारी का विनाश।
२. व्यापारिक केन्द्रो का विकास।
३. अग्रेजी भाषा का प्रचलन।
४. ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एकाधिकार का समापन।
५. यातायात के साधनो मे वृद्धि।
६. राजनैतिक घटनाएँ।

(१) ग्रामीण सगठन व दस्तकारी का विनाश—जब स पाश्चात्य जगत का औद्योगिक पूँजीवाद भारत मे आया, तभी से हमारे कुटीर उद्योग-धन्धो का विनाश शुरू हो गया एव

1. Industrial Evolution of India By Gadgil, Pages 114 115.

हमारा ग्रामीण सगठन भी छिन्न-भिन्न हो गया। कलात्मक वस्तुओ का निर्माण करने वाले कारीगर बेरोजगार हो गए। परन्तु कारखाना आधार पर खोले गए नए-नए उद्योगो मे उनको आश्रय मिला। अत निर्माणी उद्योगो को श्रम का अभाव प्रतीत नही हुआ। इस घटक ने औद्योगिक विकास को बल प्रदान किया।

(२) **व्यापारिक केन्द्रो का विकास**—जब से भारत मे अग्रेजी शासन आया, तब से यहाँ व्यापारिक केन्द्रो का विकास शुरू हो गया। अग्रेजी शासन के पूर्व भारत मे अनेक व्यापारी तथा राजनीतिज्ञ हिन्दू राजाओ ने मन्दिर बनवाए, मुगल बादशाहो ने महल तथा मकबरे बनवाए मराठो ने किलो का निर्माण किया, डच व पुर्तगीज ने गिरजाघर बनवाए, परन्तु अग्रेजो ने औद्योगिक नगरो का निर्माण किया। नए-नए व्यापारिक केन्द्रो व बन्दरगाहो के विकास ने औद्योगीकरण को बडा बढावा दिया। यही कारण है कि आज देश मे जिन स्थानो पर उद्योग-धन्धो का अधिक घनत्व है, उनका जन्म वास्तव मे ब्रिटिश शासन काल मे ही हुआ।[1]

(३) **अग्रेजी भाषा का प्रचलन**—सन् १८३५ से अग्रेजी भाषा भारत मे बहुत लोकप्रिय होने लगी, क्योकि बिना इसकी जानकारी के वैज्ञानिक व अन्य तान्त्रिक विषयो को समझना अत्यन्त कठिन था। व्यावसायिक सगठन के सिद्धान्तो को समझने के लिए तथा पाश्चात्य आदर्शो पर औद्योगिक प्रबन्ध को सचालित करने के लिए अग्रेजी भाषा की जानकारी बहुत जरूरी थी। भारत मे राष्ट्रीयता की भावना को बढाने मे अग्रेजी शिक्षा ने बहुत मदद दी।[2] अग्रेजी भाषा ने देश मे मध्यम वर्ग तथा वकीलो, डाक्टरो, व्यापारियो, उद्योगपतियो बैंकर्स आदि को भी प्रोत्साहित किया। इन लोगो के सहयोग से औद्योगिक विकास सरलता से पनपने लगा।

---

1 "We make our appearance in the long list of races who have ruled that splendid empire, not as the temple builders, like the Hindus nor as palace and tomb builders like Musalmans, nor as fort builders like the Marathas, nor as Church builders like Portuguese; but in the more common place capacity of town builders, as a nation that had the talent of selecting sites on which great commercial cities would grow up and who have in this created a new Industrial life for the Indian people"

—W W Hunter, the Indian Empire, Pages 659—60

2 "The best brains of India drank deeply at the well springs of British liberal thoughts They learnt from Edmund Burke and John Stuart Mill the meaning of liberty, they stared the sympathy of England with the struggles of Mazzini and Covour, they read of the French Revolution and the hated salt tax and they read, too, of the wrongs of Ireland There political consciousness was aroused and they soon began to apply their newly acquired ideas of the rights of individuals and of peoples to their own country."

—Percival Griffiths 'Modern India (1957), Page 46

(४) ईस्ट इंडिया कम्पनी के एकाधिकार का समापन—सन् १८३३ मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भारत से व्यापार करने का एकाधिकार समाप्त कर दिया गया एव प्रत्येक अंग्रेज व्यापारी को भारत से व्यापार करने का अवसर दिया गया। फल यह हुआ कि भारत मे विदेशी पूंजी व उपक्रम का आयात बडी तेजी से होने लगा। पहले बगीचा उद्योग प्रारम्भ हुआ और बाद मे विशाल एकाधिकृत उद्योग, जैसे जूट व रेल-उद्योग पनपन लगे। इस प्रकार देश मे बडे पैमाने के उद्योगो का विकास होने लगा।

(५) यातायात के साधनो मे वृद्धि—देश के अन्दर सडक व रेल यातायात का बडी तेजी से विकास हुआ। इसके अतिरिक्त स्वेज नहर के निर्माण मे यूरोपीय देश भी भारत के बहुत निकट आ गए। यातायात के साधनो मे वृद्धि से कच्चा माल बडी सुविधा से कारखानो को भेजा जाने लगा। इसी प्रकार निर्मित माल के वितरण मे भी बडी सुविधा हो गई। इससे भी औद्योगीकरण को बडा बढावा मिला।

(६) राजनैतिक घटनाएं—राजनैतिक क्षेत्र की कुछ हल-चलो ने भी औद्योगीकरण को प्रोत्साहित किया। उदाहरण के लिए अमेरिकन गृह उद्योग ने सूती वस्त्र मिल उद्योग एव क्रीमियन युद्ध ने जूट-उद्योग को बढावा दिया। भारत मे स्वदेशी आन्दोलन ने भी लोगो की आँखें खोल दी और इनका ध्यान औद्योगीकरण की ओर आकर्षित किया। इस सब घटनाओ से भी औद्योगीकरण को बहुत बल मिला।

धीमी औद्योगिक प्रगति के कारण—

यद्यपि उपर्युक्त घटको के परिणामस्वरूप भारत मे औद्योगीकरण की एक लहर आई एव अनेक उद्योगो की स्थापना भी हुई, परन्तु जो भी विकास हुआ वह पूर्णत. अनियोजित था। यही कारण है कि प्रथम महायुद्ध तक देश मे जो भी औद्योगिक प्रगति हुई, उसके परिणाम विशेष उत्साहवर्द्धक नही हुए। प्राकृतिक सम्पदा मे अत्यन्त धनी होते हुए भी भारत मे औद्योगीकरण की गति बहुत धीमी रही।[1] इस धीमी गति के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

---

1 With abundant supplies of raw materials, with a redundant population often starving because of lack of profitable employment; with a hoard of gold and silver second perhaps to none in the world, and with access through the British Government to a money market which was lending large quantities of capital to the entire world, with an opening for British business leaders who were developing both at home and abroad all sorts of capitalistic industries, with an excellent market within her own borders India after a century was supporting only about 2% of her population by Factory Industry

—D H Buchanan, The Devolopment of Capitalist Enterprise in India, Pages 450 51

धीमी प्रगति के कारण

१. औद्योगीकरण की योजना का अभाव।
२. ब्रिटेन की आर्थिक व औद्योगिक नीति से संघर्ष।
३. पूँजीकृत उद्योगो का अभाव।
४ औद्योगीकरण के लिए पूँजी की कमी।
५ स्वार्थ सहित विदेशी पूँजी व उपक्रम का आगमन।
६. कृषि की पिछडी दशा।
७ औद्योगिक प्रसाधनो के सम्बन्ध मे अज्ञानता।
८ श्रम की अकुशलता।
९. यातायात के विकास से प्रतिस्पर्धा।
१० राजकीय सहयोग का अभाव।

(१) औद्योगीकरण की योजना का अभाव—ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा इसके बाद ब्रिटिश शासकों ने भारत के नियोजित औद्योगिक विकास के लिए कभी भी कोई योजना नही बनाई। देश मे जो थोडा सा औद्योगिक विकास हुआ उसके मुख्य कारण औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम तथा भारत मे प्रारम्भ होने वाला स्वदेशी व राजनैतिक आन्दोलन थे। १९वी शताब्दी तक भारत सरकार की नीति उद्योग-धन्धो मे हस्तक्षेप न करने की रही। आधुनिक उद्योगो के प्रवर्तन व उनके विकास के लिए अथवा पुराने उद्योगो को आर्थिक सहायता देने के लिए कभी भी सक्रिय प्रयत्न नही किए गए। इसके विपरीत सयुक्त राष्ट्र, जर्मनी व जापान मे उद्योग धन्धो का तीव्र गति से विकास हुआ और हमारे ही कच्चे माल से निर्मित वस्तुएँ बनाकर भारत के बाजारो मे बेची गई। अतएव औद्योगीकरण की किसी निश्चित योजना के अभाव मे हमारे देश मे उद्योगो के विकास की गति बहुत धीमी रही।

(२) ब्रिटेन की आर्थिक व औद्योगिक नीति से सघर्ष—भारतीय हितो का सदैव ब्रिटेन की आर्थिक व औद्योगिक नीति से सघर्ष हुआ। जब कभी किसी आयोग अथवा समिति ने (जैसे दुर्भिक्ष आयोग १८८०) भारत मे औद्योगीकरण के विकास पर बल दिया, तो उसकी सिफारिशो को कभी भी कार्यान्वित नही किया गया। यही नही, लकाशायर व मैनचैस्टर के उद्योगपतियो व पूँजीपतियों के हितो की सुरक्षा के लिए भारतीय हितो की बलि चढाई गई।[1]

---

1 The Government's acton upto World War I was limited to "a very imperfect provision of technical and industrial education, and the collection and dissemination of commercial and industrial information All that was done, however, was due rather to a few farsighted individual officers than to any considered and general policy on the part of Government

—Report of Indian Industrial Commission, Page 68

(३) पूँजी उद्योगों का अभाव—प्रारम्भ से ही भारतवर्ष में औद्योगिक प्रगति पूर्णतः अनियोजित रही। यहाँ उपभोक्ता उद्योगों (Consumers Industries) की स्थापना की गई परन्तु पूँजीगत उद्योग, जैसे यन्त्र निर्माण करने वाले उद्योग, भारी रासायनिक उद्योग, जहाज निर्माण करने वाले उद्योग, इन्जीनियरिंग उद्योग, आदि की स्थापना की दिशा में नेक मात्र भी प्रयत्न नहीं किए गये। अभ्रक, मैंगनीज, लोहा आदि पदार्थों से इस्पात बनाकर हम अधिकांशतः इनका निर्यात करते रहे। फलतः हमारी औद्योगिक प्रगति धीमी रही।

(४) औद्योगीकरण के लिए पूँजी की कमी—भारत में यद्यपि प्राकृतिक प्रसाधनों की भारमार रही है परन्तु पूँजी की सदैव से कमी रही है। अधिकतर लोग जमीन में गाड़ कर अथवा गहनों अथवा आभूषणों के रूप में रुपयों को जोड़कर रखना अधिक अच्छा समझते हैं। औद्योगिक संस्थाओं के अंश अथवा ऋण पत्रों को क्रय करके औद्योगीकरण में योग देना वे हितकर नहीं समझते। जनसाधारण की इस सामान्य प्रवृत्ति के कारण भी औद्योगिक विकास की गति बहुत धीमी रही।

(५) स्वार्थ सहित विदेशी पूँजी व उपक्रम का आगमन—भारतवर्ष में अनेक उद्योग धन्धों की स्थापना की गई और विदेशी पूँजी व उपक्रम ने भी इसमें सराहनीय सहयोग दिया, परन्तु विदेशियों ने अपने स्वार्थ को सदैव प्राथमिकता दी। अधिकांशतः विदेशी पूँजी बगीचा उद्योग, रेल-उद्योग व जूट उद्योग में ही लगाई गई। ऐसे उद्योगों से विदेशी पूँजी दूर ही रही जिनसे विदेशी हितों पर प्रभाव पड़ता।[1]

(६) कृषि की पिछड़ी दशा—भारतीय उद्योगों की धीमी प्रगति का एक महत्त्वपूर्ण कारण कृषि की पिछड़ी दशा भी रहा है। यद्यपि कृषि का वाणिज्यीकरण हुआ, परन्तु उसके दोषों को दूर करने के लिए प्रयत्न नहीं किए गये। कृषि की अवनति के कारण भारतीय उद्योगों को बहुत हानि उठानी पड़ी।

(७) औद्योगिक प्रसाधनों के सम्बन्ध में अज्ञानता—अपने प्राकृतिक प्रसाधनों के सम्बन्ध में अज्ञानता के कारण हम तीव्रता से प्रगति न कर सके। औद्योगिक शक्ति का प्रमुख साधन 'कोयला' देश के एक सीमित क्षेत्र में ही पाया जाता है। उस समय जल विद्युत का लोगों को ज्ञान नहीं था। इस कारण भी हमारे विकास की गति बहुत धीमी रही।

(८) श्रम की अकुशलता—जन-शक्ति की दृष्टि से तो भारत सदैव से धनी रहा है, परन्तु कुशल श्रम शक्ति का अभाव एक बहुत बड़ी बाधा भी रही है। उद्योग

---

1 "Foreign capital flowed into plantations, railway's and monopolistic industries like jute, rather than into those industries which would compete with the imports from foreign countries."
—Vera Anstey, The Economic Development of India (1952), Pages 24-25.

की तान्त्रिक कला म निपुण श्रमिका की यहाँ बहुत कमी रही है। अशिक्षित, अज्ञानी एव रूढ़िवादी होने के कारण भी विवेकीकरण अथवा आधुनिकीकरण की योजनाए सफल न हो सकी। फलत विकास की गति धीमी रही।

(६) यातायात के विकास से प्रतिस्पर्धा—भारतवर्ष मे यातायात के साधना के विकास से एक स्थान से दूसर स्थान को वस्तुओं का लाना ले जाना सुलभ हो गया। इस सुविधा का लाभ विदशी निर्यातका ने उठाया। भारत की मण्डियो म विदेशी माल छा गया। देशी उद्योग धन्धे प्रतिस्पर्धा मे टिक न सके एव हमारे विकास की गति बहुत धीमी रही

(१०) राजकीय सहयोग का अभाव—अन्य देशो की सरकारा न अपने उद्योग धन्धो के विकास के लिए भरसक प्रयत्न किय। विदेशा म प्रशिक्षण क लिए विद्यार्थियो व कारीगरो का भजा उद्योगा का आर्थिक सहायता प्रदान की परन्तु भारत सरकार ने इस दिशा मे कुछ भी नही किया। परिणाम यह हुआ कि हमारी औद्योगिक प्रगति धीमी रही।

STANDARD QUESTIONS

1 Write an essay on the Evolution & Development of Modern Industries in India

2 Discuss the factors which have encouraged the growth of Indian Industries till World War I

3 Briefly discuss the factors that are responsible for the slow growth of Indian Industries in the past

अध्याय ६

प्रथम महायुद्ध से द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक भारतीय उद्योगों का विकास

(Development of Indian Industries from World War I till World War II)

प्रारम्भिक—

इस युग मे निम्नलिखित घटनाओ ने विशेष रूप से भारतीय उद्योग-धन्धो को प्रभावित किया:—(१) सन् १९१४-१८ का युद्ध युग, (२) सन् १९२०-२१ मे मन्दी का झोका (३) सन् १९२१-२७ तक विनिमय दरो मे उतार-चढाव, (४) सन् १९२९ ३३ तक विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी, (५) सन् १९३५ मे नए सविधान का प्रचलन, (६) सन १९३७ मे देश मे कांग्रेस मन्त्रिमण्डलो का बनना, इत्यादि। इस काल मे आर्थ सन् राष्ट्रीयवाद को भी काफी बढावा मिला। इसी अवधि मे सर थॉमस हॉले Thomas Halland) की अध्यक्षता मे भारतीय औद्योगिक आयोग (सन् से तो १८) सर इबराहीम रहीमतुल्ला (Sir Ibrahim Rahimtoola) की अचलन मे प्रशुल्क आयोग (सन् १९-१-२२), विदेशी पूँजी समिति (सन् १९२५), जब से शाही कमीशन (Whitely Commission on Labour 1929- लगा। केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति की स्थापना की गई।

गो (जैसे

प्रथम-विश्व युद्ध एव उसके बाद—

सन् १९१४ मे प्रथम विश्व युद्ध के आरम्भ होते ही भारत की औद्योगिक मिल प्रगति को बडा आघात पहुँचा, क्योकि सुरक्षा के लिए यातायात के साधनो का नियोजन होने से औद्योगिक यातायात की असुविधाएं तथा औद्योगिक आवश्यक माल के आयात मे अडचनें उपस्थित हो गई। अनेक उद्योगो के लिये, जैसे कोयला, मैंगनीज, वस्त्र-उद्योग आदि के निर्यात मे कठिनाइयाँ आ गयी। परन्तु यह आघात क्षणिक ही था। युद्ध सामग्री की बढती हुई आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए चारो ओर से मागें आई और यह आवश्यक समझा गया कि सभी वस्तुओं का निर्माण भारत मे ही किया जाय। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण बम्बई प्रान्त मे इस युद्धकाल में वस्त्र मिल-उद्योग की काफी उन्नति हुई। इसी प्रकार बगाल मे जूट तथा कोयला उद्योग मे वृद्धि

हुई, उडीसा एव मध्य-प्रदेश मे लोहे के उद्योग का विकास हुआ और मद्रास मे चमडा, जलयान निर्माण व साबुन उद्योग को बडा प्रोत्साहन मिला। देश तथा विदेशो मे भारतीय उद्योग निर्मित वस्तुओ की माँग म वृद्धि होने से उद्योगपतियो ने खूब लाभ कमाये।

सन् १६१६ मे युद्ध समाप्त होते ही व्यापारिक क्रियायें बढने लगी तथा बढती हुई माँग को पूरा करने के लिये उद्योगो ने अपने पुनर्संङ्गठन तथा विकास की योजनायें बनाई। अनेक नये उद्योग स्थापित किये गये तथा पुराने उद्योगो का विकास किया गया। युद्ध के पूर्व भारत मे २,६२१ कम्पनियाँ थी, जिनकी प्रदत्त पूँजी ७६ करोड रु० थी, परन्तु सन् १६१८-१६ मे यह सख्या बढकर २,७१३ हो गई, इनकी प्रदत्त पूँजी की राशि १०६ करोड रु० थी। यही सख्या सन् १६२१-२२ म ४७६१ हो गई तथा इनकी प्रदत्त पूँजी २२३ करोड रु० थी। बम्बई की वस्त्र मिल कम्पनियो न सन् १६१८-२१ के चार वर्षो म क्रमशः २३ ७, ४० १, ३५ २ तथा ३०'८ प्रतिशत लाभाश वितरित किया। ऐसी ही स्थिति अन्य उद्योगो की भी रही। प्रथम विश्व युद्ध के प्रारम्भ से ही लाग इस बात का अनुभव करने लगे कि आवश्यक पदार्थो के लिए विदेशो पर निर्भर रहना घातक होगा।[1]

प्रथम महासमर की अवधि मे जूट उद्योग ने दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति ोकि सैनिक व व्यापार आदि की आवश्यकताओ की पूर्ति क हेतु थैलो, बोरो ो माँग बहुत बढ गई थी। सन् १६१३-१४ मे केवल ६४ जूट की मिलें थी,
1 १ ३६,०५० लूम्स व ७ ४४,२८६ स्पिन्डिल्स लगे हुए थे। परन्तु सन् १६१८-१६ मिलो की सख्या ७६ हो गई एव लूम्स व स्पिन्डिल्स की सख्या क्रमश
2 ० व ८,२३,७०० हो गई। सन् १६१४ मे टाटा के लौह व स्पात के कारखानो ा भी अत्यन्त शोचनीय थी, परन्तु युद्ध-काल म इसे सरकार की ओर से भारी
3 प्राप्त हुए। अतएव इस उद्योग ने भी भारी लाभ कमाये। रासायनिक उद्योग इस काल म सराहनीय प्रगति की। विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थो, जैसे—कास्टिक सोडा, मैग्नेशियम क्लोराइड, सन्दल का तल, जिंक क्लोराइड आदि का निर्माण किया गया। चमडा कमाने व बनाने के उद्योग ने भी पर्याप्त उन्नति की। सन् १६१३ मे १७५ करोड रु० के मूल्य का कमाया हुआ चमडा निर्यात किया

1. "The outbreak of war brought home the realisation that it is dangerous to keep a country dependent for essential manufactures on other countries, particularly when its own self sufficient economic system had been undermined by a policy which was unfavourable to its industrial development"

—I L O : 'Recent Developments in certain Aspects of Indian Economy, Vol III, Page 9.

गया था, जबकि सन् १९१७-१८ मे यह सख्या ४'८६ करोड रु० हो गई। युद्धकाल मे सूती वस्त्र मिल उद्योग ने सबसे अधिक उन्नति की, क्योकि समस्त पूर्वी-एशियाई देशो की माँग की पूर्ति का भार भारतीय मिलो पर आ पडा। सूत का उत्पादन व निर्यात तो कुछ कम हुआ, परन्तु कपडे का उत्पादन २० प्रतिशत बढ गया। अन्य उद्योग, जिन्होने युद्धकालीन परिस्थितियो का लाभ उठाकर प्रगति की, निम्न थे—खनिज तेला का निर्माण, सीमेट, ग्लास, साबुन, तेजाब, पैन्ट व वार्निश, रासायनिक खाद, इ जीनियरी का सामान इत्यादि।

युद्धोपरान्त काल मे उद्योग—

समय परिवतनशील है। यद्यपि सन् १९१४ से १९१८ के युद्ध युग मे हमारे उद्योग धन्धो ने खूब प्रगति की व लाभ कमाया, परन्तु दुर्भाग्य से यह स्थिति दीर्घकाल तक न रह सकी। सन् १९२० म मन्दी के झोके से पाँसा पलट गया। गिरती हुई क्रय-शक्ति के कारण वस्तुओ की माग बहुत थोडी रह गई और उद्योग-पतियो को दिवाल निकालने पड। सन् १९२१ से १९२७ तक विनिमय दरो मे होने वाले उतार-चढावा ने भी उद्योगपतियो को हतोत्साहित किया। सन् १९२४ से सन् १९२९ तक प्राय सभी वस्तुओ के दाम अत्यन्त सस्ते रह और सन् १९२९ से तो आर्थिक मदी ने एक विश्वव्यापी रूप धारण कर लिया। भारत सरकार की मुद्रा चलन की नीति ने इस देश मे आर्थिक मदी के काल को और भी बढा दिया।[1] हाँ जब से उद्योगो को सरक्षण प्रदान किया गया तब से उनकी दशा मे थोडा सुधार होने लगा। सरक्षण की नीति के अन्तर्गत कोयला उद्योग को छोडकर प्राय. सभी उद्योगो (जैसे लोहा व इस्पात उद्योग, कागज उद्योग, सीमेट उद्योग, चीनी उद्योग, सूती वस्त्र मिल उद्योग, आदि) ने सतोषजनक प्रगति की। विवेचनात्मक सरक्षण की नीति से विभिन्न उद्योगो को जो लाभ हुए, *उनका अनुमान निम्नलिखित तालिका से भली प्रकार लगाया* जा सकता है—

---

1 "The pegging of exchange by Government at a parity even higher than pre war may be taken as one of the contributing factors to the prolonged period of general post war depression "

—Gadgil "Industrial Evolution of India" Page 245

विभिन्न उद्योगों की प्रगति
(१९२२-२३—१९३९-४०)

वर्ष	स्टील (इनगाइटस)	काटन (पीस गुड्स)	शक्कर (गन्ना)	दियासलाई	कागज
	१००० टन	मिलियन गज	१००० टन	ग्रास (लाख)	१००० टन
१९२२-२३	१३१	१७२५	२४	८	२४
१९३९-४०	१,०७०	४,०१३	१,२४२	२२०	७०

मंदी के युग मे इन रक्षित उद्योगो ने अरक्षित उद्योगो की अपेक्षा मंदी का अधिक सुन्दरता से सामना किया और डटे रहे। अन्य उद्योग मंदी का सामना न कर सके और समाप्त हो गये। जिन उद्योगो को सरक्षण मिला उनमे सम्बन्धित अनेक सहायक उद्योग भी उन्नति कर गये। इसमे अन्य लोगो को काम मिला तथा बेकारी की समस्या हल हुई।

सन् १९३७ मे देश मे कांग्रेस मत्रिमडल बन जाने से हमारे लोकप्रिय मत्रियो ने औद्योगिक विकास की ओर अपना ध्यान दिया। उन्होने औद्योगिक भविष्य को उज्जवल बनाने के लिय एक 'उद्योग मत्री सम्मलन' बुलाया, जिसके प्रस्तावो के अनुसार राष्ट्रीय योजना समिति (National Planning Committee) का निर्माण हुआ। इस समिति ने विभिन्न विषयो पर छान-बीन करने के बाद अपनी रिपोर्ट पेश की, जिनसे हमारे वर्तमान योजना आयोग के निर्माताओ को भी अनमोल सामग्री मिली है। सक्षेप म हम यह कह सकते है कि यद्यपि प्रथम विश्व युद्ध के बाद भारत मे गुणात्मक दृष्टि से औद्योगिक विकास बहुत कम हुआ, किन्तु सख्यात्मक दृष्टि से भारत का औद्योगिक विकास सतोषजनक रहा। यदि हम सन् १९२२ से १९३९ तक के १७ वर्षो के औद्योगिक विकास की गति का अवलोकन करे, तो पता लगेगा कि इस्पात का उत्पादन १'२ लाख टन से १०'४२ लाख टन (८०० प्रतिशत) हो गया, सूती वस्त्रो का उत्पादन १,७१४ मिलियन गज से ४,०१६ मिलियन गज (२५० प्रतिशत) हो गया, दियासलाइयो का उत्पादन १६ मिलियन ग्रॉस मे बढ कर २२ मिलियन ग्रॉस हो गया, अर्थात् ३८% की वृद्धि हुई, कागज का उत्पादन २४,००० टन से बढ कर ६७,००० टन (१८०%) हो गया, गन्ने का उत्पादन २४,००० टन से ९,३१ ००० टन हो गया इत्यादि। कारखानो की सख्या, जोकि सन् १९१४ मे २,९३६ थी, सन् १९३९ मे ११,६१३ हो गई एव श्रमिको की सख्या ९,५०,००० से बढ कर १७,५०,००० हो गई।

इस युग के औद्योगिक विकास की प्रमुख विशेषतायें—

प्रथम महायुद्ध से द्वितीय महायुद्ध तक की अवधि के औद्योगिक विकास की कुछ उल्लेखनीय विशेषतायें निम्नलिखित है—

(१) **सरकार की औद्योगिक नीति मे परिवर्तन**—प्रथम महायुद्ध के पूर्व भारत सरकार की आर्थिक नीति उद्योगो के प्रति बडी उपेक्षापूर्ण थी। उद्योगो के नियोजित विकास के लिये यदि किंचित प्रयत्न किये भी गये तो वे निजी उद्योगपतियो द्वारा ही किये गये, भारत सरकार ने उनको प्रोत्साहित नही किया।[1] देश मे जन समाज की धारणा सरकार के प्रति बहुत खराब हो रही थी। उद्योगो की आर्थिक सहायता के लिये चारो ओर से माँग हो रही थी। इन परिस्थितियो से विवश होकर भारत सरकार ने सन् १९१६ मे औद्योगिक आयोग (Industrial Commission) की नियुक्ति की। युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओ की सतुष्टि के हेतु कमाण्डर-इन-चीफ की सिफारिशो पर सन् १९१७ मे एक म्यूनिशनस् बोर्ड (Munitions Board) की नियुक्ति की गई। इस बोर्ड ने अनक प्राचीन उद्योगो के विकास के लिये सहायता दी। इसके द्वारा प्रदान की गई सहायता के विभिन्न रूप ये थे—(१) भारत मे ही कच्चे माल आदि की खरीद करना, (२) यू० के० आदि की आवश्यकताओ की सतुष्टि भारतीय उद्योगो द्वारा करना (३) बाहर से तात्रिक सहायना व यन्त्रो के आयात के लिये आर्थिक सहायता देना, (४) जो व्यक्ति नवीन उद्योगो की स्थापना करना चाहते ह, उनको आवश्यक सलाह व सूचना प्रदान करना। गहन अध्ययन के उपरान्त बोर्ड ने इस बात का पता लगाया कि अभी तक भारत जिन चीजो का विदशा से आयात करता रहा है, उनका निर्माण स्वय भारत मे किया जा सकता है।

(२) **औद्योगिक आयोग की रिपोर्ट**—गहन जाँच के उपरान्त औद्योगिक आयोग १९१६ ने सन् १९१८ मे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट मे इस बात पर बल दिया गया कि यद्यपि भारत औद्योगिक प्रसाधनो की दृष्टि से बहुत धनी है, परन्तु वह अपने आधुनिक उद्योगा की नियोजित प्रगति करने मे असमर्थ रहा है, अतएव भारत सरकार को देश की भावी औद्योगिक प्रगति के लिये रचनात्मक कदम उठाने चाहिये। इस आयोग की प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार थी—(१) उद्योग के इम्पीरियल व प्रान्तीय (Imperial and Provincial) विभागो की स्थापना की जाय, (२) वैज्ञानिक व तात्रिक सेवाओ का सगठन किया जाय, (३) औद्योगिक व तात्रिक

---

1 "No such policy had existed hitherto, such efforts as had been made generally owed their inspiration to the enthusiasm of individuals rather than to any consistent purpose on the part of Government"

—A G Clow, "The State and Industry," Page 9

शिक्षा की सुविधायें बढाई जाएँ; (४) राजकीय स्टोर क्रय नीति मे परिवर्तन किया जाय। आयोग ने उद्योगो को आर्थिक सहायता देने तथा कुछ प्रदर्शन कारखानो के खोलने की भी सिफारिश की। आयोग की सिफारिशो को केन्द्र व प्रान्त की सरकारो ने सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया। सन् १६२१ मे उद्योगो के इम्पीरियल विभाग (Imperial Department of Industries) की स्थापना की गई। मोन्टेग्यु-चैम्सफोर्ड रिपोर्ट (Montague Chemsford Report) के बाद, कुछ आर्थिक कठिनाइयो के कारण प्रान्तीय सरकारों द्वारा आयोग की सिफारिशो को कार्यान्वित करना कठिन हो गया। सन् १६-१ मे उद्योगो तथा खनिज व्यवसाय मे १२.६२ लाख श्रमिक लगे हुए थ। ६ लाख से अधिक श्रमिक केवल ४ उद्योगो (वस्त्र मिल-उद्योग, जूट उद्योग, कोयला उद्योग व रेल उद्याग) म लगे हुए थ। जहाज निर्माण, भारी रासायनिक उद्योग, ऑटोमुबाइलस् जैसे—इंजीनियरिंग उद्योग का देश मे पूर्णत. अभाव था।

(३) प्राशुल्किक स्वतन्त्रता व विवेचनात्मक सरक्षण—सन् १६१४-१८ के प्रथम महायुद्ध मे सरकार को अपनी आयात-निर्यात पर अधिक नियन्त्रण करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। दूसरे, इन दिनो स्वदेशी आन्दोलन भी जोर पकड रहा था, जिसमे ब्रिटिश नीति की कडी आलोचना हो रही थी। इसके अतिरिक्त युद्धकाल म औद्योगिक दृष्टि से भारत पिछडा होने के कारण, जा अनुभव शासको को हुए, उनसे विवश हो करके, यह आवश्यक समझा गया कि औद्योगिक नीति म कुछ परिवर्तन किया जाय। अतः युद्ध स्थिति से घबराकर ब्रिटिश सरकार ने कुछ भारतीय उद्योगा को प्रोत्साहन देने का निश्चय किया। सन् १६१६ के औद्योगिक आयोग ने भी यह सिफारिश की कि औद्योगिक उत्तरदायित्व लेने के लिए सरकार अपने पास वैज्ञानिक एव तान्त्रिक विशेषज्ञो की पर्याप्त नियुक्ति करे, जा उद्योगो को परामर्श दे सके। परन्तु दुर्भाग्य से आयोग की सिफारिशो को ताक मे रख दिया गया।[1]

अगस्त १६१७ म मोन्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधारो की घोषणा हुई, जिसके अनुसार भारतीयो को स्वय निर्णय का अधिकार (Right of self-determination) मिला। भारत की आर्थिक स्वतन्त्रता की दिशा मे यह पहला कदम था। इस स्वय निर्णय के अधिकार के सम्बन्ध मे जोइन्ट सिलेक्ट कमेटी का यह मत था कि, "भारत एव इङ्गलेंड की सरकार के सम्बन्धो को अन्य किसी बात से इतना खतरा नही है, जितना इस विश्वास से कि भारत की प्रशुल्क नीति का सचालन ग्रेट ब्रिटेन के व्यापारिक हितो के लिये व्हाइट हॉल से होता है और आज भी यही विश्वास है, इसमे सन्देह नही। इस समस्या का समुचित हल तभी सम्भव है, जब भारत सरकार को ब्रिटिश साम्राज्य का अविच्छिन्न भाग होने के नाते भारत की आवश्यकता के अनुसार

1 "Industrialisation" by P S Loknathan, Page 6.

प्रशुल्क व्यवस्था करने की स्वतन्त्रता दी जाय, जिसका विश्वास एक प्रतिज्ञा प्राप्ति (Acknowledgement of Convention) से दिया जा सकता है।"[1] इन प्रयत्नो के परिणामस्वरूप सन् १६२१ मे ब्रिटिश पार्लियामेंट ने प्राशुल्किक स्वतन्त्रता का प्रस्ताव (Fiscal Autonomy Convention) पास किया। इस प्रस्ताव के अनुसार भारत मन्त्री को प्रशुल्क सम्बन्धी उन मामला मे हस्तक्षेप करने का अधिकार नही रहा, जिनको कि भारत सरकार ने स्वय अपनी विधान सभा की सम्मति से तय कर लिया हो। किन्तु ऐसी स्वतन्त्रता से कोई विशेष लाभ नही हुआ, क्योकि प्राय. सभी प्राशुल्किक विषयो पर भारत सरकार पहले भारत मन्त्री मे पूछ लेती थी और तत्पश्चात् ही विधान सभा के सम्मुख रखती थी। अतः भारत की प्रशुल्क सम्बन्धी नीति की पूर्ण जाँच तथा साम्राज्य प्राथमिकता के प्रस्ताव पर विचार करके सिफारिश करने के लिए एक प्रशुल्क मण्डल (Fiscal or Tariff Commission) नियुक्त किया गया। इसने विभेदात्मक सरक्षण (Discriminating Protection) के पक्ष मे सुझाव दिया। सरक्षण की इस नीति से हमारे उद्योगो को विशेष लाभ नही हुआ, क्योकि इसके द्वारा प्रदान किए हुए "त्रिमुखी सिद्धान्त" की नई शर्ते अत्यन्त कठोर थी।

(४) स्टोर-क्रय नीति मे परिवर्तन—सन् १६२० की स्टोर-क्रय नीति समिति (Stores Purchase Committee, 1920) की सिफारिशो के आधार पर भारत सरकार ने अपनी क्रय-नीति मे भी परिवर्तन किया। भारत सरकार ने देशी उद्योगो द्वारा निर्मित पदार्थो के क्रय मे प्राथमिकता देना शुरू किया। सन् १६२४ से यह अनिवार्य हो गया कि सरकार विदेशो से जो माल खरीदेगी उस पर 'कर' देना पडेगा, इससे देशी उद्योगो को प्रोत्साहन मिला।

(५) मन्दी होते हुए भी प्रगति—सन् १६२६ से मन्दी का झोका होते हुए भी सन् १६२८ से सन् १६३५ की अवधि मे भारतीय उद्योगो ने सराहनीय प्रगति की। उदाहरण के लिए, सूती वस्त्रो के उत्पादन मे ४१% की वृद्धि हुई, जबकि जापान मे यह प्रतिशत केवल ३४ थी एव अन्य देशो मे तो बडी दयनीय दशा थी। इसी प्रकार हमारा स्पात का उत्पादन भी ७५% बढ गया, जबकि जापान मे केवल ५५% की वृद्धि हुई तथा सयुक्त राष्ट्र अमेरिका, फ्रास व ग्रेट ब्रिटेन मे क्रमश: ५४%, ३०% व २०% की घटोत्तरी हो गई। इसी प्रकार सीमेट का उत्पादन भी सन् १६२४ मे २,६३,७४६ टन की अपेक्षा, सन् १६३३ मे ६,२५,८६० टन हो गया।[2] भारतीय उद्योगो की प्रगति, वास्तव मे, सरक्षण के कारण हो सकी।

1. "Tariff and Industry" by John Matthai
2. G E Hubbard, 'Eastern Industrialisation and its Effects on the West,' Page 305.

(६) राजनैतिक आन्दोलन—देश तथा विदेश के राजनैतिक आन्दोलनो ने भी औद्योगीकरण को प्रोत्साहित किया। २०वी शताब्दी के प्रारम्भ मे शुरू होने वाले 'स्वदेशी आन्दोलन' ने घरेलू उद्योग-धन्धो को प्रोत्साहित किया। जिन लोगो मे राष्ट्रीयता की थोडी भी भावना थी, उन्होने भारतीय पूँजी व प्रबन्ध द्वारा उद्योगो के विकास पर बल दिया। असहयोग-आन्दोलन से राष्ट्रीयकरण को और भी प्रेरणा मिली।[1]

(७) लीग ऑफ नेशन्स व अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ की सदस्यता—इससे भी भारतीय उद्योगो को बढावा मिला। जब हमारे प्रतिनिधि लीग ऑफ नेशन्स व अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ के सम्मेलनो आदि मे भाग लेने के लिए गए, तो वे अनेक उन्नतिशील देशो के लोगो के सम्पर्क मे आए। इन सस्थाओ के वैज्ञानिक अध्ययन व प्रस्तावो से भी भारतीय उद्योग लाभान्वित हुए। श्रम सन्नियम का विकास हुआ तथा श्रमिको के काम की दशाओ मे भारी सुधार हुआ। सन् १९३१ मे श्रम के शाही कमीशन (Royal Commission on Labour) ने श्रमिको के काम के घन्टो मे कमी करने, मौसमी कारखानो मे भी कारखाना अधिनियम लागू करने, निरीक्षण मे सुधार, सुरक्षा आदि बातो के सम्बन्ध मे सिफारिशे की, जिनके पालन करने ने भारतीय उद्योगो का काफी विकास हुआ।

औद्योगिक विकास मे दुर्बलतायें—

यद्यपि प्रथम महायुद्ध से द्वितीय महायुद्ध के पूर्व तक भारतीय उद्योगो ने काफी उन्नति की, परन्तु हमारे विकास मे अनेक दुर्बलतायें रह गई। एक उल्लेखनीय दुर्बलता तो यह थी कि लौह व स्पात उद्योग को छोडकर पूँजीकृत वस्तुओ (Capital goods) के निर्माण के हेतु एक भी उद्योग नही खोला गया। जितने भी उद्योग खोले गए, वे उपभोक्ता पदार्थो (Consumers' goods) अथवा कृषि पदार्थो के प्रोसेसिंग से ही सम्बन्ध रखते थे, जैसे, वस्त्र मिल उद्योग, आटे की चक्कियाँ, तेल-पेरने के कारखाने, खनिज उद्योग, जिनिंग व प्रेसिंग मिल आदि। इन उद्योगो मे काम आने वाली मशीनरी व रसायनिक पदार्थो का भी विदेशो से आयात किया जाता था। परिणामत वस्तुओ का उत्पादन-व्यय अधिक होता था एव युद्ध-काल मे मशीनरी के आयात मे घोर कठिनाइयो का सामना करना पडा। यह सचमुच बडे आश्चर्य का विषय है कि सन् १९१४-१८ के महासमर ने भी उद्योगपतियो व सरकार की, औद्योगिक दुर्बलताओ के प्रति आँखे नही खोली। फलतः हमारे औद्योगिक कलेवर मे अनेक

1 "The Non-cooperation Movement quickened the Indian consciousness to the need for greater control of economic life of the country by the nationals themselves All this helped indirectly in the growth of Indian Industry."

खाइयाँ रह गई । हमारे औद्योगिक विकास की कुछ मूलभूत दुर्बलतायें निम्नलिखित थी—

(१) औद्योगिक विकास की परम्परागत पद्धति—भारतीय उद्योगपतियो ने दुनियाँ के साथ कदम-ब-कदम मिलाकर चलना नही सीखा । वे अपनी प्राचीन उत्पादन प्रणालियो का ही अनुकरण करते रहे । नये यन्त्रो व आविष्कारो का प्रयोग बहुत बाद मे किया गया। वे अधिकाशत व्यापारी ही रहे, निर्माता नही ।

(२) प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली—हमारे औद्योगिक कलेवर का दूसरा उल्लेखनीय दोष—प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति है । इसने औद्योगिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहित किया । हमारे सभी बडे-बडे उद्योग मुट्ठी-भर लोगो के हाथो मे आ गए । अनेक लोगो (विशेषत. अशधारियो ने) ने इस प्रणाली का घोर विरोध किया, जिसके परिणामस्वरूप सन् १९३६ मे भारतीय कम्पनी अधिनियम मे अनेक प्रतिबन्धात्मक नियम जोड दिए गए । योग्य विशेषज्ञो के अभाव व अकुशल औद्योगिक सगठन के कारण हमारा विकास अनियोजित रहा ।[1]

(३) विभेदात्मक सरक्षण की कठिन शर्तें—यद्यपि सरक्षण की विभेदात्मक नीति से कुछ उद्योगो को विशेष लाभ हुआ, तथापि उसे व्यापार व उद्योगो के हित मे नही कह सकते, क्योकि सरक्षण की शर्तें बहुत कडी थी । उदाहरणार्थ यह विचार बडा हास्यप्रद है कि जब उद्योग को प्राकृतिक सुविधायें प्राप्त हो, तब ही उसे सरक्षण दिया जाय । यदि प्राकृतिक सुविधायें उद्योग को सुलभ हो, तो फिर उसे सरक्षण की आवश्यकता ही क्यो होने लगी ? दूसरे किसी उद्योग को आन्तरिक बाजार न होने की दशा मे सरक्षण से वचित रखना भी अन्याय था, क्योकि वास्तव मे ऐसे ही उद्योग सरक्षण के प्रथम अधिकारी थ । वे उसके बल पर उन्नति करके बाजार बना सकते थे । सक्षेप मे, उद्योगो का महत्व देश के हित की दृष्टि से कभी भी नही आँका गया, जैसा कि मैग्नेशियम क्लोराइड उद्योग अथवा रासायनिक उद्योग के सम्बन्ध मे अपनाई गई अविवेकपूर्ण नीति से स्पष्ट है । मैग्नेशियम क्लोराइड उद्योग की जाँच सन् १९२४ मे की गई, किन्तु उसे इस आधार पर सरक्षण नही दिया गया कि वह अन्ततः सरक्षण के अभाव मे नही टिक सकता । इसके विपरीत जब सन् १९२८ मे इस उद्योग ने सरक्षण की पुन माँग की, तो प्रशुल्क बोर्ड ने यह मत दिया कि उद्योग को सरक्षण की आवश्यकता ही नही है । किसी भी देश मे उद्योग को सरक्षण प्रदान करने मे इस प्रकार की शर्त नही लगी है । यथार्थ मे सन् १९४९ के प्रशुल्क आयोग को यह कहना

---

1 "The Managing Agency System tended at its worst to perpetuate what are, perhaps, the two chief factors preventing the more rapid industrial development in India i e, the deficiency of men capable of industrial leadership and inefficient industrial organisation"

पड़ा है कि सन् १६२२ के प्रशुल्क आयोग ने "रक्षण को आर्थिक विकास के एक सामान्य साधन के रूप मे नही देखा था, परन्तु उसे केवल एक ऐसा सहारा समझा जिसके द्वारा कुछ उद्योगो को, जब वे रक्षण के लिए प्रार्थना करें, विदेशी प्रतियोगिता सहन करने की शक्ति दी जा सके। परिणाम एक दिशायी विकास है। आधारभूत (Key or Basic) व सुरक्षा (Defence) उद्योगो के लिए विकसित होना सम्भव न हो सका। यह भी सम्भव है कि कुछ थोड़े से उद्योगो को उसी समय यह प्रयत्न किए बिना कि उनसे मिलते-जुलते और उनके सहायक उद्योगो को भी सुविधा प्रदान की जाय, संरक्षण दे देने से समाज का सामूहिक भार बढ गया।"[1]

(४) विदेशी पूँजी व उपक्रम का प्रभुत्व—संरक्षण की नीति व सस्ते श्रम का लाभ उठाने के लिए भारत की ओर विदेशी पूँजी व उपक्रम आकर्षित हुए, परन्तु उनसे राष्ट्रीय हितों की रक्षा नहीं हुई। लाभ का अधिकांश भाग विदेशों को चला जाता था। *प्रबन्ध सम्बन्धी योग्यता व तान्त्रिक ज्ञान की सुविधा भारतीय श्रमिको को नही दी गई।* भारतीयो ने अत्यन्त निम्न मजदूरी पर अपने श्रम की *'बलि' दी,* इसके विपरीत ऊँचे वेतन वाले सभी स्थान योरोपियो को दिए गए। सारांश मे, विदेशी पूँजी व उपक्रम ने भारतीय श्रम व प्राकृतिक सम्पदा का खूब शोषण किया।

(५) दूषित पूँजी के कलेवर—औद्योगिक संस्थाओ के पूँजी के कलेवर भी *दूषित थे।* अति पूँजीकरण (Over capitalization) व निम्न पूँजीकरण (Under capitalization) के दोषों के कारण मन्दी के काल मे अनेक संस्थाओ का समापन हो गया। केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति (Central Banking Enquiry Committee) ने सन् १६३१ मे अपनी रिपोर्ट मे इस बात का संकेत किया कि *औद्योगिक संस्थायें वित्तीय योजनाकरण व दूरदर्शिता के अभाव मे ग्रसित है।* अतएव समिति ने विशिष्ट अर्थ संस्थाओ की स्थापना पर बल दिया।

(६) तान्त्रिक प्रशिक्षण का अभाव—यद्यपि इस अवधि मे केन्द्र व प्रान्तीय सरकारो द्वारा कुछ तान्त्रिक संस्थायें खोली गई, परन्तु भारत की औद्योगीकरण की आवश्यकताओ की 'सन्तुष्टि' के लिए उनकी संख्या सागर मे एक बूँद के समान थी। *औद्योगिक अनुसन्धान का भी घोर अभाव था।*

(७) उद्योगो का आकार व स्थानीयकरण—*औद्योगिक संगठन के सिद्धान्तो की* जानकारी के अभाव के कारण, अनेक औद्योगिक संस्थाओ का आकार अनार्थिक था। स्थानीयकरण भी अत्यन्त दूषित था। बंगाल व बम्बई मे क्रमशः हमारे ३८.१% व २८.७% उद्योग केन्द्रित थे। उद्योगो के प्रादेशिक वितरण के हेतु कभी भी रचनात्मक *प्रयत्न नही किए गए।*

---

1. B. P. Adarkar—'Indian Fiscal Policy.'

(८) **राजनैतिक व सामाजिक दोष**—विदेशी सरकार के शासन व सामाजिक वातावरण ने भी हमारी औद्योगिक प्रगति पर प्रतिबन्ध लगा दिए। श्रमिकों का निम्न जीवन-स्तर, उनकी अक्षमता, अशिक्षा, अज्ञानता व रूढ़ि-वादिता, आदि दोषों के कारण भी औद्योगिक विकास की गति धीमी रही।

STANDARD QUESTIONS

1. Briefly trace the development of Indian Industries during World-War I
2. Discuss the effects of the world wide depression in 1929-30 on Indian Industries How far could the tariff protection save our industries ?
3. *Discuss carefully the salient features of India s industrial development* during the period 1914—1939
4. Point out the principal gaps in the Indian Industrial structure of the country during the period 1914— 1939

———

अध्याय ७

द्वितीय महायुद्ध के युग में भारतीय उद्योगों का विकास

(Development of Indian Industries during World-War II Period)

(१६३६-४५)

प्रारम्भिक—

सन् १६३६-४५ का काल उद्योगो का 'स्वर्ण-काल' माना जाता है। सन् १६३६ मे द्वितीय महासमर प्रारम्भ होते ही, योरोपीय आयात कम हो गए, जिससे हमारे उद्योगो को प्रतियोगिता का डर नही रहा। भारतीय अर्थ व्यवस्था, जो मन्दी के कारण धुँधली पड गई थी, पुन चमकने लगी। युद्ध के आरम्भ होते ही, भारत सरकार, ब्रिटेन की सरकार (His Majesty's Government) तथा मित्र राष्ट्रो (Allied Countries) की ओर से औद्योगिक पदार्थों के लिए भारी मात्रा मे आदेश (Orders) आने लगे। अत बढती हुई युद्ध सामग्रियो की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए भारतीय उद्योगो का काफी विकास हुआ। द्वितीय महासमर ने, वास्तव मे, इस बात की द्वितीय चेतावनी (प्रथम महासमर' प्रथम 'चेतावनी' था) दी कि अपनी जन व प्राकृतिक सम्पदा के आधार पर भारत एक महान् औद्योगिक राष्ट्र बन सकता है। सर रामास्वामी मुदालियर (Sir A. Ramaswami Mudaliar) ने भारत सरकार की ओर से लोगो को यह आश्वासन दिया कि जो उद्योग-पति युद्धकालीन आवश्यकताओ की पूर्ति मे सहयोग देंगे, उसे सरकार अकेला नही छोडेगी।[1] युद्ध सम्बन्धी सामग्री के निर्माण के हेतु भारत कहाँ तक सहयोग दे सकता है एव इसकी क्या क्षमता है, इस बात का अध्ययन करने के लिये हमारे देश मे रॉजर व ग्रेडी मिशन्स (Roger and Grady Missions) आये। पूर्वी देशो मे युद्ध सम्बन्धी सामग्री के उत्पादन के समन्वय मे व उसकी वृद्धि के लिये ईस्टर्न ग्रूप सप्लाई

---

1 "In case we, in any form, encourage the development of Industries, for our war needs those entrepreneurs who had come to the assistance of the State, would not be left high and dry to take care of themselves."

—Sir A. Ramaswami Mudaliar.

काउन्सिल (Eastern Group Supply Council) की स्थापना की गई। भारतीय पूर्ति विभाग (Indian Supply Department) ने निर्माण सम्बन्धी बडे-बडे पदार्थों व वस्त्रो से लेकर सिगरेट, साबुन, तेल आदि छोटे-छोटे पदार्थों को भी भारतीय उद्योगो से खरीदना शुरू कर दिया। सन् १९४३ तक लगभग साढे पाँच सौ करोड रुपये का माल खरीदा गया।

भारतीय उद्योगो पर द्वितीय महायुद्ध का प्रभाव—

युद्धकाल मे भारत के कपडा, चीनी, सीमेंट, लोहा एव इस्पात, कागज तथा दियासलाई उद्योग सभी पूर्णत: आत्म-निर्भर हो गये थे। सन् १९४४ उत्पादन की दृष्टि से चोटी का वर्ष माना जाता है, जबकि ४,८४० मिलियन गज कपडा, १'२७ मिलियन टन चीनी, १ ३७ मिलियन टन लौह पदार्थ, १'२६ मिलियन टन जूट, १'२७ मिलियन हुडरवेट कागज, २६ ५ मिलियन टन कोयला तथा २'४२ मिलियन टन सीमेंट का उत्पादन हुआ। इस युग मे अनेक नये-नये कारखाने व कम्पनियाँ खोली गई तथा पुरानी औद्योगिक सस्थाओ का विस्तार किया गया। अतिरिक्त प्लान्ट लगाकर तथा उन्नत यत्रो की सहायता से उत्पादन बढाने का प्रयत्न किया गया। अनेक उद्योगो ने अतिरिक्त पालियाँ चला कर बढती आवश्यकताओ को पूरा करने की कोशिश की। अपनी उत्पादन-क्षमता को बढाने के लिये, कुछ सस्थाओ ने तात्रिक एव सगठन सम्बन्धी सुधार किये। अनेक आधारभूत व सुरक्षा उद्योगो की भी स्थापना की गई। लघु उद्योगो के विकास व विस्तार से पूर्ति के नये साधन पैदा हो गये। देश मे विभिन्न प्रकार की वस्तुओ, जैसे—कटलरी का सामान, हैन्ड टूल्स, टेप्स, ड्रेन्स आदि का निर्माण होने लगा।[1] कुछ नवीन उद्योग, जिन्होने द्वितीय महायुद्ध की अवधि मे ही उत्पादन प्रारम्भ किया, निम्न थे—(अ) फैरो सिलीकोन व फैरो मेगनीज उद्योग, (ब) नोनफेरस मैटिल्स व मैटल फैब्रिकेटिंग उद्योग, जैसे—ताँबा, ताँबे की चादर, तार आदि सम्बन्धी उद्योग, (स) यंत्र सम्बन्धी उद्योग, जैसे—डीजल इंजन पप, बाइसिकिल, सिलाई की मशीनें, मशीनो के औजार, इत्यादि, (द) वस्त्र, चाय व तेल के प्रोसेसिग (Processing) से सम्बन्धित मशीनरी का निर्माण करने वाले उद्योग, (य) रासायनिक पदार्थ, जैसे—कास्टिक सोडा, क्लोरीन, सुपर फॉस्फेट आदि। हाँ, बडी मात्रा पर पूँजीकृत उद्योगो की

---

1 "Industry which were already in existence worked to full capacity and often in more shifts than one New plants were added in some cases and a few basic industries were established A rapid expansion of small scale industries all over the country created new sources of supply; a variety of goods like cutlery, skewers, hand tools, tapes, drains and camouflagenets and many other consumer and intermediary goods were manufactured."

—Report of the Fiscal Commission (1949 50), Page 20.

स्थापना देश मे न हो सकी। भारत के प्रमुख बडे पैमाने के उद्योगो की युद्ध-कालीन औद्योगिक प्रवृत्ति का अनुमान निम्नलिखित आंकडो से लगाया जा सकता है .—

औद्योगिक उत्पादन के अंतरिम

सामान्य सूचनाक

(आधार वर्ष १९३७=१००)

वर्ष	
१९३८	१०५.४
१९३९	१०२.७
१९४०	१०९.९
१९४१	११७.८
१९४२	१११.२
१९४३	११७.०
१९४४	११७.०
१९४५	१२०.०

सन् १९३९ मे कुल रजिस्टर्ड कम्पनियो की सख्या ११,११४ थी, तथा उसकी प्रदत्त पूँजी २९० करोड रु० थी। सन् १९४५ मे कम्पनियो की सख्या बढकर १४,८५९ तथा प्रदत्त पूँजी की मात्रा ३८९ करोड रु० हो गयी। इसके बाद कम्पनियो की सख्या मे ३,७४५ और प्रदत्त पूँजी की मात्रा मे १०० करोड रु० की वृद्धि हुई।

औद्योगिक अर्थ व्यवस्था पर कु-प्रभाव—

यद्यपि द्वितीय महायुद्ध के काल मे औद्योगिक सस्थाओ की सख्या, इनकी पूँजी की मात्रा तथा औद्योगिक उत्पादन मे उल्लेखनीय वृद्धि हुई, परन्तु फिर भी कुछ कुप्रभाव (Adverse effects) भी हुए, जिनमे से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(१) **यन्त्रों का अत्यधिक प्रयोग**—द्वितीय महायुद्ध की अवधि मे हमारे निर्मातागण बढी हुई मांग को पूरा करने के लिये उन्मुक्त से हो गये। उनके सम्मुख केवल एक ही उद्देश्य था— बढी मांग की पूर्ति करना। उत्पादन के हेतु तान्त्रिक कला एव यन्त्रो मे सुधार की ओर उन्होने ध्यान नही दिया। मशीनो का अत्यधिक प्रयोग किया गया। अधिक भार पडने के कारण वे घिस गईं व अप्रचलित हो गई फिर भी उनके पुनर्स्थापन के लिये कोई भी प्रयत्न नही किया गया। अनेक पालियो मे काम होने के कारण निरन्तर उनका ह्रास ही होता गया। जब सन् १९४५ मे युद्ध के बादल साफ हुए, तब हमारे उद्योगपतियो का नशा उतरा। मांग मे कमी हुई एव केवल अच्छी किस्म की वस्तुओ के लिये मांग की जाने लगी। अत युद्ध के बाद लोगो का ध्यान आधुनिकीकरण व विवेकीकरण की ओर आकर्षित हुआ।

(२) मुद्रा-स्फीति एवं अभाव की दशाएँ—जैसाकि प्रायः युद्धकाल मे होता है, सन् १९३९-४५ की अवधि मे भी मुद्रा प्रसार (Inflation) बडी तेजी से होने लगा। वस्तुओ के मूल्य गगन की ओर बढते गये। अधिकाश उत्पादको का ध्यान सैनिक आवश्यकताओ की सतुष्टि की ओर केन्द्रित था, अतः सामान्य उपभोक्ताओ को आधारभूत आवश्यकता की वस्तुएँ भी नही मिलती थी। सारे देश मे अभाव की स्थिति पैदा हो गई। ऐसी परिस्थितियो पर नियत्रण रखने के लिये प्राइस कट्रोल व राशनिंग (Price Control and Rationing) की व्यवस्था की गई। सबसे पहले शक्कर के वितरण व उत्पादन पर नियत्रण लगाया गया और बाद मे यह कट्रोल अन्य आवश्यक पदार्थो पर भी लागू हो गया। वस्तुओ के अधिक मूल्य होने के कारण हमारे उद्योगपतियो ने भी उद्योगो के आधुनिकीकरण, वित्तीय सगठन, आर्थिक आकार, आदि प्रश्नो पर अधिक ध्यान नही दिया। मुद्रा प्रसार की दशाओ के ही कारण उद्योगपतियो ने मनमाने लाभ कमाये।

(३) आधारभूत उद्योगो की उपेक्षा—यद्यपि द्वितीय महायुद्ध के काल मे देश मे अनेक नये-नये उद्योग-धधे खोले गये, परन्तु आधारभूत व पूँजीकृत उद्योगो का विकास पिछडा ही रहा। हमारे निर्मातागण मुद्रा प्रसार का अनुचित लाभ उठाकर ऊँचे लाभ कमाने मे ही व्यस्त रहे, उन्होने राष्ट्रीय हितो की उपेक्षा की। परिणाम यह हुआ कि आधारभूत उद्योगों की दृष्टि से हम पिछड गये।

(४) कम्पनियो के निर्माण व प्रबन्ध मे अस्वस्थ प्रवृत्तियाँ—युद्ध युग मे ऊँचे लाभ कमाने के उद्देश्य से कम्पनियो का निर्माण तो बडी तेजी से हुआ, परन्तु उनके प्रबन्ध व व्यवस्था पर अधिक ध्यान नही दिया गया, यही कारण है कि औद्योगिक सत्ता का केन्द्रीयकरण मुट्ठी भर लोगो के हाथो मे बढता गया। प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली को अनुचित बढावा मिला। एक स्वस्थ औद्योगिक सस्था के लाभो का दुरुपयोग अस्वस्थ इकाइयो के पालन-पोषण मे किया गया। विनियोगको व जन साधारण के हितो की सुरक्षा का ध्यान नही रखा गया। यही कारण है कि युद्ध समाप्त होते ही अकुशल कम्पनी प्रबन्ध के विरोध मे आवाजे लगाई गई एव बाद मे विवश होकर भारत सरकार को कम्पनी अधिनियम को बदलना पडा।

(५) वास्तविक मजदूरी की अपेक्षा लाभो मे वृद्धि—द्वितीय महायुद्ध की अवधि मे उद्योगपतियो ने तो मनमाने लाभ कमाये, परन्तु श्रमिको की मागो की उपेक्षा की गई। उनकी वास्तविक मजदूरी मे लाभो की अपेक्षा बहुत कम वृद्धि हुई। इस प्रकार 'श्रम' की बलि पर 'पूँजी' ने लाभ कमाये। औद्योगिक समृद्धि मे उनको उचित भाग नही दिया गया। निम्नलिखित तालिका इस बात पर प्रकाश डालती है—

सन् १९३९-४५ में औद्योगिक लाभ व श्रमिकों की वास्तविक आय के सूचनांक

(आधार वर्ष १९३९=१००)

वर्ष	वास्तविक आय के सूचनाक	वास्तविक औद्योगिक लाभ के सूचनांक
१९३९	१००	१००
१९४०	१०२	१३२
१९४१	९८	१९३
१९४२	१०१	१५२
१९४३	७४	९६
१९४४	८२	९६
१९४५	८२	९२

युद्धोपरान्त काल (१९४५-४७) (Post-war crisis Period 1945-47)—

अगस्त १९४५ मे द्वितीय महायुद्ध समाप्त हो गया। परन्तु फिर भी भारतीय अर्थ व्यवस्था मे कोई सुधार नही हुआ। युद्धकाल म हमारी औद्योगिक संस्थाओ मे अनेक पालियो मे कार्य हुआ। यन्त्र व उपकरण घिसे हुए थे। विदेशो से मशीनरी के आयात की कठिनाइयो के कारण, पुर्नानर्माण की योजनाये (Reconstruction Programmes) कार्यान्वित नही की जा सकी। युद्धकाल मे समस्त उत्पादको का ध्यान युद्ध-सम्बन्धी सामग्री के निर्माण की ओर लगा हुआ था, अत: उपभोक्ता पदार्थो का घोर अभाव था। मुद्रा प्रसार की दशाओ के कारण स्थिति और भी चिन्ताजनक थी। २१ अप्रैल सन् १९४५ को केन्द्रीय सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति की घोषणा की, जिसके प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे—

(अ) देश के प्रसाधनो के अधिकतम विदोहन द्वारा राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करना एव तत्पश्चात उसका समान वितरण करना।

(आ) सुरक्षा की दृष्टि से देश को अधिक तैयार करना।

(इ) रोजगार के साधनो मे वृद्धि करना।

युद्ध-युग मे जन्म लेने वाले उद्योगो की पूर्ण जाँच के लिए नवम्बर सन् १९४५ मे दो वर्ष के लिए प्रशुल्क बोर्ड की स्थापना हुई। इस अन्तरिम प्रशुल्क बोर्ड (In-

term Tariff Board, 1945) ने कुछ उद्योगो को सरक्षण देने की स्थिति पर विचार किया। अपने दो वर्ष के जीवन काल मे अन्तरिम प्रशुल्क बोर्ड के पास ४६ मामले आए, जिनमे से ४२ को सरक्षण दिया गया। इनमे ३८ उद्योग युद्धकालीन तथा ४ उद्योग (सूती वस्त्र उद्योग, स्पात, कागज तथा चीनी उद्योग पूर्व-स्थित थे। वास्तव मे इसका प्रमुख कार्य उद्योगो की स्थिति की पूर्ण जाँच करके उनके लिए सरक्षण की सिफारिश करना था। किन्तु पर्याप्त सुविधाओ के अभाव मे अन्तरिम प्रशुल्क बोर्ड अपने कर्त्तव्य का भली-भाँति पालन न कर सका।

औद्योगिक सस्थाओ को मध्यम व दीर्घकालीन आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए एक औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation) की स्थापना पर भी गम्भीरता से विचार किया गया। १० अगस्त सन् १९४५ की अपनी रिपोर्ट मे औद्योगिक अनुसन्धान योजना समिति (Industrial Research Planning Committee) ने एक केन्द्रीय अनुसधान सगठन (Central Research Organisation) जिसका नाम राष्ट्रीय अनुसन्धान परिषद् (National Research Council) हो, की स्थापना पर बल दिया। समिति ने इस बात की भी सिफारिश की कि देश के विभिन्न भागा मे राष्ट्रीय अनुसधान सस्थायें खोली जानी चाहिए। दस वर्ष की अवधि मे, औद्योगिक श्रमिको के हेतु दो मिलियन मकान बनाने की भी एक याजना स्वीकार की गई। केन्द्रीय सरकार ने विभिन्न प्रान्तीय सरकारो के सम्मुख सामाजिक सुरक्षा की भी एक योजना प्रस्तुत की, जिसके अन्तर्गत स्वास्थ्य बीमा, प्रसूति लाभ व दुर्घटनाओ के लिए क्षतिपूर्ति की भी व्य स्था की।

द्वितीय युद्ध ने भारतीय उद्योगो को अपनी पूर्ण क्षमता से कार्य करने तथा अपने समस्त साधनो के प्रयोग करने का अवसर दिया था, जिसके कारण औद्योगिक उत्पादन मे आशातीत वृद्धि हुई, परन्तु सन् १९४५ के बाद देश मे अनेक राजनैतिक उलट-फेर हुए तथा सरकार की कर नीति मुद्रा स्फीति को रोकने के लिये ऐसी रही जिसका उद्योगो की प्रगति पर विपरीत प्रभाव पडा। दूसरे, युद्ध युग मे मशीनो का अत्यधिक प्रयोग होने के कारण वह जीर्ण-शीर्ण हो गई थी। फलत. उत्पादन व्यय अधिक हो रहा था। तीसरे, श्रमजीवी भी ऊँचे मूल्य स्तर के कारण असन्तुष्ट थे। चौथे, समस्त देश मे हडतालो की भी एक लहर आई थी। इन विविध परिस्थितियो मे औद्योगिक उत्पादन गिरने लगा। अग्रलिखित तालिका से इस बात का आभास मिलता है :—

युद्धोपरान्त काल मे औद्योगिक उत्पादन

विवरण	सन् १९३९-४५ का औसत	वर्ष सहित चोटी का उत्पादन	सन् १९४५-४६	सन् १९४६-४७
सूती वस्त्र (मिलियन गज)	४,४१४	४,८७१ (१९४३-४४)	४,६७३	३,८६३
जूट का माल (हजार टन)	१,१०२	१ २५९ (१९४१-४२)	९७३	१,०४२
सीमेंट (हजार टन)	२,००४	२,१८३ (१९४२-४३)	२,१४६	२,०१७
सल्फ्यूरिक एसिड (हजार हड्रवेट)	७८१	८५८ (१९४१-४२)	४८१	५९३
एमोनियम सल्फेट (हजार टन)	२५	३० (१९४१-४२)	२१	२२
चीनी (मिलियन हड्रवेट)	२१ ८	२२·५ (१९४३-४४)	१९·९	१६·१
कागज (हजार हड्रवेट)	१,८००	१,९५६ (१९४२-४३)	१,९८२	१,४३१
माचिस (मिलियन ग्रॉस)	१८ ६	२३ १ (१९४० ४१)	२००	१५·९
पिग आयरन (हजार टन)	१,७६८	१,८०४ (१९४२-४३)	१,४०६	१,३९४
स्टील इगनोट (हजार टन)	१,२७५	१,३६६ (१९४३-४४)	१,३००	१,१९९
तैयार इस्पात (हजार टन)	१,२५६	१,३५३ (१९४३ ४४)	१,३३८	१,१९९

उपरोक्त तालिका के एकमात्र अवलोकन से यह स्पष्ट है कि युद्धोपरान्त काल में देश के प्राय. प्रत्येक उद्योग का उत्पादन गिर गया, सूती वस्त्र, लौह-इस्पात, चीनी एव कागज उद्योग की दशा इस दृष्टि से सबसे अधिक दयनीय थी। इस गिरते हुए उत्पादन के प्रमुख कारण अग्रलिखित थे—

गिरते हुए उत्पादन के कारण—

(१) **मशीनरी की प्राप्ति मे कठिनाई**—युद्ध-काल मे अत्यधिक प्रयोग एव अनेक पालियो मे काम होने के कारण हमारे उद्योगो की मशीनरी अप्रचलित होगई व घिस गई थी। उसके नवीनीकरण व आधुनिकीकरण के लिए बाहर से मशीनो का आयात अत्यन्त कठिन समस्या थी। भारत मे मशीनो व अन्य पूँजीकृत वस्तुओ का उत्पादन नही होता था। आधुनिकीकरण की बात तो दूर रही, हमारे उद्योगपति

अपनी मशीनो की आवश्यक मरम्मत भी नही करा सके। यद्यपि कुछ उद्योगपतियो ने विदेशो से नई-नई मशीनो के आयात के लिये योजना भी बनाई, परन्तु समस्त विश्व मे पूँजीकृत माल की कमी के कारण उनके अत्यधिक मूल्य ने उनकी योजनाओ को खटाई मे डाल दिया। अतएव घिसी हुई व अप्रचलित मशीनो के द्वारा उत्पादन होने के कारण हमारा औद्योगिक उत्पादन बहुत गिरने लगा।

(२) **श्रमिको मे अशान्ति**—द्वितीय महायुद्ध के काल मे तो श्रमिको को ऊँची-ऊँची मजदूरियाँ, मँहगाई व भत्ते मिलते रहे, परन्तु युद्धोपरान्त-काल मे गिरती हुई माँग के कारण सेवायोजको के लिये यह सम्भव न रहा कि वे मँहगाई व भत्ते देते रहे। अतएव वस्तुओ के गगनचुम्बी मूल्यो एव मँहगाई के सामान्य वातावरण ने श्रमिको को हडतालो के लिये विवश किया। सन् १९४६-४७ मे हडतालो की एक बाढ सी आई। औद्योगिक अशान्ति बढने लगी। श्रम व पूँजी के झगडो मे वृद्धि हुई। इस अनुशासन-हीनता, श्रमिको की अनुपस्थितता एव औद्योगिक अशान्ति के परिणाम-स्वरूप उत्पादन गिरने लगा। अग्रलिखित तालिका से युद्धकाल एव इसके बाद की अवधि मे हुए औद्योगिक सघर्षो का अनुमान लगाया जा सकता है—

युद्ध एवं युद्धोपरान्त काल मे औद्योगिक संघर्ष

वर्ष	सघर्षो की सख्या	श्रमिको की सख्या हजारो मे	जन-दिनो (Man days) की हानि (मिलियन)
१९३९	४०६	४०९	५'०
१९४०	३२२	४५३	७ ६
१९४१	३५९	२९१	३ ३
१९४२	६९४	७७३	५'८
१९४३	७१६	५२५	२'३
१९४४	६५८	५५०	३ ४
१९४५	८२०	७४८	४'१
१९३९-४५ का औसत	५६७	५३५	४ ५
युद्धोपरात काल—			
१९४६	१,६२९	१,९६२	१२ ७
१९४७	२,२५१	२,३५२	१६ ५

औद्योगिक शान्ति की स्थापना के लिए भारत सरकार ने दिसम्बर सन् १९४७ मे सेवायोजको तथा श्रम-सघो के प्रतिनिधियो का एक सम्मेलन बुलाया, जिससे कि श्रम व पूँजी के पारस्परिक सम्बन्ध सुधरें तथा गिरता हुआ उत्पादन रोका जा सके।

(३) यातायात की कठिनाई—यातायात की कठिनाइयो के कारण भी हमारे उद्योगो को कठिन समस्या का सामना करना पडा। अनेक कठिनाइयो के कारण रेल यातायात की दशा बडी खराब थी। वैगन्स का बहुत अभाव था। बाहर से कल पुर्जों के आयात में कठिनाई होती थी। देश के विभाजन के पूर्व कलकत्ता व पजाब में हिन्दू-मुस्लिम झगडो के कारण भी यातायात म कठिनाइयाँ आगई। शरणार्थियो के लिये स्पेशल गाडियाँ चलाई गई। शरणार्थी शिविर तक उनको पहुँचाने की व्यवस्था की गई, शरणार्थियो की सुविधा के लिय खाना कपडा व अन्य सामान भिजवाने की व्यवस्था की गई इत्यादि। इन सब कामो म यातायात व साधनो के उपभोग होने के कारण उद्योगो को बडी कठिनाई का सामना करना पडा एव उत्पादन गिर गया।

(४) कोयले के यातायात मे कठिनाई—कोयला औद्योगीकरण की जननी है, परन्तु यातायात की कठिनाई के कारण उद्योग-पतियो को उसकी प्राप्ति मे बहुत असुविधा होने लगी। यद्यपि कोयल के उत्पादन मे तो थोडी वृद्धि ही हुई, परन्तु आवागमन की कठिनाइयो के कारण इसका प्रयोग नही हो सका। कोयल की प्राप्ति की कठिनाई के ही कारण टाटा के लौह इस्पात के कारखाने को अपनी एक विशाल भट्टी को बद करना पडा। इसी प्रकार सीमट, वस्त्र व जूट मिल का उत्पादन कोयले की कमी से कुप्रभावित हुआ।

(५) कच्चे माल की कमी—युद्धोपरान्त काल मे हमारे कुछ कारखानो को कच्चे माल की कमी के कारण, उत्पादन कम करना पड़ा। उदाहरणार्थ—उत्तर-प्रदेश के अनेक चीनी मिलो म तथा बगाल के टीटागढ के कागज के कारखानो मे उत्पादन मे कमी का प्रधान कारण कच्चे माल का अभाव था।

(६) विनियोग प्रवृत्ति पर तुषारापात—औद्योगिक उत्पादन की गिरावट म एक कारण यह भी था कि जनता की उद्योग प्रवृत्ति दिन प्रति दिन कम होती जा रही थी। युद्धोत्तर काल मे तो मुद्रा प्रसार के कारण लोगो के पास पैसे का आधिक्य था एव उनकी क्रय-शक्ति भी बढी हुई थी, अत किसी भी औद्योगिक सस्था की प्रतिभूतियाँ बडी सरलता से बिक जाती थी, परन्तु युद्धोपरान्त काल मे विचित्र राजनैतिक वातावरण के कारण सरकार व उद्योगपतियो मे जनता का विश्वास नही रहा। सारे देश मे निराशावाद एव अनिश्चितता का वातावरण छाया हुआ था। देश की राजनैतिक दशा अगस्त सन् १९४६ के कलकत्ते के उपद्रवो के कारण बहुत खराब हो गई थी। कलकत्ते के उपद्रव के बाद पजाब मे झगडे शुरू हो गये। ये झगडे समाप्त भी न हुए थे कि काश्मीर युद्ध व हैदराबाद काण्ड प्रारम्भ हो गये। इस बिगडती हुई राजनैतिक दशा के कारण देश का व्यापार व औद्योगिक उत्पादन कुप्रभावित हुआ। जान-माल की असुरक्षा के कारण उद्योगपतियो का भी विश्वास जाता रहा। समस्त व्यापारिक क्षेत्रो म निराशावाद छा गया। यातायात की कठिनाइयो, औद्योगिक अशान्ति व आर्थिक

नीति की अनिश्चतता ने जले पर नमक छिडकने का काम किया। ऐसे अनिश्चित वातावरण व मुद्रा प्रसार की दशाओ के कारण निर्मातागण भावी उत्पादन का उचित अनुमान नही लगा सके। ऐसे ही वातावरण में सन् १९४६ मे भारत मे स्वतन्त्र अन्तरिम सरकार (Interim Government) बनी और शासन की बागडोर भारत को सौंप दी गई। राष्ट्रीय सरकार की स्थापना से भी औद्योगिक उत्पादन को कोई प्रेरणा नही मिली। हमारे जिन नेताओ को शासन का कार्य भार सौंपा गया, उनके असमन्वित व बिना अधिक सोचे-विचारे दिये हुए भाषणो ने भी अनिश्चितता के वातावरण को प्रज्वलित किया। उद्योगो के राष्ट्रीयकरण, लाभांशो का सीमित करना, आदि विषयो पर दिए हुए भाषणो ने हमारे उद्योग पतियो के मस्तिष्क मे अनिश्चितता का वातावरण ला दिया तथा उन्हे हतोत्साहित किया। इसका भी राष्ट्रीय औद्योगिक उत्पादन पर बडा बुरा प्रभाव पडा।

STANDARD QUESTIONS

1 Discuss carefully the effects of the Second World War on Indian Industries

2 Despite great progess in the diversity, number and paidup capital of Joint Stock Companies in India during the World War II, there have been some adverse effects on the industrial economy due to certain forces active in this period " Comment and point out those forces and the adverse effects

3 Discuss the development of Indian Industries during the Post-War Crisis period 1945 47

अध्याय ८

देश के विभाजन का भारतीय उद्योगों पर प्रभाव

(Effects of Partition on Indian Industries)

प्रारम्भिक—

१५ अगस्त सन् १९४७ को हमारा देश स्वतन्त्र हो गया। इस तिथि की अर्द्ध रात्रि को सारे देश मे खुशियाँ मनाई जान लगी। परन्तु प्रात.काल होते ही हमारे अर्थ-शास्त्रियो ने यह चेतावनी दी कि राजनीतिक दृष्टि से देश भले ही स्वतन्त्र हो गया हो, परन्तु आर्थिक दृष्टि से हम और भी परतन्त्र हो गय है। १५ अगस्त सन् १९४७ को ही हमारी भारत 'माँ' के दो खण्ड कर दिये गये एव अविभाजित भारत के दाये-बाये अगो से एक नया देश बना दिया गया। भारत के वे अग जो नव निर्मित देश पाकिस्तान मे सम्मिलित किये गये, विदेशी कहलाये जाने लगे। दूसरे शब्दो मे, राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिये हमको आर्थिक परतन्त्रता मोल लेनी पडी। निम्नलिखित विवरण से देश के अनार्थिक विभाजन का औद्योगिक अर्थ व्यवस्था पर प्रभाव का आभास मिलता है—

विभाजन के परिणाम

(१) औद्योगिक क्रियाओ का वितरण—विभाजन के परिणाम-स्वरूप भारत को अविभाजित भारत का ७७% भाग, कुल जन-सख्या का ८२% भाग, समस्त औद्योगिक सस्थाओ का ९१% भाग एव कुल श्रमिको की सख्या का ९३% भाग मिला। अग्रलिखित तालिका से हमको उन बडे-बडे उद्योगो का ज्ञान होता है, जो केवल भारत मे ही रहे—

भारत व पाकिस्तान के बीच बड़ी औद्योगिक संस्थाओं के वितरण का प्रतिशत

विवरण	औद्योगिक सस्थाएँ		श्रमिको की सख्या	
	भारत %	पाकिस्तान %	भारत %	पाकिस्तान %
कुल उद्योग	९१	९	९३	७
सूती वस्त्र	९८	२	९८	२
जूट मिल	१००	–	१००	–
इजीनियरिंग	८५	१५	८८	१२
लौह एव इस्पात	१००	–	१००	–
शक्कर के कारखाने	९३	७	९६	४
रासायनिक	९३	७	९५	५
दियासलाई	९७	३	९३	७
कागज की मिलें	१००	–	१००	–
सीमेंट	९०	१०	९२	८
कांच	९८	२	९८	२
खाल व चमडा	९७	३	९५	५

पाकिस्तान मे ऐसा कोई भी उद्योग नही था, जिसमे १ लाख से अधिक व्यक्ति लगे हुए हो, जबकि भारत मे निम्न ६ उद्योग इस श्रेणी मे आते थे—(१) कपास की कताई व बुनाई-उद्योग, (२) जूट-उद्योग, (३) सामान्य इजीनियरिंग-उद्योग, (४) रेल्वे वर्कशॉप, (५) आर्डिनेंस फैक्ट्रीज तथा (६) कॉटन जिनिंग-उद्योग। पाकिस्तान मे ऐसे उद्योगो की सख्या २३ थी, जिनमे ५०० से कम श्रमजीवी कार्य करते हो, भारत मे ऐसे उद्योगो की सख्या केवल ४ थी। सामान्यत. यह कहा जा सकता है कि भारत के कुल उद्योगो मे से आधे उद्योगो मे १०,००० से अधिक श्रमिक कार्य करते थे, जबकि पाकिस्तान के कुल उद्योगो मे से आधे उद्योग ऐसे थ जिनमे १,००० से कम श्रमिक कार्य करते थे। उपर्युक्त विवरण से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते है—

(अ) पाकिस्तान ने भारत की अपेक्षा बहुत कम लोगो को उद्योग-धन्धो मे रोजगार प्रदान किया।

(ब) भारत की अपेक्षा पाकिस्तान में उद्योगो का घनत्व बहुत ही कम था।
(स) पाकिस्तान मे एक भी बडा उद्योग (Major Industry) नही था और जो चार छ उद्योग थ भी उनका आकार भारतीय विशाल उद्योगो की तुलना मे बहुत कम था।

(२) **खनिज सपदा का वितरण**—खनिज सपदा की दृष्टि म भारतवर्ष धनी रहा एव पाकिस्तान को काफी क्षति उठानी पडी क्योंकि लगभग सभी खनिज सपत्ति के भण्डार भारत म ही रह। उदाहरण के लिये कोयला अभरक मगनीज कच्चा लोहा आदि सभी महत्त्वपूर्ण खनिज पदार्थ भारत क ही हिस्से म आये। हा निम्न खनिज पदार्थों के कुछ क्षत्र पाकिस्तान म चले गये जसे तेल क कुछ भाग सिंध की घाटी व पूर्वी बगाल मे साल्ट रज म नमक व जिप्सम पश्चिमी पजाब सिंध व बिलोचिस्तान मे कोयला बिलोचिस्तान मे क्रोमाइट व गधक चित्रल म घटिया किस्म की एटीमनी साल्ट रज मे चून का पत्थर इत्यादि। सक्षेप म हम यह कह सकते हैं कि अविभाजित भारत की खनिज सपदा का केवल ३ प्रतिशत भाग पाकिस्तान को गया। जिप्सम के भण्डार व चट्टानी नमक (जिसका प्रयोग भारी रासायनिक उद्योगो मे किया जाता है) क क्षत्रो के चले जाने से भारत को अवश्य थोडी सी हानि हुई।[1]

खनिज सपदा के अभाव स पाकिस्तान के औद्योगीकरण को बडा आघात पहुँचा। जहा तक जल विद्युत सपदा का सम्बन्ध है इस दृष्टि से भी भारत ही धनी रहा। पाकिस्तान की अनक नदिया यद्यपि उसी के क्षेत्र मे बह कर समुद्र मे जा मिली ह परन्तु उनका जन्म काश्मीर पूर्वी पजाब व आसाम के पर्वतीय क्षेत्रो से हुआ है जो कि भारत मे है। इस कारण पाकिस्तान म कुछ अनिश्चितता का वातावरण पैदा हो गया। ऐसा न हो कि भारत उसकी नदियो के जल को उद्गम क्षत्र म ही रोक दे। विभाजन क पूर्व पाकिस्तान क क्षत्र मुख्यत जोगेन्द्रनगर शक्ति गृह से बिजली प्राप्त करते थ जो कि अब पूर्वी पजाब (भारत) म है। भारत मे होने के कारण अब जोगेन्द्रनगर शक्ति गृह का सम्बन्ध पाकिस्तान से विच्छेद कर दिया गया है अत पश्चिमी पजाब (पाकिस्तान) का औद्योगिक जीवन बडा कुप्रभावित हुआ।

(३) **कृषि पदार्थों का वितरण**—भारतवर्ष के विभाजन से हमारे दो प्रमुख उद्योगो—जूट तथा सूती वस्त्र मिल उद्योग—को कच्चे माल की पूर्ति की दृष्टि से बडी हानि उठानी पडी। अविभाजित भारत को जूट के उत्पादन का एकाधिकार प्राप्त था परन्तु बटवारे क उपरान्त पटसन की उपज का ८१% भाग पाकिस्तान को चला गया। यही नहीं, पूर्वी पाकिस्तान में जो पटसन उत्पन्न होता है वह अच्छा की दृष्टि से वह उच्चकोटि की है अत हमारी मिलो को अच्छे किस्म की पटसन से हाथ धोना पडा। नीचे दी हुई तालिका विभाजन क परिणामो पर प्रकाश डालती है—

---

1 Report of the Fiscal Commission 1949 50 Page 24

अविभाजित भारत मे, कुल क्षेत्रफल, जन-सख्या व प्रमुख
औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से भारत व पाकिस्तान
का प्रतिशत भाग

विवरण	भारत	पाकिस्तान
क्षेत्रफल	७७	२३
जन सख्या—		
कुल	८२	१८
नगरी	८६	११
ग्रामीण	८१	१६
भूमि (Land Utilization)—		
वनाच्छादित क्षेत्र	६४	०६
बुआ हुआ कुल क्षेत्र (area sown)	८४	१६
कुल सिंचित प्रदेश	६६	३१
उत्पादन (कृषि)—		
प्रमुख खाद्य पदार्थ	७५	२५
गन्ना	८४	१६
प्रमुख तिलहन	५५	४५
कपास	६०	४०
पटसन	१६	८१
उत्पादन (बागान)—		
चाय	८५	१५
कॉफी	१००	—
तम्बाकू	७८	२२
उत्पादन (खनिज)	६७	०३

अविभाजित भारत मे, पूर्वी बगाल का क्षेत्र केवल ३—४ मिलियन बेल्स (Million bales) पटसन का उपभोग करता था, जबकि शेष भारत मे ६ मिलियन गाँठो का उपभोग था। अपनी बढ़ी हुई आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए ही भारत को 'अधिक पटसन उगाओ आन्दोलन' प्रारम्भ करना पडा। इसी प्रकार, विभाजन के पूर्व, हमारी श्रेष्ठ कोटि की कपास सम्बन्धी आवश्यकता सिन्ध व पश्चिमी

पाकिस्तान के राज्यो द्वारा पूरी होती थी, परन्तु देश के अनार्थिक बँटवारे ने कपास के क्षेत्र मे भी अभाव की स्थिति पैदा कर दी। विभाजन के पूर्व हमारे देश मे कुल ३९४ सूती वस्त्र मिलें थी। बँटवार के बाद भारत व पाकिस्तान के हिस्से मे क्रमश: ३८० व १४ मिल पड़ीं। इस प्रकार यद्यपि पाकिस्तान के हिस्से मे केवल १४ मिलें या अविभाजित भारत की ५$^{0}_{0}$ मिलें ही पडी परन्तु कपास की उपज का ४०% भाग उसा को मिला। यही कारण ‹ कि अपनी वस्त्र मिला की कपास सम्बन्धी आवश्यकता को पूरा करन क लिए भारतीय केन्द्रीय कपास समिति को अधिक कपास पैदा करने के लिए घार प्रयत्न करन पड। हमारे देश मे केवल औद्योगिक कच्चे माल की ही कमी नही पड गई वरन् खाद्य पदार्थो का भी घोर अभाव था। अत "अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन की अधिक जूट या कपास उगाओ' आन्दोलन से प्रतिस्पर्धा होने लगी और इस सघष का हमारी अथ व्यवस्था पर बडा बुरा प्रभाव पडा।

(४) **बाजारो की क्षति**—पाकिस्तान के निर्माण से हमारे अनक औद्योगिक पदार्थो का एक निश्चित बाजार हाथ मे जाता रहा। बँटवारे के पूव वर्तमान पाकिस्तान के क्षेत्रो म सूती वस्त्रे, काँच का सामान अल्यूमीनियम सेरेमिक्स, वनस्पति तेल की खपत होती थी, परन्तु पाकिस्तान क बन जाने स इन वस्तुओं की माँग बहुत कम हो गई। पाकिस्तान न भारत की अपक्षा अन्य देशो से इन वस्तुओ का आयात शुरू कर दिया। अतएव हमको अपना माल बेचने के लिए नई-नई मण्डियो की तलाश करनी पडी।

(५) **कुशल कारीगरो का चला जाना**—पाकिस्तान के बनने से अविभाजित भारत के ऐसे अनक मुसलमान जोकि दस्तकारा के कामा मे दक्ष थ तथा कढाई-बुनाई उद्योग, ऊनी उद्याग, काच उद्योग आदि म लगे हुए थ नव निर्मित देश—पाकिस्तान को चले गए। फलत हमारे देश मे इन कुशल कारीगरो का अभाव हा गया। इसके विपरीत पाकिस्तान म इन्जीनियरो व तान्त्रिक विशेषज्ञा की कमी हो गई, क्योंकि इन्जीनियरिंग सस्थाय अधिकांशत भारत मे ही रही।

(६) **प्रबन्ध सम्बन्धी कला व साहस**—जहा तक प्रबन्ध सम्बन्धी कला व साहस (Managerial and Entrepieneurial skill) का सम्बन्ध है, भारत को लाभ ही रहा। सभी वृहत उद्योगो के प्रबन्धक, जो पाकिस्तान मे थ भारत मे चले आए और यहाँ के साधारण श्रमिक व कुशल कारीगर पाकिस्तान चले गए। परिणामत हमारे देश मे प्रबन्ध सम्बन्धी कला व साहस का बाहुल्य था जबकि पाकिस्तान म श्रम का। प्रबन्धका के बाहुल्य से देश (भारत) के औद्योगीकरण को बडा बढावा मिला। पाकिस्तान म प्रबन्धका व साहसिया की कमी के कारण सरकार को हस्तक्षेप करना पडा एव उद्योग के क्षेत्र मे राजकीय उपक्रम (State enterprise) के विकास के लिए पर्याप्त क्षेत्र पैदा हो गया। हमारे देश मे राजकीय उपक्रम के साथ-साथ, निजी उपक्रम भी तजी के साथ बढा।

(७) **औद्योगिक स्थानीयकरण पर प्रभाव**—हमारा औद्योगिक स्थानीयकरण भी विभाजन के प्रभाव से अछूता नही रहा। विभाजन के परिणाम स्वरूप देश के वे क्षेत्र, जोकि भारत व पाकिस्तान की सीमा के निकट थे, औद्योगिक विकास की दृष्टि से अपना महत्त्व खो बैठे। राजनैतिक कारणो से उनकी स्थिति खतरनाक व जोखिमपूर्ण (risky) हो गई। इस दृष्टि से कलकत्ता की स्थिति बडी खराब हो गई। विवश होकर भारत सरकार को औद्योगिक स्थानीयकरण के कलेवर मे परिवर्तन करना पडा। देश के आन्तरिक भागो मे उद्योगो को विकेन्द्रित व आकर्षित करने के लिए यातायात, सन्देशवाहन, कर, वित्त आदि की सुविधायें देनी पडी।

(८) **पूँजी के आयात मे बाधा**—देश के विभाजन से सब जगह अनिश्चितता का वातावरण पैदा हो गया भारत की अर्थ-व्यवस्था मे विदेशियो को विश्वास नही रहा, अत: पूँजी का विनियोग करने मे उन्हे बडा सकोच होने लगा। इससे देश के औद्योगीकरण को गहरा आघात पहुँचा।

(९) **यातायात सम्बन्धी असुविधायें**—देश के दुखद विभाजन से यातायात पर भी कुप्रभाव पडा। विभाजन के पहले कुल भारत मे ४१,००० मील लम्बी रेल लाइनें थी, परन्तु विभाजन से पाकिस्तान को केवल ७,००० मील या १७% रेल लाइनें ही मिली। रेल विभाग मे लगे हुए कर्मचारियो के आवागमन से भी बडी असुविधा हुई। पाकिस्तान से जो कर्मचारी आए, उनमे अधिकतर क्लर्क, टिकट-चैकर, गार्ड आदि ही थे, परन्तु भारत से पाकिस्तान जाने वा मुसलमानो मे अधिकतर ड्राइवर, फायरमैन, लुहार व वर्कशॉप टेकनीशियन्स थे। परिणामत हमारे देश मे कुशल कमचारियो की कमी होगई, जबकि पाकिस्तान मे सामान्य कमचारियो का आधिक्य हो गया। रेलवे-यातायात के असगठन के कारण कोयला उद्योग भी कुप्रभावित हुआ। यद्यपि देश मे कोयले की कमी नही थी, परन्तु खानो से कारखानो तक कोयला लाने की बडी कठिन समस्या थी। खानो के निकट कोयले का ढेर लगने लगा, इसके विपरीत कारखानो मे कोयले की कमी के कारण पूर्ण गति से कार्य न हो सका। इससे उत्पादन मे कमी आ गई तथा मुद्रा स्फीति (Inflation) की दशाओ को और भी बढावा मिला। बगाल व पजाब के पूर्वी व पश्चिमी प्रदेशो मे रेल-यातायात बिल्कुल रुक गया। परिणामत. कच्चे माल (जैसे पटसन व कपास) के आयात म बडी असुविधा पैदा हो गई।

(१०) **भारतीय बन्दरगाहो पर अत्यधिक भार**—भारतवर्ष के विभाजन के परिणामस्वरूप करांची व चिटगाँव के बन्दरगाह विदेशी हो गए। बँटवारे के पूर्व जम्मू व काश्मीर, पश्चिमी उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, गुजरात आदि का समस्त वैदेशिक व्यापार करांची के बन्दरगाह के द्वारा ही होता था, परन्तु जबसे करांची पाकिस्तान मे चला गया, उक्त सभी राज्यो के व्यापार का भार बम्बई पर आ पडा। इस अत्यधिक भार को कम करने के उद्देश्य से ही भारत सरकार को विवश होकर नए-नए बन्दरगाहो का निर्माण व विकास करना पडा। उदाहरण के लिए, कच्छ की खाडी पर स्थित कांडला

का बन्दरगाह इसी हेतु विकसित किया गया। कांडला को 'भारत का करांची' इसी कारण कहते है, क्योकि अविभाजित भारत मे जो स्थान करांची को प्राप्त था, आज वही स्थान भारत मे काडला को प्राप्त है। भारत सरकार को इस बन्दरगाह के विकास मे लगभग ४० करोड रु० व्यय करने पडे। इसी प्रकार पूर्वी भारत मे चिटगाँव के चले जाने से कलकत्ता पर भार बहुत बढ गया। कलकत्ता-चिटगाँव, जोकि १५ अगस्त सन् १९४७ की अर्द्धरात्रि के पूर्व एक-दूसरे के पूरक व सहायक थे, इस तिथि से प्रतिस्पर्धी बन गए। आसाम का समस्त वैदेशिक व्यापार, जो कि पहिले चिटगाँव के द्वारा होता था, बँटवारे के बाद कलकत्ते की ओर आ गया। भारत सरकार को आसाम व कलकत्ते के बीच सीधी रेल लाइन डालनी पडी। इसमे सचमुच बहुत अधिक व्यय हुआ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि देश के दुखद विभाजन से दोनो ही खण्डो—भारत व पाकिस्तान—को हानि उठानी पडी व अनेक आर्थिक सामाजिक एव राजनैतिक कठिनाइयो का सामना करना पडा। वास्तविकता तो यह है कि प्राकृतिक दृष्टि से दोनो ही नव-निर्मित देश एक हैं। शताब्दियो से ये एक-दूसरे के पूरक व सहयोगी रहे है। यही कारण है कि इनके खण्डन से आर्थिक कठिनाइयाँ पैदा हो गई हैं। अपने-अपने देश की सीमा की रक्षा के लिए हमे सुरक्षा व्यय बढाना पडा है। यह अतिरिक्त-व्यय यदि जन उपयोगी कार्यों मे व्यय होता तो, दोनो ही खण्ड अधिक समृद्धशाली हो सकते थे। अब आवश्यकता एक ऐसे मनोवैज्ञानिक बचाव की है जिससे कि पारस्परिक घृणा ईर्षा, भय व अपरिचितता के बादल उड जाएँ एव दोनो ही राष्ट्र प्रेम, सहयोग व पारस्परिक विश्वास के साथ रहें।

STANDARD QUESTIONS

1. Discuss carefully the effects of partition on the economy of India and Pakistan Discuss the effects of partition on (1) the industrial activity, (2) distribution of mineral resources and (3) distribution of agricultural resources of India and Pakistan
2. "Nature has made both India and Pakistan complementary in the economic field. The Partition of the country has disturbed the economy of both" Comment

अध्याय ६

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय उद्योगों की प्रगति

(Development of Indian Industries Since Independence)

प्रारम्भिक—

द्वितीय महायुद्ध ने भारतीय उद्योगो को अपनी पूर्ण क्षमता से काम करने तथा अपने समस्त साधनो के प्रयोग करने का अवसर दिया था, जिसके कारण औद्योगिक उत्पादन मे आशातीत वृद्धि हुई, परन्तु सन् १९४५ के बाद देश मे अनेक राजनैतिक उलट-फेर हुए तथा सरकार की कर-नीति मुद्रा-स्फीति को रोकने के लिए ऐसी रही कि जिसका उद्योगो की प्रगति पर विपरीत प्रभाव पडा । दूसरे, युद्ध-युग मे मशीनरी का अत्यधिक प्रयोग होने के कारण वह जीर्णशीर्ण हो गई थी । फलत: उत्पादन व्यय अधिक हो रहा था । इन विविध परिस्थितियो के परिणाम-स्वरूप औद्योगिक उत्पादन गिरने लगा । ऐसे ही वातावरण मे सन् १९४६ मे भारत मे स्वतन्त्र अन्तरिम सरकार बनी और शासन की बागडोर भारतीयो को सौप दी गई ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति—

कुछ समय पश्चात् लार्ड माउन्टबेटन के प्रयत्न-स्वरूप भारत को अगभग स्वतन्त्रता मिली, जिसने आर्थिक तथा औद्योगिक क्षेत्र मे नई-नई समस्यायें खडी कर दी । अनाज की बहुत कमी बढ गई और वस्त्र तथा जूट-उद्योग मे कच्चे माल की कठिनाई उपस्थित हो गई । शरणार्थियो के आने-जाने से औद्योगिक यातायात मे भी अडचनें आई, किन्तु हमारी जनप्रिय सरकार ने बडे धैर्य से उनका सामना किया । औद्योगिक उत्पादन बढाने के लिए तथा औद्योगिक नीति मे सुधार करने के लिए दिसम्बर सन् १९४७ मे उद्योग परिषद् का आयोजन किया, जिसकी सिफारिशो पर उद्योगो को निम्न सुविधायें प्रदान की गई —

उद्योग परिषद्, १९४७ की सिफारिशें—

(१) तीन वर्ष से कम आयु वाले कारखानो को उनकी पूँजी पर ६% तक लाभाश आय-कर से मुक्त कर दिया जाय;

(२) नई इमारत, यन्त्र, औजार आदि पर तथा तीन पालियो मे काम करने वाले कारखानो को तत्कालीन दर से दुगुने ह्रास का भत्ता मिलेगा,

(३) यन्त्र सामग्री तथा अन्य आवश्यक पूँजीगत माल पर आयात-कर कम कर दिए गए ।

इन सुविधाओ के परिणाम-स्वरूप औद्योगिक उत्पादन सन् १६४८ मे युद्ध-पूर्व औद्योगिक उत्पादन स्तर से १५% अधिक हो गया। यही सन् १६४७ मे युद्ध पूर्व उत्पादन स्तर से ५% कम था।

सन् १६४८ की औद्योगिक नीति—

६ अप्रैल सन् १६४८ को भारत सरकार ने अपनी नवीन औद्योगिक नीति की घोषणा की, जिसके अनुसार इसने व्यक्तिगत क्षेत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों मे, उद्योगो के विकास पर बल दिया। इस नीति के अनुसार केन्द्रीय सरकार ने कुछ आधारभूत उद्योग अपने अन्तर्गत रखे, जैसे शस्त्र एव बारूद का निर्माण, एटम शक्ति का निर्माण एव रेलो का स्वामित्व व प्रबन्ध। कुछ अन्य उद्योग, जैसे कोयला, लोहा व स्पात, जलयान तथा वायुयान निर्माण, टेलीफोन व टेलीग्राफ तथा वायरलैस सम्बन्धी यन्त्र और खनिज, तेल आदि के विकास के काम भी केन्द्र तथा राज्य सरकारो एवं स्थानीय बार्डो के उत्तरदायित्व मे रहे। आवश्यकता पडने पर व्यक्तिगत प्रबन्ध से भी इनमे सहायता ली जा सकती थी। शेष उद्योग व्यक्तिगत प्रबन्ध के लिए छोड दिये गये। किन्तु उन पर नियन्त्रण रखने की दृष्टि से सरकार ने उद्योग (विकास तथा नियन्त्रण) अधिनियम, १६५१ (Industrial Development and Regulation Act, 1951) बनाया। इसके अन्तर्गत भारत सरकार ने देश मे औद्योगिक विकास के लिए और भी तीव्रता से प्रयत्न करने आरम्भ कर दिए।

स्वतन्त्रता युग मे औद्योगिक प्रगति

स्वतन्त्रता-युग मे हुई औद्योगिक प्रगति का अनुमान निम्नलिखित विवरण से लगाया जा सकता है—

(I) औद्योगिक अनुसधान के क्षेत्र मे प्रगति—

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश मे उपयुक्त औद्योगिक वातावरण उत्पन्न करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने अनेक औद्योगिक शिक्षालय खोले तथा निम्नलिखित औद्योगिक अनुसधानशालाओ की स्थापना की—

(१) राष्ट्रीय भौतिक अनुसन्धानशाला, नई दिल्ली— यहाँ भौतिकशास्त्र (fundamental और applied दोनो ही) से सम्बन्धित समस्याओ पर अनुसधान किये जाते हैं। टैस्ट करने की सुविधायें भी यहाँ उपलब्ध हैं। यह सस्था २१ जनवरी सन् १६५० को खोली गई थी।

(२) राष्ट्रीय रासायनिक अनुसन्धानशाला, पूना— यह ३ जनवरी सन् १६५० को खोली गई थी। इसका कार्य रसायनशास्त्र के सम्पूर्ण क्षेत्र से सम्बन्धित समस्याओ पर अनुसधान करना है।

(३) राष्ट्रीय धात्विक अनुसन्धानशाला, जमशेदपुर यह २६ नवम्बर सन् १६५० को स्थापित की गई थी और इसका कार्य धात्विक अनुसधान करना है।

(४) केन्द्रीय ईंधन अनुसन्धानशाला, जीलगोरा (बिहार)—यह भी २५ अगस्त

सन् १९५० को स्थापित हुई थी। यह संस्था ईंधनों पर—ठोस, द्रव और गैस—अनुसधान करती है। इसने अपने आधीन ६ कोयला सर्वे स्टेशनो द्वारा भारतीय कोयले का भौतिक एव रासायनिक सर्वे कराया है।

(५) केन्द्रीय खाद्य टैक्नोलॉजिकल अनुसन्धानशाला, मैसूर—इसकी स्थापना २१ अक्टूबर सन् १९५० को हुई थी। इसके निम्न कार्य है—खाद्य वस्तुओ का प्रोसेसिंग व कन्जर्वेशन तथा फलो से सम्बन्धित टैक्नोलॉजी के सभी पहलुओ पर अनुसधान।

(६) केन्द्रीय ड्रग अनुसन्धानशाला, लखनऊ—यह सस्था १ फरवरी सन् १९५१ को प्रारम्भ की गई थी। इसका कार्य दवाइयो पर सभी प्रकार के अनुसधान करना है।

(७) केन्द्रीय ग्लास तथा सीरामिक्स अनुसन्धानशाला, कलकत्ता—यह सस्था २५ अगस्त सन् १९५० को स्थापित हुई। यह ग्लास, सीरेमिक्स, पॉटरी, पोरसीलेन, रिफ्रेक्टर्स व इनेमिल सभी पहलुओ पर अनुसधान करती है, जैसे—ग्लास व सिरेमिक्स के लिये प्रोसेसिंग का विकास, सीरेमिक्स उद्योग मे प्रयोग किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के कच्चे मालो का प्रमापीकरण आदि।

(८) केन्द्रीय सडक अनुसन्धानशाला, दिल्ली—इसकी स्थापना १६ जुलाई सन् १९५२ को हुई थी। यह सडक निर्माण सम्बन्धी सामग्रियो तथा सड़क की सतहो (road surfaces) पर अनुसधान करता है।

(९) केन्द्रीय भवन अनुसधानशाला, रुडकी—यह १३ अप्रेल सन् १९५३ को स्थापित की गई थी। इसका कार्य भवनो की सरचना से सम्बन्धित पहलुओ पर तथा भवनो को मानव-निवास के लिये अधिक से अधिक आरामदेह बनाने के उपायो पर अनुसंधान करना है।

(१०) केन्द्रीय चमडा अनुसंधानशाला, मद्रास—यह सन् १९५३ मे स्थापित हुई थी। इसका कार्य चमडे से सम्बन्धित (fundamental एव applied) टैक्नॉलाजी के विभिन्न पहलुओ पर अनुसधान करना है।

(११) केन्द्रीय विद्युत रासायनिक अनुसधानशाला, काराईकुड्डी—यह जनवरी १५ सन् १९५३ को स्थापित हुई थी और इसका कार्य इलेक्ट्रो रसायन (इलेक्ट्रो मेटेलर्जी, इलेक्ट्रो डिपोजीशन व सम्बन्धित समस्याओ को सम्मिलित करते हुये) की सभी समस्याओ पर अनुसन्धान करना है।

(१२) केन्द्रीय नमक अनुसंधानशाला, भावनगर—यह १० अप्रेल सन् १९५४ को स्थापित हुई थी। इसका कार्य विशुद्ध नमक का उत्पादन करने के ढगो का परीक्षण करना है। उत्पादन लागत मे कमी करने तथा नमक निर्माण से बचे हुये अवशिष्ट पदार्थो का उपयोग करने के उपायो पर अनुसन्धान करना भी इस सस्था की जिम्मेदारी है।

उपरोक्त के अतिरिक्त निम्न अनुसधानशालायें भी कार्यशील है—

(1) सेंट्रल इलेक्ट्रोनिक्स इंजीनियरिंग इन्स्टीटयूट, पिलानी।

(ii) नेशनल बोटेनिकल गार्डेन, लखनऊ ।

(iii) सेंट्रल माइनिंग रिसर्च स्टेशन, धनबाद ।

(iv) रीजनल रिसर्च लेबारटरी, हैदराबाद ।

(v) इंडियन इन्स्टीट्यूट आफ बायोकेमिस्ट्री एन्ड एक्सपरीमेण्टल मैडीसन, कलकत्ता ।

(vi) बिरला इंडस्ट्रियल एन्ड टेक्नोलाजिकल म्यूजियम, कलकत्ता ।

(vii) रीजनल रिसर्च लेबोरेटरी, जम्मू काश्मीर ।

(viii) सेन्ट्रल मिकेनिकल इंजीनियरिंग रिसर्च इन्स्टीट्यूट, दुर्गापुर ।

(ix) सेंट्रल पब्लिक हैल्थ इंजीनियरिंग रिसर्च इन्स्टीट्यूट, नागपुर ।

(x) नेशनल एयेरानॉटिकल लेबारटरी, बंगलौर ।

(xi) रीजनल रिसर्च लबोरेटरी, जोरहट ।

(xii) सेंट्रल साइंटिफिक इन्स्ट्रुमेन्ट्स आर्गनाइजेशन, नई दिल्ली ।

(xiii) सेंट्रल इन्डियन मडीसनल प्लान्ट आर्गनाइजेशन, नई दिल्ली ।

पंच-वर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत राष्ट्रीय अनुसंधानशालाओं की प्रगति—

विभिन्न अनुसंधानशालाओं ने तृतीय पंच-वर्षीय योजनावधि के लिये अपने-अपने कार्यक्रम निश्चित कर लिये हैं। इस सम्बन्ध में कुछ उल्लेखनीय विशेषताये निम्नलिखित हैं— राष्ट्रीय भौतिक अनुसंधानशाला एक पाइलट प्लान्ट स्केल पर रेडियो के भागों का विकास कार्य करेगी। राष्ट्रीय रासायनिक अनुसंधानशाला डाइज और इन-आर्गेनिक इन्टरमीडियट्स तथा आवश्यक तेलों के लिये नये डिवीजन स्थापित करेगी तथा कई नवीन पाइलट प्लान्ट प्रोजेक्ट चलायेगी। राष्ट्रीय धात्विक अनुसंधानशाला अलौय स्टील्स के लिये एक नवीन डिवीजन स्थापित करेगी तथा कुरोजन (corrosion) सम्बन्धी समस्याओं का विभिन्न परिस्थितियों के अन्तर्गत अध्ययन करेगी। केन्द्रीय ईंधन अनुसन्धानशाला भी निम्न श्रेणी के कोयले के प्रयोग सम्बन्धी कार्य का विस्तार करेगी तथा बड़े पैमाने पर पाइलट प्लान्ट ट्रायल्स प्रारम्भ करेगी। ग्लास एवं सीरेमिक्स इन्स्टीट्यूट ने आप्टीकल ग्लास के उत्पादन के लिये एक पाइलट प्लान्ट स्थापित करना तय किया है। वह माइका उत्पादन से सम्बन्धित अनुसन्धान के लिये एक पृथक शाखा भी रखेगी। केन्द्रीय ड्रग अनुसन्धानशाला एन्टीबायोटिक्स और फाइन केमीकल्स के लिये एक डिवीजन प्रारम्भ करेगी। केन्द्रीय खाद्य टेक्नोलॉजिकल अनुसन्धानशाला फल एवं साग-सब्जी के सुरक्षित संग्रह के लिये क्षेत्रिक स्टेशनों की स्थापना करेगी। केन्द्रीय सड़क अनुसन्धानशाला भी पुलों से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करने के लिये एक नया डिवीजन स्थापित करेगी। केन्द्रीय भवन अनुसन्धानशाला ने भी पांच क्षेत्रीय अनुसन्धान केन्द्र खोलने का प्रस्ताव किया है। प्रादेशिक विस्तार केन्द्रों के खोलने की एक योजना केन्द्रीय चमड़ा अनुसन्धानशाला द्वारा बनाई गई है। केन्द्रीय इलेक्ट्रो-केमीकल अनुसंधानशाला भी कुरोजन से सम्बन्धित समस्याओं

पर अनुसन्धान करने के लिये नये डिवीजन खोलेगी। केन्द्रीय नमक अनुसन्धानशाला ने एलगोलॉजी पर कार्य प्रारम्भ करना तय किया है। वह नमक (Salt bitterns) मे अवशिष्ट पदार्थों के उपयोग पर भी अनुसन्धान कार्य को अधिक विस्तृत करेगा।

द्वितीय योजना मे आरम्भ की गई कुछ अनुसन्धान सस्थाओ को तृतीय योजनावधि मे पूर्ण सुसज्जित किया जायेगा। कई नई सस्थाये भी खोली जायेगी, जैसे—इन्स्टीट्यूट आफ पेट्रोलियम, नेशनल बायोलाजिकल लेबोरेटरी एव एक रीजनल रिसर्च लेबोरेटरी।

(II) प्रमापीकरण के क्षेत्र मे प्रगति—

भारतीय उद्योग-पतियो ने सर्व प्रथम सन् १९४० के १२वे उद्योग सम्मेलन मे भारतीय प्रमाप निश्चित करने के लिए भारतीय प्रमाप सस्था खोलने का प्रस्ताव सरकार के सम्मुख रखा था। परन्तु युद्ध-कालीन परिस्थितिया के कारण उस समय भारत सरकार ने प्रस्ताव पर कोई ध्यान नही दिया। सन् १९४६ मे, औद्योगिक योजना के अन्तर्गत प्रमापीकरण की आवश्यकता का अनुभव करते हुए, भारत सरकार ने प्रमाप सस्था खोलने का निश्चय किया और दिल्ली मे इसके केन्द्रीय कार्यालय की स्थापना की गई। इस सस्था का प्रबन्ध एक साधारण परिषद् (General Council) द्वारा होता है। इसके सभापति उद्योग सचिव है। प्रमाप सस्था की ४२० समितियाँ है। इनका सचालन (अ) इजीनियरिंग विभाग परिषद्, (ब) निर्माण विभाग परिषद्, (स) वस्त्र विभाग परिषद्, (द) रासायनिक विभाग परिषद् व (य) खाद्य और कृषि उत्पादन विभाग परिषद् द्वारा होता है। प्रत्येक विभाग का नियन्त्रण विभागीय परिषद (Divisional Council) द्वारा किया जाता है।

भारतीय प्रमाप सस्था का मुख्य उद्देश्य है राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर विभिन्न वस्तुओ एव क्रियाओ के प्रमाप निर्धारित करना तथा इस सम्बन्ध मे आवश्यक सुधार करना, औद्योगिक आँकडे एव सूचनाये एकत्रित व प्रकाशित करना तथा प्रमापीकरण की उन्नति के लिए पुस्तकालय, म्यूजियम तथा प्रयोगशालाये स्थापित करना और विभिन्न वस्तुओ के प्रमापीकृत चिन्हो का रजिस्ट्रेशन करना। भारतीय प्रमाप सस्था अन्तर्राष्ट्रीय प्रमापीकरण सगठन की सदस्य है। इस बात से ही इसकी यशस्विता का परिचय मिलता है।

भारतीय प्रमाप सस्था का कार्य अब राष्ट्रीय महत्त्व प्राप्त कर चुका है। सस्था ११ साल पहले सरकार और जनता के समर्थन से आरम्भ की गई थी और यह भारत मे खपने और बनने वाली चीजो के नाप, किस्म और काम के प्रमाप निर्धारित करती है। सस्था को केन्द्रीय सरकार सहायता देती है। इसके अलावा राज्य सरकारे, औद्योगिक एव व्यापारिक सस्थाएँ, कारखाने, औद्योगिक शालाएँ, नगरपालिकाएँ और निगम आदि भी सस्था के सदस्य हैं और इसके लिए चन्दा देते है। इसके काम की

लोकप्रियता और महत्त्व इसी बात से प्रगट होता है कि अब कारखानो के मालिक अपनी चीजो के प्रमाप निर्धारित करने की मांग स्वय करने लगे है।

भारतीय प्रमाप सस्था के विकास मे सबसे महत्वपूर्ण कदम सन् १६५२ का भारतीय प्रमाप अधिनियम है। इस अधिनियम के बन जाने से प्रमाप सस्था के अधिकार बढ गये है। सस्था को प्रमापीकरण चिन्ह देने और कम्पनियो को भारतीय प्रमापो के अनुसार माल तैयार करने के लाइसस देन का अधिकार मिल गया है। इससे उचित किस्म के माल को प्रोत्साहन मिलेगा तथा सस्ते और घटिया माल से प्रतिस्पर्धा का डर कम हो जायगा। केन्द्रीय सरकार की यह नीति है कि जहां तक हो, नियत प्रमाप की वस्तुएँ ही खरीदी जायँ। ज्यो ज्यो उपभोक्ता प्रमाप वाली वस्तुओ पर विश्वास करेगे त्यो-त्यो औद्योगिक विकास की गति तीव्र होती जायगी। भारतवर्ष जैसे अविकसित देश मे तो कच्चे माल की बचत का महत्त्व युद्ध और शान्तिकाल दोनो मे एक सा है।

(III) औद्योगिक नियमन एव नियन्त्रण के क्षेत्र मे प्रगति—

स्वतन्त्र भारत की प्रथम औद्योगिक नीति, १६४८ को ध्यान मे रखते हुये सविधान म सशोधन किया गया और उद्योग (विकास एव नियमन) अधिनियम, १६५१ बनाया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत सभी नई एव विद्यमान सस्थाओ के लिये तथा विद्यमान सस्थाओ के भावी विस्तार के लिये लाइसेन्स लेना आवश्यक हो गया। सरकार को यह अधिकार प्राप्त हो गया कि वह किसी भी औद्योगिक सस्था के कार्यवाहन की जाच पडताल करे और ऐसे निर्देश दे जो कि वह आवश्यक समझे। यदि किसी सस्था का प्रबन्ध जारी रहे, तो सरकार उसके प्रबन्ध या नियत्रण को अपने हाथ म ले सकती है। एक केन्द्रीय परामर्शदाता समिति की स्थापना भी की जानी थी, जिसम उद्योग, श्रम, उपभोक्ताओ व प्रारम्भिक उत्पादको के प्रतिनिधि रखे जायेगे। यह सरकार को उद्योगो के विकास एव नियत्रण से सम्बन्धित सभी मामलो पर परामर्श देगी। पृथक पृथक उद्योगो के लिये भी परामर्शदाता परिषदो की स्थापना की जानी थी।

इन अधिकारो के प्रयोग द्वारा सरकार देश के प्रसाधनो का समुचित प्रयोग बडे व छोटे उद्योगो का सतुलित विकास और विभिन्न उद्योगो का प्रादेशिक वितरण करने का उद्देश्य रखती है। इस समय उक्त अधिनियम के अन्तर्गत १६२ उद्योग सम्मिलित है। केन्द्रीय परामर्शदाता समिति के अतिरिक्त निम्न उद्योगो के लिये विकास परिषदे भी स्थापित कर दी गई है—(I) इन्टरनल कम्बस्चन इजिन एव पावर ड्राइविन पम्पस्, (II) हैवी केमीकल्स, (III) बाइसिकिल, सीने पिरोने की मशीने व औजार, (IV) चीनी, (V) हल्के बिजली का सामान, (VI) भारी बिजली का सामान, (VII) दवाइयाँ, (VIII) अलकली एव सम्बन्धित उद्योग, (IX) ऊनी वस्त्र (X) कृत्रिम रेशमी वस्त्र, (XI) मशीन-टूल्स (XII) नॉनफैरस मेटल एव अलाय, (XIII)

तेल, साबुन एव रग, (xiv) खाद्य प्रोसेसिंग, (xv) आर्गेनिक केमीकल्स, (xvi) ओटोमोबाइल्स, (xvii) कागज एव (xviii) चमडा, चमडे का सामान, पिकर्स।

कई पेनल एव विशेषज्ञ समितियाँ भी समय-समय पर विभिन्न उद्योगो का अध्ययन करने के लिये नियुक्त की गई है। अक्टूबर सन् १९५९ और सितम्बर सन् १९६० के बीच १,३४९ नये लाइसेन्स (नये सस्थानो की स्थापना के लिये ५३६ सम्मिलित करते हुये) इस अधिनियम के अन्तर्गत स्वीकार किये गये। सन् १९५९ मे यह निर्णय किया गया था कि औद्योगिक मशीनरी व कुछ अन्य भेदा के निर्माण सम्बन्धित फर्मे पूजीगत वस्तुओ के आयात-लाइसेन्स प्राप्त करने के लिये सीधे ही प्राथना पत्र दे सकती हैं तथा एक बार ऐसा लाइसेन्स मिल जाने पर उद्योग अधिनियम का लाइसेन्स भी स्वतः मिल जायेगा। १०० से कम श्रमिक लगाने वाले छोटे एव मध्यम आकार वाले उद्योग जिनकी सम्पत्ति १० लाख म कम है, लाइसेन्स लने के बन्धन से मुक्त कर दिये गये है।

उन महत्वपूर्ण उद्योगो के विकास के लिये, जिनको प्राइवेट क्षेत्र मे पर्याप्त पूँजी नही मिल पा रही है, सरकार विशेष शर्तो पर ऋण देकर या अश पूँजी मे भाग लेकर सहायता करती है। भारत सरकार का केन्द्रीय स्टोर्स क्रय विक्रय सगठन अपनी स्टोस क्रय नीति के द्वारा देशी उद्योग को प्रोत्साहन दे रहा है। सन् १९५९-६० मे कुल क्रय (मूल्य १८३ करोड रु०) म १९% आयातित माल था, जबकि सन् १९५५-५६ म यही प्रतिशत ३७% था।

(IV) औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन के क्षेत्र मे प्रगति—

भारत के औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना जुलाई सन् १९४८ मे हुई थी। तब से यह औद्योगिक सस्थाओ को दीर्घकालीन ऋणो के रूप मे आर्थिक सहायता दे रहा है। मार्च सन् १९६० तक निगम ने कुल ७२·१८ करोड रु० के ऋण स्वीकृत किये, जिनम से ७ ८४ करोड रु० सन् १९५९ ६० मे ही स्वीकृत किया गया था। लगभग ⅓ ऋण उन नई सस्थाओ का स्वीकृत किये गये, जिन्होने स्वतन्त्रता के पश्चात् कार्य प्रारम्भ किया था। ४७ ४८ करोड रु० वास्तविक रूप मे ऋण दिया गया है। द्वितीय योजना मे निगम को केन्द्रीय सरकार के ऋणो के लिये १३ ५ करोड रु० की व्यवस्था की गई थी, बाद मे यह रकम २२ २५ करोड रु० तक बढा दी गई।

औद्योगिक वित्त निगम (सशोधन) अधिनियम, १९५७ का उद्देश्य निगम के प्रसाधनो मे वृद्धि करना ह, ताकि वह अपना कार्य क्षेत्र विस्तृत कर सके। अब ऐसी अनेक सस्थाये भी निगम मे ऋण प्राप्त कर सकती है जो कोई पर्याप्त प्रतिभूति देने मे असमर्थ हैं, किन्तु जिन्ह राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था की दृष्टि से प्रोत्साहन देना उचित है।

राज्य वित्त निगमो की सख्या अब १४ हो गई है तथा ये निगम मध्यम एव लघु पैमाने के उद्योगा की सहायता करत है, जो कि अखिल भारतीय निगम के कार्य-

अल्कोहल, सूती, ऊनी कपड़े तथा चमड़े के कारखाने, सीमेंट, चीनी, कागज, समाचार-पत्र का कागज, हवाई तथा समुद्री यातायात तथा सुरक्षा खनिज उद्योग। नमक, भारी रसायन, चीनी, सीमेंट आदि अखिल भारतीय महत्त्व के उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का निर्धारण सरकार करेगी।

(५) केन्द्रीय सरकार कुटीर एवं लघु उद्योगों का विशाल उद्योगों से समन्वय कराने का प्रयत्न करेगी।

(६) भारत विदेशी पूँजी तथा विदेशी साहस का उपयोग करने के लिए सहर्ष प्रस्तुत है। हाँ, विदेशी कम्पनी को भारतीय विशेषज्ञ प्रशिक्षित करने पड़ेंगे। यदि राष्ट्रीयकरण किया गया तो उसका उचित हर्जाना दिया जायगा। विदेशी पूँजी का नियन्त्रण भारतीय हाथों में ही रहेगा।

(७) श्रमिकों के हितार्थ गृह निर्माण की योजना की व्यवस्था भी की गई।

(८) प्रशुल्क नीति इस प्रकार प्रशासित होगी कि अनुचित विदेशी प्रतिस्पर्धा का अन्त होकर देश के उपलब्ध स्रोतों का पूर्णत उपयोग होने लगे।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था—

सन् १९४८ की औद्योगिक नीति का वास्तव में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था से अभिप्राय है। इससे तात्पर्य उस अवस्था का है जिसमें केवल वैयक्तिक उपक्रमी ही नहीं होते, वरन् सरकार भी उत्पादन का कार्य करती है और व्यावसायिक तथा उत्पादक संस्थाओं पर नियन्त्रण रखती है। दूसरे शब्दों में, कुछ उद्योगों पर केवल राज्य का स्वामित्व और नियन्त्रण रहता है, कुछ उद्योगों पर वैयक्तिक उपक्रमियों तथा सरकार दोनों का ही भाग रहता है और शेष पर केवल वैयक्तिक उपक्रमियों का ही नियन्त्रण रहता है। किन उद्योगों पर केवल राज्य का अधिकार रहे और किन पर केवल वैयक्तिक उपक्रमियों का, इसे राज्य की सरकार तय करेगी। साधारणत आधारभूत और मुख्य उद्योगों पर राज्य का ही नियन्त्रण रहता है। उपभोग की वस्तुएं तैयार करने वाले उद्योगों पर राज्य और व्यक्तिगत उत्पादक दोनों का ही नियन्त्रण रहता है, लेकिन छोटे और माध्यमिक पैमाने के उद्योगों पर प्राइवेट उत्पादकों का ही नियन्त्रण होना चाहिए।

भारत के लिये इस नीति का महत्त्व—

भारत के लिए तो उक्त नीति का बड़ा महत्त्व है। हमारे देश की स्थिति आज ऐसी नहीं है कि सारे उद्योगों को आँख बन्द करके राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय। हम तो आज नव विकसित अवस्था में हैं। हमें अपने देश की स्वतन्त्रता प्राप्त किये अभी पूरे १४ वर्ष ही हैं। हमारे देश की सरकार के पास पूँजी, तन्त्र, कुशल कर्मचारी एवं सचालकों की बड़ी कमी है, अत हमारे देश की जनता को।

कल्याण इसी मे है कि राष्ट्रीय सरकार एक मध्यम मार्ग का अवलम्बन करे, अर्थात् न तो एकदम राष्ट्रीयकरण कर डाले और न राष्ट्रीयकरण की योजनाओ का एक दम त्याग ही कर दे। वह उन उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करे, जहाँ की स्थिति पक्ष मे हो, अन्य का नही। दिनाक ६ अप्रैल सन् १९४८ को भारत की जो नवीन औद्योगिक नीति घोषित की गई, उसमे इन विचारो को पूरा-पूरा महत्त्व दिया गया और उद्योगो को तीन क्षेत्रो मे रखा गया—(१) राज्य अधिकृत क्षेत्र, (२) राज्य नियन्त्रित क्षेत्र, (३) वैयक्तिक क्षेत्र। अस्त्र-शस्त्र का निर्माण, अणु-शक्ति का उत्पादन एव नियन्त्रण, रेल यातायात का स्वामित्व एव प्रबन्ध, प्रतिरक्षा उद्योग, बहु-उद्देशीय नदी योजनाये, उर्वरक निर्माणशालाये और आवश्यक भेषज एव सश्लिष्ट तेल पर राज्य का एकाधिकार हो गया है। औद्योगिक विकास एव नियन्त्रण अधिनियम (सन् १९५३ मे सशोधित) मे उन ४२ उद्योगो की सूची दी गई है, जिन पर वैयक्तिक उपक्रम को राज्य की देखरेख मे कार्य करने दिया जायगा। शेष उद्योगा पर वैयक्तिक उपक्रम स्वतन्त्र रहेगे। हाँ, राज्य का साधारण नियन्त्रण बना रहेगा।

उक्त औद्योगिक नीति का मिश्रित भावना से स्वागत किया गया। कुछ लोगो की सम्मति मे यह 'जनतत्रीय समाजवाद' की बुनियाद थी। इसके विपरीत कुछ लोगो ने इसे इकतरफा तथा पूँजीपतियो के विरुद्ध बताया। यह भी आशका प्रगट की गई थी कि इस नीति को सभवत प्रान्तो द्वारा कार्यान्वित नही किया जाय, क्योकि 'उद्योग' प्रान्तीय विषय था।

इसी प्रकार, मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के कार्यवाहन म सघर्ष उत्पन्न होने स्वाभाविक है। वास्तव मे इसकी अपेक्षा केवल पूँजीवादी या केवल समाजवादी अर्थव्यवस्थाओ का सचालन करना सरल है। मिश्रित व्यवस्था के सामने अधिक जटिल समस्याये हाती है। पब्लिक और प्राइवेट सेक्टर के कार्यो मे समन्वय होना चाहिये, कुछ दुलभ साधनो का दानो म उचित बँटवारा होना आवश्यक है। यही नही, मिश्रित व्यवस्था को अनक नियत्रणो के अन्तर्गत कार्य करना पडता है।

केन्द्रीय सलाहकार समिति—

औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुसार केन्द्रीय सरकार ने सन् १९४८ मे औद्योगिक केन्द्रीय सलाहकार समिति (Central Advisory Council of Industries) की स्थापना की है, जिसमे उद्योग, श्रम, व्यापार, राज्य सरकारे तथा ससद सदस्यो का प्रतिनिधित्व है। इस समिति के कुछ मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं —

(१) केन्द्रीय सरकार को औद्योगिक नीति सम्बन्धी सलाह देना।

(२) किसी उद्योग विशेष की निश्चित समस्याओं के हल एव औद्योगिक

उत्पादन की अधिकतम वृद्धि प्राप्त करने के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को परामर्श देना।

(३) बड़े-बड़े उद्योगों के उत्पादन का सामयिक परीक्षण करना तथा उनकी पूर्ण उत्पादन क्षमता का उपयोग करने के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को सलाह देना।

(४) दुर्लभ कच्चे माल के वितरण के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को परामर्श देना।

(५) उद्योग के लिए आवश्यक कच्चा माल एवं पूंजीगत वस्तुओं के आयात के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को सलाह देना।

(६) इसके अतिरिक्त जो भी समस्यायें समय-समय पर समिति के सम्मुख केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रस्तुत की जायें उन पर विचार करना।

औद्योगिक केन्द्रीय सलाहकार समिति के संरक्षण में पृथक-पृथक उद्योगों की समस्याओं पर विचार करने के लिए अनेक विकास समितियां बनाई गई हैं जो उन उद्योगों का उत्पादन कार्यक्रम निश्चित करेंगी तथा विकास योजनायें बनायेंगी। औद्योगिक केन्द्रीय सलाहकार समिति का विस्थापन २३ नवम्बर सन् १९५० को औद्योगिक विकास समिति (High Level Development Committee on Industries) के निर्माण से हुआ। यह समिति वर्तमान उद्योगों से अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने तथा सामान्यतः सभी उद्योगों की विकास योजनायें बनाने के सम्बन्ध में सरकार को सलाह देगी जिससे वर्तमान उद्योगों की उत्पादनशीलता का पूर्ण क्षमता से उपयोग हो सके। इस समिति के मुख्य कार्य निम्नाङ्कित हैं :—

(१) यह समिति वर्तमान उद्योगों का उत्पादन कार्यक्रम निश्चित करेगी तथा ऐसे प्रयत्न करेगी जिससे कि श्रमिकों की कार्यक्षमता बढ़े एवं उत्पादन का व्यय न्यूनतम हो।

(२) उद्योगों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिये सुधार करना।

(३) उद्योगों की विशेष समस्याओं को हल करने के लिये परामर्श देना।

Standard Question

1 Point out the objectives and special features of India's Industrial Policy 1948

———

अध्याय १५

सन् १९५६ की औद्योगिक नीति

(Industrial Policy Of 1956)

भारत सरकार की औद्योगिक नीति सन् १९५६—

भारत सरकार ने ६ अप्रैल सन् १९४८ के प्रस्ताव में उस नीति को प्रतिपादित किया था जिसका वह औद्योगिक क्षेत्र में अनुसरण करना चाहती थी। प्रस्ताव ने इस बात पर जोर दिया कि अर्थ-व्यवस्था ऐसी हो जो उत्पादन में निरन्तर वृद्धि का और उसके न्यायोचित वितरण का प्रयत्न करे। इसने यह भी इंगित किया कि राज्य को उद्योगों का विकास करने में प्रगतिशील (Progressive) भाग लेना चाहिए। इसने यह निर्दिष्ट किया कि हथियार तथा बारूद, अणु-शक्ति एवं रेलवे यातायात के अतिरिक्त (जो कि केन्द्रीय सरकार के एकाधिपत्य में होंगे) छः मूल उद्योगों में राज्य ही नये कारखाने खोलने के लिए पूर्णतः दायी होगा। हाँ, जब राष्ट्रीय हित में राज्य स्वयं प्राइवेट साहस के सहयोग की आवश्यकता अनुभव करे तो बात दूसरी है। शेष क्षेत्र प्राइवेट साहस के लिए खुला रखा गया है यद्यपि यह स्पष्ट कर दिया गया था कि राज्य भी इस क्षेत्र में प्रगतिशील भाग लेगा।

इस औद्योगिक घोषणा को अब चौदह वर्ष बीत गये हैं। इन चौदह वर्षों के अन्दर भारत में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन और विकास हो गए हैं तथा भारत का संविधान बन गया है जिनमें कुछ मौलिक अधिकारों की गारण्टी दी गई है और राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों (Directive Principles of State Policy) का उल्लेख किया गया है। योजना कार्य संगठित आधार पर आरम्भ हो गया है और पंच वर्षीय योजना तो अभी हाल में पूर्ण हुई है। संसद ने समाजवादी समाज को अपनी सामाजिक एवं आर्थिक नीति का लक्ष्य स्वीकृत कर लिया है। इन परिवर्तनों के कारण नई औद्योगिक नीति की घोषणा आवश्यक हो जाती है, विशेषतः इसलिए कि अब हम तृतीय पंच-वर्षीय योजना पर अमल करने जा रहे हैं। इस नीति पर संविधान के सिद्धान्तों, समाजवादी उद्देश्य और इन वर्षों में प्राप्त हुए अनुभवों का नियन्त्रण होना चाहिए।

निर्देशक सिद्धान्त—

भारतीय संविधान यह घोषित करता है कि उसका उद्देश्य अपने सब नाग-

रिको के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक, न्याय, विचार, विश्वास, पूँजी एव धर्म की स्वाधीनता, स्थिति और अवसर की समानता एव ऐसी भ्रातृत्व भावना का प्रसार करना है, जो कि व्यक्ति की महत्ता और राष्ट्रीय एकता का आश्वासन दे। राजनीति के निर्देशक सिद्धान्तो मे यह कहा गया है कि राज्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को, जिसमे न्याय (सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक) राष्ट्रीय जीवन की सभी सस्थाओ को ओत प्रोत करे उपलब्ध और सुरक्षित करके अपनी जनता का अधिक कल्याण करने का प्रयत्न करेगा। यही नही, राज्य अपनी नीति को इस प्रकार रखेगा कि —

(अ) स्त्री व पुरुष सभी नागरिको को जीवन-यापन के पर्याप्त साधन-बराबर उपलब्ध हो।

(आ) समुदाय के भौतिक साधनो का स्वामित्त्व एव नियन्त्रण इस प्रकार मे वितरित होना चाहिए कि अधिक स अधिक सामान्य हित हो।

(इ) अर्थ व्यवस्था का सचालन इस प्रकार न हो कि जिसके परिणाम स्वरूप जन हितो के विरुद्ध धन और उत्पादनो के साधनो का केन्द्रीयकरण हो जाय।

(ई) बराबर काम के लिए, चाहे स्त्री का हो या पुरुष का, बराबर वेतन दिया जाय।

(उ) स्त्री व पुरुष सभी श्रमिको के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालको की छोटी अवस्था का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता के कारण लोग ऐसा करने के लिए विवश न हो जो उनकी आयु या शक्ति के परे हो।

(ऊ) बच्चो और नौजवानो को शोषण तथा नैतिक व आर्थिक पतन से बचाया जाय।

इन आधारभूत और सामान्य सिद्धान्तो को दिसम्बर सन् १९५४ मे (जबकि ससद ने समाजवादी समाज को अपनी सामाजिक और आर्थिक नीति का लक्ष्य मान लिया) अधिक स्पष्ट रूप मिला अत अन्य नीतियो की भाति औद्योगिक नीति का नियन्त्रण भी इन्ही सिद्धान्तो एव निर्देशो के अनुसार होना चाहिए।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि आर्थिक विकास की गति को तीव्र किया जाय और भारी उद्योगो एव मशीन उद्योगो का विकास किया जाय, सरकारी क्षेत्र का विस्तार किया जाय और बडे तथा वृद्धिशील (Increasing) सहकारी क्षेत्र का निर्माण किया जाय। ये अधिकाश लोगो के लिए लाभप्रद रोजगार के अवसर बढाने के लिए एव रहन-सहन का स्तर और कार्यदशाओ को सुधारने के लिए सुदृढ आर्थिक आधार प्रदान करते है। साथ ही, आय और धन मे विद्यमान असन्तुलन को घटाना, प्राइवेट एकाधिकार को रोकना और विभिन्न क्षेत्रो मे कुछ

ही व्यक्तियो के हाथो मे आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण होने देना भी उतना ही आवश्यक है, अत राज्य नई औद्योगिक सस्थाओ की स्थापना और यातायात सुविधाओ के बढाने मे अधिक प्रगतिशील भाग लेगा। वह बढते हुए पैमाने पर राज्य व्यापार (State Trading on an Increasing Scale) को हाथ मे लेगा। इसके साथ देश की विकासशील अर्थ-व्यवस्था मे प्राइवेट क्षेत्र को भी एक सगठित राष्ट्रीय विकास की एजेन्सी के रूप मे विकसित होने का अवसर मिलेगा। सहकारिता का सिद्धान्त यथासम्भव अपनाया जाएगा और प्राइवेट क्षेत्र को सहकारिता के क्षेत्र मे यथासम्भव वृद्धिशील भाग मिलेगा।

सरकारी क्षेत्र—

'समाजवादी समाज के राष्ट्रीय ध्यय की पूर्ति और शीघ्र एव सगठित विकास के लिए यह आवश्यक है कि सभी आधारभूत और सुरक्षा उद्योग या जनहित सेवाये (उनकी प्रकृति को ध्यान मे रखते हुए) सरकारी क्षेत्र मे होनी चाहिए। अब अन्य उद्योग, जो कि आवश्यक है और जिनके लिए इतना अधिक विनियोग आवश्यक है कि वर्तमान दशाओ मे केवल राज्य ही कर सकता है, सरकारी क्षेत्र मे होने चाहिए, अत राज्य को एक अधिक फैले हुए क्षेत्र मे उद्योगो के भावी विकास का प्रत्यक्ष दायित्त्व लेना होगा। फिर भी कुछ ऐसी बाते है जो इस अवस्था पर राज्य के लिए उस क्षेत्र की परिभाषा करना जिसमे वह भावी विकास का पूर्ण दायित्व ग्रहण करेगा और ऐसे उद्योगो का चुनाव काम, जिनके विकास मे वह प्रधान भाग लेगा, आवश्यक बना देती है। समस्या के समस्त पहलुओ पर योजना कमीशन से विचार-विमर्श करने के बाद केन्द्रीय सरकार ने उद्योगो को तीन श्रेणियो मे बाँटने का निश्चय किया है। ये श्रेणिया एक दूसरे से बिल्कुल पृथक तो नही रखी जा सकती, अर्थात् कुछ उद्योग दो या अधिक श्रेणियो मे भी रखे जा सकते है, किन्तु आधारभूत सिद्धान्तो और उद्देश्यो का सदैव ध्यान रखना चाहिए और सामान्य निर्देशो का पालन करना चाहिए। यह ध्यान रहे कि राज्य के लिए यह छूट है कि वह किसी भी प्रकार के उत्पादन को अपने हाथ मे ले ले।

उद्योगो का वर्गीकरण—

प्रथम श्रेणी मे वे उद्योग है, जिनके विकास का पूर्ण दायित्त्व सरकार पर होगा। **दूसरी श्रेणी** मे वे उद्योग होगे, जिन पर राज्य स्वामित्त्व बढाता जाएगा और इसलिए नए कारखाने स्थापित करने के लिए सामान्यत राज्य ही कदम उठाएगा, परन्तु प्राइवेट साहस से भी सरकारी प्रयत्नो मे सहायता करने की आशा रखी जायगी। **तीसरी श्रेणी** मे वे अन्य सब उद्योग होगे और सामान्यत इनका विकास प्राइवेट क्षेत्र के ऊपर छोड दिया जाएगा।

प्रथम श्रेणी के उद्योगो के नाम इस प्रस्ताव की प्रथम अनुसूची मे दिए गए हैं। इन उद्योगो मे नए कारखाने केवल राज्य ही स्थापित करेगा, किन्तु इसका यह

अर्थ नही है कि विद्यमान प्राइवेट इकाइयों के विकास पर अथवा नए कारखानों की स्थापना मे प्राइवेट साहस से सहयोग लेने पर कोई रोक होगी। हाँ रेलवे और हवाई यातायात हथियार एवं बारूद तथा अणु शक्ति का विकास केन्द्रीय सरकार के एकाधिकार मे किया जाएगा। जब कभी प्राइवेट साहस के साथ सहयोग करने की आवश्यकता होगी तो इसे राज्य या तो अधिकाश पूँजी देकर अथवा कारखाने के सचालन एवं नीति पर नियन्त्रण रखकर प्राप्त कर सकता है।

दूसरी श्रेणी मे जो उद्योग है उनके नाम द्वितीय अनुसूची मे दिये गए हैं। इनका भावी विकास तेजी से करने के लिए सरकार इन उद्योगों मे अधिक नए कारखाने स्थापित करेगी। साथ मे प्राइवेट साहस को भी स्वयं (या राजकीय सहायता से) विकास करने का इस क्षेत्र मे अवसर दिया जायगा।

शेष सब उद्योग तीसरी श्रेणी मे आते हैं और यह आशा की जाती है कि उनका विकास सामान्यत प्राइवेट साहस के प्रयत्नो द्वारा किया जायगा। यद्यपि इस क्षेत्र मे भी राज्य किसी भी उद्योग को स्वयं आरम्भ कर सकता है राज्य की यह नीति होगी कि प्राइवेट क्षेत्र मे इन उद्योगो के विकास को पच वर्षीय योजनाओं मे दिए कार्यक्रमो के अनुसार प्रोत्साहित किया जाय। इन उद्योगो के लिए राज्य यातायात शक्ति एवं अन्य सेवाओ का विकास करेगा और ऋण सहायता देने के लिये विशेष सस्थाये स्थापित करेगा। औद्योगिक एवं कृषि कार्यों के लिये सहकारी आधार पर सगठित सस्थाओ को विशेष सुविधाये प्रदान की जायगी। उपयुक्त मामलो मे तो राज्य स्वयं ही प्राइवेट क्षेत्र को आर्थिक सहायता दे सकता है।

प्राइवेट क्षेत्र के लिए आश्वासन—

प्राइवेट क्षेत्र की औद्योगिक सस्थाओ को सामाजिक एवं आर्थिक नीति के सामान्य ढांचे के अनुसार कार्य करना होगा और उन पर उद्योग (विकास एवं नियन्त्रण) अधिनियम तथा अन्य सम्बन्धित सन्नियमो का नियन्त्रण होगा। हां भारत सरकार यह अनुभव करती है कि राष्ट्रीय योजना के लक्ष्यो का उचित ध्यान रखते हुए इन उद्योगो के विकास को अधिकतम सम्भव छूट देनी चाहिये। जब किसी उद्योग मे प्राइवेट और सरकारी दोनो ही तरह के कारखाने विद्यमान हो तो राज्य की यह नीति रहेगी कि वह दोनो के साथ समानता का व्यवहार करे।

दोनो क्षेत्रो मे परस्पर स्थानापन्नता—

उद्योगो को अलग अलग श्रेणियो मे विभाजन करने का यह आशय नही है कि वे एक दूसरे से बिल्कुल पृथक होगे। कुछ उद्योग दो या अधिक श्रेणियो मे रखे जा सकेंगे और साथ ही दोनो क्षेत्रो मे स्थानापन्न अधिकार हो सकते है अर्थात् राज्य के लिये यह छूट है कि जब राष्ट्रीय योजना की दृष्टि से आवश्यक हो तो वह ऐसा उद्योग आरम्भ करे जो कि प्रथम और दूसरी अनुसूची मे नही दिया है। इसी प्रकार उपर्युक्त दशाओ मे प्राइवेट सस्थाओ को भी प्रथम अनुसूची मे वर्णित मद के

उत्पादन का (अपनी निजी आवश्यकताएं पूरी करने के लिए अथवा उपोत्पाद के रूप मे) आज्ञा दी जा सकती है। सामान्यत छोटे प्राइवेट कारखानो द्वारा इसका क्रापट बनाना स्थानीय आवश्यकताओ और छोटे पैमानो की खानो के लिये शक्ति प्रदान करने पर कोई रोक नही है। इसी प्रकार सरकारी क्षेत्र के भारी उद्योग अपने हल्के सामानो की पूर्ति प्राइवेट क्षेत्र से कर सकते है जबकि प्राइवेट क्षेत्र अपनी अनेक आवश्यकताओ के लिए सरकारी क्षेत्र पर निर्भर रहेगा। यही सिद्धान्त कम या अधिक, बडे या छोटे पैमाने के उद्योगों मे पारस्परिक सम्बन्ध से लागू होगा।

इस सदर्भ मे भारत सरकार राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के विकास मे कुटीर एव ग्राम्य तथा लघु उद्योगो पर जोर देगी। कुछ समस्याओ के सम्बन्ध मे, जिनको तुरन्त हल करना आवश्यक है उनके विशेष लाभ है। वे बडे पैमाने पर शीघ्र ही रोजगार प्रदान कर सकते है, व राष्ट्रीय आय का अधिक न्यायोचित वितरण करने का साधन हैं और वे पूँजी एव निपुणता के साधनो को प्रभावपूर्ण रीति से गतिशील बनाते हैं। अनियोजित शहरी विकास से उत्पन्न होने वाली समस्याये देश भर मे छोटे-छोटे उत्पादन केन्द्र स्थापित करके समाप्त की जा सकती है।

राज्य कुटीर और ग्राम्य एव लघु कुटीर उद्योगो को वडे पैमाने के उद्योगो का उत्पादन सीमित करके विभेदात्मक कूटनीति और प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहित कर रहा है। ये सहायता भविष्य म दी जावेगी किन्तु राज्य यह भी ध्यान रखेगा कि विकेन्द्रित उत्पादन क्षेत्र स्वय आत्म निर्भर बन सके और उसका बडे पैमाने के उद्योगो से समन्वय हो सके, अत राज्य ऐसे कदम उठायेगा, जिनसे छोटे उत्पादक की प्रतिस्पर्द्धा शक्ति मे वृद्धि हो। इसके लिये यह आवश्यक है कि उत्पादन की टेक्नीक मे बराबर सुधार होते रहे। टैक्नीकल एव आर्थिक सहायता का अभाव, कार्य करने की उपयुक्त जगह न होना मरम्मत एव देख रेख (Maintenance) के लिए अपर्याप्त सुविधाये होना छोटे पैमाने के उत्पादको के गम्भीर दोष हैं, जिन्हे दूर करने के लिए औद्योगिक एस्टेट एव सामुदायिक कार्यशालाय खोली जा रही है। ग्रामो मे बिजली का विस्तार किया जा रहा है इससे कारीगरो को सस्ती दर पर शक्ति उपलब्ध हो सकेगी। यदि औद्योगिक सहकारिताय स्थापित हो जाये तो लघु उत्पादन की बहुत-सी समस्याय सुलझ सकती है। इन्हे हर तरीके से प्रोत्साहित करना चाहिए।

सन्तुलित विकास—

विभिन्न क्षेत्रो के विकास स्तरो म अन्तर कम करना बडा महत्त्वपूर्ण है, क्योकि तब ही औद्योगीकरण से देश की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था लाभान्वित हो सकेगी। देश के विभिन्न भागो मे कुछ उद्योगो का अभाव प्राय. आवश्यक कच्चे माल आदि के

उपलब्ध न होने के कारण है। इसी प्रकार विशेष क्षेत्रों मे उद्योगों का केन्द्रीयकरण भी शक्ति, जल-पूर्ति और यातायात सुविधाओं के कारण सम्भव होता है। राष्ट्रीय योजना का यह उद्देश्य है। ये सुविधायें उन क्षेत्रों को भी प्रदान की जायें, जो आज उनके अभाव से ग्रस्त है, अथवा जहाँ रोजगार के अवसर प्रदान करना अधिक आवश्यक है। हाँ, स्थान अन्य दृष्टियों से उपयुक्त होना चाहिए।

औद्योगिक विकास के उक्त कार्यक्रम को पूरा करने के लिए देश के टैक्नीकल और प्रबन्ध साधनों पर बड़ा बोझ पड़ेगा, अत सरकारी सेवाओं मे उचित प्रबन्ध और टैक्नीकल विभाग स्थापित किए जा रहे है।

औद्योगिक शान्ति—

औद्योगिक प्रगति के लिए औद्योगिक शान्ति अत्यन्त आवश्यक है। समाजवादी प्रजातन्त्र मे श्रम भी विकास कार्य मे एक साझेदार है, अत उसे उत्साहपूर्वक इसमे भाग लेना चाहिए। औद्योगिक सम्बन्धों के नियन्त्रण के लिए कुछ सन्नियम बनाए गए है। मजदूरों और टैक्नीशियनों को प्रबन्ध मे अधिकाधिक भाग लेना चाहिए। सरकारी क्षेत्र के उद्योगो को इस दशा म उदाहरण स्थापित करना है।

राज्य द्वारा उद्योग और व्यापार मे अधिकाधिक भाग लेने की दशा मे यह बड़ा महत्वपूर्ण हो जाता है कि इसकी क्रियाओं का सचालन उचित रूप से हो। तुरन्त निर्णय और दायित्व ग्रहण की भावना इन सस्थाओं की प्रगति के लिए आवश्यक है। इसके लिए जहा-जहाँ सम्भव हो वहाँ अधिकारों का विवेकीकरण किया जाय और प्रबन्ध व्यापारिक ढग से चलाया जाय। यह आशा की जाती है कि सरकारी कारखाने राज्य की आय बढावेंगे और नए क्षेत्रों मे विकास के लिए धन जुटावेंगे, किन्तु ऐसी सस्थाओं को हानि भी हो सकती है। फिर भी उनके कार्य का कुल पर अनुमान लगाना चाहिए और उसको अधिकतम सम्भव स्वतन्त्रता हो।

भारत सरकार यह आशा करती है कि नई औद्योगिक नीति सभी वर्गों को सन्तुष्ट करेगी और दूसरे, राष्ट्र के शीघ्र औद्योगीकरण मे सहायता मिलेगी।

नीति की आलोचना—

सन् १९५६ की औद्योगिक नीति की निम्न आधार पर तीव्र आलोचनायें की गई :—

(१) जब सरकारी क्षेत्र मे कार्य सतोषप्रद नही है तो इतने उद्योगो को सरकार के अधीन करना न्यायपूर्ण नही है।

(२) इसके कारण सरकारी अधिकारियो के हाथो मे इतनी अधिक शक्ति पहुँच गई है कि वे हमारी स्वाधीनता पर कुठाराघात कर सकते है।

(३) निजी क्षेत्र को किसी प्रकार की प्रेरणा नही दी गई है।

(४) इस नीति से उद्योग तथा व्यापारी असमजस मे पड गये हैं कि कौन

उद्योग सरकारी क्षेत्र मे तथा कौन निजी क्षेत्र मे है। इससे देश का औद्योगिक विकास रुकेगा।

(५) इस नीति से कृषि तथा औद्योगीकरण मे सरकारी पूँजीवाद के दोष पैदा हो जायेगे।

(६) नीति बनाने वालो के अनुभवहीन होने के कारण यथार्थ शक्ति सरकारी अधिकारियो के पास चली जायगी।

(७) आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण राजनीतिज्ञो के हाथो मे होना उद्योगपतियो की अपेक्षा अधिक खतरनाक है।

(८) मजदूर सस्थाओ ने भी इस नीति का स्वागत नही किया।

किन्तु नीति की भावना तक पहुँचने पर यह स्पष्ट होगा कि बहुत सारे आरोप केवल आलोचना की दृष्टि मात्र से ही लगाए गए है, इसलिए अनेक विचारशील उद्योगपतियो ने भी इस नीति की सराहना की है। यदि हम देश का विकास चाहते है, जनता के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना चाहते है, देश का औद्योगीकरण वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लाना चाहते है तथा देश मे सही रूप से समाजवादी व्यवस्था चाहते है तो सरकारी नियन्त्रण तथा हस्तक्षेप आवश्यक है। किसी व्यक्ति या कुछ व्यक्तियो के लिए सारे समाज का हित नष्ट नही कर सकते। फिर नई नीति मे निजी क्षेत्र के विकास के लिए पर्याप्त अवसर दिये गये है। सरकार निजी उद्योगो को समुचित सहायता भी दे रही है। यह सच है कि सरकारी मशीनरी अभी अकुशल तथा दोषपूर्ण है, किन्तु सरकार इस ओर जागरूक है और ये दोष दूर किये जा सकते है। जहाँ तक सरकारी एकाधिकार का प्रश्न है, जब उद्योगो का प्रबन्ध कॉरपोरेशन पद्धति पर किया जा रहा है तो एकाधिकार सभव नही हो सकता। प्रबन्ध मे मजदूरो का भी पूर्ण प्रतिनिधित्व रहेगा।

नीति को सफल बनाने के लिए अनुकूल अधिनियमो तथा सगठन का निर्माण किया गया है, जैसे—औद्योगिक (विकास तथा नियन्त्रण) अधिनियम, लायसेन्स समिति, केन्द्रीय औद्योगिक सलाहकार परिषद्, औद्योगिक विकास परिषद् आदि।

कुछ सुझाव—

नीति की सफलता हमारी पच-वर्षीय योजनाओ की सफलता पर निर्भर रहेगी। इसके लिए हमारे निम्न सुझाव है —

(१) सही आँकडो का सकलन कराया जाय। यह कार्य महाविद्यालय तथा विश्व-विद्यालयो के अधीन किया जा सकता है।

(२) उद्योगो का सगठन इस आधार पर हो कि उनकी गतिविधियों की जानकारी जनता को हो सके।

(३) सरकारी कम्पनियो के प्रबन्ध के लिए सिविल सर्विस के अधिकारियो की अपेक्षा उचित तात्रिक योग्यता प्राप्त अधिकारियो की नियुक्त किया जाय तथा इसके लिए समुचित प्रशिक्षण केन्द्र खोले जायँ।

(४) प्रबन्ध म श्रमिका का प्रतिनिधित्व योरप के समाजवादी देशो की पद्धति के अनुसार (भारतीय परिस्थितियो के अनुकूल) होना चाहिए।

(५) कुटीर उद्योगो का विकास वृहत् उद्योगो के लिए बाधक न बने और उन पर किसी प्रकार का अनुचित प्रतिबन्ध न लगाया जाय।

(६) जिस प्रकार केन्द्रीय आयोग है उसी प्रकार प्रान्तो म स्थायी रूप से प्रातीय आयोग स्थापित किये जाय।

(७) सारे राष्ट्र मे उचित शिक्षा का प्रसार नैतिक उत्थान तथा राष्ट्र निर्माण की भावनाये जाग्रत होना आवश्यक है।

Schedule A

1 Arms and ammunition and allied items of defence equipment

2. Atomic Energy

3 Iron and Steel

4 *Heavy Castings and forgings* of iron and steel

5 Heavy plant and machinery required for iron and steel production for mining for machine tool manufacture and for such other basic industries as may be specified by the Central Government

6 Heavy electrical plant, including large hydraulic and steam turbines

7 Coal and lignite

8 Mineral Oils

9 Mining of iron ore manganese ore, chronic ore gypsum, sulpher, gold and diamond

10. Mining and Processing of copper, lead, zinc tin, molybdenum and wolf raw

11. Minerals specified in the schedule to the Atomic energy (Control of Production and Use) Order 1953

12 Aircraft

13. Air Transport

14 Railway Transport

15 Ship building, Telephones and Telephone cables, Telegraph and apparatus (excluding radio receiving sets).

16 Generation and distribution of electricity.

— —

Schedule B

1. All other minerals except minor minerals as defined in the section 3 of the Mineral Concession Rules, 1949
2. Alluminium and other non ferrous metals not included in Schedule A
3. Machine tools
4. Ferro-Alloys and tool steels
5. Basic and Intermediate products required by chemical industries such as the manufacture of drugs dyestuffs and plastics
6. Anti biotics and other essential drugs
7. Fertilizers
8. Synthetic Ruber
9. Carbonisation of Coal
10. Chemical pulp
11. Road Transport
12. Sea Transport

सन १९४८ एव सन १९५६ की औद्योगिक नीतियो की तुलना—

दोनो नीतियो के विश्लेषण से यह प्रगट होता है कि उनमे अन्तर की निम्न बाते है —

(१) सन् १९५६ की नीति मे सावजनिक क्षेत्र के विस्तार पर अधिक बल दिया गया है। इसका एक प्रमुख कारण यह था पिछले आठ वर्षो मे जो आधारभूत एव मौलिक उद्योग प्राइवेट क्षेत्र मे थे वे या तो विकसित नही हो सके अथवा उनके विकास की गति लक्ष्य की अपेक्षा बहुत कम थी।

(२) राज्य ने केवल हथियार एव बारूद अणु शक्ति रेल एव वायु यातायात के सम्बन्ध मे ही एकाधिकारक अधिकार ग्रहण किये है। इसके अतिरिक्त सरकारी क्षेत्र के सभी उद्योगो मे प्राइवेट साहस को कार्य करने की अनुमति दी जा सकती है बशर्ते ऐसा करना राष्ट्रीय हित मे हो।

(३) सन् १९५६ के प्रस्ताव मे परिभाषित तीनो ही वर्गों मे सरकारी उपक्रम के साथ साथ प्राइवेट उपक्रम को भी पनपने की अनुमति दी गई है बशर्ते प्राइवेट उद्योगो का इस प्रकार नियमन होता रहे कि वह ऐसा कोई अनुचित लाभ न कमाये जो कि जन कल्याण के लिए हानिप्रद हो।

(४) सरकार ने सावजनिक क्षेत्र मे आने वाले प्राइवेट उद्योग का राष्ट्रीयकरण करने का कार्यक्रम समाप्त कर दिया है। *सन १९४८ की नीति मे उसने यह*

अधिकार सुरक्षित रखा था कि सरकारी उपक्रमों के लिए पूर्णत सुरक्षित क्षेत्र मे काम करने वाले प्राइवेट उपक्रमो की स्थिति पर १० वर्ष बाद पुनर्विचार किया जायगा। नये प्रस्ताव मे इस अधिकार को छोड दिया गया है। यही नही, यह आश्वासन भी दिया गया है कि प्रथम वर्ग मे आने वाले प्राइवेट उपक्रमो का राष्ट्रीयकरण नही किया जायगा। जिस क्षेत्र मे प्राइवेट और सरकारी दोनो प्रकार के उपक्रम कार्यशील हो वहा सरकार उनसे समानता का व्यवहार करेगी।

(५) प्राइवेट सैक्टर का एक बढता हुआ भाग सहकारी आधार पर विकसित किया जायगा।

STANDARD QUESTIONS

1 Discuss carefully the present Industrial Policy of the Government of India
2. Critically examine the 1956 Industrial Policy of the Government of India
3. Compare and contrast the 1948 Industrial Policy with the 1956 Industrial Policy

अध्याय १६

औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम, १९५१

(Industries (Development & Regulation) Act, 1951)

प्रारम्भिक—

भारत की औद्योगिक नीति का उद्देश्य उन उद्योगो पर केन्द्रीय नियत्रण स्थापित करना है, जिनका विकास सम्पूर्ण भारत के लिए महत्वपूर्ण आर्थिक घटको पर निर्भर करता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारत सरकार ने सन् १९५१ मे औद्योगिक (विकास एव नियमन) अधिनियम स्वीकृत किया।

उद्योग (विकास एव नियमन) अधिनियम, १९५१ की मुख्य बातें—

मूल रूप मे उक्त अधिनियम की मुख्य बाते निम्नलिखित है —

(१) यह अधिनियम जम्मू न काश्मीर को छोड कर शेष सम्पूर्ण भारत पर लागू होता है। प्रथम अनुसूची मे दिये हुए ३६ उद्योगो पर (अब यह सख्या बढ गई है) यह अधिनियम प्रभावशील होगा।

(२) इन उद्योगो से सम्बन्धित इकाइयो को अपनी रजिस्ट्री करानी पडेगी। सरकारी आज्ञा के बिना नया कारखाना नही खोला जा सकता और न पुराना कारखाना ही बढाया जा सकता है।

(३) यदि इन औद्योगिक इकाइयो का उत्पादन कम होने, वस्तु का गुण घटने अथवा मूल्य के बढने की आशका हो तो केन्द्रीय सरकार उस उद्योग की जाँच कर सकती है और दोष पाने पर निम्न आदेश दे सकती है —

(अ) इकाइयाँ उत्पादन बढाने का यत्न करे।

(आ) इकाइया उद्योग के विकास का यत्न करे।

(इ) वे ऐसा कोई काम न करे जिससे उत्पादन मे कमी आवे।

(ई) सम्बन्धित वस्तु के मूल्य और वितरण पर नियन्त्रण रखना।

(४) यदि केन्द्रीय सरकार को यह विश्वास हो जाता है कि कोई इकाई उसकी आज्ञाओ को नही मान रही या जन-हित के विरुद्ध चलाई जा रही है तो वह उसका प्रबन्ध बगैर जांच किये भी खुद ले सकती है या किसी अन्य व्यक्ति को सौप सकती है।

(५) उद्योगो के सम्बन्ध मे सरकार को परामर्श देने के लिए केन्द्रीय परा-

मर्शदाता समिति बनाई गई जिसमे अनुसूचित उद्योगो के स्वामीगण, कर्मचारी वर्ग, उपभोक्ता वृन्द और अन्य दलो के प्रतिनिधि होगे जिन्हे केन्द्रीय सरकार नियुक्त करेगी।

(६) औद्योगिक विकास परिषद् का भी निर्माण किया गया है जिसमे सब दलो के प्रतिनिधि है। इनके निम्नलिखित कार्य है

(अ) उत्पादन की सीमा नियत करना योजनाओ म सामजस्य रखना और उन्नति के लिए सलाह देना।

(आ) कम कुशल इकाइयो को निपुण बनाने का यत्न करना।

(इ) उपभोक्ताओ के हित का ध्यान रखते हुए विक्रय और वितरण की उचित प्रणाली व्यवहार म लाना।

(ई) वस्तुओ क प्रमापीकरण म सहायता करना।

(उ) उद्योग को कच्चा माल मिलन म सहायता दना।

(ऊ) उत्पादन विधियो मे अनुसन्धान करना।

(ए) कर्मचारियो की प्रशिक्षा का प्रबन्ध करना।

(ऐ) उद्योग के निकाले हुए कर्मचारियो को अन्यत्र काम दिलाना।

(ओ) उपभोग के लिए निर्मित वस्तुओ और सेवाओ के विषय म खोज करना।

(औ) हिसाब करने की प्रणाली मे सुधार करना एव उसका प्रमापित करना।

(अ) आकड सग्रह करना।

(अ) श्रमिको के काम करने की दशाओ म सुधार करना।

(क) औद्योगिक क्रियाओ के विकेन्द्रीकरण के विषय मे जाच करना और उनसे सम्बन्धित छोटे पैमाने केउद्योग तथा कुटीर धन्धो के विकास को प्रोत्साहित करना।

(ख) केन्द्रीय सरकार के आदेशानुसार जाच करना और सलाह देना।

राष्ट्रीय विकास परिषद् हमारे प्रधान मन्त्री के शब्दो म ऐसा सगठन है जिसके द्वारा राज्य सरकारो और केन्द्रीय सरकार क मध्य राष्ट्रीय सरकार के समस्त कार्यो के विषय म घनिष्ठतम सहयोग रहता है। परिषद् के तीनो उद्देश्य य हे —

(१) पच वर्षीय योजना के समर्थन म राष्ट्र के प्रयत्न और साधनो को सुदृढ तथा सलग्न करना।

(२) समस्त अत्यावश्यक क्षेत्रो मे सामान्य अर्थ नीतियो को प्रगति दना।

(३) देश के समस्त भागो के सन्तुलित और त्वरित विकास को सुनिश्चित करना।

सन् १९५३ के सशोधन—

मई सन् १९५३ मे मूल अधिनियमो को अधिक व्यापक बनाने की दृष्टि स इसमे निम्न सशोधन किये गये —

(१) इस अधिनियम ने अनुसूचित उद्योगो की सूची मे ६ अधिक उद्योगो का समावेश कर लिया है।

(२) उपरोक्त सूची के अन्तगत आने वाले ऐसे कारखानो पर भी यह अधि नियम लागू होगा जिनमे एक लाख रुपये से कम पूँजी का विनियोग है।

(३) इस सशोधन से केन्द्रीय सरकार का उद्योगो पर नियन्त्रण एव प्रबन्ध सम्बन्धी विस्तृत अधिकार दे दिये गये है अर्थात् अब सरकार बिना जाच के भी उद्योगो का प्रबन्ध अपने हाथ मे ले सकती है तथा ऐसा करने के लिए केन्द्रीय सलाहकार समिति के परामश की भी आवश्य कता नही है।

(४) कोई उद्योग सरकारी नियन्त्रण म आने के बाद उसके पाषद सीमा नियम तथा पाषद अन्तर्नियमो का पालन करने के लिए सरकार बाध्य नही है।

(५) सरकार ससद की अनुमति से ५ वष की अवधि से अधिक भी नियन्त्रित उद्योग को अपने अधिकार मे रख सकती है।

सन १९५६ का सशोधन—

इसके अनुसार सरकार ने ३१ और उद्योगो को अनुसूचित उद्योगो की सूची मे ले लिया है। १ माच सन् १९५७ को सरकार की एक विशष उदघोषणा के द्वारा इस अधिनियम को लागू कर दिया गया है। इसके द्वारा जो उद्योग ५० मजदूरो का विद्युतशक्ति के सहार तथा सौ को बिना शक्ति के सहार चलाते हो सम्मिलित कर दिया गया है। इसमे उद्योगो का श्रणीकरण भी एक निश्चित आधार पर किया गया है। भारी उद्योग मन्त्रालय की प्रस विज्ञप्ति के अनुसार इनको रजिस्ट्रेशन सर्टिफिकेट तथा लाइसस आदि प्रदान किए जायग।

सन् १९६० का सशोधन—

माच सन् १९६० म भारत सरकार न ऐस कई उपाय अपनान की घोषणा की, जिनस नये उपक्रमो की स्थापना सम्बन्धी प्राथना पत्रो पर तुरन्त निणय दिया जा सके। इसस प्रवतको की असुविधा एव निराशा मे कमी हो जायगी। लाइसेन्सिग कमेटी न यह निश्चय किया है कि कुछ उद्योगो मे जिनमे नई क्षमता का स्वीकृति का प्रस्ताव नही है अगल ६ से १२ महीनो के भीतर सभी सभावित प्राथना पत्र लौटा दिए जायग। उन पर कोई विचार नही किया जायगा। जिन उद्योगो के लिय लाइसस स्वतन्त्रतापूवक दिय जा सकते है उनकी एक सूची बना ली गई है। १०० स कम श्रमिक रखन वाल तथा १० लाख स कम की स्थायी सम्पत्ति वाली औद्योगिक इकाइयो को किसी भी प्रकार का लाइसस लेन की आवश्यकता नही है। इस प्रकार अब लाइसेन्सिग कमेटी महत्वपूण परियोजनाओ के सम्बन्ध मे या क्षत्रिक महत्त्व वाल उद्योगो के सम्बन्ध मे जल्द निणय कर सकेगा।

उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम की कार्य प्रगति—

उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त हुये अधिकारों का प्रयोग करके बड़े और छोटे उद्योगों का संतुलित विकास तथा विभिन्न उद्योगों का समुचित प्रादेशिक वितरण करने का प्रयास किया है। इस समय १६२ उद्योग अधिनियम की प्रथम सूची में सम्मिलित है। सन् १६५२ में केन्द्रीय सलाहकार समिति (Central Advisory Council) की स्थापना की गई थी, जो केन्द्रीय सरकार को औद्योगिक नियन्त्रण तथा नियमन के विषय में परामर्श देती है। इस समिति ने उद्योगों की सामान्य समस्याओं (Common problems) पर भी विचार किया, जैसे—उद्योगों का स्थान, पुनर्वास के लिये अर्थ-व्यवस्था, आधुनिकीकरण आदि। एक लाइसन्स समिति (Licencing Committee) का भी गठन किया गया है, जो पंच-वर्षीय योजना के उद्देश्यों व प्राथमिकताओं के अनुसार औद्योगिक विकास का नियमन करने के लिये लाइसेन्स देती है। अक्टूबर सन् १६५६ से सितम्बर सन् १६६० के बीच १,३४६ नये लाइसेन्स दिये गये थे। इनमें से ५३६ लाइसेन्स नवीन संस्थाओं की स्थापना से सम्बन्धित है। सन् १६५६ में यह निश्चय किया गया था कि इन्डस्ट्रियल मशीनरी व अन्य आवश्यक मदों के लिए फर्में सीधे ही आयात-लाइसेन्स प्राप्त कर सकती हैं और एक बार ऐसा लाइसेन्स मिल जाने पर उद्योग अधिनियम सम्बन्धी लाइसेन्स भी स्वतः मिल जायगा। १०० से कम श्रमिक रखने वाले तथा १० लाख से कम स्थिर सम्पत्ति वाले छोटे एवं मध्यम उद्योगों को लाइसेन्स लेने के बंधन से मुक्त रखा गया है।

लगभग १८ उद्योगों के लिये विकास परिषद (Development Councils) स्थापित की जा चुकी हैं। इन उद्योगों के नाम निम्नलिखित है —

(1) Heavy chemicals (acids and fertilisers),
(2) Internal combustion engines and power driven pumps;
(3) Bicycles, sewing machines and instruments;
(4) Sugar;
(5) Light electrical;
(6) Heavy electrical;
(7) Drugs and Pharmaceuticals;
(8) Alkalis and allied industries;
(9) Woollen Textiles;
(10 Art silk textiles;
(11) [illegible]
(12) के संशोधन— s and alloys;
(13) सन् १६५३ में मूल [illegible]s ;

(14) Food processing;
(15) Organic Chemicals;
(16) Automobiles, automobiles ancillaries and transport vehicles;
(17) Paper, pulp and allied industries, and
(18) Leather, leather goods and pickers.

विभिन्न उद्योगों का अध्ययन करने के लिए समय-समय पर अनेक पैनल एव विशेषज्ञ समितियाँ नियुक्त की गई थीं। जिन महत्त्वपूर्ण उद्योगो का विकास प्राइवेट क्षेत्र मे पर्याप्त पंजी न मिलने के कारण रुकता है उन्हे सरकार विशेष शर्तो पर ऋण देकर या उनकी इक्विटी पूँजी मे भाग लेकर आर्थिक सहायता प्रदान करती है। भारत सरकार का केन्द्रीय क्रय सगठन (Directorate General of Supplies and Disposals) अपनी स्टोस क्रय नीति के द्वारा देशी उद्योगो को प्रोत्साहित करता रहता है। सन् १९५९ ६० मे उसकी कुल खरीद का केवल १९% आयातित माल था, जबकि सन् १९५५-५६ मे यह प्रतिशत ३७% था।

इस प्रकार हमारी लोकप्रिय सरकार देश का नियोजित ढग से औद्योगिक विकास करने के लिए कटिबद्ध है, क्योंकि उसका विश्वास है कि "राज्य के सामाजिक एव आर्थिक दायित्व के शीघ्र विस्तार द्वारा ही जनता की उचित आशाओ की पूर्ति सभव होगी। अत न तो उत्पत्ति के साधनो का पूर्ण राष्ट्रीयकरण करना उचित है और न व्यक्तिगत उपक्रम का बिल्कुल स्वतन्त्र छोड़ना ही उचित है। फिर भी इसका यह अर्थ अवश्य है कि सरकारी क्षेत्र का प्रगतिशील विस्तार तथा प्राइवेट क्षेत्र का नवीनीकरण सुनियोजित एव अर्थव्यवस्था की वास्तविक आवश्यकताओ के अनुरूप ही होना चाहिए।

उद्योग (विकास एव नियमन) अधिनियम का देश के औद्योगीकरण पर प्रभाव

गुणकारी प्रभाव—

आज भारत की औद्योगिक व्यवस्था अत्यन्त हीन दशा मे है। देश मे उद्योगो का वितरण बहुत अनुचित और बिना किसी सिद्धात के अनुसार हुआ है। जन-संख्या के वितरण से उसका कोई सम्बन्ध नही है। केवल बडे नगरो (विशेषत समुद्र के निकट वाले) मे ही उद्योगो के केन्द्र बन गय है। गाँवो मे उद्योग कहीं भी उन्नति पर नही है। विकेन्द्रीयकरण भी केवल अन्दर के बडे शहरो मे ही है। फलस्वरूप नगरो मे गन्दगी और अधिक भीड-भाड है। जीवनोपयोगी सामग्रियो के भाव बढ गये है, अत यह बडा आवश्यक है कि उद्योगो का विकास एव विशेष योजना के अनुसार हो। औद्योगिक (विकास एव नियन्त्रण) अधिनियम राज्य को ऐसे अधिकार प्रदान करता है, जिससे वह देश को सन्तुलित विकास की ओर ले जाय। लाइसेन्स प्रथा के कारण अब उद्योगपति अपनी मनमानी

नही कर सकेंगे और अपनी इच्छानुसार किसी भी स्थान पर औद्योगिक सस्था खोलना सम्भव न होगा। फलस्वरूप विकेन्द्रीयकरण के दोष दूर हो जायेगे। केन्द्रीय सरकार को कुछ दशाओ म उद्योग की जाँच करन और प्रबन्ध हाथ मे लेने ना अधिकार मिल जान से भी बडा हित होगा। इससे व्यापारीगण और उद्योगपति सदैव सतक रहेगे। कुछ औद्योगिक सस्थाओ की केन्द्रीय सरकार द्वारा जाँच भी कराई गई है। विकास सभाओ की स्थापना भी औद्योगिक विकास मे सहायक होगी और औद्योगिक शान्ति की स्थापना को प्रोत्साहन मिलेगा।

आलोचना—

(१) कुछ लोगो का आक्षेप है कि इस अधिनियम के अन्तर्गत सरकारी हस्तक्षेप से पूँजी की प्राप्ति मे रुकावट पडेगी, जिसकी दश को आज प्रचुर मात्रा मे आवश्यकता है। उद्योगो म पूँजी तो वैयक्तिक उपक्रमी ही लगावेगे, लेकिन उद्योगो पर प्रारम्भ से अन्त तक केन्द्रीय सरकार का नियन्त्रण रहेगा। ऐसी दशा मे बहुत थोडे उपक्रमी पूँजी लगाने को आगे बढेगे। अब प्रश्न यह है कि पूँजी जायेगी कहाँ? विदेशो मे? किन्तु सरकार विदेशी विनिमय पर भी तो नियत्रण रखती है। पूँजीपति पूँजी पर लाभ अवश्य चाहेगे, इसलिये उनका उसका विनियोग कही न कही करना ही होगा, अत यह आक्षेप निराधार है।

(२) लोगो का यह भी कहना है कि सरकार ऐसे प्रतिबन्धात्मक अधिनियम बनाकर व्यक्तिगत उपक्रम को जड से उखाडना चाहती है। यह आक्षेप भी पूँजीवादी दृष्टिकोण का द्योतक है। आलोचनात्मक समाज के असन्तोष मे ही भावी क्रान्ति के बीज होते है, जिसकी सन्तुष्टि करना सरकार का सवश्रेष्ठ कर्तव्य होता है, किंचित पूँजीपतियो की सन्तुष्टि नही।

(३) कुछ लोगो के मतानुसार इस अधिनियम के परिणामस्वरूप सरकारी एव वैयक्तिक उपक्रम मे तनातनी और बढ जायेगी। आलोचको ने यहाँ यह सोचने का प्रयत्न नही किया कि सरकार उद्योगो पर नियन्त्रण कब करेगी? सरकार को व्यर्थ मे नियन्त्रण करने का कोई शौक थोडे ही है। केन्द्रीय सलाहकार समिति के परामर्श से ही ऐसा नियन्त्रण किया जायेगा और समिति मे उद्योगपतियो, श्रमजीवियो तथा उपभोक्ता, सभी के प्रतिनिधि होगे। फिर सरकार अपनी मनमानी कैसे कर सकती है?

(४) कुछ लोगा का यह भी आक्षेप है कि लाइसन्स लिए बिना नए उद्योगो की स्थापना तथा विद्यमान उद्योगा की विस्तार योजनाये कार्यान्वित नही की जा सकती है और सरकार ऐसी नई कम्पनियो की स्थापना क लिए लाइसन्स नही देगी। क्या यह सोचना सरकार के प्रति उद्योगपतियो के अविश्वास का परिचायक नही है? हमारी जनप्रिय सरकार ने सितम्बर सन् १६५२ स फरवरी सन् १६५३ तक २५ नये उद्योगो की स्थापना एव विस्तार के लिए लाइसन्स प्रदान किय हैं, जो सरकार की औद्योगिक विकास की ओर रुचि का परिचायक है।

(५) यह भी कहा जाता है कि क्योकि विकास-समितियो का सगठन उद्योगो द्वारा न होते हुए सरकार द्वारा किया गया है, इसलिए इनसे इच्छित सुधार की आशा नही की जा सकती। साथ ही, उद्योगो के विकास के लिए प्रबन्धको को स्वतन्त्रता चाहिए, जो विकास समितियों के हस्तक्षेप के कारण नही रहेगी। इन आलोचको ने यह नही सोचा कि विकास समितियाँ केवल विशेष परिस्थितियो मे ही हस्तक्षेप करेगी, जैसे—जब उत्पादन मे भारी कमी हो जाय या वस्तु की किस्म मे विशेष ह्रास हो जाय और या हस्तक्षेप इसलिए होगा कि उन उद्योगो का सुदृढ आधार पर विकास हो, जो वाछनीय ही नही, अनिवार्य भी है। अनार्थिक इकाइयो को प्रोत्साहन देने का अर्थ है अकुशल प्रबन्ध की घोषणा एव उपभोक्ताओ का शोषण, जिसका समर्थन कोई भी विवेकी व्यक्ति नही करेगा।

(६) सन् १९५३ के सशोधन से तो अब सरकार बिना जाच-पडताल के किसी भी उद्योग को अपने नियन्त्रण मे ले सकती है। इससे उद्योग को अपने सुधार अथवा स्पष्टीकरण का अवसर नही मिलता। यह आलोचना सचमुच महत्त्वपूर्ण है, अत इस सम्बन्ध मे पुन सशोधन होना आवश्यक है, जिससे केवल उन्ही उद्योगो को जो देश विरोधी नीति को अपनाये, किसी समय भी सरकार नियन्त्रण मे ले सके, अन्यथा सभव है कि व्यक्तिगत उद्योगो को सदैव अपने अस्तित्व का खतरा बना रहे और उनकी भावी प्रगति रुक जाय।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि औद्योगिक (विकास एव नियमन) अधिनियम के विपक्ष मे जो आपत्तियाँ उठाई गई है उनमे (केवल अन्तिम आपत्ति को छोडकर) कोई तथ्य भी नही है, क्योकि किसी देश की सरकार अपनी आर्थिक प्रगति मे रोडे अटकाना नही चाहेगी, अत यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार सन्तुलित दृष्टि से इस अधिनियम की कार्यवाही करेगी, जिससे देश की औद्योगिक प्रगति सुदृढ आधार पर हो सके। इस सम्बन्ध मे यह लिखना अनावश्यक न होगा कि अभी हाल म राष्ट्रीयकरण के क्षेत्र मे दो नवीन घटनाये हुई हैं —(१) स्टेट बैंक की स्थापना और (२) जीवन बीमा का राष्ट्रीयकरण। स्टेट बैंक की स्थापना को सरकार द्वारा ग्राम्य क्षेत्रो मे साख सुविधाये बढाने की दशा मे एक सक्रिय और प्रभावशील कदम कहा जा सकता है। जीवन बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण २० जनवरी सन् १९५६ को हुआ। जीवन बीमा व्यापार के राष्ट्रीयकरण की आवश्यकता द्वितीय पच-वर्षीय योजना को शीघ्र कार्यान्वित करने के हेतु जनता की बचतें अधिक गतिशील बनाने के लिए हुई।

STANDARD QUESTION

1. Briefly discuss the important provisions and working of the Industries (Development and Regulation) Act, 1951, as amended up-to da'e

अध्याय १७

भारत में प्राशुल्किक स्वतन्त्रता का विकास

(Evolution of fiscal autonomy in India)

प्रारम्भिक—

भारत मे, अग्रेजी राज्य के पूर्व, औद्योगिक आर्थिक एव व्यापारिक सम्पन्नता का साम्राज्य था। भूतकाल म भारतवष एक समृद्धिशाली देश था, जिसम छोटी छोटी औद्योगिक इकाइया दूर-दूर तक फैली हुई थी। विश्व के सभी देशो से भारत क घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध थे। बैंकिग सस्थाओ का विकास हो चुका था और व्यापारियो तथा कारीगरो के सघो को राज्य द्वारा प्रोत्साहन व वित्तीय सहायता दी जाती थी।

जब ईस्ट इडिया कम्पनी ने भारत से व्यापार प्रारम्भ किया, तो प्रारम्भ मे तो उसने भारतीय उद्योगो के उत्थान का प्रयत्न किया, क्योकि कम्पनी जानती थी कि योरोपीय देशो म भारतीय निमित वस्तुओ की काफी मांग थी। परन्तु कुछ समय बाद उसने अपनी नीति बदल दी। अट्ठारहवी शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् योरोप के प्राचीन आर्थिक विचारो, व्यापार-व्यवस्था तथा उत्पादन रीतियो म महत्त्व-पूर्ण परिवर्तन हो गया। अनेक यान्त्रिक आविष्कारो के द्वारा बडी मात्रा मे उत्पादन करना सभव हो गया। औद्योगिक क्रान्ति का जन्म सर्व प्रथम ग्रेट ब्रिटेन मे हुआ, जिससे पहले योरोपीय देश अधिक प्रभावित हुये। इस प्रकार मशीनें तो ग्रेट ब्रिटेन तथा योरोप के अन्य देशो म थी। फलत भारत का आर्थिक विकास इस दृष्टि से किया जाने लगा कि वह इगलैण्ड के उद्योगो के लिये कच्चा माल उपलब्ध कर और उसके तैयार माल के लिये एक सुरक्षित बाजार बना रहे। इस घातक नीति के कारण भारतीय उद्योगो का शनै शनै पतन होने लगा, क्योकि एक ओर तो इगलैण्ड मे भारतीय निर्मित वस्तुओ के बहिष्कार का आन्दोलन चल रहा था और दूसरी ओर भारत मे उनको राज्य का सरक्षण मिलना बन्द हो गया। स्वेज नहर के निर्माण, यातायात तथा सदेशवाहन के साधनो के विकास के कारण भारतीय उद्योगो को योरोप के यन्त्र-निर्मित माल से कठिन प्रतियोगिता करनी पडी।

१९वी शताब्दी के मध्य से प्रथम महायुद्ध के आरम्भ तक भारत सरकार की प्रशुल्क नीति व्यापार मे हस्तक्षेप न करने की थी, अर्थात् व्यापार और उद्योगो पर कोई प्रतिबन्ध न था। वह वास्तव मे 'अबाध व्यापार का युग (Era of Laissez Faire) था। यही पर त नी इगलैण्ड की भी थी। आरम्भ म आवश्यकता

के आधार पर इसे ग्रहण किया गया था, परन्तु धीरे-धीरे यह एक सर्व मान्य सिद्धान्त बन गई। उन दिनो भारत पग-पग पर ब्रिटिश नीति का अनुकरण करता था और यह ब्रिटिश नीति ऐसी थी जिससे कि अग्रेजो का ही स्वार्थ सिद्ध होता था। सन् १८१३ मे ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में श्री टीरने (Tierney) के निम्न भाषण से उस समय भारत के प्रति ब्रिटिश नीति का आभास मिलता है—"हमारी आर्थिक नीति का यह सामान्य सिद्धान्त हो कि इगलैण्ड का बना हुआ माल भारत में बेचा जाय और उसके बदले में एक भी भारतीय वस्तु न ली जाय।" इस प्रकार भारत में मुक्त व्यापार नीति का ही पूरी तरह अनुकरण किया गया, जो सन् १८६४ तक रही। इस अवधि मे किसी प्रकार के आयात व निर्यात कर नही लगाये जाते थे। स्वतन्त्र व्यापार-नीति का इतनी सख्ती से पालन किया गया कि सन् १८५७ के विद्रोह के पश्चात् जब सरकार को आय प्राप्त करने के लिये निरक्राम्य करो के लगाने की आवश्यकता पडी, तो इन करो के उद्योग रक्षण प्रभाव को दूर करने के लिये देशी वस्तुओ पर उत्पादन कर लगाये गये। इस प्रकार भारतीय उद्योगो के विनाश के क्रम को पूरा किया गया और भारत एक कृषि प्रधान देश ही रह गया। भारत से इङ्गलैण्ड को कच्चा माल जाता था और वहाँ से निर्मित माल आयात किया जाता था। इस नीति को लार्ड डलहौजी की यातायात नीति से और भी बढावा मिला, जिसमे विदेशी आयात-माल के रेल-यातायात-दर अधिक सस्ते थे, अतः इस अवधि मे भारतीय उद्योग अधिक न पनप सके।

पी० दास गुप्ता ने अपनी पुस्तक 'भारत मे प्रशुल्क नीति' मे कहा है कि "उन दिनो भारत सरकार की कोई निश्चित प्रशुल्क नीति नही थी और टैरिफ का नियमन केवल सरकारी कोष की आवश्यकता पूरी करने की दृष्टि से किया जाता था। देश की आवश्यकताओ, औद्योगिक एव कृषि-विकास की समस्या तथा ऐसे ही अन्य आवश्यक बातो पर बहुत कम ध्यान दिया जाता था और ग्रेट ब्रिटेन मे अनुसरण की जाने वाली मुक्त-व्यापार नीति का भारत मे बिना इस बात का विचार किये पालन किया गया कि इससे भारतीय उद्योग-धन्धो को विदेशी माल की तुलना मे राशिपातन की कार्यवाहियों का शिकार होना पडेगा।"[1] भारत सरकार की टैरिफ नीति के पीछे जो निर्देशक सिद्धांत कार्य कर रहा था उसे तत्कालीन वित्त मत्री (१८७८) के शब्दो मे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—"आयात पर ऐसा कोई कर नही लगाना चाहिये जो कि देशी उद्योग को सरक्षण प्रदान करे और साथ ही ब्रिटेन मे उत्पादित माल पर कोई भी कर, भारतीय उत्पादन पर उतना ही उत्पादन कर लगाये बिना, नही लगाना चाहिए।"

भारत में प्राशुल्किक स्वतंत्रता का श्रीगणेश—

सन् १६१४—१८ के प्रथम महायुद्ध मे सरकार को अपनी आयात-निर्यात नीति पर अधिक नियंत्रण रखने की आवश्यकता प्रतीत हुई। दूसरे, उन दिनो

1 P. Das Gupta, Fiscal Policy of India, p 3.

स्वदेशी आन्दोलन भी जोर पकड़ रहा था जिसमें ब्रिटिश नीति की बड़ा आलोचना हार ी थी। तीसरे युद्ध काल मे औद्योगिक दृष्टि से भारत के पिछड़ा होने के कारण जो अनुभव शासकों को हुए उनसे विवश होकर ही यह आवश्यक समझा गया कि औद्योगिक नीति में कुछ परिवर्तन किया जाय। प्रथम युद्ध में अंग्रेज सरकार ने यह अनुभव किया कि जब तक उद्योगों को विकसित नहीं किया जायगा भारत ब्रिटिश साम्राज्य के लिए सहायक होने की अपेक्षा एक खतरा बना रहेगा। अतएव युद्ध स्थिति से घबड़ा कर ब्रिटिश सरकार ने कुछ भारतीय उद्योगों को प्रोत्साहन देने का निश्चय किया। सन् १६१६ मे एक औद्योगिक कमीशन (Industrial Commission) नियुक्त हुआ जिसने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि भविष्य में देश के औद्योगिक विकास में सरकार को सक्रिय भाग लेना चाहिये जिससे भारत मनुष्य एवं सामग्री की दृष्टि से आत्म निर्भर हो सके। कमीशन ने यह भी सिफारिश की थी कि औद्योगिक उत्तरदायित्व लेने के लिये सरकार अपने पास वैज्ञानिक एवं तात्रिक विशेषज्ञों की पर्याप्त संख्या मे नियुक्तियां करे जो उद्योगों को सलाह दे सकें। परन्तु दुर्भाग्य से कमीशन की सिफारिशों को ताक में रख दिया गया।

अगस्त सन् १६१७ मे मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों की घोषणा हुई जिसके अनुसार भारतीयों को स्वनिर्णय का अधिकार मिला। भारत की आर्थिक स्वतंत्रता की दिशा में यह पहिला कदम था। इस स्वनिर्णय के अधिकार के सम्बन्ध मे जाइन्ट सिलेक्ट कमेटी का यह मत था कि भारत एवं इंगलैण्ड की सरकार के सम्बन्धों को अन्य किसी बात मे इतना खतरा नहीं है जितना कि इस विश्वास में कि भारत की प्रशुल्क नीति का सचालन ग्रेट ब्रिटेन के व्यापारिक हितों के लिये व्हाइट हाल से होता है और आज भी यही विश्वास है इसमें सदेह नहीं। इस समस्या का समुचित हल तभी सभव है जब भारत सरकार को ब्रिटिश साम्राज्य का एक अविच्छिन्न भाग होने के नाते भारत की आवश्यकता के अनुसार प्राशुल्किक व्यवस्था करने की स्वतन्त्रता दी जाय। इन प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप सन् १६२० मे ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने प्राशुल्किक स्वतन्त्रता का प्रस्ताव (Fiscal Autonomy Convention) पास किया। इस प्रस्ताव के अनुसार भारत सचिव (Secretary of State for India) को प्रशुल्क सम्बन्धी उन मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं रहा जिन्हें भारत सरकार ने स्वयं अपनी विधान सभा की सम्मति से तय कर लिया हो।

किन्तु ऐसी स्वतन्त्रता से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ क्योंकि प्रायः सभी प्राशुल्किक विषयों पर भारत सरकार पहले भारत सचिव से पूछ लेती थी और तत्पश्चात् ही विधान सभा के सम्मुख रखती थी अतः भारत की प्रशुल्क सम्बन्धी नीति की पूर्ण जाँच करने तथा साम्राज्य प्राथमिकता (Imperial Preference) के प्रस्ताव पर विचार करके सिफारिश देने के लिये एक प्रशुल्क मंडल (Fiscal Commission) नियुक्त किया गया जिसके अध्यक्ष श्री इब्राहिम रहीमतुल्ला थे। यथार्थ में

जनमत बडे अश तक औद्योगिक सरक्षरा के पक्ष मे था, इसलिये इस दिशा मे कुछ न कुछ करना आवश्यक था।

STANDARD QUESTIONS

1 Briefly trace the development of tariff policy in India till 1921.
2 Briefly discuss the factors which led to Fiscal Autonomy Convention in 1921 Explain its salient features

---

अध्याय १८

विभेदात्मक संरक्षण की नीति

(Policy of Discriminating Protection)

प्रारम्भिक—

सन् १६२१ मे सर इब्राहीम रहीमतुल्ला की अध्यक्षता मे एक प्रशुल्क आयोग नियुक्त किया गया। इस आयोग को भारत सरकार की प्रशुल्क नीति और 'इम्पीरियल प्रिफरेन्स' के सिद्धान्त को लागू करने की सभावनाओ की जाँच करने का काम सौंपा गया। सन् १६२१ के प्रशुल्क आयोग की रिपोट सन् १६२२ म प्रकाशित हुई और सन् १६२३ म भारत सरकार न आयोग की मुख्य-मुख्य सिफारिशे स्वीकार कर ली। सम्पूर्ण *स्थिति का गहन अध्ययन करने क बाद रहीमतुल्ला आयोग* इस *निर्णय पर पहुँचा था कि* भारत का औद्योगिक विकास उसके विस्तार, उसकी जन-सख्या तथा उसके प्राकृतिक साधनों की तुलना मे बहुत पीछे था। आयोग ने बताया कि यद्यपि भारत एक कृषि प्रधान देश है, परन्तु उत्पादन करने के लिये इसमे अनेक प्राकृतिक सुविधाएँ हैं। यहाँ कच्चा माल प्रचुर मात्रा म उपलब्ध है, श्रम-शक्ति भी सस्ती है और उद्योगो का विकास करने के लिये पर्याप्त बिजली भी प्राप्त की जा सकती है। सूती कपडे तथा जूट के दो बडे उद्योगो के अनुभव से यह ज्ञात हो गया कि भारत अपने प्राकृतिक

साधनो का पूरा पूरा लाभ उठा सकने मे समर्थ है। आयोग ने अनेक कारणो से सरंक्षण की नीति अपनाने के लिये सुझाव दिया।

कमीशन ने यह देखा कि संरक्षात्मक प्रशुल्क के पक्ष म साधारण विश्वास प्रचलित था। यह विश्वास भावना अन्य देशो के उदाहरण म प्रेरित हुई देश भक्ति म निहित थी। ग्रेट ब्रिटेन को छोड़कर विश्व के सभी महान् औद्योगिक देश अपने उद्योगो की एक संरक्षात्मक दीवार खड़ी करके सुरक्षित रखते हैं तथा उनकी सम्पन्नता इस संरक्षण के कारण ही सम्भव हो सकी है। सन् १८७६ म जमनी ने निश्चित रूप से एक संरक्षण नीति अपनाई थी जिस पर वह आज तक कायम है और जिसके अंतर्गत उसने अपनी आश्चर्यजनक उन्नति (युद्ध पूर्व) कर दिखाई। सन १८८१ मे फ्रास ने मुक्त व्यापार की नीति से जिसे कभी भी जन समर्थन प्राप्त नही हुआ था, मुँह मोड लिया। सन् १८९९ म जापान ने भी संरक्षणात्मक दीवार खड़ी कर ली और सन् १९११ म उसे और भी मजबूत कर लिया। अमरिका भी जो विश्व का सबसे उच्च कोटि का औद्योगिक राष्ट्र है अपने गृह युद्ध के समय मे ही सरक्षण नीति अपनाये हुये है और इसे अधिकाधिक तीव्र करता जा रहा है।' *

प्रशुल्क आयोग का विचार था कि औद्योगिक विकास द्वारा भारतीय अर्थ व्यवस्था की अस्थिर प्रकृति जो कृषि पर अत्यधिक निर्भरता के कारण उत्पन्न हो गई थी, दूर हो जायगी। संरक्षण की नीति से औद्योगीकरण प्रोत्साहित होगा और औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय राजस्व आदि मे भी वृद्धि होगी। परन्तु आयोग इस निर्णय पर पहुँचा कि सभी उद्योगो को सरक्षण प्रदान करने की नीति भारत के लिये उपयुक्त न थी। संरक्षण प्रदान करने से पूर्व प्रत्येक उद्योग विशेष की सावधानी से जाँच करना आवश्यक था रिपोर्ट मे लिखा है कि साधारण उपभोक्ताओ और विशेष रूप म जन साधारण के हित मे कृषि के हित मे निरन्तर प्रगति और अनुकूल व्यापाराधिक्य के हित मे सरक्षण की नीति विभेदात्मक अथवा विवेचनात्मक होनी चाहिये जिसमे कि समाज पर कम से कम भार पड और औद्योगिक तथा वाणिज्य दशाओ मे अकस्मात् परिवर्तन न होने पाये। ऐसा प्रतीत होता है कि आयोग को इस बात का विश्वास हो गया था कि उद्योग सरक्षण से निश्चय ही समाज पर भार पडगा जिसको आयोग ने न्यूनतम करने का प्रयत्न किया। आर्थिक दृष्टि से अयोग्य उद्योगो के विकास को प्रोत्साहित करने के पक्ष में आयोग न था। अतएव आयोग ने सरक्षण के सम्बन्ध म कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किये जो विभेदात्मक सरक्षण के सिद्धान्त (Principles of discriminating protection) के नाम से विख्यात है—

* Report of the Indian Fiscal Commission, p 29—30

विभेदात्मक संरक्षण की नीति के सिद्धान्त—

उद्योगो मे सरक्षण सम्बन्धी भेद करने के लिये आयोग न निम्नलिखित सिद्धान्त प्रतिपादित किये । उसने तीन प्रमुख शर्ते रखी, जो त्रिमुखीगुर से विख्यात है ।

त्रिमुखी गुर (Triple Formula)—

(१) सरक्षण माँगने वाले उद्योग ऐसे होने चाहिये जिनको आवश्यक प्राकृतिक सुविधायें उपलब्ध हो, जैसे कच्चे माल की भारी पूर्ति, सस्ती शक्ति, श्रम की पर्याप्त पूर्ति, देश मे विस्तृत बाजार आदि । अलग अलग उद्योगो म इन लाभो का अलग-अलग तुलनात्मक महत्त्व होगा । परन्तु इन सबका माप करके इनके तुलनात्मक महत्त्व का पता लगाना चाहिये । ससार के सभी सफल उद्योगो को कुछ तुलनात्मक लाभ प्राप्त होते हैं, जिनके कारण उनको सफलता मिली है । कोई भी ऐसा उद्योग, जिसे तुलनात्मक लाभ प्राप्त नही है, इन उद्योगो मे सफल प्रतियोगिता नही कर सकता । इसीलिये भारतीय उद्योगो को उपलब्ध प्राकृतिक लाभो की सावधानी से विवेचना करनी चाहिये, जिससे कि यह निर्णय किया जा सके कि किसी ऐसे उद्योग को सरक्षण न दिया जाय, जो समाज पर एक स्थायी भार बन जाय ।

(२) उद्योग ऐसा होना चाहिये कि जो सरक्षण के अभाव मे या तो विकसित ही नहीं हो सकता अथवा फिर उसकी उन्नति इतनी शीघ्र न होगी कि वह देश के हित की रक्षा कर सके । सरक्षण का मुख्य उद्देश्य या तो उद्योगो का विकास करना होता है, जो इसके बिना विकसित न हो सके अथवा उनका वेगपूर्वक समुन्नत करना होता है ।

(३) उद्योग ऐसा होना चाहिये कि अन्त मे वह विश्वव्यापी प्रतियोगिता मे, बिना सरक्षण, खडा हो सके । इस शर्त के पूरा होने का अनुमान लगाते समय निस्सदेह प्रथम शर्त मे उल्लेखित प्राकृतिक लाभो की सावधानीपूर्वक जाँच की जानी चाहिये ।

अन्य सिफारिशें—

इसके अतिरिक्त, कमीशन ने कम महत्त्व की कुछ अन्य शर्ते भी लगाई थी, जैसे—

(अ) जो उद्योग बडे पैमाने पर अधिकता के साथ कम व्यय पर उत्पादन कर सके उसे सरक्षण के अधिक उपयुक्त समझा जायगा ।

(ब) जिस उद्योग स आगे चलकर देश की समस्त आवश्यकताये पूरी होने की आशा है, उसे सरक्षण मे प्राथमिकता मिलनी चाहिये ।

(स) राष्ट्रीय प्रतिरक्षा के लिये आवश्यक उद्योगो तथा आधारभूत उद्योगो को भी सरक्षण प्रदान किया जाय, चाहे वे उपरोक्त शर्ते भी पूरी न करते हो ।

(द) वस्तु राशिपातन किये हुये (अर्थात् बाजार पर एकाधिकार करने के लिये उत्पादन व्यय से कम मूल्य पर बेचे हुये) माल के मुकाबिले मे सरक्षण के विशेष उपाय प्रयुक्त होग अथवा यदि माल गवमूल्यित चलन वाले क्षेत्र से आये और इस

प्रकार भारतीय माल पर अनुचित दबाव डालने की स्थिति मे हो तो भी सरक्षण प्रदान किया जाय।

(य) इस प्रकार के कदम राजकीय सहायता प्राप्त विदेशी माल के विरुद्ध भी उठाये जाने चाहिये।

उक्त प्रशुल्क आयोग ने सिफारिश की कि एक तदर्थ प्रशुल्क मडल (Adhoc Tariff Board) की रचना की जाय। यह मडल प्रार्थी उद्योग की सरक्षण सम्बन्धी उद्योग की जाँच करेगा और यह भी देखेगा कि वह उद्योग त्रिसूत्रीगुर की शर्तों को कहाँ तक पूरा करता है। आयोग के सदस्यो का बहुमत यह चाहता था कि भारत का औद्योगिक विकास ब्रिटिश हितो को हानि पहुचा कर न हो। उसने स्पष्ट कहा था कि, "हम भूले नही है कि यू० के० साम्राज्य का हृदय है इसकी शक्ति पर ही साम्राज्य की एकता व शक्ति आश्रित है जब तक यू० के० अपना निर्यात व्यापार बनाये न रखे, साम्राज्य का हृदय कमजोर पड जायगा और यह ऐसी असामयिक अवस्था होगी कि इसकी ओर से साम्राज्य का कोई भी अङ्ग उदासीन नही रह सकता।" यही कारण है कि रहीमतुल्ला प्रशुल्क आयोग ने भारतीय उद्योगो के सरक्षण के लिये जो सिफारिशे की थी वे बहुत सकुचाते हुये की तथा उनमे बहुत सी शर्ते लगा दी।

सरक्षण देने के सम्बन्ध मे जो शर्ते लगाई गई थी वे भी त्रुटिपूर्ण थी। उदाहरण के लिये, यदि किसी प्रार्थी उद्योग के पास समस्त आवश्यक प्राकृतिक साधन है—जैसे, सस्ता श्रम, कच्चा माल, शक्ति बाजार आदि (गुर न० १), तो दूसरी शर्त बेकार हो जाती है, क्योकि ऐसी दशा मे वह उद्योग बिना सरक्षण के भी खड़ा रह सकता है। तीसरी शर्त अधिकारियो के व्यक्तिगत मत पर आधारित है। इस बात का निर्णय तो प्रशुल्क मडल के अधिकारी अपने मत के अनुसार करेगे कि कोई उद्योग विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना कर सकेगा या नही। इसके विरुद्ध कोई शिशु-उद्योग सरक्षण मांगने के लिये कोई आकड़ अपने पक्ष मे प्रस्तुत नही कर सकता। इस प्रकार आयोग की रिपोर्ट मे बहुत सी बाते ऐसी थी जो कि प्रशुल्क मडल के सदस्यो की इच्छा या अनिच्छा पर निर्भर करती थी। यदि वे चाहते, तो किसी उद्योग के प्रति उदार दृष्टिकोण अपना सकते थे और यदि व किसी को सरक्षण नही देना चाहते थे, तो कठोर रुख ल सकते थे।

साम्राज्य प्राथमिकता के सम्बन्ध मे कमीशन ने 'शर्तयुक्त साम्राज्य प्राथमिकता' (Conditional Imperial Preference) की सिफारिश की। इस नीति के अनुसार ग्रेट ब्रिटेन का तो प्रशुल्क करो के सम्बन्ध मे कुछ छूट दी जाय, परन्तु ऐसी छूट की आशा भारत ब्रिटेन से न करे। जहाँ तक साम्राज्य के अन्य देशों का सम्बन्ध था, यह सुविधाये पारस्परिक आधार पर अर्थात् यदि भारत को अन्य देशो से सुविधाये मिले, तो भारत भी उनको सुविधाये दे, अन्यथा नही।

व्यवहार मे विभेदपूर्ण सरक्षण—

रहीमतुल्ला कमीशन की सिफारिशो क अनुसार फरवरी सन् १९२३ से भारत सरकार न सरक्षण की नीति अपनाई। जुलाई सन् १९२३ म भारत मे प्रथम प्रशुल्क बोर्ड का स्थापना हुई जिसने अनेक महत्त्वपूर्ण उद्योगो को सरक्षण दिया। जिन उद्योगो को सरक्षण मिला उनका सक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है—

(१) लोहा एव स्पात उद्योग—

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् भारतीय लौह एव स्पात उद्योग को विदेशो स कडी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पडा। अन्त विवश होकर उसने सरक्षण की माग की। सन् १९२४ मे इसका मामला भारतीय प्रशुल्क मडल के सामने रखा गया। गहन जाच के उपरान्त प्रशुल्क मडल ने यह निर्णय किया कि आधारभूत उद्योग होने के नाते इसे सरक्षण दिया जाय। फिलहाल स्पात के आयात मूल्य और भारत म उसके बिक्री मूल्य मे अधिक अन्तर को दूर करने के उद्देश्य म मडल मे तीन वर्ष के लिये ३० रु० म ४५ रु० प्रति टन तक की दर से शुल्क लगाने की सिफारिश की। समय समय पर प्रशुल्क मडल द्वारा उद्योग की जाच होती रही। सन् १९३५ म ७ वर्षो के लिये और सरक्षण जारी रखा गया जो सन् १९४१ तक चालू रहा है। सन् १९४१ म टाटा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी ने यह कहा कि वह सभी परिस्थितियो का सामना करने म समर्थ हो गई है और इन सब परिस्थतियो मे सरक्षण का हटा लेना भी शामिल है। सन् १९४७ म प्रशुल्क मडल द्वारा विविध उद्योगो का जो जाच की गई, उसम लोहा एव स्पात उद्योगो न सरक्षण का माग नही की। अत इस उद्योग पर स सरक्षण हटा लिया गया। इस उद्योग को २३ वर्षो तक सरक्षण मिला और आज इसकी स्थिति इतनी सबल हो गई है कि अब यह अपने पैरो पर खडा रहने मे समर्थ हो गया है।

यद्यपि राजकीय औपचारिकताओ के कारण सरक्षण बहुत रुक रुक कर दिया गया किन्तु फिर भी भारत म लोहा एव स्पात उद्योग ने बडी तेजी के साथ उन्नति की है। यह उद्योग सरक्षण देने वाली नीति का सवश्रेष्ठ पुत्र सिद्ध हुआ है। आज भी भारत का लो एव स्पात उद्योग सबसे अधिक उत्पादन कर लेता है और राजकीय आय का प्रमुख साधन है। उपभोक्ताओ को भी कोई अतिरिक्त भार सहन नही करना पडता क्योंकि उत्पादन व्यय निरन्तर गिरता गया है और टिस्को (Tata Iron & Steel Comp ny) के कर्मचारियो की आर्थिक स्थिति भी सतोषजनक है। सरक्षण न हमारे लोहा स्पात उद्योग को इतना बल सरकार ने स्वी- आज यह उद्योग अपने पैरो पर खडा हुआ है था विदेशी प्रतिस्पर्धा ४५ रु० प्रति टन साथ सामना करने म समर्थ है। नक सहायक उद्योग ऽ।। बढ। सन् १९३९ म brics) भी इसके चारो ओर स्थापित हो गये है। सक्ष प मे तकी गई लुगदी प शुल्क जो सरक्षण प्रदान किया गया उससे सचमुच राष्ट्र लाभान्वि सन् १९४७ म जब पुन

(२) सूती वस्त्र उद्योग—

प्रथम महासमर के युग म सूती वस्त्र मिल उद्योग की स्थिति बडी अच्छी थी तथा उस समय इसने बहुत लाभ कमाया। परन्तु सन् १९२० के लगभग निम्न कारणो से यह उद्योग कठिनाइयो मे फस गया जैसे—पूँजीकरण (ver capitali za ion) अत्यधिक मजदूरी की दर सूत्र मे चान के साथ व्यापार समाप्त होना इत्यादि। अत सन् १९२६ म इसका मामला भारतीय प्रशुल्क मडल के सामने रखा गया, जिसने निम्न आधारो पर सरक्षण की सिफारिश की—ब्रिटिश सूता कपड के आयात पर ५% आयात कर लगाया गया और अन्य देशो के कपड पर १५% । इसके बाद जब जापान न राशि पातन (dumping) द्वारा भारतीय मडियो मे अपना कपडा भर दिया तो गैर ब्रिटिश सूती कपड पर ५० % आयात शुल्क लगा दिया गया। इस प्रकार ब्रिटिश माल पर कम आयात-कर होने के कारण ब्रिटिश हिता को बहुत लाभ पहुँचा।

यद्यपि लौह एव स्पात उद्योग की अपेक्षा सूती वस्त्र मिल उद्योग को काफी दर से सरक्षण मिला और वह भी मुख्यत जापानी वस्तु राशिपातन क विरुद्ध शस्त्र क रूप म परन्तु फिर भी सरक्षण से इसे पर्याप्त लाभ हुआ। निम्नलिखित आकडो म सूती वस्त्र मिल उद्योग को प्राप्त लाभ का अनुमान लगाया जा सकता है —

बटी हुई सूती डोरी और सूत (१० लाख पौंड मे)			सूती कपडो क टुकडे (गजो मे)		
वर्ष	देश मे तैयार	आयात	वर्ष	देश म तैयार	आयात
१९२६–२७	८०७	४९	१९२६–२७	२२५८	१७८८
१९३८-३९	१,३०३	३६	१९३८ ३९	४२६९	६४७

भारत मे प्राय ५० ००० लाख गज सूती कप की खपत होती है। यह सचमुच सौभाग्य का विषय है कि सरक्षण क वरदान स्वरूप इस उद्योग म हमने आत्म निर्भरता प्राप्त कर ली है। यही नही अब हम विदेश को भी निर्यात करन की स्थिति मे हो गये है।

मिकता' (Condit.

नीति के अनुसार ग्रेट उद्योग भारत का एक महत्वपूर्ण सगठित उद्योग रहा है परन्तु परन्तु ऐसी छूट की आशा के बाद इसकी स्थिति बडी खराब हो गई थी। विदेशी सफ का सम्बन्ध था यह सुविधाकार कर लिया था। सन् १९३० ३२ मे लगभग ५½ लाख देशो मे सुविधायें मिलें, तो भारत चीनी उद्योग को सरक्षण देने के लिये इसका मामला

प्रशुल्क मण्डल के सामने आया। प्रशुल्क मण्डल को यह विश्वास हो गया कि यह उद्योग त्रिमुखी गुर की सभी शर्तों को पूरा करता है। अत इसे ७।) रु० प्रति हडरवेट की दर से सरक्षण प्रदान किया गया। जब से चीनी उद्योग को सरक्षण दिया गया, तब से उत्पादन काफी बढा एव देशीय आवश्यकताओ की सन्तुष्टि के बाद कुछ चीनी निर्यात के लिये भी बचने लगी। अति-उत्पादन को रोकने के लिये सरकार ने गृह-उत्पादन पर कर लगा दिया और सरक्षण-शुल्क भी उतना ही बढा दिया। इस तरह सन् १६३४ मे सरक्षक-शुल्क ७।।।) हडरवेट और उत्पादन-कर १।-) था, जिससे कुल आयात-शुल्क ९% हो गया। सन् १९३७ मे सरक्षण शुल्क घटा कर ७।।।) प्रति हडरवेट कर दिया, परन्तु साथ मे २) का एक राजस्व कर भी लगा दिया गया। यह ९।।।) का कुल आयात कर सन् १९३९ तक चालू रहा। सन् १९३९ मे सरक्षण शुल्क ६।।।) रह गया और राजस्व कर सहित कुल आयात कर ८।।।) प्रति हडरवेट रहा। सन् १९४९ मे इसे पुन जारी रखा गया और मार्च सन् १९५० तक रहा। अब उद्योग बिना सहायता के अपने पैरो पर खडा रहने के लायक हो गया है, ऐसा अनुभव करते हुए सरकार ने सन् १९५० मे सरक्षण शुल्क हटा लिया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सरक्षण के अन्तर्गत चीनी उद्योग ने बडी उन्नति कर ली है। मन्दी के जमाने मे भी केवल चीनी का उद्योग ही समस्त भारतीय उद्योगो मे उन्नतिशील उद्योग था। सन् १९३२-३९ की अवधि के बीच चीनी के कारखानो की सख्या ३२ से बढकर १३९ हो गयी और इससे चीनी का आयात भी ५·३ लाख टन से घटकर केवल ३२,००० टन ही रह गया था।

(४) कागज और लुग्दी उद्योग –

अन्य उद्योगो की भाँति प्रथम महायुद्ध के उपरान्त कागज व लुग्दी उद्योग को कठिन प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पडा। अत सन् १९२४ मे इस उद्योग ने भी सरक्षण की माँग की, ऐसा अनुभव किया गया कि सबाई घास से बने हुए कागज व लुग्दी का उत्पादन अत्यन्त खर्चीला होता है परन्तु बाँस की लुग्दी अधिक सस्ती होती है और पर्याप्त मात्रा मे भी उपलब्ध है। उससे बने हुए कागज का भविष्य भी उज्ज्वल है। अत- लिखन और छपाई के कागज को १ आ० प्रति पौड की दर से सरक्षण दिया गया। पैंकिंग पपर को किसी प्रकार की प्राशुल्किक सहायता नही दी गई, क्योकि यह सिद्ध न हो सका कि इसके उत्पादन के लिए भारत मे सभी आर्थिक सुविधायें उपलब्ध है। इसी आधार पर अखबारी कागज को भी सरक्षण नही दिया गया। हाँ, प्रशुल्क मण्डल ने यह सिफारिश अवश्य की थी कि प्रयोगात्मक और शीघ्र कार्य के लिए आर्थिक सहायता दी जाय। वित्तीय सहायता की सिफारिश को सरकार ने स्वीकार नही किया। सन् १९२५ मे आयात की गई लकडी की लुग्दी पर ४५ रु० प्रति टन का शुल्क लगा दिया गया, जिससे कि बास की लुग्दी का उपयोग बढे। सन् १९३९ मे अगले तीन वर्षो के लिए सरक्षण जारी रखा गया, परन्तु आयात की गई लुग्दी पर शुल्क घटा कर २५ रु० मूल्यानुसार कर दिया गया। इसके बाद सन् १९४७ मे जब पुनः

मामला प्रशुल्क मन्डल के सम्मुख आया, तो उसने निर्णय किया कि इस उद्योग से सरक्षण हटा लिया जाय।

कागज उद्योग ने सरक्षण की अवधि म काफी उन्नति की। सभी प्रकार के कागज का उत्पादन, जो सन् १६२६ म केवल ०० ००० टन था सन् १६५६ म बढ कर १,६२,००० टन हो गया। आज यह उद्योग हमारी कागज सम्बन्धी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

(५) दियासलाई उद्योग—

सन् १६२- तक भारत अपनी दियासलाई । सम्बन्धित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूर्णत विदेशो पर निभर था जबकि डेढ रुपया प्रत ग्रास का राजस्व शुल्क जो मूल्यानुसार १००% से अधिक था आयात की गई दियासलाइयो पर लग हुआ था। इस शुल्क से दियासलाई निमाण करने के कुछ छोट उद्योग धन्धे शुरू किये गय। भारत की मण्डियो पर स्वीडन की दियासलाई कम्पनी का एकाधिकार छाया हुआ था। उसने सन् १६२४ और १६२६ के बीच म वैस्टन इण्डिया मैच कम्पनी के नाम से भारत म दियासलाई के कारखाने खोले। सन् १६२६ म इस कम्पनी ने भारतीय प्रशुल्क मन्डल से सरक्षण की मांग की और कहा कि कि डेढ रुपये के राजस्व शुल्क को सरक्षण शुल्क मे बदल दिया जाय। सरकार ने यह स्वीकार कर लिया। इस सरक्षण के परिणामस्वरूप स्वीडन के ट्रस्ट को भारतीय मन्डी पर एकाधिकार प्राप्त करने म बहुत सुविधा हुई। स्वीडिश ट्रस्ट विश्व की ७०% माग पूरा करता था। यह जर्मनी के *दियासलाई उद्योग को भी एक आधिन कम्पनी द्वारा नियन्त्रत करता* था। भारतीय प्रतिस्पर्धियो को समाप्त करने के लिये इसने अपने व्यापारियो को रिबेट, रिफण्ड इनाम आदि की सुविधाय दी। फलत दियासलाई से सम्बन्धित छोटे मोटे उद्योग धन्धे समाप्त हो गय। अथवा व ट्रस्ट क नियन्त्रण म आ गय। *दियासलाई उद्योग के सम्बन्ध मे एक उल्लेखनीय बात यह है कि सरक्षण द्वारा एक* विदेशी उद्योग प्रोत्साहित हुआ तथा फला फूला।

(६) नमक उद्योग—

सन् १६३० तक भारत के पूर्वी राज्यो मे नमक नहीं बनता था क्योंकि सरकार का कहना था कि इन प्रान्तो म नमक बन ही नहीं सकता। सन् १६-६ म नमक उद्योग का मामला भी प्रशुल्क मडल के सामने रखा गया। बोर्ड न अपनी रिपोट मे इस बात पर जोर दिया कि नमक उद्योग का विकास देश की समस्त माग को पूरा करने के लिये किया जा सकता है। अत भारत सरकार न सन् १६३१ मे नमक के आयात पर ४½ आ० प्रति मन की दर स आयात शुल्क लगा दिया। नमक उद्योग को इस प्रकार सरक्षण देने से इसकी शीघ्र उन्नति हुई। सन् १६३२ मे भारत और अदन मे भीषण दर-युद्ध (rate war) शुरू हो गई। सन् १६३५ म भारत मे आन्तरिक प्रतिस्पर्द्धा समाप्त करने और नमक के मूल्यो मे स्थायित्व रखने

के लिये एक 'नमक विक्री मडल' (salt marketing board) स्थापित किया गया। तब से यह उद्योग निरन्तर प्रगति कर रहा है। अब भारतीय नमक उद्योग को सरक्षण की आवश्यकता नही है।

(७) अन्य उद्योग—

उपर्युक्त उद्योगो के अलावा प्रशुल्क मडल ने कुछ अन्य उद्योगो को भी सरक्षण प्रदान किया, जो आयोग द्वारा निर्धारित शर्तों को पूरा करते थे। ऐसे उद्योगो मे य नाम उल्लेखनीय है—प्लाईवुड उद्योग मैगनेशियम क्लोराइड उद्योग, चाय की पेटियाँ और सोने के तार के उद्योग।

सरक्षण से वचित उद्योग—

सरक्षण से वचित उद्योगो मे से ये नाम उल्लेखनीय ह— (१) भारी रासायनिक उद्योग, (२) तेल उद्योग, (३) कोयला उद्योग, (४) सीमेन्ट उद्योग और (५) काँच उद्योग।

(१) भारी रासायनिक उद्योग—

भारी रासायनिक उद्योग (heavy chemical industries) को केवल १८ महीने (अक्टूबर १९३१ से मार्च १९३३) तक सरक्षण प्रदान किया गया था और इसके बाद वह बिना किसी वैध कारण के हटा लिया गया। भारी रासायनिक पदार्थ दो प्रकार के होते है—(i) अम्ल सलफ्यूरिक, हाइड्रोक्लोरिक और नाइट्रिक तथा उन पर आधारित कम्पाउन्ड्स और (ii) क्षार—जैसे सोडा एश, कास्टिक सोडा, सोडियम सलफाइड, जिंक क्लोराइड इत्यादि। इनमे से प्रथम प्रकार के रासायनिक पदार्थ तो भारत मे बनते थे, परन्तु द्वितीय श्रेणी के पदार्थ भारत मे नही बनते थे। प्रथम श्रेणी के रासायनिक पदार्थों का उत्पादन भी बहुत छोटी मात्रा म होता था और उनका उत्पादन व्यय भी बहुत अधिक था। यही नही, उद्योग को कडी विदेशी प्रतिस्पर्द्धा का भी सामना करना पडा, जिससे उद्योग कठिनाई म पड गया था। जब इस उद्योग का मामला प्रशुल्क मडल के सामने आया, तो अध्ययन के उपरान्त यह अनुभव किया गया कि भारत मे भारी रासायनिक पदार्थो की घोर आवश्यकता है। उदाहरण के लिए कागज, काँच, कपडा, चीनी मिट्टी, साबुन, रग, वार्निश, कृत्रिम रेशम आदि अनेक उद्योगो मे इनका उपयोग किया जाता है। भारी रासायनिक उद्योग केवल एक आधारभूत उद्योग ही नही है, वरन् सुरक्षा की दृष्टि से भी उसका विशेष महत्त्व है, क्योकि नाइट्रिक एसिड व सलफ्यूरिक एसिड का प्रयोग भयकर विस्फोटक बनाने मे किया जाता है। इसके अतिरिक्त रासायनिक खाद, जैसे सुपर फास्फेट्स तथा अमानिया सल्फेट का निर्माण रासायनिक उत्पादनो पर निर्भर करता है।

प्रशुल्क मडल के निम्न शब्द उल्लेखनीय है—"यह बात नीति विरुद्ध है कि जिस देश मे ७०% निवासी कृषक हो, उन्हे कृषि के लिये इतनी आवश्यक वस्तु,

जैसे कृत्रिम खाद के लिय, विदेशी आयात पर आश्रित रहना पडे।' अत प्रशुल्क मडल ने यह सिफारिश की कि—

(अ) वर्तमान राजस्व शुल्क का सरक्षण शुल्क म बदल दिया जाय।

(ब) १८ रु० प्रति टन की सहायता रासायनिक खाद के रूप म प्रयोग किये जाने वाले सुपर फास्फेटो पर दी जाय।

(स) रेल-भाडे म कमी की जाय।

किन्तु फिर भी भारत सरकार ने सरक्षण प्रदान नही किया और यह दलील दी कि गधक जैसे आधारभूत पदार्थ की अपर्याप्तता के कारण उद्योग को सरक्षण नही दिया जा सकता। फिर, भारत सरकार पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ढग से विशेष दबाव डाला गया, जिसके परिणामस्वरूप १८ महीने के लिये उद्योग को सरक्षण मिला। यह सरक्षण भी बाद म यह कह कर हटा लिया गया कि "उद्योग अभी पूर्ण रूप से विकसित नही हुआ है और सयोग (combine) मे सम्मिलित होना असम्भव पाया गया है।"

(२) तेल उद्योग—

सन् १९२८ मे जबकि बर्मा भारतवर्ष का एक अग था बर्मा शैल ग्रुप और स्टैन्डड आयल कम्पनियाँ हमारे देश मे दो प्रधान कम्पनियाँ थी। अटक आयल कम्पनी भी बर्मा ग्रुप मे ही सम्मिलित थी। स्टैन्डड आयल कम्पनी बहुत नीची दरा पर तेल बेचती थी अत बर्मा शैल ग्रुप और स्टैन्डड आयल कम्पनियो मे दर-युद्ध (rate-war) था। प्रशुल्क मडल को यह भी पता लगा कि एशियाटिक पैट्रोलियम कम्पनी ने बर्मा शैल ग्रुप को यह आश्वासन दिया था कि दर कम करने के परिणामस्वरूप यदि उसको कुछ क्षति पहुँचेगी तो वह उसे पूरा करेगी। अत. स्पष्ट है कि बर्मा शैल ग्रुप का मुख्य उद्देश्य स्टैन्डड आयल कम्पनी को नीचा दिखाना ही था। इसी उद्देश्य से उसन दर-युद्ध शुरू किया था जिसस कि वह स्टैन्डर्ड आयल कम्पनी को समझौता करने के लिये विवश करा दे। इस प्रकार अपने दर-युद्ध को वित्तीय सहायता देन के लिए उसन सरक्षण की माग की थी और स्टैन्डर्ड आयल कम्पनी से लडाई का भार वह मिट्टी के तेल के भारतीय उपभोक्ताओ पर फकना चाहती थी। यह दर-युद्ध भारतीय उपभोक्ताओ के लिये किसी भी दृष्टि स लाभदायक नही कहा जा सकता। यही कारण है कि प्रशुल्क मडल व भारत सरकार ने इस उद्योग को सरक्षण देना स्वीकार नही किया।

(३) कोयला उद्योग—

सन् १९२६ म कोयला उद्योग ने अपनी कठिन परिस्थितियो को प्रशुल्क मडल के सामने रखते हुए उससे सरक्षण की माग की। रेला का भाडा बहुत अधिक था और रेलवे वैगनो की बहुत कमी थी। उधर सहायता प्राप्त दक्षिणी अफ्रीका का कोयला बम्बई तथा कराची की मडिया मे भारतीय कोयले स सफल प्रतियोगिता

कर रहा था। इस प्रकार भारतीय कोयला उद्योग अत्यन्त सकट की परिस्थिति मे था। प्रशुल्क मडल ने सरक्षण की माँग को स्वीकार नही किया और कहा कि वास्तव मे इस उद्योग को सरक्षण की आवश्यकता ही नही है। उद्योग का जिस सकट का सामना करना पड रहा है उसका कारण इसका तीव्र विकास है। प्रशुल्क मडल के कुछ सदस्यो ने दक्षिणी अफ्रीकी कोयले पर १॥ रु० का शुल्क लगाने की सिफारिश की थी, परन्तु अधिकाश सदस्यो ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नही किया, क्योकि उनकी सम्मति मे ऐसा कदम उठाने से दूसरी ओर से प्रतिकार (i e aliation) होने की सभावना थी। भारत सरकार को बहुमत की राय पसन्द आयी और उसने कोयला उद्योग को सरक्षण देने से अस्वीकार कर दिया।

(४) सीमेंट उद्योग—

प्रथम महायुद्ध के युग मे सीमेन्ट उद्योग ने बडी तेजी से प्रगति की क्योकि युद्ध काल ही इसके लिये एक प्रकार से सरक्षण था। परन्तु प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के कुछ दिन बाद सीमेन्ट उद्योग को सकट का सामना करना पडा। सन् १६२४ मे विषम ब्रिटिश प्रतिस्पर्धा के कारण यह उद्योग समापन की स्थिति मे पहुँच गया था। भारतीय उपभोक्ताओ को अग्रेजी माल के प्रति पक्षपात था यद्यपि देशी सीमेन्ट की किस्म विदेशी सीमेन्ट की अपेक्षा कुछ बुरी न थी। इसके अतिरिक्त सीमेन्ट को इधर उधर ले जाने के लिये रेल-भाडा भी बहुत अधिक देना पडता था। जब सीमेन्ट उद्योग का मामला प्रशुल्क मडल के सामने आया, तो गहन अध्ययन के उपरान्त उसने निर्णय किया कि यद्यपि सीमेन्ट के उत्पादन के लिए भारतवर्ष मे सभी प्राकृतिक सुविधाये उपलब्ध है, परन्तु पारस्परिक सघर्ष के कारण इस उद्योग को सरक्षण देने से विशेष लाभ न होगा। उसने बडे सकोच के साथ समुद्र तट को भेजे जाने वाले सीमेन्ट पर निर्यात सहायता की सिफारिश की और मूल्यानुसार शुल्क के स्थान पर आयात किये गये सीमेन्ट पर एक विशेष शुल्क लगाने को कहा। भारत सरकार ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नही किया और किसी प्रकार का सरक्षण देने से इन्कार कर दिया।

इस सम्बन्ध मे यह लिखना अनावश्यक न होगा कि सन् १६२४ मे सीमेन्ट उद्योग का सरक्षण देना उतना ही आवश्यक था जितना कि वस्त्र मिल उद्योग अथवा लौह एव स्पात उद्योग के लिए, क्योकि यह उद्योग त्रिमुखी गुर की प्राय सभी शर्ते पूरी करता था। सरक्षण न देने का परिणाम यह हुआ कि कुछ समय पश्चात् तीन कम्पनियाँ दिवालिया हो गई। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यदि यह उद्योग सन् १६२५ मे इण्डियन सीमेन्ट मैन्यूफैक्चरस एसोसियशन के नाम से और सन् १६३५ मे एसोसियेटेड सीमेन्ट कम्पनीज के नाम से अपने को सयुक्त (combine) न करता, तो सभवत इसका अस्तित्व ही न रहता।

(५) काच उद्योग—

काच उद्योग का मामला प्रशुल्क मडल के सम्मुख सन् १६३२ मे आया।

अध्ययन के उपरान्त मडल इस निर्णय पर पहुँचा कि इस उद्योग के लिये आवश्यक सभी कच्चा माल (जैसे सिलिका बालू, बारेक्स, चूना, पत्थर और कोयला) प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। केवल सोडा ऐश की कमी है अत टैरिफ बोर्ड ने सरक्षण की सिफारिश की, क्योकि उसकी दृष्टि म भारत मे सोडा ऐश के उत्पादन की काफी संभावनायें थी। परन्तु दुर्भाग्य से उस समय की सरकार ने इस आधार पर सरक्षण की सिफारिश ठुकरा दी कि सोडा ऐश विदेशो से आयात करना पडता है। सच बात तो यह है कि सोडा एश का आयात इगलैण्ड से किया जाता था, अत: यदि भारतीय काँच उद्योग को सरक्षण प्रदान किया जाता तथा भारत मे ही सोडा ऐश के उत्पादन करने का प्रयत्न किया जाता, तो सभवत. ब्रिटिश हित कुप्रभावित होते। अत' अग्रेजी रासायनिक उद्योग की रक्षा करने के लिये भारतीय काच उद्योग को सरक्षण नही दिया गया।

अन्त मे, यह लिखना अनावश्यक न होगा कि यद्यपि भारत के अनेक महत्त्व-पूर्ण उद्योगो को प्रशुल्क मडल ने सरक्षण नही दिया और उसका ऐसा करना अनुचित भी था, परन्तु जिन उद्योगो को सरक्षण प्रदान किया उनको बहुत लाभ पहुँचा। उनकी स्थिति सुदृढ हा गई, विदेशी प्रतिस्पर्धा के सामने वे टिक सके तथा सरक्षण के सहारे उन्होने दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति की। सरक्षण के द्वारा जिन उद्योगो को लाभ हुआ उसका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है —

(१) उत्पादन मे वृद्धि—सुरक्षित उद्योगो ने सन् १९२३ से उत्पादन की दृष्टि से जो प्रगति की उसका अनुमान निम्नलिखित आकडो से लगाया जा सकता है।

उत्पादन मे वृद्धि

उद्योग	१९२२*	१९३९*	१९५२†	१९५४
स्टील इगाट्स (००० टन)	३११	१०४२	१,५५५	१,६८५
कॉटन पीसमाल (लाख गज)	१७,१४०	४१,१६०	४५,९४०	४९ ६८०
दियासलाई (लाख ग्रास)	१६०	२२०	३००	२७०
कागज और गत्ता (००० टन)	२४	६७	१३७	१५५
ईख चीनी (००० टन)	२४	९३१	१,४८३	१,००८

(२) मदी का दृढतापूर्वक सामना—जिन उद्योगो को सरक्षण प्रदान किया वे सन् १९२९–३० की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी का दृढतापूर्वक सामना कर सके और उनके पैर डगमगाये नही तथा सन् १९३९ तक सफलतापूर्वक जमे रहे। सन् १९३९ के बाद तो युद्ध रूपी सरक्षण प्रारम्भ हो गया, जिसमे अरक्षित उद्योग भी पनपने लगे।

---

* Fiscal Commission Report, 1950

† Monthly Abstract of Statistics

(३) **नये उद्योगो का जन्म**---सरक्षग ने अप्रत्यक्ष रूप से भी देश के औद्योगीकरण को प्रोत्साहित किया। इसके परिणामस्वरूप हमारे देश मे अनेक नये उद्योग-धन्धो ने जन्म लिया, जैसे रसायन उद्योग, कीलो व तार का उद्योग, इत्यादि।

(४) **रोजगार मे वृद्धि**—नये उद्योगो की स्थापना तथा पुराने उद्योगो के विस्तार के फलस्वरूप रोजगार के साधनो मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। उदाहरणार्थ, जबकि सन् १९३१ मे केवल १४ लाख व्यक्ति कारखानो मे नौकर थे सन् १९३९ मे यह सख्या १७ लाख और सन १९५० मे दोगुनी अर्थात् २८ लाख हो गई।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि विभेदात्मक सरक्षण की नीति ने अपने सकुचित क्षेत्र मे काफी सफलता प्राप्त की और इन प्रमुख उद्योगो के सरक्षण मे समाज को मिलने वाले प्रत्यक्ष लाभ, उपभोक्ताओ पर पडने वाले भार से कही अधिक है। यदि भूतकाल मे सरक्षण की नीति अधिक उदारतापूर्वक अपनाई जाती, तो भारत का विकास एकागी नही रहता, वरन् औद्योगिक दृष्टि से वह अब तक बहुत आगे बढ गया होता।

क्या सरक्षण एक भार है ?—

कुछ लोगो के मतानुसार सरक्षण उपभोक्ताओ के लिये भार स्वरूप होता है, क्योकि सरक्षण के अभाव मे उपभोक्तागण विदेशी वस्तुओ का भी स्वतन्त्रतापूर्वक उपभोग कर सकते है। परन्तु यदि हम राष्ट्रीय हित की दृष्टि से विचार करे, तो इसी निर्णय पर पहुँचेगे कि सरक्षण भार नही होता। इसमे तो सदेह नही कि सरक्षण से ऊँचे मूल्यो के परिणामस्वरूप कुछ तो बोझ पडता ही है, परन्तु यह बोझ सरक्षण की मात्रा और समय पर निर्भर करता है। इस भार का माप करने के हेतु हमे सरक्षण शुल्क तथा राजस्व शुल्क की उन दरो मे तुलना करनी पडेगी जो कि सरक्षण न होने पर लगाये जाते। इसके अतिरिक्त हमको यह भी मालूम करना पडेगा कि विदेशो से कितना माल आयात किया गया, देश के अन्दर कितना माल निर्माण किया गया, सरक्षण के पूर्व आन्तरिक मडियो मे माल की कीमत क्या थी और सरक्षण के उपरान्त मूल्य मे क्या परिवर्तन हुआ। इन तथ्यो के विश्लेषण के उपरान्त ही यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अमुक उद्योग को सरक्षण देने से कितना लाभ हुआ।

सरक्षण की प्रथा इस आधार पर आलोचना की जाती है कि रक्षित करो का भार गरीब लोगो पर पडता है। यह सत्य है कि परिणामस्वरूप उपभोक्ताओ पर कुछ भार अवश्य पडता है, किन्तु निर्धन वर्ग ही इससे प्रभावित होता है, यह ठीक नही। दूसरे, क्या होने वाला नुकसान प्रत्याशित लाभ से अधिक है ? इस समस्या पर गभीरता से विचार करने पर पता चलेगा कि अधिकाश सरक्षित वस्तुयें ग्रामीण क्षेत्रो मे जाती ही नही है। उदाहरणार्थ, ऐसी वस्तुयें जैसे रेशमी कपडा, शराब, कॉकरी घडियां, कटलरी, काच का सामान इत्यादि वस्तुओ का उपभोग मुट्ठी भर

नगरों में ही केन्द्रित है, ग्रामीण क्षेत्रों में इनका उपभोग शून्य के बराबर है। गाँव वाले अधिक कागज, बराडी या स्पात का भी प्रयोग नहीं करते। सूती पीस मिल पर शुल्क राशिपातन व विदेशी मुद्रा के अवमूल्यन के विरुद्ध लगाया गया था। उसमें केवल वह अनुचित लाभ समाप्त हो गया, जो कि उपभोक्ता निर्माता के अधिकार के विरुद्ध पा सकता था। इसलिए भारत में वास्तव में ग्रामीण जनता संरक्षण का मूल्य अदा नहीं करती, वरन् मध्यम वर्ग करते है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में तो कर-पद्धति (Taxation System) भी अधिक प्रगतिशील हो गई है। आय के उपर सुपर टैक्स, विलासिता की वस्तुओं पर विक्रय कर और शुल्क लगन से धनाढ्य व्यक्ति प्रतिदिन राजकीय कोष में अधिक से अधिक रुपया दे रहे है। आज हमारी सरकार इस आय से जन कल्याण की अनेक योजनायें कार्यान्वित कर रही है।

ऊँची कृषि आय (agricultural income) पर भी कर लगा दिया गया है। इस बात के भी अनेक प्रमाण है कि रुक-रुक कर दिये जाने वाले संरक्षण से भी देश लाभान्वित हुआ है। आज हमारे आर्थिक नियोजन में जो वृद्धि हुई है वह संरक्षण का ही परिणाम है। देश की प्राकृतिक सम्पदा, जो अभी तक गुप्त अवस्था में पड़ी हुई थी उसका अब पूर्ण उपयोग होने लगा है। चीनी उद्योग की प्रगति संरक्षण के लाभों का एक ज्वलन्त उदाहरण है। कागज के निर्माण के लिये बांस की लुग्दी का प्रयोग करना बिना संरक्षण के असम्भव था। आज हमारे देश में अनेक ऐसी वस्तुओं का निर्माण होने लगा है (जैसे, बिजली का सामान, प्लास्टिक, रंग वार्निश, मशीनें, औजार, सिलाई की मशीनें, दवाइयाँ, रेडियो रिसीवर इत्यादि) जिनकी पहले हम कभी कल्पना नहीं कर सकते थे। संक्षेप में, हम यह कह सकते है कि हमारी औद्योगिक प्रगति, उपभोग के स्तर में वृद्धि तथा राष्ट्रीय आय की वृद्धि बहुत कुछ संरक्षण का ही परिणाम है। अतः संरक्षण से भारतीय जनसाधारण पर कोई भार नहीं पड़ा।

विभेदात्मक-संरक्षण-नीति की आलोचना—

यद्यपि संरक्षण की विभेदात्मक नीति से कुछ उद्योगों को (जैसे लोहा तथा स्पात, वस्त्र मिल उद्योग, चीनी उद्योग, कागज उद्योग आदि) विशेष लाभ हुआ, किन्तु फिर भी इसे पूर्णतः व्यापार एवं उद्योग के हित में नहीं कह सकते। इस विवेचनात्मक या विभेदपूर्ण नीति की कई लोगों ने आलोचना की है।[1] श्री अदारकर के शब्दों में, "विभेदात्मक संरक्षण की नीति का परिणाम इससे अधिक श्रेष्ठ नहीं हुआ कि एक निरुत्साहित सहायता जो उदासीनता से और कुढ़ कर जिन उद्योगों को दी गई उन्हें बाद में अपने हाल पर छोड़ दिया गया।" कुछ लेखकों ने यहाँ तक लिखा है कि "यह

---

1. *B. P. Adarkar*—"Indian Fiscal Policy," (2) *D. K. Malhotra*-"Review of Indian Fiscal Policy", (3) *Vakil* and *Munshi*—"Industrial Policy with special references to tariffs",

पूरी की पूरी भेद-भाव की ही नीति थी, सरक्षण की नही।" इस नीति के परिपालन से राष्ट्रीय हितो की विशेष रक्षा नही हुई। हमारी व्यापारिक व औद्योगिक समृद्धि जिस गति मे होनी चाहिए थी, नही हुई। इस सरक्षण से भारत को जो मिला है वह उसकी तुलना मे कुछ भी नही है जो कि जापान व रूस को थोडे ही समय मे सरक्षण द्वारा प्राप्त हुआ। भारत मे औद्योगिक विकास की अपेक्षाकृत न्यून सफलता का प्रमुख कारण यह है कि यहा विदेशी सरकार का अधिकतर स्वार्थ भारत मे अग्रेजी माल बेचने मे निहित था, न कि इस देश के कारखानो मे माल बनाने मे। यही कारण है कि भारत आज भी मुख्यतः एक कृषि प्रधान देश है और उद्योग-धन्धो का बहुत कम विकास हो सका है।

विभेदात्मक नीति की प्रमुख आलोचनाये इस प्रकार है:—

(१) सरक्षण प्राप्त करने के लिये प्रशुल्क आयोग ने त्रिमुखी गुर के अन्तर्गत जो शर्ते रखी थी वे इतनी कडी थी कि अनेक उद्योग उन्हे पूरा करने मे असफल रहे।

(२) उन्ही उद्योगो को सरक्षण दिया जाता था, जिन्हे प्राकृतिक सुविधायें पर्याप्त मात्रा मे सुलभ होती थी। यह विचार सचमुच बडा हास्यप्रद है कि जब उद्योग को समस्त प्राकृतिक सुविधाये प्राप्त हो, तब ही उसे सरक्षण दिया जाय। यदि प्राकृतिक सुविधायें उद्योग को सुलभ हो तो फिर उसे सरक्षण की आवश्यकता ही क्यो होने लगी? वास्तव मे सरक्षण की सुविधा तो उन उद्योगो को देनी चाहिए जिन्हे प्राकृतिक सुविधायें न हो।

(३) इसी प्रकार त्रिमुखी गुर का दूसरा सिद्धान्त भी हास्यप्रद प्रतीत होता है, क्योकि जब कोई उद्योग अन्य किसी मार्ग मे उन्नति नही कर सकता, तब ही तो वह सरक्षण के लिये इच्छुक होता है।

(४) उद्योग का आन्तरिक बाजार न होने की दशा मे सरक्षण से वचित रखना भी अन्याय है। वास्तव मे ऐसे ही उद्योग सरक्षण के प्रथम अधिकारी हैं, क्योकि वे इसके बल पर ही उन्नति करके बाजार बना सकते है।

(५) विश्व के अन्य किसी भी देश ने सरक्षण प्रदान करने मे ऐसी कडी शर्ते नहीं बरती, जैसी कि रहीमतुल्ला आयोग ने लगाई।

(६) एक कृषि प्रधान देश के लिये ऐसी कडी नीति से लाभ की अपेक्षा हानि होने की अधिक आशका रहती है, और वास्तव मे ऐसा हुआ भी। औद्योगिक दृष्टि से हम इतनी प्रगति न कर सके, जितनी हमको करनी चाहिए थी अथवा हम कर सकते थे।

(७) प्रोफेसर अदारकर के अनुसार भारतीय सरक्षण प्रदान करने की शर्तों ने सरक्षण के क्षेत्र को बहुत सकुचित कर दिया।

(८) सरक्षण प्रदान करते समय इस बात को ध्यान मे नही रखा गया कि किस उद्योग को सरक्षण देने से राष्ट्र का अधिक हित होगा। उदाहरणार्थ, मैगनेशियम क्लोराइड उद्योग की जांच सन् १९२४ मे की गई, किन्तु उसे इस आधार पर सरक्षण नही दिया गया कि वह अन्तत. सरक्षण के अभाव म नही टिक सकता। सन् १९२८ मे जब इस उद्योग ने पुन सरक्षण की मांग की, तो प्रशुल्क मण्डल ने यह मत दिया कि उद्योग को सरक्षण की आवश्यकता ही नही है। विदेशी स्वार्थों की वेदी पर राष्ट्रीय हितो की बलि चढाई गई।

(९) सन् १९२२ के आयोग ने एक स्थाई बोर्ड नियुक्त करने के सम्बन्ध मे सिफारिश की थी, परन्तु तत्कालीन सरकार ने प्रत्येक उद्योग की जांच के लिये पृथक-पृथक बोर्ड बनाये, जिसके फलस्वरूप कोई भी ऐसी नीति नही बन सकी, जो कि लम्बे समय तक अपनाई जा सके।

(१०) प्रशुल्क मण्डल को अपना कार्य करने म पूर्ण स्वतत्रता भी नही थी, जिससे वह विधिवत् सही जाँच कर सकता।

(११) साधारणत. प्रशुल्क अधिकारियो और सरकार की विलम्बकारी कार्य-प्रणाली से, जो सरक्षण मिलता था वह भी बेकार साबित होता था।

(१२) उपर्युक्त दोषो के कारण ही सन् १९४९ के प्रशुल्क आयोग को यह कहना पडा है कि सन् १९२२ के प्रशुल्क आयोग ने सरक्षण की नीति को आर्थिक विकास के एक सामान्य साधन के रूप मे नही देखा था। उसने इसे केवल ऐसा सहारा समझा जिसके द्वारा कुछ उद्योगो को, जब वे सरक्षण के लिये प्रार्थना करें, तब विदेशी प्रतियोगिता सहने की शक्ति दी जा सके। इसी का परिणाम एक दिशायी विकास है। आधारभूत उद्योगो का विकास न हो सका। यह भी सम्भव है कि कुछ थोड से उद्योगो को, उसी समय यह प्रयत्न किये बिना कि उनसे मिलते-जुलते और उनके सहायक उद्योगो को भी सुविधा प्रदान की जाय, सरक्षण देने मे समाज का सामूहिक भार बढ जाता।

विभेदात्मक नीति की आलोचना करते हुये श्री बी० पी० अदारकर ने लिखा है कि विभेदपूर्ण सरक्षण का सारा फार्मूला ही बदल डालना चाहिए। इसके स्थान पर अधिक सादा, विवेकशील और सीधा फार्मूला होना चाहिये। इस फार्मूले की कडी शर्ते बदली जानी चाहिए। कच्चे माल के विषय मे जो शर्त है उसे अवश्य हटा देना चाहिये। तीसरी शर्त भी हटा देनी चाहिए, क्योकि वह पूर्व-स्थिर प्रमाणिक शर्त न होकर भविष्यवाणी के समान है। इसके अतिरिक्त प्रशुल्क मण्डल की मशीनरी और विधि बिल्कुल बदल देनी चाहिए तथा प्रतिबन्धो की वर्तमान प्रणाली समाप्त करके प्रशुल्क मडल के पास सीधे पहुँचने की सुविधा दी जानी चाहिये तथा उसे स्वय जाँच प्रारम्भ करने का अधिकार भी मिलना चाहिए। मडल के सदस्यो को भी लोकमत के प्रति अधिक उत्तरदायी होना चाहिये और सरकारी नामाकित सदस्यो का प्रभुत्त्व कम

ना चाहिये। विकास सरक्षण, सुरक्षा और राजस्व-नट कर मे स्पष्ट अन्तर करना चाहिये। प्रत्येक का प्रयोजन व कार्य साफ-साफ निर्धारित किया जाना चाहिये। समय-समय पर सरकार को आवश्यक नये उद्योगो का विकास प्रोत्साहित करने के लिये प्रायोगिक तट कर लगाना चाहिए। यदि तट कर के लगाने पर भी उद्योग न पनप सकें, तो सरकार को संरक्षण वापिस लेने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।"

STANDARD QUESTIONS

1. What do you understand by the 'Tariple Formula, as enunciated by the Fiscal Commission 1921-22 ? Critically examine the various provisions of this Formula.

2. "Inspite of criticism, certain Indian industries were highly benefitted bythe protection granted to them according to the provisions of Rahimatullah Commission Report." Discuss briefiy the benefits derived by the favoured industries

3. "The discriminating protection has vouch safed nothing better than a prefunctory assistance, indifferently and grudgingly rendered to industries whose subsequent development has been left to its own course" Discuss this statement of Prof Adarker with special reference to any two industries to which protection was granted after 1924

4. Crtically examine the policy of discriminating protection

5. Is protection a burden on consumers ? Comment with special reference to Indian Conditions.

अध्याय १६

द्वितीय महायुद्ध-युग एवं युद्धोत्तर काल में प्रशुल्क-नीति

(Fiscal Policy During World War II and Post-war Period)

द्वितीय महायुद्ध-युग—

सन् १६३६ मे द्वितीय महासमर प्रारम्भ हो गया, जो स्वय उद्योगो के लिए एक सरक्षण सिद्ध हुआ। महायुद्ध प्रारम्भ होते ही दे । की औद्योगिक स्थिनि स्वत सुधर गई। भारत मे अनेक छोट बड उद्योगो का जन्म होन लगा। बढती हुई माग को पूरा करन के लिए भारत एक बडा निर्माता बन गया। अपनी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिये युद्ध काल म सरक्षण का कोई प्रश्न नही उठा क्योकि लडाई के कारण विदेशो से माल आना अपने आप बन्द हो गया। अतएव विदेशी प्रतिस्पर्धा पूर्णतया समाप्त हो गई। जो उद्योग रक्षित थे उनके लिए सरक्षण जारी रहा।

सन् १६४५ म द्वितीय महायुद्ध समाप्त हो गया। युद्ध के पश्चात् देश के सम्मुख आर्थिक नव निर्माण का प्रश्न आया। द्वितीय महायुद्ध के प्रथम चरण म यह अनुभव किया गया था कि भारत म अनेक महत्त्वपूर्ण उद्योगों का अभाव है। चूकि युद्धकालीन आवश्यकताओ की सन्तुष्टि के लिये इन उद्योगो की स्थापना करना आवश्यक था, अत सन् १६४० म भारत सरकार ने यह घोषणा की कि युद्ध काल म स्थापित उद्योगो का यदि ठास व्यावसायिक आधार पर सगठन किया गया, तो उन्हे उपयुक्त सरक्षण दिया जाएगा। इस आश्वासन के परिणामस्वरूप देश मे बड़ी तेजी से उद्योगो का विकास हुआ। सन् १६४० की घोषणा से प्राशुल्किक सरक्षण का कार्य क्षेत्र बढ गया और सरकार की तट कर नीति को भी नया रूप मिला। परन्तु दीर्घकालीन प्रशुल्क नीति निर्धारित करने मे तथा उसके सचालन के लिए स्थाई सस्था का निर्माण करने मे काफी समय लग जाता इसलिए भारत सरकार ने ? नवम्बर सन् १६४५ को अस्थाई तट कर या प्रशुल्क मन्डल स्थापित किया और इसे युद्ध काल मे स्थापित किए गये उद्योगो क सरक्षण दिये जान के दावा की जाँच पडताल करने का कार्य सौंपा गया।

अन्तरिम प्रशुल्क बोर्ड सन् १६४५—

प्रथम प्रशुल्क बोर्ड (First Tariff Board) सन् १६२३ म नियुक्त किया गया था, जिसका विवेचन हम गत अध्याय मे कर चुके है। यह दूसरा प्रशुल्क बोर्ड

है, जिसकी नियुक्ति ३ नवम्बर सन् १९४५ को की गई। इसका निर्माण केवल दो वर्ष के लिए किया गया। यह बोर्ड किसी उद्योग को अधिक से अधिक ३ वर्ष के लिये सरक्षण देने की सिफारिश कर सकता था। किन्तु पूर्व की भाँति अन्तिम निर्णय सरकार के ही हाथ मे रहा। इस बोर्ड को पहले बोर्ड की अपेक्षा अधिक अधिकार दिए गये। इसका प्रमुख कार्य युद्ध-जनित तथा अन्य उद्योगो की जाँच करना तथा उन उद्योगो को सरक्षण देने की सिफारिश करना था।

अन्तरिम बोर्ड सन् १९४५ का कार्य—

सन् १९४५ मे नियुक्त हुये अन्तरिम प्रशुल्क बोर्ड ने कुछ उद्योगो को सरक्षण देने की स्थिति पर विचार किया। जो उद्योग राजकीय सरक्षण चाहता था, उसे निम्न-लिखित शर्तों का पालन करना पडता था—

(१) कि वह दृढ व्यापारिक आधार पर सचालित होना है।

(२) (अ) उद्योग द्वारा नैसर्गिक व आर्थिक सुविधाये प्राप्त करने तथा उसके वास्तविक व सम्भावित व्यय को ध्यान मे रखते हुए उद्योग उचित समय के भीतर भली प्रकार विकसित हो जायेगा और फिर उसे राजकीय सरक्षण या सहायता की आवश्यकता नही होगी।

(आ) वह एक ऐसा उद्योग है जिसे सरक्षण या सहायता प्रदान करना राष्ट्र के हित मे है और इस सरक्षण या सहायता का सम्भावित व्यय जनता के ऊपर अधिक नही पडेगा।

सरक्षण सम्बन्धी उपर्युक्त शर्तों के एक मात्र अवलोकन से यह स्पष्ट है कि लडाई के उपरान्त भी भारत सरकार ने प्राशुल्किक सुविधाये प्रदान करने के सम्बन्ध मे किसी स्थाई नीति का अनुकरण नही किया। अपने दो वर्ष के जीवन-काल मे अन्तरिम प्रशुल्क बोर्ड के पास सरक्षण प्रदान करने के लिए कुल ४९ मामले आये, जिनमे से ४२ को संरक्षण दिया गया। इनमे से ३८ उद्योग युद्धकालीन तथा ४ उद्योग (सूती वस्त्र उद्योग, स्पात उद्योग, कागज तथा चीनी उद्योग) पूर्व स्थित थे। वास्तव मे इस बोर्ड का प्रमुख कार्य उद्योगो की स्थिति जाँच करके उनके संरक्षण की सिफारिश करना था। किन्तु पर्याप्त सुविधाओ के अभाव मे अन्तरिम प्रशुल्क बोर्ड अपने कर्तव्य का भली-भाँति पालन न कर सका।

पुनर्सङ्गठित प्रशुल्क बोर्ड सन् १९४७ —

१५ अगस्त सन् १९४७ को भारत आजाद हुआ और इसी समय देश का विभाजन भी हुआ। देश के विभाजन ने कुछ ऐसी समस्यायें उत्पन्न कर दी जिनको सुलझाने के लिए तथा भारत का आर्थिक पुनर्निर्माण करने के लिए सन् १९४७ मे प्रशुल्क मन्डल का पुनर्सङ्गठन करना भी अनिवार्य हो गया। इस पुनर्सगठित बोर्ड के सभापति श्री जी० एल० मेहता थे तथा डा० एच० एल० डे० एव डा० वी० वी० नारायणस्वामी नायडू इसके अन्य सदस्य थे।

इस बोर्ड के कार्य—

पुनर्सगठित प्रशुल्क बोर्ड १९४७ के दो प्रमुख कार्य थे—

(१) सरकार को उन तथ्यों की सूचना देना जिनके कारण भारत निर्मित वस्तुओं का उत्पादन-व्यय विदेशो से आयात की हुई वस्तुओं की अपेक्षा अधिक होता है, और—

(२) न्यूनतम व्यय पर देश के अन्दर उत्पादन बढाने के लिए सुझाव देना।

बाद में सन् १९४८ मे इस बोर्ड को निम्न अन्य कार्य भी सौप दिये गये—

(३) उन उद्योगों की जाँच करना जो सरक्षण प्राप्त करने के लिए प्रार्थना-पत्र दें।

(४) जिन उद्योगो को सरक्षण मिल गया है, वे उन्नति कर रहे हैं अथवा नही, इसकी जाच करना।

(५) देश मे निर्मित वस्तुओ के उत्पादन-व्यय की जाँच करना तथा वस्तुओ के थोक व खेरीज मूल्य निश्चित करना।

(६) राशिपातन (dumping) के विरुद्ध भारतीय उद्योगो के सरक्षण के लिए सुझाव देना।

(७) सरकार द्वारा लगाये हुए विभिन्न आयात व निर्यात करो का देश पर क्या प्रभाव पड रहा है, इस बात का अध्ययन करना तथा सरकार को रिपोर्ट देना।

(८) सयुक्तीकरण (Combines), प्रन्यास (trust) तथा एकाधिकृत सस्थाओ (Monopolies) के विषय मे सरकार को सूचित करना और उनके दोषो को दूर करने के लिए सुझाव भी देना।

(९) देश का उत्पादन बढाने के लिये सरकार को सलाह देना।

(१०) ऐसे उपायो को सरकार को बताना जिसके उपयोग से देश के आन्तरिक व्यापार के उत्पादन मे अधिक व्यय न हो

(११) व्यापार की उन्नति मे बाधा डालने वाली क्रियाओ की सरकार को सूचना देना।

(१२) सरक्षित उद्योगो पर सदैव निगाह रखना और आवश्यकतानुसार उनके लिए समय-समय पर सरक्षण तथा प्रशुल्क नीति मे परिवर्तन करना।

यह बोर्ड केवल ऐसे ही उद्योगो के सरक्षण के लिए सिफारिश करता था जो उचित रीति से कार्य रहे हो और जिनके पास पर्याप्त प्राकृतिक साधन हो, जो एक निश्चित अवधि के भीतर प्रगति करने की क्षमता रखते हो तथा जिसे सरक्षण देना राष्ट्र के हित मे हो।

उपभोक्ताओ के हितो को ध्यान मे रखते हुए इस प्रशुल्क बोर्ड ने अनेक पुराने व नये उद्योगो की जाच की और उसकी सिफारिशो के परिणामस्वरूप ३४ युद्ध-

जनित उद्योगों को संरक्षण प्रदान किया गया। निम्नलिखित ६ पुराने उद्योगो पर से संरक्षण हटा लिया गया—(१) सूती वस्त्र मिल उद्योग, (२) लोहे व स्पात का उद्योग, (३) कागज उद्योग, (४) मैगनेशियम क्लोराइड उद्योग, (५) सिल्वर थ्रेड व वायर उद्योग एवं (६) शक्कर उद्योग। शक्कर उद्योग को पुनः १ वर्ष के संरक्षण दिया गया, जो सन् १६५० मे वापिस लिया गया।

इस बोर्ड के पक्ष मे दिये गये तर्क—

(१) सन् १६४७ का प्रशुल्क मण्डल उद्योगो की जांच करते समय सदैव इस बात का ध्यान रखता था कि संरक्षण प्रदान करने मे राष्ट्र का हित होगा अथवा नही।

(२) इस मडल ने उदार संरक्षण नीति का अनुकरण किया और राष्ट्र के अतिरिक्त उपभोक्ताओ के हितो का भी ध्यान रक्खा।

(३) प्रथम बोर्ड ने १६ वर्ष की अवधि मे कुल ५० उद्योगो की ही जाच की थी, परन्तु इस बोर्ड ने ५ वर्षो मे लगभग ६१ उद्योगो की जाच की। इससे स्पष्ट है कि इस बोर्ड ने बडे परिश्रम तथा लगन से कार्य किया

(४) इस बोर्ड के कार्यो ने देश, समाज व उद्योगो के हितो की बहुत सीमा तक रक्षा की।

STANDARD QUESTIONS

1) Briefly describe the Tariff Policy of the Govt of India during the World war II

(2) Discuss the circumstances, which led to the formation of the Tarrif Board 1945 What were its functions ?

(3) Discuss briefly the functions of the reconstituted Tariff Board 1947 How far it has protected the interests of Indian industries ?

———

अध्याय २०

प्रशुल्क आयोग १९४९-५०
भारत सरकार की वर्तमान प्राशुल्किक नीति

(Fiscal Commission 1949 50 and the Present Tariff Policy)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद प्रशुल्क नीति—

१५ अगस्त सन् १९४७ को भारत स्वतन्त्र हो गया और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अप्रैल सन् १९४८ में राष्ट्रीय सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति की घोषणा की। इस औद्योगिक नीति में इस बात का भी संकेत किया गया कि सरकार का प्रशुल्क नीति का उद्देश्य उपभोक्ताओं पर बिना किसी प्रकार का अनुचित बोझ दिए विषम वैदेशिक प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त करना तथा देश के साधनों के अधिकतम उपयोग को प्रोत्साहित करना होगा।[1] सन् १९४९ की औद्योगिक नीति के अन्तर्गत भारत सरकार पर जो उत्तरदायित्व आया उसको पूरा करने के लिये २८ अप्रैल सन् १९४९ के एक प्रस्ताव द्वारा सरकार ने एक प्रशुल्क आयोग (Fiscal Commission) की नियुक्ति की जिसके अध्यक्ष श्री० टी० टी० कृष्णमाचारी थे। सन् १९४९–५० के प्रशुल्क आयोग अथवा कृष्णमाचारी आयोग के प्रमुख कार्य निम्नलिखित थे—

कृष्णमाचारी आयोग सन् १९४९–५० के कर्त्तव्य—

(१) सभी सम्बन्धित हितों की दृष्टि में सन् १९२१ के प्रशुल्क बोर्ड की नियुक्ति से लेकर अब तक भारत सरकार द्वारा उद्योगों को संरक्षण देने की नीति की जाँच करना तथा

(२) निम्न सिफारिश करना—

(क) संरक्षण व वित्तीय सहायता देने के सम्बन्ध में सरकार की भावी नीति क्या होनी चाहिये और संरक्षित व सहायता प्राप्त उद्योगों के साथ कैसा व्यवहार हो व उनके कर्तव्यों का निर्धारण किस प्रकार करना चाहिये।

(ख) इस रीति को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक यन्त्र (necessary machinery) का निर्माण करना और

---

1 The Tariff Policy of the Govt of India will be designed to prevent unfair foreign competition and to promote the utilisation of India's resources without imposing unjustifiable burden on the consumer

(ग) इस नीति से सम्बन्ध रखने वाली कोई अन्य बात।

(३) इन विषयो पर विचार करने मे आयोग को समस्या के अल्पकालीन व दीघकालीन पक्षो पर विचार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी तथा देश की आवश्यकता को देखते हुये यह सलाह देना कि अन्तर्राष्टीय प्रशुल्क व व्यापार के सामान्य सिद्धातो या अन्तराष्ट्रीय प्रशुल्क व व्यापार सगठन क चाटर क अनुसार काय करना कहा तक वाछनीय होगा।

प्रशुल्क आयोग सन् १६४६–५० की रिपोर्ट—

कृष्णमाचारी आयोग न अपनी रिपोर्ट म पहल अपना काय क्षत्र तथा आधारभूत उद्द श्यो का वर्णन करते हुये यह बतलाया कि निम्न उद्देश्यो की प्राप्ति करनी है—

(१) बेकारी अथवा अर्द्ध बेकारी से बचना और उत्पादन व माग को बढाना।

(२) देश के प्राकृतिक प्रसाधनो का पूर्ण सदुपयोग करना।

(३) उत्पादन शक्ति मे उत्तरोत्तर वृद्धि तथा श्रमिको की अवस्था म सुधार करना।

(४) कृषि तथा पशुविज्ञान का आधुनिक आधार पर विकास करना तथा खाद्य पदार्थों एव उद्योग के लिये पर्याप्त कच्चा माल उत्पन्न करना।

(५) सहकारी अथवा व्यक्तिगत आधार पर कुटीर उद्योगा व लघु उद्योगा क लिय विशेष प्रबन्ध करना।

(६) वृहद्स्तरीय औद्योगीकरण की गति बढाना त ा इस हेतु मिश्रित अथ व्यवस्था (Mixed economy) की नीति अपनाना।

(७) सभी प्रकार क लागा के नैसर्गिक गुणा का उपयाग करन के लिय एक बहुमुखी अथ यवस्था लागू करना।

कृष्णमाचारी आयोग न सरक्षण की समस्या पर अधिक सतुलित एव विस्तृत दृष्टिकोण से विचार किया तथा इस बात पर जोर दिया कि सरक्षण को एक व्यावसायिक नीति का विकल्प मात्र न मानकर राष्ट्र के आर्थिक विकास के उद्देश्य की पूर्ति का साधन मात्र समझना चाहिये। चूकि सरक्षण की नीति देश के आर्थिक विकास की याजना का एक अङ्ग है अत इस प्रश्न पर पृथक रूप स विचार नहीं किया जा सकता। उद्योगो को सरक्षण प्रदान करन की नीति का देश क आर्थिक नियोजन से घनिष्ट सम्बन्ध होना चाहिए, अन्यथा इसस देश म असन्तुलित आर्थिक विकास को अनुचित प्रात्साहन मिलगा। किन्तु इस प्रकार की व्यापक नीति के निर्धारण म समय लगेगा, अत आयाग न सरक्षण का एक सामान्य नीति की सिफारिश की। इस हेतु कृष्णमाचारी आयोग न आयोजित क्षेत्र के उद्योगो को निम्न लिखित तीन वर्गों म विभाजित किया है —

(१) प्रतिरक्षा एव युद्ध-सम्बन्धी उद्योग (defence and other strategic industries),

(२) आधारभूत और प्रमुख उद्योग (basic and key industries),

(३) अन्य उद्योग (other industries)।

संरक्षण सम्बन्धी सिफारिशें

(१) प्रतिरक्षा एव युद्ध सम्बन्धी उद्योग—

प्रतिरक्षा तथा युद्ध सम्बन्धी उद्योगो के सम्बन्ध मे आयोग ने यह सिफारिश की कि इनको अवश्य संरक्षण दिया जाय, चाहे जनता पर इसका कितना ही भार क्यों न पडे। इन उद्योगो के विषय मे वास्तव मे ऐसी उदार नीति आवश्यक भी है। देश मे शान्ति व सुरक्षा बनाये रखने के लिये इन उद्योगो का अत्यन्त महत्त्व है। इनकी लागत चाहे कितनी ही हो। परन्तु संकट का सामना करने के लिये इनका विकास करना बहुत जरूरी है।

(२) आधारभूत और प्रमुख उद्योग—

द्वितीय श्रेणी के आधारभूत व प्रमुख उद्योगो के सम्बन्ध मे आयोग ने सिफारिश की कि इन उद्योगो को दिये जाने वाले संरक्षण का प्रकार, उनकी मात्रा और शर्तों को निर्धारित करने का पूर्ण अधिकार प्रशुल्क मण्डल (Tariff Board) को देना चाहिये। प्रशुल्क मण्डल इसमे आवश्यकतानुसार समय समय पर परिवर्तन कर सकता है।

(३) अन्य उद्योग—

तृतीय श्रेणी के अन्य उद्योगो के सम्बन्ध मे आयोग ने निम्न दो शर्तें निश्चित की—

(i) उद्योग को उपलब्ध आर्थिक सुविधाओ और उनकी वास्तविक या सम्भावित लागत को ध्यान मे रखते हुये यह निश्चित हो कि उचित अवधि के भीतर उद्योग अपना पर्याप्त विकास कर लेगा तथा बिना संरक्षण एव सहायता के वह सफलतापूर्वक चलाया जा सकेगा।

(ii) उद्योग ऐसा होना चाहिये जिसे संरक्षण प्रदान करना राष्ट्रीय हित में वांछित हो, और उसकी प्रत्यक्ष एव परोक्ष सुविधाओ को ध्यान मे रखते हुए इस प्रकार के संरक्षण का अथवा अन्य प्रकार की सहायता का जनता पर अधिक भार न पड़ेगा।

आयोजित क्षेत्र के बाहर वाले उद्योगो पर तृतीय श्रेणी के 'अन्य उद्योगो' पर लागू होने वाली शर्तें ही लागू होगी।

अन्य सिफारिशें—

आयोग ने अनेक अन्य बातो पर भी अपनी राय प्रकट की है, जिसमे कि

प्रशुल्क मण्डल को संरक्षण सम्बन्धी किसी मामले को सुलझाने में सुविधा हो। इसकी अन्य सिफारिशें निम्नलिखित हैं—

(१) आयोग ने यह सुझाव दिया कि यदि किसी उद्योग के लिये श्रम, बाजार, शक्ति तथा यातायात के साधन आदि की सुविधाये उपलब्ध हो, तो केवल देश मे कच्चा माल नही होने के कारण उसे संरक्षण की सुविधा प्रदान करने मे किसी प्रकार की कठिनाई नही होनी चाहिये।

(२) यद्यपि साधारणतः एक संरक्षण प्राप्त उद्योग को अपनी स्वदेशी बाजार की आवश्यकता पूरी करने मे समर्थ होना चाहिये, परन्तु इसे संरक्षण देने की अनिवार्य शर्त नही बना देना चाहिये। प्रशुल्क अधिकारियो के लिये अल्पकाल मे केवल इस बात पर ही विचार करना उचित होगा कि उद्योग के विकास की सम्भावना कैसी है, जिससे कि निश्चित अवधि के भीतर वह देश की अधिकाश माग को पूरा कर सके। दूसरे शब्दो मे, किसी उद्योग को संरक्षण प्रदान करने के समय उससे यह आशा नही करनी चाहिये कि उद्योग सम्पूर्ण आन्तरिक माग को पूरा कर सकता है।

(३) किसी उद्योग को उपलब्ध बाजार की सुविधाओ पर विचार करते समय देश एव विदेश मे स्थित वर्तमान एव सम्भावित सभी प्रकार के बाजारो पर विचार करना चाहिये।

(४) उन उद्योगो को, जो किसी संरक्षित उद्योगो की वस्तुओ को कच्चे पदार्थ के रूप मे उपयोग करते है, क्षतिपूरक संरक्षण (Compensatory Protection) दिया जा सकता है।

(५) राष्ट्रीय हित मे कृषि उद्योगो को भी संरक्षण प्रदान किया जा सकता है।

(६) नये उद्योगो को भी उसी प्रकार संरक्षण की सुविधा देनी चाहिये जैसी कि विद्यमान उद्योगो को दी जाती है। उन नये उद्योगो मे जिनका भविष्य उज्जवल है तथा जिनकी स्थापना मे बहुत अधिक पूंजी एव कुशल श्रमिकों की आवश्यकता हो, संरक्षण की आवश्यकता और भी अधिक है।

(७) आयोग ने यह भी सिफारिश की थी कि एक पृथक विकास कोष (development fund) होना चाहिये, जिसमे प्रशुल्क करो का एक निश्चित भाग प्रतिवर्ष डालना चाहिये और इस कोष मे से उद्योगो को निम्नलिखित परिस्थितियो मे उचित आर्थिक सहायता दी जाय—

(अ) जबकि देश के अन्दर का उत्पादन देश की माँग के केवल कुछ अंश को ही पूरा करता हो।

(आ) जब कि उद्योग की वस्तुये प्रमुख कच्चे माल की हो।

(इ) जब कि उद्योग की अनेक विशिष्ट श्रेणी हो, जो कि एक दूसरे से अलग नही की जा सकती और केवल उन्ही के लिये संरक्षण की आवश्यकता हो।

(८) उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिये आयोग ने यह भी अनिवार्य कर दिया कि रक्षित उद्योग के उत्पादन की मात्रा तथा उसकी वस्तुओं की किस्म की पूर्ण जाच होनी चाहिये। रक्षित उद्योग फिर कोई ऐसा काम नहीं कर सकते जो समाज के हित मे बाधक हो।

(९) रक्षित उद्योग प्रशुल्क बोर्ड को इस बात का विश्वास दिलाए कि वह सरक्षण से कोई अनुचित लाभ नही उठाएगा।

(१०) आयोग ने सिफारिश की है कि सामान्य परिस्थिति मे परिमाण सम्बन्धी निर्बन्ध कम लगाने चाहिये और केवल असामान्य आयात के विरुद्ध लगाना चाहिये। इसका कहना है कि किसी उद्योग के विकास की वह स्थिति निश्चय करना कठिन है जिस पर तटकर-कोटा (ariff quota) योजना लगाना उपयुक्त होगा। जहाँ तक सरक्षण की मात्रा का प्रश्न है यह सुझाव दिया गया है कि प्रशुल्क अधिकारियों को एक न तथा प्रमापिक नियम बना लेना चाहिये। उदाहरण के लिये, उद्योगों को उचित लम्बी अवधि के लिये सरक्षण का आश्वासन देना चाहिये, जिससे कि उनकी ओर पूजी आकर्षित हो तथा उन्नति का एक उपयुक्त कार्यक्रम बनाया व क्रियान्वित किया जा सके।

(११) आयोग ने यह भी सिफारिश की है कि सरकार की भण्डार क्रय-नीति (stores purchase policy) मे विदेशी वस्तुओं की अपेक्षा देशी वस्तुओं को प्राथमिकता मिलनी चाहिये।

स्थायी प्रशुल्क आयोग की सिफारिश—

कृष्णमाचारी आयोग ने एक स्थायी प्रशुल्क आयोग (Tariff Commission) की स्थापना के लिये सिफारिश की। यह आयोग एक वैधानिक सस्था है। इसमे सभापति को सम्मिलित करते हुये पाँच सदस्य होंगे। विशेष मामलो के लिये आयोग अन्य सलाहकार भी नियुक्त कर सकता है। सदस्यों की नियुक्ति उनके गुणो के आधार पर होनी चाहिये, न कि किसी अन्य विशेषता के आधार पर, सदस्यों को उनकी नियुक्ति के पूर्व किसी निजी कम्पनी से सम्बन्ध रहने पर उसे व्यक्त करना चाहिये तथा आयोग की सदस्यता छोडने के तीन वर्ष बाद तक इन्हे किसी प्रकार की निजी औद्योगिक सस्था मे कोई प्रबन्ध-व्यवस्था सम्बन्धी पद भारत सरकार की पूर्व अनुमति के बिना नही स्वीकार करना चाहिये।

आयोग की सिफारिशों के आधार पर सन् १९५१ के प्रशुल्क आयोग अधिनियम (Tariff Commission Act 1951) के अन्तर्गत एक स्थायी प्रशुल्क आयोग स्थापित करने की व्यवस्था की गई है। भारत सरकार ने २१ जनवरी सन् १९५२ को प्रशुल्क आयोग की नियुक्ति भी कर दी है। इसके सदस्यों की नियुक्ति प्रारम्भ मे तीन वर्षो के लिये की गई, किन्तु वे पुन नियुक्त किये जा सकते है। इसके तीन सदस्य है। इस आयोग को अतीत की सभी सरक्षण निर्धारण समितियों से अधिक अधिकार दिये गये है।

प्रशुल्क आयोग के प्रमुख कार्य—

प्रशुल्क आयोग के प्रमुख कार्य निम्नलिखित है—

(१) प्रशुल्क आयोग पूर्व स्थापित उद्योगो के अतिरिक्त उन उद्योगो की सरक्षण सम्बन्धी माग पर भी विचार कर सकता है, जिनमे अभी उत्पादन आरम्भ नही हुआ है, परन्तु सरक्षण के उपरान्त उत्पादन आरम्भ करने की आशा है। अतीत मे आयोग केवल पूर्व-स्थापित उद्योगो की माँग पर ही विचार कर सकता था।

(२) प्राथमिक सरक्षण और विशेष वस्तुओ की कीमतो के अतिरिक्त चाहे वे वस्तुए सरक्षित उद्योग की हो, अथवा असरक्षित उद्योग की, आयोग अन्य मामलो मे स्वय जाँच पडताल कर सकता है। प्रथम दो अपवादो के सम्बन्ध मे केवल सरकार के कहने पर ही जाँच की जा सकती है।

(३) आयोग सरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से प्रार्थी उद्योगो की स्थिति की जाँच करेगा तथा समय-समय पर इसकी रिपोर्ट सरकार को देगा।

(४) सरक्षण निर्धारित करने तथा सरक्षित उद्योगो के कर्त्तव्यो को निश्चित करने के सामान्य नियमो को बनाने तथा उनमे सशोधन आदि करने का आयोग को पूर्ण अधिकार रहेगा।

(५) आयोग प्रत्येक उद्योग की आवश्यकताओ के अनुसार सरक्षण की अवधि निश्चित करने को स्वतन्त्र है और इस पर युद्ध के पश्चात् स्थापित प्रशुल्क बोर्डो की भाँति यह प्रतिबन्ध नही लगा है कि सरक्षण की अवधि तीन वर्ष से अधिक न हो।

(६) प्रशुल्क आयोग अधिनियम म यह व्यवस्था की गई है कि आयोग द्वारा रिपोर्ट दिये जाने के तीन माह के अन्दर सरकार ससद को सूचित करे कि उसने रिपोर्ट पर क्या कार्यवाही की है और किसी प्रकार की कार्यवाही न करने की दशा मे सरकार इस बात का स्पष्टीकरण दे कि कार्यवाही क्यो नही की जा सकी।

(७) प्रशुल्क आयोग अधिनियम मे ऐसी व्यवस्था की गई है कि सरकार अनेक महत्त्वपूर्ण मामलो की जाँच करने तथा उन पर रिपोर्ट देने के लिए आयोग से कह सकती है। ऐसे मामलो के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है :—

(i) भारत के किसी उद्योग को सरक्षण प्रदान करना,

(ii) सरक्षणात्मक करो मे परिवर्तन करना,

(iii) विदेशो मे पदार्थो के सस्ते मूल्यो पर आयात (Dumping) को रोकने के लिए उचित कार्यवाही करना,

(iv) यदि कोई उद्योग सरक्षण से अनुचित लाभ उठा रहा हो, जैसे वह अनावश्यक ही अधिक मूल्य वसूल करता है अथवा इस प्रकार व्यवहार कर रहा हो कि जिसमे वस्तुओ के मूल्य बढ जाएँ, अथवा किसी अन्य ढङ्ग से जनहित के प्रतिकूल कार्य कर रहा हो, तो आयोग उसके विरुद्ध उचित कार्यवाई के लिए सुझाव दे सकता है,

(v) मूल्य-प्रणाली, रहन-सहन के व्यय तथा राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के अन्य भागो पर सरक्षण के प्रभाव की जाँच करना,

(vi) व्यापारिक समझौतो के अन्तर्गत प्रशुल्क सुविधाओ का उद्योगो के विकास पर पड़ने वाले प्रभाव की जाँच करना,

(vii) कर्त्तव्य पालन के मार्ग म आने वाली बाधाओ को दूर करने के उपायो पर विचार करना।

किसी भी उद्योग के सरक्षण का विचार करत समय आयोग को निम्नलिखित बातो की ओर ध्यान देना चाहिए—

(अ) भारत एव प्रतियोगी देशो म उस वस्तु का उत्पादन-व्यय,
(आ) प्रतियोगी वस्तुओ का आयात मूल्य,
(इ) प्रतिनिधि उचित बिक्री मूल्य,
(ई) माँग, स्थानीय उत्पादन तथा आयात का स्तर, और
(उ) कुटीर, लघु तथा अन्य उद्योगो पर किसी उद्योग के सरक्षण का प्रभाव।

प्रशुल्क आयोग की सिफारिशो का मूल्याकन—

भूतकाल मे हमारे उद्योगो को सरक्षण देने सम्बन्धी नीति पर ब्रिटिश हितो की छाप रहती थी। केवल कभी-कभी आलोचको के मुह को बन्द करने के लिए ही किसी उद्योग को सरक्षण प्रदान कर दिया जाता था। उस समय का प्रशुल्क बोर्ड अशक्त तथा व्यावहारिक दृष्टि म महत्वहीन था और उसकी सिफारिश रद्दी की टोकरी मे फेंक दी जाती थी।

परन्तु अब यह सब प्राचीन इतिहास हो गया। आज हमारी प्रशुल्क नीति के पीछे एक प्रयोजन है। भारत सरकार ने कृष्णमाचारी आयोग की सिफारिशो के अनुसार २१ जनवरी सन् १९५२ को एक प्रशुल्क आयोग (Tariff Commission) नियुक्त किया है, जिसने इण्डियन टैरिफ बोर्ड का स्थान ले लिया। प्रशुल्क आयोग एक वैधानिक सस्था है, जो अपने प्रशासकीय मामलो म किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप से मुक्त है। इस आयोग की सिफारिश लगभग सदैव ही मान ली जाती है। आज हमारा देश स्वतन्त्र है और विश्व मे अन्य राष्ट्र हमे सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। तीव्र औद्योगीकरण हमारी पच वर्षीय योजनाओ का प्रमुख लक्षण है। हम अपनी व्यापार नीति का निर्धारण स्वय करते हैं जो हमारे अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वो को ध्यान मे रख कर बनाई जाती है।

हमारे वर्तमान प्रशुल्क आयोग ने सरक्षण को आर्थिक विकास की सामान्य योजना का एक अग माना है और सरक्षण की समस्या को कोई प्रथक रूप नही दिया जा सकता है। आयोग की सिफारिशो मे प्रतिरक्षा एव आधारभूत उद्योगो को प्रधान महत्व दिया गया है। देश की आर्थिक प्रगति एव सुरक्षा की दृष्टि से इनका विकास करने के लिए इन्हे विशेष सुविधा देना अनिवार्य भी था। आयोग ने नवीन उद्योगो को सरक्षण देने के लिए भी निश्चित सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है। नये उद्योगो को इस प्रकार की सुविधा का प्रसार विभेदात्मक सरक्षण की नीति

का सबसे बडा दोष था। संरक्षण प्रदान करने की शर्तें भी अपेक्षाकृत अधिक उदार है। विभेदात्मक सरक्षण का सबसे बडा दोष यह था कि संरक्षण प्रदान करने के लिए निर्धारित शर्तों का बहुत सकीर्ण अर्थ लिया था। अब तो उद्योगो के विकास एव उन्नति के सम्बन्ध मे नियमित रूप से जाँच की भी व्यवस्था की गई है। सरक्षित उद्योगो पर निश्चित रूप मे उत्तरदायित्व भी रखा गया है, जिससे आर्थिक विकास मे सहायता मिलने की आशा की जाती है।

इस सम्बन्ध मे यह लिखना अनावश्यक न होगा कि आयोग द्वारा 'अन्य उद्योगो' के सम्बन्ध मे निर्धारित शर्ते बहुत कुछ सन् १६२१ के 'त्रिमुखी-गुर' के अनुरूप ही जान पडती है। 'उद्योग को प्राप्त आर्थिक व प्राकृतिक सुविधाओं' की शर्त सन् १६२१ के आयोग द्वारा निर्धारित प्रथम शर्त की भाँति है। इसी प्रकार 'उद्योग से यह आशा करना कि वह उचित समयावधि मे पर्याप्त उन्नति कर लेगा' तथा 'कुछ समय बाद इस योग्य हो जाएगा कि बिना सरक्षण के अपने पैरो खडा हो सके', क्रमशः सन् १६२१ की दूसरी व तीसरी शर्तो से मिलती-जुलती है। इन शर्तो के सम्बन्ध मे 'अस्पष्टता' का भी आरोप लगाया जाता है तथा प्रशुल्क के लिये कभी-कभी एक निश्चित निर्णय पर पहुँचना कठिन हो जाता है। अतः सुझावस्वरूप यह कहा जा सकता है कि आधारभूत तथा सुरक्षा उद्योगो की ही भाँति 'अन्य उद्योगो' को भी सरक्षण प्रदान करने या न करने का अधिकार प्रशुल्क आयोग के हाथ मे छोड देना, इन अस्पष्ट तथा अनिश्चित शर्तो की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होगा।

नवीन प्रशुल्क आयोग १६५२
(New Tariff Commission, 1952)

भारत सरकार ने फिस्कल कमीशन की सिफारिशो के अनुसार २१ जनवरी सन् १६५२ को, टैरिफ कमीशन एक्ट, १६५१ के अन्तर्गत एक टैरिफ कमीशन (चेयरमैन सहित तीन सदस्य) नियुक्त किया, जिसने इण्डियन टैरिफ बोर्ड का स्थान ले लिया। चू कि कमीशन एक वैधानिक संस्था है इसलिय एक्जीक्यूटिव या अन्य गुटो के हस्तक्षेप से वह मुक्त है। कमीशन के अधिकार और कर्त्तव्य भी गत टैरिफ बोर्ड की अपेक्षा बहुत व्यापक है। सरकार उससे कई बातो मे परामर्श ले सकती है, जैसे किसी उद्योग को सरक्षण देना, किसी उद्योग की रक्षा के लिए करो मे हेर-फेर करना, राशिपातन और सरक्षित उद्योग के दोषो के विरुद्ध कार्यवाही करना, सामान्य मूल स्तर एव रहन-सहन की लागत पर सरक्षण का प्रभाव, टैरिफ रियायतो का किसी विशेष उद्योग पर पडने वाला प्रभाव तथा सरक्षण से सम्बन्धित कोई अन्य समस्या।

कमीशन को इस बात का अधिकार है कि न केवल चालू उद्योगो से वरन् उन उद्योगो से भी, जो कि उत्पादन अभी आरम्भ कर सकते है जबकि उन्हे सरक्षण मिल जाय, सरक्षण सम्बन्धी उनके दावो के सम्बन्ध मे जाँच पडताल करे। कमीशन अपनी ओर से भी किसी उद्योग को सरक्षण देने के प्रश्न पर विचार कर सकता है।

कमीशन सरक्षित उद्योग के सम्बन्ध मे व्यापक सिद्धान्त एव नियम बनाने का अधिकार रखता है। उदाहरण के लिय, युद्धोत्तर टैरिफ बोर्ड को तीन वर्ष से अधिक अवधि के लिये सरक्षण देन का अधिकार नही था, लेकिन टैरिफ कमीशन को सरक्षण की अवधि निश्चित करने के सम्पूर्ण अधिकार है। उपभोक्ताओ के हितो का सुरक्षित रखने के लिए टैरिफ बोर्ड का यह वैधानिक कर्त्तव्य है कि वह सरक्षित उद्योग की प्रगति (जैसे उत्पादन व्यय उत्पत्ति की मात्रा व किस्म भावी विकास की सम्भावनायें आदि) पर निगाह रखे और इस विषय मे अपनी रिपोर्ट सरकार को देता रहे।

कमीशन को तथ्यो के निर्धारण एव तत्सम्बन्धी निष्कर्ष बनाने व परामर्श देने की स्वतन्त्रता है, लेकिन यह आवश्यक नही है कि सरकार उनको कार्यान्वित करे ही। वास्तव मे कमीशन का कर्त्तव्य आर्थिक नियमो के सन्दर्भ मे तथ्यो का अध्ययन करना है। जाँच पडताल करते समय जिन नियमो का पालन करना कमीशन के लिए आवश्यक है उनका उल्लेख टैरिफ कमीशन एक्ट मे किया गया है। इन नियमो के अनुसार, उद्योग की प्रतिनिधि इकाइयो मे वास्तविक लागत की गणना की जाती है और उनकी भावी उत्पादन लागत का अनुमान लगाया जाता है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण उद्योग के लिए उत्पत्ति के अनुमानित उचित कारखाना मूल्य (Fair ex-works price) की तुलना आयात किये जाने वाले उसी प्रकार, के सामान के भारत भूमि पर मूल्य (C I F. Price) से, कर शामिल न करते हुए, की जाती है और इस तुलना के आधार पर सरक्षण की मात्रा निश्चित कर दी जाती है। जहाँ कही आवश्यक होता है वहाँ किराया इत्यादि भी कारखाना मूल्य मे जोड लिया जाता है। कभी-कभी स्थायी सम्पत्तियो या स्थायी पूँजी की गणना करने मे कठिनाई अनुभव की जाती है। साधारणत स्थायी सम्पत्तियो को मूल रकम पर मूल्याकित किया जाता है और घिसाई आय कर की दरो से निकाली जाती है। कुछ दशाओ मे विशेष कोष बनान मे सुविधा देने की दृष्टि से उद्योग को विशेष घिसाई भी स्वीकृत की गई है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात पूँजी के सम्बन्ध मे है। वर्तमान प्रथा स्थायी सम्पत्तियो के प्रारम्भिक मूल्य (Gross block) पर ८ से १०% तक लाभाश देने की है और कार्यशील पूँजी पर प्राय बैंक-दर से १% अधिक ब्याज दिया जाता है। कार्यशील पूँजी की गणना उद्योग की ३ से ६ माह की उत्पादन लागत के आधार पर की जाती है।

टैरिफ कमीशन एक्ट के अन्तगत सरकार के लिये यह आवश्यक है कि कमीशन द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत करने के ३ माह के भीतर वह पार्लियामेन्ट को उस रिपोर्ट पर अपने द्वारा किये गये कार्य का ब्यौरा प्रस्तुत करे। यदि उसने रिपोर्ट पर कोई कार्यवाही न की हो, तो ऐसी असमर्थता का कारण बताना होगा।

टैरिफ कमीशन के कार्यों का ब्यौरा—

जनवरी १९५२ मे टैरिफ बोर्ड से टैरिफ कमीशन को निम्न मामले विचारार्थ मिले—

(१) बाल बियरिंग्ज और स्टील बाल्स, ऊनी होजरी, ट्रान्सफारमर्स, फ्लैक्स का सामान व छोटे औजारो से सम्बन्धित ५ मामले।

(२) कीमतो के निर्धारण से सम्बन्धित ३ मामले।

(३) सरक्षित उद्योगो की प्रगति से सम्बन्धित ४२ मामले।

सन् १९५२–५४ के मध्य, कमीशन ने निम्नलिखित को सरक्षण देने के नये मामलो पर विचार किया —बालबियरिंग एव स्टील बाल्स इन्डस्ट्री, ऊनी होजरी, ओटोमोबाइल्स, ट्रान्सफारमर्स, फ्लेक्स गुड्स और टिटैनियम डायोक्साइड। सरकार ने बालबियरिंग उद्योग को कमीशन की सिफारिशो पर सन् १९६० तक सरक्षण देना स्वीकार कर लिया है। ऊनी होजरी को सरक्षण सम्बन्धी प्रार्थना को अस्वीकृत कर दिया गया, क्योकि कमीशन ने सरकार को ऐसा ही सुझाव दिया था। ओटोमोबाइल्स उद्योग के सम्बन्ध मे सरकार ने कमीशन की इस मुख्य सिफारिश को मान लिया कि 'असेम्बलिंग' का कार्य रोक दिया जाय और व्हीकिल्स की माग उन्ही फर्मो पर सीमित रखी जाय, जिनके पास कोई निर्माण कार्यक्रम हो। इस उद्योग को सरक्षण जारी रखने की अवधि के बारे मे कोई निर्देश नही है। ट्राँसफारमर्स को सरक्षण सन् १९५३–५४ मे दिया गया था और सन् १९६० के अन्त तक बढा दिया गया है। फ्लैक्स गुड्स को सरक्षण देना इस आधार पर मना कर दिया गया कि वर्तमान रेवेन्यू ड्यूटी ही इतनी काफी थी कि यह उद्योग विदेशी माल के साथ प्रतिस्पर्द्धा कर सकता था। टिटैनियम डायोक्साइड को भी सन् १९५४ तक के लिए सरक्षण दिया गया और अब सन् १९६१ तक बढा दिया गया है।

सन् १९५४–५५ मे टैरिफ कमीशन ने कुल २५ जाँच-पडताले, जिनमे से ५ मामले उन उद्योगो से सम्बन्धित थे, जो कि पहली बार संरक्षण माँग रहे थे, १७ मामले सरक्षण की अवधि बढाने की माँग करने वाले उद्योगो के थे और १ कीमत सम्बन्धी मामलो का था। कमीशन की सिफारिशो के अनुसार सरकार ने सभी नये मामलो मे सरक्षण देना स्वीकार कर लिया और १३ पुराने मामलो मे सरक्षण की अवधि बढाने को सहमत हो गई। सरक्षण पाने वाले नये उद्योगो मे ओटोमोबाइल के कुछ भाग बनाने वाले उद्योग थे, जैसे—ओटोमोबाइल लीक स्प्रिंग, ओटोमोबाइल स्पार्किंग प्लग व ओटोमोबाइल हैड टायर इन्फ्लेटर्स। डाईस्टफ इण्डस्ट्री को भी जैसा कि कमीशन ने कहा था, सरकार ने सन् १९६४ के अन्त तक सरक्षण देना स्वीकार किया।

सन् १९५५–५६ मे टैरिफ कमीशन ने कुल २२ इन्क्वायरियाँ सचालित की, जिनमे से २ कीमत सम्बन्धी इन्क्वायरिया थी। ३ इन्क्वायरियाँ पहली बार सरक्षण मागने वाले उद्योगो से और शेष सरक्षण की अवधि बढवाने के इच्छुक उद्योगो से सम्बन्धित थी। नये ३ मामलो मे दो ओटोमोबाइल पार्टस बनाने वाले उद्योग ही थे, जिन्हे क्रमश: सन् १९५९ व १९६० तक सरक्षण स्वीकार किया गया। तीसरा मामला इन्जीनियर्स स्टील फाइल्स इण्डस्ट्री का था, जिसे कमीशन की सिफारिशो पर

सन् १९५९ के अन्त तक सरक्षण दिया गया। पुराने १७ मामलो मे से ६ के लिये सरक्षण की अवधि बढा दी गई।

सन् १९५६-५७ मे, कमीशन ने ६ टैरिफ इन्क्वायरियाँ और ४ मूल्य इन्क्वायरियाँ की। २ टैरिफ इन्क्वायरिया उन उद्योगो से सम्बन्धित थी जिन्होने पहली बार सरक्षण मांगा था और शेष अवधि बढवाने के इच्छुक उद्योगो की थी। नये प्रार्थनापत्र कैलशियम कारबाइड और आइसोनिआजिड उद्योगो से प्राप्त हुए थे। टैरिफ कमीशन रिपोर्ट पर सरकार ने कैलशियम कारबाइड उद्योग को ३१ दिसम्बर सन् १९५८ तक सरक्षण देना स्वीकार कर लिया, किन्तु जैसा कि कमीशन ने सिफारिश की थी, आइसोनिआजिड उद्योग को सरक्षण देना मना कर दिया, क्योंकि इससे एक जीवन रक्षण ड्रग की कीमत के बढने का अदेशा था।

सन् १९५७–५८ मे कमीशन ने २२ टैरिफ इन्क्वायरियाँ और १ मूल्य इन्क्वायरी सचालित की। सभी टैरिफ इन्क्वायरियाँ सरक्षण की अवधि बढाने वाले उद्योगो से सम्बन्धित थी।

सन् १९५९-६० मे प्रशुल्क आयोग ने सरक्षण को जारी रखने से सम्बन्धित १४ प्रशुल्क जाँच-पडतालें तथा ३ मुख्य मूल्य सम्बन्धी जाँच पडताले की थी। निम्न उद्योगो के सम्बन्ध मे प्राशुल्किक जाँच पडतालें (Tariff enquiries) की गई थी.—Sago, hydroquinone, grinding wheels, machine screws, cotton and hair belting, automobile leaf spring, stearic and oleic acids, diesel fuel injection equipment, plastics (phenol formaldehyde moulding powder and buttons), non-ferrous metals, automobile hand tyre inflators, Mswood screws, calcium lactate and piston assembly. इनमे से प्रथम १० उद्योगो के सम्बन्ध मे कमीशन की मुख्य सिफारिशो को स्वीकार कर लिया है। तदनुसार इनमे से प्रथम ६ उद्योगो को जनवरी सन् १९६० से सरक्षण मिलना बन्द हो गया है, २ उद्योगो को सरक्षण क्रमश. ३ और ४ वर्ष के लिय बढा दिया गया है, नवें उद्योग को बटनो के सम्बन्ध मे सरक्षण बन्द कर दिया गया है, जबकि पाउडर के लिए वह सन् १९६२ तक जारी रहेगा। दसव उद्योग के अन्तर्गत भी कुछ मदो को सरक्षण देना बन्द कर दिया गया है और कुछ तीन वर्ष तक के लिए बढा दिया गया। मूल्य सम्बन्धी जाँच पडतालें (Price inquiries) सूत, कागज और चीनी से सम्बन्धित थी।

टैरिफ कमीशन के कार्य की आलोचना

जैसा कि निम्न तालिका से प्रकट होता है, कमीशन ने सन् १९५२-५८ की अवधि में सरक्षण की माँग पहली बार करने वाले १४ प्रस्तावो के सम्बन्ध मे इन्क्वायरी की थी, जिनमें से ६ तो ओटोमोबाइल इडस्ट्री या ओटोमोबाइल पार्टस बनाने वाले

उद्योगो से सम्बन्धित थी, ४ नये प्रार्थना पत्र, जो कि उनी हौजरी, फ्लैक्स गुड्स और डाइसोनिअाजिड उद्योगो से सम्बन्धित थे, इस आधार पर अस्वीकृत कर दिये गये कि विद्यमान ड्यूटी ही पर्याप्त थी और इसे बढाने से देशी वस्तुओ की कीमतो के बढने की आशका थी। सरक्षण पाने वाले नये उद्योगो मे बाल बियरिंग्ज, ट्रांसफारमर्स, टिटेनियम डायोक्साइड, डाइस्टफ, इजीनियर्स स्टील फाइल्स और कैलशियम कारबाइड है। सन् १९५७-५८ मे किसी नये उद्योग से सरक्षण की माग नही आई। सम्भवतः विदेशी विनिमय के अभाव के कारण आयातो पर जो प्रतिबन्ध रहे उनसे हमारे नये उद्योगो को अप्रत्यक्ष सरक्षण प्राप्त हो गया था, जिसमे उन्होने सरक्षण की माँग पर बहुत ध्यान नही दिया।

प्रशुल्क आयोग का कार्य १९५२–५८

वर्ष	टैरिफ इन्क्वायरियाँ		कुल	मूल्य इन्क्वायरियाँ
	नवीन	सरक्षण चालू रखने के लिए		
१९५३-५४	४	११	१५	३
१९५४-५५	५	१७	२२	१
१९५५-५६	३	१७	२०	२
१९५६-५७	२	६	८	४
१९५७-५८	–	२२	२२	१
कुल	१४	७३	८७	११

विद्यमान उद्योगो को सरक्षण जारी रखने के सम्बन्ध मे कुल ७१ इन्क्वायरियाँ की गई। यह अधिक सख्या इस कारण थी कि कमीशन ने केवल अल्प अवधियो के लिये ही सरक्षण दिया था, जिससे उन्हे बढवाने की आवश्यकता उदय हुई। सरक्षित उद्योगो की सूची से, जो कि आगे दी गई है, यह प्रगट होगा कि केवल चार उद्योगो को ही ३१ दिसम्बर सन् १९६० तक, १ उद्योग को सन् १९६१ तक तथा कुछ उद्योगो को अनिर्दिष्ट काल तक सरक्षण दिया गया था।

प्रारम्भ मे अल्प अवधि के लिये ही सरक्षण देने के कुछ निश्चित गुण दोष है। अल्पकालीन सरक्षण का लाभ यह है कि कमीशन को समय-समय पर सरक्षित उद्योग की प्रगति का मूल्यांकन करने का अवसर मिलता है, जिसके फलस्वरूप वह उद्योग को किस्म सुधारने तथा मूल्य घटाने के लिये प्रेरित कर सकता है। इसके अतिरिक्त उद्योग असामाजिक कार्यवाहियो मे भाग लेने से हिचकिचाते है, क्योकि भविष्य मे उन्हे सरक्षण जारी न रखे जाने का भय रहता है। इसके विपरीत, अल्पकालीन सरक्षण उद्योगपतियो को नये उद्योगो मे विनियोग करने के लिये प्रोत्साहित नही करता। ऐसी परिस्थितियो मे, सरक्षण से देशी माल का उत्पादन बढने के बजाय उपभोक्ताओ का शोषण हो सकता है, क्योकि उन्हे आयात-वस्तुओ के लिये

अधिक मूल्य देने पडा करगे। अत टैरिफ कमीशन को सावधानी ग अल्पकालीन सरक्षण के प रणामा का विस्तृत परीक्षण करना चाहिये। इस सम्बन्ध मे फिस्कल कमीशन (१९४९ ५०) के निम्न कथन का लाभ सहित उल्लेख किया जा सकता है— आधुनिक वर्षों म सरक्षण के प्रभाव का नियत्र करन वाली सबसे मुख्य बात अल्प अव ध क लिये सरक्षण देना है इसम सरक्षित उद्योग अपनी मशीन आदि का प्रतिस्थापन एव आधुनिकीकरण करन की दिशा मे कम निरुत्साहित हुए है।

सरक्षत उद्योगा की सूचा से यह भी मालूम होगा कि सरक्षित उद्योगो को चार वर्गो म बाटा गया है—पूंजी सामान वाल उद्योग (सख्या ८) उपभोक्ता माल वाले उद्योग (३) औद्योगिक कच्चे माल वाला वग (१९) और यातायात वग (७)। इस प्र ार ३१ माच सन् १९५८ को लगभग ३७ उद्योगो को सरक्षण प्राप्त था।

देश क औद्योगिक विकास म सरक्षण का जो महत्त्व रहा है उस उन उद्योगो की सूची के विश्लेषण से जाना जा सकता है जो कि गत वर्षो मे सरक्षण स मुक्त की गई है।

विभिन्न उद्योगो को सरक्षण का लाभ २ से १ वप तक मिला है। अधिकाश दशाओ मे सरक्षण की अवधि ६ वप रही है। युद्ध-पूव सरक्षण पाने वाले उद्योग सरक्षण के अन्तगत युद्धोत्तर सरक्षण पाने वाल उद्योगो की तुलना म अधिक समय तक रहे। लेकिन यह नही समझना चाहिय कि जिन उद्योगो से सरक्षण हटा लिया गया है वे विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना करने लायक बन गये है। अनेक दशाओ मे तो सरक्षणात्मक ड्यूटी का स्थान रेवेन्यू ड्यूटी ने ले लिया है।

तालिका

सरक्षित उद्योगो की सूची—३१-३-१९५८

क्रम सख्या	उद्योग का नाम	सरक्षण स्वीकार करने की तिथि	सरक्षण समाप्त होने की तिथि
	(१) पूंजी वस्तुए		
१	बाल बियरिंग	१०-१-१९५३	३१-१२-१९६०
२	काटन व हेयर बैल्टिंग्ज	१२-८-१९४८	३१-१२-१९५९
३	सूती वस्त्र मिल मशीनरी	१७-१२ १९४९	३१-१२-१९६०
४	इलैक्ट्रिक मोटर्स	१ -४-१९४८	३१-१२-१९५८
५	इजीनियस स्टाल फाइल्स	१९५५-५६	३१-१२-१९५९
६	ग्राइडिंग व्हील्स	१०-५-१९४७	३१-१२-१९५९
७	मशीन स्क्रूज	१-१२-१९५१	३१-१२-१९५९
८	पावर एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन ट्रासफारमस	३०-५-१९५३	३१-१२-१९६०

क्रम संख्या	उद्योग का नाम	संरक्षण स्वीकार करने की तिथि	संरक्षण समाप्त होने की तिथि
	(२) उपभोग वस्तुयें		
९	बटन (प्लास्टिक)	१३-१-१९५१	३१-१२-१९५६
१०	कोका पाउडर और चाकलेट	१-२-१९४७	३१-१२-१९५८
११	दियासलाई	१९२८	अनिर्दिष्ट
	(३) औद्योगिक कच्चा माल और उपभोग्य वस्तुयें		
१२	अल्यूमीनियम	१५-५-१९४८	३१-१२-१९५८
१३	एन्टीमोनी	२२-३-१९४०	३१-१२-१९५८
१४	बायक्रोमेट	२१-१२ १९४६	३१-१२-१९५८
१५	कैलशियम कारबाइड	१९५६-५७	३१-१२-१९५८
१६	कैलशियम लेक्टेट	१२-८-१९५०	३१-१२-१९६०
१७	कास्टिक सोडा व ब्लीचिंग पाउडर	२८-१-१९५५	३१- २-१•५८
१८	डाइस्टफ	२-२-१९५५	३१-१२-१९६४
१९	हाइड्राक्विनोन	२८-७-१९५१	३१-१२-१९५६
२०	नान फैरस मैटल	११ ६-१९४८	३१-१२-१९५६
२१	अलेथिक एव स्टियरिक एसिड	४-६-१९४८	३१-१२-१९५६
२२	प्लास्टिक	७-१-१९५०	३१-१२-१९५६
२३	प्लाइवुड टीचेस्टेंस	१२-४-१९४८	३१-१२-१९६०
२४	सैरीकल्चर	१९३४	३१-१२-१९५८
२५	कृत्रिम रेशम	१९३४	३१-१२-१९५८
२६	सैगो	१६-९-१९५०	३१-१२-१९५८
२७	शीट ग्लास	२५-२-१९५०	३१-१२-१९६०
२८	सोडा एश	२२- -१९५०	३१-१२-१९५८
२९	टिटेनियम डायोक्साइड	९-१२-१९५३	३१-१२-१९६१
३०	वुड स्क्रू	२२-३-१९४७	३१-१२-१९६०
	(४) यातायात उद्योग		
३१	ओटोमोबाइल्स	१९५४	३१-१२-१९६७
३२	ओटोमोबाइल हैन्ड टायर इन्फ्लेटर्स	१४-२-१९५५	३१-१२-१९६०
३३	ओटोमोबाइल लीफ स्प्रिंग	९-१०-१९५४	३१-१२-१९५६
३४	ओटोमोबाइल स्पार्किंग प्लग	२२-१-१९५५	३१-१२-१९६०
३५	बायसकिल ...	२२-३-१९४७	३१-१२-१९६०
३६	डीजल फ्यूल इंजैक्सन इक्विपमेन्ट	१९५५-५६	३१-१२-१९६०
३७	पिस्टन असेम्बली ...	१९५५-५६	३१-१२-१९५६

टैरिफ कमीशन को चाहिय कि उद्योगो की प्रगति पर निगाह रखे, क्योंकि इनका समाज के प्रति जिसन इनके विकास की लागत वहन की है बडा दायित्व है। टैरिफ कमीशन इनको अपनी वस्तुओं का मात्रा तथा किस्म के सुधारने म सहायता दे सकता है। उन्हे विदेशी फर्मों स जो कि वैसी ही वस्तुए बनाती है लागत विश्लेषण दिलाय जा सकते ह जिसस उनको अपने लागत व्यय कम करने की प्ररणा मिले। इन उद्योगो को असामाजिक क्रियाओं म भाग लन से भी रोकना चाहिय। इसका इन उद्योगो म निकट सम्पर्क उद्योगों के लिये लाभदायक सिद्ध ह गा। जनता को भी यह पता पड सकगा कि जिन उद्योगो के विकास क लिए उसने त्याग किया था उनकी अब क्या दशा है। इस हेतु टैरिफ कमीशन को इन उद्योगो स सम्बन्धित विवरण समय समय पर प्रकाशित कराते रहना चाहिय।

सरक्षण का भविष्य—

निस्सन्देह यह आश्चय की बात है कि भारत सरकार की औद्योगिक नीति सन् १९५६ की घोषणा मे देश के औद्योगिक विकास मे सरक्षण की जो महान् भूमिका है उसकी कोई चर्चा नही का गई है। सन् १९४८ की औद्योगिक घोषणा म भारत सरकार की सरक्षण नीति की चर्चा निम्न शब्दो म की गई था— देश की प्रशुल्क नीति का सचालन इस प्रकार किया जायगा कि अनुचित विदेशी प्रतिस्पर्धा की रोक थाम हो और भारतीय साधनो का उपभोक्ता पर अनुचित भार डाले बिना अधिक से अधिक उपयोग किया जा सके। प्रथम पच वर्षीय योजना मे केवल इतना कहा गया था कि टैरिफ कमीशन द्वारा विचार करने के बाद उन उद्योगो को जिनमे पूंजी का भारी विनियोग होगा तथा नई टेकनीक प्रयुक्त होगी पहले से ही सरक्षण का भरोसा दिया जायगा। द्वितीय पच वर्षीय योजना म भी सरक्षण के महत्त्व पर कम ध्यान दिया गया है।

लेकिन नियोजित अर्थ व्यवस्था प्रशुल्क नीति को कई प्रकार से प्रभावित करती है जिससे सरक्षण का नियोजित अर्थ व्यवस्था स्पष्ट सम्बन्ध होने का पता चलता है। प्रशुल्क नीति पर नियोजित अर्थ व्यवस्था के निम्न प्रभाव पडते हैं—

(१) उद्योगो के विकास क लिय पच वर्षीय योजनाओं मे प्राथमिकताओं का जो क्रम निर्धारित किया गया है उसमे प्रशुल्क अधिकारियो को अपनी नीति का निर्माण करने मे सहायता मिलती है।

(२) नियोजन के अन्तर्गत जिस सीमा तक औद्योगिक विनियोग कम आर्थिक लाभ वाले उद्योगों से हटकर अधिक आर्थिक लाभ वाले उद्योगो मे लगते है उस सीमा तक समाज पर सरक्षण से पडने वाले भार मे कमी आ जाती है।

(३) प्रशुल्क आयोग को यह भी ध्यान मे रखना चाहिय कि चूँकि नियोजन से विकेन्द्रीयकरण और प्रादेशिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है इसलिय भी सरक्षण का समाज पर भार कम हो जाता है।

(४) चू कि देश ने राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप म समाजवादी समाज की रचना स्वीकार कर ली है, इसलिए सरकार के ऊपर आधारभूत एव 'कुन्जी'--उद्योगो के विकास का दायित्व विशेष रूप से आ पडा है। अनः इस सीमा तक निर्भर उद्योगो को दी जाने वाली सहायता मे स्वत. कमी होकर जनता के ऊपर सरक्षण का भार कम हो जायगा।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सरक्षण क प्रश्न को औद्योगिक विकास की योजना मे एक निश्चित स्थान दिया जाना चाहिये। इसमे कोई सदेह नही है कि प्रशुल्क नीति औद्योगिक विकास का एकमात्र साधन नही है, लेकिन प्राय सरकार द्वारा औद्योगिक विकास की दृष्टि से इस पर अत्यधिक निर्भरता रखी गई है। जैसा कि १९४९-५० के प्रशुल्क आयोग (Fiscal Commission) की रिपोर्ट मे कहा गया था, उद्योगो के सरक्षण के प्रश्न को आर्थिक विकास की योजना से स्पष्ट रूप मे सम्बन्धित कर देना चाहिए, अन्यथा सरक्षण का भार असमान रूप मे वितरित होगा और उद्योगो के विकास म समन्वय नही हो पायेगा। केवल सरक्षणात्मक करो के लगाने से ही पूर्ण औद्योगिक विकास नही हो सकेगा।

टैरिफ कमीशन को चाहिये कि सरक्षित उद्योगो की प्रगति का विस्तार से विश्लेषण एव अध्ययन करे। जो उद्योग सरक्षण पाने के लिये बडा प्रयत्न करते है और सरक्षण मिल जाने पर वस्तु-स्थिति से लापरवाह हो जाते है उन पर कमीशन को विशेष कार्यवाही करनी चाहिये। यद्यपि शिशु उद्योगो के सरक्षण की समस्या देश के आर्थिक विकास की दृष्टि स अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथापि सरक्षण जारी रखने के लिए इन पर यह प्रतिबन्ध लगाना उचित होगा कि उनके उत्पादन की किस्म एव मात्रा मे बराबर सुधार होता जाना चाहिए। उपभोक्ताओ से यह आशा नही की जा सकती कि व अनार्थिक उद्योगो क विकास का भार उठाये। ऐसा वे तभी कर सकते है जबकि उन्हे निकट भविष्य म उनके अपने ही पैरो पर खडे होने की सभावना प्रतीत हो।

विदेशो मे प्रशुल्क सम्बन्धी कार्य प्रणाली, नियमो एव सस्थाओ का अध्ययन, प्रशुल्क नीति के अन्तर्गत समाज के विभिन्न वर्गो पर पडने वाले प्रभावो का विवेचन, विश्लेषण एव अध्ययन करना भी कमीशन का एक उचित कर्तव्य है। कमीशन को चाहिये कि जनता के लाभार्थ इन निष्कर्षो का प्रकाशित करता रहे। इन अध्ययनो से कमीशन को भी इस बात की जानकारी हो सकेगी कि प्रशुल्क नीति म कौन कौन सी दुर्बलताये है और इनमे क्या उचित परिवर्तन किये जा सकते है।

अत. यह ठीक ही कहा गया है कि 'प्रशुल्क सरक्षण और मूल्य नियन्त्रण की सुविचारित एव सुसचालित नीतियां औद्योगिक विस्तार एव स्थायित्व के काय म महत्त्वपूर्ण साधन हो सकती है। प्रशुल्क सरक्षण के कारण ही भारत के उद्योगो की विद्यमान दशा प्राप्त हुई है और जैसे-जैसे नियोजित आधार पर औद्योगिक विकास

की प्रगति होती जायेगी वैसे-वैसे टैरिफ कमीशन के कर्तव्यों की सीमा और महत्त्व मे वृद्धि होती जायगी ।

भारत मे वर्तमान वाणिज्यिक नीति

आज सबसे बडी आवश्यकता इस बात की है कि हमारी व्यापारिक व वाणिज्यिक नीति का स्वरूप ऐसा हो जो देश के नियोजन मे सक्रिय रूप से सहयोग दे सके। द्वितीय व तृतीय योजना अवधि मे हमे अधिक मशीनरी, उपकरण, धातुये, कपास तथा रासायनिक पदार्थों का आयात करना पडगा। प्रथम योजना की अपेक्षा हम कम मात्रा मे खाद्यान्न, चीनी, कागज आदि का निर्यात करेगे। हमारी आयात नीति के अन्तर्गत प्रत्येक वस्तु का कोटा निश्चित है, न केवल आन्तरिक उपयोग के लिये वस्तु की आवश्यकता के आधार पर वरन् इस बात पर भी कि यह आवश्यकता पूर्णत अथवा अशत देश के उत्पादन से ही पूरी हो सकती है, अथवा नही। सामान्य नियम यह है कि यदि भारत किसी वस्तु के सम्बन्ध मे कुल माग को पूरा करने मे समर्थ है, तो वह प्रशुल्क कर ६६% या १००% तक बढा दिया गया है, और यदि अमुक भारतीय उद्योग केवल अशत. ही माग को पूरी कर सकता है तो वहा आयात कोटा निर्धारित किया गया है। यदि उद्योग को अधिक सरक्षण की आवश्यकता है, तो व प्रशुल्क आयोग से प्रार्थना कर सकता है। ऐसी योजना के अन्तर्गत कुछ उद्योगो म अपने पैरो पर खडे होने की शक्ति आगई है। उदाहरण के लिये, हमारा साईकिल उद्योग आज ६ ६ लाख साइकिल प्रतिवर्ष बनाता ह, जबकि सन् १९५१ मे केवल १ लाख साइकिलो का निर्माण होता था।

आज हमारे निर्यात् का स्वरूप भी बदल गया है। हम केवल कच्चा माल ही नही, वरन् निर्मित व अर्द्धनिर्मित पदार्थ भी निर्यात करने लगे ह। अत भविष्य मे हमे दुनियां के अन्य औद्योगिक राष्ट्रो (विशेषतः जापान, चीन, यू० के० आदि) से प्रतिस्पर्धा का सामना करना पडगा। इसी हतु निर्यात प्रोत्साहन परिषदो (Export Promotion Councils) की स्थापना की गई। साख-प्रतिभूतियो का चलन किया जा रहा है। द्विपक्षीय व्यापारिक समझौते किये जा रहे है। जिन देशो में व्यापार राज्य के हाथा मे है, उनके साथ अधिक अनुकूल शर्तो पर व्यापार करने के लिये राजकीय व्यापार निगम (State Trading Corporation) की स्थापना की गई है। हमारे विदश-स्थित व्यापार दूतावास भी इस दशा मे प्रयत्नशील है तथा राष्ट्रीय उद्योगो को प्रोत्साहित कर रह है।

हमारी भावी वाणिज्यिक नीति के निम्न लक्ष्य होने चाहिये—

(i) द्वितीय व तृतीय योजनाओ मे औद्योगीकरण, उत्पादन व उपभोग के लक्ष्य पूरे होने चाहिये।

(ii) निर्यात का स्तर ऊँचा रहना चाहिय।

(iii) व्यापार-सतुलन का घाटा उपलब्ध विनिमय-स्रोतो से बहुत अधिक नही होना चाहिये।

(iv) आयात-निर्यात के उद्देश्यो व योजना के उद्देश्यो मे एकरूपता रहनी चाहिये।

(v) अन्य देशो के साथ हमारे व्यापारिक सम्बन्ध बार-बार टूटने नही चाहिय।

व्यापार एव प्रशुल्क सम्बन्धी सामान्य समझौते

(General Agreement on Trade and Tariffs)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सघ के चार्टर को द्वितीय धारा के उद्देश्य (कि सदस्यगण आयात निर्यात करो तथा व्यापारिक प्रतिबन्धो को न्यूनतम करेगे) को सम्मुख रख कर विभिन्न सदस्य देशो ने सन् १९४७ म ही एक सम्मेलन किया और उसके जो निर्णय हुये उनका समावेश जी० ए० टी० टी० मे कर लिया गया। यह समझौता १ जनवरी सन् १९४७ स व्यवहार मे लाया गया। इस समझौते म यह निश्चय किया गया कि यदि एक देश किसी दूसरे देश को प्राशुल्किक करो म कुछ छूट देता है, तो उसे यह छूट अन्य सदस्य देशो को भी देनी पडगी। अर्थात् सदस्य देश किसी भी देश के साथ पक्षपात-पूर्ण व्यवहार नही कर सकते।

इस समझौते के अनुसार निम्न लक्ष्य सामने रखे गये—

जी० ए० टी० टी० के लक्ष्य—

(१) विश्व के विभिन्न देशो मे पारस्परिक भेद-भाव को हटाकर मित्रता की भावना पैदा करना।

(२) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे भिन्न-भिन्न देशो द्वारा आयातो पर लगे हुये करो को हटवा कर व्यापार की उन्नति करना।

(३) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास के लिये सभी सम्भव नियमो को बनाना।

प्रिपरेटरी कमेटी के १८ सदस्यो के अतिरिक्त पाकिस्तान, बर्मा लका, सीरिया और दक्षिणी रोडेशिया ने भी समझौते मे भाग लिया। बाद मे कुल सदस्यो की सख्या ३९ हो गई। इसके अनुसार भिन्न भिन्न देशो के बीच १२६ द्विपक्षीय व्यापारिक समझौते हुय और सभी सदस्यो ने अपने प्रशुल्क मे भिन्न भिन्न प्रतिशत मे कमी की है। ग्रेट ब्रिटेन, सयुक्त राष्ट्र अमेरिका व अन्य देशो न अपने प्राशुल्किक दरो म इतनी कमी की कि अन्त मे वे निम्नतम सीमा तक पहुच गई। इन समझौतो ने यह सिद्ध कर दिया कि सभी देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की वृद्धि के पक्ष मे है।

सन् १९४९ म, दूसरी कान्फ्रेन्स एनेकी (फ्रास) मे हुई, जिसम निम्नलिखित नये देशो ने भी भाग लिया :—

डेन्मार्क, यूनान, फिनलैण्ड, स्वीडन, इटली, हैटी, लाइबेरिया, निकारागुए, डोमीनियम रिपब्लिक, उरूगय। इन नय सदस्यो को समझौते मे सम्मिलित करने

के लिये एक प्रोटोकल पर हस्ताक्षर किये गये और २० मई सन् १९५० से यह
किया गया। भारत ने इन दोनों सम्मेलनों में भाग लेकर विभिन्न देशों मे व्यापा
समझौते किये और उनके अनुसार रियायतें दी और प्राप्त की।

तत्पश्चात् अप्रेल सन् १९५१ में टोरके (इंगलैंड) में तृतीय सम्मेलन हुआ। इ
२८ देशों ने भाग लिया था और १२७ द्विपक्षीय समझौते हुये। भारत ने भी
सम्मेलन में भाग लिया। पुराने देशों के अतिरिक्त ६ नये देश भी इस सम्मेल
सम्मिलित हुये। पुराने समझौतों (जिनेवा और एनेकी) की अवधि बढ़ा कर सन् १९
तक कर दी गई। कुछ पुरानी रियायतें वापस कर ली गई तथा कुछ नवीन रिया
के विषय में समझौते हुये।

भारत और जी० ए० टी० टी०—

जी० ए० टी० टी० के अन्तर्गत भारत को प्रशुल्क सम्बन्धी जो रियायतें
है उनकी भारतीय प्रशुल्क मण्डल ने पूर्ण रूप से जाँच कर ली है। इस मण्डल के अनु
यह निश्चित रूप में नहीं कहा जा सकता है कि उन रियायतों का भारत के व्य
पर क्या प्रभाव पड़ेगा? मण्डल ने इतना अवश्य निश्चय के साथ कह दिया है
अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक सघ (I. T. O) का भविष्य जब तक स्पष्ट ज्ञात न हो
भारत को जी० ए० टी० टी० के विरुद्ध न जाना चाहिये। प्रशुल्क मण्डल ने यह
कहा है कि प्रत्येक व्यवहार में भारत निम्नलिखित सिद्धान्तों का ध्यान रखे :—

(१) निम्नलिखित वस्तुओं पर रियायत पाने की चेष्टा करनी चाहिये :—

(अ) कच्चे माल की अपेक्षा निर्मित माल पर,

(आ) उन वस्तुओं पर जो विश्व की वैसी ही वस्तुओं से प्रतिद्वन्द्विता क

(इ) इन वस्तुओं के सम्बन्ध में जो विश्व में उनकी स्थानापन्न वस्तुओं
प्रतिद्वन्द्विता करे।

(२) निम्नलिखित वस्तुओं पर ही रियायत देनी चाहिये :—

(अ) उत्पादक माल।

(ब) अन्य मशीनरी तथा साजसामान।

(स) प्रमुख कच्चा माल।

प्रशुल्क मण्डल ने निम्नलिखित सुझाव और दिये —

(१) व्यापारिक समझौते करते समय भारत को इस बात का ध्यान र
चाहिये कि कुटीर तथा छोटी मात्रा के उद्योगों की उन्नति परमावश्यक है। अ
उनके विषय में अधिक से अधिक रियायतें पाने का प्रयत्न करना चाहिये।

(२) जिन वस्तुओं के सम्बन्ध में व्यापारिक समझौता (जी० ए० टी० टी
अन्तर्गत) हुआ था, उनके आयात व निर्यात पर विशेष निगाह रखनी चाहिये
प्रति ६ माह के पश्चात् उनके सम्बन्धित आँकड़े भी छापने चाहिये।

भारत को जी० ए० टी० टी० के अन्तर्गत निम्नलिखित वस्तुओं पर कर की छूट मिली—सूती कपड़ा, चमड़ा, नारियल की चटाइयाँ, मसाले, जूट का सामान, अभ्रक, कालीन काजू आदि। भारत ने निम्न देशों के साथ इसी समझौते के अनुसार व्यापारिक सन्धियाँ की हैं—चीन, कनाडा, स० रा० अमेरिका जेकोस्लोवाकिया, लेवनान, सीरिया, क्यूबा, न्यूजीलैण्ड, इटली, स्वीडन, फिनलैण्ड, डेन्मार्क इत्यादि।

भारत म निम्नलिखित वस्तुओं के आयात पर इसी समझौते के अनुसार छूट मिली है। ताबा, पैट्रोल, रांगा अगूर, पत्थर शक्कर बनाने की मशीन, ट्रैक्टर, तेल पेरने की मशीन हल, मोटर हवाई जहाज, चावल, घड़ियाँ आदि।

भारत को जी० ए० टी० टी० के सदस्य बनने से काफी लाभ प्राप्त हुआ है और भविष्य में अधिक लाभ मिलने की आशा है।

STANDARD QUESTIONS

1 In what resp·cts does the new policy of developmental protection of the Fiscal Commission of 1949-50 differ from old policy of Discriminating Protection ?

2 Carefully examine the present Tariff Policy of the Govt of India. Is it conformity with the interests of the country ?

3 Briefly examine the functions and working of the Tariff Commission 1952, and comment upon the future of Protection

4 Write an essay on the "Present Tariff and Commercial Policy" of the Govt of India

5 Write a full note on G A T. T

अध्याय २१

करारोपण एवं उद्योग

(Taxation and Industry)

प्रारम्भिक—

किसी अर्द्ध विकसित देश की सरकार द्वारा औद्योगीकरण के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए अपनाए गय आर्थिक एव वित्तीय साधनो मे प्राशुल्किक प्रेरणाओ का एक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। कर प्रणाली ऐसी होनी चाहिये जो कि विकास मे सहायक हो। इस प्रकार की कर प्रणाली के मुख्य उद्देश्य निम्न होने चाहिए —(i) सावजनिक क्षेत्र के प्रोजेक्टो के लिए पर्याप्त धन जुटाना, (ii) नये व पुराने दोनो ही उद्योगो मे विनियोग की वृद्धि कराना (iii) द्वितीयात्मक उद्योगो (Secondary industries) मे लगे हुए उत्पत्ति के विभिन्न साधनो की उत्पत्ति मे वृद्धि करना, (iv) आन्तरिक एव अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिरता को कायम रखना, (v) अनुत्पादक कार्यों मे सट्टे के व्यवहारो को निरुत्साहित करना, और (vi) प्राइवेट सेक्टर को चालू एव विनियोग दोनो प्रकार की वस्तुओ के उत्पादन बढाने मे सहायता देना। ये उद्देश्य तब ही पूरे हो सकते हैं जबकि कर सम्बन्धी कानून वैज्ञानिक ढग पर बनाए जाये। इसके लिए पर्याप्त साख्यिकी नियोजन की आवश्यकता पडती है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् विशेषत अर्द्धविकसित देशो मे औद्योगीकरण को प्रोत्साहन देने के दृष्टिकोण से प्राशुल्किक प्रेरणाओ (Fiscal incentives) का महत्त्व बहुत बढ गया। प्रस्तुत अध्याय मे उद्योग और कर प्रणाली के सम्बन्ध की विस्तृत व्याख्या की गई है।

कर प्रेरणाओ के रूप (Forms of Tax Incentives)—

कर-प्रेरणाओ के अनेक रूप हो सकते है। कौन सी कर प्रेरणा दी जाय, इसका निश्चय कई बातो पर निभर होता है, जैसे कर सरचना म कर का स्थान, बजट-स्थिति, देश की आर्थिक परिस्थितियाँ आदि। कर-रियायतो से सरकारी आय पर प्रभाव तो पडता ही है, विकास योजनाये भी अप्रभावित नही रहती है।

कर-प्रेरणाओ से सरकारी आय मे होने वाली हानि को तभी उचित ठहराया जा सकता है जबकि वह उत्पादक पूँजी की मात्रा मे पर्याप्त वृद्धि ला सके। इसके अतिरिक्त कर-सरचना मे पर्याप्त लोच भी होनी चाहिए, ताकि बार-बार सशोधन करने की आवश्यकता न पड़े। बार-बार सशोधन करने से औद्योगिक विकास की गति पर बुरा प्रभाव पडता है।

कर सम्बन्धी रियायतो का उद्देश्य विनियोग सम्बन्धी निर्णयो को प्रभावित करना हो सकता है। इन रियायतो का सम्बन्ध लागत की मदो से हो सकता है, जैसे लाइसेन्स फीस, उत्पादन कर, सम्पत्ति कर। ऐसी दशा मे उत्पादन व्यय कम हो जायेगे। यदि लाभ पर करो के सम्बन्ध मे रियायत दी जाय, तो विनियोगो से आय अधिक होने लगेगी। यदि हानि को अगले वर्षो मे दिखाने की छूट मिले, तो इसका प्रभाव नई सस्थाओ से सम्बन्धित जोखिम को कम करना होता है। यदि पुर्नविनियोजित लाभो पर आय कर न लिया जाय, तो औद्योगिक विकास को बहुत प्रोत्साहन मिलता है।

कर की दर (Tax rate) मे कमी समान रूप से हो सकती है या विभिन्न उपक्रमो अथवा क्रियाओ के लिए विभिन्न मात्राओ मे की जा सकती है। उदाहरण के लिए, जो सस्थाये एक निर्दिष्ट सीमा से अधिक आय कमाती हैं उनको यह कमी नही की जाय अथवा पुर्नविनियोजित लाभ के अनुपात की वृद्धि के साथ बढ़ा दी जाय। कर-आधार (Tax base) मे कमी का उद्देश्य निर्धारित वाछित व्ययो को प्रोत्साहन देना है। इस प्रकार का प्रोत्साहन निम्न ४ तरीको से दिया जा सकता है—(अ) कुछ विनियोगो के लिए ह्रास की ऊँची दर स्वीकार करना, (ब) पूँजीगत व्ययो के सम्बन्ध मे कुछ सीमा तक छूट देना, (स) विशेष विनियोगों को जल्दी ही अपलिखित कर देने की अनुमति देना, तथा (द) अनुसधान आदि के लिए चदे स्वीकृत करना।

कर सम्बन्धी प्रेरणाओ का उद्देश्य कभी-कभी भावी विनियोगको को प्रभावित करने का भी होता है। उदाहरण के लिए, जिन लोगो के पास बचत है उन्ह औद्योगिक सस्थाओ मे विनियोग के लिए प्रेरित करके एक स्थानीय पूँजी बाजार के विकास को प्रोत्साहित करने के हेतु विशेष प्राधुल्किक उपाय किये गये हैं। लेकिन जो कर-प्रेरणाये (Tax incentives) वितरित लाभो पर कर रियायते देकर बाहरी विनियोगो को आकर्षित करने का उद्देश्य रखती हैं वे उन कर प्रेरणाओ के विपरीत है जिनके उद्देश्य लाभ के वितरण को अप्रोत्साहित करके पुर्नविनियोजन की वृद्धि करना है। किसी भी विशेष दशा मे कौन सी कर-प्रेरणा उपयुक्त होगी, यह परिस्थितियो पर निर्भर है।

अर्द्धविकसित देशो मे कर प्रणाली विदेशी विनियोग का ध्यान रखकर बनाई जाती है। अर्द्धविकसित देशो मे औद्योगीकरण की गति बढ़ाने के हेतु

विदेशी पूँजी के आगमन को प्रोत्साहित करने के लिए प्रायुत्विक प्रेरणाये देना आवश्यक हो जाता है। यह देखा गया है कि जहाँ विदेशी विनियोजक स्थानीय सहायक कम्पनियों के द्वारा कार्यशील होते है वहाँ कर सम्बन्धी रियायते अधिक असर दिखलाती है क्योंकि सहायक कम्पनियों की आय पर विनियोजक के गृह-देश मे आय कर नहीं लगता। यही कारण है कि इस प्रकार का संगठन उन्नत देशो मे अधिक बनाया जाने लगा है। इससे घरेलू करो से बचत हो जाती है।

पैनल्टी कर तब लगाए जाते है जब कि सरकार की औद्योगीकरण सम्बन्धी नीति के विरुद्ध कार्य किया जाय। परिकल्पी व्यवहारो के सम्बन्ध म पैनल्टी कर लगाना और वसूल करना एक कठिन समस्या है, क्योंकि ऐसे अधिकाश व्यवहार छिपा कर किये जाते है।

भारत मे कर-सरचना (Tax Structure in India)—

भारत मे वर्तमान कर-संरचना निम्न घटको पर आधारित है —(i) वह पच-वर्षीय योजनाओ की वित्त व्यवस्था के लिये अधिकतम कोषो का सग्रह करने मे सहायता करती है। (ii) यह विकास व्यय से उदय होने वाली आय की वृद्धि मे सहायता देती है। (iii) आय और सम्पत्ति के वितरण की असमानता को दूर करने मे उससे सहायता मिलती है। (iv) यह वाछित उद्योगो मे ही विनियोग करने के लिए प्रोत्साहन देती है और (v) कर से बचत के सब अवसरो को समाप्त करना भी इसका उद्देश्य है। वास्तव म करारोपण सरकार का एक प्रभावशाली साधन है, जिसके द्वारा वह राष्ट्रीय प्रसाधनो को नियोजित प्रोजेक्टो मे लगवा सकती है। किन्तु इस साधन का प्रयोग करने के लिए चतुरता व सूझ-बूझ की आवश्यकता पडती है। भारत सरकार न एक 'समन्वित कर प्रणाली (Integrated Tax System)) अपनाई है, जिसने करारोपण के क्षेत्र को विस्तृत करने के साथ-साथ गहरा भी किया है, अर्थात् नए कर लगाने के साथ-साथ पुराने करो की दरे भी बढाई गई है। यह सच है कि विकास की गति को तीव्र करने के लिए करो से आय म वृद्धि होनी चाहिए, किन्तु इसके साथ ही करदान क्षमता को भी ध्यान म रखना जरूरी है।

भारत मे करो मे कुल आय राष्ट्रीय आय की ७ या ८% है, जब कि यह प्रतिशत जापान म २३, इङ्गलैण्ड मे ३५, आस्ट्रेलिया म २२ और लका मे २० है। यदि करो की आय का प्रतिशत भारत म इतना ही कम बना रहा, तो विकास की बड़ी-बडी योजनाये पूरी न हो सकेंगी। यही मत कर जाच आयोग ने प्रगट किया था।* किन्तु अन्य देशो म कर-भार की तुलना करते समय यह बात ध्यान मे रखनी

---

* "Indian taxation on the basis of its existing structure and rates has not fully tapped the taxable resources of the country" (Taxation Enquiry Commission).

चाहिए कि भारत मे करदाताओ की प्रतिशत सख्या अन्य प्रगतिशील देशो की अपेक्षा बहुत कम है।

उद्योगो पर करारोपण मे सरकार को काफी आय हो जाती है। एक अनुमान के अनुसार सन् १९५८-५९ मे केन्द्र एव राज्यो की सरकारो को करो से होने वाली कुल आय (१,०५० करोड रु०) मे मे ८३७ करोड रु० की आय औद्योगिक क्षेत्र से ही प्राप्त हुई थी। औद्योगिक क्षेत्र पर कर भार बराबर बढ रहा है, किन्तु उसका अधिकाश भाग उपभोक्ताओ को सहन करना पडता है। इसका प्रमाण यह है कि कर बढने के साथ-साथ वस्तुओ के मूल्य भी बढते जा रहे है। करो का उद्योगपतियो अथवा उद्योगो के लाभ पर विशेष प्रभाव नही पडा है।

संस्थागत करारोपण (Corporate Taxation)—

औद्योगिक उपक्रमो का करारोपण एक महत्त्व-पूर्ण समस्या है। इस पर गत वर्षो मे बडी चर्चा हुई है। यह एक स्पष्ट तथ्य है कि सस्थागत उपक्रम (Corporate enterprises) देश के औद्योगिक विकास मे बडी महत्त्वपूर्ण भूमिका रखते है। अत करारोपण व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जोकि इनको कुप्रभावित न करे। नीचे सस्थागत उपक्रमो की करारोपण व्यवस्था के कुछ पहलुओ पर प्रकाश डाला गया है।

कर-योग्य आय की गणना—

आय कर अधिनियम के अनुसार जिस आय पर कर लगाया जाता है उसकी गणना इस प्रकार की जाती है कि कम्पनी को कई लाभ होते है। इसके अतिरिक्त, उन व्ययो की भी छूट दी जाती है जो कि कम्पनी प्रत्यक्ष रूप से अपने व्यापार के सम्बन्ध मे करती है। नीचे कुछ प्रमुख कर सम्बन्धी रियायतो का उल्लेख किया गया है, जिनका उद्देश्य देश के औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करना है।—

देश के आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने वाली ६ मुख्य कर-छूटे

१. नई औद्योगिक सस्थाओ को छूट।
२. कारपोरेशन टैक्स से छूट।
३ विकास सम्बन्धी छूट।
४ ह्रास सम्बन्धी छूट।
५ अनुसधान व्यय की अनुमति।
६ सम्पत्ति कर से मुक्ति।

(१) नई औद्योगिक सस्थाओ को छूट (Exemption for new Industrial undertakings —

नई औद्योगिक सस्थाओ को एक महत्त्वपूर्ण छूट दी गई है, जो यह है कि जिस वर्ष मे उन्होने व्यापार आरम्भ किया है उससे अगले ५ वर्षो के लिये उसको ६% पूँजी के बराबर लाभ पर कोई आय कर या अतिरिक्त कर नही लगेगा। इस छूट को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उक्त

सस्था भारत मे ही कार्य करती हो तथा एक विद्यमान सस्था का विभाजन करके निर्मित न हुई हो।

(२) कारपोरेशन टैक्स से छूट (Exemption from Corporation Tax)--

कम्पनियाँ अपने कोषो को भारत मे कुछ आधारभूत उद्योगो मे विनियोग करने के लिए उत्साहित हो, इस हेतु यह आयोजन किया गया है कि कम्पनियो को ३१ जनवरी सन् १९५२ के बाद स्थापित हुई किसी भारतीय कम्पनी से प्राप्त होने वाले लाभाशो पर कारपोरेशन टैक्स (कानूनी भाषा मे सुपर टैक्स—अतिरिक्त कर) नहीं देना पडेगा, बशर्ते यह भारतीय कम्पनी कुछ निर्दिष्ट उद्योगो मे ही पूर्णत या अशत सलग्न हो। इस समय निम्न उद्योग उक्त आशय के लिये निर्दिष्ट किए गए हैं—कोयला, लोहा एव स्पात, मोटर, स्थूल रसायन, ध्रूल मशीनरी, शक्ति उत्पादन के लिए मशीनरी व साज-सामान, कागज, इलेक्ट्रिक मोटर्स, इन्जन, रोलिंग स्टाक आदि। समय-समय पर इस सूची मे आवश्यकतानुसार वृद्धि भी कर दी जाती है। सन् १९५७-५८ मे एक नई छूट यह दी गई कि किसी भारतीय सहायक कम्पनी से प्राप्त होने वाले लाभाश पर विनियोक्ता कम्पनी अथवा प्रधान कम्पनी (Principal company) को १०% की दर से कारपोरेशन टैक्स देना पडेगा, जब कि उसे अपनी अन्य आय पर २० या ३०% टैक्स देना पडता है।

(३) विकास सम्बन्धी छूट (Development Rebate)—

मार्च सन् १९५४ के पश्चात् उद्योग मे लगाई गई समस्त नई मशीनरी पर सन् १९५५ से २५% लागत के बराबर विकास सम्बन्धी छूट दी जा रही है। यह छूट घिसाई की छूट के अलावा है। जहाजी कम्पनियो को विकास सम्बन्धी छूट ४०% लागत के बराबर दी जाती है। जबकि घिसाई छूट का प्रभाव तो कर-दायित्व को स्थगित करना है, विकास सम्बन्धी छूट विनियोगक के लिये एक प्रत्यक्ष कर-छूट है, क्योंकि भावी घिसाई छूट मालूम करने के उद्देश्य से उसे सम्पत्ति के अपलिखित मूल्य (Written down value) की गणना मे सम्मिलित नही किया जाता। घिसाई छूट एव विकास सम्बन्धी छूट दोनो का सम्मिलित प्रभाव यह होता है कि कर-दाता अपलिखित करने की गति को तेज करने के लिए प्रोत्साहित होता है तथा रेवेन्यू से सम्पत्ति की पूर्ण लागत काटने के अलावा २५% अधिक छूट भी प्राप्त कर लेता है।

(४) घिसाई सम्बन्धी छूट (Depreciation Allowance)—

सेंट्रल बोर्ड आफ रेवेन्यू ने नई इमारतो, मशीनो व प्लान्टो पर 'साधारण घिसाई' के रूप मे निश्चित दरो से छूट देने का आयोजन किया है। इस छूट के अतिरिक्त घिसाई सम्बन्धी कुछ अतिरिक्त छूट भी दी गई, है जो सम्पत्तियो के क्रय एव व्यापार मे उनके प्रयोग की तिथि से ५ कर-वर्षों के भीतर प्राप्त की जा सकती

है, बाद मे नहीं। अतिरिक्त छूट सामान्य छूट के बराबर दी जाती है। कुछ विशेष प्रकार की मशीनो के लिए भी, जो कि ओवर टाइम कार्य करती है, अतिरिक्त छूट देने की व्यवस्था है। यदि किसी वर्ष के लाभ इतने पर्याप्त नही है कि उक्त दोनो ही प्रकार की छूटे दी जा सके, तो न्यूनता को असीमित अवधि तक आगे ले जाया जा सकता है। इन सब छूटो का सामूहिक प्रभाव कर योग्य आय को, जिस पर कर की दर लागू की जाती है सीमित रखना है।

(५) अनुसंधान व्यय की अनुमति (Expenditure on Research Allowed)—

व्यापारिक सस्थाओ द्वारा वैज्ञानिक, साख्यिकीय एव सामाजिक अनुसधानो पर, जो कि उनके व्यवसाय से सम्बन्ध रखते है, जो व्यय किया जाय, उसे पाच वर्षों मे काटने की अनुमति दी गई है।

(६) सम्पत्ति कर से मुक्ति (Exemption from Wealth Tax)—

नई औद्योगिक सस्थाओ को समामेलन से ५ वर्षो के भीतर अपनी वास्तविक कीमत पर सम्पत्ति कर देने से मुक्त रखा गया है।

उक्त रियायतो के कारण भारत मे औद्योगिक उपक्रमो पर कर-प्रभाव कुछ सीमा तक हलका हो गया है। ये रियायतें विदेशियो और विदेशी उपक्रमो को भी प्राप्त हैं।

सामूहिक करो का प्रभाव (Incidence of Corporate Taxes)—

भारत मे औद्योगिक सामूहिक उपक्रमो (Corporate enterprises) को अपने लाभों एव सम्पत्तियो पर निम्न कर चुकाने पडते हैं, जिनकी दरें प्रतिवर्ष फाइनेन्स एक्ट द्वारा निश्चित की जाती है —

(१) आय कर (Income Tax)—

कम्पनियो को उनके सम्पूर्ण कर-योग्य लाभो पर बेसिक दर से जो कि इस समय ३०% है, आय कर देना पडता है। आय कर पर ५% सर-चार्ज भी लगाया गया है। इस प्रकार कर-योग्य आय पर आय-कर की वास्तविक दर ३१·५% है। इसके अतिरिक्त कम्पनियो को सुपर टैक्स भी देना पडता है। सुपर टैक्स का ही दूसरा नाम कारपोरेशन टैक्स है। सुपर टैक्स की बेसिक दर ५०% है, लेकिन इसमे से कुछ छूटे दी जाती है। सुपर टैक्स पर कोई सरचार्ज नही देना पडता। यदि छूटे देने के बाद सुपर टैक्स की शुद्ध दर २०% मानी जाय, तो आय कर एव सुपर टैक्स का सम्मिलित भार इस समय ५१.५% होता है, जबकि पिछले वर्षो मे वह ४५% रहता था।

(२) विशेष पैनल्टी-कर (Special Penalty Taxes)—

कम्पनियो पर तीन विशेष पैनल्टी कर लगे हुए है —

(i) अतिरिक्त लाभांश-कर (Excess Dividends Tax)— कम्पनियो को अपने घोषित लाभाश पर १०% की दर से, जबकि लाभाश

६% से १०% के बीच मे हो, और २०% की दर से जबकि लाभाश दत्त पूँजी के १०% अधिक हो, अतिरिक्त लाभाश कर देना पडता है।

(ii) धारा २३-अ वाली कम्पनियो पर अतिरिक्त सुपर टैक्स (Additional Super Tax on Sec. 23-A Companies)— आय कर अधिनियम की धारा २३-अ मे वर्णित कम्पनियो को जिनमे जनता का कोई महत्त्वपूर्ण हित नही है, अपने 'वितरण योग्य लाभो' का प्रादिष्ट दर से (४५% से १००% तक) लाभाशो के रूप मे अनिवार्य वितरण करना होगा। यदि ऐसा नही किया गया तो न्यूनतम सीमा से ऊपर अवितरित लाभो पर ३७ ५% एव ५०% की दर से अतिरिक्त सुपर टैक्स जुर्माने के रूप मे देना होगा। इस धारा के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की कम्पनियो के लिये न्यूनतम प्रतिशत इस प्रकार निर्धारित किए गये हैं — विनियोक्ता कम्पनी १००%, निर्माणी कम्पनी, खनिज कम्पनी या शक्ति उत्पादन कम्पनी ४५%, स्थिर सम्पत्तियो की वास्तविक लागत या कम्पनी की दत्त पूँजी (शेयर होल्डरो की ऋण पूजी को सम्मिलित करते हुए) से अधिक कोष एव एकत्रित लाभ रखने वाली कम्पनी ६०%, अन्य कोई कम्पनी ६०%। इस नियम का उद्देश्य कम्पनियो को अपने कोषो का निर्माण करने के लिए एक विशेष प्रतिशत से अधिक लाभ रखने से रोकना है।

अनेक उद्योगपतियो ने धारा २३-A को समाप्त करने की माग की है। उनका कहना है कि धारा २३-A कम्पनियाँ कोरपोरेट सेक्टर का एक महत्त्वपूर्ण अग है और उद्योग व वाणिज्य के विकास मे तथा पूजी के निर्माण मे भी बहुत सहयोग दे रही है। उक्त धारा इन कम्पनियो के लिये बहुत हानिकारक है।* इसके विपरीत, कर जाच आयोग ने इस धारा का समर्थन करते हुए कहा है कि इन कम्पनियो के प्रबन्धको को कम्पनी के लाभो के बटवारे को इस प्रकार घटाने या स्थगित करने के अधिकार प्राप्त है कि उनका अपना कर दायित्व काफी सीमा तक कम हो जाय। विभाजन से बचाया गया लाभ बाद मे उनके उपभोग की वित्त-व्यवस्था करने मे या विनियोगो के इन्टरलॉकिंग मे सुविधा के लिये प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त इन कोषो को, उनके वास्तविक स्वामियो को लागू होने वाली वैयक्तिक दरो पर टैक्स का भुगतान किये बिना ही, निर्मित होने देने का अर्थ है कुछ लोगो के हाथो मे सम्पत्ति केन्द्रित होने देना।

---

* "There is more mischievous piece of legislation in the field of taxation on the Statute Book today than section 23-A This Section is causing untold harm particularly to medium scale industries since the operation of this Section drains away the resources of these companies." (A D. Shroff)

(iii) बोनस शेयरों पर कर (Tax on bonus shares)— कम्पनियों को अपने रिजर्वों या एकत्रित लाभों में से अंशधारियों को बाटे गये बोनस शयरों के मूल्य पे २०% की दर से सुपर टैक्स भी देना पडता है। यह दर सन् १९५६ के फाइनेंस एक्ट मे १२½% थी। सरकार ने कर की मात्रा बढाने के समर्थन मे यह तर्क दिया था कि इसका उद्देश्य अतिरिक्त लाभाश पर टैक्स देने से बचने की रोक-थाम करना है। किन्तु यह तर्क तभी तक सार पूर्ण है जब तक कि लाभाश दर की गणना दत्त पूँजी के आधार पर की जाय। वास्तव मे लाभाश दर की गणना कुल नियोजित पूँजी (Total capital employed) के आधार पर की जानी चाहिए क्योंकि कुल पूँजी के नियोजन द्वारा ही लाभ उदय होते हैं। यदि यह दृष्टिकोण स्वीकार कर लिया जाय तो फिर बोनस शयरों पर टैक्स लगाने का कोई औचित्य नही मिलेगा। यही नहीं बोनस शेयरों पर ऊँचा कर लगाने से कम्पनिया लाभों का पूँजीकरण करने से हिचकिचायगी तथा इसके बजाय शयर होल्डरो को अधिक लाभाश देना पसन्द करगी। इससे उन्हे हानि पहुचने के साथ साथ पूँजी के निर्माण को भी धक्का पहुचेगा। अत यह कर आर्थिक प्रगति मे बाधक है।

(३) कैपीटल गन्स टैक्स (Capital Gains Tax)—

सन् १९४९ के पूर्व कारपोरेट सस्थाओ को पूँजी लाभ कर भी देना पडता था। यह कर निम्न कारणो से समाप्त किया गया है—(i) इससे अधिक आय प्राप्त नही हो रही थी (कारण सम्पत्तियो के मूल्यो मे गिरावट आ रही थी) (ii) विनियोगो पर इसका प्रतिकूल मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडता था और (iii) इसके कारण पूँजी बाजार मे प्रतिभूतियो के स्वतन्त्र आवागमन मे बाधा पडती था। अब सन् १९५६ के फाइनेन्स एक्ट द्वारा इसे कुछ परिवर्तनो के साथ पुन आरम्भ कर दिया गया है। इसका समर्थन करते हुए फायनेंस मिनिस्टर ने कहा था कि अब तक इस वर्ग की आय करारोपण से बची हुई थी और वह आर्थिक असमानता को बढाने मे प्रमुख कारण है तथा इसकी आय से विकास योजनाओ के लिए पर्याप्त धन मिल सकेगा।

(४) सम्पत्ति कर (Wealth Tax)—

सभी कम्पनियो को चाहे वे प्रायवट हो या पब्लिक देशी हो या विदेशी सम्पत्ति कर देना पडता है। यह कम्पनियो की शुद्ध सम्पत्ति पर लगता है। शुद्ध सम्पत्ति से तात्पर्य कम्पनी की सम्पत्तियो के कुल मूल्य मे से कम्पनी के कुल दायित्वो को घटाने के बाद बचने वाली रकम से है। शुद्ध सम्पत्ति के प्रथम ५ लाख रु० पर कोई कर नही लगता। इसके बाद शेष कुल रकम पर ½% की दर से कर लगता है। फाइनेन्स मिनिस्टर ने इस कर का समर्थन इस आधार पर किया है कि इससे काफी आय हो जायेगी। किन्तु यह तर्क सही नही है। प्रोफसर काल्डार भी इस टैक्स के विरुद्ध थे। इस कर से न तो अधिक आय होती है और न ही उसे उचित ठहराया जा सकता है। एक ओर तो कम्पनियो को लाभाश दर कम रखने के लिए

कहा जाता है, ताकि वे अपने व्यापार के विस्तार के लिए पर्याप्त साधन जुटा सकें, किन्तु, दूसरी ओर उन पर सम्पत्ति कर लगा कर उक्त साधन कम करने का प्रयास किया जाता है। यही नहीं कम्पनियों की उत्पादक सम्पत्ति पर यह कर लगाना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता।

यह अनुमान लगाया गया है कि सभी प्रत्यक्ष करों से भारत में कॉरपोरेट संस्थाओं के कुल लाभों का ६० से ६०% तक कर की आय के रूप में सरकार को मिल जाता है।

अप्रत्यक्ष करारोपण (Indirect Taxation)—

प्रत्यक्ष करों के अतिरिक्त करारोपण की नवीन व्यवस्था में अनेक उत्पादन-कर (excise duties) भी सम्मिलित हैं। पिछले १० वर्षों में उत्पादन-करों से आय ५०·६३ करोड़ से बढ़ कर ३०४ करोड़ रु० हो गई। ये कर अनेक वस्तुओं पर लगे हुए हैं—चीनी, सीमेन्ट, स्टील इनगाट्स, तम्बाकू, दियासलाई, सिग्रेट, कागज, वनस्पति तेल, मोटर स्प्रिट आदि। इनमें से अनेक वस्तुयें जीवन की प्रमुख आवश्यकतायें हैं। उत्पादन करों की वृद्धि के अर्थ-व्यवस्था पर दो बुरे प्रभाव हुए हैं—प्रथम सभी वस्तुओं के मूल्य बहुत बढ़ गये हैं तथा देश में मुद्रा प्रसार की प्रवृत्ति बढ़ गई है। दूसरे, मध्य वर्गीय एवं स्थिर आय वाले लोगों को अपार कष्ट उठाना पड़ रहा है।

सरकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि जनता पर एक सीमा से अधिक कर नहीं लादे जा सकते। इस सीमा के परे उनके उग्र विरोध का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिये, वस्त्र व्यवसाय को ही लीजिए। सन् १६५६ तक वस्त्र बाजार में समृद्धि का काल था। उत्पादन बढ़ रहा था मिल वाले धड़ाधड़ बिक्री कर रहे थे तथा एक औसत मिल के पास एक या दो हफ्ते के उत्पादन का स्टाक रहता था। लेकिन उत्पादन करों में अधिक वृद्धि किए जाने पर स्थिति बिल्कुल ही बदल गई। उपभोक्ता द्वारा इतना विरोध किया गया है कि न केवल कीमतें पहले से भी कम स्तर तक गिर गई वरन् वस्त्र की माग में भी काफी कमी हो गई और वस्त्र मिलों के पास काफी स्टाक एकत्र रहते हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि उत्पादन कर न केवल पुराने एवं सुस्थापित उद्योगों पर लगाया गया वरन् रेयन सूत उद्योग जैसे नवीन उद्योगों पर भी लगाया गया है। जैसे ही कोई उद्योग लाभ कमाने लगता है वैसे ही सरकार उस पर उत्पादन कर लगाने का प्रयास करती है तथा एक बार लगाने के पश्चात् उसे हटाने में सकोच करती है, भले ही उस उद्योग को हानि होने लगी हो। उत्पादन करों से प्राप्त आय को ऐसे उद्योगों की सहायतार्थ प्रयोग किया जा सकता है, जिन्हें असाधारण परिस्थितियों के फलस्वरूप हानि उठानी पड़ रही हो।

बिक्री-कर का उद्योग की लागत सरचना पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

जिन दशाओं मे औद्योगिक कच्चे माल की पूर्ति के वितरण का मार्ग लम्बा है उन दशाओं मे बहु बिन्दु कर लगाने वाले राज्यों मे कच्चे माल की लागते १०% तक बढ गई हैं। इसके अतिरिक्त बिजली कर एव मोटर स्प्रिट कर भी लगे हुये है। बिजली कर को 'औद्योगीकरण पर कर' बताया गया है। इस कर के फलस्वरुप एक साधारण व्यक्ति को टैक्नीकल प्रगति के लाभो से वचित रहना पडता है। मोटर स्प्रिट पर कर भी वाँछनीय नही है, क्योकि यह कर यातायात के विकास मे बाधक है।

अधिक अप्रत्यक्ष करो के कारण जनता का जीवन स्तर नीचा हो जाता है, वह अधिक मजदूरी की माग करती है, इससे उत्पादन-लागते एव मूल्य भी बढ जाते हैं। इस प्रकार मुद्रा प्रसार की एक कुप्रवृत्ति कायम हो जाती है।

करारोपण की वर्तमान व्यवस्था की आलोचना—

करारोपण की वर्तमान व्यवस्था मे निम्न दोषो के कारण उसकी बडी आलोचना की गई है —

करारोपण की वर्तमान व्यवस्था के प्रमुख ६ दोष

(१) यह अस्थिर एव अनिश्चित है।
(२) यह विविधमुखी एव जटिल है।
(३) इसमे न्याय एव औचित्य का अभाव है।
(४) इसमे व्यावहारिकता की उपेक्षा की गई है।
(५) इसने अर्थव्यवस्था को मनोवैज्ञानिक हानि पहुचाई है।
(६) विदेशी पूँजी के आगमन मे बाधक है।

(१) **यह अस्थिर एव अनिश्चित है**—करारोपण की वर्तमान व्यवस्था बहुत अस्थिर एव अनिश्चित है। उदाहरण के लिये, आय कर को ही लीजिये। ऐसा कोई वर्ष नही जाता जबकि भारतीय आय कर अधिनियम, १९२२ मे कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नही किया जाता हो। कभी-कभी तो छ महीने भी पूरे नही हो पाते कि कोई न कोई सशोधन हो जाता है। यह सच है कि सन्नियम को अधिक न्यायपूर्ण ढग से प्रशासित करने के लिये अथवा उसकी बुराइयो को दूर करने के लिये परिवर्तन किये जा सकते हैं, तथापि अनेक बार परिवर्तन इन आधारो पर नही हुये। जैसे, सन् १९५५ के पूर्व करदाता अपनी व्यापारिक हानि की पूर्ति अगले ६ वर्षों तक कर सकता था, लेकिन सन् १९५५ के फायनेन्स एक्ट के एक सशोधन द्वारा व्यापारिक हानिया किसी भी अवधि तक पूरी की जा सकती थी। सन् १९५७ मे पुन सशोधन किया गया और ८ वर्ष की नई समय-सीमा निर्धारित की गई। वास्तव मे करारोपण सम्बन्धी सन्नियम के क्षेत्र इतने अधिक प्रयोग नही होने

चाहिये, क्योंकि अस्थिरता व अनिश्चितता के कारण सनियम के कुशल कार्यवाहन मे बाधा पड़ती है।

(२) यह विविध-मुखी एवं जटिल है—हमारी कर-व्यवस्था अत्यन्त जटिल एवं विविध-मुखी है। इसी कारण कर-प्रशासन की सामान्य कुशलता उचित स्तर की नहीं है। वास्तव मे एक कुचक्र सा स्थापित हो गया है—अधिक जटिल कर एवं अधिक प्रकार के कर अधिक प्रशासन-कर्मचारी अधिक मानवशक्ति का क्षय अधिक सार्वजनिक व्यय एवं अधिक करारोपण की आवश्यकता। अच्छा हो यदि सरकार कालडार रिपोर्ट (Kaldar Report) की उस सिफारिश को स्वीकार कर ले जिसमे कम्पनियो की आय पर विभिन्न प्रकार के करो को हटा कर केवल एक ही कर ७ आना प्रति रुपया के हिसाब से लगाने को कहा गया है।

(३) इसमे न्याय एवं औचित्य का अभाव है—कर-व्यवस्था मे न्याय एवं औचित्य का भी अभाव प्रतीत होता है। उदाहरण के लिये फायनेन्स एक्ट, १६५८ के अन्तर्गत, एक व्यापारिक संस्था अपनी सम्पत्ति को १० वर्ष के भीतर नही बेच सकती। यदि वह १० वर्ष के भीतर अपनी सम्पत्ति को बेच दे, तो उसे विकास सम्बन्धी छूट (Development Rebate) नही मिलेगी। व्यवहार मे किसी सम्पत्ति को बेचना या रखना व्यापार के लिये सम्पत्ति की उपयोगिता पर निर्भर होता है। अत सम्पत्ति चाहे उपयोगी रहे या नही, १० वर्ष तक न बेचने की शर्त लगाना अनुचित है। यही नही इस सम्बन्ध मे अपील करने का अधिकार भी छीन लिया गया है।

(४) इसमे व्यावहारिकता की उपेक्षा की गई है—वर्तमान कर-व्यवस्था के विरुद्ध यह आरोप लगाया जाता है कि वह भारत मे पूँजी के निर्माण की दर पर बुरा प्रभाव डाल रही है, क्योंकि इसके अन्तर्गत सामूहिक बचत एवं विनियोग के विकास को प्रोत्साहन नही मिलता। पिछले ७-८ वर्षो मे संस्थागत लाभो के अनुपात मे कर की वृद्धि अधिक हुई है। यदि करारोपण इसी गति से बढ़ता रहा, तो, जैसा कि भारत सरकार के कानून मंत्री श्री ए० के० सेन ने बताया है, घटती हुई उपज का नियम लागू होने लगेगा। अर्थात्, यदि कर एक सीमा से अधिक लगाये गये, तो सरकार को अधिक आय प्राप्त होने के बजाय कम आय होने लगेगी। दूसरी ओर, ऊँचे कर साहसियो को निरुत्साहित भी करते हैं।

(५) इसने अर्थ व्यवस्था को मनोवैज्ञानिक हानि पहुँचाई है—इस मनोवैज्ञानिक हानि के फलस्वरूप ही लोग भविष्य के सम्बन्ध मे अविश्वासी हो गये है और आधिक्य कोष रखते हुए भी विनियोग करने मे हिचकिचाते हैं। अत यह आवश्यक है कि कानून इतने अच्छे व उचित हो कि नागरिक प्रसन्नतापूर्वक उनके प्रशासन मे सहयोग दें न कि इतने बुरे व अन्यायपूर्ण हो कि कानून के

अनुसार चलने के इच्छुक नागरिक भी उनका पालन करने मे कठिनाई अनुभव करें।

(६) **यह विदेशी पूंजी के आगमन मे बाधक है**—अक्टूबर सन् १९५७ मे नेशनल काउन्सिल आफ अप्लाइड इकानामिक रिसर्च ने विदेशी पूँजी एव टेकनीकल ज्ञान के आगमन पर प्रभाव डालने वाले घटको का बडी सावधानी से सर्वे किया और यह पता लगाया है कि भारत मे एक विदशी पूँजी जो लाभ अर्जित करती है उसका केवल ३७·८% (शाखा के लिए) और ४१·०% (सहायक के लिये) ही वह रख सकती है, जबकि ब्रिटेन मे दोनो के लिए ५४·५%, फ्रान्स मे ६२०% और ४६%, अमेरिका मे ४८% एव ३३ ६% बर्मा मे ४१ ७% एव ३०·६%, आस्ट्रेलिया मे ६०% एव ३६% तथा पाकिस्तान मे ५०% एव ७० ९% रखा जा सकता है।* इस प्रकार भारत मे विदेशी कम्पनी की विनियोग आय पर विश्व मे प्राय सबसे अधिक कर लगा हुआ है। इससे विदेशी पूँजी के प्राप्त होने मे बडी कठिनाई होती है। सन् १९४७-५७ के वर्षो मे कुल अमेरिकन प्राइवेट विनियोग (विदेशो मे) ४,४०० करोड रु० था, किन्तु भारत को इसका ५% भी प्राप्त नही हो सका।

अभी हाल मे भारत का औद्योगिक प्रतिनिधि मण्डल विदेशो को गया था और हमारे वित्त मन्त्री भी विदेशी पूँजी प्राप्त करने की सभावनाओ की छानबीन के लिए विदेशो की यात्रा पर गये थे। इन्होने जो रिपोर्ट दी है उनमे विदेशी विनियोगो को आकर्षित करने तथा घरेलू बचतो को प्रोत्साहित करने के लिए कर सम्बन्धी उचित सुधार करने पर बल दिया गया है। अभी हाल ही मे दोहरे करारोपण को रोकने के लिये भारत सरकार ने कई विदेशी सरकारो के साथ समझौते किये है तथा विदेशी विनियोजको को कर प्रोत्साहन भी दिये है।

उपसहार—कर-व्यवस्था का विवेकीकरण—

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान कर-व्यवस्था मे अविलम्ब सुधार करने की आवश्यकता है। कुछ प्रमुख सुधार निम्नलिखित हैं—

(१) **'एक-कर**—कालडार रिपोर्ट के सुझावानुसार कम्पनियो की आय पर तरह-तरह के छोटे व अनेक कर न लगा कर एक ही कर ऊँची दर से (जैसे ७ आ० प्रति रुपया) लगा दिया जाय। इससे विभिन्न कर-नियमो की जटिलता मे कमी हो जायेगी।

(२) **कर सनियम के प्रशासन मे सुगमता**—कर सनियम के प्रशासन को सुगम बना देना चाहिए, जिससे कर सम्बन्धी मुकदमेबाजी कम हो जाय। भारत मे विदेशी विनियोगो को निरुत्साहित करने वाला सबस मुख्य घटक कानूनी अडचने ही बताया जाता है।

---

* National Council of Applied, Economic Research, Taxation and Foreign Investment, p. 47.

(३) **कर-अधिकारियो के ऐच्छिक अधिकारो में कमी—वर्तमान** कर व्यवस्था के अन्तर्गत कर-अधिकारियों को व्यापक अधिकार दिये हुए है, जिनका वह अपनी इच्छानुसार प्रयोग कर सकते हैं। अत इन ऐच्छिक अधिकारो मे कमी की जानी चाहिए, ताकि करदाताओ को अनावश्यक रूप से परेशान न किया जा सके। इसके अतिरिक्त, अधिकारियो मे भ्रष्टाचार को कम करने मे भी सहायता मिलेगी।

(४) **कर अधिकारियो के वेतन मे वृद्धि**—कर-अधिकारियो के वेतन मे उचित वृद्धि की जाय। इससे उनका नैतिक-स्तर ऊँचा होगा तथा कार्य-कुशलता भी बढेगी।

(५) **कर प्रणाली का आर्थिक आधार**—सरकार को कर प्रणाली की व्यापक जाच करानी चाहिए। केवल सुविधा के आधार पर कर न लगाकर आर्थिक सिद्धातो का भी ध्यान रखना चाहिए।

जून सन् १९५८ मे भारत सरकार ने एक प्रत्यक्ष कर-प्रशासन जाच समिति (Direct Taxes Administration Enquiry Committee) नियुक्त की थी। इसे कर व्यवस्था एव विधियो की जाच करने तथा उपयुक्त सुझाव देने का कार्य सौपा गया था। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट दे दी है और इसकी सिफारिशो के अनुसार एक समन्वित कर योजना (integrated scheme of direct taxation) लागू की जा रही है। कमेटी ने कर-अधिकारियो की सख्या, उनके अधिकारो, प्रत्यक्ष कर परामर्शदाता समिति के सगठन आदि के बारे मे भी उपयोगी सुझाव दिये है। आशा है कि इनको कार्यान्वित करने से स्थिति मे पर्याप्त सुधार हो सकेगा।

STANDARAD QUESTIONS

1. Outline the main purposes of a tax policy designed to encourage industrialisation Discuss the various forms of tax incentives
2. *Write a brief note on the present pattern of taxation in India*
3. What are the usual concessions allowed in the computation of taxable income to promote industrial development in India?
4. Discuss the incidence of corporate taxes in India
5. Write a note on Indirect Taxation and its effect on industry.
6. Critically examine the present pattern of taxation in India Give your suggestions for its improvement

---

अध्याय २२

भारतीय उद्योगों में विवेकीकरण

(Rationalisation in Indian Industries)

भारत मे आन्दोलन की गति धीमी क्यो ?

भारतीय उद्योगो मे विवेकीकरण की घोर आवश्यकता होते हुए भी इसकी प्रगति बहुत मन्द गति से हुई है। भारत म ऐसे उद्योग बहुत थोड़ हैं जिनम विवेकीकरण का अनुसरण किया गया है। सन् १९२९ की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी से छुटकारा पाने के लिये विदेशी उद्योगो ने जो राशिपातन (Dumping) शुरू किया उसके परिणामस्वरूप भारतीय उद्योगपतियो ने विवकीकरण की आवश्यकता को समझा और द्वितीय महायुद्ध क युग म तथा इसक बाद इस दिशा मे कुछ प्रयत्न किये। इस आन्दोलन की धीमी गति के प्रधान कारण निम्नलिखित है—

(१) पूँजी का अभाव—अभिनवीकरण की योजनाओ को कार्यान्वित करने के लिए भारतीय उद्योगपतियो क पास धन का अभाव है। मशीनो के सम्बन्ध म भारत अभी आत्मनिर्भर नही हुआ है। अत विदेशो मे आयात करने मे बहुत धन खर्च होता है। इसलिए मशीनो के अप्रचलित तथा बेकार होने पर भी उन्हे बदला नही जा सका।

भारतीय उद्योगो मे विवेकीकरण की धीमी प्रगति क्यो ?

१ पूजी का अभाव।
२ सद्भावना का अभाव।
३ विदेशी सरकार की उपेक्षा।
४ औद्योगिक अशान्ति।
५ भारतीय श्रमिको का अशिक्षित, अज्ञानी एव रूढिवादी होना।

(२) सद्भावना का अभाव—भारतीय उद्योगपतियो मे पारस्परिक मैत्री एव सद्भावना के अभाव के कारण लोग किसी समझौते पर राजी ही नही होते थे। संयोग क्षेत्र मे जो किंचित समझौते हुए भी वे अल्पकालीन रहे एव व्यक्तिगत स्वार्थो का संघर्ष होने के कारण अधिक सफल न हो सके।

(३) विदेशी सरकार—सन् १९४७ के पूर्व तक विदेशी शासन के कारण हमारे देश की कोई नियोजित औद्योगिक नीति न थी। अत भारतीय उद्योगो की वैज्ञानिक ढग से प्रगति न हो सकी।

(४) **औद्योगिक अशान्ति**—श्रम एव पूँजी व बीच वैमनस्य भी विवेकीकरण की असफलता का एक कारण है। श्रमजीवी मिल मालिको को अपना पोषक नही वरन् शोषक समझते है। इसी प्रकार सेवायोजक भी मजदूरो को उद्योग का अनिवार्य अग नही मानते। अत श्रम सगठन विवेकीकरण की योजनाओ का प्राय विरोध करते है।

(५) **उद्योगपतियो का विरोध**—भारतीय उद्योगपति भी परम्परावादी है। वे अभिनवीकरण की योजनाओ को अधिक खर्चीली होने के कारण अपनाने म हिचकिचाते है।

(६) **भारतीय श्रमिक अशिक्षित अज्ञानी एव रूढिवादी है**—हमारे कारखाने मे काम करने वाले अधिकतर श्रमिक गाँवो स आते है। इन गाँवो का वातावरण ही वैज्ञानिक विकास के विपरीत है। ग्रामवासी अपने अतिरिक्त समय मे काम की तलाश मे नगरो की ओर चले जाते है और फसल के दिनो मे काम छोड कर वापिस लौट जाते हैं। इस कारण कारखानो के काम मे उन्हे कोई विशेष चाव नही होता। उनकी भरती भी किसी नीति अथवा सिद्धान्त के अनुसार नही होती। भरती का काम कर्मचारियोजको (Jobbers) के हाथ म रहता है। श्रमिको की उचित शिक्षा के सम्बन्ध म भी कोई विशेष ध्यान नही दिया जाता। उनमे सगठन का भी अभाव है।

विशिष्ट उद्योगो मे विवेकीकरण
(Rationalisation in Specific Industries)

प्रमुख भारतीय उद्योगो मे विवेकीकरण से सम्बन्धित प्रयत्नो का सक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है —

(१) **सीमेन्ट उद्योग**—सन् १६३० मे सीमेंट मार्केटिंग कम्पनी स्थापित हुई, जिसने अपने सदस्यो के समस्त उत्पादन को आर्थिक मूल्य पर बेचना शुरू किया। सीमेंट के प्रत्येक कारखाने के लिए उत्पादन का कोटा निश्चित कर दिया गया। रेलवे कम्पनियो से भी भाडे सम्बन्धी उचित ठहराव कर लिये गये। भिन्न भिन्न प्रकार के सीमेंट के लिए बाजार बाँट दिया गया। इस प्रकार सीमेंट मार्केटिंग कम्पनी ने प्रतिस्पर्द्धा की भावना का अन्त कर दिया यातायात के व्यय को कम कर दिया तथा उत्पादन पर नियन्त्रण करके आवश्यकता स अधिक उत्पादन की सम्भावना का भी समाप्त कर दिया। उपभोक्ताओ को भी सस्ते दामो पर वस्तुए मिलना सुलभ हो गया। तत्पश्चात् सन् १६३६ मे एसासियेटेड सीमेंट कम्पनीज के रूप म सीमेंट के अनेक प्रमण्डलो का सयुक्तीकरण हुआ। फिर १६४९ मे एसासियेटेड सीमेंट कम्पनीज ने डालमिया ग्रुप के साथ गठबन्धन कर लिया।

(२) **शक्कर उद्योग**—इसी प्रकार शक्कर उद्योग म भी पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता की भावना को समाप्त करने की दृष्टि से सुगर मार्केटिंग बोर्ड सन् १६३२ मे स्थापित किया गया। फिर शक्कर के उत्पादन एव उसके वितरण पर नियन्त्रण रखने

की दृष्टि से सन् १९३७ मे सुगर सिंडीकेट स्थापित किया गया। अब कुछ समय से 'केन्द्रीय शक्कर समिति' बना दी गई है। इस समिति के परिणामस्वरूप शक्कर के उद्योग मे अनेक उपयोगी अनुसधान हो रहे हैं। गन्ने की उपज मे वृद्धि होने के अतिरिक्त शक्कर के उत्पादन तथा उनके विक्रय की रीति मे भी बहुत उन्नति हो गई है। किन्तु आज भी शक्कर उद्योग मे अनेक निरर्थक क्षय होते हैं, जिनका यदि उपयोग किया जाय तो मेथीलेटिड स्प्रिट, शराब इत्यादि उतोत्पाद (Bye-products) बनाये जा सकते हैं। आज शीरा तथा बगेसेज का समुचित उपयोग नही हो रहा है। अतएव उद्योग के अपने पैरो पर खडे होने के लिए उत्पादन एव उत्पादन क्रियाओं का विवेकीकरण करने की आवश्यकता है, जिससे मितव्ययिता आकर सरक्षण की जरूरत न रहे।

(३) जूट उद्योग—जूट उद्योग भारत का सबसे सगठित उद्योग है, क्योकि इसमे हम उत्पादन का सबसे अच्छा नियन्त्रण देखते हैं। किन्तु अन्य बातो पर इस उद्योग मे भी विशेष ध्यान नही दिया गया है। इसका प्रधान कारण यह था कि अभी तक भारतवर्ष को इस उद्योग का एकाधिकार प्राप्त था। पारस्परिक सहयोग लाने तथा उत्पादन का नियन्त्रण करने के लिये इण्डियन जूट मिल एसोसियेशन की स्थापना की गई। विवेकीकरण काम के घण्टो मे कमी करने तक ही सीमित रहा। भारतीय जूट उद्योग आज त्राहि-त्राहि कर रहा है। भारत के बँटवारे के कारण हमारे मिलो को पर्याप्त मात्रा मे एव उचित मूल्य पर पाट नही मिल रहा है। दूसरे, हमारे जूट की माँग भी विदेशो मे कम हो रही है, क्योकि आज जूट के स्थान मे अन्य चीजो का प्रयोग होने लगा है। तीसरे, अवमूल्यन के बाद जूट का मूल्य भी बहुत बढ गया है। अत: जूट उद्योग को सुरक्षित रखने के लिये विवेकीकरण का अनुसरण अनिवार्य है।

(४) लोहा एवं इस्पात उद्योग—इस उद्योग मे विवेकीकरण की जो प्रगति हुई वह केवल सराहनीय ही नही वरन् अनुकरणीय भी है। ऐसे अनेक प्रयोग किये गये है जिनके फलस्वरूप उत्पादन क्रियाओ मे सरलता आ गई है और उत्पादन मे भी वृद्धि हुई। निरर्थक क्षय कम हो गया है। श्रम-बचत के अनेक साधनो का उपयोग किया गया है। इतना ही नही, वरन् द्वितीय महायुद्ध के युग मे तो इस्पात बनाने मे 'स्क्रैप-कार्बन-प्रोसेज' का उपयोग किया गया है, जो वास्तव मे एक महत्वपूर्ण सुधार है।

(५) सूती वस्त्र उद्योग--सूती वस्त्र मिल उद्योग भारत का सबसे महत्वपूर्ण एव महान् उद्योग है। द्वितीय महायुद्ध के पहले इस उद्योग मे विवेकीकरण के कुछ प्रयत्न किये गये, किन्तु वे सराहनीय नही कहे जा सकते, क्योकि उनमे से अधिकाश प्रयत्न असफल रहे। इस उद्योग मे विवेकीकरण मे सम्बन्धित प्रयत्न प्रबन्ध-श्रमिकर्त्ताओं

के विरोध एव असहयोग के कारण अभी तक प्राय असफल ही रहे है। सन् १६३६ मे मिलो के पारस्परिक समिश्रण के लिये अनेक प्रयत्न किये गये, किन्तु वे सफल नहीं हुये। जब द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ तो कपडे की माँग दिन पर दिन बढने लगी। इस कारण उद्योग को उन्नति का बडा अवसर मिला। उन दिनो भारत मे चारो ओर वस्त्र सकट था, अतएव उपयोगिता के वस्त्र का उत्पादन बढाने के लिए तथा वस्त्र की कमी की समस्या को हल करने के हेतु सन् १६४५ मे भारत-सरकार ने उत्पादन के विवेकीकरण से सम्बन्धित एक सनियम (Textile Industry-Rationalisation of Products Order) बनाया जिसके फलस्वरूप तरह-तरह के वस्त्रो का बनाना बन्द कर दिया गया। मिल केवल ऐसा ही कपडा तैयार करने लगी, जिसकी सबसे अधिक उपयोगिता थी। सन् १६४५ के आदेशानुसार उत्पादन एव वितरण पर भी नियन्त्रण रखा गया। बम्बई तथा अहमदाबाद की मिलो मे विवेकीकरण का अनुसरण विशेष रूप मे किया गया। फासेट कमेटी के अनुसार कोहेनूर मिल्स और सैसून तथा फिनले ग्रुप की मिलो मे कुछ 'कुशलता वृद्धि योजनाये' (Efficiency Schemes) प्रचलित की गई। प्रोफेसर सी० एन० वकील ने कपास के क्रय तथा वस्त्र के वितरण म विवेकीकरण से मितव्ययिता लाने के लिए सयुक्त केन्द्रीय सभा (Joint Central Board) की स्थापना को आवश्यक बताया है।

सन् १६४८ के अन्त मे मिल मालिक सघ की सिफारिशो पर भारत सरकार ने श्री भवानीशकर एम० बोरकर को सूती कपास उद्योग के सम्बन्ध मे तान्त्रिक एव वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने जापान भेजा। यह प्रयत्न भी विवेकीकरण की दशा मे ही किया गया। उद्योग की उन्नति के लिए, अभी कुछ दिन हुए यन्त्रो के आधुनिकीकरण (Modernisation) की सिफारिश की गई है। इसी प्रकार भारतीय प्रमाप सस्था द्वारा प्रमाप एव निर्देशन (Specification) के अनुसार उत्पादन क्रियाओ का प्रमापीकरण करने की सिफारिश की गई है।

वर्तमान काल मे विवेकीकरण की आवश्यकता—

आजकल हमारे देश मे विवेकीकरण व अभिनवीकरण की विशेष आवश्यकता है। इसके प्रधान कारण निम्नलिखित है—

(१) **विदेशी प्रतियोगिता**—आज दुनिया के सभी देश अभिनवीकरण की दिशा मे बडी तेजी से बढ चले जा रहे है। द्वितीय महायुद्ध के बाद सभी पाश्चात्य देशो, चीन, जापान आदि ने अपने देश मे नयी मशीनरी का नवीकरण कर लिया है। यदि हम चाहते हैं कि अन्य प्रगतिशील देशो के साथ कदम ब-कदम मिलाकर चलें तथा प्रतिस्पर्धा मे किसी देश से पीछे न रहे तो विवेकीकरण को अपनाना होगा।

(२) **विदेशी बाजारो का छिनना**—हमारे विदेशी व्यापार मे भी शनै-शनै कमी होती जा रही है। युद्ध युग मे भारतीय उद्योगो ने काफी विस्तृत बाजार

तैयार कर लिया था। उदाहरणार्थ, युद्धकाल मे भारतीय कपडा ईरान, ईराक, मिश्र, अरब, इण्डोनेशिया, बर्मा इत्यादि देशो मे जाता था। परन्तु जापान की स्वतन्त्रता के बाद ये बाजार काफी सीमा तक भारत से छिन गये हैं। अतएव अपनी स्थिति पूर्ववत् रखने के लिए विवेकीकरण की शरण लेना आवश्यक है।

वर्तमान काल मे विवेकीकरण आवश्यकता की ६ बातें	
१.	विदेशी प्रतियोगिता से रक्षा।
२.	विदेशी बाजारों को बनाये रखना।
३	अप्रचलित व घिसी मशीनरी का प्रतिस्थापन।
४	घरेलू माग मे कमी को रोकने के लिये।
५	देश के विभाजन की समस्याओं को हल करने के लिये।
६.	विदेशी विनिमय कमाने के लिये।

(३) अप्रचलित व घिसी मशीनरी—युद्धोत्तर काल मे चीन, जापान आदि सभी देशो ने लगभग सभी करघो व तकुओं का नवीनीकरण कर लिया है तथा वहाँ स्वचालित मशीनो का प्रयोग किया जाता है, जिसमे एक मजदूर ४० करघे तक एक साथ देखता है। हमारी मिलो मे प्रयोग होने वाली मशीनें बहुत पुरानी हैं। इस सम्बन्ध मे सन् १९५२ मे सूती उद्योग की वर्किंग कमेटी ने निम्न आँकडे दिये, जिसके अनुसार सूती वस्त्र उद्योग मे ६५% मशीनरी सन् १९२५ से पहले की है, उसमे ३०% तो सन् १९१० से भी पहले की है। वीविंग विभाग मे ७५% करघे मन् १९२५ से पहले के हैं, जिसम ४६% तो मन् १९१० से भी पहले के है। सन् १९५८ मे कॉटन टैक्सटाइल इन्क्वाइरी कमेटी (जोशी कमेटी) ने भी इस बात पर बल दिया कि हमारे मिलो की गिरी हुई दशा का एक प्रधान कारण अभिनवीकरण का अभाव है। योजना आयोग का भी इस सम्बन्ध मे यही मत है।

(४) घरेलू माग मे कमी—युद्ध के समाप्त होने से आन्तरिक माँग मे भी बहुत कमी आ गई है। एक ओर तो खाद्य पदार्थो तथा औद्योगिक कच्चे माल की कीमतें बढती जा रही हैं और दूसरी ओर आर्थिक आयोजन की पूर्ति के लिए सरकार तरह-तरह के कर लगा रही है, इसलिए अन्य उपभोग की वस्तुओ की माँग स्वतः कम हो रही है। माँग म वृद्धि के हेतु किस्म मे वृद्धि अनिवार्य है और वह तब तक सम्भव नही जब तक कि विवेकीकरण की शरण न ली जाय।

(५) देश का विभाजन— देश की विभाजन-जन्य समस्याओ (जैसे रुई, पटसन आदि कच्चे माल की कमी) को हल करने के लिए भी विवेकीकरण को अपनाना होगा, जिससे कि उपलब्ध साधनो का अच्छे से अच्छा उपयोग हो सके तथा अपव्यय रोका जा सके।

(६) **विदेशी विनिमय का अर्जन**—पच वर्षीय योजनाओं की सफलता के लिए बहुत बडी मात्रा मे विदेशी विनिमय की आवश्यकता है, जो तभी सभव हो सकती है जबकि हमारे निर्यात बढ । निर्यातो को बढान के लिए वस्तुओं की किस्म बढानी होगी और इस हेतु वैज्ञानिक प्रणालियो का अनुसरण अनिवार्य है ।

भारतीय उद्योगो मे विवेकीकरण की आवश्यकता—

भारतीय उद्योगो म विवेकीकरण की प्रगति क एकमात्र अवलोकन से यह स्पष्ट है कि हमारे देश मे लोह एव स्पात उद्योग के अतिरिक्त अन्य किसी भी उद्योग मे वैज्ञानिकन का उपयोग न के बराबर है । अन्य उद्योगो मे जो किचित प्रयत्न किए गए है व या तो सयाग न लाभा को प्राप्त करने अथवा प्रनिस्पर्द्धा का अन्त करने की दृष्टि से किए गए हैं । उदाहरणाथ, वस्त्र मिल उद्याग को ही लाजिए । इस उद्योग मे वैज्ञानिकन की आवश्यकता पर जोर देते हुए टाटा क्वाटर्ली ने लिखा है कि सूती वस्त्र उद्योग म निर्माण क्रियाओ के वैज्ञानिकन की आवश्यकता निम्न दो कारणो से अधिक बलवती हो गई है .—

(१) मशीनो का अप्रचलित हो जाना एव घिस जाना ।

(२) देश क बँटवारे के बाद निर्यात् बाजारो का विकास आवश्यक हो जाना ।

सन् १९५२ मे प्रकाशित अपनी रिपोर्ट मे सूती *उद्योग की वर्किङ्ग* कमेटी ने बताया था कि स्पिनिग विभागा मे ६५% मशीनरी सन् १९२५ से पहले लगाई गई थी और ३०% सन् १९१० म पहल । वीविग विभागो की स्थिति नो और भी खराब है । ७५% लूम्स सन् १९२५ से पहल लगाये गय थे । ४९% तो सन् १९१० स भी पहले क ह । साधारणत एक मशीन ~० साल तक काम करता है, इसलिए इसे बदलन का नितान्त आवश्यकता है । पाकिस्तानी प्रदेश म देश के विभाजन के पूर्व २०% उत्पादन खपता था । आज वह बाजार बन्द सा हो गया है । वे स्वय बढिया मशीनरी *लगा रहे है । जापान ने भी युद्ध के बाद प्राय सारी मशीनरी अपटूडेट कर* दी है । जापान के सूती वस्त्र उद्योग के ७०% स्पिन्डिल और ५६% लूम्स युद्धोत्तर काल मे सन् १९५२ के अन्त तक लगाये गय थ और अधिकाश लूम्स ओटोमैटिक हैं । अन्य देशो ने भी अपने उद्योगो की मशीनरी अपटूडट कर ली है, यद्यपि युद्ध-पूर्व के युग मे सन् १९५१ क अन्त तक विश्व की उत्पादन क्षमता ३५,००० मिलियन गज से बढ कर ३९,००० मिलियन गज हो गई है, किन्तु वस्त्र सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की मात्रा ६,७५० मिलियन गज र घट कर केवल ५,४४० मिलियन गज रह गई है । उनमे प्रतिस्पर्द्धा के लिये हमारे देश मे विवेकीकरण के अतिरिक्त अन्य कोई भी माग नही है ।

वस्त्र-मिल उद्योग की मशीनरी के अभिनवीकरण का प्रश्न केवल विदेशी बाजार की दृष्टि से ही *महत्वपूर्ण नही वरन् घरेलू माँग (Domestic Demand)* को स्थिर रखने के लिये भी वाछनीय है । गत कुछ वर्षो से कपडे की माँग गिरती जा

रही है। मार्च सन् १६५२ की मन्दी के बाद से वस्त्र-उद्योग के लिये परिस्थितियाँ विशेषत: कठिन हो गई है। सन् १६५३ के प्रथम ६ महीनो मे कपडे का बिना बिका स्टॉक दुगुना हो गया, जो कि वर्ष के अन्त मे लगभग ७६ करोड रुपये का था। जब तक उद्योग अपने उत्पादन व्यय व मूल्यो को कम नही करता और माल की किस्म मे उन्नति नही करता तब तक विकास तो दूर, आन्तरिक बाजार को स्थिर रखना भी अत्यन्त कठिन है। वस्त्र मिल उद्योग के अतिरिक्त भारत के अन्य उद्योगो मे भी मशीनरी के अभिनवीकरण (Modernisation) का प्रश्न बडा महत्त्वपूर्ण है।

चीनी उद्योग मे अभी तक मिलो ने हेय्य पदार्थों (Waste) का उपयोग उप-वस्तुएँ (Bye products) बनाने के लिये नही किया, जो नितान्त आवश्यक है। इससे मितव्ययिता होकर उत्पादन व्यय गिरेंगे। यन्त्रो के आधुनिकीकरण एव उत्पादन क्रियाओ के प्रमापीकरण का प्रयत्न भी अभी तक नही किया गया है, जो बहुत आवश्यक है।

जूट मिल उद्योग मे विवेकीकरण के अवलम्बन की आवश्यकता है, क्योकि इसके बिना न तो हम अन्य देशो की प्रतिस्पर्द्धा मे टिक सकते हैं और न विदेशी माँग को पूरा करने मे समर्थ हो सकते है। **सीमेट उद्योग** मे भी अभी तक मानवीय श्रम एव वस्तुओ का निरर्थक व्यय करने की दृष्टि से तथा उत्पादनशीलता बढाने एव यन्त्रो के आधुनिकीकरण की ओर कुछ भी नही किया गया है।

भारतीय प्रमाप सस्था ने अभी तक जो कुछ किया है वह सन्तोषजनक अवश्य है, किन्तु औद्योगिक विकास मे अभी प्रमापो को महत्त्व नही दिया जा रहा है। उद्योग-पतियो की शिकायत है कि खरीदार देशी माल का विश्वास नही करते और विदेशी माल को मँहगा होते हुए भी खुशी से खरीदते है।

अत: भारतीय उद्योगो मे विवेकीकरण की बडी आवश्यकता है। इसी के आधार पर हमारे उद्योग केवल देशी बाजार मे ही नही, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे भी टक्कर लेने के लिए समर्थ हो सकते है, परन्तु विवेकीकरण का सफलतापूर्वक प्रयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि भारतीय उद्योग वैयक्तिक एव सामूहिक रूप मे समुचित शिलान्यास कर विवेकीकरण की नीव को सुदृढ करें।

रोजगार पर विवेकीकरण के प्रभाव—

श्रम सचालक-यन्त्रो के द्वारा विवेकीकरण के प्रचलन का सबसे बड़ा विरोध यह बताया जाता है कि इससे बेरोजगारी को बढावा मिलता है और रोज़गार की समस्या, जो पहले से ही जटिल है, और भी भीषण हो जाती है। इसी समस्या पर हम गम्भीरता से विचार करेंगे।

विवेकीकरण के परिणामस्वरूप जो बेरोजगारी फैलती है उसके दो रूप हो सकते है—प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष रूप मे तो उन उद्योगो मे बेरोज़गारी होने की सम्भावना है, जहाँ औटोमैटिक मशीनरी का प्रयोग किया जाय और अप्रत्यक्ष

रूप से उन उद्योगो मे भी बेरोजगारी की सम्भावना है जो वैज्ञानीकृत इकाइयों मे प्रतिस्पर्द्धा नही कर सकती और फलस्वरूप अपना कार्य बन्द करने के लिये विवश हो जायें। इसी प्रकार छोटे पैमाने के उद्योग तथा हैण्डलूम उद्योग मे भी बेरोजगारी बढ सकती है, क्योकि वैज्ञानीकृत सगठित उद्योगो के सामने उनके टिकने की सम्भावना कम हो जाती है।

विवेकीकरण की योजना की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इस दिशा मे जो कार्य किया जाय वह दोनो पक्षकारो—श्रम तथा पूंजी के सहयोग से हो। सबसे पहले तो सम्पूर्ण नीति श्रमिको को भली प्रकार समझा दी जाय और यदि उचित हो तो आवश्यकतानुसार उसमे सशोधन भी कर दिये जायें। योजना को इस प्रकार कार्यान्वित किया जाय कि यदि श्रमिको पर इसके कुछ बुरे प्रभाव पडने की सम्भावना है तो वे एक विस्तृत अवधि पर फैला दिये जायें, जिसमे कि उनका भार असहनीय न हो। बेरोजगारी रोकने तथा निकाले हुए श्रमिको को पुन कार्य देने का भी आयोजन होना चाहिये। इसके लिये निम्न कार्य किये जा सकते है—नवीन पद्धतियो के अनुसार कार्य करने की ट्रेनिंग का आयोजन करना, तान्त्रिक शिक्षा की सुविधा देना, कार्य की पालियाँ (Shifts) बढाना तथा एक विभाग मे दूसरे विभाग को श्रमिको का स्थानान्तर। इन ढगो से रोजगार पर पडने वाले विवेकीकरण के कुप्रभावो को कम किया जा सकता है।

वास्तविक बात तो यह है कि यदि विवेकीकरण के लिये खुली आज्ञा भी दे दी जाय तो भी बडी मात्रा मे बेरोजगारी होने की सम्भावना नही है, क्योकि एक तो देश की समस्त औद्योगिक इकाइयाँ विवेकीकरण की योजना को धन की कमी के कारण अपनाने मे असमर्थ है और जो किंचित उद्योग इसका प्रयोग भी करेगे उनके उपलब्ध कोषो का अधिकाश भाग तो मशीनरी के आधुनिकीकरण मे ही खप जायगा और शेष, जो श्रम सचय यन्त्रो मे इस्तेमाल होगा, बहुत थोडा होगा। एक अनुमान के अनुसार बम्बई तथा अहमदाबाद की केवल २० वस्त्र मिल औटोमैटिक मशीनरी लगाने की कल्पना कर सकती है। सन् १९४६ से सन् १९५३ तक ७ वर्ष की अवधि मे केवल ४,६०५ औटोमैटिक लूम्स लगाये गये अथवा दूसरे शब्दो मे प्रतिवर्ष ६५८ लूम्स लगाये गये। इससे स्पष्ट है कि वैज्ञानिकरण के प्रचलन से रोजगार की स्थिति पर कोई भीषण प्रभाव पडने की आशका नही है। यह अनुमान लगाया गया है कि औटोमैटिक मशीनरी के द्वारा जितने श्रमजीवियों की छँटनी करनी पडगी उनकी सख्या अधिक न होगी, अतएव कुछ समय के उपरान्त इन निकाले हुये श्रमिको को उद्योगो मे पुन: काम देना कोई कठिन बात नही। यदि निकाले हुए श्रमिको को दुबारा रोजगार देने के लिए ट्रेनिंग की आवश्यकता हो तो इसकी व्यवस्था की जा सकती है। इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने औद्योगिक सघर्ष (सशोधित) अधिनियम सन् १९५३ मे निकाले हुए श्रमिको की क्षति पूर्ति करने की व्यवस्था की है।

यही नही, विवेकीकरण के प्रचलन मे उत्पादन व्यय तथा मूल्यो मे कमी होगी और वस्तुओ की किस्म सुधर जायगी । फलस्वरूप माँग बढेगी, जिससे नवीन उद्योगों की स्थापना को बढावा मिलगा । इन नवीन उद्योगो मे श्रमिको को कार्य दिया जा सकता है ।

यदि विवेकीकरण स्थगित कर दिया जाय ?—

यदि विवेकीकरण की योजना को कार्यान्वित न कर तो इस बात की गारन्टी नही है कि भविष्य मे रोजगार की दशा सुधर जावेगी । सच तो यह है कि इसको स्थगित करने से वस्तुओ की किस्म एव उनके मूल्य पर बुरा प्रभाव पडेगा, जिसके परिणामस्वरूप देशी तथा विदेशी माँग भी कुप्रभावित होगी । उदाहरण के लिए, वस्त्र मिल उत्पादन का २०% भाग, जो आजकल विदेशो को जाता है, जाना बन्द हो जावेगा और इससे मिलो को अपना उत्पादन कम करने के लिए विवश होना पडेगा, जिससे बेरोजगारी बढेगी, अतएव हमारे सम्मुख केवल दो मार्ग है—प्रथम, विवेकीकरण का प्रचलन जिसके परिणामस्वरूप यद्यपि थोडी तत्कालिक बेरोजगारी होने की सम्भावना है किन्तु उद्योग की कार्यक्षमता निस्सन्देह बढेगी और स्थिति सुदृढ होगी तथा दूसरा मार्ग यह है कि विवकीकरण की योजना को स्थगित कर दिया जाय, जिसमे यद्यपि तत्कालिक बेरोजगारी तो नही बढेगी, लेकिन निकट भविष्य मे बाजारो के छिन जाने पर बेरोजगारी एक रौद्र रूप धारण कर लेगी ।

STANDARD QUESTIONS

1 Explain the urgency of introducing rationalisation in Indian Industries What repurcussions will it have on the employment situation in the country ? What are the advantages of rationalisation ?
2 What is 'Rationalisation ? Discuss the problems of its application to Indian Industries
3 Write an essay on 'Rationalisation' in the Cotton Textile Industry of India
4 Discuss the reasons for the slow growth of Rationalisation in Indian Industries
5 Attempt an essay on ' Industrial Productivity Movement in India," undertaken by the Govt. of India

अध्याय २३

राज्य एवं विवेकीकरण

(State & Rationalisation)

प्रारम्भिक—

जबकि विश्व के औद्योगिक रूप से उन्नत देश अणु शक्ति एवं स्वचालन द्वारा प्रसारित द्वितीय औद्योगिक क्रान्ति के मोड़ पर खड़े हैं, तब भारत में स्टीम एवं विद्युत शक्ति पर आधारित प्रथम औद्योगिक क्रान्ति भी अपने पूर्ण निखार पर नहीं आ पाई है। हमारी अत्यधिक दरिद्रता, हमारे भूतपूर्व शासकों की उपेक्षा और हमारी जनता की रूढ़िवादिता ने बैलगाड़ी युग की अवधि को बढ़ा दिया है तथा हम अब भी औद्योगीकरण की शक्तियों का हथौड़ों से ही सामना कर रहे हैं। इस खेदजनक स्थिति के होने पर भी विवेकीकरण के प्रति सरकार का रुख अस्पष्ट एवं संकोचपूर्ण है, यद्यपि वह खुले रूप से विवेकीकरण के विरुद्ध नहीं कही जा सकती। भारत सरकार ने विवेकीकरण की दिशा में अब तक जो प्रयास किये हैं उन्हें निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है —

(१) श्रम-पूँजी सहयोग—

सन् १९५१ में योजना मन्त्री श्री नन्दा की अध्यक्षता में उद्योग विकास समिति की एक उप समिति ने भारतीय उद्योगों के विवेकीकरण की समस्या पर विचार किया और निम्न निर्णय किये :—

(१) भारतीय उद्योगों में विवेकीकरण किया जाय, लेकिन इस बात का ध्यान रखा जाय कि कम से कम मजदूरों की छँटनी हो। इस सम्बन्ध में निम्न सुझाव दिये गये— (i) मृत्यु अथवा रिटायर होने के कारण जो स्थान खाली हों उन्हें भरा नहीं जाय, (ii) अतिरिक्त (Surplus) श्रमिकों को अन्य विभागों में काम दिया जाय और इससे उनकी सेवा की अवधि तथा पुरस्कार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने देना चाहिये, (iii) अपनी इच्छा से रिटायर होने वाले श्रमिकों को ग्रेच्युइटी दी जाय, और (iv) टेक्नोलॉजिकल सुधारों के कारण जो मजदूर बेकार हो गये हैं उनमें से कुछ को काम देने के लिये मशीन का विस्तार किया जाय।

(२) कार्य-भार (Work-load) का एक आदर्श निश्चित कर देना चाहिये।

(३) टेक्नीकल परिवर्तनों को कुछ समय तक अजमाया जाय, ताकि उद्योगो को उसका प्रारम्भिक अनुभव हो सके।

(४) विवेकीकरण से होने वाले लाभ मे श्रमिको को भी उचित भाग दिया जाय।

(५) निकाले हुये श्रमिको के पुनर्वास के लिये सरकार को उपयुक्त योजना बनानी चाहिये।

इसी प्रकार के कुछ सुझाव प्रथम पच-वर्षीय योजना के निर्माताओ ने दिये, जिससे विवेकीकरण देश मे प्रगति करे और श्रमिको एव सेवायोजको के बीच सघर्ष न हो। द्वितीय पच-वर्षीय योजना मे योजना आयोग ने औद्योगिक ट्रिब्यूनलों का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया कि वे अवार्ड देते समय समझौते द्वारा निश्चित की हुई व्यवस्था को उचित महत्त्व दे।

अभी हाल मे, भारत सरकार ने विवेकीकरण से सम्बन्धित एक आदर्श ठहराव बनाया है, जो कि जुलाई सन् १९५७ मे भारतीय श्रम सम्मेलन के सन्मुख रखा गया था। इस ठहराव मे यह स्वीकार किया गया है कि विवेकीकरण की योजनाओ को कार्यान्वित करने की सुविधा के लिये श्रमिको एव सेवायोजको मे पारस्परिक परामर्श व सहयोग की आवश्यकता है। इस ठहराव मे यह व्यवस्था भी की गई है कि ऐसा कोई टेक्नोलॉजिकल परिवर्तन करने न पहले, जिसके कारण श्रमिको की सख्या मे कमी होने की आशका है, प्रबन्धको को चाहिये कि अपने इस इरादे की सूचना श्रम सघ को ३ सप्ताह से लेकर ३ माह पूर्व ही दे दें। यदि टेक्नोलॉजिकल परिवर्तन करने के फलस्वरूप कुछ श्रमिक बेकार हो जाते हैं, तो उन्हे पुनः काम देने के लिये कारखाने के कार्यकलापो का यथासभव विस्तार किया जाय। यदि श्रमिको और सेवायोजको म कोई मतभेद हो तो उसे मध्यस्थ को सौंपा जाय।

सुझाव—

'आँसू रहित विवेकीकरण' (Rationalisation without tears) वह वाक्य है जिसके द्वारा भारत मे जनता की इस आशा और माँग को व्यक्त किया जाता है कि बढी हुई उत्पादकता के कारण बेरोजगारी की समस्या मे, जो कि देश मे पहले ही व्यापक रूप से विद्यमान है, और अधिक वृद्धि नही होनी चाहिए। बेरोजगारी के भय से विवेकीकरण करने के लिये निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :—

(१) साधारणतः बहुत बडी सख्या मे श्रमिको को काम देने वाले उद्योगो मे स्वचालन का प्रचलन करना अबुद्धिमत्तापूर्ण है, जब तक कि उद्योगो मे योजनाबद्ध विकास की व्यवस्था न हो।

(२) विवेकीकरण द्वारा सभव की गई बचत मे श्रमिको, सेवायोजको एव उपभोक्ताओ तीनो को हिस्सा मिलना चाहिए।

(३) यदि विद्यमान इकाइयाँ अथवा उद्योग विस्थापित होने वाले श्रमिको को काम देने के लिये अपने प्लान्ट का विस्तार करने मे असमर्थ हो, तो

उनमे विवेकीकरण के नीति के उपभोग को तब तक रोकना बुद्धिमानी होगी जब के आर्थिक विकास के कार्यक्रम अन्य उद्योगों में अतिरिक्त श्रमिकों को काम मिलने की सुविधा उपलब्ध न कर दे।

(२) उद्योग का नियमन—

उद्योग (विकास एव नियमन) अधिनियम सन् १९५१ ने भारत सरकार को इस बात का अधिकार दिया है कि वह अनुसूचित उद्योगों मे विवेकीकरण लागू करने के विभिन्न पहलुओ पर विचार करने के हेतु विकास परिषद नियुक्त कर दे। इन विकास परिषदो के निम्न कार्य है —

(१) उत्पादन के लक्ष्यो की सिफारिश करना उत्पादन के कार्यक्रमो का समन्वय करना और समय समय पर प्रगति का मूल्यांकन करना।

(२) अपव्यय को समाप्त करने अधिकतम उत्पादन करने किस्म मे सुधार करने और लागत घटाने की दृष्टि से निपुणता के प्रमाप निश्चित करना।

(३) स्थापित क्षमता का पूर्ण उपयोग करने तथा उद्योग के कार्यकरण का सुधार करने के लिये उपाय सुझाना।

(४) वैज्ञानिक एव औद्योगिक अनुसधान की व्यवस्था करना।

(५) उद्योग मे सलग्न श्रमिको की टेक्नीकल ट्रेनिंग को बढ़ावा देना तथा विस्थापित श्रमिको को अन्य कार्यों की ट्रेनिंग देना।

(६) भारत सरकार को परामर्श देने के लिये विभिन्न विषयो या सामग्री का सकलन करना।

अब तक तेरह उद्योगो के लिये विकास परिषदो की स्थापना की जा चुकी है।

(३) वित्तीय सहायता—

कर जाँच आयोग सन् १९५४ की सिफारिश पर भारत सरकार ने औद्योगिक सस्थाओ को कुछ-कुछ कर सम्बन्धी रियायतें दी है जैसे विकास छूट और अतिरिक्त घिसाई का अलाउन्स। आधुनिकीकरण के कार्यक्रमो मे रुचि रखने वाली औद्योगिक इकाइयो मे प्लान्ट एव मशीनरी के अतिरिक्त प्रतिस्थापना एव नवकरण के लिये वित्तीय सहायता देने को सन् १९४८ मे औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना की गई प्रथम पंच वर्षीय योजना मे प्रतिस्थापन एवम् आधुनिकीकरण के

राज्य द्वारा विवेकीकरण को दिशा मे किये गये प्रयत्न

१ श्रम-पूंजी सहयोग
२ उद्योग का नियन्त्रण।
३ वित्तीय सहायता।
४ औद्योगिक अनुसधान।
५ भारतीय प्रमाप सस्था।
६ भारतीय उत्पादकता आन्दोलन।

कार्यक्रमो के लिये २३० करोड के धन की व्यवस्था की थी। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे प्राइवेट क्षेत्र के लिये इन कार्यो पर १५० करोड के व्यय की व्यवस्था की गई है।

(४) औद्योगिक अनुसन्धान—

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व भारत मे औद्योगिक एवम् वैज्ञानिक अनुसन्धान की समस्या पर बहुत कम ध्यान दिया जाता था। उद्योग मुख्यत. विदेशी टेक्नीको पर ही निर्भर करते थे तथा अपनी ही टेक्नीक के विकास का प्रयास नही करते थे। युद्ध काल मे आयात की जाने वाली सामग्रियो की स्थानापन्न वस्तुओ का विकास करना आवश्यक हो गया और साथ ही इन स्थानापन्न वस्तुओ को, आयात की सामग्रियो के स्थान मे प्रयोग करने के लिये नई विधियाँ खोजना भी आवश्यक था। इन परिस्थितियो में भारत सरकार ने सन् १९४० मे बोड आफ साइन्टिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च की स्थापना की। काउन्सिल आफ साइन्टिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च की स्थापना सन् १९४२ मे हुई। स्वतन्त्रता के बाद से तो वैज्ञानिक एव औद्योगिक अनुसन्धान की प्रगति के लिये अतिरिक्त सुविधायें देने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इस दिशा मे सबसे महत्त्वपूर्ण बात है देश के विभिन्न भागो मे नेशनल लबारेटरियो की स्थापना होना, जिनमे से मुख्य-मुख्य लैबोरेटरियाँ इस प्रकार हैं —

(i) National Physical Laboratory, New Delhi.
(ii) National Chemical Laboratory, Poona
(iii) Central Fuel Research Institute, Jealgora (Bihar).
(iv) Central Food Technological Research Institute, Mysore.
(v) Central Glass and Ceramic Research Institute, Jadhavpur.
(vi) Central Drug Research Institute, Lucknow.
(vii) Central Road Research Institute, New Delhi.
(viii) Central Electro-Chemical Institute, Karaikudi Madras.
(ix) Central Leather Research Institute, Madras.
(x) Central Building Research Institute, Roorkee
(xi) Central Electric Engineering Research Institute, Pilani (Rajasthan).
(xii) National Botanical Gardens, Lucknow
(xiii) Central Salt Research Institute, Bhawnagar.
(xiv) Central Mining Research Station, Dhanbad.

इन सब सस्थाओ का मुख्य कर्त्तव्य नये मौलिक ज्ञान की खोज करना है। वे विद्यमान औद्योगिक प्रक्रियाओ का अध्ययन करते हैं और निर्माण कार्य की टेकनीक मे सुधार करने के सुझाव देते है।

(५) भारतीय प्रमाप सस्था—

भारतीय उद्योगपतियो ने सर्वप्रथम सन् १६४० के बारहवे उद्योग सम्मेलन मे भारतीय प्रमाप निश्चित करने के लिये 'भारतीय प्रमाप सस्था' (Indian Standards' Institute) खोलने का प्रस्ताव सरकार के सम्मुख रखा, किन्तु युद्ध की परिस्थितियो के कारण उस समय भारत सरकार ने प्रस्ताव पर ध्यान नही दिया। सन् १६४६ मे औद्योगिक योजना के अन्तर्गत प्रमापीकरण की आवश्यकता का अनुभव करते हुए भारत सरकार ने एक प्रमाप सस्था खोलने का निश्चय कर लिया। सस्था खोली गई और उसका केन्द्रीय कार्यालय नई दिल्ली मे रखा गया है। इस सस्था का प्रबन्ध एक साधारण परिषद् (General Council) द्वारा होता है, जिसके सभापति उद्योग सचिव है और इसमे केन्द्रीय सरकार के विभिन्न विभागो, राज्यो, अनुसधान सस्थाओ, चैम्बर आफ कामर्स इत्यादि के कुल ६४ प्रतिनिधि हैं।

भारतीय प्रमाप सस्था का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर विभिन्न वस्तुओ एव क्रियाओ के प्रमाप निर्धारित करना तथा इस सम्बन्ध मे आवश्यक सुधार करना औद्योगिक आँकड़े एव सूचनाये एकत्रित एवम् प्रकाशित करना तथा प्रमापीकरण की उन्नति के लिये पुस्तकालय, म्यूजियम तथा प्रयोगशालायें स्थापित करना और विभिन्न वस्तुओ के प्रमापीकृत चिन्हो का रजिस्ट्रेशन करना है। भारतीय प्रमाप सस्था अन्तर्राष्ट्रीय प्रमापीकरण सगठन की सदस्य है। इस बात मे ही इसकी यशस्विता का परिचय मिलता है। भारतीय प्रमाप सस्था का कार्य अब राष्ट्रीय महत्त्व प्राप्त कर चुका है। यह सस्था ७ साल पहले सरकार और जनता के समर्थन से प्रारम्भ की गई थी और यह भारत मे खपने और बनने वाली चीजो के नाप, किस्म और काम के प्रमाप निर्धारित करती है। सस्था को केन्द्रीय सरकार सहायता देती है। इसके अलावा राज्य सरकारें, औद्योगिक एव व्यापारिक सस्थाएँ, कारखाने, औद्योगिक-शालाएँ, नगरपालिकाएँ और निगम आदि भी सस्था के सदस्य है तथा इसके लिए चन्दा देते हैं। इस काम की लोकप्रियता और महत्त्व इसी बात से प्रकट होता है कि अब कारखानो के मालिक अपनी चीजो के प्रमाप निर्धारित करने के लिए स्वय ही माँग करने लगे है।

भारतीय प्रमाप सस्था के विकास मे सबसे महत्त्वपूर्ण कदम सन् १६५२ का भारतीय प्रमाप अधिनियम है। इस अधिनियम के बन जाने से प्रमाप सस्था के अधिकार बढ गये हैं। अब सस्था को प्रमाप चिह्न देने और कम्पनियों को भारतीय प्रमापो के अनुसार माल तैयार करने के लाइसेन्स देने का अधिकार मिल गया है। इससे उचित किस्म का माल निर्माण करने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा तथा सस्ते और घटिया

माल के मुकाबिले का डर कम हो जायगा। केन्द्रीय सरकार की यह नीति है कि जहाँ तक हो नियत प्रमाप की वस्तुएँ ही खरादी जाए। ज्यों-ज्यों उपभोक्ता प्रमाप वाली वस्तुओं पर भरोसा करेंगे त्यों त्यों औद्योगिक विकास की गति भी तीव्र होती जायगी। हमारे जैसे निधन देश में तो कच्चे माल की बचत का महत्त्व युद्ध और शान्ति-काल दोनो मे एकसा है।

(६) भारतीय उत्पादकता आन्दोलन—

फरवरी सन् १९५८ मे एक स्वायत्त सस्था के रूप मे भारत मे राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की स्थापना की गई थी जिसका काम उत्पादकता आन्दोलन चलाना है। **इस उत्पादकता आन्दोलन का आधार नीचे लिखे पाच सिद्धान्त हैं —**

(१) उत्पादकता आन्दोलन का उद्देश्य उत्पादन बढाना और सुधरी उत्पादन विधियो द्वारा माल की किस्म उन्नत करना है। इसका लक्ष्य मानव मशीनो माल बिजली और पूजी के उपलब्ध साधनो का कुशल तथा उपयुक्त प्रयोग करना, जनता के रहन सहन का स्तर ऊँचा करना और मजदूरो की काम करने तथा कल्याण की स्थितियो मे सुधार करना है। ऐसा करते समय इन परिवर्तनो के सामाजिक परिणामो का भी ख्याल रखा जाता है।

(२) निरन्तर विकासशील अर्थ-व्यवस्था मे उत्पादकता बढने का अर्थ होता है कि अन्तत उद्योगो का विकास होकर इससे रोजगार बढने मे सहायता मिलेगी।

(३) उत्पादकता बढने से होने वाले फायदे को समुचित रूप से मालिक मजदूर और उपभोक्ताओ मे वितरित किया जाना चाहिए और इसका परिणाम यह होना चाहिए कि सयन्त्र मशीनो और उपकरणो का विस्तार तथा नवीकरण हो।

(४) राष्ट्र के सभी कार्यों मे उत्पादकता मे समान रूप से सुधार किये जाएँ। उद्योगो के क्षेत्र मे यह आन्दोलन सरकारी तथा गैर सरकारी क्षेत्र के विशाल मध्यमवर्गीय लघु उद्योगो तथा हल्के उद्योगों मे किया जायगा।

(५) मिल मालिको तथा श्रमिको के पूरे पूरे सहयोग के बिना उत्पादकता बढाई नही जा सकती।

STANDARD QUESTIONS

1 What steps have been taken by the Government of India for the Rationalisation of Indian Industries ?

2 Write an e [illegible] n State & Rationalisation

अध्याय २४

औद्योगिक उत्पादकता आन्दोलन

(Industrial Productivity Movement)

प्रारम्भिक—

उत्पादकता आन्दोलन से आशय—

किसी वस्तु के उत्पादन मे श्रम पूंजी, भूमि और सगठन चारो साधनो का सहयोग होना है। इनमे से किसी एक साधन का उत्पत्ति मे जो अनुपातिक भाग रहता हो उसे ही उस साधन की 'उत्पादकता' कहा जाता है। **सबसे अधिक रुचि श्रम के सम्बन्ध मे ली जाती है, अत 'उत्पादकता' शब्द का अभिप्राय प्राय श्रम के सापेक्षिक सहयोग से लगाया जाता है।** श्रम की उत्पादकता को प्रति व्यक्ति या प्रति घण्टा के रूप मे व्यक्त किया जाता है। इस परिभाषा की लोकप्रियता का आधार यह तथ्य है कि श्रम मे बचत होने से लागत मूल्य लाभ, मजदूरी और यहाँ तक कि राष्ट्र की सामाजिक सुरक्षा तथा जीवन स्तर पर भी प्रभाव पडता है।

लेकिन उत्पादकता को केवल श्रम के दृष्टिकोण से मापना गलत परिणाम प्रस्तुत करेगा क्योकि श्रम तो उत्पादन के कई साधनो मे से एक है। वास्तव मे उत्पादकता का आशय सब साधनो के सम्मिलित प्रयास से है और उत्पादकता की वृद्धि के लिये प्रत्येक क्षेत्र मे प्रत्येक प्रकार के अपव्यय पर रोक लगाना और उपलब्ध श्रम, यन्त्र, सामग्री पूंजी शक्ति, भूमि इत्यादि का अधिकतम उपयोग करना आवश्यक है।

श्रमिको मे 'उत्पादकता' शब्द का एक गलत एव भ्रमपूर्ण अर्थ प्रचलित है, जिससे प्रभावित होकर वे उत्पादकता आन्दोलन के विरोध मे खडे हो जाते है। 'उत्पादकता' से वे अपने लिये अधिक कार्य-भार एव घोर परिश्रम का आशय लेते है जिसका उद्देश्य मिल मालिको के लाभ मे वृद्धि करना है। श्रमिको को अपने मन से इस भ्रान्तिपूर्ण धारणा को निकाल देना चाहिए और उन्हे समझना चाहिए कि उत्पादकता आन्दोलन की तकनीक का उद्देश्य अधिक कुशलता से कार्य का सचालन करना है जिससे उन्हे कम थकावट हो उनके काम की दशाओ मे सुधार हो और उनकी कार्यविधि सरल हो जाय। यह सोचना भी गलत है कि उत्पादकता आन्दोलन से केवल प्रबन्धको को ही लाभ होता है। वास्तव मे इसका लाभ श्रमिको, उपभोक्ताओं, सेवायोजको, सरकार व साधारण समाज सभी को होता है।

भारत के लिये उत्पादकता आन्दोलन का महत्व—

(i) उत्पादकता सम्बन्धी सूचनाको को देश की आर्थिक और औद्योगिक सफलताओ का मापक यन्त्र (Barometer) माना जाता है। इसकी सहायता से आर्थिक परिवर्तनो का अनुमान लगाया जा सकता है। (ii) योजनाकरण के दृष्टिकोण से उत्पादकता सम्बन्धी आकड़े बहुत ही महत्त्वपूर्ण होते है क्योंकि इसके आधार पर एक ही उद्योग की विभिन्न इकाइयो मे एव एक देश की औद्योगिक इकाइयो की दूसरे देश की औद्योगिक इकाइयो से तुलना की जा सकती है तथा सम्पूर्ण उद्योग की प्रगति का मूल्याकन किया जा सकता है। (iii) उत्पादकता सम्बन्धी अध्ययन के आधार पर सरकार को यह निश्चित करने म सुविधा होती है कि अमुक उद्योग को किस सीमा तक सरक्षण दिया जाय। (iv) करारोपण व प्रशुल्क नीतियो के सचालन एव सामाजिक बीमे व श्रम कल्याण की योजनाओ के विस्तार मे भी सहायता मिलती है। (v) टक्नोलौजीकल परिवतनो का उत्पादन और रोजगार पर क्या प्रभाव पडता है और विवेकीकरण एव वैज्ञानिक प्रबन्ध की योजनाओ ने उत्पादन की वृद्धि मे किस सीमा तक योग दिया है इसका निश्चय करने मे भी बडी सुविधा हो जाती है। (vi) उत्पादकता सम्बन्धी आकडा के आधार पर ही दुबल एव दोषयुक्त अथ व्यवस्था के पुनर्वास की योजना बनाई जाती है। सक्षेप म उत्पादकता निर्देशाक अनेक उपयोगो मे लिये जाते है और राजनीतिज्ञो व्यापारियो उद्योगपतियो व श्रमिक नताओ की नीतियो के निर्धारण मे बडी सहायता देते ह। भारत म उत्पादकता आन्दोलन का विशेष महत्त्व है जो इस प्रकार बताया जा सकता ह —

(१) **विदेशी उत्पादको से सफल प्रतियोगिता करने के लिये**—उत्पादकता को भावी अर्थ व्यवस्था का एक महान आधार बताया जाता है भारतीय अथ व्यवस्था मे उत्पादकता क वृद्धि का एक विशेष महत्त्व है क्योकि वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक विश्व अथ-व्यवस्था म भारतीय उद्योगो के लिये उत्पादन की पुरानी टक्नीक के सहारे टिकना कठिन है। देश के भीतर ही नही वरन् देश के बाहर भी बाजारो का विकास करना है। यह तभी सम्भव है जब उत्पादकता म वृद्धि हो जिससे उत्पादकता की लागत कम होकर प्रतिस्पर्द्धात्मक मूल्य रखे जा सक।

(२) **विद्यमान कारखानो की क्षमता बढाने के लिये**—भारत म औद्योगीकरण बहुत कम हो पाया है। परिणामत उसे अपनी पूजीगत आवश्यकताओ और साज-सामान के लिये विदेशो पर निर्भर रहना पडता है। नवीन औद्योगिक विकास के लिये उपलब्ध पूँजी की मात्रा बहुत अपर्याप्त है अत नए कारखाने स्थापित करना सुगम नही है। ऐसी दशा मे विद्यमान कारखानो की उत्पादन क्षमता म वृद्धि करने का महत्त्व स्पष्ट है। यह आवश्यक है कि उत्पादन की नई टकनीक एव विधियो का प्रयोग करके सभी साज सामान का मानव श्रम का, भूमि का अधिक से अधिक लाभ उठाया जाय जिससे निर्माण की आवश्यकता न्यूनतम रखी जा सके।

(३) [illegible] का स्तर ऊँचा करने के लिये—उत्पादन मे वृद्धि करके

हर प्रकार का उत्पादन साज सामान अधिक द्रुत गति से बनाया जा सकता है, अत रहन सहन के स्तर मे भावी प्रगतियो की बुनियाद डाली जा सकेगी। विद्यमान साधनो से ही अधिक वस्तुए उत्पन्न करने से उत्पादन की लागत का कम किया जा सकता है और वस्तुएँ पहले से कम कीमत पर बेची जा सकगी। इसका लाभ उपभोक्ता को तो मिलेगा ही, साथ मे मजदूरो के पारिश्रमिक मे थोडी वृद्धि करने का अवसर भी मिलता है।

नवम्बर सन् १९५७ म उद्योग एव व्यापार मत्रालय द्वारा आयोजित एक सेमिनार का उद्घाटन करते हुए केन्द्रीय उद्योग मत्री ने इस बात पर बल दिया था कि उत्पादन की प्रति इकाई पर श्रमिक द्वारा व्यय की जान वाली शक्ति म बचत करके उत्पादन करना सभव है जिसका लाभ श्रमिक को अतिरिक्त मजदूरी के रूप म मिलेगा। उत्पादकता म वृद्धि होन से नये कारखाना की स्थापना क लिये अधिक पूँजी मिलना सरल होता है और अत मे रोजगार की वृद्धि भी होती है।

'औद्योगिक उत्पादकता पर प्रभाव डालने वाले घटक—

यो तो औद्योगिक उत्पादकता पर प्रभाव डालने वाले विविध प्रकार के अनेक घटक ह तथापि उन्ह टैक्नोलोजीकल वित्तीय प्राकृतिक सामाजिक प्रावधिक एव राजकीय वर्गों मे इस प्रकार विभक्त किया जा सकता है —

(१) **टक्नोलोजीकल घटक**—टैक्नोलोजीकल प्रगति का औद्योगिक उत्पादन की तीव्र वृद्धि मे एक महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। भाप शक्ति और यान्त्रिक आविष्कारो का उत्पादन की क्रियाओ मे प्रयोग करने म औद्योगीकरण की गति बहुत ही तेज हो गई है और विज्ञान एव टक्नालोजी के क्षेत्र म विस्तृत एव उपयोगी सभावनाएँ दिखाई पडने लगी हैं। औद्योगिक प्रगति पर जिन टक्नोलोजीकल परिवर्तनो का सबसे अधिक प्रभाव पडता है वे निम्न हैं —(i) यान्त्रिक शक्ति का प्रयोग (ii) विशिष्ट एव स्वचालित मशीनो का प्रचलन (iii) सयत्र एव मशीनो का उच्च कोटि का समन्वय, (iv) उत्पादन एव कार्य दोनो का विशेषोपयोजन और (v) उत्पादक प्रक्रियाओ का समन्वय।

(२) **वित्तीय घटक**—नवीन टक्नीकल सुधारो को प्रचलित करने के लिये पर्याप्त वित्तीय साधन उपलब्ध होना अति आवश्यक होता है। टैक्नीकल अनुसधानो पर, मजदूरो को उन्नत सुख सुविधाय प्रदान करने कच्चे और पक्के माल का स्टाक रखने इमारतो व साज सामान का आधुनिकीकरण करने एव प्लाट व मशीनरी को कार्य योग्य दशा म बनाय रखने क लिये अपार धन राशि व्यय करनी पडती है। अत जिन देशो म पूँजी पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध है वहाँ उत्पादकता आन्दोलन ने बडी उन्नति कर ली है।

(३) **प्राकृतिक घटक**—प्राकृतिक घटको म भौतिक [illegible]गोलिक एव जलवायु सम्बन्धी अन्तरो का [illegible] किया जाता है जोकि औद्योगिक [illegible] यो की उत्पादकता

पर एक व्यापक प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिये (i) कोयला खानो की गहराई, (ii) सम्बन्धित क्षेत्र की रचना, (iii) कोयले की किस्म, (iv) कोयले की तहो की मोटाई का कोयला उद्योग की उत्पादकता पर गहरा प्रभाव पडता है। औद्योगिक श्रमिको की कार्यकुशलता एव उत्पादकता पर जलवायु का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। उदाहरणार्थ, भूमध्यरेखीय एव उष्ण जलवायु मे श्रमिक काम करते हुए जल्दी थक जाते है।

(४) सामाजिक घटक— सामाजिक रहन-सहन एव दृष्टिकोण का औद्योगिक प्रणाली के सुचारु सचालन से प्राय: उचित प्रकार समायोजन नही होने पाता। नगरो मे स्थित उद्योगो मे भूमि-रहित कृषक या पूरा काम न पाने वाले किसान या शहरो मे बेकार निवासी ही आकर्षित होते है और उनमे यह आशा की जाती है कि वे कारखाने के अनुशासन को मानेगे। यह ग्रामीण जनो के लिये, जो कि स्वच्छन्द वातावरण मे जन्मे और बढे हैं तथा अनेक रूढियो व प्रथाओ से जकडे रहते है, एक कठिन परीक्षा सिद्ध होती है। बहुत से सेवायोजको का अपने कर्मचारियो के प्रति सहानुभूति का रुख नही होता वे उनकी स्वतन्त्र समिति को महत्त्व नही देते। इन सब बातो का औद्योगिक उत्पादकता पर बहुत बुरा प्रभाव पडता है।

> **'औद्योगिक उत्पादकता' पर प्रभाव डालने वाले ६ घटक**
>
> १ टेक्नोलोजीकल।
> २ वित्तीय घटक।
> ३. प्राकृतिक घटक।
> ४. सामाजिक घटक।
> ५ प्रबन्ध सम्बन्धी घटक।
> ६ सरकारी नीतियाँ।

(५) प्रबन्ध सम्बन्धी घटक—यह सत्य ही कहा जाता है कि औद्योगिक विकास के इतिहास मे सजग, साहसी, दूरदर्शी, प्रबन्ध कला मे चतुर, कल्पना शक्ति मे ओत-प्रोत प्रबन्धको के लिए इतनी अधिक आवश्यकता पहले कभी भी अनुभव नही हुई जितनी कि आज अनुभव की जाती है, क्योंकि औद्योगिक इकाइयो की सफलता एव असफलता बहुत कुछ उन लोगो पर निर्भर होती है जोकि ... ... है।
...गो की वृद्धि के परिणाम-
यह आवश्यक है कि प्रबन्धको मे सगठन की अपूर्व क्षमता ..., क्योंकि सयुक्त-स्कन्ध वाली
उठाने की तत्परता हो, अपने अधीन कर्मचारियो एव ... अधिकाश व्यापारिक सगठनो का
सम्मानजनक व सहानुभूतिपूर्ण हो। इन गुणो के ... प्रमण्डलो के निर्माण के परिणाम-
बुरा असर पडता है। इस सम्ब... कमात्र ध्येय रहता है ... सयोग का निर्माण सरल हो
का कुशल मैनेजर होना भी आ... ...ा को मूल्य की कमी से कुछ ...पाण होते है, उन्हे सधारी
के क्षेत्र से बिल्कुल भिन्न है। ... मे क्षणिक होता है, क्योंकि कमजोर उ...

(६) सरकारी ... ...निकाल देने के उपरान्त, वे शक्तिशाली उत्पादक तथ...जाने के
सम्बन्धी नीतया ... ...त्र माने दाम माँगने लगते है और इस प्रकार जनता को निदय...

१६

सकती है। जैसे, विशाल कारखानो एवं मशीनो की स्थापना के लिये कर सम्बन्धी छूटे दी जा सकती है। इसके विपरीत, अत्यधिक सरक्षण देने की नीति के कारण घरेलू बाजार मे एकाधिकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती है तथा यह भी सभव है कि सरकारी सहायता के आधार पर अकुशल एव अनार्थिक इकाइयो का पालन भी होता रहे। दोनो ही दशाओ मे औद्योगिक उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। बडे औद्योगिक सयोगो की उत्पत्ति पर रोक लगा कर सरकार ऐसी दशायें उत्पन्न कर सकती है जिनमे प्रतिस्पर्द्धा करने वाली विभिन्न इकाइयाँ अपनी उत्पादकता की वृद्धि के लिये निरतर प्रयत्नशील रहती हैं। सरकार की प्रशासन एव वित्त-नीतियाँ, विनियोग, बचत एव एक उद्योग से दूसरे उद्योग मे पूँजी के प्रवाह को उत्साहित या निरुत्साहित कर सकती हैं।

भारत मे उत्पादकता वृद्धि-आन्दोलन की प्रगति—

प्रथम पच-वर्षीय योजना के अन्तगत श्रम की उत्पादकता बढाने पर काफी ध्यान दिया गया। उन कारणो की वैज्ञानिक जाँच कराई गई, जिनके लिए सेवायोजक और श्रमिको का आरोप एव प्रत्यारोप था कि वे उत्पादकता को घटाते हैं। उत्पादकता की वृद्धि के उपायो पर विचार करने के लिये अध्ययन गोष्ठियो का आयोजन भी किया गया और 'टेक्नीकल सहायता कार्यक्रम' के अन्तर्गत विदेशो से टेक्नीकल विशेषज्ञो को भी आमन्त्रित किया गया तथा अपने शिष्ट मडल भी विदेशो मे अध्ययन के लिये भेजे गये।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सगठन के प्रथम शिष्टमण्डल का आगमन भारत मे दिसम्बर सन् १९५२ मे हुआ। इसमे प्रबन्ध एव औद्योगिक इन्जीनियरिग से सम्बन्धित चार विशेषज्ञ सम्मिलित थे। इनकी सहायता के लिये हैडक्वार्टर स्टाफ के अनेक कर्मचारी भी साथ आये थे। सरकार, उद्योगपतियो एव श्रमिक सघो के परामर्श पर यह दल दो भागो मे बँट गया और उन्होने कलकत्ता मे औद्योगि- इन्जीनियरिग तथा बम्बई व अहमदाबाद मे सूती वस्त्र मिल उद्योग के सम्बन्ध मे अनेक प्रदर्शनो का आयोजन किया। कलकत्ते मे पाँच फर्म (जिनम एक सरकारी कारखाना भी शामिल था) चुनी गई और दल ने 'मैथड स्टडी' की टेक्नीक का अनुसरण करते हुए यह [illegible] द्रुतगामी ढगो का उपयोग किस प्रकार किया जा सकता [illegible] उत्पादकता सम्बन्धी रिकार्ड उचित रूप स रखकर ही [illegible] धार किया जा सकता है। अधिकतर सुभाव कार्य [illegible] करने, के स्थान और कार्यशील पूँजी से [illegible] कार्य दो मिलो मे आरम्भ [illegible] त विस्म, घटे हुए कार्यभार [illegible] रकार ने दिसम्बर [illegible] निश्चय कर लिया कि

(राग) उत्पादन एवं कार्य दोना समन्वय।

(२) वित्तीय घटक—नवी[illegible] पर्याप्त वित्तीय साधन उपलब्ध होना पर, मजदूरो को उन्नत सुख, सुविधायें प्रदान रखने, इमारतो व साज सामान का आधुनिकीकरण करना कार्य योग्य दशा मे बनाये रखने के लिये अपार धन-राशि जिन देशो मे पूँजी पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध है, वहाँ उत्प[illegible] उन्नति कर ली है।

(३) प्राकृतिक घटक—प्राकृतिक घटको मे भौतिक, [illegible] सम्बन्धी अन्तरो [illegible] किया जाता है, जोकि औद्योगिक[illegible]

वेह सन् १९५४ मे राष्ट्रीय उत्पादकेता कैन्द्र की स्थापना करने मे टेक्नीकल सहायता दे। सन् १९५४ मे एक दूसरा मिशन भारत आया और अनेक कारखानो मे अपना कार्य फैलाया।

मार्च सन् १९५७ मे एक दल डा० विक्रम सारभाई की अध्यक्षता मे जापान की उत्पादकता बढाने की प्रचलित विधियो का गहन अध्ययन करने के लिये भेजा गया। इस दल ने लौटकर अपनी विस्तृत रिपोर्ट सरकार को दी और उसमे इस बात पर बल दिया कि द्वितीय पच-वर्षीय योजना मे उत्पादन सम्बन्धी जो लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं उनकी पूर्ति मे विद्यमान उत्पादकता मे वृद्धि करने के लिये उत्पादन विधियो मे सुधार करने तथा श्रमिक वर्ग मे अधिक और अच्छा मान पैदा करने की भावना जाग्रत करना आवश्यक है। दल ने जापान की भाँति एक 'राष्ट्रीय उत्पादकता-वृद्धि काउन्सिल' (National Productivity Council) की स्थापना करने का सुझाव दिया, जिसके निम्न कार्य हो—(१) उत्पादकता की वृद्धि के लिये उपयुक्त *वातावरण पैदा करना*, (२) राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय साधनो से वित्तीय सहायता प्राप्त करना, (३) विशिष्ट टेक्नीकल सहायता प्रदान करना एव (४) क्षेत्रीय काउन्सिलो की स्थापना करना।

उत्पादकता वृद्धि से सम्बन्धित सेमिनार—

भारतीय मण्डल की सिफारिशो को लागू करने की दिशा मे पहला कदम सन् १९५७ मे उठाया गया, जबकि केन्द्रीय उद्योग एव वाणिज्य मन्त्रालय ने उत्पादकता बढाने के सम्बन्ध मे एक सेमिनार का आयोजन किया, जिसमे राष्ट्रीय उत्पादकता आन्दोलन के सिद्धान्तो और कार्यक्रम का अनुमोदन किया गया। सेमिनार द्वारा यह निश्चय किया गया कि कार्य का अत्यधिक केन्द्रीयकरण न किया जाय और राष्ट्रीय एव स्थानीय काउन्सिलो का कार्य-क्षेत्र सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था पर विस्तृत होना चाहिये अर्थात् प्रत्येक व्यक्तिगत साधन से और उत्पादन की प्रत्येक इकाई मे उसका सम्पर्क रहे। काउन्सिलें स्वतन्त्र रूप मे सचालित हो। उत्पादकता आन्दोलन को बढ़ावा देने के सम्बन्ध मे सेमिनार ने निम्नलिखित सिद्ध... योगो की वृद्धि के परिणाम-

(१) उद्देश्य यह होना चाहिये कि सुधरी ह... ली, क्योकि सयुक्त-स्कन्ध वाली

दन बढाया जाय और किस्म मे सुधार किया जाय... अधिकाश व्यापारिक सगठनो का

जाय, श्रमिको के काम करने की दशाओ मे सुधा... प्रमन्डलो के निर्माण के परिणाम-

की जाय तथा इन परिवर्तनो के... एकमात्र ध्येय रहता है... सयोग का निर्माण सरल हो

का उद्देश्य श्रमिको के कार्य-भ... ता को मूल्य की कमी से कुछ... माण होते हैं, उन्हे सघारी

(२) एक वृद्धिशी... मे क्षणिक होता है, क्योकि कमजोर उ...

का प्रोत्साहित कर अ... निकाल देने के उपरान्त, वे शक्तिशाली उत्पादक से चलाने के

(३) उत्प... न-माने दाम माँगने लगते है और इस प्रकार जनत्व की आवश्य-

के मध्य न्यायोचित ...

लए सम्भव नही

(४) उत्पादक आन्दोलन के क्षेत्र मे बडे, छोटे और हल्के (सार्वजनिक क्षेत्र मे अथवा प्राइवेट) सभी उद्योगो का सम्मिलित किया जाय ।

(५) उत्पादकता की वृद्धि के लिये उपयुक्त वातावरण पैदा करने के हेतु सयुक्त विचार-विमर्श, प्रबन्ध मे श्रमिको के भाग और प्रत्येक उद्योग एव प्रत्येक इकाई मे पारस्परिक सहयोग को प्रोत्साहन देना चाहिये ।

राष्ट्रीय एवं स्थानीय उत्पादकता काउन्सिलें—

राष्ट्रीय उत्पादकता काउन्सिल की स्थापना सोसायटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट के अन्तर्गत सन् १६५८ मे हुई । काउन्सिल मे ११ प्रतिनिधि है, जो कि सरकारी विभागो, सेवायोजको के सघो तथा श्रम सघो से लिये गये । उपभोक्ताओ, टेक्नीशियनो, लघु उद्योगो आदि के प्रतिनिधियो को भी सम्मिलित कर लिया गया है । कुल सदस्य सख्या ६० है । यूनियन उद्योग मत्री इस काउन्सिल के अध्यक्ष है । काउन्सिल की एक प्रशासन समिति भी है, जिसमे १४ सदस्य है, जिनका निर्वाचन काउन्सिल करती है । इस समिति के चेयरमैन डाक्टर लोकनाथन है ।

सन् १६५८-५६ की अवधि मे क्षेत्रिक, प्रान्तीय एव स्थानीय आधार पर १५ उत्पादकता काउन्सिले सगठित करने का प्रस्ताव था । स्थानीय काउन्सिलो का संगठन राष्ट्रीय काउन्सिल के समान ही किया जाना था । प्रान्तीय सरकार का प्रतिनिधि इन काउन्सिलो मे रखा गया और इन काउन्सिलो को राष्ट्रीय काउन्सिल मे प्रतिनिधित्व दिया गया है ।

आठ-सूत्री कार्यक्रम--

अपनी पहली बैठक मे राष्ट्रीय काउन्सिल ने निम्नलिखित आठ सूत्री कार्यक्रम स्वीकार किया है :—

(१) उत्पादकता से सम्बन्धित सूचना का प्रसार करके उत्पादकता बढाने की चेतना को बढावा देना ।

(२) प्रबन्ध के सभी स्तरो पर उत्पादकता की टेक्नीक व प्रक्रियाओ की

समन्वय ।

(२) **वित्तीय घटक**—नवी...उत्सलें आवश्यक समझे तब विशेषज्ञो की सेवायें

पर्याप्त वित्तीय साधन उपलब्ध होना

पर, मजदूरो को उन्नत सुख, सुविधायें प्रदान निरीक्षण को प्रोत्साहन देना, जिससे सामान्य

रखने, इमारतो व साज सामान का आधुनिकीकरण करना ...गोने लगे ।

कार्य योग्य दशा मे बनाये रखने के लिये अपार धन-राशि ...नसन्धान कराना ।

जिन देशो मे पूंजी पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध है, वहाँ उत्प... लिये अपनाये गये साधनो

उन्नति कर ली है ।

(३) **प्राकृतिक घटक**—प्राकृतिक घटको म भौतिक, ...गोलि...

सम्बन्धी अन्तरो का ...दिया जाता है, जाव औद्योगिक ...ना ।

अप्रैल सन् १६५८ मे राष्ट्रीय काउन्सिल ने एक 'प्राडक्टिविटी सर्वे कमेटी' का सगठन किया, जिसका उद्देश्य टेक्नीकल कर्मचारियो की उपलब्धता और भावी आवश्यकता के सम्बन्ध मे जाँच-पडताल करना था। फैक्टरियो का चीफ एडवाइजर इस कमेटी का चेयरमेन है। सर्वे के क्षेत्र मे वैज्ञानिक प्रबन्ध मानवीय सम्बन्ध, औद्योगिक इन्जीनियरिंग आदि को सम्मिलित किया गया। जहाँ तक प्रबन्ध का प्रश्न है, सभी श्रेणियो के प्रबन्धको को प्रोडक्टिविटी की टेक्नीक का जो प्रशिक्षण दिया जायगा उसमे वैज्ञानिक प्रबन्ध, मानवीय सम्बन्ध, कार्य-मूल्यांकन, भृत्ति-प्रेरणायें, औद्योगिक डिजायन, विधि विश्लेषण इत्यादि भी शामिल है। विभिन्न केन्द्रो मे विशेषज्ञो की रीजनल प्रोडक्टिविटी यूनिटे स्थापित की जायेगी, जिनकी सेवायें लोकल प्रोडक्टिविटी काउन्सिलो के द्वारा प्राप्त की जा सकेंगी। बम्बई, मद्रास कलकत्ता, कानपुर और दिल्ली मे ऐसी यूनिटे कायम की गई है।

सूचना के प्रसार के लिए एक टेक्नीकल इन्क्वाइरी सर्विस सगठित की जायेगी, जो कि उद्योगो द्वारा पूछे गये टेक्नीकल प्रश्नो का उत्तर देगी तथा रिपोर्ट, पुस्तिकायें, व्याख्यान, सेमिनार प्रदर्शिनियो के सगठन आदि के द्वारा उत्पादकता सम्बन्धी जानकारी का प्रसार करेगी।

राष्ट्रीय काउन्सिल ने आठ सदस्यो का एक दल पश्चिमी जर्मनी, ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका के कारखानो का अध्ययन करने के लिये सितम्बर सन् १६५८ मे भेजा था। ऐसे ही अनेक दल अभी और भेजे जाने को है।

उत्पादकता बढ़ाने के कार्यक्रम मे भाग लेने वाली एजेन्सियाँ—

निम्न सस्थायें उत्पादकता आन्दोलन के कार्यक्रम को कार्यान्वित करने मे सहायता कर रही है—

(१) दी इण्डियन स्टेटिस्टीकल इन्स्टीट्यूट कलकत्ता ने कुछ वर्ष पहले भारतीय उद्योगो मे क्वालिटी कन्ट्रोल की टेक्नीक को प्रोत्साहन देने के लिये सेमिनार आयोजित किये और बम्बई व बगलौर मे इसने क्वालिटी कट्रोल यूनिटें स्थापित की है। दी अहमदाबाद टैक्सटाइल इन्डस्ट्रीज रिसर्च एसोसियेशद्योगो की वृद्धि के परिणाम-क्वालिटी कट्रोल की टेक्नीक का विस्तार करने के लिी, क्योकि सयुक्त-स्कन्ध वाली हाल मे ही इण्डिया टैक्सटाइल रिसर्च एसोसियेशो अधिकाश व्यापारिक सगठनो का किया है। ...r प्रमन्डलो के निर्माण के परिणाम-

(२) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम एकमात्र ध्येय रहता है ग सयोग का निर्माण सरल हो की है, जिन्होने भारत के विता को मूल्य की कमी से कुछ र्माण होते है, उन्हे संघारी किये है। .व मे क्षणिक होता है, क्योकि कमजोर उ.

(३) भारत म निकाल देने के उपरान्त, वे शक्तिशाली उत्पादक से चलाने के है और मैनेजमेन्ट एसा-माने दाम माँगने लगते है और इस प्रकार जनत्व की आवश्य- बिजनेस एडमिनिस्ट्रेश

लए सम्भव नही

(४) इण्डस्ट्रियल इन्जीनियरिंग के क्षेत्र मे कुछ प्राइवेट परामर्शदाता फर्म भी कार्य कर रही हैं। दी इण्डियन इन्स्टीट्यूट ग्राफ टेक्नोलोजी खडगपुर मे भी इण्डस्ट्रियल इन्जीनियरिंग का कोर्स चलाया जाता है। बम्बई का प्रोडक्टिविटी सेंटर भी इस दशा मे काफी प्रयत्नशील है।

(५) भारत सरकार द्वारा स्थापित स्माल इण्डस्ट्रीज इन्स्टीट्यूट ट्रेनिंग प्रदान करते है और टेक्नीक मे सुधार कराने का प्रयत्न करते हैं।

(६) नेशनल डेवलपमेण्ट काउन्सिल के अन्तर्गत प्लान प्रोजेक्ट कमेटी व प्लानिंग की इण्डस्ट्रियल मैनेजमेंट रिसर्च यूनिट और अन्य कई औद्योगिक अनुसधान एसोसियेशन भी अनगिनती औद्योगिक इकाइयो व प्रोजेक्टो के अधिक उन्नत सचालक सचालन की विधियो के सम्बन्ध मे छानबीन कर रहे हैं।

(७) अमेरिका का टेक्नीकल कोम्रापरेटिव मिशन भी प्रोडक्टिविटी आन्दोलन मे बहुत कुछ सहयोग दे रहा है जैसे मैनेजमेंट लाइब्रेरियो के लिये बहुमूल्य पुस्तकें भेंट देना, विशेषज्ञो के लेक्चर आयोजित करना इत्यादि।

उपसहार—

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत मे उत्पादकता आन्दोलन के प्रति लोगो का ध्यान अधिकाधिक आकर्षित होता जा रहा है, लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर अधिकाश कार्य का समन्वय नही हो पाया है। इस बात की बडी आवश्यकता है कि एक ऐसा पत्र प्रकाशित किया जाया करे जिसमे विभिन्न क्षेत्रो मे हुई प्रगति का विस्तृत ब्यौरा हो। इससे राष्ट्रीय स्तर पर उत्पादकता आन्दोलन का सही मूल्याकन करने मे बडी सहायता मिलेगी। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद को चाहिए कि वह विभिन्न एजेन्सियो के कार्य मे उचित समन्वय स्थापित करे और उन्हे उचित सहायता दे।

(IV) उत्पादन एवं कोष दान।
समन्वय।
(२) वित्तीय घटक—नवा... ARD QUESTIONS
पर्याप्त वित्तीय साधन उपलब्ध होना
पर, मजदूरो को उन्नत सुख, सुविधाय प्रदान करने, ... ortance of Productivity
रखने, इमारतो व साज सामान का आधुनिकीकरण कर...
कार्य योग्य दशा मे बनाय रखने क लिये अपार धन राशि ... oductivity
जिन देशो म पूंजी पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध है, वहा उत्... ent of India to in-
उन्नति कर ली है।
(३) प्राकृतिक घटक—प्राकृतिक घटको मे भौतिक, ... India,"
सम्बन्धी अन्तरो का समावेश किया जाता है, जोकि औद्योगि...

अध्याय २५

औद्योगिक संयोगों के प्ररूप एवं उनका विकास

(Growth & Forms Of Industrial Combinations)

प्रारम्भिक विवेचन

अठारहवी शताब्दी के अन्त मे इङ्गलैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति के बाद समस्त औद्योगिक जगत मे पूँजीवाद का बोलबाला था। वह 'यथेच्छकारिता' (Laissez Faire) का युग था। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार व्यवसाय व उद्योग करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। उद्योग अथवा व्यवसाय के किसी भी क्षेत्र म राज्य का लेशमात्र भी हस्तक्षेप न था। आर्थिक क्षेत्र मे भी किसी प्रकार का राजकीय नियन्त्रण न था। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यापारिक एव औद्योगिक क्षेत्र मे 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' यह कहावत पूर्णतः लागू होनी थी। स्पर्द्धा पूर्णतया स्वलन्न व खुली हुई थी। प्रत्येक धनी व्यवसायी जो योग्य अथवा चालाक था, वह अन्य साथियो को उस व्यवसाय क्षेत्र से स्वतन्त्र स्पर्द्धा की आड मे बडी सरलता से निकाल सकना था। इस ~~~ विशेष नीति का आविष्कर्त्ता एडम स्मिथ था, परन्तु क्रमश ~

लोगो को प्रतीत होने लगे। यह प्रतिस्पर्द्धा धीरे-धीग्रपनाई गई प्रशुल्क नीति ने भी लगी कि कमजोरा का गला निरर्थक ही काटा जाने गला-काट-प्रतिस्पर्द्धा से बचने तथा को वेतन कम देना प्रारम्भ कर दिया तथा न्यूनतम भन्न राष्ट्रीय शासनो ने ऐसी नीति पूँजीवाद के अन्य दोषो को भी अनुभव करने लग~ कीमती हो गया अथवा उस माल जब तक सम्पूर्ण देश मे आर्थिक समान्ता एव स्वतन्‍o'a System) के अन्तर्गत वह की नीति यशस्वी नही हो सकती। जिस देश मे एक दिया जाता था।

और ऐश्वर्यशाली अमीर विराजमान हो वहाँ मु उद्योगों की वृद्धि के परिणाम- नीति कदापि सफल नही हो सकती। सीमित मिली, क्योकि सयुक्त-स्कन्ध वाली नही है, किन्तु जब वह उन विषम परिस्थितियो मे अधिकाश व्यापारिक सगठनो का काट स्पर्द्धा' (Cut throat Competitior प्रमन्डलो के निर्माण के परिणाम- क्षेत्र से बाहर निकालना ही एकमात्र ध्येय रहता है~ सयोग का निर्माण सरल हो कहा जा सकता। उससे जनता को मूल्य की कमी से कुछ ~माण होते है, उन्हे सधारी प्रतीत होता है, वह वास्तव मे क्षणिक होता है, क्योकि कमजोर उ

क्षेत्र व विक्रय क्षेत्र से निकाल देने के उपरान्त, वे शक्तिशाली उत्पादक से चलाने के अपनी वस्तुओ के मन-माने दाम माँगने लगते है और इस प्रकार जनत्व की आवश्य-

लए सम्भव नही

से लूटते है । अन्त मे, ऐसी परिस्थिति आ जाती है कि सम्पूर्ण व्यवसाय किंचित उत्पादको के हाथ मे आ जाता है और आर्थिक स्वतन्त्रता के जो स्वप्न यथेच्छकारिता नीति के अन्तर्गत देखन की कल्पना की थी, वह सब उलट जाती है और उसके स्थान पर विदोहन (Exploitation) का नग्न नृत्य हाने लगता है ।

अतः १६वीं शताब्दी के अन्त में इस गला काट प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त करने के लिए अनेक योजनायें बनाई गई, जिनमे आवागमन के सुधार, सयुक्त कम्पनियो का विस्तार तथा नवीन व्यापारिक सस्थाओ का निर्माण प्रमुख है । इन प्रयत्नो से भी पूर्ण आर्थिक स्वतन्त्रता नही मिली तब व्यापारिक जगत का ध्यान इस नियम की ओर आकर्षित हुआ कि--'प्रतिस्पर्द्धा से सयोग को जन्म मिलता है' (Competition begets Combination) अर्थात् उस समय की समस्त योजनाओ को विभिन्न प्रकार के संयोगो का रूप देने का प्रयत्न किया गया । यही नही, व्यापारिक सगठन तथा औद्योगिक शासन व्यवस्था को सुदृढ बनाने के लिये विभिन्न व्यापार-सस्थाओ मे ...वा एक ही उद्योग की विभिन्न शाखाओ मे सघीय (Guild) पद्धति पर समझौते ...न लगे, जिन्होने आगे चलकर सयोगो को प्रोत्साहन दिया । इस प्रकार की प्रारम्भिक विक्रय नियन्त्रण (Limitation of vend) के लिए न्यूकेसल (इङ्गलैण्ड) मे बनाई गई, जिसमे कोयले का विक्रय निश्चित मूल्यो पर किया जाता था ।

...योग आन्दोलन क्यों ?—

अधिकाश काय क... को उत्पन्न करने वाले कुछ प्रमुख कारण इस प्रकार है —
कि एक ऐसा पत्र प्रकाशित किय... **आकर्षण**—१६वी शताब्दी के अन्त म प्राचीन
विस्तृत व्योरा हो । इससे राष्ट्रीय स... ए कोई अवसर न रहा था । शोषण भी क्रमशः
करने मे बडी सहायता मिलेगी । रा... था अधिक मजदूरी लगाकर लाभ कमाने की
विभिन्न एजेन्सियो के कार्य मे उ... ली । उन्होने स्वय उद्योगो का नियन्त्रण
सहायता दे ।

...० के लगभग प्रतिस्पर्द्धा ने औद्योगिक क्षेत्र मे
(iv) उत्पादन एंव काय दाता... प्रायः छोटी मात्रा मे किया जाता था, जिसमे
समन्वय । ... तु बाजारो के विस्तार के ...साथ बडी मात्रा
(२) **वित्तीय घटक**—नवी... तिस्पर्द्धा के दोषो का भी ल... अनुभव करने
पर्याप्त वित्तीय साधन उपलब्ध होना ... क व्यापार से किसी को भी लाभ नही होता था,
पर, मजदूरो को उन्नत सुख, सुविधाय... था उत्पादक व्यापारिक क्षेत्र मे एक-दूसरे का
रखने, इमारतो व साज सामान ... यह प्रतिस्पर्द्धा इङ्गलैंड मे सन् १८७५-६५ की अवधि
कार्य योग्य दशा मे बनाय... जबकि व्यापार मे लाभ की अपेक्षा हानि होना ही एक
जिन देशो म पूंजी... [२] इस प्रकार की विषम परिस्थितियो से किसी को लाभ न होता
उन्नति कर ली है————
(३) प्राकृ...ness Organisation"—Haney.
सम्बन्धी अन्तरो का...ution of Industrial Organisation"—Shields, page 80

देख कुछ योग्य व अनुभवी व्यक्तियो ने अपना ध्यान 'संयोग' की ओर आकर्षित किया, अर्थात् प्रतिस्पर्द्धा ने सयोग को जन्म दिया।

(३) **आवागमन के साधनो में वृद्धि तथा सुधार**—आवागमन के साधनो मे वृद्धि एव सुधार के कारण बाजार का क्षेत्र और भी विस्तृत हो गया। व्यापारियो को विभिन्न प्रकार की सुविधायें मिलने लगी, जिससे बडी मात्रा मे वस्तुओ का सग्रह तथा विक्रय होने लगा। यही नही, उत्पादन के क्षेत्र मे भी अनेक आविष्कार हुए, जिसके लिए पूँजी तथा सुदृढ व्यापारिक सगठन की आवश्यकता थी, अत. विस्तृत व्यापार क्षेत्र के नियन्त्रण के लिए व्यापारिक पार्षदो (Business Associations) का निर्माण होने लगा एव उद्योगो के परस्पर सयोग के लिए प्रस्ताव आने लगे, जिससे विभिन्न उत्पादको एव व्यापारियो की व्यवस्था तथा निर्देशन से लाभ उठाया जा सके।

(४) **बडी मात्रा में उत्पादन से लाभ का आकर्षण**—परिकाल्पनिक लाभ के आकर्षण तथा आवागमन के साधनो मे वृद्धि ने बडी मात्रा मे उत्पादन को प्रोत्साहन दिया। एक से अधिक उत्पादक मिलकर सामूहिक रूप मे सयोग निमाण करके बडी मात्रा मे उत्पादन कार्य करने से होने वाली मितव्ययिताओं (Economies) का लाभ उठाने की चेष्टा करने लगे। मुख्यतया उत्पादन क्षेत्र मे अर्थशास्त्र का क्रमागत वृद्धि नियम (Law of Increasing Returns) ग्र होता है, अत: सदैव बडी मात्रा मे उत्पादन करने से उत्पादन परिव्यय कम रहताहै और उत्पादको को विशेष लाभ मिलने की सम्भावना रहती है।

(५) **प्रशुल्क नीति**—विभिन्न राष्ट्रो द्वारा अपनाई गई प्रशुल्क नीति ने भी सयोग आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया। पारस्परि गला-काट-प्रतिस्पर्द्धा से बचने तथा राष्ट्रीय उद्योगो को सरक्षण प्रदान करने के लिए विभिन्न राष्ट्रीय शासनो ने ऐसी नीति अपनाई कि जिससे विदेशी माल उनके देश मे अधिक कीमती हो गया अथवा उस माल की मात्रा सकुचित हो गई, नही क कोटा पद्धति (Quota System) के अन्तर्गत वह माल केवल सीमित मात्रा मे ही देश के अन्दर आने दिया जाता था।

(६) **सयुक्त स्कन्ध व्यवसाय**—सयुक्त स्कन्ध उद्योगो की वृद्धि के परिणाम-स्वरूप भी सयोग आन्दोलन को अनेक सुविधाये मिली, क्योकि सयुक्त-स्कन्ध वाली अभिकर्तृत्व सस्थाओ द्वारा केवल थोडे से व्यक्ति ही अधिकाश व्यापारिक सगठनो का नियन्त्रण कर सकते थे। इस प्रकार सयुक्त-स्कन्ध प्रमन्डलो के निर्माण के परिणाम-स्वरूप औद्योगिक समन्वय सम्भव हुआ, जिसके द्वारा सयोग का निर्माण सरल हो गया। इस प्रकार औद्योगिक समन्वय के हेतु जो सयोग निर्माण होते हैं, उन्हे सघारी मण्डल कहते है।

(७) **पूँजी की आवश्यकता**—बडे-बडे व्यवसायो को सुचारु रूप से चलाने के लिए अधिक पूँजी, असामान्य योग्यता, महत्त्वाकांक्षा तथा प्रभावी व्यक्तित्व की आवश्यकता पडती है। उतनी पूँजी एकत्रित करना प्रत्येक उपक्रम के लिए सम्भव नही

होता । फिर उक्त आवश्यकताएँ व्यापारिक एव औद्योगिक विस्तार के साथ सीमित हो जाती है जिसकी पूर्ति के लिए भी व्यापारिक तथा औद्योगिक सयोगो का निर्माण किया जाता है । तीव्र प्रतिस्पर्द्धा के कारण वैयक्तिक प्रभुत्व व्यापार के विस्तार के साथ कम हो जाता है अत उस विषम प्रतिस्पर्द्धा से बचन के लिए यह उचित समझा जाता है कि उन सब उपक्रमो क बीच ऐसा कोई पारस्परिक समझौता हो, जिसके द्वारा वे अपने अपने क्षेत्र मे किसी दूसरे के हस्तक्षप के बिना सुचारु रूप से काय करते रहे । इस प्रकार शिथिल सयोग (Loose Combinations) हमारे यहाँ भी अधिकता से पाये जाते हैं ।

(८) **औद्योगिक एव तान्त्रिक परिस्थिति**—औद्योगिक एव तान्त्रिक परिस्थितियो कारण भी सयोग आन्दोलन को काफी बल मिला । आधुनिक व्यापारिक विश्व की ५२ न विभिन्न है उनकी माग की पूर्ति करने के लिए बडी बडी निर्माण शालाओ व उत्पादन शालाओ की आवश्यकता पडता है । यातायात तथा स देशवाहन के उन्नत साधनो ने इन उत्पादनशालाओ का क्षेत्र बहुत विस्तृत बना दिया है । इस परिस्थिति ने वैज्ञानिको को ऐसे-ऐसे नूतन अनुसन्धान करने के लिए विवश कर दिया जिनकी सहायता से बड पैमाने पर वस्तुओ का उत्पादन सम्भव हो गया । इस प्रकार औद्योगिक एव तान्त्रिक परिस्थितियो के कारण भी औद्योगिक सयोगो का निर्माण हुआ तथा विश्व-व्यापक विपणि अस्तित्व के कारण यह सम्भव हो गया कि कोई भी एक उद्योग अपना व्यापार चैन से अन्य विभिन्न व्यापारो को परस्पर सयोगो म आना अनिवार्य हो गया ।

(९) **व्यापार चक्रो का प्रभाव**—तेजी और मन्दी (Boom and Depression) वतमान अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख लक्षण है । ये व्यापार चक्रो व कारण भी बड बड सयोगो का निर्माण हुआ । व्यापार चक्र द्वारा मन्दी के समय उद्योग आर्थिक सकट मे फँस जाते है और कभी कभी उनका अन्त हो जाता है । इसके विपरीत तेजी के युग म नूतन उद्योगो को भी प्रोत्साहन मिलता है । इस समय सभी प्रकार के व्यापार क्षेत्र मे आते हैं चाहे वे व्यापारिक कार्यक्षमता रखते हो अथवा नही । मन्दी के युग मे ऐसे नूतन उद्योगो को या तो अपना व्यापार बन्द करना पडता है अथवा सीमित करना पडता है । उनकी नौका मझधार मे फँस जाती है जिसको पार लगाने के लिए सयोग की शरण ग्रहण करते है । इस प्रकार से पारस्परिक विरोध और स्पर्द्धा को दूर करके पारस्परिक लाभ और समृद्धि के हेतु विभिन्न प्रकार के सयोग निर्माण कर लेते हैं ।

(१०) **युद्ध-कालीन प्रभाव**—युद्ध-काल मे वस्तुओ की माँग दो विभिन्न दिशाओ से आती है—सैनिक आवश्यकताएँ और जन साधारण की आवश्यकताएँ, जो पूववत रहती हैं । बढी हुई माग को पूरा करने के लिये अधिक उत्पादन की आवश्यकता होती है, किन्तु उत्पादन काल मे अचानक इतनी उन्नति एक साथ नही हो सकती ।

मुद्रा-प्रसार के कारण वस्तुओं के मूल्य भी चढ़ जाते है। ऐसी परिस्थिति मे राष्ट्रीय सरकार सयोग-निर्माण करने के लिये उत्तेजना देती है, जिससे मजदूरी, उत्पादन, माग एव पूर्ति का नियमन हो सके तथा काम करने की परिस्थितियो पर नियन्त्रण रख सकें। इसका अपने देश मे उपयुक्त उदाहरण उत्तर-प्रदेश का सुगर सिन्डीकेट लिमिटेड है।

(११) वैज्ञानीकरण की आवश्यकता—छोटे-छोटे उद्योगो मे वैज्ञानीकरण के प्रयोग भी सम्भव नही है अतः औद्योगिक वैज्ञानीकरण करने के लिए तथा उसकी मितव्ययिता का लाभ उठाने की दृष्टि से सयोग का निर्माण होने लगा।

(१२) युद्धोपरान्त-परिस्थिति—युद्ध के बाद प्राय. वस्तुओ के दाम गिर जाते है, उद्योग नष्ट प्रायः हो जाते है अथवा उनका विकेन्द्रीयकरण हो जाता है, बेकारी को प्रोत्साहन मिलता है तथा विभिन्न राष्ट्र औद्योगिक प्रगति के लिए अधिक मात्रा में सरक्षण कर लगाते है। ऐसी परिस्थिति मे भी उद्योगो को संयोग की आवश्यकता प्रतीत होती है, जिससे वे अपनी स्थिति को सुदृढ बना सके। विस्थापित विपणियो को पुनः प्रस्थापित कर सके एव औद्योगिक कलेवर को मजबूत बनाकर नष्ट प्रायः उद्योगो को जीवन दान दें।

संयोग की परिभाषा—

जब किसी उद्योग या व्यवसाय मे विभिन्न इकाइयाँ किसी सामान्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ अशो मे अपने व्यक्तिगत हितो का बलिदान करते हुए एक सूत्र मे बँधती हैं तो इस प्रकार के बने सगठन को 'सयोग' (Combination) कहते है। औद्योगिक सयोग आपस मे लडने वाले बच्चो की माँ की तरह होता है। इसमे भिन्न-भिन्न छोटे-बडे तथा आपस मे प्रतिस्पर्द्धा करने वाले व्यापारियों अथवा उत्पादन-कर्त्ताओ को एकत्रित किया जाता है तथा एक-दूसरे के सहयोग और सहायता से एक-दूसरे को हानि पहुँचा कर नही, परन्तु एक दूसरे के कार्य को बँटाते हुए सबके हित मे काम किया जाता है। यदि सयोग के सदस्य स्वेच्छा एव ईमानदारी से कार्य करते हैं तो वह सयोग स्थाई तथा सुदृढ होता है और अपने सदस्यो की प्रगति के लिए चमत्कारिक कार्य करता है, अन्यथा ऐसा न होने पर प्रारम्भ मे ही नष्ट हो जाता है।

संयोग के उद्देश्य—

सयोग का निर्माण प्रधानतः निम्न उद्देश्यो की पूर्ति के हेतु किया जाता है—

(१) विषम प्रतिस्पर्द्धा का उन्मूलन करना तथा सयोग मे समाविष्ट (Merged) उद्योगो मे परस्पर सहायता एव सहकार्य की भावना का निर्माण करना।

(२) सदस्य उद्योगो मे उत्पादन, वितरण, क्रय तथा विक्रय पद्धतियो के केन्द्रीयकरण से उनके व्यय मे कमी करना तथा उनको पर्याप्त लाभ प्रदान करना।

(३) प्रत्येक सदस्य उद्योग के आर्थिक एव औद्योगिक साधनो के केन्द्रीयकरण से सम्पूर्ण उद्योग का आर्थिक कलेवर सुदृढ बनाना।

(४) प्रत्येक सदस्य उद्योग के प्रबन्ध एव नियन्त्रण के केन्द्रीयकरण से न्यूनतम व्यय मे कार्यक्षम एव समुचित प्रबन्ध तथा नियन्त्रण सुविधायें प्रदान करना।

(५) बडे पैमाने पर उत्पादन एव औद्योगिक विवेकीकरण के लाभ प्रदान करना।

(६) प्रत्येक सदस्य की विनियोगित पूँजी पर समुचित प्रत्याय (Return) देना।

संयोग के प्रकार एवं प्ररूप

सयोग तीन प्रकार के होते हैं —

(I) क्षैतिज अथवा समतल सयोग (Horizontal Combination)।
(II) उदग्र अथवा लम्ब रूप सयोग (Vertical Combination)।
(III) चक्रित सयोग (Circular Combination)।

(I) क्षैतिज अथवा समतल संयोग

परिभाषा एव हेतु—

इन्हे 'व्यापारिक सयोग' भी कहते हैं, क्योंकि ये विशेषत' व्यापारिक क्षेत्र मे ही पाये जाते हैं। क्षैतिज सयोग का निर्माण अधिकतर विभिन्न उत्पादको व निर्माण-कर्त्ताओ द्वारा बनाई हुई एक ही वस्तु को बाजार मे उचित मूल्य मे बेचने के हेतु किया जाता है। प्रत्येक औद्योगिक इकाई का उत्पादन कार्य व सगठन पूर्ववत् ही चलता रहता है। उनके बीच केवल एक ऐसा समझौता हो जाता है कि उनका प्रबन्ध-व्यय कम हो जाय और उत्पादित वस्तु सरलतापूर्वक बेची जा सके। इस सयोग का मुख्य उद्देश्य यह है कि अत्यधिक मात्रा मे वस्तुओ का उत्पादन करके अपव्यय को बचाया जाय। कभी-कभी ऐसे सयोग अन्य सयोगो के साथ भी इस प्रकार का समझौता कर लेते हैं, जिससे वे अपनी आर्थिक स्थिति और भी सुदृढ बना लेते है तथा बाजार पर अपना एकाधिकार जमा लेते है। विपणि पर एकाधिकार के कारण ये उत्पादन पर नियन्त्रण कर सकते हैं तथा वस्तुओ के मूल्य निर्धारण मे भी समर्थ हो जाते है।

विशेषता तथा लाभ—

क्षैतिज सयोग की सबसे बडी विशेषता यह है कि ये पारस्परिक-विरोधी-स्पर्द्धा को जड मे उखाड देते हैं। जो भी स्पर्द्धा शेष रह जाती है, उसे हम उचित व लाभप्रद (Healthy) कह सकते हैं और उनसे जनता को विशेषतया लाभ ही पहुँचता है। सयोग मे सम्मिलित विभिन्न इकाइयाँ आवश्यकतानुसार उत्पादन शक्ति

को घटा अथवा बढा सकती है। कारखाने मे काम के घण्टे घटाकर व वस्तुओ का मूल्य समान निश्चित करके तथा सबके माल के विक्रय के हेतु विक्रय सगठन (Mutual Sales Organisation) स्थापित कर बडी सरलता से आवश्यकता नुसार परिवर्तन व सशोधन करके बाजार मे उत्पादित वस्तु विशेष की माँग से अधिक नही होने देते। क्षैतिज सयोग की दूसरी विशेषता यह है कि ये उन तान्त्रिक विशेषज्ञो की सेवाओ का उपयोग कर सकते हैं, जिन्हे साधारणत. प्रत्येक इकाई पृथक रूप से नियुक्त नही कर सकती थी। तीसरे, प्रत्येक इकाई अनुसन्धान का भी प्रबन्ध कर सकती है।

अवगुण—

इतने गुणो के होते हुए भी इस प्रकार के सयोगो मे कुछ अवगुण भी हैं। सबसे बडा दोष, जो भारतवर्ष मे प्रधानत. देखने मे आता है, वह यह है कि उत्पादित वस्तुओ को निश्चित रूप से बेचने का उत्तरदायित्व कोई नही लेता। दूसरे, सामूहिक शक्ति के एकीकरण के कारण वे इतने प्रभावशील हो जाते है कि जनता से मनमाने दाम लेकर असहाय जनता का बलिष्ठ हाथो से खूब शोषण करते हैं, किन्तु ये दोष उसी दशा मे होते है जब वे उत्पादन एव उपभोग विपणि पर अपना एकाधिकार प्रस्थापित कर अन्य उत्पादकों को (जो संयोग के सदस्य नही होते) उद्योग क्षेत्र से उन्मूलन करने मे सफल हो जाते है।

उदाहरण—

क्षैतिज सयोग का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 'दी एसोसियेटेड सीमेंट कम्पनी लिमिटेड' है। वास्तव मे 'दी इण्डियन सीमेंट मैन्यूफैक्चर्स एसोसियेशन' तथा 'एसोसियेटेड सीमेन्ट मार्केटिंग ऑरगेनाईजेशन' का सम्मिलित रूप है। अन्य उद्योगो ने अभी क्षैतिज संयोग की ओर ध्यान नही दिया है, क्योकि युद्धकालीन परिस्थिति के कारण उत्पादन के विक्रय मे उन्हे असुविधायें अभी अनुभव नही हुई है। दूसरे, अभी भारत मे उद्योगो का उत्पादन भी इतना अधिक नही हुआ है कि जिसमे नवीन विपणियो की खोज की जा सके।

(II) उदग्र या लम्बरूप संयोग

परिभाषा –

इन्हे 'औद्योगिक सयोग' भी कहते है, क्योकि ये अधिकाशतः औद्योगिक जगत मे पाये जाते है। इस प्रकार के सयोग मे अनेक प्रकार के उद्योगो का समावेश होता है। इनमे विभिन्न उद्योगो का समावेश इस प्रकार होता है कि जिसमे उत्पादन के प्रारम्भ की सीढी से अन्तिम सीढी तक के सभी उद्योग आ जायँ। उदाहरण के लिये, अगर मोटर गाडियो के उत्पादन का काम है तो उसमे निम्न अवस्थायें हो सकती है—(अ) इजन का निर्माण, (ब) डिब्बे का निर्माण, (स) रबड के ट्यूब-टायर व पहियो का निर्माण, (द) काँच का सामान, (इ) गद्दियो का निर्माण इत्यादि। यदि मोटर-गाडियो के उत्पादन की इन विभिन्न अवस्थाओ का सामन्जस्य हो जाय तो ऐसे सयोग

को लम्ब रूप सयोग कहेंगे, अत: यह स्पष्ट है कि उत्पादन की प्रारम्भिक अवस्था से अन्तिम अवस्था तक पहुँचने के लिए जितने भी मध्यस्थ उद्योग होंगे, उन सब उद्योगो का यह एक सगठन होता है, इसलिए ऐसे सयाग को उदग्र सनि-ग्रयन (Vertical Integration) भी कहते है।

लम्बरूप संयोग के हेतु—

लम्बरूप सयोग निम्न उद्देश्यो से बनाए जाते है :—

(१) विभिन्न अवस्था वाले उद्योगो के एकसूत्रीकरण से उत्पादन की विभिन्न क्रियाओ मे होने वाले अपव्यय को कम करना।

(२) क्रय-विक्रय, यातायात एव विज्ञापन मे होने वाले व्यय को कम करना।

(३) सयोग मे आने वाले विभिन्न उद्योगो की क्रियाओ के सुव्यवस्थित एकसूत्रीकरण से प्रत्येक सदस्य उद्योग के लाभ बाँटना।

(४) उद्योगो के उत्पादन सम्बन्धी एकसूत्रीकरण स प्रत्यक कम्पनी क आन्तरिक व्यवस्था सम्बन्धी व्यय को कम करना।

लम्बरूप सयोग के लाभ—

(१) इस प्रकार के सयोग से प्रबन्ध व्यय मे मितव्ययिता होती है और सग्रह विक्रय, अर्निमित वस्तुओ के क्रय तथा यातायात इत्यादि विभिन्न क्षेत्रो मे बचत होती है।

(२) उपयोग मे आने वाली आर्थिक तेजी अथवा मन्दी का परिणाम सयोग से सम्बन्धित इकाइयों के उत्तरोत्तर विकास पर विशेष प्रभाव नही डाल सकता।

(३) प्रत्यक सदस्य उद्योग के लिए आवश्यक कच्चा माल भी उसे अपनी निचली अवस्था के उद्योग से मिलता रहेगा। केवल सबसे निचली अवस्था वाले उद्योग को ही कच्चा माल प्राप्त करना पडेगा।

(४) सयोग म आने वाले सभी कारखाने एक उद्योग की विभिन्न क्रिया करते हैं, जिससे क्रियाओ का विशेषीकरण हो कर उद्योग की कार्य क्षमता एव उत्पादनशीलता बढ जाती है।

(५) कच्चे माल की खरीद, निर्मित माल की बिक्री, विज्ञापन आदि उपर्युक्त मितव्ययिताओ की वजह से उद्योग का लाभ बढ जाता है।

लम्बरूप संयोग के दोष—

(१) क्षैतिज अथवा समतल सयोगो की भाँति इनम औद्योगिक अनुसन्धान के लिए कम अवसर होता है, जिससे औद्योगिक कार्यक्षमता बढाने का अवसर इस सयोग मे नही मिलता।

(२) सबसे बडा दोष यह है कि यदि इन विभिन्न अगो मे से एक भी अग यदि किसी प्रकार भी शिथिल पड जाय या विस्थापित (Dislocate)

हो जाये तो उस उदग्र सयोग की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था शिथिल तथा छिन्न-भिन्न हो जाती है। यह बात क्षैतिज सयोग मे नही होती।

(३) उदग्र सयोगो के बहु-परिमाण उत्पादन से होने वाले लाभ भी उपलब्ध नही होते, क्योकि इनमे सदस्य उद्योग का स्वरूप समान न होते हुए भिन्न होना है।

(४) ऐसे सयोग पूर्ण होते हुए भी अन्य उद्योगो से होने वाली प्रतिस्पर्द्धा को टाल नही सकते।

उदाहरणार्थ, पुस्तक प्रकाशन मण्डल के लिए मुद्रणालय, कागज के कारखाने, लुग्दी बनाने के कारखाने आदि का सयोग अथवा ऐसा शक्कर व्यवसाय जिसमे कच्चे माल की पूर्ति, गुड का शुद्धिकरण, रैक्टीफाइड स्प्रिट बनाने का कारखाना, आदि सभी का समावेश हो।

(III) चक्रित संयोग

परिभाषा—

चक्रित सयोग आत्म निर्भरता प्राप्त करने के उद्देश्य से तथा बडे-बडे उद्योगो को नियन्त्रण मे रखने की लालसा म निर्मित किए जाते है। इन्हे पूरक (Complimentary) सयोग भी कहते है और इनके निर्माण मे उपर्युक्त नियमो मे से कोई भी मान्य नही है। भारतवर्ष मे ऐसे सयोग अधिकता से पाये जाते है, क्योकि यहाँ के औद्योगिक विकास मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का विशेष हाथ रहा है एव उन्होने विभिन्न व्यवसायो को अपने नियन्त्रण मे कर लिया है। इस प्रकार अगर एक ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता की देख-रेख मे कुछ वस्त्रोद्योग, शक्कर-उद्योग, जूट-मिले इत्यादि कारखाने हो तो ऐसे सयोग को 'चक्रित सयोग' कहेगे।

विशेषता—

चक्रित सयोग मुख्यतया आकस्मिक होते है अथवा वे व्यापारिक जगत मे प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ की शक्ति प्राप्ति की लालसा के प्रतीक होते है। बडे-बडे पूँजीपतियों को विभिन्न उद्योगो पर नियन्त्रण रखने की लालसा होती है और इसी लालसा से प्रेरित होकर वे अपना हाथ विभिन्न उद्योगो मे फँसाते चले जाते है। भारतवर्ष मे चक्रित सयोग के निम्न उदाहरण है :—बिरला ब्रादर्स लिमिटेड, जे० के० ग्रुप मार्टिन एण्ड कम्पनी, बर्ड सदरलेड, एण्ड्रयू यूल एण्ड कम्पनी इत्यादि।

सयोगों के प्ररूप

(Forms of Combinations)

सयोगो का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। भिन्न-भिन्न देशो मे सयोगो का विकास विभिन्न परिस्थितियो मे हुआ है। मिश्र देश के जोसिफ नामक एक अन्न-नियन्त्रणकर्त्ता ने खाद्य सामग्री का एक ऐसा शक्तिशाली सयोग स्थापित किया था, जो बाद मे विश्व

के अनेक भागो मे प्रभावशाली सिद्ध हुआ। १८वी शताब्दी मे विक्रय नियन्त्रण के द्वारा विक्रय एव मूल्यो का परस्पर समझौते द्वारा निर्धारण किया जाता था। तत्पश्चात् उन्नत औद्योगिक राष्ट्रो मे देश, काल एव आर्थिक परिस्थिति के अनुसार तथा औद्योगिक आवश्यकतानुसार सयोगो की ओर प्रवृत्ति बढी और इन आवश्यकताओ के अनुसार ही विभिन्न देशो मे विभिन्न प्रकार के सयोगो का निर्माण हुआ। सयोगो को उनके आकार-प्रकार की दृष्टि से अनेक नाम दिये जाते है, जैसे—

(I) व्यापारिक पार्षद (Trade Associations),
(II) उत्पादक पार्षद (The Cartels),
(III) प्रन्यास (Trusts),
(IV) पूँजीपति-सघ (Rings),
(V) गोष्ठियाँ (Conventions),
(VI) कोण Corners),
(VII) सघ (Pool),
(VIII) सधारी प्रमण्डल (Holding Company),
(IX) सयोग (Combinations)।

अब हम सयोग के प्रमुख रूपो का विवेचन करेंगे :—

(1) व्यापारिक पार्षद
(Trade Associations)

निर्माण विधि—

इस प्रकार के पार्षद विशेषतः व्यापारिक क्षेत्र मे मिलते है। किसी विशेष क्षेत्र अथवा जाति के व्यवसायी मिलकर अपनी इच्छा से पारस्परिक हितो को ध्यान मे रखते हुए एक बहुत ही सरल तथा ढीली प्रकृति का सयोग बना लेते है। इस प्रकार के पार्षद का निर्माण करने के लिए किसी प्रकार की वैधानिक कार्यवाही नही करनी पडती। ये मुख्यतया व्यक्तिगत विश्वास तथा वचन-बद्धता (Gentlemen's Promises) पर निर्भर रहते हैं।

पार्षद को नियमित रूप से चालू रखने के लिए तथा सदस्यता के हेतु सदस्यो को प्रवेश के समय प्रवेश-शुल्क एव प्रति वर्ष वार्षिक शुल्क देना पडता है। यह शुल्क समान रूप से प्रत्येक सदस्य से लिया जाता है अथवा प्रत्येक सदस्य सार्थ अथवा उद्योग की पूँजी के अनुसार अथवा उनकी वार्षिक बिक्री के अनुपात मे निश्चित किया जाता है।

पार्षद का निर्माण जाति अथवा प्रदेश के आधार पर हो सकता है। जातिगत आधार का मुख्य उदाहरण है, 'मारवाडी चैम्बर ऑफ कॉमर्स' और प्रादेशिक आधार का उदाहरण है, 'बॉम्बे मिल ओनर्स एसोसियेशन'।

पार्षदों के उद्देश्य—

(अ) आवश्यकतानुसार उत्पादन पर नियन्त्रण रखना, अर्थात् असाधारण व युद्धकालीन परिस्थितियो मे उत्पादन को सीमित करना ।

(ब) मन्दी के समय मे, जब सदस्य सार्थो की उत्पादन शक्ति जनसाधारण की माँग से अधिक हो तो प्रत्येक सदस्य सार्थ को उत्पादन कम करने के लिए निश्चित योजना के अन्तर्गत विवश करना ।

(स) विज्ञापन व्यय मे मितव्ययिता लाने की दृष्टि मे सामूहिक-विज्ञापन आन्दोलन करना ।

(द) औद्योगिक प्रगति के लिए एव उत्पादन मे मितव्ययिता लाने के उद्देश्य से अनुसन्धानशालाओ का सामूहिक व्यय से आयोजन करना ।

(इ) स्वस्थ-प्रतिस्पर्द्धा को प्रोत्साहन देना ।

(फ) सूचना-विभाग स्थापित करना और उसके द्वारा सभी सदस्यो को लाभ पहुँचाना ।

(ज) विक्रय की शर्तें, व्यापारिक साख एव अपहार देने की शर्तें, श्रम प्रदाम अथवा माल के पैकिंग एव इस सम्बन्धी सदस्यो मे किसी प्रकार का र मझौता करना एव इस सम्बन्ध मे उन्हे विशेष सुविधाये प्रदान करना ।

इन पार्षदो के कार्य सचालन के लिए एक कार्यवाह (Secretary) होता है। सदस्य-सार्थो के प्रबन्धको मे से एक कार्यकारिणी (Executive) बनाई जाती है, जिसके सदस्य लगभग २, ३ अथवा ५ वर्ष के लिए साधारण सदस्यो मे से चुने जाते है। कायकारिणी का एक सभापति (President) भी होता है और यह तान्त्रिक सलाहकार तथा कार्यवाहक की सहायता से पार्षद का कार्य करता है ।

भारतवर्ष मे पार्षदो का अभाव नही है । अनेक पार्षद विभिन्न क्षेत्रो मे सफलता-पूर्वक कार्य कर रहे है, जैसे—'ईस्ट इण्डिया कॉटन एसोसिएशन', दी इण्डियन जूट मिल्स एसोसियेशन' इत्यादि । यहाँ दो केन्द्रीय चेम्बर भी है :—

(क) एसोसिएटेड चैम्बर ऑफ कामर्स, जो मुख्यतया विदेशी व्यापारियो द्वारा सचालित व नियन्त्रित है ।

(ख) दी फैडरेशन ऑफ इन्डियन चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज । ये दोनो केन्द्रीय चैम्बर भारतवर्ष के प्राय सभी छोटे-बडे चैम्बरो को अपनी सदस्यता मे ले चुके हैं । इनका प्रधान उद्देश्य भारतीय व्यापार वाणिज्य एव उद्योग को उचित सरक्षण प्रदान करना तथा देश के उद्योगो का विकास उचित मात्रा मे करने के लिए सहायता देना है ।

(II) उत्पादक संघ
(Cartels)

परिभाषा—

समान व्यवसाय मे लगे हुए विभिन्न स्वतन्त्र व्यवसायी जब अपनी इच्छा से तथा विपणि पर एकाधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से एक पारस्परिक अनुबन्ध मे बँध जाते है तो उत्पादक सघ अथवा कार्टेल' बन जाता है। डाक्टर इसे के अनुसार "उत्पादक सघ स्वतन्त्र व्यवसायियो का एक पार्षद है, जो उत्पादन, विपणि-क्रय, मूल्य-निर्धारण अथवा व्यापारिक शर्तों के सम्बन्ध मे उत्तरदायित्व का भार सदस्यों पर रखता है तथा स्वतन्त्र-प्रतिस्पर्द्धा के विरुद्ध विपणि को प्रभावित करता है।"[1] जब ये सघ साधारण विक्रय सगठन स्थापित करते है, तो इन्हे 'व्यापारी सघ' (Syndicates) कहते है। उत्पादक सघ बहुधा राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय होते है। जर्मनी उत्पादक-सङ्घो की जन्म-भूमि है। जर्मनी, आस्ट्रिया, बेल्जियम इत्यादि योरोपीय देशो म ही ये अधिकता स मिलते हैं। जर्मनी तथा आस्ट्रिया मे तो कच्चा लोहा, इस्पात तथा अन्य धातुओं की निर्मित वस्तुओ का सगठन करने वाले शक्तिशाली उत्पादक-सघ भी मिलते है। कार्टेल उत्पादको का एक शिथिल सयोग होता है। इसकी शिथिलता का सबसे बडा प्रमाण यह है कि यह बडी शीघ्रता से स्थापित हो जाता है और शीघ्रता से टूट भी जाता है। इनमे न तो किसी व्यवसाय के ऊपर सघ का नियन्त्रण ही रहता है और न प्रत्येक प्रमण्डल के लाभ की कोई मर्यादा ही निश्चित की जाती है, किन्तु केवल इतना प्रतिबन्ध रहता है कि कोई सदस्य सङ्घ द्वारा निश्चित मूल्यो से कम पर अपनी वस्तुएँ नही बेचेगा।

मुख्य लक्षण—

उत्पादक-सघ के तीन प्रमुख लक्षण है:—

(अ) एक ही व्यवसाय मे लगे हुए विभिन्न व्यवसायी कार्टेल बना सकते है।

(ब) उत्पादन एव विक्रय के सम्बन्ध म ये परस्पर स्वेच्छा से अनुबन्ध करते है।

(स) उनका सयोग बनाने का मुख्य लक्ष्य 'विपणि एकाधिकार' प्राप्त करना होता है।

---

1 "*An association of independent undertaking which enforces* obligations as to the treatment of output, market-purchase, price calculations of trade terms and, therefore, serves to influence the market against the working of free competition"—Dr Issay—Combines and Rationalization in Germany—D. Warriner

निर्माण क्यों हुआ ?—

कार्टेल प्राय. 'सकट के उत्पाद' (Children of Distress) कहलाते हैं, क्योकि जब उन्मुक्त रूप से प्रतिस्पर्द्धा चारा ओर फैलने लगती है, तब समस्त औद्योगिक व्यवसायो का विनाश होना प्रारम्भ हो जाता है। प्रतिस्पर्द्धा केवल मूल्यो तक ही सीमित नही रहती, किन्तु कभी-कभी वस्तुओ के गुण एव रूप पर भी प्रभाव डालती है। परिणामस्वरूप, अत्यधिक उत्पादन होने लगता है, यहाँ तक कि उन समस्त वस्तुओ का बाजार मे बिकना असम्भव हो जाता है। इस मनोवृत्ति पर नियन्त्रण करने के अभिप्राय मे उत्पादक-सघो का निर्माण किया गया है।

उत्पादक-सघो की अर्थ-पूर्ति—

उत्पादक-सघो के लिए आवश्यक पूँजी सदस्यो से ही प्राप्त की जा सकती है। प्रत्येक सदस्य प्रमण्डल को उसके उत्पादन के अनुसार कुछ निश्चित कोटा सघ की पूर्ति के लिए देना होता है। सदस्यो को कार्टेल द्वारा निर्धारित नियमो को स्वेच्छा से मानना पडता है, किन्तु वह उत्पादन एव विक्रय के अतिरिक्त अपने व्यवसाय की अन्त-र्व्यवस्था के सम्बन्ध मे पूर्णरूपेण स्वतन्त्र रहता है। उत्पादन कोटा निश्चित करने व समान मूल्य निर्धारित करने का पूर्ण अधिकार कार्टेल को होता है। सघ के नियमो का पूर्णत पालन हो रहा है अथवा नही, इस बात को देखने के लिए कार्टेल निरीक्षको (Inspectors) की नियुक्ति करता है।

कार्टेल के रूप—

उत्पादक सघो के प्रमुख प्ररूप इस प्रकार है:—

(१) **मूल्य निर्धारण कार्टेल**— इनका मुख्य लक्ष्य यह होता है कि कोई भी सदस्य-प्रमण्डल कार्टेल के द्वारा निर्धारित मूल्य मे कम मूल्य पर अपनी वस्तुये न बेचे। आवश्यकतानुसार समय-समय पर मूल्य म परिवर्तन भी किये जाते है, किन्तु सब आवश्यक आदेश कार्टेल द्वारा ही सदस्यो को दिये जाते है।

(२) **शर्त निर्धारण कार्टेल**—इस प्रकार के सघ साधारणत: विक्रय सम्बन्धी शर्तें निर्धारित करते है, जैसे—अपहार की दर, साख की मर्यादा एव अवधि, वस्तुओ के पैंकिग व बीमा कराने सम्बन्धी शर्तें इत्यादि।

(३) **प्रदेश निर्धारक कार्टेल**— इसके द्वारा प्रत्येक सदस्य प्रमण्डल के लिए निश्चित विपणि निर्धारित कर दिये जाते है और कोई भी सदस्य अन्य किसी सदस्य के निर्धारित किये हुए विपणि-क्षेत्र मे हस्तक्षेप नही कर सकता, इसलिये कभी-कभी इन्हे 'विपणि पूल' भी कहते है।

(४) **कोटा निर्धारक कार्टेल**— जब उत्पादन अधिक और माग कम होती है, तब वस्तुओ का उत्पादन सीमित करने के लिए उत्पादन-कोटा निर्धारित कर दिया जाता है। प्रत्येक सदस्य-प्रमण्डल की उत्पादन शक्ति के अनुपातानुसार उत्पादन कोटा

(५) **गुण निर्धारक कार्टेल**—इस प्रकार के सघ अपने सदस्यो को प्रत्येक वस्तु के उत्पादन का प्रमाप निश्चत कर देते है और उसी प्रमाप के अनुसार वस्तुओ के मूल्य निर्धारित किय जाते है।

(६) **अभिषद्**—कुछ जमन लखको के अनुसार कार्टेल और अभिषद (Syndicates) म अन्तर है। उनके अनुसार जब कि प्रथम प्रकार का सयोग मूल्य निर्धारण उत्पादन नियमन विपणि नियोजन करता है तो अभिषद केवल सदस्यो के विपणन के हेतु एक विक्रय सगठन का निर्माण करता है जिसस उनकी वस्तुओ का मितव्ययिता से विक्रय हो सके किन्तु अधिकाश लेखको के मतानुसार अभिषद कार्टेल का एक ही प्ररूप है। अभिषदो का निर्माण बहुधा निम्न उद्देश्यो की पूर्ति के लिए किया जाता है —

(अ) माग का प्रत्येक सदस्य को समुचत वितरण।

(ब) पूर्ति का प्रत्यक सदस्य को समान एव समुचित वितरण।

(स) वस्तु विशेष स प्राप्त लाभ से प्रत्येक सदस्य प्रमण्डल को समुचित लाभाश देना।

उत्पादक सघो के लाभ—

(१) **प्रतिस्पर्द्धा का उन्मूलन**—किसी भी प्रकार के बाहरी एव अनिवार्य नियन्त्रण की अपेक्षा स्वय निर्यमित तथा ऐच्छिक नियन्त्रण सदैव प्रभावशाली होता है। इस दृष्टि से कार्टल्स निर्माणकर्त्ताओ का विषम प्रतिस्पर्द्धा को उन्मूलन करने मे सफल हुए है। इनसे उत्पादनकर्त्ताओ म परस्पर सहयोग तथा मेल की भावना बढती है।

(२) **उपभोक्ताओ को लाभ**—उत्पादक सघ जन साधारण की मांगो का भी ध्यान रखते है क्योकि इनके द्वारा निश्चित किय हुए मूल्य प्राय सामाजिक व न्यायोचित होते है।

(३) **मध्यस्थो का विलोपन**—निर्माणकर्त्ताओ तथा उपभोक्ताओ के बीच जो मध्यस्थो की कडी होती है उसे कार्टल्स अलग करने का प्रयत्न करते है। यही नही ये निजी विक्रयशालाय खोलकर जनता की आवश्यकताओ को पूरा करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार जनता को वस्तुय सस्ते दामो पर उपलब्ध होने लगती है।

(४) **उत्पादन तन्त्र मे विकास**—समान उत्पादको का सयोग होने स उत्पादनतन्त्र (Technique of Production) मे भी सुधार होता है। उत्पादक वस्तुओ के प्रमापीकरण की ओर ध्यान देते हे अत नए नए अन्वेषणो को प्रोत्साहन मिलता है।

उत्पादक-सघ से हानियाँ—

(१) **शोषण**—उत्पादक-सघ पूँजीपतियो का समूह होता है अत यह पूँजीवादी नीति अपनाता है तथा जनता के शोषण से अपना पेट भरना चाहता है। जिन

क्षेत्रो मे उन्हे एकाधिकार मिल जाता है, वहाँ वे उपभोक्ताम्रो से मनमाने दाम वसूल करते है।

(२) उत्पादक-सघो को विदेशी राष्ट्रो की प्रतिस्पर्द्धा से भय बना रहता है, परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय उत्पादक सघो का निर्माण होता है, जो राजनैतिक दृष्टि से अवाछनीय होते है, क्योकि उनके निर्माण से यह सम्भव होता है कि आर्थिक अशक्त राष्ट्र के उत्पादन पर आर्थिक सुदृढ राष्ट्र नियन्त्रण करे।

कार्टेल्स की वर्तमान नीति —

उत्पादक-सघो ने राष्ट्रीय क्षेत्रो मे प्रतिस्पर्द्धा का उन्मूलन किया है, जिसमे उन्हे जो ख्याति मिली उसने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्टेल्स का निर्माण करने को प्रोत्साहन दिया। आजकल अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्टेल्स के निर्माण की प्रवृत्ति का बोलबाला है। अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल्स की सख्या, जो प्रथम विश्व-युद्ध के पूर्व ११४ थी, वह द्वितीय युद्ध पूर्वकाल तक १७५ हो गई है। ये सघ आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन एव विक्रय पर नियन्त्रण कर रहे है तथा अधिकाधिक नियन्त्रण एव लाभ प्राप्त करने की लालसा सन् १९४५ के बाद से अधिक प्रभावी रूप स कार्य कर रही है।

गत कुछ वर्षो से उत्पादक सघो की आर्थिक एव व्यापारिक नीति मे बहुत सुधार हुआ है। अब ये केवल निजी लाभ की ओर ही ध्यान न देकर जनता के सार्वजनिक हितो का भी ध्यान रखते हैं। वस्तुओ की किस्म मे उन्नति तथा उचित मूल्य के निर्धारण मे उन्होने अच्छी ख्याति पाई है। बहुत सा माल जो पहले व्यर्थ चला जाता था अब नष्ट नही होने दिया जाता है। मध्यस्थो की कडी भी छोटी होती जा रही है। उत्पादन पद्धति मे भी अनेक सुधार हुए है तथा अन्वेषण हो रहे हैं।

उत्पादक सघो की कठिनाइयाँ—

कार्टेल्स को निम्नलिखित कारणो से आपत्तियो का सामना करना पडा है :—

(१) **सदस्यो का विश्वासघात**—उत्पादक-सघो का अस्तित्व केवल सदस्यो के परस्पर विश्वास पर निर्भर रहता है, अत' यदि कोई सदस्य सघ से विश्वासघात करता है तो सघ उसके विरुद्ध कोई वैधानिक कार्यवाही नही कर सकता और जब ऐसे विश्वासघाती सदस्यो की सख्या बढती है तो सघ का ही अस्तित्व डावाडोल होने लगता है। व्यवहार मे ऐसे अनेक सदस्य होते है जो सघ के नियमो का अक्षरश. पालन नही करते। परिणामस्वरूप सघो का विनाश हो जाता है।

(२) **अस्तित्व की अवधि के कारण**—ऐसे सघो का निर्माण बहुधा विशेष परिस्थिति मे तथा निश्चित अवधि के लिए होता है, जिसके व्यतीत होने पर सघ का अस्तित्व रहेगा अथवा नही, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता।

(३) **बाहरी लोगो के कारण**—उत्पादक सघो को चिरस्थायी बनाने के लिए तथा प्रतिस्पर्द्धा का उन्मूलन एव मूल्यो का उचित स्तर स्थापित करने के लिए यह आवश्यक होता है कि उसमे एक वस्तु के अधिक से अधिक निर्माता सदस्यता प्राप्त करें,

परन्तु यदि ऐसा न हो तो सघ कमजोर हो जाता है तथा उसका अस्तित्व भी खतरे मे पड जाता है ।

(४) **नवीन विकास के कारण**—उत्पादक-सघो मे बहुधा इतनी शक्ति नही होती कि वे नए उद्योगो के विकास को रोक सकें। जब नए-नए उद्योग स्थापित हो जाते है तो वे इन सघो को ही समाप्त कर डालते है ।

(५) **असन्तुष्ट सदस्यों के कारण**—उत्पादक सघो के अधिकाश कार्य सदस्य प्रमण्डलो की व्यक्तिगत रुचि पर अंकुश रखते है, अत प्रत्येक सदस्य अपने वैयक्तिक के विकास मे इन्हे बाधक समझता है । जब कोई औद्योगिक व्यवसाय अपनी सुव्यवस्था करके उत्पादन को बढाना चाहता है तो ये सघ अपने नियमो के कारण उन्हे उन्नति नही करने देते, जिसके कारण वे प्राय इनसे असन्तुष्ट रहते हैं ।

उपर्युक्त पाँच कारणो मे ही उत्पादन सघो का अस्तित्व विशेषत चिरकालीन नहीं रहता ।

(III) प्रन्यास
(Trusts)

उत्पत्ति—

व्यापारिक सयोग का यह रूप सर्व प्रथम सन् १८७९ मे स्टैण्डर्ड ऑयल कम्पनी द्वारा स्टैण्डर्ड ऑयल ट्रस्ट के रूप मे सम्मुख आया । सयुक्त राज्य अमेरिका ट्रस्ट्स को जन्मभूमि है । १९वी शताब्दी के अन्त मे जब अमेरिका की अनेक रियासतो मे सयोग आन्दोलन के विरुद्ध कदम उठाये जा रहे थे, उस समय वहा की 'मैसाचैस्ट्स' (Massachusetts) नाम्नी रियासत मे ट्रस्ट नामक सयोग की नीव पडी और इसी के आधार पर उन प्रन्यासो को 'मैसाचैस्ट्स' प्रन्यास कहते है ।

परिभाषा—

'ट्रस्ट' शब्द का मूल अर्थ है 'विश्वास' (Confidence), अतएव जब कभी कोई सम्पत्ति किसी अन्य व्यक्ति के हाथो यह विश्वास करके सौप दी जाती है कि वह उसका किसी अन्य निर्दिष्ट व्यक्ति के लिए अथवा किसी ऐसे उद्देश्य विशेष के लिए जो धर्मार्थ हो, प्रयोग करेगा तो इस प्रकार सरक्षण मे रखी हुई सम्पत्ति को ट्रस्ट अथवा प्रन्यास मे रखी कहेगे । इस प्रकार के धार्मिक, शिक्षा सम्बन्धी तथा धर्मार्थ (Charitable) प्रन्यास भारतवर्ष मे भी अनेक है । आजकल 'प्रन्यास' का प्रयोग 'सयोग के अर्थ मे भी किया जाता है, जिसका अभिप्राय पू जी का सगठन तथा वस्तुओ की पूर्ति एव उनके मूल्य पर शक्तिशाली नियत्रण करना होता है । इन्हे 'सयोग प्रन्यास' भी कहते है और वे किसी निश्चित हेतु की पूर्ति के लिए बनाए जाते है । श्री रॉबर्टसन[1] के अनुसार इस प्रकार के सयोग-प्रन्यास मे—"विभिन्न कम्पनियो के स्कन्धधारी अपने

1 The Control of Industry—Robertson.

स्कन्ध प्रन्यासियो (Irustees) को हस्तान्तरित करते है, जिसके बदले मे उन्हे प्रन्यास-प्रमाण-पत्र (Trust Certificate) दिया जाता है, जिस पर मूल अश-धारियो को लाभाश प्राप्त करने का अधिकार होता है तथा प्रन्यासियो को उन कम्पनियो के प्रबन्ध का अधिकार मिलता है।" ये प्रन्यास प्रमण्डलो की सम्पूर्ण व्यापारिक एव औद्योगिक नीति का नियोजन करते हैं। जो व्यक्ति प्रन्यास नियन्त्रण के लिए विश्वास-पात्र समझे जात है एव जिन्हे उत्तरदायित्व सौपा जाता है, उस व्यक्ति समूह को प्रन्यास सभा (Board of Trustees) कहते है।

प्रन्यासों के रूप—

प्रन्यासो के ट्रस्टीज को जो विभिन्न प्रकार के अधिकार दिये जाते है, उनके अनुसार ही प्रन्यासो के विभिन्न प्ररूप होते है, जिनमे मे मुख्य इस प्रकार हैं—

(१) मैसाचैस्ट्स प्रन्यास इसका जन्म अमेरिका की नाम्नी रियासत मे हुआ था। यह अपूर्ण सघनन का एक नया प्ररूप था। इसमे प्रत्येक प्रमण्डल का पृथक अस्तित्व रहते हुए अशधारियो के सम्पूर्ण अशो का हस्तातरण कुछ चुने हुए प्रन्यासो को दे दिया जाता था, जो विभिन्न प्रन्यास-प्रमण्डलो की व्यवस्था का नियन्त्रण करते थे।

(२) स्थायी या इकाई प्रन्यास—इनका उदय सर्वप्रथम सन् १९३१-३२ मे अमेरिका मे हुआ। उस समय मन्दी की परिस्थिति मे विवश होकर लगभग ९० करोड डालरो की पूँजी के स्थायी-प्रन्यास स्थापित किये गये। इनमे प्रन्यास की पूँजी केवल कुछ निर्धारित विशेष उद्योगो मे ही विनियोजित की जाती है। इनकी अवधि निश्चित रहती है और अवधि के उपरान्त इनको बेच दिया जाता है। इस प्रकार स्थायी प्रन्यास स्वय स्थायी नही होते। उनको स्थायी केवल इस अर्थ मे कहते है कि जो कुछ रुपया विनियोजित किया जाता है, वह कुछ निश्चित प्रमण्डलो का ही किया जाता है और जब तक वह प्रन्यास अपना कारोबार करता रहता है, उस समय तक विनियोजन मे कोई रूपान्तर नही किया जाता।

(३) मताधिकारी प्रन्यास—इस प्रकार के प्रन्यासो मे किसी भी प्रमन्डल के बहुसख्यक अशधारी अपने अशो का हस्तातरण प्रन्यासियो को करते है और यह हस्तातरण केवल मतदान तक ही सीमित रहता है। अशो का मताधिकार हस्तातरण केवल कुछ निश्चित अवधि के लिए ही किया जाता है और अवधि समाप्त होने पर अश पुन: मूल अशधारियो को प्राप्त हो जाते हैं।

(४) विनियोग प्रन्यास—ऐसे प्रन्यास प्रमण्डल अधिनियम के अन्तर्गत बनाए जाते है तथा अपने अशो एव ऋण-पत्रो के निर्गमन से प्राप्त पूँजी को विभिन्न उद्योगो के अश आदि खरीदने मे विनियोग करते है। इस प्रकार विभिन्न उद्योगो के अश तथा ऋण-पत्रो का क्रय-विक्रय करते रहते है और इससे जो व्याज तथा लाभाश मिलता रहता है, उसमे मे अपने अशधारियो को लाभाश तथा ऋण-पत्र-

धारियो को ब्याज देते है । इन्हे प्रबन्ध-न्यास (Management Trust) भी कहते है।

(IV) संघ
(Pool)

परिभाषा—

श्री हैने के अनुसार—'पूल' "व्यापारिक संगठन का वह प्ररूप है, जो विभिन्न व्यापारिक इकाइयो के संघन से बनाया जाता है । इसके सदस्य 'मूल्य' के ऊपर कुछ सीमा तक नियन्त्रण करने का प्रयत्न करते है तथा निर्धारित मूल्य मे पारस्परिक संगठन के लिए कुछ अंश सम्मिलित करके उस समूह का अभिभाजन इकाइयो मे करते है।"[1] यह संयोगो का सबसे विकसित प्ररूप है। संघ और उत्पादक संघ मे मुख्य अन्तर यह है कि संघ मे उत्पादक संघ की भाँति विक्रय संगठन का निर्माण नही किया जाता ।

संघ-निर्माणकर्त्ता का प्रधान लक्ष्य विपणि पर एकाधिकार स्थापित करना नही होता । य तो केवल वस्तु के निर्धारण मे कुछ सीमा तक नियन्त्रण रखने का प्रयास करते है । मूल्य नियन्त्रण की दो मुख्य रीतियाँ है .—(१) माग बढा कर अथवा (२) पूर्ति घटा कर ।

संघो का स्वरूप स्थायी भी हो सकता है और अल्पकालीन भी । अल्पकालीन संघो का निर्माण विशेषत. परिकाल्पनिक व्यवहारो के लिये किया जाता है और उनसे होने वाले हानि-लाभ का वितरण सदस्यो मे समानता अथवा समझौते के अनुसार किया जाता है । इसी आधार पर औद्योगिक जगत मे औद्योगिक संघ बनाए जाते है, जिनका उद्देश्य उत्पादक संघो की भाँति विपणि पर एकाधिकार स्थापित करना नही, वरन् मूल्य-नियन्त्रण होता है । निश्चित मूल्य पर प्रत्येक सदस्य अपनी निर्मित वस्तुएँ बेच सकता है । कभी-कभी प्रत्येक सदस्य का विपणन-क्षेत्र भी निश्चित कर दिया जाता है, फिर उस क्षेत्र मे अन्य सदस्य अपने माल को नही बेच सकते । प्रत्येक औद्योगिक इकाई, जो एक संघ की सदस्य है, कुछ विषयो को छोडकर, शेष सब विषयो मे पूर्ण स्वतन्त्र होती है । जिन विषयो पर प्रत्येक सदस्य को संघ के नियमो का अक्षरशः पालन करना पडता है, वे ये है :—

1 'Pool' ' has been defined by Sri Haney as "A form of business organisation established through federation of business units whose members seek a degree of control over prices by combining some factors in the price making process in a common aggregate and apportioning the aggregate among the units "—Business Organisation and Combination by Haney

(अ) मूल्य-निर्धारण ।
(ब) विक्रय सम्बन्धी नियम ।
(स) विज्ञापन विधियाँ ।
(द) अपहार ।
(इ) माल की सुपुर्दगी इत्यादि ।

सूल के प्ररूप—

समझौते की शर्तों के अनुसार सघ के विभिन्न प्ररूप होते है, जो विशेषतः निम्न है :—

(१) **मूल्य सघ**—इस प्रकार के सघ समान मूल्य निर्धारण पर विशेष जोर देते है और बिक्री व्यवस्था, विज्ञापन, अपहार, साख की अवधि आदि सम्बन्धी आयोजन मे भी एकता लाने का प्रयत्न करते है। कभी-कभी विभिन्न विपणि-क्षेत्रो के अनुसार एक ही वस्तु के विभिन्न मूल्य निश्चित किये जाते है।

(२) **प्रादेशिक सघ**—इस प्रकार के सघ भिन्न-भिन्न उत्पादको के लिए भिन्न-भिन्न प्रदेश निश्चित कर देते हैं और फिर अन्य उत्पादक दूसरे के क्षेत्र मे हस्तक्षेप नही कर सकते। वे अपने-अपने क्षेत्र मे उचित मूल्य पर सङ्घ द्वारा निर्धारित मूल्य पर वस्तु विक्रय करते रहते है ।

(.) **उत्पादन सघ**—इनका मुख्य लक्ष्य उत्पादन को सीमित करना होता है। अत्यधिक उत्पादन की दशा मे ऐसा किया जाता है। ये सघ प्रत्येक इकाई के लिए उत्पादन कोटा निश्चित कर देते है तथा उस माल के विक्रय हेतु मूल्य भी निश्चित कर देते है। समय-समय पर सघ जनता की माँग का अनुमान लगाता है और उसी माँग के आधार पर प्रत्येक सदस्य प्रमण्डल की उत्पादन-शक्ति तथा उसकी कार्यशील पूँजी को ध्यान मे रखते हुए उन सबके लिए उचित कोटा निश्चित करता है ।

(४) **आय अथवा लाभ संघ**—आय सघ मे सम्पूर्ण सदस्य-प्रमण्डलो की उत्पादित वस्तुओ के विक्रय से प्राप्त हुई पूर्ण धन-राशि एक ही विक्रय सगठन के लेखे मे जमा कर ली जाती है अर्थात् उन सब सदस्यो का विक्रय केवल एक ही विक्रय संस्था द्वारा किया जाता है। प्रत्येक सदस्य अपने निश्चित कोटे के अनुसार उत्पादित माल विक्रय सगठन को बेचने के लिए देता है। माल के विक्रय के पश्चात् जो आय बचती है उसमे से विक्रय-व्यय तथा सघ के अन्य आवश्यक व्यय निकाल कर घटाकर जो लाभ शेष रहे, उसको निश्चित अनुपात मे बाँट दिया जाता है।

(५) **पेटेन्ट संघ**—इस प्रकार के सघ विभिन्न सस्थाओ मे उनके पेटेन्ट अधिकार प्राप्त करके धीरे-धीरे अधिक से अधिक क्षेत्र अपने नियन्त्रण मे लेने का प्रयत्न करते हैं। अमेरिका मे जी० ई० सी० (General Electric Co) ने एक नई सस्था 'रेडियो कॉरपोरेशन ऑफ अमेरिका' खोल कर लगभग ४,००० पेटेन्ट अधिकार अनेक कम्पनियो से प्राप्त किये है।

(६) निर्यात सघ इस प्रकार के सघ केवल विदेशी बाजार म विदेशियो के साथ सफल प्रतिस्पर्द्धा करने की दृष्टि से एव देश का निर्यात व्यापार बढाने के लिए निर्माण किय जाते है।

(७) कृषि सघ इस प्रकार के सघो का मुख्य लक्ष्य उपभोक्ताओ का माग के अनुसार अथवा उनकी आवश्यकतानुसार कृषि उत्पादन का विक्रय करना होता है। कृषि की प्रगति की दृष्टि म इस प्रकार के सघ अत्यन्त महत्वपूर्ण है भारतवर्ष म भी इनको अपनाया जा सकता है।

(V) सधारी अथवा सूत्रधारी प्रमण्डल
Holding Company)

सधारी प्रमण्डल की परिभाषा हम पीछे दे चुके है। इनके निम्न विभिन्न प्ररूप होते हैं

(१) प्रमुख सधारी प्रमण्डल (Primary Holding Company) वह प्रमण्डल सब सहायक प्रमण्डलो मे प्रमुख होता है और किसी भी अन्य प्रमण्डल के नियन्त्रण मे नही होता।

(२) मध्यस्थ सधारी प्रमण्डल (Intermediate or Subholding Company) इसका प्रबन्ध एक अन्य बड प्रमुख सधारी प्रमण्डल द्वारा होता है इसलिए यह प्रमुख सधारी प्रमण्डल क सम्मुख सह प्रमण्डल अथवा केवल मध्यस्थ प्रमण्डल कहलाने का अधिकारी है।

(३) सम्पत्तिशाली सधारी प्रमण्डल (Offspring Holding Company)—इसका निर्माण उस समय स होता है जब अन्य सहायक प्रमण्डल बन जाते है।

(४) ऋण सधारी प्रमण्डल (Finance Holding Company)—यह सहायक प्रमण्डलो के लिए धन उपलब्ध करता रहता है और इस दृष्टि से यह एक विनियोग प्रयास है। ऋण सधारी प्रमण्डल का लाभ मुख्यत ब्याज और सहायक प्रमण्डलो के लाभो मे स प्राप्त लाभाश पर अवलम्बित होता है।

(५) जनक सधारी प्रमण्डल (Parent Holding Company) यह वह प्रमण्डल है जिसका निर्माण पहले होता है और बाद म वह क्रमश अपने सहायक प्रमण्डलो का निर्माण करता है।

(६) स्वामित्व सधारी प्रमण्डल (Proprietory Holding Company)—यह प्रमण्डल अपने सहायक प्रमण्डलो की सम्पूर्ण पूजी को अपने अधिकार मे रखता है।

(७) सचालक सधारी प्रमण्डल (Operative Holding Company)—इसके सचालक अपने सहायक प्रमण्डलो मे विशेष रुचि रखते है एव उनकी व्यवस्था का सचालन करते है तथा उत्पादन आदि पर नियन्त्रण रखते है।

(८) शुद्ध संघारी प्रमण्डल (Pure Holding Company)—इस प्रकार के संघारी प्रमण्डल विभिन्न सहायक प्रमण्डलो के स्कन्ध का कुछ न कुछ भाग क्रय कर लेता है, किन्तु उनके प्रबन्धक उन प्रत्येक सहायक प्रमण्डलो के आन्तरिक प्रबन्ध मे कोई विशेष भाग नही लेते ।

बारकपुर कोल कम्पनी लिमिटेड तथा एसोसियेटेड सीमेण्ट कम्पनी लिमिटेड सघारी प्रमण्डलो के उदाहरण है।

सघारी प्रमण्डलो के लाभ—

(१) सर्व प्रथम लाभ तो यह है कि इनका निर्माण प्रमण्डल अधिनियम के अन्तर्गत होता है, अतः इनका अस्तित्व स्थायी एव वैधानिक हो जाता है। अन्य सयोगो मे यह बात नही है, क्योकि उनका निर्माण मौखिक अथवा अनुबन्धात्मक होता है।

(२) अनेक प्रमण्डलो के सम्मेलन से सघारी प्रमण्डल के आन्तरिक व्ययो मे बहुत कमी हो जाती है। निरर्थक व्यय नही करने पडते। विज्ञापन आदि मे भी मितव्ययिता हो जाती है।

(३) सघारी प्रमण्डलो के निर्माण से प्रत्येक सहायक प्रमण्डल का वैधानिक अस्तित्व पृथक रहता है, जिसमे आय-कर सम्बन्धी मिलने वाले लाभ मिलते रहते है।

(४) सघारी प्रमण्डलो को साधारण प्रमण्डलो की अपेक्षा पूँजी एकत्र करने मे काफी सरलता होती है।

(५) सघारी प्रमण्डल का निर्माण अत्यन्त सरल होता है। इसके लिये सदस्य प्रमण्डलो की अनुमति लेने की आवश्यकता नही पडती, क्योकि प्राय सभी कम्पनियो के अश खुले बाजार मे बिकते है, जो सरलता से खरीदे जा सकते हैं।

(६) प्रबन्ध विषयक व्यय म भी काफी मितव्ययिता हो जाती है। केन्द्रीय नियन्त्रण अनेक स्थलो पर व्यय मे बचत करा देता है।

(७) प्रत्यक सदस्य-प्रमण्डल को सुयोग्य विशेषज्ञ मिल जाते हैं, अतः उनकी कार्य-कुशलता मे वृद्धि होती है।

(८) प्रन्यास अथवा कार्टेल्स की अपेक्षा सघारी प्रमण्डलो का महत्त्व इसलिये भी है, क्योकि ये अपने सहायक नियन्त्रित प्रमण्डलो को अनेक कार्यों के लिए अभिकर्त्ता नियुक्त कर देते है। इस प्रकार बहुत से विक्रेताओ के चगुल से बच जाते है तथा उन सबकी नीति पर एक ही केन्द्रीय नियन्त्रण रहने से लगभग सबकी बाह्य दृष्टि समान रहती है।

सघारी प्रमण्डलो की हानियाँ—

(१) सघारी प्रमण्डलो के विरुद्ध पहला आक्षेप यह है कि वर्तमान औद्योगिक विकास साहसी व्यक्तियो के नियन्त्रण मे न रहते हुए केवल कतिपय

पूँजीपतियो के समूह के नियन्त्रण मे चला जाता है । इनसे नियन्त्रण का केन्द्रीयकरण हो जाता है जो अनेक दृष्टि से हानिकारक भी है तथी राष्ट्रीय हित के सर्वथा विरुद्ध है ।

(२) सघारी प्रमण्डलो के सचालकगण अधिकतर निजी लाभ की दृष्टि से पूँजीवाद के सिद्धान्तो एव तर्क के अनुसार कार्य करते है, जिससे देश मे दो या विभिन्न वर्गों का निर्माण होकर समाज क्रान्ति की ओर अग्रसर हो जाता है ।

(३) सघारी प्रमण्डल अपने सहायक प्रमण्डलो के बीच इस चालाकी से छल-साधन (Manipulation) करते है कि जिससे विनियोगा को बडी हानि उठानी पडती है ।

(४) सहायक प्रमण्डलो से होने वाले लाभ का अधिकाश भाग (Lion's share of profit) अशधारियो की अपेक्षा प्रवन्धको की जेब मे जाता है, क्योकि वे तरलित स्कन्धो (Watered stocks) की बिक्री से अधिक लाभ कमाते है ।

बम्बई शेयर होल्डर्स एसोसियेशन के अनुसन्धान के अनुसार शुद्ध लाभ का वितरण इस प्रकार से होता है—

प्रमण्डल सख्या	उद्योग	प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का लाभाश	अशधारियो का लाभाश
३६	सूती वस्त्र उद्योग, बम्बई	३८ ८%	४६·२७%
२०	,, ,, , अहमदावाद	७०·५%	३१ ००%
१६	जूट उद्योग	३६·९०%	७६ ००%
१४	कलकत्ता	५४ २%	७३ २०%

(५) सघारी प्रमण्डलो के पूँजी-आधिक्य मे भी विनियोगको का शोषण होने की सम्भावना रहती है ।

(६) संघारी प्रमण्डल प्राय असामाजिक प्रवृत्ति वाले होते हैं, क्योकि एक ही सघारी कम्पनी के नियन्त्रण मे अनेक सहायक कम्पनियाँ रहती है जो अपने सुदृढ आर्थिक साधनो से उस क्षत्र मे स्वतन्त्र प्रतिस्पर्द्धा करने वाले व्यक्ति या व्यवसाय को कुचल डालती हैं तथा अपनी वस्तुओ को मनमाने मूल्य पर बेचती है ।

(VI) समावेशन, सम्मिश्रण एव सविलीयन
(Merger, Amalgamation & Absorption)

समावेशन, सम्मिश्रण एव सविलीयन के लिये एक शब्द है 'पूर्ण सधनन'

(Complete consolidation), जिसका वर्णन हम पीछे कर चुके है। संघनन के निम्न लाभ है :—

संघनन के लाभ—

(१) सघनित प्रमण्डलो मे पारस्परिक वैमनस्य की भावना नही रहती, अपितु उनमे समानता तथा एकरूपता आ जाती है, जिससे नियन्त्रण सुदृढ हो जाता है।

(२) प्रबन्ध एव व्यवस्था का केन्द्रीयकरण हो जाता है, जिससे प्रबन्ध व्यय मे मितव्ययिता आ जाती है, प्रमण्डल के लाभो मे वृद्धि होती है।

(३) सघनित प्रमण्डलो को बडी मात्रा में उत्पादन के लाभ मिलते है एव क्रय-विक्रय आदि सगठन के केन्द्रीयकरण होने से मितव्ययिता होती है।

(४) अनुसन्धान तथा अन्वेषण के लिए क्षेत्र विस्तृत हो जाता है, जिससे उत्पादन मे वृद्धि होती है।

(५) तान्त्रिक विशेषज्ञो की सेवायें सुविधा तथा सरलता से प्राप्त की जा सकती है।

संघनन की हानियाँ—

(१) प्रमण्डलो का अस्तित्व न रहने के कारण उनकी पृथक ख्याति, स्थान, विपणि क्षेत्र आदि का लाभ सघनन से प्राप्त नही होता है।

(२) इनको निर्माण करने के लिये वैधानिक कार्यवाही की आवश्यकता पडती है, जिससे इनका सगठन गोपनीय रह सकता है।

(३) सघनन बडा होने की दशा मे नियन्त्रण एव प्रबन्ध अक्षम होने की सम्भावना रहती है और उत्पादन व्यय मे भी मितव्ययिता नही रहती।

STANDARD QUESTIONS

1. (a) Discuss the nature objects and economies of vertical and horizontal combinations in industry
   (b) How do you account for the slow appearance of combinations in Indian Industry ?
2. "Combination by giving rise to monopoly harm the interests of consumers". "Combinations by reducing costs offer goods and services at lower prices to consumers" Reconcile these views.
3. What are the chief causes that lead to combination in industry and trade ? Illustrate your answer from Indian conditions

4. Give the main classification of business combinations. Illustrate your answer from Indian conditions
5. Discriminate clearly between Trusts and Cartels and explain the conditions which favoured the growth of trusts in the U S A and cartels in Germany
6. Define clearly 'Vertical' and 'Horizontal' combination, with reference to their existence in two principal Indian industries Distinguish between a 'Cartel' and a 'Trust' bringing out their main features
7. What is a Trust ? How many kinds of trusts are there ? How does trust differ from a holding company ?
8. What do you understand by a 'Cartel' ? Explain its functions and objects How does it differs from a trust ?

अध्याय २६

भारतीय उद्योगों में संयोग आन्दोलन

(Combinations in Indian Industry)

भारत में आन्दोलन धीमा क्यों ?—

पाश्चात्य देशों की अपेक्षा भारतवर्ष मे सयोग आन्दोलन अत्यन्त मन्द गति से बढा है। इसकी धीमी प्रगति के निम्न कारण है —

(१) **भारतीय उद्योगपतियों की वैयक्तिक भावना**—भारतीय व्यापारी प्रारम्भ से ही वैयक्तिक भावना को अपनाते चले आ रहे है, अत सयोग की दिशा मे अभी तक उन्होंने जो भी प्रयत्न किये है उनमे सफलता नही मिली। भारतीय उद्योगपति अधिकतर निजी लाभ की दृष्टि मे कार्य करते है। उनके हृदय मे सामाजिक तथा सामूहिक हित के लिए कोई स्थान नही है। लाभ होने की दशा मे वे समस्त लाभ का उपयोग स्वय करना चाहते हैं। ऐसी भावना सयोग के सर्वथा विरुद्ध है। हाँ, गत कुछ दिनो से वे सहकारिता का पाठ अवश्य पढने लगे है और औद्योगिक क्षेत्र मे कुछ महत्त्वपूर्ण सयोगों की स्थापना भी हुई है।

(२) **प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति**--भारतवर्ष मे मुख्यत प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ की उपस्थिति ने सयोग आन्दोलन को जड नही पकडने दिया। उनकी आर्थिक तथा व्यापारिक स्थिति के सुदृढ होने के कारण, वे जिन व्यापारो को प्रारम्भ करते है उनके सयोग करने मे वे आत्म-सम्मान का हनन समझते हैं। पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा तथा वैमनस्य के कारण भी वे दूसरो के साथ सम्मिलित होना हेय समझते है। प्रबन्ध-अभिकर्त्ता पद्धति द्वारा भी सामूहिक प्रबन्ध होने के कारण सयोग के समान मितव्ययिता उद्योगपतियो को प्राप्त हो जाती है, अत वे सयोग की आवश्यकता नही समझते।

(३) **औद्योगिक दृष्टि से पिछडा होना**--औद्योगिक विकास की दृष्टि से अन्य उन्नतिशील देशो की अपेक्षा भारत अभी बहुत पिछडा हुआ है। प्रथम विश्व युद्ध ने हमारे यहाँ की ब्रिटिश सरकार को भारत के औद्योगिक विकास के लिए प्रेरित किया और द्वितीय महासमर मे हमारे उद्योगो का विशेष प्रोत्साहन मिला, किन्तु अभी तक देश की प्राकृतिक सम्पदा को दृष्टि मे रखते हुए कतिपय उद्योगो को छोड कर समस्त उद्योग अभी परिवर्तन की स्थिति मे ही हैं। कुछ अपवादो को छोड कर भारत मे उद्योगो को अभी वह अवस्था प्राप्त नही हुई, जिससे कि उनको सयोग मे सम्मिलित किया जाय तथा प्रभावशाली नियन्त्रण मे रखा जाय।

(४) **कुछ उद्योगो का वृहत् आकार**—भारत मे कुछ उद्योग, जैसे—लौह एव स्पात उद्योग, कुछ राजकीय उद्योग आदि पहले से ही इतने बड आकार पर प्रारम्भ किये गये हैं कि अब नवीन सस्थाओ को उनमे मिलाना अत्यन्त कठिन है। दूसरे, उन से प्रतिद्वन्द्विता करने वाली सस्थाये भी भारत मे नही है।

(५) **विदेशी प्रतिस्पर्द्धा**—विदेशी प्रतिस्पर्द्धा ने भी सयोग आन्दोलन की गति को रोका है। सन् १९२१ के पूर्व भारत सरकार की प्रशुल्क नीति भी असन्तोष-जनक थी, जिसने प्रोत्साहन की अपेक्षा सयोग के मार्ग मे अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न कर दी।

(६) **राष्ट्र की आर्थिक एवं औद्योगिक नीति**—छठव, भारत सरकार की आर्थिक नीति भी सयोग प्रवृत्तियो की ओर उदासीन रही है। जर्मनी मे राज्य ने सयोग आन्दोलन को सक्रिय प्रोत्साहन दिया तथा वहाँ कुछ सयोग राजकीय प्रभाव डालकर स्थापित किये गय, किन्तु इसके विरुद्ध अमेरिका मे सयोगो को रोकने के लिए नियम बनाये गये। ब्रिटन तथा भारत की सरकारे अभी तक किसी प्रकार के हस्तक्षेप के विरुद्ध रही। हाँ, गत कुछ वर्षो मे अवश्य सयोगो के विरुद्ध आन्दोलन चल रहा है एव उद्योगो मे नियन्त्रण के केन्द्रीयकरण के विरुद्ध आवाज उठाई जा रही है। कुछ लोगो का मत है कि प्रबन्ध-अभिकर्तृत्व-प्रणाली, जिसके आधार पर भी कुछ सयोग स्थापित हुए हैं तथा हो सकते है, को जड से उखाड देना चाहिए। इस विचारधारा ने भी सयोग आन्दोलन की गति को धीमा कर दिया है।

आन्दोलन की वर्तमान स्थिति—

वर्तमान समय मे सयोग आन्दोलन की गति कुछ अवरुद्ध हो गई है किन्तु सयोग निर्माण की प्रवृत्ति बडी मात्रा म उत्पादन की अपेक्षा वृहत सगठनो की ओर विशेष पाई जाती है। अब हम भारतीय उद्योगो म होने वाले सयोग आन्दोलन का विवेचन करेगे —

सीमेट उद्योग—

क्षैतिज पद्धति का सबसे बडा एव महत्त्वपूर्ण सयोग सीमेट व्यवसाय मे हुआ, जिसमे अनेक सीमेट कम्पनियो का सविलीयन हुआ। भारतीय सीमेट उद्योग म सयोग की दिशा मे प्रयत्न सर्वप्रथम सन् १९२५ मे किये गये जब इस उद्योग को सरक्षण प्रदान नही किया गया। वास्तव मे सरकार का इस उद्योग के प्रति असन्तोषप्रद व्यवहार तथा विदेशी प्रतिस्पर्द्धा ही सयोग का कारण बना। प्रतिद्वन्द्विता के युग मे अनेक सीमेट कारखाने नष्ट हो रहे थे और शेष का जीवन भी सङ्कटमय था। परिणामस्वरूप सन् १९२६ म इण्डियन सीमेट मेन्यूफैक्चरस एसोसियेशन का निर्माण किया गया। इसके बाद सन् १९३० मे सीमेट का वितरण एव विक्रय नियन्त्रित करने के हेतु 'सीमेट मार्केटिंग कम्पनी' का निर्माण किया गया। इसको कार्टेल अथवा सिण्डीकेट' भी कह सकते हैं किन्तु दुर्भाग्यवश वह प्रयत्न असफल रहा अत सन् १९३७ मे इन दोनो के सम्मिश्रण से एसोसिएटेड सीमेट कम्पनी (A C C) का निर्माण किया गया। इसमे ११ सीमेट कम्पनियो का सविलयन हुआ जिनम कटनी सीमेट कम्पनी लि० इण्डियन सीमेट क० लि० टी० मी० पी० सीमेट क० लि० कोयम्बटूर सीमेट क० लि० इत्यादि प्रमुख थी। तत्पश्चात् इस बड सयोग के भी प्रतिस्पर्धी (Competitor) के रूप मे डालमिया सम्मुख आये और पुन भयकर प्रतिस्पर्द्धा प्रारम्भ हो गई। सन् १९४१ म एक दूसरा कदम उठाया गया और डालमिया कम्पनियो क समूह तथा ए० सी० सी० के समूह मे एक समझौता हुआ जिससे आन्तरिक प्रतिस्पर्द्धा पर और भी अधिक नियन्त्रण लगा दिया गया। समझौते के अनुसार बाजार बाट दिए गये। फिर द्वितीय महायुद्ध ने सीमेट उद्योग का रूप बदल दिया। अत्यधिक उत्पादन के स्थान पर सीमेट की कमी हो गई। आज भी उत्पादन क्षमता को बढाना सीमेट उद्योग के सम्मुख सबसे बडी समस्या है। २० जनवरी सन् १९५० को ए० सी० सी० की १३वी वार्षिक मीटिंग मे कम्पनी के सभापति के भाषण म यह बात स्पष्ट है।[1]

शक्कर उद्योग—

भारतीय शक्कर उद्योग म अनेकरूप सयोग के दर्शन होते है। गत २०-२२ वर्षो म इस उद्योग की उन्नति बडी शीघ्रता से हुई है और तभी म शक्कर के उत्पादन पर नियन्त्रण के हेतु एक केन्द्रीय सस्था की आवश्यकता प्रतीत हुई। सन् १९३५ मे यह

---

1 Who Owns India' by Asoka Mehta

सख्या १३० तक पहुँच गई। इसका प्रधान कारण उद्योग को सरक्षण मिलना था, किन्तु इस शीघ्र विकास से उद्योग की उन्नति मे कुछ कमजोरियाँ आ गई। सन् १६३० मे भारत मे केवल २७ शक्कर के कारखाने थे। स्पर्द्धा को रोकने के लिए 'सुगर मार्केटिंग बोर्ड' का निर्माण किया गया, किन्तु व्यक्तिगत कारखानो की उदासीनता और उपेक्षा के कारण यह सगठन अपने उद्देश्यो मे असफल रहा। जुलाई सन् १६३७ मे 'सुगर सिन्डीकेट' का निर्माण किया गया, जिसके प्रयत्नस्वरूप मूल्य निर्धारण मे काफी सफलता मिली। सन् १६३६ तक इस सिण्डीकेट ने बडी सफलतापूर्वक कार्य किया, किन्तु फिर द्वितीय महासमर आरम्भ होने से शक्कर का उत्पादन अत्यधिक होने लगा। सिन्डीकेट ने अधिक ऊँचे मूल्य निर्धारित किये थे, अतएव उसे विवश होकर सन् १६४० मे मूल्य घटाने पडे। सन् १६४२ मे समस्त भारतीय शक्कर उद्योग पर नियन्त्रण के हेतु सद्प्रयत्न किये गये। केन्द्रीय शक्कर सलाहकार बोर्ड की दिल्ली मे एक सभा की गई। सन् १६४३ के बाद 'कन्ट्रोल' के कारण सुगर सिन्डीकेट अपने कार्य से विरत रहा और उत्पादन तथा वितरण पर सरकार का अपेक्षाकृत अधिक कडा नियन्त्रण रहा। सन् १६४७ के बाद पुन. सुगर सिन्डीकेट सक्रिय कार्य करने लगा। सन् १६४६ मे भारतीय ससद मे सुगर सिन्डीकेट तथा शक्कर उद्योग के विषय मे राजकीय नीति की कडी आलोचना की गई और सुगर सिन्डीकेट को समाप्त करने का भी निश्चय कर लिया गया।

जूट उद्योग—

भारत के सभी उद्योगो मे जूट उद्योग सबसे अधिक सगठित उद्योग है और इस उद्योग के अन्तर्गत जितनी भी कम्पनियाँ है, वे प्रायः सभी सहयोग से कार्य करती है। सन् १८८६ मे ही भारतीय जूट मिल्स एसोसियेशन का निर्माण किया गया था। इसको हम यदि उत्पादन-सघ (Output Pool) अथवा 'कार्टेल' कहे तो अनुचित न होगा। तान्त्रिक विकास तथा अनुसन्धान को इस सघ ने विशेष प्रोत्साहन दिया। यही नही, शोध कार्य के हेतु इसने आर्थिक सहायता प्रदान की। जूट उद्योग की उत्पादन क्षमता का ६५% भाग इसी सघ के अन्तर्गत है, जिसने अनेक सराहनीय कार्य किए है। गिरते हुए मूल्यो और माँग का सामना करने के लिए सन् १६२६ मे मिले ५४ घण्टे कार्य करने के लिए राजी हो गई, सन् १६३० मे तीन सप्ताह तक कार्य की पूर्ण रोक रही। द्वितीय महायुद्ध के समय जूट मिलो ने ४५ घण्टे प्रति सप्ताह कार्य किया। कभी-कभी माह मे एक सप्ताह तक मिले बन्द रही। मई सन् १६५२ मे १०% करघो को सील बन्द कर दिया गया। भारत के बँटवारे के बाद इस उद्योग के बुरे दिन आये। अनेक मिलो को हानि उठानी पडी, किन्तु पारस्परिक सहयोग के कारण उद्योग अपने पैरो पर खडा रहा। इस आपत्ति के समय मे भी जूट मिल एसोसियेशन ने उद्योग की बडी सेवा की।

सूती उद्योग—

भारतीय सूती वस्त्र उद्याग मे औद्योगिक इकाइयो की सख्या इतनी अधिक (४०० मिलो से भी ज्यादा) है कि सयोग एक कठिन समस्या है, किन्तु फिर भी कुछ महत्त्वपूर्ण सयोग स्थापित हुए हैं। उदाहरण के लिय, बकिघम कर्नाटक मिल्स वास्तव मे तीन वस्त्र-मिलो का सयोग है। बम्बई तथा अहमदाबाद मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के प्रयलस्वरूप अनेक आर्थिक सयोग स्थापित हुए हैं। लकाशायर कॉटन कॉरपोरेशन के आधार पर सन् १६३० मे ३४ वस्त्र मिलो के सयोग का एक प्रस्ताव रखा गया था, किन्तु यह प्रयत्न असफल रहा। अपने देश म कुछ व्यापारिक सघ है, जैसे—बॉम्बे मिल-मालिक सघ इत्यादि, किन्तु वे किसी का नियन्त्रण नही करते। गत वर्षों मे जितने भी सम्मिश्रण या सविलीयन हुए वे प्राय सभी प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ द्वारा किय गए और उनका स्वरूप स्पष्ट रूप से न तो क्षैतिज है और न लम्ब ही, अपितु उन्हे चक्रित या मिश्रित सयोग कह सकते हैं, क्योकि उनमे विभिन्न प्रकार के औद्योगिक प्रमण्डलो का सम्मिश्रण हुआ है। उदाहरण के लिए, सन् १६२० मे निम्नलिखित ६ कम्पनियो को लेने के लिए ब्रिटिश कॉरपोरेशन की स्थापना की गई --कानपुर वूलन मिल्स, कानपुर कॉटन मिल्स, न्यू ईगटन वूलन मिल्स, नार्थ-वेस्ट टेनरी, कूपर एलन एण्ड कम्पनी तथा एम्पायर इजीनियरिंग कम्पनी। बी० आई० सी० (B I C.) के अन्तर्गत फ्लेक्स, लाल इमली तथा काकोमी भी हैं। सन् १६४८ के बाद से तो इसका क्षेत्र और भी विस्तृत हो गया है, क्योकि वेग सदरलैण्ड कम्पनी मे भी अब बी० आई० सी० का काफी हाथ है, अत. अप्रत्यक्ष रूप से अनेक प्रमण्डल इस कॉरपोरेशन के अन्तर्गत हैं।

लौह एव स्पात उद्योग—

लौह एव स्पात उद्योग के क्षेत्र मे अथवा यो कहे कि भारत के औद्योगिक इतिहास के क्षेत्र मे सबसे महत्त्वपूर्ण सयोग इण्डियन आयरन स्टील कम्पनी लिमिटेड तथा स्टील कॉरपोरेशन ऑफ बगाल लिमिटेड का है, जो 'IISCo SCOB Merger' के नाम से विख्यात है। यह सयुक्तीकरण कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत नही वरन् प्रेसीडेन्ट के एक विशेष अध्यादेश द्वारा जनवरी सन् १६५३ मे हुआ। इस सयुक्तीकरण के कारण इस प्रकार हैं :—

दिसम्बर सन् १६३६ मे इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी ने बगाल आयरन कम्पनी का व्यापार खरीद लिया और इसमे बगाल आयरन कम्पनी को अपनी तीन-चौथाई पूँजी व इण्डियन आयरन स्टील कम्पनी को एक-चौथाई पूँजी अपलिखित करनी पडी थी। स्टील विभाग खोलने क लिए यह उचित नही समझा गया कि इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड के शेयरहोल्डरो से पुनः पूँजी देने के लिए कहा जाय, जिसकी आवश्यकता लगभग ५ करोड रु० की थी, अत सन् १६३७ मे स्टील कॉरपोरेशन ऑफ बगाल के नाम से एक नई इकाई स्थापित की गई, जिसमे

इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड के पास आधी इक्विटी केपिटल थी। विचार यह था कि किसी दिन दोनो कम्पनियो को एक इकाई मे गठित कर दिया जायगा। युद्धोत्तर काल मे जब युद्धकालीन मूल्य नियन्त्रण हटा लिए गए और प्रशुल्क बोर्ड ने नये मूल्य निर्धारित कर दिये तो यह अनुभव किया गया कि यदि उक्त दोनो कम्पनियों का एकीकरण हो जाय तो दोनो ही सस्थायें लाभान्वित होगी। तत्पश्चात् प्रत्येक टैरिफ बोर्ड ने भी यही सिफारिश की और सरकार ने भी दनो कम्पनियों को इस दिशा मे विचार करने के लिए कहा। टैरिफ कमीशन एव इसमे पूर्व टैरिफ बोर्ड ने लौह एव स्पात के लिए मूल्य (Retention prices) की गणना करने के लिए जो ढग अपनाये थे उनके कारण दानो कम्पनियो को एक सम्मिश्रित इकाई की तुलना मे हानि उठानी पडती थी, किन्तु दोनो कम्पनियो के एकीकरण से यह हानि नही होती।

इसके अतिरिक्त जब उत्पादन के विस्तार के लिए भारी मात्रा मे प्लाण्ट आयात करने के हेतु विदेशी विनिमय की आवश्यकता हुई तो सरकार ने इन्टरनेशनल बैंक फॉर रिकन्स्ट्रक्शन एण्ड डेवलेपमेट के समक्ष प्रार्थना की। बैंक ने प्रत्युत्तर मे देश की औद्योगिक सभावनाओ की जाँच के लिए टेक्नीकल मिशन भेजा, जिसने उक्त दोनो इकाइयो का निरीक्षण किया और यह सिफारिश की कि भारत मे लोहे एव स्पात का उत्पादन बढाने का सस्ता और शीघ्रगामी साधन इन दोनों कम्पनियो को सम्मिश्रित करके विकास करना है। बैंक ने भारत सरकार को सूचित किया कि वह इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड को विकास के लिए १५ करोड रु० कर्ज देने के लिए तैयार है, बशर्तें इन दोनो कम्पनियो का एकीकरण हो जाय, अतः भारत सरकार ने परिस्थिति की आवश्यकता को अनुभव करते हुए आर्डीनेन्स द्वारा एकीकरण की घोषणा की। यदि सामान्य ढग से एकीकरण कराया जाता तो उसमे आवश्यक देर लगती, जिससे आर्थिक सहायता नही मिल पाती और विकास कार्यक्रम पूरा नही हो पाता।

सम्मिश्रित कम्पनी का भविष्य बडा उज्ज्वल है। टैरिफ कमीशन द्वारा मूल्य गणना की विधि के फलस्वरूप होने वाली हानि तो दूर हो ही जावेगी, साथ ही सम्मिश्रित कम्पनी अधिक निपुणता एव मितव्ययिता से कार्य कर सकेगी। उदाहरण के लिए, अब प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का दुहरा पारिश्रमिक नही देना पडेगा। सम्मिश्रित कम्पनी ने जो विकास कार्यक्रम बनाया है उसके लिए उसे बैंक से एव सरकार से सुविधाजनक शर्तों पर आर्थिक सहायता मिल सकेगी।

कोयला उद्योग—

कोयले के उद्योग मे अनेक सयोग हुए। दी न्यू बीरभूम कोल कम्पनी ने अनेक कोयला-खान-उद्योगो का सम्मिश्रण किया। सन् १९३७ मे कोल जाँच-समिति ने भी सम्मिश्रण पर जोर दिया। इस प्रकार सम्मिश्रणात्मक सयोग की आवश्यकता कोयले

के खान-व्यवसाय मे अधिक है, जिसमे वे प्रमण्डलो के लघु परिमाण होने के कारण उत्पादन की दृष्टि से अक्षम हैं।

भारत मे सघ (Pool) प्ररूपी सयोग—

'सघ' प्ररूप के सयोग का सबसे अच्छा भारतीय उदाहरण हमारा कागज उद्योग है जो एक प्रबल सगठन है। इण्डियन पेपर मेकर्स एसोसियेशन के अन्तगत अनेक कागज मिलें सम्मिलित हैं। यह सघ कागज का मूल्य निर्धारित करता है तथा प्रान्तीय एव केन्द्रीय सरकारो से कागज के सम्बन्ध म अनुबन्ध करता है कि कौनसी मिल किसको कितना कागज देगी। इस प्रकार मूल्य सघ (Price pool) का उदाहरण हमारे यहाँ के तेल व्यवसाय मे मिलता है जिसमे ब्रिटिश-बर्मा पैट्रोलियम क०, आसाम ऑयल क० दी रायल डवशैल ग्रुप तथा बर्मा ऑयल कम्पनी सदस्य हैं और मिट्टी के तेल का सदस्यो द्वारा विक्रय एव सदस्य प्रमण्डलो से क्रय किस प्रकार होगा, यह निर्धारण करता है। इण्डियन जूट मिल एसोसियेशन ने उत्पादन सघ (Production pool) का रूप ले लिया है। सन् १६२६ से यह एसोसियेशन जूट के उत्पादन, काम के घन्टो की कमी कुछ मिलो की तालाबन्दी पालियो पर नियन्त्रण आदि का कार्य सफलता से कर रहा है। बाजार सघ (Marketing pool) डालमिया तथा एसोसियेटेड सीमट कम्पनी के समझौते के बाद स्पष्ट हुआ है जिसके अनुसार यह निश्चय किया गया कि दोनो मे से कोई भी एक दूसरे के क्षेत्र मे व्यापार नही करेगा। इससे उनकी पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा का उन्मूलन होगा।

सधारी कम्पनियाँ (Holding Companies)—

सधारी कम्पनियो का निर्माण भारत म विशेषत सन् १६१३ से प्रारम्भ हुआ। ऐसे प्रमण्डल विभिन्न प्रमण्डलो की व्यापारिक नीति एव प्रबन्ध पर नियन्त्रण के हेतु उनके अश खरीद लेते ह। यह काय उस समय विशेष रूप मे पाया जाता है, जब विभिन्न कम्पनिया एक ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता के अन्तगत काय करती है। भारत के विभिन्न व्यवसायो मे धन लगाने के लिए उन पर नियन्त्रण स्थापित करने के उद्देश्य से पर्याप्त मात्रा मे विनियोग प्रन्यास स्थापित हुए है, किन्तु शक्तिशाली प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के कारण उनका नियन्त्रण अधिक प्रभावशाली नही दिखाई देता है।

बीमा तथा बैंकिंग के क्षेत्र मे बैंकिंग की अपेक्षा बीमा कम्पनियो की स्थिति अच्छी है, विशेषकर निम्न कम्पनियो की फ्री इण्डिया जनरल इन्श्योरेंस क० लि० कानपुर, आयन इन्श्योरेन्स क० लि० कलकत्ता, फेडरल इण्डिया इन्श्योरेन्स क० लि० दिल्ली आदि। बैंकिंग कम्पनियो के सम्मिश्रण के लिए पर्याप्त क्षेत्र है इसमे उनकी कायक्षमता बढेगी तथा मितव्ययिता होगी। अभी देश मे ऐसी अनेक छोटी बैंकिंग कम्पनियाँ ह, जिनका सम्मिश्रण या सविलीयन राष्ट्र के हित मे अनिवाय है, जिससे व अपने विदेशी प्रतिस्पर्धियो के साथ विशेषतः विदेशी विनिमय बैंको से टक्कर ले सक।

व्यापारिक पार्षद एवं चेम्बर ऑफ कॉमर्स (Trade Associations & Chambers of Commerce)—

यहाँ व्यापारिक पार्षदो के विषय मे दो शब्द लिखना अनावश्यक न होंगे। इन पार्षदो का प्रधान उद्देश्य किसी व्यापार विशेष के हितो की रक्षा करना तथा उसकी उन्नति करना है। चेम्बर ऑफ कॉमर्स भी व्यापारिक पार्षद ही है, जो व्यापारियो की, निर्माताओ की तथा अर्थ-प्रदायको की स्वेच्छा से सीमित प्रमण्डल के रूप मे सगठित किये जाते हैं। इनका भी मुख्य उद्देश्य व्यापार के लिए समान सिद्धान्तो का अवलम्बन तथा सदस्यो को व्यापारिक सुविधाये देने के लिए नियम बनाना होता है। इसके अतिरिक्त ये अपने सदस्यो का व्यापारिक सूचनायें तथा आवश्यक सलाह भी देते रहते हैं, परस्पर झगडों का निर्णय भी देते हैं एव आवश्यकतानुसार वैधानिक एवं माहिती भी प्रदान करते है। सदस्यो को व्यापारिक सुविधायें देने के लिये ये सरकार के पास व्यापारियो की ओर से प्रतिनिधि मण्डल भी भेजते है। उक्त उद्देश्य का प्रथम भारतीय सगठन कलकत्ते मे सन् १८८७ मे 'कलकत्ता नेशनल चेम्बर ऑफ कॉमर्स' के नाम से स्थापित किया गया था। भारत के प्राय. प्रत्येक बडे औद्योगिक नगर मे अब पार्षद स्थापित हो गये है, जिनमे मारवाडी चेम्बर ऑफ कॉमर्स, बम्बई, इण्डियन चेम्बर ऑफ कॉमर्स, कलकत्ता, इण्डियन मर्चेन्ट चेम्बर ब्यूरो ऑफ बाम्बे तथा दी उ० प्र० चेम्बर ऑफ कॉमर्स प्रमुख है।

नौवहन चक्र तथा सम्मेलन (Shipping Rings and Conferences)—

इनके अतिरिक्त भारत मे बाजार का विभाजन कुछ अन्य क्षेत्रो मे भी किया गया है। ये क्षेत्र नौवहन-चक्र तथा सम्मेलन (Shipping Rings and Conferences) कहलाते है। ये चक्र पारस्परिक समझौते के आधार पर किये जाते है। ऐसा ही समझौता ब्रिटिश इन्डिया स्टील नेवीगेशन क० लि० तथा सिंधिया स्टीम नेवीगेशन क० लि० मे हुआ है। इस प्रकार के समझौते अन्तर्देशीय नौवहन क्षेत्र मे भी विभिन्न नौवहन प्रमण्डलो के बीच हुए है। ये समस्त चक्र प्राय. देश के आन्तरिक भागो से जूट को तटवर्ती बाजारो तक ले जाने के लिये स्थापित किये गए है। ये कम्पनियाँ समझौते के अनुसार इन्डियन जूट मिल्स एसोसियेशन तथा कलकत्ता बेल्ट जूट एसोसियेशन के सदस्यो के लिए जलमार्ग से जूट लाने की पूर्णतया अधिकारिणी है।

भारतीय उद्योगो मे आर्थिक तथा प्रबन्ध सयोग (Community Interest or Managerial Integration in Indian Industries)—

'सामुदायिक हित सयोग' (Community Interest Combinations) से अभिप्राय उस सस्था का है, जिसके द्वारा दो या दो से अधिक कम्पनियो से, जिनके शेयरो का स्वामित्व सीमित व्यक्ति के हाथो मे हो, सुखद सम्बन्धो की स्थापना की जाती है। इन सस्थाओ के चुने हुए व्यक्ति परस्पर प्रतिद्वन्द्विता मिटाने तथा

सामान्य हितो की रक्षा के लिए एक सचालक मण्डल के रूप मे कार्य करते हैं। ऐसे सयोगो को साधारणत तीन भागो मे बाँटा जा सकता है—पारिवारिक, नागरिक एव अधिकोषिक। पारिवारिक समुदाय (Family Community Interest) का प्रचलन पाश्चात्य देशो मे पाया जाता है, जैसे अमेरिका मे रॉक फेलर, मेलन, ड्यूपोण्ट आदि। कुछ कम्पनियो के स्कन्ध दूसरी कम्पनियो को बेच देन मे या हस्तान्तरित कर देने से या उपहार स्वरूप दे देने से इनका विकास हुआ। नागरिक समुदायो (Local Community Interest) का नगरो म बडे-बडे बैंक, उद्योग धन्धे तथा व्यापारिक सस्थाओ के एक ही सचालको के होने से सामुदायिक हित रक्षक सस्थाओ का जन्म हुआ। इस प्रकार इन अलग-अलग कम्पनियो के सचालक एक-दूसरी कम्पनी के सचालन म योग देत हैं। अधिकोषो के सामुदायिक सगठन (Banking Community Interest) परस्पर प्रतियोगिता को मिटाने के उद्देश्य से स्थापित किए गये है। इन सगठनो के द्वारा नई प्रतिभूतियो के निर्गमन तथा प्रत्येक क्षेत्र मे व्यापार करने मे प्रतिद्वन्द्विता न करने का समझौता करते हैं। कोई भी प्रतिभूति इन सस्थाओ के बाहर नही बेची जा सकती। सरकार भी अपनी प्रतिभूतियाँ इन्ही सघो को देती है। ये सस्थायें अश निर्गमन करने वाली सस्थाओ के सचालको का चुनाव करके उनकी आर्थिक गतिविधि पर नियन्त्रण करती हैं।

भारतवर्ष मे जो भी क्षैतिज अथवा उदग्र सयोग हैं, उन्हे औद्योगिक सयोग की अपेक्षा आर्थिक सयोग कहना ही अधिक उचित होगा क्योकि आर्थिक व्यवस्था की दृष्टि से प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ ने सयोग को अपनाया है। प्राय ऐसा देखने मे आता है कि एक प्रबन्ध अभिकर्त्ता के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की अनेक इकाइयाँ है और परिणामस्वरूप हमारे उद्योगो का केन्द्रीयकरण विचिन व्यक्तियो के हाथो मे हो गया है। कपडा उद्योग के ४५८ मिलो का $\frac{1}{3}$ भाग लगभग ३० प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के हाथ मे है। अहमदाबाद की कुल मिलो का $\frac{3}{4}$ केवल १८ परिवारो के हाथ मे है। इसी प्रकार सन् १६४६ मे जूट की ८५ मिलो मे ३३ मिलें ४ प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के हाथो मे थी तथा १६६ चीनी मिलो मे से ५१ का प्रबन्ध १६ प्रबन्ध अभिकर्त्ता करते है, जिनमे से डालमिया, नारग व थापर ३१ मिलो का नियन्त्रण करते है। कोयले की ६० कम्पनियो का प्रबन्ध १४ प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के हाथ मे है, जिनमे से ३० का प्रबन्ध केवल ४ प्रबन्ध अभिकर्त्ता करते हैं। इसी प्रकार चाय की १२० कम्पनियाँ ११ प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के आधीन है, जिनमे से ६६ केवल ६ प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के हाथ मे हैं तथा ३ प्रबन्ध अभिकर्त्ता क्रमश. २५, १६ और १८ कम्पनियो का प्रबन्ध करते हैं। ऐसोसियेटेड सीमेन्ट कम्पनीज आज प्राय. देश के अधिकाश सीमेन्ट उत्पादन का नियन्त्रण करती है। लोहे मे ५०% उत्पादन केवल दो सस्थाओ के आधीन है—मार्टिन ब्यूरो ऐण्ड कम्पनी तथा टाटा इन्डस्ट्रीज लिमिटेड। माचिस के उद्योग मे 'स्वेडिस ट्रस्ट' एकाधिकार प्राप्त किये हुए हैं और उसने वेस्टर्न इन्डिया मैच

फैक्टरी के अन्तर्गत बम्बई, मद्रास, कलकत्ता उत्तर-प्रदेश तथा पजाब मे अपनी फैक्टरियाँ खोली हुई है।

भारतवर्ष मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता लगभग ७०० औद्योगिक कम्पनियो का नियन्त्रण करते है, जिनमे से ५० कम्पनियाँ केवल एण्ड्रयूल तथा मैकलॉड के आधीन हैं। डालमिया लगभग ५० कम्पनियो का नियन्त्रण करते हैं। जुग्गीमल कमलापति ४५ कम्पनियो का, थापस ५२, बर्ड एण्ड कम्पनी २३, जे० पी० श्रीवास्तव १० प्रकार के उद्योगो का। किल्लिक इन्डस्ट्रीज लिमिटेड पटियाला सीमेट कम्पनी लिमिटेड तथा ए० सी० सी० के मैनेजिंग एजेन्ट होने के साथ-साथ १० प्रकार के उद्योगो का भी नियन्त्रण करती है। रामकुमार अग्रवाल एण्ड ब्रादर्स लगभग १५ प्रकार के उद्योगो का नियन्त्रण करते है। ए० वी० थामस एण्ड कम्पनी लिमिटेड लगभग १५ कम्पनियो का नियत्रण करती है। इसी प्रकार टाटा एण्ड सस लिमिटेड ने लौह एव स्पात बिजली, तेल के कारखाने, साबुन के कारखाने, कपड की मिलें, इन्जीनियरिंग कारखाने, होटल, वनस्पति कारखाने, बीमा कम्पनियाँ, बैंक, एयरवेज आदि उद्योगो का नियन्त्रण किया है। इसी प्रकार बिडला ब्रादर्स ने कपडा, चीनी, कागज, साइकिल, मोटर, जहाज आदि उद्योगो के नियन्त्रण के साथ साथ बैंक, बीमा, एयरवेज आदि ३० कम्पनियो का प्रबन्ध अपने हाथ मे ले लिया है। जे० के० तथा डालमिया आटा, साबुन, तेल, इन्जीनियरिंग, रासायनिक, कपास, जूट, ऊन, चीनी, एयरवेज आदि उद्योगो का नियन्त्रण कर रहे है। इसके अतिरिक्त उन्होंने बीमा कम्पनियाँ, विनियोग सघ, बैंक तथा विनियोग कम्पनियो का निर्माण भी किया है।

एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि औद्योगिक तथा आर्थिक प्रमण्डलो पर नियन्त्रण के अतिरिक्त भारतीय प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का प्रस (Press) पर भी अधिकार है। प्राय प्रत्येक प्रबन्ध अभिकर्त्ता के नियन्त्रण मे एक न एक प्रमुख समाचार पत्र भी है, जिसके द्वारा जनता पर भी वे अपना नियन्त्रण रखते है। उदाहरण के लिए, बिरला का 'हिन्दुस्तान टाइम्स', 'लीडर', डालमियाँ का 'नवभारत टाइम्स', जे० के० का 'जे० के० रिव्यू', टाटा का 'टाटा रिव्यू' इत्यादि।

यही नही, कम्पनियो के सचालन मे भी घोर केन्द्रीयकरण (Interlocking of Directorates) है।[1] देश के समस्त उद्योगो के सचालन की बागडोर वास्तव मे चोटी के २० व्यक्तियो के हाथो मे है। ऐसा अनुमान है कि भारत की ५०० प्रमुख औद्योगिक इकाइयो पर २,००० सचालको का प्रबन्ध है, किन्तु इन २,००० सचालको

---

1 'The effective Directors of one trust holds directorships in many a concern managed by other trusts And that 'courtsey' is reciprocated In the world of capital, the captain themselves are ambassadors at one another's courts [1] . The top twenty men hold in their hands the significant threads of power "

"Who Owns India"—Ashoka Mehta, Page 36-37.

के पद पर केवल ८५० व्यक्ति कार्य कर रहे हैं। इनमे से १,००० पदो पर केवल ७० व्यक्ति कार्य कर रहे है और शेष १,००० पर ७८० व्यक्ति। चौटी पर केवल १० व्यक्ति है, जा ३०० सचालक-पदो का भार अपने ऊपर लिए हुए है। निम्न तालिका[1] से यह स्पष्ट है —

८५० व्यक्ति २,००० सचालक पद ग्रहण किए हैं—औसत २ ३३
७० व्यक्ति १,००० ,, ,, , , — ,, १४ २८
१० व्यक्ति ३०० ,, ,, ,, ,, — ,, ३०

वर्तमान युग मे यह भी प्रवृत्ति देखने मे आती है कि भारतीय उद्योगपति विदेशी सस्थाओ तथा हितो का क्रय कर रहे हैं, अतएव भारतीय सचालको की सख्या दिन पर दिन बढती जा रही है। यह प्रवृत्ति विशेषत स्वतन्त्रता के उपरान्त राष्ट्रीय भावनाओ की प्रबलताओ के कारण हुई।[2] इस तालिका[3] म यह प्रवृत्ति स्पष्ट है।

कम्पनियो की सख्या तथा प्रकार	सन् १६३६ मे सचालको की सख्या		सन् १६४६ मे सचालको की सख्या	
	भारतीय	यूरोपियन	भारतीय	यूरोपियन
१० कोल कम्पनीज		३४	१७	२८
११ ,, ,,	१६	२६	३२	२५
१३ जूट ,,	•	४६	११	४४
२१ ,, ,,	३५	५२	६३	३५
३ इजीनियरिङ्ग ,,		६	३	११
४ ,, ,,	८	११	१५	८
१४ अन्य ,,		५३	३०	३७
६ ,, ,,	६	१६	१८	१६

1 Who Owns India by Ashoka Mehta, page 17

2. The Daily Express wrote in 1945—"Indians recently grown rich and powerful due to inflationary conditions and profits from war contracts are attempting to buy out British interests" See the Eastern Economist, dated August 24, 1945.

3. Capital Annual No. 1949.

ऐसे भी अनेक उदाहरण है, जहाँ एक व्यक्ति ४०-४० कम्पनियो का संचालक है। उदाहरण के लिए, श्री पुरषोत्तमदास ठाकुरदास ५१ विभिन्न कम्पनियो के सचालक है।

कम्पनी अधिनियम सन् १९५६ ने प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ द्वारा अन्तर्बद्ध विदेश-नालयो और अन्तर्बद्ध स्वहितो की बढती हुई प्रवृत्ति को रोकने का यत्न किया है। भविष्य मे व्यक्ति को ही सचालक बनने दिया जायेगा और उसे २० से अधिक लोक कम्पनियो का सचालक नही बनने दिया जायेगा। इसी प्रकार कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता १० से अधिक कम्पनियो का प्रबन्ध अभिकर्त्ता नही हो सकेगा। इसके अतिरिक्त, प्रबन्ध अभिकर्त्ता सचालको की कुल सख्या ५ से अधिक होने पर एक और अधिक सचालक नियुक्त कर सकेगा।

विदेशी सम्बन्ध एवं बडे व्यापार की प्रवृत्ति—

एक ओर तो हमने देखा कि सचालको का भारतीयकरण हो रहा है, किन्तु दूसरी ओर ऐसा भी देखने मे आता है कि भारतीय उद्योगपति विदेशी उद्योगपतियो के साथ साझेदारी कर रहे है। सन् १९४५ मे भारतीय उद्योगपतियो का जब से एक मिशन ब्रिटेन गया, तब से यह प्रवृत्ति विशेष दिखलाई पडती है। सन् १९४५ मे सर्व प्रथम भारत तथा ब्रिटिश की साझेदारी मे 'नफील्ड बिरला' (मोटर्स लि०) के नाम से सामने आई। ईस्टर्न इकॉनॉमिस्ट (४ जनवरी सन् १९४६) ने इस साझेदारी को 'आर्थिक सयोग' का नाम दिया। इसके बाद और भी ऐसी अनेक साझेदारिया स्थापित हुई। कारो तथा ट्रक्स के निर्माण के हेतु अशोक मोटर्स लि० ने ऑसटिन मोटर्स के साथ साझेदारी की। वस्त्र-निर्माण-मशीनरी के निर्माण के हेतु बिरला ब्रादर्स ने ब्रिटेन की वेवकॉक एण्ड विलकाक्स नामक फर्म के साथ एक समझौता किया है। २५ लाख रु० अश पूँजी के साथ बी० एस० ए० साइकिल कम्पनी की भी एक शाखा भारत मे खोली गई है। इसमे १,००,००० रु० की विदेशी पूँजी लगी हुई है। हरकुलिस कम्पनी तथा रैले कम्पनी की भी ऐसी योजनायें है। रासायन उद्योग के क्षेत्र मे भी आई० सी० आई० तथा टाटा के बीच एक समझौता हुआ है। I. C. I. एक शक्तिशाली ब्रिटिश एकाधिकृत सस्था है। सिल्क उद्योग के क्षेत्र मे भी सिर सिल्क लि० तथा लैंन्सिल की कुछ ब्रिटिश फर्मो के बीच समझौता हुआ है। हैदराबाद कन्सट्रक्शन लि० उसके प्रबन्ध अभिकर्त्ता हैं। बम्बई की किरलोस्कर नामक इन्जीनियरिंग सस्था ने ब्रिटिश ऑयल इन्जिन्स लि० के साथ तथा ब्रिटिश इलैक्ट्रोकल इन्जीनियरिंग कम्पनी एव पैरी एण्ड कम्पनी के साथ गठबन्धन कर लिया है। इसी प्रकार भारत-अमेरिका के बीच भी कुछ समझौते हुए हैं। उदाहरण के लिए, बालचन्द हीराचन्द ने क्रिसलर कॉरपोरेशन के साथ समझौता करके सन् १९४५ मे प्रीमियर ऑटोमोबायल वर्क्स की स्थापना की। श्री ठाकुरदास तथा श्रोफ द्वारा स्थापित 'नेशनल रैंयन कॉरपोरेशन लि०' का भी 'स्कन्द्रा रेयन कॉरपोरेशन' तथा 'लॉकवुड ग्रीन एण्ड

स० अमेरिका' के साथ सम्बन्ध है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक विदेशी संस्थाओं की 'Rupee Subsidiaries' स्थापित की गई है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत मे कम्पनियो के नियन्त्रण तथा अर्थ व्यवस्था का एक बडी सीमा तक केन्द्रीयकरण हो रहा है। इसके कारण साधारण अशधारियो तथा उद्योगपतियो को आगे बढने का अवसर नही मिलता। इनके उद्योगो म श्रमिको को भी यथोचित लाभ नहीं होता, क्योकि लाभ का अधिकाश भाग इनकी जेबो म चला जाता है। प्रबन्ध अभिकर्त्तागण कम्पनियो की अर्थ व्यवस्था को इस प्रकार निर्बल कर देते है कि उनको हमेशा इनकी ओर ताकना पडता है। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ तथा बडी कम्पनियो के आर्थिक लाभ का अनुमान उनके द्वारा दिये जाने वाले आय-कर से लगाया जा सकता है। सरकार के वार्षिक राजस्व का ५०% इन्ही लोगो के द्वारा दिया जाता है। इन्होने बडी सीमा तक हमारे राजनैतिक वातावरण को भी अपने शिकजे मे कस लिया है।

यह सच है कि भारत का विशाल क्षेत्र, कच्चे माल की बहुतायत और आर्थिक पिछडपन को देखते हुए औद्योगिक एकाधिकार या आर्थिक एकीकरण से अभी भयकर रुप धारण करने की आशका नही है। देश मे अभी तक प्राय. सभी क्षेत्रो म प्रतियोगिता के लिये पूर्ण सुविधा है, क्योकि मध्यम श्रेणी क उद्योग भी देश मे प्रबल हैं और विशाल उद्योगो मे श्रमिको की सख्या इतनी अधिक नही है जितनी कि इन छोटे-छोटे उद्योगो मे है। देश मे बेकारी की समस्या भी अभी तक पूर्ण रुप से नही सुलझ पाई है। एकाधिकार की अन्य बुराइयो का, जैसे छोटे उद्योगपतियो पर दबाव, ऊँची दरें, कानून का दुरुपयोग, क्रेताओ की स्वतन्त्रता का अपहरण, नवीन विकसित साधनो पर रोक आदि नही आ पाई है, किन्तु यदि मान लिया जाय कि देश मे एकाधिकार की भयकर स्थिति नही है तो भी यह मानना पडगा कि उसकी प्रवृत्ति स्पष्ट है, इसलिए इस प्रवृत्ति को रोकना जनतनवादी सिद्धान्तो की रक्षा के लिए आवश्यक है। नया कम्पनी अधिनियम इस उद्देश्य की पूर्ति मे सफल होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

STANDARD QUESTIONS

1. How do you account for the slow appearance of Combination in Indian Industries.
2. Examine the trend towards amalgamation and mergers in India and discuss the causes of such combinations.

3. Write a short essay on Combination Movement in Indian industries
4. Trace briefly the growth of combination of Indian Industries What do you know about Big Business Deals negotiated with foreign industrialists after 1945
5. What do you understand by 'Community Interests'? What are its various forms? Write a note on Community Interest in India
6. Give a detailed account of the IISCo SCOB Merger which was effected in India on 1st January 1953
7. Write a lucid essay on Managerial Integration in India What are the provisions of the Indian Companie's Act, 1956 for preventing the concentration of economic power in the hands of a few persons ?

अध्याय २७

राज्य एवं औद्योगिक संयोग

(State & Industrial Combinations)

प्रस्तावना—

औद्योगिक सयोगो के सम्बन्ध मे दो विरोधी विचारधारायें प्रचलित है। एक विचारधारा के अनुसार औद्योगिक सयोग कोई 'सगठन' ही नही है, वरन् प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यवस्था का एक खेदजनक उल्लघन है, जिसे केवल अप्रोत्साहित करने के लिये ही कोई कदम नहीं उठाना चाहिए वरन् उन्हे दबाने के लिए प्रत्यक्ष उपाय भी किए जायें। इसके विपरीत, दूसरी विचारधारा यह है कि औद्योगिक सयोग, औद्योगिक सगठन का उच्चतर एव विकसित रूप है तथा इसे सम्पूर्ण औद्योगिक क्षेत्र मे लागू करना चाहिए। वास्तव मे हमे औद्योगिक सयोगो के सम्बन्ध मे उचित नीति अपनाने के लिए इन दोनो विचारधाराओ से बचना चाहिए तथा यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उद्योग की रचना मे गहरे परिवतन हो रहे है और एकाधिकारिक सगठनो को स्वतन्त्र निर्माता की अपेक्षा विशेष प्रबन्ध-समस्याओ का सामना करना पड़ता है।

सरकारी नीति के उचित लक्ष्य—

सरकारी नीति के दो परस्पर विरोधी लक्ष्य सामने आते हैं। पहला लक्ष्य उपभोक्ताओं के कारण रखा गया है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि उन्हें व्यापारिक सयोगो के दुष्प्रभावो से सरक्षण मिलना चाहिए। अत: प्रथम लक्ष्य ऐसे विशाल सयोगो की शक्ति को नष्ट या सीमित करने से सम्बन्धित है। दूसरा लक्ष्य छोटी छोटी प्रतियोगिता करने वाली फर्मों को बड़े पैमाने के सगठनो मे परिणित होने के लिए विवश या प्रोत्साहित करके औद्योगिक कुशलता मे सुधार करना है।

औद्योगिक सयोगो का नियमन करने के लिए सरकार जो उपाय करती है वह भिन्न-भिन्न होते है। असामाजिक एव हानिप्रद औद्योगिक सयोगो के विरुद्ध प्राय. कड़ी कार्यवाही करना आवश्यक हो जाता है। सरकारी हस्तक्षेप विभेदात्मक मूल्य-नीतियो और व्यापारिक प्रथाओ तथा अति पूँजीकरण के कारण आवश्यक हो जाता है। इन परिस्थितियो मे सरकार क्या करेगी, इसका कोई निश्चित नियम नही बनाया जा सकता। सामान्यत: असामाजिक मूल्य नीति से उपभोक्ताओ की रक्षा करने के लिए औद्योगिक सयोगो से सघर्ष कर सकती है। लेकिन समन्वित औद्योगिक सगठन की खातिर वह प्रतिस्पर्द्धा के बजाय सयोगीकरण को बढावा भी दे सकती है। वह इनमे से कौनसा मार्ग अपनाएगी, यह सयोग के आर्थिक प्रभावो के स्वभाव पर निर्भर करता है। यही नही, परिस्थितियो के बदलने पर आर्थिक प्रभावो का स्वभाव भी बदल जाता है। अतः सरकार को औद्योगिक सयोगो के सम्बन्ध मे कोई स्थिर (Static) नीति न अपना कर एक प्रगतिशील (Dynamic) नीति अपनानी चाहिए।

यह उल्लेखनीय है कि कभी-कभी सयोगिक प्रवृत्तियो का विरोध करने का अर्थ दुर्बलता को निपुणता के विरुद्ध सरक्षण देना है। अत. सरकार को सयोगो के सम्बन्ध मे एक रचनात्मक नीति अपनानी चाहिये, क्योकि 'अनुमति दो' या 'अनुमति न दो' इन दो मार्गो मे से किसी एक मार्ग पर चलना ही सदा लाभप्रद नही होगा। उसे सयोगो का समर्थक अथवा विरोधी मार्ग अपनाने के बजाय उद्योग के उचित मार्ग-दर्शन का कार्य करना चाहिये। अमेरिका की भाँति भारत मे भी 'व्यापारिक स्वशासन' के सिद्धान्त को सरकारी समर्थन मिलना चाहिए। सन् १६३८ मे नेशनल रिकवरी एडमिनिस्ट्रेशन के चेयरमैन ने कहा था कि, 'हमारे सामने दो ही विकल्प है—या तो हम सगठित हो जाये अथवा बरबाद हो जाये। प्रतिस्पर्द्धी व्यवस्था के दोषो से बचने के लिये या तो हम जनतान्त्रिक एव सहकारिक नियन्त्रण अपना लेंगे अथवा मुसीबत मे पड जायेंगे और तानाशाही नियन्त्रण के द्वारा मुक्ति का प्रयास करेंगे।'[1]

---

1 "We have only two choices—we will get together or get nowhere Either we will establish democratic, cooperative controls in time to avoid the collapse of an anarchistic competitive system or we will drift into disaster and than seek salvation through accepted dictatorial control."

औद्योगिक सगठन के व्यापक दृष्टिकोण से देखने पर यह प्रतीत होता है कि उद्योग मे सयोगो के निर्माण से प्राइवेट हितो को सार्वजनिक जिम्मेदारी की भावना का अनुभव होना चाहिए। जर्मनी की भाँति उनमे सयोग सम्बन्धी एक आचार सहिता का विकास हो सकता है। बडे सयोगो को चाहिये कि वे समय को पहचाने और उद्योग के प्रतिनिधि के रूप मे अपना नैतिक दायित्व अनुभव करें। यदि वे श्रमिको, उपभोक्ताओ और समाज के प्रति अपना दायित्व अनुभव करने लगे तो उन पर प्रतिबन्धो की आवश्यकता ही नही रहेगी।[1]

सरकार को भी यह ध्यान रखना चाहिए कि कितनी भी कानूनी व्यवस्था, दबाव एव प्रतारणा उद्योगो के सहयोग को प्राप्त नही कर पायेगी। सहयोग तभी मिल सकता है जबकि देश की प्रत्येक औद्योगिक इकाई के हृदय मे उनके प्रति भावना उत्पन्न हो।

भारत मे सरकारी नीति—

भारतीय संविधान मे सरकारी नीति के निर्देशक सिद्धान्तो मे यह स्पष्ट कर दिया गया है कि सरकार भौतिक प्रसाधनो के स्वामित्व एव नियन्त्रण का वितरण इस प्रकार बनायेगी जिससे कि सामान्य हितो की पूर्ति हो और आर्थिक प्रणाली के कार्य-वाहन द्वारा कुछ लोगो के हाथ मे आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण न हो सके। दिसम्बर सन् १९४५ मे जब ससद ने सामाजिक एव आर्थिक नीति के लक्ष्य मे **समाजवादी नमूने के समाज की स्थापना** को स्वीकार कर लिया, तो उक्त सिद्धान्तो को अधिक ठोस रूप प्राप्त हो गया। इसका अर्थ यह है कि प्राइवेट लाभ के बजाय सामाजिक लाभ को महत्त्व दिया जायगा। विकास की रूपरेखा इस प्रकार बनाई जायेगी कि न केवल राष्ट्रीय आय तथा रोजगार मे वृद्धि हो वरन् आय और सम्पत्ति के वितरण मे अधिक समानता आवे। यह तब ही सम्भव है जबकि आर्थिक विकास का लाभ निधन वर्ग को अधिक मात्रा मे दिया जाय। समाजवादी समाज की स्थापना के अन्तर्गत निम्न तीन बातो को महत्त्व दिया गया है —जीवन-स्तर मे सुधार, सबके लिये उपयोगी कार्य के अवसरो मे वृद्धि तथा समाज के सब वर्गो मे सद्भावना, सहयोग एव सहानुभूति का विस्तार।

सन् १९५६ के औद्योगिक नीति प्रस्ताव मे भी आय और सम्पत्ति की असमानता को कम करने तथा एकाधिकारो के निर्माण व आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण को रोकने पर बल दिया गया था। इसके अनुसार सरकार नये औद्योगिक उपक्रमो की

---

1 *"If we can condition industry to act responsible to the workers, consumers and community, we shall have gone a long way to preparing it for the willing acceptance of directives, when directives are needed, from Government, and thereby will have done something to minimize the need for direct Government intervention."*

—*G. Goyder "the Future of Private Enterprise," p. 38.*

स्थापना म एक बढता हुआ एव प्रत्यक्ष दायित्व स्वीकार करेगी। द्वितीय पच-वर्षीय योजना का एक लक्ष्य आय और सम्पत्ति की असमानता को कम करना तथा आर्थिक सत्ता के अधिक समान वितरण का उपाय करना है। योजना मे कहा गया है कि विकास कार्यक्रम ऐसा नही होना चाहिये जो असमानता को और भी बढा दे। असमानता को कम करने के उपायो से उत्पादन व्यवस्था का कोई हानि पहुँचने का भय नही है। जनतन्त्रीय सिद्धान्त असमानता की विद्यमानता के लिये आधार नही हो सकते हैं। असमानता को कम करने के लिये दोहरी नीति अपनानी चाहिए—उच्च स्तर पर धन के अत्यधिक केन्द्रीयकरण को रोका जाय और निम्न स्तर पर आयो म वृद्धि की जाय। इस नीति के प्रशासन मे सहकारी क्रियाओ का सगठन करने, प्राइवेट मोनोपोली पर नियन्त्रण रखने तथा सरकारी क्षेत्र का विस्तार करने से बहुत मदद मिलेगी। योजना के अन्तगत असमानता को दूर करने के लिये निम्न विशेष उपाय किये गये हैं,—

(१) सरकारी क्षेत्र म विशाल विनियोग का कार्यक्रम बनाया गया है।
(२) सरकार आर्थिक क्रिया का नियमन करेगी।
(३) योजना के लिये धन जुटाने के हेतु विशेष प्राशुल्किक उपाय।
(४) सम्पत्ति स्वामित्व एव प्रबन्धक क्षेत्र म सस्थागत परिवतन किये गये है।
(५) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ पर प्रतिबन्ध लगाये गए हे।
(६) सहकारी क्षेत्र को बढावा दिया जा रहा है।

कम्पनी अधिनियम, १९५६ की व्यवस्थायें—

भारतीय कम्पनी अधिनियम, १९५६ मे सरकार को प्राबन्धिक, प्रशासनिक एव वित्तीय सयोग के निर्माण का नियमन करने के कुछ अधिकार प्रदान किये गए है, जो कि निम्न प्रकार हैं —

(१) **प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ की नियुक्ति सम्बन्धी प्रतिबन्ध**—धारा ३२४ के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार यह घोषणा कर सकती है कि औद्योगिक व्यापार के अमुक-अमुक वर्गो से सम्बन्धित कम्पनियाँ मैनेजिग एजेन्ट नही रख सकगी। धारा ३३२ के अन्तर्गत कोई व्यक्ति १० से अधिक कम्पनियो का मैनेजिग एजन्ट नही बन सकता। इन धाराओ के कारण इने गिने व्यक्तियो के पास आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण होना रुकेगा। वित्तीय सयोगो का रोकने की दृष्टि से कम्पनिया द्वारा पारस्परिक विनियोग करने पर भी अनेक प्रतिबन्ध लगा दिए गए है।

(२) **सचालको की नियुक्तियो पर प्रतिबन्ध**—प्रशासनिक सयोगो के निर्माण की रोकथाम के लिए यह व्यवस्था की गई है कि कोई भी व्यक्ति अधिनियम का आरम्भ होने के समय से २० से अधिक कम्पनियो मे सचालक नही बन सकता (धारा २७५) और यदि वह ऐसा करता है तो उस पर प्रत्येक अतिरिक्त कम्पनी के

लिए ५,०००) तक जुर्माना किया जा सकता है। कम्पनियो की सख्या की गणना करते समय प्राइवेट कम्पनियाँ, अनलिमिटेड कम्पनिया और अ-लाभ परिषदो को नही गिना जायगा।

(३) **सदस्यता सम्बन्धी जाँच पड़ताल**—धारा २४७ के अन्तर्गत (जोकि इगलिश कम्पनीज एक्ट, १९४८ के आधार पर बनाई गई है) केन्द्रीय सरकार किसी भी कम्पनी की सदस्यता एव अन्य मामला की जाँच पडताल करन के लिए निरीक्षको की नियुक्ति कर सकती है, ताकि यह मालूम हो सके कि कौन लोग वास्तव मे कम्पनी मे वित्तीय हित रखते हैं या कम्पनी की नीति पर प्रभाव डालते है।

(४) **सम्मिलन सम्बन्धी अधिकार**—धारा ३९६ क अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार है कि वह दो या अधिक कम्पनियो के सम्मिलन (amalgamation) का आदेश दे दे, बशर्ते ऐसा करना राष्ट्रीय हित मे हो।

सन् १९५८ मे राज्य सभा के एक कम्यूनिस्ट सदस्य ने देश की एकाधिकारिक सस्थाओ के कार्य-सचालन की जाँच करने के हेतु एक ससदीय कमेटी स्थापित करने का सुझाव दिया था, जिसे सभा ने ठुकरा दिया, क्योकि, जैसा कि उद्योग मत्री ने कहा था, सरकार को आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण रोकने से सम्बन्धित व्यापक अधिकार पहले से ही काफी प्राप्त है।

[यह उल्लेखनीय है कि सरकारी नीति के दृष्टिकोण से भारत मे औद्योगिक सयोगो को दो वर्गो मे बाँटा जा सकता है—(१) वह वर्ग जिसे प्रोत्साहित करना चाहिए (जैसे—सन् १९५२ मे सरकार ने इण्डियन आयरन एन्ड स्टील कम्पनी और स्टील कॉरपोरेशन आफ बगाल का मिश्रण होने पर जोर दिया था) और (२) वह वर्ग जिसे अप्रोत्साहित करना चाहिए। (जैसे सन् १९५० मे अ-सामाजिक कार्यवाहियाँ करने के अपराध मे सुगर सिन्डीकेट से अपनी मान्यता वापिस ले ली थी।)

STANDARD QUESTIONS

1. Indicate the chief reasons for the modern tendency towards amalgamation of business undertakings Point out the effects of such amalgamation
2. What is big business and why do business tend to become big ?
3. Discuss carefully the merits and demerits of business combinations ?
4. What should be the policy of a State towards Industrial combinations ? Describe in brief the policy adopted by the Government of India

अध्याय २८

भारतीय श्रमिकों की विशेषतायें एवं उनकी कार्यक्षमता, आदि

(Characteristics & Efficiency of Indian Labour)

भारत मे श्रम समस्याओ का उदय—

भारत मे श्रम समस्याय अपेक्षाकृत कुछ नवीन ही है। प्राचीन काल मे श्रमिको की क्या स्थिति थी, उनकी काम करने की दशायें कैसी थी और उनका जीवन स्तर कैसा था, इस विषय म कोई व्यवस्थित विवरण नही मिलता। हां, तत्कालीन ग्रन्थो, साहित्य तथा रीतिरिवाजो के आधार पर अनुमान मे यह कहा जा सकता है कि प्राचीन श्रमिक असगठित, अरक्षित किन्तु कार्य-कुशल थ। पुश्तैनी कलाकारो तथा दस्तकारो द्वारा व गाँवो व नगरो मे कला व दस्तकारी के उद्योग धन्धे किये जाते थे। य लोग गाँव के सेवक भी होते थे तथा नगरो मे दस्तकारी सघो (Craft Guilds) मे सगठित होते थे। प्रवीण दस्तकारो (Master craftsmen) के यहाँ कुछ लोग (Apprentice) दस्तकारी का काम सीखते थे। काम सीखन के बाद वे स्वय पृथक व्यवसाय करने लगते थे। श्रमिक का जो आधुनिक अर्थ लिया जाता है, वह १९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे ही प्रारम्भ हुआ। सन् १८५७ के उपरान्त देश मे नई शासन व्यवस्था स्थापित हुई और आधुनिक उद्योगो व यातायात तथा आधुनिक अर्थव्यवस्था का विकास होना प्रारम्भ हुआ। जैसे-जैसे देश मे उद्योगो का विकास हुआ और नए कारखानो की स्थापना हुई, रेल, तार, डाक, चाय, रबड सूत, जूट, लोह इत्यादि सभी प्रकार के उद्योगो का विकास होने लगा। औद्योगिक क्रान्ति तथा यन्त्रो द्वारा बड पैमाने पर उत्पादन के आधुनिक कारखाने की पद्धति ने ही श्रम की समस्याओ को जन्म दिया। २०वी शताब्दी मे इन समस्याओ का रूप उग्रतर होता गया। एक ओर तो आधुनिक उद्योगो के विकास और दूसरी ओर कुटीर उद्योगो के विनाश तथा कृषि भूमि पर जन-सख्या के उत्तरोत्तर बढने वाले भार के कारण, गाँवो से झुण्ड के झुण्ड कारीगर व किसान नगरो मे जाकर श्रमिको के रूप मे आबाद होने लगे। औद्योगिक नगरो का विकास हुआ और देश मे बम्बई, अहमदाबाद, कलकत्ता, कानपुर, मद्रास और जमशेदनगर जैसे श्रमिक प्रधान नगर विकसित हुए।

इस प्रकार जो एक नया श्रमिक वर्ग उत्पन्न हुआ उसकी कुछ अपनी विशेषताये थी। उसके पास न धन था, न भूमि और न कोई अन्य सम्पत्ति। उनके निवास की

भी जटिल समस्या थी। पर्याप्त व उपयुक्त घरो के अभाव मे भारतीय श्रमिक वर्ग को नगरो की तग, अधेरी और दुर्गन्धपूर्ण गलियो मे नारकीय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ा। प्रारम्भ मे उनकी नौकरी की सुरक्षा के लिए कोई व्यवस्था नही थी जा सकी। उसके काम करने के स्थान की दशाये बडी अनुपयुक्त व स्वास्थ्य के प्रतिकूल थी। उसे १२ से १५ घन्टे तक काम करना पडता था। उसके स्वास्थ्य व चिकित्सा तथा दुर्घटनाओ से रक्षा करने के लिये कोई प्रबन्ध न था। उद्योगपति श्रमिको का निर्दयतापूर्वक शोषण करते थे और श्रमिक अपने स्वामी की दया पर निर्भर एक बेवश व असहाय शोषित प्राणी था।

किन्तु समय बदला। प्रथम विश्व युद्ध ने श्रम-समस्याओ को ऊपर लाकर रख दिया। श्रम तथा पूँजी के बीच खाई, वर्गीय भेदभाव तथा धन व आय की बढती असमानता के कारण श्रमिको और मिल मालिको के बीच वैमनस्य तथा द्वेष की आग भडक उठी। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान मे भारतीय उद्योगपतियो ने भारी लाभ कमाये और श्रमिको से शक्ति से भी अधिक काम लिया। इससे मजदूरो मे कुछ जागृति हुई और उन्होंने अपनी दशा सुधारने के लिए आवाज उठाई, यद्यपि इस आवाज मे बल न था। युद्ध तथा युद्धोत्तर तेजी मे मूल्यो मे असाधारण वृद्धि के कारण जीवनयापन की लागत बढ गई थी और इससे श्रमजीवियो मे बडा असन्तोष छाया हुआ था। मंहगाई, भत्तो, बोनसो या लाभाशो और अधिक मजदूरी प्राप्त करने के लिये हडतालो की देश मे एक बाढ आ गई थी। श्रम-सघो का सगठन हुआ, जिससे श्रमिको को अपने महत्त्व तथा अपनी शक्ति का ज्ञान हुआ। यही नही, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघो व सम्मेलनो मे भी भारतीय श्रम सघो के प्रतिनिधि भाग लेने लगे। सयुक्त राष्ट्र सघ ने भारत को विश्व का आठवाँ औद्योगिक देश घोषित किया तथा भारतवष को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम निर्णयों को स्वीकार कर लागू करना पडा।

कुछ श्रम कल्याणकारी कानूनो का भी निर्माण किया गया, किन्तु श्रमिको मे सगठन का अभाव होने के कारण उनके हितो की उचित रक्षा न हो सकी। सन् १९२६ मे श्रम-सघ अधिनियम के पास होने से उनकी दशा मे सुधार की आशा बधी। सन् १९२९ मे भारत सरकार ने रॉयल श्रम कमीशन की नियुक्ति की, जिसने अपना प्रतिवेदन सन् १९३१ मे प्रस्तुत किया। इसके आधार पर श्रमिको के निवास, कार्य दशाओ, कार्य अवधि, नौकरी की सुरक्षा तथा उनके हितकारी कार्यो के सम्बन्ध म केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो ने अनेक अधिनियम पास किए। तत्पश्चात् सन् १९३७ मे कॉंग्रेस मन्त्रिमन्डलो ने श्रम-हित की एक प्रगतिशील नीति को कार्यान्वित कर न्यूनतम भृत्ति, नौकरी की सुरक्षा, क्षतिपूर्ति इत्यादि की व्यवस्था की।

देश की स्वतन्त्रता के उपरान्त श्रम आन्दोलन को एक नया बल मिला है। आज देश मे औद्योगिक तथा अन्य आर्थिक क्षेत्रो मे श्रमिको के अनेक सगठन कार्य कर

रहे हैं। औद्योगिक श्रमिकों की संख्या लगभग ६० लाख है जो अधिकतर मिलों या कारखानों, खानों, बागानों, रेलों, जहाजों बन्दरगाहों या निजी दूकानों या व्यापारिक संस्थाओं में काम करते हैं। इनमें से लगभग ३० लाख श्रमिक देश के विभिन्न राज्यों के उन कारखानों में काम करते हैं जो कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत आते हैं, १० लाख श्रमिक रेल-उद्योग में काम करते हैं तथा लगभग ७ लाख श्रमिक केन्द्रीय सरकार के संस्थानों में लगे हुए हैं। आज का श्रमिक दिन प्रति दिन अपनी अवस्था व महत्त्व से परिचित होता जा रहा है। इस चेतना के परिणामस्वरूप श्रमिकों की स्थिति सुधरती जा रही है तथापि कार्यक्षमता की दृष्टि से अन्य उन्नत देशों के समक्ष आने में हमारे श्रमिकों को अनवरत परिश्रम की आवश्यकता है। उनकी दशा में सुधार तथा जीवन-स्तर को उठाने में श्रम-संगठनों, उद्योगपतियों तथा सरकार तीनों ही का सहयोग करके उचित दिशा में प्रगतिशील कदम उठाने होंगे। देश के समुचित आर्थिक विकास के लिए एक पूर्ण सन्तुष्ट व सुखी वर्ग की आवश्यकता है। यदि भारत को अपने औद्योगिक विकास की प्रगति में अन्य देशों से कदम मिला कर चलना है, तो उसे अवश्य ही श्रम-समस्याओं को अविलम्ब हल करना पड़ेगा।

भारतीय श्रमिकों की विशेषतायें

(Characteristics of Industrial Labour)

(१) भारतीय कारखाना मजदूरों की प्रवासी प्रवृत्ति—

भारतीय औद्योगिक श्रम की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता, जिसके गम्भीर आर्थिक एवं सामाजिक परिणाम हुए हैं, यह है कि वे अधिकतर गाँवों से आते हैं और यथाशीघ्र अवसर मिलने पर पुनः गावों को वापिस लौट जाते हैं। यही कारण है कि भारत में अभी तक स्थायी श्रमिक वर्ग का उदय नहीं हो पाया है।

भारतीय श्रमिकों की प्रमुख ८ विशेषतायें

१. भारतीय कारखाना मजदूरों की प्रवासी प्रवृत्ति।
२ एकता का अभाव।
३ अनियमित उपस्थिति।
४. अज्ञानता एवं शिक्षा का अभाव।
५ श्रमिकों की पूर्ति उद्योगों की आवश्यकतानुसार न होना।
६ रहन-सहन का निम्न स्तर।
७ श्रमिकों की अक्षमता।
८ भाग्यवादिता।

पाश्चात्य देशों में कारखानों में काम करने वाले व्यावसायिक मजदूरों के स्थायी वर्ग होते हैं तथा वे खेती से एकदम सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं। वहाँ प्रायः अधिकांश मजदूरों का पालन पोषण शहरों में ही होता है तथा कुछ तो गावों में अपना नाता पूर्णतः तोड़कर शहर के निवासी बन जाते हैं। कारखानों के क्षेत्र का लालन-पालन पश्चिमी देशों के श्रमिक की तो श्रेष्ठता के लिए बहुत कुछ उत्तरदायी है, परन्तु इस देश के कारखाना का श्रमिक तो प्रायः प्रवासी होता है और शायद ही कभी गाँव

से सम्बन्ध विच्छेद करता है। अधिकाश मजदूरो का शीघ्र ही गाँव को लौटना तथा एक कारखाने मे अधिक दिन न टिकना अवश्य ही इस बात का द्योतक है कि वे कृषि कार्य अल्पकाल के लिये ही छोडते है। औद्योगिक केन्द्रो के अधिकाश श्रमिक असल म तो ग्रामीण ही होते हैं, जिनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँवो म ही होनी है और ग्रामीण रीति रिवाजो मे ही उनकी आस्था होती है। उनका अभीष्ट गाँव लौटना ही होता है तथा ऐसा करने मे वे प्रायः सफल ही होते हैं।

प्रवासी प्रवृत्ति के कारण—

श्रमिको के गाँव से शहर आने के कारणो पर दृष्टिपात करन पर हम देखेंगे कि (i) कृषि पर पडने वाली विपत्ति का पहला असर भूमिहीन खेतिहर मजदूरो पर ही पडता है, अत उन्हे गाँव छोडकर कारखानो, नौका-निर्माण स्थानो, बगीचो तथा रेल, सिंचाई आदि सरकारी निर्माण-कार्य वाले स्थानो मे अधिक वेतन के लिए काम ढूँढने जाना पडता है। (ii) उन्नत आवागमन के साधन उनके इस प्रवास मे सहायक होते है। उदाहरण के लिए, उत्तर-प्रदेश, बिहार, उडीसा आदि राज्यो तथा बम्बई के रत्नगिरि आदि कुछ जिलो मे जन-घनत्व तथा भूभार इतना अधिक है और अनार्थिक जोतें इतना भयानक रूप धारण कर चुकी है कि साधारण कृषक जीविकोपार्जन के हेतु शहर मे जाने को बाध्य हो जाते हैं। (iii) इस प्रवास कार्य मे सयुक्त परिवार प्रणाली भी सहायक होती है। परिवार के कुछ सदस्य अपने घर तथा खेत से सम्बन्ध विच्छेद किए बिना ही उसे परिवार के अन्य व्यक्तियो की देख-रेख मे छोडकर गाँव से चले जाते है। (iv) कभी-कभी कृषक गाँव के साहूकार से बचने या भूमि और पशु खरीदने के लिए पर्याप्त धन कमाने के उद्देश्य से शहरो मे नौकरी तलाश करते हैं। (v) फिर कभी अपनी जीविका और भावी जीवन को उत्तम बनाने की आशा से निम्न श्रेणी के ग्रामीण श्रमिक (जो कि दलित वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं) शहरो और कस्बो को चले जाते हैं। चूँकि उनके नगर जाने का प्रधान कारण कष्ट है, न कि महत्त्वाकांक्षा, अत हम यह कह सकते हैं कि गाँवो से नगरो को प्रवास करने वाले सबसे कम कुशल और अत्यन्त निरुपाय ग्रामीण होते हैं। श्रम कमीशन के शब्दो मे :—

"प्रवास की प्रेरक शक्ति एक सिरे से आती है, अर्थात् गाँवो म। औद्योगिक श्रमिक नागरिक जीवन के आकर्षण मे शहरो मे नही जाता और न उसके प्रवास का कारण महत्त्वाकाक्षा ही होती है। शहर स्वय उसके लिए कोई आकर्षण की वस्तु नहीं है और अपना गाँव छोडते के समय उसके मन म जीवन की आवश्यकताओ की प्राप्ति के अतिरिक्त और कोई भावना नही रहती। बहुत ही कम औद्योगिक-श्रमिक शहर म रहना चाहेंगे, यदि उन्हे गाँव म जीवनयापन के लिए पर्याप्त अन्न और वस्त्र मिल जाय। ये नगर की ओर आकर्षित नही होते, वरन् ढकेले जाते है।"

प्रवासी प्रवृत्ति के आर्थिक एवं सामाजिक परिणाम—

(i) प्रवासी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप कारखानो मे काम करने वालो के

कितने ही वर्ग अपने को एकदम अपरिचित रीति-रिवाजों और परम्पराओं के मध्य पाते हैं। यह भी हो सकता है कि वहाँ भाषा भी दूसरी हो।

(ii) पुरानी प्रथाओं और मान्यताओं के बन्धन ढीले पड जाते है, नवीन सम्बन्ध शीघ्रता से नही स्थापित हो पाते। फलत जीवन अधिकाधिक वैयक्तिक हो जाता है।

(iii) जलवायु के अत्यधिक परिवर्तन, दोषपूर्ण भोजन स्थानाभाव के कारण अत्यधिक भीड-भाड, सफाई का अभाव तथा पारिवारिक जीवन से विच्छेद होने के बाद पुन मिलने का प्रलोभन इन सबका सयुक्त प्रभाव श्रमिक के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा पडता है।

(iv) कुछ दुर्व्यसनो के कारण श्रमिक के नैतिक जीवन का और भी पतन होता है। शराब और जुआ इन दुर्व्यसनो के उदाहरण है जो कि गावो मे अपेक्षाकृत अज्ञात है।

(v) चूँकि श्रमिक के मन म गाँव लौटने की इच्छा सदैव बनी रहती है, अत. वह अपनी नागरिक वृत्ति मे स्थायी रुचि उत्पन्न नही कर पाता। यही कारण है कि वह उच्चकोटि की प्राविधिक कुशलता प्राप्त नही कर पाता।

(vi) उसके बार-बार गाव लौटने तथा अन्य कारणो से मालिक और श्रमिक के बीच सम्पर्क की घनिष्टता नष्ट हो जाती है और उनमे प्रभावपूर्ण सगठन का भी अभाव हो जाता है।

(vii) श्रमिक जब लम्बी अनुपस्थिति के बाद लौटता है तो यह निश्चित नही होता कि उसे काम मिलेगा ही। पुन काम मिलने की कठिनाइयाँ उसे साहूकार, मजदूरो के ठकेदार, शराब बेचने वाले आदि की दया पर आश्रित कर देती है।

क्या श्रमिको का गाँवों से सम्पर्क उचित है ?

जैसा कि हम पहले सकेत कर चुके है श्रमिको का अभी गाव लौटना ही होता है। अधिकाश श्रमिक अपना परिवार गावो मे ही रखते है। शहर मे अपने पति के साथ आने वाली पत्नी भी प्रसव के समय प्राय गाव ही चली जाती है। शहर मे रहते हुए उनका सम्बन्ध गाव म इसलिए भी नही टूट पाता कि वहाँ उनको अपने परिवार, किसी सम्बन्धी या अपने साहूकार को कुछ रकम भेजनी ही होती है।

श्रम आयोग के मतानुसार श्रमिको का गाँवो से सम्पर्क लाभहीन नही है। (i) शहरो की अपेक्षा गावो के अधिक स्वास्थ्यप्रद वातावरण मे पालित होने के कारण ग्रामीण श्रमिको का स्वास्थ्य अधिक उत्तम होता है। (ii) समय-समय पर गाव जाने से खोई हुई मानसिक और शारीरिक शक्ति फिर से लौट आती है। (iii) बीमारी और वृत्तिहीनता के अवसर पर गाँव का घर एक शरण-स्थल का काम देता है। जिस प्रकार गाँवो के आर्थिक भार को नगर प्रवास हल्का कर देता है उसी प्रकार गाँव नगरों

की वृत्तिहीनता के प्रति एक प्रकार की सुरक्षा प्रदान करते हैं। (iv) ग्रामीण और नागरिक जीवन का सयोग दोनो (नगरो और गावो) के लिए हितकर होता है। इससे ग्रामीण जीवन मे बाहरी दुनियाँ का थोडा सा ज्ञान आ जाता है तथा पुरानी जर्जर प्रथाओ की शृङ्खला को तोडने मे सहायता मिलती है। (v) इसी प्रकार, नागरिको को भारतीय जीवन की वास्तविकताओं का सूक्ष्म ज्ञान हो जाता है, अतः हमारा मत है कि इस समय गावो से सम्बन्ध की कडी को बनाये रखना लाभदायक है। हाँ, यह ध्यान रखना चाहिए कि वह सुनियमित और स्वास्थ्यप्रद हो।

(२) एकता का अभाव—

भारतीय उद्योगो मे श्रमजीवी प्रायः बहुत दूर-दूर से काम करने आते है। ऐसे विरले ही औद्योगिक नगर है जिन्हे निकटवर्ती क्षेत्रो से ही समस्त श्रमिक प्राप्त हो जाते हो। परिणामस्वरूप, मजदूरो का वर्ग एक ऐसा विचित्र समुदाय बन गया है, जिसमे भिन्न-भिन्न धर्मों के, भिन्न-भिन्न भाषा बोलने वाले, भिन्न-भिन्न रहन-सहन एव रीति रिवाज के लोग होते है। मजदूर वर्ग मे इन अनेक भिन्नताओ के कारण सगठन नही है। सगठन तो दूर रहा, पारस्परिक मेल-जोल भी उनमे बहुत कम है।

(३) अनियमित उपस्थिति—

जैसा हम ऊपर सकेत कर चुके है, भारतीय श्रमिक कारखानो के निकटवर्ती गाँवो अथवा अन्य राज्यो मे काम करने के लिए नगरो मे आते हैं, अतः अपने गाँवो के प्रति उनका आकर्षण घना रहता है। वे समय-समय पर गाँव जाते रहते है। कृषि क्षेत्रो से आने वाले श्रमिक कृषि मौसम मे अथवा फसल पर, जब गाँवो मे अधिक काम होता है, अपना काम छोड कर चले जाते हैं, इससे उनकी उपस्थिति कारखानो मे अनियमित रहती है। निकटवर्ती गावो से आने वाले श्रमिक तो प्रायः प्रति मास ही अपने गाँव जाया करते हैं, जिससे कारखानो के काम मे बडी बाधा पडती है।

(४) अज्ञानता एवं शिक्षा का अभाव—

भारत की सम्पूर्ण जन-सख्या मे से केवल १७% व्यक्ति पढे-लिखे हैं। इन पढे-लिखे व्यक्तियो मे से औद्योगिक श्रमिको का भाग तो नाममात्र को ही होगा। सामान्य शिक्षा का अभाव होने के कारण श्रमजीवी पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ अपने कर्त्तव्य का निष्पादन नही कर पाते। साथ ही, भारतीय श्रमजीवियो मे जब सामान्य शिक्षा का अभाव है तो औद्योगिक शिक्षा का अभाव हो, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। यही कारण है कि हमारे श्रमजीवी लापरवाही के साथ यन्त्र-औजारों का उपयोग करते है तथा अपने काम का महत्त्व नही समझते।

(५) श्रमिको की पूर्ति उद्योगो की आवश्यकतानुसार नहीं—

भारतीय श्रमिको मे कुशल श्रमिको की अपेक्षा अकुशल श्रमिको की संख्या अधिक है। इसका एकमात्र कारण यही है कि हमारी अधिकाश जन सख्या कृषि उद्योग मे लगी हुई है। सन् १६५१ की जन-गणना के अनुसार, भारत की २५ करोड

जन सख्या कृषि पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से निर्भर है तथा शेष जन सख्या सगठित उद्योग खान उद्योग यातायात व्यापार एव वाणिज्य पर निर्भर है।

(६) रहन सहन का निम्न स्तर—

भारतीय श्रम जीवियो के रहन-सहन का स्तर अत्यन्त गिरा हुआ है। इसका प्रधान कारण यह है कि उनको पारितोषण बहुत कम मिलता है। कोई भी व्यक्ति जब तक उसके पास अपनी समस्त आवश्यकताओ की सन्तुष्टि के हेतु साधन न हो अपने रहन सहन का स्तर ऊचा नही कर सकता। अत यह दोष श्रमिको का नही वरन् उन परिस्थितियो एव वातावरण का है जिनके अन्तर्गत वे पले है और अपना जीवन व्यतीत करते है।

(७) श्रमिकों की अक्षमता—

भारतीय श्रमिको की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि अन्य देशो की तुलना मे हमारे श्रमिको की कार्यक्षमता बहुत कम है। श्री एलेक्जेंडर मक्राबर्ट के अनुसार भारतीय श्रमिक की अपेक्षा एक अग्रज श्रमिक ४ गुना काम करता है परन्तु भारतीय श्रमिक की अक्षमता का विचार करते हुए हम यह भी स्मरण रखना चाहिये कि श्रमिको की कुशलता निम्न बातों पर निभर करती है—जलवायु भर्ती पद्धति काम करने की परिस्थिति रहन-सहन का स्तर तथा श्रम प्रबन्ध। इन घटको के विवेचन से ही किसी देश के श्रमिको की अक्षमता के विषय मे समुचित निर्णय किया जा सकता है। काम करने की परिस्थिति काम के घण्टे यन्त्र सामग्री औद्योगिक शिक्षा एव श्रम प्रबन्ध आदि कुछ ऐसी बाते है जो श्रमिको के ऊपर निभर न रहते हुए उद्योग पतियो और निर्माताओ के ऊपर निभर रहती हैं तथा जिनकी समुचित व्यवस्था की पूर्ण जिम्मेदारी उनके ही ऊपर होती है इसलिए यह कहना यथार्थ है कि किसी भी देश की औद्योगिक क्षमता की जिम्मेदारी उद्योगपतियो पर निभर होती है। इस दृष्टि से यदि इस कसौटी पर भारतीय श्रमिको की तुलना अन्य देशो के श्रमिको के साथ कार्यक्षमता मे की जाय तो यह स्पष्ट है कि भारतीय श्रमिको की काम करने की परिस्थिति तथा उनको दी जाने वाली सुविधाये अन्य देशो की तुलना मे नही के बराबर है अत श्रमिको की अक्षमता उनका वयक्तिक दोष न होते हुए उस परिस्थिति का दोष है जिसमे भारतीय श्रमिक रहता है एव जिस परिस्थिति मे उसे काम करना पडता है।

(८) भाग्यवादिता—

भारतवासी (विशेषत यहा का श्रमिक वर्ग) बडे भाग्यवादी है। अपने जीवन के सुख-दुख को वे भाग्य की देन समझते हैं। हुई है सोई जो राम रचि राखा मे उनका इतना विश्वास है कि वे अपनी उन्नति के लिए पुरुषार्थ करने को प्रयत्नशील भी नही होते। भाग्य मे होगा तो मिल जायगा ऐसा सोच कर व हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाते हैं।

भारतीय श्रमिको की कुशलता
(Efficiency of Indian Industrial Labour)

क्या भारतीय श्रमिक वास्तव मे अकुशल हैं ?—

भारतीय श्रमिको की अकुशलता उनकी लोकप्रिय विशेषता है। साधारणतः यही कहा जाता है कि भारतीय श्रमिक अदक्ष एव अकुशल है। औद्योगिक कमीशन के सम्मुख सर अलेक्जेन्डर मैक रावर्ट (Sir Alexander Mac Robert) ने अपनी साक्षी मे यह कहा कि एक अग्रेज श्रमिक भारतीय श्रमिक से चौगुना कुशल होता है। सर क्लीमेट सिम्पसन (Sir Clement Simpson) के अनुसार लङ्काशायर की सूती मिल का एक श्रमिक भारतीय सूती कपड की मिल मे काम करने वाले २·६७ श्रमिको की योग्यता के बराबर है, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय की ओर से की गई जाच इस धारणा को गलत सिद्ध कर देती है। इस जाँच से यह प्रकट है कि योरोप की तुलना मे हमारे श्रमिको की अक्षमता निर्विवाद सत्य नही है। कुछ उद्योगो मे तो वह अन्य देशो के श्रमिको के बराबर कुशल है। अन्य उद्योगो मे भी वह पूरी तरह अक्षम नही कहा जा सकता। यदि योरोपीय श्रमिक भारतीय श्रमिको की अपेक्षा अधिक उत्पादन करते हैं तो वे अधिक शिक्षा प्राप्त भी होते हैं, उनको अधिक भृत्ति एव अन्य सुविधायें भी मिलती हैं। दूसरे शब्दों मे भारतीय श्रमिक यदि अक्षम है तो अपने दोष के कारण नही, अपितु उन परिस्थितियो के कारण है जिनमे वह रह रहा है। अक्षमता के प्रमुख कारण इस प्रकार है —

भारतीय श्रम की अक्षमता के कारण एव उन्हें दूर करने के उपाय —

(१) प्रवासी प्रवृत्ति इस प्रवृत्ति के कारण श्रमिक फसल के समय तथा अन्य विशेष उत्सवो पर अपने गाँव आते-जाते रहते हैं जिससे भारत मे अभी तक स्थायी श्रमिक वर्ग का उदय नही हो पाया है। इनकी इस प्रवृत्ति का यह परिणाम होता है कि वे प्रायः कारखानो मे अनुपस्थित रहते है। इससे उत्पादन बडा अनिश्चित हो जाता है।

इस दोष को दूर करने एव औद्योगिक केन्द्रो मे श्रमिको को स्थायी रूप से रहने का प्रोत्साहन देने के लिए शहरी जीवन का सुधार कर उसे अधिक आकर्षक बनाना चाहिए।

भारतीय श्रमिको की अक्षमता के प्रमुख १२ कारण

१. प्रवासी प्रवृत्ति।
२. शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओ का अभाव।
३. निर्धनता और निम्न जीवन स्तर।
४. अल्प वेतन।
५. शारीरिक दुर्बलता।
६. जलवायु।
७. स्वतन्त्रता एव आशा का अभाव।
८. ऋणग्रस्तता।
९. कार्य के दीर्घ घन्टे।
१०. काम करने की दशायें।
११. भरती की दोषपूर्ण पद्धति।
१२. दोषपूर्ण प्रबन्ध।

(२) शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव—सामान्य ज्ञान का स्तर हमारे श्रमिकों में बहुत नीचा है। माता-पिता की अशिक्षा के कारण घर का वातावरण शिक्षाप्रद नहीं होता। इसके अतिरिक्त उपलब्ध शिक्षा-प्रणाली बहुत सकुचित है। अभी प्रारम्भिक शिक्षा भी सब जगह निःशुल्क तथा अनिवार्य नहीं हुई है। शिक्षा न मिलने से वे कट्टर, अन्धविश्वासी, भाग्यवादी और साहसहीन हो गये हैं। इन सब बातों से श्रम की अकुशलता बढती है। सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त हमारे श्रम-जीवियों के लिये शिल्पिक प्रशिक्षण का सुअवसर भी नहीं मिलता। अन्य प्रगतिशील राष्ट्रों मे, जहाँ श्रमिकों को पर्याप्त रूप से प्रशिक्षण दिया जाता है, श्रमिक जटिल से जटिल मशीन का प्रयोग सरलता से कर सकते है, किन्तु भारत मे ऐसा नहीं है। हमारे श्रमिकों को मशीनों का उपयोग जानने तथा अन्य देशों मे होने वाली श्रमिकों की गतिविधियों को समझने मे अधिक समय लगता है। उनकी इस अज्ञानता के कारण उत्पादन क्षमता गिर जाती है।

अन्य प्रगतिशील देशों की भाँति भारत मे भी प्राथमिक शिक्षा तो कम से कम अनिवार्य होनी ही चाहिए। इसके अतिरिक्त अधिक से अधिक शिक्षण सस्थायें खोलकर शैल्पिक प्रशिक्षण की सुविधायें सुगम एव सुलभ करनी चाहिए। सामान्य शिक्षा से श्रमिकों का मानसिक विकास होगा और औद्योगिक शिक्षा से व्यावसायिक अज्ञानता दूर होकर कार्यक्षमता बढ़ेगी।

(३) निर्धनता और निम्न जीवन स्तर—भारतीय श्रमिक की दरिद्रता सर्व-विदित है। दरिद्रता के कारण उसे भर पेट भोजन एव पर्याप्त वस्त्र उपलब्ध नहीं होते। ऐसी परिस्थितियों मे दूध, फल आदि निपुणतावर्द्धक वस्तुओं की वह कल्पना भी कैसे कर सकता है? परिणामस्वरूप कार्यक्षमता गिर जाती है।

अस्तु, श्रमिकों की निर्धनता को दूर करके उनका जीवन स्तर ऊँचा करने के उपाय सोचना चाहिए। कुटीर उद्योगों की प्रगति से यह समस्या काफी सीमा तक हल की जा सकती है।

(४) अल्प वेतन—इसका भी भारतीय श्रमिकों की कुशलता पर बुरा प्रभाव हुआ है। दरिद्रता के कारण वे भली प्रकार अपना पेट भी नहीं भर सकते। परि-स्थितिवश उनकी आय का काफी भाग ऋण चुकाने एव नशा करने मे निकल जाता है और जो शेष रहता है वह उनकी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं होता। अपना स्वास्थ्य बढाना तो दूर रहा, पेट भरने को पर्याप्त रोटी भी उन्हे नहीं मिल पाती। इस प्रकार कार्यक्षमता दिनों दिन कम होती जाती है।

इस दोष को दूर करने के लिये श्रमिकों को कम से कम इतनी मजदूरी अवश्य दी जाय, जिससे कि वे अपना तथा अपने परिवार का उचित भरण-पोषण कर सकें।

(५) शारीरिक दुर्बलता—निर्धनता एव अल्प वेतन के कारण श्रमिकों का मानसिक एव शारीरिक स्वास्थ्य खराब रहता है। अधिक समय तक वे निरन्तर कठिन

परिश्रम करने के लिए अपने को असमर्थ पाते हैं। एक बार रोगी होने पर वे अच्छी तरह अपना इलाज भी नही करा सकते। भारत के अनेक क्षेत्रो मे मलेरिया आदि रोगो से अधिकांश श्रमिक पीडित रहते हैं। इससे उनकी कार्यक्षमता गिरती है और उत्पादन को भी क्षति पहुँचती है। सन् १९५१ मे बम्बई के एक कारखाने मे हिसाब लगा कर देखा गया था कि वहाँ २५ १% श्रमिको को जुकाम तथा फेफडे सम्बन्धी राग, २६ ०% श्रमिका को दस्त, पेचिस व हैजा आदि, ५'३% को गठिया या वात सम्बन्धी रोग, ० ८% को मलेरिया, ७'८% को चोट (काम करते समय नही), ०'८% को छूत के तथा ३४'२% श्रमिको को विविध प्रकार के रोग हुए। निम्न-लिखित तालिका से हम कारखाने मे इस प्रकार हुई समय की क्षति का अनुमान लगा सकते है। यही स्थिति प्राय. भारत के सभी कारखाने और उद्योगो मे है* —

रोग	प्रत्येक रोग के कारण समय के विनाश का प्रतिशत	प्रत्येक रोग के कारण अनुपातिक दिनो की क्षति
(१) फेफडा सम्बन्धी रोग	४०'१	६'२
(२) पाचन सम्बन्धी रोग	२६'६	६'०
(३) मलेरिया	५'४	७ ८
(४) मूत्र सम्बन्धी रोग	०'२	६'०
(५) छूत के रोग	१'१	११ ७
(६) चोट (काम पर नही)	२ ७	६'४
(७) विविध	२३'४	७ ४

इसके अतिरिक्त गाँव के स्वतन्त्र और स्वच्छ वातावरण से आकर नगरो की गन्दी व सकीर्ण गलियो मे रहने, नगरो की विचित्र परिस्थितियो मे विभिन्न प्रकार की नैतिक बुराइयो का आखेट होने, मदिरा, जुआ और भ्रष्टाचार मे फँस जाने तथा अन्य तत्सम्बन्धी विषमताओ के परिणामस्वरूप श्रमिको की क्रियात्मक शक्तियो का पतन हो जाता है। शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के इस प्रकार नष्ट हो जाने से उनकी कार्य-क्षमता पर बडा घातक प्रभाव पडता है।

इस दोष को दूर करने के लिए श्रमिक के लिए चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओ का प्रबन्ध करना चाहिये और मनोरजन के स्वस्थ साधन उपलब्ध कर उनका मद्य-पान एव जुए का व्यसन छुडाना चाहिये।

(६) जलवायु— इसका भी कार्यक्षमता पर निर्णयात्मक प्रभाव पडता है। परिश्रम के कार्य के लिये शीतोष्ण जलवायु उपयुक्त होती है, लेकिन हमारे देश की

* देखिये इण्डियन लेबर ईयर बुक (१९५१-५२), पृष्ठ २५४।

जलवायु गर्म प्रदेश की है । गर्मी के मौसम मे तिलमिलाती धूप मे देर तक कडा परिश्रम करना सम्भव नही होता । बङ्गाल तथा तराई प्रदेशो की जलवायु तो बडी खराब है ।

बिजली के पखो एव नमीकरण यन्त्र (Humidifiers) आदि कृत्रिम साधनो की सहायता से यह कठिनाई भी कुछ सीमा तक दूर की जा सकती है ।

(७) **स्वतन्त्रता और आशा का अभाव**—इसका भी श्रमिको की कार्यक्षमता पर विशेष प्रभाव पडता है । कड निरीक्षण और आशा के अभाव म श्रमिक की कार्य-क्षमता मे कमी होना स्वाभाविक है ।

इस दोष के निवारण के लिये प्रेरणात्मक भृत्ति-पद्धति (Progressive Wage System) का अनुकरण करना चाहिये ।

(८) **ऋणग्रस्तता**—अर्थ-शास्त्री डार्लिङ्ग के अनुसार भारतीय श्रमिक ऋण मे ही जन्मता है, ऋण म ही उसका पालन पोषण होना है और ऋण मे ही उसकी मृत्यु हो जाती है । ऋण प्रगति मे बाधक होते है ।

अस्तु, श्रमिको को शीघ्र से शीघ्र ऋण मुक्त किया जाय और सहकारी आन्दोलन द्वारा उन्हे मितव्ययिता का पाठ पढाया जाय ।

(६) **काम के दीर्घ घन्टे**—यद्यपि कारखाना अधिनियम द्वारा काम के घण्टो का अधिकतम निश्चय कर दिया गया है, किन्तु भारत के गर्म जलवायु को देखते हुए वे अब भी अधिक है । वर्तमान समय मे सदा चलन वाले कारखानो मे ४८ घन्टो का सप्ताह और मौसमी कारखाना मे ५४ घण्टो का सप्ताह होना है लेकिन यह अधिनियम अनेक छोटे कारखाना मे लागू नही होता । असगठित उद्योगो, कुटीर उद्योगो तथा कृषि म श्रमिको के काम करने के घण्टे दीर्घ अनियमित तथा मालिक की इच्छा पर निर्भर करते है । ऐसी परिस्थिति मे भारतीय श्रमिको की कार्य-क्षमता कम होना स्वाभाविक है ।

अत उचित सन्नियम द्वारा इस दोष का निवारण किया जाय ।

(१०) **काम करने की दशाएँ**—भारतीय कारखानो की दशायें, जहाँ हमारे श्रमजीवी काय करते है, सन्तोषजनक नही है ।

कार्य-कुशलता को स्थिर रखने के लिये स्वच्छ जल, वायु विश्राम आदि की पूर्ण व्यवस्था होना आवश्यक है ।

(११) **भरती की दोषपूर्ण पद्धति**—इसके कारण भी श्रमिको की कार्यक्षमता गिरी हुई है । श्रमिको की भरती जॉबर करते ह, जो प्रत्येक भरती होने वाले से दस्तूरी लेते है । श्रमिको की नियुक्ति, उन्नति एव एक विभाग से दूसरे विभाग को स्थानान्तर सब कुछ इस जॉबर पर ही निर्भर है, अत श्रमजीवियो को नाना प्रकार से उनकी सेवा शुश्रूषा करते रहना पडता है । जॉबरो की आय नई नियुक्तियो पर ही निर्भर होती है, अतः वे तरह तरह के बहाने बनाकर पुरानो को निकालते और नयो को भरती

करते रहते है। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि श्रमिक की कार्यक्षमता कम हो जाती है और उद्योग का उत्पादन व्यय बढ जाता है।

इस दोष को दूर करने के लिये जॉबर पद्धति का अन्त करके श्रमिको की भर्ती वैज्ञानिक आधार पर करनी चाहिये।

(१२) **दोषपूर्ण प्रबन्ध**—बहुत सीमा तक यह भी श्रमिको की अक्षमता के लिये दायी है। प्रबन्धको का दुर्व्यवहार, काम का दोषपूर्ण विभाजन घिसी हुई यन्त्र सामग्री आदि ऐसे दोष है, जिनसे काम मे जी नही लगता।

अस्तु, भारतीय श्रमिको की कार्य-कुशलता बढाने के लिए उत्तम मशीनो और कच्चे माल का प्रयोग आवश्यक है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि कुशल प्रबन्ध के निरीक्षण मे उनसे कार्य लिया जाय।

भारतीय औद्योगिक श्रमिको की गृह-समस्या

श्रमिको के निवास की गम्भीर समस्या—

भोजन और वस्त्र के उपरान्त 'मकान' मनुष्य की तृतीय प्रमुख आवश्यकता है। यो तो हमारी ये तीनो ही समस्याये गम्भीर हैं, किन्तु मकानो की समस्या, मुख्यत. औद्योगिक नगरो मे, बडा विकराल रूप धारण करती जा रही है। नगरो की बढती हुई जन सख्या तथा गृह निर्माण की मन्द गति इसके लिए विशेष रूप से उत्तरदायी हैं। प्रत्येक बडे औद्योगिक नगर मे एक इच भी भूमि कही खाली नही और आबादी बहुत घनी है। नगर निवासियो म कारखानो म काम करने वाला श्रमिक वर्ग सबमे बुरे मकानो मे रहता है। अनेक नगरो म तो उनके निवास स्थानो का 'मकान' की सज्ञा देना ही लज्जा की बात है। उन्हे मानव के योग्य नही कहा जा सकता। कानपुर मे भारत के प्रधानमन्त्री पडित जवाहरलाल नेहरू ने २ अक्टूबर सन् १९५२ को श्रमिको के निवास स्थान का निरीक्षण करते हुए उन्हे 'नरक कुण्ड' कह डाला। पडित नेहरू ने कहा कि भारतीय श्रमिको की निवास समस्या बहुत ही जटिल है और उनके रहने के स्थान मैली-कुचैली गली (Slums) से अच्छे नही कहे जा सकते। अन्य औद्योगिक केन्द्रो मे भी उनकी गदी बस्तियाँ होती है, जहाँ सफाई का नाम नही कोठरी मे सूर्य का प्रकाश नही पहुचता, फर्श मे नमी रहती है, रोशनदान का पता नही तथा स्वच्छ वायु आ ही नही सकती। अधिकाश श्रमिक ऐसे गन्दे वातावरण मे जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे मकानो मे रहने वाले श्रमिको से कार्यक्षमता की कैसे आशा की जा सकती है? ऐसे स्थानो को बम्बई मे (Chawl), मद्रास मे चेरी (Cherry), कलकत्ता मे बस्ती (Basti) तथा कानपुर मे अहाता (Ahatas) कहते है। अब हम श्रम जाँच समिति की रिपार्ट के आधार पर भारत के प्रमुख औद्योगिक नगरो की औद्योगिक बस्तियो का सक्षिप्त परिचय देंगे।

(१) बम्बई मे श्रमिको की चॉलें (Chawls) अत्यन्त ही अस्वास्थ्यकर है, जहाँ एक ही कमरे मे ६-७ श्रमजीवी रहते है। उन्हे न तो कौटुम्बिक वातावरण ही

मिलता है और न स्वच्छ वायु तथा प्रकाश ही। श्री हर्स्ट (Hurst) ने इस प्रकार मजदूरों के बसाने को गोदाम में माल भरने के समान बताया है। बम्बई में ५०% से अधिक श्रमिक एक कमरे वाले मकान में रहते हैं, जबकि लन्दन के केवल ६% श्रमिक १ कमरे वाले मकान में निवास करते हैं। बम्बई के ६ मिकानों में मकानों को पुनः किराये पर देने की प्रथा है, जिससे घनी आबादी की समस्या और भी बढ़ जाती है। किराये में बचत करने के विचार से ४ या ६ श्रमिक एक कोठरी किराए पर ले लेते हैं। उसी के अन्दर चारों कोनों में खाना पकाया जाता है। श्री शिवाराम ने लिखा है कि जब बम्बई में मजदूरों की बस्ती में एक लेडी डाक्टर मरीज देखने गई तो उन्होंने देखा कि एक कमरे में ४ गृहस्थियाँ रहती थीं, उनके सदस्यों की संख्या २४ थी। चारों कोनों में चूल्हे बने हुए थे, सारा कमरा धुयें से काला हो रहा था। बम्बई के औद्योगिक श्रमजीवियों के रहने की दशा के सम्बन्ध में श्रीयुत हर्स्ट का निम्न वर्णन बड़ा हृदय-स्पर्शी है—"रहने की दशायें यहाँ सबसे खराब हैं। एक सकरी गली में जिसमें कि दो व्यक्ति एक साथ नहीं जा सकते (लेखक के) घुसने के पश्चात् इतना अन्धेरा था कि हाथ से टटोलने पर कमरे का दरवाजा मिला। उस कमरे में सूर्य का लेशमात्र भी प्रकाश न था। ऐसी दशा दिन के १२ बजे थी। एक दियासलाई जलाने के पश्चात् ज्ञात हुआ कि ऐसे कमरे में भी अनेक श्रमिक रहते हैं।" श्रम के शाही कमीशन ने तो बम्बई की चालों के सम्बन्ध में यहाँ तक लिखा है कि इनको पूर्णतया तोड़ने के अतिरिक्त इनमें सुधार के लिए लेशमात्र भी गुंजायश नहीं है।

(२) **अहमदाबाद** के श्रम-निवास स्थान भी अधिक सन्तोषजनक नहीं कहे जा सकते। यहाँ की नगरपालिका ने हरिजनों तथा अन्य श्रमिकों के लिए कुछ मकानों का निर्माण किया है। इसके अतिरिक्त अहमदाबाद मिल्स हाउसिंग कम्पनी एवं सूती वस्त्र मिल श्रम-संघ की ओर से भी अच्छी व्यवस्था की गई है। श्रम-संघ द्वारा निर्मित कॉलोनी में रहने वाले श्रमजीवियों से १०) मासिक किराया लिया जाता है और २० वर्ष के उपरान्त जिस मकान में वे रहते हैं वह उनका हो जाता है। प्रत्येक मकान में दो कमरे, एक रसोईघर तथा एक बरामदा है। अहमदाबाद में श्रमिकों की गृहनिर्माण सहकारी समितियाँ भी हैं।

(३) **कलकत्ते** की दशा भी बम्बई से अच्छी नहीं है। यहाँ बम्बई की अपेक्षा कम दाम पर भूमि मिल जाती है। यहाँ मजदूरों के घर झोपड़ियों की कतार हैं, जिन्हें 'बस्ती' कहा जाता है। ये झोपड़े मिल-मालिकों द्वारा नहीं बनाए गए हैं, वरन् सरदार (Sirdar) एवं कुछ मकान मालिकों ने बनवाए हैं। कलकत्ता नगर निगम की रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि इन झोपड़ियों का निर्माण बिना किसी योजना के हुआ है। प्रायः सभी निवास-स्थान कच्चे हैं और श्री केसे (Casey) के शब्दों में "कोई भी मानव वहाँ रहना पसन्द न करेगा।" चारों ओर गन्दगी का साम्राज्य है। मलेरिया और तपेदिक का काफी जोर रहता है। घरों में न नल है न सण्डास। पूरे मुहल्ले के लिए

एक या दो नल तथा एक सण्डास होगा, जिस पर बिचारे श्रमजीवी लाइन लगाकर खडे रहते है। छोटी-छोटी बातो पर, जैसे—पानी के लिए, नित्य झगडे-फसाद होते रहते हैं। सडकें और गलियाँ खराब, गन्दी, पतली तथा प्रकाशहीन है, जिन पर रात्रि मे चलना खतरनाक है। गत कुछ वर्षो मे सवश्री बिडला जी क सद्प्रयत्नो के परिणाम-स्वरूप जूट मिल कर्मचारियो के लिये अच्छे घरा की व्यवस्था की गई है, जिनमे लगभग ५०% जूट-मिल-श्रमिक रहते है, किन्तु शेष 'बस्तियो मे ही निवास करते है, जिनकी दशा अत्यन्त दयनीय है।

(४) कानपुर उत्तरी भारत का 'मैनचेस्टर' कहलाता है, अतएव यहाँ श्रमिको के निवास के लिये समुचित व्यवस्था होना नितान्त आवश्यक है। यद्यपि कानपुर मे नगरपालिका, इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट एव कुछ सेवायोजको ने श्रमिको के निवास के लिए आदर्श व्यवस्था की है, किन्तु फिर भी आज यहा 'अहाते' तथा 'बस्तियाँ' दृष्टिगोचर होती है, जिनकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। उत्तर-प्रदेश की सरकार ने प्रत्यक्ष रूप से गृह समस्या के निवारणार्थ यहाँ कुछ भी नही किया। हाँ, सन् १९४३-४४ मे राज्य सरकार ने २,४०० परिवारो के लिये क्वाटर बनवाने के हेतु इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट को ३०३ लाख रुपए का ऋण दिया। तब मे प्रति वर्ष यह सस्था कुछ न कुछ मकान बनवाती रही है, जिनका किराया ४) प्रति माह है। सन् १९३८ की कानपुर श्रम जाँच समिति की रिपोर्ट से पता चलता है कि यहाँ सेवायोजको की ओर से केवल ३,००० मकान बनाए गए, जिनम १०,००० श्रमिक रहते हैं। सन् १९३८ से सन् १९४३ तक स्थिति मे कोई विशेष परिवतन नही हुआ है। सन् १९४३ म यहाँ श्रमिको की सख्या १,०३,००० थी। इसमे से केवल १०% श्रमजीवियो के रहने के लये सेवायोजको ने व्यवस्था की। यहाँ के सेवायोजको मे से ब्रिटिश इण्डिया कॉरपोरेशन का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिसन मैक रोहटगज तथा अलेनगज मे १,६६० श्रम-क्वार्टर्स बनवाए। इन क्वार्टरो मे जल, प्रकाश, स्वच्छ वायु आदि की तो सुव्यवस्था है ही, इसके अतिरिक्त प्रत्येक कॉलौनी के लिय एक शिक्षण सस्था एव डिस्पैन्सरी भी है। सर्व श्री वेग सूदरलैंड एण्ड कम्पनी लि० के प्रबन्ध के अन्तर्गत एलगिन मिल्स ने भी अपने श्रमजीवियो के लिये सुन्दर मकानो का निर्माण करवाया है। एलगिन मिल्स से क्वार्टरो मे अन्य सुविधाओ के साथ साथ बिजली की रोशनी का भी प्रबन्ध है। इसी प्रकार सर्वश्री जुग्गीमल कमलापति की ओर मे भी उनके श्रमिको के निवास के लिए एक पृथक कॉलौनी का निर्माण किया गया , जिसमे प्रायः सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। कानपुर की नगरपालिका ने भी निम्न कोटि के श्रमिको के लिय (जैसे भगी एव पार्क तथा सार्वजनिक उद्यानो मे काम करने वाले कर्मचारी) निवास की अच्छी व्यवस्था की है।

इतना होते हुए भी कानपुर की श्रम-बस्तियो एव अहातो मे सहस्रो श्रमिक रहते है। श्रम के शाही कमीशन ने अहातो का वर्णन इस प्रकार किया है—"प्रायः

प्रत्येक मकान एक-एक कमरे का है, जिसकी लम्बाई चौडाई ८ फीट × १० फीट है। किसी भी कमरे के आगे बरामदा नही है और प्रत्येक कमरे मे ३-४ परिवार रहते है। फर्श कच्चा है तथा नमी रहती है। कही भी स्वच्छ वायु प्रकाश आदि का प्रबन्ध नही है।" पण्डित नेहरू ने तो इन अहातो को 'नरक कुण्ड' की सज्ञा दी है।

(५) टाटानगर—यहाँ सर श्री टाटा की ओर से लोहे एव स्पात उद्योग मे काम करने वाले श्रमजीवियो के लिये लगभग ८,५०० मकान बनवाये गये हैं। प्रत्येक मकान मे दो कमरे, रसोईघर तथा एक बरामदा है। इसके अतिरिक्त स्नानागार एव फ्लस-सडास भी है। सभी मकान पक्के है तथा कुछ मे बिजली के पखे भी हैं। यह सब व्यवस्था दक्ष कारीगरो के लिये है अकुशल श्रमजीवियो के निवास-स्थान बडे गन्दे एव असन्तोषजनक है।

(६) मद्रास मे भी श्रमिको के निवास स्थान बडे असन्तोषजनक है। कुछ मिल मालिको ने श्रमिको के लिये क्वाटर बनवाये है, परन्तु उनमे अनेक श्रमिक रहना पसन्द नही करते क्योकि उनके विरुद्ध खुफिया जाँच होती रहती है और यदि कभी हडताल मे भाग लेगे तो वे क्वार्टर से निकाल दिये जायेंगे। ऐसे वातावरण में वे रहना पसन्द नही करते।

(७) शोलापुर मे श्रमिको की गृह व्यवस्था सन्तोषजनक है। इसी प्रकार मदुरा मे भी श्रमिको के लिये सुन्दर मकान बने हैं, जिनमे प्राय सभी वर्तमान सुविधायें उपलब्ध हैं। नागपुर की एम्प्रेस मिल तथा बगलौर की सूती ऊनी तथा रेशमी वस्त्र मिल के श्रमजीवियो के लिए बडी सुन्दर गृह-व्यवस्था है। रानीगज तथा झरिया की कोयले की खानो मे काम करने वाले श्रमिको के लिए जो मकान बनवाये गये है वे Mines Board of Health के आदेशानुसार बनवाये गए है अत सन्तोषजनक कहे जा सकते है। आसाम के चाय के बगीचो मे काम करने वाले श्रमिको की गृह-दशा अत्यन्त शोचनीय है। वहाँ नही भी स्वच्छता नही तथा मलेरिया का बडा बोलबाला है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि किंचित क्षेत्रो को छोडकर शेष सभी नगरो मे औद्योगिक श्रमिको की गृह-समस्या अत्यन्त जटिल है। श्रमिको के निवास स्थानो को देखकर कभी-कभी मसानो (Masani) के शब्द स्मरण हो आते हैं—'विश्व की रचना ईश्वर ने की है, नगरो की मानव ने और श्रम बस्तियो की शैतान ने।

बुरी गृह व्यवस्था के दुष्परिणाम—

अच्छे घरो का अर्थ है गृह-जीवन की सम्भावना सुख और स्वास्थ्य तथा बुरे घरो का अर्थ है, गन्दगी, शराबखोरी, बीमारी, आचारहीनता, व्यभिचार और अपराध+ इनके लिए अस्पताल, जेल और पागलखानो की आवश्यकता होती है, जहा समाज के भ्रष्ट एव पतित लोगो को छिपाया जाता है, जो स्वय समाज की लापरवाही के ही परिणाम हैं। (1) अनुपयुक्त एव सुविधाहीन घरो के कारण श्रमिको का घरेलू जीवन

नीरस एव आनन्दरहित हो जाता है। (ii) गन्दगी के कारण मलेरिया और तपदिक जैसा भयानक बीमारियों बनी रहती है श्रमिकों का स्वास्थ्य बिगड जाता है उनके मस्तिष्क सकुचित हो जाते हैं तथा मानसिक विकास का कोई अवसर नही रहता। (iii) अपूर्ण और गन्दे मकान औद्योगिक अशान्ति के भी कारण हैं। (iv) एक सबसे बडी बुराई अधिक सख्या मे शिशु मृत्यु है जो बम्बई की गन्दी बस्तियो मे पाई जाती है। मृत्यु सख्या निवास के कमरो के विपरीत अनुपात मे है। उदाहरण के लिए सन् १९३६ मे एक कमरे वाले निवास स्थानो मे मृत्यु सख्या ७८ % थी। सबसे गन्दे स्थानो मे मृत्यु दर २९८ प्रति हजार था जबकि साधारण दर २०० से ४० प्रति हजार ही था। (v) अन्त मे चाल के जीवन की भयकर दशाय तथा गोपनीयता के अभाव के कारण लोग अपने कुटुम्ब को नही ला पाते जिससे श्रम की स्थिरता तथा कार्यक्षमता पर कुप्रभाव पडता है। (vi) एकाकी जीवन व्यतीत होने के कारण उनमे वैश्यागमन जैसी बुरी आदत पैदा हो जाती। जो श्रमिक परिवार सहित रहते हैं वे भी एक कमरे ही के कारण गोपनीयता नही रख सकते। एक ही कमरे मे पुरुष स्त्री के साथ रहने के कारण सयम मे जीवन व्यतीत नही हो पाता। ऐसी परिस्थितियो मे महिला श्रमिको के नैतिक पतन की बडी आशका रहती है। डा० राधाकमल मुकर्जी के शब्दो मे भारतीय औद्योगिक केन्द्रो की श्रम बस्तियों की दशा इतनी भयकर है कि वहा मानवता का विध्वस होता है महिलाओ के सतीत्व का नाश होता है एव देश के भावी आधार स्तम्भ—शिशुओ का गला घुट जाता है। अन श्रम जाच समिति ने सिफारिश की है कि शिक्षा और औषधि सम्बन्धी सहायता की भाँति सरकार को औद्योगिक आवास का भी उत्तरदायित्व सभालना चाहिये।

गृह समस्या को हल करने के लिए किए गए प्रयत्न

(i) सुधार प्रयासो व पोर्ट ट्रस्टो के प्रयत्न—

यद्यपि भारत मे घर सम्बन्धी सुविधाय न्यून है और इस सम्बन्ध मे दशा बडी शोचनीय है किन्तु ऐसी भी सस्थाय तथा सेवायोजक हैं जिन्होने बडी सुन्दर व्यवस्थाय की हैं। बम्बई मे गृह समस्या के निवारणार्थ सुधार प्रयास (Improvement Trusts) की स्थापना हुई। इसका काम नई गलियो का निर्माण घने क्षेत्रो का विस्तार समुद्र मे भूमि को निकालना जिससे प्रसार आय मे सुविधा हो तथा गरीबो के लिय स्वच्छ मकानो का निर्माण करना था किन्तु ट्रस्ट का सीमित शक्ति नगर निगम से सहयोग का कमी तथा भू सम्पत्तिओ के विरोध के कारण इसे कुछ विशेष सफलता नही मिली। फिर भी ट्रस्ट ने कुछ सीमा तक प्रशसनीय कार्य किया। सन् १९२० तक नगरपालिका ने भी अपने कर्मचारियो के लिए २,६०० मकान बनवाय तथा २,२०० के लिए स्वीकृति दी। पोर्ट ट्रस्ट ने ५,००० व्यक्तियो के लिए मकान बनवाय। इधर नगर की जन सख्या बडी तेजी से बढ रही थी किन्तु सेवायोजको ने अपने श्रमजीवियो के रहने के लिए कोई प्रयास नही किया। सन् १९१४ १८ के युद्ध

के उपरान्त बम्बई सरकार द्वारा इस समस्या का सुलझान के लिए सुविस्तृत योजना तैयार की गई। इसके लिये ६ करोड रुपय के विकास ऋण तथा बम्बई आने वाली सभी कपास पर १) प्रति गांठ की दर से नगर कर लगाकर आवश्यक धन एकत्रित किया गया, किन्तु इस प्रकार निर्मित चाल (मुख्यत वोरली की चाले) दस वर्ष तक खाली पडी रही। इनमे रहने के लिये श्रमिको के आकर्षित न होने के निम्न कारण थे —वहाँ तक पहुँचने की कठिनाई, बाजार सम्बन्धी सुविधाओ का अभाव, उनका सीमेण्ट से बना होना—जिसके कारण वे गर्मी मे अधिक गर्म तथा जाड म अत्यन्त सर्द रहती है, किराये की ऊँची दर तथा प्रकाश सम्बन्धी व्यवस्था और पुलिस सुरक्षा का अभाव। इन दोषो को दूर करने के लिए कुछ प्रयास किये गये हैं। नगर निगम तथा पोर्ट ट्रस्ट भी अपनी विकास योजनाएँ कार्यान्वित करने म प्रयत्नशील है। मई सन् १९४७ मे बम्बई सरकार ने वारली पर भवन निर्माण योजना प्रारम्भ की, जिसमे काम करने वाले एक व्यक्ति तथा परिवार दोनो के रहने के लिए मकान बनवाये गये है। अब बम्बई मे एक कमरे वाले मकान न रहेगे।

(II) मिल मालिकों द्वारा किये गये प्रयत्न—

जहा तक मिल मालिको का प्रश्न है कुछ मिलो न जैसे—जैकब सासन मिल ने, अपने श्रमजीवियो के लिये मकान देने की व्यवस्था की है। उचित दर पर कारखानो के समीप स्थान मिलने की कठिनाई, इस बात की सुरक्षा का अभाव कि मकान मिलने पर श्रमिक मकान देने वाली मिल मे ही काम करेगे तथा स्वय कर्मचारियो की उन मकानो मे रहने की अनिच्छा—इन सब कारणो म काम के प्रसार मे काफी शिथिलता आ गई है। कर्मचारी डरते है कि उनकी स्वतन्त्रता म बाधा पड़गी तथा हड़ताल के समय वे निकाल दिये जायगे। वे स्वच्छता और अनुशासन के नियमो को भी पसन्द नही करते क्योकि व उनका महत्त्व ही नही समझते। कानपुर नागपुर, ग्वालियर, अहमदाबाद, मद्रास आदि नगरो मे मिल मालिको न श्रमजीवियो क हितो पर अधिक ध्यान दिया है। इस सम्बन्ध म एम्प्रेस मिल्स नागपुर, जीवाजीराव काटन मिल्स ग्वालियर तथा टाटा के जमशेदपुर के लोहे और स्पात के कारखानों के प्रबन्धको द्वारा किये गये आवास सम्बन्धी प्रयत्न प्रशसनीय ह। दक्षिणी भारत मे सहकारी-गृह निर्माण समितियो ने भी इस दिशा म सराहनीय प्रयास किया है।

(III) औद्योगिक श्रमिको के आवास के लिए राजकीय प्रयत्न —

बहुत अधिक समय तक भारत सरकार ने गृह समस्या की ओर लेशमात्र भी ध्यान नही दिया। परन्तु स्वतन्त्रता के उपरान्त, राष्ट्रीय सरकार के लिए अधिक समय तक मौन रखना सम्भव न था। सन् १९४८ का औद्योगिक नीति सम्बन्धी घोषणा मे, औद्योगिक श्रमजीवियो के लिए गृह निर्माण पर प्रथम बार बल दिया गया। अप्रैल सन् १९४८ म सरकार ने यह घोषित किया कि वह ३०० करोड रुपये की लागत पर अगले १० वर्षों मे १० लाख घर बनवाएगी, जिनका वितरण इस प्रकार होगा—

कारखानो के लिए ७।। लाख, बागानो के लिए ८ लाख और जहाजी कम्पनियो मे काम करने वाले श्रमिको के लिए ३/४ लाख । यद्यपि राज्य सरकारो ने इस योजना का स्वागत किया, परन्तु धनाभाव के कारण कोई प्रगति न हो सकी । सन् १९४९ मे एक नई योजना—औद्योगिक आवास योजना—घोषित की गई, जिसके अन्तर्गत विभिन्न राज्यो को ऋण दिए गए ।

पंच-वर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत गृह निर्माण की प्रगति—

प्रथम पच वर्षीय योजना की अवधि मे एक राष्ट्रीय आवास कार्यक्रम के विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ के सगठन का प्रयास किया गया । दो नगर आवास योजनायें—'आर्थिक सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास योजना' (Subsidised Industrial Housing Scheme) और 'कम आय वाले वर्ग के आवास की योजना' (Low Income Group Housing Scheme)—१,२०,००० आवास इकाइयो के निर्माणार्थ ३८ ५ करोड रु० के व्यय से प्रारम्भ की गई । इसके साथ-साथ जन-सख्या के कुछ विशेष वर्गों जैसे विस्थापित व्यक्तियो एव सरकारी नौकरो के लिये गृह योजनाओ पर भी काम जारी रहा । यह अनुमान लगाया गया है कि सार्वजनिक सस्थाओ द्वारा पहली योजना अवधि मे ७,४२,००० घर बनाये गये ।

द्वितीय पच-वर्षीय योजना की अवधि मे १२९ करोड रु० विभिन्न गृह-योजनाओ के लिये स्वीकार किये थे । योजना को सन् १९५८ मे सशोधित करने पर यह आयोजन घटाकर ८४ करोड रहने दिया गया । किन्तु यह घटोत्तरी वास्तविक व्यय की सीमा को लागू होनी थी, अधिकतम सीमा को नही ।

(१) आर्थिक सहायता-प्राप्त औद्योगिक आवास योजना—

राज्य सरकारो, नियोक्ताओ और श्रमिको के प्रतिनिधियो से परामर्श करने के बाद भारत सरकार ने सन् १९५२ मे 'आर्थिक सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास योजना' को अन्तिम रूप दिया ।

इस योजना के अन्तगत केन्द्रीय सरकार आरम्भ मे राज्य सरकार को सम्पूर्ण लागत देगी, जिसका ५० प्रतिशत आर्थिक सहायता के रूप मे होगा तथा शेष ५०% ऋण के रूप मे होगा, जिसे २५ वष मे वापिस करना होगा । श्रमिक के आवास की स्वीकृत योजनाओ के लिए नियोक्ताओ का लागत का २५% आर्थिक सहायता तथा ३७½% ऋण के रूप मे देने की व्यवस्था है । यह योजना सर्व प्रथम औद्योगिक श्रमिको के लिए स्वीकृत हुई थी, किन्तु अब सन् १९५२ के खान अधिनियम के अनुसार कोयला तथा अभ्रक खानो के श्रमिको को छोडकर शष कुछ अन्य खान मजदूरो के लिए भी लागू होती है । इस योजना के अन्तर्गत ऋण तथा अनुदान केन्द्रीय सरकार के द्वारा, राज्य सरकारो, वैधानिक गृह बोर्डो, औद्योगिक नियोक्ताओ तथा रजिस्टर्ड सहकारी सस्थाओ को दिए जाते है । अक्टूबर सन् १९६० के अन्त तक राज्य सरकारो,

कारखाना मालिको तथा मजदूरो की सहकारी सस्थाओ को ऋण के रूप मे १२·६५ करोड रुपये तथा सहायता के रूप मे २०·८३ करोड रुपये दिये गये और १,३६,४६६ मकानो के लिए स्वीकृति दी गई। दिसम्बर सन् १९६० के अन्त तक ६८,००० मकान बनाए जा चुके थे।

(२) कम आय वाले वर्ग के लिये गृह योजना—

सन् १९५४ मे कम आय वालो के लिए सरकारी आर्थिक व्यवस्था की गई। इस व्यवस्था के अन्तर्गत लोगो को एक लम्बी अवधि के लिए बहुत कम व्याज पर ऋण देने का प्रबन्ध किया गया। केवल उन्ही लोगो को इस योजना के अन्तर्गत ऋण मिल सकता है जिनकी वार्षिक आय ६,०००) स अधिक न हो। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिय केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारो को दीर्घकालीन व्याज रहित ऋण देती है। अधिक से अधिक ५ वर्ष की अवधि के अल्पकालीन ऋण भी केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारो को भूमि का अधिग्रहण एव विकास करने तथा इसके बाद उसको प्लाटो के रूप मे अ-लाभ आधार पर आय वाले व्यक्तियो को बेचने के लिये उपलब्ध करती है। ३१ मार्च सन् १९६१ तक राज्य सरकारो ने इस योजना के अन्तर्गत ४२ ७६ करोड रु० केन्द्रीय सरकार से लिया। इस अवधि मे ८२,८४८ घर बनाने के लिये स्वीकृति दी गई, ५० ६५६ घर बनकर तैयार हो गये तथा २०,०६४ घर बनने की प्रगति मे थे।

(३) बागान मजदूर आवास योजना—

सन् १९५१ के 'बागान मजदूर अधिनियम' ने प्रत्येक बागान-मालिक के लिये अपने श्रमिको के आवास हेतु व्यवस्था करना अनिवाय कर दिया है। अप्रैल सन् १९५६ मे एक योजना भी उनकी सहायता के लिय (विशेषत छोटे बागान मालिको के लिये) बनाई गई। इस योजना के अन्तर्गत बागान मालिकों को राज्य-सरकारो के माध्यम से मकानो की लागत के ८०% तक व्याज मुक्त ऋण के रूप मे आर्थिक सहायता देना तय हुआ। सन् १९६० के अन्त तक राज्य सरकारो ने ६८३ घरो के निर्माण के लिये १२ ५७ लाख रु० स्वीकार किये। इनमे से २९८ घर बन गये है।

ऋणो के सम्बन्ध मे राज्य सरकारो द्वारा निर्धारित प्रतिभूति देने मे असमर्थ होने के कारण बागान मालिक योजना का लाभ उठाने मे कठिनाइयाँ अनुभव कर रहे है। अतः प्रत्येक राज्य सरकार द्वारा एक 'पूल गारन्टी फन्ड' की स्थापना करने के सम्बन्ध मे प्रस्ताव रखे गये है। 'पूल गारन्टी फन्ड' (Pool Guarantee Fund) का उद्देश्य राज्य सरकारो को बुरे ऋणो के कारण (जो कि प्रतिभूति सम्बन्धी नियम ढीला करने के फलस्वरूप डूब जायें) होने वाली हानि से बचाना है। यह फन्ड उस धन से बनाया जायेगा जो कि ऋणो पर ½% वार्षिक ब्याज अधिक लगाकर प्राप्त होगा। यदि फन्ड की सीमा से अधिक हानि हो, तो वह भारत सरकार, राज्य सरकार एव कमोडिटी बोर्ड के बीच बराबर-बराबर बट जायेगी।

(४) गन्दी बस्तियों के सुधार की योजना—

गन्दी बस्तियो के सुधार की योजना (Slum Clearanee Scheme) मई सन् १९५६ मे अमल मे लाई गई। इस योजना के अन्तर्गत राज्य सरकारो को एव इनके द्वारा म्युनिस्पल एव स्थानीय सस्थाओ को गन्दी बस्तियो मे रहने वाले परिवारो के पुन आवास के लिये, जिनकी आय बम्बई व कलकत्ता मे २५० रु० प्रति माह एव अन्य स्थानो मे १७५ रु० प्रति माह से अधिक नही है, वित्तीय सहायता देने का प्रबन्ध है। अभी यह योजना मुख्यत बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली, कानपुर और अहमदाबाद मे, जहाँ कि गृह दशायें बुरी है और अविलम्ब सुधार चाहती हैं, सीमित है। यदि आवश्यकता हो, तो अन्य क्षेत्र भी केन्द्रीय सहायता प्राप्त कर सकते ह। दिसम्बर सन् १९६० तक राज्य सरकारो द्वारा बनाई गई १७० योजनाओ पर स्वीकृ त मिल चुकी थी, जिनके अन्तर्गत १६·०७ करोड रु० के व्यय से ४८ ८४१ गृह-इकाइयाँ (Housing Units) बनाने का प्रस्ताव था। सन् १९६० के अन्त तक १०,०६५ गृह-इकाइयो का निर्माण हो चुका था तथा ७,७०१ गृह-इकाइयो पर काम जारी था। ४,६२७ घर एव १०५ दुकानें सन् १९६० तक बन कर तैयार हो गई।

श्रम बस्तियो मे मकानो के निर्माणार्थ योजना टोली सन् १९५८ के सुझाव—

गन्दी बस्तिया मे सुधार कर मकान बनाने के विषय मे राष्ट्रीय विकास परिषद की योजना समिति ने जो योजना टोली बनाई थी, उसके सुझाव निम्न हैं—

(१) गन्दी बस्तियो की सफाई के लिये सबसे अच्छा तरीका यही है कि इस काम के लिये कानून द्वारा निगम मण्डल बनाये जायें, जो स्वायत्त हो और जिनके ऊपर कार्यक्रमो को चलाने का उत्तरदायित्व हो। वे अपने क्षेत्रो मे योजनाओ के लिये नीति निर्धारित कर।

(२) आयोजन मे मकान बनाने के लिये जो राशि रखी गई है वह केन्द्रीय मकान निगम को दे दी जाय, जिससे वह उसे राज्य के मकान निगमो को बाँट सके। केन्द्रीय निगम, राष्ट्रीय भवन निर्माण सगठन और केन्द्रीय भवन निर्माण अनुसन्धान-शाला के साथ भी निकट सम्पर्क रखे।

(३) गन्दी बस्तियो की बाढ को रोकने के लिये गाँवो से नगरा की ओर जाने की प्रवृत्ति को रोका जाय तथा केन्द्रीय सरकार नगर म नये उद्योग खोलने या किसी उद्योग को बढाने की अनुमति तभी दे, जब स्थानीय सस्थाय भी इसे स्वीकार कर ल।

(४) जहाँ आबादी बहुत घनी है, वहाँ अधिक रोजगार न दिये जायें। प्रत्येक नगर म गन्दी बस्तियो की सफाई के लिए वृहत योजना बनाई जाय।

(५) मकानो के लिए न्यूनतम स्तर स्थापित किया जाय और गन्दी बस्तियो मे सभी मकानो की जाँच की जाय।

(६) मकानो के निर्माण का व्यय कम होना चाहिए।

(५) ग्राम आवास योजना (Village Housing Projects Scheme)—

यह योजना सन् १९५७ में प्रारम्भ की गई। इसके अन्तर्गत सामुदायिक विकास खण्डों में लगभग ५,००० चुने हुए गाँवों में द्वितीय योजनावधि के अन्दर हाउसिंग प्रोजेक्ट स्थापित करने थे। यह योजना सहायता प्राप्त आत्म-सहायता के सिद्धान्त (Principle of aided self help) पर बनाई गई है। निर्माण लागत की है या २,००० रु० (दोनों में जो भी कम हो) की वित्तीय सहायता ऋण के रूप में दी जाती है। राज्य सरकारों द्वारा स्थापित Rural Housing Cells तथा खण्ड-विकास अधिकारियों द्वारा टैक्नीकल सहायता निशुल्क देने की व्यवस्था है। Rural Housing Cells लगभग सभी राज्यों में (गुजरात व जम्मू-काश्मीर को छोड़ कर) बन गये हैं। लगभग ३,७०० गाँव चुने गये, जिनमें से १,६०० गाँवों का सर्वे व योजनाकरण दिसम्बर सन् १९६० तक पूर्ण हो गया है। राज्य सरकारों ने १५,२०० घरों के निर्माण के लिये २१८ लाख रु० से अधिक के ऋण स्वीकृत किये हैं। इसमें से १२८ लाख रु० वास्तव में दिया जा चुका है। ३,००० घर बन कर तैयार हो गये हैं तथा ८,००० घर बनने की प्रगति में हैं।

(६) भूमि-अधिग्रहण एवं विकास योजना—

अक्टूबर सन् १९५९ में प्रचलित की गई यह योजना बड़े पैमाने पर भूमि का अधिग्रहण और विकास करके प्लाट बनाकर उचित कीमतों पर गृह निर्माताओं को (विशेषतः कम आय वाले वर्गों को) बेचने में राज्य सरकारों की विशेष सुविधा हेतु उन्हें ऋण देने के लिये बनाई गई है। इस योजना के अन्य उद्देश्य भी हैं, जैसे भूमि के मूल्यों में स्थायित्व लाना, नगर विकास का विकेन्द्रीकरण करना और आत्मनिर्भर मिश्रित उपनिवेशों को प्रोत्साहन देना।

इस योजना के अन्तर्गत १५ करोड़ रु० की सीमा तक सहायता का वायदा किया गया, जबकि वास्तविक आय द्वितीय योजना अवधि में २.९० करोड़ रु० तक सीमित रखा गया। इसमें से राज्य सरकारों ने २८ लाख रु० सन् १९५९-६० में तथा १.८३ करोड़ रु० १९६०-६१ में लिया है।

मध्यवर्गीय जनता के लिये आवास योजना बनाई गई है, जिसके अन्तर्गत ६,००१ रु० से १२,००० रु० तक वार्षिक आय वाले व्यक्तियों को या उनकी सहकारी समितियों को गृह निर्माण सम्बन्धी ऋण दिये जाते हैं। जीवन बीमा निगम ने इस उद्देश्य के लिये १० करोड़ रु० दिये हैं। दिसम्बर सन् १९६० तक ३,५८९ घरों के निर्माण हेतु ४.८७ करोड़ रु० की सीमा तक ऋण सहायता स्वीकृत की गई। वास्तविक ऋण २.४३ करोड़ रु० दिया गया। ४७७ मकान बन कर तैयार हुये।

राज्य सरकारों द्वारा अपने कर्मचारियों को पर्याप्त आवास सुविधा प्रदान करने में सहायता करने के लिये एक किराया-गृह-योजना (Rental Housing Scheme) बनाई गई है। इस उद्देश्य के लिये जीवन बीमा निगम ने ७ करोड़ रु० उपलब्ध

किये है। दिसम्बर सन् १६६० तक २,४६० घरो के लिये २'०८ करोड रु० स्वीकृत किया गया और ७३४ मकान बनाये गये।

राष्ट्रीय भवन निर्माण सगठन (National Building Organisation)—

जुलाई सन् १६५४ मे एक राष्ट्रीय भवन निर्माण सगठन बनाया गया, जिसका उद्देश्य भवन-निर्माण की लागत को कम करने के उपायो की छान-बीन करना है। वह सस्ती निर्माण सामग्री का विकास करता है तथा अपने अनुसन्धान परिणामों का प्रचार करता है। इसके अन्तर्गत कुछ प्रादेशिक अनुसन्धान संगठन भी कार्य कर रहे है।

तृतीय पच-वर्षीय योजना मे आवास व्यवस्था—

निजी क्षेत्र मे आवास की व्यवस्था के अतिरिक्त, भारत सरकार की गृह-निर्माण सम्बन्धी योजना निम्न ६ वर्गो से सम्बन्धित है—(i) औद्योगिक कर्मचारियो के लिए आवास की व्यवस्था करना, (ii) निम्न-आय-वर्गीय व्यक्तियो के लिए आवास की व्यवस्था करना (low-income-group housing), (iii) गन्दी बस्तियों की सफाई करना; (iv) गृह निर्माण के हेतु भूमि की प्राप्ति करना, (v) ग्रामीण क्षेत्रो मे आवास की व्यवस्था करना, और (vi) बागान-श्रमिको के हेतु आवास की व्यवस्था करना। आवास सम्बन्धी इन सुविधाओ के लिए तृतीय पच-वर्षीय योजना मे १२० करोड रुपये पृथक रखा गया है। इसके अतिरिक्त रेल, डाक व तार एव सुरक्षा विभागो की अलग-अलग गृह-निर्माण सम्बन्धी योजनाये है।

यद्यपि गृह समस्या पर अब उचित ध्यान दिया जा रहा है तथापि जो कुछ हो रहा है उससे समस्या कम भले ही हो जाय, किन्तु पूर्णत. नही सुलझ सकती। ग्रामीण आवास और मध्यम आय वाले लोगो के लिए आवास के हेतु बहुत कम अर्थ-व्यवस्था की गई है। औद्योगिक गृहो के किराये भी इतने अधिक हैं कि साधारण श्रमिक उनको वहन नही कर सकता है, अत: कार्यक्रम मे उपयुक्त सुधार करने आवश्यक हैं।

भारतीय औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता
(Indebtedness of Indian Industrial Labour)

भारतीय औद्योगिक श्रमिको की अदक्षता एव उनके निम्न जीवन स्तर का एक प्रधान कारण उनकी ऋणग्रस्तता है। हमारे अधिकाश श्रमजीवी किसी न किसी ऋणदाता के चगुल म फँसे रहते हैं। श्रम के शाही कमीशन ने अपनी रिपोर्ट मे एक स्थान पर लिखा है कि—"भारतीय औद्योगिक श्रमिको के निम्न जीवन-स्तर का प्रधान कारण उनकी ऋणग्रस्तता है। भारतीय श्रमिक ऋण मे ही जन्म लेता है, ऋणी के रूप मे ही जीवन व्यतीत करता है तथा ऋण के भार से दबा हुआ ही वह इस संसार से कूँच कर जाता है। इतना हो नहीं, मृत्यु के उपरान्त भी वह ऋण का उत्तरदायित्व वसीयत के रूप मे अपने उत्तराधिकारियो के कन्धो पर छोड़ जाता है।" यह कथन भारतीय श्रमजीवियों के लिए पहले जितना सत्य था, उतना ही आज भी

सत्य बना हुआ है। सम्भव है कि द्वितीय विश्व-युद्ध मे मजदूरी एव मँहगाई की वृद्धि के कारण औद्योगिक श्रमिको की ऋणग्रस्तता मे कुछ कमी हो गई हो, किन्तु छोटे श्रमिको की दशा मे कोई अन्तर नही पडा।

औद्योगिक ऋण का अनुमान—

भारत मे कुल औद्योगिक ऋण कितना है, इसके बारे मे विश्वनीय एव ठीक आँकडे नही मिलते। कारण यह है कि औद्योगिक साख प्रणाली असगठित है और ८०% साख ऐसे व्यक्तियो द्वारा प्रदान की जाती है, जिन पर कोई नियन्त्रण नही है। ऐसी परिस्थिति मे औद्योगिक ऋण के सम्बन्ध मे केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। समय-समय पर इसके सम्बन्ध मे अनुमान लगाया गया है। निम्न तालिका औद्योगिक श्रमिको की ऋणग्रस्तता पर प्रकाश डालती है.—

केन्द्र	ऋणग्रस्त परिवारो का प्रतिशत	प्रति कुटुम्ब ऋण का औसत (रु०)
I. बम्बई राज्य		
(१) बम्बई ...	६४.१	१२४
(२) जलगाव .	६०.७	२२७
(३) शोलापुर	८५ ७	२३४
II. पश्चिमी बगाल		
(१) कलकत्ता	४१ ५	११७
III बिहार		
(१) देहरी ऑन-सोन	५८.०	१५७
(२) टाटानगर	६२ २	२३५
(३) झरिया	२२ ९	२९
(४) मुगेर तथा जमालपुर	७३ ७	२०४
IV आसाम		
(१) गौहाटी	१३ ३	१९७
V. पजाब		
(१) लुधियाना ...	३२ ४	१५१
VI. उडीसा		
(१) बरहमपुर ...	५९ ४	१९७
(२) कटक	३१ ०	१६६

उपर्युक्त आँकडो से स्पष्ट है कि भारत के लगभग २/३ श्रमजीवी ऋणग्रस्त है और उनके ऋण की मात्रा सामान्यत उनकी तीन माह की मजदूरी से भी अधिक है। श्रम जाच समिति सन् १९४६ ने भारतीय औद्योगिक ऋणग्रस्तता के सम्बन्ध मे जो रिपोर्ट प्रस्तुत की उससे प्रगट है कि बम्बई नगर मे श्रमिको के ऋण की मात्रा १०) से ७००) तक है। अहमदाबाद मे लगभग ५७ प्रतिशत परिवार ऋणग्रस्त हैं और

प्रति परिवार ऋण का औसत २६६) है। नागपुर मे राज्य सरकार द्वारा क.ार की जांच से यह प्रगट है कि यहां लगभग ८२% परिवार ऋणग्रस्त है और प्रति प.ाओ ऋण का औसत १३६) है। मिर्जापुर के दरी उद्योग मे काम करने वाले श्रमिको मे ७०% ऋणग्रस्त हैं एव प्रति परिवार ऋण का औसत ११४) है। इसी प्रकार श्रीनगर एव अमृतसर के दरी उद्योग के कर्मचारियो मे क्रमश ८९% एव ६०% श्रमिक ऋणग्रस्त हैं। कलकत्ता, कानपुर एव मद्रास के चमडा उद्योग मे सलग्न श्रम-जीवियो मे से क्रमशः १००%, ६९% तथा ६४% ऋणग्रस्त है। बीडी उद्योग मे काम करने वाला प्रायः प्रत्येक श्रमिक ऋणग्रस्त है। मेरठ के शक्कर-उद्योग मे ऋणग्रस्त श्रमिको की सख्या ७८% है और ऋण की मात्रा ३६०) प्रति ऋणी है। देश के अन्य उद्योगो एव अन्य केन्द्रो मे भी ऋणग्रस्तता की यही दशा है।

ऋणग्रस्तता के कारण—

(१) **पैतृक ऋण**—बहुधा देखा जाता है कि श्रमिक परिवारो मे पूर्वजो द्वारा लिए हुए ऋण का भुगतान करना एक पवित्र कर्त्तव्य माना जाता है। पूर्वजो की गलती या मजबूरी के कारण परिवार के सदस्यो को यह उत्तरदायित्व प्राप्त होता है एव चक्रवृद्धि ब्याज के कारण ऋण की राशि बढती चली जाती है तथा परिवार मे पीढी-दर पीढी इस परम्परागत देनदारी को चुकाने के प्रयत्न मे उत्तराधिकारी जीवन व्यतीत कर देते है। कदाचित उन्हे इस कानून का ज्ञान नही होता कि मृतक द्वारा लिए हुये ऋणो के लिए उत्तराधिकारी उसी सीमा तक उत्तरदायी होते है जितनी कि सम्पत्ति मृतक द्वारा उत्तराधिकार के रूप मे छोडी जाती है। यदि मृतक ने कोई सम्पत्ति नही छोडी तो उसके द्वारा लिए गये ऋण के लिये उसके उत्तराधिकारियो को किसी भी न्यायालय मे उत्तराधिकारी नही ठहराया जा सकता है।

(२) **सामाजिक अवसरो पर अपव्ययता**—भारतीय श्रम-समाज मे विभिन्न अवसरो पर सम्पन्न होने वाले समारोहो मे बडी ही अदूरदर्शिता से काम लिया जाता है। श्रम-जाच-समिति के शब्दो मे—"भारतवर्ष मे रीति रिवाज अत्यन्त कठोर शासक है, क्योकि उनके पालनार्थ श्रम-जीवियो को अपना सब कुछ न्यौछावर करना पडता है।" उदाहरण के लिये, विवाह के अवसरो पर सामाजिक भोज एव दहेज की प्रथा के कारण श्रम-जीवियो को अपनी हैसियत से अधिक

भारतीय श्रमिको की ऋणग्रस्तता के ९ कारण

(१) पैतृक ऋण।
(२) सामाजिक अवसरो पर अपव्यय।
(३) जुआ, नशा आदि पर फिजूल-खर्च।
(४) दोषपूर्ण भरती पद्धति।
(५) ऋण प्राप्ति की सुविधा।
(६) अत्यधिक ब्याज-दर।
(७) अशिक्षा।
(८) ऋणदाताओ की दूषित कार्य-प्रणाली।
(९) बीमारी।

ऋण लेकर इन सामाजिक उत्तरदायित्वों को सम्पन्न करना पडता है। ऐसे अवसरों पर प्राय श्रमिक अपनी वास्तविक आर्थिक दशा को भूल जाता है और उसके समुदाय के अन्य लोग भी इसका विचार न करके उसे ऋण देकर इस उत्तरदायित्व को सम्पन्न करने के लिए प्रेरित करते है। कर्मकारियोजक (Jobber) मिस्त्री अथवा पठान लोग प्रति क्षण ऐसे ही अवसरों की ताक मे रहते हैं और सहर्ष ऋण प्रदान करने को तत्पर हो जाते है। इसी प्रकार जन्म एवम् मृत्यु के अवसरों पर भी अदूरदर्शिता से काम लिया जाता है। श्रमिक की ऋणग्रस्तता का यह बहुत महत्वपूर्ण कारण है। एक अनुमान के अनुसार ऋण का लगभग ३५% भाग सामाजिक अवसरो पर व्यय करने के कारण ही लिया जाता है।

(३) **जुआ नशा आदि पर फिजूलखर्ची**--जुआ खेलना एवम् नशा करना भारतीय श्रमजीवियो की बहुत बुरी आदत है। भले ही पेट-भर भोजन करने के लिए उनके पास पैसा न हो किन्तु दिन भर की थकान दूर करने के लिए ऋण लेकर वे मदिरापान अवश्य करेगे। विवेकहीन होने के कारण श्रमिक अपनी आय का सदुपयोग नही कर पाते। यदि उनकी जेब मे चार पैसे पड़े है तो मनोरंजन की अपेक्षा वे शराब अथवा जुआ को अधिक प्राथमिकता देगे। इस दुर्गुण के कारण भी उन्हे ऋणी रहना पडता है।

(४) *दोषपूर्ण भरती पद्धति—श्रमिको की भरती कर्मकारियोजको द्वारा होती* । प्रत्येक भरती होने वाले को दस्तूरी देनी पडती है। श्रमिको की नियुक्ति उनकी ७.॰ अथवा एक विभाग से दूसरे विभाग मे जाना सब कुछ इन्ही योजको पर निर्भर करता है। इन योजको की आय नई भरती पर ही निर्भर करती है अत वे तरह-तरह के बहाने बताकर पुरानो को निकालते तथा नयो को भरती करते है। परिणामत भारत मे घूस लेने की प्रथा प्रचलित है। अपनी नौकरी को सदैव स्थिर रखने के लिए श्रमजीवियो को ऋण लेकर कर्मकारियोजको की हथेली सदैव गर्म रखनी पडती है।

(५) **ऋण प्राप्ति की सुविधा**—औद्योगिक श्रमिको की ऋणग्रस्तता का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि उनको ऋण बडी सुविधा से मिल जाता है। नगर का महाजन—मारवाडी अथवा पठान उनको ऋण चगुल मे फसाने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। कभी कभी मिस्त्री तथा कर्मकारियोजक भी ऋणदाता का कार्य करते है। यही नही, मदिरा विक्रेता तथा परचूनी वाले भी प्राय श्रमिको को उधार माल बेचकर उनकी ऋणग्रस्तता को बढाते हैं। जिस किसी व्यक्ति के पास भी थोडा आधिक्य धन है (जैसे क्लर्क, प्रबन्धक आदि) वह अधिक ब्याज के लालच मे श्रमिको को ऋण दे देता है। कभी-कभी वैश्यायें एव विधवायें भी अपने लाभ की दृष्टि से इन्हे ऋण प्रदान करती है।

(६) **अत्यधिक ब्याज की दर**—यद्यपि श्रमजीवियो को ऋण मिलने मे बडी सुविधा होती है, किन्तु ऋण की शर्ते सरल नही होती। ब्याज की दर बहुत अधिक

ऊँची होती है, क्योंकि बिचारे श्रमजीवी सम्पत्तिहीन होने के कारण किसी प्रकार की प्रतिभूति देने मे असमर्थ होते है । उनकी प्रवासी प्रवृत्ति होने के कारण ऋणदाताओ को अधिक जोखिम उठानी पडती है, अतएव वे ब्याज की दर और भी अधिक कर देते है। एक प्रोनोट पर अशिक्षित श्रमिक का निशानी अँगूठा ले लिया जाता है। इसमे कपट की आशका अधिक रहती है। लिखित कार्यवाही न होने की दशा मे भी पठान ऋणदाता के डन्डे के जोर के कारण बिचारे श्रमजीवी प्रति माह एक बहुत बडी राशि ब्याज के रूप मे देते है ।

(७) **अशिक्षा**—हमारे अधिकाश श्रमजीवी पढे लिखे नही है अत: ऋणदाता उनके लेन देन का दुरुपयोग करते है । काला अक्षर भैस बराबर होने के कारण वे स्वय तो ब्याज का हिसाब लगा नही पाते । ऋण की जो भी घटी बढी राशि ऋणदाता उन्हे बताते है उसे वे स्वीकार कर लेते है । कभी कभी तो माह की पहली तारीख पर श्रमिक को जो कुछ भी मजदूरी मिलती है उसे ये ऋणदाता तुरन्त ले लेते हैं तथा बिचारा श्रमिक ऋण की ज्वाला मे सुलगता रहता है ।

(८) **ऋणदाताओं की दूषित कार्य प्रणाली**—प्राय: ऋणदाता ब्याज से प्राप्त होने वाली नियमित आय पर ही निर्भर करते है और इसलिए मूलधन की चिन्ता नही करते । वे अनुत्पादक कार्यो के लिये भी सहष ऋण द सकते हैं । ऋण प्राप्ति की सरलता एव महाजन की तत्परता के आकर्षण के कारण बहुधा श्रमजीवी आवश्यकता एव अपनी प्रदेय क्षमता से अधिक ऋण ले लेते है । इसके अतिरिक्त यह भी देखने मे आता है कि ऋणदाता ब्याज या मूलधन के भुगतान के समय प्राप्ति की रसीद नही देते तथा हिसाब-किताब की पुस्तको मे भी त्रुटिपूर्ण प्रविष्टियाँ कर देते हैं ।

(९) **बीमारी**—जन-सख्या के आधिक्य के कारण नगरो मे आय दिन मलेरिया एव महामारियो के प्रकोप के कारण भी श्रमजीवियो को ऋण लेने की आवश्यकता पडती है ।

इनके अतिरिक्त ऋण लेने के और भी अन्य कारण हो सकते है, जो भिन्न-भिन्न श्रमिको की परिस्थितियो एव सामाजिक वातावरण के ऊपर निर्भर करते हैं ।

ऋण के दुष्परिणाम—

(१) **निम्न जीवन स्तर**—श्रम जाच समिति के अनुसार श्रमिको की निर्धनता एव निम्न जीवन स्तर का प्रधान कारण उनकी भारी ऋणग्रस्तता है । श्रमजीवियो की अधिकाश आय भारी ब्याज चुकाने म ही व्यय हो जाती है और वह अपने परिवार के उपभोग के लिए न्यूनतम आवश्यकताओ का भी प्रबन्ध नही कर पाता । फलतः अनुचित एव अपर्याप्त आहार के कारण उसका व उसके परिवार के अन्य व्यक्तियो का स्वास्थ्य प्रभावित होता है ।

(२) **कार्य कुशलता मे कमी**—ऋणग्रस्तता के कारण चिन्ता की चिता पर

बिचारे श्रमजीवियों का बल भस्म हो जाता है और वे दक्षता से कार्य करने में असमर्थ होते हैं ।

(३) श्रमिकों के स्वाभिमान को ठेस—आये दिन ऋणदाता श्रमिक को मूलधन अथवा ब्याज की अदायगी का स्मरण दिलाता रहता है। यदि राशि अधिक बढ़ जाती है और श्रमिक ऋणदाता की इच्छा के विरुद्ध काम करता है तो वे उसे न्यायालय की धमकी देते हैं। कभी-२ भी ब्याज न चुकाने के कारण प्रतिफल के रूप में ऋणी से ऋणदाता घर का काम भी लेता है। ये सब ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनके कारण स्वच्छन्द व स्वाभिमानी श्रमिक लाचार होकर ऋणदाता के दास बन जाते हैं।

ऋणग्रस्तता क्योंकर दूर हो ?—

औद्योगिक श्रमजीवियों की ऋणग्रस्तता को दूर करने के लिये निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :—

(१) शिक्षा का प्रसार—शिक्षा के प्रसार से हमारा श्रमिक जागरूक हो जायेगा एवं उत्पादक तथा अनुत्पादक ऋण में अन्तर समझ जायेगा। वह फिर कभी भी विवेकहीन होकर ऋण न लेगा और यदि लेगा भी तो उसका इतना शोषण न हो सकेगा जितना आजकल होता है। देश के प्रचलित कानूनों का भी उसे ज्ञान हो जायेगा, अतः ऋणदाताओं के जाल में न फँसेगा।

(२) शराबखोरी पर प्रतिबन्ध शराबखोरी को कम करने के लिये चाय तथा केसरिया दूध की दुकानों, सिनेमागृहों क्लबों तथा अन्य प्रकार के मनोरंजन के साधनों का निर्माण होना चाहिए। कुछ सेवायोजकों ने इस दिशा में सक्रिय कदम उठाए हैं। मदिरापान को रोकने के लिए कांग्रेस सरकार द्वारा बम्बई, मद्रास तथा अन्य राज्यों में मद्य निषेध की नीति अपनाई गई है। वास्तव में मद्य-निषेध के अधिक प्रसार की आवश्यकता है।

(३) भरती पद्धति में सुधार—श्रमिक की भरती एक वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार होनी चाहिए, जिससे कि कर्मकारियोजकों द्वारा घूस लेने की प्रथा का उन्मूलन हो सके। कर्मकारियोजकों को सदैव अपने पक्ष में रखने के लिए बेचारे श्रमिकों को ऋण लेकर उनकी हथेली गर्म रखनी पड़ती है, अतएव जब दोषपूर्ण भरती की प्रणाली ही वैज्ञानिक आधार पर नियोजित हो जायेगी तो श्रमिकों की ऋणग्रस्तता बहुत कुछ कम हो सकती है।

(४) सहकारी साख समितियों की स्थापना—श्रम बस्तियों में सहकारी साख समितियों की स्थापना करनी चाहिए, जहाँ श्रम-जीवियों को सरलता से एवं कम ब्याज की दर पर ऋण मिल सके। इसके लिए यह भी नितान्त आवश्यक है कि श्रमजीवियों में परस्पर सहकारिता की भावना भी हो। आजकल सहकारी साख समितियाँ श्रमिकों के मध्य अधिक लोकप्रिय नहीं है। इसका प्रधान कारण श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति है। संयुक्त पूँजी वाले बैंक श्रमजीवियों को थोड़ी राशि के ऋण

देने मे विश्वास नही रखते, इसीलिये यह आवश्यक है कि सहकारिता का प्रचार एव प्रसार करके सहकारी आन्दोलन को सफल बनाने का प्रयत्न किया जाय। नगरो के महाजन, पठान आदि ऋणदाता इस आन्दोलन की सफलता मे बाधक सिद्ध होते हैं। अतएव उनके नियन्त्रण के हेतु सुन्दर सन्नियम का निर्माण होना चाहिये। बम्बई एव मद्रास राज्यों मे सहकारी साख आन्दोलन बडा सफल हुआ है। वहाँ सहकारी साख का सगठन इटली के लूजेटी मॉडल (Luzatti Model) पर हुआ है, जिनका दायित्व विभिन्न सदस्यो द्वारा धारण किये हुये अशो की सीमा तक होता है। वे प्रतिभूति पर भी ऋण देते है। नगरी जनता के लिये सहकारी साख का कार्य अन्य प्रान्तो मे लगभग नगण्य हुआ है। **सन् १९४६ की सहकारी नियोजन समिति ने निम्न सिफारिशें की थीं—**

(i) यद्यपि साख समितियाँ ऋणग्रस्तता की समस्या का पूर्ण हल प्रदान नही करती, तथापि प्रत्येक मिल या कारखाने मे उसके कारीगरो की आवश्यकतायें पूरी करने तथा मितव्ययिता की आदत डालने के लिए भी इनकी स्थापना अवश्य करनी चाहिए।

(ii) इन समितियो को सेवायोजको से सहायता मिले, जो कि निम्न रूप मे दी जा सकती है:—

(अ) प्रबन्ध कार्य के लिए आवश्यक स्टाफ देकर।

(आ) उनके व्यय स्वय भुगत कर।

(इ) बिना ब्याज या कम ब्याज पर ऋण देकर।

(ई) कर्मचारियो की मजदूरी एव वेतन मे मे ऋण की रकमे वसूल करने की अनुमति प्रदान कर।

(उ) सहकारी समितियो के रजिस्ट्रार को चाहिए कि वे श्रम-अफसरो के साथ श्रमिको के कल्याण के लिए समितियाँ सगठित करने मे सहयोग दे।

(ऊ) उपभोक्ता सहकारी स्टोर्स स्थापित किए जायें।

भारत में औद्योगिक श्रम की भरती

श्रम की भरती के लिये प्रचलित पद्धतियाँ—

दुर्भाग्य से भारत मे भरती की व्यवस्था बडे उल्टे-सीधे ढग मे विकसित हुई है अतः श्रम-प्रशासन और श्रम प्रबन्ध के वैज्ञानिक नियमो का प्रयोग नही हो पाया है **आवश्यक श्रमिक प्राप्त करने के लिए प्रायः मध्यस्थों द्वारा भरती करनी पड़ती है** सगठित और असगठित दोनो प्रकार के उद्योगो मे अधिकाशतः मध्यस्थो पर निर्भर रह जाता है। ये मध्यस्थ विभिन्न भागो मे विभिन्न नामों से पुकारे जाते हैं, यथा—जाबर सरदार, चौधरी, मुकद्दम, मिस्त्री, फोरमैन या ठेकेदार। इन मध्यस्थो द्वारा श्रमिक की भरती अनेक दोषो से पूर्ण है। श्रमिको को निकालना व रखना, प्रमोशन देना, छुट्टी दिलाना आदि इन्ही मध्यस्थो के हाथ मे होना है, अतः ये श्रमिको पर अपने इस प्रभा

का दुरुपयोग करने मे नही चूकते । इनसे घूस लेते हैं और अनैतिक कार्यवाहियो मे विवश करते है । प्रत्येक व्यक्ति से नौकरी दिलाने मे इन्हे भेंट मिलती है, अत अपने लाभ बढाने के लिए ये पुराने श्रमिको को निकालते व नए श्रमिको की भरती करते रहते है । इससे उद्योग का भी स तुष्ट और अनुभवी श्रमिका का अभाव हो जाता है ।

कुछ कारखानो मे प्रत्यक्ष रूप से भी श्रमिको की भरती की जाती है । यह पद्धति बम्बई मद्रास और पंजाब मे अधिक देखी जाती है । सामान्य विधि इस प्रकार है—कारखाने के दरवाजे पर इस आशय की सूचना चिपकी दी जाती है कि इतने श्रमिको की आवश्यकता है और अमुक तिथि को कारखाना मैनेजर या श्रम-सुपरिन्टे-न्डेन्ट द्वारा चुनाव किया जाये । । रिक्तो के लिये आवश्यकता की घोषणा कभी-कभी विद्यमान श्रमिको के समक्ष कर दी जाती है जिससे वे अपने मित्रो और सम्बन्धियो म इसका प्रचार कर द । इस प्रकार अनेक प्रार्थी निर्दिष्ट तिथि को कारखाने के दरवाजे पर उपस्थित हो जाते है । यह विधि अकुशल कर्मचारियो की भरती के लिये उपयुक्त हो सकती है । कुशल कर्मचारियो की भरती के लिए तो प्रार्थना-पत्र निमन्त्रित किये जाते है और एक आवश्यक परीक्षा लेने के बाद चुनाव किया जाता है ।

भारत के अनेक उद्योगो मे श्रमिको की भरती के लिये ठेके पर श्रम की भरती की पद्धति भी प्रचलित है । अहमदाबाद में कुल श्रमिको का लगभग १०% ठेकेदार के द्वारा काम पर लिया जाता है । इस प्रकार की भरती के समर्थन म कई कारण दिये जाते है, जैसे— कार्य के शीघ्र सम्पादन के लिए अल्प-सूचना पर बडी मात्रा मे श्रमिको की उपलब्धि होना, पर्याप्त सुपरवाइजरी स्टाफ का अभाव, रोजगार केन्द्रो का शिथिल सगठन आदि किन्तु कई विद्वानो की सम्मति मे यह प्रथा ठीक नही है । इसके अन्तर्गत सेवायोजको को श्रम अधिनियमो के अनेक आदेशो की अवहेलना करने का अवसर मिल जाता है ।

कुछ औद्योगिक सस्थाओ ने लेबर अफसरो के द्वारा भरती की पद्धति प्रचलित की है । कभी-कभी यह अफसर भरती के लिये गाँवा म जाते है और श्रमिको से सम्पर्क स्थापित करते हैं लेकिन उनको अधिक सफलता नही मिल पाती, क्योकि अपरिचित होने के कारण वे मजदूरो मे वह विश्वास प्रेरित नही कर पाते जो कि स्थानीय व्यक्ति कर सकते हैं । फल यह होता है कि लेबर अफसर वास्तव म एक स्क्रीन का कार्य करते हैं, जिसके पास सरदारी टाइप भरती पद्धति चलती है । कुछ मिल ट्रेड-यूनियनो द्वारा श्रमिक प्राप्त करते हैं । यूनियन के पास मिल मे काम करने वाले मजदूरो के सबन्धियो की सूची होती है, जो कि काम की तलाश मे है । सूचना मिलते ही यूनियन वेकेन्सी के लिये नाम भेज देती है । अन्तिम निर्णय प्रबन्धको द्वारा किया जाता है ।

उक्त सब भरती-पद्धतियां दोषपूर्ण हैं । भरती का सबसे अच्छा ढङ्ग रोजगार केन्द्रों की सहायता लेना है ।

श्रम विनिमयों का महत्त्व—

श्रम-विनिमयों का दूसरा नाम रोजगार विनिमय केन्द्र अथवा रोजगार केन्द्र है। यह एक विशेष कार्यालय है, जिसकी स्थापना काम की तलाश करने वाले श्रमिकों को श्रमिकों की तलाश करने वाले सेवायोजकों से मिलाने के लिए की गई है। ये रोजगार केन्द्र श्रम की गतिशीलता मे वृद्धि करते है। आजकल इनकी स्थापना का समर्थन बढ़ता जा रहा है और अधिकाश सेवायोजक व उनके सघ एव मजदूरों के सगठन भी सभी औद्योगिक क्षेत्रों मे रोजगार केन्द्रो की स्थापना चाहते है। इतना तो निसन्देह कह सकते है कि वे यदि रोजगार नही बढा सकते तो कम से कम सेवायोजकों को सक्रिय भरती के खच व परिश्रम से अवश्य बचा सकेंगे।

रोजगार केन्द्रो को अब केवल सेवायोजको की सुविधा का साधन भर नही माना जाता। उनके प्रमुख कर्त्तव्य आजकल निम्न प्रकार हैं :—

(१) मानव शक्ति और कार्यों के सम्बन्ध मे सूचना का वितरण करना।

(२) काम दिलाना।

(३) ट्रेनिग की आवश्यकताओं को समझना व उपयुक्त योजनाये सचालित करना।

(४) व्यवसायिक सूचना देना।

(५) रोजगार सम्बन्धी साधारण सूचनाये सरकारी एजेन्सियों, सेवायोजको व सामान्य जनता को देना।

(६) श्रमिको और सेवायोजको के साथ घनिष्ट सहयोग करना।

यदि इन कार्यों को रोजगार केन्द्र उचित रूप से करे तो ये रोजगार मे तेजी ला सकते हैं। विश्व के सभी प्रमुख औद्योगिक देशो मे, जैसे—ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रास, रूस और जापान मे ये श्रमिको की भरती मे महान सेवायें कर रहे है।

भारत मे भी रोजगार केन्द्र स्थापित किये जा चुके हैं। इनका प्रारम्भिक उद्देश्य युद्ध-सेवा मे निकाले हुए लोगो को काम दिलाना था, किन्तु अब इनका प्रयोग पूर्ण रोजगार की दशायें उपलब्ध करने मे सहायता देना है। ये श्रमिको को अपने लिए अधिक उपयुक्त काम तलाशने मे और सेवायोजको को सबसे उपयुक्त श्रमिक प्राप्त करने मे सहायता देंगे। उनमे यह भी आशा की जाती है कि विभिन्न राज्यो मे उपलब्ध योग्यता का उचित वितरण करायेंगे और उत्पादन की सभी शाखाओं को उपयुक्त व्यक्ति दिलायेंगे। मजदूर व कार्यों मे असन्तुलन का एक कारण प्राय यह पाया गया है कि मजदूरों को उपलब्ध कार्यों के विषय मे और सेवायोजको का उपलब्ध श्रमिको के विषय मे जानकारी नही होती, अतः कही तो बेरोजगारी फैली रहती है और कही श्रमिको का अभाव रहता है। ऐसी दशा मे रोजगार केन्द्र सूचनाये प्रदान कर बडी सहायता कर सकता है और आवश्यक ट्रेनिग देकर नये श्रमिक तैयार कर सकता है। रोजगार केन्द्र दूरस्थ भागो मे, जहाँ रोजगार उपलब्ध हो, जाने के लिए श्रमिकों को आवश्यक धन पेशगी दे सकता है।

अक्टूबर सन् १९६० के अन्त मे २७९ श्रम विनिमय केन्द्र थे। ४ विश्वविद्यालय विनिमय केन्द्र इस सख्या मे सम्मिलित नही है। इनके कार्यों का ब्यौरा निम्न तालिका से समझा जा सकता है —

श्रम विनिमय केन्द्रो के कार्यवाहन सम्बन्धी आकडे

वर्ष	विनिमय केन्द्रो का सख्या	रजिस्टर्ड प्रार्थियो की सख्या	काम दिलाये गये प्रार्थियो की सख्या	चालू रजिस्टर पर प्रार्थियो की सख्या	विनिमयो का प्रयोग करने वाले सेवा योजको की औसत मासिक सख्या	सूचित रिक्त स्थानो की सख्या	विचाराधीन रिक्त स्थानो की सख्या
१९५६	१४३	१६ ६९ ८९५	१ ८९ ८५५	७ ५८ ५०३	५ ४६	२ ९६ ६१८	४१ ८०५
१९५७	१८१	१७ ७४ ६६८	१ ९२ ८३१	९ २२ ०९९	५ ६३२	२ ९७ १८८	४५ १५६
१९५८	२१२	२२ ०३ ८८८	२ ३३ ३२०	११ ८३ २९९	६ ४८५	३ ६४ ८८४	६४ ६८०
१९५९	२४४	२४ ७१ ५९६	२ ७१ १३१	१४ २० ९०१	७ ४७०	४ २४ ३९३	८४ ९०३
१९६० (अक्टू०)	२७९	२२ ५४ ९८०	२ ५१ ५१३	१५ ९४ ३४७	८ ६२१	४ २४ ४८२	१ २२ ४८५

औद्योगिक सस्थाग्गो मे श्रमिको की अनुपस्थितता

अनुपस्थितता से आशय—

एक सगठित उद्योग की सफलता बहुत कुछ उसके श्रमिको की कुशलता और अनुभव पर निर्भर रहती है अत इस दृष्टि से श्रमिक की अनुपस्थितता एक विचारणीय समस्या है। भारत सरकार के श्रम-विभाग द्वारा एक सर्कुलर कुछ वर्ष पहले प्रान्तीय सरकारो को भेजा गया था जिसमे अनुपस्थितता (Absenteeism) की परिभाषा इस प्रकार की गई थी जो श्रमिक कार्यकाल के किसी भाग के लिए काम पर आता है उसे 'उपस्थित मानना चाहिए। यदि सेवायोजक के पास कार्य कराने के लिए, और श्रमिक को इस बात का पता है तथा विचाराधीन दिवस एक अवकाश का दिन भी नहीं है तो श्रमिक को चाहिए कि वह अपने को काम पर उपस्थित करे। यदि वह दस दिवस की छुट्टी लेता है या बिना सूचना दिए काम पर नही आता तो वह 'अनुपस्थिति मानी जायगी। हाँ, उसकी ऐसी अनुपस्थिति इतनी लम्बी न होनी चाहिए कि उसकी नौकरी ही समाप्त हो जाय। घोषित अवकाश के दिनो पर श्रमिको को 'अनुपस्थित नहीं समझना चाहिए। इसी प्रकार जो श्रमिक हडताल पर हो, वे भी अनुपस्थित नही कहे जायेंगे।' भारत के विभिन्न उद्योगो मे श्रमिको की अनुपस्थतता का अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है —

वर्ष	सूत (बम्बई)	ऊन		इन्जीनियरी		लोहा व स्पात	युद्ध सामग्री	सीमेंट	दियासलाई	चमडा
		कानपुर	धारीवाल	बम्बई	प० बगाल					
१९५१	१२·७	८ ३	—	१३ ९	१० १	११ ०	८ ६	११ ८	१० ५	७ ८
१९५२	१२ ७	९ ४	६ ३	१३ ४	१०·३	१० ९	९ ४	११ ९	१० ६	९ २
१९५३	१२ ६	११ ०	५·०	१३·७	१० ८	१० ९	९ ९	११ ९	१० १	९ २
१९५४ मई	१४·९	८ ५	३ २	१९ ९	१५ ९	१६·९	१६ ९	१६ ०	१३ ६	६ ७

श्रमिको की अनुपस्थितता के परिणाम—

उपरोक्त आँकडो से स्पष्ट है कि हमारे देश के सगठित उद्योगो मे अनुपस्थिता बहुत साधारण बात हो गई है। इस अनियमित उपस्थिति के दोष निम्न लिखित है —

(१) स्वय श्रमिको को हानि उठानी पडती है क्योकि अनियमित उपस्थिति के कारण उनकी आय कम हो जाती है जबकि सामान्य नियम यह है कि "कोई काम नही तो कोई पारितोषण भी नही।'

(२) सेवायोजको की हानि तो और भी अधिक है क्योंकि अनुशासन और कुशलता दोनों ही पर आंच आती है। उन्हें या तो अतिरिक्त श्रमिक रखने पड़ते हैं या कारखाने के फाटक पर काम की तलाश में खड़े श्रमिकों से आकस्मिक भरती करनी पड़ती है। यह आकस्मिक भरती दोषपूर्ण है क्योंकि प्राय श्रमिक ढंग के नहीं मिल पाते। इसी प्रकार अतिरिक्त श्रमिकों के रखने में भी दोष है। अतिरिक्त श्रमिकों को पूरा काम देने के लिए सेवायोजक कुछ श्रमिकों को अनिवार्य छुट्टी लेने के लिए विवश करते हैं। इस प्रवृत्ति का श्रमिकगण विरोध करते हैं क्योंकि उन्हें इस बात का डर होता है कि इस प्रकार हड़ताल की परिस्थितियों में मुकाबला करने के लिए एक दूसरी रक्षा पंक्ति (Second Line of Defence) तैयार की जा रही है।

अनुपस्थितता के कारण—

हमारे औद्योगिक संस्थानों में अनुपस्थितता के कई कारण हैं जो कि इस प्रकार दिये जाते हैं —

श्रमिकों की अनुपस्थितता के प्रमुख कारण

(१) बीमारी।
(२) रात्रिपालियाँ।
(३) गाँव लौटने की इच्छा।
(४) नगरों की घर सम्बन्धी कठिनाइयाँ।
(५) दुर्व्यसन।
(६) जाबर का दुर्व्यवहार।
(७) पठान महाजन के चंगुल से बचने के लिए।

(१) **बीमारी** —खराब और अपर्याप्त भोजन, दोषपूर्ण गृह व्यवस्था, गंदगी, काम करने की असन्तोषजनक दशायें गरीब श्रमिकों को अनेक महामारियों जैसे मलेरिया, हैजा, चेचक आदि का सरलता से शिकार बना देती हैं। जब श्रमिक बीमार पड़ जाय तो फिर कारखाने में काम पर जाना उसके लिए कैसे सम्भव हो सकता है? कभी कभी परिवार के सदस्य भी साथ ही बीमार पड़ जाते हैं और ऐसी दशा में सेवायोजकों को सूचना देने के लिए भी कोई व्यक्ति नहीं बचता।

(२) **रात्रि पालियाँ** —रात्रि पालियों में दिन की पालियों की अपेक्षा अधिक अनुपस्थितता होती है क्योंकि रात्रि में काम करने में अधिक तकलीफ होती है। कुछ नवयुवक श्रमिक केवल घर रहने के लिए ही रात्रि-पाली से अनुपस्थित रहते हैं। कुछ कारखानों में पाली परिवर्तन (Change over of Shifts) की व्यवस्था हो गई है। इससे उनमें रात्रि-पालियों की अनुपस्थितता घट रही है।

(३) **गाँव लौटने की इच्छा**—अत्यधिक अनुपस्थितता का सबसे प्रधान कारण श्रमिकों के हृदय में जल्द से जल्द अपने गाँव को लौटने की इच्छा है। उन्हें

नागरिक जीवन से कोई प्रेम तो होता नही, क्योकि वे ग्रामीण-वातावरण मे पले होते हैं और गाँव से अपनी आर्थिक कठिनाइयो द्वारा ढकेले हुए शहर को आते हैं, अतः जैसे ही आर्थिक कठिनाइयो से तनिक भी छुटकारा मिला कि वे गाँव लौटने की सोचते है। गांव मे उनका परिवार है, खेतीबारी है, बन्धु-बान्धव हैं, इन सबका आकर्षण उन्हे गाँव लौटने के लिए विवश करता है।

(४) **नगरो की 'घर' सम्बन्धी कठिनाइयाँ**— नगरो मे सरलता से रहने के लिये घर नही मिलते और जो मिलते हैं वे बहुत तग, महगे किराये के और अस्वास्थ्य-मय होते है, अतः वे प्रायः अपना परि-ार गाँव मे ही छोड देते हैं, अत. उनसे सम्पर्क रखने के लिये समय-समय पर छुट्टी लेकर गाँव जाना पडता है।

(५) **दुव्यसन**—जिस दिन वेतन बँटता है उस दिन श्रमिक शराब पी लेते है और मौज उडाते है। इस प्रकार उन्हे अपने कर्त्तव्य का ध्यान नही रहता और कई दिनो तक कारखाने से अनुपस्थित रहते है। जो श्रमिक इन दुर्व्यसनो से बचे हुए है वे भी आवश्यक वस्तुयें खरीदने या अपने परिवार के सदस्यो से मिलने मिलाने गाँव चले जाते है।

(६) **जॉबर का दुर्व्यवहार**—जॉबर का दुर्व्यवहार भी श्रमिको को कारखाने मे अनुपस्थित रहने के लिए विवश कर देता है।

(७) **पठान महाजन के चंगुल से बचने के लिए**—प्रायः श्रमिक कर्जदार होते है। पठान महाजन उनसे तकाजा करने के लिये कारखाने पर आ धमकते हैं। उनकी निर्दयता से बचने के लिए भी किसी-किसी दिन श्रमिक छिपे रहते है।

अनुपस्थितता के उपचार—

बम्बई वस्त्र-श्रम जाँच समिति के अनुसार अनुपस्थितता को घटाने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते है—

(१) कारखाने मे काम करने की दशायें सुधारी जायें।

(२) श्रमिको को पर्याप्त मजदूरी दी जाये।

(३) बीमारी एव दुर्घटना से बचाव की व्यवस्था की जावे।

(४) आराम के लिये अवकाश लेने की सुविधा दी जाये।

यदि काम की दशायें कठोर और अस्वास्थ्यप्रद रही तो स्वभावतः श्रमिक काम से बचने की कोशिश करेगा, अतः सर्वोत्तम उपाय तो यही होगा कि श्रमिक के कार्य एव जीवन की दशायें सुधारी जायें, जिससे वे प्रसन्न रहे। उन्हें सवेतन या वेतन बिना अवकाश दिवस दिये जायें, जिससे वे अपने प्राइवेट कार्यो के लिए अवसर पा सकें। औद्योगिक नगरो मे सुविधाजनक घरो की व्यवस्था की जाये, जॉबर का व्यवहार सज्जनता का होना चाहिए, पठान-महाजन के विरुद्ध श्रमिक को कानूनी सरक्षण दिलाया जाए। यदि श्रमिको को शिक्षा दी जा सके ता इससे इन्हे अपने कर्त्तव्यो का ज्ञान हो सकेगा और अनुपस्थित रहने की प्रवृत्ति घटेगी।

भारत मे बाल और स्त्री-श्रम का उपयोग

विभिन्न उद्योगो मे बाल व स्त्री श्रम—

उत्पादन की कारखाना प्रणाली मे कई गम्भीर दोष है। उत्पादक कम लागत पर शीघ्र लाभ अर्जन करके बहुत अमीर बन जाना चाहते है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे एक बडी सख्या मे बालका और स्त्रियो को काम पर रख लेते है और इन्हे कम मजदूरी देते है तथा अत्यधिक काम कराते है। सगठित और असगठित दोनो प्रकार के उद्योगो मे अनेक बाल और महिला श्रमिक काम करते है। ऐसे उद्योग विशेषतः निम्नलिखित है .—

(१) बागवानी—उद्यान उद्योग सम्पूर्ण परिवार के लिए काम प्रदान करता है। आसाम के चाय बागानो मे ही सन् १९४६—४७ मे औसत दैनिक रोजगार के आँकडे इस प्रकार थे—पुरुष—१,६४,६८६, स्त्रियाँ—१,२४,३६३ और बालक—५४,६०६। इससे हमे यह पता लगता है कि विभिन्न व्यवसायो में कितनी बडी सख्या मे स्त्री और बालक श्रमिक काम पर रखे गये। चाय उद्यानो मे स्त्री और बाल-श्रमिको के लिए नियमित रोजगार उपलब्ध है, जो कि एक खान या कारखाने मे सम्भव नही है।

(२) बीडी-निर्माण उद्योग—बीडी-निर्माण एक अन्य उद्योग है, जिसमे बच्चे और स्त्रिया बडी सख्या मे काम करते है। यह उद्योग बगाल, बिहार व मध्य-प्रदेश मे केन्द्रित है। काम मौसमी होना है। और काफी देर तक सैकडो बालक काम पर लगे देखे जा सकते है। मजदूरी के अतिरिक्त प्रत्येक श्रमिक को कुछ बीडियां दे दी जाती है, जिससे स्त्रियो और विशेषत बालको को बीडी पीने की आदत पड जाती है। स्त्रियाँ प्राय. अपने घरो म काम करती है। यदि कुछ बीडियाँ अस्वीकृत कर दी जाती है तो उनका परिश्रम व्यर्थ हो जाता है, क्योकि उनका भुगतान नही मिलता। दान-पुण्य के बहाने भी कुछ कटौती कर ली जाती है।

(३) अभ्रक उद्योग—अभ्रक उद्योग मे काम करने वाले स्त्री और बाल श्रमिको की सख्या बहुत अधिक है। अधिकाश कारखाने भारतीय कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत नही आते, क्योकि वे बहुत छोटे है और शक्ति का प्रयोग नही करते अथवा छोटी छोटी दुकानो मे चलाय जाते हैं। सन् १९३० मे बिहार के अभ्रक के १२७ कार-खानो मे केवल १ कारखाना रजिस्टर्ड था और इनमे काम करने वाले पुरुष, स्त्री और बच्चो का अनुपात क्रमशः ५७, १७ व २७% था। यह अनुमान किया जाता है कि स्त्री और बाल श्रमिको की वास्तविक सख्या सरकारी अको से कही अधिक होगी। इन स्त्री और बाल श्रमिको को उपरोक्त कारण से सरक्षरा प्रदान नही किया जा सकता। इन कारखानो मे जो दोष देखे जाते है उनमे प्रमुख निम्नलिखित हैं—भुगतान मुद्रा मे नही किया जाता, देर मे आने, खराब काम, कम तोल आदि के लिये मनमानी कटौती कर लेना।

(४) **कोयला खान**—कोयला खानो मे भी स्त्री श्रमिको की सख्या बहुत अधिक है। खान मे काम करने वाले श्रमिको की रक्षार्थ बनाए गए सन्नियम धीरे-धीरे प्रगति कर पाये है। प्रथम खान अधिनियम सन् १६०१ ने केवल खनिको की सुरक्षा और निरीक्षण के लिये निरीक्षको की नियुक्ति का ही आयोजन किया था। खनिको की सख्या मे वृद्धि होने पर तथा वाशिगटन-श्रम सम्मेलन की सिफारिशो के आधार पर सन् १६३३ मे दूसरा खान अधिनियम बनाया गया, जिसने खान के ऊपर ६० और खान के अन्दर ५४ घन्टे का सप्ताह निर्धारित किया। एक साप्ताहिक अवकाश की भी व्यवस्था की गई और १३ वर्ष से कम आयु के बालको के खान मे नीचे काम कराने का निषेध कर दिया गया। सन् १६२६ के बाद इस उद्योग मे स्त्री श्रमिको की सख्या घटने लगी और सन् १६३७—४३ से स्त्रियो को खान के अन्दर काम करने से रोक दिया गया है।

(५) **धान कमाना**—यह उद्योग (Rice milling) मद्रास, बगाल और बिहार मे अधिक पाया जाता है। सन् १६४६ म लगभग ६०० मिल थे, जिनमे लगभग ४०,००० व्यक्तियो को काम मिला हुआ था। इन मिलो मे जो स्त्री श्रमिक काम कर रही है उनको बहुत कम मजदूरी दी जाती है और कार्य करने की दशायें बडी असन्तोषजनक है। खुले मैदान मे सूरज की तेज धूप मे चावल सुखाना, फैलाना और पलटना पडता है। इस कार्य मे बराबर चलते रहना पडता है।

(६) **शिलाक उद्योग**—इन कारखानो (Shellac Factories) मे स्त्री-श्रमिको की सख्या बाल श्रमिको से बहुत अधिक है। यह अनुमान किया जाता है कि ये सख्यायें क्रमशः ३० व १०% है। यह उद्योग अधिकाशतः कुटीर उद्योग के रूप मे चलाया जाता है। स्टोर के कमरे में दिन का कार्य, विशेषतः गरम मौसम में विशेष कठिन होता है। धोने के स्थान, नालियाँ, टंकियाँ अच्छी तरह साफ नही की जाती है, जिससे उनमे से बडी दुर्गन्ध निकलती रहती है। शिलॉक बनाने के स्थान मे और इसके चारो तरफ खराब निकला हुआ पानी इकट्ठा होकर सडता रहता है, क्योकि वहाँ नालियो की व्यवस्था नही होती। इसकी अपेक्षा सुधार की व्यवस्था अधिक चाहने वाला कदाचित ही कोई अन्य सगठित उद्योग होगा।

स्त्री और बाल श्रमिको की विशेष समस्यायें—

सामान्यतः स्त्री और बाल श्रमिको को काम देने वाले उद्योग, केवल उद्यान-उद्योग को छोड कर, भारतीय कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत नही आते बडे-बडे उद्योगो मे भी, जो कि कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत आते है, जब दशायें बडी खराब है तो इन अनियन्त्रित उद्योगो मे अवस्था कितनी भयकर होगी, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। स्त्री और बाल श्रमिको को काम देने वाले कारखानो मे सामान्य समस्यायें तो है ही, किन्तु निम्नलिखित विशिष्ट समस्याये भी हैं:—

(I) बाल श्रमिकों की समस्यायें—

(१) उनके काम करने की दशायें बड़ी असन्तोषजनक है। उन्हें गन्दे वायुमण्डल मे अन्धकारपूर्ण और भीड़-भाड के स्थानो म काम करना पडता है।

(२) बाल श्रमिकों की मजदूरी भी बहुत कम है, जो कि वयस्क श्रमिकों की मजदूरी की ३० से ५०% तक होती है।

(३) भारतीय कारखाना अधिनियम ने बाल श्रमिकों के लिये कार्य के घन्टे, मध्यान्तर, अवकाश आदि के सम्बन्ध मे नियम बनाये हैं, लेकिन कारखाना निरीक्षण स्टाफ की शिथिलता से इनका लाभ नही उठाया जा सका है।

(४) बाल-श्रमिकों के स्वास्थ्य पर अत्यधिक कार्य का बुरा प्रभाव पडता है।

(५) यद्यपि कुछ उद्योगो म सामान्यत एक निर्दिष्ट आयु से कम के बालको का काम पर रखने का निषेध है, फिर भी झूठे प्रमाण-पत्र बनवाकर अनियमितता बरती जा रही है। इस अनियमितता म माता पिता भी भाग लेते है।

(II) स्त्री श्रमिकों की समस्यायें—

(१) स्त्री श्रमिको को दी जाने वाली मजदूरी पुरुष श्रमिको की अपेक्षा कम है, भले ही उनका काय पुरुषो जैसा हो। औद्योगिक ट्रिब्युनल क अनुसार यह भेद-भाव बडा अनुचित है। कोई कारण नही है कि एक ही काम के लिए पुरुष और स्त्री श्रमिको को भिन्न-भिन्न मजदूरी दी जाय।

(२) कारखाना अधिनियम के अन्तगत स्त्री-श्रमिकों के लिए (और बाल श्रमिको का भी) रात्रि-कार्य का निषेध है। वे केवल सुबह ६ स सध्या के ७ बजे तक काय कर सकती है। इसक अतिरिक्त काय क घन्टा मध्यान्तर आदि के सम्बन्ध म उन्हे कोई विशेष सुविधा प्राप्त नही है जबकि एसा होना स्वाभाविक ह, क्योंकि स्त्री और पुरुष की सहनशीलता समान नहीं होती।

(३) कारखाना अधिनियम न स्त्री श्रमिको के लिए प्रसूति लाभ और शिशु सदनो की व्यवस्था की है। अनेक कारखानो मे स्त्री श्रमिक प्रसूति लाभो स, समय रहते काम से अलग कर दिये जाने के कारण, वचित रहती है और स्त्री-श्रमिको की सख्या ५० स कम दिखलाकर शिशु गृह की व्यवस्था करने का दायित्व भी बचा लिया जाता है। जहाँ शिशु-गृह हैं भी वहाँ उनको ठीक हालत म नही रखा जाता। उनमे प्रशिक्षित नर्सो का अत्यन्त अभाव ह, जिससे बच्चो की उचित देखभाल नही हो पाती।

(४) हमारे देश मे स्त्रियो को पुरुषो से निम्न समझा जाता है। परिणामत स्त्रियो मे अभी वह सामाजिक चेतना, आत्म विश्वास और आत्म सम्मान की भावना नही हो पाई है जो कि पश्चिमी स्त्री-जगत म देखो जाती है। स्त्री श्रमिको को गाँव मे हेय दृष्टि से देखा जाता है। औद्योगिक क्षेत्रो म काम करने वाली अधिकाश स्त्रियो का नैतिक पतन हो गया है, जिसमे जाबर की बडी जिम्मेदारी है। कभी-कभी सेवा योजको की भी साजिश होती है। गाव क सामाजिक और धार्मिक बन्धन शहरा मे

अनुपस्थित है। कुछ विधवा या एकाकी स्त्रियां दिन मे कारखाने मे काम करके अपनी आय अर्जन करती है और रात मे अनैतिक जीवन व्यतीत करती है। यह सामाजिक-आर्थिक समस्या उग्र होती जा रही है, किन्तु इस पर अभी तक ध्यान नही दिया गया है।

सुधार के उपाय—

(१) **पुरुषों की आय में वृद्धि**—ऐसे प्रयास किए जाये कि परिवार के पुरुष सदस्य की आय इतनी पर्याप्त बढ जाये कि उसे अपनी स्त्री और बच्चो से कारखानो मे जाकर काम करने के लिए कहने को विवश न होना पडे।

(२) **अधिनियम द्वारा संरक्षण**—केन्द्रीय और राज्य सरकारो को तुरन्त ही ऐसा अधिनियम बनाना चाहिए, जिससे स्त्री और बाल श्रमिको को सरक्षण मिले। न केवल कारखानो मे जाकर उनके लिए काम करने का निषेध हो अपितु उन्हे अपने ही घरो पर करने के लिए सम्मानपूर्ण कार्य प्रदान करना चाहिए। बालको के लिए शिक्षा एव मनोरजन की सुविधाओ का प्रबन्ध किया जाए।

(३) **निरीक्षण मे कड़ाई**— निरीक्षण स्टाफ पर कर्त्तव्यपरायण इन्सपैक्टरो की सख्या बढाई जाय, जो कार्य करने के स्थानो पर कडी निगरानी रखें। जब कभी कोई दोष पाया जाय तो कठोर कार्यवाही करनी चाहिए, जिसमे शिथिलता दूर हो।

(४) **शिशु सदनो व शिक्षालयो की व्यवस्था**—राज्य को चाहिए कि बाल-श्रमिक रखे जाना कतई बन्द कर दे। कुछ सेवा-योजको का कहना है कि बालको को काम पर रखने से पारिवारिक आय बढ जाती है तथा बालक भी शिक्षा-सुविधाओ के अभाव मे सुस्त तथा आवारा फिरने नही पायेंगे, लेकिन ये सब खोखले तर्क है। आज के बालक कल के नेता है। इन्ही पर देश के शासन का भार पड़ने वाला है, अतः सरकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि मजदूरो की भावी पीढियो का बचपन कारखाने के गन्दे वातावरण मे बर्बाद न हो। उनके लिए शिशुसदनो और शिक्षालयो की व्यवस्था भी करना आवश्यक है।

(५) **स्त्री श्रमिकों को विशेष सुविधायें**—अब भारतीय सविधान स्त्री और पुरुषो को बराबरी का दर्जा प्रदान करता है, अत. राज्य को चाहिए कि स्त्री और पुरुषो को बराबर के सामाजिक एव आर्थिक अधिकार मिले—जैसे दोनो को जीविकोपार्जन के बराबर अवसर मिलें, समान कार्य के लिए समान मजदूरी हो। माताओ के स्वास्थ्य पर भावी पीढियो का स्वास्थ्य निर्भर होता है, अतः श्रमिको को विशेष सुविधाये देनी चाहिए।

(६) **प्रचार**—औद्योगिक क्षेत्रो मे यह प्रचार करना चाहिए कि स्त्रिया समाज मे सर्वाधिक सम्मान की अधिकारिणी है और उनकी शारीरिक व नैतिक उन्नति पर राष्ट्र का भाग्य निर्भर है।

भारतीय उद्योगो में कार्य करने की दशायें

कार्य सम्बन्धी दशाये श्रमिको की कुशलता पर बडा प्रभाव डालती है। यदि कार्य सम्बन्धी दशायें सन्तोषजनक हो तो श्रमिक के शरीर और दिमाग पर सुन्दर एव स्वास्थ्यप्रद प्रभाव पडेगा, जिससे उसकी कार्यक्षमता बढ जायगी। इसके विपरीत यदि कार्य की दशायें असन्तोषजनक हुई तो श्रमिको की कार्यक्षमता घट जावेगी, अतः यह आवश्यक है कि काय सम्बन्धी दशाओ पर उचित ध्यान दिया जाए। भारतीय उद्योगो मे कार्य सम्बन्धी दशाओ का अध्ययन निम्न शीर्षक के अन्तर्गत करेंगे :—

(१) हवा आने-जाने की व्यवस्था,

(२) तापक्रम, और

(३) प्रकाश।

हवा आने-जाने की व्यवस्था प्राकृतिक हो सकती है, जबकि वह खिडकियो और वायु-झरोखो की सहायता से हो। वह कृत्रिम भी हो सकती है, जबकि पखो द्वारा हवा बाहर निकाली जाती हो या यान्त्रिक उपकरणो द्वारा अन्दर पहुँचाई जाती हो। भारतीय उद्योगो मे कृत्रिम व्यवस्था पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। कार्य करने के कमरो मे उचित तापक्रम रखना आवश्यक है। भारत के कुछ ही सेवायोजको ने अभी इस बात पर ध्यान दिया है। बम्बई व अहमदाबाद की अनेक कपास मिलो मे वायु-अनुकूलित यन्त्रो की स्थापना हो गई है, किन्तु बम्बई इस दिशा मे अहमदाबाद से पीछे रह गया है। अन्य औद्योगिक क्षेत्रो मे दशायें बडी खराब है। कार्य करने के स्थानो मे पर्याप्त एव उपयुक्त रोशनी होनी चाहिए, जिससे श्रमिको की आँखो पर जोर न पडे और उत्पादन बढ जाये। दुर्भाग्य से इस अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति भी सन्तोषजनक नही है।

बडी इकाइयो मे कार्य की दशाये सामान्यतः सन्तोषजनक है। छोटी और अनियन्त्रित इकाइयों मे, विशेषतः वे जो कि पुरानी इमारतो मे चल रही है, प्रकाश और हवा के बारे मे बडी असन्तोषजनक व्यवस्था पाई जाती है। दुर्भाग्य से अधिकाश सेवायोजक उदासीन रहते है और केवल कानून के अक्षर पालन से, न कि उसकी भावना की पूर्ति से, असन्तुष्ट हो जाते है। परिणाम यह है कि कानून द्वारा निर्दिष्ट सीमा के अन्दर भी मशीनो मे सुरक्षा आदि के नियमो की अवहेलना की जाती है। हाँ, कुछ ऐसे उदार हृदय सेवायोजक भी हैं जिन्होने न केवल मशीन के गतिशील भागो से श्रमिक की सुरक्षा की व्यवस्था की है, अपितु श्रमिको मे 'सुरक्षा प्रथम' समितियाँ सगठित की है, ताकि श्रमिक दुर्घटनाओ की रोकथाम के उपायो से परिचित हो जायें। यदि एक विशेष श्रमिक समूह मे कोई दुर्घटना न हो तो बोनस भी दिए जाते है।

कुछ उद्योगो के उदाहरण—

(१) वस्त्र मिलो मे सामान्यतः कारखानो की इमारतें भली प्रकार प्रकाशित है और उनमे वायु आने-जाने की अच्छी व्यवस्था है। मशीनो को इस प्रकार जमाया गया है कि श्रमिक स्वतन्त्रतापूर्वक आस-पास घूम सकते हैं।

(२) **इञ्जीनियरिंग कारखानो में** हवा और प्रकाश की व्यवस्था अधिकांश दशाओ मे बडी सन्तोषजनक है। कुछ दशाओ मे फाउन्ड्री, वर्कशाप जैसे भाग बडे अन्धकारपूर्ण और भीडभाड के हैं।

(३) **पॉटरीज मे**, विशेषत कलकत्ता और ग्वालियर मे प्रकाश और हवा की व्यवस्था के सम्बन्ध मे बहुत कुछ सुधार आवश्यक है।

(४) **प्रिंटिंग प्रेसेज में** सामान्यत दशायें बडी खराब हैं। प्राय ही श्रमिक अस्तबलो, टीन के शेडो और अपर्याप्त वायु झरोखो वाले अधेरे कमरो मे काम करते देखे जाते हैं।

(५) **कांच के कारखानो मे** घाव लगना, जल जाना आदि घटनायें बहुत होती है। इस उद्योग की कार्य सम्बन्धी दशायें इतनी असन्तोषजनक है कि बहुत से काँच का काम करने वाले श्रमिक व्यावसायिक बीमारियो के शिकार हो गये है।

(६) **शक्कर उद्योग** का जहाँ तक सम्बन्ध है, मद्रास और बम्बई के कारखानो मे काम की दशाएँ उत्तर-प्रदेश और बिहार के कारखाना मे उपलब्ध दशाओ से अधिक अच्छी हैं। उत्तर-प्रदेश और बिहार के शक्करखानो म जो दुर्गन्ध उडती है वह अहमद-नगर के कारखानो मे नही मिलेगी। हाँ, सफाई की दशायें दोषपूर्ण हैं।

(७) धान के मिल, विशेषत. जो कि मद्रास राज्य मे है, अधिकाशत छोटे और प्राचीन है तथा अनुपयुक्त इमारतो मे स्थित हैं। कुछ तो इतने अन्धकारपूर्ण है कि दिन के समय भी काम गैस की लालटेनो के प्रकाश मे करना पडता है। सफाई सम्बन्धी नियमो का केवल इतना ही पालन किया जाता है, जिससे अधिनियम के अक्षर का पालन हो जाय।

(८) **अभ्रक के कारखानों में** कम से कम बडी सस्थाओ मे कार्य सम्बन्धी दशाये सन्तोषजनक हैं, लेकिन छोटी इकाइयो मे वे असन्तोषजनक हैं। ऐसी इकाइयो मे श्रमिको को अन्धकारपूर्ण और वायु के आने-जाने की अपर्याप्त व्यवस्था वाले कमरो मे काम करना पडता है। शिलॉक कारखाना मे शक्ति प्रयोग करने वाले कुछ कारखानो को छोडकर किसी भी श्रम सन्नियम का आदर नही किया जाता।

(९) मद्रास की **सिग्रेट फैक्ट्रियाँ** गली-कूंचो, अस्वास्थ्यप्रद और अर्द्ध प्रकाशित गोदामो मे अवस्थित है। वहाँ बडी भीड़-भाड है, पीने क पानी, पेशाबघर व सण्डास की कोई व्यवस्था नही है। गलीचो के कारखानो मे भी सफाई सम्बन्धी आयोजन सन्तोषजनक नही है।

(१०) **चमडा** कमाने के कारखानो मे कार्य की दशायें बडी भयकर है, चाहे वे नियन्त्रित इकाइयो मे हो या अनियन्त्रित इकाइयो मे। सफाई और नालियो का तो अभाव है ही, टुकडे इधर-उधर बिखेर दिए जाते है और चारो तरफ दुर्गन्ध उडती रहती है। भूमिगत नालियो की व्यवस्था बहुत कम पाई जाती है। कारखाने का काम कच्ची इमारतो मे चलता है।

(११) मध्य-प्रदेश की मैंगनीज खानों मे कठिनता से कुछ आश्रम मजदूरो के आराम करने के हेतु होंगे। सडास और पेशाबघर अधिकाश खानों मे नहीं हैं। कही-कही तो नीचे काम करने के स्थानो मे पर्याप्त मोमबत्तियाँ भी नही दी जातीं। अभ्रक की खानो मे दशायें अधिक बुरी हैं। बडी फर्मों के स्वामित्व मे जो खानें हैं उनके ऊपरी भागो मे तो अच्छी वायु-व्यवस्था है, परन्तु जैसे जैसे गहराइयो मे जाते हैं वैसे-वैसे दशायें खराब होती जाती हैं।

(१२) उद्यानो मे आसाम और बगाल के चाय उद्यान बडे मलेरिया पीडित क्षेत्रों में स्थित हैं और प्रायः चाय उद्यानो म खाद्य सामग्री का राशन अपर्याप्त होता है, जिससे श्रमिक अधभूखे रहते हैं। स्त्री और बच्चो को मिस्त्री द्वारा प्रसविदे के अन्तर्गत काम पर रखा जाता है। इन्हे लम्बे घन्टो तक काम करना पडता है। मिस्त्रियो द्वारा बच्चो को शारीरिक दण्ड दिये जाने के भी अनेक उदाहरण हैं। अनेक चाय बागानो पर बडे खराब किस्म की शिशुशालायें हैं। कहने के उद्यानो मे तो ऐसी भी नही हैं। खेतो मे काम करते समय पीने के पानी की कोई व्यवस्था नही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अधिकाश भारतीय उद्योगो मे कार्य की दशाये बडी खराब हैं और उनमे व्यापक सुधार की आवश्यकता है।

STANDARD QUESTIONS

1 Discuss the social and economic effects of the migration of Indian Factory Workers Would you advocate continuance of the factory worker's connection with his village ?

2. Briefly point out the principal characteristics of Indian industrial labour.

3 It has often been remarked that Indian labour is cheap and inefficient Trace some of the causes of low efficiency and suggest ways and means to stimulate production and to improve efficiency

4 "The tyranny of debt degrades the employee and impairs his efficiency." Discuss the above statement with special reference to the causes of indebtedness among the industrial workers in India and the means suggested to remove the evil

5 "Modern industry demands scientific methods of recruitment." Comment with reference to the methods employed in our industries and indicate the part played by labour exchange in the matter

6. Analyse the causes of, and suggest the cure for absenteeism in our industrial establishments

7. What are the chief industries in India in which women and children are employed ? What special problems have arisen on account of this employment ? Suggest suitable remedies

8. Discuss the housing problem of industrial workers in India with special reference to the industrial towns of the country What are the consequences of bad housing ?

अध्याय २६

औद्योगिक संघर्ष एवं उनका निबटारा

(Industrial Disputes & Their Settlement)

औद्योगिक संघर्ष के कारण

औद्योगिक सघर्षों के सम्बन्ध मे जो आँकडे प्रकाशित होते रहते है, उनसे इनके कारण ग्ग प्रगट हो जाते है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इन कारणो को तीन भागो मे ,वभाजित किया जा सकता है—(I) आर्थिक कारण, (II) प्रबन्ध एव व्यवस्था सम्बन्धी कारण, और (III) राजनैतिक कारण।

(I) आर्थिक कारण—

औद्योगिक सघर्ष के आर्थिक कारणो के अन्तर्गत निम्न का समावेश किया जा सकता है :—

(१) **मजदूरी, बोनस, मँहगाई आदि**—औद्योगिक सघर्षो का इतिहास इस बात का साक्षी है कि लगभग ५७ प्रतिशत झगडे मजदूरी एव बोनस के प्रश्न को लेकर हुए। प्रथम विश्व युद्ध के बाद औद्योगिक अशान्ति का मूल कारण यही था कि वस्तुओ का मूल्य-स्तर गगन-चुम्बी होता जा रहा था, जिसके परिणामस्वप बिचारे श्रमिको ने अधिक मजदूरी तथा महगाई भत्ते की माँग की। सेवायोजक इस माँग को पूरी करने मे असमर्थ थे। उन्होने कुछ सीमा तक मजदूरी मे वृद्धि की तथा काम की दशाओ मे भी सुधार किये गये, परन्तु सन् १९२९-३० की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी ने व्यापारियो एव उद्योगपतियो की कमर तोड दी, अब वे श्रमिको की माँग को पूर्ण करने मे पूर्णतः असमर्थ हो गये। श्रमिको की छँटनी की गई तथा मजदूरी भी घटा दी गई। फलत. हडतालो की एक बाढ-सी आई, जिससे औद्योगिक अशान्ति के बादल छा गये। यही दशा सन् १९३९–४५ के द्वितीय महासमर के बाद हुई। सन् १९४० तथा सन् १९४८ के बीच जितनी भी हडतालें हुई, उनका मूल कारण मजदूरी तथा मंहगाई भत्ते मे वृद्धि कराना था। सन् १९५० मे २० प्रतिशत तथा सन् १९५१ मे ३० प्रतिशत औद्योगिक सघर्ष प्रायः मजदूरी और बोनस के प्रश्न को लेकर ही हुए। वर्तमान स्वतन्त्रता की अवधि मे भी अनेक उद्योगो तथा राजकीय विभागो मे संघर्ष हुए, जिनके पीछे अधिक मजदूरी अथवा मंहगाई भत्ते का ही प्रश्न था। ९ अगस्त सन् १९५७ से होने वाली डाक व तार घर के कर्मचारियो की हडताल का मूल कारण भी अधिक वेतन पाना था।

भारत मे औद्योगिक संघर्षों के मुख्य १० कारण

१. मजदूरी, बोनस, महगाई आदि ।
२. काम करने की दशायें ।
३. भरती पद्धति ।
४. श्रमिक सघ आन्दोलन ।
५. श्रम व पूंजी का पारस्परिक सम्बन्ध ।
६. श्रमिको की अशिक्षा ।
७. छुट्टी व नौकरी की अन्य शर्तें ।
८. शान्तिपूर्ण समझौते की व्यवस्था का अभाव ।
९. विवेकीकरण की योजना ।
१०. राजनैतिक या अनार्थिक कारण ।

भारत मे रहन-सहन का स्तर बहुत कुछ मजदूरी पर निर्भर करता है, परन्तु दुर्भाग्य से इसको निश्चित करने का कोई विशेष आधार नही है। पक्षो के पारस्परिक सौदा ठहराने की शक्ति ही एकमात्र मजदूरी ठहराने की कसौटी है। उचित आधार के अभाव मे झगडो की उत्पत्ति को बडा अवसर मिला। आजकल तो हडतालो का एक अकेला महत्त्वपूर्ण कारण आर्थिक, अर्थात् कम मजदूरी एव बढती हुई रहन सहन की कीमत मे अन्तर होना है।

(२) काम करने की दशायें—हमारे देश मे अनेक सघर्ष अस्वस्थ वातावरण, बुरी-गृह-व्यवस्था, दोषपूर्ण यन्त्र, काम करने के अधिक घण्टे, आदि बातो को लेकर भी हुए हैं, परन्तु इनका प्रतिशत कम ही रहा है।

(३) भरती पद्धति—भारत मे श्रमिको की भरती प्राय कर्मकारियोजको (Jobbers) द्वारा होती है। कर्मकारियोजका का अपने नीचे काम करने वाले व्यक्तियो पर गहरा प्रभाव पडता है। जब किसी कारण उन्हे अलग कर दिया जाता है तो कभी-कभी सहानुभूतिवश, परन्तु अधिकतर भय से, (अर्थात् श्रमजीवी) उस समय तक काम करना बन्द कर देते है, जब तक कि वह ठेकेदार या कर्मकारियोजक काम पर वापिस न ले लिया जाय।

(४) श्रमिक सघ के आन्दोलन ये भी गत वर्षो मे झगडो के लिए उत्तरदायी हैं। यह सघ आन्दोलन सेवायोजको के लिए अभी नया-सा है वे इसे अपने अधिकारो के लिए चुनौती समझते हैं।

(II) प्रबन्ध एव व्यवस्था सम्बन्धी कारण—

(५) श्रम एवं पूंजी का पारस्परिक सम्बन्ध—ये महत्त्वानुसार दूसरी श्रेणी के कारण है। मजदूरो को भाँति-भाँति से परेशान करना, श्रमिक सघो से सम्बन्धित मजदूरो को निकाल देना, श्रमिक सघो को मान्यता न देना, काम दिलाने वाले ठेकेदार की बेईमानी और भ्रष्टाचार, कुछ ऐसे ही इस वर्ग के कारण है, जिन्होने प्रति पाँच मे एक झगडे को जन्म दिया।

(६) श्रमिकों की अशिक्षा—अधिकतर श्रमजीवी अपढ तथा अनभिज्ञ हैं और वे अब भी बाहरी पथ-प्रदर्शन पर निर्भर रहते है। उनकी इस दशा का कुछ स्वार्थी लोगो ने लाभ उठाकर उनमे पारस्परिक वैमनस्य व कटुता के बीज बो दिए हैं।

(७) **छुट्टी, अवकाश दिवस व नौकरी की अन्य शर्तों के सम्बन्ध मे नियमो** का अभाव, बिना पूर्ण सूचना के काम से हटा देना, काम करने की दशाओ मे उनकी सम्मति के बिना परिवर्तन कर देना, जुर्माना करना या उनकी मजदूरियो मे से गैर-कानूनी कटौतियाँ कर लेना आदि कार्यवाहियाँ मजदूरो को भडका देती है और वे काम रोक देते है तथा हडताल उस समय तक जारी रहती है जब तक उनकी बात पूरी नही हो जाती।

(८) **ऐसी व्यवस्था का अभी तक अभाव था जिससे सेवायोजकों और मजदूरों में परस्पर शान्तिपूर्ण वार्ता हो सके।** कभी-कभी तो छोटी सी बात पर तूल दे दिया जाता है, जो कि सरलता से ठीक की जा सकती थी। उदाहरण के लिए, २ मार्च सन् १९५० को हावडा की 'फोर्ट ग्लोस्टर जूट मिल्स' के ८,००० श्रमजीवियो ने होली के त्योहार पर एक दिन की छुट्टी न मिलने पर हडताल कर दी थी और इसके परिणाम इतने गम्भीर हुए कि पुलिस को विवश होकर गोली चलानी पडी और मिल मालिको को तालाबन्दी करनी पडी, जो बाद मे ५४ दिन पश्चात् समाप्त हुई। इसके फलस्वरूप तीन लाख कार्य दिनो (Man-days) की हानि हुई। बहुधा मजदूर नही जानते कि वे क्या चाहते हैं, किन्तु हडताल कर देते है, बाद मे माँगो की सूची तैयार होती है। यदि मजदूरो का शक्तिशाली सघ हो तो ऐसी अनुत्तरदायित्वपूर्ण घटनायें बन्द हो सकती है। पहले तो मजदूर अपनी कठिनाइयो को समझ-बूझ लें, फिर सेवायोजको को मागें भेजे और जब वे उनको अस्वीकार कर दें तब ही कोई अन्य कदम उठावें।

(९) **विवेकीकरण की योजना**—विवेकीकरण की किसी भी योजना का तत्कालीन परिणाम श्रमिको की छटनी होता है; अत: श्रमजीवी इसका विरोध करते हैं। उदाहरण के लिए, बम्बई के नियोक्ताओ द्वारा विवेकीकरण की योजना लागू करने के विरुद्ध वहाँ के वस्त्र उद्योग के कर्मचारियो ने सामान्य हडताल घोषित कर दी थी, जिसके परिणामस्वरूप सरकार को बम्बई हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस सर चार्ल्स फॉसेट की अध्यक्षता मे एक समिति (फॉसेट समिति) नियुक्त करनी पडी थी। इसी प्रकार टाटानगर के लौह एव स्पात के कारखाने मे भी विवेकीकरण के विरोध मे पाँच महीने तक हडताल रही, जिससे २५ लाख कार्य-दिनो (Man-Days) की हानि हुई। अप्रैल, मई सन् १९५५ मे कानपुर की सूती वस्त्र मिलो मे विवेकीकरण की योजना लागू करने पर ४६,००० श्रमजीवियो ने अनिश्चित हडताल की थी, जो ८० दिन तक चलती रही। इससे राष्ट्रीय उत्पादन को बडी क्षति पहुँची।

(III) राजनैतिक कारण—

राजनैतिक कारणो के अन्तर्गत उन कारणो का समावेश किया जाता है जो कि देश की स्वतन्त्रता के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्धित थे।

(१०) राजनैतिक अथवा अनार्थिक कारण—जैसे किसी राजनैतिक नेता का आगमन किसी देशभक्त की वर्षगाँठ मनाना आदि अवसरों पर एक दो दिन के लिए काम रोक घटनाय भी जाती हैं परन्तु व आगे नहीं बढ़ना। हाँ जब कुछ अदूरदर्शी सेवायोजक एसे अवसरों पर जुर्माना आदि कर देते तो अवश्य स्थिति बिगड़ जाती है। ब्रिटिश शासन काल मे जब जब हमारे राष्ट्र के नेता पकड़ कर कारागार मे डाल दिए गए सहानुभूति स्वरूप हमारे श्रम जीवियो ने हड़ताल की। असहयोग आंदोलन के काल मे ऐसी अनेक हड़ताल हुई थी।

उपयुक्त विवरण से स्पष्ट है कि औद्योगिक संघर्ष के विविध कारणों में प्रायः आर्थिक कारणों का ही सदैव बोलबाला रहा। औद्योगिक संघर्ष के कारणों के सम्बन्ध मे श्रम के शाही कमीशन का भी यही मत है कि अधिकांश झगड़ों के मूल मे एक न एक आर्थिक तत्त्व ही छिपा रहता है।

भारत मे औद्योगिक संघर्षों का इतिहास

प्रारम्भिक—

ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि सम्पूर्ण श्रमिक वर्ग की सर्वप्रथम सामूहिक हड़ताल कब हुई। यों काम रोक घटनायें तो असंगठित रूप मे प्रारम्भ से होती रही है और प्रायः इसलिए हुई कि सेवायोजकों ने श्रमिकों को ठीक काम न करने पर अर्थ दण्ड दिया अथवा उन्होंने उनके वेतन को घटाने का प्रयास किया परन्तु वे कुछ घण्टे ही चल पाती और सदैव शान्ति से निबट जाती थी। धीरे धीरे श्रमिकों में जागृति उत्पन्न हुई और वे सामूहिक कार्यवाही के महत्त्व को समझने लगे। सामूहिक रूप से श्रमिकों की पहली हड़ताल सन् १८७७ मे नागपुर के एम्प्रेस मिल में हुई। तत्पश्चात् तो बहुतेरी घटनायें हुई जो श्रमिकों के किसी एक वर्ग मे ही सीमित नहीं रही। मेहतर से लेकर स्कूल अध्यापकों तक ने हड़तालों का डंडा ऊँचा किया। कारखाने स्कूल बैंक बीमा कम्पनियाँ रेल नगरपालिका पुलिस फौज आदि कोई विभाग अछूता न रहा।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व औद्योगिक संघर्ष —

१९वीं शताब्दी तक श्रमजीवी बड़े असंगठित तथा पूँजीपति संगठित व शक्तिमान थे अतः ऐसी परिस्थितियों मे बिचारे श्रमिक चुपचाप पूँजीपतियों द्वारा किये गये अत्याचारों को सहन कर लिया करते थे किन्तु प्रथम विश्व युद्ध की परिस्थितियों ने इस वातावरण को बदल दिया और श्रमिकों ने अपने अधिकारों के लिये लड़ना सीख लिया। संगठित होकर सन् १९१८ में उन्होंने एक भीषण हड़ताल की। इसके बाद सन् १९२० के प्रथम छः माह में लगभग २०० हड़तालें हुई जिनमें १½ लाख श्रमिकों ने भाग लिया। सन् १९२१ में आसाम के चाय बगीचों में सन् १९२२ में ईस्ट इण्डिया रेलवे में सन् १९२३ में अहमदाबाद में तथा सन् १९२४ में बम्बई की वस्त्र मिलों में भयङ्कर हड़ताल हुई। इसके बाद कुछ दिनों स्थिति सन्तोषजनक रही परन्तु विश्व

व्यापी आर्थिक मन्दी के झोके से विवश होकर सन् १९२८ मे पुन. हडतालो की बाढ आई। इस समय तक श्रमिक सघो पर साम्यवादियो का पूरा अधिकार हो चुका था। परिणामस्वरूप सन् १९२८ मे बम्बई मे एक भीषण हडताल हुई और फिर सन् १९२९ मे सहानुभूति प्रदर्शक एक लम्बी हडताल की गई, जो कि छ महीने तक जारी रही। परिस्थितियो को सुधारने के लिए सन् १९२९ मे श्रमिक सघष अधिनियम (Trade-Disputes Act) पास किया गया। इसके बाद सन् १९३७ तक पूर्व समय की अपेक्षा कुछ औद्योगिक शान्ति रही। सन् १९३७ मे हडतालो का रूप पुन. बडा उग्र हो गया। इसका प्रधान कारण यह था कि यद्यपि भारत के विभिन्न राज्यों मे काग्रेसी सरकारो की स्थापना हो गयी थी, किन्तु फिर भी श्रमिको की स्थिति मे कोई आशाजनक सुधार नही हुआ। इस वातावरण से लाभ उठा कर साम्यवादियो ने श्रमिको को और भी भडका दिया, फलत. इन दोनो वर्षों (सन् १९३७ व १९३८) मे क्रमश ३७९ व ३९९ हडताल हुई।

द्वितीय महायुद्ध काल में औद्योगिक सघर्ष—

सन् १९३९ मे द्वितीय महायुद्ध छिड गया और पूँजीपतियो ने मनमाने लाभ कमाय, इसके विपरीत ऊँचे मूल्य-स्तर के कारण श्रमिको की दशा और भी गिर गई। परिणामस्वरूप सन् १९४० म भारत के विभिन्न क्षेत्रो मे ३२२ हडताल हुई, जिनकी सख्या सन् १९४२ म बढकर ६९४ हो गई। इन हडतालो के विभिन्न कारणो म मँहगाई का प्रश्न मुख्य था।

स्वतन्त्र भारत में औद्योगिक सघष—

सन् १९४७ म औद्योगिक झगडा अधिनियम पास हुआ, जिसने श्रम एव पूँजी के सघर्ष को शान्तिपूर्ण साधनो से सुलझाने के बड सुन्दर नियम बनाय, किन्तु देश के विभाजन, जन-सख्या क परिवतन तथा बिगडती हुई राजनैतिक स्थिति के कारण श्रमिको की दशा म कोइ सन्तोषजनक सुधार नही हुआ। साम्यवादियो न इस अवसर का पुन लाभ उठाया और श्रमिको की भावनाओ को भडकाने मे अग्नि म घी डालने का काम किया। फलत चारो ओर हडतालो का ताना बँध गया। उत्तर प्रदेश, मध्य-प्रदेश, बम्बई तथा मद्रास की वस्त्र मिलो म अनेक भीषण हडताल हुई। बगाल मे ३ जूट मिलो ने भी तालाबन्दी कर दी। सन् १९४८ म कलकत्ते म १० दिन तक ट्रामगाडियों ने पूरी हडताल रखी। कानपुर म भी भीषण हडताल हुई। अगस्त सन् १९५० मे बम्बई की वस्त्र मिलो म एक बहुत जबरदस्त हडताल हुई, जिसमे लगभग दो लाख मजदूरो ने भाग लिया और इस लगभग ६ करोड कार्य दिनो की क्षति हुई। सन् १९५१ मे रेल्वे कर्मचारियो ने हडताल की धमकी दी, किन्तु सौभाग्य से समाजवादी नेता श्री जयप्रकाशनारायण व रेल मन्त्री के सुप्रयत्नो स यह टल गई। इसी वर्ष बैंक कर्मचारियो ने सुप्रीम कोट के निर्णय के विरुद्ध एक देशव्यापी हडताल की। सन् १९५२ व ५३ म स्थिति सन्तोषजनक रही। हाँ सन् १९५३ मे कलकत्ते की ट्राम हडताल न

बडा भयानक रूप धारण कर लिया, जिससे विवश होकर सरकार को गोली चलानी पडी। २३ सितम्बर सन् १९५४ को भारत के बैंक कर्मचारियो ने भारत सरकार द्वारा औद्योगिक न्यायालय के निर्णय मे परिवर्तन करने के प्रति रोष प्रकट करने के लिये एक देशव्यापी हडताल का आयोजन किया। इसी प्रकार बीमा कम्पनियो के कर्मचारियो ने भी सितम्बर सन् १९५४ मे सरकार को यह नोटिस दिया था कि उनके लिये अखिल भारतीय औद्योगिक-ट्रिब्यूनल की स्थापना की जाय, नही तो वे हडताल कर देंगे। फिर भी सन् १९५४ मे औद्योगिक शान्ति का वातावरण रहा। अप्रैल-मई सन् १९५५ मे १९ वर्ष की औद्योगिक शान्ति के उपरान्त कानपुर मे वस्त्र-उद्योग के ४६,००० श्रमिको ने सूती मिल मजदूर सभा के नेतृत्त्व मे विवेकीकरण की योजनाओ का विरोध करते हुए एक भीषण हडताल की, जिससे उद्योग को बडी हानि हुई।

औद्योगिक संघर्षों की वर्तमान स्थिति—

निम्नलिखित आँकडो से गत वर्षों मे हुए औद्योगिक झगडो की सख्या तथा इनसे हुई क्षति का आभास मिलता है :—

वर्ष	झगडो की सख्या	भाग लेने वाले श्रमिको की सख्या	नष्ट होने वाले कार्य-दिनो की सख्या
१९४७	१,८११	१८,४०,७८४	१,६५,६२,६६६
१९४८	१,२५९	१०,५९,१२०	७८ ३७,१७३
१९४९	९२०	६,८५,४५७	६६,००,५९५
१९५०	८१४	७,१९,८८३	१,२८,०६,७०४
१९५१	१,०७१	६,९९,३२१	३८,१८,९२४
१९५२	९६३	८,०९,२४२	३३,३६,९६१
१९५३	७७२	४,६६,६०७	३३,८२,६०८
१९५४	८४०	४,७७,१३८	३३,७२,६३०
१९५५	१,१६४	५,२२,७६७	५६,९७,८४८
१९५६	१,२०३	७,१५,१३०	६९,९२,०४०
१९५७	१,६३०	८,८९,३७१	६४,२९,३१९
१९५८	१५,२४	९,२९,०००	७७,९८,०००
१९५९	१,५३१	६,९४,०००	५६,३३,०००
१९६० (अक्टूबर तक)	८२२	५,०८,०००	३५,०४,०००

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि वर्तमान युग मे श्रमिक अत्यन्त जागरूक हो गया है, अत. श्रम और पूँजी के बीच सुन्दर सम्बन्ध रखने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि इन दोनो पक्षो के ही साथ न्याय का बर्ताव किया जाय और देश मे स्थायी औद्योगिक शान्ति की स्थापना की जाय। यह सचमुच बडे ही सन्तोष की बात है कि सन् १९५१ से स्थिति मे क्रमश: सुधार होता जा रहा है। राजकीय प्रयत्नो का इस स्थिति पर बडा स्वस्थ प्रभाव पडा है।

राज्य एवं औद्योगिक शान्ति

प्रारम्भिक प्रयास—

औद्योगिक झगडे रोकने व उनको तय कराने के लिए सर्व प्रथम कानूनी व्यवस्था सन् १९२९ मे व्यापारिक सघर्ष अधिनियम (Trade Disputes Act) द्वारा हुई। इस अधिनियम के अनुसार जब झगडा करने वाला कोई पक्षकार सरकार को झगडा सुलझाने के लिए प्रार्थना पत्र देता था, तो एक जाँच अदालत तथा समझौता समिति की नियुक्ति कर दी जाती थी। किन्तु इसके निर्णय को मानना किसी भी पक्ष के लिए अनिवार्य न था, अत इससे कोई विशेष लाभ न हुआ। इसी कारण सन् १९३८ मे बम्बई मे एक अधिनियम का निर्माण किया गया, जिसके अनुसार हडताल तथा तालाबन्दी घोषित करने से पूर्व झगडे की जाँच की जानी अनिवार्य थी। कुछ राज्यो मे श्रम और पूँजी के सम्बन्धो को अच्छा बनाने के लिए समझौता अधिकारी नियुक्त किये गये। युद्ध काल म आवश्यक सेवाओ वाले उद्योगो मे झगडो को अनिवार्य रूप से सुलझाने का प्रबन्ध किया गया।

औद्योगिक सघर्ष अधिनियम—

युद्धोपरान्त काल मे औद्योगिक सघर्षों की सख्या बहुत बढ गई। ऐसी दशा मे भारत सरकार ने सन् १९४७ मे औद्योगिक सघर्ष अधिनियम बनाया, जिसमे सन् १९४९, १९५०, १९५१, व १९५२ मे क्रमशः सशोधन किये गये। इसकी प्रमुख बाते निम्नलिखित है :—

(१) प्रत्येक उद्योग, जिसमे १०० या अधिक व्यक्ति काम करते हैं, मे एक कार्य समिति (Works Committee) बनाना अनिवार्य कर दिया गया, जिसमे श्रमिको तथा अधिकारियो के प्रतिनिधि होगे। यह समिति दोनो पक्षकारो के मध्य सद्भावना और अच्छे सम्बन्ध रखने के लिये है।

(२) अनेक समझौता अधिकारो नियुक्त किये जायेंगे, जो झगडो की जाँच करके उनको निपटाने का प्रयत्न करेंगे।

(३) झगडा प्रारम्भ होने पर सरकार एक समझौता बोर्ड नियुक्त कर सकती है, जिसमे कि एक स्वतन्त्र अध्यक्ष तथा प्रत्येक पक्ष के एक या दो प्रतिनिधि होगे।

(४) सरकार झगडे की जाँच कराने के लिये एक जाँच अदालत भी नियुक्त कर सकती है, जिसमे स्वतत्र व्यक्ति होगे।

(५) अनिवार्य रूप से झगडे का निबटारा कराने के लिए सरकार एक औद्योगिक न्यायालय भी स्थापित कर सकती है, जिसमे एक या दो हाईकोर्ट या जिला अदालत के जज होगे।

(६) यदि समझौता बोर्ड अथवा समझौता अफसर द्वारा कोई झगडा तय हो जाता है, तो वह दोनो पक्षो पर लागू होगा। जांच अदालत की रिपोर्ट मानना किसी पक्ष के लिये अनिवार्य नही है, किन्तु इस रिपोर्ट को सरकार जनता की सूचनार्थ प्रकाशित करेगी। हां, औद्योगिक न्यायालय का निर्णय दोनो पक्षो को मान्य होगा।

(७) निम्न हडताले व तालाबन्दी अवैध घोषित कर दी गई हैं:—(अ) लोक हित सेवाओ वाले उद्योगो मे यदि ६ सप्ताह का नाटिस न दिया गया हो। (आ) उस समय जबकि कोई झगडा समझौता बोर्ड अथवा औद्योगिक न्यायालय के सामने पेश हो। (इ) यदि सरकार ने किसी झगडे को बोर्ड, अदालत अथवा न्यायालय को सौप रखा हो और सरकार ने उस समय के लिये हडताल को अवैध घोषित कर दिया हो जब तक मामले की जाँच चले।

(८) वे लोग जो अवैध हडतालो मे सम्मिलित होगे अथवा ऐसी हडतालो को आर्थिक सहायता प्रदान करेंगे, उनको दण्ड दिया जायगा। किसी भी श्रमिक को उस समय तक नही हटाया जा सकता जब तक कि मामला समझौता बोर्ड के पास है।

श्रमिक अपील न्यायालय—

सन् १९५० मे एक नये अधिनियम द्वारा एक श्रमिक अपील न्यायालय नियुक्त करने का प्रबन्ध किया गया। इस न्यायालय के सामने औद्योगिक न्यायालयो, जाँच अदालतो तथा मजदूरी बोर्ड के फैसलो की अपील होगी। इस न्यायालय का फैसला अन्तिम होगा तथा दोनो पक्षो के लिये मान्य होगा।

सन् ९५१ मे सरकार ने एक श्रम सम्बन्ध-विधेयक पास किया, जिसने इस बात पर जोर डाला गया कि झगडे को सुलझाने के लिये आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार की मशीनरी होनी चाहिए। इसके अनुसार सरकार कई प्रकार के अफसर व न्यायालय स्थापित कर सकती है। इस विधेयक के अनुसार रजिस्ट्री करने वाले कर्मचारी नियुक्त किए जायेगे, जिनके पास मिल मालिक अपनी आज्ञाओ की प्रतिलिपियाँ भेजेंगे। श्रमिको की बाते सुनने के बाद उन आज्ञाओ मे परिवर्तन किया जा सकता है।

झगड़ों के निपटारे की व्यवस्था—

जब कोई झगडा हो अथवा होने की सम्भावना हो, तो कोई भी पक्ष दूसरे को झगडा निबटाने के लिए एक नोटिस दे सकता है। साधारण उद्योगो मे यह झगडा ७ दिन मे तथा लोकहित उद्योगो मे १४ दिन मे निबट जाना चाहिये। अन्यथा सरकार इसे बोर्ड को अथवा न्यायालय को सौप सकती है। यदि फिर भी कोई समझौता न हो, तो इसकी रिपोर्ट सरकार को दी जायगी। अपील करने के लिए सबसे ऊँचा न्यायालय 'अपीलेट ट्रिब्यूनल' है, किन्तु सरकार इस न्यायालय के निर्णय को भी बदल

सकती है। नियम विरुद्ध हड़ताल करने या तालाबन्दी करने के लिए भगड़ना एक अपराध बना दिया गया है। जो मजदूर नियम विरुद्ध हड़तालो मे भाग लेगे उनको हड़ताल के समय अपनी मजदूरी, छुट्टी, बोनस आदि नही मिलेगे। नियम विरुद्ध मिल बन्द करने वाले मालिको को सामान्य मजदूरी के दुगुने तक देने के लिए कहा जा सकता है। यदि कोई श्रम सघ समझौते की शर्तों को न मानेगा, तो उसकी मान्यता रोकी जा सकती है। स्थायी श्रमिको को काम पर से हटाने के पूर्व उसको अपने व्यवहार का स्पष्टीकरण करने का अवसर दिया जायगा। फालतू मजदूरो को हटाने के लिए भी एक माह के नोटिस की आवश्यकता है। जब कोई मामला विचाराधीन हो तो श्रमजीवी हड़ताल न कर सकेंगे। 'धीरे-धीरे काम करने' की नीति, सहानुभूति की हड़ताल तथा लोक-हित व्यवसायो मे हड़ताल नियम के विरुद्ध घोषित कर दी गई है। यदि हड़ताल नियम के विरुद्ध न हो, तो श्रमिको को औसत मजदूरी का ¾ मिलेगा। आपसी समझौता करने को प्रोत्साहन देने के लिए अधिकृत सौदा करने वाले एजन्ट (Certified bargaining agents) की व्यवस्था की गई है। आपसी समझौता न होने पर मध्यस्थ निर्णय स्वीकार करना पड़ेगा। उचित कारणो से छँटनी करने पर मजदूरो को प्रति एक वर्ष नौकरी के पीछे आधे माह की मजदूरी उपहार के रूप मे देनी पड़ेगी, जिसमे भत्ता भी सम्मिलित होगा।

औद्योगिक संघर्ष (संशोधन) अधिनियम सन् १९५६

सन् १९४७ के औद्योगिक सघर्ष अधिनियम के अन्तर्गत औद्योगिक न्यायालयो की स्थापना की गई थी, परन्तु विभिन्न न्यायालयो द्वारा विभिन्न निर्णयो के कारण बडी कठिनाइयो व असुविधाओ का अनुभव होने लगा। अतः सन् १९५० मे लेबर अपीलेट ट्रिब्यूनल की स्थापना की गई। इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस व अन्य श्रम सघो ने इसका विरोध किया। सेवायोजक भी इसके पक्ष मे नही थे, क्योंकि सन् १९५० के (सशोधन) अधिनियम के अनुसार वे श्रमिको से बदला लेने का कोई भी कार्य नही कर सकते थे। अतः श्रमिको व सेवायोजको के लगातार विरोध के कारण लेबर अपीलेट ट्रिब्यूनल समाप्त कर दिया गया। सन् १९५६ के औद्योगिक सघर्ष (सशोधन) अधिनियम के अनुसार तीन नए प्रकार के न्यायालयो की स्थापना की गई।

सन् १९५६ के सशोधित अधिनियम की विशेषतायें—

इस अधिनियम की दो प्रधान विशेषताये हैं—

(I) अब श्रमिक लेबर अपीलेट ट्रिब्यूनल मे अपील न कर सकेंगे; परन्तु अगर कोई निर्णय अधिकार के परे तथा प्राकृतिक न्याय के विरुद्ध दिया गया है, तो ऐसी दशा मे श्रमिक सुप्रीम कोर्ट तथा हाईकोर्ट मे अपील कर सकते है।

(II) अब तीन प्रकार के न्यायालय स्थापित किए गये है :—

(१) श्रम न्यायालय (Labour Courts)

(२) औद्योगिक ट्रिब्यूनल (Industrial Tribunals)

(३) राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल (National Tribunals)

(१) श्रम न्यायालय—सन १९५६ के संशोधित औद्योगिक संघर्ष अधिनियम के अन्तर्गत सरकार औद्योगिक झगडो को तय करने के लिए एक या इससे अधिक श्रम-न्यायालयो की स्थापना कर सकती है। इस न्यायालय मे केवल एक जज होगा, जो भारत के किसी न्यायालय मे कम से कम ७ साल तक जज के पद पर काय कर चुका हो अथवा किसी राज्य सरकार द्वारा स्थापित श्रम न्यायालय मे ५ वष तक सभापति रह चुका हो। इन श्रम न्यायालयो म नीचे दिए हुए झगड (जिनका सकेत अधिनियम की तालिका २ म है) तय किए जायग —

(i) स्थायी आदेशो का प्रयोग तथा उनका स्पष्टीकरण,

(ii) किसी श्रमजीवी का निकालना तथा गलती से निकाले हुए श्रमिक को फिर रखना उसकी क्षतिपूर्ति तय करना

(iii) स्थायी आदेशो के आधार पर सेवायोजको के किसी आदेश की वैधानिकता प्रमाणित करना।

(iv) किसी प्रचलित रियायत या सुविधा को वापिस लेना।

(v) हडतालो व तालेबन्दियो की वैधानिकता या अवैधानिकता को प्रमाणित करना।

(vi) तीसरी तालिका मे उल्लिखित विषयो के अतिरिक्त कोई अन्य विषय।

यदि किसी संघर्ष क सम्ब ध मे श्रमिको की सख्या १०० से कम है, तो तीसरी तालिका र सम्बन्धित निम्नलिखित विषय भी श्रम न्यायालय द्वारा तय होगे .—

(i) वतन जिसमे समय तथा पद्धति सम्मिलित है।

(ii) क्षतिपूर्ति तथा अन्य भुगतान।

(iii) काम के घन्टे तथा वकाश का समय।

(iv) सवेतन छुट्टी व छुट्टियाँ।

(v) पारितोषण, लाभ का विभाजन व प्राविडेन्ट फण्ड।

(vi) स्थायी आदेश के अतिरिक्त पाली (Shift) मे काम कराना।

(vii) श्रेणी अनुसार वर्गीकरण।

(viii) अनुशासन सम्बन्धी नियम।

(ix) विवेकीकरण।

(x) श्रमिको की छटनी तथा फर्म की समाप्ति।

(xi) अन्य सम्बन्धित विषय।

इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि श्रम-न्यायालय म किसी भी संघर्ष को

भेजने का अधिकार सरकार को है। प्रत्येक राज्य सरकार के अपने पृथक श्रम-न्यायालय होंगे।

(२) **औद्योगिक ट्रिब्यूनल**—इस ट्रिब्यूनल की स्थापना सन् १९४७ के औद्योगिक संघर्ष अधिनियम के अनुसार की गई है। यदि उक्त लिखित तालिकाओं मे दिए हुए संघर्षों म १०० से अधिक श्रमजीवी सम्मिलित है, तो वह मामला औद्योगिक ट्रिब्यूनल को भेजा जाएगा। इस ट्रिब्यूनल का सभापति केवल वही व्यक्ति हो सकेगा जो किसी उच्च न्यायालय का जज रहा हो अथवा कम से कम २ वर्ष तक लेबर अपीलेट ट्रिब्यूनल अथवा अन्य ट्रिब्यूनल का अध्यक्ष रहा हो। आजकल हमारे देश मे ऐसे दो ट्रिब्यूनल्स काम कर रहे हैं—प्रथम धनबाद मे और दूसरा नागपुर मे। इनके अतिरिक्त दिल्ली मे भी एक 'एड हॉक इंडस्ट्रियल ट्रिब्यूनल' है।

(३) **राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल**—यह ट्रिब्यूनल राष्ट्रीय महत्त्व के झगडो को सुलझाएगा। 'एड हॉक राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल' लखनऊ मे काम कर रहा है। तालिका २ व ३ मे वर्णित विषय भी इस ट्रिब्यूनल मे भेजे जा सकते हैं, यदि वे राष्ट्रीय महत्त्व के है। इसका सभापति केवल वही व्यक्ति हो सकता है, जो औद्योगिक ट्रिब्यूनल का सभापति होने की योग्यता रखता हो।

वर्तमान राजकीय प्रयत्नो का संक्षिप्त ब्यौरा—

वर्तमान काल मे औद्योगिक शान्ति स्थापित करने के लिए सरकार द्वारा किए हुए प्रयत्नो का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

औद्योगिक शान्ति की स्थापना के वर्तमान राजकीय प्रयत्न

१. औद्योगिक रोजगार सम्बन्धी स्थायी आदेश।
२. मजदूर संघो के लिये आचार संहिता।
३ कार्य समितियो का निर्माण।
४ त्रिदलीय तंत्र।
५. समझौता तंत्र।
६ उद्योगो के प्रबन्ध मे मजदूरो का योग।
७ मजदूरो की शिक्षा।

(१) **औद्योगिक रोजगार सम्बन्धी स्थायी आदेश**—सन १९४६ के 'औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम' के अनुसार केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो ने उन औद्योगिक प्रतिष्ठानो के लिए कुछ नियम (Model Rules) बनाये, जिनमें १०० अथवा उससे अधिक मजदूर काम करते थे। यह अधिनियम पश्चिम बंगाल तथा बम्बई के उन सभी औद्योगिक संस्थानो के लिए लागू कर दिया गया है जिनमे से प्रत्येक म ५० अथवा उससे अधिक मजदूर काम करते है। उत्तर प्रदेश सरकार ने यह अधिनियम उत्तरी भारत के कारखाना मालिक संघ, उत्तर-प्रदेश तेल मिल-मालिक संघ, बिजली कम्पनियो तथा सभी कॉंच के उद्योगो के लिए लागू कर

दिया है। आसाम मे यह नियम ऐसे सब उद्योगो जिनमे १० या अधिक श्रमिक कार्य करते है, लागू होता है, परन्तु आसाम के इन उद्योगो मे खान, क्वैरीज (Quarries), तेल-कुँए तथा रेल्वेज सम्मिलित नही है।

(२) मजदूर-सङ्घो के लिए आचार सहिता—विविध औद्योगिक सस्थानो मे आजकल सघर्ष के बढते हुए समाचार जो पढने को मिलते है, उसका एक कारण मजदूर सगठनो की प्रतिद्वंद्विता भी है। मजदूर-सगठनो की प्रतिद्वन्द्विता हम इसलिए कहते है, क्योकि आज हमारे देश मे जितने मजदूर-सगठन हैं वे अपनी अपनी पृथक विचारधारा रखते है। कोई काग्रेसी विचारधारा का पक्षपाती है तो कोई साम्यवादी प्रभाव मे है। इसी तरह और भी विचारधाराये हो सकती है। एक खराबी यह भी है कि मजदूर एव श्रमिको के विशुद्ध हित की ही दृष्टि की अपेक्षा राजनीति का भी विविध सगठनो मे समावेश है। काग्रेस के हाथ मे आजकल सत्ता है, इसलिए काँग्रेसी विचारधारा के सगठन को सयम और मर्यादा से काम लेना ही पडता है, जबकि विरोधी पक्ष की विचार धारा वाले सगठनो का लक्ष्य ऐसी स्थितियाँ पैदा करना हो सकता है जिससे सरकार को अप्रिय हस्तक्षेप करना पड़े और उन सत्ताधीश दल को बदनाम करके लोगो को अपने पक्ष के अनुकूल करने का अवसर मिले। फिर यह भी ध्यान रखने की बात है कि सभी मजदूर ऊँच नीच सोचने वाले नही है अत जो सुनहले स्वप्न प्रस्तुत करके उन्हे भडका सके, उसी को अपना हितैषी मान कर वे उसके अनुवर्ती हो जाते है। विविध मजदूर सघ मजदूरो मे अपना प्रभाव बढाने के लिए यही तरीके अपनाते है और जो इस काम मे जितना बढा चढा होता है वह उतनी ही सफलता पाता है चाहे मजदूरो या श्रमिको को अन्ततोगत्वा लाभ हो या नही।

यह स्थिति निस्सन्देह अच्छी नही है। प्रारम्भिक बात तो यही है कि मजदूर सगठन राजनीति की अपेक्षा मजदूरो के ही हित की दृष्टि से सचालित हो जिसके लिए मजदूरो की मागो को ही प्रोत्साहित करने की अपेक्षा मजदूरो को सदाचारी और मितव्ययी तथा विवेकशील बनाने की जिम्मेदारी भी उन्हे समझनी और सम्हालनी चाहिए, पर साथ ही, यह भी बहुत जरूरी है कि मजदूर सगठनो की पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता समाप्त की जाय। हम हर्ष है कि कम से कम दूसरी बात की ओर हमारे मजदूर नेताओ का ध्यान गया है और नैनीताल मे हुए भारतीय श्रम सम्मेलन के बाद केन्द्रीय श्रम मन्त्री की अध्यक्षता मे चारो बडे श्रम सगठनो ने विविध मजदूर सघो के बीच सद्भाव बनाए रखने को एक आचार सहिता स्वीकार की है। भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन काग्रेस (इटक) भारतीय ट्रेड यूनियन काग्रेस (एटक) हिन्द मजदूर सभा और युनाइटेड ट्रेड यूनियन काग्रेस (यूटक) आज हमारे देश के चार बडे मजदूर सगठन है। केन्द्रीय श्रममत्री श्री गुलजारीलाल नन्दा की अध्यक्षता मे उन्होने आपसी सद्भाव के लिए आचार सहिता बनाई है और यह तय किया है कि एक तटस्थ व्यक्ति की अध्यक्षता मे इन चारो के प्रतिनिधियो का एक सगठन बनाया जायगा, जो उस

आचार सहिता को कार्य रूप देगा। इसके फलस्वरूप न केवल विभिन्न मजदूर सगठनों मे अच्छे सम्बन्धो की, बल्कि इससे औद्योगिक सस्थानो तथा दूसरी जगह सघर्षों म तीव्रता कम होने की सम्भावना है।

आचार-सहिता का जहाँ तक सम्बन्ध है, वह सप्तसूत्री है। उसके निर्माणात्मक उद्देश्य हैं कि (१) किसी भी औद्योगिक सस्थान या दूसरी जगह हर एक कर्मचारी अपनी पसन्द के मजदूर सघ मे शामिल हो सकेगा, (२) दो सघो का एक साथ कोई सदस्य नही होगा, (३) मजदूर सघो के जनतन्त्रीय रूप मे काम करने मे रुकावट नही डाली जायगी, (४) मजदूरो के अज्ञान और सगठन मे पिछडेपन का कोई सगठन फायदा नही उठायेगा, (५) कोई सगठन ऐसी मागे नही करेगा जो औचित्य से मेल न खाती हो और अत्यधिक मालूम पडे, (६) जातिवाद, साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयता को कोई संगठन प्रोत्साहन नही देगा, और (७) विविध मजदूर सगठन आपसी व्यवहार मे हिंसा दबाव, धमकियो या वैयक्तिक दोषारोपो का सहारा नही लेंगे। इनमे कुछ विषय अभी और साफ होने हैं तथा व्यवहार से ऐसी नई बाते भी सामने आयेगी, जिनका और समावेश किया जा सकता है। यह इतनी बडी बात नही है जितनी कि विविध सगठनो का अपने सम्बन्धो को अच्छा बनाने का इरादा। श्रम सम्मेलन ने उद्योगो मे मजदूर, सगठनो को मान्यता देने के सिद्धान्त भी निश्चित किये हैं, जिसमे मान्यता प्राप्त करने के लिए होने वाली कशमकश कम होने की सम्भावना है। यदि ऐसा हो तो एक बडी सिरदर्दी कम हो सकती है और नैनीताल के निर्णयो के फलस्वरूप ऐसा हो तो उसे एक बडी सफलता मानना चाहिए। हम आशा करेंगे कि आचार सहिता तथा दूसरे निर्णय केवल कागज पर लिखे नही रहेगे, बल्कि उन पर सचाई और सद्भावना के साथ अमल किया जायगा।

हर्ष का विषय है कि आचार सहिता के निर्माण मे औद्योगिक शान्ति की स्थापना के ऐच्छिक प्रयत्नो को बहुत बढावा मिला है। केन्द्र एव राज्यो म कार्यान्वित करने वाली कमेटियो (implementation committees) ने अनेक जटिल एव दीर्घकालीन झगडे सुलझाए हैं। जब से आचार सहिता को स्वीकार किया गया है तब मे नष्ट होने वाले कार्य दिवसो की सख्या सन् १९५८ मे ६३ ६ लाख व सन् १९५९ मे ४६·५ लाख से घटकर सन् १९६० मे ३९·५ लाख रह गई है।

(३) **कार्य समितियों का निर्माण**—सन् १९४७ के औद्योगिक संघर्ष अधिनियम के अन्तर्गत अक्टूबर सन् १९६० तक केन्द्रीय सस्थाओ मे ८०९ कार्य समितियाँ (Works Committees) स्थापित की गई, जबकि सन् १९५९ मे केवल ७४५ थी।

(४) **त्रिदलीय तन्त्र**—केन्द्रीय तन्त्र मे मुख्यत भारतीय श्रम सम्मेलन, स्थायी श्रम समिति, औद्योगिक समितियाँ तथा कुछ अन्य समितियाँ आती है। सन् १९५८ मे इन सस्थाओ के वार्षिक अधिवेशन मे, उद्योग सम्बन्धी विभिन्न पहलुओ पर (जैसे मजदूरी

नीति, उद्योगो मे अनुशासन, विवेकीकरण, श्रमिको की शिक्षा तथा श्रमिको द्वारा उद्योगो के प्रबन्ध मे भाग लेना) विचार विमर्श किया गया। बागानो की औद्योगिक समिति (Industrial Committee on Plantations) की ८वी वार्षिक बैठक शिलाँग म १ जनवरी सन् १९५८ को हुई। लौह तथा स्पात एव रासायनिक उद्योगो के लिए भी नई औद्योगिक समितियाँ स्थापित करने का निश्चय किया गया है। इसी प्रकार धातु-खाना व कोयला खाना के लिए भी ऐसी समितियाँ बनाने का विचार है व कुछ बनाई भी गई है।

सन् १९६० मे भारतीय श्रम सम्मेलन ने केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियो के एक वर्ग द्वारा हडताल किय जाने पर विचार विमर्श किया। तीन लगातार बैठको म स्टडिग लबर कमेटी न तृतीय पच वर्षीय योजना के अन्तर्गत श्रम नीति प्रस्ताव पर विचार किया। सन् १९६० म कोयला खनिज, बागात व सीमेन्ट से सम्बन्धित औद्योगिक कमेटिया की जा बैठकें हुई उनम बागान उद्योगा के लिये मजदूरी बोर्ड स्थापित करने खान, अधिनियम म सशोधन करने व कुछ चुने हुए सीमेन्ट उद्योगो मे कार्य भार की समस्याओ पर विचार किया गया।

(५) समझौता तन्त्र—केन्द्र के क्षेत्र मे आने वाली औद्योगिक सस्थाओ म औद्योगिक सम्बन्ध के प्रशासन के कार्य का उत्तरदायित्व मुख्य श्रम आयुक्त पर है। इसकी सहायता के लिए एक सगठन स्थापित किया जा चुका है, जिसमे प्रादेशिक श्रम आयुक्त, समझौता अधिकारी तथा श्रम निरीक्षक होते हैं। इसी प्रकार राज्य सरकारो के भी अपने अपने समझौता तन्त्र है, जिनके प्रधान अधिकारी श्रम आयुक्त' (Labour Commissioner) होते है।

(६) उद्योगो के प्रबन्ध में मजदूरों का योग—भारतीय श्रम सम्मेलन मे जुलाई सन् १९५७ मे उस अध्ययन-मण्डल की सिफारिशो पर विचार किया गया, जिसने कुछ पश्चिमी देशो से इस योजना को कार्यान्वित करने की अवस्थाओ का प्रारम्भिक अध्ययन किया था। जनवरी-फरवरी सन् १९५८ मे आयोजित इसी प्रकार की एक अन्य गोष्ठी मे ऐसी परिषद स्थापित करना स्वीकार किया गया। सन् १९५९ मे २४ औद्योगिक सस्थाओ म इस योजना पर काम जारी है, ऐसी परिषद् स्थापित हो गई हैं, जबकि अ य सस्थाओ ने भी इस परीक्षण के लिए अपनाना स्वीकार कर लिया है। श्रम सम्मेलन की सब कमटी का पुनगठन करके उसका नाम Committee on Labour Managament Cooperation रखा गया है।

(७) मजदूरो की शिक्षा—केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो, कारखाना मालिको के सगठनो तथा शिक्षाशास्त्री सगठनो के प्रतिनिधियो से युक्त 'केन्द्रीय मजदूर शिक्षा मण्डल' एक समिति के रूप मे पजीकृत किया गया। नवम्बर सन् १९५८-५९ मे ६७ अध्यापक प्रशासको के प्रशिक्षण का काय पूर्ण किया। मडल ने श्रमिकों की शिक्षा के लिये भी

१२ केन्द्र स्थापित किये है, जिन्होने ७७७ श्रमिक शिक्षक तैयार किये, सन् १९६० मे २१८ यूनिट स्तर कक्षाये चल रही थी।

पंच-वर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत औद्योगिक शान्ति

प्रथम पच-वर्षीय योजना एवं औद्योगिक शान्ति—

'इन्डस्ट्रियल ट्रस' के प्रस्तावनानुसार, प्रथम पच-वर्षीय योजना मे इस बात को स्वीकार किया गया कि श्रम और पूंजी के अच्छे सम्बन्धो के बिना अधिक उन्नति नही हो सकती, अतः यह आवश्यक है कि मालिक व मजदूर म हर स्तर पर घनिष्ट सम्बन्ध हो। श्रमिको के सगठन करने के अधिकार को भी मान्यता दी गई है। झगडो को सुलझाने के लिए कार्य समितियो के निर्माण के लिये भी कहा गया है, जो प्रत्येक मिल मे होगी। उद्योग की सारी मिलो के झगडो को सुलझाने के लिए सामूहिक समितियाँ होगी। यदि कोई झगडा समझौते से तय न होगा, तो वह मध्यस्थ के द्वारा तय कराया जावेगा।

द्वितीय पच-वर्षीय योजना—

इस योजना के अन्तर्गत, योजना आयोग ने सन् १९५५ मे Representative Panel on Labour की स्थापना की है। इसके अलावा प्रत्येक उद्योग मे Council of Management की स्थापना का सुझाव दिया गया है, जिसमे श्रम व नियोक्ताओ का समान प्रतिनिधित्व रहेगा।

कुछ विशेष सुझाव—

भारत की वर्तमान आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियो मे कडे निरीक्षण, मजदूरी और काम की दशाओ के समुचित नियन्त्रण तथा कल्याण-कार्यो के विकास द्वारा ही औद्योगिक शान्ति की वृद्धि की आशा की जा सकती है। सभी लोगो के लिये जीवन निर्वाह योग्य मजदूरी की व्यवस्था होनी चाहिए, मकानो तथा सामाजिक सुरक्षा के विषय में भी काफी सुधार की आवश्यकता है। मूल्यो मे स्थायित्व होना चाहिये तथा श्रम एव पूंजी मे पारस्परिक सहयोग।

उपसहार—

अन्त मे, गाँधी जी के निम्न शब्दो को लिखना अनावश्यक न होगा—"नौकर और मालिक के सम्बन्ध को स्वार्थ की भावना से आबद्ध न होकर एक दूसरे की सुख की भावना पर निर्भर होना चाहिये। लेन-देन की नीति पर स्थिर न होकर पारस्परिक सहानुभूति पर स्थिर रहना चाहिये।" मजदूर और उद्योगपति दोनो ही एक मार्ग के दो राही हैं, एक रथ के दो चक्र है, एक जीवन की दो स्वांसे है तथा एक साधन के दो साधक हैं। दोनो को ही एक दूसरे का हित सोचना चाहिए। उद्योगपतियो को अपनी पूंजी द्वारा मजदूरो को सुविधाओ को प्राप्त कराना चाहिए तथा मजदूरो का अपने श्रम के बल पर पूंजीपतियो को पूर्ण सहयोग देना चाहिए।

STANDARD QUESTIONS

1 What are the more frequent causes of trade disputes in India ?
2 Briefly summarise the history of industrial disputes in India.
3. What measures have been taken by the Government of India for the establishment of industrial peace in this country,
4 Describe the circumstances which led to the adoption of "the Industrial Truce Resolution " What steps have been taken by the central and the state governments to ensure the proper implementation of this resolution.

अध्याय ३०

श्रमिक-संघ

(Trade Unions)

प्रारम्भिक—
सेवायोजक की तुलना में श्रमिक की स्थिति बड़ी दुर्बल होती है। वह अकेले अपनी आवश्यकताओं को अपने स्वामियों के सम्मुख रखने में हिचकता है। इसका कारण उसकी आर्थिक अवस्था का खराब व शिक्षा का अभाव होना है। परिणामस्वरूप उसे बड़ी हानि सहनी पड़ती है। श्रमिक के हित की रक्षा के लिए ही श्रमिक संघ का जन्म हुआ। वे माग एवं पूर्ति के एकागी प्रस्ताव को सामूहिक रूप देते हैं।

श्रम-संघ का अर्थ

सर्व श्री सिडनी तथा बीट्राइस वेब (Sidney and Beatrice Webb) के शब्दों में "श्रमिक संघ वास्तव में मजदूरी पर निर्वाह करने वाले व्यक्तियों के उनके काम की दशाएँ बिगड़न न देने तथा उन्हें सुधारने के लिए बनाये गये स्थायी संगठन है।' इस प्रकार इनके दो प्रमुख उद्देश्य है—प्रथम, जो कुछ प्राप्त हो चुका है, उसे बनाये रखना और दूसरे, अधिक सुधार के लिए प्रयत्न करना।

फ्रैंक टनैबॉम (Frank Tannen Baum) के मतानुसार—"श्रम-आन्दोलन परिणाम है और मशीनो का आविष्कार इसका प्रधान कारण है।" मशीनो के आविष्कार से एक व्यक्तिगत श्रमिक की सुरक्षा को बडा भारी आघात पहुँचा है, अतएव अपने बचाव के उद्देश्य से उसने सघ का निर्माण किया। श्रम-सघ द्वारा वह मशीनो के दुष्परिणामो पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। श्रम-सघो का प्रमुख उद्देश्य पूँजीवादी व्यवस्था के स्थान पर 'औद्योगिक जनतन्त्रवाद' की स्थापना करना होता है।

राबर्ट एफ० हॉक्सी (Robert F. Hoxie) के विचारानुसार, "श्रम-सघ वास्तव मे वर्ग मनोवृत्ति (Group Psychology) के उत्पाद हैं।" प्रायः सभी श्रमिक-सघो का अन्तिम उद्देश्य सामान्य होता है—अर्थात् वे श्रमजीवियो की सौदा करने की शक्ति को बढाते हैं, जिससे कि वे मिलकर अपनी समस्याओ का स्वय हल करने मे समर्थ हो सकें।

सेलिग पर्लमैन (Selig Pearlman) ने एक स्थान पर लिखा है कि किसी देश के श्रम-आन्दोलन की शक्ति वहाँ के रहने वाले श्रमिको की जागरूकता पर निर्भर करती है।

कार्ल मार्क्स (Karl Marx) के शब्दो मे, "श्रमिक सघ वास्तव मे श्रमजीवियो मे सगठन का केन्द्र बिन्दु है।" सघ-शक्ति से श्रमिको म परस्पर बन्धुत्व एव सहयोग की भावना का विकास होता है। सगठन के अभाव मे श्रमजीविया मे स्वय विषम,प्रतियोगिता की भावना पैदा हो सकती है, अतः पारस्परिक प्रतियोगिता की भावना का उन्मूलन करने एव बन्धुत्व की भावना को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से ही श्रमिक सघो का जन्म हुआ।

कुछ लोग श्रमिक-सघों को 'लडाका-सगठन' (Militant Organisations) समझते हैं, जो सदैव औद्योगिक युद्ध के लिए तैयार रहते हैं, किन्तु यह धारणा सही नहीं है। श्रमिक सघ वास्तव मे सामाजिक अशान्ति नहीं, वरन् सामाजिक प्रगति के प्रतीक हैं।

श्रमिक-सङ्घ के उद्देश्य

(१) श्रमिको मे परस्पर बन्धुत्व एव सहयोग की भावनाओ का विकास करना एव उन्हें सगठित करना।

(२) उनके काम एव मजदूरी के सम्बन्ध मे उनकी विभिन्न अक्षमताओ पर सोच-विचार करना तथा उन्हें वैधानिक रूप से दूर करने का प्रयत्न करना।

(३) श्रमिक एव उनके अधिकारियो मे सहयोग की भावना उत्पन्न करना।

(४) अपने सदस्यो की बीमारी तथा अन्य मुसीबत के समय के लिए कोष रखना।

(५) रोग-बीमा, प्रॉवीडेन्ट फन्ड, सहकारी-साख, डाक्टरी मदद आदि लाभदायक योजनाओ की व्यवस्था करना।

(६) हड़ताल घोषित करना, सगठित करना तथा उन्हें चलाना, सेवायोजकों से वार्ता करना और झगड़ों को शान्ति से तय करना।

(७) आवश्यकता पड़ने पर कानूनी सहायता देना।

(८) अन्य ऐसे कार्य करना जो श्रमिकों तथा उनके आश्रितों के सामाजिक, आर्थिक एव शिक्षा सम्बन्धी दशाओं के सुधार के लिए हों।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि श्रमिक सघों का प्रारम्भिक उद्देश्य अपने सदस्यों का आर्थिक एव सामाजिक हित साधना है। इस उद्देश्य से ही वे समस्त कार्य करते हैं।

श्रमिक सङ्घों के कार्य

श्रमिक-सघ के कार्यों को निम्न तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) श्रमिकों की काम की दशाओं से सम्बन्धित कार्य, (२) काम की दशाओं से असम्बन्धित, किन्तु उनके सामान्य जीवन-स्तर में सम्बन्धित कार्य, और (३) राजनैतिक कार्य।

(१) काम की दशाओं से सम्बन्धित कार्य—(Intra-mural Functions)—श्रमजीवियों की काम की दशाओं से सम्बन्धित कोई भी कार्य इस शीर्षक के अन्तर्गत आता है, जैसे—पर्याप्त मजदूरी दिलाने के लिए प्रयत्न करना, कारखाने के अन्दर काम करने की दशाओं में सुधार करना काम के घन्टों में कमी करना, सेवायोजकों से उचित व्यवहार प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना आदि। लाभ-अशभागिता एव सह-भागिता की दिशा में किए गए प्रयत्न भी इस शीर्षक के अन्तर्गत सम्मिलित किये जा सकते हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए श्रमिक सघ सामूहिक रूप से अपने सेवायोजकों से व्यवहार करते हैं और माँग की अस्वीकृति की दशा में हड़तालें तथा असहयोग करते हैं। यही कारण है कि कभी-कभी श्रमिक सघ के इन कार्यों को 'लड़ाकू कार्य' (Militant or Fighting functions) कहते हैं।'

(२) सामान्य जीवन-स्तर से सम्बन्धित कार्य (Extra mural activities)—इस शीर्षक के अन्तर्गत उन कार्यों का समावेश किया जा सकता है, जिनसे कि श्रमिकों के सामान्य जीवन-स्तर में वृद्धि हो, जैसे—श्रमजीवियों में परस्पर बन्धुत्व एवं सहयोग की भावना प्रोत्साहित करना, उनका शैक्षिक एव सास्कृतिक विकास करना, बीमारी, बेकारी अथवा हड़ताल आदि की अवधि में श्रमिकों की रक्षा तथा सहायता करना, कानूनी परामर्श देना, श्रमजीवियों के लिए कल्याण-कार्य की व्यवस्था करना, पुस्तकालय, वाचनालय, मनोरंजनालय आदि का प्रबन्ध करना, सस्ते ऋण, सस्ते अनाज एव गृह आदि की व्यवस्था करना। इन कार्यों को 'बन्धुत्व-प्रेरक-कार्य' (Fraternal functions) भी कहा जा सकता है और ये सदस्यों के सहयोग तथा उनकी आर्थिक दशा पर निर्भर करते हैं। आर्थिक दृष्टि से श्रमिक सघ जितने ही बलशाली होंगे, ऐसे कार्यों की मात्रा उतनी ही अधिक होगी।

(३) **राजनैतिक कार्य (Political activitis)**—देश के शासन प्रबन्ध मे भाग लेने के उद्देश्य से निर्वाचन आदि मे श्रमिक संघ के प्रतिनिधियो को खडा करना राजनैतिक कार्यों की श्रेणी मे आता है।

श्रमिक संघों के लाभ व हानियाँ

श्रमिक संगठन के लाभ—

श्रमिक सगठन के निम्नलिखित लाभ होते हैः—

(१) श्रमिक सगठन से श्रमजीवियो मे **परस्पर बन्धुत्त्व एवं सहयोग की भावना का विकास** होता है और इससे उनकी सामूहिक सौदा करने की शक्ति बढ जाती है। परिणामस्वरूप पूँजीपति शक्तिशाली होते हुए भी श्रमजीवियो का शोषण नही कर पाते।

(२) श्रमिक सगठन श्रमिको की शारीरिक, मानसि , सामाजिक एव आर्थिक दशा को सुधारने का सदैव प्रयत्न करते हे। इन प्रयत्नो क फलस्वरूप श्रमिको के **रहन-सहन का स्तर ऊँचा** होना है एव उनकी कार्यक्षमता बढती है।

(३) श्रम सगठन अपने अधिकारो के लिए लड कर **श्रमिको को उचित मजदूरी दिलवाने का** प्रयत्न करते हैं। जब श्रमिको को उचित पारितोषिक मिलता है तो वे मन लगाकर कार्य करते हैं एव भरपेट भोजन पर सदैव सन्तुष्ट रहते है।

(४) श्रमिक सगठन श्रमजीवियो मे **शिक्षा का भी प्रचार** करते है और उनको अनुशासन मे रहने का आदेश देते है। ऐसी स्वस्थ शिक्षा से केवल श्रमिका को ही नही वरन् देश को भी बडा लाभ होता है।

(५) श्रमिक सगठन देश मे **औद्योगिक शान्ति भी रखने का**

श्रम-संघो के लाभ व दोष

लाभ—

(१) सहयोग की भावना का विकास।
(२) रहन-सहन का ऊँचा स्तर।
(३) शिक्षा का प्रचार।
(४) औद्योगिक शाति को बढावा।
(५) उचित मजदूरी दिलाना।
(६) कल्याण कार्य की व्यवस्था।
(७) राजनैतिक प्रतिनिधित्व।

दोष—

(१) श्रम नेताओ द्वारा श्रमिको को उकसाना।
(२) राजनैनिक अधिकार प्राप्ति के लिए इनका नेतृत्व।
(३) साम्यवाद को बढाना।
(४) पदलोलुपता के कारण झगडे।
(५) पारस्परिक मतभेदो के कारण श्रम योजनाये बेकार होना।

प्रयत्न करते है, फलतः औद्योगिक उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि होती है और देश उन्नति करता है ।

(६) श्रमिक सगठन श्रमिको के लिये कल्याण कार्य की व्यवस्था भी करते हैं, जिससे मानसिक दृष्टिकोण विकसित होता है ।

(७) राजनैतिक क्षेत्र मे श्रम-सघ लोक सभा मे अपने प्रतिनिधि भेजकर सरकार तक श्रमिको की आवाज पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं । परिणामस्वरूप, सरकार भी सनियम बनकर श्रमिको को सुविधायें देने का प्रयत्न करती है, जिसमे उनका जीवन उन्नत हो और वे देश के आदर्श नागरिक बन सकें ।

श्रमिक सगठनो से हानियां—

इतने लाभ होते हुए भी श्रमिक सगठन से कुछ हानियाँ भी है, जो इस प्रकार है :—

(१) श्रम सघो के नेता श्रमिको को अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए भुलावा देकर उनको हड़ताल करने के लिये विवश करते हैं । औद्योगिक अशान्ति के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादन को क्षति पहुँचती है और श्रम तथा पूँजी एक दूसरे से बहुत दूर होते चले जाते है ।

(२) श्रम-सघो के नेता केवल राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से ही इनका नेतृत्व करते है, परन्तु वास्तव मे इनको श्रमिको से अधिक सहानुभूति नही होती ।

(३) श्रमिक सगठन से साम्यवाद एव समाजवाद को अधिक बढ़ावा मिलता है ।

(४) श्रम-सघों के विभिन्न नेताओ मे प्राय: पदलोलुपता के लिए झगड़े होते रहते है जिससे श्रम सघ-आन्दोलन की जड़ें कमजोर होती है तथा श्रमिक वर्ग का अहित होता है । उदाहरण के लिए ओ० टी० रेलवे यूनियन की कार्यकारिणी सभा के निर्माण के सम्बन्ध मे नेताओ मे आपस मे झगड़ा हुआ जो दो वर्ष तक चलता रहा । इस बीच यूनियन की समस्त क्रियायें स्थगित रहीं तथा मुकदमेबाजी मे बिचारे श्रमिको की धन राशि बरबाद हो गई । अन्त में, सघ का रजिस्ट्रेशन सरकार को निरस्त करना पड़ा ।

(५) कभी-कभी श्रम-सघ के नेताओ के पारस्परिक मतभेद के कारण सरकार की श्रम सम्बन्धी योजनायें बेकार व निष्क्रिय हो जाती है । उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश के कुछ औद्योगिक केन्द्रो मे कार्य समितियां (Work Committees) मे प्रतिनिधित्व के लिए श्रम-सघ के नेताओ मे झगड़ा

हुआ । अतः 'समिति' राजनीति का अखाडा बन गई । परिणामस्वरूप सन् १९५० मे श्रमिको तथा उद्योगो के हित मे 'कार्य समिति सरकार द्वारा समाप्त कर दी गई ।

निष्कर्ष—

उपर्युक्त लाभ-हानियो के सन्तुलन से यह स्पष्ट है कि श्रम-सघ वास्तव मे श्रम-समाज एव देश के लिए एक कल्याणकारी सस्था है । जो भी दोष ऊपर बतलाये गये हैं वे श्रमिक सगठन की त्रुटियाँ न होते हुए उनके नेताओ के दोष है, जो अपने सगठन के उद्देश्यो से विचलित होकर स्वार्थ-साधक बन जाते है ।

भारत में सङ्घ आन्दोलन

श्रम-संगठन के प्रारम्भिक प्रयास—

पारस्परिक सामान्य लाभ के लिए श्रमिको का सगठन होना भारत मे अभी थोडे समय से ही आरम्भ हुआ है । सबसे प्रथम बार सन् १८८४ मे सामूहिक प्रतिनिधित्व किया गया, जबकि फैक्टरी कमीशन को प्रस्तुत किये जाने वाले स्मरण पत्र को तैयार करने के लिए श्रमिको का एक सम्मेलन बुलाया गया, परन्तु सगठित कार्य-क्रम का विचार श्रमिको मे देर से आया । सन् १८९० मे श्री लोखण्डे ने श्रमिको को सगठित किया । इस सगठन का नाम बम्बई मिल हैण्ड्स एसोसियेशन था, जो सरकार को कारखाना अधिनियम के सशोधन के विषय मे स्मरण-पत्र प्रस्तुत करने के लिए आयोजित किया गया था, परन्तु यह बडा ढीला-ढाला सगठन था । इसका न तो कोई निश्चित विधान था और न निश्चित चन्दा देने वाले सदस्य हीं । सन् १८९७ मे अमलगेमेटेड सोसायटी ऑफ रेल्वेमैन ऑफ इण्डिया एण्ड ऑफ बर्मा की स्थापना हुई, जो अब भी वर्तमान है, परन्तु इसका कार्यक्रम भाई-चारे का कम था एव लडाका अधिक ।

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो मे कुछ सघ, जैसे—सी-मैन यूनियन कलकत्ता एव पोस्टल यूनियन बम्बई स्थापित हुए । एक मुहम्मदन एसोसियेशन बगाल मे थी, परन्तु उसे कठिनता से एक श्रमिक सघ कहा जा सकता है । इसी प्रकार इण्डियन लेबर यूनियन, यद्यपि नाम से बडा उचित सगठन जान पडता है, बहुत क्रियात्मक नही रहा । सन् १९१० मे श्रमिको के कल्याण की वृद्धि के लिए कामगार हितवर्द्धक सभा स्थापित हुई, जो सन् १९५२ तक बनी रही, परन्तु इसने भी अधिक काम नही किया ।

श्रम-संघ आन्दोलन का वास्तविक शुभारम्भ—

वास्तव मे श्रमिक सघ आन्दोलन भारत मे सन् १९१८ से प्रारम्भ होता है, जबकि अनाप-सनाप कीमतें बढने से उत्पन्न हुई आर्थिक कठिनाइयाँ, सामान्य राजनैतिक कशमकश एव श्रमिको की बढती हुई विश्वव्यापी चेतना ने श्रमिको के दिमाग मे अपने हितो के लिए सगठित होने की आवश्यकता की बात भर दी । पहली यूनियन मद्रास मे

स्थापित हुई। इनके बाद अन्य स्थानों में भी यूनियनें स्थापित हुईं। इनमें अधिकतर तो केवल हड़ताल समिति मात्र थीं, जिनका जन्म समस्या को जीतने या हारने पर या उसमें पूर्व ही समाप्त हो जाने के लिए हुआ था। वे एक दूसरे से असम्बन्धित थीं, परन्तु जब उनके एकीकरण की आवश्यकता अनुभव हुई, क्योंकि इन्हीं दिनों विश्व श्रमिक संघ के लिए किसी केन्द्रीय एवं प्रतिनिधि संघ से प्रतिनिधि जाने को थे, अस्तु स्थानीय यूनियन संघ में परिवर्तित हो गई और फिर प्रान्तीय संघ की स्थापना हुई। सन् १९२० में आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस, जो समस्त यूनियनों का राष्ट्रीय फेडरेशन थी, बुलाई गई। सन् १९२२ में केन्द्रीय श्रमिक समिति की स्थापना हुई और उसी वर्ष ऑल इण्डिया रेलवेमैन फेडरेशन, पोस्ट एण्ड टेलीग्राफ यूनियनें स्थापित हुईं। इस अवधि की विशेषता यह थी कि उपयुक्त नेता श्रमिकों में से ही सुलभ न थे, अस्तु उन्हें बाहर व्यक्तियों के नेतृत्व पर निर्भर रहना पड़ता था।

सेवायोजकों का विरोध—

सेवायोजकों ने इन यूनियनों को मान्यता प्रदान करने से इन्कार कर दिया। श्रमिकों को सताया जाने लगा। भारतीय अपराध दण्ड संनियम संशोधित किया गया और श्रमिक संघों के कार्य अवैध घोषित कर दिये गये। सन् १९२० में बकिंघम मिल्स के मामले में मद्रास यूनियन के विरुद्ध आदेश जारी किये गये और तब श्रमिक नेताओं ने देखा कि वे सच्चे श्रमिक संघ कार्यों के लिये भी उत्तरदायी ठहराये जा सकते हैं। श्री एम० एम० जोशी ने श्रमिकों के लिए संरक्षण प्राप्त करने का उद्योग किया, परन्तु उनका यह परिश्रम पाँच साल बाद उस समय सफल हुआ जबकि सन् १९२६ में व्यापार संघ अधिनियम पास किया गया। तब से संघों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है।

कम्यूनिस्टों का आन्दोलन पर प्रभाव—

सन् १९२८-२९ में आन्दोलन बड़ी तेजी पर था। कम्यूनिस्टों का संघों पर प्रभाव बढ़ गया। ऐसे संघों में गिरनी कामगार यूनियन (सदस्य संख्या ५०,००० से अधिक) प्रमुख थी। इन्होंने बम्बई में सन् १९२८ में हड़ताल संगठित की और सफलता भी प्राप्त की, परन्तु कम्यूनिस्ट सदस्यों की कुछ कार्यवाहियों से मुसीबत पैदा हो गई। शहर में दङ्गा हो गया, कई प्रमुख नेता पकड़ लिए गये और उन्हें सजायें दी गईं। सन् १९२९ में उन्होंने फिर दूसरी हड़ताल की और वह काफी समय तक जारी रही। तब एक जाँच अदालत बैठी। उसकी रिपोर्ट के अनुसार कामगार यूनियन ही हड़ताल

के लिए पूर्ण रूप से उत्तरदायी थी । एक प्रमुख सघ के विरुद्ध ऐसी रिपोर्ट न आन्दोलन को बदनाम कर दिया और उसे बहुत धक्का पहुँचा । आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के सन् १९२९ के अधिवेशन मे उसकी कार्य समिति पर कम्यूनिस्टो ने अधिकार कर लिया तथा उग्र कार्यवाही की और विश्व कम्यूनिस्ट आन्दोलन से सम्बन्ध स्थापित करने का निश्चय किया ।

आन्दोलन में फूट पडना—

इस पर नम्र दलीय सघो ने श्री एम० एम० जोशी की अध्यक्षता मे इस कांग्रेस से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और इण्डियन ट्रेड यूनियन फैडरेशन बनाया । रेल्वे मैन्स फैडरेशन ने भी उस कांग्रेस से सम्बन्ध तोड लिया । सन् १९३१ मे तो उग्रदलियो ने स्वय अपनी अलग ऑल इण्डिया रैड ट्रेड यूनियन कांग्रेस बना ली । सन् १९३१ के विश्व श्रमिक सघ को इण्डियन ट्रेड यूनियन फैडरेशन से ही प्रतिनिधि भेजे गये थे । इस फूट से आन्दोलन मे बडी कमी आ गई । एकता लाने के प्रयत्न एक बार फिर किये गए। सन् १९३३ मे नेशनल ट्रेड यूनियन फैडरेशन बना, जिसमे कम्यूनिस्टो को छोडकर और सब सघ सम्मिलित थे । सन् १९३५ मे एकता का अन्तिम आधार भी निश्चित हो गया और सन् १९४० मे तो काम चलाऊ समझौता भी हो गया था, परन्तु अभाग्यवश उसी समय युद्ध प्रारम्भ हो गया । युद्ध मे सहायता दी जाये या नही, इस प्रश्न पर फिर तीव्र मतभेद पैदा हो गया, फलस्वरूप कई सघ अलग हो गये ।

वर्तमान स्थिति—

वर्तमान समय मे इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस देश के श्रमिक सघो की सबसे अधिक प्रतिनिधिक सस्था है । इसमे लगभग ८०० सघ सम्मिलित है, जो लगभग १२ लाख श्रमिको का प्रतिनिधित्व करते हैं । इसके बाद आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस है, जो किसी समय श्रमिको की प्रतिनिधि सस्था थी, परन्तु कम्यूनिस्टो के घुस आने पर जबसे भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक सघ कांग्रेस उससे अलग हो गई तब से उसकी सदस्य सख्या घटती जा रही है । ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अतिरिक्त सोशलिस्ट पार्टी द्वारा आयोजित हिन्द मजदूर सभा भी है तथा सन् १९४९ मे यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस की और स्थापना हुई । इस प्रकार भारत मे आज ४ प्रमुख अखिल भारतीय-श्रम सगठन हैं, जिनके सदस्यो की सख्या अग्रलिखित तालिका से ज्ञात की जा सकती है :—

तालिका I

रजिस्टर्ड श्रम संघ तथा उनकी सदस्यता

	केन्द्रीय संघ			राजकीय संघ		
	१९५६-५७	१९५७-५८	१९५८-५९	१९५६-५७	१९५७-५८	१९५८-५९
रजिस्टर मे लिखित संघो की संख्या	१७३	२२३	२९२	८,१८०	६,८८२	८,४२१
रिटर्न फाइल करने वाले संघो की संख्या	१०२	१३६	१६४	४,२९७	५,३८४	५,८७६
रिटर्न फाइल करने वालो की सदस्यता	१,८७,२९५	३,४२,१६६	२,९८,८११	२१,८६,४६७	२६,७२,८८३	३३,४८,३३७

तालिका II

	एफीलियेटड संघो की सदस्यता			सदस्यता		
	१९५७	१९५८	१९५९	१९५७	१९५८	१९५९
१. इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस	६७२	७२७	८८६	९,३४,२८५	९,१०,२२१	१०,२३,३७१
२. हिन्द मजदूर सभा	१३८	१५१	१८५	२,३३,९९०	१,९२,९४८	२,४१,६३६
३. अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस	—	८०७	८१४	—	५,३७,५६७	५,०७,६५४
४. यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस	—	१८२	१७२	—	८२,००१	९०,६२९
योग	—	१,८७६	२,०५७	—	१७,२२,७३७	१८,६३,२९०

भारत मे श्रमिक सघ की सफलताएँ

भारत म श्रमिक सघो का इतिहास नया है, इसलिए व्यवहार मे उनका वास्तविक महत्त्व आँकना दुष्कर नही तो कठिन अवश्य है। यह तो निस्सकोच कहा जा सकता है कि उन्हे पर्याप्त सफलताएँ प्राप्त हुई हैं। उदाहरण के लिए, (i) अपनी स्थापना के प्रथम वर्ष मे ही वे मजदूरी बढवाने और काम के घन्टे कम करवाने मे सफल हुए। (ii) सन् १९२६ मे उन्होने मजदूरी मे कटौती होने से रोकी। (iii) इसके अतिरिक्त वे मालिको का श्रमिको के प्रति व्यवहार बदलने मे भी सफल हुए हैं। वे अब पहले की तरह उनके प्रति उदासीन एव विरुद्ध नही रहे। (iv) कर्मचारी सघ ने सन् १९२५ म बी० एन० आर० की हडताल एव सन् १९२७ मे खडगपुर वर्कशॉप की 'तालाबन्दी' मे सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया।

दूसरे देशो की अपेक्षा हमारे देश के श्रमिक सघों की प्रगति लगभग नगण्य है। कठिनता से ५०% श्रमिक इन सघो के सदस्य होगे। दुर्भाग्यवश हमारे अधिकतर सगठन केवल खोखले आयोजन मात्र है, जिन्हे अपर्याप्त कोष एव जाली सदस्य सख्या और बाहरी लोगो के उत्साह द्वारा ही जीवित रखा जा सकता है। बहुत कम श्रमिक-सघों ने बेरोजगारी, बीमारी व बुढापे के लाभ दिये हैं। उनमे 'पारस्परिक सहायता' की प्रवृत्ति तो लगभग अविकसित है और उन्होने अपने को केवल लडाकू कार्यों तक ही सीमित रखा है। अहमदाबाद का वस्त्र सघ अवश्य ही श्रमिको के लिए कई कल्याण कार्य—अस्पताल, शिक्षा, सस्ते अनाज सहकारी ऋण एव मनोरजन की सुविधाओ के रूप मे कर रहा है। प्रति सप्ताह वह एक पत्र भी प्रकाशित करता है।

यह आशा की जाती है कि शिक्षा के फैलने पर दशा और सुधरेगी, श्रमिक अपने अधिकार एव कर्तव्यो को समझेंगे, अनुशासन बढेगा सगठन के महत्त्व का उन्हे ज्ञान होगा व श्रमिक सघो के सदस्यो की सख्या भी बढेगी, वे स्वय अपने वर्ग मे से ही नेता प्रकट कर सकेंगे, बाहरी लोगो की स्वार्थपूर्ण चालो से छुटकारा पावेंगे और अपना कार्य अधिक चतुरता एव बुद्धिमता से चला सकेंगे। वह दिन दूर नही है, जब कि भारत इस बात पर गर्व कर सकेगा कि उसके श्रमिक सघ भी अब अन्य देशो से किसी भाँति पीछे नही है।

भारतीय श्रमिक-सघ के मार्ग मे बाधायें

भारत मे श्रमिक-सघ आन्दोलन की प्रगति बहुत-सी बाधाओ के कारण धीमी रही है। कुछ महत्त्वपूर्ण बाधायें ये हैं—

(१) **अशिक्षा व अज्ञानता**—भारतीय श्रमिक प्राय अपढ है, अस्तु व अनुशासन के महत्त्व को नही समझते और न सघ को बुद्धिमानी और चतुरता से चला सकते है।

भारतीय श्रमिक सघो की धीमी प्रगति के १२ कारण

१. अशिक्षा और अज्ञानता।
२. विचित्र समुदाय।
३. प्रवासी प्रवृत्ति।
४. कम वेतन।
५. न्यून शुल्क।
६. कम अवकाश।
७. नियोक्ताओ व ठेकेदारो की विरोधी प्रवृत्ति।
८. विशाल क्षेत्र।
९. सुनेतृत्व का अभाव।
१०. श्रमिक नेताओ के प्रति द्वेष।
११. श्रमिका म अनुशासनहीनता।
१२. नियोक्ताओ का असहानुभूतिपूर्ण वातावरण।

(२) **विचित्र समुदाय**—भारतीय श्रमिक वर्ग विभिन्न प्रकार के धर्मो, विचारधाराओ, रीति-रिवाजो और आदतो के मजदूरो का मिश्रण है, इसलिए उनके सगठित होने मे देर लगती है।

(३) **प्रवासी प्रवृत्ति**—वे दूर-दूर के गाँवो से नौकरी की खोज मे आते है और चले जाते है, अतः वे अपना कार्य अथवा उद्योग परिवर्तित करते रहते है, इस कारण वे किसी सघ मे स्थायी उत्साह नही लेते।

(४) **कम वेतन**- भारत मे मजदूरा को बहुत कम वेतन मिलता है, इस कारण बहुत से तो चन्दा नही दे पाते। यदि कुछ दे भी सके तो ऐसा शुल्क इतना न्यून होता है कि उससे सघ को यथेष्ठ द्रव्य प्राप्त नही हो सकता, अतः वे फिर अच्छा कार्य, जिसकी उनमे आशा की जाती है, नही कर पाते। यही नही, भारतीय मजदूर केवल समस्यात्मक लाभ के लिए शुल्क देने मे सकोच करता है और अपने शुल्क के बदले मे अपनी सब आपत्तियो से बचाव अथवा थोडी अवधि ही मे वेतन वृद्धि की आशा रखता है।

(५) **न्यून शुल्क**—न्यूनतम शुल्क भी वसूल करने मे कठिनाई होती है, क्योकि उसे मिल मालिक तनख्वाह बाटते समय उगाहने नही देते। बाद मे वह या तो सरलता से कोषाध्यक्ष तक पहुँचता नही और यदि पहुँचता भी है तो बीच मे ही उसका कुछ भाग इधर उधर कर दिया जाता है।

(६) **कम अवकाश**—मजदूरो को अवकाश इतना कम रहता है कि वे अन्य बातें, जैसे—सघ आदि के विषय मे सोच नही पाते।

(७) **नियोक्ताओ व ठेकेदारो की विरोधी प्रवृत्ति**—सेवायोजको एव कर्मकारियोजको का विरोध सघ आन्दोलन की प्रगति मे एक अन्य बाधा है। उन मजदूरा को जो सघ के प्रति कुछ सहानुभूति रखते है, तरह-तरह से परेशान किया जाता है। वे मजदूर-सघ को मान्यता प्रदान नही करते हैं और यदि करते है तो ऐसी शर्तो के साथ कि फिर सगठन व्यर्थ रहता है। कभी-कभी सच्चे सघा के विरोध मे सेवायोजको द्वारा भूठे सघ स्थापित कर दिये जाते हैं और इनकी सहायता से उनकी कार्यवाहियो

मे विघ्न डालने का प्रयत्न किया जाता है। सघ के कार्यकर्त्ताओ को घूस देकर फोड लेना तो एक साधारण सी बात है।

(८) **विशाल क्षेत्र**—हमारे देश मे मजदूर एक बडे क्षेत्र मे फैले हुए हैं और कुछ दशाओ मे तो उन तक पहुँच भी नही हो पाती, जैसे—आसाम के चाय बागान आदि, अस्तु इनसे सम्बन्धित सूचनाये दबाई जा सकती हैं और बाहर वालो को उनकी जानकारी नही हो पाती। यह दशा सघो की प्रगति मे बाधक है।

(९) **सु-नेतृत्व का अभाव**—सबसे बडी बाधाओ मे एक बाधा अच्छे नेतृत्व का अभाव होना भी है। श्रमिक अपढ है, वे अपने अधिकारो एव कर्त्तव्यो से अपरिचित है, इसलिए उन्हे बाहरी नेतृत्व पर निर्भर रहना पडता है। यह उनकी बडी दुर्बलता है, क्योकि ऐसी दशा मे प्राय. अपने राजनैतिक अथवा सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वार्थी लोग नेतृत्व सँभाल लेते है। इन्हे श्रमिको की वास्तविक स्थिति का ज्ञान नही होता, क्योकि उन्हे कभी कारखानो मे काम नही करना पडा। वे उद्योग की आवश्यकताओ से अपरिचित होते है। उन्हे श्रमिको से सच्ची सहानुभूति भी नही होती। कुछ पढे लिखे वकील आदि, जिन्हे काम नही मिलता, बैठे ठाले इस कार्य को सँभाल लेते हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के प्रयत्न मे सलग्न रहते हैं। कही-कही तो ऐसे लोगो ने मजदूरा के चन्दे भी हजम कर लिए। कुछ नेता कई सघो का काम सँभालते रहते है, इसलिए प्रत्येक सघ को पर्याप्त समय भी नही दे पाते। रॉयल कमीशन ने यह स्पष्ट कहा है कि जब तक ये सघ इस विषय मे आत्म-निर्भर नही हो जाते, तब तक किसी विशेष प्रगति की आशा करना व्यर्थ है।

(१०) **श्रमिक नेताओ के प्रति द्वेष**—अधिकाश श्रमजीवियो मे अपने नेताओ के प्रति सद्भावना नही होती। जनसाधारण भी उन्हे प्राय. विप्लवकारी, आग उगलने वाला कहकर बदनाम करते है।

(११) **श्रमिको मे अनुशासनहीनता**—अशिक्षा, अज्ञानता एव रूढिवादिता के कारण भारतीय श्रमिक नियन्त्रण व शासन के अन्तर्गत रहन का आदी नही होता, अत: श्रम सघ की ओर से प्रायः लापरवाह रहता है।

(१२) **नियोक्ताओ का असहानुभूतिपूर्ण वातावरण**—मिल मालिको का असहानुभूतिपूर्ण वातावरण भी श्रम-सघ आन्दोलन की एक बडी कठिनाई है। भारतीय नियोक्तागण यह नही समझते कि स्वस्थ एव सुदृढ सघवाद हड़तालो के विरुद्ध बीमा का कार्य करता है। इसके फलस्वरूप अनियमित, अनाधिकृत तथा बिजली की तरह क्षणिक हडताले नही हो पाती।

राष्ट्र-निर्माण मे संघों का भाग

किसी भी देश को कल्याणकारी राज्य बनाने मे श्रमिक सघ बहुत लाभकारी हो सकते है। श्रमिक संघो को मजदूरो मे यह भावना व प्रवृत्ति पैदा करनी चाहिए कि

वे राष्ट्र हित की दृष्टि से उत्पादन को बहुत बढायें। मिल मालिको का भी यह कर्त्तव्य है कि वे उत्पादन बढाने के उपायो को श्रमिक (अर्थात् श्रमिक सघ के प्रतिनिधियो) के सामने रखें और उनका सहयोग प्राप्त करे। श्रमिक प्रतिनिधि उन्हे राष्ट्रीय समृद्धि मे जहाँ अपने सहयोग का विश्वास दिलायेगे वहाँ अपने लिए भी मिल मालिको से निम्नलिखित आश्वासन चाहेगे :—

(१) उत्पादनक्षमता मे हुई वृद्धि के कारण जो लाभ होगा उसमे मजदूर भी वेतन वृद्धि और अन्य सुविधाओ के रूप मे भागीदार होंगे।

(२) नये उपायो का अर्थ मजदूर पर कार्य का अनुचित भार डालना नही होगा।

(३) नये उपायो का परिणाम मजदूरो की छँटनी और बेकारी भी नही होनी चाहिए।

इसके बाद श्रमिक सघ मजदूरो को राष्ट्रीय उत्पादन मे अधिकाधिक हार्दिक सहयोग देने के लिए समझायेंगे, मजदूरो को मशीनो का काम अधिक कुशलता से करने की ट्रेनिंग भी देंगे और शिक्षण की व्यवस्था भी करेंगे। श्रमिको के प्रतिनिधि मिल इन्जीनियरो के साथ बैठ कर उत्पादन की नई योजनाओ पर विचार करेंगे और उपयुक्त व्यवस्था का निर्माण करने मे सहयोग देंगे। इस तरह श्रमिक सघ राष्ट्रीय समृद्धि मे महत्त्वपूर्ण भाग ले सकते हैं।

शिक्षा प्रचार देश की उन्नति के लिए अत्यन्त आवश्यक है। आज श्रमिक सघ ४५% व्यय अपने कार्यकर्त्ताओ के वेतन पर करते है और केवल ७% शिक्षा प्रसार पर व्यय करते हैं। यह बहुत असन्तोषजनक स्थिति है। शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

निम्नलिखित अन्य दिशाओं में काम करके भी श्रमिक सघ राष्ट्र निर्माण में सहायक हो सकते हैं :—

(१) श्रमिक सघ सहकारी समितियाँ बना कर मजदूरो के लिए घर बनवा सकते है।

(२) मजदूरो मे बचत की आदत पैदा की जा सकती है और विभिन्न कार्यों के लिए सहकारी समितियो का सगठन किया जा सकता है।

(३) मजदूर परिवारो मे तथा वयोवृद्ध पुरुषो मे ग्रामोद्योग का प्रसार करके आमदनी बढाई जा सकती है।

(४) शारीरिक व्यायाम, खेल-कूद आदि का प्रचार करके मजदूरो को स्वस्थ बनाने म श्रमिक सघ सहयोग दे सकते हैं।

संक्षप मे, श्रमिक सघ विभिन्न क्षेत्रो मे रचनात्मक कार्य करके राष्ट्र-निर्माण मे सहायक हो सकते हैं। इसमे मजदूरो का शैक्षणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर भी

ऊँचा उठेगा, वे अच्छे नागरिक बनेंगे और जो सामाजिक व्यवस्था वे लाना चाहते हैं, उसमे भी इससे सफलता मिलेगी।

श्रम-सघ-अधिनियम
(Trade Union Act)

श्रम सघ अधिनियम सर्व प्रथम सन् १९२६ मे बनाया गया था, जो कि १ जून सन् १९२७ से लागू किया गया। इसके बाद सन् १९२८ व सन् १९४२ मे कुछ सशोधन किये गये। सन् १९४७ मे दूसरा श्रम सघ अधिनियम बनाया गया।

(I) सन् १९२६ का श्रम संघ अधिनियम—

इस अधिनियम के द्वारा श्रम-सघो को वैधानिक मान्यता प्राप्त करने की सुविधा प्राप्त हुई है। यद्यपि श्रम-सघो की रजिस्ट्री अनिवार्य नही है, परन्तु रजिस्टर्ड श्रम-सघो को कुछ विशेष सुविधायें प्रदान की गई है। सन् १९२६ के अधिनियम की प्रमुख बातें निम्नलिखित है :—

(१) श्रम सघों की रजिस्ट्री कराना—

अधिनियमानुसार श्रम-सघ के सात या इससे अधिक सदस्य, अधिनियम के अन्तर्गत नियुक्त रजिस्ट्रार को सघ के रजिस्ट्रेशन के लिये प्रार्थना-पत्र दे सकते है। आवेदन पत्र श्रम सघो के प्रान्तीय रजिस्ट्रार को भेजना चाहिये। आवेदन पत्र के साथ श्रम सघ के नियमो की प्रति तथा नीचे लिखी बातो का एक विवरण पत्र भेजना चाहिये—

(i) आवेदन पत्र देने वाले सदस्यो के नाम, व्यवसाय तथा पते।
(ii) श्रम सघ का नाम व उसके प्रधान कार्यालय का पता।
(iii) श्रम सघ के पदाधिकारियो की उपाधियाँ, नाम, आयु, पते व व्यवसाय।

यदि कोई श्रम-सघ रजिस्ट्री के लिये आवेदन पत्र दिये जाने के एक वर्ष से अधिक पहले से विद्यमान हो, तो रजिस्ट्रार को आवेदन पत्र के साथ-साथ श्रम सघ की सम्पत्ति एव दायित्त्वो का एक व्यापक विवरण पत्र प्रस्तुत किया जाना चाहिये, जिसमे कि नियत विवरण हो तथा वह नियत रूप के अनुसार तैयार किया गया हो।

आवेदन पत्र और नियत शुल्क के पाने पर रजिस्ट्रार ऐसी जाँच करेगा, जो वह उचित समझे और यदि उसे विश्वास हो जाय कि सघ ने अधिनियम की सारी शर्तों को पूरा कर दिया है और सघ इस अधिनियम के आधीन रजिस्ट्री के लिये अयोग्य निर्धारित नही किया गया है, तो वह उस श्रम-सघ का नाम 'श्रम-सघो के रजिस्टर' मे लिख लेगा और रजिस्ट्री का प्रमाण-पत्र जारी कर देगा। यदि रजिस्ट्रार को यह विश्वास हो जाय कि रजिस्ट्री के लिये आवेदन पत्र काम करने वालो के हितो मे सद्भाव से नही किया गया है, परन्तु सेवायोजको के हितो मे किया गया है, तो वह रजिस्ट्री नही करेगा। दूसरे, रजिस्ट्रार किसी एक कारखाने के एक से अधिक श्रम-सघ की रजिस्ट्री नहीं करेगा।

(२) श्रम-संघ की रजिस्ट्री का निरसन—

नीचे लिखी हुई दशाओ मे रजिस्ट्रार किसी श्रम-सघ की रजिस्ट्री को निरस्त (Cancel) कर देगा—

(i) यदि रजिस्ट्री होने के समय श्रम-सघ की रजिस्ट्री के लिए आवश्यक शर्तों को पूरा न किया हो, अथवा उसकी रजिस्ट्री किसी गलती, मिथ्या-वर्णन अथवा कपट के कारण हुई हो ।

(ii) यदि आवेदन पत्र देने की तारीख पर श्रम-सघ रजिस्ट्री के लिये आवश्यक न्यूनतम सदस्यता (Minimum Membership) सम्बन्धी शर्त को पूरा करने मे असमर्थ रहा हो ।

(iii) यदि श्रम-सघ काम करने वालो के हितो मे सद्भाव से सचालित नही किया जाता है, परन्तु काम कराने वालो के हितो मे सचालित किया जाता है ।

(iv) यदि श्रम-सघ ने इस अधिनियम के किसी नियम का उल्लघन किया हो—

(v) यदि श्रम-सघो की कार्यवाहियाँ उद्योग के हितो को हानिकर है ।

(३) रजिस्ट्री किये हुए एवं योग्य ट्रेड यूनियनो का स्वत्त्व तथा दायित्त्व—

प्रत्येक रजिस्ट्री की हुई ट्रेड यूनियन को एक साधारण कोष (General Fund) रखना चाहिए । साधारण कोष नीचे लिखी हुई बातो के अतिरिक्त अन्य किसी उद्देश्य पर व्यय नहीं किया जायगा :—

(i) ट्रेड यूनियन के पदाधिकारियो के वेतन, भत्ता और अन्य व्यय के चुकाने के लिए ।

(ii) ट्रेड यूनियन के प्रबन्ध के लिये व्यय के चुकाने के हेतु, जिसमे यूनियन के साधारण कोष के हिसाब की जाँच सम्मिलित है ।

(iii) किसी ऐसी राजनियम सम्बन्धी कार्यवाही के चलाने या प्रतिवाद करने के लिये जिसमे ट्रेड यूनियन या उसका कोई सदस्य पक्षकार हो ।

(iv) ट्रेड यूनियन या उसके किसी सदस्य की ओर से श्रम-सम्बन्धी-झगडो के सचालन के हेतु ।

(v) श्रम सम्बन्धी झगडो से उत्पन्न हुई हानि के लिए सदस्यो की क्षति-पूर्ति के हेतु ।

(vi) ऐसे सदस्यो की मृत्यु एव वृद्धावस्था, बीमारी, दुर्घटनाओ या बेकारी के कारण सदस्यो या उनके आश्रितो के उप-वेतन के हेतु ।

(vii) सदस्यो की मृत्यु या दुर्घटना के कारण उनके आश्रितो की सहायता के लिये ।

(viii) सदस्यो की या उनके आश्रितो की शिक्षा सम्बन्धी या सामाजिक कार्य-वाहियो के लिए ।

(ix) सरकार द्वारा शासकीय गजट मे विज्ञापित किसी अन्य उद्देश्य के लिए, किन्ही ऐसी शर्तों का पालन करते हुए जो उसमे लिखी हो।

एक रजिस्ट्री की हुई ट्रेड यूनियन साधारण कोष से भिन्न भी एक कोष कुछ विशेष कार्यों के लिए रख सकती है। ऐसे पृथक कोष के उद्देश्य निम्नलिखित हैं:—

(i) किसी ऐसे व्यय का चुकारा जो किसी पदाभिलाषी द्वारा, अधिनियम द्वारा किसी धारा सभा मे श्रमजीवियो के लिए नियत स्थान के लिए अपने पदाभिलाषी होने या निर्वाचन के सम्बन्ध मे निर्वाचन से पूर्व, उसके होने के काल मे या उसके पश्चात् प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किया गया हो, या

(ii) ऐसे किसी पदाभिलाषी या भावी पदाभिलाषी को सहायता के लिए किसी मीटिंग का करना अथवा कोई साहित्य या लेख पत्रो का वितरण करना, या

(iii) इस प्रकार निर्वाचित हुए ऐसे व्यक्ति का प्रतिपालन (Maintenance) करना।

इस प्रकार स्थापित किए गए कोष मे चन्दा देने के लिए किसी सदस्य को विवश नही किया जायगा तथा जो सदस्य उक्त कोष मे चन्दा न देगा, उसे श्रम-सघ के किसी लाभ से वचित न रखा जायगा।

(४) श्रम-सघ के रजिस्ट्रेशन से लाभ—

(i) श्रम-सघ के वैध (legal) उद्देश्यो की पूर्ति के लिए कार्य करते हुए श्रम-सघ के **पदाधिकारियो एव सदस्यों को अपराध सम्बन्धी उत्तरदायित्व से मुक्ति** प्राप्त हो जाती है और उनको षडयन्त्र के लिए भी उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता।

(ii) रजिस्टर्ड सघ के किसी भी सदस्य एव पदाधिकारी के द्वारा दिए गये किसी भी ऐसे कार्य के विरुद्ध जो उन्होंने सघ के वैधानिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए किया है, कोई भी दावा इस आधार पर कि एसा कार्य किसी व्यक्ति को कार्य का अनुबन्ध तोडने के लिए प्रेरित करता है, किसी भी दीवानी अदालत मे स्वीकार नही किया जायगा।

(iii) रजिस्टर्ड श्रम-सघ के विरुद्ध किसी भी दीवानी अदालत मे ऐसे किसी कार्य के लिए दावा स्वीकार नही किया जायगा, जिसको कि किसी व्यक्ति ने सघ की ओर स उसका **प्रतिनिधित्व** करते हुए किया है।

(iv) अधिनियम द्वारा सघ के **सामान्य कोष को व्यय करने की दृष्टि से सीमायें** बाँध दी गई है।

(v) श्रमिक सघ ऐच्छिक रूप से अपने सदस्यो के **राजनैतिक एव सामाजिक हितो के लिए अतिरिक्त कोष निर्माण** कर सकते है।

(vi) रजिस्टर्ड श्रम-सघो को अपना नाम तथा उद्देश्य निश्चित करने पडते है तथा प्रति वर्ष **अकेक्षण** (Audit) के लिए अपना लेखा तैयार रखना पड़ता है।

(II) सन् १६४७ का श्रम-संघ अधिनियम—

सन् १६४७ मे, सन् १६२६ के श्रम-सघ अधिनियम मे कुछ सशोधन कर दिये गये। इस अधिनियम की प्रमुख बातें निम्नलिखित है—

(१) मान्यता की शर्तें—सेवायोजकों द्वारा प्रतिनिधि सघ को मान्यता प्रदान करना अनिवार्य कर दिया गया तथा इस दृष्टि से उत्पन्न हुए सघर्षों को निबटाने के लिए श्रम न्यायालय (Labour Courts) की स्थापना की गई है। किसी भी श्रम-सघ को श्रम-न्यायालय द्वारा उस समय तक मान्यता प्राप्त न होगी, जब तक कि—

(i) उसे अधिनियम के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त न हो।

(ii) उसके सभी सदस्य उसी या उससे सम्बन्धित उद्योग मे कर्मचारी होने चाहिए।

(iii) वह सेवायोजकों द्वारा उस उद्योग मे नियुक्त किये हुये कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व करे।

(iv) उसके नियम उद्योग के किसी कर्मचारी को सदस्य न बनने के लिये छूट न दें।

(v) उसके नियमों मे हड़ताल घोषित करने की पूर्ण विधि होनी चाहिए।

(vi) उसकी कार्यकारिणी की सभा कम से कम ६ माह मे एक बार अवश्य होनी चाहिए।

(२) कुछ संघ कार्यवाहियों को अनुचित घोषित करना—सन् १६४७ के सशोधनानुसार कुछ कार्यवाहियों को मान्यता प्राप्त सघों के लिये अनुचित घोषित कर दिया गया है, जैसे—

(i) उसके अधिकाश सदस्यों द्वारा अनियमित हड़तालों मे भाग लेना।

(ii) कार्यकारिणी द्वारा अनियमित हड़ताल के लिए सुझाव अथवा सहायता प्रदान करना।

(iii) सघ के किसी पदाधिकारी द्वारा झूठे विवरण-पत्र (Returns) भिजवाना।

(३) कुछ कार्य सेवायोजकों के लिये अनुचित ठहराना—नीचे लिखे हुये कार्य सेवायोजकों के लिये अनुचित ठहरा दिये गये हैं—

(i) अपने कर्मचारियों द्वारा श्रम-सघ सगठित करने के किसी अधिकार मे हस्तक्षेप करना अथवा सुरक्षा या पारस्परिक सहायता के लिये गतिविधियाँ जारी करना।

(ii) श्रम-सघ के निर्माण एव उसके प्रबन्ध मे किसी प्रकार की बाधा उपस्थित करना अथवा उसको आर्थिक एव अन्य दूसरी प्रकार की सहायता प्रदान करना।

(iii) मान्यता प्राप्त संघ के किसी पदाधिकारी अथवा किसी कर्मचारी को (यदि उसने अधिनियम के अन्तर्गत किसी जाँच मे गवाही दी है) निकालना या उसके साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार करना।

(iv) मान्यता प्राप्त संघो से सम्पर्क रखने के लिए इन्कार करना अथवा अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त सुविधायें प्रदान न करना।

(४) **दण्ड की व्यवस्था**—कोई भी सेवायोजक जो अनुचित कार्य करता है, अर्थ-दण्ड का भागी होगा, जो १,०००) तक हो सकता है। यदि कोई मान्यता प्राप्त संघ अनुचित कार्यवाही करता है, तो उसकी मान्यता वापिस ले ली जायगी। यदि कोई सघ, श्रम न्यायालय द्वारा मान्य किया गया है, तो भी सेवा-योजक तथा रजिस्ट्रार उसकी मान्यता वापिस लेने के लिए प्रार्थना पत्र दे सकते है। हाँ, ऐसी दशा मे यह अनिवार्य है कि उसने कोई अनुचित कार्य किया हो या वह श्रमजीवियो का प्रतिनिधि सघ नही रहा है अथवा वह अधिनियम के अन्तर्गत विवरण पत्र प्रस्तुत करने मे असफल रहा हो।

(५) **श्रम सघ के विधान मे अनिवार्य नियम**—सशोधित अधिनियमानुसार, भविष्य मे प्रत्येक श्रम-सघ के नियम मे नीचे दी हुई बाते अवश्य होनी चाहिए :—

(i) सदस्यो के चन्दे की दर।

(ii) वे परिस्थितियाँ जिनके अनुसार सदस्य का नाम सदस्यता से काट दिया जायगा। इसमे चन्दे का भुगतान न करना भी शामिल है।

(iii) सदस्यो की सूची।

(iv) कार्यकारिणी एवं अन्य पदाधिकारी की आज्ञा का उल्लघन कर हडताल या तालेबन्दी मे भाग लेने वाले सदस्यो के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की विधि।

(६) **मान्यता का रद्द होना**—यदि किसी श्रम सघ ने ऐच्छिक रूप से अथवा रजिस्ट्रार की सूचना प्राप्त होने के बाद अधिनियम की किसी धारा या सघ के नियमो का उल्लघन किया हो अथवा बाध्य होने वाले किसी समझौते या निर्णय के अनुसार काम करने से असफल रहा हो, तो उसकी मान्यता रद्द की जा सकती है।

(७) **राजकीय कर्मचारियो पर रोक**—राजकीय कर्मचारी, चाहे वे नागरिक सेवक ही क्यो न हो, राजनैतिक कोषो मे चन्दा नही दे सकेंगे।

(८) **बाहरी सदस्यो के पदाधिकारी होने पर रोक**—बाहरी सदस्य उस श्रम-सघ के पदाधिकारी नही बन सकेंगे जिसमे समस्त अथवा कुछ अशो मे नागरिक सेवक है। यदि श्रम सघ जिनके पदाधिकारी बाहरी व्यक्ति है, कोई अनुचित कार्य करता है, तो वे पदाधिकारी किसी भी श्रम सघ मे तीन वर्ष तक कोई पद ग्रहण नही कर सकेंगे।

(९) **अधिक संख्या वाले संघ को मान्यता**—यदि दो या अधिक श्रम-सघ

मान्यता के अधिकारी हो तो सख्या मे अधिक सदस्यो वाले सघ को मान्यता प्रदान *की जायगी।*

श्रमिक-सङ्घ अधिनियम के कुछ दोष एव उनके सुधार के लिए सुझाव

केवल सन् १९२८ एव सन् १९४७ के कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तनो को छोड कर शेष अधिनियम वैसा ही बना है, जैसा कि सन् १९२६ म स्वीकृत किया गया था, परन्तु सन् १९२६ और सन् १९६० की परिस्थितियो मे जमीन आसमान का अन्तर *हो गया है और श्रमिक आन्दोलन आज एक नये और* ऊँचे स्तर पर है, इसलिए यह *आवश्यक है कि श्रमिक-सघ अधिनियम मे निम्न सशोधन कर दिये जाय* —

श्रमिक संघ अधिनियमों मे विशेष सुधार के लिये मुख्य ७ सुझाव

१. अनिवार्य रजिस्ट्रेशन पर जोर देना।
२. सामान्य व राजनैतिक कोषो के अन्तर की समाप्ति।
३ चन्दे की अनिवार्यता।
४ आडिट की निशुल्क व्यवस्था।
५ सेवायोजको के विरुद्ध सरक्षण।
६ बाहरी व्यक्तियो के प्रवेश पर रोक।
७. अनिवार्य मान्यता की उचित शर्तें।

(१) अनिवार्य रजिस्ट्रेशन पर जोर देना—इस अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिक सघ की रजिस्ट्री कराना अनिवार्य नही है। रजिस्ट्री अनिवार्य न *करने के भले ही तब कुछ कारण* रहे हो, लकिन अब तो परिस्थिति बदल गई है। रजिस्ट्री कराना एक सीधा-सादा कार्य है। रजिस्ट्री करा लेने से कोई विशेष उत्तरदायित्व भी नही आता, जिसे कि एक सघ पूरा न कर सकता हो और फिर रजिस्टर्ड होने पर लाभ बहुत होते है। वास्तव मे *अनिवार्य रजिस्ट्रेशन पर जोर न देना* एक बडी अनुचित बात है। धारा २८ (डी) के अन्तर्गत श्रमिक न्यायालय की आज्ञानुसार सघ को *मान्यता देने की एक शर्त* उसका *रजिस्टर्ड होना है।* इस दृष्टि से भी रजिस्ट्री कराना आवश्यक है। इससे सघो को वह उचित स्तर प्राप्त होगा जिसकी उन्हे बडी आवश्यकता है।

(२) सामान्य व राजनैतिक कोषों के अन्तर की समाप्ति—सघ के कोष को दो भागो *मे रखा गया है—सामान्य कोष और राजनैतिक कोष। सामान्य कोष के* लिये चन्दा देना अनिवार्य है। अधिनियम के अन्तर्गत इस कोष के जो प्रयोग बताये गये है वे बहुत सकुचित है, अस्तु सघ द्वारा किये जाने वाले कई उपयोगी कार्यों के सम्पादन मे बाधा पडती है। हमारा सुझाव तो यह है कि सामान्य कोष एव राजनैतिक कोष मे अन्तर ही समाप्त कर *दिया जाय, क्योकि विगत अनुभव यह बताता है कि*

सघो ने राजनैतिक क्षेत्र मे अधिकाधिक भाग लेते हुये भी अपने प्रारम्भिक कार्यों को नही छोडा। भविष्य मे उन्हे देश के राजनैतिक निर्माण मे और भी अधिक भाग लेना है और इस कार्य मे उनको अधिक द्रव्य की आवश्यकता होगी।

(३) चन्दे की अनिवार्यता—कोष (कुल-कोष) के लिये चन्दा लेना अनिवार्य कर दिया जाय। सिलेक्ट कमेटी के सम्मुख पेश किये गये बिलो मे भी चन्दा अनिवार्य रखा गया है, परन्तु हमारा सुझाव यह है कि चन्दे की अनिवार्य रकम ६ आना और ८ आना के मध्य हो, क्योकि अब श्रमिक पहले की तरह निर्धन नही है, रोजगार भी बढ रहा है, अधिनियम द्वारा उद्योगो मे न्यूनतम मजदूरी निश्चित की जा रही है और फिर जब मजदूर अधिक चन्दा देंगे तो वे राजनैतिक दृष्टि मे अधिक जागृत भी होगे।

(४) आडिट की निशुल्क व्यवस्था—इस समय श्रमिक सघ की आय का एक बडा भाग (४४%) ऑडिट आदि मे व्यय हो जाता है। यदि सरकारी अफसरो द्वारा आडिट निःशुल्क करने की व्यवस्था हो जाये तो इस प्रकार व्यय होने वाली धन-राशि अन्य रचनात्मक कार्यों के लिए सुलभ हो जायगी।

(५) सेवायोजको के विरुद्ध संरक्षण—श्रमिक सघ के पदाधिकारियो को सेवा-योजक सदैव ही परेशान करते रहते हैं। यह भी श्रमिक आन्दोलन की प्रगति मे बाधा है। अधिनियम मे इसे रोकने के लिए आवश्यक धारायें जोडना आवश्यक है।

(६) बाहरी व्यक्तियो के प्रवेश पर रोक—अधिनियम मे ऐसी भी धारायें हो जो कि बाहरी व्यक्तियो को श्रमिक सघ मे प्रवेश करने से रोके। प्रायः स्वार्थी व्यक्ति अनभिज्ञ श्रमिको को उकसा कर अपना काम बनाते रहते हैं, अस्तु श्रमिक वर्ग मे से ही पदाधिकारी नियुक्त करने को प्रोत्साहन दिया जाय।

(७) अनिवार्य मान्यता की शर्त—सन् १६४७ के सशोधित अधिनियम मे किसी सघ को अनिवार्य मान्यता प्रदान करने के सम्बन्ध मे एक शर्त यह है कि वह एक 'प्रतिनिधि' सस्था हो, परन्तु प्रतिनिधि सस्था की कसौटी क्या है, इसका कोई उल्लेख नही है। अच्छा हो यदि 'प्रतिनिधि' सस्था की परिभाषा समान रूप मे सब जगह समझी जाये। इसी प्रकार अनिवार्य मान्यता पाने के लिए दूसरी शर्त यह है कि सघ के नियम हडताल घोषित करने की व्यवस्था करें। यह शर्त वास्तव मे बेकार है, क्योकि यदि संघ के नियमो मे हडताल घोषित करने का अधिकार प्रेसीडेण्ट को सौप दिया जाय तो भी वह पूरी समझी जायगी और मान्यता पाने की अधिकारी होगी, यद्यपि यह स्पष्ट है कि हडताल घोषित करने की ऐसी व्यवस्था बडी दोषपूर्ण है। यदि उपरोक्त आधार पर उचित सशोधन कर लिया जाय तो निश्चित ही यह अधिनियम श्रमिक सघ आन्दोलन को ठोस सहायता पहुँचा सकता है।

श्रम संघ एव भारतीय श्रम सम्मेलन—

भारतीय श्रम-सम्मेलन सन् १६५८ ने मजदूर सघो को मान्यता प्रदान करने के लिए निम्न सिद्धान्त निर्धारित किये:—

(१) जहां एक से अधिक मजदूर सघ हैं, वहां यदि कोई सघ मान्यता के लिए दावा करे तो वह रजिस्ट्रेशन के बाद कम से कम १ वर्ष तक सक्रिय होना आवश्यक है। जहाँ केवल एक ही सगठन है वहा यह शर्त लागू नही होती।

(२) सम्बद्ध उद्योग मे इसकी सदस्य सख्या कम से कम २५ प्रतिशत अवश्य होनी चाहिए।

(३) यदि किसी मजदूर सघ के सदस्यो की सख्या सम्बद्ध स्थानीय उद्योग के मजदूरो की सख्या का २५ प्रतिशत है, तो वह उस क्षेत्र के लिए मान्यता प्राप्त करने का दावा कर सकता है।

(४) जब किसी मजदूर सघ को मान्यता मिल जाय तब इस स्थिति मे दो वर्ष तक कोई परिवर्तन नही होना चाहिये।

(५) जहाँ किसी उद्योग या सस्थान मे कई मजदूर सगठन हो वहाँ जो सबसे बडा सघ हो उसे मान्यता प्रदान की जाय।

(६) किसी क्षेत्र के उद्योग की प्रतिनिधि मजदूर यूनियन उस क्षेत्र के उस उद्योग के सभी कामगारो का प्रतिनिधित्व करेगी, परन्तु यदि किसी विशेष उद्योग की यूनियन की सदस्य सख्या ५० प्रतिशत है, तो वह उस उद्योग की सीमा तक प्रतिनिधित्त्व कर सकती है।

(७) प्रतिनिध्यात्मक स्वरूप के निश्चय के लिए प्रक्रिया और अधिक सम्पूर्ण होनी चाहिये। जहाँ पर विभागीय तन्त्र के विनिश्चयात्मक निर्णय अन्य पक्षो को स्वीकार न हो वहाँ सभी केन्द्रीय मजदूर सगठनो के प्रतिनिधियो की एक समिति बनाई जाय, जो मामले पर विचार करे तथा निर्णय दे। इसके लिए केन्द्रीय सरकार मजदूर सगठन, जो स्थायी तन्त्र के रूप मे कार्य करेगा, स्थानीय आधार पर व्यक्ति और धन प्रदान करेगा।

(८) केवल उन्ही मजदूर सघो को मान्यता दी जायगी जो अनुशासन की सहिता का पालन करेगे।

(९) ऐसे मामलो मे, जहाँ कोई मजदूर सघ केन्द्रीय सरकार के सगठन मे से किसी से भी सम्बद्ध न हो, मामले को अलग रूप से ही तय किया जायगा।

श्रम-सघ तथा द्वितीय पच-वर्षीय योजना—

श्रम-सघो के दोष को दूर करने के लिए द्वितीय योजना अवधि मे निम्नलिखित कार्य किए जा रहे है.—

(i) श्रम सघो मे बाहरी व्यक्तियो को शामिल न होने देना,

(ii) आवश्यक शर्तो को पूरा करने पर उन्हे मान्यता प्रदान करना,

(iii) श्रम-सघो के कार्यकर्त्ताओ की उत्पीडन (Victimization) से रक्षा करना, और

(iv) श्रम सघो की व्यक्तिगत साधनो द्वारा उन्नति करना।

सम्पि.
कोष मे

STANDARD QUESTIONS

1. Define a 'Trade Union' and briefly enumerate its aims, objects and functions
2. Summarise carefully the advantages and disadvantages of trade unions
3. Sketch the growth of trade unionism in India pointing out its defects and suggesting remedies
5. What are the main provisions of the Trade Unions Act, 1926 and 1947 ? Do you suggest any improvements in the existing legislation
5. Briefly summarise the main provisions of the Indian Trade Union Act.

अध्याय ३१

श्रम कल्याण

(Labour Welfare)

प्रारम्भिक—

'श्रम कल्याण कार्यो' का अभिप्राय उन समस्त कार्यो से होता है, जो कि कानून द्वारा दी गई वेतन इत्यादि अनेक सुविधाओ के अतिरिक्त श्रमिक की सुविधा तथा उसके शारीरिक, मानसिक व सामाजिक हित के विकास की दृष्टि से किये जाते हैं। 'श्रमिक-कल्याण-कार्य' के क्षेत्र की व्याख्या करते हुये **श्रम जाँच समिति** ने अपनी रिपोर्ट मे *लिखा है कि श्रम-कल्याण कार्यों* के अन्तर्गत श्रमिक की बौद्धिक, शारीरिक, नैतिक एव आर्थिक विकास के कार्यो का समावेश होना चाहिये। ये कार्य चाहे नियोक्ता, सरकार या अन्य संस्थाओ द्वारा किए जायें तथा साधारण अनुबन्धात्मक सम्बन्ध अथवा विधान के अन्तर्गत श्रमिको को जो मिलना चाहिए उसके अलावा किये गये हो। इस प्रकार इस परिभाषा के अन्तर्गत हम आवास-व्यवस्था, चिकित्सा एव शिक्षा सुविधायें, अच्छा भोजन (केन्टीन के आयोजन सहित), आराम एव मनोरंजन की सुविधाये, सहकारी समितियों, धाय घर एव शिशु-गृह, शौचनालय की व्यवस्था, सवेतन छुट्टियाँ,

सामाजिक बीमा, प्रॉवीडेण्ट फण्ड, सेवा-निवृत्ति वेतन आदि सुविधाओं का समावेश कर सकते हैं।

भारत मे श्रम-कल्याण-कार्य की आवश्यकता—

भारतवर्ष मे श्रमिको के हेतु कल्याण-कार्य की बहुत आवश्यकता है। यहाँ का श्रमिक अकुशल है और अन्य देशो की तुलना मे उसकी कार्यक्षमता न्यून है। श्रमिको को सन्तुष्ट और सुखी करने के लिए उनकी परिस्थिति मे सुधार करना चाहिए। हमारी दृष्टि से श्रमिको की केवल नकद मजदूरी बढाने ही से कोई विशेष लाभ न होगा, क्योकि इससे उनकी कार्य-निपुणता पर कोई गम्भीर प्रभाव नही पडता। सम्भव है कि नकद राशि को वे जुए और नशे मे उडा दें। इसके विपरीत यदि कल्याण कार्य के द्वारा उनको लाभ पहुँचाया जायगा तो हमे विश्वास है कि उनकी कार्यक्षमता अवश्य बढेगी।

भारत मे श्रम-कल्याण कार्य की आवश्यकता के सम्बन्ध मे निम्नलिखित दलीलें दी जा सकती है :—

(१) औद्योगिक शान्ति की स्थापना—इस विषय मे दो मत नही हो सकते कि कल्याण कार्य की विस्तृत व्यवस्था मे श्रम एव पूँजी के बीच निकटतम सम्बन्ध स्थापित हो जाते है। जब श्रमिक को इस बात का अनुभव होने लगता है कि सेवायोजक तथा राज्य उनके ही कल्याण के लिए अनेक योजनाएँ कार्यान्वित कर रहे हैं, तो उनके मन मे एक स्वस्थ वातावरण पैदा हो जाता है, जिससे औद्योगिक शान्ति की स्थापना मे बडा योग मिलता है।

भारत में श्रम कल्याण की आवश्यकता से सम्बन्धित ७ बातें

१. औद्योगिक शान्ति की स्थापना।
२ श्रमिको के उत्तरदायित्व मे वृद्धि।
३ सेवाओ का आकर्षक बनना।
४. औद्योगिक व्यवस्था का अनिवार्य अग।
५. मानसिक क्रान्ति।
६. कायक्षमता मे वृद्धि।
७. सामाजिक गुण।

(२) श्रमिको के उत्तरदायित्व में वृद्धि—श्रम-कल्याण-कार्य की व्यवस्था से श्रमिक यह अनुभव करने लगते है कि वे उद्योग के एक अनुयायी है। अत वे सस्था के विकास मे विशेष रुचि लेने लगते है, उनके उत्तरदायित्व मे वृद्धि की भावना से सेवायोजको को भी बडा लाभ होता है।

(३) सेवाओ का आकर्षक बनना—जिस औद्योगिक सस्था मे कल्याण कार्य की योजनाएँ लागू होती है, वहाँ की सेवाएँ अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक हो जाती है और अधिकाश श्रमिक वही कार्य करना पसन्द करते हैं। इससे स्थायी श्रम शक्ति की वृद्धि होती है।

(४) औद्योगिक व्यवस्था का अनिवार्य अग—आज प्राय. सभी विवेकशील सेवायोजक इस बात का अनुभव करने लगे है कि कल्याण कार्य औद्योगिक व्यवस्था का

एक अनिवार्य अग है। यह श्रमिको के हृदय मे आत्म गौरव की भावना प्रेरित करता है।

(५) मानसिक क्रान्ति—कल्याण कार्य की व्यवस्था श्रम एव पूँजी की मानसिक क्रान्ति के द्वारा उनके हृदय-परिवर्तन का एक श्रेष्ठ साधन है।

(६) कार्यक्षमता में वृद्धि — कल्याण-कार्य से श्रमिको की कार्यक्षमता मे निश्चय ही वृद्धि होती है।

(७) सामाजिक गुण—अन्त मे यह लिखना अनावश्यक न होगा कि कल्याण कार्य की व्यवस्था से अनेक सामाजिक कुरीतियो का भी निवारण होता है और इस प्रकार समाज भी लाभान्वित होता है। श्रमिक समाज के महत्त्वपूर्ण अग हैं। कैन्टीन मे सस्ते व सन्तुलित भोजन की सुविधा से श्रमिको के स्वास्थ्य म वृद्धि होती है, स्वस्थ मनोरजन के द्वारा उनकी अनेक बुरी आदते (जैसे मदिरापान, जुआ खेलना आदि) दूर हो जाती हैं, चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओ से श्रमिको तथा उनके आश्रितो के स्वास्थ्य मे वृद्धि होती है, इत्यादि।

इन लाभो से ही प्रेरित होकर टैक्सटाइल लेबर इन्क्वायरी कमेटी ने कहा था —
"कार्यक्षमता का उन्नत स्तर केवल वही हो सकता है, जहाँ श्रमिक शारीरिक दृष्टि मे स्वस्थ तथा मानसिक दृष्टि से सन्तुष्ट हो। इसका तात्पर्य यह है कि केवल वही श्रमिक कुशल हो सकते है जिनके लिय शिक्षा, आवास भोजन तथा वस्त्रादि का उचित प्रबन्ध हो। इसी दृष्टि से हमारे देश मे बम्बई विश्वविद्यालय ने श्रम समस्याओ एव कल्याण कार्य क अध्ययन तथा शिक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध किया। श्री टाटा ने भी बॉम्बे स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स एव सोशल साइन्सेज की स्थापना इसी उद्देश्य से ही की है।

भारत मे श्रम कल्याण कार्यों का विकास—

कल्याण-कार्य की भावना वास्तव मे एक नवीन स्फूर्ति है, जिसने प्रथम महायुद्ध के पश्चात् से अधिक जोर पकडा। प्रथम महायुद्ध युग मे जब निर्मित वस्तुओ की माँग बढी, आवश्यक वस्तुओ के दाम चढ गए। नगरो मे गृह समस्या जटिल हो गई, श्रमिको की कार्य-क्षमता मे कमी आ गई तो ऐसी परिस्थितियो म उद्योगपतियो का ध्यान श्रम-कल्याण की ओर आकर्षित हुआ। सन् १९२२ मे बम्बई मे एक अखिल भारतीय श्रम कल्याण सम्मेलन आयोजित किया गया था, किन्तु प्रस्ताव पास करने के अतिरिक्त इसने कोई भी रचनात्मक कार्य नही किया। सचमुच मे द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त ही सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। सर्व-प्रथम उन कारखानो मे श्रम-कल्याण-कार्य आरम्भ किये गय जिनम युद्ध सम्बन्धी सामग्री का निर्माण किया जाता था। सन् १९४२ मे, केन्द्रीय सरकार न एक श्रम कल्याण सलाहकार (Labour Welfare Adviser) नियुक्त किया और उसकी सहायता के लिये कुछ अन्य अधिकारियो की नियुक्ति भी की गई। सन् १९४४ मे कोयले की

खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के कल्याणार्थ अधिनियम बनाये गये। इस कार्य के लिये एक कल्याण-कोष (Labour Welfare Fund) भी स्थापित किया गया। इन श्रमिकों के लिये टी० बी० अस्पताल में ६ स्थान सुरक्षित कर दिये गये। सन् १९४३ में एक अन्य अधिनियम अभ्रक की खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिये पास किया गया। सन् १९४७ में उनके ही लाभार्थ एक कल्याण कोष स्थापित किया गया। अन्य अधिनियमों द्वारा सरकार ने काम के घण्टे कम कराये एवं शिशुगृह, मकान, जल इत्यादि का प्रबन्ध कराया। उन कारखानों में जहाँ ५०० से अधिक श्रमजीवी कार्य करते हैं, श्रम-कल्याण अधिकारी (Labour Welfare Officer) की नियुक्ति अनिवार्य कर दी गई है।

सन् १९४८-४९ में सरकार ने एक श्रम कल्याण कोष स्थापित किया, जिसमें उसकी ओर से १ लाख रुपये का अनुदान दिया गया। इस कोष से उन संस्थाओं को आर्थिक सहायता प्रदान की जाती थी, जो श्रम-कल्याण-कार्य करती थी।

कारखाना अधिनियम सन् १९४८ के अनुसार ऐसे प्रत्येक कारखाने में जहाँ २५० से अधिक श्रमजीवी कार्य करते हैं, कैंटीन का होना अनिवार्य है।

सन् १९५२-५३ में मध्य-प्रदेश के चान्दा नगर में १० स्त्रियों के लिए एक प्रसूतालय बनाया गया। कोयले की खानों में काम करने वाले श्रमिकों के लिए ७ बहु-उद्देशीय-कल्याण-केन्द्र और विंध्य-प्रदेश में ३ बहु-उद्देशीय कल्याण-केन्द्रों की स्थापना की गई। सन् १९५२-५३ में ही प्रॉवीडेण्ट फण्ड योजना चलाई गई, जो पहले बिजली, लोहा व स्पात, इंजीनियरिंग, कागज, कपड़ा, सीमेंट तथा सिगरेट उद्योगों पर लागू की गई। ३१ जुलाई सन् १९५६ को यह योजना १३ अन्य उद्योगों पर लागू की गई और सितम्बर सन् १९५६ को ७ अतिरिक्त उद्योगों पर लागू की गई, जिनमें दिया-सलाई, चीनी, चाय, प्रेस, सीसा, भारी रसायन तथा तेल सम्मिलित हैं। ३१ दिसम्बर सन् १९५६ को समाचार-पत्रों पर तथा १३ जनवरी सन् १९५७ से खनिज तेलों पर भी यह योजना लागू कर दी गई है। अब यह योजना उन सभी उद्योगों पर लागू होती है जिनमें ५० से अधिक श्रमजीवी कार्य करते हैं और जिन्हें स्थापित हुए ३ वर्ष हो चुके हैं।

सन् १९५३ में केन्द्रीय सरकार ने एक केन्द्रीय-कल्याण मण्डल (Central Welfare Board) स्थापित किया, जो सारे देश में कल्याण-कार्यों का समन्वय करता है। सन् १९५३-५४ में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने श्रम अधिकारियों के प्रशिक्षण के हेतु एक नया विभाग स्थापित किया।

श्रम कल्याण की दिशा में आधुनिक प्रयत्न—

भारतवर्ष में अभी तक जितना भी श्रम-कल्याण किया गया है उसका श्रेय सेवातः तीन संस्थाओं को है :—(I) केन्द्रीय सरकार, (II) राज्य सरकार, (III)

उद्योगपति और (IV) श्रमिक सघ । अब हम इन सस्थाओ द्वारा किये गये कार्य का विशद विवेचन करेंगे ।

(I) केन्द्रीय सरकार द्वारा आयोजित कल्याण कार्य—

युद्धोपरान्त (सन् १६३६-४५) केन्द्रीय सरकार ने श्रमिको की ओर ध्यान दिया। उसके पूर्व सन् १६२८ मे बम्बई मे एक अखिल भारतीय श्रम-हितकारी सम्मेलन के बुलाने के अतिरिक्त कोई महत्वपूर्ण प्रयत्न उसने नही किया था, लेकिन अब उसने कुछ ठोस कदम उठाये है । सन् १६४२ मे एक श्रम हितकारी सलाहकार और उसकी सहायता के अन्य श्रम-हितकारी नियुक्त किए । सन् १६४४ मे कोयला खानो के श्रमिको के लिए एक हितकारी कोष खोला, जिसके द्वारा श्रमिको के मनोरजन, चिकित्सा और शिक्षा का प्रबन्ध किया गया । सन् १६४६ मे अभ्रक खान श्रमिक हितकारी कोष अधिनियम पास कर दिया गया । साथ ही, सरकार ने अन्य कानूनो का निर्माण किया, जिनके आधार पर कारखाना के श्रमिको के लिए मकानो की व्यवस्था, काम के घन्टे, रोशनदान, मशीनो को ढक कर रखना, चिकित्सा, उपहार-गृह और शिशु गृहो की व्यवस्था की गई । देखभाल के लिए निरीक्षक रखे गय । ५०० या इससे अधिक श्रमिक वाले कारखानों मे श्रमिक हितकारी अफसर की नियुक्ति अनिवार्य कर दी गई । सरकार अपने कारखानो मे श्रम हितकारी कोष स्थापित करने के साथ-साथ व्यक्तिगत औद्योगिक कारखानो मे कोष स्थापित कराने के प्रयत्न कर रही है। यह कोष श्रमिको के लिए हितकारी सेवाएँ जुटाने मे व्यय किया जाना है । सन् १६५४ मे स्थायी श्रम समिति ने भी श्रम-हितकारी कोष की स्थापना पर बल दिया । यह कोष केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित करना चाहिए । इसके अन्तर्गत कारखाने, ट्रामवे मोटर बस सेवाये, आन्तरिक स्टीम जलयान, कोयला व अभ्रक की खानो के उपरिरक्त सब खानें, तेल कूप, उद्यान, जन कार्य, सिंचाई तथा विद्युत सम्मिलत किये गए ाचनालय, रेलवे कर्मचारियो तथा बन्दरगाहो पर काम करने वाले श्रमिको के , भी विभिन्न प्रकार की हितकारी सुविधायें कर दी गई हैं ।

योजना कमीशन ने भी श्रम-कल्याण-कार्यों के महत्व को भली भाँति समझा है, अतः उन्होने पच-वर्षीय याजना मे इन कार्यों के लिए ७ करोड रुपया व्यय करने का निश्चय किया था । द्वितीय आयोजन मे केवल श्रमिको के कल्याणार्थ २६ करोड रुपये की व्यवस्था की गई है । प्रथम पन्च-वर्षीय योजना काल मे देश मे १२ लाख घर बनवाये गये । युद्धोतर काल मे सरकार ने श्रमिको के लिये सहायता प्राप्त औद्योगिक गृह-निर्माण योजना के अन्तर्गत राज्य सरकारो, सहकारी गृह निर्माण समितियो, उद्योगपतियो तथा गृह निर्माण बोर्डो को आर्थिक सहायता देकर गृह बनवाये । प्रथम आयोजन काल मे कुल ३८५ करोड रुपया गृह निर्माण पर व्यय किया गया और द्वितीय आयोजन म १२० करोड की व्यवस्था की गई है। उद्यानो तथा अभ्रक व

२४

कोयले की खानो मे काम करने वाले श्रमिको के लिय घर बनवाय जा रहे हैं । य घर श्रम मत्रालय के अन्तगत बन रह है । इसी प्रकार अन्य केन्द्रीय तथा राज्य मन्त्रालय अपने अपने विभागा मे काय करने वाल श्रमिको के लिए घर बनवाने की योजनाय चला रहे है । द्वितीय आयोजन काल मे देश मे कुल १६ लाख घर बनवाय जायेंगे ।

(II) राज्य सरकारो द्वारा किये श्रम कल्याण काय—

केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त राज्य सरकारा ने भी श्रमिको के कल्याण के लिए बहुत कुछ किया है । इस दिशा म काय का श्रीगणश तो प्रथम विश्व युद्ध बाद ही हो गया था और सन १९३७ म भी काग्रसी सरकारो न इन कार्यों के प्रति बडी रुचि दिखाई थी किन्तु कोई सराहनीय काय नही हो सका । हा युद्धोत्तर काल म अवश्य प्रान्तीय सरकारो का ध्यान इस ओर गया और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तो राज्य सरकारो न इस दिशा मे बडा प्रशसनीय काय किया है । अब हम भारत के कुछ औद्योगिक राज्यो मे होने वाले श्रम-कल्याण कार्यो पर प्रकाश डालगे ।

बम्बई राज्य—बम्बइ राज्य मे श्रम कल्याण के लिये सबसे पहले सन १९३९ ४० के बजट मे १ २० ००० रु० का आयोजन किया गया था जिससे कल्याण केन्द्र स्थापित किये गये । सन १९४९ ५० के बजट मे इसी काय के लिये १० ६८ ०८३ रु० स्वीकार किये गये । सन १९५१ ५२ मे इस राज्य मे ५४ कल्याण केन्द्र थे—५ क श्रेणी के ११ ख श्रेणी के ३६ ग श्रेणी के और २ घ श्रेणी के । ये चार श्रेणिया सुविधाओ के आधार पर बनाई गई है । क श्रेणी के कल्याण केन्द्रो म निम्न सुविधाय प्रदान की जाती है पुरुषो के लिए मर्दानी तथा भीतरी खेल स्त्रियो की सिलाई तथा कढाई बच्चो के लिए नसरी स्कूल स्त्री-पुरुषो के लिए अलग अलग स्नानागार औषधालय पुस्तकालय वाचनालय तथा माह मे १ बार फिल्म दिखाने का प्रबन्ध । अन्य श्रेणी के केन्द्रो म सुविधाय कम होती है । बम्बई नगर मे १८ केन्द्र है शोलापुर और अहमदाबाद मे ६ ६ केन्द्र है । सन १९५३ ५४ मे बम्बई राज्य ने श्रम कल्याण कोष अधिनियम पास कर दिया । श्रम कल्याण के काय सचालन के लिए १४ सदस्यो की एक सभा बनाई गइ । सन् १९५७ के बजट मे ३८ ७८ लाख रुपये का अनुदान देना स्वीकार किया गया जिसमे से २७ ९७ लाख रुपये औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए दिए गए । एक सराहनीय काय बम्बई राज्य ने यह किया है कि श्रमिको मे से ही नेताओ का निर्माण किया जाये और इसके लिए उन्ह बम्बई अहमदाबाद तथा शोलापुर मे शिक्षा दी जाती है । इसी वष मे राज्य बीमा योजना के अन्तगत ५ २७ ४१७ श्रमिको को सामाजिक सुरक्षा तथा स्वास्थ्य बीमा इत्यादि की सुविधा प्रदान की गई । श्रम कल्याण कार्यों द्वारा इस प्रदेश के श्रमिको को काफी लाभ पहुँचा है और उनकी क्षमता मे यथेष्ठ वृद्धि हुई है ।

उत्तर-प्रदेश—इस प्रदेश मे सन् १९३७ मे प्रथम बार काग्रस मत्रिमडल की स्थापना हुई तथा कानपुर मे ४ कल्याण केन्द्र स्थापित किय गये । सन् १९४७ के बाद

इस दिशा मे सराहनीय प्रगति हुई है। सन् १९५५ मे इस राज्य मे श्रम-कल्याण केन्द्रो की सख्या ४४ थी। सुविधाओ के विचार से उनकी ३ श्रेणियाँ की गई है—अ, ब और स। प्रथम श्रेणी के केन्द्रो मे एक एलोपैथी का चिकित्सालय, पुस्तकालय व वाचनालय, स्त्रियो के लिये सिलाई व कढाई की कक्षाय, भीतरी और बाहरी खेल सगीत, रेडियो, प्रसूति-गृह इत्यादि की व्यवस्था होनी है। द्वितीय श्रेणी के केन्द्रो मे भी लगभग यही सुविधाये होती हैं। यहाँ होम्योपैथी का चिकित्सालय होता है। तृतीय श्रेणी के केन्द्रो मे पुस्तकालय व वाचनालय, खेलकूद तथा रेडियो इत्यादि होते हैं। श्रम-हितकारी केन्द्रो पर मुफ्त मे सिनेमा भी दिखाये जाते हैं। कभी-कभी श्रमिको का कार्यक्रम अखिल भारतीय रेडियो लखनऊ व इलाहाबाद पर भी होता है। टूर्नामेन्ट व दगल आयोजित किये जाते हैं, जिनमे विजेता श्रमिको को पुरस्कार व प्रमाण-पत्र देकर प्रोत्साहित किया जाता है। चर्खा कक्षायें, प्रौढ शिक्षा कक्षाये तथा स्त्रियो के लिये व्यावसायिक शिक्षा की कक्षाये भी इन केन्द्रो द्वारा चलाई जाती है।

सन् १९५४ मे कानपुर मे श्रमिको के हितार्थ एक टी० बी० का अस्पताल खोला गया है। इसके अतिरिक्त चिकित्सको के एक सचल दल का भी निर्माण किया गया है। जुलाई सन् १९५४ मे केन्द्रीय सामाजिक हितकारी बोर्ड के आधार पर U P Social Welfare State Advisory Board की भी स्थापना कर दी गई है। यही नहीं, श्रमिको के रहने के लिए हजारो घरो का भी निर्माण किया गया है। गृह निर्माण कार्य को उत्तर-प्रदेश म तीन श्रेणियो मे विभक्त किया गया है। प्रथम श्रेणी के श्रमिको के लिए कानपुर तथा लखनऊ मे क्रमश २,२१६ व ५६० घर सन् १९५५-५६ मे बने, जो श्रमिको को भी दिए गए है। द्वितीय श्रेणी मे कानपुर मे २,७५० गृहो का निर्माण किया गया है। तृतीय श्रेणी म कानपुर, आगरा, फिरोजाबाद, इलाहाबाद, मिर्जापुर, सहारनपुर तथा बनारस मे ७,४०० मकान बनाने की योजना है, जिनमे से पाँच हजार घरो का निर्माण हो चुका है। श्रमिक-राज्य-बीमा योजना, जो सन् १९५० म कानपुर मे लागू की गई थी, अब उस नगर के लाखो श्रमिको को लाभ पहुचा रही है। सन् १९५५-५६ मे आगरा, लखनऊ तथा सहारनपुर मे २० हजार श्रमिको को भी इसके अन्तर्गत ले लिया गया है। स्त्रियो की देखभाल के लिय एक महिला अधिकारी (Women Labour Welfare Superintendent) की नियुक्ति की गई है। उत्तर-प्रदेश की द्वितीय पच वर्षीय योजना के अन्तर्गत २५३ १ करोड रुपय की निर्धारित धन राशि म से श्रम-कल्याण पर १४२ ५ करोड रुपये व्यय किये जायगे।

पश्चिमी बगाल—सन् १९४० मे बगाल राज्य मे १० श्रम कल्याण केन्द्र खोले गये, जिनकी सख्या बढते-बढते सन् १९४५ मे ४१ हो गई। विभाजन के बाद इनकी सख्या ३० रह गई। इन केन्द्रो पर भी चिकित्सा, मनोरजन, खेल-कूद, शिक्षा और सिलाई आदि की सुविधायें उपलब्ध है। लगभग ४५ हजार व्यक्ति प्रतिदिन इन

केन्द्रो पर जाते है तथा लगभग १६,६६४ बच्चे और ६,४४८ प्रौढ प्रात तथा सन्ध्या-कालीन कक्षाओ मे शिक्षा पाते है। कलकत्ता, हावडा तथा सीरामपुर मे श्रमिको के लिये क्वार्टर बनवाये जा रहे है। राज्य म इस समय १५ चिकित्सालय श्रमिको के लिये कार्य कर रह है। चाय के बगीचो मे काम करने वाले श्रमिको के लिये केन्द्रीय चाय बोर्ड ने सन् १६५५-५६ मे एक लाख रुपया कल्याण कार्यो के लिये दिया था। इससे मुख्यत स्त्रियो तथा बच्चो का कल्याण होगा। सन १६५७ म पुखरियाबाग तथा बाग डागरा मे कल्याण केन्द्र और खोले गए है, जूट मिलो के श्रमिको की आर्थिक तथा सामाजिक दशा मे काफी सुधार हो गया और उनकी कार्यक्षमता म भी वृद्धि हुई है।

अन्य राज्य—भारत के अन्य राज्यो मे भी श्रम-कल्याण केन्द्र स्थापित किये गये है। पजाब के नगरो (अमृतसर, लुधियाना, अम्बाला, बटाला, जालन्धर तथा अब्दुल्ला-पुर) मे इनकी स्थापना हुई है। मध्य-प्रदेश म हिंगनघाट, जबलपुर, ग्वालियर, उज्जैन, इन्दौर, रतलाम मे—मद्रास मे नीलगिरि, कोयम्बटूर तथा करियार रोड (उडीसा), राजस्थान मे गगानगर, जोधपुर और कृष्णगढ म भी केन्द्र स्थापित किय गय है।

इसमे कोई सन्देह नही कि श्रम कल्याण कार्यो की ओर केन्द्रीय व राज्य सरकारा का ध्यान बढता ही जा रहा है। भारत का प्रत्येक राज्य अपने को कल्याणकारी राज्य (\\ elfare S a e) कहता है, किन्तु समस्या की गुरुता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस दिशा मे अभी बहुत कुछ करना शेष है।

(III) उद्योगपतियो द्वारा कल्याण काय—

लम्बे अरसे की उदासीनता के बाद उद्योगपतियो ने श्रमिको के प्रति कुछ विशेष जागरुकता दिखलाइ है, लेकिन उनके श्रम कल्याणकारी प्रयत्न अधिकाश म श्रमिको के हित के प्रति दया भावना पर आधारित हैं। जहाँ तक उद्योगपतियो के दृष्टि कोण का प्रश्न है, वे अब तक कल्याण-काय को श्रमजीवियो को फसाने के लिये एक 'मृग मारीचिका व जाल के रूप म उपयोग करते रहते ह। इन कार्यो को करते हुए वे एक प्रकार से श्रमिका के ऊपर मानो अहसान सा करते हैं। यद्यपि अधिकाश मे उद्योग-पति आज भी बड अनुदार हैं और व कल्याण कार्यो मे होने वाल व्यय को आर्थिक लागत नही मानते, किन्तु कुछ उद्योगपति उदार व प्रगतिशील भी है, जो इस व्यय को विनियोग समझ कर करत है, जो भविष्य मे उनकी बढी हुई उत्पादन क्षमता क रूप मे उन्ह पुनः मिल जाता है। अब हम ऐसे ही उद्योगपतियो द्वारा किए हुय कल्याण काय की झाँकी करगे।

सूती वस्त्र मिल उद्योग—

बम्बई मे सूती मिलो मे चिकित्सालय जलपानगृह स्थापित किये गय है। कुछ मिलो मे आधुनिकतम अस्पताल भी हैं। इनके अतिरिक्त बाहरी भीतर खेलो की सुविधा, सहकारी समितियाँ, बाल एव प्रौढ शिक्षालय, प्राबीडन्ट फण्ड की योजना आदि सुविधाओ की व्यवस्था भी देश के लगभग सभी मिलो म की गई है। इस दृष्टि से

नागपुर का एम्प्रेस मिल, दिल्ली का देहली क्लॉथ एण्ड जनरल मिल्स व बिडला कॉटन मिल्स, ग्वालियर का जीवाजी राव कॉटन मिल्स, मद्रास के बकिंघम एण्ड कर्नाटक मिल्स, बगलौर का बगलौर बुलियन कॉटन एण्ड सिल्क मिल्स तथा मदुरा मिल्स कम्पनी न अत्यन्त सराहनीय कार्य किये है।

जूट-उद्योग—

जूट उद्योग श्रम हितकारी कार्यों को करने वाली एक मात्र सस्था भारतीय जूट मिल सघ है, जिसने हजारीबाग, कनकीनाडा, मीरामपुर, टीटागढ और भद्रेश्वर मे श्रम-हितकारी केन्द्रो की स्थापना की है। इन केन्द्रो पर बाहरी-भीतरी खेल-कूदो की व्यवस्था की जाती है। सघ की ओर से पॉच प्राथमिक पाठशालायें भी चल रही है। जूट मिलो ने व्यक्तिगत रूप मे भी हितकारी कार्यो मे योग दिया है। सभी जूट मिलो मे एक चिकित्सालय है। सात मिलो मे प्रसूताओ के लिये क्लिनिक है। ५१ मिलो मे शिशुगृह एव ४५ जूट मिलो मे जलपान गृह खोले गये है।

ऊनी मिलो मे बडे कारखानो मे सभी उत्तम व्यवस्थायें उपलब्ध है और छोटी मिलों मे न्यूनतम कानूनी सुविधाओ का प्रबन्ध है।

इजीनियरिंग उद्योग मे १,००० या इससे अधिक श्रमिक वाले सभी कारखानो मे चिकित्सालय हैं। जहाँ-जहाँ स्त्री श्रमिक है वहाँ शिशु गृह भी बने है। जलपान-गृह तो सभी कारखानो मे मिलेंगे। १०० से ऊपर श्रमिक वाले कारखानो मे प्रॉवीडेण्ट फण्ड योजना लागू है। टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी जमशेदपुर विशेष उल्लेखनीय है। इसमे ४०० पलङ्ग वाला अस्पताल, प्रसूतागृह एव ६ प्रसूति क्लिनिक है। कम्पनी की ओर से ३ हाईस्कूल, १० मिडिल स्कूल और २५ प्राथमिक स्कूल खोले गये है। २ बडे जलपान-गृह है। विशाल क्रीडा-स्थल, मुफ्त सिनेमा, सहकारी उपभोक्ता भण्डार व डाकखाने आदि की आदर्श व्यवस्था है। अन्य कारखानो मे भी इसी प्रकार व्यवस्था करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

कोयला तथा अभ्रक की खानो मे श्रमिक हितकारी कोष कानून द्वारा बनाये जा चुके है, जिनके अन्तर्गत अनेक श्रम हितकारी कार्य किय जा रहे है। कोलार की सोना खानो मे भी श्रम हितकारी कार्य हो रहे है। आसाम तथा पश्चिमी बगाल के अधिकाश बडे चाय उद्योगो मे बड-बडे अस्पताल बने है। इनमे अभी जो व्यवस्थायें की गई है, वे अत्यन्त अपर्याप्त है। इसी प्रकार की न्यूनाधिक व्यवस्थायें अन्य उद्योगो मे भी की गई हैं, परन्तु श्रमिको की आवश्यकताओ को देखते हुए ये अत्यन्त अपर्याप्त है।

(IV) श्रम-सघो द्वारा किये हुये कल्याण-कार्य—

भारतीय श्रम सघो की शक्ति अभी तक अधिकाशत. अपने वेतन तथा काम करने की दशाओ के सम्बन्ध मे उद्योगपतियो से सघर्ष करने मे ही लगी रही, अतएव कल्याण कार्य की दिशा मे रचनात्मक कार्य करने के लिए उन्हे कम सुअवसर मिला। यही नही, दयनीय आर्थिक परिस्थितियो के कारण भी वे इस दिशा मे कुछ करने मे

असमर्थ रहे। जब श्रमिक स्वय अपना पेट नही भर सकता तो उसके सघ किस प्रकार सम्पन्न हो सकते है ? कल्याण-कार्य की व्यवस्था के लिए काफी धन की आवश्यकता पडती है। फिर भी कुछ श्रम-सघो ने इस दिशा मे अनुकरणीय कार्य किये है, जिनमे से अहमदाबाद सूती वस्त्र मिल श्रम-सघ, मजदूर-सभा कानपुर एव मिल मजदूर सघ इन्दौर के नाम उल्लेखनीय है।

अहमदाबाद टैक्सटायल श्रम-सघ—

इस सघ की लगभग ७५% आय कल्याण-कार्यो पर ही व्यय होती है। इस सघ के तत्त्वावधान मे २५ ऐसे केन्द्र स्थापित किये गये है, जहाँ श्रमिक एकत्रित होकर सास्कृतिक व सामाजिक कार्यो मे भाग लेते है। प्रत्येक केन्द्र मे एक पुस्तकालय तथा वाचनालय है। इसके अतिरिक्त यह ७५ सहायता-अनुदान प्राप्त वाचनालयो एव सचल पुस्तकालयो का भी सचालन करता है। अहमदाबाद की प्रमुख श्रम बस्तियो मे क्रीडास्थल भी सघ की ओर से स्थापित किये गये है। इसके अन्तर्गत श्रम-सदस्यो की चिकित्सा के लिए एक एलोपैथिक, एक होमियोपैथिक तथा एक आयुर्वेदिक औषधालय है। सघ द्वारा सगठित ९ शिक्षा सस्थायें भी नगर मे चल रही है, जिनमे से ६ स्कूल, २ अध्ययन भवन (Study Homes) तथा एक बालिकाओ के लिए छात्रावास है। प्रति वर्ष श्रमिको के बच्चो को सहायता देकर उन्हे उच्च अध्ययन के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। सघ द्वारा सगठित चार व्यावसायिक प्रशिक्षणशालाएँ भी हैं। सन् १९५२ मे इस सघ ने एक बैंक तथा एक सहकारी उपभोक्ता भण्डार भी खोला। इस विवरण से स्पष्ट है कि अहमदाबाद श्रम-सघ ने कल्याण-कार्य की दिशा मे सराहनीय कार्य किया है।

कानपुर मजदूर-सभा ने भी मजदूरो के कल्याणार्थ पुस्तकालय, वाचनालय तथा चिकित्सालय की स्थापना की है। **इन्दौर मिल मजदूर सघ** ने श्रम कल्याण केन्द्र की स्थापना की है। इस केन्द्र की तीन शाखाये है—बाल मन्दिर, महिला मन्दिर तथा कन्या मन्दिर। बाल मन्दिर मे श्रमिको के बच्चो की शिक्षा, उनके लिए स्वास्थ्य, खेल-कूद व क्रीडास्थल आदि तथा सास्कृतिक विकास के लिए सगीत, नृत्य तथा अभिनय इत्यादि की व्यवस्था की जाती है। कन्या मन्दिर मे श्रमिक बालिकाओ की प्रारम्भिक शिक्षा, खेल-कूद व स्वास्थ्य, सिलाई-कढाई तथा अन्य गृह-विज्ञान सम्बन्धी बातो के पढाये जाने, आदि की व्यवस्था है। महिला मन्दिर मे महिलाओ के हेतु प्रौढ-शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा तथा स्वास्थ्य सुधार इत्यादि की व्यवस्था की गई है।

उपर्युक्त श्रम-सघो के अतिरिक्त देश के **रेल कर्मचारी सघ** भी अपने सदस्यो के लिए कल्याण-कार्य की व्यवस्था करते हैं—जैसे, क्लब खोलना, सहकारी समितियो की स्थापना करना, मुकद्दमो की पैरवी करना इत्यादि। उत्तर-प्रदेश मे भारतीय श्रम सघ (Indian Federation of Labour) ने अनेक श्रम कल्याण-केन्द्रो की

स्थापना की है। आसाम के चाय के बगीचों में काम करने वाले श्रमिकों के लिए केन्द्रीय सरकार की सहायता से 'अखिल भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस' ने कुछ श्रम-कल्याण-कार्यों का आयोजन किया है। अन्त में, हम यह कह सकते हैं कि अब श्रमिक वर्ग काफी जागरूक हो गया है और वह स्वयं संघीय शक्ति से अपने पैरों पर खड़ा होने की चेष्टा कर रहा है, किन्तु अभी तक श्रमिक-संघों ने जो कुछ भी किया है, उसे सन्तोषजनक एवं पर्याप्त नहीं कहा जा सकता।

संयुक्त राष्ट्र-संघ एवं भारत में श्रम-कल्याण-कार्य—

संयुक्त राष्ट्र-संघ विश्व के सभी देशों के श्रमिकों के कार्यों में रुचि रखता है। इस संस्था ने भारत तथा अन्य दक्षिणी पूर्वी एशियाई देशों के श्रमजीवियों के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए सराहनीय कार्य किया है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने भारतीय बालकों के कल्याणार्थ मार्च सन् १९५४ तक लगभग ९० लाख डालर व्यय किया। भारत की प्रथम पंच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत कल्याण-कार्यों का संयुक्त राष्ट्र संघ के मातृ तथा कल्याण-कार्यों से सम्बन्धित एक योजना से समन्वय कर दिया गया था। इस योजना के अन्तर्गत सन् १९५५-५६ में स्वास्थ्य निरीक्षकों तथा दाइयों के प्रशिक्षण तथा उन्हें चिकित्सा सम्बन्धी पर्याप्त सज्जा से सुसज्जित करने में २० लाख डालर व्यय किये गये।

संयुक्त राष्ट्र संघीय अन्तर्राष्ट्रीय बाल सङ्कट कोष (U. N I C E. F. —United Nations International Children's Emergency Fund) भारत में माताओं तथा बच्चों को दूध वितरित करने तथा प्रसूतिगृहों एवं बाल कल्याण-केन्द्रों की स्थापना के उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया था। इसमें से १० लाख डालर दूध-वितरण, मलेरिया-नियन्त्रण एवं दुर्भिक्ष निवारण पर व्यय किया जा चुका है। इस धन का अधिकांश भाग भारतीय गाँवों तथा श्रमिक बस्तियों में व्यय हो रहा है।

इस योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार विभिन्न राज्य सरकारों को कोष-राशि में से उनका भाग देती है। इसमें से पश्चिमी बंगाल को १·२५ लाख डालर, केरल को १ १० लाख डालर, बिहार को २ लाख डालर तथा उत्तर-प्रदेश को भी २ लाख डालर दिये जा चुके हैं। ये राज्य सरकारें पंच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत कल्याणकारी कार्यों की अपनी योजनाओं पर इस धन का उपयोग माताओं तथा बच्चों के कल्याण-कार्यों पर कर रही हैं। गाँवों के लिए दाइयों को प्रशिक्षित करके उन्हें सज्जा (Kit) प्रदान करना, योजना का मूल उद्देश्य है। इस सज्जा में वे सभी वस्तुएं सम्मिलित होंगी, जिनकी कि प्रसव के समय आवश्यकता पड़ सकती है। उक्त संस्था ने ऐसी १४,००० सज्जायें विश्व के २७ राष्ट्रों को देने की योजना बनाई है, जिसमें अकेले भारत को ६,००० सज्जायें मिलेंगी। आशा ही नहीं, वरन् पूर्ण विश्वास है कि इन प्रयत्नों से भारतीय श्रमिकों को बड़ा लाभ होगा। इस समय श्रमिक-बस्तियों में मातृ-

मृत्यु तथा बाल-मृत्यु के ऊँचा होने के कारण अपार मानव सहार हो रहा है, अतएव इस योजना के परिणामस्वरूप सहार न होकर मानवीय कल्याण की वृद्धि होगी।

पच-वर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत श्रम कल्याण

(I) प्रथम पच वर्षीय योजना में श्रम-कल्याण—

प्रथम पच वर्षीय योजना मे श्रम कल्याण के लिये ९·३१ करोड रुपये आयोजित किए गये थे। चाय बागानो के श्रमिको के हितार्थ केन्द्रीय चाय मण्डल (Central Tea Board) को ४ लाख रुपये दिये गये थे। ७९,६७९ क्वार्टर बनवाने की योजना स्वीकार की गई थी, जिनमे से १६,१६५ बम्बई मे, २१,७०९ उत्तर-प्रदेश मे, ५,६२९ हैदराबाद मे ५,१८१ मध्य-प्रदेश मे और ३,४४४ मध्य भारत व अन्य राज्यो मे बनाये जाने थे। प्रथम योजना के अन्त तक ४०,००० मकान बन कर तैयार हो चुके थे।

मई सन् १९५४ मे सरकार ने १२८ घरो के निर्माण के लिए १,९७,९५० रुपये का अनुदान दिया था। इसमे से १८,६०० रुपये बम्बई राज्य को दिये गये और इसके अतिरिक्त ३७,८०० रुपये ऋण के रूप मे दिये गए थे। जुलाई सन् १९५४ मे आध्र प्रदेश की चीनी मिल को १०१,०५० रुपये का अनुदान और १,५८ ३४२ रुपये का ऋण दिया गया। इसी योजना के अन्तगत अगस्त सन् १९५४ म केन्द्रीय सरकार न १०,२२९ मकानो के निर्माण के लिए ३,१४,३५,२९७ रुपये की आर्थिक सहायता दी, जिसमे से उत्तर प्रदेश को लगभग २ करोड रुपये मिले थे। निम्न तालिका से यह स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश राज्य मे इस योजना के अन्तर्गत कितने मकानो का निर्माण किया गया —

नगर	मकानो की सख्या
कानपुर	३,४००
आगरा	१,२९६
फिरोजाबाद	१,०००
सहारनपुर	६०४
इलाहाबाद	५०४
बनारस	५००
मिर्जापुर	९६
योग	७४००

बम्बई राज्य को श्रमिको के क्वार्टर बनवाने के हेतु १,०७,४६ ००० रुपये दिये गये थे, जिनसे २,३८८ क्वार्टर बनवाये गये हैं।

प्रथम पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत ३५२ कल्याण केन्द्रो की स्थापना की गई।

(II) द्वितीय पंच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत कल्याण-कार्य—

द्वितीय पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत श्रम कल्याण कार्यों के लिये २६'१६ करोड रु० का आयोजन किया गया था—केन्द्रीय सरकार के लिये १८ करोड रु० व शेष प्रदेशीय सरकारो के लिये। श्रमिको के क्वार्टरो का निर्माण करने के लिये ५० करोड रु० पृथक मे आयोजित थे और चाय बागानो के श्रमिको के लिये ११,००० मकान बनाने के हेतु २ करोड रु० भी उक्त राशियो से अलग थे। 'खान श्रम कल्याण कोष' (Coal Mines Labour Welfare Fund) मे ८ करोड रु० गृह निर्माण पर व्यय किये जाने थे।

श्रमिको का जीवन स्तर ऊँचा करने, एकता और सफाई की ओर उनकी रुचि बढाने के लिये एक नई शिक्षा पद्धति की आवश्यकता है। जुआ खेलने, शराब, ताडी तथा अन्य मादक वस्तुओ की लत छुडाने के लिये फिल्मो द्वारा शिक्षा देना अधिक हितकारी होगा। इस हेतु सन् १६६०-६१ तक १०० फिल्म (Audio Visual Films) तैयार होने की आशा है। कारखानो के श्रम कल्याण विभाग और राजकीय श्रम कल्याण केन्द्र ऐसे फिल्मो के दिखाने का प्रबन्ध करते हैं।

सन् १६५६ मे औद्योगिक शिक्षा के लिये १०,३०० व्यक्तियो को सुविधायें प्राप्त थी। द्वितीय योजना अवधि मे १६,७०० व्यक्तियो के प्रशिक्षण के लिये अधिक प्रबन्ध किया गया। प्रशिक्षण की अवधि भी बढा दी गई है। काम सीखने की 'शिष्यत्व योजना' (Apprenticeship Scheme) चलाई गई। इसके अन्तर्गत सन् १६६०-६१ तक लगभग ५,००० व्यक्ति भरती किय गये। यह ट्रेनिंग उद्योगो की आवश्यकतानुसार २ से ५ वर्ष तक चलेगी। ट्रेन्ड व्यक्तियो द्वारा कारखानो मे कार्य करने पर उत्पादन स्वभावत: बढ जावेगा।

द्वितीय पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत १,३२० श्रम कल्याण केन्द्र खोले गये।

(III) तृतीय पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत—

तृतीय पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत मैंगेनीज एव लोहा खानो के लिये विशेष कोष स्थापित किये गये हैं। ऐसे ही कोष कोयला व अभ्रक खानो के लिये पहले ही सगठित किये जा चुके है। ये श्रमिको के कल्याण सम्बन्धी कार्य करने के लिये धन की व्यवस्था करते है।

उपसंहार—

उक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि भारत मे श्रमिको की कार्यक्षमता मे वृद्धि करने तथा उनके लिये कल्याण कार्यो की व्यवस्था के बहुत कुछ प्रयत्न किये जा रहे हैं। किन्तु समस्या की गम्भीरता व गुरुता को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि इस दिशा मे अभी तक जो कुछ भी किया गया है वह बहुत ही थोडा है। सच बात तो यह है कि विभिन्न श्रमिक सनियमो मे दी गई कल्याण सुविधाओ का न्यूनतम भी आज श्रमिको को अधिकाश मे नही मिल पाता। अतः सर्व प्रथम तो पूर्व-स्थित सनियम

को ही सच्चे अर्थ मे कार्यान्वित करने की आवश्यकता है। दूसरे, श्रमिकों की समस्या को सुलझाने के लिए यह भी नितान्त आवश्यक है कि एक मानवीय दृष्टिकोण उत्पन्न किया जाय। तभी भारतीय श्रमिक विश्व के अन्य देशों के श्रमिकों के समान निपुण व बलिष्ट होकर देश का आर्थिक उत्थान कर सकेंगे।

STANDARD QUESTIONS

1 Define the scope of 'Labour Welfare Work' and discuss its importance in India
2 State briefly how welfare work has developed in India Describe briefly the welfare activities undertaken by the various agencies in India for labouring classes
3 How far has the United Nations' Organisation promoted labour welfare in India ?
4. Briefly summarize the welfare work done by the trade union organisations in India
5. Please try a short note on labour welfare under the First and Second Five Year Plans in India

---

अध्याय ३२

सामाजिक सुरक्षा
(Social Security)

सामाजिक सुरक्षा क्या है ?—

सामाजिक सुरक्षा वर्तमान युग की एक नवीन विचारधारा है। आज कोई भी स्वतन्त्र देश अपनी उन्नति की किसी भी योजना मे सामाजिक सुरक्षा का समावेश किये बिना नही रह सकता, क्योंकि इसके बिना बेकारी, बीमारी एव रोग का उन्मूलन सम्भव नही है। वैसे तो सामाजिक सुरक्षा का आयोजन मूलतः औद्योगिक श्रम-जीवियो के

लिए किया जाता है, किन्तु अब सर्वमंगलकारी राज्य (Welfare State) का निर्माण करने के उद्देश्य से सामाजिक सुरक्षा मे केवल श्रमजीवियो को ही नही, वरन् समाज के सभी वर्गों को सम्मिलित किया जाता है, जिससे सम्पूर्ण समाज को लाभ हो सके।

साधारण शब्दो मे, सामाजिक सुरक्षा से आशय ऐसी पद्धतियुक्त योजना से है जिसके द्वारा 'आवश्यकता', बीमारी 'अज्ञानता' 'फिजूलखर्ची' और 'बेकारी' इन पाँचो दानवो पर विजय मिले।[1] श्री जी० डी० एच० कोल के विचारानुसार सामाजिक सुरक्षा से तात्पर्य है कि सरकार जो समाज का प्रतीक एव प्रतिनिधि है, अपने समस्त नागरिको के लिए एक न्यूनतम जीवन-स्तर स्थापित करने के लिए उत्तरदायी है। यह स्तर इस आधार पर हो कि उसमे जन्म से लेकर मृत्यु तक किसी व्यक्ति के जीवन की सब मुख्य आवश्यकतायें (Contingencies) सम्मिलित हो।[2] सामाजिक सुरक्षा का क्षेत्र सचमुच बड़ा व्यापक है।[3] वास्तव मे आवश्यकता है 'गर्भ से मरण तक' (From womb to the tomb) सुरक्षा की। गर्भ मे बच्चे को प्रसूति सम्बन्धी सुविधाये और गर्भ से बाहर आने पर उसके पालन-पोषण एव भोजन की सुविधा होनी चाहिये, इसके बाद शिक्षण की सुविधा, फिर काम आदि की। इसमे उस समय की सुरक्षा भी सम्मिलित होती है जबकि मनुष्य काम पर न लगा हो अथवा वह बेकार या विस्थापित हो।

अन्य देशो मे सामाजिक सुरक्षा की प्रगति —

सामाजिक सुरक्षा की विचारधारा का विकास सर्वप्रथम जर्मनी मे सन् १८८१ मे हुआ, जबकि इस विचार चक्र को विलियम प्रथम ने प्रारम्भ किया तथा प्रिंस ऑफ विस्मार्क ने प्रोत्साहन दिया। फलस्वरूप सन् १८८३ मे बीमारी के बीमे का अधिनियम (Sickness Insurance Act) बना तथा क्रमश श्रमजीवी क्षतिपूर्ति, वृद्धावस्था एव अपग आक्षेप का आयोजन करने के लिये सन् १८८४, १८८६ और सन् १९२५ मे अधिनियम बनाये गये। इसके उपरान्त इस विचारधारा का विकास अन्य उन्नत एव औद्योगिक राष्ट्रो (जैसे, इगलैण्ड, अमेरिका, रूस आदि) मे भी हुआ। वहाँ औद्यो-

---

1 "Social Security in simple terms means the elimination of the five evil giants, viz, want, disease, ignorance, squalor and idleness"

2 'The idea of social security put broadly is that the State shall make itself responsible for ensuring a minimun standard of material welfare to all its citizens on a basis wide enough to cover all the main contingencies of life"—G D H Cole

3 "Sir William Beveridge in his famous report on Social Security emphasizes the wide scope of 'social security' measures when he says 'What is only one of the five giants on the road of reconstruction and in some way the easiest to attack."

गिक श्रमिक के लिये सुविधाओं का पर्याप्त आयोजन है, विशेषकर इंगलैण्ड मे तो बीवरिज योजना के अन्तर्गत मनुष्य के जन्म से मृत्यु तक उसकी सुरक्षा का भार सरकार ने स्वय अपने कन्धो पर ले लिया है। बीवरिज योजना सामाजिक सुरक्षा की एक पूर्ण तथा आदर्श योजना है। इसमे सम्पूर्ण जनता के लिए प्रसूति सुविधाओं से लेकर शव सस्कार की सहायता तक का आयोजन किया गया है। यह समाज के प्रत्येक मनुष्य, स्त्री और बच्चे के लिए आमदनी की सुरक्षा के हेतु एक योजना है और जीवन की सभी घटनाओं—जन्म, बचपन, शादी, बुढापा, मृत्यु बेकारी, दुर्घटना, बीमारी आदि से सम्बन्धित है। इस योजना के अनुसार प्रत्येक मनुष्य देता है और प्रत्येक मनुष्य प्राप्त भी करता है।

भारत मे सामाजिक सुरक्षा

भारत मे सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता—

भारत म सामाजिक सुरक्षा की महिमा के सम्बन्ध मे जो कुछ भी कहा जाय, कम ही होगा। भारतीय श्रमिकों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। औद्योगीकरण के सभी खतरो का उन्हें सामना करना पड रहा है, जैसे—बीमारी, बेकारी आदि। हमारे श्रमजीवियो मे सगठन की भी बहुत कमी है, व अशिक्षित, अज्ञानी एव दरिद्र है। अपने पैरो पर खडा होना उन्हें नही आता। इस दृष्टि मे अन्य उद्योगशील देशो की अपेक्षा भारतीय श्रमिको की दशा अधिक खराब है अतएव सामाजिक सुरक्षा का आयोजन अनिवार्य हो जाता है।

भारत में अभी तक क्या हुआ ?—

भारत मे स्वास्थ्य बीमे की आवश्यकता सर्वप्रथम सन् १९२७ मे अनुभव की गई, जबकि लगभग २ वर्ष पूर्व सन् १९२५ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-कार्यालय मे औद्योगिक श्रमिको की सामाजिक सुरक्षा के सम्बन्ध मे प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था, किन्तु फिर भी कोई वास्तविक कार्यवाही उस समय नही की गई। तत्पश्चात् सन १९३०-३१ मे औद्योगिक श्रमिको के लिए सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था पर रायल कमीशन ऑफ लेबर ने जोर दिया एव स्वास्थ्य बीमे पर एक योजना की रूपरेखा भी तैयार की। दुर्भाग्यवश उस समय वह योजना ताक मे रख दी गई। सन १९४० मे अनिवार्य चन्दे द्वारा बीमारी आरोप की योजना बनाने का निश्चय किया गया। तृतीय श्रम-मत्री सम्मेलन ने इस योजना के सम्बन्ध मे यह निश्चय किया कि वस्त्र व्यवसाय तथा इजीनियरिंग उद्योग के श्रमिकों को बीमारी सम्बन्धी बीमे की सुविधाये दी जायें। इस निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए बी० पी० अदारकर की नियुक्ति की गई। प्रोफेसर अदारकर ने अपनी रिपोर्ट सन १९४४ मे प्रस्तुत की, जिसके आधार पर 'कर्मचारी राजकीय बीमा सन्नियम' बनाया गया, जो सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने के लिये एक ठोस कदम है।

सामाजिक सुरक्षा के लिये वर्तमान समय मे निम्नलिखित आयोजन है :—

(I) श्रमिक क्षति-पूर्ति अधिनियम ।

(II) कोल माइन्स प्रॉवीडेन्ट फण्ड एण्ड बोनस स्कीम एक्ट ।

(III) मातृत्व लाभ अधिनियम ।

(IV) प्रॉवीडेन्ट फण्ड एक्ट सन् १९५२ ।

(V) श्रमिक राज्य बीमा अधिनियम ।

(I) श्रमिक क्षति पूर्ति अधिनियम सन् १९२३—

यह अधिनियम (संशोधनो सहित) अब जम्मू व काश्मीर राज्य को छोडकर सारे भारत मे लागू होता है । जिन कर्मचारियो का वेतन ४००) मासिक से अधिक है अथवा जो क्लर्क है, उन पर यह अधिनियम लागू नही होता । वास्तव मे रेल, कारखाने, खाने, नाविक व समुद्र पर काम करने वाले कुछ अन्य श्रमिको, डाक या तार, नहर, चाय, रबड, कहवा तथा सिनकोना के उद्योगो म काम करने वाले श्रमिको, विद्युत, स्टेशनो, गोदामो, वेतन पाने वाले, मोटर ड्राइवरो आदि तथा ऐसे सभी कारखाने जहाँ १० या इससे अधिक श्रमिक काम करते है तथा शक्ति का भी प्रयोग होता है एव ऐसे कारखाना म जहाँ शक्ति का प्रयोग तो नही होता, किन्तु ५० या अधिक श्रमिक काम करते है, यह अधिनियम लागू होता है । राज्य सरकारें इसे किसी भी क्षेत्र के श्रमिको पर, यदि वे इनके काम का खतरनाक समझता है, लागू कर सकती है । मद्रास एव उत्तर-प्रदेश सरकारो ने इस मशीन से चलने वाली गाडियो, माल लादने तथा उतारने वाले श्रमिको और विद्युत प्रयोग करने वाले सभी कारखानो पर लागू कर दिया है । जो श्रमिक राज्य बीमा अधिनियम या श्रमिको के राज्य बीमा कॉरपोरेशन की ओर से मुआविजा पाने का अधिकारी है, वह इस अधिनियम का लाभ नही उठा सकेगा ।

यदि श्रमिको को काम करते समय किसी दुर्घटना से कोई चोट लग जाये तो मालिक द्वारा हर्जाना दिया जायगा । यदि चोट ७ दिन से पहले ठीक होने वाली हो या जिनमे श्रमिक का दोष हो और मृत्यु न होने पावे तो मालिक कोई हर्जाना देने के लिए बाध्य नही । अधिनियम की सूची न० ३ म दिया हुआ कोई व्यावसायिक रोग हो जाने पर भी हर्जाना दिलाया जायगा, हर्जाने की मात्रा चोट के प्रकार एव श्रमिक की मासिक मजदूरी पर निर्भर होती है ।

यह अधिनियम बड सन्तोष की वस्तु है । आवश्यकता इस बात की है कि उसे अधिक से अधिक श्रमिको पर लागू किया जाय और हर्जाने की रकम नियमित रूप से दिलाई जाय । इस अधिनियम के आधार पर श्रमिको के हर्जाना सनियम कुछ राज्यो मे भी पास किये गये है ।

(II) कोयला खान प्रॉवीडेन्ट फन्ड योजनायें—

इन योजनाओ के अन्तर्गत श्रमिको को अपनी बेसिक मजदूरी के ६¼% की

दर से चन्दा देना पडता है। इस आशय के लिए बेसिक मजदूरी मे महगाई भत्ता, नगद व वस्तुओ के रूप मे अन्य रियायतें भी सम्मिलित की जाती हैं। सेवायोजको को भी श्रमिको के बराबर चन्दा देना पडता है। यह योजना आन्ध्र प्रदेश, आसाम, बिहार, महाराष्ट्र, म प्र०, उडीसा, राजस्थान व प० बगाल को लागू होती है। फन्ड की कुल राशि अक्टूबर सन् १९६० मे २३ करोड थी।

(III) मातृत्त्व लाभ अधिनियम—

भारत मे एक बडी सख्या मे स्त्रियाँ मजदूरी करती है। प्रसव-काल से पहले और बाद मे विश्राम एव पौष्टिक भोजन न मिलने के कारण उनकी बडी सख्या में मृत्यु होती है। बच्चो की मृत्यु सख्या बढने का कारण भी यही है। मातृत्त्व लाभ की समस्या मानवता एव सामाजिक पहलू से ही नही, अपितु आर्थिक पहलू मे भी महत्त्व-पूर्ण है। इतने पर भी भारत मे अभी तक कोई ऐसा अधिनियम अखिल भारतीय स्तर पर नहीं बनाया गया है जो मातृत्त्व लाभ की सुविधायें प्रदान करता हो। भारत मे अभी तक जो प्रयत्न हुये है वे व्यक्तिगत राज्यो मे ही हुए। सर्व प्रथम बम्बई मे मातृत्त्व लाभ अधिनियम पास हुआ। इसके बाद रायल श्रम कमीशन के सुझावो पर अन्य प्रान्तो ने भी जैसे, मद्रास (सन् १९३४), उत्तर-प्रदेश (सन् १९३८), बगाल (सन् १९३९), पजाब (सन् १९४३), आसाम (सन् १९४४), बिहार (सन् १९४५) ने भी इन अधि-नियमो को बनाया। केन्द्रीय सरकार ने (सन् १९४१ मे) काम करने वाली स्त्रिया के लिये मातृत्त्व लाभ अधिनियम बनाया। अब लगभग सभी राज्यो मे ये अधिनियम बन चुके हैं।

मातृत्त्व लाभ अधिनियमो के अन्तर्गत स्त्रियो को प्रसव के पहले और बाद मे लाभ दिया जाने लगा है। लाभ की दर और समय की अवधि भिन्न भिन्न प्रान्तो मे अलग-अलग है। उदाहरण के लिये, आसाम मे १५० दिन काम करने पर, बिहार और उत्तर-प्रदेश मे ६ महीने काम करने पर, महाराष्ट्र व गुजरात, बगाल, पजाब और मध्य-प्रदेश मे ९ महीने काम करने पर तथा मद्रास मे २४० दिन काम करने पर ही कोई स्त्री लाभ प्राप्त कर सकती है। लाभ की दर भी भिन्न भिन्न है। आसाम के चाय उद्योगो मे प्रसव के पहिले १) तथा बाद मे १।) प्रति सप्ताह है, जिसकी कुल धन राशि १४) से अधिक नही होनी चाहिये। बगाल, मद्रास, महाराष्ट्र व गुजरात, बिहार तथा उत्तर-प्रदेश मे न्यूनतम ।।) प्रति दिन है। पजाब में १२ आना प्रति दिन या अनुपातिक दैनिक आय रखी गई है।

रुपये तथा विश्राम के अलावा बोनस और डाक्टरी सहायता के रूप म अन्य लाभ भी स्त्री श्रमिको को दिये जाते हैं। काम करते समय शिशुओ को रखने के लिए शिशु-गृहो की भी व्यवस्था है। उत्तर-प्रदेश का अधिनियम स्त्रियो के गर्भपात होने पर ३ सप्ताह सवैतनिक छुट्टी की आज्ञा देता है।

इन अधिनियमो का पालन कराने के लिए निरीक्षको की नियुक्ति की गई है। मालिको को प्रति वर्ष इन लाभो की रिपोर्ट सरकार को भेजनी पडती है। फिर भी

यह कहना पडेगा कि इन अधिनियमो मे कुछ दोष हैं। मालिको पर ही लाभ देने का उत्तरदायित्व होने से ये लोग इसमे अनियमितता करते है। लाभ का रूप रुपये मे होने मे स्त्रियाँ दूध, औषधि आदि से वंचित रह जाती है। गर्भवती होने का समाचार मिलने पर मालिक स्त्री को अलग कर देते है या कुमारियो को ही नौकरी पर रखते है। बहुत सी स्त्रियो के नाम ही रजिस्टर मे नही लिखते। इन दोषो को दूर करना स्वतन्त्र भारत की चहुँमुखी उन्नति के लिए बहुत आवश्यक है।

प्रसूति सरक्षण के लिये एक समान स्तर निर्धारित करने के उद्देश्य से लोक-सभा मे प्रसूति लाभ अधिनियम (Maternity Benefit Bill), १९६० रखा गया था। यह उन सभी कारखानो, खानो व बागानो को लागू होगा जिन्हे कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम लागू नही होता।

(IV) कर्मचारी प्रॉवीडेन्ट फण्ड—

कर्मचारी प्रॉवीडेन्ट बीमा फन्ड अधिनियम, १९५२, जो पहले मूलतः ६ प्रमुख उद्योगो को लागू होता था, अब ४१ अन्य उद्योगो को भी लागू होता है, जिनमे बागान (आसाम के चाय बागानो को छोडकर), खाने, अखबार, दियासलाई के कारखाने, सडक मोटर यातायात संस्थान आदि मुख्य है। अधिनियम उन्ही कारखानो व संस्थानो को लागू होता है जो कि अनुसूचित उद्योगो मे कार्य-सलग्न है और जिनमे ५० या इससे अधिक कर्मचारी काम करते हैं तथा जो ३ वर्ष से अधिक पुराने हो गये है। जो श्रमिक १ वर्ष तक लगातार काम करते रहे है या एक वर्ष मे कम से कम २४० दिन कार्य किया है और जिनकी मासिक मजदूरी (मँहगाई भत्ता व राशन का नक्द मूल्य सहित) ५०० रु० प्रति माह से अधिक नही है, उनको अनिवार्य रूप से फन्ड मे अपनी बेसिक मजदूरी के ६$\frac{1}{4}$% की दर से चन्दा देना पडता है। सेवायोजक को भी इतनी ही रकम ऐसे श्रमिको के सम्बन्ध मे देनी पडती है। नवम्बर सन् १९६० तक उक्त अधिनियम ८,००० सस्थाओ मे लागू हो रहा था। फन्ड मे चन्दा देने वाले श्रमिको की संख्या २८ लाख थी तथा प्रॉवीडेन्ट फन्ड चन्दो की रकम २५० ३५ करोड रु० थी। ६३'६६ करोड रु० फन्ड से ऋण रूप मे या दावो के भुगतान मे दिया गया। इस प्रकार १८६ ६६ करोड रु० (ब्याज सहित) शेष रहा। एक विशेष रिजर्व फन्ड भी बनाया गया है, जिसमे से मृत्यु व स्थायी असमर्थता की दशा मे लाभ दिया जायेगा।

उक्त अधिनियम को सन् १९६० मे सशोधित किया गया। इस सशोधन के निम्न उद्देश्य थे :—(i) एक्ट को २० या अधिक कर्मचारी रखने वाली छोटी इकाइयो को लागू करना, (ii) १ वर्ष तक सस्थाओ पर एक्ट लागू रखने की अवधि बढाना जबकि न्यूनतम कर्मचारी सख्या १५ तक गिर जाय, (iii) किसी सस्थान की शाखाओ व विभागो को एक ही सस्थान मानना, (iv) श्रमिको के चन्दे की गणना के लिये मौसमी कारखानो मे Retaining allowances को भी सम्मिलित करना,

(v) ५० से कम कर्मचारी रखने वाली सहकारी संस्थानों का मुक्त रखना, और (vi) २० से ५० तक श्रमिक रखने वाले छोटे कारखानों को अधिनियम के दायित्व से मुक्त करना ५ वर्ष तक।

(V) श्रमिकों का राज्य बीमा अधिनियम —

यह अधिनियम भारत के सब राज्यों पर लागू होता है। यह अधिनियम ऐसे स्थायी कारखानों के उन श्रमिकों एवं क्लर्कों पर लागू होता है जिनकी मासिक आय ४००) तक है और जो फैक्टरी एक्ट के अन्तर्गत आते हैं। इसमें लगभग २० लाख औद्योगिक श्रमिकों को लाभ पहुँच रहा है। इसमें राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वे चाहें तो इसे अपने राज्य में औद्योगिक, व्यापारिक कृषि एवं अन्य संस्थाओं पर भी लागू कर सकती हैं। हां इसके लिए उन्हें पहले केन्द्रीय सरकार की मान्यता लेना अनिवार्य होगा। इस अधिनियम के अनुसार ही दिल्ली में कर्मचारी राजकीय बीमा प्रमण्डल (Employee's State Insurance Corporation) की स्थापना सन् १९४८ में की गई।

शासन प्रबन्ध—

यह प्रमण्डल एक शासकीय प्रमण्डल है जिसमें केन्द्रीय एवं राज्य सरकार, नियोक्ता और श्रमिकों के प्रतिनिधि भी होंगे। इसी प्रकार इसमें केन्द्रीय संसद एवं डाक्टर पेशे के प्रतिनिधि होंगे। प्रमण्डल का शासन प्रबन्ध एक स्थायी समिति (Standing Committee) के हाथ में है। इसमें भी मालिकों और श्रमिकों के बराबर-बराबर प्रतिनिधि हैं। औषधोपचार सम्बन्धी सुविधाओं के मामले में सलाह देने के लिए भी एक डाक्टरी परिषद (Medical Benefit Council) बनाई गई है। बड़े अधिकारी वर्ग की नियुक्ति, हिसाब एवं उनकी जांच आदि का अधिकार *केन्द्रीय सरकार को प्राप्त है।*

प्रमण्डल की अर्थ व्यवस्था के हेतु एक कर्मचारी राज्य बीमा फन्ड खोला गया है, जो मालिकों और श्रमिकों के चन्दे से बनेगा तथा इसमें केन्द्रीय एवं राज्य सरकार भी सहायता के रूप में कुछ धन राशि देगी। श्रमिकों एवं मालिकों के चन्दे *की दर उनकी आय के अनुसार निश्चित की गई है। इस हेतु श्रमिकों को उनकी आय* के अनुसार ८ श्रेणियों में बाँटा गया है।

आगोपित व्यक्तियों को सुविधाएं —

सामाजिक बीमा की इस योजना के अन्तर्गत आगोपित व्यक्तियों को पाँच प्रकार की सुविधाएं दी जायँगी —

(१) औषधोचार सम्बन्धी सुविधायें—इस कार्य के लिए उन स्थानों में जहाँ भी यह योजना लागू होगी, आगोप प्रमण्डल द्वारा औषधालयों का आयोजन होगा तथा कुछ चलते-फिरते औषधालय रखे जायगे, जो आगोपित व्यक्तियों के घर जाकर उनकी स्वास्थ्य सम्बन्धी देख भाल करेंगे।

(२) **मातृत्व सम्बन्धी लाभ**—ये सुविधायें स्त्री-श्रमिको को प्रसूत सम्बन्धी बीमारी मे दी जायँगी। ऐसी दशा मे स्त्री श्रमिको को १० आना प्रति दिन की दर से अथवा औषधोपचार सम्बन्धी सुविधाओ की दर से (जो भी दर ऊँची हो) १२ सप्ताह तक प्रसूति लाभ मिलता रहेगा तथा गर्भावस्था मे औषधोपचार सुविधाएँ दी जावेंगी।

(३) **आरोग्यता लाभ**—कारखाने मे काम करते समय होने वाली दुर्घटना की वजह से अथवा उस कारखाने से सम्बन्धित किसी रोग का शिकार हो जाने से यदि कोई श्रमिक काम करने के अयोग्य हो जाता है तो उसे आरोप प्रमण्डल द्वारा श्रमजीवी क्षति-पूर्ति सन्नियम के अनुसार सुविधायें प्रदान की जायगी।

(४) **श्रमिको पर आश्रित व्यक्तियों के लिए लाभ**—यदि किसी कारखाने के आरोपित व्यक्ति की कारखाने मे होने वाली किसी दुर्घटना से मृत्यु हो जाती है तो ऐसी दशा मे उन आश्रितो को (अथवा उसकी विधवा एव बच्चो को) वार्षिक वृत्ति (Annuity) के रूप मे कुछ राशि दी जायगी।

(५) **बीमारी सम्बन्धी लाभ**—इसके अनुसार जिस श्रमिक का बीमा है उसे डाक्टरी प्रमाण-पत्र के आधार पर समय के अनुसार नकद रुपया मिलता है। प्रथम दो दिन तक कुछ नही मिलता और उसके बाद यदि १५ दिन तक रोग चलता रहे तो आर्थिक सहायता मिलनी प्रारम्भ हो जाती है। ३६५ दिन के निरन्तर काल मे अधिक से अधिक ५६ दिन तक यह लाभ मिल सकता है। इस लाभ की दर श्रमिक के दैनिक वेतन का ½ होगी।

इस प्रकार हम देखते है कि यह अधिनियम बड़ा विस्तृत है। ३१ दिसम्बर सन् १९५२ को कानपुर तथा दिल्ली मे इस योजना से लाभान्वित होने वाले श्रमिको की संख्या क्रमश. १,०६,४२२ और ५३,४२४ थी। कानपुर की जन-संख्या के आधार पर श्रमिको के लिए १३ डिस्पेन्सरियाँ इस प्रकार स्थापित की गई है कि प्रत्येक श्रमिक को कोई न कोई डिस्पेन्सरी पास पड़े। इनके अतिरिक्त कानपुर के निकटवर्ती क्षेत्रो के लिए दो चलते-फिरते अस्पताल भी है, जहाँ पर कुशल चिकित्सक कार्य करते हैं। ११ जुलाई सन् १९५४ से नागपुर मे भी योजना कार्यान्वित की गई है। इससे नागपुर मे लगभग २५,००० श्रमिक लाभान्वित होगे। ६ अक्टूबर सन् १९५४ को भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने श्रमिक राज्य बीमा योजना का उद्घाटन बम्बई मे किया। इससे ४½ लाख औद्योगिक श्रमिक लाभ उठावेगे इसी प्रकार मध्य-भारत में इन्दौर, ग्वालियर तथा रतलाम नगरो मे भी औद्योगिक श्रमिको के लिए स्वास्थ्य बीमा योजना १४ अक्टूबर सन् १९५४ से लागू की गई है। उत्तर-प्रदेश मे आगरा, लखनऊ तथा सहारनपुर नगरो मे भी राज्य योजना जनवरी सन् १९५६ मे लागू कर दी गई है। भारत सरकार इस बात के लिए प्रयत्नशील है कि यह योजना शेष भारत पर भी

लागू कर दी जाय। वास्तव में यह योजना एशिया भर में अपने प्रकार की प्रथम है और देश में पूर्ण सामाजिक सुरक्षा प्राप्त करने की दिशा में एक शुभ प्रयत्न है।

कर्मचारी राज्य बीमा योजना की प्रगति—

सन् १९५८-५९ से इस योजना के अन्तर्गत कर्मचारियों को मिलने वाली चिकित्सा सुविधाएँ उनके परिवारों को भी मिलनी शुरू हो गई। सबसे पहले यह निर्णय मैसूर राज्य ने किया। उसके बाद अन्य राज्यों ने भी उसका अनुकरण किया। सभी राज्यों में (गुजरात और दिल्ली के संघ क्षेत्र को छोड़कर) लगभग १५ लाख ७० हजार व्यक्ति इस योजना का लाभ उठा रहे हैं। सन् १९५९-६० के अन्त में कर्मचारियों का अंश दान ४०८ करोड़ रु० और मालिकों का अंशदान ३ १९ करोड़ रु० था। बीमित व्यक्तियों को विभिन्न लाभों के रूप में २ ६८ करोड़ रु० दिया गया बीमारी लाभ २·२२ करोड़, प्रसूति लाभ १३ ५१ लाख रु० २९·८५ लाख रु० असमर्थता लाभ और २·७८ लाख आश्रित लाभ। बीमित कम्पनियों के ४ ८८ लाख परिवारों को आंध्र प्रदेश, आसाम, बिहार, मध्य-प्रदेश, मैसूर, पंजाब, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश और दिल्ली के संघ क्षेत्र में चिकित्सा सम्बन्धी सुविधायें दी जा रही हैं।

भारत में रोग बीमे की योजना—

यहाँ श्री अदारकर की रिपोर्ट पर सन् १९४८ में श्रमिक राजकीय बीमा अधिनियम पास किया गया था, जिसका उद्देश्य अन्य लाभों के अलावा बीमारी और प्रसूति के लिये भी श्रमिकों को कुछ लाभ प्रदान करना था। यह सभी कारखानों को लागू होता है। यह उन सब लोगों पर लागू होती है जो मजदूरी पर किसी कारखाने में काम करते हों और जिनकी आमदनी ४००) से अधिक नहीं है। योजना के प्रशासन के लिये एक कारपोरेशन कायम कर दिया गया है। श्रमिक राजकीय बीमा फण्ड में सवायोजक व सेवायुक्तों के चन्दों और केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों स्थानीय सत्ताओं, व्यक्तियों द्वारा दी गई ग्रांट, दान व भेंट की रकमें शामिल की जाती हैं। केन्द्रीय सरकार कारपोरेशन को प्रथम पाँच वर्षों तक कारपोरेशन के प्रशासन व्ययों के दो-तिहाई के बराबर रकम की वार्षिक ग्रांट देगी। अपना और अपने सेवायुक्त के चन्दे की रकम चुकाने का भार अधिनियम ने सवायोजकों पर डाल दिया है। हाँ, उस अवधि के लिये कोई चन्दा नहीं लिया जायगा, जिसमें कि कोई सेवा नहीं की गई है और न मजदूरी देनी पड़ी है। बीमित व्यक्ति को, आवधिक भुगतान के रूप में, चिकित्सा लाभ पाने का अधिकार होगा, यदि एक उचित रूप से नियुक्त चिकित्सक उसकी बीमारी के लिये प्रमाण पत्र दे दे। बीमारी के लाभ की दैनिक दर उसकी औसत दैनिक मजदूरी के आधे के बराबर है। इस लाभ की अधिकतम अवधि ३६५ दिन में ५६ दिन है। पहले दो दिनों के लिये कोई लाभ नहीं दिया जाता। हाँ, उस दशा में मिल सकता है जबकि श्रमिक १५ दिन के भीतर ही दुबारा बीमार पड़ जाता है।

प्रसूति काल में एक बीमित स्त्री श्रमिक को १२ आने प्रतिदिन की दर से

प्रसूति-लाभ दिया जाता है। प्रसूति लाभ की अवधि १२ हफ्ते है। एक बीमित व्यक्ति को, जिसे रोजगार सम्बन्धी चोट के कारण स्थायी या अस्थाई असमर्थता हो गई है, असमर्थता लाभ पाने के अधिकार है।

एक बीमित व्यक्ति को किसी भी सप्ताह के लिये, जिसम उसने चन्दे दिय है, रोग, प्रसूति या असमर्थता सम्बन्धी लाभ पाने का अधिकार है, चिकित्सा लाभ म निशुल्क चिकित्सा शामिल है, जो कि बीमा डिस्पेन्सरी मे इलाज की सुविधा के रूप मे या बीमा डाक्टर को घर पर जाकर देखने की सुविधा या किसी अस्पताल या अन्य सस्था म भर्ती होकर इलाज कराने की सुविधा के रूप मे हो सकती है। कॉरपोरेशन चाहे तो चिकित्सा लाभ बीमित व्यक्ति के परिवार को भी विस्तृत कर सकता है।

प्रशासन सम्बन्धी कठिनाइयो को देखते हुए अभी यह बीमा-योजना देश के प्रमुख-प्रमुख औद्योगिक क्षेत्रो मे ही लागू की गई है।

भारत के लिए स्वास्थ्य बीमे की योजना—

इस आशय के लिए एक कारपोरेशन बनाया जायेगा, जो कि बीमे के आशय के लिए एक श्रमिक राजकीय बीमा निधि सचय करेगा, जिसम सेवायोजको व सेवा-युक्तो के चन्दे और केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारो, स्थानीय सत्ताओ, व्यक्तियो एव अन्य सस्थाओ द्वारा दिये गये अनुदान, दान और भट शामिल की जायेंगी। प्रथम पाँच वर्षों तक केन्द्रीय सरकार प्रशासन व्यया के दो-तिहाई के बराबर रकम की ग्रान्ट प्रति वर्ष कारपोरेशन को दिया करेगी। सभी कारखानो व सस्थाओ को यह बीमा योजना लागू होगी। सेवायोजको पर अपने व अपने श्रमिको के चन्दे कारपोरेशन म जमा करान का भार होगा। हाँ, श्रमिको का चन्दा वे उनकी मजदूरी मे से काट सकें। जो श्रमिक १) प्रति दिन से कम मजदूरी पाते है उनको चन्दा नही पडगा। चन्दा उस अवधि के लिये देय होगा, जिसमे कि मजदूर काम पर लगा हो या छुट्टी पर हो या तालाबन्दी अथवा हडताल के कारण काम मे असमथ था।

बीमित व्यक्ति को बीमारी-लाभ किसी भी लाभ की अवधि मे तभी माँगने का अधिकार होगा जब कि उसी चन्दा अवधि मे, उसके साप्ताहिक चन्दे रोजगार की अवधि के कम स कम दो तिहाइ हफ्ता के लिए देय हो। न्यूनतम १२ चन्दो की सीमा है। बीमारी की अवधि मे बीमारी लाभ निधारित दरो से दिये जायेंगे। बीमारी क पहले दो दिनो के लिये कोई लाभ नही दिया जायेगा। हाँ, उस दशा मे दिया सकता है जबकि १५ दिन के अन्दर वह दुबारा बीमार पड जाये। यह लाभ १ वर्ष मे अधिक से अधिक ५६ दिन तक लिया जा सकता है। एक बीमित व्यक्ति या उसके परिवार के किसी सदस्य को जिसकी दशा ऐसी है कि चिकित्सा और देख-भाल आवश्यक है, चिकित्सा-लाभ (Medical benefit) पाने का अधिकार होगा। यह

चिकित्सा-लाभ या तो बाहरी मरीज (Out patient) के रूप मे या डाक्टर द्वारा घर जाकर अथवा अन्दर-मरीज (In patient) के रूप मे इलाज कराने की सुविधा के रूप मे दिया जायगा। इसके लिये केन्द्रीय सरकार योग्य डाक्टर, सर्जन, विशेषज्ञ, विशेष अस्पताल आदि की व्यवस्था करेगी। सयोजक किसी सेवायुक्त को लाभ पाने की अवधि मे नौकरी से नही निकाल सकेंगे और न सजा दे सकेंगे।

STANDARD QUESTIONS

1. What do you understand by the term "Social Security."? Discuss its importance with special reference to India
2. Write a critical note on the organisation and working of the Employee's State Insurance Corporation.
3. Briefly describe the principal measures taken by the Government of India in the sphere of social security

अध्याय ३३

श्रम संनियम तथा श्रम नीति

(Labour Legislation & Labour Policy)

श्रम नीति (Labour Legislation)

प्रारम्भिक—

श्रम सनियम वास्तव मे २०वी शताब्दी की देन है। १९वी शताब्दी मे इस सम्बन्ध मे जो भी वैधानिक नियम बनाये गये थे वे अधिकांशत. सेवायोजको के हित मे थे, श्रेमिको को उनसे कोई लाभ न था। दृष्टान्त के लिये, आसाम मे श्रम सम्बन्धी अधिनियम इस दृष्टि से बनाये गये थे कि सेवायोजको को पर्याप्त श्रमिक सरलता से मिल सकें, किन्तु बाद मे परिस्थितियोवश श्रमिको के हित मे भी कुछ नियम बनाये

गए। सन् १८६० के पश्चात् बम्बई का वस्त्र व्यवसाय बडी तेजी मे बढने लगा, जिससे लङ्काशायर के व्यवसायी बडे घबडाये। भारतीय उद्योगपतियो को प्राप्त श्रम-सम्बन्धी सुविधाओ (जैसे, भारत मे इंगलैण्ड की अपेक्षा श्रमिको से अधिक काम लिया जा सकता था, आदि) से लङ्काशायर के उद्योगपतियो को ईर्ष्या होने लगी। इस ईर्ष्यावश (परन्तु प्रगटत. श्रमिको के प्रति होने वाले निर्दय व्यवहार के नाम पर) उन्होने भारतीय श्रमिको मे आन्दोलन प्रारम्भ किया, जिसके परिणामस्वरूप प्रथम बार सन् १८८१ मे श्रमिको के हित मे कारखाना अधिनियम (Factory Act) बनाया गया। तत्पश्चात् आवश्यकतानुसार इस अधिनियम मे अनेक प्रत्यावर्तन हुए तथा अन्य अधिनियम भी बनाये गये, जिनका विवरण इस प्रकार है :—

(I) कारखाना अधिनियम

(१) सन् १८८१ का कारखाना अधिनियम—

(i) *१०० से अधिक श्रमिक एव शक्ति का उपयोग करने वाले कारखाने पर* लागू होना था।

(ii) काम के लिए *बच्चो की न्यूनतम आयु ७ वर्ष रखी गई। सात और* बारह वर्ष के मध्य की आयु वाले बच्चो के लिए काम के घन्टे (१ घण्टा *विश्राम सम्मिलित करते हुए) ९ थे। प्रति माह चार अवकाश दिवसो* की भी व्यवस्था थी।

(२) सन् १८९१ का कारखाना अधिनियम—

(i) ५० अथवा अधिक श्रमिक एव शक्ति का प्रयोग करने वाले कारखानो पर यह लागू होता था।

(ii) बच्चो की कार्यावस्था ९ से १४ कर दी गई और कार्यवाहक घण्टे ९ से घटाकर ७ प्रति दिन कर दिये गये।

(iii) स्त्री श्रमिको से कार्य लिए जाने के अधिकतम घण्टे ११ प्रति दिन निश्चित कर दिये गये।

(iv) स्त्रियो तथा बच्चो के लिये कार्यवाहक घण्टे ६ प्रति दिन निश्चित किये गये।

(३) सन् १९११ का कारखाना अधिनियम—

(i) पुरुष श्रमिको के लिये १२ घण्टा प्रति दिन अधिकतम कार्यकाल नियुक्त कर दिया गया।

(ii) सूती कपडे के कारखानो मे बच्चो के लिए कार्यवाहक घण्टे ६ प्रति दिन निश्चित कर दिए गए।

(iii) मौसमी कारखानो को नियन्त्रण मे लाया गया।

(४) सन् १९२२ का कारखाना अधिनियम—

(i) यह शक्ति प्रयोग करने वाले समस्त कारखानों, जिनमें कि २० अथवा अधिक श्रमिक काम करते हों, में लागू था।

(ii) वयस्क श्रमिकों के लिए अधिकतम कार्यवाहक घण्टे ११ प्रति दिन तथा ६० घण्टे प्रति सप्ताह निश्चित किए गए।

(iii) बच्चों की कार्यावस्था १२ से १५ वर्ष निश्चित की गई।

(iv) श्रमिकों के स्वास्थ्य, उनकी रक्षा, सफाई तथा निरीक्षण की व्यवस्था की गई।

(५) सन् १९३४ का कारखाना अधिनियम—

(i) वयस्क श्रमिकों के कार्यवाहक घण्टे ५० प्रति सप्ताह अथवा १० प्रति दिन तक सीमित कर दिए गए। प्रति सप्ताह एक अवकाश दिवस एवं विश्राम-काल की भी व्यवस्था की गई।

(ii) बच्चों के लिये कार्यवाहक घण्टे ५ प्रति दिन ही रह गये। इन्हें शारीरिक योग्यता का प्रमाण-पत्र देना आवश्यक हो गया।

(iii) कृत्रिम नमी बनाये रखने की योजनायें विकसित की गई तथा श्रमिकों के कल्याण एवं अतिरिक्त कार्य के लिए भी प्रबन्ध किया गया।

(iv) स्प्रैड ओवर (Spread over) का सिद्धान्त पहले-पहल लागू किया गया।

(६) सन् १९४६ का संशोधित कारखाना अधिनियम—

(i) वर्ष भर चलने वाले कारखानों में श्रमिकों के लिए अधिकतम कार्यवाहक घण्टे ५४ से घटाकर ४८ प्रति सप्ताह कर दिये गए तथा मौसमी कारखानों के वयस्क श्रमिकों के लिए ६० से घटा कर ५० प्रति सप्ताह कर दिए गए।

(ii) स्प्रैड ओवर वर्ष भर चलने वाले कारखानों में १३ घण्टे से घटा कर १० घण्टे और मौसमी कारखानों में ११ घण्टे निर्धारित कर दिए गए।

(iii) अतिरिक्त कार्य के लिए (दोनों प्रकार के कारखानों में) मजदूरी साधारण से दुगुनी कर दी गई। इसका उद्देश्य अतिरिक्त कार्य को निरुत्साहित करना था।

(७) सन् १९४८ का वर्तमान कारखाना अधिनियम—

इस अधिनियम की प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं:—

(१) यह अधिनियम समस्त भारत पर लागू होता है।

(२) यह अधिनियम शक्ति-प्रयोग करने वाले कारखानों में, जिनमें १० या इससे अधिक श्रमिक काम करते हों, जहाँ तक कि शक्ति का प्रयोग तो नहीं होता, परन्तु २० या इससे अधिक श्रमिक काम करते हैं, लागू होता है।

(३) वर्ष भर चलने वाले मौसमी कारखानों मे कोई अन्तर नही रखा गया है।

(४) कारखाना अधिनियम का क्षेत्र बढाने के उद्देश्य से इस अधिनियम मे यह भी आदेश दिया गया है कि जहाँ कही भी निर्माण कार्य हो रहा है (भले ही उसमे कितने भी श्रमजीवी कार्य करते हो), यह अधिनियम लागू होगा। शक्ति का प्रयोग करना अथवा न करना महत्त्वहीन है। हाँ, यदि केवल परिवार के सदस्यो की सहायता से ही कोई निर्माण किया जा रहा है तो ऐसी दशा मे कारखाना अधिनियम लागू न होगा।

काम के घण्टो के सम्बन्ध में आदेश—

(५) नए अधिनियम मे यह स्वीकार किया गया कि यदि श्रमिको के काम के घन्टे कम होगे तो उनकी कार्यक्षमता मे अवश्य वृद्धि होनी चाहिए। अतएव वयस्क श्रमिको के लिए अधिकतम काम के घन्टे प्रति सप्ताह ४८ और प्रति दिन ९ नियत किए गये। कम से कम ½ घन्टे का मध्यान्तर दिए बिना ही उनसे ५ घन्टे से अधिक काम न लिया जाय, इस बात की व्यवस्था की गई। स्प्रेड ओवर मध्यान्तरो को सम्मिलित करते हुए १०½ घन्टे से अधिक न होगा। कारखाना अधिनियम सन् १९४८ के अन्तर्गत राज्य-सरकारो को यह अधिकार दिया गया है कि वे कुछ व्यक्तियो को काम के घन्टे, साप्ताहिक छुट्टी आदि नियमो के पालन करने के सम्बन्ध मे छूट (exemption) दे सकती है, किन्तु ऐसी छूट-प्राप्त-व्यक्ति भी निम्न नियमो का उल्लघन नही कर सकते :— (अ) किसी भी दिन कुल काम के घन्टे १० से अधिक न होने चाहिए। (आ) ३ माह की अवधि मे कुल अतिरिक्त कार्य के घन्टे ५० से अधिक न होने चाहिए। (इ) किसी भी दिन स्प्रेड ओवर १२ घन्टे से अधिक न होगा। (ई) अतिरिक्त कार्य के लिए दूनी दर से वेतन देने एव पूरे सप्ताह मे एक दिन की छुट्टी रखने की व्यवस्था भी की गई।

सवेतन छुट्टी—

(६) प्रत्येक श्रमिक को सप्ताह मे एक सवेतन छुट्टी तो मिलेगी ही, इसके अतिरिक्त निम्न दर पर निरन्तर बारह माह की सेवा होने पर उसे अतिरिक्त सवेतन छुट्टियो का अधिकार होगा। यथा :—

(अ) *एक प्रौढ श्रमिक २० दिन काम करने के बाद १ दिन सवेतन छुट्टी का* अधिकारी है, परन्तु वह एक वर्ष मे न्यूनतम १० दिन की सवेतन छुट्टी ले सकेगा।

(ब) एक बालक १५ दिन काम करने के बाद १ दिन सवेतन छुट्टी का अधिकारी है, किन्तु वह एक वर्ष मे न्यूनतम १४ दिन की सवेतन छुट्टी ले सकेगा।

(स) यदि कोई श्रमिक अपनी अर्जित छुट्टियो का लाभ लिए बिना सेवा से

मुक्त कर दिया जाता है या स्वय निकल जाता है तो ऐसी दशा मे सेवायोजक का कर्त्तव्य होगा कि उन दिनो का वेतन उनको दे ।

नवयुवकों की नियुक्ति से सम्बन्धित आदेश—

(७) १४ वर्ष से कम आयु का कोई भी युवक नियुक्त नही किया जा सकता । १८ वर्ष की आयु के बाद एक युवक को प्रौढ (Adolescent) माना जायगा। नियुक्ति के पहले आयु सम्बन्धी डाक्टरी प्रमाण-पत्र देना भी आवश्यक कर दिया गया और यह भी आदेश दिया गया कि ऐसे प्रमाण-पत्र केवल १२ महीने तक ही वैध रहेगे ।

महिला श्रमिको की नियुक्ति सम्बन्धी आदेश—

(८) महिला श्रमिको के सम्बन्ध मे निम्न आदेश बनाये गय :—

(अ) किसी भी महिला श्रमिक को मशीन चालू रहने की दशा मे मशीन की सफाई करने, उसमे तेल डालने अथवा मशीन को सुधारने आदि के लिये नियुक्त न किया जायेगा ।

(आ) जिन कारखानो मे कपास की धुनाई करने वाले यन्त्र का उपयोग किया जाता है, उनमे कपास प्रस करने के लिये महिला श्रमिक नियुक्त न की जा स्केंगी । हा, यदि धुनाई का कमरा प्रेस के कमरे से अलग हो तो उनकी नियुक्ति की जा सकती है ।

(इ) यदि किसी कारखाने मे ५० से अधिक महिलायें कार्य करती है तो उनके ६ वर्ष से कम आयु के बच्चो के लिए एक शिशु-सदन होना चाहिये । इसके अतिरिक्त आवश्यक मध्यान्तर के उपरान्त माताओं को अपने बच्चो को दूध पिलाने के लिए भी सुविधा देनी चाहिए ।

(ई) किसी भी महिला श्रमिक से सप्ताह म ४८ घन्टे अथवा ६ घन्टे प्रति दिन से अधिक कार्य नही लिया जा सकेगा ।

(उ) स्त्री एव बाल श्रमिक से ७ बजे शाम से प्रात ६ बजे तक काम नही लिया जा सकता ।

(ऊ) यदि राज्य सरकार की सम्मति मे किसी कारखाने की कोई भी क्रिया खतरनाक है तो उस कार्य को करने के लिए महिला श्रमिको की नियुक्ति नही की जा सकती ।

स्वास्थ्य सुरक्षा एवं कल्याण कार्य सम्बन्धी आदेश—

(६) स्वास्थ्य— सन् १६४६ के अधिनियम के विपरीत, इस अधिनियम ने श्रमिको के स्वास्थ्य रक्षण एव सामान्य आराम के लिए कुछ अधिक व्यवस्था स्वय ही कर दी । राज्य सरकार के जिम्मे केवल व्यवहारात्मक नियम बनाने का कम महत्त्वपूर्ण कार्य ही रह गया ।

(अ) प्रत्येक कारखाना पूर्णत: साफ रहना चाहिए और किसी भी श्रोत से आने वाली गन्दगी अथवा कूडा-कर्कट कारखाने के किसी भी भाग मे एकत्र न हो। निर्माण क्रिया के द्वारा किसी भी स्थान पर निरर्थक अथवा क्षेप्य पदार्थ गिरते हैं तो उनकी सफाई के लिए पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए।

(आ) प्रत्येक कारखाने मे शुद्ध वायु के आने के लिये एव गन्दी वायु के जाने के लिए पर्याप्त झरोखे होने चाहिए। झरोखे इतने हो कि शुद्ध एव शीतल वायु पर्याप्त मात्रा मे आ सके और तापक्रम ऐसा रहे कि जिसमे श्रमिको के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव न पडे। यदि राज्य सरकार को ऐसा प्रतीत होता है कि पुताई कराने, स्प्रे कराने, झरोखे निकलवाने अथवा दीवाले तथा छत ऊँची कराने मे कारखाने के अन्दर तापक्रम को ठीक रखा जा सकता है तो वह कारखाना अधिकारियो को इस सम्बन्ध मे उचित आदेश दे सकती है।

(इ) यदि कारखाने की कोई निर्माण क्रिया ऐसी है, जिसके परिणामस्वरूप धूल इत्यादि उड कर इधर-उधर जमा होती है तो उसकी सफाई के लिए भी पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए, जिसमे कि श्रमिको के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव न पडे।

(ई) कारखानो के अन्दर अत्यधिक शुष्कता या अत्यधिक नमी भी हानिकारक होती है। हमारी वस्त्र मिलो मे कृत्रिम साधनो द्वारा नमी पैदा की जाती है। इस सम्बन्ध म इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि तापक्रम मे जो अन्तर किया जाये वह श्रमिको के स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक न हो।

(उ) नए कारखाना अधिनियम के प्रचलन के बाद प्रत्येक कारखाने मे प्रत्येक श्रमजीवी के लिए ५०० क्यू० फीट का स्थान होना चाहिए और अधिनियम के प्रचलन के पूव विद्यमान कारखानो के लिए भी प्रति श्रमजीवी कम से कम ३५० क्यू० फीट का स्थान होना चाहिए। इस आदेश का प्रमुख उद्देश्य कारखानो मे अत्यधिक भीड-भाड को कम करना है।

(ऊ) कारखाने मे जहाँ भी श्रमजीवी कार्य करते हो, अथवा जिस मार्ग से गुजरते हो वहाँ पर्याप्त प्राकृतिक अथवा कृत्रिम प्रकाश आने की व्यवस्था होनी चाहिए। बहुत तेज प्रकाश, जो कि आखो को हानिकारक है, को रोकने की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

(ए) प्रत्येक कारखाने मे पीने के लिए पानी की भी पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए। जहाँ २५० से अधिक श्रमिक कार्य करते हो, वहाँ ठडे पानी के लिए रेफ्रीजरेटर होने चाहिए।

(ऐ) प्रत्येक कारखाने मे पुरुष एव महिलाओ के लिए पृथक-पृथक पेशाबघर एव शौचालय होने चाहिए । फ्लश सिस्टम न होने की दशा मे भगियो की अच्छी व्यवस्था हो, जो कि गन्दगी को साफ करते रहे । शौचालय एव पेशाबघर के अतिरिक्त कारखाने के अन्य भाग एव दीवारो आदि की भी सप्ताह मे कम से कम एक बार भली प्रकार सफाई होनी चाहिए ।

(ओ) प्रत्यक कारखाने मे थूकने के लिए पीकदानो की भी व्यवस्था होनी चाहिए एव उनकी सफाई भी होती रहनी चाहिए ।

(१०) सुरक्षा –

(अ) ट्रान्समिशन मशीनरी का प्रत्येक भाग एव अन्य मशीनो का प्रत्येक खतरनाक भाग चारो तरफ से आड (Fencing) लगाकर रखा जाना चाहिए । जबकि कोई खतरनाक मशीनरी चल रही हो तो उसकी देखभाल का काम केवल विशेष रूप मे प्रशिक्षित प्रौढ पुरुष श्रमिक ही कर सकता है, जिसका कि नाम कारखाने के रजिस्टर मे उस कार्य विशेष को करने के लिए लिखा हो ।

(ब) बाल अथवा महिला श्रमिक खतरनाक मशीनो पर कार्य नही करेंगे ।

(स) कोई भी नई मशीन, जो कि यान्त्रिक शक्ति द्वारा चलाई जाती हो, भली प्रकार फिट होनी चाहिए । ऐसी मशीन को बेचते समय उत्तरदायित्व विक्रेता पर होगा और खरीदने के बाद क्रेता पर । अतः सेवायोजक को बडी सावधानी से देखभाल करने के बाद मशीन फिट करवानी चाहिए । प्रत्येक होइस्ट तथा लिफ्ट (Hoist and lift) भली प्रकार निर्मित होने चाहिए, जिससे कि प्रयोग के समय कोई दुर्घटना होने की आशका न रहे । इसी प्रकार बोझा उठाने वाली मशीनो तथा क्रेन आदि का पूर्णरूपेण ठीक होना अनिवार्य है । क्रेन ड्राइवर को केवल चेतावनी देना ही पर्याप्त न होगा, वरन् 'स्टाप ब्लाक, डिटोनेटर्स अथवा 'कट आउट्स' का प्रयोग होना चाहिए तथा यह भी आवश्यक है कि ड्राइवर क्रेन के पहिए से २० फीट दूर रहे ।

(द) कोई भी व्यक्ति इतना बोझा उठाकर चलने के लिए नियुक्त नही किया जा सकता, जिससे कि उसके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडे ।

(य) यदि किसी कार्य विशेष से आँखो पर कुप्रभाव पडने की आशका हो तो उसकी रोक के लिये सेवायोजको को विशेष प्रकार के चश्मे आदि का प्रबन्ध करना चाहिए । धूल आदि से बचने के लिये भी पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए । आग लग जाने की दशा मे श्रमिको के बचाव

एवं आग बुझाने की भी पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। (जैसे, दर्वाजों में ताला कुंजी न होना, आग लगने पर बाहर जाने का मार्ग (Fire exits) होना, खतरे की घन्टी की व्यवस्था आदि)।

(११) कल्याण कार्य सम्बन्धी—

श्रमिकों के लिए उपहार गृहों, विश्रामालयों, श्री श्रमिकों के छोटे बच्चों के दिन में रखने के लिये शिशु गृहों, बैठने की व्यवस्था, प्राथमिक चिकित्सा की सुविधा, वस्त्र धोने के स्थान की सुविधा भी दी गई। ५०० से अधिक श्रमिक वाले कारखानों के लिए राज्य सरकारों की सहायता से 'हितकारी अफसर' (Welfare Officers) रखना अनिवार्य कर दिया गया। व्यावसायिक रोगों आदि के विषय में सभी कारखाना मालिकों के लिये यह आवश्यक है कि वे दुर्घटना या बीमारी होने पर तत्काल सूचना दें। इन कारखानों के लिए नियुक्त किए गए चिकित्सकों को भी जो कि इन श्रमिकों की चिकित्सा कर रहे हों, यह समाचार शीघ्र ही चीफ फैक्टरी इन्सपेक्टर को पहुँचाना होगा। राज्य सरकार जांच के लिए उचित व्यक्तियों की नियुक्ति कर सकती है। इस अधिनियम का पालन कराने के लिए पर्याप्त निरीक्षक नियुक्त करने की व्यवस्था भी की गई है। आदेशों के अनुसार आचरण हो, इसका उत्तरदायित्व निरीक्षकों पर न रहकर कारखाना व्यवस्थापकों पर है।

(II) खान सम्बन्धी सन्नियम

खान सम्बन्धी सन्नियम का विकास—

खानों के श्रमिकों के सम्बन्ध में श्रम सन्नियम काफी धीरे-धीरे प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम सन् १६०१ में भारत में खान सम्बन्धी अधिनियम का सूत्रपात हुआ था। इसके अनुसार खानों की कार्य-दशाओं को नियमित कर दिया गया एवं निरीक्षकों की नियुक्ति के लिये व्यवस्था की गई, किन्तु कार्य के घण्टे नियमित नहीं किये गये। वाशिंगटन सम्मेलन की सिफारिशों तथा शीघ्रता से विकसित होते हुये खान उद्योग में अधिक संख्या में काम करने वालों को दृष्टि में रखते हुये सन् १६२३ में संशोधित अधिनियम पास किया गया। इससे 'खान की परिभाषा विस्तृत हो गई। ऊपर काम करने वाले श्रमिकों के लिये सप्ताह में ६० घण्टे तथा खानों में भीतर काम करने वालों के लिये ५४ घण्टे एवं एक दिन विश्राम के लिये भी नियत कर दिया गया। १३ वर्ष तक के बच्चों के लिये खानों में भीतर काम करने के लिये वर्जित कर दिया गया। भूमि के अन्दर महिलाओं की नियुक्ति पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया, क्योंकि खानों में काम करने वाले श्रमिकों में लगभग ४५% महिलायें थीं, अतः यदि उन पर रोक लगाई जाती तो उद्योग को आघात पहुँचने की आशंका थी। इसके विपरीत, सुधार की भी आवश्यकता अत्यन्त तीव्रता के साथ अनुभव की जा रही थी।

समय की प्रगति के साथ ही साथ सन् १६२३ का अधिनियम अपर्याप्त हो गया और इसमें क्रमश: सन् १६२८, १६३१, १६३६, १६३७, १६४० तथा १६४६ में

सशोधन हुये। सन् १९२८ मे दैनिक कार्य-अवधि १२ घण्टे कर दी गई। सन् १९२९ मे बगाल, बिहार व उडीसा, मध्य-प्रदेश की कोयला खानो तथा पजाब की नमक की खानो को छोडकर अन्य सभी खानो के भीतर महिलाओ का कार्य करना वर्जित कर दिया गया।

सन् १९३५ मे पुन सशोधन हुये। एक तो श्रम के शाही कमीशन की सिफारिशें और दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के द्वारा काम के घण्टो के नियत किये जाने और भारत द्वारा इस सिफारिश को मान लेने के फलस्वरूप निम्न सशोधन करना अनिवार्य हो गया था। कोई भी व्यक्ति खान मे १ सप्ताह मे ६ दिन से अधिक काम नही कर सकता। खान के ऊपर काम करने वाला कोई भी व्यक्ति सप्ताह मे ५४ घण्टे से अधिक काम नही कर सकता। एक दिन मे १० घण्टे से अधिक कोई भी व्यक्ति कार्य नही करेगा। कार्यकाल इस प्रकार होगा कि विश्राम-काल को सम्मिलित करते हुये वह एक दिन मे १२ घण्टे से अधिक न होगा। ६ घण्टे लगातार काम करने के बाद १ घण्टा विश्राम अवश्य मिलेगा। खानो के अन्दर काम करने वाले व्यक्तियो को १ दिन मे ९ घण्टे से अधिक काम नही करना होगा। खान के अन्दर एक ही प्रकार का काम ९ घण्टे से अधिक नही किया जायगा। यदि बारी-बारी से काम करने की पद्धति हो तो उसे अपवाद माना जा सकता है, किन्तु इसमे भी एक बार मे ९ घण्टे से अधिक काम नही होगा। १५ वर्ष से नीचे की आयु वाले बच्चो को खानो मे काम करने से रोक दिया गया। १७ वर्ष से कम आयु वाले बच्चो के लिए डाक्टरी प्रमाण-पत्र अनिवार्य कर दिया गया। साथ ही इस सशोधन के अनुसार श्रमिको के लिए पानी, चिकित्सा तथा अन्य स्वच्छता सम्बन्धी सुविधाओ की भी व्यवस्था कर दी गई। सन् १९४५ मे काम करने वाली महिलाओ के बच्चो को दिन मे काम करते समय रखने के लिए शिशु गृहो की व्यवस्था कर दी गई। सन १९४६ मे स्त्री व पुरुष श्रमिको के लिए बन्द स्नानागारो की अलग अलग सुविधा कर दी गई। श्रमिको की समस्याओ को सुलझाने के हेतु 'माईनिंग बोर्ड' की स्थापना भी कर दी गई, जिसमे श्रमिक, सेवायोजक तथा सरकार के प्रतिनिधि सम्मिलित हो सकेंगे—

भारतीय खान अधिनियम सन् १९५२—

सन् १९४८ के कारखाना अधिनियम द्वारा कारखानो मे काम करने वाले श्रमिको की दशा मे तो पर्याप्त सुधार हो गया था, किन्तु खानो मे हुई अनेक भयकर दुर्घटनाओ से यह अनुभव किया गया कि खान मे काम करने वालो की सुरक्षा के लिए बहुत कुछ करना है। परिणामस्वरूप भारत सरकार ने ८ दिसम्बर सन् १९४९ को भारतीय पार्लियामेन्ट मे एक बिल रखा, जो कि १५ मार्च सन् १९५२ का भारतीय खान अधिनियम सन् १९५२ के रूप मे सामने आया। यह अधिनियम १ जुलाई सन् १९५२ से जम्मू व काश्मीर राज्य को छोडकर सारे भारत पर लागू हो गया है।

(१) **स्वास्थ्य व दुर्घटनायें**—इस अधिनियम ने खानो की परिभाषा को

अत्यन्त व्यापक स्वरूप दिया। श्रमिको के स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त व्यवस्था कर दी गई है। ऊपर और नीचे काम करने वाले श्रमिको के लिए शीतल जल, शौचालय तथा औषधियो की पेटी की व्यवस्था करनी होगी। जिन खानो मे ५०० से अधिक श्रमिक कार्य करते हैं, वहाँ एम्बुलेन्स गाडियो तथा स्ट्रेचरो की अनिवार्य व्यवस्था करनी होगी। यदि मुख्य निरीक्षक अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी अन्य निरीक्षक को यह विश्वास हो जाए कि खान मे काम करने वाले श्रमिको की जान को खतरा है तो वह कुछ समय तक नए श्रमिको की भरती और वर्तमान श्रमिको द्वारा कार्य किया जाना बन्द कर सकता है। सभी भयकर अथवा प्राणघातक घटनाओ की सूचना खानो के प्रबन्धको को अनिवार्य रूप से सरकार के पास पहुँचानी होगी। खानो सम्बन्धी व्यावसायिक रोगो के विषय मे भी ऐसा करना होगा। केन्द्रीय सरकार का इस अधिनियम के अन्तर्गत यह अधिकार प्राप्त है कि वह इन दुर्घटनाओ तथा रोगो की जाँच कराके उनके कारणा का प्रकाशन कर सकती है।

(२) **विशेष सुविधायें**—इस अधिनियम मे बच्चो तथा स्त्रियो के लिए शिशु-गृहो, खानो के मुहाने पर महिलाओ तथा पुरुषों के हतु अलग-अलग झरनेदार स्नानागार, १५० श्रमिको वाली खानो मे विश्रामालय, उपहार गृह तथा ५०० श्रमिको वाली खानो मे कल्याण अधिकारियो की नियुक्ति आदि की व्यवस्था करने के लिए केन्द्रीय सरकार को अधिकार दे दिए गये है।

(३) **बाल श्रमिक**—बच्चो के सम्बन्ध मे यह आदेश है कि १८ वर्ष से कम आयु के बच्चे खानो मे नीचे काम नही कर सकते। १५ से १८ वर्ष की आयु वाले व्यक्ति किशोर कहलायेंगे और बिना उचित डाक्टरी प्रमाण-पत्र के उनकी नियुक्ति न होगी। काम करते समय उनको यह प्रमाण-पत्र हर समय पास रखना होगा। इन्हें ४½ घण्टे निरन्तर काम करने के उपरान्त ½ घण्टे का विश्राम मिलेगा। प्रमाण-पत्र की अवधि १ वर्ष होगी।

(४) **कार्य के घण्टे व अवकाश**—सन् १९५२ के खान अधिनियम ने श्रमिको की साप्ताहिक कार्यावधि ४८ घण्टे तथा दैनिक कार्यावधि ९ घण्टे कर दी है। खानो के भीतर काम करने वालो का कार्यावधि क्रमश ४८ घण्टे साप्ताहिक और ८ घण्टे दैनिक कर दी गई। नीचे काम करने वालो की सम्पूर्ण कार्य-विस्तार अवधि (Spread Over) नौ घण्टे से घटा कर ८ घण्टे कर दी गई। बिना ½ घण्टे का विश्राम दिए कोई भी प्रौढ श्रमिक ५ घण्टे से अधिक लगातार काम नही कर सकेगा। खानो के भीतर स्त्रियो द्वारा काम करना तो वर्जित था ही, किन्तु इस अधिनियम ने धरातल के ऊपर काम करने वाली स्त्रियो को भी सायकाल ७ बजे से प्रातः ६ बजे तक काम करने से रोक दिया। अतिरिक्त काय के लिए, भीतर काम करने वाले श्रमिको को सामान्य मजदूरी का दो गुना और ऊपर कार्य करने वालो को १½ गुना वेतन दिया जावेगा। नये अधिनियम ने १ दिन के साप्ताहिक अवकाश के अलावा छुट्टी के अन्य नियम

भी बना दिए, जिनके अनुसार १ वर्ष की नौकरी पूरी होने पर श्रमिको को १४ दिन का सवैतनिक अवकाश दिया जायेगा। यह अवकाश २८ दिन तक संग्रह भी किया जा सकेगा।

(५) **निरीक्षण**—अधिनियम के आदेशों का पालन कराने के लिए एक मुख्य निरीक्षक की नियुक्ति की जायगी। इसकी सहायता के लिए उप-निरीक्षक तथा जिला मजिस्ट्रेट भी होंगे। उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सन् १९५२ के अधिनियम ने खानो मे काम करने वाले श्रमिको की दशा मे प्रशंसनीय सुधार किये।

(III) उद्यानो से सम्बन्धित सन्नियम

उद्यानों (Plantations) मे काम करने वाले श्रमिको की स्थिति बहुत समय तक अत्यन्त करुणाजनक रही। वे बिचारे दास के रूप मे कार्य करते थे, क्योकि उनकी सुरक्षा के लिए कोई भी अधिनियम न था। आसाम मे चाय के बगीचो मे काम करने वाले श्रमिको की कमी को पूरा करने के लिए सर्वप्रथम सन् १८६३ से सन् १९०१ तक अनेक प्रयत्न किये गए, किन्तु इन प्रयत्नो के परिणामस्वरूप उद्यानो मे बंधक श्रमिको (Indentured Labours) का सूत्रपात हुआ। ये श्रमजीवी कठपुतली की भांति अपने सेवायोजको की इच्छानुसार नाचते थे और नौकरी छोडने पर कैद किए जा सकते थे। अतः सन् १९०१ मे आसाम श्रमिक तथा प्रवास अधिनियम (The Assam Labour and Emigration Act) पास किया गया, जिसके अनुसार श्रमिको की कार्य दशाओं का नियमन किया गया।

तत्पश्चात् सन् १९०८ तथा सन् १९१५ मे इस अधिनियम मे संशोधन किये गये, जिनके अनुसार श्रमिको को बंधन से मुक्त कर दिया गया और व्यक्तिगत बगीचो के मालिको को श्रमिको को नौकरी छोडने पर कैद कराने के अधिकार से वञ्चित कर दिया गया, किन्तु इतना होते हुए भी श्रमिको की स्थिति मे सन्तोषजनक सुधार नहीं हुआ। सन् १९३१ मे श्रम के शाही कमीशन ने अपनी रिपोर्ट मे बगीचो मे काम करने वाले श्रमिको की दुर्दशा का हृदयस्पर्शी चित्रण किया और उसके सुधार हेतु अनेक सिफारिशें की, जिनके आधार पर सन् १९३२ का The Tea Districts Emigrant Labour Act बनाया गया।

यह अधिनियम मुख्यतः आसाम के श्रमिको की भरती से सम्बन्धित था। इसके अनुसार केन्द्रीय सरकार को अधिकार है कि वह किसी भी राज्य मे किसी भी क्षेत्र को श्रमिकों की भरती के लिए नियन्त्रित करके किसी भी व्यक्ति को किसी मालिक या मालिकों के लिए स्थानीय एजेन्ट बनाने के लिए लाइसेन्स दे। सरकार वहाँ भेजे जाने वाले श्रमिकों के रहन-सहन व खान-पान की सुविधाओं का भी उचित ध्यान रखेगी। प्रत्येक १६ वर्ष की आयु से कम का व्यक्ति आसाम मे श्रमिक के रूप मे जाने के लिए रोका जा सकता है। केवल माँ-बाप या ऐसे संरक्षक या सम्बन्धी के साथ ही वह आसाम जा सकता है जिन पर वह आश्रित है। इसी प्रकार बिना पति की आज्ञा

के कोई भी विवाहित स्त्री को वहाँ भेजने मे सहायता नही कर सकता। ३ वर्ष आसाम मे रहने के बाद कोई भी श्रमिक मालिक के व्यय से स्वदेश लौटने का अधिकारी है। अन्त मे, इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रशासन सम्बन्धी कार्यो के लिए एक 'प्रवासी श्रमिक अधिकारी' (Controller of Emigrant Labour) की नियुक्ति की भी व्यवस्था की गई, जिसका कर्त्तव्य यह होगा कि वह श्रमिको की भरती तथा उनके स्वदेशगमन इत्यादि बातो का प्रबन्ध करे।

उद्यान सम्बन्धी अधिनियम सन् १६५१

यह अधिनियम जम्मू व काश्मीर को छोड कर समस्त भारत के चाय, कहवा, रबड तथा सिनकोना के उन सब बगीचो पर लागू होता है, जिनका कम से कम क्षेत्रफल २५ एकड हो और जहाँ कम से कम ३० श्रमिक काम करते हो।

इस अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिको के स्वास्थ्य तथा सामाजिक हितो, कार्य के घन्टा, छुट्टी के नियमो, बच्चो के रोजगार तथा श्रमिको के लिए बीमारियो इत्यादि से बचने और उनकी चिकित्सा सम्बन्धी नियमो की पूर्ण व्यवस्था की गई। उद्यान स्वामियो को श्रमिको के लिए स्वच्छ पीने का पानी, शौचालय, मूत्रालय तथा पर्याप्त चिकित्सा सम्बन्धी सुविधायें उपलब्ध करनी होगी। राज्य सरकारो के आदेशो पर श्रमिको के मनोरजन के साधन जुटाने, १५० से अधिक श्रमिको वाले बगीचो मे उपहार गृहो की व्यवस्था, ६ से १२ वर्ष की आयु वाले बच्चो के लिए शिक्षा सुविधायें तथा ऐसे बगीचो मे जहाँ कम से कम ५० महिलायें काम करती हो, शिशुगृहो की व्यवस्था इत्यादि का प्रबन्ध भी किया गया है।

श्रमिको के निवास के लिये सेवायोजक को उद्यानो पर ही गृहो का निर्माण करना होगा। इन घरो का स्थान, निर्माण, किराया, स्वास्थ्यवर्द्धक अवस्थायें, आकार तथा भोजनालय इत्यादि सभी बाते राज्य सरकारो द्वारा बनाए गए नियमो से नियमित होगी। जिन बगीचो म ३०० से अधिक श्रमिक कार्य करते है उनमे एक कल्याण-कार्य अधिकारी भी रहेगा। नए अधिनियम के अनुसार १२ वर्ष से कम आयु वाले बच्चो की नियुक्ति पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। १५ वष से १८ वर्ष की आयु के व्यक्ति किशोर माने जायेंगे। बच्चो और किशोरो को आयु सम्बन्धी प्रमाण-पत्र देना होगा, जो कि उनके पास कार्य करते समय सदैव रहना चाहिए।

प्रौढो को सप्ताह मे ५४ घन्टे तथा बच्चो व किशोरो को ४० घन्टे काम करना होगा। दिन मे काम करने के घन्टे नियत नही किए गए है, किन्तु ऐसे घन्टे विश्राम के समय को सम्मिलित करते हुए १२ घन्टे की सम्पूर्ण कार्यावधि से अधिक नही हो सकते। सध्या के ७ बजे से प्रात: ६ बजे तक बच्चो तथा स्त्रियो के लिए कार्य का निषेध है। ½ घन्टा या अधिक देर से काम पर आने वाले श्रमिको को उस दिन काम पर रखने से मालिक द्वारा रोका जा सकता है। आँधी, तूफान, अग्नि तथा अन्य किसी प्राकृतिक बाधा से काम पर न आ सकने वाले श्रमिक के लिए वह दिन अवकाश का दिन गिना जा सकता है।

प्रत्येक श्रमिक को निम्न रीति से सवेतनिक अवकाश मिलेगा —

(अ) प्रौढ़ों को २० दिन काम करने पर १ दिन और (ब) बच्चे या किशोर को १५ दिन काम करने पर १ दिन। ये लोग अपनी छुट्टी को ० दिन तक सग्रह कर सकते हैं। बीमार होने पर प्रत्येक श्रमिक का चिकित्सक के प्रमाण-पत्र देने पर बीमारी का भत्ता भी दिया जाएगा। महिला श्रमिका को भी प्रसूतकाल के लिए भत्ता दिया जायेगा।

(III) यातायात सम्बन्धी सनियम

यातायात श्रमिको के लाभार्थ सर्वप्रथम वैधानिक सुविधायें रेलवे कर्मचारियों के लिए सन् १८९० के भारतीय रेलवे अधिनियम द्वारा दी गई। यह अधिनियम सन् १९३० में संशोधित होकर रेलवे वर्कशापों को छोड़कर समस्त कर्मचारियों पर लागू हो गया और उनके विश्राम तथा काम करने के घंटों का नियमन करने लगा। इसके अनुसार अनुपातत माह में प्रति सप्ताह निरन्तर ड्यूटी पर रहने वाले कर्मचारियों के काम के घंटे ६० तथा बीच बीच में रुक रुक कर ड्यूटी पर जाने वाले कर्मचारियों के लिए ८४ घंटे प्रति सप्ताह रखे गये। साथ ही प्रति सप्ताह २४ घण्टे के लगातार विश्राम की भी व्यवस्था की गई। सन् १९३१ में भारत सरकार ने काम के घंटों का नियमन करने के लिए कुछ और नियम बनाए।

सन् १९४६ में अखिल भारतीय रेल कर्मचारी संघ ने भारत सरकार के समक्ष अपना प्रतिनिधित्व भेजा और कर्मचारियों के काम के घंटे तथा अवकाश आदि विषयों की जांच करने के लिए एक निर्णायक नियुक्त करने की मांग की। फलतः जस्टिस राजाध्यक्ष को इस पर नियुक्त किया गया। उन्होंने मई सन् १९४७ में अपना निर्णय दिया जिसके अनुसार काम के घंटे छुट्टी के नियम साप्ताहिक अवकाश इत्यादि के विषय में उन्होंने अपना निश्चित मत दिया जिसे भारत सरकार ने स्वीकार किया। परिणामस्वरूप ३१ मार्च सन् १९५१ से भारत की सभी रेलों में ये नियम लागू कर दिए गए हैं। लोको कर्मचारियों तथा ट्रैफिक रनिंग स्टाफ के लिए भी इसी प्रकार के नियम बनाए गए हैं। इन लोगों को महीने में ३०-३० घंटे के ४ विश्राम मिलेंगे। रेल मार्ग पर काम करने वाले मेटों (Mates) की मनों तथा गैगमनों को भी सप्ताह में एक दिन विश्राम मिलेगा।

रेलों के अतिरिक्त शिपिंग उद्योग के कर्मचारियों के लिए भी सन् १९३२ में दी इण्डियन मर्चेन्ट शिपिंग एक्ट बनाया गया जिसमें क्रमश सन् १९४९ तथा सन् १९५१ में संशोधन किए गए। संशोधित अधिनियम के अनुसार कोई भी नाविक भारतीय ब्रिटिश या विदेशी जलयान पर उसके स्वामी के द्वारा निर्धारित नियमानुसार नौकर रखा जा सकता है। उपयुक्त बन्दरगाहों पर सरकार चाहे तो रोजगार के दफ्तर भी खोल सकती है। पहले तो १८ वर्ष से कम आयु वाले श्रमिकों का डाक्टरी परीक्षा की जाती थी किन्तु अब सभी की डाक्टरी जांच होती है। जहाज पर कार्य प्रारम्भ

करने के समय से ही नाविक को वेतन लेने का अधिकार हो जाता है। वेतन के भुगतान तथा समय पर वेतन न मिलने पर अनिरिक्त रुपया मिलने की भी अधिनियम मे व्यवस्था की गई है। यदि किसी नाविक को अनुचित प्रकार से नौकरी से हटा दिया जाता है तो उसे १ माह के अतिरिक्त वेतन का अधिकार है। नाविको की स्वास्थ्य रक्षा के लिए भी नियम बनाए गए है। उनके लिये जलयान पर स्वच्छ पानी, पर्याप्त औषधि तथा याना पर होने के समय अन्य आवश्यक सामान की व्यवस्था होनी चाहिये। उनकी चिकित्सा नि शुल्क होगी। जलयान पर रहते समय प्रत्येक कर्मचारी को कम से कम ७२ क्यूबिक फुट का निवास-स्थान मिलना चाहिए। साथ ही, नाविको पर अनुशासन रखने तथा उनके अधिकारों और कर्त्तव्यो का निर्धारण करने के लिए भी अधिनियम मे व्यवस्था की गई है। नियमो का उलघन करने पर उनके लिए दण्ड की भी व्यवस्था है।

इसी प्रकार **डॉक पर माल लादने या उतारने वाले श्रमिको के लिए** भी कानूनो का निर्माण हुआ है। प्रारम्भ मे ये लोग पूर्णत अरक्षित थे। सन् १६१८ मे 'इण्डियन पोर्टस एक्ट' पास किया गया, जिसका सन् १६२२ व सन् १६३१ मे सशोधन किया गया। इस अधिनियम के अनुसार श्रमिको की भरती का नियमन किया गया। १२ वर्ष से कम आयु वाले बच्चो को माल लादने से रोक दिया गया। सन् १६२६ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सघ के 'ड्राफ्ट कन्वेंशन' तथा रायल कमीशन की सिफारिशों के फलस्वरूप सन् १६३४ मे 'भारतीय डॉक श्रमिक अधिनियम' पास किया गया, किन्तु इसे सन् १६४८ तक कार्यान्वित नही किया जा सका। इस अधिनियम के अनुसार सरकार को यह अधिकार है कि वह डॉक पर काम करने वाले श्रमिको की सुरक्षा तथा उनकी नौकरी के नियमन के सम्बन्ध मे विधान निर्माण करे। मार्च सन् १६४८ मे भारत सरकार ने डॉक कर्मचारियो की कठिनाइयो का निवारण करने के हेतु 'डाक-कर्मचारी (रोजगार का नियमन) अधिनियम' पास कर दिया। इससे सभी बन्दरगाहो पर काम करने वाले डॉक-कर्मचारियो का नाम अनुसूचित किया जा सके। इससे इनके भर्ती तथा नौकरी सम्बन्धी नियमो का नियमन हो जायगा। अधिनियम मे इन कर्मचारियो के प्रशिक्षण, शारीरिक सुरक्षा, हितकारी कार्य तथा उनके वेतनो को नियमित रूप से दिलाने इत्यादि की व्यवस्था की गई है। इन नियमो का पालन करने के सम्बन्ध म सलाह देने के लिए अधिनियम मे एक सलाहकार समिति स्थापित करने की व्यवस्था की गई है। इस समिति मे श्रमिको, मालिको तथा सरकार के १५ प्रतिनिधि होगे। सरकारी प्रतिनिधियो मे समिति का अध्यक्ष सरकार द्वारा मनोनीत होगा।

इस समिति की रचना इत्यादि के सम्बन्ध म जून सन् १६४६ मे नियम बना दिये गये थे और फरवरी सन् १६५० म एक समिति भी बना दी गई। २७ जनवरी सन् १६५१ को भारत सरकार न बम्बई डॉक-कर्मचारियो की नौकरी के नियमो को

बनाने के उद्देश्य से एक योजना भी प्रकाशित की, जिसके अनुसार श्रमिक तथा मालिको दोनो का नाम रजिस्टर्ड किया जायगा। कोई भी रजिस्टर्ड श्रमिक किसी भी मालिक के यहाँ बिना अधिकारियो की आज्ञा के नौकरी नही कर सकेगा। इस योजना के अन्तर्गत यह व्यवस्था कर दी गई है कि यदि श्रमिक काम करने को उद्यत हो और उसे काम न मिले तो माह मे कम से कम १२ दिन तक उसे सचित कोष मे से मजदूरी तथा महगाई मिल सकेगी। सभी रजिस्टर्ड डॉक-कर्मचारियो की मजदूरी दर, महगाई भत्ता, काम के घण्टे विश्राम व अवकाश तथा उनकी अन्य दशाओ का निर्धारण उस बोर्ड के द्वारा किया जायेगा, जो कि योजना के प्रशासन के लिए बनाया जायगा।

कलकत्ता तथा मद्रास के डॉक-कर्मचारियों की दशाओ का नियमन करने के लिए भी सरकार ने अक्टूबर सन् १९५१ व मार्च सन् १९५२ मे योजनायें बना दी है। इनके प्रबन्ध के लिए बोर्ड भी बन चुके है और योजनाये कार्यान्वित की जा रही हैं।

(v) न्यूनतम मजदूरी सम्बन्धी सन्नियम

'न्यूनतम मजदूरी' से आशय—

'न्यूनतम मजदूरी' से आशय उस मजदूरी से है, जिससे कम मजदूरी देना जुर्म होता है। आजकल प्राय: सभी लोग यह स्वीकार करते है कि श्रमिको को उचित मजदूरी साधारणतया नही मिल पाती है। कुछ व्यवसायो तथा कुछ क्षेत्रो मे श्रमिको की पूर्ति अत्यधिक होने के कारण मजदूरी काफी नीचे गिर जाने की सम्भावना रहती है। इस नीची मजदूरी के अनेक दुष्परिणाम होते हैं। इससे देश की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन की शान्ति भग हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक सघर्षो को प्रोत्साहन मिलता है। यही नही, राज्य सरकार का भी जीवन सकट मे पड सकता है, अत इन दोषो के निवारणार्थ सरकार कुछ व्यवसायो मे अथवा देश के भीतर सभी व्यवसायो मे न्यूनतम मजदूरी नियत कर देती है। अभी तक लोगो की यह धारणा थी कि राज्य को मजदूरी के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही करना चाहिए और सेवायोजको का यह अधिकार होना चाहिए कि वे पारस्परिक वार्तालाप के फलस्वरूप जो मजदूरी उनके तथा श्रमिको के बीच तय हो वही देते रहे, किन्तु श्रमजीवियो की हीन दशा तथा उनके सौदे करने की निर्बलता को देखते हुए राज्य की ओर से हस्तक्षेप उचित समझा जाने लगा है। इस नवीन विचारधारा ने न्यूनतम भृत्ति प्रणाली को जन्म दिया। निर्धारित मजदूरी का देना कानूनी तौर पर अनिवार्य होता है, परन्तु इस प्रकार नियत की हुई मजदूरी से अधिक मजदूरी देने पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नही होता।

न्यूनतम मजदूरी की समस्या के दो अलग-अलग रूप हो सकते है—प्रथम, जबकि इस प्रकार की मजदूरी किसी विशेष उद्योग अथवा कुछ विशेष उद्योगो के लिए

नियत की जाती है और दूसरे, जबकि सारे देश के लिए एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर दी जाती है। इन दोना नीतियो के अलग-अलग परिणाम होते है। न्यूनतम भृत्त सन्नियम का प्रमुख उद्देश्य यह होता है कि श्रमजीवी सन्तुष्ट रहे और देश मे औद्योगिक शान्ति रह।

न्यूनतम भृत्ति निश्चित करते समय निम्न बातो को ध्यान म रखना चाहिए —

(१) मजदूरी इतनी हो कि श्रमिक सरलता से अपना तथा अपने परिवार का पालन पोषण कर सकें।

(२) न्यूनतम भृत्ति निश्चित करते समय उद्योग विशेष की आर्थिक दशा का भी विचार रखे।

(३) यह भी सम्भव है कि श्रमिक कुछ दिनो के लिए बेकार हो जावें, अतएव मजदूरी निर्धारित करते समय इस बात को भी ध्यान म रखना चाहिए।

श्रम आयोग का यह सुझाव है कि न्यूनतम पारिश्रमिक निर्धारक यन्त्र की स्थापना के पूव ऐसे उद्योगो को चुनना होगा, जिनके सम्बन्ध मे यह निश्चित धारणा है कि उनमे वेतन की दशा शोचनीय है और विस्तृत गवेषणा वाछनीय है। इन गवेषणाओ के आधार पर यह निश्चित किया जाये कि क्या न्यूनतम पारिश्रमिक का निर्धा रण व्यावहारिक एव वाछनीय है। इस प्रकार के निर्णय के बाद व्यय पर विशष रूप म आँख रखनी पडगी, क्योकि नियोक्ताओ की उदासीनता और कर्मचारियो के अज्ञान क कारण इन नियमा क पालन म बडी असुविधा और शिथिलता होनी है। यदि बिना भयकर परिणामो के वाछनीय उद्देश्य प्राप्त करता है तो गति को धीमा करना होगा।

भारतीय न्यूनतम भृत्ति अधिनियम की प्रमुख बातें —

भारतीय श्रम सन्नियम के इतिहास मे सन् १६४८ का न्यूनतम भृत्ति अधिनियम सचमुच एक आदश है। इसके अन्तगत केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो को आदेश द दिया गया है कि वे न्यूनतम भृत्ति निश्चित करें। यही नही, यदि वे चाहे तो समय-समय पर कुछ अनुसूचित कमचारियो की मजदूरयो पर पुन विचार भी कर सकती हैं। न्यूनतम भृत्ति निश्चित करने के लिए राज्य सरकार सलाहकार समितिया एव उप समितियाँ नियुक्त करेंगी। इसी प्रकार केन्द्रीय सरकार भी मजदूरी निश्चित करने के मामलो मे एकीकरण के उद्देश्य से राज्य सलाहकार बोर्डो को सलाह देने के लिए एक केन्द्रीय सलाहकार बोड नियुक्त करेगी। जो लोग निश्चित न्यूनतम भृत्ति से कम मजदूरी देगे उन्हे श्रम सन्नियम के अनुसार उचित दण्ड मिलेगा।

कानपुर श्रम जाच समिति न एव आधारभूत न्यूनतम मजदूरी का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। उन्होने यह सुझाव रखा है कि कोई भी काम करने वाला व्यक्ति महीने मे २६ दिन काम करके १५) स कम वेतन नही पायगा। उनकी सख्या को अब तिगुना करना होगा, अर्थात् १५) के स्थान पर ४५) न्यूनतम वेतन श्रमिको को

मिलना चाहिए। सन् १९३८ मे नियुक्त बिहार श्रम जाँच समिति ने जून सन् १९४० मे अपनी रिपोर्ट दी तथा अन्त म श्रमिको की दशा सुधारने के लिए अनेक सिफारिशें की, जिनमे से एक न्यूनतम भृत्ति के सम्बन्ध म भी थी। सन् १९४७ म केन्द्रीय वेतन आयोग की रिपोर्ट मे ऊँची श्रेणी स लेकर नीची श्रेणी के सरकारी कर्मचारियो के लिए वेतन का एक नया ढाचा स्वीकार करन की सिफारिश की गई है जिसके अनुसार न्यूनतम वेतन ३०) माहवार और अधिकतम वेतन २०००) होना चाहिए।

न्यूनतम मजदूरी के लाभ—

आधुनिक युग मे न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की प्रथा बडी लोकप्रिय हो गई है। न्यूनतम मजदूरी का नियत करना निम्न दृष्टिकोणो स उपयुक्त समझा जाता है—

(१) श्रमिको का एक जीवन-स्तर निश्चित हो जाता है। मजदूरी की नीची से नीची सीमा के निर्धारित हो जाने के कारण जीवन स्तर की भी न्यूनतम सीमा निश्चित हो जाती है।

(२) साधारणत मजदूरी बढ जाती है जिसके कारण कार्यक्षमता मे स्वत ही वृद्धि हो जाती है।

(३) अकुशल उत्पादक जो केवल श्रमिको के शोषण पर ही जीवित रहते हैं धीरे धीरे बाजार से गायब हो जाते है। राष्ट्र की आर्थिक कुशलता के दृष्टिकोण स यह अच्छा ही होता है।

(४) श्रमजीवी स तुष्ट हो जाता है और परिणामत औद्योगिक सघर्ष कम हो जाते है तथा काम भी अधिक अच्छा होता है।

न्यूनतम मजदूरी की हानियाँ—

(१) जब कुछ ही व्यवसायो म न्यूनतम मजदूरी निश्चित की जाती है तो उत्पत्ति के साधनो का उन व्यवसायो म दूसरे व्यवसायो को हस्तान्तरण होने लगता है और बेरोजगारी के बढने का भय उत्पन्न हो जाता है इसलिए केवल ऐसे ही व्यवसायो मे न्यूनतम मजदूरी ठीक रहेगी जिनमे वर्तमान मजदूरी बहुत ही नीची है।

(२) न्यूनतम मजदूरी अधिकतम मजदूरी बनने की प्रवृत्ति रखती है। सेवायोजक निश्चित से कम मजदूरी तो दे ही नही सकता ह परन्तु वह इससे अधिक भी यथासम्भव नही देगा। इसका अन्त म श्रमिको की कार्यकुशलता पर काफी बुरा प्रभाव पडता है।

(३) व्यावहारिक जीवन म न्यूनतम मजदूरी के दर का नियत करना भी कठिन होता है। यदि प्रतियोगी दरो स ऊँची दर रखी जाती है तो बेरोजगारी फैलने का भय रहता है और यदि न्यूनतम मजदूरी प्रतियोगी मजदूरो से कम रखी जाती है, तो वह अलाभकारी होती है।

(४) न्यूनतम मजदूरी की दर को लागू करना कठिन होता है। जिन क्षेत्रो एवं व्यवसायो मे श्रम की पूर्ति अधिक होती है, वहाँ मालिक के लिए केवल कागज पर ही न्यूनतम मजदूरी रहती है। वास्तविक जीवन मे इससे बचने के लिए मिल मालिक कम वेतन देकर अधिक पर हस्ताक्षर करा लेते हैं।

श्रम-नीति (Labour Policy)

प्रारम्भिक—

भारत मे श्रम नीति का विकास उद्योग और श्रमिक वर्ग की विशेष आवश्यकताओ और आयोजित अर्थ-व्यवस्था की जरूरत को देखते हुये किया गया है। मालिकों, मजदूरो और सरकार—तीनो दलो की राय विचार-विनिमय से जान ली जाती है। इस त्रिदलीय व्यवस्था के सर्वोच्च शिखर पर भारतीय श्रम-सम्मेलन है।

श्रम नीति सम्बन्धी आधुनिक विकास—

औद्योगिक सम्बन्धो की व्यवस्था इस प्रकार की गई है कि उद्योगों मे शान्ति का वातावरण रहे तथा मजदूरो को उचित न्याय मिले। इस बात पर जोर दिया जाता है कि जैसे ही औद्योगिक सम्बन्धो मे बिगाड आरम्भ हो, वैसे ही उसे रोकने के लिए समुचित उपाय किये जाये। इसके लिये पक्षकारो के दृष्टिकोण एवं विचारो मे एक आधारभूत परिवर्तन तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धो मे नवीन ढग का समायोजन होना आवश्यक है। उद्योग के लिये एक आचार सहिता स्वीकार की गई है, जो सार्वजनिक व प्राइवेट दोनो ही क्षेत्रो मे लागू होती है। आचार-सहिता मे प्रबन्धको एव श्रमिको के विशेष कर्त्तव्य निश्चित किये गये, ताकि उनमे सहयोग व सद्भावना का विकास हो। आचार सहिता की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसको धैर्य व ईमानदारी के साथ पर्याप्त अवधि तक कार्यान्वित किया जाय। वैसे इनके सुप्रभाव अभी से नजर आने लगे है। दोनो पक्षो की यह शिकायत रही है कि अवार्डो व समझौतो का पालन नही किया जाता। यदि ऐसी स्थिति जारी रहे, तो आचार सहिता का कोई अर्थ ही नही रहता। अतः अवार्डो व समझौतो का पालन कराने के लिए केन्द्र एव राज्यो मे एक कार्यान्वयन एव मूल्याकन मशीनरी बनाई गई है। द्वितीय योजना के अन्तर्गत दो विशेष विकास हुए, जिनसे भविष्य मे बहुत लाभ होने की आशा है। प्रथम, श्रमिको को अपनत्व का एव उत्पादकता बढाने मे लाभ का अनुभव कराने के लिए उनको प्रबन्ध मे भाग देने की योजना विकसित की गई। प्रयोग रूप मे २३ इकाइयो मे सयुक्त प्रबन्ध परिषदें स्थापित कर दी गई है। दूसरे, श्रमिको की शिक्षा के लिए एक योजना बनाई गई है, जिसके अन्तर्गत अध्यापक-प्रशासक (Teacher Administrators) एव श्रमिक-शिक्षक (Workers Teachers) प्रशिक्षित किये जायेंगे। श्रम समस्याओ पर जाँच पडताल करने के लिए स्वतन्त्र अनुसन्धान सस्थाओ को सरकारी सहायता देने का प्रबन्ध भी किया गया है।

तृतीय पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत श्रम नीति

श्रम नीति का दृष्टिकोण अथवा लक्ष्य—

अगले वर्षो म उन विचारो का प्रभाव पूर्ण रूप मे दिखाई पडने लगेगा जिन्हे द्वितीय पच-वर्षीय योजना मे अपनाया गया था। तीसरी योजना को भी श्रम-नीति का विकास करने तथा इसके आधारभूत उद्देश्यो की पूर्ति मे अपना सहयोग देना है। जो भी कदम उठाये जाय वे आयोजित आर्थिक विकास की न केवल तात्कालिक वरन् दीर्घ-कालीन आवश्यकताये पूरी करने वाले हो। प्रगति के लाभो म सभी पक्षो को न्याय-पूर्ण भाग मिले तथा आर्थिक व सामाजिक सगठन का विकास समाजवादी समाज के आदर्शानुसार हो। पच वर्षीय योजना के उद्देश्यो की पूर्ति मे श्रमिक वग एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रखता है और औद्योगीकरण की गति के साथ इसम अधिक वृद्धि होती जायेगी। आर्थिक सफलताओ का अनुमान केवल उत्पादन और आय के आँकडो से ही नही वरन् आर्थिक क्रिया के सभी पक्षकारो की भलाई मे लगाना चाहिए। एक ऐसे समाज का विकास होना चाहिए, जिसमे लोग अपने-अपने अधिक लाभ के लिए नही, वरन् सामान्य लाभ के लिए पारस्परिक दायित्व का अनुभव करते हुए कार्य करेंगे।

श्रम नीति के लक्ष्य की पूर्ति के लिए विविध आयोजन—

श्रम-नीति का जो लक्ष्य निश्चित किया गया है उसकी पूर्ति के लिए निम्न आयोजन किये गये है :—

(1) औद्योगिक सम्बन्ध—

(१) तृतीय पच वर्षीय योजना मे औद्योगिक सम्बन्धो का विकास उस आधार पर होगा जो कि गत तीन वर्षो मे आचार सहिताओ के कार्यान्वित होने मे विकसित हुआ है। आचार सहिता सम्बन्धी दायित्वो का ज्ञान श्रमिको एव सेवायोजको के सभी सग-ठनो को कराना होगा, ताकि औद्योगिक सम्बन्धो म अधिक सुधार हो। आचार सहिता की सत्ता पक्षकारो की सहमति पर निर्भर है। इस सत्ता को अधिक मजबूत बनाने की आवश्यकता है।

(२) श्रमिको एव सेवायोजको के मध्य उठने वाले मतभेदो को हल करने के लिए ऐच्छिक मध्यस्थता के सिद्धान्तो का प्रयोग बढाने के उपाय करने होगे। ऐच्छिक मध्यस्थता के मार्ग मे आने वाली बाधाओ को दूर करना होगा। सरकार को चाहिये कि क्षेत्रीय एव उद्योग वार आधार पर मध्यस्थो के पैनल बनाने म पहल करे।

(३) सेवायोजको एव श्रमिको के बीच मधुर सम्बन्धो का विकास करने के उद्देश्य से प्लान्ट स्तर पर वर्क्स कमेटियो की स्थापना की कानूनी व्यवस्था की गई है। यह आवश्यक है कि वर्क्स कमेटियो के कर्त्तव्यो को ट्रेड यूनियनो के कर्त्तव्यो से पृथक रखा जाय, जिससे उन्हे श्रम सम्बन्धी मामलो के जनतन्त्रीय प्रशासन की एक सक्रिय एजेन्सी बनाया जा सके।

(४) तृतीय पच-वर्षीय योजना की अवधि के लिये एक मुख्य कार्यक्रम नवीन उद्योगो एव इकाइयो मे **सयुक्त प्रबन्ध परिषदो की** योजना को अधिकाधिक बढाना है। जन-तन्त्रीय आधार पर आर्थिक व्यवस्था के शान्तिपूर्ण विकास के लिए यह आवश्यक है। प्रबन्ध मे श्रमिको को भाग देना एक मौलिक सिद्धान्त व गम्भीर आवश्यकता के रूप मे स्वीकृत कर ली जाय। कालान्तर मे इससे श्रम व प्रबन्ध के बीच खाई के भरन मे सहायता मिलेगी। उन सभी सस्थानो मे, चाहे वे सार्वजनिक क्षत्र मे हो या प्राइवेट क्षेत्र मे, जहाँ अनुकूल दशाय उपलब्ध हो, सयुक्त प्रबन्ध परिषदें स्थापित कर देनी चाहिए। जिन सस्थाओ मे सयुक्त प्रबन्ध परिषदे कायम हो गई है वहाँ श्रमिको की शिक्षा के लिए विस्तृत कायक्रम अपनाया जायेगा।

(५) **श्रमिको की शिक्षा** के लिए जो कार्यक्रम सरकार एक अर्द्ध स्वशासित बोर्ड के द्वारा चला रही है उसमे सभी सेवायोजको व श्रमिको के सङ्गठनो का सहयोग लिया जाना है। तृतीय योजना मे इस योजना को बड पैमाने पर चलाया जायगा। जब तक श्रमिक साक्षर नही होगे तब तक विभिन्न कायक्रमो को सफलता नही मिल सकती, अगले वर्षो म अधिक से अधिक श्रमिको को साक्षर करने का प्रयास होना चाहिए।

(६) **श्रम सघो** के दृष्टिकोण, कार्यो व प्रथाओ म बहुत परिवर्तन होना चाहिए, ताकि वे नवीन विकासशील परिस्थितियो म फिट हो सकें। उन्हे औद्योगिक एव आर्थिक प्रशासन का एक अनिवार्य अग मान लेना चाहिये, इनको भी चाहिये कि अपने दायित्वो को सच्चाई से निभायें, ट्रेड यूनियन के नेता स्वय श्रमिक वग से उपलब्ध होने चाहिए। आचार सहिता मे यूनियनो को मान्यता देने का जो आधार स्वीकृत किया गया है वह देश मे एक सुदृढ एव स्वस्थ ट्रेड यूनियन आन्दोलन का विकास कर सकेगा, ऐसा विश्वास है।

(७) **औद्योगिक सम्बन्ध मशीनरी के कर्मचारियो** पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। उनके चुनाव व प्रशिक्षण मे अधिक सावधानी रखनी होगी। ट्रिब्यूनल के सदस्यो व समझौता कराने वाले समुचित योग्यता स्तर के होने चाहिये, ताकि वे अपने कत्तव्यो को कुशलतापूवक पूर्ण कर सकें। इस आशय के लिये एक उपयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाने का प्रस्ताव है।

(II) मजदूरी एव सामाजिक सुरक्षा—

न्यूनतम मजदूरी विधेयक को पहले से अधिक अच्छी तरह लागू करने के लिए हमे निरीक्षण व्यवस्था को और अच्छा बनाना होगा। जैसे जैस सम्भव हो, वेतन मण्डलो को और उद्योगो म भी स्थापित करना चाहिए। बोनस सम्बन्धी दावो और बोनस की अदायगी के लिए निर्देशक सिद्धान्त और आदर्श निर्धारित करने की समस्याओ का अध्ययन करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति की जाएगी। जहा जहां ५०० या इसस अधिक औद्योगिक कर्मचारी है उन सभी केन्द्रो म **कर्मचारी राज्य बीमा**

योजना लागू की जायगी। इसके फलस्वरूप कुल मिलाकर लगभग ३० लाख श्रमिक इस योजना के अन्तर्गत आ जाएंगे। कर्मचारी प्राविडेण्ट फंड योजना का जो इस समय ५८ उद्योगों पर लागू है विस्तार किया जाएगा।

अब तक केवल संगठित उद्योगों के मजदूरों को ही सामाजिक सुरक्षा के दृष्टिकोण से लाभ पहुंचा है। मजदूरों के ऐसे वर्ग भी है, जिनकी स्थिति ऐसी है कि उनकी ओर समाज को अधिक ध्यान देना चाहिए। इनमें विशेष तौर पर वे विकलांग व्यक्ति, काम के अयोग्य वृद्ध व्यक्ति और स्त्रियां और बच्चे शामिल है, जिनकी आय का कोई उपयुक्त साधन नहीं है। स्वयंसेवी और खैराती संस्थाओं, नगरपालिकाओं, पंचायतों और पंचायत समितियों को स्थानीय समुदायों की सहायता से अपनी कार्यवाहियां चलाने योग्य बनाने और उन्हें थोड़ी सहायता देने के लिए एक छोटा सहायता कोष स्थापित करने का सुझाव विचाराधीन है।

(III) काम करने की दशायें सुरक्षा एवं कल्याण—

काम करने की स्थिति, सुरक्षा और कल्याण सम्बन्धी जो कानूनी व्यवस्थायें हैं, उनको और अच्छी तरह कार्यान्वित करवाने के लिए आवश्यक कदम उठाने होंगे। इस संबंध में काम करने की व्यवस्था और दक्षता सुधारने में केन्द्रीय श्रम संस्थान और क्षेत्रीय श्रम संस्थानों को विशेष योग देना है। कारखाना दुर्घटनाएं कम करने के लिए आवश्यक कदम उठाने के लिए एक स्थायी सलाहकार समिति की नियुक्ति की जायगी। खान उद्योग में सुरक्षा-शिक्षा और प्रचार के लिए एक राष्ट्रीय खान सुरक्षा परिषद की स्थापना की जाएगी।

(IV) रोजगार और प्रशिक्षण सुविधायें—

कारीगरों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अन्तर्गत ५८,००० नई जगहों की व्यवस्था की जायगी। इस वृद्धि के फलस्वरूप कुल प्रशिक्षण क्षमता बढ़ कर लगभग १ लाख हो जाएगी, ताकि उनकी रोजगार की सम्भावनाएं व्यापक हो जाएँ। दस्तकारी प्रशिक्षकों के लिए जो तीन केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थान हैं, उनका उन्नयन होगा और योजना की अवधि में तीन और केन्द्रीय संस्थानों की स्थापना की जाएगी। अप्रन्टिस शिक्षण योजना को अनिवार्य रूप देने का विचार है और इस सम्बन्ध में एक विधेयक संसद में पेश किया जाएगा। हर जिले में कम से कम एक रोजगार दफ्तर खोलने के लक्ष्य को सामने रखते हुए तीसरी योजना की अवधि में लगभग १०० नए रोजगार दफ्तर खोले जायेंगे। छंटनी किए गए कर्मचारियों की सहायता के लिए, छोटे पैमाने पर एक कोष की स्थापना करने का विचार है।

(V) उत्पादकता—

प्रबन्धकों को चाहिए कि वे श्रमिकों के लिए मशीन, काम करने के उपयुक्त स्थिति और तरीके, पर्याप्त प्रशिक्षण और उपयुक्त मनोवैज्ञानिक और भौतिक प्रेरणाएँ

प्रदान करने की कोशिश करें। काम में लगे श्रमिकों की योग्यता और दक्षता में वृद्धि करने के लिए उद्योग, मजदूर संघों और सरकार को मिलजुल कर प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारम्भ करने चाहिए। इस देश में जब तक उत्पादकता में निरन्तर वृद्धि नहीं होती, तब तक श्रमिकों के रहन-सहन के स्तर में वास्तविक सुधार नहीं हो सकता। श्रमिकों को अपने तथा देश के हित में वैज्ञानिकन के रास्ते में रुकावटें नहीं डालनी चाहिए, बल्कि उन्हें इसकी मांग करनी चाहिए। वैज्ञानिकन का अधिक से अधिक विस्तार हो सकता है, बशर्ते कि वैज्ञानिकन के फलस्वरूप निकाले हुए लोगों को श्रमिकों की सहमति से नौकरी में रखने और दूसरे कामों में लगाने की ठीक व्यवस्था हो। भारतीय श्रमिक सम्मेलन अब कार्यकुशलता और कल्याण-संहिता बनाने के काम को अपने हाथ में लेगा। विभिन्न स्तरों पर काम करने वाले प्रबन्धकों को मालिक-मजदूर सम्बन्धों के बारे में प्रशिक्षण देने पर और अधिक ध्यान देना होगा।

(VI) अनुसंधान—

सन् १९६० में श्रम-अनुसंधान पर हुए एक सम्मेलन में श्रम मामलों से सम्बन्धित आंकड़ों के अभाव की चर्चा हुई थी। इसे दूर करने के लिए एक केन्द्रीय समिति बनाई जायगी, जिसमें सरकार, सेवायोजकों व श्रमिकों के संगठनों, विश्वविद्यालयों आदि के प्रतिनिधि होंगे। यह समिति श्रम अनुसंधान कार्यक्रमों का समन्वय करेगी।

STANDARD QUESTIONS

1. Discuss briefly the broad features of existing factory legislation in India. How far does it safeguard effectively interests of the workers ?
2. Give a brief history of mining legislation in India during the last sixty years
3 Give a brief history of the Plantation Legislation in India, pointing out the important changes made in recent years.
5. Briefly summarize the history of Transport legislation in India with special reference to changes made in recent years.
5 Define 'Minimum Wage', and discuss the main provisions of the Minimum Wage Legislation in India. Briefly summarize the merits and demerits of a minimum wage.
6 Briefly summarise the Labour Policy of the Govt of India.

अध्याय ३४

लाभ अंश भागिता एवं औद्योगिक प्रबन्ध में श्रमिकों का भाग

(Profit Sharing & Workers' Participation In Management)

(I) लाभ अश भागिता (Profit Sharing)

प्रारम्भिक—

वर्तमान औद्योगिक प्रणाली के अन्तर्गत श्रम का महत्त्व दिन प्रतिदिन बढता चला जा रहा है। वे दिन चले गये जबकि श्रम को उत्पादन का एक सामान्य घटक समझा जाता था। फिलाडैलफिया घोषणा मे इस सिद्धान्त की पुष्टि की गई थी कि श्रम केवल एक वस्तु नही है, जिसका विनिमय-मूल्य मजदूरी हो, वरन् वह एक मनुष्य (Human being) है और इस नाते एक मानव की भाँति 'श्रम' को अपनी भौतिक तथा आध्यात्मिक प्रगति का पूर्ण अवसर मिलना चाहिये। इस परिवर्तित धारणा के आधार पर आज विश्व के प्रमुख औद्योगिक देशो मे लाभ अश भागिता (Profit Sharing) एव सहभागिता (Co-partnership) की योजनायें कार्यान्वित की गई। कुछ देशो मे तो लाभ अश भागिता एव सहभागिता दोनो को ही साथ-साथ लागू किया गया है। इस अध्याय मे औद्योगिक श्रमिको मे प्रेरणा पैदा करने की इन दो योजनाओ पर ही विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

'लाभ अंश भागिता' से आशय—

'लाभ अश भागिता' से आशय ऐसी व्यवस्था का है जिसके अन्तर्गत सेवायोजक अपने कर्मचारी को वेतन के अतिरिक्त अपने होने वाले लाभ मे एक पूर्व निश्चित अश देने के लिये प्रस्तुत होते है। हेनरी सीजर के अनुसार, "लाभ अश भागिता स्वतन्त्र इच्छा से किया गया एक ठहराव है, जिसके द्वारा कर्मचारियो को लाभ मे से एक पूर्व निश्चित भाग मिलता है।"[1] ब्रिटेन मे लाभ अश भागिता एव सहभागिता सम्बन्धी जो रिपोर्ट सन् १९२० मे प्रकाशित की गई थी उसमे लाभ अश भागिता का प्रयोग उन दशाओ के लिये किया गया है जिनमे एक सेवायोजक अपने श्रमिको से, उनके श्रम के आंशिक पुरस्कार के रूप मे तथा उनकी मजदूरी के अतिरिक्त, सस्था के लाभ मे से एक पूर्व निश्चित भाग देना तय कर लेता है।[2]

---

1 Henry R Seager—Principles of Economics, p 581
2 U. K Profit Sharing and Copartnership Report, 1920.

लाभ अंश भागिता की ४ मुख्य विशेषतायें हैं :—(१) लाभ का वह भाग जो श्रमिकों को वितरित किया जाता है, संस्था के असली लाभ अथवा अंशधारियों को दिये गये लाभांश पर निर्भर करता है एवं उसी के अनुसार घटता-बढ़ता भी है; (२) श्रमिक को लाभ का कितना प्रतिशत दिया जाय, यह पहले से ही निश्चित कर लिया जाता है। तत्पश्चात् सेवायोजक उसमें परिवर्तन नहीं कर सकते, (३) लाभ अंश भागिता की व्यवस्था का लाभ कुछ विशेष कर्मचारियों तक ही सीमित नहीं होता, वरन् इसका लाभ संस्था के प्रत्येक श्रमिक को मिलता है, और (४) वैयक्तिक लाभ अंश निर्धारण करने की मोटी रूप-रेखा सब श्रमिकों को पहले से ही ज्ञात होती है।

'लाभ अंश भागिता' योजना की वांछनीयता—

इस योजना के पक्ष में सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व *सामाजिक न्याय* का है। आज प्रायः सभी यह स्वीकार करने लगे हैं कि श्रम का उत्पादन मूल साधन है। यदि श्रमिक कार्य न करे, तो मनवांछित लाभ मिलना कठिन ही नहीं वरन् असंभव हो सकता है। संस्था को जो लाभ होता है उसका प्रमुख श्रेय श्रमिकों को ही प्राप्त है, उन्हीं के परिश्रम व पसीने के परिणामस्वरूप उच्चत्तर व श्रेष्ठतर उत्पादन संभव हो पाता है। अतः यह अन्यायपूर्ण होगा यदि संस्था के लाभ में उनको कोई भी भाग न दिया जाय। पूँजीपति वर्ग प्रायः समस्त लाभ पर अपना एकाधिकार समझता है। उसकी इस भावना से श्रम एवं पूँजी के बीच की खाई गहरी हो जाती है, जिसका परिणाम औद्योगिक संघर्ष, उत्पादन में कमी और उत्पादन के साधनों का अप-व्यय होता है। अतः यह न्यायसंगत प्रतीत होता है कि औद्योगिक शान्ति की स्थापना के हेतु लाभ-अंश भागिता की योजना को कार्यान्वित किया जाय। इस योजना के परिणामस्वरूप श्रम व पूँजी के हित परस्पर बंध जाते हैं, संघर्ष की आशंका कम हो जाती है एवं औद्योगिक उत्पादन बढ़ता है। इससे श्रमिकों में स्थाई रूप से कार्य करने की प्रवृत्ति भी प्रोत्साहित होती है। इसके अतिरिक्त वे श्रमिक जिन्हें लाभ में भाग प्राप्त होता है, बहुत सावधानी एवं परिश्रम से अपना कार्य करते हैं। परिणामतः श्रमिक माल का अप-व्यय कम करते हैं तथा मशीन व उत्पादन के यंत्रों का विशेष ध्यान रखते हैं। यही नहीं, उत्पादन की क्षमता भी बढ़ जाती है। रोबर्ट ओवन के शब्द इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं, जो कि उन्होंने एक मिल मालिक से कहे। इस मिल मालिक ने ओवन से कहा था कि यदि मेरे श्रमिक चाहें, तो अच्छा कार्य करके १०,००० पौंड प्रति वर्ष बचा सकते हैं। इस पर ओवन ने कहा कि "तब आप उनको ५,००० पौंड प्रति वर्ष इस कार्य के लिये क्यों नहीं दे देते हैं"। लाभ अंश भागिता का एक अन्य लाभ यह होता है कि ऊँची योग्यता वाले श्रमिक लाभ अंश भागिता वाली संस्थाओं के प्रति आकर्षित होते हैं। इससे उत्पादन क्षमता और भी बढ़ जाती है।

भारत मे लाभ अंशभागिता की योजनाये
(Profit Sharing Schemes in India)

विचार का विकास—

सन् १९४६ एव सन् १९४७ की औद्योगिक अशान्ति से विवश होकर दिसम्बर सन् १९४७ मे भारत के तत्कालीन वित्त मन्त्री श्री सन्मुखम चेट्टी ने अन्तरिम बजट बहस के समय इस बात की घोषणा की कि श्रमिको में अधिक उत्पादन के हेतु प्रेरणा पैदा करने के लिये सरकार लाभ अश भागिता की योजनाओ की सम्भावना पर विचार कर रही है। उसी समय भारत सरकार ने एक उद्योग-सम्मेलन (Industries Conference) बुलाया, जिसमे प्रान्तीय और देशी राज्य सरकारो के प्रतिनिधि, अनेक महत्त्वपूर्ण व्यापारी तथा उद्योगपति एव सगठित श्रम के नेताओ ने भाग लिया। इस सम्मेलन मे 'औद्योगिक शान्ति का प्रस्ताव' (Industrial Truce Resolution) रखा गया। उस प्रस्ताव मे इस बात का वर्णन था कि श्रमजीवी और पूँजीपति दोनो अपने सम्मिलित प्रयत्नो से हुई उत्पत्ति को आपस मे बाँट लेंगे, किन्तु यह तभी सम्भव होगा, जबकि—(अ) श्रमिको को उचित भृत्तियाँ दी जाय, (ब) पूँजीपतियो को उद्योग मे लगी हुई पूँजी का एक उचित प्रतिफल दिया जाय और (स) उद्योग को स्थिर रखने तथा बढाने के लिये भी उचित राशि रखी जाय। इसके बाद जो शेष बचे उसे पूँजीपति और श्रमिक दोनो बाँट ल।

सन् १९४८ मे भारत सरकार द्वारा औद्योगिक नीति की घ पणा मे यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। कुछ समय उपरान्त नई दिल्ली मे श्री जगजीवनराम की अध्यक्षता मे प्रान्तीय श्रम मन्त्रियो का एक सम्मेलन यह सलाह देने के लिये बुलाया गया कि पूँजी का क्या उचित पारिश्रमिक होना चाहिए तथा श्रम और पूँजी के बीच लाभ का वितरण किस प्रकार हो। इस सम्मेलन के निर्णयानुसार २५ मई सन् १९४८ को भारत सरकार ने 'लाभ अश भागिता' पर विचार करने क लिय विशेषज्ञो की एक समिति नियुक्त की। इस समिति के सभापति श्री एस० ए० वेंकटारमन थे। समिति ने अपनी रिपोर्ट १ दिसम्बर सन् १९४८ को पेश की।

सन् १९४८ की लाभाश भागिता समिति—

लाभ अश भागिता समिति, १९४८ के प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार है—वेंकटारमन समिति ने सम्बन्धित अनेक पहलुओ की विस्तृत जांच के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला कि लाभ अश भागिता की ऐसी प्रणाली का निर्धारण करना सम्भव नही है, जिसमे श्रमिको के लाभ का अश उत्पादन के अनुपातानुसार निश्चित किया जा सके। इस समिति ने निम्नलिखित ६ उद्योगो मे सर्वप्रथम ५ वर्ष की अवधि के लिये लाभ अश भागिता की योजना पर प्रयोग करने की सिफारिश की—(१) सूती वस्त्र उद्योग, (२) जूट उद्योग, (३) स्टील (मुख्य उत्पादन), (४) सीमेंट उद्योग, (५) टायरो का निर्माण व (६) सिगरेटो का निर्माण।

समिति ने बताया कि उद्योग के द्वारा प्राप्त किया गया लाभ श्रम के अतिरिक्त और भी अनेक साधनों पर निर्भर करता है। श्रम क्या करता है, क्या नहीं करता, इसकी लाभ से कोई सापेक्षिक माप नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त उत्पादन, उद्योग-उद्योग में और प्रत्येक उद्योग की इकाई-इकाई में भिन्न होता है। सामान किस तरह का है, संगठन व निर्देशन का कैसा स्तर है, इन बातों पर भी श्रम की उत्पादकता निर्भर होती है। *अतः अतिरिक्त लाभ में श्रमिक का भाग एक स्वच्छन्द ढंग से* (Arbitrarily) ही निश्चित किया जा सकता है। यदि एक बार श्रमिकों का कुल भाग अतिरिक्त लाभ में से निश्चित हो जाय तो उसे व्यक्तिगत श्रमिकों के मध्य किसी एक पिछले समय में उनकी प्राप्त कुल आय के अनुपात में वितरित किया जाना चाहिये। इस प्रकार की पद्धति से व्यक्तिगत पारिश्रमिक व्यक्तिगत प्रयत्नों के अनुसार कुछ सीमा तक सम्बन्धित हो जायेगा।

समिति ने अपनी रिपोर्ट में इस बात पर भी बल दिया कि लाभ अंश भागिता की योजना पर विचार करते समय निम्न तीन दृष्टिकोणों को सामने रखना चाहिये—(१) 'लाभ अंश भागिता' उत्पादन को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से की जानी चाहिये अथवा (२) लाभ अंश भागिता का उद्देश्य औद्योगिक शान्ति प्राप्त करना होना चाहिये अथवा (३) लाभ अंश भागिता श्रमिकों को प्रबन्ध में भाग देने के उद्देश्य से की जानी चाहिये। प्रथम दृष्टिकोण के सम्बन्ध में समिति का यह मत था कि यदि पिछली अवधि की कुल आय के अनुपात में श्रम के उत्पादन का भाग व्यक्तिगत रूप से वितरित कर दिया जाय तो उत्पादन अधिक करने में इससे व्यक्तिगत रूप से प्रोत्साहन मिलेगा। समिति ने जिस उद्देश्य से लाभ अंश भागिता की योजना को *कार्यान्वित करने की सिफारिश की वह यह था कि इससे औद्योगिक शान्ति को* प्रोत्साहन मिलेगा। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुये समिति ने यह सुझाव दिया कि किसी ऐसे वर्ष में जब श्रमिक या श्रमिकों के वर्ग उपयुक्त प्राधिकारियों द्वारा घोषित अवैध हड़ताल में भाग लेते हैं, तो लाभ का भाग पूर्ण अथवा आंशिक रूप में रोक लेना चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई अवैध तालाबन्दी है, तो अतिरिक्त लाभ की गणना लाभ अंशभागिता के लिये इस प्रकार की जानी चाहिये जैसे कि मानो कोई तालाबन्दी न हुई हो।

पूँजी पर उचित प्रतिफल क्या होना चाहिये, इस प्रश्न को लेकर समिति ने *अपनी रिपोर्ट में पूँजी की पूर्ण व्याख्या की है।* पूँजी को चुकता पूँजी (Paid-up Capital) माना है और इसके साथ साथ समस्त सेवाओं के भुगतान के लिये उस रिजर्व फण्ड को भी ले लिया है जो व्यवसाय में रखा जाता है। रिजर्व फण्ड में घिसाई फण्ड की रकम को सम्मिलित नहीं किया जायगा, वरन् केवल उसी सुरक्षित राशि को लिया जावेगा जोकि लाभ में से ली जाती है तथा जिस पर करों का भुगतान किया जाता है। समिति ने इस बात की सिफारिश की कि कुल लाभ में से सबसे पहले तो घिसाई कोष के लिए निधि निकाल लेनी चाहिये और शुद्ध लाभ में से सर्व प्रथम

रिजर्व फण्ड की राशि निकाल लेनी चाहिये। 'शुद्ध लाभ' से आशय यह है कि कुल लाभ म से घिसाई कोष, प्रबन्ध व्यय एव करो का भुगतान निकालने के बाद जो शेष रह जाता है वही शुद्ध लाभ है।

पूँजी की व्याख्या करने के बाद समिति ने इस पर उचित प्रतिफल के सम्बन्ध म यह निष्कर्ष निकाला कि उद्योगो मे (जिनके लिये लाभ अंश भागिता की योजना को लागू करने का सुझाव दिया गया था।) पूँजी का प्रतिफल कम से कम इतना हो कि प्रोत्साहन मिले और विनियोग बढ़ें। सब परिस्थितियों को देखते हुए प्रतिफल की उचित दर पूँजी पर ६% होनी चाहिये। यदि अतिरिक्त लाभ म से ५०% और मिल जाय, तो उद्योग उचित लाभांश घोषित कर सकेगा।

अतिरिक्त लाभ मे से श्रम का भाग कितना हो, इस विषय मे समिति ने यह निर्णय दिया कि यह व्यवसाय के अतिरिक्त लाभ का ५०% होना चाहिये। प्रत्येक श्रमिक का भाग उसकी पिछले १२ महीनो की कुल आय के अनुपात मे होना चाहिए। परन्तु इस आय मे मँहगाई भत्ता अथवा अन्य कोई बोनस जो उसके द्वारा प्राप्त किया गया हो, सम्मिलित नही होना चाहिए। यदि किसी श्रमिक का भाग उसकी मूल मजदूरी के २५% से बढ जाता है तो नगद भुगतान उसकी मूल मजदूरी के २५% तक सीमित होना चाहिये तथा शेष राशि उसके प्रावीडेन्ट फण्ड या अन्य किसी हिसाब मे रखी जानी चाहिये। सावधानी से विचार करने के उपरान्त समिति ने यह भी सिफारिश की है कि श्रमिको का लाभ अंश प्रत्येक औद्योगिक इकाई के आधार पर होना चाहिये किन्तु सूती वस्त्र उद्योग के विषय मे यह अपवाद रखा गया कि बम्बई, अहमदाबाद और शोलापुर मे लाभ का विभाजन उद्योग और स्थानीय क्षेत्र के सयुक्त आधार पर किया जा सकता है।

योजना का आलोचनात्मक मूल्यांकन—

लाभ अंश भागिता सन् १९४८ की प्रस्तुत रिपोर्ट म सभी सदस्य एक मत नही थे। मिल मालिको तथा श्रमजीवियो दोनो के ही द्वारा विभिन्न आधारो पर अनेक आपत्तियाँ उठाई गई। केन्द्रीय सलाहकार परिषद् जिसने इस रिपोर्ट पर विचार किया, किसी भी निष्कर्ष पर नही पहुच सकी। अगस्त व सितम्बर सन् १९५१ तथा जून १९५२ मे यह मामला बार बार सयुक्त सलाहकार मण्डल की सभाओ मे विचारार्थ प्रस्तुत किया गया। औद्योगिक विकास समिति द्वारा स्थापित सयुक्त सलाहकार मण्डल के प्रधान श्री गुलजारीलाल नन्दा ने अपने विचार इस प्रकार प्रगट किये —"लाभ अंश भागिता तथा बोनस जैसी समस्याओ की जटिलताओ को ध्यान मे रखते हुए यह नितान्त आवश्यक है कि अमेरिका, इङ्गलैंड जर्मनी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ एव भारत के विशेषज्ञो की सहायता से सिद्धान्तो आदर्शो और स्तरो की स्थापना की जाय। प्रथम पच वर्षीय योजना मे भी कहा गया है कि लाभ अंश भागिता और बोनस के प्रश्नो के लिए विशेष अध्ययन की आवश्यकता है। द्वितीय पच वर्षीय योजना ने भी इन सिद्धान्तो के विशेष अध्ययन पर बल दिया।

इस प्रकार लगभग १२ वर्षों से योजना को विकसित करने का प्रश्न लगातार सरकार के विचाराधीन है। अधिकाश मिल मालिको ने इस योजना का विरोध किया है। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कहा कि योजना को कार्यान्वित करना बिल्कुल असम्भव है। इस सम्बन्ध मे वे यह तक प्रस्तुत करते है कि वर्तमान समय मे, जबकि हमको पूँजी का निर्माण करना है एवं विदेशी बाजारो मे अपने देश के प्रति विश्वास पैदा करना है, ऐसी योजनाओं से सम्बधित परीक्षण जोखिमपूर्ण ही सिद्ध होंगे। यह भी कहा गया है कि श्रमिको को कार्यक्षमता बोनस, उपस्थिति बोनस आदि योजनाओ से कही अधिक लाभ हो सकता है। इसके विपरीत लाभ अश भागिता की योजनाओं के अस्पष्ट स्वरूप के कारण न तो इससे श्रमिको को ही लाभ होगा और न मिल मालिक ही लाभान्वित हो सकेंगे। 'टिस्को' का उदाहरण इस सम्बध मे भुलाया नही जा सकता। इस सस्था मे अधिकाशतः बोनस के रूप में श्रमजीवियो को असली लाभ का २२½% भाग दिया गया, परन्तु प्रति श्रमिक उत्पादन बढने के बजाय घट गया। उत्पादन मे इस कमी के अनेक कारण हो सकते हैं, परन्तु कुछ भी हो, यह योजना असफल रही।

निष्कर्ष—

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लाभ अश भागिता की योजना को कार्यान्वित करने मे अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ है। अन्य देशो मे भी इस योजना से सम्बन्धित प्रयोग विशेष उत्साहवर्द्धक सिद्ध नही हुए है। इसके विपरीत, मिलमालिको एव श्रमिको के बीच अविश्वास पैदा हो गया है। हमारी सम्मति मे भारत की वर्तमान आर्थिक एव सामाजिक परिस्थितियो के अन्तर्गत लाभ अश भागिता की योजना का प्रयोग श्रेष्ठकर ही होगा। आज हमारा देश एक विशेष प्रकार की क्रान्ति से गुजर रहा है। औद्योगिक अशान्ति के बादल मडरा रहे है। ऐसी परिस्थितियो मे श्रम वर्ग को सन्तुष्ट करने के लिये एव उसके साथ मानवीय व्यवहार करने के उद्देश्य से तथा औद्योगिक शान्ति की स्थापना के हेतु इस योजना का कार्यान्वयन वाछनीय है। इससे देश में औद्योगिक शान्ति बढेगी, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय सम्पत्ति मे वृद्धि होगी। हमारी पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत देश की सबसे बडी माग है "उत्पादन मे वृद्धि"। हमे अधिक उत्पादन के हित मे श्रमिको को सतुष्ट रखना पडेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सबसे सुगम उपाय यही है कि श्रमिको को भी उद्योग के लाभ मे भागीदार बनाया जाय।

(ii) औद्योगिक प्रबन्ध में श्रमिकों का भाग

(Workers' Participation in Management)

प्रारम्भिक—

औद्योगिक सम्बन्धो मे सुधार करने के विभिन्न उपायो के अन्तर्गत उद्योगो के प्रबन्ध मे श्रमिको के भाग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। फिलोडेलफिया घोषणा मे इस सिद्धान्त की पुष्टि की गई थी कि श्रम वस्तु नही है, जिसका विनिमय मूल्य मजदूरी

हो, वरन् वह एक मनुष्य है और इस लए एक मानव का भांति उसे अपनी भौतिक तथा आध्यत्मिक प्रगति का पूर्ण अवसर मिलना चाहिये। उद्योगों के प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग वाली योजना की तीन प्रधान विशेषतायें है—(१) श्रमिक निर्धारित वेतन के अतिरिक्त सस्था के असली लाभ का भी कुछ अश पाते है (२) श्रमिकों के वैयक्तिक लाभ का कुछ अश सस्था की पूँजी मे सम्मिलित कर लिया जाता है और (३) अश पूजी के स्थायी हानि के नाते श्रमिकों का सस्था के प्रबन्ध एव उसकी व्यवस्था म भी अधिकार मिल जाते है। इस प्रकार उद्योग के भविष्य का निर्माण करने का उन्हे भी सुअवसर मिलता है।

योजना के लाभ—

कम से कम सैद्धान्तिक दृष्टि मे तो यह योजना बडी आकर्षक प्रतीत होती है। सर्वप्रथम, यह एक सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति करती है और श्रमिक का सामाजिक स्तर ऊँचा करती है। ऐसी योजना के अभाव मे, श्रमिक प्राय यही समझते है कि वे एक बडी मशीन के कल पुर्जे मात्र है और सारी बात उन पर बरबस लादी जाती हैं, परन्तु उद्योग के प्रबन्ध म श्रमिकों के भाग की योजना मे इस समस्या का समाधान हो जाता है, क्योंकि उनके प्रतिनिधियों को मिल मालिकों से आमने सामने बैठकर बात करने का मौका मिलता है दूसरे यह योजना श्रमिको के हृदय मे परिश्रम एव प्रसन्नता से काम करने की प्रेरणा उत्पन्न करती है। उनके परिश्रम के फलस्वरूप ही सस्था को अधिक लाभ हो सकता है और अधिक से अधिक लाभ मे ही उनका भी लाभाश बढता है। यही प्रेरणा का स्रोत है। प्रबन्ध मे भाग लेने से श्रमिको को विश्वास उत्पन्न होता है जिससे उनकी कार्यक्षमता बढती है। बढी हुई कार्य क्षमता से केवल मिल मालिकों को ही लाभ नही होता वरन् मजदूरों की आय म भी वृद्धि होती है। तीसरे, सेवायोजक एव सेवायुक्त एक दूसरे के काफी निकट आ जाते है, क्योंकि उनके हित परस्पर बध जाते है। इसस उनम सहयोग की भावना बढती है और औद्योगिक सघर्ष की सभावना कम हो जाती है। इससे औद्योगिक जनतन्त्र स्थापित हो जाता है एव अपने भाग्य का स्वयं निर्णायक होने के कारण श्रमिक उत्तरदायित्व का अनुभव करते है।

योजना की कठिनाइयाँ—

मिल मालिक इस योजना का घोर विरोध करते है। इनके मतानुसार, औद्योगिक सस्था के प्रबन्ध म भाग लेने का अधिकार केवल उन्हे ही है और इसमे किसी का भी हस्तक्षेप नही होना चाहिए। यदि श्रमजीवी भी प्रबन्ध मे भाग लेंगे तो सेवायोजकों की वह शक्ति, जिसम व उद्योग को सकटकाल मे सफलतापूर्वक चला ले जाते है। नष्ट हो जायगी। सेवायोजक प्राय यह भी दलील देते है कि एक पहिये मे दो ड्राइवर होने से जिस प्रकार पहिया आगे नही बढ सकता उसी प्रकार उद्योग भी नही चल सकता। तीसरे, वे यह भी तर्क प्रस्तुत करते है। कि श्रमिकों के प्रतिनिधियों के पास

म तो पर्याप्त ज्ञान ही होता है और न टेक्नीकल अनुभव ही, अतः वे सही दशा मे उद्योग का मार्ग-दर्शन भी नही कर सकते है । सहभागिता की योजना की एक अतिरिक्त कठिनाई यह है कि यह योजना संयुक्त स्कन्ध प्रमण्डलो मे ही लागू की जा सकती है, अन्य संस्थाओ मे नही । श्री फिर्नले के विचार मे सहभागिता से विशेष लाभ की आशा नही है ।

उपर्युक्त तर्क देखने में सार्थक भले ही प्रतीत हो, परन्तु इसमे हमे यह न सोच लेना चाहिये कि सहभागिता की योजना पूर्णतः व्यर्थ है । स्वार्थी वर्ग ने सदैव प्रत्येक नई विचारधारा का विरोध किया है, चाहे वह प्रजातन्त्र हो, राष्ट्रीयकरण या सहकारिता ।

विदेशो मे योजना की प्रगति—

कुछ देशो मे औद्योगिक प्रबन्ध मे श्रमिको के भाग की योजना ने पर्याप्त उन्नति की है । इङ्गलैण्ड मे निजी एवं राजकीय दोनों क्षेत्रो के उद्योगो मे कर्मचारियो को भाग देने के लिए संयुक्त परामर्शदात्री समितियो का संगठन किया गया है । इन समितियो म मिल मालिक तथा मजदूर दोनो के प्रतिनिधि होते है और श्रमिको के प्रतिनिधियो का चुनाव गुप्त वोट द्वारा होता है । इन समितियो के प्रमुख कार्य निम्न हैं : –

(१) कर्मचारियो की सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा कल्याण का प्रबन्ध करना ।

(२) मजदूरो की ट्रेनिंग, शिक्षा एव अनुशासन सम्बन्धी नियमो तथा वैयक्तिक समस्याओ की देखभाल करना ।

(३) उत्पादन पद्धति मे सुधार करना तथा समय और मशीनो का अधिकतम उपयोग करना ।

(४) उद्योगो मे सुधार के लिये सुझाव देना ।

फ्रान्स मे श्रमजीवियो को उद्योगो के प्रबन्ध मे भाग देने की प्रथा का श्रीगणेश सन् १९४५ मे हुआ । एक अधिनियम द्वारा गैर सरकारी उद्योगो मे, यदि ५० से अधिक श्रमजीवी कार्य करते है, तो कार्य समितिया का संगठन अनिवार्य कर दिया गया । प्रत्येक राजकीय उद्योग मे कार्य समितियो का निर्माण किया गया है और कर्मचारियो का परामर्श प्रत्येक पहलू पर लिया जाता है ।

जर्मनी मे ऐसी योजना का नाम 'सह-निर्धारण' (Co-determination) है । इसके तीन मुख्य पहलू है —आर्थिक, वैयक्तिक तथा सामाजिक । श्रम-जीवियो की सहमति प्रत्येक महत्त्वपूर्ण मामले पर जैसे उनकी भर्ती, ट्रान्सफर, पदोन्नति, काम के घन्टे, मजदूरी की दर, छुट्टी इत्यादि मे ली जाती है । इस योजना के परिणामस्वरूप जर्मनी मे औद्योगिक उत्पादन बढा अथवा नही, यह तो निश्चित रूप से नही कहा जा

सकता, परन्तु यह सत्य है कि श्रमिकों म इससे काफी सन्तोष पैदा हो गया है। युगोस्लाविया, स्वीडन, डेनमाक, हालैण्ड, बेल्जियम आदि अन्य देशा मे भी उद्योगों के प्रबन्ध मे श्रमजीवियो को भाग दने की योजनायें कार्यान्वित हो चुकी हैं एव परिणामस्वरूप उसमे अधिक सन्तोष के वातावरण का निर्माण हुआ है।

भारत मे उक्त योजना का स्थान—

भारतवर्ष मे औद्योगिक प्रबन्ध मे श्रमिकों के भाग की योजना अभी भली प्रकार नही पनपी है। यत्र-तत्र द्वि-दलीय समितियो का निर्माण हुआ है, किन्तु उन्हे कर्मचारियों के भाग लेने की व्यवस्था नहीं कहा जा सकता। हाँ, भारत सरकार ने सन् १९४८ एव सन् १९५६ की नीतियो मे इस ओर सकेत किया। द्वितीय पच-वर्षीय योजना मे भी इसका उल्लेख है। योजनानुसार एक समाजवादी समाज की रचना लाभकारी सिद्धान्तो पर नही की जा सकती उसके लिये ता समाज सेवा के सिद्धान्त को अपनाना पडगा। यह आवश्यक है कि मजदूर समझे कि वह प्रगतिवान् राष्ट्र क निर्माण म अपना योग दे रहा है। प्रजातात्रिक समाज को सगठित करने के पहले औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना अति आवश्यक है। द्वितीय योजना के सफल सचालन क लिये कमचारियो का प्रबन्ध म अधिकाधिक सहयोग आवश्यक है। इससे उत्पादन बढ़ेगा, मजदूर उद्योग के बारे म अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकेगे और उन्हे अपने विचार प्रगट करने का मौका मिलेगा। इन सबका अन्तिम परिणाम होगा—औद्योगिक शान्ति की वृद्धि। प्रबन्ध म श्रमजीवियो को भाग दने की योजना को वास्तविक रूप प्रदान करना तथा इससे उत्पन्न होने वाली समस्याओ के सम्बन्ध म सूचना प्राप्त करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने १० सदस्य वाले एक मण्डल की स्थापना की, जिसने अक्टूबर सन् १९५६ मे भारत से बाहर ग्रेट ब्रिटेन फ्रांस जर्मनी स्वीडन यूगोस्लाविया और बेलजियम का दौरा किया।

अध्ययन मण्डल की सिफारिशें—

इस अध्ययन मण्डल की रिपोर्ट जून सन् १९५७ म प्रकाशित हुई। अपनी रिपोर्ट मे मण्डल ने तो विभिन्न देशो म प्रचलित व्यवस्था का विवरण दिया है और अन्त मे उसने भारतवर्ष म इस योजना को लागू करने के सम्बन्ध म निम्न सिफारिशें की है—

(१) श्रमजीवियो को प्रबन्ध मे भाग देने का अधिनियम किन उद्योगो पर लागू हो, यह निर्णय करने का अधिकार सरकार को होना चाहिये। अध्ययन मण्डल के मतानुसार छोटे उद्योगो को छोड देना उचित होगा। यह प्रणाली उन्ही उद्योगो म लागू की जाय, जिनकी प्रबन्ध-व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ हो।

(२) अध्ययन मण्डल का मत है कि यदि उद्योग या कारखाने की कई शाखायें न हो, तो उनके लिए एक ही सयुक्त परिषद होनी चाहिये। जो उद्योग विभिन्न स्थानो

मे फैले हुए है उनमे अलग-अलग स्थानीय, प्रादेशिक या राष्ट्रीय परिषदें होनी चाहिए। आवश्यकतानुसार इन परिषदो की उप-समितियाँ, प्राविधिक समितियाँ और अध्ययन गोष्ठियां होनी चाहिए, जो विभिन्न विषयो की देखभाल कर सकें।

(३) अध्ययन मण्डल ने अपनी रिपोर्ट मे लिखा है कि अनेक देशो मे प्रबन्ध परिषदा मे कर्मचारियो एव मालिको की सख्या बराबर रखी जाती है, किन्तु यह अनिवार्य नही है, क्योकि निर्णय तो आपस के सहयोग व समझौतो से होना चाहिए, न कि वोट से। अध्ययन मण्डल ने इस बात की विशेष रूप से सिफारिश की है कि सयुक्त प्रबन्ध परिषदा म शिल्पिको या टेक्नीकल कर्मचारियो को भी अवश्य स्थान दिया जाय।

(४) अध्ययन मण्डल का मत है कि सयुक्त प्रबन्ध परिषदो और श्रम सघो का काम स्पष्ट रूप से नियत कर देना चाहिये। सेवायोजको मे नौकरी के नियमो आदि के सम्बन्ध मे सौदा करने का काम श्रम सघो के हाथ मे होना चाहिए। कारण, श्रम सघो को सयुक्त प्रबन्ध परिषद् से सहयोग करना चाहिए।

(५) रिपोट मे कहा गया है कि कारखानो मे काम के नियम (Standing Orders), छटनी, रेशनालाइजेशन, कारखाने की बन्दी, नये तरीके अपनाने तथा दण्ड आदि मे प्रबन्ध परिषद से परामर्श किया जा सकता है।

(६) प्रबन्ध परिषद को यह भी अधिकार होना चाहिए कि वे उद्योग की आर्थिक स्थिति, बाजार की हालत, उत्पादन और बिक्री के कार्यक्रम, कारखाने के सचालन, आय-व्यय और हानि लाभ तथा वार्षिक चिट्ठो आदि की जानकारी प्राप्त करे और उनके बारे मे अपने सुझाव दें।

(७) प्रतिवेदनानुसार सयुक्त प्रबन्ध परिषदो की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य यह है कि श्रम एव पूँजी मे सम्पर्क रहे, श्रम-जीवियो के रहन सहन के स्तर मे सतोषजनक सुधार हो, श्रमिको को काम के सम्बन्ध म नये सुझाव देने के लिए प्ररणा मिले और कारखाने मे सम्बन्धित अधिनियमो और अनुबन्धो को पालन करने म सहायता मिले।

(८) प्रबन्ध-परिषदो मे निरुत्साह पैदा न हो, इस उद्देश्य से उन्हे सचालन तथा प्रशासन का कुछ काम सौंपना चाहिए, जैसे श्रमिको के लिए कल्याण-कार्य की व्यवस्था काम सिखाने की व्यवस्था, काम के घण्टो और छुट्टियो को तय करने तथा उपयोगी सुझावो के लिए इनाम देने आदि के काम उन्हे सौंपे जा सकते है।

(९) अध्ययन मण्डल ने कहा है कि हम जिन देशो मे गए वहाँ सवत्र श्रमिको के लिए कॉलेज, रात्रि कक्षायें, शिक्षा गोष्ठियाँ तथा पुस्तको के प्रकाशन की व्यवस्था है और ये सारे काय श्रम सघो द्वारा सचालित किये जाते है, किन्तु भारतवर्ष मे धनाभाव के कारण श्रम सघ ये कार्य नही कर सकते, अत. सरकार को आगे बढाना चाहिए।

(१०) अध्ययन मण्डल ने यह भी संकेत किया है कि विदेशो मे श्रमिको को प्रबन्ध मे भाग देने की योजनाओ मे उनकी शिक्षा पर बहुत जोर दिया जाता है। श्रम-सघ और कही-कही कारखाने, श्रमिका को टक्नीकल एव आर्थिक विषयो की शिक्षा देन का प्रबन्ध करते है।

(११) अध्ययन मण्डल ने यह सिफारिश की है कि श्रमजीवियो की शिक्षा के के प्रबन्ध के लिये त्रिदलीय सगठन हो और इस काम के लिये सेवायोजको और श्रम-जीवियो के सगठनो, विश्वविद्यालयो एव गैर सरकारी सस्थाओ से मदद ली जाय।

(१२) प्रतिवेदना मे कहा गया है कि श्रमिको के शिक्षित होने और कारखाने के प्रबन्ध का अनुभव प्राप्त होने के बाद उन्हे राजकीय उद्योगो मे प्रतिनिधित्व देने पर विचार किया जाय।

सयुक्त प्रबन्ध परिषदो के कार्य

अध्ययन मडल की रिपोर्ट मे इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि 'सयुक्त परामर्श का आशय केवल दानो पक्षो को मिलाकर बैठाना ही नही होना चाहिये, वरन् इसका तात्पर्य यह होना चाहिये कि सभी विषयो म सयुक्त रूप म परामर्श हो। टक्नीकल विशेषज्ञो और सुपरवाइजरो को भी परामर्श व्यवस्था मे सम्मिलित करना चाहिय। दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि सयुक्त प्रबन्ध परिषद् श्रम सघो की स्थाना-नही होनी चाहिये। अर्थात् मजदूरी, बोनस और निजी शिकायतो आदि पर ऐसी सयुक्त परिषदो द्वारा विचार नही किया जाना चाहिय।'

सयुक्त प्रबन्ध परिषदो को निम्नलिखित प्रश्नो पर विचार करना चाहिय (१) स्थाई आदेशो मे परिवर्तन, (२) श्रमिका की छटनी, (३) विवेकीकरण एव आधुनिकीकरण स सम्बन्धित प्रस्ताव, (४) सस्थान को बन्द करना या उत्पादन क्रियाओ को कम करना या बन्द करना, (५) सस्थान मे नई उत्पादन प्रणालियाँ लागू करना, (६) भरती एव दण्ड की कार्य-विधि।

सयुक्त प्रबन्ध परिषदो का निम्न विषयो मे सूचना प्राप्त करने तथा सुझाव देने का अधिकार होना चाहिये :—(१) सस्थान की सामान्य आर्थिक व्यवस्था, बाजार की प्रवृत्ति, उत्पादन तथा बिक्री कार्यक्रम, (२) सस्थान का सगठन तथा सामान्य सचालन, (३) सस्थान की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाली दशाय, (४) निर्माण कार्य की प्रणालियाँ, (५) वार्षिक स्थितिविवरण व लाभ-हानि खाता तथा अन्य सम्बन्धित लेख पत्र आदि।

इस भय को दूर करने के लिये कि परिषदो के कार्य के प्रति उदासीनता न आ जाय, इन परिषदो को कुछ प्रशासनिक उत्तरदायित्व सौंपे जा सकते है, जैस—(१) कल्याण कार्यों का प्रशासन, (२) सुरक्षा-उपायो की देखभाल, (३) व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा शिक्षार्थी योजनाओ का सचालन, (४) कार्य के घन्टे और आराम के लिय

अनुसूची तैयार करना, (५) छुट्टियों की अनुसूची बनाना तथा (६) महत्त्वपूर्ण सुझावों के लिये पारितोषण की व्यवस्था करना।

अध्ययन मंडल परिषदों के निर्माण में किसी भी बंधन अथवा अनिवार्यता के विरुद्ध था। वह केवल ऐसे कानून बनाने के पक्ष में था, जिसके अन्तर्गत ऐसी परिषदों के निर्माण की अनुमति मात्र मिल जाय। यदि किसी संस्थान की विभिन्न स्थानों पर विभिन्न इकाइयाँ न हों, तो एक संस्थान के लिये केवल एक ही परिषद् बनाने की सिफारिश की गई थी।

भारतीय श्रम सम्मेलन द्वारा स्वीकृति—

अध्ययन मंडल की प्रमुख सिफारिशें जुलाई सन् १९५७ में हुये भारतीय श्रम सम्मेलन के १५वें वार्षिक अधिवेशन में स्वीकार कर ली गईं। इस सम्मेलन के निर्णयानुसार १२ सदस्यों की एक उपसमिति बनाई गई, जिसका काम यह था कि इस विषय में अधिक गम्भीरता से जाँच पड़ताल की जाय और इस बात का विचार किया जाय कि प्रारम्भ में ऐच्छिक आधार पर कुछ चुनी हुई संस्थाओं में "औद्योगिक प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने की योजना" लागू हो सकती है या नहीं। इस उपसमिति ने यह सिफारिश की कि पहले यह योजना सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के चुने हुये ५० औद्योगिक संस्थानों में चलाई जानी चाहिये। परिणामतः ऐसी औद्योगिक संस्थाओं की सूची तैयार की गई। यह निर्णय किया गया कि परीक्षण हेतु जो इकाई छाँटी जायें उनको निम्नलिखित आधार पर चुना जाय :—

(१) उनमें सुदृढ़ एवं शक्तिशाली श्रम संघ हो।
(२) उनमें कम से कम ५०० श्रमिक काम करते हों।
(३) मालिक और श्रम संघ दोनों ही केन्द्रीय संगठनों के सदस्य हों।
(४) संस्थान की इस बात में कुछ साख हो कि उसमें औद्योगिक सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण रहे हैं, और
(५) श्रम व पूँजी दोनों ही पक्ष इस योजना को सहयोग की भावना से लागू करने के हेतु तैयार हों।

उप-समिति ने यह भी निर्णय किया कि एक पूरे संस्थान के लिये केवल एक परिषद् होनी चाहिये। श्रमिकों के प्रतिनिधियों को श्रम-संघों द्वारा मनोनीत किया जाना चाहिये तथा श्रमिकों के प्रतिनिधियों में बाहरी व्यक्तियों की संख्या २५% से अधिक नहीं होनी चाहिये। संयुक्त परिषद् में सदस्यों की संख्या १२ से अधिक न हो तथा परिषद् की बैठकें भी काम के घन्टों के दौरान में ही होनी चाहिये।

श्रम प्रबन्ध सहयोग सेमिनार—

३१ जनवरी एवं १ फरवरी सन् १९५८ को नई दिल्ली में हुये श्रम-प्रबन्ध सहयोग सेमिनार (Labour Management Co-operation Seminar) में भी

उपसमिति की सिफारिशों पर विचार किया गया। इस सेमिनार की अध्यक्षता केन्द्रीय श्रम व रोजगार मंत्री श्री गुलजारीलाल नन्दा ने की। इसमें मिल मालिकों, श्रमजीवियों व सरकार के लगभग १०० से भी अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इन प्रतिनिधियों में से कुछ प्रतिनिधि उन संस्थाओं से सम्बन्धित थे, जिनमें योजना पहले से कार्यान्वित की जा रही थी अथवा जिन्होंने योजना को सिद्धान्ततः स्वीकार कर लिया था। सेमिनार में प्राय सभी लोग इस बात पर एक मत थे कि संयुक्त परिषदों में मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों की संख्या बराबर बराबर होनी चाहिये तथा यह संख्या १२ से अधिक भी नहीं होनी चाहिये जिससे कि परिषदों का कार्य प्रभावशाली ढंग से किया जा सके एवं उनका प्रबन्ध भी स्वतन्त्रतापूर्वक हो सके। छोटी संस्थाओं में सदस्यों की संख्या ६ से कम नहीं होनी चाहिये। सेमिनार में इस बात पर भी सब सहमत थे कि जो भी निर्णय लिये जाय वे सर्वसम्मति से स्वीकृत हों। इस बात पर भी सब सहमत थे कि श्रमिकों के प्रतिनिधि स्वयं श्रमिक ही होने चाहिये, परन्तु जहाँ श्रम संघ यह अनुभव करे कि बाहरी व्यक्तियों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिये, तो ऐसी दशा में बाहरी सदस्यों की संख्या एक (२५% से अधिक नहीं) या, पारस्परिक समझौते से २ तक सीमित होनी चाहिये। संयुक्त परिषदें इकाई के आधार पर स्थापित की जानी चाहिये। जहाँ एक संस्थान में अनेक विभाग है, वहाँ के लिये सेमिनार में यह निर्णय किया गया कि संयुक्त परिषदों में प्रतिनिधित्व का प्रश्न संघ एवं संस्थान पर ही छोड़ देना चाहिये। एक ही क्षेत्र तथा एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत यदि विभिन्न संस्थान हों, तो उनके सम्बन्ध में यह निर्णय किया गया कि योजना को पहले तो इकाई के आधार पर आरम्भ करना चाहिये और बाद में जब कुछ अनुभव हो जाय, तो एक केन्द्रीय परिषद की स्थापना की जा सकती है।

अन्त में यह निर्णय किया गया कि प्रबन्ध में श्रमिकों का जो भी भाग हो वह संयुक्त प्रबन्ध परिषदों के रूप में हो। इन परिषदों के तीन पृथक कार्य होंगे :—

(I) ऐसे कार्य जिनके अन्तर्गत परिषद का उत्तरदायित्व परामर्श देना होगा, उदाहरणतः निम्न विषयों में :—

(i) स्थायी आदेशों का प्रशासन।

(ii) उनमें संशोधन।

(iii) उत्पादन की नई विधियाँ लागू करना।

(iv) कुछ प्रक्रियाओं में कमी करना, उन्हें कुछ समय के लिये रोकना अथवा पूर्णतः बन्द करना, इत्यादि।

(II) ऐसे कार्य जिनके अन्तर्गत परिषदों को सूचना प्राप्त करने का अधिकार होगा, उदाहरणतः निम्न विषयों में—

(i) सस्थान की सामान्य चालू रहने की योग्यता,
(ii) बाजार की दशा, उत्पादन तथा बिक्री कार्यक्रम,
(iii) सस्थान का सगठन तथा सामान्य सचालन,
(iv) उत्पादन और कार्य विधियाँ,
(v) विस्तार तथा इसी प्रकार के कायक्रमो की योजना इत्यादि।

(III) ऐसे कार्य जिनके अन्तगत परिषद का दायित्व प्रशासनात्मक होगा, उदाहरणतः निम्न विषयो मे :—
(i) कल्याण कार्य,
(ii) सुरक्षा कार्यक्रम,
(iii) व्यावसायिक प्रशिक्षण और शिक्षार्थी योजनाये,
(iv) कार्य सूची तैयार करना, तथा
(v) पारितोषण की व्यवस्था, इत्यादि।

इसके पश्चात् ५० इकाइयो मे उपरोक्त निर्णयो को लागू करने तथा सयुक्त प्रबन्ध परिषदो के स्थापित करने के प्रयत्न किये गये। निम्नलिखित ३ निजी सस्थानो एव राजकीय यातायात (State Transport) मद्रास ने अपने श्रमिको को प्रबन्ध मे भाग देने की योजनाय कार्यान्वित की हैं:—(१) टाटा लौह एव स्पात कम्पनी जमशेदपुर, (२) सिम्पसन ग्रूप इन्डस्ट्रीज मद्रास, (३) मोदी बुनाई व कताई मिल्स, मोदीनगर। निम्नलिखित ३ सस्थाओ मे विभागीय उत्पादन समितियो की भी स्थापना की गई :—(१) टाटा लोहा व स्पात कम्पनी, (२) मोदी बुनाई व कताई मिल्स, (३) इडियन अल्यूमिनियम वर्क्स लि० बैलूर (प० बगाल)। टाटा लोहा व स्पात कम्पनी जमशेदपुर तथा इडियन अल्यूमिनियम वर्क्स बैलूर मे योजना के विषय मे त्रिदलीय दलो द्वारा २ अध्ययनो की रिपोर्ट भी प्रकाशित की गई, जिनमे इस क्षेत्र मे हुई प्रगति का उल्लेख है।

सन् १९६० का द्वितीय सेमिनार—

आठ व नौ मार्च सन् १९६० को नई दिल्ली मे श्रमिको के प्रबन्ध मे भाग लेने के विषय पर दूसरा सेमिनार हुआ। इस सेमिनार की प्रमुख सिफारिशे निम्नलिखित थी :—

(१) केन्द्रीय एव क्षेत्रीय स्तरो पर एक उचित व्यवस्था की जाय, जो यह देखे कि सयुक्त प्रबन्ध परिषदें प्रभावात्मक रूप से कार्य कर रही हैं या नही।
(२) इस योजना को और अधिक सस्थाओ तक शीघ्रता से विस्तृत करना चाहिये।

(३) केन्द्र मे एक त्रिदलीय समिति की स्थापना की जानी चाहिये, जिससे समय समय पर इस योजना की प्रगति का अवलोकन किया जा सके और परिषदो के मार्ग मे आने वाली कठिनाइयो का पता चल सके।

(४) एक ऐसे अधिकारी की नियुक्ति की जानी चाहिये, जो इन संस्थानो से सूचनाओ को एकत्र कर सके जहाँ कि योजना लागू है।

(५) योजना को लागू कराने के लिये अधिनियम बनाने की आवश्यकता नही है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन—

सितम्बर सन् १६५८ मे केन्द्रीय श्रम मत्रालय द्वारा प्रकाशित एक विज्ञप्ति मे कहा गया कि श्रमिको के प्रबन्ध मे भाग लेने के सम्बन्ध मे जो भी प्रगति हुई है वह निराशाजनक है। मार्च सन् १६६० मे श्री गुलजारीलाल नन्दा ने भी कहा था कि वे इस योजना की प्रगति से विशेष सन्तुष्ट नही है। मार्च सन् १६६० तक ५० मे से केवल २३ इकाइयो ने योजना को लागू किया था, जिनमे से १५ तो सरकारी क्षेत्र मे थी और शेष ८ निजी क्षेत्र मे। योजना को लागू करने वाली इकाइयो ने न तो सयुक्त परिषदो की कार्यवाहियो के विषय मे कोई ठोस सूचना प्रदान की है और न ही ऐसे विशेषज्ञो से परामर्श लिया है जिनकी नियुक्ति श्रम मन्त्रालय ने इन परिषदो को सहायता देने के लिये की है। इस मन्द प्रगति का कारण दोनो पक्षो मे सदेह और भय की भावना है। अधिकतर श्रमिक अशिक्षित होते हैं। परिणामतः प्रबन्ध मे भाग लेने के सम्बन्ध मे उनके विचार अस्पष्ट होते हैं। आधुनिक औद्योगिक सस्थाओ मे प्रबन्ध के लिये टेक्नीकल, प्रशासनात्मक तथा वित्तीय क्षेत्रो मे कुशल ज्ञान की आवश्यकता पडती है, जिनका श्रमिको मे इस समय अभाव है। इसके अतिरिक्त अनेक मिल मालिक अपने अधिकारो को छोडने के लिये तैयार नही है। जहाँ कही भी ये योजनायें लागू की गई है, वहाँ मालिको की विशेष रुचि इसका कारण नही है, वरन् अनेक स्थानो पर श्रमिको को केवल बहकाने के लिये यह योजना कार्यान्वित की गई है।

यह सत्य है कि विश्व के कुछ उन्नतिशील राष्ट्रो मे 'औद्योगिक प्रबन्ध मे श्रमिकों के भाग की योजनायें सफल हुई है, परन्तु हमको यह नही भूलना चाहिये कि भारत की परिस्थितियाँ इनसे भिन्न है। हमको ऐसी योजनाये कार्यान्वित करनी चाहिये, जो हमारी सामाजिक एव आर्थिक स्थिति के अनुरूप हो। यदि इस योजना मे सफलता प्राप्त करनी है, तो हमे इसे धीरे-धीरे चलाना चाहिये और अगला कदम उठाने से पूर्व पहले कदम को ठीक प्रकार से जमा लेना चाहिये। श्री वी० वी० गिरि ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि श्रमिको का औद्योगिक प्रबन्ध मे भाग लेना वास्तविक अर्थ मे उसी दशा मे सार्थक सिद्ध होगा, जब श्रमिक और प्रबन्धक दोनो मे यह भावना आ जाय कि उन्हे कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करना है और अपने-अपने

उत्तरदायित्वो को ठीक-ठीक समझना है। दोनो पक्षो को यह समझना चाहिये कि वे एक ऐसी औद्योगिक प्रणाली मे सहभागी है, जो समाज को आवश्यक वस्तुये प्रदान करती है और इसलिए जनता के हितो की रक्षा करना उनका 'धर्म' है।

STANDARD QUESTIONS

1 Define the term 'Profit Sharing' How far is it a panacea for Industrial ills ?
2 Attempt a lucid essay on "Profit sharing Schemes in India."
3. Write an essay on 'Workers Participation in Management'

अध्याय ३५

पूँजी निर्माण एवं बाजार

(Capital Formation & Capital Market)

पूँजी-निर्माण (Capital Formation)

'पूँजी-निर्माण' से आशय –

पूँजी का निर्माण तब होता है जब कि बचाई हुई आय का कुछ भाग उत्पादक प्रयोगो मे लगा दिया जाय। यदि कोई व्यक्ति अपनी आय का कुछ भाग उपभोग न करे, तो केवल इतने से ही पूँजी का निर्माण नही हो जायेगा। पूँजी का निर्माण होने के लिये उपभोग को स्थगित रखने की क्रिया के साथ उत्पत्ति के साधनो की वृद्धि होना भी आवश्यक है। अर्थात् पूँजी निर्माण की क्रिया तब गतिशील होती है जब कि उपभोग से बचाई हुई आय उत्पादन के लिये प्रयोग की जाय। यह आवश्यक नही है कि बचत करने वाला स्वय ही साहसी हो वरन् वह अपनी क्रय शक्ति या मुद्रा अन्य लोगो के सुपुर्द कर सकता है, जो कि अधिक प्रभावपूर्ण ढग से उसका प्रयोग कर सकते हैं। बचतो के हस्तातरण का कार्य बैक आदि सस्थाओ द्वारा ऋण लेने-देने की क्रियाओ

द्वारा अथवा पूँजी बाजार के द्वारा सम्पन्न होता है। यह उल्लेखनीय है कि पूँजी के निर्माण पर दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है—(१) मौद्रिक दृष्टिकोण मे पूँजी निर्माण व्यक्तियो या संस्थाओं म बचतो का संग्रह करने की क्रिया है, और (२) भौतिक दृष्टिकोण से पूँजी निर्माण का अर्थ है नया निर्माण तथा वस्तुओं का शुद्ध उत्पादन। भौतिक दृष्टिकोण ही पूँजी निर्माण का सही अर्थ प्रस्तुत करता है। अतः हम कह सकते है कि नये निर्माणों, उत्पादकों की स्थाई साज-सज्जा के विस्तार, स्टॉक की वृद्धि एव विदेशी विनियोगो मे बचतो के प्रयोग करने की क्रिया ही 'पूँजी का निर्माण' है।

पूँजी निर्माण का महत्त्व—

'मुद्रा' वह धुरी है जिस पर आर्थिक क्रियाओं का चक्र घूमता है। अत' पूँजी ही वह आधार है जिस पर किसी राष्ट्र की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का विशाल ढाँचा खड़ा होता है। यदि हम उत्पादकता मे वृद्धि करना चाहते है तथा यदि आय और रोजगार के स्तरों मे वृद्धि करने के इच्छुक हैं, तो यह तभी सम्भव है जबकि पूँजी के निर्माण की दर [illegible] जाय।

आज [illegible]िवाहियो के [illegible]कसित देशो मे पूँजी निर्माण की गति का बढाने की बड़ी आवश्यकता है, [illegible]मर्श लिया है [illegible] और बेकारी के कुचक्र से मुक्ति प्राप्त कर सकते है। वर्तमान दु[illegible]ये की है। इस म[illegible]त मे लगाया जा सकता है कि एशिया, दक्षिणी-पूर्वी यूरोप व लेटि[illegible] अधिकतर श्रमिक [illegible] देशों मे निम्न आय वर्ग की ६६% जन-सख्या के पास विश्व[illegible] उनके विचार अस्पष्ट होते है। आधुनि है, जबकि अमेरिका, कनाडा व यूरोप और [illegible]कल, प्रशासनात्मक तथा वित्तीय क्षेत्रों सख्या के पास विश्व की ६७% आय है। इस[illegible]नका श्रमिको मे इस समय अभाव [illegible]समाप्ति तभी हो सकती है जबकि अविकसित दे[illegible]धिकारो को छोड़ने के लिये तैया

वि[illegible], वहाँ मालिको की [illegible] रुचि [illegible]रिस्थितियो मे हुआ है। उदाहरण के लिये, ब्रिटेन[illegible]मको को केवल बहुक[illegible] आय का १०% और तेजी के काल मे १५% शुद्ध[illegible] है कि [illegible] है। यद्यपि विनियोग की दर १० मे १५% के बीच परिवर्तित [illegible] की योज[illegible]पि उसन सन् १८७० और १९१३ के मध्य अपनी राष्ट्रीय आय मे १५% [illegible]रिस्थिति थी। इसी प्रकार, अमेरिका मे सन् १८६९–१९१३ के बीच शुद्ध विनि[illegible] (अर्थात् पूँजी के निर्माण) की दर १३ से १६% के मध्य रही और वहाँ इस [illegible]धि मे राष्ट्रीय आय ५ गुनी बढ गई। जापान मे नई पूँजी का निर्माण सन् १९०[illegible] व सन् १९०९ के मध्य औसतन राष्ट्रीय आय का १२% रहा, जबकि उसकी जन-सख्या [illegible] वार्षिक औसत वृद्धि १¾% थी। इस अवधि मे वहाँ प्रति व्यक्ति आय दूनी हो गई[illegible] रूस मे सन् १९२८–३८ के मध्य शुद्ध विनियोग की दर राष्ट्रीय आय का २०% थी [illegible]इस अवधि मे वहाँ राष्ट्रीय आय मे १३% वृद्धि हो गई।

उपरोक्त सम्बन्धो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक पीढ़ी या दो पीढ़ी मे प्रति व्यक्ति आय को दूना करने के लिये अधिकांश देशो मे शुद्ध विनियोग राष्ट्रीय आय के १२ से १५% तक की दर में हुआ है। अविकसित देशो में जहाँ रहन-सहन स्तर बहुत नीचे है तथा जन सख्या तेजी से बढ रही है, वहाँ समुचित आर्थिक विकास (जो कि आवश्यकताओं के अनुरूप हो) तभी सम्भव है जबकि पूँजी के निर्माण की दर राष्ट्रीय आय के २०% के बराबर हो। पूँजी के निर्माण की दर जितना अधिक होगी, उतना ही अधिक आर्थिक विकास होगा।

भारत मे पूँजी निर्माण की दर के सम्बन्ध में योजना कमीशन के अनुमान—

भारत मे योजना आयोग ने निम्न मान्यताओ के आधार पर अगले कुछ दशाब्दो मे विकास की सम्भावित दरो मे सम्बन्धित अनुमान लगाये हैं :—(i) जन संख्या मे प्रति वर्ष वृद्धि बराबर ही १¼% की दर म होती रहेगी, (ii) राष्ट्रीय उत्पत्ति और आय मे एक इकाई वृद्धि के लिये पूँजी के स्टॉक मे ३ गुनी वृद्धि करनी होगी तथा विनियोग की तिथि से तीसरे वर्ष मे उत्पादन की वृद्धि दृष्टिगोचर होगी; और (iii) प्रत्येक अवधि मे जो अतिरिक्त आय हो उसे पुनः विनियोग करने के सम्बन्ध मे वांछित विकास की दर के अनुसार अनुपात चुनने की सुविधा है। भारत की राष्ट्रीय आय का अनुमान सन् १९५०–५१ के लिये ९,००० करोड रु० का था। इस आधार पर, कमीशन ने गणना द्वारा यह बताया कि २७ वर्षों मे राष्ट्रीय आय में १६०% वृद्धि की जा सकती है तथा प्रति व्यक्ति आय को दूना किया जा सकता है, बशर्ते प्रतिवर्ष अतिरिक्त आय के ½ के बराबर वृद्धि पूँजी-निर्माण मे कर दी जाय। लेकिन विकास की यह दर समाज के उपलब्ध साधनो पर अत्यधिक भार डालने वाली समझी गई। संगठनात्मक कठिनाइयाँ उपस्थित होने का भय भी था।

द्वितीय पच-वर्षीय योजना का उद्देश्य राष्ट्रीय आय मे २५% की वृद्धि करना, रोजगार के अवसरो का इतना विस्तार करना कि जन-संख्या मे वृद्धि के फलस्वरूप श्रम-शक्ति की जो वृद्धि हो उसे भी काम मिल जाय तथा औद्योगीकरण की दशा मे साहसिक कदम उठाना, जिससे अगली योजनावधियो मे अधिक तीव्र विकास के लिये भूमि तैयार हो सके। यह अनुमान लगाया गया था कि राष्ट्रीय आय सन् १९५५-५६ में १०,८०० करोड रु० से सन् १९६०-६१ मे १३,४८० करोड रु० (अर्थात् २५% वृद्धि, हो जायेगी। इसका अर्थ प्रति व्यक्ति आय सन् १९५५-५६ मे २८१ से सन् १९६०-६१ मे ३३१ रु० (अर्थात् १८% वृद्धि) होना और प्रथम योजना काल मे २५३ रु० मे २८१ रु० (अर्थात् ११% वृद्धि होना)। इस सम्बन्ध मे निम्न तालिका पर्याप्त प्रकाश डाल सकती है :—

राष्ट्रीय आय, विनियोग एवं बचत

(करोड रु० मे)

	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१
१. राष्ट्रीय आय	९,११०	१०,८००	१३,४८०
२. शुद्ध विनियोग	४४८	७९०	१,४४०
३. शुद्ध प्रवाह विदेशी प्रसाधनो से	(–)७	३४	१३०
४ शुद्ध घरेलू बचत	४५५	७५६	१,३१०
५. राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप मे विनियोग	४०९४	७ ३१	१०'६८
६. राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप मे घरेलू बचत	४ ९८	७'००	९'७

द्वितीय पच-वर्षीय योजना की अवधि मे ६,२०० करोड रु० का विनियोग करने का प्रोग्राम था, जिसके लिये घरेलू बचत की दर को सन् १९५५-५६ मे ७% से सन् १९६०-६१ मे लगभग १०% तक बढाना आवश्यक हो गया। ६,२०० करोड के विनियोग से राष्ट्रीय आय मे २५% वृद्धि होना तब ही सम्भव बताया गया, जबकि १,१०० करोड रु० विदेशी साधनो स घरेलू बचत के पूरक के रूप मे उपलब्ध हो जायें, योजना मे बरबादी को रोकने के लिये समन्वय पर बल दिया जाय, उन्नत विधियाँ अपनाने मे लोगो का सहयोग मिले व उपभोग के औसत स्तर मे कोई असाधारण वृद्धि न हो।

पूंजी निर्माण के स्वरूप—

पूंजी के निर्माण का अध्ययन करने के लिये उस पर दो शीर्षको के अन्तर्गत विचार किया जा सकता है :—सार्वजनिक क्षेत्र मे पूंजी निर्माण और प्राइवेट क्षेत्र मे पूंजी निर्माण। सावजनिक क्षेत्र और प्राइवेट क्षेत्र दो पृथक इकाइयाँ नही हैं, वरन् वे एक ही देह के दो अग है, जो विकास के लिए एक दूसरे को शक्ति प्रदान करते रहते हैं। मिश्रित अथव्यवस्था वाले नियोजन के अन्तर्गत तो सावजनिक एव प्राइवेट क्षेत्रो मे अधिक सहयोग होना अनिवार्य है, क्योकि एक क्षेत्र की नीतियाँ व कार्यक्रम दूसरे क्षेत्र की नीतियो और कार्यक्रमो को सुप्रभावित या कुप्रभावित कर सकते हैं। स्पष्ट है कि दोनो क्षेत्रो की नीतियो व कायक्रमो मे उचित समन्वय होना चाहिये। यही बात पूंजी निर्माण को भी लागू होती है। अविकसित एव अर्द्ध विकसित देशो मे अधिकतर नई पूंजी सरकार द्वारा उपलब्ध होती है। उदाहरण के लिये, उत्पादन की तुलना मे बचत को सीमित करके सरकार बहुत सीमा तक घरेलू बचत बढा सकती है,

अथवा लाभो पर कर लगा कर बचत को सरकारी खजाने मे ले सकती है। इसी प्रकार विदेशी पूंजी भी अन्तर सरकार ऋणो (inter governmental loans) के रूप मे हो सकती है। इसके अतिरिक्त, जब सरकार बडे पैमाने पर कोष एकत्र करने के लिये पूंजी बाजार मे प्रवेश करती है, तो प्राइवेट क्षेत्र के विनियोगो पर प्रभाव पडता है, क्योकि ऋण-पूंजी शेयरो मे हट कर सरकारी प्रतिभूतियो मे जाने लगती है। ऐसी दशा मे प्राइवेट उद्योगो को पूंजी का अभाव खटकने लगेगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि सरकार को सार्वजनिक एव प्राइवेट क्षेत्रो की आवश्यकताओ के अनुसार उपलब्ध कोषो का वितरण करना चाहिये।

(I) सार्वजनिक क्षेत्र मे पूंजी निर्माण—

अर्थव्यवस्था की विनियोग सम्बन्धी क्रिया मे सरकार को सक्रिय रुचि लेनी पडेगी, क्योकि (i) भारत मे पूंजी बाजार असगठित है, जिससे ब्याज की ऊँची दरे वहाँ प्रचलित हैं और भावी अनिश्चितताओ के कारण दीर्घकालीन विनियोग की सीमान्त कुशलता कम है, (ii) अनेक विकासात्मक एव दीर्घकालीन प्रोजेक्टो मे प्राइवेट विनियोगता भाग लेने से जोखिम की अधिकता के कारण हिचकते है, (iii) सरकार चालू प्राइवेट लाभो और भावी सामाजिक लाभो के बीच की खाई को भरने मे दीर्घ-कालीन दृष्टिकोण अपना सकती है, (iv) ऐच्छिक बचत पर ही विनियोग के लिए निर्भर रहने मे आय की असमानता बनी रहने का डर है, क्योकि धनाढ्य लोगो द्वारा जो बचत उपलब्ध की जायेगी वह काफी विशाल हो सकती है।

किन्तु सरकार द्वारा विनियोग मे अधिकाधिक भाग लेना और उद्योगो का राष्ट्रीयकरण एक बात नही है। सरकार को विद्यमान सस्थाओ का राष्ट्रीयकरण करने के बजाय सार्वजनिक कोषो का प्रयोग नई सस्थाये व उद्योग खोलने मे लगाना चाहिये। तभी उपलब्ध सीमित साधनो का अधिकतम प्रयोग करने का लक्ष्य पूरा हो सकता है। यदि विद्यमान सस्थाओ का राष्ट्रीयकरण किया गया, तो प्राइवेट क्षेत्र के विनियोग पर बुरा असर पडने की सम्भावना भी है।

सरकार के लिये आन्तरिक अर्थ प्रबन्धन (Domestic financing) के कई तरीके उपलब्ध है, जैसे—करारोपण, ऋण, घाटे की अर्थ-व्यवस्था और श्रम के रूप मे विनियोग (Investment in kind)। इन तरीको को चक्करदार नमूने (Cyclical Pattern) पर अपनाया जा सकता है। उदाहरण के लिये, मन्दी की अवधि मे मुद्रा प्रसार द्वारा विकास-कार्यक्रमो का अर्थ प्रबन्धन किया जा सकता है। साथ मे करो मे व ब्याज दर मे कमी की जा सकती है। लेकिन समृद्धि के काल मे करारोपण व ऋणो म वृद्धि करनी होगी।

सार्वजनिक क्षेत्र म आवश्यक पूंजी को गतिशील करने की सफलता कई बातो पर निर्भर है—(1) देश मे सम्पत्ति-उत्पादन क्रियाय होनी चाहिये, जो कि इतनी

पर्याप्त आय उपलब्ध करें जिस पर टैक्स लगाया जा सके या जिसमे से ऋण लिया जा सके। (ii) सरकारी मशीनरी म पर्याप्त कुशलता व ईमानदारी हो ताकि सरकार कोष अधिक प्रभावपूर्ण ढग म एकत्र व खच कर सक। (iii) सरकारी आय का काफी बडा भाग राष्ट्र निर्माण कार्यों मे लगना चाहिये न कि चालू कार्यों की पूर्ति प्रतिरक्षा अथवा सावजनिक स्मारको क निमाण कार्यों म।

नीचे हमने सावजनिक क्षत्र के दृष्टिकोण स आन्तरिक अथ प्रबन्धन क श्रोता पर विचार किया है—

(१) **करारोपण**—विकास साधनों का अथ प्रबन्धन करन म करारोपण का बहुत महत्त्व है क्योंकि इसक द्वारा राष्ट्रीय प्रसाधनों का वाछित योजना म लगवाया जा सकता है। लकिन इस प्रभावशील बनान क लिये चतुरता एव बुद्धिमत्ता की आवश्यकता है ताकि इसके कारण समाज के सामान्य हितों को कोई ठेस न लगन पाये। कर व्यवस्था का प्रयोग कई उद्देश्यो की पूर्ति के लिये किया जा सकता है—(i) विकास व्यय के फलस्वरूप आय मे होने वाली वृद्धि के कुछ भाग को पुन विनियोग क हेतु प्राप्त करन क लिये (ii) आय क वितरण म असमानता कम करने के लिय और (iii) वाछित कार्यों म ही विनियोग को प्रेरित करने के लिय। यह प्रेरणा कई रूप ले सकती है—प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता स्वीकार करना करारोपण की दर मे कमी पूजी माल के आयात पर कर घटना आदि।

करो द्वारा समाज के उस बचत-कोष का उपयोग किया जाता है जो कि उपभोग करने के बाद आधिक्य के रूप म उपलब्ध होता है कर प्रणाली द्वारा बचतो को प्राइवट प्रयोग से सावजनिक प्रयोग म मोडना आसान है लेकिन विनियोग के लिये उपलब्ध बचत की कुल मात्रा म वृद्धि करना अपेक्षत कठिन है। किन्तु इस तथ्य का कि करारोपण प्राइवट क्षत्र के लिय उपलब्ध कोषो से आहरण (Drawing) करके सावजनिक क्षत्र के लिये उपलब्ध कोषो की वृद्धि करता है यह आशय नही लगाना चाहिये कि करारोपण कुल पर विनियोग कम कर देता है क्योंकि करारोपण सावजनिक विनियोग की मात्रा को प्राइवट विनियोग म कमी करके नही वरन् उपभोग म कमी करके बढा सकता है। सच तो यह है कि एक अर्द्ध विकसित देश म जहा उपभोग वृत्ति (Propensity to Consume) सामायत ऊची हुआ करती है पूँजी निर्माण को बढाने का एक मात्र प्रभावशाली तरीका करारोपण ही है, जिसके द्वारा सरकार प्रसाधनों को प्राइवट उपभोग से हटाकर सावजनिक विनियोग म लगवा सकती है।

यह आवश्यक है कि कर प्रणाली गहराइ और क्षत्र दोनों ही दृष्टियो से पर्याप्त हो। लेकिन इस सम्बन्ध म करदान क्षमता को नहा भुलाना चाहिये। इस हतु यह विचार करना आवश्यक हो जाता है कि राष्ट्रीय आय के साथ कुल कर आय का क्या अनुपात रखा जाय। भारतीय कर आगम राष्ट्रीय आय का केवल ७ या ८% है।

यह प्रतिशत अन्य अनेक देशो की तुलना मे कम है। इससे पता चलता है कि भारत मे कर-वृद्धि के लिये पर्याप्त क्षेत्र है। कर-दान क्षमता कर के उद्देश्य से सीमित होती है। इस सीमा पर जनता की मनोवैज्ञानिक दशा का भी प्रभाव पडता है। अतः सरकार को कर से सम्बन्धित उद्देश्य के लिये प्रचार द्वारा जन समर्थन प्राप्त करने का यत्न करना चाहिये।

(२) **ऋण**—ऋण दो तरह प्राप्त किये जाते है—वास्तविक ऋण (genuine borrowing), जो ऐच्छिक बचत के द्वारा प्राप्त हो और मुद्रा प्रसारिक ऋण (inflationary borrowing), जो अनिवार्य बचत के द्वारा प्राप्त हो। अ-मुद्रा प्रसारिक ऋणो का आर्थिक विकास के अर्थ-प्रबन्धन मे विशेष महत्त्व है। इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि एक आन्तरिक ऋण देश के लिये एक विदेशी ऋण की तरह भार नही होता। फिर भी एक सीमा मे अधिक आन्तरिक ऋण लेने पर ब्याज और पूँजी का शोधन गम्भीर प्राशुल्किक समस्याये उत्पन्न कर सकता है। ऋणो द्वारा जिन विकास कार्यक्रमो के अर्थ प्रबन्धन को अच्छा समझा जाता है वे निम्नलिखित है:—सार्वजनिक सम्पत्तियो के उत्पादन वाले कार्यक्रम, लाभ देने वाले विशेष प्रोजेक्ट एव विकास कार्यक्रम, जिनके लिये लाभ उठाने वाले व्यक्तियो पर फीस या विशिष्ट कर लगाये जा सकते हो। उत्पादक व्यय मे ऋणो के प्रयोग की प्रवृत्ति का विकास कुछ तो प्रथा के रूप मे, कुछ सीमा तक बचतो को आकर्षित करने के लिये और अंशतः अनुत्पादक व्यय पर नियत्रण रखने के लिये हुआ है। भारत मे पच-वर्षीय योजनाओ के अर्थ प्रबन्धन मे ऋणो द्वारा अर्थ प्रबन्धन को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

(३) **घाटे की अर्थ व्यवस्था**—घाटे की अर्थ-व्यवस्था या मुद्रा प्रसारिक अर्थ प्रबन्धन पर विचार करते समय प्रश्न यह उठता है कि इसे मुद्रा प्रसार बढाये बिना किस सीमा तक प्रयोग किया जा सकता है अथवा यो कहिये कि करो मे वृद्धि करने के एक विकल्प के रूप मे घाटे की अर्थ-व्यवस्था किस सीमा तक पसन्द की जानी चाहिये। सामान्यतः यह माना जाता है कि आर्थिक विकास कम से कम मुद्रा प्रसार द्वारा सुलभ किया जाय। यदि ऐच्छिक बचत पर्याप्त न हो, तो करारोपण के रूप मे अनिवार्य बचत के द्वारा कोष इकट्ठे किये जा सकते है। यदि तब भी कमी रहे, तो विभिन्न नियन्त्रणो एव विदेशी ऋणो का सहारा लेना चाहिये। इन सब विकल्पो को अपना कर भी कुछ कमी रह जाये और विकास कार्यक्रम का पूरा करना अति आवश्यक समझा जाय, तो मुद्रा छाप कर कमी को पूरा किया जा सकता है। किन्तु यह अन्तिम विकल्प बहुत खतरनाक है। विशेषज्ञो का कहना है कि इस तरीके का प्रयोग तब ही करना चाहिये जब कि अन्य साधन अपूर्ण रह जाये। मुद्रा प्रसार औद्योगिक प्रगतिशील देशो की अपेक्षा अर्द्ध विकसित देशो के लिये अधिक खतरनाक होता है, क्योकि इन देशो की उत्पत्ति क्रय शक्ति के अनुपात से नही बढ पाती। मुद्रा प्रसार विभिन्न प्रकार

के उपक्रमों की लाभदायकता को समाप्त कर देता है, लोगों को परिकल्पी उपक्रमों मे अत्यधिक पूंजी लगाने के लिये प्रोत्साहन देता है, स्वर्ण के रूप में पूँजी का सचय होने लगता है। एवं विदेशी विनियोगों के आगमन को निरुत्साहित करता है। एक बार आरम्भ होने पर मुद्रा प्रसार की वृद्धिमूलक प्रक्रिया स्थापित हो जाती है।

किन्तु इसका यह अर्थ नही लगाना चाहिये कि सभी घाटे की अर्थ व्यवस्था मुद्रा प्रसार उत्पन्न करती है, चाहे इसकी मात्रा या परिस्थितियां कुछ भी हों। किन परिस्थितियों मे एवं किस सीमा तक घाटे की अर्थ-व्यवस्था उचित रूप से की जा सकती है, यह एक निर्णय की बात है। जिस सीमा तक घाटे की अर्थ व्यवस्था मुद्रा प्रसारक होवे उसी सीमा तक उसे अपनाना खतरनाक तो है ही, इसमे सदेह नही किया जा सकता। जब घाटे की अर्थ-व्यवस्था से मुद्रा प्रसार का खतरा पैदा हो, तो अतिरिक्त करारोपण द्वारा उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये।

(४) श्रम के रूप मे विनियोग (Investment in kind) —मौद्रिक पूँजी की कमी को पूरा करने के लिये उस विशाल बचत का उपयोग किया जा सकता है जो बेकारी एवं मौसमी बेकारी के रूप मे पाई जाती है। अर्द्ध-विकसित देशो मे बहुत ।ो पाई जाती है। इन देशो मे, अत्यधिक पूँजी विनियोग द्वारा श्रम को प्रतिस्थापित करने के प्रयास अवास्तविक है। आवश्यकता इस बात की है कि पूँजी में वृद्धि करने के साथ-साथ 'पूँजी बचत-युक्तियों' (Capital Saving Methods) का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिये। जब किसी देश को सडको, सिंचाई की नहरों, ग्रामीण स्कूल-भवनों व डिस्पेन्सरियो, कुँओ आदि की आवश्यकता है तथा वहां जन सख्या मे बेकारी एवं मौसमी बेकारी का बोलबाला है (जैसे कि भारत के समान कृषि प्रधान देश मे), तो मौद्रिक बचतो और मौद्रिक विनियोगो की जटिल मशीनरी का आश्रय लिये बिना पर्याप्त मात्राओं मे पूँजी का निर्माण किया जा सकता है। आशय यह है कि जनता से विकास योजनाओं के लिये श्रमदान कराया जा सकता है। भारतीय पच-वर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत अर्थ प्रबन्धन के पहलू को विचार मे लिया गया है। सामुदायिक विकास योजनाओं के अन्तर्गत ऐच्छिक श्रमदान की महिमा छिपी नही है। गाव वालो ने अपने लिये अनेक सडके, स्कूल व कुंये बनाये है, वनारोपण किया है और भूमि कटाव को रोकने की योजनाओं मे ऐच्छिक श्रमदान करके मौद्रिक पूँजी की भारी बचत की है। ऐच्छिक श्रमदान से सम्बन्धित योजनाओ का सचालन जन नेताओ द्वारा किया जाना चाहिये। श्रमदान से जनता मे योजनाओ के प्रति रुचि भी जागृति होती है।

(II) प्राइवेट क्षेत्र मे पूँजी का निर्माण—

प्राइवेट क्षेत्र मे पूँजी के निर्माण के सम्बन्ध मे सराफ कमेटी ने जो बातें अपनी रिपोर्ट मे बताई हैं, वे यहाँ पर उल्लेखनीय है। कमेटी ने यह अनुभव किया कि भारत

की वर्तमान परिस्थितियों मे कुछ ऐसी बातें हैं जो प्राइवेट क्षेत्र मे विनियोजन क्रिया की प्रगति मे बाधा डालती है :—(i) प्राइवेट विनियोग की सामान्य कठिनाइयो व अनिश्चितताओ मे वृद्धि तथा लाभ-भावना के प्रति समाज की आलोचनात्मक प्रवृत्ति। (ii) प्राइवेट क्षेत्र के लिये उपलब्ध बचतो मे कमी एव विनियोग करने की क्षमता मे कमी। सरकारी विनियोग की वृद्धि के कारण प्राइवेट क्षेत्र के लिये उपलब्ध साधन कम हो गये और कुल विनियोग मे वृद्धि होना तभी सभव है जबकि आन्तरिक बचतें बढ़ें या विदेशी बचतें आयात की जायें। अतः सरकार को चाहिये कि विनियोग के लिये वातावरण सुधारे तथा प्राइवेट उपक्रम मे विश्वास प्रेरित करे।

प्राइवेट विनियोगो पर कुप्रभाव डालने वाली निम्न बातो का भी कमेटी ने सकेत किया :—

(१) राष्ट्रीयकरण का डर होने से उपक्रमियो मे उन उद्योगो की स्थापना के प्रति कम उत्साह पाया जाता है जिनमे प्रारम्भिक विनियोग बहुत अधिक करना पडता है तथा लाभ भी काफी लम्बी अवधि के बाद उदय होते हैं। विदेशो से प्राइवेट पूँजी के आगमन पर भी राष्ट्रीयकरण का भय बुरा असर डालता है। कमेटी की राय थी कि यदि सरकारी प्रवक्ता राष्ट्रीयकरण सम्बन्धी सरकार के अधिकार का बारम्बार हवाला देना बन्द कर दें तो प्राइवट विनियोजको के डर बहुत कुछ समाप्त हो जाये। इसके अतिरिक्त, सरकार को दीर्घकालीन विकास के उद्योगो को राष्ट्रीयकरण से कम से कम कुछ अवधि के लिये मुक्त रखने का आश्वासन दे देना चाहिये। सरकारी उपक्रमो को ऐसी अनुचित सुविधायें न दी जायें, जिससे उसी क्षेत्र मे सलग्न प्राइवेट उपक्रमो को अनावश्यक प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पडे। हर्ष का विषय है कि औद्योगिक नीति, जो सन् १९५६ मे घोषित की गई थी उक्त आश्वासन देती है। उसमे सरकार ने स्पष्ट रूप से प्राइवेट क्षेत्र से सहयोग की कामना की है तथा सुविधाय देने के सम्बन्ध मे सरकारी उपक्रमो व प्राइवेट उपक्रमो के मध्य कोई भेद भाव न करने का निश्चय प्रकट किया है।

(२) उद्योग (विकास एव नियमन) अधिनियम, कन्ट्रोल आफ केपीटल इश्यू आदि के अन्तर्गत सरकार की जो नियन्त्रणात्मक शक्तियां हैं उनके कारण कार्यविधियाँ बडी अनिश्चित एव कठिन हो गई है। वैसे इन शक्तियो का उद्देश्य आन्तरिक एव विदेशी विनिमय साधनो का मितव्ययिता के साथ प्रयोग करना तथा वांछित क्रियाओ मे लगवाना है, किन्तु उन्होने प्राइवट विनियोजन मे बाधा डाली है, इसे भी अस्वीकार नही किया जा सकता। अतः कमेटी का मत है कि उक्त अधिनियमो की कार्यविधि का विवेकीकरण किया जाय, ताकि उनकी पूर्ति मे अनावश्यक देरी न लगे और विनियोग समय पर सुलभ हो जाय। आशा है कि कम्पनी ला प्रशासन-विभाग लाइसेन्स व

रजिस्ट्रेशन आदि से सम्बन्धित विभिन्न संस्थाओं की क्रियाओं में समुचित समन्वय स्थापित कर सकेगा, जिससे कार्यविधि पूर्ण होने में कम से कम समय लगे।

(३) **श्रम सम्बन्धी दशाओं** में भारी परिवर्तनों को भी कमेटी ने प्राइवेट विनियोजन के लिये निरुत्साहक बताया है, क्योंकि उद्योगों एवं कारखानों में तरह-तरह के कानूनों के अन्तर्गत उद्योगपतियों पर अनेक जिम्मेदारियाँ आ गई हैं। अब वे बाजार की परिस्थितियों के साथ उत्पादन को समायोजित करने के उद्देश्य से अथवा विवेकीकरण के हेतु श्रमिकों को हटाने में असमर्थ हैं। इसके फलस्वरूप कुछ उद्योगों में तो पर्याप्त कोष उपलब्ध होते हुये भी विवेकीकरण एवं आधुनिकीकरण की गति को धीमा करने के लिये विवश होना पड़ा है। इस सम्बन्ध में यह आशा की जाती है कि प्राइवेट उपक्रम श्रम के प्रति अपना दृष्टिकोण को बदलेगा और उन्हें उत्पादन का एक मूक साधन न मानकर एक चेतन एवं अनुभवशील साधन समझेगा। कई बार विवेकीकरण के पर्दे में श्रमिकों पर अधिक कार्य भार लादने का प्रयास किया गया है। ऐसी योजना से श्रमिकों को अपनी उत्पादकता बढ़ाने के लिये प्रेरणा नहीं मिलती।

(४) **मूल्य नियंत्रण, लाभांश वितरण की सीमा व उत्पादन सम्बन्धी नियंत्रण** ने भी आन्तरिक साधनों की अधिकतम गतिशीलता में तथा उद्योग के विस्तार के लिये नई पूँजी को आकर्षित करने में बाधा डाली है। परन्तु यहाँ यह न भुलाना चाहिये कि एक नियोजित अर्थ-व्यवस्था में नियन्त्रणों का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

(५) **सामाजिक एवं राजनैतिक परिवर्तन** जो गत दशाब्दी में हुये हैं उनके कारण परम्परागत विनियोगता वर्ग, जैसे जमींदार, जागीरदार, राजा, नवाब आदि समाप्त हो गया, जिससे औद्योगिक विनियोजन में बड़ी कमी आ गई है। इसके विपरीत, जिन वर्गों की आय में वृद्धि हुई है उनमें बचत-वृत्ति (Propensity to Save) कम होती है। अर्थात् बढ़ी हुई आय का प्रयोग उपभोग पर व्यय बढ़ाने में किया गया है, क्योंकि अभी तक हमारे देश में विशेषत कृषकों एवं मजदूरों का जीवन स्तर बहुत नीचा रहा है।

(६) **सरकारी प्रतिभूतियों** में ऐच्छिक बचत बहुत सीमा तक विनियोग की जाने लगी है, क्योंकि जनता को औद्योगिक कम्पनियों में अविश्वास है। यही नहीं, बैंकों के लिये भी यह आवश्यक कर दिया गया है कि वे एक निश्चित सीमा तक अपना कोष सरकारी प्रतिभूतियों में लगावें। इन परिस्थितियों में प्राइवेट क्षेत्र के लिये विनियोग-धन का कम हो जाना स्वाभाविक है। इस सम्बन्ध में श्रॉफ कमेटी ने प्राइवेट उपक्रमियों की उन त्रुटियों का संकेत किया है, जिनके कारण विनियोगक उनकी ओर सरलता से आकर्षित नहीं हो पाते—(i) प्रबन्ध व्यवस्था में बार-बार परिवर्तन, (ii) व्यापार के संचालन में अकुशलता एवं बेईमानी, (iii) सट्टे के व्यवहारों में धन का प्रयोग, (iv) अवसरवादिता एवं कुप्रबन्ध, आदि। इन अनुचित प्रवृत्तियों ने विनियोगताओं को प्राइवेट उपक्रमियों के प्रति अविश्वासी बना दिया है। यहाँ तक

कि वे एक देशी प्राइवेट उपक्रमी के बजाय विदेशी प्राइवेट उपक्रमी द्वारा सचालित व्यवसाय मे अधिक विश्वास करते है ।

पूंजी बाजार
(Capital Market)

'पूंजी बाजार' से आशय —

पूंजी बाजार का सम्बन्ध दीर्घकालीन अर्थ प्रबन्धन से है । पूंजी बाजार शब्द से उस शृंखला का बोध होता है जिसके द्वारा समाज की बचतें औद्योगिक एव व्यापारिक सस्थाओ तथा सार्वजनिक सत्ता को उपलब्ध होती हैं । इसका सम्बन्ध उन प्राइवेट (व्यक्तिगत एव सस्थागत) बचतो से है जो कि सरकारी एव अर्द्ध सरकारी सस्थाओ द्वारा नवीन पूंजी निगमनो एव नवीन सार्वजनिक ऋणो के निगमन द्वारा विनियोगो म परिणित की जाती हैं । पूंजी बाजार मे माग कृषि, उद्योग, व्यापार एव सरकार मे उदय होती है तथा सप्लाई कम्पनियो व सस्थाओ की बचतो तथा सरकारी के आधिक्यो से आती है । इसमे बचतकर्ता और बचत को गतिशील बनाने वाली संस्थायें सम्मिलित होती हैं । बचत करने वाली सस्थायें जैसे सेविंग बैंक, विनियोग प्रन्यास, विनियोग कम्पनियां, विशिष्ट वित्त निगम एव स्टाक विपणि पूंजी बाजार के कुछ महत्त्वपूर्ण अग है ।

पूंजी बाजार एवं मुद्रा बाजार मे भेद—

'पूंजी बाजार' 'मुद्रा बाजार' से भिन्न होता है । सकुचित अर्थ मे 'मुद्रा बाजार' (Money Market) का सम्बन्ध चल या तरल साधनो से है, जो कि बैंकिंग प्रणाली के द्वारा व्यापार एव उद्योग मे अल्पकाल के लिये विनियोग किये जाते है । लेकिन व्यापक दृष्टिकोण से, मुद्रा बाजार भी उन क्रियाओ से सम्बन्ध रखता है जिनके द्वारा दीर्घकालीन पूंजी का निर्माण होता है । वास्तव मे पूंजी बाजार एव मुद्रा बाजार एक दूसरे पर आश्रित होते है । यदि मुद्रा बाजार मे ब्याज दर बढ़ जाये, तो पूंजी बाजार मे माग बढेगी और यदि पूंजी बाजार मे ब्याज दर बढ़ जाय, तो इसका मुद्रा बाजार की माग पर प्रभाव पडेगा ।

भारत मे पूंजी बाजार का वर्गीकरण—

भारत मे पूंजी बाजार को दो वर्गो मे बाटा जा सकता है—सगठित एव असगठित । दुर्भाग्य से देश मे सगठित बाजार का भी उचित विकास नही हुआ है, क्योकि (i) कृषि जो कि भारतीय जनता का मुख्य व्यवसाय है, प्रतिभूतियो के निर्गमन के लिये उपयुक्त नही है, (ii) विदेशी व्यवसाय, जिनकी भारत मे प्रमुखता रही है, भारतीय मुद्रा बाजार की अपेक्षा लन्दन मुद्रा बाजार पर निर्भर रहते थे, जिससे उद्योगो के लिये भी प्रतिभूतियो का बाजार पूर्ण रूप मे विकसित नही हो पाया है, (iii) प्रबन्ध अभिकर्त्ता गृह उद्योगो का प्रवर्तन करने के साथ-साथ उनके लिये

अर्थ की व्यवस्था भी कर देते थे, जिससे विशिष्ट वित्त संस्थाओं के विकास को प्रोत्साहन नही मिला। (iv) पूँजी बाजार सकुचित है और निर्गमित प्रतिभूतियो की किस्मे थोडी हैं। सरकारी प्रतिभूतियाँ ही पूँजी बाजार मे कुल निर्गमन के आधे के बराबर हैं, (v) व्यक्तियो की विनियोग रुचि तथा विभिन्न वित्तीय सस्थाओ के विनियोगो पर लगाये गये प्रतिबन्ध भी पूँजी बाजार के कम विकास के लिये उत्तरदायी हैं।

पूँजी बाजार के असगठित वर्ग मे नगरो के देशी बैंकर और गांवो के साहूकार सम्मिलित हैं। इस वर्ग के विभिन्न अगो मे कोई निकट सम्पर्क नही है। यह क्षेत्र सगठित क्षेत्र से कटा हुआ है। इसमे उपलब्ध कोष माग की अपेक्षा बहुत कम होते है। ये सस्थाये प्राय: उपभोग के लिये अधिक ऋण देती है, उत्पादक कार्यों के लिय कम। उनकी ब्याज दरे भी बहुत ऊँची होती है।

यह नितान्त आवश्यक है कि पूँजी बाजार म दशाये सुधरे। तभी वह उद्योग की अधिक सेवा कर सकेगा। एक आदर्श पूँजी बाजार मे वित्त-व्यवस्था उचित ब्याज पर सम्भव होती है।

पूँजी बाजार मे उतार-चढ़ाव—

भारतीय पूँजी बाजार मे समय-समय पर जो उतराव-चढाव होते रहे हैं उनका सक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है।

(१) **द्वितीय महायुद्ध काल**—सन् १९४० मे फ्रान्स की हार के बाद बम्बई के वायदा व्यापार (Forward Trading) को बडा धक्का लगा और उसे बन्द करना पडा। कलकत्ता मे भी वायदा व्यापार बन्द कर दिया गया। सरकार ने सरकारी प्रतिभूतियो के लिये न्यूनतम मूल्य निश्चित कर दिय। सन् १९४३ म दशा कुछ सुधरी, जबकि युद्ध के कुछ अनुकूल समाचार प्राप्त हुय तथा सरकार ने सस्ती मुद्रा नीति अपनाई। सरकार ने वस्तु बाजार (Commodity Market) मे कपास पर तथा बुलियन बाजार मे भी सट्टा बन्द कर दिया। इससे सट्टे का रुख स्टाक एक्सचेन्जो की ओर हो गया। सरकार ने सुरक्षा नियमो के अन्तर्गत सितम्बर सन् १९४३ से सभी वायदा व्यवहार एव बदला व्यवहार बन्द कर दिय, लेकिन प्रशासनिक त्रुटियो के कारण स्टाक बाजार के बाहर भी शेयरो मे व्यवहार होता रहा।

(२) **युद्धोत्तर काल**—सन् १९४४-४६ समृद्धि का काल था, जो अगस्त सन् १९४६ मे पराकाष्ठा पर पहुँच गया। इसके बाद मूल्यो मे गिरावट आई, जो सन् १९४९ के मध्य तक जारी रही। इस गिरावट के कई कारण थे—बैंकिग सकट, साम्प्रदायिक उपद्रव, राजनैतिक सघर्ष, हैदराबाद व काश्मीर की पुलिस कार्यवाहियाँ, साम्यवाद के विस्तार का भय, विनियोग-कोषो की कमी तथा सरकार की अनिश्चित उद्योग नीति। पूँजी बाजार पर जो बुरा प्रभाव पडा उसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि सन् १९४६-१९४८ की अवधि मे ७४७ सयुक्त स्कन्ध कम्पनियो की दत्त पूँजी

१६० करोड से १६२ करोड रु० हो गई, किन्तु उनका बाजार मूल्य ६=२ ६ करोड रु० से घट कर ३३५'५ करोड रु० रह गया। इस प्रकार अशधारियो को ३५७ १ करोड रु० की हानि हुई।

जुलाई सन् १६४६ से धीरे-धीरे बाजार की दशा मे सुधार हुआ तथा पिछले तीन वर्ष मे शेयरो के मूल्य मे जो कमी आई वह पूरी हो गई। इस सुधार के कई कारण थे—उद्योग को ह्रास सम्बन्धी छूट देने की घोषणा, अधिक उत्पादन होने की रिपोर्ट मिलना, करारोपण व्यवस्था मे सुधार, वस्त्र उद्योग के सकट को दूर करने का १२ सूत्री सरकारी कार्यक्रम, अवमूल्यन, कम्पनी ला सुधार, उद्योग के नियत्रण एव विदेशी विनिमय की उचित व्यवस्था के बारे मे सरकार का आश्वासन।

सन् १६४६ के बाद भी, यद्यपि कई कुप्रभावकारी घटक विद्यमान थे (जैसे कि काश्मीर पर पाकिस्तान से विवाद, पूर्वी पाकिस्तान से शरणार्थियो का आगमन, खाद्य सकट, प्रमुख औद्योगिक कच्चे मालो की कमी) तथापि दशा मे सुधार जारी रहा, क्योकि कई सुप्रभावकारी घटक भी विद्यमान थे (जैसे—निर्यात बाजार का विस्तार, औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि, रेलवे यातायात मे उन्नति, योजना आयोग की नियुक्ति, सरकार की समुचित आर्थिक नीति)। परिणाम यह हुआ कि लाभाश-प्रतिभूतियाँ वा सामूहिक सूचनाक ७ जनवरी सन १६५० को ११८ ८ से २ दिसम्बर सन १६५० को १२५'४ हो गया।

सन् १६५१-५२ मे कोरिया युद्ध का पूँजी बाजार पर प्रभाव पडा। अन्य प्रभावशील घटक थे—भारतीय कम्पनी अधिनियम मे सशोधन, रेलवे हडताल की आशका, उद्योग (विकास एव नियमन) अधिनियम की स्वीकृति, बैक दर, अनिवार्य प्रॉवीडेन्ट फन्ड योजना, वस्त्र निर्यात पर प्रतिबन्ध। कोरिया युद्ध के प्रारम्भ होने पर मूल्यो मे कुछ चढाव हुआ और उसकी समाप्ति पर उक्त अन्य घटको के कारण गिरावट आई।

सन् १६५२-५३ मे भी औद्योगिक प्रतिभूति बाजार मे गिरावट की प्रवृत्ति रही। मुख्य प्रभावशील घटक था चालू लाभ एव आगामी लाभ अनुमानो मे कमी होना। सन् १६५३ ५४ मे केन्द्रीय बजट के प्रकाशन पर स्थिति मे पुनः सुधार हुआ। यह वृद्धि सन् १६५४-५५ तक जारी रही। सन् १६५५-५६ भी चढाव का वर्ष प्रमाणित हुआ। सन् १६५५-५६ मे प्रारम्भिक स्थिरता के बाद बाजार ने चढाव की प्रवृत्ति पुनः अपनाई। इसके प्रमुख कारण निम्न थे—प्रथम पच-वर्षीय योजना अवधि के अन्तिम वर्ष मे घाटे का अधिक अर्थ-प्रबन्धन, कम्पनी-लाभ व लाभाशो मे वृद्धि, समाजवादी समाज मे प्राइवेट क्षेत्र को उचित सुविधाओ का आश्वासन, कम्पनी लॉ सुधार, सरकार की सशोधित औद्योगिक नीति का अनुकूल प्रभाव, द्वितीय योजना की अपेक्षा विस्तृत कार्यक्रम, औद्योगिक कच्चे माल व मशीनो के आयात के लिये विशेष सुविधा मिलना आदि।

किन्तु सितम्बर १६५६ के बाद पुनः गिरावट आरम्भ हुई और सन् १६५७ ५८ के बजट प्रस्ताव पेश होने तक जारी रही। इस प्रवृत्ति के कारण थे—वस्त्र पर

उत्पादन कर बढ़ना, पूँजी लाभों पर कर लगना, लाभांशों पर सुपर टैक्स की वृद्धि, कम्पनियों की अनिवार्य डिपाजिट स्कीम कच्चे मालों की कीमतों तथा मजदूरी लागतों मे वृद्धि।

सन १९५८ के प्रारम्भ से विश्वास पुन बढ़ने के आसार दिखाई पडे तथा शेयरों का मूल्य गिरने की प्रवृत्ति रुक गई। इसके निम्न कारण थे—विदेशी सहायता मिलने की सम्भावना कुछ प्रमुख संस्थाओं द्वारा बोनस शेयरों के निर्गमन की आशा, सीमेन्ट और कोयले के मूल्यों मे वृद्धि, वस्त्र पर उत्पादन करों मे कमी, अनिवार्य डिपाजिट योजना का संगठन। जुलाई सन् १९५८ से एक वृद्धिमूलक प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई और लाभांश प्रतिभूतियों का सूचनांक १८·२% बढ़ गया।

उपसंहार—

उपरोक्त विवेचन मे यह स्पष्ट है कि भारत मे पूँजी बाजार मे बड़ी उथल-पुथल होती रहती है। यदि पूँजी बाजार संगठित हो, तो वह प्रतिभूतियों के सफल निर्गमन मे बहुत सहायक हो सकता है। अन्य देशों मे संगठित पूँजी बाजार का आशय न केवल संस्थागत विनियोगकों की उपस्थिति मे बरन् उन्हें प्रोत्साहन देने वाली सरकारी नीति से भी है। केवल एक जीवन बीमा निगम जैसी एक इकाई की स्थापना से कार्य न चलेगा वरन् अनेक संस्थागत विनियोजक होने चाहिये। इनके निर्माण को प्रोत्साहन देना हमारा कर्त्तव्य है। किन्तु इसके साथ ही व्यक्तिगत विनियोगकों की भी उपेक्षा नही करनी चाहिये। उन्हे भी अधिक बचत एवं अधिक विनियोग करने के अवसर दिये जाने चाहिये, क्योंकि अब भी वे पूँजी बाजार का मुख्य आधार बने हुये है। १,००१ कम्पनियों के अर्थ प्रबन्धन के साधनों की चर्चा करते हुए अक्टूबर सन् १९५८ की रिपोर्ट में रिजर्व बैंक ने बताया था कि नवीन शेयर निर्गमनों से सन् १९५६ मे भी केवल २२ करोड रु० (कुल कोषों के ९% के बराबर) प्राप्त हुआ, जबकि सन् १९५५ मे यह प्रतिशत ८% था।" फडरेशन आफ इण्डियन चैम्बर आफ कामर्स एवं इण्डस्ट्री ने यह परामर्श दिया है कि पूँजी बाजार एवं स्टाक विपणियों के अधिक सक्रिय कार्य-वाहन के हेतु एक समुचित विनियोग वातावरण पैदा करने के लिए सरकार को सम्पत्ति कर, व्यय कर, लाभांश कर आदि को समाप्त करके ७० करोड रु० की आय स्रोत मे संकोच नही करना चाहिए, क्योंकि लाभ इस हानि की अपेक्षा कही अधिक होगा।

STANDARD QUESTIONS

1. What do you understand by the term 'Capital Formation'? 'The key to higher productivity and expanding levels of income and employment lies really in stepping up the rate of Capital formation'. Discuss.
2. Briefly describe the process of capital formation in the public and private sectors of an economy with special reference to India.

अध्याय ३६

भारत में औद्योगिक प्रतिभूतियों का स्वरूप

(Security Pattern in Indian Industries)

प्रारम्भिक—

भारत मे औद्योगिक प्रतिभूतियो के स्वरूप से सम्बन्धित निम्न विवेचन श्री मुलकी, करारोपण जाँच आयाग और रिजर्व बैङ्क ऑफ इण्डिया के अनुसन्धान एव सांख्यिकी विभाग द्वारा एकत्र किये गये आँकडो पर आधारित है। ये आकडे क्रमशः सन् १९४५ के पूर्व की अवधि, सन् १९५१ का वर्ष एव सन् १९५०-५६ की अवधि से सम्बन्धित हैं।

साधारण शेयर—

(१) **भारत मे पूँजी एकत्र करने के लिए साधारण शेयर सबसे अधिक लोकप्रिय साधन हैं**—दत्त पूँजी मे इनका अनुपात उद्योग-उद्योग मे भिन्न-भिन्न है, किन्तु लौह एव स्पात उद्योग मे सबसे कम और दियासलाई उद्योग म सबसे अधिक है। यह बात तालिका I म दिखाई गई है। श्री मुल्की के अध्ययन मे भी इसी प्रवृत्ति का ज्ञान होता है। दत्त पूँजा का ८०% भाग साधारण शयरो मे रखने वाली कम्पनियाँ सूती वस्त्र एव अन्य वस्त्र मिल, इन्जीनियरिंग शक्कर, रसायन, वनस्पति तेल, बागान, कोयला, व बिजली कम्पनियाँ है, जबकि सीमेंट, चाय, शिपिंग एव दियासलाई कम्पनियों म ९०% से भी अधिक दत्त पूँजी साधारण शेयरा के रूप मे है। जूट, कागज, लौह एव स्पात तथा अन्य निर्माणी उद्योगो की ७५% से कम दत्त पूँजी साधारण शेयरो के रूप मे है। लौह एव स्पात उद्योग मे तो यह प्रतिशत केवल ४५% था।

(२) **भारत मे १० रु० और १०० रु० वाले साधारण शेयर बहुत लोकप्रिय है**— श्री मुल्की ने जिन ५९७ कम्पनियो का अध्ययन किया था उनके ६१० साधारण शेयर निगमनो मे से १६५ निर्गमन १०० रु० के शेयरो क तथा २८५ निर्गमन १० रु० के शेयरो के थे। कलकत्ता स्टॉक एक्सचेन्ज से सम्बन्धित कम्पनियो मे १० रु० वाले शेयर अधिक लाकप्रिय है, जबकि बम्बई स्टॉक एक्सचेन्ज से सम्बन्ध रखने वाली कम्पनियो मे १०० रु० के शेयर अधिक पसन्द किये गये है।

(३) **साधारण लाभाशो की औसत दरें** लौह एव स्पात, दियासलाई, बागान, कागज, शक्कर एव चाय कम्पनियो मे सन् १९५१-५५ के मध्य काफी ऊँची १०% से ऊपर थी। किन्तु जूट, सूत सीमेंट, वस्त्र एव कोयला कम्पनियो मे लाभाश दर कुछ कम ऊँची (अर्थात ७ और १०% के मध्य) रही है। वनस्पति तेल, रसायन आदि उद्योगो मे औसत लाभाश दर २% से कम थी। (देखिये तालिका २)

(४) **अभिगोपन कमीशन की दर अधिक नहीं है**—विशेषतः तब जबकि हम इस बात को विचार मे लें कि यहाँ पूँजी बाजार का पूरा विकास नही हो पाया है। आधुनिक कम्पनी निर्गमनो के अध्ययन से मालूम होता है कि उक्त दर १ और ५% के बीच परिवर्तित होती रही है, जबकि इगलैंड मे यह दर २ से ३% तक रहती है।

डिबेन्चरों व प्रिफरेंस शेयरों की तुलना में साधारण शेयरों पर कमीशन की दर अधिक है क्योंकि इन पर अभिगोपकों को अधिक जोखिम उठानी पड़ती है।

TABLE 2

Showing the dividends as average percentage of paid up capital in various industries during 1951 55

	Industry	Ordinary	Preference	Deferred
1	Cotton Textiles	8 7	4 0	6 4
2	Jute	10 0	6 3	2 7
3	Other Textiles	3 0	4 7	
4	Iron and Steel	13 4	6 7	373 3
5	Engineering	3 8	3 7	10 2
6	Cement	9 2	6 2	4 5
7	Sugar	11 3	5 4	30 7
8	Paper	10 8	5 2	
9	Vegetable Oil	2 7	2 8	1 0
10	Chemicals	2 6	6 7	1 7
11	Matches	10 8		
12	Coal	7 1	5 4	4 6
13	Electricity Generation and Supply	6 9	6 8	
14	Shipping	3 5	6 3	
15	Tea	17 4	5 9	
16	Other Plantations	16 0	6 6	
17	Trading	6 7	3 0	12 8
18	Land and Estate	1 8	4 1	3 3
	Total (including others)	8 1	5 2	19 7

Source Reserve Bank of India Bulletin September 1957

प्रिफरेंस शेयर—

(१) दत्त पूंजी मे प्रिफरेंस शेयरों का प्रतिशत औसतन दस है। दियासलाई उद्योग में यह लगभग शून्य है जबकि लौह एवं स्पात में सबसे अधिक अर्थात् ५५ है। २०% से अधिक प्रिफरेंस शेयर रखने वाले उद्योग जूट कागज एवं निर्माणियाँ है। काटन इंजीनियरिंग कमीकल्स वनस्पति तेल १५ से २०% के वर्ग में आते हैं। शिपिंग चाय सीमेंट और दियासलाई उद्योग में १०% कम दत्त पूंजी प्रिफरेंस शेयरों के रूप में था। (देखिये तालिका १)।

(२) कर मुक्त सचयी एवं पूंजी की वापसी का अधिकार वाले प्रिफरेन्स शेयर विशेष पसन्द किये जाते हैं। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि विभिन्न उद्योगों से सम्बन्धित २१५ कम्पनिया द्वारा जो २४० निगमन किये गये थे उनमें से २३४ को सचयी लाभांश पाने का २०८ को करमुक्त लाभांश पाने का २२८ को कम्पनी के समापन की दशा में पूंजी की वापिसी का १७ को अतिरिक्त लाभ में भाग लेने का तथा ६ को समापन पर कम्पनी की आधिक्य सम्पत्तियों में भाग लेने का विशेष अधिकार था।

TABLE I

Showing the analysis of paid up capital, mortgages and debentures of 407 selected companies [illegible] *

	Industry	No of Cos	Paid up Capital: Ordinary A	Ordinary %	Preferene A	Preferene %	Deferred A	Deferred %	Total Amount	Mortgages and Debentures: A	%
1	Cotton	90	38 0	82	7 3	16	53	1	45 8	1 1	2 4
2	Jute	42	16 0	74	5 6	26	(a)		21 6	1 7	7 9
3	Other Textiles	9	1 8	86	3	14	(a)		2 1		
4	Iron and Steel	3	8 5	44 7	10 4	54 8	1	5	19 0	1 6	8 4
5	Engineering	41	19 3	82	4 3	18	(a)		23 6	3 2	13 6
6	Sugar	25	6 3	85	1 0	13 5	1	1 4	7 4	1 0	13 5
7	Chemicals	23	7 8	81	1 8	19	(a)		9 6	6	6 3
8	Paper	7	3 1	69	1 4	31			4 5	1 1	24 4
9	Vegetable oil	4	1 3	81	3	19			1 6		
10	Matches	4	2 5	100	(a)				2 5		
11	Cement	5	13 7	96	6	4	(a)		14 3	1 0	6 9
12	Tea	45	4 3	93	3	7			4 6	1	2 2
13	Other plantations	10	8	89	1	11			9	(a)	•
14	Coal	16	4 8	86	8	14			5 6	1 0	17 9
15	Electricity	21	17 6	86	2 9	14			20 5	6 6	32 2
16	Shipping	8	11 9	97	4	3			12 3	7 3	59 3
17	Other Manufacturing	54	19 9	73	7 2	27	1		27 2	2	11 8
	Total	407	177 6	79 5	44 7	20	1 1	1	223 4	29 7	13 3

* Source Report of the Taxation Enquiry Commission

(a) Negligible mount

A Amount in crores of rupees

% Percentage to total paid up capital

भारत मे औद्योगिक प्रतिभूतियों के स्वरूप से सम्बन्धित मुख्य बातें

(I) साधारण शेयर—
(१) ये भारत मे पूँजी एकत्र करने का सबसे लोकप्रिय साधन हैं।
(२) १० रु० और १०० रु० मूल्य के साधारण शेयर अधिक प्रचलित हैं।
(३) लाभांश की दर लौह एवं स्पात उद्योग मे सबसे ऊँची, जूट व सूती वस्त्र उद्योग में मध्यम तथा रसायन आदि उद्योगो मे सबसे कम है।
(४) अभिगोपन कमीशन की दरें अधिक नहीं हैं।

(II) प्रिफरेन्स शेयर—
(१) दत्त पूँजी मे इनका प्रतिशत औसतन १० है।
(२) कर मुक्त, सचयी एवं पूँजी की वापिसी का अधिकार वाले प्रि०शेयर बहुत लोकप्रिय है।
(३) शोध्य प्रि० शेयर विशेष प्रचलित नहीं हैं।
(४) १०० रु० मूल्य के शेयर बहुत लोकप्रिय है।

(III) डेफर्ड शेयर—
(१) अत्यन्त कम मूल्य रखते है।
(२) विशेष वर्गों द्वारा ही खरीदे जाते हैं।
(३) सबसे अन्त मे लाभ पाते है।
(४) नियन्त्रण हथियाने का साधन हैं।

(IV) डिबेन्चर—
(१) दत्त पूँजी मे इनका अनुपात औसतन १३·३ हैं।
(२) इनका मूल्य प्रायः अधिक होता है।
(३) ब्याज की औसत दर ५ ५% रही है।

(३) **शोध्य प्रिफरेन्स शेयर भारतीय कम्पनियों में विशेष पसन्द नहीं किये जाते,** यद्यपि उनके निर्गमन के लिये कम्पनी कानून मे उपयुक्त व्यवस्था कर दी गई थी। २४० प्रिफरेन्स शेयर-निर्गमनों मे से केवल ३६ निर्गमन ही शोध्य प्रिफरेन्स शेयरो वाले थे। अब कुछ पुरानी कम्पनियो ने शोध्य प्रिफरेन्स शेयरो का निर्गमन करने मे रुचि लेना आरम्भ किया है।

(४) **१०० रु० मूल्य के प्रिफरेन्स शेयर अधिक प्रचलित हैं**—२४० *निर्गमनो मे से १७५ निर्गमन १०० रु०* वाले शेयरो के थे। वैसे ये शेयर ३ रु० से लेकर १,००० तक के मूल्यों मे होते है।

(५) **लाभांश की दर** के सम्बन्ध मे *रिजर्व बैंक ऑफ इन्डिया द्वारा* प्रकाशित किये गये आँकडो से यह पता चलता है कि सन् १९५१-५२ के मध्य ९% से अधिक लाभांश घोषित करने वाली कम्पनियाँ लौह एवं स्पात, बिजली उत्पादन एवं पूर्ति, जूट टैक्स्टाइल्स, सीमेंट, कैमीकल्स, शिपिंग व बागानो से सम्बन्धित थी। ५ और ९% के मध्य लाभांश घोषित करने वाले उद्योग कागज, शक्कर, कोयला एवं चाय है। ४ और ५ प्रतिशत के मध्य घोषणा करने वाले उद्योगो मे सूती वस्त्र व अन्य टैक्सटाइल्स सम्मिलित हैं। किसी भी उद्योग ने २ ८% से कम लाभांश नहीं बाँटा।

डेफर्ड शेयर —

इन शेयरो को कम्पनी के लाभो मे साधारण शेयरो पर एक निर्दिष्ट दर से लाभाश देने के पश्चात् भाग मिलता है। जब ये कम्पनी के मूल प्रवर्तकों को या बेंडरो (Vendors) को दिये जाते हैं तो इन्हे 'स्थापना अश' (Founders' Shares) भी कहते है। कम्पनी की अथ-प्रबन्धन योजना मे इन्हे सम्मिलित कर लेने से प्रबन्धको को कम विनियोग करके ही कम्पनी पर नियत्रण रखने का अवसर मिलता है, क्योंकि इनका मूल्य प्राय. बहुत कम होता है। प्रबन्ध को हथियाने का अवसर देने के अतिरिक्त ये शेयर सट्टे को भी बढावा देते है। जब कभी कोई कम्पनी अधिक लाभ कमाती है, तो इन शेयरो पर बहुत लाभ बँटता है। इससे इनका बाजार मूल्य बढता चला जाता है। उदाहरण के लिये, टाटा कम्पनी के डेफर्ड शेयरो का अकित मूल्य केवल ३० रु० प्रति शेयर, जो सन् १९४६ मे ३,६४० रु० तक पहुँच गया, सन् १९५१ मे घटकर १,१५२ रु० रह गया और सन् १९५४ मे फिर २,०९७ रु० हो गया। सन् १९५४ मे इन शेयरो को साधारण शेयरो मे परिणित कर लिया गया।

डफर्ड शेयरो का दुरुपयोग कुछ विख्यात प्रबन्ध अभिकर्त्ता गृहो तक ने किया है। वास्तव मे कन्ट्रोल को कुछ व्यक्तियो तक सीमित रखने की यह एक कानूनी चाल है। यही कारण था कि बम्बई शेयर होल्डर ऐसोशिएसन ने भारत सरकार से इस सम्बन्ध मे उपयुक्त कानून बना कर इन शेयरो के निगमन की प्रथा को समाप्त करने का अनुरोध किया। डैफर्ड शेयरों के सम्बन्ध मे दिया गया यह तर्क कि इन शेयरो से कुछ जोखमपूर्ण उद्योगो मे विनियोग आकर्षित होते है, अनुभव से सिद्ध नही होता। भाभा कमेटी ने बताया है कि इस प्रकार के शेयरो का निर्गमन वस्तुतः पूंजी के निर्माण मे बाधक होता है।[1] हर्ष का विषय है कि डेफर्ड शेयर कम्पनी अधिनियम १९५६ द्वारा समाप्त कर दिये गये हैं।

डिबेन्चर —

(१) सभी उद्योगो मे दत्त पूँजी मे डिबेन्चरों का प्रतिशत औसतन १३ ३ था। तालिका १ को देखने से यह मालूम होगा कि शिपिंग मे डिबेन्चरो का प्रतिशत सबसे ऊँचा

---

1. "The history underlying most recent issues of deferred shares, however, belies this theory and even if in some exceptional cases, additional inducements to investors are considered necessary, it is *difficult* to justify such defferential treatments to certain classes of investors as a matter of general policy On the contrary, the issue of deferred shares with disproportionate voting rights has often resulted in the control of an undertaking by a minority of shareholders and by the undesirable repercussions which they produce on investment markets more often than not impede capital formation" (Report of the Company Law Committee, p. 35-36)

अर्थात् ५६·३% था, जबकि बिजली मे ३२·२% था। निर्माणी उद्योगो में कागज उद्योग की दत्त पूँजी मे डिबेन्चरो का प्रतिशत २४·४ था। कॉटन, जूट, लौह एवं स्पात रसायन, सीमेन्ट व चाय मे १०% से कम था। वनस्पति तेल, दियासलाई आदि मे डिबेन्चरो का प्रतिशत बहुत मामूली तथा इंजीनियरिंग व शक्कर उद्योगो मे १० से १५ के बीच था।

(२) डिबेन्चरों का मूल्य बहुत अधिक रखा जाता है, जिससे इनका बाजार सस्थागत विनियोगको एव धनाढ्य विनियोक्ताग्रो तक सीमित रहता है। औद्योगिक कम्पनियो के ६६ डिबेन्चर निर्गमनो मे से ४७ मे डिबेन्चरो का मूल्य ५०० रु० तथा ३२ मे उनका मूल्य १,००० था।

(३) डिबेन्चरों पर औसत ब्याज दर ५ ५% थी, जो प्रीफरेन्स शेयरो को मिलने वाली दर से कुछ अधिक नही है। १०५ निर्गमनो मे से ५६ निर्गमनो पर, श्री मुल्की के विश्लेषणानुसार ५% या इससे कम ब्याज दर थी। डिबेन्चरो के वर्तमान निर्गमन भी उचित दर पर हुये है।

भारत में डिबेन्चरो की कम लोकप्रियता—

इन्डियन बैंकिंग इन्क्वायरी कमेटी ने अनुमान लगाया है कि भारतीय उद्योगो मे पूँजी की १०० इकाइयो में ७५ साधारण शेयर, १६ प्रिफरेन्स शेयर तथा डिबेन्चर केवल ६ होते है, जबकि ब्रिटिश उद्योगों मे ये अनुपात क्रमशः ४७, ३३ व २० थे। श्री मुल्की के अध्ययन से भी यह मालूम होता है कि नई पूँजी प्राप्त करने के हेतु ५६७ कम्पनियो मे से ६६ कम्पनियो ने डिबेन्चर निकाले और डिबेन्चरो का कुल पूँजी से प्रतिशत केवल ७·५% था। कर जाँच आयोग ने भी ४०७ चुनी हुई कम्पनियो के अर्थ प्रबन्धन का विश्लेषण करके बताया है कि डिबेन्चरो का दत्त-पूजी से प्रतिशत १३·३ था, जबकि प्रिफरेन्स शेयर व साधारण शेयरो का दत्त पूँजी से अनुपात क्रमशः २० एव ७६ ५ था। कन्ट्रोलर आफ केपीटल इश्यू द्वारा प्रकाशित आकडो के आधार पर बनाई गई निम्न तालिका से भी यह बात प्रगट होती है :—

वर्ष	कुल स्वीकृत रकम		डिबेन्चर		कुल स्वीकृत रकम के साथ डिबेन्चरो का प्रतिशत
	कम्पनियो की सख्या	करोड रु०	कम्पनियो की सख्या	करोड रु०	
१६५०	२६३	७५	२५	११	१५
१६५१	३४३	६०	१६	४	७
१६५२	२५४	४०	६	२	५
१६५३	२३२	८१	२०	१४	१७
१६५४	२२०	१११	२४	२०	१८
१६५५	२८६	१२५	२३	१७	१४
१६५६	२६७	२३०	१२	११	५
१६५७	३४५	१५३	२२	६	६

डिबेन्चरों की कम लोकप्रियता के कारण—

डिबेन्चरो की कम लोकप्रियता के कारणो पर निम्न शीर्षको के अन्तर्गत विचार किया जा सकता सकता है :—

(१) **इश्यू करने वाली सस्था का दृष्टिकोण (Attitude of the Issuing enterprise)**—(1) डिबेन्चरो पर स्टाम्प कर लगाना पडता है, जिससे अर्थ-प्रबन्धन का व्यय बढ जाता है , (11) कम्पनियों को बैंक की निगाहो मे अपनी साख कम होने का भय रहता है , (111) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा ही उनकी मध्यमकालीन आवश्यकताये पूरी हो जाती है तथा प्रबन्ध-अभिकर्त्ता उन्हे डिबेन्चरो का निर्गमन करने के लिये निरुत्साहित करते है ।

(२) **विनियोजकों की मनोदशा**—जैसा कि सर मैंकडोनाल्ड ने भारतीय बैंकिग जांच समिति के समक्ष बताया था, भारतीय विनियोजक ऐसी प्रतिभूतियो को पसन्द करते है जिनके बाजार मूल्यो मे ऊँचे परिवर्तन होते रहे, जिससे उनको पूँजी लाभ की आशा रहे । कम जोखिम किन्तु निश्चित आय वाले डिबेन्चर उन्हे पसन्द नही आते । लेकिन यह बात आधुनिक अनुभव से सिद्ध नही होती । आजकल सरकारी प्रतिभूतियो मे जनता निसकोच काफी धन लगा रही है। (11) कम जोखिम व निश्चित आय वाले डिबेन्चर सस्थागत विनियोजको को विशेष पसन्द आते हैं, लेकिन ऐसी सस्थाओं का भारत मे नितान्त अभाव है। (111) डिबेन्चरो का अधिक मूल्य होना भी उनकी लोकप्रियता का एक कारण है । (1v) अमेरिका की भांति भारत मे डिबेन्चरो पर आकर्षक शर्ते नही दी जाती हैं। अमेरिका मे बान्डो को शेयरो मे परिणित कराया जा सकता है । इस तरह बान्डहोल्डर प्रारम्भिक अवस्थाओं मे जोखिम मे बच जाते है, किन्तु जब कम्पनी सफल हो जाती है तो वे अपने बाडो को शेयरो मे परिणित करके अधिक लाभ के भागी भी बन जाते हैं ।

(३) **सामान्य कारण**—(1) ट्रस्टी व्यवस्था जो डिबेन्चरो को अधिक लोकप्रिय बना सकती है, भारत मे नही पाई जाती है । (11) औद्योगिक प्रतिभूतियो के लिये पूँजी बाजार इतना सगठित नही है कि डिबेन्चरो के लिये नियमित माग और पूर्ति हो । (111) भारत मे कम्पनियो को अभिगोपन गृहो की सुविधायें प्राप्त नही है । ये गृह बाजार मन्दा होने पर भी कृत्रिम माग पैदा करके डिबेन्चर निर्गमन को सहारा दे सकते थे। (1v) पूँजी बाजार मे प्रतिद्वन्दी प्रतिभूतियो का बाहुल्य है, जैसे (Gilt edged Securities) एव प्रिफरेन्स शेयर आदि । इनमे सुरक्षा तत्त्व होने स उन्हे अधिक पसन्द किया जाता है ।

डिबेन्चरों को लोकप्रिय बनाने के उपाय—

विनियोजको मे डिबेन्चरो की लोकप्रियता बढाने के लिये निम्न उपाय किये जा सकते है—

(१) इन पर अधिक आवर्षक शर्तें दी जी जाय ।
(२) मूल्य कम रखा जाय ।
(३) स्टाम्प ड्यूटी कम की जाय ।
(४) बैंका को अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करना चाहिये ।
(५) *एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत जो कम्पनियाँ हैं उन्हें मिल कर* डिबेन्चरा का निगमन करना चाहिय ताकि वे विनियोगको को श्रेष्ठ प्रतिभूति दे सकें व निगमन लागत एक बड पैमाने पर बन जाय ।
(६) सस्थागत विनियोजको जैसे बैंको बीमा कम्पनियों को कानूनी ढील दकर डिबेन्चरो म अधिक विनियोग करन के लिए प्रोत्साहित किया जाय ।
(७) डिबेन्चरधारियो को ट्रस्ट सेवाय उपलब्ध की जायें ।
(८) अभिगोपन सुविधाय बढाई जायें ।

उपसहार—

सन् १९५६ म रिजव बक ने कैपीटल इश्यू के स्वरूप का जो विश्लेषण दिया है उमसे यह मालूम पडता है कि साधारण शेयरो का महत्त्व बढ रहा है तथा अन्य प्रतिभूतियाँ विशेषत डिबेन्चरा का महत्त्व घट रहा है । १००१ कम्पनियो के शेयर व डिबेन्चर सम्बन्धी नये निगमन की कुल रकम २४ करोड रु० थी जिसमे साधारण शेयर ७६% थे प्रिफरेन्स शेयर १८% तथा डिबेन्चर केवल ६% ही थे ।

STANDARD QUESTIONS

1 Discuss the important features of security pattern as obtained in Indian industries
2 Account for the unpopularity of debentures in Indian industries Suggest measures to make them more popular

अध्याय ३७

आन्तरिक वित्त व्यवस्था

(Internal Financing)

आन्तरिक वित्त व्यवस्था से आशय—

अधिकांशत: देखा जाता है कि किसी भी औद्योगिक संस्था को जितना लाभ होता है, उस संस्था के प्रबन्धक समस्त लाभ को अंशधारियों के बीच वितरित नहीं कर देते। वे कुल लाभ में से कुछ भाग बचा कर रख लेते है। किसी औद्योगिक कम्पनी के जीवन में इस प्रकार से जो बचत की जाती है, वह कभी-कभी भविष्य में बहुत काम देती है। संस्था को जब अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता होती है, तो यह 'बचत' काम में लाई जा सकती है। किसी भी औद्योगिक संस्था के अतिरिक्त अथवा उक्त रीति से बचाये गये लाभों को यदि स्थायी या कार्यशील पूँजी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रयोग किया जाय, तो ऐसे प्रयोग को वाणिज्य की भाषा में **'आन्तरिक साधनों के द्वारा वित्त प्रबन्धन'** (Internal Financing) अथवा **'आन्तरिक साधनों के वित्त प्रबन्धन'** (Financing from Internal resources) कहेंगे। कभी-कभी इस प्रणाली को **'आय का पृष्ठ विनियोग'** (Ploughing Back of Profits) भी कहते है।

'आय के पृष्ठ विनियोग' के अनुसार कम्पनी अपनी सम्पूर्ण आय का वितरण लाभांश देने में न करती हुई उसका एक अंश विभिन्न निधियों (Funds) में रखती जाती है, जैसे—संचित प्रणीवि, नवकरण प्रणीवि, पुन: संस्थापन प्रणीवि आदि। इसी प्रकार अंशधारियों की जानकारी के बिना वह गुप्त-कोष (Secret Reserve) भी बना सकती है, जिसके अनुसार यन्त्र आदि की घिसावट पर अधिक अवमूल्यन किया जाता है। इन विभिन्न विधियों की राशि से वे अपनी विकास योजनाओं की आर्थिक आवश्यकतायें पूरी करती है। यह प्रमण्डल की आर्थिक दृढता के लिए अधिक लाभकर है, क्योंकि ऋण ले कर विकास योजनाओं की पूर्ति करने से प्रमण्डल पर ब्याज का बोझ बढ़ता है और यदि ऋणों का भुगतान अकल्पित समय माँगा जाय तो कम्पनी की आर्थिक स्थिति शिथिल हो जाती है, अतः अच्छी एवं पूर्व स्थापित कम्पनियों के लिए यह पद्धति अत्यन्त उपयोगी है।

आन्तरिक वित्त प्रबन्धन के प्रभाव (Effects of Internal Financing)—

आन्तरिक वित्त प्रबन्धन के प्रभावों का अध्ययन निम्नलिखित तीन दृष्टिकोणों से किया जाता है :—

(I) औद्योगिक सस्था पर प्रभाव,
(II) अशधारियों पर प्रभाव;
(III) समाज पर प्रभाव।

'आय के पृष्ठ विनियोग' के लाभ

(I) औद्योगिक संस्था पर प्रभाव—
१ व्यावसायिक उथल-पुथल के विरुद्ध शस्त्र।
२. स्थाई लाभाश नीति एव सस्था की उच्चतर साख।
३. सस्था के विस्तार मे सुविधा।
४. मूल्य ह्रास आदि की कमी की पूर्ति।
५. ऋण पत्रो, बाड्स आदि के विमोचन की सुविधा।

(II) अंशधारियों पर प्रभाव—
१. विनियोग की सुरक्षा।
२. प्रतिभूतियो के बाजार मूल्य मे वृद्धि।
३ सुपर टैक्स से बचत मे सुविधा।

(III) समाज पर प्रभाव—
१. पूँजी के निर्माण मे वृद्धि।
२. वित्तीय स्थायित्व एव लचक।
३. औद्योगीकरण का विकास।
४ विवेकीकरण व आधुनिकीकरण की योजनाओ का अर्थ-प्रबन्धन।

(I) औद्योगिक संस्था पर प्रभाव—

(१) व्यावसायिक उथल-पुथल के विरुद्ध शस्त्र—यदि कोई औद्योगिक सस्था अपनी आय की कुल राशि का अशधारियो के मध्य वितरण न करके, कुछ बचाकर रख ले, तो कम्पनी की बचत (Corporate Savings) का यह भाग भविष्य मे बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। किसी भी औद्योगिक सस्था के जीवन मे आर्थिक उथल-पुथल अर्थात तेजी व मन्दी, आती ही रहती है। इसके अतिरिक्त सस्था के लिए ३६५ दिन सदा समान नहीं होते। वर्ष के कुछ दिन समृद्धि के दिन कहे जा सकते हैं तथा कुछ काल ऐसा भी हो सकता है जबकि सस्था को नेकमात्र भी लाभ न हो। इन मौसमी परिवर्तनों एवं व्यापार चक्रो के विरुद्ध एक सफल शस्त्र है—'आय का पृष्ठ विनियोग'। आय का पृष्ठ विनियोग सस्था को दुर्दिनो मे धैर्य बँधाता है एव सफलतापूर्वक स्थिति का सामना करने के लिए साहस प्रदान करता है।

(२) स्थायी लाभाश नीति एवं सस्था की उच्चतर साख—लाभो को बचाकर रखने का दूसरा महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि इसने सस्था की लाभाश नीति मे स्थायित्व आता है। यदि दुर्भाग्य से किसी वर्ष पर्याप्त लाभ न हुआ हो अथवा बिलकुल ही लाभ न हुआ हो, तो ऐसी परिस्थिति मे सस्था के प्रबन्धको व संचालको को अधिक चिन्तित नही होना पडता, क्योकि 'बचत' की राशि से लाभाश दिये जा सकते है। इस प्रकार अशधारियो के मध्य भी सदैव शान्ति का वातावरण रहता है एवं वे पूर्णत सन्तुष्ट रहते हैं, क्योकि उनको प्रति वर्ष नियमित रूप से लाभांश मिलता रहता है।

यदि संस्था अपनी आय का कुछ भाग बचाकर न रखे एव लाभ न होने वाले वर्ष मे लाभाश की घोषणा न करे, तो अशधारियो के मध्य असन्तोष की भावना पैदा हो सकती है। उनके असन्तोष से संस्था की साख गिरने का भी डर रहता है। परन्तु आय का पृष्ठ विनियोग कम्पनी की साख पर आँच नही आने देता।

(३) **संस्था के विस्तार मे सुविधा**—जब कभी किसी विद्यमान संस्था का विस्तार होना है और विस्तार हेतु अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता होती है, तो कम्पनी द्वारा बचाई गई राशि (Corporate Savings) का प्रयोग इस काम के लिए किया जा सकता है। ऐसा करने से एक दूसरा लाभ यह होता है कि कम्पनी को अपनी सम्पत्तियो पर प्रभार पैदा करके ऋण नही लेना पडता। आन्तरिक साधनो के द्वारा ही समस्त व्यवस्था हो जाती है। विकास योजनाओ के अर्थ प्रबन्धन की यह अत्यन्त श्रेष्ठ रीति है।

(४) **मूल्य ह्रास आदि की कमी की पूर्ति**—कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि घटौती कोष अथवा इस प्रकार के अन्य सचित कोषो मे धन की कमी (Deficiency) पड जाती है। इस कमी को पूरा करने के लिए आय का पृष्ठ विनियोग शीर्षक साधन की सहायता ली जा सकती है। इस प्रकार कम्पनी की सचालन क्षमता मे किसी भी प्रकार की कमी नही आने पाती।

(५) **ऋण पत्रो, बाड्स आदि के विमोचन की सुविधा**—कम्पनी की अवितरित आय (Undistributed Income) का प्रयोग ऋण-पत्रो आदि के विमोचन के लिए भी किया जा सकता है। इस प्रकार सिंकिंग फण्ड (Sinking Fund) की व्यवस्था बडी सरलता से हो जाती है एव संस्था को ऋण-पत्रो के विमोचन के सम्बन्ध मे चिन्ता करने की आवश्यकता नही रहती। दूसरे शब्दो म, उद्योग पर ऋण-पत्रो पर दिए जाने वाले ब्याज आदि का जो भार होता है, वह बहुत कुछ हल्का हो जाता है।

(II) अशधारियों पर प्रभाव—

आय के पृष्ठ विनियोग की योजना अशधारियो की दृष्टि से भी बहुत उपयोगी होती है। आन्तरिक वित्त प्रबन्धन का अशधारी वर्ग पर निम्नलिखित गुणकारी प्रभाव पड़ता है—

(१) **विनियोग को सुरक्षा**—अशधारियो की दृष्टि से आय के पृष्ठ विनियोग की योजना से उनके विनियोग अत्यन्त सुरक्षित रहते हैं, जैसा कि हम ऊपर सकेत कर चुके हैं, आय का पृष्ठ विनियोग मौसमी परिवर्तनो एव व्यापारिक चक्रो के विरुद्ध एक शस्त्र है, अत अशधारियो के लिए यह बहुत लाभप्रद सिद्ध होता है। आय के पृष्ठ विनियोग से संस्था की साख भी स्थिर रहती है एव उसकी लाभाश नीति मे अधिक उतार-चढाव नही होते। यह बात भी अशधारियो की दृष्टि से हितकारी ही होती है।

(२) **प्रतिभूतियों के बाजार मूल्य में वृद्धि**—संस्था की सुदृढ़ साख एवं स्थायी लाभांश नीति का उसकी प्रतिभूतियों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। प्रतिभूतियों का मूल्य बढ़ जाता है। इस मूल्य वृद्धि से अंशधारी लाभान्वित होते हैं, क्योंकि ऐसी प्रतिभूतियों को वे ऊँचे मूल्य पर बेचकर आर्थिक लाभ कमा सकते है। यदि अंशधारी ऐसी औद्योगिक प्रतिभूतियों पर स्वामित्व बनाए रखते हैं तो कम्पनी की बढ़ी हुई आय कमाने की क्षमता से वे लाभान्वित होते हैं।

(३) **सुपर टैक्स से बचत मे सुविधा**—जिन कम्पनियों मे अंशधारियों की संख्या बहुत थोड़ी होती है, उनमे आय के पृष्ठ विनियोग की पद्धति के द्वारा वे सुपर टैक्स से बच सकते है। यह लाभ अब विशेष लाभ नही रखता, क्योंकि एक तो नैतिक दृष्टि से टैक्स न देना वांछनीय नही है और दूसरे आय कर अधिनियम की धारा २३-A के आदेशों के अन्तर्गत टैक्स से बचना कठिन हो गया है।

(III) समाज पर प्रभाव

आय के पृष्ठ विनियोग की योजना केवल कम्पनियों या अंशधारियों की दृष्टि से ही लाभप्रद नही होती, वरन् समाज पर भी इसके गुणकारी प्रभाव पड़ते है। नीचे हम ऐसे कुछ प्रभावों की विवेचना कर रहे हैं—

(१) **पूँजी के निर्माण मे वृद्धि**—कम्पनी की बचत पूँजी के निर्माण को प्रोत्साहित करती है। पूँजी का निर्माण आर्थिक समृद्धि की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक होता है। यदि किसी देश मे पूँजी का निर्माण मन्द गति से होता है तो वहाँ औद्योगीकरण की समस्त योजनायें भी बहुत धीमी गति से तथा बहुत लम्बी अवधि मे पूरी हो सकेंगी। इसके विपरीत जिस देश मे पूँजी का निर्माण तेज गति से होता है, वहाँ औद्योगीकरण भी सरलता व शीघ्रता के साथ होता है। औद्योगीकरण से समाज भी लाभान्वित होता है, क्योंकि इससे समाज के सदस्यों को अधिक मात्रा मे उच्च कोटि की व सस्ती वस्तुएँ उपलब्ध होने लगती है।

(२) **वित्तीय स्थायित्व एवं बचत**—प्रत्येक समाज अपनी विद्यमान संस्थाओं के कुशल व निरन्तर संचालन एवं नई-नई संस्थाओं की स्थापना मे रुचि रखता है। कम्पनी की बचतें इसको सम्भव बनाती है। आन्तरिक अर्थ-प्रबन्धन की व्यवस्था से संस्था को किसी भी प्रकार की वित्तीय कठिनाई नही होने पाती एवं सभी भावी योजनाएँ आसानी के साथ पूरी हो जाती है। यदि कम्पनियाँ बचत न करें, तो उनकी स्थिति कभी भी डाँवाडोल हो सकती है।

(३) **औद्योगीकरण का विकास**—*आय के पृष्ठ विनियोग से औद्योगीकरण भी* प्रोत्साहित होता है। तीव्र औद्योगीकरण के लिए धन की बड़ी आवश्यकता होती है और यह धन कम्पनियों की बचत से प्राप्त किया जा सकता है।

(४) **विवेकीकरण व आधुनिकीकरण की योजनाओं का अर्थ-प्रबन्धन**—विवेकीकरण व आधुनिकीकरण की योजना को क्रियान्वित करने के लिए बहुत बड़ी मात्रा

मे धन की आवश्यकता होती है। आय का पृष्ठ विनियोग द्वारा यह समस्या काफी सीमा तक हल हो जाती है। बचत की राशि का यन्त्रीकरण, स्वचालन, आधुनिकीकरण आदि की योजनाओ मे विनियोग करके सस्था की कार्यक्षमता को बढाया जा सकता है, जिससे समाज को लाभ पहुँचता है।

आन्तरिक वित्त प्रबन्धन का महत्त्व—

पच वर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत औद्योगिक विकास कार्यक्रमो को निर्धारित करते समय योजना आयोग (Planning Commission) ने भी 'आन्तरिक अर्थ प्रबन्धन' के महत्त्व को स्वीकार किया है। प्रथम पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत निजी क्षेत्र के विकासार्थ कुल ६१३ करोड रु० की राशि मे से २०० करोड रु० अथवा ३२·६% आन्तरिक साधनो के द्वारा प्राप्त किए गए। सन् १६५०-५१ मे औद्योगिक लाभो की मात्रा ६८ करोड रु० थी, जिसमे से ३४ करोड रु० अथवा ३४·७% आय का पृष्ठ विनियोग किया गया। द्वितीय पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत भी निजी क्षेत्र के लिए प्रस्तावित कुल विनियोग (६२० करोड रु० मे से ३०० करोड रु० अथवा ४८% आन्तरिक साधनो द्वारा प्राप्त किया गया। इसी प्रकार तृतीय पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत भी, उद्योगो के विकास के लिए आन्तरिक साधनो पर काफी सीमा तक निभरता दिखलाई गई है। सन् १६५४ मे श्रोफ (Shroff) कमटी ने भी प्लान्ट व मशीनरी के आधुनिकीकरण व नवकरण के हेतु 'आय के पृष्ठ विनियोग' का सुझाव दिया था।

इस बात पर पुनः बल देना अनावश्यक न होगा कि विद्यमान उद्योगो के विकास व विस्तार के लिए दो ही रास्ते होते है—(i) अतिरिक्त समता अश पूँजी आमन्त्रित करना और अथवा (ii) सचित लाभो का उपयोग करना। इन दोनो साधनो मे से कर जाँच समिति (Taxation Enquiry Commission) ने दूसरे साधन को ही अधिक श्रेष्ठ बतलाया।[1]

भारतीय उद्योग एव अवितरित लाभ

करारोपण जाँच आयोग के अध्ययन के निष्कर्ष—

करारोपण जाँच आयोग (Taxation Enquiry Commission) ने ४६२ कम्पनियो के सन् १६४६ से ५१ की अवधि के लिय लाभ और इसके वितरण का अध्ययन किया था, जिससे अनेक महत्त्वपूर्ण बातें सामने आई है :—

---

1 'It appears that corporate savings provided a larger source than new subscriptions, on the whole, in the financing of industrial expansion during the post war period, including new companies, in respect of the other companies corporate savings were even more important."

—Taxation Enquiry Commission

(१) इस सम्पूर्ण अवधि के लिये करों, लाभांशों एवं अवितरित लाभों में अनुपात ४,३ और ३ का था। करों का लाभ में भाग सबसे अधिक रहा। इस आधार पर उद्योगपतियों ने बहुत आलोचना भी की थी। जैसे-जैसे करों में कमी की गई, वैसे वैसे लाभ में उनका भाग भी कम होता गया है। सन् १९४६ में करों का भाग ५०% था, किन्तु सन् १९५१ में ३९ ही रह गया।

(२) कर देने के पश्चात् वितरण के लिये उपलब्ध वार्षिक औसत शुद्ध लाभ की मात्रा २९ करोड़ रु० थी, जिसमें से १६½ करोड़ रु० (अर्थात् ५८%) वितरित किया गया और औसतन ११·५ करोड़ रु० (अर्थात् ४०%) अवितरित लाभ था। वितरण के लिये उपलब्ध लाभ की मात्रा उक्त अवधि में कम या अधिक होती रही है, लेकिन वितरित लाभ की मात्रा प्रायः स्थिर रही है। अतः वितरित लाभ का प्रतिशत घटता-बढ़ता रहा है। अवितरित लाभ का प्रतिशत भी अधिक लाभ के वर्ष में अधिक और कम लाभ के वर्ष में कम रहा। यह बात निम्न तालिका में स्पष्ट हो जाती है :—

चुनी हुई कम्पनियों के लाभ एवं इसका प्रयोग

(१९४६-५१) (करोड़ रु० में)

वर्ष	कर देने के पश्चात् लाभ	वितरित लाभ	रिजर्व का ट्रान्सफर	अवितरित लाभ	वितरित लाभ का प्रतिशत	अवितरित लाभ का प्रतिशत
	१	२	३	४	५	६
१९४६	२७·८०	१५·५१	९·६७	१०·७८	५५·८	३८·८
१९४७	२४·३९	१५·१२	८·३२	८·५७	६२·०	३५·०
१९४८	३१·३०	१५·२८	१६·३३	१५·७१	४८·८	५०·०
१९४९	१९·६२	१५·१०	६·६२	४·२४	७७·०	२१·६
१९५०	३०·३६	१७·८६	११·९६	१२·११	५८·९	३९·९
१९५१	३९·०२	२०·६१	१६·७१	१७·९३	५२·८	४६·६
कुल	१७०·४८	९९·४९	६९·५४	६९·२८	५७·७	४०·१

(३) जूट, बिजली, जहाज, चाय एवं अन्य बगीचा उद्योगो मे वितरित लाभ का अनुपात सब उद्योगो के औसत अनुपात (५७'७) अधिक था और तदनुसार इनके अवितरित लाभ का अनुपात भी सब उद्योगो के औसत अनुपात (४०'१%) से कम रहा। इसके विपरीत, मशीन, कागज व सूती वस्त्र उद्योगो मे अवितरित लाभ का अनुपात सब उद्योगो के औसत अनुपात से अधिक है। इसका कारण यह है कि इन उद्योगो मे कोषो का पूँजीकरण अधिक मात्रा मे किया जाता है। यह बात निम्न-तालिका मे दिखाई गई है :—

विशेष उद्योगो मे वितरित एवं अवितरित लाभ
(१६४६-५१)

	वितरित लाभ (कर काटने के बाद शुद्ध लाभ के प्रतिशत के रूप मे)	अवितरित लाभ (कर काटने के बाद शुद्ध लाभ के प्रतिशत के रूप मे)
सूती वस्त्र	४१ २	४६'७
जूट का सामान	७३'१	२६ ८
अन्य वस्त्र	५७'४	४१ ८
लौह एव स्पात	५२'६	४० ४
इजीनियरिंग	५६'२	४३'७
चीनी	५६ ०	४२'७
रसायन	६४'६	३३'३
कागज	४७'३	५२ ७
वनस्पति तेल	६१ ५	३६ ५
दियासलाई	४८ ८	५१ २
सीमेन्ट	६० १	२७ ३
चाय बागान	६८'७	३१ ३
अन्य बागान	६६'७	३३ ३
कोयला	६४'२	३५'४
बिजली	७६'७	२२ ०
जहाज	७० ५	२६ ५
अन्य	५५'५	४३'५
सब उद्योगो के लिये	५७ ७	४०'१

रिजर्व बैंक ग्राफ इंडिया के अध्ययन के निष्कर्ष—

रिजर्व बैंक ग्राफ इंडिया के अनुसधान एवं सांख्यिकी विभाग ने सन् १९५०-५५ की ग्रवधि के लिये ७५० सयुक्त स्कन्ध कम्पनियों की वित्तीय दशा का अध्ययन किया था। इस अध्ययन के परिणाम नीचे संक्षेप में प्रस्तुत किये गये हैं :

(१) कुल लाभ (२८२ करोड रु०) म कर, लाभांश व अवितरित लाभ का अनुपात क्रमशः ४१, ३६ व २३ था।

(२) कर देने के बाद वितरण के लिये उपलब्ध लाभ २२७ करोड र० था। इसमे से कम्पनियों ने १२९ करोड रु० (अर्थात् ६१%) लाभाश के रूप मे वितरित किया और ८८ करोड र० (अर्थात् ३९%) रोक लिया या अवितरित लाभ था।

(३) वार्षिक लाभ मे परिवतन होने का सबसे अधिक प्रभाव अवितरित लाभों पर हुआ। उदाहरण के लिये, कर देने के बाद लाभ सन् १९५२ मे ३१ करोड रु० रह गया, जब कि पिछले वर्ष ५१·५ करोड रु० था। इसके फलस्वरूप लाभ मे केवल २·५ करोड रु० की कमी हुई, जबकि अवितरित लाभ मे १८ करोड रु० की कमी ग्राई। (देखिये तालिका)

कम्पनियों द्वारा लाभ का प्रयोग (१९५१-५५)

वर्ष	कर काटने के बाद लाभ	वितरित लाभ (लाभाश)	अवितरित लाभ	वितरित लाभ का अनुपात	अवितरित लाभ
१९५१	५१·५	२७·०	२४·६	५२·०	४८
१९५२	३१·०	२४·५	६·६	७९	२१
१९५३	३८·६	२६·१	२·५	६८	३२
१९५४	४५·८	२९·२	१६·६	६४	३६
१९५५	५९·५	३२·२	२७·३	५४	४६

(४) अधिकाश उद्योगो मे अवितरित लाभ अर्थ प्रबन्धन का एक महत्त्वपूर्ण अग है। लोह एव स्पात, इजीनियरिंग, शिपिंग एव कागज उद्योगों ने अपना आधे से अधिक लाभ (कर काटने के पश्चात्) रोक लिया था। सीमेन्ट, चाय, अन्य बगीचा उद्योग व कोयला कम्पनिया न ⅓ या ⅔ से

अधिक लाभ रोका था। वनस्पति तेल, भूमि एवं जायदाद कम्पनियो ने लाभाश तो बाँटे किन्तु इस हेतु उन्हे अपने रिजर्व से लाभ निकालना पड़ा (देखिये निम्न तालिका)।

विशेष उद्योगो में लाभ का प्रयोग (१९५१-५५)

उद्योग	वितरित लाभ का प्रतिशत	अवितरित लाभ का प्रतिशत
सूती वस्त्र	७७	२३
जूट वस्त्र	८३	१७
अन्य वस्त्र	९८	२
लौह एवं स्पात	३५	६५
इजीनियरिंग	४७	५३
सीमेंट	६१	३९
चीनी	५९	४१
कागज	४५	५५
वनस्पति तेल		•
रसायन	९९	१
दियासलाई	७२	२८
कोयला	६७	३३
बिजली	७८	२२
जहाज	४७	५३
चाय	६३	३७
अन्य बगीचे	६३	३७
व्यापारिक कम्पनी	८९	११
भूमि एव जायदाद	११९	...
(कुल अन्य कम्पनियों सहित)	६१	३९

आन्तरिक बचत को प्रभावित करने वाले मुख्य-मुख्य घटक—

किसी कम्पनी मे आन्तरिक बचत की मात्रा कितनी होगी, यह निम्न मुख्य घटको पर निर्भर है :—

कम्पनियो की बचत को प्रभावित करने वाले घटक

(I) कम्पनियो की आय,
(II) सरकार की कर नीति, एव
(III) उद्योग की लाभाश सम्बन्धी नीति ।

(I) कम्पनियों की आय—

कुछ लाभ बाँटने और कुछ लाभ रोकने का प्रश्न तब ही उदय होता है जबकि कम्पनी को पर्याप्त लाभ हो। लाभ की मात्रा को प्रभावित करने वाले निम्न घटक हैं :—(i) माँग एव पूर्ति सम्बन्धी दशायें, (ii) उत्पादन एव बिक्री लागत, (iii) सामान्य मूल्य स्तर, (iv) सस्था का आकार (v) सम्मेलन का स्तर एव स्वरूप, (vi) पूँजी का अनुपात (Gearing of Capital) आदि। ये घटक कम्पनी की आय को निर्धारित करते है। आय का कितना भाग कम्पनी पुन राक कर विनियोग करेगी, यह भी अनेक घटको पर निर्भर है जैसे (i) व्यापार म उतार-चढ़ाव की सम्भावना, (ii) विकास की आवश्यकतायें, (iii) घिसाई की मात्रा, (iv) ऋण परिशोधन कोष की आवश्यकता, एव (v) लाभाश की दर मे स्थायित्व लाने की इच्छा। प्रत्येक प्रगतिशील व्यवस्थापक का यह मुख्य लक्ष्य होता है कि वह अपने व्यापार व उद्योग को सहज गति, सफलता सहित एव स्थायी ढग से चलावे। इस उद्देश्य की पूर्ति मे सचित आय से बड़ी सहायता मिलती है।

(II) करारोपण—

गत कुछ वर्षों मे विभिन्न उद्योगपतियो, सगठनकर्त्ताओ एव व्यापारिक व औद्योगिक पार्षदों द्वारा **सरकारी कर नीति** को **कड़ी आलोचना** की गई है, क्योकि (i) कर की अत्यधिक ऊँची दरो ने कम्पनियो मे पूँजी निर्माण को कुप्रभावित किया है, (ii) करारोपण की वर्तमान दरे प्रति व्यक्ति आय के इतने न्यून स्तर पर भारतीय अर्थ-व्यवस्था की सहनशक्ति के परे हैं, (iii) क्रेता के बाजार की दशाय लौटने के सन्दर्भ मे करो की इतनी ऊँची दर न्यायसगत नही है, (iv) कर की ऊँची दरो का आधुनिकीकरण एव विकास योजनाओ पर प्रभाव पड रहा है व (v) विदेशी पूँजी के आयात मे भी बाधा हो रही है। **इसके विपरीत सरकार का मत था कि** (i) भारत म कुल कर आय का राष्ट्रीय आय से अनुपात विश्व मे सबसे कम है। यह भारत मे सन् १९५०-५१ मे ७% था, जबकि ब्रिटेन मे ३५, जापान मे २३, आस्ट्रेलिया मे २२ और लका म २०% है। यदि कर अनुपात इतना ही कम रहा, तो विनियोग-स्तर मे विशेष वृद्धि होने की आशा छोड देनी पडेगी, (ii) प्राइवेट उपक्रमो ने स्वय ही एक उचित लाभ-नीति नही अपनाई है तथा रिजर्व भी नही बनाये गय है, (iii) कर की दर इतनी ऊँची नही है कि उपक्रमो को विशेष निरुत्साहित करने वाली हो, और (iv) सरकार ने परिस्थितियो को देख कर कर भार म कमी करने का प्रयास भी किया है, ताकि उद्योगो को अनावश्यक भार न उठाना पडे।

कर समस्या पर विचार करते समय करारोपण-जाँच-आयोग की रिपोर्ट को ध्यान में रखना आवश्यक है। ४६२ कम्पनियों की लाभ-नीति का अध्ययन किया गया था। इस अध्ययन से यह मालूम हुआ है कि अवितरित लाभ की मात्रा और लाभ से इसका अनुपात करों की मात्रा व दरों से इतना प्रभावित नहीं होते जितना कि लाभ की मात्रा व दर से। एक अन्य आधुनिक अध्ययन से भी यह पता चला है कि यद्यपि उद्योग पर कुल करों का भार बढ़ रहा है तथापि उसे उद्योगपतियों ने उपभोक्ताओं पर डाल दिया है, जिससे उनके लाभों और उत्पादन की मात्रा पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ा।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि भारत सरकार की करारोपण नीति में कोई सुधार करने की आवश्यकता नहीं है। कर नीति में उचित सशोधन करके कम्पनियों की बचत को प्रोत्साहित किया जा सकता है। उदाहरण के लिये, भारत में भी जापान की भाँति अवितरित लाभों पर कर कम दर से लगाया जा सकता है।

(III) लाभांश सम्बन्धी नीति

कम्पनियों की बचत को प्रभावित करने वाली एक अन्य महत्वपूर्ण बात उनकी लाभांश-नीति है। करारोपण जाँच आयोग की रिपोर्ट से पता लगता है कि कम्पनियाँ अपने शुद्ध लाभों का काफी बड़ा भाग वितरित कर देती है। सन् १९४९ में कुल उद्योगों के लिये, शुद्ध लाभों का ७७% भाग वितरित किया गया था। कुछ लोगों ने यह सम्मति दी है कि उद्योग के आन्तरिक साधनों को सुदृढ़ बनाने के लिये लाभांशों पर वैधानिक सीमा लगा देनी चाहिये। किन्तु राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञ इसके पक्ष में नहीं है। लाभांशों पर वैधानिक सीमा लगाने के सम्बन्ध में सूती वस्त्र उद्योग के लिये नियुक्त कार्यकारी दल (Working Party for Cotton Textile Industry) ने कहा है कि, "यद्यपि विशाल लाभांश वितरित करके लाभों को बिखेर देना अनुचित है तथापि किसी भी उद्योग में लाभांशों को सीमाबद्ध करने का बुरा प्रभाव न केवल उस विशेष उद्योग पर वरन् सभी उद्योगों पर पड़ेगा। जब निर्धारित न्यूनतम लाभांश के लिये गारन्टी नहीं है, तो अधिकतम लाभांश (जो कि वैसे ही बहुत नीचा है) सम्बन्धी प्रश्न खड़ा करने से विनियोगकों में यह भावना पैदा होगी कि शेयरों में विनियोग करना व्यर्थ है। आज देश में पूँजी निर्माण की बहुत आवश्यकता है। यदि लाभांशों पर सीमा लगाई गई, तो इसका पूँजी के प्रवाह पर बुरा प्रभाव पड़ने का खतरा है।"[1]

---

1. "While it deprecates the frittering away of unexpected profits by the distribution of large dividends—a statutory provision for limitation of dividends in any industry will have an unhealthy effect not merely on the industry concerned but on the flow of capital to indus-

(Contd.)

लाभांशों को सीमाबद्ध करने के विपक्ष मे प्राय निम्न तर्क दिये जाते हैं — (i) इसमे पूँजी बाजार अस्त-व्यस्त हो जाता है तथा प्राइवेट क्षेत्र के लिए अर्थ प्रबन्धन सम्बन्धी कुप्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता है। (ii) यह धन को व्यथ सामान मे खर्च करने को प्रोत्साहन देता है (iii) इससे कम्पनियों की स्वतन्त्रता मे बाधा पडती है एव (iv) औसत की अवधि सदा विवादास्पद है।

सन् १९५५ मे राज्य सभा मे इस आशय का प्रस्ताव रखा गया था कि सरकार देश की सभी औद्योगिक संस्थाओं के लाभो पर सीमा (Ceiling) लगा दे और सीमा से ऊपर होने वाले लाभ को आर्थिक सहायता चाहने वाले उद्योगों को ऋण देने मे स्तेमाल करे। यह सीमा बैंक दर से २ या ३% अधिक लगाई जाय। प्रोफेसर रङ्गा ने इसका घोर विरोध किया था और कहा कि इससे प्राइवेट क्षेत्र मे शंका की लहर दौड जायगी। हाँ, ऐसे उपाय करना आवश्यक है जिनसे लाभ को संस्था मे कम से कम मात्रा मे निकालने की प्रेरणा मिले। एक सदस्य ने बताया है कि यदि सरकार ने ऐसा कदम उठाया तो यह सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी को ही मार डालने के समान होगा। वैसे भी यदि विचार करें तो उक्त प्रस्ताव को अमल मे लाना निरर्थक प्रतीत होगा। वर्तमान बैंक दर पर २ या ३% अधिक की सीमा लगभग ६ ५% होती है जबकि रिजर्व बैंक आफ इण्डिया द्वारा १००१ कम्पनियों की जाँच से पता चला है कि लाभांश की दर ५ २% रही है। अतः ऊँचे लाभांशों पर रोक लगाने का एक अच्छा तरीका करारोपण ही है। अस्थाई रूप से अतिरिक्त लाभ कर लगाया जा सकता है। यदि लाभांश पर सीमा लगाई गई तो शेयर बाजार पर बुरा असर पडेगा तथा प्राइवेट क्षेत्र निरुत्साहित होगा।

लाभों के अन्तर्विनियोग की हानियाँ—

यदि लाभों का अविवेकपूर्ण ढंग से अन्तर्विनियोग किया गया तो निम्न हानियाँ होने की सम्भावना है —

(१) **एकाधिकारों का निर्माण**—लाभों के अन्तर्विनियोग मे विद्यमान फर्मों का अधिकाधिक विस्तार होता जायगा जबकि नई फर्मों को पूँजी मिलने मे कठिनता अनुभव होगी। इस प्रकार एकाधिकार बनने को प्रोत्साहन मिलता है।

---

tries generally Where there is no guarant e of a minimum dividend prescribe l, the question of a maximum—and too at a low lovel would certainly create feeling in the investor that equity investment is not attractive At a time when capital formation is still the greatest need of the country it will be taking a great risk if an actual definite limi tation was put on the dividends

(२) शेयरों के मूल्यों में गड़बड़ी—संस्था में बहुत अधिक एकत्रित आय होने से व्यवस्थापकों को शेयरों के मूल्य में गड़बड़ियाँ करने का अवसर मिल जाता है। लाभांश दर कम रख कर तथा अधिक अनुपात में लाभ रोक कर वे शेयर बाजार में शेयरों का मूल्य नीचा लाने में सफल हो जाते हैं और फिर घटे हुये मूल्य पर स्वयं खरीद कर लेते हैं। बाद में एकत्रित लाभ की सहायता से वे ऊँचे लाभांश देने लगते हैं, जिससे शेयरों का मूल्य बढ़ जाता है। अब वे अपने घटे हुये मूल्य पर खरीदे गये शेयर बेच कर लाभ उठाते हैं। उनकी इन चालबाजियों से निर्दोष व अनभिज्ञ विनियोजकों को बड़ी हानि सहनी पड़ती है।

लाभों के अन्तर्विनियोग की ७ हानियाँ

१. एकाधिकारों का निर्माण।
२. शेयरों के मूल्यों में गड़बड़ी।
३. कर-दायित्व से बचाव।
४. बचत का दुरुपयोग।
५. अत्यधिक पूँजीकरण।
६. विनियोजक की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप।
७ पूँजी बाजार के प्रवाह पर रोक।

(३) कर दायित्व से बचना—कर-दायित्व से बचने के लिये कम्पनी की बचत में वृद्धि की जा सकती है। (आय कर अधिनियम में इस दोष को दूर करने का उपाय कर दिया गया है।)

(४) बचत का दुरुपयोग—यह भी सम्भव है कि संस्था की बचत को शेयर होल्डरों के व्यापक हित में प्रयोग न किया जाय। प्रबन्धक एक कम्पनी की बचत को अपने ही स्वार्थ वाली कम्पनियों में विनियोग कर सकते हैं।

(५) अत्यधिक पूँजीकरण—प्रबन्धक बोनस शेयर जारी करके एकत्रित लाभ का पूँजीकरण करते रहते हैं। इससे अत्यधिक पूँजीकरण हो जाने का भय है। तेजी के दिनों में ऐसा अधिक पूँजीकरण ठीक होता है, लेकिन 'क्रेता का बाजार' लौटने पर इसका बुरा प्रभाव पड़ने लगेगा।

(६) विनियोजक की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप—साधारणतः विनियोजक को यह स्वतन्त्रता होती है कि वह पुराने उद्योग के विकास में सहयोग दे अथवा नई संस्था की स्थापना में सहायता करे। किन्तु लाभांश-वितरण की उपरोक्त नीति उसकी इस स्वतन्त्रता में बाधा डालती है।

(७) पूँजी बाजार के प्रवाह पर रोक—यह भी कहा जाता है कि लाभ को संस्था में रोक रखना पूँजी बाजार के स्वाभाविक कार्यवाहन पर प्रतिबन्ध लगाने के समान है।

उपसंहार—

ब्रिटेन में ब्रिटिश उद्योग द्वारा लाभों के अन्तर्विनियोग की नीति को अपनाने के विरोध में संगठित प्रयास चल रहे हैं। लेकिन यह स्मरण रहे कि भारतीय परि-

स्थितियाँ ब्रिटेन की परिस्थितियों से बिल्कुल भिन्न हैं। अत्यधिक विकास हो जाने के कारण ब्रिटिश उद्योग के लिये लाभ के अन्तर्विनियोजन की नीति भले ही अनुपयोगी जँचे किन्तु भारत में लाभ के अन्तर्विनियोजन की उपेक्षा करने से औद्योगिक विकास के लिये पर्याप्त पूँजी की व्यवस्था करना कठिन होगा। आशा है कि नव स्थापित कम्पनी लॉ प्रशासन विभाग सी नीति अपनायेगा कि कम्पनियों के एकत्रित लाभ को शेयर होल्डरों के देश के व उद्योग के सामान्य हित में अन्तर्विनियोग किया जा सके।

STANDARD QUESTIONS

1 What do you mean by the term 'Internal Financing'? How does it affect the interest of the Shar holder, industry and society?

2 Write a note on 'Retained Profits in Indian Industries.'

3 Discuss the factors which affect the amount of savings in a company What are the dangers of ploughing back of profits?

अध्याय ३८

बैंक एवं औद्योगिक वित्त

(Banks & Industrial Finance)

भारत में औद्योगिक वित्त की समस्या—

भारत में औद्योगिक संस्थाओं की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति की एक बड़ी समस्या है। सन् १९०६–१३ के स्वदेशी आन्दोलन के समय में व्यापारिक बैंकों ने (विशेषतः पंजाब के व्यापारिक बैंकों ने) औद्योगिक वित्त व्यवस्था में प्रथम बार भाग लेना आरम्भ किया। स्वदेशी आन्दोलन की प्रेरणा प्राप्त उद्योगों को इन तथाकथित औद्योगिक बैंकों द्वारा आर्थिक सहायता दी जाती थी, लेकिन सन् १९१३—१५ के वित्तीय संकट ने ऐसे अनेक बैंकों को फेल कर दिया। प्रथम युद्ध काल में व इसके पश्चात तेजी की दशाओं से उत्साहित होकर अनेक कम्पनियों का निर्माण हुआ। जापान व जर्मनी

ने औद्योगिक क्षेत्र मे जो आश्चर्यजनक उन्नति की और वहाँ औद्योगिक और बैंकिंग प्रणालियो मे जो समन्वय था उससे प्ररणा लेकर हमारे देशवासियो ने भी वैसा ही नमूना अपनाने का प्रयास किया। अत औद्योगिक बैंकिंग के क्षेत्र मे हमारा दूसरा प्रयोग सन् १६१७ टाटा इन्डस्ट्रियल बैंक की स्थापना स आरम्भ हुआ। इस बैंक ने इतनी तेजी से उन्नति की थी कि स्टाक एक्सचेंज मे इसके शेयरो का मूल्य बहुत बढ गया। औद्योगिक वित्त प्रबन्ध करने के उद्दश्य को लेकर कई बैंक टाटा बैंक के नमूने पर प्रारम्भ हुये, किन्तु अगल कुछ वर्षों मे ये सब बन्द होने के लिये विवश हो गये। इनकी असफलता के कई कारण थे।

प्रारम्भिक औद्योगिक बैंको की असफलता के कारण—

इन बैंको की असफलता के मुख्य कारण निम्नलिखित थ :—

भारत मे औद्योगिक बैंको की असफलता के कारण

१. जर्मन नमूने के बैंको के सफल सचालन के लिये आवश्यक ज्ञान व योग्यता का अभाव।
२. ऋणियो की पर्याप्त जाच पडताल न करना।
३ विनियोग का विविधीकरण न होना।
४ सचालको की अकुशलता।

(१) जर्मन नमूने के बैंकों के सफल सचालन के लिये आवश्यक ज्ञान व योग्यता का अभाव—हमारे देशवासियो ने भारतीय परिस्थितियो मे जर्मन नमूने के बैंको की स्थापना करन का उत्साहपूर्ण प्रयास तो किया, लेकिन उनके उत्साह मे आवश्यक ज्ञान और योग्यता का अभाव तो पूरा नही हो सकता था, जो कि ऐसी विशिष्ट सस्थाओ के सचालन के लिये अनिवार्य है। जर्मन बैंको के सगठन, कार्य प्रणाली व कार्यों के बारे मे बडा भ्रम प्रचलित था। जर्मन बैंको मे प्रत्येक विभाग आत्म निभर होता था। उनकी इस विशेषता को भारतीय प्रवर्त्तको ने नही समझा, जबकि जर्मन बैंको के पास विशाल निजी पूजी थी, वे डिबन्चर बेच कर भी अतिरिक्त कोष जुटा लेते थे तथा औद्योगिक प्रतिभूतियो मे सदा के लिये धन फसाने की नीति कभी स्वीकार नही करते थे तब भारतीय औद्योगिक बैंको के पास निजी कोष बहुत कम थे, ऋण पत्र उनमे लोकप्रिय न थे तथा उनके कोष स्थायी रूप से औद्योगिक शेयरो मे लग चुके थे। व मुख्यत डिपाजिट बैंक थे, लेकिन उन्होने इन्वेस्टमेन्ट बैंकिग क काय मे अपने को उलझा लिया।

(२) ऋणियो की आर्थिक अवस्था के विषय मे पर्याप्त जांच पडताल न करना—बैंको ने ऋण लेने की इच्छुक सस्थाओ की आर्थिक अवस्था के विषय मे पर्याप्त जाच पडताल नही की। फल यह हुआ कि बिल्कुल ही अयोग्य सस्थाओ को पर्याप्त प्रतिभूति के बिना ऋण दे दिये गय, जो कि वसूल न हो सके।

(३) **विनियोगों के विविधीकरण का अभाव**—विनियोगों का चुनाव उचित प्रकार नहीं हुआ, उनके विविधीकरण की उपेक्षा की गई, विनियोग की सुरक्षा को अधिक आय के लालच म बलिदान कर दिया गया, प्रतिभूति का वैज्ञानिक ढग से मूल्याकन नही कराया जाता था सट्टे के लिये प्रतिभूतियो का क्रय विक्रय किया जाता था।

(४) **सचालकों की अकुशलता**—अनेक दशाओ मे सचालकों की अकुशलता के कारण भी बैंको को बडी हानि सहनी पड़ी। शेयर होल्डरों व बाहरी व्यक्तियों से सच्ची दशा छिपाने के लिये पूजी मे से लाभाश बाटे जाते थे। सचालकों की हित वाली सस्थाओ को बिना पर्याप्त जाच-पडताल के विशाल रकम मे उधार दे दी गई। प्रत्येक प्रकार का बैंकिंग कार्य किया जाता था, किन्तु साख या मिश्रित बैंकिंग को सफल बनाने के लिये आवश्यक उपाय नही किये गये। अल्पकालीन बैंकिंग एव दीर्घकालीन साख व्यापार का उचित समन्वय न होने से बैंको के कोष अटक गये। हमारे बैंकरो की अज्ञानता एव अबुद्धिमत्ता ने स्थिति को अधिक भयावह बना दिया।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारतीय परिस्थितियाँ जर्मन नमूने के बैंको की स्थापना के लिये अनुकूल न थी और साथ ही उनके सचालन की आवश्यक टेक्नीक का भी पालन नही किया गया।

सरकारी सहायता प्राप्त औद्योगिक बैंक—

प्राइवेट उपक्रम के अतिरिक्त सरकारी सहायता से एक विशिष्ट सस्था की स्थापना पर भी विभिन्न समितियो द्वारा जोर दिया गया है, क्योकि उनके मतानुसार इससे देश मे औद्योगिक वित्त की समस्या बहुत सीमा तक हल हो सकती है। सन् १९१८ म ही औद्योगिक कमीशन ने भारत मे औद्योगिक बैंको की स्थापना करने का सुझाव दिया था और कहा था कि उनकी पूजी (शेयर या डिबेन्चर पूजी) कुल व्यापार के अनुपात मे काफी अधिक होनी चाहिये, किसी भी एक सस्था या एक उद्योग मे वह अपनी रकम न फसावें, प्लान्ट, इमारत व भूमि पर ऋण देते समय पर्याप्त सावधानी रखें, अधिकतर कार्यशील पूजी की व्यवस्था करे, स्वय ही कम्पनियो के प्रवर्तन की चेष्टा न करे, नई कम्पनियो की दिशा मे उचित सावधानी बरतें आदि। औद्योगिक बैंक मे सुरक्षा को प्रभावित करने वाली मुख्य बात यह है कि प्रत्येक प्रकार के व्यापार को उचित सीमा के अन्दर रखा जाय। औद्योगिक कमीशन ने जापान के औद्योगिक बैंको के नमूने को भारत मे अपनाने का परामर्श दिया। मुख्यत: कार्यशील पूजी मे भाग लेने का परामर्श देकर कमीशन ने औद्योगिक बैंको की उपयोगिता को ही कम कर दिया।

सरकारी सहायता से औद्योगिक बैंकों की स्थापना के प्रश्न पर भारतीय केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी ने विचार किया। इसके समक्ष अधिकाश अर्थशास्त्रियों, देशी बैंकरों, व्यापारिक बैंको, चेम्बर ग्राफ कॉमर्सों आदि ने दीर्घकालीन अर्थ प्रबन्ध के लिये

विशिष्ट संस्था की स्थापना पर जोर दिया। इसके विपरीत, विदेशी विशेषज्ञों ने यह मत प्रगट किया कि भारत की वर्तमान परिस्थितियों में मैनेजिंग एजेन्ट्स ही दीर्घकालीन अर्थ प्रबन्ध का उत्तम साधन है। कुल पर प्रचलित सामान्य धारणा यही थी कि औद्योगिक बैंकों की स्थापना की जानी चाहिये और सरकार को उनकी पूंजी में भाग लेना चाहिये। अब औद्योगिक वित्त निगम तथा राज्य वित्त निगमों की स्थापना ने भारत की यह दीर्घकालीन आवश्यकता पूर्ण हो गई है।

मिश्रित बैंकिंग

मिश्रित बैंकिंग के कटु अनुभव—

'मिश्रित बैंकिंग' (Mixed Banking) से आशय डिपाजिट बैंकिंग और इन्वेस्टमेन्ट बैंकिंग का समन्वय करने से है। इस प्रणाली के अन्तर्गत व्यापारिक बैंकों द्वारा उद्योगों के लिये अल्प कालीन, मध्यम-कालीन एवं दीर्घकालीन पूंजी उपलब्ध की जाती है। यूरोप व अमेरिका में सन् १९३१—३३ के बैंकिंग संकट में जो अनुभव हुआ उसके प्रकाश में डिपाजिट बैंकिंग व इन्वेस्टमेन्ट बैंकिंग को सम्मिलित करने के विरुद्ध कानूनी प्रतिबन्ध लगाये गये। भारत में भी द्वितीय महायुद्ध के समय में प० बंगाल के अधिकांश बैंकों की असफलता का मुख्य कारण उन दीर्घकालीन ऋणों को बताया जाता है जो कि बैंकों द्वारा उद्योगों को दिये गये थे।

विभिन्न कमेटियों के मत—

(१) उद्योगों को व्यापारिक बैंकों द्वारा दीर्घकालीन ऋण देने के प्रश्न पर **भारतीय केन्द्रीय बैंकिंग जांच समिति** ने सन् १९३०—३१ में विचार किया था और इस नतीजे पर पहुँची थी कि सुस्थापित बैंक (जैसे उस समय इम्पीरियल बैंक और नौ अन्य बड़े संयुक्त पूंजी वाले बैंक) अपनी कुल पूंजी व कोषों का १०% भाग, जर्मन क्रेडिट बैंकों की भाँति, औद्योगिक कम्पनियों के शेयरों व डिबेन्चरों में विनियोग कर सकते हैं। लेकिन कमेटी की सिफारिशों पर कोई कार्य नहीं किया गया।

(२) **मैक्मिलन कमेटी** ने कहा था कि जो देश आर्थिक प्रगति की राह पर बढ़ना चाहता है उसे वित्तीय एवं औद्योगिक क्षेत्र को एक उचित संगठन द्वारा समन्वित रखना चाहिये। आर्थिक इतिहास में ऐसा कोई भी उदाहरण मिलना कठिन है जहाँ बैंकों का (अल्पकालीन व दीर्घकालीन वित्त में) पृथक्करण किया गया है। इसके विपरीत, मिश्रित बैंकिंग अपनाने वाले देशों के कई उदाहरण मिल जायेंगे।

(३) **सराफ कमेटी** ने भी बैंकों द्वारा उद्योग को दीर्घकालीन सुविधायें देने की सम्भावनाओं पर गम्भीरता से विचार किया। उसके समक्ष विभिन्न मत प्रस्तुत हुये। उद्योगों के प्रतिनिधियों ने सामान्यतः इस बात पर जोर दिया कि बैंकों को चाहिये उद्योगों की दीर्घकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अधिक मात्रा में वित्त व्यवस्था करें। इसके विपरीत, बैंकरों ने इस बात पर बल दिया कि उनका प्रारम्भिक एवं मुख्य कार्य अल्पकालीन वित्त व्यवस्था तक ही सीमित है। हाँ, कुछ बैंकों ने स्थायी

सम्पत्तियों के आधार पर दीर्घकालीन ऋण देने की अपनी तत्परता प्रगट की, बशर्ते ऐसे एडवान्सों के आधार पर रिजर्व बैंक आफ इण्डिया भी उन्हें (बैंकों को) उधार की सुविधा दे। कमेटी इस निष्कर्ष पर पहुँची थी कि व्यापारिक बैंक अपने उपलब्ध साधनों की सीमा के भीतर उद्योगों को पर्याप्त आर्थिक सहायता दे रहे हैं। उन्होंने दीर्घकालीन वित्त भी देने का प्रयास किया है। जिन उद्योगों के बारे में उन्हें यह संतोष हो गया कि उनको ऋण देने से सुरक्षा व तरलता पर असर नहीं पड़ेगा, उनको उन्होंने दीर्घकालीन ऋण भी दिये हैं।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का जो दल भारत में सन् १६५३ में आया था उसने यह बताया कि भारतीय उद्योगों को पर्याप्त साख प्राप्त करने में जो कठिनाई अनुभव हो रही है उसका कारण भारतीय बैंकिंग प्रणाली की रूढ़िवादी प्रवृत्ति है। भारतीय बैंक अल्पकालीन ऋण दैनिक कार्यों के लिये देते हैं किन्तु मशीनों के क्रय व प्रतिस्थापन के लिये पर्याप्त साख नहीं देते। परिणामस्वरूप उपलब्ध बैंक साख का अधिकांश भाग स्टाक रखने की वित्त व्यवस्था में लगा हुआ था। उत्पादन के विस्तार का अर्थ प्रबन्धन करने में बहुत थोड़ा ही भाग लगा था।

(५) प्लानिंग कमीशन ने भी बैंकों को परामर्श दिया है कि वे उचित साख सृजन का कार्यक्रम तैयार कर उपलब्ध बचत एवं उत्पादन वृद्धि का अनुमान लगावें तथा रूढ़िवादी दृष्टिकोण बदलें।

दीर्घकालीन वित्त व्यवस्था में व्यापारिक बैंकों का महत्त्व—

व्यापारिक बैंकों की स्थिति कुछ इस प्रकार की है कि वे दीर्घकालीन वित्त व्यवस्था में एक महत्त्वपूर्ण भाग ले सकते हैं। उनकी अनुकूल स्थिति से सम्बन्धित बातें निम्नलिखित हैं —(i) अनेक शाखायें होने व पूँजी एवं द्रव्य बाजार से घनिष्ट सम्बन्ध रहने के कारण वे किसी भी व्यापारिक उपक्रम के भविष्य का विश्वस्त अनुमान लगा सकते हैं। (ii) दीर्घकालीन वित्तीय योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये उनसे बढ़कर सलाह, मार्गदर्शन व ठोस सहायता देने वाला और कोई नहीं है, क्योंकि व्यापार का प्रत्यक्ष तौर अर्थ प्रबन्ध करने के दौरान में वे न केवल उनकी वित्तीय समस्याओं के साथ वरन् अन्य औद्योगिक समस्याओं के सम्पर्क में भी आते हैं। (iii) वित्त प्रबन्ध की एक शाखा के सम्बन्ध में हुये अनुभव का लाभ दूसरी शाखा में भी उठाया जा सकता है। (iv) उद्योगों की वित्तीय नीतियों और समस्याओं से घनिष्ट परिचय होने के कारण वे विनियोग करने वाली जनता के हितों की रक्षा कर सकते हैं तथा उनको उपयोगी सलाह दे सकते हैं।

दीर्घकालीन वित्त प्रबन्ध में बैंकों को अधिक सहायक बनाने के सुझाव—

उद्योगों की दीर्घकालीन वित्त व्यवस्था में बैंकों को अधिक उपयोगी बनाने के लिये निम्न सुझाव दिये गये हैं —

(१) शेयरो व डिबेन्चरो में विनियोग—अभी व्यापारिक बैंको द्वारा बहुत कम औद्योगिक विनियोग किया गया है। ३१ दिसम्बर सन् १६५५ को अनुसूचित एवं असूचित बैंको का कुल विनियाग ४८३'६ करोड था, जिसमे से कम्पनियो के शेयरो व डिबेन्चरो मे केवल (१३ करोड रु० अर्थात् २'६%) ही लगा था। इस दशा का कारण यह है कि बैंको के दायित्व प्राय: माग पर शोधनीय होते है। साथ ही औद्योगिक विनियोजन मे कुछ स्वाभाविक खतरा भी होता है। बम्बई शेयर होल्डर्स ऐसोसियेशन ने सराफ कमेटी को अपने स्मरण पत्र मे कुछ उपयोगी सुझाव दिये थे। उसने सुझाव दिया कि नियमो मे इस प्रकार सशोधन किया जाय कि सरकार द्वारा स्वीकृत चुने हुय प्राइवेट पूजी निर्गमनो मे बैंक रुपया लगा सके। जब सरकार कम्पनियो का पूजी निर्गमन करने की आज्ञा दे, तो, सस्था की विस्तृत जाच करके, वह बैंक को उचित सलाह दे सकती है कि वे चाहे तो उसके शेयरो और डिबेन्चरो मे विनियोग कर सकते हैं। विनियोक्ता बैंको को इस बात का अधिकार होना चाहिये कि वे ऐसे विनियोगो के आधार पर स्वय भी रिजर्व बैंक से ऋण ले सकें। यह तभी सभव है जबकि ऐसे विनियोगो को रिजर्व बैंक ऋण देने के लिये स्वीकृत सम्पत्ति घोषित कर दे।

उद्योगो को दीर्घकालीन वित्त व्यवस्था मे व्यापारिक बैंको को अधिक उपयोगी बनाने के सुझाव

१ शेयरो एव डिबेन्चरो मे विनियोग करना।
२. दीर्घकालीन ऋण देना।
३ प्रतिभूतियो का अभिगोपन करना।
४. निगमो मे विनियोग।
५. कम्पनी प्रतिभूतियो के विरुद्ध ऋण।

(२) दीर्घकालीन ऋण देना—बहुत कम बैंक्क भारत मे उद्योगो को स्थायी सम्पत्ति पर ऋण देते है। इस प्रकार के ऋणो से सम्बन्धित आकडे उपलब्ध नही है। किन्तु हम सब जानते है कि अल्पकालीन ऋण के रूप मे दिए गये एडवान्स का प्राय: नवकरण कर दिया जाता है। इस प्रकार यह विधि कुछ सीमा तक उद्योगो की दीर्घकालीन ऋणो की आवश्यकता पूरी करती है। यदि बैंक कम्पनियो के शेयरो मे रुपया लगावें तो दीर्घकालीन ऋण देने की अपेक्षा अधिक खतरा मोल लेना पड़ता है, क्योकि दीर्घकालीन ऋण तो एक निश्चित समय के अन्दर कम्पनी के जीवन काल म वापिस होने की सम्भावना रखते है, जबकि शेयरो मे लगाया गया धन कम्पनी के जीवन काल मे नगद नही मिल सकता। हाँ, उसे अन्य विनियोगको को बेचा जा सकता है। इस प्रकार शेयरो मे विनियोग करने का मुख्य खतरा 'हानि' है, जबकि दीर्घकालीन ऋणो का खतरा 'अ-तरलता' है। यही नही, ऋणो की अपेक्षा शेयरो मे विनियोग करने पर बैंक की सुरक्षा कम हो जाती है, क्योकि जब बैंक ऋण

दता है ता शेयर कैपीटल वक र निय श्रा॰ का काम करती है। इसके अतिरिक्त, जब बैंक किसी औद्योगिक संस्था की स्थाई सम्पत्ति की जमानत पर ऋण दता है ता सम्पत्ति का मूल्य इसकी उत्पादकता क अनुसार निश्चित किया जाता है किन्तु जब वह संस्था क शेयर मान लेता है शेयरों का मूल्य ऐसी शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है जो कि उत्पादन एव उपभोग से सम्बन्धित नहीं हैं। इस प्रकार बैंकों क दृष्टिकोण से शेयरों म विनियोग करने की अपेक्षा दीर्घकालीन ऋण दना अधिक लाभप्रद है। बैंक अपने माग-दायित्वों को केवल अल्पकालीन ऋण देने म समय डिपाजिट एवं बचत डिपाजिट एव रिजर्वों का उद्योग को दीर्घकालीन ऋण दने म प्रयोग करना चाहिए। वे इस काय क लिये मध्यकालीन डिबेन्चरों का निगमन करके भी धन कोष जुटा सकते हैं।

( ) **प्रतिभूतियों का अभिगोपन करना**—सराफ कमेटी ने यह सुझाव दिया है कि देश के बड़े बड़े बैंकों को सामान्य कम्पनियों के साथ मिलकर एक सिन्डीकेट बना लेना चाहिए। इस सिन्डीकेट का काय औद्योगिक कम्पनियों के शेयरों व डिबेन्चरों के नवीन निगमनों का अभिगोपन करना अथवा उनमे विनियोग करना हो। यदि बैंक अपने डिपाजिटों का ५ % एवं शेयरों व डिबेन्चरों म लगा दे तो वे बिना अपनी तरलता को नुकसान पहुँचाये प्राइवेट क्षेत्र के उद्योगों के लिए ३० करोड रु० दीर्घ कालीन ऋण की अतिरिक्त व्यवस्था कर सकते हैं। किन्तु यह सिन्डीकेट प्रभावशाली ढंग म तभी काय कर सकता है जबकि वे खुले बाजार की क्रियाओं म भाग ले अथवा किसी विशेष कम्पनी या कम्पनियों म अनिश्चित अवधि तक विनियोग रखने का मह मत हो जाय। दोनो म से कोई बात तब ही सम्भव है जबकि केन्द्रीय मौद्रिक अधिकारी (अर्थात् रिजर्व बैंक) का सक्रिय सहयोग मिले

(४) **निगमों मे विनियोग**—औद्योगिक प्रतिभूतियों म प्रत्यक्ष विनियोग करने के बजाय बैंक विशिष्ट वित्त निगमों के माध्यम म भी उद्योगों के लिए कोष उपलब्ध कर सकते हैं। औद्योगिक वित्त निगम, राज्य वित्त निगम, औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम आदि की स्थापना होने पर बैंकों ने इनकी शेयर पूँजी म भाग लिया है और ये निगम स्वय उद्योगों को ऋण देते हैं। सराफ कमेटी की सिफारिश पर रिजर्व बैंक ने केन्द्रीय अथवा राज्य सरकारों द्वारा गारन्टी प्राप्त उक्त निगमों के शेयरों को ऋण योग्य प्रतिभूति घोषित कर दिया है अर्थात् बैंक चाहें तो निगमों म खरीदे हुए अपने शेयरों के आधार पर रिजर्व बैंक से ऋण ले सकते हैं। इस प्रकार बैंकों के लिए उद्योगों को दीर्घकालीन ऋण देने का अप्रत्यक्ष तरीका बहुत सुविधाजनक हो गया है। सराफ कमेटी ने यह सुझाव दिया कि उक्त निगमों म विभिन्न विनियोगकों द्वारा लिये जाने वाले अंशों की मात्रा को सीमित करने वाला नियम समाप्त कर देना चाहिये, क्योंकि इससे विनियोगों की तरलता बढ जायगी। कुछ लोगों का कहना है कि उक्त नियम समाप्त करने से शेयरों का कुछ लोगों के पास केन्द्रीयकरण हो जाने का डर है। फिर नियम को समाप्त करना इस कारण भी आवश्यक है कि ये शेयर एक विशेष प्र.प्र. के विनियोजकों म तो परस्पर बदले जा सकते हैं, अतः उनकी तरलता तो पहले से ही काफी है।

(५) **औद्योगिक प्रतिभूतियों पर ऋण**—कई व्यापार एव उद्योग चैम्बरों ने यह सुझाव दिया है कि औद्योगिक प्रतिभूतियों (कम्पनियों के शेयर) की जमानत पर बैंकों द्वारा दिये गये ऋणों को ६ माह या १२ महीने के बिलों म बिना म परिवर्तित कर दिया जाय तथा फिर इन बिलों को रिजर्व बैंक से रीडिस्काउंट करने योग्य घोषित

कर दिया जाय। दूसरे शब्दो मे, रिजर्व बैंक को चाहिए कि औद्योगिक कम्पनी क शेयरो व डिबेन्चरो को अपने ऋणो के लिए सहायक प्रतिभूति स्वीकार कर ले, तो व्यापारिक बैंक औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन मे अधिक भाग ले सकेंगे। यदि आवश्यकता हो, तो ऐसे शेयरो व डिबेन्चरो की एक स्वीकृत सूची प्रणाली प्रचलित की जा सकती है।

उपसंहार—

भारतीय बैंकिंग की वर्तमान व्यवस्था मे बड़े पैमाने पर मिश्रित बैंकिंग को अपनाना भले ही सम्भव न हो, लेकिन कम से कम बैंको और उद्योगो के घनिष्ठ सम्बन्ध को स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए। बैंको के सहयोग से ही औद्योगिक विकास तीव्र प्रगति से किया जा सकता है। मिश्रित बैंकिंग को सफलतापूर्वक अपनाने के लिए अनुभवी चतुर एव प्रशिक्षित कर्मचारियो की आवश्यकता है, जिनका दुर्भाग्य से अभी देश मे अभाव है। कहा जाता है कि बैंकों के लिए अपनी सुरक्षा का ध्यान रखते हुए उद्योगो को मध्यमकालीन साख देने का विशाल क्षेत्र है। परन्तु इसके लिए बैंको के कोषो मे वृद्धि करने की आवश्यकता है। इस कमी को पूरा करने के उद्देश्य से ही री-फाइनेन्स कॉरपोरेशन की स्थापना की गई है।

पुनर्वित्त निगम (Refinance Corporation)

पुनर्वित्त निगम का महत्त्व—

पुनर्वित्त निगम की स्थापना से देश की एक बहुत बड़ी आवश्यकता पूरी हो गई है। वास्तव मे बहुत पहले से ऐसे निगम की आवश्यकता अनुभव हो रही थी, जोकि केवल मध्यमकालीन साख की पूर्ति करे। दीर्घकालीन साख देने वाले कई निगम इससे पूर्व स्थापित हो चुके थे, किन्तु मध्यकालीन साख देने वाली संस्था का अभाव बहुत खटक रहा था। जैसा कि सब जानते है, अनेक बैंक अपने ग्राहको को ऐसे ऋण दिया करते हैं जो कि टेकनीकल दृष्टि से तो अल्पकालीन सूचना पर लौटाये जाने वाले होते है, लेकिन व्यवहार मे उनका प्राय समय-समय पर नवकरण कर दिया जाता है। इस प्रकार ये ऋण वास्तव मे मध्यमकालीन ऋण होते हैं। पुनर्वित्त निगम का उद्देश्य ऐसे ही ऋणों के आधार पर पुन ऋण लेने की सुविधा प्रदान करना है।

पुनर्वित्त निगम की स्थापना व कार्य प्रणाली—

देश के १५ बड़े बैंको व जीवन बीमा निगम ने निगम की पूँजी मे भाग लिया है, जो कि १२.५ करोड़ रु० है। निर्गमित पूँजी की यह मात्रा बाद को बढ़ाई जा सकती है। रिजर्व बैंक ने ५ करोड़ रु०, जीवन बीमा निगम ने २.५ करोड़ रु०, स्टेट बैंक ने २.५ करोड़ रु० व अनुसूचित बैंको ने २.५ करोड़ रु० के शेयर लिए हैं। सदस्यों का सहयोग २६ करोड़ रु० तक सीमित है। यह निश्चित किया गया कि प्रत्येक सदस्य अनुसूचित बैंक को निगम के कुल कोषो की सीमा मे से एक कोटा नियत कर दिया जाएगा। इस कोटे के भीतर वह कुछ निश्चित प्रकार के ऋणों के आधार पर निगम से पुन. ऋण की सुविधा प्राप्त कर सकेगा। ये ऋण ३ से ७ वर्ष तक की अवधि के हों तथा प्रत्येक व्यक्तिगत ऋण की राशि ५० लाख रु० से अधिक न होनी चाहिए। इस योजना के अन्तर्गत बैंक ६.५% की ब्याज दर पर ऋण दे सकेंगे और स्वयं निगम से ५% की ब्याज पर ऋण ले सकते हैं। निगम मे भाग लेने वाले बड़े बड़े बैंक ही निगम के प्रति प्रस्तुत किये गये ऋणों की जोखिम को उठायेंगे। निगम स्वयं की साख या प्रतिभूतियों की पर्याप्तता के बारे मे चिन्ता नहीं करेगा। वह

यह ध्यान रखेगा कि प्रस्तावित ऋण पत्र योजना के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होगा या नहीं। यह आशा की जाती है कि कारपोरेशन से पुनः ऋण मिलने की सुविधाओं (re-financing facilities) के कारण व्यापारिक बैंक उद्योग का अधिक मात्रा में मध्यमकालीन ऋण दे सकेंगे।

पुनर्वित्त निगम की कठिनाइयाँ—

पुनर्वित्त निगम के मार्ग में कठिनाइयाँ आने की सम्भावना है, जो कि निम्नलिखित हैं:—

(१) बैंकों को उन ग्राहकों की साख सम्बन्धी सब जोखिम उठानी पड़ेगी, जिन्हें वे मध्यमकालीन ऋण दें। किन्तु मध्यमकालीन साख देने के क्षेत्र में हमारे बैंकों का अनुभव सीमित है और तनिक सी असावधानी से उन्हें भारी हानि हो सकती है।

(२) १ ५% का जो मार्जिन ब्याज के सम्बन्ध में रखा गया है वह बहुत थोड़ा है, विशेषतः इस सन्दर्भ में कि सम्पूर्ण जोखिम बैंकों को ही उठानी पड़ती है।

(३) इस क्षेत्र में बैंकों को सफल प्रयोग करने के लिए एक संतोषजनक आधार प्राप्त नहीं है। इसके लिए पहले जनता में दीर्घकालीन डिपाजिटों का विकास करना पड़ता है। इस सम्बन्ध में एक सुझाव यह आया था कि यदि भारतीय बैंक ३ से ५ वर्ष की अवधि वाले बौंड जारी करें, तो उद्योग को मध्यमकालीन साख देने का अच्छा आधार तैयार हो सकता है।

यह योजना तब ही सफल हो सकती है जबकि सरकार ऐसी प्रशुल्क एवं आर्थिक नीतियाँ अपनाये जिनमें औद्योगिक संस्थाओं को विस्तार के लिए ऋण लेने और फिर वायदे के अनुसार जल्दी लौटाने का प्रोत्साहन मिले। यह हर्ष का विषय है कि सरकार ने कारपोरेशन में व्यवहारिक बैंकरों का सहयोग लिया है, जिससे पक्षपात आदि की शिकायतें न उठें।

अल्पकालीन अर्थ प्रबन्धन—

व्यापारिक बैंक कम्पनियों की अल्पकालीन वित्त-आवश्यकताएँ एडवान्स, ऋण ओवर ड्राफ्ट और कैश क्रेडिट स्वीकृत करके तथा बिलों हुण्डियों और अन्य व्यापारिक पत्रों को भुना कर पूर्ण करते हैं। कम्पनियों को चाहिये कि अपने बैंकर के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करें। इसे टेक्नीकल भाषा में 'साख बनाना' (A Line of Credit) कहते हैं। Line of Credit का अर्थ है निर्धारित परिस्थितियों में बैंक से किसी विशेष संस्था को मिलने वाली साख की मात्रा। इस व्यवस्था के कारण ऋण मिलने में देर नहीं लगती। बैंक कभी भी ठहरी हुई परिस्थितियों के अन्तर्गत ऋण देने में चूक नहीं करते, क्योंकि यदि ऐसा हुआ तो ग्राहकों के असन्तुष्ट होने का भय रहता है। परिस्थितियों के परिवर्तन होने पर साख व्यवस्था में संशोधन भी किया जा सकता है।

किसी विशेष व्यापारिक संस्था को कितना एडवान्स दिया जा सकता है यह मुख्यतः बैंक की ऋण दान क्षमता पर निर्भर होता है। बैंक की ऋण दान क्षमता निम्न बातों द्वारा प्रभावित होती है —

(१) **कानूनी आदेश—**बैंकिंग कम्पनीज एक्ट १९४९ में बैंकों के लिये ऋण सम्बन्धी कुछ विशेष आदेश दिये गये हैं, जिनका पालन करना बैंकों के लिये आवश्यक

है। ये आदेश निम्नलिखित है —बैंकिंग कम्पनी अपने ही शेयरों की प्रतिभूति पर ऋण नही दे सकती, अपने सचालको को या उनके हित वाली फर्मों या कम्पनियों को असुरक्षित ऋण नही दे सकती, प्रत्येक बैंकिंग कम्पनी को अपने समय और माँग दायित्वों का कम से कम २०% नगदी मे, स्वर्ण या स्वीकृत प्रतिभूतियों के रूप मे रखना होगा। इन कानूनी आदेशो का लक्ष्य यह है कि बैंक तरलता का बलिदान करके अत्यधिक ऋण न दे द और माँग दायित्वों की पूर्ति के लिये उचित कोष रखने के लिये प्रेरित हो।

(२) **वित्तीय सिद्धान्त**—कानूनी आदेशो के अतिरिक्त बैंको को वित्तीय सिद्धान्तो का भी पालन करना पडता है, जैसे ऋणो का किसी एक उद्योग मे देकर विभिन्न उद्योगो पर फैलाना, जोखिम का वितरण करना, ऋण की मियादो का क्रम ऐसा रखना कि नगद धन का नियमित प्रवाह बना रहे, उचित नगद अनुपात (Cash ratio) रखना आदि।

भारत मे बैंको द्वारा उद्योगो को दिये गये अल्पकालीन ऋणो का अध्ययन करने से कई रोचक बातो पर प्रकाश पडता है :—

(१) कार्यशील पूँजी प्रदान करने के सम्बन्ध मे बैंको का महत्त्व विभिन्न उद्योगो के लिये अलग-अलग है। हमारे बडे पैमाने के व सुसगठित उद्योगो को विशेषत. इजीनियरिंग, कैमीकल, जूट, कॉटन टैक्सटाइल एव सुगर उद्योगो को व्यापारिक बैंको ने काफी आर्थिक सहायता दी है।

(२) लौह एव स्पात तथा सीमेट उद्योग बैंको पर कम निर्भर रहे है। इसका कारण यह है कि उन्होने व्यापक मात्रा मे लाभो के अन्तर्विनियोजन की नीति अपनाई है। देखिये तालिका)

बैंकों द्वारा उद्योगों को कार्यशील पूँजी मे भाग

उद्योग	कार्यशील पूँजी (करोड रु०)	बैंक का एडवान्स (करोड रु०)	कायशील पूँजी से एडवान्स का अनुपात
सूती वस्त्र	१५७ ४	६१ ०	३८·७
जूट	३३ ९	१३·४	३९ ५
लौह एव स्पात	३४ ३	५ ९	१७·२
इन्जीनियरिंग	३९ ३	२२·३	५६·७
सीमेट	८·८	१ २	१२·६
सुगर	४६·९	१३ ५	२८·९
कैमीकल्स	२४ ४	९·२	३७ ७

(३) सन् १९५७ मे बैङ्को की कुल दत्त पूँजी कोष का कुल डिपाजिटो से अनुपात केवल ६ था, जिससे मालूम होता है कि बैंको के पास निजी साधन बहुत थोडे थे।

(४) चूँकि ५०% डिपाजिट 'माँग डिपाजिट' है, इसलिए वे दीर्घकालीन विनियोग करने की स्थिति मे नही हैं।

(५) कुल विनियोगो का कुल डिपाजिटों में अनुपात ३७ था तथा लगभग सारी रकम सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोजित थी ।

(६) बैंकों का कैश अनुपात सन् १९४९ में १४ ३ से घट कर सन् १९५७ में केवल ८ रह गया है ।

(७) एडवान्स की राशि कुल डिपाजिटों की ६३% है ।

बैंकिग कम्पनियों की पूँजी, डिपाजिट, विनियोग आदि के महत्वपूर्ण अनुपात (१९५७)

क्रम संख्या	शीर्षक	अनुपात
१.	कुल पूँजी व कोष का डिपाजिटों से अनुपात	६
२	रिजर्वों का दत्त पूँजी से अनुपात	८३
३.	मांग डिपाजटो का कुल डिपाजिटों से अनुपात	५०
४.	समय डिपाजिटों का कुल डिपाजिटों से अनुपात	५०
५.	कैश बैलेन्सेज का कुल डिपाजिटों से अनुपात	८
६	सरकारी प्रतिभूतियों वाले विनियोगों का कुल डिपाजिटों से अनुपात	३३
७.	कुल विनियोगों का कुल डिपाजिटों में अनुपात	६३
८	एडवान्सों का कुल डिपाजिटों से अनुपात	३७

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ही हमे चाहिए कि उद्योगों को मिलने वाली बैंकिग सुविधाओं के बढ़ाने का प्रयास करें। प्रथम, सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग करना चाहिये। दूसरे, कैश अनुपात को भी कुछ सीमा तक कम किया जा सकता है, यद्यपि उसे अब और घटाना जोखिमपूर्ण ही है। तीसरे, विद्यमान बैंकों के साधनों को बढ़ाया जाय ।

सराफ कमेटी की सिफारिशें—

सराफ कमेटी ने बैंकों के प्रसाधनों में वृद्धि करने और प्राइवेट सेक्टर के लिए अधिक वित्त उपलब्ध करने की समस्या पर विचार किया तथा निम्न सुझाव दिये.—

(I) बैंकिग प्रणाली का विकास करने के सुझाव—

बैंकिग प्रणाली के विकास के लिए कमेटी ने निम्न सुझाव दिये थे —

(१) **बैंकिग आदत को प्रोत्साहन**—भारत में प्रति व्यक्ति औसत डिपाजिट २५ रु० है, जबकि ब्रिटेन में १,६३६ रु० और अमेरिका में ४,४९३ रु० है। चलन से बैंक डिपाजिटों का अनुपात भारत में ० ७६ है, जबकि ब्रिटेन में ४ २५, कनाडा में ५·७६, अमेरिका में ५ १७ और जापान में ३ ९३ । इन आँकड़ों से यह पता चलता है कि भारत में बैंकिग-आदत का विकास अन्य देशों की तुलना में बहुत कम हुआ है। इसकी उन्नति के लिए कमेटी ने उन बाधाओं को हटाने पर जोर दिया जो कि भारत में बैंकिग की प्रगति को रोकती है। बैंकों में जन-विश्वास बढ़ाने के लिए उचित उपाय करने पर भी कमेटी ने बल दिया ।

बैंकिग को अधिक प्रगति के लिए सराफ कमेटी के सुझाव

(I) बैंकिग प्रणाली का विकास—

१ बैंकिंग आदत को प्रोत्साहन।
२ बैंको के परिचालन व्यय में कमी।
३ औद्योगिक ट्रिब्यूनलों के अवार्ड में संशोधन।
४ आयकर एवं बिक्रीकर विभागों की जाच पड़ताल।
५ शाखाओं का नियोजित विस्तार।
६. पर्याप्त सुरक्षा प्रबन्ध।
७ चल बैंकों की व्यवस्था।

(II) बैंको के साधनों में वृद्धि

१ सार्वजनिक क्षेत्र से प्रतियोगिता का नियमन।
२ द्रव्य हस्तान्तरण की सुविधायें।
३ डिपाजिट बैंकिंग का नियमन।
४. डिपाजिट बीमा।
५ स्थानीय संस्थाओं से डिपाजिट मिलना।
६ सरकार से तुरन्त भुगतान की सुविधा।

(२) बैंको के परिचालन व्ययों में कमी—बैंको के परिचालन व्यय (Operating costs) अधिक होने से आधुनिक वर्षों में बैंकिंग के विकास को, विशेषतः अर्द्ध शहरी क्षेत्रों में बडी ठेस पहुँची है। सन् १९४८ से १९५२ तक की अवधि में डिपाजिटों से स्थापन व्यय (Establishment expenses) के अनुपात में ६५% वृद्धि हो गई। इस वृद्धि का मुख्य कारण यह था कि बैंको को कर्मचारियों के वेतन के सम्बन्ध में औद्योगिक ट्रिब्यूनलों के अवार्ड को कार्यान्वित करना पड़ा। जब तक परिचालन व्ययों में मितव्ययता नहीं होगी तब तक कोई बैंकिंग विकास सम्भव नहीं है। अतः बैंको के परिचालन व्यय में कमी लाने का प्रत्येक उचित प्रयास करना चाहिए।

(३) औद्योगिक ट्रिब्यूनलों के अवार्ड में संशोधन—कुछ बातों में औद्योगिक ट्रिब्यूनलों के अवार्ड बैंको के लिए हानिप्रद प्रमाणित हुए है, जैसे—(i) बैंक कर्मचारियों में अनुशासन की कमी हो गई है, जिससे कार्य की अकुशलता त्रुटियाँ, धोखाधडी व जनता के प्रति सेवा स्तर में भी कमी आ गई है। (ii) बैंको के कार्यशील घंटे कम हो गये है, जिससे चैकों के भुनाने की सुविधायें घट गई है तथा व्यापारी समाज को कठिनाइयाँ होती है। (iii) ग्रामीण क्षेत्रों को भी अवार्ड लागू होने से गाँवों में बैंकिंग के विकास में बाधा पड़ी है। कमेटी ने इन दोषों के लिए तत्कालिक कदम उठाने पर बल दिया। उसने एक विशेषज्ञ कमेटी की नियुक्ति का सुझाव दिया, जो वेतन क्रमों के विवेकीकरण तथा परिचालन व्ययों में कमी करने के उपाय सुझाये।

(४) आय कर एवं बिक्री कर विभागों की पूछताछ सम्बन्धी जांच पड़ताल— र और ग्राहक के मध्य गोपनीयता का नाता है। ग्राहक आशा करते हैं कि बैंक की आर्थिक दशा सम्बन्धी बातों का गुप्त रखेगा। लेकिन आजकल आय कर एवं क्री कर विभाग व्यापारियों के बारे में बैंकों से यही पूछताछ करने लगे हैं। इन रस्थितियों में व्यापारियों व अन्य लोगों में शंका पैदा हो गई है। अतः वे बैंकों में पया रखने के बजाय अपनी बचत करेंसी नोटों और धातु के रूप में अपने ही पास खना उचित समझने लगे हैं। निसन्देह करों से बचने की प्रवृत्ति बहुत असामाजिक । फिर भी बैंकर और ग्राहक के सम्बन्ध की गोपनीयता को बनाये रखने के लिये र सम्भव प्रयास करना चाहिये और बैंकिंग आदत को बढ़ावा देना चाहिये।

(५) शाखाओं का नियोजित विस्तार—गत कुछ वर्षों में बैंकों के शाखा-र्यालयों की संख्या में कुछ कमी हो गई है। अतः इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता । अखिल भारतीय ग्रामीण जांच सर्वे की सिफारिश के अनुसार स्टेट बैंक की स्थापना । गई है और उसने अपने जिम्मे डाले गये ४०० शाखायें खोलने का कार्य भी अब रा कर लिया है। किन्तु यह भी आवश्यक है कि अन्य व्यापारिक बैंकों को भी अपना र्यक्षेत्र बढ़ाने के लिये प्रेरित करना चाहिये। सराफ कमेटी ने यह सुझाव दिया है क भारत सरकार से परामर्श करके रिजर्व बैंक को लाइसेन्स प्राप्त अनुसूचित बैंकों को वित्तीय सहायता देने की एक विस्तृत योजना बनानी चाहिए और इन बैंकों से यह हा जाय कि वे एक विशेष योजना के अनुसार, जिस पर पहले रिजर्व बैंक की अनुमति ले ली जाय, शाखा विस्तार करें।

(६) सुरक्षा सम्बन्धी पर्याप्त व्यवस्था—सरकार अथवा रिजर्व बैंक द्वारा वित्तीय सहायता देने के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि ट्रेजरी एवं सब ट्रेजरियों द्वारा बैंकों को मुफस्सल क्षेत्रों में पर्याप्त सुरक्षा-सुविधायें प्रदान की जायें।

(७) चल बैंक – छोटे-छोटे गाँवों में बैंकिंग की आदतों का विकास करने के लिये चल बैंक (Mobile Banks) बहुत उपयोगी हो सकते हैं। सरकार एवं जनता दोनों को ही इन्हें प्रोत्साहित करना चाहिये।

(II) बैंकों के साधनों में वृद्धि –

बैंकों के साधनों में वृद्धि करने के लिये कमेटी के निम्न सुझाव हैं :—

(१) सार्वजनिक क्षेत्र की प्रतिस्पर्धा का नियमन – द्रव्य बाजार में उपलब्ध सीमित साधनों के लिये केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों, व विभिन्न सरकारी एजन्सियों (जैसे डाकखाना) द्वारा तीव्र प्रतिस्पर्धा की जा रही है, जिससे बैंकों के डिपाजिटों में कमी आ गई है। यद्यपि मिश्रित अवस्था में कुछ सीमा तक सरकार व प्राइवेट एजेन्सियों में प्रतिस्पर्धा होनी स्वाभाविक है, किन्तु इसमें प्राइवेट क्षेत्र के लिये वित्त का अकाल नहीं पड़ने देना चाहिये।

(२) द्रव्य हस्तांतरण की सुविधायें—द्रव्य के हस्तान्तरण की अपर्याप्त सुविधाओं के कारण हमारे बैंकों को अपनी शाखाओं के पास अधिक मात्रा में कैश व बैंक

बैंलेन्सेज रखने पडते है, जो उनकी व्यापारिक आवश्यकताओ से अधिक होते है। यही नही, उन्हे अपना काफी धन सरकारी प्रतिभूतियो मे लगाना पडता है, ताकि स्टेट बैंक से लिये गये ओवरड्राफ्ट का मॉंग करने पर तत्काल भुगतान करने की गारन्टी हो। यदि द्रव्य के हस्तातरण की सुविधाओ मे सुधार हो जाय, तो हमारे बैंको की ऋण-दान शक्ति बहुत बढ सकती है, क्योकि उन्हे अपने पास अथवा शाखाओ के पास अधिक कैश बैंक बैंलेन्स न रखने पडा करेंगे। इस सम्बन्ध मे सराफ कमेटी ने कई महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये थे :—(i) सवादवाहन के साधनो मे सुधार, जैसे रिजर्व बैंक के कार्यालय व एजेन्सियो के बीच टेलीप्रिंटर एव विशेष तार सेवा की व्यवस्था, (ii) बैंको की शाखाओ से उनके प्रधान कार्यालयो व एजेन्सियो पर टेलीग्राफिक ट्रान्सफर खरीदना। बैंक की प्रत्येक शाखा के लिये उचित सीमा निर्धारित की जा सकती है। (iii) रिजर्व बैंक द्रव्य हस्तानरण सम्बन्धी सुविधाय देने की अपनी योजना को विस्तृत करें, ताकि बैंको द्वारा अपनी शाखाओ को और शाखाओ द्वारा अपने प्रधान कार्यालयो को द्रव्य भेजने की सुविधायें निशुल्क मिलने लगें। बैंको को इस सम्बन्ध मे जो कठिनाइयाँ समय-समय पर हो उन्हे दूर करने के लिये एक प्रतिनिधि कमेटी का गठन भी करना चाहिये।

(३) नियन्त्रित डिपाजिट बैंकिंग—बैंक दर मे वृद्धि होने से डिपाजिटो पर ब्याज-दरो मे एक सामान्य वृद्धि हो गई है। विनिमय बैंको ने ब्याज दर मे वृद्धि करके अधिक प्रतिस्पर्धा उत्पन्न कर दी है, क्याकि बैंक दर बढ जाने से लन्दन मुद्रा बाजार का आकर्षण उन्हे कम हो गया है। सराफ कमेटी ने यह सुझाव दिया था कि बैंको के हितो की रक्षार्थ एक अखिल भारतीय बैंक एसोसियेशन बनाना चाहिए।

(४) डिपाजिट बीमा—अमेरिका की भाँति भारत मे भी डिपाजिटो की बीमा प्रणाली चालू करने की आवश्यकता है। इससे बैंकिंग प्रणाली मे जनता का विश्वास बढेगा। बैंक इस योजना को तो उचित बताते है, किन्तु इसके चालू करने मे जो अधिक व्यय होगा उसके कारण सकोच करते है। अखिल भारतीय बैंकिंग जाँच कमेटी का मत था कि डिपाजिट बीमे की योजना को बैंको का सघनन पूर्ण होने तक स्थगित रखा जाय। सराफ कमेटी ने एक डिपाजिट बीमा निगम स्थापित करने का सुझाव दिया।

(५) स्थानीय सस्थाओ से डिपाजिट लेना—भारत सरकार ने यह प्रतिबन्ध लगा रखा है कि कोई भी स्थानीय सस्था या अर्द्ध सरकारी सस्था व्यापारिक बैंको के पास अपने कोष तब तक नही रख सकेगी जब तक कि वह व्यापारिक बैंक उतनी ही रकम की सरकारी प्रतिभूतियां जमानत के रूप मे डिपाजिट न कराये। सभवतः यह प्रतिबन्ध इस कारण लगाया था कि कुछ बैंको के फेल हो जाने से सरकारी विभागो को कुछ हानियाँ उठानी पडी थी। किन्तु अब समय बदल गया है। सरकार को चाहिए कि इस प्रतिबन्ध को ढीला कर दे। ऐसा करने से हमारे व्यापारिक बैंक के प्रसाधन बढ जायेंगे। सराफ कमेटी ने यह सुझाव दिया था कि रिजर्व बैंक द्वारा अनुमति-प्राप्त बैंको को ऐसे डिपाजिट लेने का अधिकार होना चाहिये।

(६) सरकार द्वारा तात्कालिक भुगतान—प्रायः देखा गया है कि सरकार जो माल सप्लाई किया जाता है उसके बिलो का भुगतान होने में बहुत देर लगती जिसके फलस्वरूप लघु एवं मध्यम उद्योगों की काफी पूंजी अटक जाती है। अनुमान के अनुसार, एसोसियटड चेम्बर आफ कामर्स एवं इन्डस्ट्रीज के कुछ सदस्यों सरकार की ओर १२३ करोड़ रुपया रुका हुआ था। यदि सरकार पर निकलने व सम्पूर्ण अदत्त धन का सर्वे कराया जाय तो बकाया राशि बहुत अधिक निकलेगी यदि सरकार अपने बिलों का भुगतान करने में जल्दी करे, तो उद्योगों की पूंजी अटके नहीं तथा बैंकों के डिपाजिटों पर भी सुप्रभाव होगा।

बैंकों के ऋणों की आधुनिक प्रवृत्तियाँ—

द्वितीय पंच-वर्षीय योजना की अवधि में यह देखा गया कि बैंक की साख विस्तार होने के साथ साथ उद्योग को मिलने वाली साख के अनुपात में वृद्धि हुई जबकि व्यापार, व्यक्तिगत एवं प्रोफेशनल तथा अन्य क्षेत्रों में साख का अनुपात का कम हो गया है। यदि हम यह स्मरण रखें कि द्वितीय पंच वर्षीय योजना में औ औद्योगीकरण पर बल दिया गया था, हम उक्त प्रवृत्ति स्वाभाविक ही प्रतीत हो क्योंकि इस अवधि में उद्योगों का अधिक विकास होने से उनकी आवश्यकता भी बढ़ उचित ही था।

औद्योगिक साख में जो वृद्धि हुई है उसका लाभ सभी बड़े उद्योगों ने लिया है फिर भी सीमेन्ट लौह एवं स्पात और इंजीनियरिंग उद्योगों को अधिक साख दी ग क्योंकि इनको द्वितीय योजना के अन्तर्गत एक विशेष भूमिका अदा करनी थी। वृ पुराने उद्योगों जैसे सूती वस्त्र को भी ऋण की मात्रा बढ़ी, किन्तु इसकी गति धी ही थी। लौह एवं स्पात तथा इंजीनियरिंग उद्योगों की साख के अनुपात में सब अधिक वृद्धि हुई। उद्योगों की कुल साख का अनुपात ३४ से बढ़ कर ४५% हो गय जब कि व्यापार आदि का अनुपात ४६ से घटकर ४२ रह गया। इन आंकड़ों से र प्रगट होता है कि व्यापारिक बैंक उद्योगों की बदली हुई आवश्यकताओं को पूरा क के लिये पहले की अपेक्षा अधिक तत्पर है।

तृतीय पंच-वर्षीय योजनावधि में बैंकिंग प्रणाली का महान् दायित्व

बैंकों द्वारा शाखा विस्तार—एक सामयिक आवश्यकता—

तृतीय पंच वर्षीय योजना की अवधि में प्राइवेट सेक्टर में द्वितीय पंच-वर्षी योजना अवधि की अपेक्षा लगभग दो गुना विनियोग किया जायगा। अतः स्पष्ट है कि बैंकिंग प्रणाली पर कार्यशील पूंजी की पूर्ति के लिये भारी मांगें होंगी। साथ ही उसमें यह भी आशा की जायगी कि अल्पकालीन पूंजी के अतिरिक्त वह मध्यकाली कोषों की भी पर्याप्त पूर्ति करे। यहीं पर बैंकों के प्रसाधनों की पर्याप्तता का प्रश्न उठता है। इसका मुख्य हल यह है कि बैंक व्यापक पैमाने पर शाखायें खोलने के

नीति अपनाये। इसका फल यह होगा कि जिन स्थानों मे अभी तक बैंकिंग सुविधायें न थी वहाँ वे अब उपलब्ध होने से डिपाजिट सुविधा द्वारा बचतें गतिशील हो सकेगी। अभी तक शाखा विस्तार की गति धीमी रही है। स्टेट बैंक के शाखा विस्तार के अतिरिक्त अन्य व्यापारिक बैंकों को भी शाखा विस्तार का एक साहसिक कार्यक्रम अपनाना होगा। यह उनके लिये सभव भी है, क्योंकि उनके लाभो म आजकल वृद्धि हो रही है। यदि प्रारम्भिक वर्षों मे शाखा-विस्तार से उन्हे कुछ हानि भी उठानी पडती है, तो उसकी पूर्ति कालान्तर मे शाखाओ के कार्य की मात्रा बढ जाने से हो जायेगी।

बैंकों की सामान्य वित्तीय दशा में सुधार करना जरूरी है—

नये और अर्द्ध विकसित क्षेत्रों मे बैंकिंग सुविधायें बढाने के अतिरिक्त बैंकों की सामान्य वित्तीय दशा मे बहुत सुधार करने की आवश्यकता है। रिजर्व बैंक ने निरीक्षण की जो व्यवस्था लागू की है उसमे काफी सुधार हुआ है। किन्तु बैंकों के कार्यवाहन मे अब भी सुधार करने के लिये क्षेत्र है। अधिकाश बैंकों की यह कठिनाई है कि उनको पर्याप्त बिजनेस नही मिलता। जहाँ तक इस दुर्बलता का प्रश्न है, छोटे-छोटे बैंक अपेक्षाकृत बड़े एव सुदृढ बैंकों के साथ विलीन होने की सभावनाओ पर विचार करें। यह न केवल उनके लिये वरन् देश के व्यापक हित के लिये भी उचित होगा। जो दुर्बलतायें सामयिक निरीक्षणो द्वारा उनके सामने लाई जायें व वित्तीय-व्यवस्था को सुदृढ बनाने के लिये जो सुझाव दिये जाये, उन पर उचित कार्यवाही करने से बैंकिंग प्रणाली मे स्थायित्व व दृढता आवेगी।

कोषों की कमी का हल साख-नियन्त्रण नहीं—

स्टेट बैंक के निर्माण एव बीमा व्यवसाय के राष्ट्रीयकरण से प्राइवेट सेक्टर के हाथ से वित्तीय स्रोत का एक महत्त्वपूर्ण साधन निकल गया। अतः व्यापारिक बैंकों पर अब पहले से भी अधिक जिम्मेदारी आ गई है। उन पर ऋण लेने की जितनी भारी माग की जाने लगी है उतनी वृद्धि उनके डिपाजिटो मे नही हो पायी है। डिपाजिटो और एडवान्सो की इस असमान दौड ने बैंकों के कार्यवाहन पर गम्भीर प्रभाव डाला है। डिपाजिट प्राप्त करने की होड मे डिपाजिटो और ऋणो दोनो पर ही ब्याज दरें बढ गई है। चूँकि डिपाजिटो की मात्रा अपर्याप्त प्रमाणित हुई है, इसलिये विनियोगो और नगद कोष को कम करने की युक्तियाँ अपनाई गई हैं। यही नही, जब बैंक अपने डिपाजिटो से अनुपातातीत ऋण देने लगते हैं, तो उनकी तरलता पर बुरा प्रभाव पडता है और सुरक्षा खतरे मे पड जाती है। लेकिन विकास की अवधि मे साख का विस्तार होना अनिवार्य है तथा साख पर नियन्त्रण लगाना ऐसे समय मे भलाई के बजाय हानि अधिक पहुँचा सकता है। अत: कोषो की कमी का हल साख नियंत्रण मे नही है, वरन् उचित आवश्यकता पूर्ति के लिये अधिक मात्रा मे देने मे निहित है।

बैंकिंग प्रणाली के भावी विकास के सम्बन्ध में कुछ सुझाव—

बैंकिंग प्रणाली का भावी स्वरूप क्या हो, इस सम्बन्ध में गहरा सोच विचार की आवश्यकता है। भारतीय बैंक एसोसियेशन के सहयोग से एक विस्तृत योजना बनाई गई है। इसका उद्देश्य व्यापारिक बैंकों का विकास करने के साथ-साथ उनका विवेकीकरण करना भी है, ताकि उनके हानिप्रद कार्यों पर रोक लगे। सराफ कमेटी ने बैंक डिपाजिटों का बीमा कराने का प्रस्ताव रखा था। इससे डिपाजिट बैंकिंग की उन्नति हो सकेगी। बैंकों के कार्यवाहन में कुशलता की वृद्धि के लिए एक बैंकिंग सेवा (Banking Service Cadre) स्थापित करने की आवश्यकता है जिसम विश्व के अन्य देशों में बैंकों की आधुनिक प्रवृत्तियों की जानकारी होगी और जो देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार इन प्रवृत्तियों को अपनायेगी। इस बात की भी आवश्यकता है कि विभिन्न व्यापारिक बैंकों में आपस में तथा व्यापारिक बैंकों और अन्य बैंकिंग व वित्तीय संस्थाओं (जैसे सहकारी बैंक व स्टेट बैंक) में समन्वय हो। बड़ अनुसूचित बैंकों को यह अधिकार दिया जा सकता है कि वे अर्द्ध-सार्वजनिक संस्थाओं को बैंकिंग सुविधायें प्रदान करें जिससे उनके कोषों की वृद्धि हो। व्यापारिक बैंकों को इस योग्य बनाना चाहिये कि व ग्रामीण क्षेत्रों में शाखा कार्यालय खोल कर वहाँ की बचत को गतिशील बनाये। इसके लिये यह जरूरी है कि उनको स्टाफ के वेतन सम्बन्धी बैंक अवाड के नियमों से कुछ छूट दी जाय।

STANDARD QUESTIONS

1. Discuss the importance of Industrial Banks in India Why did the earlier industrial banks fail,
2. How far can the commercial banks be of use in providing long term finance to industries ? Give your suggestions for increasing there participation in long term financing of Indian industry
3. Write a note on Refinance Corporation of India
4. How do the Commercial banks meet the short term requirements of companies ? Give the recommendations of the Shroff Committee to expand the resources of banks and make more finance available to the private sector
5. Analyse the recent trends in bank advances, and outline the task before the banking system in the coming years

अध्याय ३६

औद्योगिक अर्थ-निगम

(Industrial Finance Corporation)

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—

भारत मे औद्योगिक सस्थाओ को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए विशिष्ट सस्थाओ का अभाव बहुत दिनो से रहा है। इस अभाव का अनुभव सबसे पहले सन् १६१८ के औद्योगिक आयोग ने किया, जिसने अपनी रिपोर्ट मे देश के उद्योगो को आर्थिक सहायता प्रदान करने की आवश्यकता पर विशेष जोर दिया था। तत्पश्चात् सन् १६३१ मे केन्द्रीय बैंकिग जाच समिति ने भी देश मे बढते हुए औद्योगीकरण के लिए पूंजी की आवश्यकता पर अधिक बल दिया। किन्तु दुर्भाग्यवश अथवा यो कहे कि विदेशी शासन की उपेक्षापूर्ण नीति के कारण उन प्रस्तावो को क्रियान्वित नही किया जा सका। द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त, सन् १६४५ मे भारत सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रलेख मे इस बात का सकेत किया था कि औद्योगिक विनियोग निगमो की स्थापना के प्रश्न पर विचार किया जा रहा है। कुछ समय बाद इस पर विचार विमर्श हेतु वित्त मत्रालय ने रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया से परामर्श मागा। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने एक बिल बनाया, जिसमे औद्योगिक इकाइयो को मध्यकालीन एव दीर्घकालीन साख सुविधाएँ प्रदान करने के लिए औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation) की स्थापना के लिए सुझाव दिया। यह बिल पहले विधान सभा मे सन् १६४६ के बजट अधिवेशन मे सर आरचीडेल्ड रौलेन्डस ((Sir Archidald Rowland) के द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला था, परन्तु अन्य विधान सम्बन्धी अधिकता के कारण ऐसा सम्भव न हो सका। कुछ समय बाद माननीय आर० के० शर्णमुख चैट्टी ने भारतीय ससद मे कुछ सशोधन करके औद्योगिक अर्थ निगम की स्थापना सम्बन्धी बिल को प्रस्तुत किया। २७ मार्च सन् १६४८ को गवर्नर जनरल से इस बिल पर स्वीकृति मिली और एक जुलाई सन् १६४८ से इस निगम का कार्य प्रारम्भ हुआ।

निगम के उद्देश्य—

निगम का मुख्य उद्देश्य उद्योगो को दीर्घ एव मध्यकालीन आर्थिक सहायता प्रदान करना है। हमारे देश के अधिकोष भी इस प्रकार की सहायता प्रदान करते

है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नही कि निगम अधिकोषो से प्रतियोगिता करना चाहता है अथवा उनको इस कार्य से विचलित करना चाहता है। निगम का उद्देश्य आर्थिक क्षेत्र मे अधिकोषो की सहायता करना है, जिससे ये दोनो सस्थायें मिलकर देश मे पूंजी की कमी को दूर कर उद्योगो की उन्नति मे सहायक हो। अधिकोषा का मुख्य कार्य तो उद्योग को अल्पकालीन सहायता और निगम का कार्य लम्बी अवधि के लिए या मध्यम समय के लिए आर्थिक सहायता देना है। विकास का अर्थ केवल नवीन उद्योगशालायें खोलना नही है। नई उद्योगशालाओ के स्थापन के साथ-साथ आज भारत मे चालू उद्योगो के युक्तिसगत विवेकीकरण की आवश्यकता भी है। औद्योगिक सस्थाओ की प्राप्त पूंजी का लगभग सारा भाग मशीन, भूमि व अन्य औजारो के खरीदने मे ही चला जाता है और समय पर कार्यशील पूंजी की बडी भारी कमी पड जाती है, जिसका परिणाम उद्योग की सफलता के लिए घातक सिद्ध हो सकता है, इसलिए निगम का प्रधान उद्देश्य चालू व नवीन सार्वजनिक कम्पनियों को मध्यकालीन आर्थिक सहायता प्रदान करना है। किन्तु वे उद्योग जो बुनियादी उद्योगो की श्रेणी मे है अथवा जिनका राष्ट्रीयकरण हो चुका है, इस साख-सहायता के भागीदार नही बन सकते। इस सम्बन्ध मे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि निगम केवल उन्ही उद्योगो को आर्थिक सहायता देगा, जो सार्वजनिक अथवा लोक सीमित होगे अथवा जो सहकारिता के सिद्धान्तानुसार कार्य कर रहे है। यह आर्थिक सहायता केवल उन क्षेत्रो तक सीमित रहेगी, जिनमे औद्योगिक अर्थ निगम लागू होता है, अतएव स्पष्ट है कि अलोक सीमित प्रमण्डल तथा साझेदारी की सस्थायें निगम द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता का लाभ न उठा सकेगी।

औद्योगिक अर्थ-निगम अधिनियम (I. F. C. Act) १९४८ का सबसे बडा दोष यह था कि निगम केवल उन्ही औद्योगिक सस्थाओ को ऋण दे सकता था, जो पहले से ही व्यापार कर रही हो, अर्थात् यह उन साथों को ऋण नही दे सकता था जो व्यापार प्रारम्भ करने वाले थे। इन दोषो को दूर करने के लिए अधिनियम मे सन् १९५५ मे कुछ सशोधन किए गए, जिनके अनुसार अब निगम नव निर्मित कम्पनियों को सहायता दे सकता है।

निगम के कार्य—

औद्योगिक अर्थ निगम अधिनियम, १९४८ की धारा २३ के अनुसार, यह निगम निम्नलिखित कार्य कर सकता है :—

(१) गारन्टी देना—औद्योगिक सस्थाओ के ऋणो पर जिसे उन्होने सार्वजनिक बाजार से लिया है और जिसके भुगतान की अवधि अधिक से अधिक २५ वर्ष है, गारन्टी दे सकता है।

(२) अभिगोपन करना—औद्योगिक सस्थाओ द्वारा निर्गमित स्टाक, अंश, बान्ड या ऋण पत्रो का अभिगोपन करना, यदि इन प्रतिभूतियो का विक्रय सात वर्ष की अवधि के भीतर कर दिया जाता है।

(३) ऋण व अग्रिम देना—औद्योगिक सस्थाओ को अधिक से अधिक २५ वर्ष की अवधि के लिए ऋण तथा अग्रिम प्रदान करना और उसके द्वारा निर्गमित ऋण पत्रो को (जिनकी अवधि २५ वर्ष से अधिक नही है) क्रय करना।

वर्जित कार्य—

अधिनियम के अनुसार औद्योगिक अर्थ निगम निम्नलिखित कार्य नही कर सकता है :—

(i) अधिनियम की शर्तों के विरुद्ध जमा (Deposits) स्वीकार करना।

(ii) किसी भी सीमित दायित्व वाले अशो अथवा स्टाक को प्रत्यक्ष रूप से क्रय करना,

(iii) सात वर्ष की अवधि के अशो अथवा ऋण पत्रो का अभिगोपन करना,

(iv) एक करोड से अधिक का कर देना।

ऋण देने मे सावधानी—

(१) निगम उस समय तक किसी भी ऋण की स्वीकृति अथवा अभिगोपन नही करता है जब तक कि उस पर प्रत्याभूति न हो।

(२) किसी भी एक औद्योगिक सार्थ को दिए जाने वाले ऋण की अधिकतम राशि ५० लाख रुपये मे सन् १९५२ मे एक करोड रुपया कर दो गई है। एक करोड से अधिक का ऋण केवल उसी दशा मे दिया जाता है जब कि भारत सरकार ने उस पर गारन्टी दी हो।

(३) यदि ऋण लेने वाली कम्पनी ऋण का भुगतान करने मे अथवा निगम द्वारा निर्धारित शर्तो के पालन करने मे कोई त्रुटि करती है, तो निगम को कम्पनी के विरुद्ध उचित कार्यवाही करने, उस कम्पनी की सचालन सभा मे सचालक नियुक्त करने अथवा उसके प्रबन्ध को अपने हाथ मे लेने का अधिकार है। निगम को ऐसी ऋण लेने वाली कम्पनियो से भुगतान की तिथि से पूर्व भी भुगतान मागने का अधिकार प्राप्त है।

ऋण देने की शर्तें—

अपने उद्देश्यानुसार अर्थ निगम किसी सीमित पब्लिक कम्पनी तथा सहकारी समिति को निम्न शर्तों पर ऋण दे सकता है :—

(१) ऋण मुख्यतः स्थायी एव अचल सम्पत्ति खरीदने के लिये अचल सम्पत्ति, जैसे—भू गृहादि, यन्त्र औजार आदि, की प्रथम रहन (First Mortgage) पर दिया जाता है। यह कम्पनी कार्यशील पूँजी के लिए कच्चे-पक्के माल के आधीन ऋण न देगी, क्योकि यह काम व्यापारिक बैंको का है। अर्थ निगम उनके साथ प्रतियोगिता नही करना चाहता।

(२) दिये हुए ऋण का समुचित प्रबन्ध एवं व्यय हो रहा है या नहीं, इस बात को निश्चित करने के लिये ऋण लेने वाली कम्पनी के सचालकों से उनकी व्यक्तिगत स्थिति में वैयक्तिक तथा सामूहिक जमानत ली जाती है, जिसमें उद्योग का प्रबन्ध समुचित रीति से हो सके।

(३) अर्थ निगम को उद्योग की सचालक सभा में दो सचालकों की नियुक्ति करने का अधिकार है, जिससे वे सचालक उद्योग के प्रबन्ध का निरीक्षण करते हैं तथा यह भी देखते हैं कि उसका प्रबन्ध अर्थ निगम के हित में हो रहा या नहीं।

(४) औद्योगिक कम्पनी को उन्नतिशील वर्षों में होने वाला लाभ लाभांश देने में ही न बाँटा जाय, इसलिए जब तक ऋण का भुगतान न हो तब तक वह उद्योग ६% से अधिक लाभांश न दे सकेगा। हाँ, दोनों की सहमति से इस दर में परिवर्तन सम्भव है।

(५) ऋण भुगतान की अवधि साधारणत. १२ वर्ष है, परन्तु अभी तक जो अधिकतम अवधि दी गई है वह १५ वर्ष है। इस शर्त के अतिरिक्त ऋण भुगतान की अवधि ऋण लेने वाली कम्पनी के व्यापारिक स्वरूप और उसके भविष्य के अनुसार निश्चित की जाती है।

(६) ऋण का भुगतान सामान्यत समान प्रभागों (Equal Instalments) में होना चाहिये, परन्तु ये प्रभाग कितने होंगे, यह दोनों की सहमति से निश्चित होना है।

(७) अर्थ निगम के पास रहन रखी हुई सम्पत्ति का आग, साम्प्रदायिक कलह, विद्रोह आदि की सुरक्षा के लिये किसी अच्छे बीमा प्रमण्डल से बीमा कराना अनिवार्य है।

(८) जब उद्योग को ऋण दे दिया जाता है तो उसका उपयोग जिस कार्य के लिये ऋण लिया गया है उसी कार्य के लिये हो रहा है अथवा नहीं, यह देखने के लिये अर्थ निगम आवश्यक कदम उठाता है।

निगम का प्रबन्ध—

निगम का प्रबन्ध एक सचालक समिति द्वारा होता है, जिसकी सहायता के लिये एक केन्द्रीय समिति और एक जनरल मैनेजर भी होता है। सचालक समिति में चेयरमैन सहित कुल १३ सदस्य हैं। ये सदस्य निम्नलिखित पद्धति से निर्वाचित अथवा मनोनीत होते हैं :—

औद्योगिक वित्त निगम की संचालक समिति

(३० जून, १६६० को)

क्रम संख्या	नाम	पद्धति
१.	श्री के० आर० के० मैनन	चेयरमैन
२.	श्री एस० सी० रॉय	बीमा कम्पनियो, विनियोग प्रन्यासो तथा अन्य वित्तीय सस्थाओ द्वारा निर्वाचित
३.	श्री सी० सी० देसाई	
४.	श्री बी० पी० वार्दे	सहकारी सस्थाओ द्वारा निर्वाचित
५	श्री आर० एम० देशमुख	
६.	श्री एस० बी० रामपूर्ती	अनुसूचित बैंको द्वारा निर्वाचित
७.	श्री एम० सी० मुथिया	
८.	श्री डा० बी० के० मदन	रिजर्व बैंक के केन्द्रीय बोर्ड द्वारा मनोनीत
९.	श्री एस० पी० वीरमणी	
१०.	श्री जी० डी० अम्बेकर	केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत
११.	प्रो० एस० के बसु	
१२.	श्री रगनाथन	
१३.	श्री ए० बक्शी	

३० जून सन् १६६० को निगम की केन्द्रीय समिति मे नीचे दिये हुए पाच व्यक्ति थे :—

क्रम संख्या	नाम	निर्वाचन पद्धति
१.	श्री के० आर० के मैनन	चेयरमैन
२.	श्री एस० सी० रॉय	निर्वाचित सचालको द्वारा निर्वाचित
३.	श्री एम० सी० मुथिया	
४.	श्री एस० पी० वीरमणी	मनोनीत सचालको द्वारा निर्वाचित
५.	रिक्त	

आजकल निगम के जनरल मैनेजर है श्री एच० वी० वेन्कटा सुब्बिया। श्री डी० आर० मढोक इसके सेक्रेटरी हैं। श्री ज्वालाप्रसाद चोपडा इसके वैधानिक सलाहकार एव रिजर्व बैंक व स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया इनके बैंकर्स है।

निगम का मुख्य कार्यालय नई दिल्ली मे एव शाखा कार्यालय बम्बई, कलकत्ता व मद्रास मे है। औद्योगिक अर्थ निगम अधिनियम सचालक-सभा के सदस्यो से यह आशा करता है कि वे उद्योग, व्यापार व जनहित के सिद्धान्तो को सामने रखते हुये व्यापारिक सिद्धान्तो का पालन करेंगे। यदि सचालक समिति उचित समझे, तो विभिन्न बातो के विचारार्थ सलाहकार समितियाँ नियुक्त की जा सकती हैं। निगम की सामान्य नीति का सचालन केन्द्रीय सरकार करेगी।

निगम की पूँजी का कलेवर—

(अ) अश पूँजी—निगम की अधिकृत पूँजी १० करोड रुपये है, जो ५,००० रु० के २०,००० अशो मे विभाजित है। अशो की मूल राशि तथा २¼% लाभाश की गारन्टी केन्द्रीय सरकार ने दी है। इस समय ५ करोड रुपये के मूल्य के केवल १० हजार अशो का निर्गमन किया गया है और शेष अशो का निर्गमन समय-समय पर केन्द्रीय सरकार द्वारा किया जायेगा। इन अशो को क्रय करने का अधिकार केवल केन्द्रीय सरकार, रिजर्व बैंक, अनुसूचित बैंक, बीमा कम्पनी, विनियोग प्रन्यास तथा इसी प्रकार की वित्त सस्थाओ को है। अतएव यह स्पष्ट है कि निगम के अश खरीदने व पूँजी मे योग देने का अधिकार किसी व्यक्ति विशेष को नही है। प्रारम्भ मे इन सस्थाओ को एक निश्चित अनुपात मे अशो का आवटन किया गया था, किन्तु कालान्तर मे इस आवन्टित सख्या मे कुछ परिवर्तन हो गया है। इसका आभास निम्न तालिका से लगाया जा सकता है :—

क्रमाक	सस्थायें	पूर्व निर्धारित अशो की सख्या	क्रय किए गए अशो की सख्या	धन राशि (रुपये)
१	केन्द्रीय सरकार	२,०००	२,०००	१,००,००,०००
२	रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया	२,०००	२,०५४	१,०२,७०,०००
३	अनुसूचित बैंक	२,५००	२,४०५	१,२६,६०,०००
४	बीमा कम्पनी, विनियोग प्रन्यास व अन्य वित्तीय सस्थाये	२,५००	२,५६८	१,२६,६०,०००
५	सहकारी सस्थाये	१,०००	९४३	४७,१५,०००
	योग	१०,०००	१०,०००	५,००,००,०००

(ब) ऋण पत्र पूँजी—निगम ऋण पत्रो का निर्गमन करके तथा बाडस का विक्रय करके कार्यशील पूँजी प्राप्त कर सकता है परन्तु ऋण पत्रो, बॉड्स तथा

इसी प्रकार से प्राप्त की हुई पूँजी निगम की चुकता पूँजी तथा संचित कोष के पांच गुने से अधिक नहीं होनी चाहिए।

(स) रिजर्व बैंक से ऋण—निगम केन्द्रीय सरकार को प्रतिभूतियों के विरुद्ध ९० दिन की अवधि के लिये रिजर्व बैंक से धन उधार ले सकती है। धारा २१ (३) (ब) के अन्तर्गत निगम अपने ऋण-पत्रों का प्रतिभूति के आधार पर अधिक से अधिक ३ करोड रु० का धन १८ माह की अवधि के लिये उधार ले सकता है।

(द) जमा—निगम जनता से कम से कम पांच वर्ष के लिए तथा अधिक से अधिक १० करोड रु० की धन राशि तक जमा स्वीकार कर सकता है।

(य) विदेशी मुद्रा में ऋण—सन् १९५६ के संशोधित अधिनियम के अनुसार निगम विश्व बैंक से विदेशी मुद्रा मे ऋण ले सकता है और भारतीय सरकार ऐसे ऋणों पर गारन्टी देगी।

(र) केन्द्रीय सरकार से ऋण—सन् १९५२ के संशोधित अधिनियम के अनुसार निगम केन्द्रीय सरकार से ऋण ले सकती है।

निगम की आर्थिक स्थिति को और सुदृढ करने के लिये एक विशेष संचय कोष स्थापित किया गया है। इस कोष मे केन्द्रीय सरकार तथा रिजर्व बैंक के अंशो पर प्राप्त होने वाले सम्पूर्ण लाभांश उस समय तक जमा किये जायेंगे जब तक कि इसकी राशि ५० लाख रुपये न हो जाय।

लाभ का वितरण—

निगम के नियमों मे यह स्पष्ट कर दिया गया है कि निगम एक बचत कोष रक्खेगा। सन्देहास्पद ऋण, सम्पत्ति का मूल्य ह्रास तथा इस प्रकार के अन्य व्यापारिक घाटो के लिए आयोजन करने के उपरान्त, यदि कुछ लाभ शेष बचे, तो निगम उसे अंशधारियो मे बांट देगा। किन्तु इस लाभ की दर उस समय तक सरकारी गारन्टी से अधिक नही हो सकती, जब तक कि उक्त बचत कोष का धन निगम की प्राप्त पूँजी के बराबर न हो जाये।

निगम की कार्य विधि—

निगम द्वारा किसी भी औद्योगिक संस्था को ऋण प्रदान करने की संक्षिप्त विधि इस प्रकार है :—

(१) ऋण लेने वाली कम्पनी की प्रकृति, माल आदि की जाँच—निगम किसी भी उद्योग को ऋण देने के पूर्व, ऋण लेने वाली कम्पनी से निर्मित किये

जाने वाले माल की प्रकृति, कारखाने की स्थिति का स्थापन (Location), भूमि पर अधिकार, भवन, विद्युत शक्ति की उपलब्धता, तान्त्रिक स्टाफ, बाजार की स्थिति, उत्पादन की अनुमानित लागत, मशीनो की किस्मे, दी जाने वाली प्रतिभूति का मूल्य, सहायता लेने का उद्देश्य तथा लाभ कमाने व ऋण चुकाने की क्षमता, आदि के विषय मे सूचना प्राप्त कर लेना है।

(२) निगम के अधिकारियों द्वारा निरीक्षण—तत्पश्चात् निगम के अधिकारियों द्वारा ऋण लेने वाली कम्पनी का निरीक्षण किया जाता है। वे निगम को कम्पनी का लेखा (A/c Books), सम्पत्ति की वास्तविक स्थिति, प्रबन्ध की कार्यक्षमता, कच्चे माल की उपलब्धता तथा निर्मित माल के बाजार की स्थिति के विषय मे सूचना देते हैं। औद्योगिक सस्थायें अपने कुशल तान्त्रिक पदाधिकारियो को इस विषय मे वार्तालाप के हेतु भेज सकती हैं।

(३) सामयिक रिपोर्ट—निगम, ऋण लेने वाली सस्थाओ से सामयिक रिपोर्ट भी माँगती है, जिससे कि ऋण के सदउपयोग के विषय मे उसे जानकारी रहे।

(४) ऋण देते समय स्मरणीय घटक—ऋण प्रदान करते समय निगम निम्नलिखित बातो को ध्यान मे रखना है —

(i) उद्योग का राष्ट्रीय महत्व,
(ii) उसके द्वारा निर्मित वस्तुओ की देश मे मांग,
(iii) तान्त्रिक व्यक्तियो एव कच्चे माल की उपलब्धता,
(iv) प्रबन्ध की योग्यता,
(v) दी गई प्रतिभूति की प्रकृति;
(vi) निर्मित वस्तुओ के गुण, और
(vii) प्रस्तावित योजना की सम्भावना तथा लागत।

निगम द्वारा किए गए कामो का ब्यौरा—

औद्योगिक अर्थ निगम ने ३० जून सन् १९६० को १२ वर्ष पूर्ण किए और इन १२ वर्षो मे निगम ने अनेक प्रकार की औद्योगिक सस्थाओ को ऋण दिए है। निगम के पास इन १२ वर्षो मे जितने आवेदन पत्र आए एव जिन्हे ऋण स्वीकृत किए गए तथा जिन आवेदन-पत्रो को अस्वीकार किया गया, उनका ब्यौरा इस प्रकार है :—

तालिका १

(हजार रुपयों में)

क्रमांक	विवरण	संख्या	३० जून सन् १९५७ तक	संख्या	३० जून सन् १९५८ तक	संख्या	३० जून सन् १९५९ तक	संख्या	३० जून सन् १९६० तक
१.	प्राप्त आवेदन पत्र	६७	२१,३६,२५	४८	१४,८८,५०	२६	११,१६,५७	३८	१७,५४,१०
२.	स्वीकृत आवेदन पत्र	५१	११,६०,७५	२२	७,७८,५०	१९	३,७९,००	२९	१७,६१,७४
३.	भुगतान किये गये ऋण	—	९,७७,५०	—	८,३३,३५	—	७,४७,७१	—	८,४०,८१
४.	अस्वीकृत प्रार्थना-पत्र	१४	४,८७,५०	१	१०,००	३	३१,५०	१	४०,००
५.	वापिस लिए हुए अथवा लैप्स्ड (lapsed) प्रार्थना-पत्र	१०	२,७३,१०	१०	२,११,५०	२२	९,७९,५०	६	८,५०,००
६.	वर्ष के अन्त में विचाराधीन प्रार्थना-पत्र	२६	११,३७,००	४१	१४,९८,४०	२३	११,७०,९७	२५	७,८८,१०

३० जून सन् १६६० तक निगम ने ८४'६१ करोड रु० के कुल ऋण १८५ कम्पनियों को स्वीकृत किए और जिनमे से कुल ५०'७३ करोड रुपए वास्तव मे वितरित कर दिए गए। इसका स्पष्टीकरण निम्न तालिका मे हो जाता है :—

३० जून को अन्त होने वाला वर्ष	ऋण की कुल स्वीकृत धनराशि (करोड रु०)	वास्तव मे दी गई धनराशि (करोड रु.)	प्राप्त प्रार्थना पत्रो की सख्या	स्वीकृत प्रार्थना पत्रो का सख्या
१६४६	३'४२	१'३३	६५	२१
१६५०	७'१६	३'४१	१६०	४८
१६५१	६'५८	५'७६	२०५	६१
१६५२	१४'०३	७'५७	२५६	६४
१६५३	१५'४७	१०'०७	३३३	१०८
१६५४	२०'७४	१२'८६	३७६	१३७
१६५५	२८'०८	१४'५३	४२२	१६४
१६५६	४३'२१	१६'७३	५०८	२०८
१६५७	५५'४२	२६'५१	५७५	२५६
१६५८	६२'६०	३४'८४	६२३	२८१
१६५६	६६'६६	४२ ३२	६४६	३००
१६६०	८४ ६१	५०'७३	६८७	३२६

स्थगित चुकारों की गारन्टी—

औद्योगिक अर्थ निगम (सशोधन) अधिनियम सन् १६५७ के अन्तर्गत निगम को स्थगित चुकारो (Deferred Payments) की गारन्टी करने का भी अधिकार मिल गया है। औद्योगिक सस्थाओ द्वारा विदेशो से पूंजीकृत माल (Capital Goods) आयात करने के सम्बन्ध मे जो स्थगित भुगतान थे, उनकी गारन्टी अर्थ निगम ने दी। इसका संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है :—

तालिका २

(करोड़ रुपयों में)

क्रमाङ्क	विवरण	संख्या	२१ जून सन् १९५७ से ३० जून सन् १९५८ तक रु०	संख्या	३० जून सन् १९५९ तक रु०	संख्या	३० जून सन् १९६० तक रु०
१.	स्थगित भुगतान के हेतु गारन्टी के लिए प्राप्त प्रार्थना-पत्र	६	५,२४,००,०००	११	१६,५०,८०,५००	५	३,७२,४५,०००
२.	स्वीकृत प्रार्थना-पत्र	३	३,९६,००,०००	२	३५,००,०००	६	७,८७,०६,८००
३	अस्वीकृत प्रार्थना पत्र	—	—	—	—	—	—
४.	वापिस ले लिये गये प्रार्थना-पत्र	—	—	५	५,१४,१७,७००	३	३,४५,१७,०००
५	विचाराधीन प्रार्थना-पत्र	३	१,२८,००,०००	७	१२,२९,६२,८००	३	३,९२,१३,०००

गत वर्षों मे अर्थ निगम द्वारा जो प्रार्थना पत्र अस्वीकृत किये गये उनकी अस्वीकृति के कारणों को मोटे तौर पर निम्न प्रकार वर्णित किया जा सकता है :—

(१) प्रार्थी द्वारा योजना का त्याग देना या स्थगित करना,
(२) प्रार्थी द्वारा योजना मे सशोधन करना,
(३) प्रार्थी की आर्थिक स्थिति मे सुधार,
(४) अन्य स्रोतों से ऋण उपलब्ध हो जाना,
(५) निगम की शर्तों को पूरी न कर पाना।

औद्योगिक अर्थ निगम द्वारा गत १२ वर्षों मे भारत के जिन विभिन्न उद्योगो को ऋण स्वीकार किये गये, उनका सक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है :—

उद्योगो का प्रकार	३० जून १९५९ तक स्वीकृत ऋण	३० जून १९६० को समाप्त होने वाले वर्ष के लिए	योग
	रु०	रु०	रु०
वस्त्र मशीनरी	८३,००,०००	—	८३,००,०००
मैकेनिकल इन्जीनियरिंग	२,२८,००,०००	९५,००,०००	३,२३,००,०००
एलेक्ट्रीकल इन्जीनियरिंग	१,८१,७०,०००	१५,००,०००	१,९६,७०,०००
सूती वस्त्र	९,३७,७५,०००	२५,००,०००	९,६२,७५,०००
ऊनी वस्त्र	३५,००,०००	—	३५,००,०००
रेयन उद्योग	१,१०,००,०००	३,००,००,०००	४,१०,००,०००
रासायनिक	८,५३,२५,०००	८४,५०,०००	९,३७,७५,०००
सीमेन्ट	६,१७,००,०००	—	६,१७,००,०००
सेरेमिक व ग्लास	१,९१,७५,०००	९५,००,०००	२,८६,७५,०००
तेल मिल	११,००,०००	—	११,००,०००
विद्युत शक्ति	८२,७५,०००	—	८२,७५,०००
मेटेलर्जीकल उद्योग	४५,५०,०००	६,००,०००	५१,५०,०००
लौह व स्पात	२,६०,५०,०००	३०,००,०००	२,९०,५०,०००
अल्यूमीनियम	५०,००,०००	८०,००,०००	१,३०,००,०००
चीनी उद्योग	२०,६२,,००,०००	५,००,००,०००	२५,६२,००,०००
खनिज	३७,००,०००	—	३७,००,०००
कागज	५,७१,५०,०००	४,०२,२४,०००	९,७३,७४,०००
ऑटोमोबायल व ट्रेक्टर	१,६४,५०,०००	९,००,०००	१,७३,५०,०००
प्लाईवुड	३०,००,०००	—	३०,००,०००
होटल उद्योग	—	१,५०,००,०००	१,५०,००,०००
अवर्गित	१,१६,८०,०००	—	१,१६,८०,०००
योग	६६,९९,००,०००	१७,९१,७४,०००	८४,९०,७४,०००

गत वर्ष अन्तरिम ऋण (Interim Loan) के प्रदान करने मे भी निगम ने बडी नर्मी दिखलाई।

औद्योगिक अर्थनिगम संशोधन अधिनियम सन् १९५३—

औद्योगिक अर्थनिगम का कार्य-क्षेत्र तथा आर्थिक साधन बढाने के लिए उपर्युक्त अधिनियम बनाया गया, जिससे दीर्घकालीन ऋण देने मे वह अधिक उपयोगी हो सके। इस सशोधित अधिनियम के अन्तर्गत निगम को निम्नलिखित अधिकार मिल गए हैं:—

(१) औद्योगिक सस्थाओ की परिभाषा के अन्तर्गत जहाजी कम्पनियो का भी समावेश होगा, जिन्हे अर्थनिगम ऋण दे सकेगा।

(२) प्रत्येक उद्योग मण्डल को अर्थनिगम १ करोड रुपया अधिकतम ऋण दे सकेगा।

(३) सरकार अथवा अन्तर्राष्ट्रीय बैंक द्वारा भारतीय उद्योगो को जो ऋण दिए गए है, उनका निरीक्षण सरकार एव अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के प्रतिनिधि के नाते अर्थ-निगम स्वय करेगा।

(४) अ तर्राष्ट्रीय बैंक से अर्थनिगम जो ऋण लेगा, उसकी जमानत भारत सरकार देगी तथा इस प्रकार के विनिमय व्यवहारो मे निगम को जो हानि होगी उसकी क्षति पूर्ति केन्द्रीय सरकार करेगी।

(५) केन्द्रीय सरकार की जमानत पर अर्थनिगम किसी एक उद्योग प्रमण्डल को एक करोड रुपए से अधिक ऋण दे सकेगा, परन्तु ऐसी जमानत के लिए अर्थनिगम द्वारा ऋण की स्वीकृति की सिफारिश आवश्यक है।

(६) अर्थनिगम अपनी राशि रिजर्व बैंक की सलाह से किसी भी सूचीबद्ध बैंक अथवा प्रान्तीय सहकारी बैंक के पास निक्षेप (Deposit) मे रख सकेगा। इस संशोधन मे यह आवश्यक नही है कि वह अपनी राशि का विनियोग सरकारी प्रति-भूतियो मे ही करे। इसमे अर्थनिगम को ब्याज की हानि नही होगी।

(७) अर्थनिगम अपनी कार्यशील पूँजी के लिए १८ माह से अधिकतम अवधि के लिए ३ करोड रुपये का ऋण दे सकेगा। इससे निगम को स्वीकार करते ही बन्ध अथवा ऋण पत्रो के निर्गमन की आवश्यकता नही रहेगी। जब तक अर्थनिगम का सचित कोष ५० लाख रुपये तक नही हो जाता, तब तक रिजर्व बैंक एव केन्द्रीय सरकार को मिलने वाले लाभाश इसी मे जमा होगे।

(८) किसी ऋण लेने वाले उद्योग का नियन्त्रण अर्थनिगम ले सकेगा। इस सम्बन्ध मे ३० A से ३० E तक नई धाराएँ जोड दी गई है। इससे नियन्त्रित उद्योग में वह अपने सचालको की नियुक्ति करेगा, जिसके बाद पूर्व सचालक अपना पद छोड देंगे। दूसरे, मैनेजिंग एजेन्ट्स का उद्योग प्रमण्डल के साथ जो अनुबन्ध होगा उसका बिना किसी क्षति पूर्ति के अन्त हो जायगा। तीसरे, अशधारियो के मनोनीत सचालको की नियुक्ति निरस्त होगी और बिना अर्थनिगम की अनुमति के अशधारियो द्वारा

स्वीकृत कोई भी प्रस्ताव कार्यान्वित नहीं हो सकेगा। चौथे, अर्थनिगम की अनुमति के बिना किसी उद्योग प्रमण्डल का समापन भी नहीं हो सकेगा।

(६) अर्थनिगम की सचालक सभा पर केन्द्रीय सरकार के मनोनीत ४ सचालक होंगे तथा उप प्रबन्ध सचालक (Deputy Managing Director) सचालक सभा मे बैठ सकेगा, किन्तु उसे मत देने का अधिकार न होगा। इसी प्रकार प्रबन्ध सचालक को किसी भी समय निकाला जा सकता है। हाँ, ऐसी परिस्थिति मे प्रबन्ध सचालक को स्पष्टीकरण करने के लिए समुचित अवसर दिया जायगा, किन्तु दो-तिहाई बहुमत से सचालक सभा चाहे तो उसे कर सकती है।

प्रमण्डल की कठिनाइयाँ—

गत वर्षों मे कॉरपोरेशन ने करोडो रुपयो के ऋण औद्योगिक सस्थाओ को प्रदान किये, किन्तु फिर भी प्रमण्डल पूर्णरूपेण सहायता नही पहुँचा सका। कॉरपोरेशन का तो अनुभव यह है कि भारतीय औद्योगिक कलेवर की नाडी कमजोर है। प्रमण्डल के मार्ग मे मुख्य दो बाधाय निम्न है —

(१) **योजना का अभाव**—अनेक उदाहरणो मे ऐसी योजनाएं कॉरपोरेशन के पास भेजी गई, जिनमे तान्त्रिक पहलुओ व वित्त समस्याओ पर पूर्ण विचार नही किया गया था। कुछ मे तो यह भी नही बताया गया कि भूमि, इमारत, मशीनरी आदि अन्य विभागो पर अलग अलग कुल कितनी राशि व्यय होगी। ऐसे भी उदाहरण हैं, जहाँ मशीन आदि इसलिए खरीद ली गई हैं क्योकि वे सस्ते दामो मे उपलब्ध है। ऐसी अधूरी कागजी योजनाओ मे वास्तविक योजना के मूल तत्वो का अभाव होना स्वाभाविक ही है। माग और पूर्ति की समस्याओ पर अधिकाश सस्थायें पर्याप्त रूप से सोचने म असमर्थ रही हैं, अत ऐसी दशा मे कॉरपोरेशन के लिए अन्धाधुन्ध ऋण देना क्योकर सम्भव हो सकता है ?

(२) **अपर्याप्त साधन**—अनेक उदाहरण ऐसे हैं, जिनमे पूंजी आवश्यकता से बहुत कम है। ऐसी सस्थाओ को ऋण देकर उनका अहित करना है।

(३) कुछ उदाहरणो मे यद्यपि प्राप्त पू जी पर्याप्त थी, किन्तु सस्था की अधिकाश सम्पत्ति गिरवी रखी जा चुकी थी। ऐसे भी उदाहरण है, जहाँ सस्था के सारे अश प्रवर्तको को उनसे ली गई सम्पत्ति के बदले मे दे दिए गए है और ऐसी सम्पत्ति बहुत अधिक मूल्य पर प्राप्त की गई है।

(४) ऐसे भी प्रमण्डल हैं जो ऋणस्वीकृत हो जाने पर वैधानिक कार्यवाही पूरी नही करते और न इस दिशा म प्रयत्न ही करते है।

अत: औद्योगिक अर्थ प्रमण्डलो को चाहिए कि वे उक्त कठिनाइयो को दूर करने मे तथा अधिकाधिक सहायता प्रदान करने मे औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल को सहयोग दें, तभी विकास सम्भव है।

औद्योगिक अर्थ निगम की आलोचना—

जिस समय लोक सभा मे औद्योगिक अर्थ निगम (सशोधन) अधिनियम, सन्

१९५२ तथा औद्योगिक एवं राज्य अर्थ निगमों (संशोधन) अधिनियम, १९५५ पर बहस हो रही थी, उस समय इस निगम की बड़ी कठोर आलोचना की गई। आलोचनाओं के प्रमुख आधार निम्नलिखित थे :—

(१) पक्षपात बरतना—निगम कम्पनियों को ऋण देते समय पक्षपात व भेदभाव की भावना रखता है, दूसरे शब्दों में निगम केवल संस्थाओं को ऋण प्रदान करता है, जिनमें उसके संचालक अथवा अन्य पदाधिकारी हित रखते हों।

(२) अविकसित क्षेत्रों की उपेक्षा—निगम उन राज्यों अथवा क्षेत्रों में, जो अपेक्षाकृत कम विकसित हैं, औद्योगिक उद्योग धन्धे स्थापित करने में असफल रहा है।

(३) किंचित व्यक्तियों का प्रभुत्व—निगम पूर्णतया सरकार के स्वामित्व व नियन्त्रण में नहीं है, अतएव किंचित महारथियों की चतुरता सम्पूर्ण देश की आर्थिक स्थिति को अपने अधिकार में ले सकती है।

(४) लघु व कुटीर उद्योगों की उपेक्षा—निगम की सबसे कठोर आलोचना यह है कि इसने केवल बड़े पैमाने के उद्योगों की वित्तीय समस्याओं की ओर ही अधिक ध्यान दिया है, मध्य-स्तरीय, लघु एवं कुटीर उद्योग इसकी सहायता से वंचित हो गए हैं।

(५) आधारभूत उद्योगों के प्रति उपेक्षा—निगम ने ऐसी औद्योगिक इकाइयों को वित्तीय सहायता दी है, जो पंच-वर्षीय योजना के कार्यक्रम के अन्तर्गत नहीं आती है। अन्य शब्दों में, निगम ने आधारभूत तथा पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों को बहुत कम सहायता प्रदान की है, जबकि उपभोक्ता सम्बन्धी उद्योगों को पर्याप्त सहायता दी गई है।

(६) ऋण लेने वाली कम्पनियों पर नियन्त्रण का अभाव—निगम ऋण लेने वाली कम्पनियों के द्वारा व्यय की जाने वाली राशि की देखरेख करने में असफल रहा है। परिणामतः वस्तुओं के उत्पादन तथा उत्पादन-शक्ति में कोई वृद्धि नहीं हुई।

(७) सामान्य पूँजी प्रदान करने में असमर्थता—निगम कम्पनियों को सामान्य पूँजी नहीं प्रदान करता है, अतः उनको अन्य संस्थाओं का मुँह ताकना पड़ता है।

(८) *ख्याति प्राप्त कम्पनियों को ऋण देना—निगम ने ऐसी कम्पनियों* को भी ऋण दिया है जो खूब लाभ कमा रही थी तथा अपनी ख्याति के कारण मुद्रा बाजार से ऋण प्राप्त कर सकती थी।

(९) फिजूलखर्ची—यह भी कहा गया है कि निगम अपने स्थापन व्यय तथा अन्य व्ययों में मितव्ययिता नहीं कर सका है।

उपरोक्त आलोचनाओं के आधार पर निगम की क्रियाओं का पर्यवेक्षण कराने के लिए भारतीय सरकार ने श्रीमती सुचेता कृपलानी एम० पी० की अध्यक्षता में

दिसम्बर सन् १९५२ मे एक समिति नियुक्त की। इस समिति के अन्य सदस्य श्री वी० बी० गाधी, श्री श्रीनारायण मेहता, श्री पी० ए० नारियलवाला, श्री आर० सूर्यनारायण राव तथा श्री जी० बासु थे। इस समिति को निम्न बातो के सम्बन्ध मे अपनी रिपोर्ट देनी थी :—

(१) लोक सभा मे औद्योगिक अर्थ निगम (सशोधक) बिल पर बहस के समय निगम के द्वारा दिये गये ऋणो पर लगाये गये दोष की छान-बीन करना।

(२) यह पता लगाना कि ऋण देते समय साधारण रूप से उचित सावधानी रखी जाती है अथवा नही।

(३) निगम की ऋण देने की नीति को इस विचार से देखना कि वह निगम के अधिनियम के उद्देश्यो तथा सरकार द्वारा निर्गमित आदेशो का पालन करती है अथवा नही।

(४) निगम की क्रियाओ मे सुधार करने के लिए उचित सुझाव देना।

कृपलानी समिति के सुझाव—

श्रीमती सुचेता कृपलानी समिति ने अपनी रिपोर्ट ७ मई सन् १९५३ को प्रस्तुत की। इस समिति ने बहुत से साधारण सुझाव दिये तथा 'सौदेपुर ग्लास वर्क्स' को दिये गये ऋण के बारे मे भी विस्तारपूर्वक रिपोर्ट दी।

जहाँ तक प्रथम दोष का सम्बन्ध है, समिति की राय मे यह आधार रहित है। समिति ने इस बात को स्वीकार किया है कि ऐसे उद्योगो, जिनमे निगम के सचालक या अध्यक्ष नेकमात्र भी हित रखते थे, उनको ऋण सुगमता व शीघ्रता से मिल गया है। समिति ने यह भी स्वीकार किया है कि निगम ऋण देते समय सुस्थापित व ख्यातिप्राप्त उद्योगो को अन्य उद्योगो की अपेक्षा प्राथमिकता देता है। समिति ने किस आधार पर ऐसा निर्णय दिया, रिपोर्ट मे नही बताया गया है। फिर भी भारतीय सरकार ने इस समिति की रिपोर्ट की विवेचना करते हुए कहा है कि "समिति ने जो कुछ भी रिपोर्ट दी है, सही तथ्यो पर आधारित है।"

कृपलानी समिति के सुझाव—

समिति द्वारा दिये गये सुझावो को अध्ययन की दृष्टि से हम तीन भागो मे बाँट सकते है :—

(i) शासन तथा सगठन सम्बन्धी,

(ii) *कार्य विधि सम्बन्धी तथा*

(iii) नीति सम्बन्धी।

(I) शासन तथा संगठन सम्बन्धी सुझाव—

इस सम्बन्ध मे समिति ने निम्न सुझाव दिए हैं :—

(i) *निगम के वर्तमान अवैतनिक अध्यक्ष तथा वैतनिक प्रबन्ध सचालक के*

स्थान पर पूर्ण वैतनिक अध्यक्ष तथा एक जनरल मैनेजर की नियुक्ति होनी चाहिए।

(ii) प्रत्येक उप कार्यालय के लिए एक क्षेत्रीय परामर्शदाता पारपद होना चाहिए जिनमे से कुछ सदस्य ऋण आवेदन पत्रो पर विचार करने के लिए चुन लेना चाहिए, इसके अतिरिक्त कभी कभी निगम की सचालक सभा को बम्बई, कलकत्ता, मद्रास इत्यादि मे अपनी सभा करनी चाहिए।

(iii) समिति की राय मे प्रबन्ध सचालक के हाथ अधिक अधिकारो का केन्द्रीयकरण उचित नही। प्रबन्ध सचालक तथा उप प्रबन्ध सचालक के कर्तव्य तथा अधिकारो को स्पष्ट रूप मे परिभाषित कर देना चाहिए।

(iv) निगम को ऋण लने वाली कम्पनियो की सचालक सभा मे अपने पदाधिकारियो को सचालक नियुक्त करने के अधिकार का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिए। इन सचालको को ऋण देने वाली कम्पनी के स्थिति विवरण तथा हानि लाभ के खाता पर हस्ताक्षर करने का अधिकार होना चाहिए।

(v) ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिसमे निगम की सचालक सभा पर बडे-बडे उद्योगपतियो का आधिपत्य न हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार को चाहिए कि वह निगम की सचालक सभा म एक अर्थशास्त्री एक प्रबन्धकीय विशेषज्ञ तथा एक चार्टर्ड एकाउटेट को मनोनीत करें। मनोनीत किये गये सचालको मे एक ऐसा भी व्यक्ति होना चाहिए जो लघु उद्योगो के विकास मे हित रखता हो।

उपरोक्त सुझावो को सरकार ने लगभग मान लिया है तथा तदनुसार व्यवस्था की जा चुकी है।

(II) कार्य विधि सम्बन्धी सुझाव—

(i) निगम का कोई भी सचालक जो किसी भी ऋण लेने वाली कम्पनी मे हित रखता हो तो उसे अपने हित को प्रकट कर देना चाहिए। ऐसी कोई भी फर्म जिसमे निगम का कोई भी सचालक, प्रबन्ध सचालक, या साझेदार या प्रबन्ध अभिकर्ता हो तो उस कम्पनी को ऋण नही दिया जायगा। यदि निगम का कोई सचालक किसी ऋण लने वाली कम्पनी का केवल साधारण सचालक या अशधारी हो तो कम्पनी को ऋण उसी अवस्था म मिलेगा जब निगम की सचालक सभा के सचालकगण, जो मत देने के अधिकारी हैं, एकमत से ऋण देन के लिए प्रस्ताव पास कर दें। ऐसा सचालक जो किसी कम्पनी को ऋण

दिलाने मे हित रखता हो, तो सचालक सभा की शासकीय जिसमे इस ऋण पर विचार किया जा रहा हो, उपस्थित न चाहिए।

(ii) ऋणो को स्वीकृत करने मे सचालको की सभा को अन्तिम होना चाहिए तथा शासकीय समिति को चाहिए कि वह की मुख्य ऋणो वाले प्रार्थना पत्रो को सचालक सभा की अनुमति बाद मे प्रस्तुत करे।

(iii) निगम को अपनी वार्षिक रिपोर्ट जिसमे अधिक से अधिक सू तथा पच-वर्षीय रिपोर्ट जिसम ऋण लेने वाली कम्पनियो प्रत्येक ऋण लेने वाली कम्पनी की क्रियाओ एव सफलताओ मे तथा उद्योगो के विकास की स्थिति के सम्बन्ध म सूचना करनी चाहिए। स्थिति विवरण तथा लाभ-हानि के खातो भी सशोधित कर देना चाहिये।

(iv) ऋण देते समय कम से कम ५०% का अन्तर रखना चाहिये अतिरिक्त यह भी ध्यान रखना चाहिये कि ऋण लेने वाली अपनी सम्पत्ति का अतिमूल्यन न कर दे। ऋण लेने वाली क की लाभोपार्जन शक्ति तथा दीर्घकालीन पूँजी की आवश्यक सम्बध मे ऋण स्वीकृत करने से पहले ठीक ठीक अनुमान ल चाहिये। ऋण लेने वाली कम्पनी के प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ अशो को बिना निगम की आज्ञा के बेचने का अधिकार न चाहिय।

(v) ऋणो के स्वीकृत करने म तथा उनक चुकाने मे जो देर लगर्न कम से कम कर देना चाहिये।

(vi) निगम के पास तान्त्रिक विशेषज्ञो का दल होना चाहिये।

(vii) निगम यदि किसी कम्पनी को खरीद लेता है तो उसका विभागीय प्रबन्ध या प्रबध अभिकर्त्ताओ के द्वारा होने की सिद्धान्तत मनोनीत सचालको की सभा को दे देना चाहिए।

अभी तक निगम ने केवल एक ही कम्पनी (सोदेपुर ग्लास वर्क्स) क किया है, जिसका प्रबध मनोनीत सचालको के द्वारा किया जा रहा है।

(III) नीति सम्बन्धी सुझाव

इस सम्बन्ध मे समिति ने निम्न सुझाव दिये है —

(i) निगम को पच वर्षीय योजना म दी गई प्राथमिकताओ के तथा योजना आयोग के द्वारा ४२ उद्योगो के अनुमुचित क का पालन करना चाहिए। निगम को ऐसी कम्पनी को स्वीकृत नही करना चाहिए जो स्वय काफी विकसित हो चुकी है

(11) औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन अधिनियम की धारा ६—(३) के अनुसार सरकार को निगम को सिद्धान्त अपनाने के सम्बन्ध मे आदेश देने चाहिए। सरकार को निगम को ऐसे आदेश देना चाहिए जिसमे अवकसित तथा विकसित क्षेत्रो का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। निगम को ५० लाख से अधिक राशि वाले आवेदन पत्रो को तीन वर्ष तक केन्द्रीय सरकार के सामने रखना चाहिए।

(३) इस समय तक निगम के राष्ट्रीयकरण के लिए सुझाव नही दिया गया है। लोक सभा के मदस्यो को निगम के दैनिक शासन मे अधिक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। परन्तु लोकसभा को इसकी क्रियाओ पर नियन्त्रण रखने के सम्बन्ध मे समिति ने सुझाव दिया कि लोक सभा की एक पब्लिक कॉरपोरेशन कमेटी' बना दी जाय।

(४) निगम को सामान्य पूँजी या जोखिम पूँजी मे भाग नही लेना चाहिए।

(५) निगम के सचित कोष के ५ करोड रुपये से अधिक हो जाने पर सामान्य पूँजी मे भाग लेने पर विचार किया जा सकता है।

(६) निजी सीमित कम्पनियो को निगम अश नहीं दे सकता है।

(७) निगम किसी कम्पनी के अस्थायी अशो, जिनको वह किसी बैंक से प्राप्त करता है, पर गारन्टी दे सकता है।

(८) किसी नई कम्पनी के लिए प्रारम्भिक वर्षों मे ब्याज की राशि को स्थगित कर सकता है।

(६) उन कम्पनियो के सम्बन्ध मे जिनका निर्माण व पजीयन भारतवर्ष मे हुआ है परन्तु अशधारियो की सख्या विदेशियो की अधिक है तो यह निश्चित करना कि ऐसी कम्पनी भाग लेने की अधिकारी है। अथवा नही।

(१०) जहाँ पर कोई राज्य विशेष पृथक रूप से राज्य अर्थ प्रबन्धन निगम स्थापित करने मे असमर्थ हो तो ऐसी दशा मे दो राज्य निगम की स्थापना कर सकते है। औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन निगम की क्रियाओ का स्पष्ट विवेचन होना चाहिए।

उपरोक्त सुझावो को भारत सरकार ने लगभग पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया है।

श्रॉफ समिति के सुझाव—

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा नियुक्त श्रॉफ कमेटी ने निजी क्षेत्र को आर्थिक सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से औद्योगिक अर्थ निगम की क्रियाओ का पयवेक्षण भी किया। समिति ने इस सम्बन्ध मे निम्न दोष व सुझाव प्रेषित किए :—

(१) ऋणों की स्वीकृति में विलम्ब—समिति ने यह अनुभव किया कि ऋणों की स्वीकृति मे बहुत समय लगता है। विलम्ब का कारण आवेदन पत्रो मे वैधानिक उपचारो की कमी थी। इस दोष को दूर करने के लिए समिति ने सुझाव दिया कि मुख्य शहरो मे वैधानिक परामर्शदाताओं का दल रखा जाय।

(२) ऋण देने की शर्ते—निगम की ऋण देने की शर्तें बहुत ही अनाकर्षक है। उदाहरणार्थ, निगम ५०% का मार्जिन रखने के अतिरिक्त उस कम्पनी के प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की प्रत्याभूति पर भी जोर देते है। समिति ने सुझाव दिया कि *निगम को ऋण देने वाली कम्पनी की सुदृढ़ता के आधार पर ऋण देना चाहिए,* प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की प्रत्याभूति पर नही।

(३) अधिक ब्याज दर—निगम ऋण लेने वाली कम्पनियो से जो ब्याज लेता है वह अपेक्षाकृत बहुत अधिक है। यह ब्याज की ऊँची दर नवनिर्मित औद्योगिक कम्पनियो के विकास मे बाधा डाल सकती है। समिति के विचार मे निगम को नवीन *कम्पनियो के प्रारम्भिक काल म नीची दर से ब्याज लगाना चाहिए* और बाद मे कम्पनी की लाभ उपार्जन शक्ति बढ़ने पर ब्याज की दर बढाई जा सकती है।

राज्य अर्थ-प्रबन्धन निगम

(State Financial Corporation)

अखिल भारतीय औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल का क्षेत्र सीमित है, अत औद्योगिक क्षेत्र के लिये ऐसे प्रान्तीय अर्थ प्रमण्डलो की आवश्यकता है, जो साझेदारी संस्थाओं, अलोक प्रमण्डलो तथा व्यक्तियों को भी ऋण प्रदान कर। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि प्रान्तीय अर्थ प्रमण्डल तथा औद्योगिक अर्थ प्रमण्डल परस्पर सहयोग से काय करें, जिसमे ये एक दूसरे के पूरक हो, क्योंकि मध्यम एव लघु उद्योगो को आर्थिक सहायता देने का कार्य क्षेत्र विस्तृत होने से औद्योगिक अर्थ निगम को यह क्षेत्र अपनाने मे कठिनाइयाँ भी होगी। इसी हेतु ससद ने २८ सितम्बर सन् १९५१ का 'प्रान्तीय आर्थिक अर्थ प्रमण्डल सन्नियम' पास किया, जो सम्पूर्ण भारत मे लागू होता है।

इस विधान के अनुसार प्रत्येक प्रान्तीय सरकार अपने प्रान्त मे प्रान्तीय अर्थ-प्रमण्डल स्थापित कर सकती है। इस सन्नियम की अधिकाश धारायें औद्योगिक अर्थ-प्रमण्डल सन्नियम सन् १९४९ से मिलती जुलती है। केवल तीन बातो मे भिन्नता है—(१) 'औद्योगिक सस्थाओं' की परिभाषा इस प्रकार विस्तृत की गई है कि प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियो, साझेदारियो एव यहाँ तक कि एकाकी स्वामित्व वाली सस्थाय भी इसके क्षेत्र मे आ जाती हैं। (२) जन साधारण और अनुसूचित बैंक भी राज्य निगमों की अश पूँजी मे भाग ले सकती हैं। (३) ऋण की अवधि केवल २० वर्ष रखी गई है।

सन् १९५१ का अधिनियम पास होने से अब तक कुल १३ अर्थ निगम बन चुके है। इनका कार्य कुछ अधिक सतोषजनक नही रहा है और वे लघु एव मध्यम

उद्योगो की विशेष सहायता नही कर पाये है। इस असफलता के लिए कुछ तो अधिनियम की दुर्बलताएँ दायी थी। कुछ सीमा तक लघु उद्योगो का स्वभाव एव सगठन भी बाधक हुआ। ये उद्योग भली प्रकार सगठित नही थे, अत. वे निगम से सहायता मांगने मे समर्थ नही हुये। फलतः सन् १९५६ मे सन् १९५१ के राज्य वित्त निगम अधिनियम मे सशोधन किए गए, जिनके उद्देश्य निम्न थे :—

(१) अधिनियम के कार्यान्वित करने मे जो कतिपय कठिनाइयाँ गत कुछ वर्षों मे अनुभव हुई उन्हे दूर करना।

(२) दो या दो से अधिक राज्यों को पारस्परिक समझौते द्वारा एक सयुक्त वित्त निगम की स्थापना करने के लिए अनुमति देना।

(३) एक राज्य के विद्यमान वित्त निगम का क्षेत्र दूसरे राज्य पर, एक पारस्परिक ठहराव के अन्तगत, विस्तृत करना।

(४) राज्य वित्त निगम को केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार या अखिल भारतीय वित्त निगम की ओर से एजेन्सी कार्य लेने की अनुमति देना।

(५) रिजर्व बैंक से लघुकालीन ऋण लने की अनुमति देना।

(६) लघु एव कुटीर उद्योगो को, जिनके पास यथेष्ठ सम्पत्ति नही है, किसी राज्य सरकार या अनुसूचित बैंक या सहकारी बैंक की प्रत्याभूति देने पर आर्थिक सहायता देने की अनुमति प्रदान करना।

(७) निगमो को अपने अधिकार मे की गई औद्योगिक सस्थाओ के कुशल प्रबन्ध सचालन के लिए अधिकार प्रदान करना।

(८) रिजर्व बैंक को, केन्द्रीय सरकार की आज्ञा पर, राज्य वित्त निगमो की कार्य प्रणाली का जाँचने की अनुमति प्रदान करना।

यह अनुभव किया गया है कि लघु उद्योगो के विकास से रोजगार मे विशेष वृद्धि होगी और आय मे असमानता घटेगी, अत इनकी उन्नति पर सरकार बडा ध्यान दे रही है। लघु उद्योगो की उन्नति के लिए वित्तीय सहायता बडी आवश्यक है, जो केवल राज्यो के वित्त निगम ही दे सकते हैं। राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम इनको अधिक सहायता नही दे सकता, क्योकि लघु उद्योग सारे देश मे बिखरे हुए हैं।

प्रबन्ध—

प्रत्येक प्रान्तीय सस्था के प्रबन्ध के लिये १० सदस्यो की एक सभा होगी, जिसके सदस्यो की नियुक्ति इस प्रकार की जायगी :—

(क) प्रातीय सरकार द्वारा मनोनीत सचालक	३
(ख) रिजर्व बैंक " " "	१
(ग) औद्योगिक अर्थनिगम " "	१
(घ) प्रातीय सरकार द्वारा नियुक्त प्रबन्ध-सचालक	१
(ङ) अनुसूचित बैंको, सहकारी बैंको, शेष आर्थिक व्यवसायो तथा अशधारियो मे से प्रत्येक का अलग अलग प्रतिनिधि सचालक	४
कुल	१०

राज्य वित्त निगमों के कार्य—

राज्य वित्त निगम को निम्न के लिये अधिकार दिये गये हैं :—

(१) औद्योगिक संस्थाओं को ऋण देना या उनके ऋण-पत्र खरीदना, जो कि २० वर्ष में वापिस लिये जा सकते है।

(२) औद्योगिक संस्थाओं द्वारा खुले बाजार में (२० वर्ष की अवधि में चुकता किये जाने वाले) ऋण निर्गमनों की प्रत्याभूति देना।

(३) औद्योगिक संस्थाओं के अंशो, ऋण-पत्रों, बॉन्ड आदि का अभिगोपन करना, बशर्ते जो अंश आदि निगम को लेने पड़ें उन्हें ७ वर्ष के अन्दर बाजार में बेच दिया जाय।

निगम के निश्चित कार्य—

(१) अधिक से अधिक उद्योगो की सहायता करने के विचार से निगम किसी एक औद्योगिक संस्था को अपनी प्रदत्त पूंजी के १०% भाग अथवा दस लाख रुपये, जो भी कम हो, से अधिक नहीं दे सकता।

(२) निगम किसी भी औद्योगिक संस्था के अंशों अथवा स्कन्धों को प्रत्यक्ष रूप से क्रय नहीं कर सकता।

(३) निगम जनता से पाँच वर्ष से कम अवधि की जमा (Deposits) स्वीकार नहीं कर सकता।

(४) निगम अपने अंशों की प्रतिभूति पर ऋण नहीं दे सकता।

(५) निगम अपनी प्रदत्त पूंजी से अधिक राशि की जमा स्वीकार नहीं कर सकता।

विभिन्न राज्यों के अर्थ-निगम

(I) महाराष्ट्र राज्य का अर्थ-निगम

महाराष्ट्र राज्य में अर्थ-निगम की स्थापना ३० नवम्बर सन् १९५३ को हुई। इसकी अधिकृत पूंजी ५ करोड रुपये है। इस पूंजी का क्रय महाराष्ट्र राज्य की सरकार, संयुक्त स्कन्ध बैंको, बीमा कम्पनियो, सहकारी बैंको विनियोग प्रन्यास तथा अन्य आर्थिक संस्थाओं ने किया है। इस निगम का मुख्य कार्यालय बम्बई में है।

उद्देश्य—

महाराष्ट्र राज्य के अर्थ-निगम का उद्देश्य राज्य के आर्थिक विकास के लिए आर्थिक सुविधायें प्रदान करना है।

कार्य—

(१) औद्योगिक इकाइयो के ऋण पत्रों का क्रय करना तथा उन्हें ऋण देना।

(२) औद्योगिक संस्थाओं द्वारा स्कन्ध विपणि में लिए गए ऋण की गारण्टी देना।

(३) औद्योगिक सस्थाओ के ऋण-पत्रो, बधो एव स्कन्धो के निर्गमन का अभिगोपन करना।

(४) औद्योगिक सस्थाओ को कम से कम दस हजार तथा अधिक से अधिक ५ लाख रुपये का ऋण देना।

ऋण देने की शर्तें—

(i) स्थायी सम्पत्ति के शुद्ध मूल्य के ५% राशि तक ऐसी सम्पत्ति की प्रथम वैधानिक प्राप्ति पर ऋण दिया जा सकेगा।

(ii) ऋण अधिक से अधिक दस से बारह वर्ष की अवधि के लिए दिया जा सकेगा और इसका भुगतान किस्तो मे होगा। इन किस्तो की राशि एव ऋण की अवधि प्रत्येक उद्योग की योग्यता एव उसकी स्थिति के अनुसार निर्धारित होगी।

(iii) ब्याज की दर ६% सालाना होगी।

(iv) ऋण के लिए प्रस्तुत आवेदन-पत्रो पर ऋण की स्वीकृति देने के पूर्व नीचे दी हुई बातो पर विचार किया जायगा।—

(१) उद्योग की आर्थिक स्थिति, (२) प्रतिभूतियो की पर्याप्तता, (३) लाभार्जन शक्ति, (४) ब्याज तथा प्रभागो मे मूलधन के भुगतान करने की योग्यता, (५) तान्त्रिक विशेषज्ञो एव प्रबन्धको की योग्यता एव अनुभव, (६) आधुनिकीकरण, विस्तार एव विकास योजना की तान्त्रिकता, (७) सम्पत्ति का स्वत्वाधिकार। तथा (८) ऋण लेने वाले उद्योग की साख योग्यता।

(II) उत्तर-प्रदेशीय अर्थ-निगम

२५ अगस्त सन् १६५४ को उत्तर-प्रदेशीय अर्थ निगम की स्थापना हुई। इसका प्रधान कार्यालय कानपुर मे है। इसकी अधिकृत पूँजी ३ करोड रुपया है। आरम्भ मे केवल ५० लाख रुपये के ५०,००० अशो का निर्गमन किया गया है। इन अशो का क्रय निम्न सस्थाओ के द्वारा इस प्रकार किया गया है—राज्य सरकार ३६%, अनुसूचित बैंक बीमा कम्पनी आदि ३६%, रिजर्व बैंक १५%, अन्य सस्थाए १०%।

उद्देश्य—

इस निगम का प्रमुख उद्देश्य लघु तथा माध्यमिक उद्योगो को आर्थिक सहायता प्रदान करना है।

ऋण देने की शर्तें—

इस निगम को पजाब राज्य के अर्थ-निगम की शर्तों के आधार पर बन्ध तथा ऋण पत्र बेचने का अधिकार है। निगम का सचालक मडल इस बात का निर्णय करता है कि किन उद्योगो को सहायता मिलनी चाहिये। सचालक मडल ही ऋण की अधिकतम व न्यूनतम राशि निर्धारित करता है। निगम द्वारा नवीन तथा विद्यमान दोनो प्रकार की सस्थाओ का आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। निगम द्वारा

दिए गए ऋण पर ६% की दर से ब्याज लिया जाता है और नियत समय पर ऋण की किस्तो तथा ब्याज के भुगतान करने पर १२% छूट दी जाती है।

प्रबन्ध—

उत्तर प्रदेशीय अर्थ निगम का प्रब ध एक सचालक सभा के द्वारा होता है। इसका प्रबन्ध सचालक (Managing director) रिजर्व बैंक की सम्मति के अनुसार नियुक्त किया जाता है। निगम की कार्यक्षमता मे वृद्धि करने के उद्देश्य से परामर्शदाता समितियाँ भी नियुक्त की जा सकती है।

(III) मध्य-प्रदेश राज्य वित्त-निगम

मध्य प्रदेश राज्य वित्त निगम की स्थापना सन् १९५५ मे हुई। इसका प्रधान कार्यालय इन्दौर मे है। श्री दुर्गाप्रसाद जी मडेलिया इसके चेयरमैन है तथा सी० बी० गुप्ता इसके प्रबन्ध सचालक हैं। इस निगम के गत पाँच वर्षों के कार्यो का अनुमान नीचे दी हुई तालिका से लगाया जा सकता है :—

वर्ष	प्रदान किए गए ऋणो का योग	प्रदत्त ऋणा की मात्रा	दत्त पूँजी के प्रतिशत के रूप मे प्रदत्त ऋणा की मात्रा
	रु०	रु०	
३१-३-१९५६			•
३१ ३-१९५७	५,५०,०००	५,५०,०००	५ ५%
३१-३ १९५८	४०,८६,०००	४०,६१,०००	४०·६१%
३१-३-१९५९	४८,१५,०००	४३,२६,५००	४,·२७%
३१-३-१९६०	६०,०२ ५००	४९,१०,४४९	४९· १%

राज्य वित्त निगमो के कार्यों की आलोचना

यद्यपि कई राज्यो मे अभी वित्त निगम भली प्रकार स्थापित नही हो पाये हैं, तथापि कुछ वित्त निगमो के कार्यो से यह प्रगट होता है कि यदि उनकी सरचना एव कार्य प्रणाली मे कुछ परिवर्तन कर दिय ज यें तो वे अधिक उपयुक्त बन सकते हैं। निगमो की प्रमुख कठिनाइयाँ निम्नलिखित है :—

(१) इन निगमो की रचना ऐसी है कि उद्योगो को अपने विस्तार के लिए अतिरिक्त स्थाई सम्पत्तियाँ (मशीनो, इमारतो आदि के रूप मे) खरीदने के हेतु पूँजी की सहायता मिल सकती है, किन्तु अधिकाश लघु उद्योगो को कार्यशील पूँजी चाहिए, जिसे देने मे राज्य निगम सकोच करते हैं।

(२) अधिकाश लघु उद्योगो का सगठन छोटे पैमाने पर हुआ है। उनकी वित्तीय आवश्यकताये निगम के कार्य क्षेत्र से परे रह जाती हैं, क्योकि राज्य निगम एक न्यूनतम राशि से कम आर्थिक सहायता नही देते।

(३) लघु उद्योगो द्वारा उचित रूप म हिसाब किताब नहीं रखा जाता। ये

उद्योग प्राय: एकल स्वामित्व या साझेदारी के आधार पर संगठित किये गये हैं, अतः इन पर हिसाब-किताब सम्बन्धी कोई वैधानिक प्रतिबन्ध भी नही है। जब निगम किसी उद्योग को सहायता स्वीकार करता है तो वह यह आशा करता है कि उचित हिसाब-किताब रखा जायेगा। छोटे छोटे उद्योग इसके लिए अपने को असमर्थ पाते है।

(४) लघु उद्योगो के पास प्रतिभूति के रूप मे देने के लिये पर्याप्त स्थाई सम्पत्ति (Block assets) नही है। भूमि और भवन प्राय: किराये का होता है, मशीनें भी कम होती हैं। यही नही, निगम स्थाई सम्पत्ति का ५०% मार्जिन भी छोडता है। फलस्वरूप उद्योग निगम को पर्याप्त प्रतिभूति नही दे पाते है।

(५) अधिकाश राज्य-वित्त निगमो ने कर मुक्त २½% न्यूनतम लाभाश की गारटी के आधार पर पूँजी प्राप्त की है, जिसके कारण वे स्वय उद्योगो से ६% या ७% ब्याज लेने के लिये विवश हो जाते है, किन्तु यही अन्त नही है। उद्योग को ऋण लेने मे कुछ व्यय करना पडता है, जिसको मिलाकर कुल ब्याज लगभग ९-१०% पड जाता है।

राज्य अर्थ-प्रबन्धन निगम (संशोधन) अधिनियम सन् १९५६—

उपरोक्त कठिनाइयो के कारण राज्य निगमो को अधिक सफलता नही मिल रही थी। इन कठिनाइयो को दूर करने के उद्देश्य से सरकार ने अधिनियम मे सशोधन किया और ३० अगस्त सन् १९५६ को राज्य अर्थ-प्रबन्धन निगम (संशोधन) अधिनियम पास हो गया। इसके निम्न उद्देश्य थे :—

(१) पिछले वर्ष मे अनुभव की गई कठिनाइयो को दूर करना।

(२) जो राज्य वित्तीय निगम की स्थापना करने मे असमर्थ हैं उनके हित के लिए संयुक्त अर्थ-प्रबन्धक निगम की स्थापना करना।

(३) जिन लघु तथा कुटीर उद्योगो के पास प्रत्याभूति (Guarantee) देने के लिये उचित प्रतिभूतियाँ नही है उनको राज्य, सरकार, अनुसूचित बैंक अथवा सहकारी बैंक की प्रत्याभूति पर ऋण देना।

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया एक्ट, १९३४ को ३० अप्रेल सन् १९६० मे सशोधन किया गया है। इस सशोधन के अनुसार रिजर्व बैंक, स्टेट फाइनान्स कॉर्पोरेशन् को को केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकारो की प्रतिभूति (Security) पर ऋण अथवा अग्रिम १८ मास तक की अवधि के लिए दे सकती है। स्वीकृत की गई ऋण अथवा अग्रिम की कुल धनराशि किसी भी समय निगम की चुकता पूँजी के ६०% से अधिक नही होगी।*

---

* *Reserve Bank of India Bullatin* June 1960, p. 822.

STANDARD QUESTIONS

1 How far do you think the estal lishment of the Industrial Finan e Corporation has beer able t remove the draw backs of Indian industrial finance and has helped in the growth of large scale industries in the Indian U ion? Examine critically in the light of its working for the last year

2 Review the working of State Finance C rporations during the past few years and offer suggestions for their better working

— — —

अध्याय ४०

अन्य विशिष्ट अर्थ-संस्थायें

(Other Special Finance Institution)

(I) राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम

(National Industrial Development Corporation)

स्थापना—

राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (N I D C) की स्थापना २० अक्टूबर सन् १९५४ को एक करोड रुपये की दत्त पूँजी से की गई है। यह समस्त पूँजी भारत सरकार द्वारा प्रदान की गई है। राष्ट्रीय औद्योगिक निगम पूर्णतया राजकीय सस्था है। इसका पूर्ण स्वामित्व तथा नियन्त्रण सरकार के हाथो मे है। इस निगम की स्थापना देश म शीघ्रातिशीघ्र औद्योगीकरण करने के उद्देश्य से की गई है। उपभोक्ता उद्योगो के क्षेत्र मे निजी साहस थोडी सी ही बाहरी सहायता से सम्पूर्ण देश की आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता किन्तु जहाँ तक आधारभूत व तालिका उद्योगो की स्थापना व विकास का प्रश्न है निजी क्षेत्र के लिए यह अत्यन्त दुलभ काम है। अत सरकार को इस क्षेत्र मे स्वय अगुआ बनना पडगा।

उदगम्—

राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम की स्थापना की बात तत्कालीन व्यापार एवं उद्योगमन्त्री श्री० टी० टी० कृष्णमाचारी के मस्तिष्क मे आई थी। अक्टूबर सन् १९५३ मे योजना आयोग के उप-अध्यक्ष श्री वी० टी० कृष्णमाचारी ने राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक मे इस बात की घोषणा की थी कि पंच वर्षीय योजना के एक अंग के रूप मे एक औद्योगिक विकास निगम की स्थापना की जायगी। इस निगम का मुख्य उद्देश्य अन्य निगमो की भाँति उद्योगो का अर्थ-प्रबन्धन करके, उनके विकास एव स्थापना के साधनो को जुटाना होगा। निजी साहस को यद्यपि करने मे अधिक सफलता मिलने की आशा नही है, परन्तु वह अपने विनियोगो, अनुभव एव योग्यता के द्वारा सहायता पहुँचा सकता है। यह निगम अपने उद्देश्य की पूर्ति मे निजी साहस को सहर्ष स्वीकार करेगा और उसका सदुपयोग करेगा।

पूँजी—

'राष्ट्रीय औद्योगिक विकास' निगम की पूँजी १ करोड रुपया है, किन्तु प्रारम्भिक अवस्था मे केवल १० लाख रुपये की दत्त पूँजी होगी, जो सरकार देगी। इस निगम का रजिस्ट्रेशन भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तगत किया गया है। इस निगम को जो अतिरिक्त राशि की आवश्यकता होगी वह केन्द्रीय सरकार निम्न रीति से प्रदान करेगी :—

(१) औद्योगिक योजनाओ के अध्ययन, अनुसन्धान एव औद्योगिक निर्माण के लिए तथा ऐसी ही अन्य औद्योगिक योजनाओ की पूर्ति के लिए देश मे आवश्यक तान्त्रिक एव शासकीय कर्मचारियो का दल तैयार करने के लिए वार्षिक अनुदान द्वारा। अनुदान की इस राशि का आयोजन वार्षिक बजट मे किया जायगा।

(२) औद्योगिक विकास निगम की प्रस्तावित औद्योगिक योजनाओ की पूर्ति के लिए आवश्यकता के समय देकर।

प्रबन्ध—

औद्योगिक विकास निगम का प्रबन्ध एक सचालक सभा द्वारा होगा, जिसमें २० सदस्य है। वाणिज्य एव उद्योगमन्त्री इसके सभापति हैं। इन सचालको को केन्द्रीय सरकार ने मनोनीत किया है। औद्योगिक अनुभव तथा तान्त्रिक एव इन्जीनियरी कार्यक्षमता की दृष्टि से सचालक सभा मे १० उद्योगपति, ५ अधिकारी तथा ४ इन्जीनियर है।

उद्देश्य—

(१) राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम का प्रमुख उद्देश्य देश की औद्योगिक उन्नति के लिए आवश्यक मशीनरी एव यन्त्र प्रदान करना तथा आधार-भूत उद्योगो का प्रवर्तन एव उनकी स्थापना करना।

(२) देश के औद्योगिक विकास मे सहायक वर्तमान व्यक्तिगत उद्योगो को

तान्त्रिक एव इञ्जीनियरिंग सेवाओ की सुविधा देना तथा यदि आवश्यक हो तो पूँजी देना।

(३) व्यक्तिगत उपक्रमियो को सरकार द्वारा स्वीकृत औद्योगिक योजनाओ की पूर्ति के लिए आवश्यक तान्त्रिक, इन्जीनियरिंग, आर्थिक अथवा अन्य सुविधाय प्रदान करना।

(४) प्रस्तावित औद्योगिक योजनाओ की पूर्ति के लिए आवश्यक अध्ययन करना, उनको तान्त्रिक, इन्जीनियरिंग तथा अन्य सुविधायें प्रदान करना तथा उनकी पूर्ति के लिए धन देना।

इस प्रकार राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम का उद्देश्य लाभार्जन न होते हुए देश के सुदृढ औद्योगिक कलेवर के निर्माण मे सरकार के एजेन्ट के रूप मे कार्य करना है, ताकि जल्दी से देश का औद्योगिक विकास हो सके।

इस उद्देश्य से निगम के बोर्ड ने २३ अक्टूबर सन् १९५४ को हुई अपनी पहली मीटिंग मे उद्योगो की अस्थायी सूची तैयार की, जिसके अध्ययन से निगम को इस बात का पता लग जाय कि नया औद्योगिक विकास किस सीमा तक आवश्यक है और विद्यमान उद्योगो को किस सीमा तक बढाना चाहिये ? चुने गये उद्योग इस प्रकार हैं :—

(१) कुछ उद्योगो के लिये (जैसे—जूट, कपास, वस्त्र, चीनी, कागज, सीमेंट रासायनिक, छपाई, खान, निर्माण एव यान्त्रिक आवागमन आदि उद्योग) मशीनरी और साज सज्जा (Machinery and Equipment) का निर्माण।

(२) लोह मिश्रण और मैंगनीज फेरोक्रीम।

(३) अल्मूनियम।

(४) तांबा, जस्ता और अलोह धातुयें।

(५) डीजल इंजिन और जेनेरेटर।

(६) भारी रासायनिक द्रव्य।

(७) खाद और उर्वरक।

(८) कोयले और कोलतार का सामान।

(९) मेथानोल, फौरमेलडिहाइड।

(१०) काजल।

(११) कागज, अखबारी कागज आदि बनाने के लिए लकडी की लुगदी।

(१२) कृत्रिम दवाये, विटामिन और हारमोन।

(१३) एक्सरे और डाक्टरी औजार आदि।

(१४) हाइबोर्ड और इन्सूलेशन बोर्ड आदि।

लेकिन यह स्पष्ट है कि मशीनरी और साज-सज्जा के निर्माण पर काफी जोर दिया गया है, क्योकि अगले कुछ वर्षो मे औद्योगिक विकास के विशाल कार्यक्रम पूरे

करने पडेगे। स्थूल मशीनरी एवं उद्योग की स्थापना के अलावा निगम कुछ विद्यमान उद्योगो को उनके विशाल पैमाने पर उनके विकास के हेतु भी सहायता करेगा। उदाहरण के लिए, भारत सरकार देश मे ३० नये चीनी मिल स्थापित करके चीनी का उत्पादन १२ लाख टन से बढाकर १८ लाख टन करने का विचार कर रही है, अतः नये चीनी कारखानो की स्थापना के लिए उदारतापूर्वक लाइसेन्स दिये जा रहे हैं। सूती वस्त्र उद्योग की क्षमता मे भी १०० बुनाई मिलो के बराबर वृद्धि करना आवश्यक है। सीमेंट का उत्पादन भी सन् १९६१ तक ४'५ मिलियन टन से १० मिलियन टन तक बढाना चाहिए, अतः निगम इन क्षेत्रो मे अतिरिक्त इकाइयाँ स्थापित करना चाहता है।

कुछ उद्योगो मे, जहा प्राइवेट और पब्लिक प्रयत्नो द्वारा कुछ उन्नति दिखाई गई, जैसे—अल्यूमीनियम और फर्टिलाइजर उद्योगो मे, निगम कोई हस्तक्षेप नही करेगा। वह केवल तब ही सामने आवेगा जब अधिक सहायता या कार्य की आवश्यकता हो। फेरोमेगनीज उद्योगो म भी यदि प्राइवेट प्रयत्न द्वारा प्रस्तावित और सरकार द्वारा स्वीकृत योजनाये पूरी हो जाती हैं तो निगम कोई हस्तक्षेप नही करेगा। हाँ, क्षेप्य पदार्थो के उपयोग और कच्चे माल के विकास म काफी टैक्नीकल छानबीन तथा सहायता की आवश्यकता है, अतः निगम ने अपने उद्योगो की सूची मे रेयोन, कागज, अखबारी कागज आदि के उत्पादन मे काम आने वाले कोयला, कोलतार, लकडी की लुग्दी आदि शामिल कर लिये हैं। इस कार्य के लिए एक जर्मन विशेषज्ञ भी आमन्त्रित किया गया है।

निगम के बोर्ड ने अनुभव किया है कि देश के शीघ्र औद्योगीकरण के लिए सबसे पहली बात उद्योगो को ठोस टैक्नीकल सहायता प्रदान करना है, अत. उसने परामर्शदाता इञ्जीनियरो की एक संस्था स्थापित करने पर जोर दिया है। योग्य कार्यकर्ताओ का देश मे मिलना कठिन होने के कारण उसने यह सुझाव दिया कि प्रारम्भिक अवस्था मे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त किसी फर्म को भारत मे अपना कार्यालय खोलने के लिए आमन्त्रित किया जाय और यदि आवश्यक हो तो उसे कुछ फीस भी दी जाय। इस फर्म की सेवायें प्राइवेट उद्योगो के लिए भी सुलभ की जावेंगी। इसके अतिरिक्त बोर्ड ने यह भी निश्चय किया है कि व्यापक अनुभव वाले ३ या ४ इञ्जीनियर भी रखे जावें, जो निगम को उसके सामने आने वाली टेक्नीकल समस्याओ को हल करने और निगम द्वारा कार्यान्वित की जाने वाली विशिष्ट योजनाओ की रूपरेखा तैयार करने के लिए उपयुक्त सलाह देंगे। इन प्रारम्भिक निर्णयो मे यह प्रगट होता है कि निगम का दृष्टिकोण बडा व्यावहारिक है और वह अपने कार्यो को वास्तविक रूप से हल करना चाहता है।

निगम की क्रियाएं—

औद्योगिक विकास निगम की सचालक सभा की प्रथम बैठक सितम्बर सन् १९५५ म हुई। इस बैठक मे कुछ औद्योगिक विकास की योजनाएँ स्वीकृत की गई

तथा उन योजनाओं का पर्यवेक्षण भी प्रारम्भ कर दिया गया। निगम ने भारतीय जूट उद्योग के पुनर्स्थापन तथा आधुनीकरण के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए आवश्यक साधन जुटाने का निश्चय भी कर लिया। इसने एक समिति, जिसके सदस्य अधिकतर उद्योगों से सम्बन्धित थे, की स्थापना की और निश्चय किया कि इस समिति की सिफारिशों के आधार पर स्वीकृत मिलों को केवल ४॥% ब्याज पर दीर्घकालीन ऋण दिया जायगा।

जूट उद्योग की सात मिलों को आधुनीकरण के लिए राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम ने १·३६ करोड रुपए का ऋण दे दिया है और ८ अन्य मिलों के लिए १·५८ रुपये का ऋण निगम के विचाराधीन है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि उपरोक्त ऋणों के द्वारा तथा जूट उद्योग के आन्तरिक साधनों के द्वारा सम्पूर्ण जूट उद्योग की लगभग आधी पुरानी मशीनों का आधुनीकरण हो जायगा।*

निगम ने कुछ अन्य उद्योगों की स्थापना करने का भी निश्चय किया है। ये उद्योग स्टील फाउण्ड्रीज फोर्जेज, प्रिंटिंग मशीनरी, एयर कम्प्रेसर्स (Air Compressors), कागज की लुग्दी, कार्बन इत्यादि है।

निगम के संचालकों ने २३ मार्च सन् १९५८ को दिल्ली में हुई बैठक में सरकार के सम्मुख कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव रखे। इन सुझावों में से एक सुझाव 'सिन्थेटिक रबड़ प्लांट', (Synthetic Rubber Plant) के सम्बन्ध में भी था। निगम ने भारतीय सरकार के सामने तीन योजनाओं के पर्यवेक्षण कराने का सुझाव रखा। ये योजनाएँ निम्न चीजों के निर्माण से सम्बन्धित थी :—

(अ) औद्योगिक मशीनरी तथा प्लान्ट,

(ब) एल्यूमिनियम, तथा

(स) एलीमेन्टल फास्फोरस (Elemental Phosphorus)

निगम ने यह भी निश्चय किया है कि 'स्ट्रक्चरल-कम मशीनशाप' (Structural-Cum-Machineshop) भिलाई में तथा 'स्ट्रक्चरल शाप' दुर्गापुर में स्थापित किए जायँगे। निगम ने सूती वस्त्र उद्योग के पुनर्स्थापन तथा आधुनीकरण करने के सम्बन्ध में आर्थिक सहायता की समस्या पर विचार किया। संचालक सभा की एक समिति वस्त्र उद्योग से प्राप्त हुए आवेदन पत्रों पर विचार करने के लिए स्थापित की गई। यह उपसमिति टेक्सटाइल कमिश्नर' के कार्यालय के पर्यवेक्षण दल की सहायता से कार्य करेगी।

द्वितीय पंच-वर्षीय योजना में कार्य क्रम—

द्वितीय पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत निगम की क्रियाओं के लिए ५५ करोड रुपये की धनराशि का प्रावधान किया गया था। इस धनराशि का एक भाग (लगभग २० या २५ करोड रु०) सूती वस्त्र उद्योग तथा जूट उद्योग के आधुनीकरण की

---

* *Indian Finance*, August 2, 1958, p. 175.

योजनाओं को सफल बनाने मे खर्च किया गया। शेष धनराशि नवीन आधारभूत तथा मुख्य उद्योगो के निर्माण तथा प्रवर्तन मे व्यय की गई।

आलोचना--

राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम की तखमीना समिति की राय मे निगम से वित्तीय व्यवस्था का काम छीन लिया जाना चाहिए, जोकि उसका इस समय मुख्य कार्य है। समिति का कहना है कि यदि ऐसा हो जाय, तो निगम का विकास सम्बन्धी कार्य अन्य सस्थाएँ कर सकती है। इस दशा मे सिफारिश की गई है कि सरकार को विचार करना चाहिए कि निगम को बनाये रखना कहाँ तक उचित है। तखमीना समिति की '१२२वी 'रिपोर्ट आज लोकसभा मे रख दी गई। समिति की राय मे निगम निजी व सरकारी क्षेत्र मे उद्योगो का सन्तुलित विकास करने मे भी असमर्थ है। क्योकि हिन्दुस्तान स्टील, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स आदि उद्योग उसकी सहायता के बगैर ही स्थापित कर लिये गये और इसके अलावा उसके पास टैक्नीकल स्टाफ भी नही है।

(II) औद्योगिक ऋण एवं अर्थ निगम

(Industrial Credit and Finance Corporation)

यह एक विशुद्ध गैर सरकारी सस्था है, जिसकी स्थापना जनवरी सन् १९५५ मे २५ करोड रुपये की अधिकृत पूँजी से हुई है। इसका मुख्य उद्देश्य नये उद्योगो के प्रवर्तन को प्रोत्साहित करना, विद्यमान उद्योगो का विस्तार तथा आधुनिकीकरण करना एव तान्त्रिक तथा प्रबन्ध सम्बन्धी सहायता देना है, जिससे राष्ट्रीय उत्पादन 'दिन दूनी रात चौगुनी' उन्नति करे और रोजगार के अवसरो की वृद्धि हो।

उद्गम--

सन् १९५३ मे भारत सरकार तथा विश्व बैंक द्वारा नियुक्त तीन व्यक्तियो के मण्डल ने इङ्गलैण्ड के औद्योगिक तथा व्यापारिक वित्त निगम के आधार पर उपरोक्त निगम को स्थापित करने का निश्चय किया था, क्योकि भारतीय औद्योगिक अर्थ निगम अर्द्ध सरकारी होने के कारण उद्योगो की दीर्घकालीन आवश्यकताओ की पूर्ति उतनी कुशलता से नही कर सका जैसी कि इसको करना चाहिये था। फरवरी सन् १९५४ मे विश्व बैंक का एक प्रतिनिधि एव अमेरिका के वित्त निगमो के दो प्रतिनिधि भारतवर्ष मे आये। निगम की स्थापना के ध्येय से भारत सरकार के प्रतिनिधियो तथा बम्बई, मद्रास, कलकत्ता तथा दिल्ली के उद्योगपतियो की सलाह से, 'स्टीयरिंग समिति' नियुक्त की गई। इस समिति मे ५ सदस्य थे, जिनमे से २ सदस्य सयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा सयुक्त राज्य विदेशी विनियोक्ताओ तथा विश्व बैंक की सहायता प्राप्त करने के लिये गये। इन प्रयत्नो के फलस्वरूप निगम का रजिस्ट्रेशन जनवरी सन् १९५५ मे भारतीय कम्पनी अधिनियम (Indian Compnets Act) के अन्तर्गत हुआ। इसका प्रमुख कार्यालय बम्बई मे है।

पूंजी का ढांचा—

निगम की अधिकृत पूंजी २५ करोड रु० है, जो सौ-सौ रुपये के ५ लाख साधारण अंशो तथा सौ-सौ रुपये के २० लाख अवर्गीय अंशो (Unclassified Shares) मे विभाजित है। निगम की चुकता पूंजी ५ करोड रुपये है, जो सौ-सौ रुपये वाले ५ लाख साधारण अंशो मे विभाजित है। अंशो का निर्गमन सम मूल्य पर किया गया और उनके धारियो को प्रति अंश पर एक मत (वोट) देने का अधिकार है। निर्गमित पूंजी का क्रय विभिन्न संस्थाओ के द्वारा इस प्रकार किया गया है :—

(१)	भारतीय बैंक, बीमा कम्पनियाँ तथा विनियोक्ता वर्ग आदि	३½ करोड रु०
(२)	ब्रिटिश इस्टर्न एक्सचेज बैंक तथा अन्य औद्योगिक संगठन आदि	१ करोड रु०
(३)	अमरीकी विनियोक्ता-गण	५० लाख रु०
	योग	५ करोड रुपये

अमेरिकन विनियोक्तागणो मे 'रोकफेलर ब्रदर्स' 'वेस्टिंग हाउस', 'इलेक्ट्रीकल इन्टरनेशनल कम्पनी' तथा 'मेसर्स आलिन मैथीसन केमिकल कॉरपोरेशन' सम्मिलित है।

भारत सरकार ने निगम को ७½ करोड रुपये का ऋण बिना ब्याज के दिया है, जिसका भुगतान १५ वार्षिक किस्तो मे ऋण देने की तिथि के १५ वर्ष पश्चात होगा। विश्व बैंक ने भी निगम को समय समय पर विविध मुद्राओ मे १० मि० डालर के बराबर ऋण देना स्वीकार किया है। ऋण के मूलधन, ब्याज तथा अन्य व्ययो की गारन्टी भारत सरकार ने मार्च सन् १९५५ मे दी है। ऋण की अवधि ५ वर्ष तथा ब्याज की दर ४¾% है। जीवन बीमा के राष्ट्रीयकृत हो जाने के कारण भारतीय सरकार के स्वामित्व व अधिकार मे पूंजी का लगभग १८% भाग आ गया है। परन्तु सरकार इसका दुरुपयोग नही करना चाहती है।

उद्देश्य—

औद्योगिक ऋण एवं अर्थ निगम का प्रमुख उद्देश्य व्यक्तिगत क्षेत्रो के औद्योगिक उपक्रमो को सहायता प्रदान करना है। यह सहायता निम्न रीति से दी जावेगी :—

(१) ऐसे उपक्रमो के निर्माण, विस्तार एवं आधुनिकीकरण मे आर्थिक सहायता देना।

(२) ऐसे उपक्रमो मे देशी एवं विदेशी व्यक्तिगत पूंजी के विनियोग को प्रोत्साहन देना।

(३) विनियोग विपणि को विस्तृत करना एवं औद्योगिक विनियोगो के व्यक्तिगत स्वामित्व को प्रोत्साहित करना।

(४) व्यक्तिगत उपक्रमियो को मध्यकालीन एव दीर्घकालीन आर्थिक सुविधायें देना अथवा उनके निर्गमित साधारण अशो को खरीद कर आर्थिक सुविधायें देना।

(५) नई कम्पनियो के अशो एव प्रतिभूतियो का अभिगोपन करना।

(६) व्यक्तिगत उपक्रमो के लिए व्यक्तिगत विनियोग स्रोतो से प्राप्त ऋणो की जमानत देना।

(७) चक्रित विनियोग द्वारा पुन विनियोग के लिये व्यक्तिगत उपक्रमो को राशि प्रदान करना।

(८) व्यक्तिगत उपक्रमो को प्रबन्ध सम्बन्धी तांत्रिक एव शासकीय सलाह देना एव उनके उद्योगो को इस हेतु आवश्यक विशेषज्ञ प्रदान करना।

प्रबन्ध—

इस निगम का प्रबन्ध सचालक सभा द्वारा होगा, जिसमे ११ सदस्य तथा १ जनरल मैनेजर होगा। इन सचालको मे ७ भारतीय, २ ब्रिटिश, १ अमरीकी तथा १ सचालक वाणिज्य एव उद्योग मन्त्रालय की ओर से है। इसके जनरल मैनेजर बैंक ऑफ इङ्गलैण्ड के प्रमुख कोषाध्यक्ष पी० एस० बील हैं तथा चेयरमैन श्री रामास्वामी मुदालियर है।

भारत सरकार ने कम्पनी को ७½ करोड रुपये की राशि देना स्वीकार कर लिया है, जिस पर कोई ब्याज न होगा। यह राशि कम्पनी को धन मिलने की तिथि से १५ वर्ष बीत जाने के बाद से शुरू होने वाली १५ वार्षिक किश्तो मे चुकाई जावेगी। सरकार को एक सचालक नामाकित करने का अधिकार है। विश्व बैंक ने कम्पनी को समय समय पर विभिन्न मुद्राओ मे १ करोड डालर की राशि उधार देना स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार निगम को १७½ करोड रुपये की कार्यशील पूँजी मिल गई है। यह भी आशा है कि इस निगम के माध्यम से विदेशी पूँजी या ऋणो के रूप मे मदद मिलेगी और कुछ ही समय मे निगम के पास ५० करोड रुपये हो जायेंगे।

निगम के अशधारी दूर-दूर तक फैले हुये है और इसके कार्यो तथा पूँजी नियोजन के अन्तर्गत छोटे बडे सब तरह के उद्योग धन्धे आ जायेंगे। निगम दीर्घकालीन और मध्यकालीन ऋण देगा, अश पूँजी मे भाग लगा और प्रतिभूतियो के नये निगमन का अभिगोपन करेगा। निगम का प्रारम्भिक धन और वह धन जो इसको विश्व बैंक से मिलता है, यदि विवेक से काम मे लाया जाय तो वह देश मे व्यक्तिगत पूँजी बाजार के साधनो को और भी बढा सकता है तथा भविष्य मे उपलब्ध सरकारी तथा अर्द्ध सरकारी सुविधाओ को प्रोत्साहित कर सकता है।

निगम के कार्य और उनकी आलोचना—

सन् १९५६ के अन्त मे कम्पनी ने २४ योजनाओ के सम्बन्ध मे सहायता देना

स्वीकार किया था और शेष विचाराधीन थी। बाद मे कुछ और योजनायें स्वीकृत गई। इस प्रकार कुल २८ योजनाओ के लिए ८ करोड से अधिक रुपया स्वीकृत जा चुका है। निगम के लिए यह कोई बडी सफलता नही कही जा सकती। यह दोष बताया जाता है कि निगम का कार्य बहुत धीमा है और अपनी ऋण एव विनि नीति मे वह अत्यधिक कृपणता से काम ले रहा है।

इस सम्बन्ध म कम्पनी की द्वितीय वार्षिक व्यापक सभा म, जोकि २२ सन् १६५७ को बम्बई मे हुई, अध्यक्ष पद से अपन भाषण म श्री रामास्वामी मुद यर ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। उन्होने बताया है कि निगम के विरुद्ध आक्षेपो जांच कराई गई है और वे सही नही लगे। उन्होने बताया कि कम्पनी को प्रारम्भ अभी थोडा समय हुआ है, अत सगठित होने व अनुभव प्राप्त करने मे कुछ स लगना अनिवार्य है। ऐसा ही कारोबार करने वाली भारत और विदेशो की अन्य क नियो का भी रिकार्ड उनकी प्रारम्भिक अवस्थाओ म बहुत कुछ इस निगम के ही स था। फिर निगम का कार्य क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है। वह कुछ ऐसे कार्यों को भी रहा है, जो कि अन्य कम्पनियो ने भारत मे नही किये। निगम कोई पूर्णत ऋ देने वाली कम्पनी मात्र नही है, जिसका सम्बन्ध केवल उस प्रतिभूति से हो जोकि ब मे उसे दी जा रही है। इसने अंशो के अभिगोपन का कार्य भी किया और वस्तुत कम्पनियो की अंश पूँजी म भाग लिया है। इस सबके लिए यह स्वाभाविक है कम्पनी द्वारा प्रस्तुत किए गये आवेदन-पत्रो की निकट से जांच की जाय।

श्री मुदालियर ने कहा कि कम्पनी के पास न केवल अंशधारियो का, अ सरकार का भी काफी धन ऋण के रूप म है। कम्पनी के उद्देश्य स्पष्ट रूप से सी बद्ध कर दिए गए है और इन्ह अति सावधानी से ही पूरा किया जा सकता है। निश्च ही ऐसे उद्देश्यो की पूर्ति मे कुछ खतरा तो लेना ही पडेगा, परन्तु यह खतरा अ होकर नही लेना चाहिए, सोच समझ कर उठाना है। कुछ उद्योगपतियो को इस ब की शिकायत है कि प्रस्तावो पर व्यर्थ इतना सोच विचार किया जाता है। वे ऐसा सकते है, क्योकि उन्होने योजनाओ की अपने सन्तोष के लिए परीक्षा कर ली है, पर इससे यह तो नही कहा जा सकता कि निगम जाँच न करे या ढिलाई बरते। य निगम ऐसा करे तो वह अपने कर्त्तव्यपालन मे त्रुटि का दोषी होगा।

निगम के विरुद्ध यह आरोप लगाया जाता है कि वह विश्व बैंक द्वारा दि गये १० मिलियन डालर के ऋण का उपयोग करने मे असफल रहा है। इस सम्ब मे श्री मुदालियर ने बताया कि कम्पनी स्वय यह चाहती थी कि इसका प्रयोग किय जाये, परन्तु दुर्भाग्य से कम्पनी के पास विदेशी मुद्रा की सुविधा देने के लिए एक आवेदन पत्र नही आया, क्योकि औद्योगिको और प्रवर्तको को सामान्य ढङ्ग से पर्याप्त विदेशी मुद्रा प्राप्त हो जाती थी अत ऐसी स्थिति मे विश्व बैंक से सहायत लेने का प्रश्न नही उठा। कम्पनी बेकार मे ही क्या एक साधन से हाथ धोये। ह

अब विदेशी मुद्रा का अभाव अनुभव किया जा रहा है और विदेशी मुद्रा के ऋणो के आवेदन भी आने लगे हैं।

कम्पनी की स्थापना प्राइवेट क्षेत्र मे उद्योगो के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए की गई है, किन्तु श्री मुदालियर ने कहा कि सन् १६५४ से प्राइवेट क्षेत्र की स्थिति बिगड गई है। यदि प्राइवेट क्षेत्र मे नये उद्योग स्थापित करना है और पुरानो का विस्तार एव आधुनिकीकरण करना है तो यह आवश्यक था कि इस क्षेत्र मे विनियोग करने वाली जनता को धक्का न पहुँचे। दुर्भाग्य से अभी हाल मे ऊँचे कर लगा दिये गये है। आय-कर, कॉरपोरेशन टैक्स और सुपर टैक्स मे वृद्धि हो गई है, पूँजी लाभ पर कर लग गया है और पिछले एव चालू लाभो के सम्बन्ध मे डिपोजिट सिस्टम चालू कर दिया गया है। इन सबका प्राइवेट क्षेत्र के विकास पर बुरा प्रभाव पडा है। जो थोडा बहुत विकास आज प्राइवेट क्षेत्र मे दिखाई पड रहा है वह पूव योजनओ का परिणाम है। नई योजनाओ पर तो बडा कुठाराघात हुआ है। निश्चय ही सरकार को कुछ अधिक आमदनी हो गई है। वह पब्लिक क्षेत्र मे अधिक विकास कर सकती है, लेकिन दूसरी ओर प्राइवेट क्षेत्र का विकास खतरे मे पड गया है और भारतीय एव विदेशी, दोनो ही पूँजियो का अभाव हो गया है। सम्भवत, इसलिए सरकार ने अभी हाल मे विदेशी पूँजी को कुछ अधिक सुविधाये दी है। यह इस बात का प्रमाण है कि सरकार कर नीति के परिणामो को समझ रही है।

निगम के प्रारम्भ सन् १६५५ से लेकर सन् १६५६ के अन्त तक ५६ कम्पनियो के लिये स्वीकृत की गई वित्तीय सहायता २०'४० करोड रुपये थी। सन् १६५८, सन् १६५७ और सन् १६५६ के अन्त तक यही सहायता क्रमशः १३ ३७ करोड रुपये, ११ ६५ करोड रुपये तथा ६'०१ करोड रुपये थी और कम्पनियो की सख्या क्रमशः ४४, २८ तथा ११ थी।

सन् १६५६ के अन्त तक स्वीकृत किए गये २०'४० करोड रुपये म मे १०'२४ करोड रुपये (लगभग ५०%) ऋण और गार टी के रूप मे थे। ८'३० करोड रुपये साधारण तथा पूर्वाधिकारी अशो के अभिगोपन (Under writing) कार्य के लिए थे। शेष १'८६ करोड रुपये साधारण तथा पूर्वाधिकार अशो का क्रय करके दिये गये।

निगम ने अपनी क्रियाओ मे और अधिक प्रसार किया है और पहली बार सन् १६५८ मे विदेशी मुद्रा मे ऋणो को बाँटा है। सन् १६५६ के अन्त तक स्वीकृत किए गए ऋणो मे से ६'७४ करोड रुपये (कुल ऋण का ६६%) विदेशी मुद्रा मे तथा ३ ५५ करोड रुपये (कुल का ३४%) के ऋण देशी मुद्रा मे दिये गये।

कॉरपोरेशन की कुल आय सन् १६५६ मे ५७ लाख रुपये थी। यही आय सन् १६५८, १६५७ और १६५६ मे क्रमशः ५७ लाख, ५४ लाख और ४७ लाख रुपये थी। सस्थापन तथा अन्य व्यय (७'२६ लाख रुपये) तथा करो के लिये प्रावधान (२२ ४३ लाख रुपये) करने के पश्चात् कॉरपोरेशन को २८'३३ लाख रुपये का शुद्ध

लाभ (Net Profit) हुआ, जो कि पिछले वर्ष (२५·२२ लाख रुपये) की अपेक्षा मे ३ ५१ लाख रुपये अधिक था।*

(III) राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम प्राइवेट लिमिटेड

(National Small Industries Corporation Private Limited)

स्थापना—

सरकारी आदेशो की पूर्ति के लिए लघु उद्योगो के उत्पादन का सगठन करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने लघु उद्योगो के लिए एक निगम की स्थापना की है। निगम एक प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के रूप मे रजिस्टर्ड कराया गया है।

निगम की पूंजी—

निगम की स्थापना २० लाख रुपये की अधिकृत पूंजी से निजी सीमित कम्पनी के रूप मे हुई है। इसे केन्द्रीय सरकार से आवश्यकतानुसार अतिरिक्त आर्थिक सहायता मिलती रहेगी। इसका प्रधान कार्यालय दिल्ली मे रखा गया है।

निगम के उद्देश्य—

(१) केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो के समय समय पर निकलने वाले सप्लाई सम्बन्धी टेन्डरो को दिलाना।

(२) निगम उन उद्योगो की तान्त्रिक एव आर्थिक सहायता करेगा जो कि केन्द्रीय एव राज्य सरकारो की आवश्यकता का सामान तैयार करते है, ताकि उनका उत्पादन प्रमाप के अनुसार हो।

(३) निगम का मुख्य कर्त्तव्य लघु एव विशाल उद्योगो के बीच सामजस्य लाना भी है, ताकि लघु उद्योग विशाल उद्योगो के पूरक बन सकें। यह आशा भी की जाती है कि निगम द्वारा छोटे उद्योगो को बडे उद्योगो से छोटे मोटे पुर्जो के लिए आदेश प्राप्त हो जाया करेगे।

निगम की क्रियायें—

निगम ने राज्य सरकारो की सिफारिश पर 'डाइरेक्टर जनरल ऑफ सप्लाइज एण्ड डिस्पोजल्स' की आवश्यकता पूर्ति के लिए अपने द्वारा रजिस्टर्ड लघु उद्योगो को आदेश दिये हैं। प्रारम्भ मे २०० वस्तुओ से अधिक के आदेश कुटीर तथा उद्योगो के लिए सुरक्षित किए गये थे। सन् १९५५-५६ मे निगम ने छोटे उद्योगो के लिए ४,६८,५९५ रु० के आदेश प्राप्त किए।

निगम ने तीन 'चल विक्रय गाडियाँ' दिल्ली क्षेत्र मे ३०० वस्तुओ का क्रय करने के लिए चालू कर दी हैं। इसके अतिरिक्त आगरा के लघु उद्योगों द्वारा निर्मित जूतो का विक्रय करने के लिए आगरा मे एक होल सेल डिपो भी खोला गया है। इसी प्रकार अलीगढ के तालो और खुर्जा की पॉटरीज के लिए अलीगढ मे एक होल-सेल डिपो

* Reserve Bank of India Bulletin, April 1960

खोली जा रही है। लघु उद्योगो को मशीने भी किराया खरीद आधार पर सप्लाई करने की व्यवस्था की जा रही है।

निगम की क्रियाओ को और विस्तृत करने के लिए चार और शाखायें, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास और दिल्ली मे खोली जायगी। सब राज्यो मे कार्यक्रम प्रसारित करने के उद्देश्य से 'उद्योग सेवा सस्थाओ' की सख्या ४ से बढाकर २० कर दी जावेगी।

प्रथम पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत कुटीर एव लघु उद्योगो पर कुल व्यय इस प्रकार किया गया है, जिसका ब्यौरा निम्न प्रकार है :—

सन् १९५१-५६

विवरण	करोड रुपये
हाथ कर्घा	११·१
खादी	७·४
ग्राम उद्योग	४ १
लघु उद्योग	५·३
हस्त शिल्प	१ ०
सिल्क एव सेरीकल्चर	१·३
योग	३० २ करोड रुपये

द्वितीय पच वर्षीय योजना के अन्तर्गत लघु उद्योगो के विकास के लिये २०० करोड रुपये की व्यवस्था की गई है। इसका ब्यौरा निम्न प्रकार है :—

(१) हाथ कर्घा	५९·५ करोड रुपये
(२) खादी	१६ ७ ,, ,,
(३) ग्राम उद्योग	३८·८ ,, ,,
(४) दस्तकारियाँ	९·० ,, ,,
(५) लघु उद्योग	५५·० ,, ,,
(६) अन्य उद्योग	६·० ,, ,,
(७) सामान्य योजनाये, प्रशासन, शोध आदि	१५·० ,, ,,
	२०० ० करोड रुपये

तृतीय पच-वर्षीय योजना मे ५८९ करोड रुपये कुटीर, लघु एवं मध्यम वर्ग के उद्योगो के विकास के हेतु आवटित किए गये हैं।

अभी हाल मे ही हमारी केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम के लिए १० मिलियन डालर की धन राशि प्राप्त करने के उद्देश्य से सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के 'विकास-ऋण कोष' (Development Loan Fund of U.S.) से एक अनुबन्ध किया है। इस राशि का प्रयोग मुख्यत. लघु उद्योगो के हितार्थ मशीनरी को

आयात करने के लिए किया जाएगा। यह मशीनरी लघु उद्योगों को किराया खरीद के आधार पर प्रदान की जाएगी।*

(IV) अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम
(International Finance Corporation)

स्थापना—

निजी व्यवसाय को विशेष रूप से आर्थिक सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से जुलाई, सन् १९५६ में अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (International Finance Corporation) की स्थापना की गई। यह एक सार्वजनिक अन्तर्राष्ट्रीय सगठन है तथा इसको अनेक देशो का सहयोग प्राप्त है। इस अन्तर्राष्ट्रीय निगम के सदस्य केवल वे ही देश हो सकते है, जो विश्व बैंक के सदस्य हैं। आज तक ३२ देश इसके सदस्य हो चुके है।

उद्देश्य—

निगम का प्रमुख उद्देश्य वित्तीय सहायता द्वारा अपने सदस्य देशो की आर्थिक उन्नति करना है। निम्न ढङ्गो से यह निगम इस उद्देश्य की पूर्ति करेगा :—

(१) यदि पर्याप्त मात्रा व उचित शर्तों पर निजी पूँजी उपलब्ध नही हो रही है, तो उसकी व्यवस्था करना।

(२) विकास सम्बन्धी सुअवसरो, निजी पूँजी (देशी एव विदेशी) तथा कुशलता को एकत्रित करके निकास गृह (Clearing house) के रूप मे कार्य करना।

(३) देशी तथा विदेशी निजी पूँजी के उत्पादनशील विनियोग को प्रोत्साहित करना।

पूँजी—

इस निगम की अधिकृत पूँजी १०० मिलियन डालर है। प्रमुख देशो द्वारा, अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम की पूँजी, इस प्रकार क्रय की गई है :—

क्रम संख्या	देश	राशि (००० डालरो मे)
१.	सयुक्त राष्ट्र अमेरिका	३५ १६८
२	इङ्गलैन्ड	१४,४००
३	फ्रान्स	५,८१५
४	भारत	४,४३०
५.	जर्मनी	३,६५५
६.	कनाडा	३,६००
७.	जापान	२,७६८
८.	आस्ट्रेलिया	२ २१५
९.	पाकिस्तान	१,१०८
१०.	स्वीडन	१,१०८

* See Econ n ic Time 'd td 10 March, 19 1.

निगम को अपने बान्ड इत्यादि बेचकर रुपये जुटाने का अधिकार है, किन्तु सम्भवतः प्रारम्भिक वर्षों मे इस अधिकार का प्रयोग नहीं किया जाएगा, अत. विनियोग के लिए उपलब्ध कोष इसकी प्रार्थित पूँजी तक ही सीमित है।

निगम का प्रबन्ध—

निगम अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के साथ मिल कर काम करेगा, यद्यपि उसका एक पृथक वैधानिक अस्तित्व है और उसके कोष भी बैंक से बिल्कुल पृथक है। जो सरकारें बैंक की सदस्य है वे ही निगम की सदस्य बन सकती है। बैंक के ये एक्जीक्यूटिव डाइरेक्टर जो कम से कम एक सरकार का प्रतिनिधित्व करते हैं, निगम के डाइरेक्टर का भी काम करेंगे। बैंक का प्रेसीडेन्ट इस बोर्ड का चेयरमैन होगा। निगम का प्रेसीडेण्ट बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स द्वारा चेयरमैन की सिफारिश पर नियुक्त किया जाता है और निगम का अपना स्टॉफ है।

विनियोग-प्रस्ताव की स्वीकृति के लिए योग्यता-गुण—

(१) निगम विनियोग सम्बन्धी उन्ही प्रस्तावो पर विचार करेगा जिनका उद्देश्य किसी उत्पादक प्राइवेट उपक्रम (Productive Private Enterprise) की स्थापना, विस्तार या सुधार करना है।

(२) निगम से वित्तीय सहायता पाने वाले उपक्रम किसी सदस्य देश मे ही स्थापित होने चाहिए। प्रारम्भिक वर्षों मे निगम केवल अविकसित देशो के विषय मे ही अपना ध्यान केन्द्रित करेगा।

(३) निगम यह आशा करता है कि प्राइवेट विनियोग भी आवश्यक पूँजी का कम से कम आधा होगा। वस्तुत. निगम वित्तीय सहायता के लिए तभी हाथ बढ़एगा जबकि प्राइवेट विनियोग यथासम्भव पूँजी दे चुके हो और शेष पूँजी समुचित शर्तों पर प्राप्त करना असम्भव हो।

(४) प्रारम्भिक वर्षों मे निगम ऐसे ही विनियोग प्रस्तावो पर विचार करेगा :—

(i) जिनमे उपक्रम का नया विनियोग कम से कम पाँच लाख अमेरीकन डालर हो, और

(ii) निगम से कम से कम १,००,००० डालर की सहायता माँगी गई हो।

(५) सहायता की अधिकतम मात्रा तो अभी निर्धारित नही की गई, किन्तु सामान्य नीति यह होगी कि इने गिने उपक्रमो मे बडी राशियां लगाने की अपेक्षा पर्याप्त सख्या मे समुचित मात्रा के विनियोग किये जायें।

(६) यो तो कार्पोरेशन से औद्योगिक, कृषि, वित्तीय, व्यापारिक एव अन्य प्राइवेट उपक्रम सभी सहायता ले सकते है, बशर्ते उनका कार्य उत्पादन से सम्बन्ध रखता है, तथापि प्रारम्भिक वर्षों मे कारपोरेशन उन्ही उपक्रमो को चुनेगा जो कि औद्योगिक प्रकृति के हो। वह गृह-निर्माण, अस्पताल, स्कूल आदि सामाजिक उपक्रमों

या सार्वजनिक उपयोगिता के उपक्रमो मे विनियोग नही करेगा। निगम किसी ऐसे वित्त प्रबन्ध मे भी भाग न लेगा जो कि पुनर्प्रबन्धन (re-financing) के लिये हैं।

(७) निगम केवल प्राइवेट उपक्रमो को सहायता देगा, सरकारी उपक्रमो को नही। किसी उपक्रम म सरकारी कोष लगे होने से ही वह निगम की सहायता से वंचित नही होगा, बशर्ते उसका स्वभाव एक प्राइवेट उपक्रम जैसा हो।

विभिन्न विचार-योग्य प्रस्तावो पर अंतिम निर्णय देते समय कॉरपोरेशन निम्न बातो का ध्यान रखेगा .—

(१) निगम की सहायता से अन्य विनियोगको द्वारा प्राइवेट पूंजी का विनियोग कितना बढ जायेगा ?

(२) निगम व उसके सहयोगियो को विनियोग से लाभ की क्या सम्भावनायें है ?

(३) निगम के विनियोग करने से उत्पादन को कितना प्रोत्साहन मिलेगा।

वित्तीय प्रबन्ध के रूप एवं ढंग—

निगम को यह अधिकार है कि वह किसी भी रूप मे विनियोग करे, किन्तु केवल एक अपवाद यह रखा गया है कि वह पूंजी अंशो मे विनियोग नही कर सकता, अत निगम के विनियोग ऋण के समान होंगे, किन्तु साधारण ऋण की भाँति नही होंगे। कॉरपोरेशन अपना विनियोग निरन्तर बदलता रहना चाहता है, अतः प्रत्येक दशा म उसका प्रमुख उद्देश्य विनियोग के सम्बन्ध मे ऐसा अधिकार प्राप्त करना होगा कि ऋण को अंशो मे बदला जा सके। कारपोरेशन स्वय इस अधिकार का प्रयोग नही करेगा, किन्तु जिसे वह अपने ऋण बेच देगा वह ऐसा कर सकेगा। इस प्रकार निगम अपने सफल विनियोगो को लाभ पर बेच सकेगा। कॉरपोरेशन यह भी चाहेगा कि स्थाई ब्याज के अलावा उसे लाभो मे भी कुछ भाग दिया जाय, जिससे उपयुक्त क्रेता मिलने तक वह लाभ ग्रहण कर सके।

ब्याज की दर—

ब्याज की दर प्रत्येक दशा मे विशिष्ट परिस्थितियो एव जोखम के अनुसार निश्चित की जायेगी। निगम द्वारा दिये गये ऋणो की अवधि प्राय ५ से १५ वर्ष तक हुआ करेगी। किस्तो मे भी विनियोग के भुगतान की व्यवस्था की जा सकती है। निगम ऋण जमानत पर या बिना जमानत के दे सकते हैं। यदि वह जमानत लेगा तो उसका क्या रूप होगा, यह प्रार्थी की हैसियत एव विनियोग की शर्तों पर निर्भर है।

ऋण देने की शर्तें—

वित्तीय सहायता की रकम इकट्ठी दी जा सकती है या किस्तो मे। इस रकम का प्रयोग प्रार्थी उपक्रम अपने सामान्य व्यापारिक कार्यो म कर सकता है, किसी विशिष्ट सेवा या माल के भुगतान मे उसका प्रयोग किया जाय, ऐसा कोई प्रतिबन्ध

नही है। साधारणतः ऋण का अमरीकी डालरो मे मूल्यांकन किया जायेगा, किन्तु उपयुक्त दशा मे वह करेन्सी मे भी किया जा सकता है।

निगम तब ही विनियोग करेगा जब उसे यह सन्तोष हो जाय कि प्रार्थी उपक्रम या प्रबन्धक-वर्ग योग्य एव अनुभवी है। किन्ही आवश्यक दशाओ मे निगम उपयुक्त प्रबन्धक खोजने मे सहायता दे सकता है, किन्तु वह स्वयं प्रबन्ध का उत्तरदायित्व ग्रहण नही कर सकता है। निगम सामान्यत. अपने प्राइवेट सहयोगियो से ही प्रबन्धक उपलब्ध करने की अपेक्षा रखता है। हाँ, इतना वह अवश्य चाहेगा कि प्रबन्ध मे कोई बडा परिवर्तन करने से पूर्व उसकी राय ले ली जायेगी। वह बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स मे अपने प्रतिनिधि भी रख सकता है।

निगम इस बात का सन्तोष प्राप्त करना चाहेगा कि उपक्रमो को वास्तव मे उस ऋण की आवश्यकता है और प्रबन्धको ने एक उपयुक्त कार्यक्रम भी तैयार कर लिया है। वह सस्था द्वारा पूँजीगत सामान और सेवाओ के खरीदने का ढग भी जाँच सकता है, जिससे उसके विनियोग सुरक्षित रहे। यह भी आवश्यक है कि उपक्रम के हिसाब-किताब का सरकारी अकेक्षको से निरीक्षण कराया जाय तथा वे निगम के प्रतिनिधियो के लिये खुले रहे। निगम को वार्षिक खाते, प्रगति-विवरण एव अन्य सूचनाये भेजी जाये। निगम के प्रतिनिधियो को सहायता लेने वाले उपक्रम के प्लान्ट, कारखाने आदि को देखने का भी अधिकार होगा।

निगम का सरकार से सम्बन्ध—

कॉरपोरेशन सरकार की गारन्टी नही मागेगा। हाँ, यदि देश की सरकार को आपत्ति है तो कॉरपोरेशन विनियोग नही करेगा। सम्बन्धित देश की सरकार को आपत्ति करने के लिये उचित अवसर प्रदान किया जाय। यदि किसी सदस्य देश की सरकार ने विदेशी विनिमय पर प्रतिबन्ध लगा रखा हो तो एक साधारण विनियोगिक के रूप मे निगम अपने विनियोग एव तत्सम्बन्धी लाभ के ट्रान्सफर के लिये सरकार के साथ उचित समझौता करेगा। इन सब मामलो मे निगम कोई विशेष अधिकार नही चाहेगा।

पुनः अर्थ प्रबन्धन निगम
(Re Finance Corporation)

स्थापना—

यद्यपि दीर्घकालीन साख की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिये देश मे अनेक सस्थाये थी, किन्तु ऐसी कोई भी संस्था नही थी जो कि केवल मध्यकालीन साख की व्यवस्था करती हो। अत. औद्योगिक सस्थाओ के लिए मध्यकालीन साख सुविधाओं की व्यवस्था करने के उद्देश्य से ५ जून, सन् १९५८ को पुन. अर्थ प्रबन्धन निगम की स्थापना की गई। यह निगम एक स्वतत्र अर्द्ध सरकारी सस्था है। यह निजी उद्योगपतियो को तीन से सात वर्ष के लिए ऋण प्रदान करती है।

उद्देश्य—

इस निगम का प्रमुख उद्देश्य मध्यम पैमाने की औद्योगिक इकाइयों को वित्तीय सहायता प्रदान करना है। किसी भी एक सस्था को ५० लाख रु० से अधिक ऋण नही मिलेगा। यह निगम इन उद्योगो को प्रत्यक्ष रूप से उधार नही देगा, वरन् बैंकों को उधार देने मे सहायता पहुँचायेगा। इस निगम से केवल ऐसी ही औद्योगिक संस्थायें ऋण प्राप्त कर सकती है जिनकी दत्त और सचित पूंजी २½ करोड रु० से अधिक न हो।

पूंजी—

पुन. अर्थ निगम की अधिकृत पूंजी २५ करोड रु० तथा निर्गमित पूंजी १२½ करोड रुपए है। निर्गमित पूजी १,२५० अश पत्रो (प्रति अश १ लाख रुपया) मे विभाजित है, जिसमे से १०% आवेदन पत्र और १०% आवटन पर देना आवश्यक है। इस पूंजी का क्रय निम्न सस्थाओ द्वारा किया गया है :—

(१) रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया	५·० करोड रुपये
(२) स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया	२·५ " "
(३) राज्य जीवन बीमा निगम (L. I. C of India)	२·५ " "
(४) अन्य बैंक	२·५ " "
योग	१२·५ करोड रुपये

अन्य बैंको के अन्तर्गत सेन्ट्रल बैंक आफ इण्डिया, पजाब नेशनल बैंक लिमिटेड, बैंक आफ बडौदा, नेशनल बैंक ऑफ इण्डिया, युनाइटेड कॉमर्शियल बैंक, लायड्स बैंक, इलाहाबाद बैंक, चार्टर्ड बैंक, इण्डियन बैंक, युनाइटेड बैंक, मरकेन्टाइल बैंक ऑफ इन्डिया, डैना बैंक (Dena Bank), तथा स्टेट बैंक ऑफ हैदराबाद सम्मिलित हैं।

अगस्त सन् १९५६ मे भारतवर्ष तथा अमेरिका के बीच 'भारत अमरीकी कृषि' सम्बन्धी वस्तुओ का समझौता हुआ था, जिसके अनुसार भारतवर्ष को अपने निजी व्यवसाय वाली सस्थाओ को पुन. उधार देने के लिए ५५ मि० डालर या ३६ करोड रुपये का कोष रखा गया था। यह राशि इस निगम को दे दी गई है। २९ जुलाई सन् १९५८ को भारतीय वित्त मत्रालय के सयुक्त मन्त्री एन० सी० सैन गुप्ता तथा अमेरिका के टैक्नीकल कोआपरेशन मिशन (T. C. M) के सचालक श्री हावर्ड हौस्टन (Howard Houston) के मध्य हुए समझौते के अनुसार यह ५५ मिलियन डालर का ऋण अमेरिका को भारतवर्ष भारतीय मुद्रा (रुपये) मे ३० वर्ष के अन्दर ब्याज सहित वापस कर देगा।*

भारत सरकार समय समय पर निगम को ब्याज पर ऋण देकर सहायता

* American Reporter, August 13, 1958

करेगी और उस कोष मे से उचित समय पर ऋण के पुनर्भुगतान का प्रबन्ध करेगी। इस प्रकार से प्रारभ मे निगम के पास कुल ३८.५ करोड रुपये (१२.५ करोड रु० + २६ करोड रु०) की पूँजी होगी, जिसमे से १५ अनुसूचित बैंको मे से प्रत्येक का कोटा निश्चित होगा और उसी सीमा के अन्तर्गत निगम से उस बैंक को पुनः अर्थ-प्रबन्ध की सुविधाएँ मिलेंगी।

निगम का प्रबन्ध—

पुन. अर्थ प्रबन्धन निगम का प्रबन्ध एक सचालक समिति के द्वारा होगा। इस समिति के सात सदस्य होंगे, जिसमे रिजर्व बैंक आफ इन्डिया का गवर्नर उसका चेयरमैन होगा। शेष छः सदस्य इस प्रकार होंगे .—

(१) रिजर्व बैंक आफ इण्डिया का डिप्टी गवर्नर
(२) स्टेट बैंक आफ इण्डिया का चेयरमैन
(३) जीवन बीमा निगम (L. I. C.) का चेयरमैन
(४) अन्य बैंको के तीन प्रतिनिधि।

पुनः अर्थ प्रबन्धन निगम पूर्व स्थापित औद्योगिक साख तथा विनियोग निगम (Industrial Credit and Investment Corporation) की क्रियाओ मे सहायता पहुँचाता है। वास्तव मे आधारभूत तथा मध्यवर्गीय उद्योगो को अपनी जीर्ण मशीनो तथा साज-सज्जाओ के परिवर्तन के लिए तथा अन्य सम्बन्धित कार्यों के लिए धन की आवश्यकता होती थी, जिसकी पूर्ति अब पुनः अर्थ प्रबन्धन निगम से होने लगेगी। इस प्रकार इस निगम का औद्योगिक क्षेत्र मे विशेष महत्त्व है।

निगम की क्रियाओं का ब्यौरा—

३१ दिसम्बर सन् १९६० को अन्त होने वाले वर्ष तक पुनर्वित्त निगम की क्रियाओ के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि निगम का कार्य क्षेत्र दिन प्रति दिन बढता चला जा रहा है। आलोच्य वर्ष मे पुनर्वित्त के हेतु ८ बैंको से ४५९.५० लाख रुपये के लिए निगम के पास २५ आवेदन पत्र आये, जबकि गत वर्ष केवल ३ बैंको ने २२३ लाख रु० के लिए ही प्रार्थना पत्र दिए थे। इस प्रकार सदस्य बैंको द्वारा प्राप्त की जाने वाली पुनर्वित्त की राशि लगभग दुगुनी हो गई। १४ प्रार्थना-पत्रो के सम्बन्ध मे निगम ने १७५ लाख रु० की राशि स्वीकार की, किन्तु वास्तव मे १४१ लाख रु० ही प्रदान किया गया किन्तु यह राशि भी गत दो वर्षों मे प्रदान की हुई राशि (जो ८५ लाख रु० थी) से कही अधिक है।

आलोच्य वर्ष के अन्त तक निगम ने कुल २२६ लाख रु० की राशि (Total Disbursement) प्रदान की, जिसमे से २१६ लाख रु० की राशि प्रदत्त (Out Standing) थी। निगम के कार्यो के ब्यौरे के अवलोकन से इस बात का स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि पुनर्वित (Refinance) की मांग दिन प्रति दिन बढती जा रही है। उदाहरण के लिये अकेले जनवरी, फरवरी सन् १९६१ मे ही ८८.४५ लाख रु० के पुनर्वित्त की माग निगम के सम्मुख आई। जैसा कि निगम के

चेयरमेन श्री एच० वी० आर० आयगर (H. V R. Iengar) ने कहा है कि तृतीय पच वर्षीय योजना अवधि मे निगम का कार्य क्षेत्र बहुत अधिक बढ जायेगा।

इस वष भी निगम द्वारा ऋण देने की दर ५% प्रति वर्ष ही है। अभी हाल मे निगम ने अपने ऋण लेने वालो पर दो शर्ते लगा दी है—(१) ऋण लेने वाली सस्थाओ (अर्थात् बैंको) को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जिस दर पर वे निगम से ऋण लें और जिस पर औद्योगिक सस्थाओ को ऋण दें, उनके बीच कम से कम १½% का अन्तर हो। (२) यदि स्थानीय वित्तीय सस्थाओ द्वारा औद्योगिक सौदों को सुगम दरो पर ऋण मिल जाता है और पुनर्वित्त की दशा मे उनको वे सुविधाये नही मिलती, तो ऐसी परिस्थिति मे पुनर्वित्त की माग करने वाली सस्थाओ को ऋण नही प्रदान किया जायेगा।

आलोच्य वर्ष मे निगम को २८·८६ लाख रु० की कुल आय हुई। गत वर्ष यह राशि २६·५७ लाख रु० थी। आय मे कमी होने के कारण निगम को लाभ इस वर्ष केवल १६·३६ लाख रु० ही हुआ। गत वर्ष लाभ की राशि २०·०२ लाख रु० थी।

आलोचना—

निगम के अध्यक्ष के अनुसार पुर्नवित्त निगम का क्षेत्र औद्योगिक अर्थ निगम तथा औद्योगिक साख तथा विनियोग निगम की अपेक्षा अधिक सकुचित है। यह निगम केवल मध्यकालीन ऋण (अर्थात् तीन वर्ष से सात वष के लिये) दे सकता है। अत इस निगम की सुविधाये केवल उन निगमो के लिये उपयुक्त हैं जो सात वर्ष के अदर ऋण का भुगतान कर सकें।

सुझाव—

निगम के सचालक ने इसके क्रिया क्षेत्र को विस्तृत करने के लिये निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये है —

(१) अधिक से अधिक बैंको को चाहे वे निगम के सदस्य हो अथवा न हों पुर्नवित्त निगम की सुविधाये प्रदान करना है।

(२) उन समस्त उद्योगो को जो विकास योजनाओ के अतर्गत आते है, सुविधायें प्रदान करना है।

(३) निगम द्वारा लिये गये ऋण और इस ऋण को पुन देने पर ब्याज की दर मे अन्तर कम से कम १½% प्रतिशत का हो, इस प्रतिबध को दूर करना।

ये सुझाव केद्रीय सरकार तथा भारत स्थित सयुक्त राष्ट्र तात्रिक सहयोग आदोलन (U. S Technical Co operation Mission) मे विचाराधीन है।

भविष्य—

निगम का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल प्रतीत होता है, क्योंकि उपरोक्त सुझाव लगभग स्वीकार कर लिये गये हैं। इन सुझावों के अनुसार कार्य करने के लिये निगम ने ४३ व्यापारिक बैंको, १४ राज्य अर्थ निगमो और ३ राज्य सहकारी बैंको के मध्य पुनर्वित्त की योजना का विस्तार करने का निर्णय कर लिया है। वित्तीय सस्थाओ द्वारा लघु उद्योगो को जो वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है, उसके सबध मे भी वित्तीय सस्थाओ को पुनर्वित्त की सुविधायें प्रदान की जायेगी। लेकिन इसके लिये गारटी सगठन द्वारा प्रत्याभूति की आवश्यकता है।

इन परिवर्तनो के परिणामस्वरूप आशा ही नही वरन् पूर्ण विश्वास है कि निगम का कार्य क्षेत्र अवश्य बढेगा।

विनियोग प्रन्यास
(Investment Trusts)

विनियोग प्रन्यास वे वित्तीय सस्थायें है जो व्यक्तिक विनियोक्ता को, चाहे उसके साधन कितने भी कम क्यो न हो, इस योग्य बनाने के उद्देश्य से गठित की जाती है कि वह एक ही विनियोग मे विविधता (Diversification) के लाभ प्राप्त कर सके। प्रन्यास विभिन्न कोटि के स्कन्धो, अशो तथा ऋण-पत्रो मे अपने कोष का विनियोग करते हैं, अत: विनियोग प्रन्यास के अशधारी विनियोक्ताओ का जोखिम कई जगह बँट जाता है। यह उल्लेखनीय है कि विनियोग प्रन्यास प्रतिभूतियो को नियन्त्रण के उद्देश्य से नही खरीदते है, बल्कि विनियोग के उद्देश्य से खरीदते है। इसी बात मे वे सूत्रधारी कम्पनियो से भिन्न है। प्राप्त ब्याज और लाभाश मे से वे अपनी प्रतिभूति पर ब्याज तथा लाभाश चुकाते है।

विनियोग कम्पनी या प्रबन्ध प्रन्यास (Discretionary Trust) मे सचालको को प्रतिभूतियो के मौलिक चुनाव तथा बाद मे उसमे विनियोग के समय परिवर्तन की पर्याप्त छूट देता है। चूँकि समय-समय पर प्रतिभूतियो का चुनाव करना प्रबन्धको का काम है, इसलिए प्रबन्ध-प्रन्यास को विवेकाधीन प्रन्यास भी कहा जाना है। यह आवश्यक है कि जिन व्यक्तियो को उक्त विवेकाधिकार दिया जाये, वे सदा चौकन्ने तथा सावधान रहें। उन्हे अपने विशेष क्षेत्र मे व्यापारी, उत्साही, सत्यवादी, उद्देश्य के प्रति निष्ठा रखने वाला होना चाहिए।

लाभ—

(१) इकाई प्रन्यास के सामान्य लाभ, जैसे—वैविध्यकरण (Diversification), विशिष्ट ज्ञान तथा सतत् निरीक्षण प्राप्त होते है।

(२) विनियोक्ता को अपनी पूँजी पर अधिक लाभ अर्जन करने मे समर्थ करता है।

(३) सभी प्रकार के लोगो को अपनी बचतें निरापद तथा लाभप्रद सरणि मे विनियोग करने की योग्यता प्रदान करता है।

(४) प्रबन्ध व्यय कम होता है, क्योकि हजारो व्यक्तियो के विनियोग का थाडे विशेषज्ञ लोग प्रबन्ध कर सकते हैं।

(५) यह विनियोग प्रन्यास साधारण विनियोक्ता को सट्टेबाजी से दूर रखता है तथा दृढ कम्पनियो के अनुपात को बढाता है।

(६) जो जोखम उठाता है वही नियन्त्रण करता है।

त्रुटियाँ—

(१) प्रबन्ध ऐसे व्यक्तियो के हाथो मे आ सकता है जो अयोग्य हो।

(२) चूंकि प्रबन्ध को प्रतिभूतियो के चुनाव का सोलहो आने अधिकार दे दिया जाता है, इसलिए निर्णय सम्बन्धी भूलो का जोखिम भी रहता है।

सीमित प्रबन्ध प्रन्यास (Flexible Trusts)—

पहला दो वर्गों के प्रन्यासो के बीच का मार्ग है। इस प्रकार का प्रन्यास एक ओर तो नियत प्रन्यास की अनम्यता को दूर करता है और दूसरी ओर प्रबन्ध प्रन्यास के प्रबन्धाधिकारियो के विवेकाधीन अधिकार मे कटौती करता है, अर्थात् सीमित विवेकाधिकार देता है।

विनियोग को निरुत्साहित करने वाले कारण—

(१) राष्ट्रीयकरण का भय—यह सही है कि योजना मे प्राइवेट विनियोजन का महत्त्व दिया गया है तथापि देश मे ऐसी व्यापक धारणा फैली हुई है कि प्राइवेट उपक्रम विकास के साधन के रूप म 'सहन' किया जा सकता है, 'स्वीकार' नही। औद्योगिक नीति की घोषणा से भी यह प्रकट होता है कि सरकार किसी भी सस्था को, सार्वजनिक हित म या प्राइवेट उपक्रम द्वारा असन्तोष द आचरण किए जाने की दशा मे, अपने अधिकार मे ले सकती है। इसी प्रकार उद्योग (विकास एव नियन्त्रण) अधिनियम भी सरकार को यह अधिकार देता है कि किसी भी अनुसूचित उद्योग या सस्था की जाँच पडताल के लिए आदेश दे। इस प्रकार हर समय प्राइवेट उपक्रम के ऊपर राष्ट्रीयकरण का डर मडराया करता है, अत. जिन उद्योगो मे विशाल पूँजी लगती है और लाभो का अर्जन कुछ वर्षों के पश्चात् आरम्भ होता है उनमे प्राइवेट विनियोगक हिचकते है। विदेशो से भी प्राइवेट पूँजी प्राप्त करने मे कठिनाई होती है। कम से कम सरकार ऐसे उद्योगो मे, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, राष्ट्रीयकरण के विरुद्ध कुछ आश्वासन दे सकती है।

(२) उद्योगो का नियमन—सरकार ने नियन्त्रण सम्बन्धी जो अधिकार प्राप्त किये है उनके कार्यान्वित होने मे कुछ अनिश्चितताय एव कठिनाइयाँ है। जैसे, एक नई इकाई की स्थापना या विद्यमान इकाइयो म विस्तार अथवा किसी नय प्रकार की वस्तु बनाने के लिए सरकार से लाइसेंस लेना पड़ता है, नये पूँजी निगमन के लिए

कन्ट्रोल ऑफ कैपीटल इश्यूज से आज्ञा लेनी पडती है, मशीनो व अन्य सामान के आयात के लिए विदेशी विनिमय की व्यवस्था करनी पडती है। जहाँ एक ओर इन आदेशो का उद्देश्य आर्थिक विकास को एक निश्चित दिशा मे प्रवाहित करना है, वहाँ यह दोष भी है कि इन कार्यो मे देरी बहुत लग जाती है। प्रत्येक कदम पर अधिकारियो को सन्तुष्ट करना पडता है, अतः यह आवश्यक है कि इस कार्य विधि को सरल बनाया जाय, जिससे अनावश्यक देरी न लगे।

(३) सरकार की श्रम नीति—जिन परिस्थितियो मे आज श्रम की नियुक्ति की जाती है वे पहले की अपेक्षा बहुत बदल गई है। मजदूरी के सामान्य स्तर मे तो वृद्धि हुई है, किन्तु साथ मे उनको अनेक प्रकार से क्षतिपूर्ति भी देनी पडती है। इन सब बातो से श्रम-लागत बहुत बढ गई है और उद्योगपतियो को अनुशासन रखने मे भी कठिनाई हो रही है। वह उद्योग की आवश्यकता के अनुसार श्रमिको की सख्या मे घटा-बढी नही कर सकता। उसे यह भी सुविधा नही है कि वैज्ञानिकन की योजनायें उद्योग मे लागू कर सके।

(४) विशेष नियन्त्रण—कुछ उद्योगो पर विशेष नियन्त्रण लगाये गये है। जैसे, लोह एव स्पात, कोयला व सीमेट उद्योग। इनके मूल्य नियत कर दिये गये हैं और उत्पादन के वितरण पर भी नियन्त्रण लगा दिया गया है। मिलो द्वारा धोतियो का उत्पादन भी सीमित कर दिया गया है। इन नियन्त्रणो के फलस्वरूप आन्तरिक प्रसाधनो का उद्योग के विस्तार के लिए अधिकतम उपयोग नही हो पाता।

(५) बचत की प्रवृत्तियाँ—युद्ध युग और युद्ध के बाद वस्तुओ के मूल्य मे तेजी से वृद्धि हो गई है। कर भी बढते जा रहे है। अतः स्थायी आय वालो की बचत-क्षमता बहुत घट गई। यही नही, सामाजिक एव राजनैतिक परिवर्तनो के फलस्वरूप राजे महाराजे, जमीदार आदि समाप्त हो गये है, जिससे विनियोग बाजार को बडा झटका लगा है। अनाज का मूल्य बढने से ग्रामीण जनता को आमदनी मे अवश्य वृद्धि हुई है, किन्तु उसकी बचत क्षमता पर, जो कि पहले नही के बराबर थी, बहुत कम प्रभाव पड सका है। वास्तव मे देश मे आय का पुनर्वितरण हो रहा है। जिनकी बचत क्षमता नही थी, उनकी बचत-क्षमता किंचित बढ गई है, जबकि अधिक बचत-क्षमता वाले व्यक्ति कम होते जा रहे हैं। यह ऐसी प्रवृत्ति है जो विनियोग के लिए प्रतिकूल है।

(६) प्रबन्ध की दुर्बलतायें—बाहरी कारणो के अलावा स्वय प्राइवेट साहस की कुछ ऐसी बुराइयाँ है जिनके कारण विनियोग सुविधा से उपलब्ध नही होते। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ मे बार-बार परिवर्तन होना, व्यापार के सचालन मे दूषित कार्यवाहियाँ करना, इन्होने विनियोगको के मन मे शङ्का का बीज बो दिया है, अतः हमारे प्रबन्धको को चाहिए कि वे अपने कार्यो मे जनता मे विश्वास उत्पन्न करें। इस दिशा मे व्यापारिक एव औद्योगिक सगठनो से बडी सहायता मिल सकती है।

मध्यम वित्त निगम

(Medium Finance Corporation)

जून सन् १९५८ में मध्यम वित्त निगम की स्थापना की गई। इस निगम का प्रधान कार्यालय बम्बई में है। यह निगम पंच-वर्षीय योजना में सम्मिलित निजी क्षेत्र के मध्यम कारखानों को आर्थिक सहायता प्रदान करता है। इस निगम की पूँजी ३१ करोड रु० है, जिसमें से ५ करोड रुपया १५ बैंकों से प्राप्त हुआ है। निम्नलिखित बैंकों के प्रतिनिधि निगम के संचालक मण्डल में है —(१) स्टेट बैंक, (२) सेन्ट्रल बैंक, (३) पञ्जाब नेशनल बैंक (४) इलाहाबाद बैंक, (५) बैंक ऑफ इण्डिया, (६) हैदराबाद बैंक, (७) बैंक ऑफ बडौदा, (८) नेशनल बैंक ऑफ इण्डिया, (९) यूनाइटड कर्मशियल बैंक, (१०) चारटर्ड बैंक, (११) यूनाइटेड बैंक आफ इण्डिया तथा देना बैंक। इन बैंकों के प्रतिनिधि विशेष प्रशिक्षण के हेतु अमेरिका भेजे गये है।

निगम की शेष २६ करोड रु० की पूँजी भारत सरकार ने इसे ऋण स्वरूप प्रदान की है। आशा ही नही, वरन् पूर्ण विश्वास है कि मध्यम वर्गीय उद्योगों को निगम से बडी सहायता मिलेगी।

STANDARD QUESTIONS

1. Describe the functions of (a) National Industrial Development Corporation and (b) National Small Industries Corporation
2. Attempt a lucid note on the International Finance Corporation
3. What do you know about Refinance Corporation ?
4. What is Industrial Credit and Investment Corporation of India ? What part is it expected to play in the provision of Industrial Finance in India ?
5. Describe briefly the principal factors which inhabit private investment in industries at the present time in India.
6. What do you mean by 'Investment Trusts ? Describe its classifications

अध्याय ४१

पूँजी निर्गमन नियंत्रण अधिनियम

(Capital Issues Control Act)

भूमिका—

पूँजी निर्गमन पर नियन्त्रण द्वितीय महायुद्ध की परिस्थितियों की उपज है। १७ मई सन् १९४३ को भारत सरकार ने डिफेन्स ऑफ इन्डिया रूल्स के अन्तर्गत पूँजी के निर्गमन पर नियन्त्रण लगाया, जिसका उद्देश्य पूँजी बाजार के उपलब्ध न्यून साधनों को सरकारी प्रतिभूतियों में आकर्षित करना था, जिससे कि सरकार को फौजी कार्यों में सुविधा हो जाय। अप्रैल सन् १९४७ में इसका स्थान 'पूँजी-निर्गमन (नियंत्रण) अधिनियम' ने ले लिया। इस अधिनियम की भूमिका में पूँजी के निर्गमन पर नियन्त्रण जारी रखने का उद्देश्य अनभिज्ञ विनियोगिका को कम्पनी प्रवर्तकों की स्वार्थपूर्ण कार्यवाहियों से बचाना (जो कि औद्योगिक सगठन के सामान्य सिद्धान्तों का उलंघन करते हुए युद्ध जनित तेजी के समय में एक के बाद एक अनगिनती कम्पनियाँ खड़ी करते जा रहे थे) और देश के उपलब्ध साधनों का उद्योग, कृषि और सामाजिक सेवाओं के मध्य सतुलित विनियोग का अवसर देना था। प्रारम्भ में इस अधिनियम के प्रभावशील रहने की अवधि तीन वर्ष रखी गई थी, किन्तु बीच-बीच में इसकी अवधि बढ़ाई जाती रही है। सन् १९५६ से बजट अधिवेशन में इसे स्थाई रूप दे दिया गया। इस अवसर पर भाषण देते हुए वित्त मंत्री ने उक्त अधिनियम को जारी रखने की आवश्यकता को निम्न शब्दों में बतलाया, "यह (कन्ट्रोल ऑफ कैपीटल इश्यूज) योजना की आवश्यकतानुसार पूँजी के प्रवाह का नियन्त्रण एवं नियमन करने के लिए प्रशासन के हाथों में एक महत्वपूर्ण हथियार है।"

पूँजी निर्गमन अधिनियम की मुख्य बातें—

पूँजी निर्गमन अधिनियम का प्रशासन कन्ट्रोलर ऑफ कैपीटल इश्यूज द्वारा किया जाता है। इस अधिनियम की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :—

(I) पूँजी निर्गमन के लिए सरकारी स्वीकृति—

(१) विदेशों में पूँजी के निर्गमन पर प्रतिबन्ध—भारत में समामेलित कोई भी कम्पनी केन्द्रीय सरकार की सहमति के बिना भारत के बाहर पूँजी का निर्गमन नहीं कर सकेगी।

पूंजी निर्गमन अधिनियम की प्रमुख बातें

(I) पूंजी निगमन पर प्रतिबन्ध—
(१) सरकार की स्वीकृति के बिना विदेशों में पूंजी का निगमन नहीं।
(२) भारत में भी पूंजी का निगमन नहीं।
(३) प्रविवरण के निगमन पर रोक।
(४) विदेशों मे अनाधिकृत निगमना मे विनियोग करने पर रोक।
(५) भारत म अनाधिकृत निगमन मे विनियोजन पर रोक।
(II) सरकारी स्वीकृति के लिए आवश्यक बातें—
(१) प्रवर्तकों व सचालको द्वारा २०% भाग लेना।
(२) मतदान अधिकार पूंजी के अनुपात मे।
(३) मूल्यांकन विशेषज्ञ की रिपोर्ट।

(२) भारत मे पूंजी के निर्गमन पर प्रतिबन्ध—कोई भी कम्पनी, चाहे उसका समामेलन भारत मे हुआ है या भारत से बाहर, केन्द्रीय सरकार की सहमति के बिना भारत म (i) पूंजी का निर्गमन नही करेगी, (ii) प्रतिभूतियो के विक्रय के लिए सार्वजनिक प्रस्ताव (Public Offer) नही करेगी और (iii) भारत म भुगतान होने वाली किसी भी प्रतिभूति के भुगतान की तिथि स्थगित नही करेगी।

(३) प्रविवरण के निर्गमन पर रोक—जब तक पूंजी-निर्गमन के लिए केन्द्रीय सरकार की सहमति न मिल जाय, तब तक कोई व्यक्ति भारत मे प्रतिभूतियो के विक्रय के लिए कोई प्रविवरण या प्रलेख जारी नही कर सकता।

(४) विदेशो मे धन के विनियोजन पर रोक—जब तक केन्द्रीय सरकार ने पूंजी निगमन के लिए मान्यता या सहमति प्रदान न कर दी हो तब तक कोई भी व्यक्ति भारत मे या भारत से बाहर पूंजी के उस निगमन के सम्बन्ध मे किसी भी प्रतिभूति के लिए न तो धन लेगा और न देगा।

(५) अनाधिकृत निर्गमन की प्रतिभूतियो के व्यवहारो पर रोक—कोई भी व्यक्ति अनाधिकृत निगमन वाली प्रतिभूतिया का क्रय-विक्रय या हस्तान्तरण नही कर सकता।

(II) केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति के लिए आवश्यक बाते—

केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति या अनुमति मिलना निम्न बातो पर निर्भर है—

(१) प्रवर्त्तकों व सचालको द्वारा २०% भाग लेना—प्रवर्त्तकों, सचालको उनके मित्रो एव सम्बन्धियो को प्रविवरण का निगमन करने के पूर्व प्रस्तावित पूंजी निगमन का कम से कम २०% भाग स्वय ही लेना चाहिये।

(२) मतदान अधिकार पूंजी के अनुपात म—इन्वेस्टमेंट ट्रस्ट एव फाइनेंस कम्पनियों की दशा मे विभिन्न प्रकार के शेयरहोल्डरो के मतदान सम्बन्धी अधिकार पूंजी अभिदान (Capital contribution) के अनुपात मे होने चाहिए।

ऐसी कम्पनियो को मैनेजिंग एजेन्ट न रखने चाहिए, पूँजीगत लाभ शेयरहोल्डरो मे न बाँटना चाहिए और पूँजी का विनियोग भी कुछ शर्तों के अन्तर्गत ही करना चाहिये।

(३) विशेषज्ञ की मूल्यांकन रिपोर्ट—जब कोई कम्पनी किसी जायदाद या व्यापार को बढे चढे मूल्य (Inflated Price) पर खरीद रही है या गुडविल का सही-सही मूल्याकन नही किया गया है, तो एक स्वतत्र विशेषज्ञ से मूल्याकन रिपोर्ट लेकर प्रस्तुत करना चाहिए।

(III) नियंत्रण का अपवाद—

अधिनियम ने उक्त नियत्रण से उन कम्पनियो को मुक्त रखा है जो किसी १२ महिने की अवधि में ५ लाख रुपया से अधिक की प्रतिभूतियो का निर्गमन नही करती हैं। यह अपवाद बैंकिंग और बीमा कम्पनियो के लिए नही है।

अधिनियम की आलोचना—

पूँजी निर्गमन नियत्रण अधिनियम की बडी आलोचना हुई है, जिनका साराश यह है—

(i) नियत्रण का दृष्टिकोण ऋणात्मक (Negative approach) है, अर्थात् जबकि नियत्रण की यह व्यवस्था अवाछित दिशाओ मे प्रसाधनो के प्रवाह को रोकने मे प्रभावशाली है, वाछित दिशाओ मे पूँजी को प्रभावित करने म वह इतनी प्रभावशाली नही है।

(ii) औद्योगिक विकास एव नियत्रण अधिनियम के अन्तर्गत जो लाइसेन्सिग कमेटी बनाई गई है उसके कार्य के साथ इसका कर्त्तव्य टकराता है।

(iii) यह नई कम्पनियो के निर्माण मे बाधा डालता है।

(iv) ५ लाख से कम की प्रतिभूतियो के निर्गमन को भी छूट नही मिलनी चाहिये।

(v) अधिनियम के आदेशो का उचित पालन कराने के लिये कोई उपयुक्त व्यवस्था (Manchinery) नही है।

यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाय, तो हमे प्रतीत होगा कि उक्त आलोचनायें पूर्णत: सत्य नही है।

(१) नियन्त्रण का दृष्टिकोण—नियन्त्रण का धनात्मक दृष्टिकोण अपनाने के लिये पूँजी बाजार का सही-सही अनुमान होना अति आवश्यक है। जब

पूंजी निर्गमन नियन्त्रण अधिनियम की पांच आलोचनाये

(१) नियन्त्रण का ऋणात्मक दृष्टिकोण।
(२) लाइसेन्सिग कमेटी के कार्य के साथ इसके कर्त्तव्यो का टकराव।
(३) नई कम्पनियो के निर्माण मे बाधा।
(४) छोटे निर्गमनो की छूट अनुचित।
(५) आदेशो का पालन कराने के लिये उचित व्यवस्था का अभाव।

तक विनियोग के लिये किसी अवधि विशेष मे उपलब्ध हो सकने वाली पूंजी की मात्रा का सही-सही अनुमान न होगा तब तक विनियोग को वांछित दिशाओ मे मोडा नही जा सकता। दुर्भाग्य से भारतीय अर्थ-व्यवस्था की वर्तमान सरचना म प्राइवेट पूंजी की मात्रा का, जो कि उपलब्ध हो सकती है, सही अनुमान लगाना सम्भव नही है।

(२) लाइसेन्सिग कमेटी के कार्य के साथ इसके कर्त्तव्यो का मेल—यह आलोचना गलत है कि औद्योगिक विकास एव नियन्त्रण अधिनियम के अन्तर्गत लाइसेन्सिग कमेटी के होते हुये पूंजी निर्गमन पर कट्रोल रखने की आवश्यकता नही है। यह विचार वास्तव मे उक्त औद्योगिक अधिनियम के सम्बन्ध मे अधूरे ज्ञान के कारण उत्पन्न होता है। औद्योगिक अधिनियम के अन्तर्गत लाईसेन्स लेने की आवश्यकता तब पडती है जबकि एक नई औद्योगिक सस्था की स्थापना की जा रही हो, किसी विद्यमान उद्योग का व्यापक विस्तार किया जाना हो और नई वस्तुओ का निर्माण करना हो। यह अधिनियम ७३ उद्योगो को लागू होता है। प्लान्टेशन, बैंकिंग, बीमा कम्पनियो एव अनेक अ-औद्योगिक कम्पनियो का इस अधिनियम मे कोई उल्लेख नही है। इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव है कि उक्त ७३ उद्योगो मे जो विस्तार किया जाना है वह 'व्यापक' (substantial) न हो। ऐसी दशा मे औद्योगिक अधिनियम लागू नही होगा। इसी प्रकार, औद्योगिक विकास अधिनियम में बोनस शेयरो के निर्गमन का भी कोई उल्लेख नही है, यद्यपि ये शेयर कॉरपोरेशनो के वित्तीय ढाचे का एक महत्वपूर्ण अग होते हैं। यही नही, ऐसी कई बातें है जो कि औद्योगिक (विकास एव नियन्त्रण) अधिनियम के प्रभाव क्षेत्र मे नही आती, जैसे—पूंजी निर्गमन की शर्तें, अभिगोपन की रकम, शेयरो पर दलाली, विदेशी विनियोगो का नियमन आदि। इन बातो पर पूंजी नियन्त्रण अधिनियम के द्वारा ही शासन रखा जा सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कैपीटल इश्यूज कन्ट्रोल एक्ट का औद्योगिक (विकास एव नियन्त्रण) अधिनियम से पृथक एक निश्चित स्थान है। हाँ, यह आवश्यक है कि लाइसेन्सिग कमेटी और कन्ट्रोलर आफ कैपिटल इश्यूज के मध्य पारस्परिक सहयोग होना चाहिये, जिससे प्रार्थना पत्रों को शीघ्रता से निपटाया जा सके।

(३) नई कम्पनियो के निर्माण मे बाधा—कुछ सीमा तक यह आक्षेप सही है कि कैपीटल इश्यूज कन्ट्रोल नई कम्पनियो की स्थापना मे बाधक सिद्ध हुआ है। वास्तव मे इसे बाधक न होकर उचित मार्ग दिखाने वाला पथ प्रदर्शक होना चाहिये।

(४) छोटे निर्गमनो की छूट अनुचित—इसी प्रकार ५ लाख रु० तक पूँजी के निर्गमन केलिये जो छूट दी गई है उसे काफी घटाकर १ लाख रु० कर देना चाहिये, तभी नियन्त्रण अधिक प्रभावशाली हो सकेगा। इससे नियन्त्रण का क्षेत्र बढ जायेगा, किन्तु, दूसरी ओर, छोटे-छोटे अनेक प्रार्थना पत्रो पर विचार करने मे अधिक श्रम व व्यय होने की सम्भावना है।

(५) आदेशो का पालन कराने के लिये उपयुक्त सस्था होना—कैपीटल इश्यू कन्ट्रोल सम्बन्धी आदेशो का पालन कराने के लिए किसी उपयुक्त व्यवस्था का न होना इस अधिनियम की एक बडी दुर्बलता है। प्रार्थियो को यह अनिवार्य नही है कि वे कन्ट्रोल अधिकारियो को वास्तविक विनियोगो की यह सूचना देते रहे। कन्ट्रोल ऑफ कैंपीटल इश्यूज द्वारा जो आँकडे प्रकाशित किये जाते हैं वे स्वीकृत आदेशो के अनुसार किए गये वास्तविक विनियोगो की मात्रा प्रकट नही करते। जो रिटर्न कम्पनियो से मगाई जाती है, वे भी कन्ट्रोलर के पास समय पर नही पहुँचती। अतः इस दिशा मे कठोर उपाय करना चाहिए। सौभाग्य से अब ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनियो के रजिस्ट्रारो के कार्यालयो मे इस कार्य के लिए पृथक विभाग बना दिये गये हैं। आशा है कि अब ठीक-ठीक आँकडे प्राप्त करना सरल हो जायगा।

कन्ट्रोल ऑफ कैंपीटल इश्यूज का महत्त्व—

भारत मे औद्योगिक विकास के लिए पूँजी की बडी कमी है। अतः इस दृष्टि से कन्ट्रोल ऑफ कैंपीटल इश्यूज का महत्त्व भली प्रकार समझ मे आ जाना चाहिए। उचित दशाओ मे न्यून पूँजी साधनो का विनियोग केवल कन्ट्रोल द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार यह अधिनियम हमारी पच-वर्षीय योजनाओ की पूर्ति मे बडा सहयोग देगा, वह अनावश्यक या कम आवश्यक कार्यो मे पूँजी का विनियोग रोकता है। वह नई एव पुरानी दोनो ही सस्थाओ की पूँजी सरचनाओ का नियमन करते हुए अवाछित कार्यवाहियो को (जैसे अनुचित मताधिकार वाले शेयर जारी करना) रोकता है, वह कोरपोरेशनो की वित्तीय योजनाओ मे असन्तुलन होने से बचाता है, वह इस बात की जाँच रखता है कि निर्गमन के सम्बन्ध मे कम्पनी अधिनियम के नियमो का पालन किया जा रहा है या नही, वह अनभिज्ञ विनियोगको को चालाक प्रवर्तको के चंगुल से बचाता है और उनकी कायवाहियो पर अंकुश रखता है, शेयरहोल्डरो एवं लेनदारो के लाभार्थ कम्पनियो की पुनर्गठन सम्बन्धी योजनाओ की सावधानी से जाँच करता है, प्राइवेट एव पब्लिक क्षेत्र मे पूँजी साधनो का सतुलन रखता है और विदेशी विनियोगो का नियमन करता है।

कन्ट्रोल ऑफ कैंपीटल इश्यूज की प्रगति—

नीचे दी हुई तालिका १ मे यह दिखाया गया है कि प्रति वर्ष कितनी मात्रा मे पूँजी निगमन के लिये स्वीकृति मिली थी और मागी हुई स्वीकृति की मात्रा का कितना प्रतिशत है। मागी हुई स्वीकृति से मिली हुई स्वीकृति का प्रतिशत (percentage) प्रति वर्ष बदलता रहा है। सन् १९४८ के बाद, केवल सन् १९५२

को छोड़ कर जब कि ५०-५० करोड रु० के दो प्रार्थना पत्र अस्वीकृत कर दिये गये थे, मांगी हुई स्वीकृति की मात्रा से मिली हुई स्वीकृति की मात्रा का प्रतिशत सदा ८०% से अधिक रहा है। इससे स्पष्ट है कि नियन्त्रण अधिनियम ने प्राइवेट क्षेत्र मे विनियोग के स्वीकृत स्वरूप मे कोई बाधा नही डाली है।

तालिका १

वर्ष	स्वीकृत प्रार्थना पत्रों की संख्या	स्वीकृत पूंजी निर्गमनो की मात्रा (करोड रुपये मे)	स्वीकृति मांगी हुई मात्रा से स्वीकृति मिली मात्रा का प्रतिशत
१९४७ (अग० से दिस०)	१५५	५४ २	..
१९४८	३७५	१२५ ७	७५ ०
१९४९	३२६	६३ ०	८६ ७
१९५०	२६३	७४ ८	८७ ९
१९५१	३४३	५९ ६	८७ २
१९५२	२५४	३९ ८	२६ १
१९५३	२३२	८१ ४	९० ५
१९५४	२२०	११० ६	९४ ४
१९५५	२८९	१२५ ४	८२ ७
१९५६	२९७	२३०·१	९० ४
१९५७	३४५	१५३ ३	८३ ९

यह उल्लेखनीय है कि सन् १९४५ और सन् १९४९ के मध्य स्वीकृत औद्योगिक निर्गमनो का प्रतिशत ५० से ६० तक था, जब कि सन् १९४९ से सन् १९५१ के मध्य वह ७०-८० रहा और सन् १९५१ से १९५४ के मध्य ८०-९० हो गया। इस प्रकार औद्योगिक निर्गमनो को अ औद्योगिक निर्गमनो की अपेक्षा प्राथमिकता दी गई थी। पिछले कुछ वर्षों मे औद्योगिक निर्गमनो का प्रतिशत कुछ घट गया है। नई कम्पनियो के प्रारम्भिक पूंजी निर्गमनो और विद्यमान कम्पनियो के अतिरिक्त निर्गमनो के आंकडो से यह प्रगट होता है कि प्रारम्भिक निर्गमनो की अपेक्षा अतिरिक्त निर्गमनो के लिए अधिक स्वीकृति मिली है।

तालिका २

वर्ष	नई कम्पनियो के प्रारम्भिक निर्गमन		विद्यमान कम्पनियो के अतिरिक्त निर्गमन		
	रकम (करोड रु० मे)	स्वीकृत कुल निर्गमनो का प्रतिशत	रकम (करोड रु० मे) बोनस शेयर	अन्य	स्वीकृत कुल निर्गमनो का प्रतिशत
१९४८	६३ ४	५० ४	२३ ४	३८ ९	४९ ६
१९४९	३५ ७	४० ६	१० १	२७ २	५८ २
१९५०	१३ ७	१८ ३	८ ५	५२ ६	८१ ७
१९५१	२१ ६	३६ २	१० ८	२७ २	६३ ८
१९५२	१२ ७	३१·९	७ ८	१९ ३	६८·१
१९५३	१८ ३	२२ ६	१४ ७	४८ ३	७७ ४
१९५४	५७·६	५२ ३	६ ६	४२ ८	४७ ७
१९५५	४६ ९	३८·३	६·५	७२ ०	६१·७
१९५६	८० ३	२८ ६	८ ५	१४१·३	७१ ४
१९५७	४३·३	२८ २	१५ ४	९४ ६	७१ ८

उक्त तालिका के आंकडो पर ध्यान देने से निम्न महत्त्वपूर्ण बातो का भी पता चलता है —(१) कुल स्वीकृत निर्गमनो के साथ प्रारम्भिक निर्गमनो के प्रतिशतो का औसत सन् १९४८ व सन् १९५५ के मध्य ३६ था, जबकि अतिरिक्त निर्गमनो के प्रतिशतो का औसत इन्ही आठ वर्षो के लिए ६४ था। सन् १९५७ मे ये औसत क्रमश २८ और ७२ हो गये। इससे स्पष्ट है कि विद्यमान इकाइयो के विकास के लिए पूँजी निर्गमनो को नई कम्पनियो की स्थापना के लिए पूँजी निर्गमनो की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया गया। (२) स्वीकृत किये गये *अतिरिक्त निर्गमनो (Further Issues)* का लगभग पाँचवाँ भाग बोनस शेयरो का है। इससे स्पष्ट है कि बोनस शेयरो का पूँजी सरचना मे कितना महत्त्व है। सन् १९४८ के अन्त मे सरकार ने उस छूट को समाप्त कर दिया जो कि ५ लाख रु० की सीमा तक बोनस शेयरो का निर्गमन करने के सम्बन्ध मे उपलब्ध थी। सरकार ने यह नीति अपनाई कि कम्पनियो के पास न तो बहुत थोडा रिजर्व हो और न बहुत अधिक चुकता-पूँजी। बोनस शेयरों के निर्गमन पर भी नियन्त्रण लगा कर सरकार ने चालू बाजार मूल्यो के आधार पर स्थाई सम्पत्ति का मूल्य अपलिखित करने की परिपाटी पर अंकुश लगाया है। सन् १९४९ मे सरकार ने बोनस शेयरो के निर्गमन के सम्बन्ध मे कुछ उदार नीति अपनाई। किन्तु सन् १९५४ तक उसकी यह नीति ढिलमिल ही रही थी। अन्त मे, सन् १९५५ मे सरकार ने अधिक स्पष्ट नीति ग्रहण की और सन् १९५६ मे उसने बोनस शेयरो के निर्गमन पर २ आ० प्रति रुपया की दर से सुपर टैक्स लगाया। सन् १९५७ मे पूँजी निर्गमन

नियन्त्रण अधिनियम का सशोधन किया गया। इसने यह स्पष्ट कर दिया गया कि अपूर्ण दत्त शेयरो को पूर्ण दत्त बनाने के लिए अथवा विद्यमान शेयरो का अकित मूल्य बढाने के लिये कोषो के पूँजीकरण के लिए पूर्व अनुमति की आवश्यकता है।

पूँजी निर्गमन के लिये स्वीकृति प्राप्त करने की विधि—

यह अनुभव किया जाता है कि प्रार्थियो को पूँजी निर्गमन के लिए स्वीकृति माँगने वाले प्रार्थना-पत्र मे दी जाने वाली आवश्यक बातो का ज्ञान होने से प्रार्थना-पत्रो पर स्वीकृति देने मे देर हो जाती है। अत केन्द्रीय वित्त मन्त्रालय ने सरकार से स्वीकृति प्राप्त करने की कार्यविधि पर पूर्ण प्रकाश डाला है, जिसका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

पूँजी निर्गमन के लिये स्वीकृति प्राप्त करने की कार्यविधि

(१) कन्ट्रोलर को सशुल्क प्रार्थना पत्र देना।

(२) प्रार्थना पत्र मे सब आवश्यक बातें देना।

(३) प्रार्थना-पत्र के साथ प्रकाशित अन्तिम खाते व प्रास्पैक्टस की प्रतिलिपियाँ भेजना।

(१) कन्ट्रोलर को सशुल्क प्रार्थना-पत्र देना—पूँजी निर्गमन के लिये स्वीकृति प्राप्त करने के हेतु सर्व प्रथम एक प्रार्थना-पत्र (पाँच प्रतियो मे) कन्ट्रोलर ऑफ कैपीटल इश्यू को देना होगा। यह प्रार्थना पत्र उस फोर्म मे होना चाहिए, जिसकी विस्तृत बातें कन्ट्रोलर के आफिस से पत्र भेज कर मालूम की जा सकती है। प्रार्थना पत्र के साथ ट्रेजरी रसीद भी नत्थी कर देनी चाहिए। यह ५० रु० के बारे मे है, जो कि शुल्क के रूप मे केन्द्रीय सरकार के खाते मे XLVI शीर्षक के अन्तर्गत जमा कराने पडते हैं।

(२) प्रार्थना पत्र मे दी जाने वाली आवश्यक बातें—प्रार्थना-पत्र मे निम्न बातें देना आवश्यक है, अन्यथा बारम्बार लिखा-पढी होने से उसकी स्वीकृति मे देर होने की सभावना है—

(i) प्रार्थना-पत्र देने वाली कम्पनी का नाम, उसकी हैसियत (अर्थात् वह प्राइवेट कम्पनी है या पब्लिक कम्पनी), उसके रजिस्ट्रेशन का स्थान और उसके प्रधान कार्यालय का पता।

(ii) विद्यमान एव प्रस्तावित अधिकृत, याचित एव दत्त पूँजी की रकम एव उसका स्वभाव।

(iii) यदि पहले भी कोई प्रार्थना-पत्र दिये गये हो, तो उनकी सूचना।

(iv) प्रस्तावित व्यापार का स्वभाव।

(v) कम्पनी के सचालको एव मैनेजिंग एजेन्टों के नाम, पते आदि तथा कम्पनी मे उनके हित का विवरण।

(vi) प्रस्तावित पूँजी निर्गमन की रकम, प्रकृति एव शर्तों के बारे मे सूचना

अर्थात्, इक्विटी, प्रीफेरन्स, डिबेन्चर, अथवा बोनस शेयर, शेयरो का वितरण (पब्लिक को प्रास्पैक्टस के द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले शेयरो की मात्रा स्पष्ट करते हुये)।

(vii) ऋण प्रस्तावो की सूचना, जिनके लिये कैपीटल इश्यू की स्वीकृति जरूरी हो।

(viii) यदि प्रस्तावित योजना मे विदेशी सहयोग लिया जाता है, तो उसकी सूचना, जैसे—विदेशी सहयोग कर्त्ता कितना धन लगायेंगे, बदले मे क्या लेंगे, सरकार से इस सहयोग के लिये स्वीकृति मिल चुकी है या नही, देशी एव विदेशी मुद्रा मे अनुमानित व्यय आदि।

(ix) क्या उद्योग (विकास एव नियन्त्रण) अधिनियम के अन्तर्गत लाइसेन्स लेना जरूरी है ? यदि जरूरी है, तो क्या लाइसेन्स ले लिया गया है या प्रार्थना-पत्र दे दिया गया है। यदि लाइसेन्स मिल गया है तो उसकी प्रतिलिपि प्रार्थना पत्र के साथ नत्थी कर देनी चाहिये। यदि लाइसेन्स नहीं मिला है, तो प्रार्थना-पत्र का हवाला दे देना चाहिये। यदि पूँजी की आवश्यकता सम्बधी अनुमानो का भी, जिनके आधार पर लाइसेन्स मिला है या मांगा गया है, विवरण प्रार्थना-पत्र में देना चाहिये।

(३) प्रार्थना पत्र के साथ नत्थी किये जाने वाले प्रलेख—यदि पूँजी या ऋण लेने वाली कम्पनी पहले से ही कार्य सलग्न है, तो प्रार्थना-पत्र के साथ उसके अन्तिम प्रकाशित वार्षिक खाते सलग्न करना आवश्यक है। यदि इन वार्षिक खातो से सम्बधित अवधि के बाद १ वर्ष या इससे अधिक समय गुजर गया हो, तो अन्तिम वित्तीय वर्ष के परिणाम दिखाने वाला एक कच्चा विवरण (Proforma Statement) भी प्रार्थना पत्र के साथ फाइल करना होगा। यदि प्रास्पैक्टस के द्वारा जनता को पूँजी प्रस्तावित की जा रही है, तो प्रार्थी को चाहिये कि प्रास्पैक्टस का ड्राफ्ट बना कर सरकार को समीक्षा व सुझाव के लिये भेजे। यदि कोई अन्य सूचना सम्बन्धित विषय पर प्रकाश डालने वाली हो, तो उसे भी प्रार्थना-पत्र मे दे देनी चाहिये।

(४) कन्ट्रोल आफिस दिल्ली से व्यक्तिगत सम्पर्क एव परामर्श—प्रवर्त्तक, सचालक एव उनके प्रतिनिधि समय समय पर कैपीटल इश्यूज कन्ट्रोल अधिकारियो से नई दिल्ली मे व्यक्तिगत रूप से मिल सकते है और प्रारम्भिक एव औपचारिक बातो पर विचार-विमर्श कर सकते हैं। इससे उन्हे यह मालूम हो जाता है कि प्रोजेक्ट को प्रस्तुत करने का सर्वोत्तम या वैकल्पिक ढङ्ग क्या हो सकता है, जिससे उस पर सरकार स्वीकृति दे दे। इस प्रकार का व्यक्तिगत परामर्श दोनो ही पक्षो के लिए लाभदायक होता है।

(५) प्रार्थना-पत्र पर निर्णय—जब कोई प्रार्थना-पत्र प्राप्त होता है, तो उस पर तत्काल ही कार्यवाही की जाती है। प्रार्थना पत्र की सूचना को सावधानी

से जाँचा जाता है। यदि पूँजी सरचना उचित एव पर्याप्त है, यदि प्रस्ताव कम्पनी अधिनियम के प्रादेशो के विपरीत नही है, यदि प्रार्थना पत्र की बातें औद्योगिक लाइसेन्स की शर्तों से सगत रखती है, तो निर्गमन पर स्वीकृति दे दी जाती है।

यदि कोई सन्देह की बात प्रतीत होती है तो अन्य मन्त्रालय या मन्त्रालयो से परामर्श लिया जा सकता है। यदि प्रार्थना-पत्र मे दी गई सूचना अपूर्ण या अस्पष्ट है, तो प्रार्थी को स्पष्टीकरण या अतिरिक्त सूचना देने के लिए लिखा जाता है। यदि प्रार्थना-पत्र का कोई प्रस्ताव कन्ट्रोल व्यवस्था के किसी सिद्धान्त से टकराता है, तो उसमे उपयुक्त परिवर्तन करने के सुझाव प्रार्थी को दिये जाते हैं। यदि स्पष्टीकरण के लिए व्यक्तिगत वार्तालाप आवश्यक समझा जाय, तो कम्पनी के अधिकृत प्रतिनिधि को दिल्ली बुलवाया जाता है। उसके साथ हुए विचार-विमर्श के सन्दर्भ मे कोई निर्णय होता है।

उपसहार—

एकदम ही अस्वीकार किये गये प्रार्थना पत्रो की सख्या बहुत थाडी होती है। जब कम्पनी को औद्योगिक लाइसेन्स मिलने का आश्वासन तो है, लेकिन अभी वह मिला न हो या जब उसे विदेशी सहयोग सम्बन्धी प्रस्तावो पर सरकार की सामान्य स्वीकृति तो मिल गई है, लेकिन विस्तृत बातो पर स्वीकृति नही मिली हो अथवा जब कम्पनी सम्मिश्रण की किसी विशेष योजना पर स्वीकृति प्राप्त करने के हेतु हाईकोर्ट मे प्रार्थना पत्र देना चाहती हो, तभी पूँजी निर्गमन सम्बन्धी स्वीकृति दे दी जाती है।

STANDARD QUESTIONS

1. Discuss the objects and important provisions of the Capital Issues Control Act How far do you think its working to be satisfactory ?
2. Outline the procedure for getting consent to capital issue

---

अध्याय ४२

विदेशी पूंजी

(Foreign Capital)

भूमिका—

किसी भी देश के आर्थिक विकास मे पूंजी की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। पूंजी 'बचत' का परिणाम है और बचत तब होती है जबकि चालू उपभोग से आय अधिक हो। एक पिछडी हुई अर्थ-व्यवस्था मे बचते अपर्याप्त होती हैं। परिणामतः वहाँ पूंजी की कमी देखी जाती है। यही नही, पूंजीगत माल की कमी टेक्नीकल साज सामान व ज्ञान एव योग्यता की कमियाँ भी एक पिछडी हुई अर्थ व्यवस्था की विशेषतायें हैं। इस सन्दर्भ मे विदेशी पूंजी के महत्व को सहज ही समझा जा सकता है। वास्तव मे "विदेशी पूंजी ने पिछले कुछ वर्षों मे हुये विकासो मे एक चमत्कारिक भूमिका प्रस्तुत की है तथा विदेशी सहायता ने अर्द्ध विकसित देशो मे उन आकस्मिकताओ की पूर्ति की है जो उन देशो के घरेलू साधनो की शक्ति के बाहर की बात थी। भारत ऐसा ही एक देश है जिसने विदेशी पूंजी की सहायता से वर्तमान प्रगति की है। प्रस्तुत अध्याय मे भारत मे विदेशी पूंजी की समस्या पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

भारत में विदेशी पूंजी का इतिहास

मोटे तौर पर, विदेशी पूंजी ने भारत मे तीन रूपो मे प्रवेश किया, अन इनसे सम्बन्धित तीन आवश्यकतायें दृष्टिगोचर होती हैं—प्रथम, व्यापारिक पूंजी (Merchant Capital), जिसकी अवधि अठारहवी शताब्दी तक है, द्वितीय, औद्योगिक पूंजी (Industrial Capital), जिसने १९वी शताब्दी मे अपना प्रभाव दिखाया, जो अभी तक जारी है ; और तीसरा, वित्तीय एव ऋण पूंजी (Finance and Loan Capital), जिसका विकास हाल मे ही हुआ है।

(१) व्यापारिक पूंजी की अवस्था—

इस देश मे पुर्तगाली सर्व प्रथम विदेशी पूंजी लाये। इन्होने भारतीय बाजारो में भारतीय माल खरीदने तथा यूरोपियन बाजारो मे बेचने के लिये एक व्यापारिक

कम्पनी बनाई। यह समय ऐसा था जबकि हमारे कुटीर एवं लघु उद्योग देश मे उन्नति के शिखर पर थे। अपने व्यापार के लिये माल की नियमित पूर्ति बनाये रखने के लिये उन्होने भारतीय कारीगरो को ऋण व पेशगी रकमे देनी प्रारम्भ की। बाद मे डच एवं ब्रिटिश व्यापारियो ने भी यही नीति अपनाई। इन व्यापारिक कम्पनियों द्वारा दी गई पूंजी को 'व्यापारिक पूंजी' कहा जा सकता है। एक लम्बे संघर्ष के बाद, ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने धीरे-धीरे एकाधिकार प्राप्त कर लिया। किन्तु यह एकाधिकार बहुत समय तक नही चला। औद्योगिक क्रान्ति का जोर बढ़ने पर इङ्गलैण्ड मे भारत से आयात किये हुये निर्मित माल के विरुद्ध कटु विरोध होने लगा। इङ्गलैण्ड निर्मित माल नही वरन् कच्चा माल अपने तेजी से विकसित होने वाले उद्योगो के लिये खरीदना चाहता था। उसे निर्मित माल के बेचने मे दिलचस्पी थी, न कि खरीदने मे। अतः 'व्यापारी पूंजीपतियों' को व्यापार का स्वरूप बदलना पड़ा। वे भारत को निर्मित माल लाने लगे और देशी उद्योगो का प्रोत्साहन देने के बजाय दबाने लगे। इसी अवधि मे ब्रिटिश सरकार ने सन् १७७३ के रेग्यूलेटिंग एक्ट द्वारा भारत मे व्यापार का एकाधिकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी मे छीन लिया। इस प्रकार भारत मे विदेशी पूंजी की प्रथम अवस्था का अन्त हो गया।

(२) औद्योगिक पूंजी की अवस्था—

अठारहवी शताब्दी के अन्त मे, भारतीय बाजार ब्रिटिश सरकार की स्वतन्त्र व्यापार नीति के फलस्वरूप विदेशी साहसियो के लिये खोल दिया गया। स्थानीय व्यापारी दुर्बल थे और पूंजी शर्मीली थी। ब्रिटिश पूंजीपतियो ने भारत मे अपने कोष लगाने प्रारम्भ कर दिये। प्रारम्भ मे तो यह पूंजी कच्चा माल उत्पन्न करने वाले उद्योगो मे लगाई गई। धीरे-धीरे निर्मित माल के लिये अधिकाधिक बड़े बाजार और अधिकाधिक कच्चे माल की आवश्यकता के होने के साथ-साथ यातायात व्यवस्था की उन्नति करना भी जरूरी हो गया, ताकि निर्यातो व आयातो के प्रवाह मे गति आ जाय। सन् १८५७ मे प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के कारण राजनैनिक एवं सामरिक दृष्टिकोण से भी यातायात की व्यवस्था को विकसित करना आवश्यक हो गया था। अतः व्यापार के समय मे एकत्र हुई सम्पत्ति अब रेलो, सड़को, सिंचाई व कोयले की खानो के विकास के लिये 'औद्योगिक पूंजी' के रूप मे भारत मे आने लगी। कुछ पूंजीपतियो ने यह अनुभव किया कि भारत से इङ्गलैण्ड को कच्चे माल के यातायात मे और इङ्गलैण्ड से भारत को निर्मित माल के यातायात मे दुहरा व्यय होता है। यदि भारत मे ही उद्योग प्रारम्भ कर दिये जायें, तो इस दुहरे व्यय से बचा जा सकता है। इस प्रकार भारत मे जूट एवं सूती वस्त्र उद्योगो की स्थापना हुई। उसी अवधि मे तीन प्रेसीडेन्सी बैंक एवं कुछ विनिमय बैंक भी स्थापित हुये। वे विदेशी पूंजीपतियो के लिये शक्ति का एक महान् साधन बन गये। लेकिन इस युग मे औद्योगिक पूंजी मुख्यतः यातायात एवं कच्चे माल के उत्पादन मे लगी तथा उद्योगो के विकास मे काम नहीं आ सकी।

(३) ऋण पूंजी का प्रारम्भ—

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे, ब्रिटिश पूंजी का भारत मे सही अर्थानुसार औद्योगिक पूंजी के रूप मे आगमन हुआ। कई घटको ने इस पूंजी के आगमन को प्रोत्साहित किया। प्रथम, यातायात एव बगीचा उद्योग मे लाभदायक विनियोग पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। दूसरे, भारत मे ब्रिटिश बाजार सकुचित होने लगे थे; अतः इस हानि को भारत मे उद्योगो मे विनियोजन करके आय की वृद्धि द्वारा पूरा करने की कोशिश की गई। तीसरे, विश्व युद्ध ने भारत मे ही उद्योगो के विकास की आवश्यकता को स्पष्ट कर दिया था, क्योकि युद्ध काल मे आयात रुक जाने से अत्यन्त आवश्यक वस्तुओ की कमी का कटु अनुभव हुआ था। सामरिक एव सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से भी भारत मे उद्योगो की स्थापना होनी आवश्यक समझी गई। कुछ उद्योगो को सन् १९२३ मे सरक्षण मिलने से भारतीय पूजी भी सचय मे से निकल कर उद्योगो मे विनियोजन के लिए आनी आरम्भ हुई है।

विदेशी पूजी की तीसरी अवस्था अभी हाल ही मे आरम्भ हुई है। व्यापार सतुलन के घाटे को पूरा करने के लिये भारत सरकार ने विदेशो से ऋण लेने प्रारम्भ किये। भारतीय व्यापारियो एव उद्योगपतियो को भी अपने विदेशी सहयोगियो से आर्थिक सहायता मिलने लगी है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक से भी ऋण लिये गये हैं। ये सभी ऋण एडवान्स के रूप मे है। इनकी विशेषता यह है कि विदेशी ऋणदाता केवल इस बात मे रुचि रखते है कि उनका मूल धन तथा निर्धारित ब्याज नियमित रूप से मिलता रहे। वे उद्योग पर अपना नियत्रण स्थापित करने का प्रयास नही करते हैं। भविष्य मे ऐसी पूजी हमारी अर्थ व्यवस्था के विकास मे एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी।

भारत में विदेशी पूंजी की समस्या

देश के सामने एक बडी समस्या विदेशी पूजी की है। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ से ही इसके विरुद्ध शक्तिशाली आवाजें उठाई गई हैं। प्राय. कहा जाता है कि इसके कारण भारतीय अर्थ-व्यवस्था पर बहुत तनाव पडता है, जो इसे पनपने नही देता। देश की राजनैतिक स्वतन्त्रता के साथ भी उसका मेल नही बैठता। सौभाग्य से हम विदेशियो की राजनैतिक दासता का बधन तोडने मे तो सफल हुये हैं लेकिन सभी प्रकार के व्यापारो व उद्योगो मे विनियोजित विशाल पूजी के रूप मे विदेशी प्रभुत्व अभी तक जारी है। लेकिन, इसके विपरीत, अर्थशास्त्रियो का दृष्टिकोण कुछ भिन्न है। वह विदेशी विनियोजक को सकटकाल मे अपना अमूल्य सहायक समझते है। इसके अतिरिक्त, अब तो विदेशी पूजीपतियो की कार्यवाहियो का नियत्रण करना भी सभव हो गया है। अतः विदेशी पूजी को क्यो न स्वीकार किया जाय, जबकि हमारी निजी पूंजी अपर्याप्त है। इस प्रकार भारत मे विदेशी पूजी के सम्बन्ध मे दो विरोधी विचारधाराये प्रचलित है।

किन्तु यहां पर यह बताना आवश्यक है कि विदेशी पूंजी का विरोध मुख्य इसके विनियोजन स्वरूप से है। विदेशी पूंजी कई रूपों मे विद्यमान है। विनियो या साहसी पूंजी देश के प्राकृतिक साधनो का शोषण करती है। अतः इस परिस्थि मे विदेशियो के स्थाई हित विकसित होने लगते हैं और इसकी रक्षा के लिये राजनैति कदम उठाये जाते है। किन्तु ऋण एव एडवान्स पूंजी की दशा मे, विदेशी ऋणदा कोई जोखिम अपने ऊपर नही लेते। वे तो अपने ब्याज व मूलधन की वापिसी हित रखते हैं। अतः पहली प्रकार की पूंजी ही शरारत कर सकती है। इसका विरे करना उचित ही है।

भारत मे विदेशी पूंजी की आवश्यकता—

विदेशी पूंजी भारत को निम्न प्रकार से लाभदायक हुई है और भविष्य भी होगी :—

(१) औद्योगीकरण की गति बढाने के लिये—भारत मे विदेशी पूं ने औद्योगीकरण की प्रगति मे सहायता पहुँचाई है तथा देश की पंच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत औद्योगिक विकास के वर्तम एव भावी प्रयासो मे सहायता दे रही एव देगी। अनेक कारणो से देश मे उद्यागो के लिये धन की कमी रही है लाग गरीब है, उनकी बचत क्षमता सीमि है, भारतीय पूंजी परम्परा से लजीली है, भारतीय व्यवसाई व्यापारी पहले उद्योगपति बाद मे। इन सब कारणों पूंजी की मांग एव पूर्ति मे भारी अन्त है, जिसे विदेशी पूंजी की सहायता से व किया जा सकता है।

> **भारत मे विदेशी पूंजो की आवश्यकता क्यो ?**
>
> (१) औद्योगीकरण की गति बढाने के लिये।
> (२) आवश्यक वस्तुयें व सेवाये आयात करने के लिये।
> (३) उद्योगो के विकास की प्रारम्भिक जोखिम उठाने के लिये।
> (४) टेक्नीकल ज्ञान की प्राप्ति के लिए।
> (५) देश मे रोजगार बढाने के लिये।
> (६) देश के उत्पादको के समक्ष स्वस्थ प्रतियोगिता उत्पन्न करने के लिये।

(२) आवश्यक वस्तुये व सेवा आयात करने के लिये—भारत मे विदे पूंजी की आवश्यकता इसलिये और अधिक अनुभव की गई है कि हमारे निर्या बेलोच स्वभाव के हैं, जबकि हमे विदे से खाद्यान्न, कच्चा माल, मशीनरी व टेक्नीशियनो की सेवायें आयात करनी पडती है स्पष्ट है कि विदेशी मुद्रा की अधिक मांग होगी, जिसे एक लम्बी अवधि तक विदे ऋणो के द्वारा ही पूरा किया जा सकता है।

(३) उद्योगो के विकास की प्रारम्भिक जोखिम उठाने के लिये— उद्योगो के विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे प्रवतन का कार्य बहुत जोखिमपू

होता है तथा प्रायः हानि उठानी पडती है। विदेशियो को, विदेशी पूँजी ग्रहण करके, प्रारम्भिक जोखिम उठाने के लिये प्रेरित किया जा सकता है और बाद मे जबकि उद्योग सुस्थापित हो जायें, तब स्वदेशी पूँजीपति या सरकार उनके हितो को क्रय कर सकती है।

(४) टेक्नीकल ज्ञान की प्राप्ति के लिये—विदेशी पूँजी के साथ-साथ हमे टेक्नीकल ज्ञान भी प्राप्त होता है। घरेलू उत्पादक इस सम्बन्ध मे विदेशी पूँजीपतियो से बहुत कुछ सीख सकते है।

(५) देश मे रोजगार बढाने के लिये—विदेशी पूँजी के कारण देश मे रोजगार के अवसर बढ जायेंगे, क्योकि केवल उच्च अधिकारी ही विदेश से आते हैं और अधिकाश क्लर्को व मजदूरो की नियुक्ति तो विदेशी पूँजी मँगाने वाले देश के निवासियो मे से ही की जाती है।

(६) देश के उत्पादको के समक्ष स्वस्थ प्रतियोगिता उत्पन्न करने के लिये—विदेशी पूँजी का आगमन स्वस्थ प्रतियोगिता उत्पन्न करता है। विदेशियो के साथ प्रतिस्पर्द्धा करने के लिये देशी उत्पादको को भी अपनी उत्पादन की टैक्नीक में सुधार करना पडता है। इसमे उनकी कुशलता बढ जायेगी।

विदेशी पूँजी की आलोचनाये—

भारत मे विदेशी पूँजी के आयात की निम्न प्रमुख आलोचनायें है :—

(१) प्रसाधनो का दोषपूर्ण शोषण—सर जार्ज पेश (Sir George Paish) के अनुसार भारत मे ९७% विदेशी पूँजी सन् १९१४ के पूर्व सरकारी कार्यो मे, यातायात, बगीचा उद्योग एव वित्त व्यवस्था मे लगी हुई थी। इस प्रकार विदेशी पूँजी का प्रयोग भारत के व्यापारिक शोषण के लिये हो रहा था, देश के औद्योगिक विकास से उसका कोई सम्बन्ध न था। इससे देश के असन्तुलित विकास को प्रोत्साहन मिला और उसके साधनो का समुचित शोषण नही होने पाया।

भारत मे विदेशी पूँजी का विरोध क्यो ?

(१) प्रसाधनो का दोषपूर्ण शोषण।
(२) सरक्षण नीति का अनुचित आश्रय।
(३) औद्योगिक शक्ति का केन्द्रीयकरण।
(४) भेदभाव की मनोवृत्ति।
(५) स्वदेशी सस्थाओ से प्रतिस्पर्द्धा।
(६) ऊँची लागत एव अधिक लाभ।
(७) चुने हुये क्षेत्र।
(८) अस्थाई अवधि।
(९) राजनैतिक शर्ते।

(२) सरक्षण नीति का अनुचित आश्रय—विदेशियो ने अपनी शाखाये व सहायक कम्पनियाँ भारत मे रजिस्टर्ड कराई और इस प्रकार उन्हे भारतीय सस्थाओ का रूप देकर प्रशुल्क सरक्षण का लाभ उठाया।

(३) औद्योगिक शक्ति का केन्द्रीयकरण—प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली पूर्ण

रूप से विदेशी फायनेन्सियरो की भेंट है। इसी प्रणाली के कारण एक ही नियन्त्रण के अन्तर्गत औद्योगिक सस्थाओ का वित्तीय, प्राबन्धिक एव प्रशासनिक गठबन्धन सम्भव हुआ। अन्य देशो के असमान, भारत मे स्वामित्व एव नियंत्रण का केन्द्रीयकरण मुख्यतः विस्तार के द्वारा हुआ है, न कि सम्मिश्रण या विलियन द्वारा, क्योकि प्रबन्ध अभिकर्त्ता ही नवीन सस्थाओ के जन्मदाता, पालक एव सचालक रहे हैं।

(४) भेदभाव की मनोवृत्ति—वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ मे, विशेषतः द्वितीय महायुद्ध के पूर्व, विदेशी व्यापारिक इकाइयो ने साख, बीमा और यातायात के मामले मे जातीय एव राजनैतिक भेदभाव की नीति अपनाई थी। कर्मचारियो को रोजगार देने, विशेषत. उच्च पदस्थ कर्मचारियो की नियुक्ति करने के विषय मे भारतीयो के साथ भेदभाव बरता जाता था।

(५) स्वदेशी सस्थाओ से प्रतिस्पर्द्धा—विदेशी पूँजी के प्रवेश का विरोध इस आधार पर भी किया गया है कि स्वदेशी सस्थाओ की प्रतिस्पर्द्धा कुशलता विदेशी सस्थाओ की अपेक्षा कम होती है, जिससे देशी व्यवसाइयो को हानि उठानी पडती है। इस प्रकार, रिवर्स (Rivers) के शब्दो मे, 'विदेशी फर्मों की आलोचना उनकी दुर्बलताओ या दोषो के कारण नही वरन् गुणो के कारण की गई है। स्वदेशी उद्योग-पतियो ने विदेशी फर्मों का इस कारण विरोध किया, क्योकि वे उनकी अपेक्षा अधिक कुशल थी तथा कठिनाइयो का भली प्रकार सामना कर सकती थी।*

(६) विदेशी पूँजी की ऊँची लागत—विदेशी प्राइवेट पूँजी के प्रयोग की लागत बहुत अधिक पडती है। भारत मे अमरीकी विनियोगो पर १६ २% और कनेडियन विनियोगो पर ३३·३% पुरस्कार दिया गया था, जबकि ब्रिटिश विनियोगो पर बहुत ही उचित केवल ६ ५% लाभ दिया गया। इस प्रकार अमेरिकी एव कनेडियन पूँजी बहुत ही मँहगी है। इसका हमारे सीमित साधनो पर बहुत बोझ पडता है। अत भारत विदेशी पूँजी का स्वागत नही कर सकता।

(७) चुने हुए क्षेत्र—प्राइवेट विदेशी विनियोगो के सम्बन्ध मे यह बात देखी जाती है कि विदेशी पूँजी उन उद्योगो मे लग रही है जिन पर पूँजी निर्यातक देशो मे प्रतिबन्ध लगा हुआ है। इसके अतिरिक्त, विदेशी कोष कुछ चुने हुए क्षेत्रो मे एव निष्कर्ष उद्योगो मे लग रहे है, स्थानीय उपभोग की वस्तुयें उत्पन्न करने वाले उद्योगो मे नही। उदाहरण के लिये, एक अनुमान के अनुसार सन् १९४७-४९ के मध्य अमेरिका की प्राइवेट पूँजी का ७८% भाग अर्द्ध विकसित देशो मे गया और इसका भी ६०% भाग निष्कर्षण उद्योगो मे लगा, जो औद्योगिक प्रगतिशील देशो के लिये कच्चा माल निर्यात करते थे।

---

1. What brought foreign business in for criticism was not its fault but its virtues Foreign firms were resented by domestic industrialists because they were more efficient and could stand up better in hard times." (W. F Rivers "The Position of Foreign Business in India Today," p. 27.)

(८) अस्थाई अवधि—विदेशी पूंजी कभी भी वापिस ली जा सकती है और वह उद्योगो का स्थायी साधन नही होती। अतः इस पर निर्भर रहना खतरनाक होता है। मौलिक एव आधारभूत उद्योगो मे तो विदेशी पूंजी का सहारा बिल्कुल भी नही लेना चाहिये। युद्ध काल मे इन उद्योगो के सम्बन्ध में विदेशी पूंजीपतियो पर निर्भर होना अ-कूटनीतिक है।

(९) राजनैतिक शर्ते —पूंजी की सहायता के साथ-साथ राजनैतिक शर्तो के जुडा होने का भी कटु अनुभव है। विश्व नेता विश्व-बन्धुत्त्व, समानता व न्याय की बातचीत तो करते हैं लेकिन उनके कार्यक्रमो से अपना ही प्रभुत्त्व जमाने की भावना प्रगट होती है। उदाहरण के लिये, अमेरिका अर्द्ध-विकसित देशो को बहुत आर्थिक सहायता दे रहा है, लेकिन ऐसा मुख्यतः उन देशो को कम्यूनिस्ट कैम्प मे जाने से रोकने के लिये है। ईरान, मिश्र, मलाया व इन्डोचीन से सघर्ष इस बात के प्रमाण है कि विदेशी सहायता किस प्रकार देश को दासता के बन्धन मे जकड देती है, जिससे छुटकारा पाना फिर सहज नही होता।

विदेशी पूंजी के लिये उचित क्षेत्र—

ऊपर जो कुछ भी कहा गया है उससे यह भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि भारत मे विदेशी पूंजी का इतिहास उसकी सेवाओ और कुसेवाओ के दृष्टान्तो से भरा पडा है। नये उद्योगो का प्रवर्तन (जैसे जूट, कोयला, चाय, व कहवा प्लान्टेशन पहली बीमा कम्पनी व जहाजी कम्पनी) सफल विनियोजन एव आश्चर्यजनक दूरदर्शिता के लिये विदेशी पूंजी की जहाँ सराहना की जावेगी वहाँ अत्यधिक शोषण, आर्थिक प्रभुत्त्व एवं राजनैतिक दासता के लिये उसकी बुराई भी करनी होगी। भूतकाल मे विदेशी पूंजी की भूमिका कैसी भी रही हो, उसे हमारे नियोजित आर्थिक विकास मे एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है। देश म पच-वर्षीय योजनाओ को कार्यान्वित किया जा रहा है। औद्योगीकरण हमारा एक निश्चित एव प्रमुख लक्ष्य है। इसकी पूर्ति के लिये प्लान्ट एव मशीनरी के रूप मे विशाल मात्रा मे स्थाई पूंजी तथा कच्चा माल खरीदने व आवर्तक व्ययो को चुकाने के हेतु कार्यशील पूंजी की आवश्यकता है। किन्तु हमारे आन्तरिक साधन इस आवश्यकता के लिये पर्याप्त नही हैं। इसके अतिरिक्त, विदेशी टैक्नीशियनो की सेवाओ से भी वंचित रहना दुर्भाग्यपूर्ण होगा, क्योकि अभी हमारे यहाँ टैक्नीकल ज्ञान का प्रसार बहुत सीमित है। अभी हमे अधिकाधिक पूंजीगत माल आयात करना है। इन सब बातो के कारण विदेशी पूंजी की अनिवार्य आवश्यकता अनुभव की जा रही है और इसके परिणामस्वरूप ऐसी पूंजी के प्रयोग के विरुद्ध जन विरोध कुछ नर्म हो गया है। विदेशी पूंजी की हानियो का सावधानी से विश्लेषण करने पर हम इस नतीजे पर पहुँचेगे कि अधिकांश हानियाँ विदेशी 'पूंजी' से नही वरन् 'विदेशी नियन्त्रण' से सम्बन्धित हैं। अत यदि हानियो के सम्बन्ध मे उचित सावधानी रखी जाय और यदि विदेशी पूंजी को विदेशी नियन्त्रण और प्रभाव से मुक्त रखा जा सके,

तो बहुत लाभ उठाया जा सकता है। जैसा कि हमने ऊपर बताया है, यह विनियोग या साहस पूँजी (Investment or Entrepreneurial Capital) ही है, जिसको सीमित करने की हमे आवश्यकता है। देश मे आजकल इसकी इतनी विशाल मात्रा है कि देशी पूजी साधन इसे खरीदने मे असमर्थ हैं। अत. विदेशी साहस को धीरे-धीरे समाप्त करना ही उचित होगा। यह भी उचित होगा कि भारतीयो को वर्तमान एव भावी विदेशी सस्थानो से सम्बन्धित किया जाय, ताकि वे टेक्नीक सीख सकें, आवश्यक ट्रेनिङ्ग पा सकें और प्रबन्ध सम्बन्धी अनुभव भी प्राप्त कर लें। विदेशियो को भयभीत करना ठीक न होगा। भारत को चाहिए कि विदेशी पूँजी के *शैतानी करने वाले पहलू मे धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूप से चतुरतापूर्वक कमी करे।*

इस सम्बन्ध मे एक अन्य आवश्यक एव ध्यान देने योग्य बात यह है कि भूतकाल मे तो विदेशी पूँजी सरलता से प्राप्त होती रही थी, लेकिन भविष्य मे ऐसा न हो सकेगा। युद्ध काल मे, लगभग प्रत्येक देश ने विदेशी पूँजी की वापसी पर प्रतिबन्ध लगा दिये। परिणामत अनेक दशाओ मे विदेशियो को उचित न्याय नही मिला। अतः हम देखते हैं कि विशाल मात्रा मे विदेशी पूँजी एव ऋण एक देश से दूसरे देश को अधिक सुरक्षा की खोज मे भटक रही है। इससे यह प्रगट होता है कि अब हमे अपनी ही शर्तों पर विदेशी पूँजी पर्याप्त न मिल सकेगी। आज के ससार मे, जबकि पूँजी की कमी विश्वव्यापी है, कोई देश विदेशी पूँजी पर प्रतिबन्ध लगा कर विदेशी पूँजीपतियो को देश से भागने पर ही विवश कर सकता है। अतः यह आवश्यक है कि जब एक बार हमने विदेशी पूँजी की आवश्यकता अनुभव कर ली है, तो उसके प्रति हमारा दृष्टिकोण नर्म होना चाहिए।

विदेशी पूँजी के सम्बन्ध मे सरकारी नीति

स्वतन्त्रता के पूर्व नीति—

बहुत समय तक भारत मे विदेशी पूँजी स्वतन्त्रतापूर्वक प्रवाहित होती रही और ग्रेट ब्रिटेन की पूँजी का बाहुल्य रहा। ब्रिटिश पूँजी विशेषतः उन उद्योगो में विनियोग की गई जिनके द्वारा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर ब्रिटेन का प्रभावशाली नियन्त्रण रह सके और अत्यधिक लाभ हो। इसी प्रकार, आर्थिक जीवन के उन्ही अशो का विकास किया गया जाकि ब्रिटिश माल के आयात को आवश्यक बनावें। विदेशी पूँजी ने कभी भी भारत मे नियोजित और सगठित आर्थिक विकास का विचार नही किया। ब्रिटिश पूँजीपति असहाय भारतीयो के हितो का बलिदान करके अनाप-शनाप लाभ कमा रहे थे। भारतीयो को विदेशी सस्थाओ मे काम करने व कमाने के बहुत कम अवसर प्राप्त थे।

बहुत समय तक विदेशी पूँजी के प्रति भारत सरकार का दृष्टिकोण सक्रिय प्रोत्साहन एव प्रत्यक्ष सहायता देने का रहा। भारतीय प्रशुल्क आयोग सन् १९२२ ने

भारतीय अर्थ-व्यवस्था मे विदेशी पूँजी के महत्व की विवेचना की थी। अधिकांश सदस्यो की यह सिफारिश थी की विदेशी पूँजी के प्रवेश पर कोई रोक न लगाई जाय, लेकिन आयोग का अल्पमत कुछ प्रतिबन्ध लगाने के पक्ष मे था। सरकार ने बहुमत के सुझाव को स्वीकार कर लिया, लेकिन उसने भेदात्मक सरक्षण का सिद्धान्त अपनाया। अनेक दशाओ मे यह नीति विदेशी पूँजी को प्रत्यक्ष प्रोत्साहन देने के स्तर तक उदार कर दी गई।

विदेशी पूँजी समिति सन् १९२५ ने पुन. सम्पूर्ण स्थिति पर विचार किया। वह विदेशी पूँजी के आयात को प्रोत्साहित करने के पक्ष मे थी। लेकिन उसने इस बात पर बल दिया कि विदेशी पूँजीपति को प्रोत्साहन देने की प्रत्येक योजना मे मुख्य लाभ भारत को दिलाना चाहिए। उसने यह भी सिफारिश की थी कि एक सर्वसाधारण रियायत योजना मे (जैसे कि सरक्षण मे) भारतीयो और विदेशियो के मध्य कोई भेद भाव न किया जाय। समिति के मत मे विदेशी कम्पनी को रियायतें तब ही देनी चाहिए जबकि वह भारतीयो को ट्रेनिङ्ग की सुविधायें व अवसर देने को तैयार हो जाय। किन्तु सरकार ने इस दिशा मे कोई ठोस कदम नहीं उठाया। जनता समय-समय पर सरकार की उपेक्षा के विरुद्ध आवाज उठाती रही।

स्वतन्त्रता के पश्चात् विदेशी पूँजी सम्बन्धी नीति—

स्वतन्त्रता के पश्चात् विदेशी पूँजी के प्रति भारतीय अर्थशास्त्रियो का आलोचनात्मक दृष्टिकोण बहुत बदल गया है, क्योकि (१) हमारी प्रगति के लिये देशी बचतो की क्षमता से कही अधिक साधनो की आवश्यकता है, (२) ऋणी देशो के चक्करदार भुगतान-सतुलनो की समस्याओ का अधिक अच्छा अन्तर्राष्ट्रीय समाधान हो सकता है, (३) अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एव विकास बैंक की स्थापना ने विदेशी पूँजी को एक सुपरनेशनल रूप प्रदान कर दिया है, और (४) स्वतन्त्रता की प्राप्ति से देश को विदेशी पूँजी के अवाछित प्रभावो से बचाने की सरकार की क्षमता मे विश्वास बढ गया है। अत. यह समझा जाने लगा है कि यदि उपयुक्त शर्तों पर विदेशी पूँजी मिल सके, तो उसका स्वागत किया जाय।

६ अप्रेल सन् १९४८ को जारी किये गये औद्योगिक नीति सम्बन्धी घोषणा पत्र मे राष्ट्रीय सरकार ने भारत मे विदेशी पूँजी के प्रति अपनी नीति को स्पष्ट किया। इस प्रस्ताव मे सहयोग से सम्बन्धित निम्न शर्तों को स्पष्ट किया गया था :—

(१) विद्यमान विदेशी स्वार्थों से यह आशा कि वे भारत की औद्योगिक नीति की सामान्य आवश्यकताओ को पूरा करेगे। भविष्य मे विदेशी पूँजी के आयात के लिए उसे भारतीय पूँजी के समान सुविधा मिलेगी तथा पारस्परिक लाभ के आधारो की खोज की जायेगी।

(२) विदेशी पूँजी के लिये द्रव्य स्थानान्तरण की विद्यमान सुविधायें मिलती रहेगी और यदि आवश्यक हुआ तो उन्हे खरीदा जा सकता

है। किन्तु विक्रय राशि के स्थानान्तरण की पूर्ण सुविधा देकर ही ऐसा किया जावेगा।

(३) खरीदे जाने की दशा में, विदेशी हितो को उचित एवं न्यायसंगत क्षति पूर्ति दी जावेगी।

(४) जब उपयुक्त भारतीय उपलब्ध न हो, तो टेक्नीकल योग्यता एवं अनुभव वाले पदो पर अभारतीयो की नियुक्ति के प्रति सरकार को कुछ आपत्ति न होगी, लेकिन ऐसे पदो के लिये विदेशी सस्था भारतीयो की ट्रेनिंग के लिये व्यवस्था करेगी।

(५) सरकार किसी भी तरह से भारत मे ब्रिटिश या अन्य अ-भारतीय हितो को नुकसान नहीं पहुँचावेगी, बशर्ते वे अर्थ व्यवस्था के विकास मे रचनात्मक एव सहकारिक भूमिका चुकाते रहे।

तत्पश्चात् अनेक अवसरो पर भारतीय प्रधान मत्री एव वित्त मंत्री द्वारा इस नीति को पुन. दोहराया गया है।[1] भारतीय योजना आयोग ने भी इस नीति को स्वीकार किया। बाद मे विदेशी पूँजी के आयात को प्रोत्साहित करने के लिये सरकार ने ऐसे सब विदेशो पूँजीपतियो को लाभ के भुगतान की विशेष सुविधा प्रदान की है जो अपनी पूँजी सन् १९५० से सरकार द्वारा स्वीकृत उद्योगो मे लगावेंगे। किन्तु यह एक आवश्यक शर्त बना दी गई है कि भारत मे विदेशियो द्वारा प्रारम्भ किये जाने वाले प्रत्येक भावी उद्योग मे प्रबन्ध एव स्वामित्व मे मुख्य हिस्सा भारतीयो का होगा। विद्यमान विदेशी पूँजी कम्पनियो की दशा मे विद्यमान सुविधायें केवल दो शर्तों पर ही जारी रखी जायेंगी —(i) वे भारतीय हितो के प्रति भेदभाव की नीति नही अपनायेगी, और (ii) वे भारतीय कर्मचारियो को सभी प्रकार के कामो के लिये प्रशिक्षित करने के हेतु सभी सभव सुविधायें देगी।

---

1. "The stress on the need to regulate, in the national interest, the scope and manner of foreign capital arose from past association of foreign capital and control with domination of the economy of the country. But circumstances to day are quite different The obj ct of our regulation should, therefore, be the utilisation of foreign capital in a manner most advantageous to the country. Indian capital needs to be supplemented by foreign capital, not only because our national savings will not be enough for the rapid development of the country on the scale we wish, but also because in many cases scientific, technical and industrial knowledge and capital equipment can best be secured along with foreign capital" (Prime Minister Nehru in a statement in Parliament on April 6, 1948).

द्वितीय पच-वर्षीय योजना के आरम्भ पर विदेशी पूंजी के विरुद्ध पुनः वाद-विवाद छिड गया। सभवत. यह विचार प्रथम पच-वर्षीय योजना के काल मे पर्याप्त विदेशी सहायता न मिलने के कारण उत्पन्न हुआ था। सरकारी प्रवक्ताओ व नेताओं ने भी जो बयान दिये है उनसे यह प्रगट होता है कि उनका भी विश्वास विदेशी पूँजी मे कम हो गया था। दिसम्बर सन् १६५५ मे प्रधान मन्त्री ने कांग्रेस की ससदीय पार्टी के समक्ष कहा था कि भविष्य मे भारत अपनी विकास योजनाओ के लिये विदेशी सहायता पर निर्भर नही रह सकता। दिसम्बर १२ सन् १६५५ को वित्त मन्त्री कृष्णमाचारी ने ऐसोसियेटेड चेम्बर ऑफ कामर्स को सम्बोधित करते हुये कहा था कि "मैं व्यक्तिगत रूप से इस बात के बहुत विरुद्ध हूँ कि विदेशी सहायता के लिये हाथ फैलाया जाय। मैं भीख लेने से घृणा करता हूँ, क्योकि स्वभावत. जो व्यक्ति हमे सहायता देगा वह अपनी शर्तें हमसे मनवायेगा। स्वतत्रता प्राप्त करने के लिये जो सघर्ष हमे करना है उसकी याद हमारे हृदयो मे अब तक नई है तथा किसी भी दशा मे हम अपनी स्वतत्रता का जरा सा भी अश न छोड़ेंगे।"[1] श्री गुलजारीलाल ने भी काग्रेस के सरदारनगर अधिवेशन मे १० फरवरी सन् १६५६ को आर्थिक प्रस्ताव पर भाषण देते हुये कहा था कि "हमे अपने पैरों पर खडा होना है। हमे अपनी आवश्यकतायें पूरी करने के लिये अन्य देशो की ओर नही ताकना चाहिये। निसन्देह राष्ट्रो को एक दूसरे पर कई बातो के लिये निर्भर रहना पडता है। किन्तु किसी के दान पर निर्भर होना सम्मानजनक नही है।"[2] मोटे तौर पर सन् १६५६ की औद्योगिक नीति में भी विदेशी पूँजी का सहयोग सम्मानजनक शर्तों पर लेना स्वीकार किया गया है।

विदेशी पूँजी की वर्तमान स्थिति—

किसी उद्योग मे विदेशी पूँजी के विनियोग के प्रार्थना पत्रों पर विचार करते समय निम्न नियमो का ध्यान रखा जाता है :—

(i) प्रार्थना पत्र किसी निर्माणी कार्यक्रम से सम्बन्धित होना चाहिये ;

(ii) विदेशी विनियोग उस क्षेत्र मे होना चाहिये जहाँ स्वदेशी पूँजी पर्याप्त नही है या भारत मे टैक्नीकल जानकारी उपलब्ध नही है।

---

1. "I am personally very much against going and asking for foreign aid. I hate to beg, thouh I am a born Brahmin and mendicant. For, naturally a man who gives us aid lays down his terms. The fight that we had to put up for the attainment of liberty is still fresh in our mind and we shall not barter an inch of that liberty—not for a mess of pottage."

2 "We have to stand on our own legs. We should not look to others for meeting our needs Nations, of course, had to depend upon each other for a number of things. But to place reliance on some body els's charity is not honourable."

(iii) उस विनियोजन के द्वारा, आयात मे कटौती होकर, विदेशी मुद्रा की बचत होती है। या विदेशों को निर्यात मे वृद्धि होकर, विदेशी मुद्रा की आय बढ़ती हो।

(iv) सम्बन्धित कार्यक्रम उत्पादकता मे वृद्धि करने वाला हो।

विदेशी विनियोगो के लिये कोई पूर्व निर्धारित क्षेत्र नही है। प्रत्येक प्रस्ताव पर राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के लिये उसकी उपयोगिता के आधार पर विचार किया जाता है। हां, उन विशिष्टीकृत उद्योगो को प्राथमिकता दी जाती है, जिनमे एक उच्चकोटि की टेक्नीकल कुशलता एवं जानकारी की आवश्यकता पडती है। जिन उद्योगो मे भारतीय पूँजी आगे बढने से हिचकिचाती है, शर्माती है उनको भी प्राथमिकता दी जाती है। इसका अर्थ यह नही है कि जिन उद्योगो मे भारतीय पूँजी ने कुछ पैर जमा लिये हैं उनमे विदेशी विनियोग को अनुमति नही मिलेगी। यदि टेक्नीक एव किस्म की दृष्टि से आन्तरिक क्षमता अपर्याप्त हो तो अनुमति दी जा सकती है। सरकार को उपभोक्ताओं के हित का भी ध्यान रखना पडता है। जब तक प्रतिस्पर्द्धा उचित है तथा देश के हितो के लिये अन्ततोगत्वा हानिकारक नही है, तब तक उपभोग वस्तुओ के उद्योगो मे भी विदेशी पूँजी का स्वागत होगा। इस श्रेणी मे साइकिलो, बटनो, ड्रगो, खेलकूद का सामान, इलेक्ट्रिक मोटर्स, रेडियो, इलेक्ट्रिक लैम्प, ब्लेड, आवश्यक तेल आदि आते हैं। सरकार उन विदेशी योजनाओ को निरुत्साहित करती है जो कि देश को स्थायी लाभ प्रदान नहीं कर सकगे, जैसे कि वित्तीय, व्यापारिक या वाणिज्यिक सस्थाओ मे विनियोग। कुछ व्यापारिक सस्थाओ मे भी विदेशी पूँजी को स्वीकृति दी गई है, लेकिन ऐसा उन्ही मामलो मे किया गया है जहां टेक्नीकल ज्ञान क्रय विक्रय के लिये आवश्यक था, जैसे स्थूल मिट्टी हटाने वाली मशीन, खानो के साज-सामान आदि का क्रय विक्रय।

अभी हाल मे केन्द्रीय वित्त मन्त्री ने विदेशी पूँजी के सम्बन्ध मे सरकार की नीति को निम्न प्रकार स्पष्ट किया था —"यदि इस देश मे बिना विदेशी टेक्नीकल जानकारी के कुछ उद्योगो की स्थापना करना असम्भव है, तो विदेशी विनियोगो को प्रोत्साहित किया जाता है। यदि कोई स्वदेशी व्यापारी उन्हे स्थापित कर रहा है, तो हम उसे सब तरह का प्रोत्साहन देते हैं। इसके विपरीत, यदि ये उद्योग स्थापित नहीं किये गये है और कोई विदेशी उनकी स्थापना के लिये आता है तो उससे हम कह देते हैं कि उसे भारतीय सहयोग प्राप्त करना चाहिये, भारतीय सहयोग प्राप्त किये बिना उसे हम प्रोत्साहन नही देगे। यह भारतीय सहयोग सामान्यत ७०% होना चाहिये। कुछ ऐसी भी परिस्थितियाँ हैं जिनमे उद्योग की स्थापना बहुत महत्त्वपूर्ण है, किन्तु भारतीय सहयोग नहीं मिल रहा है। ऐसी दशाओ मे हम विदेशी को इस देश मे उस उद्योग की स्थापना करने की अनुमति दे देते है। मोटे तौर पर सरकार इसी नीति का अनुसरण कर रही है तथा रोजगार की सभावनाओ को एव सुरक्षा तथा आत्मनिर्भरता के लक्ष्यो के

ध्यान मे रखते हुये वह उद्योगों की स्थापना पर राय देती है।" सामान्यतः निम्न विशेषताओं वाले विदेशी उपक्रमों को अनुमति मिल गई है :—

(१) जो कि भारत के आर्थिक विकास के लिये अत्यावश्यक हो और जिनमे बहुत अधिक पूंजी या उच्च कोटि के टेक्नीकल ज्ञान की आवश्यकता पडती हो।

(२) जो भारतीय व्यापारियो, टेक्नीशियनो और श्रमिको को उद्योग में अधिक प्रशिक्षण देते हो,

(३) जो भारत की विदेशी मुद्रा सम्बन्धी स्थिति मे सुधार करते हो।

किन्तु, निम्न विदेशी उपक्रमो को अनुमति नही दी गई है :—

(१) जो विलासिता से सम्बन्धित उपक्रम हो अर्थात् जो कि भारत के वर्तमान आर्थिक विकास कायक्रम या वर्तमान उपभोग आवश्यकताओं के लिये जरूरी नही।

(२) जो भारतीय उद्योगो (विशेषत. कुटीर उद्योगो) से प्रतिस्पर्द्धा करते हैं, जबकि ये भारतीय उद्योग वर्तमान माग को अच्छी तरह पूरा कर रहे हैं।

(३) जो सरकार की राय मे पैंकिग या असेम्बिलिंग का कार्य ही करते हैं, निर्माण कार्य नही।

(४) जो व्यापार एव वित्त क्षेत्र मे सम्बन्धित हैं, जिनमे भारतीय व्यवसाई पर्याप्त सेवा कर रहे हैं।

विदेशी व्यावसायिक विनियोग

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की परिभाषा के अनुसार विदेशी व्यावसायिक विनियोग (Foreign Business Investments) मे सरकारी क्षेत्र द्वारा प्राप्त विदेशी पूंजी सम्मिलित है। सरकारी क्षेत्र में निम्न का समावेश किया जाता है—केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारे, स्टेटुटरी कॉरपोरेशन्स, पोर्ट ट्रस्ट व म्यूनिसिपैलिटियाँ। सरकारी स्वामित्व वाली सयुक्त स्कन्ध कम्पनियो को अ-सरकारी क्षेत्रो मे सम्मिलित किया जाता है। सन् १९५६ के अन्त मे कुल विदेशी व्यावसायिक विनियोग ५०६ ३ करोड था। विभिन्न व्यवसायो मे इसका विवरण इस प्रकार था :—

विदेशी व्यावसायिक विनियोग

(व्यवसाय क्रम से)

(करोड रुपयो मे)

क्रम सख्या	व्यवसाय	१९४८	१९५६
१.	निर्माण	७१'९	१८६'०
२.	वाणिज्य	६४'३	१०९'६
३.	लोकोपयोगी सेवायें व यातायात	३१ २	५९'५
४.	खानें	११'५	१०'८
५.	वित्त	६'९	२८'१
६.	बगीचा	५२'२	८८'२
७.	प्रबन्ध अभिकर्त्ता	१४'४	२२'९
८.	अन्य	३'३	१ १
		२५५'८	५०६'३

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि विदेशी विनियोग सन् १९४८ की अपेक्षा सन् १९५६ मे दूने हो गये, निर्माणी व्यवसाय, वाणिज्यिक उपक्रमो, लोकोपयोगी सेवाओ, प्रबन्ध अभिकर्त्त्व गृहों व वित्तीय व्यवसायो मे विदेशी विनियोग बढा है, किन्तु खानो मे कम हो गया है। निम्न तालिका मे विनियोग करने वाले देश दिखाये गये हैं :—

विदेशी व्यावसायिक विनियोग

(देश-क्रम से)

(करोड रुपयो मे)

क्रम सख्या	देश का नाम	१९४८	१९५६
१.	ब्रिटेन	२०६'०२	४०६'०८
२.	अमेरिका	११'१७	४६'८४
३.	जर्मनी	'०८	२'७६
४.	जापान	१७	'१६
५.	स्विटजरलैण्ड	५'३५	८'२२
६.	पाकिस्तान	८'४१	४'१७
७.	विश्व बैंक		१४'८२
८	अन्य देश	२४'६३	२३'२५
		२५५'८३	५०६'३०

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि विदेशी विनियोगकों मे ब्रिटेन का प्रमुख स्थान है। अमेरिका के भी विनियोग इस देश मे काफी है। अब विश्व बैंक का योगदान बढता जा रहा है।

पंच-वर्षीय योजनायें एवं विदेशी पूँजी—

प्रथम पंच-वर्षीय योजना मे देश के सम्मुख विदेशी पूँजी का प्रश्न 'संकट' के रूप में नही, आया, क्योकि इस अवधि मे विकास कार्यों की गति अपेक्षाकृत काफी मन्द रही। स्वर्गीय रफी अहमद किदवाई के परिश्रम से देश की खाद्यान्न स्थिति भी काफी सुधर गई थी। साथ ही औद्योगिक विकास-कार्य जिनके लिए विदेशी विनिमय एक 'अवश्य' है, नाम मात्र के लिए ही प्रारम्भ हुए थे। इस प्रकार से विदेशी मुद्रा की मांग करने वाले उक्त दोनो क्षेत्रो मे आवश्यक व्ययो के बाद भी निश्चित धन मे से २०० करोड रुपयो का विदेशी विनिमय-अवशेष दूसरी योजनावधि के लिए प्राप्त हुआ।

दूसरी योजनावधि मे औद्योगिक विकास पर बहुत बल दिया गया और दैव-योग से हमारी लगभग आत्मनिर्भर खाद्यान्न स्थिति भी बिगड गई। फिर तो देश को पेट और पीठ दोनो के लिए विदेशो मे घूमना पडा। पेट और पीठ दोनो एक दूसरे के पूरक न होकर प्रतिस्पर्द्धी बन गए। दोनो के बीच समन्वय एव सन्तुलन की समस्या खडी हो गई। परिणाम यह हुआ कि दूसरी योजना के अन्तिम वर्षो म अपेक्षित विदेशी विनिमय 'सकट' प्रथम दो वर्षों के बाद ही देश के सामने आ गया। किन्तु देश के पास एक सम्बल था, वह था ७४८ करोड रुपए का पौड-पावना, जो आज घटकर केवल ११३'८७ करोड रुपए रह गया है।

अपने प्रचुर प्राकृतिक उपहारो एव मानव साधनो के उपयोग से समृद्ध समाज के निर्माण के लिए देश ने उत्तरोत्तर बढते हुए विदेशी पूँजी के आयात को रोकना उचित नही समझा और खाद्यान्नो के लिए सार्वजनिक विनिमय ४८० का आश्रय लिया। क्षुधा की शान्ति हुई और पीठ पर मित्र राष्ट्रो की सहानुभूति। सत्ताधारियो के गुट के प्रति हमारी तटस्थ विदेशी नीति के बावजूद दूसरी योजना की अवधि मे विदेशी वित्तीय सहायता ८०० करोड रुपयो से, २५ प्रतिशत बढकर, १,००० करोड रुपए हो गई, इसका वार्षिक विवरण निम्न तालिका से स्पष्ट है :—

द्वितीय योजना में विदेशी सहायता

वित्तीय वर्ष	योजना लागत	विदेशी सहायता (करोड रु० मे)	स्तम्भ (३) (२) के प्रतिशत के रूप मे
(१)	(२)	(३)	(४)
१९५६-५७	६३४	४२	६ ६२
१९५७-५८	८८२	९५	१० ७७
१९५८-५९	९९८	२१७	२१ ७४
१९५९-६०	१,००६	२७०	२६ ९४
१९६०-६१ (सम्भाव्य)	१,०८०	३७६	३४·८१
पंचवर्षीय योग	४,६००	१,०००	२१ ७४

यही नही, रिजर्व बैंक की मई सन् १९६१ की बुलेटिन के अनुसार भारत के निजी क्षेत्र मे सन् १९५६-६० तक के ५ वर्षों मे विदशी पूंजी (शुद्ध) लगभग २०० करोड़ रुपए या ४० करोड रुपए प्रतिवर्ष की दर से लगाई गई है।

तृतीय पंच-वर्षीय योजना मे राष्ट्रीय विकास परिषद् ने सार्वजनिक क्षेत्र मे ७,५०० करोड रुपयो का परिव्यय स्वीकार किया है। ५,७५० करोड रुपए की विदेशी विनिमय की आवश्यकता सार्वजनिक एव निजी, दोनो क्षेत्रो के लिए निर्धारित की गई है। तीसरी योजना से सम्बन्धित विदेशी विनिमय के सम्बन्ध मे दो बातें यहा उल्लेखनीय हैं। प्रथम तो यह कि दो योजनाओ के विपरीत, तीसरी योजना का प्रारम्भ ऐसे समय हो रहा है जब हमारा पौंड-पावना बहुत कम रह गया है। दूसरा यह कि यह निर्णय लिया जा चुका है कि इस कोष से अब आहरण बिल्कुल ही नही होगा। इसलिए आगामी पाच वर्षों मे हमे अपने आयात-निर्यात पर विशेष रूप से दृष्टि रखनी है, ताकि आयात के विपरीत हमारा निर्यात-वर्द्धन अभियान अपने लक्ष्य की पूर्ति कर सके। निर्यात का पुनर्निरीक्षित लक्ष्य सार्वजनिक क्षेत्र मे अगले पाच वर्षों के लिए अन्तिम रूप मे ३,७०० करोड़ रुपए, (३,४५० क० रु० के स्थान पर) निर्धारित किया गया है।

सार्वजनिक क्षेत्र मे आगामी पाच वर्षों मे होने वाले विदेशी मुद्रा के व्यय का अन्तिम अनुमान ५५,००० लाख डालर या २,६०० करोड रुपए है, जिसमे सार्वजनिक विनिमय ४८० के अन्तगत प्राप्त होने वाली १३,००० लाख डालर या ६०८ करोड रुपयो की सहायता शामिल नही है। इस विषय मे भारतीय वित्त मन्त्रालय का अनुमान निम्न प्रकार है—

तीसरी योजना में विदेशी सहायता

क्रमांक	देशापश का नाम	सहायता की राशि
१	भारत सहायता सघ	३१,००० लाख डालर
२	सोवियत सघ तथा अन्य साम्यवादी राष्ट्र	८,००० ,, ,,
३	व्यक्तिगत (विदेशी) विनियोजर	३,००० ,, ,,
४	विश्व बैंक एव अन्य सस्थाएं	१३,००० ,, ,,
योग	(२,६०० करोड रुपए)	५५,००० लाख डालर

अभी हाल ही मे भारत सहायता सघ, जिसके सौभाग्यवश अब फ्रान्स और विश्व बैंक भी कर्मण्य सदस्य बन गए हैं, के वाशिंगटन मे हुए निर्णय के अनुसार अगले दो वर्षों (सन् १९६१-६२ और सन् १९६२-६३) मे निम्न प्रकार से सहायता प्राप्त होगी :—

भारत सहायता संघ द्वारा विदेशी सहायता के वादे

(लाख डालर मे)

क्रमाक	सदस्य देशो के नाम	सहायता की राशि १९६१-६२	सहायता की राशि १९६२-६३	योग (३) (४)
१.	२	३	४	५
१.	कनाडा	२८०	२८	५६
२.	फ्रास	१५०	१५	३०
३.	पश्चिमी जर्मनी	२,२५०	१३९	३६४
४.	ब्रिटेन	१,८२०	६८	२५०
५.	जापान	५००	३०	८०
६.	सयुक्तराष्ट्र अमेरिका	५,४५०	५००	१,०४५
७.	विश्व बैंक एव अन्य	२,५००	१५०	४००
	योग	१,२९५	९३०	२,२२५

कहना न होगा कि विदेशी मुद्रा बाजार मे ग्राहको की सख्या बढती जा रही है और विक्रेता पूर्ववत् ही हैं। ऐसी दशा मे भी मित्र राष्ट्रो, विशेषकर भारत सहायता संघ, के उत्साहपूर्ण प्रोत्साहन से हमे अपने आयोजित विकास के लिए आवश्यक विदेशी सहायता समय-समय से मिलती जा रही है। मुख्यत: अमेरिका ने

हमे सर्वाधिक सहायता दी है और राष्ट्रपति कैनेडी की भारत एव अन्य अल्प-विकसित राष्ट्रो के प्रति सम्प्रति घोषित उदार ऋण नीति हमारे साहस को बढ़ावा देती है। राष्ट्रपति के अनुसार भारत ने सयुक्तराष्ट्र अमेरिका से प्राप्त सहायता का बहुत ही बुद्धिमता और उचित प्रकार से उपयोग किया है। विश्व बैंक का प्रयत्न भी कम सराहनीय नही। यह विदेशी सहायता के शुभ लक्षण हमे आशावादी रहने को विवश करते हैं। यह भी आशा है कि इटली, नीदरलैंण्ड, आस्ट्रेलिया आदि देश भी भारत सहायता क्लब के निकट भविष्य मे सदस्य बन जायेंगे।

विदेशी पूँजी प्राप्त करने में बाधायें—

जिन घटको न विदेशी पूँजी के विश्वास को हिला दिया है वे प्रायः वही हैं जिन्होंने प्राइवेट उपक्रम (भारतीय या विदेशी) की भावना को कुप्रभावित किया है। ये घटक मुख्यतः निम्नलिखित हैं :—

विदेशी पूँजी प्राप्त करने में बाधाये

(१) प्रतिकूल विनियोग वातावरण का अभाव।
(२) अपरिवर्तनीयता की जोखिम।
(३) सम्पति का अधिग्रहण।
(४) सीमित आय।
(५) भारी करारापण।
(६) विनियोग के अवसरो की अनभिज्ञता।
(७) कर्मचारियो का भारतीयकरण।
(८) भारतीय व्यवसायियो का विरोध।

(१) प्रतिकूल विनियोग वातावरण—स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद से यह देखा गया है कि विनियोजक मे उत्साह का बहुत अभाव हो गया है। इसका प्रमुख कारण सरकार की कोई कडी कार्यवाही नही वरन् असहानुभूतिपूर्ण वातावरण है। सम्पूर्ण बौद्धिक वातावरण बचत, उपक्रम एव विनियोग के लिये अनुकूल प्रतिकूल है। सविधान मे सशोधन करके प्राइवेट सम्पत्ति के अधिग्रहण पर पुनर्विचार करने के न्यायिक अधिकार को समाप्त कर दिया गया है। कम्पनी अधिनियम सन् १९५६ मे उचित औद्योगिक क्रियाओ पर अधिक नियन्त्रण व प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं। 'समाज की समाजवादी रूपरेखा' (Socialistic pattern of society) से हटकर 'समाजवादी समाज' (Socialist Society) पर बल दिये जाने से अग्नि मे घी पड गया है। औद्योगिक नीति प्रस्ताव सन् १९५६ मे सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करने से भी विनियोजकों के उत्साह पर पाला पड गया है।

यदि हम गम्भीरता से विचार करें तो, मालूम होगा कि उपरोक्त दृष्टिकोण सही नही है। समाजवादी समाज का लक्ष्य अपनाने का अर्थ यह नही है कि प्राइवेट उपक्रम को समाप्त कर दिया जायेगा। सच तो यह है कि प्राइवेट उपक्रम के लिये बहुत व्यापक क्षेत्र छोड दिया गया है। गत वर्षों मे जो औद्योगिक प्रगति हुई है उससे साफ जाहिर है कि प्राइवेट उपक्रम को सीमित या दबाया नही गया है। सम्पत्ति के

अधिग्रहण के सम्बन्ध मे क्षतिपूर्ति की व्यवस्था मे परिवर्तन अवश्य किया गया है, लेकिन साथ साथ यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि किसी को भी उसकी सम्पत्ति से कानूनी उपायो के अलावा अन्य तरीको से वंचित नही किया जायेगा। हाल मे ही इम्पीरियल बैंक के राष्ट्रीयकरण के अवसर पर शेयरहोल्डरो को पर्याप्त क्षतिपूर्ति देना उक्त भावना का प्रमाण है। कम्पनी अधिनियम के नियन्त्रणो का उद्देश्य भी प्राइवेट उद्योग की प्रबन्ध व्यवस्था मे सुधार करना है, ताकि विनियोजको का विश्वास कोरपोरेट उपक्रमो मे पुन. स्थापित हो जाय।

(२) अपरिवर्तनीयता की जोखिम—विदेशी विनियोजको को लाभ, ब्याज एव पूँजी के स्थानान्तरण के लिये विदेशी मुद्रा की सुविधायें मिलना अति आवश्यक है। भारत मे विदेशी विनिमय पर सन् १६३६ से कन्ट्रोल है, जिसे सन् १६४७ के विदेशी विनिमय नियन्त्रण अधिनियम सन् १६४७ द्वारा बढा दिया गया है। दुर्लभ मुद्रा देशो के सम्बन्ध मे ये नियन्त्रण सुलभ मुद्रा देशो की तुलना में अधिक कडे है। इन नियन्त्रणो का उद्देश्य विदेशी मुद्रा का अपव्यय होने से रोकना है। चूँकि भारत अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एव अन्य अन्तर्राष्ट्रीय समझौतो का सदस्य है, इसलिये ये नियन्त्रण उसे धीरे-धीरे हटा लेन होगे। वैसे भी भारत मे विदेशी फर्मो को सामान्यत. लाभ अपने देश को भेजने की स्वतन्त्रता है। हाँ, विदेशी मुद्रा के लिये प्रार्थना-पत्र देते समय उन्हे अपना अकेक्षित हिसाब फायल करना पडता है।

(३) सम्पत्ति का अधिग्रहण—शीघ्र व पर्याप्त हर्जाना दिए बिना सम्पत्ति का अधिग्रहण कर लेना भी एक गम्भीर बाधा है। यह तर्क दिया गया है कि जब तक राष्ट्रीयकरण के कार्यक्रमो मे अनिश्चितता रहेगी तब तक भावी विनियोगक के उत्साह पर अकुश लगा रहेगा। सौभाग्य से भारत सरकार ने इस प्रश्न पर अपनी नीति घोषित कर दी है। स्टर्लिंग क्षेत्र, नार्वे, स्वीडन और डेन्मार्क के निवासियो की पूँजी का स्वतंत्रतापूर्वक पुनर्भुगतान किया जाता है। अन्य देशो के निवासियो की पूँजी भी, जो कि सरकार द्वारा स्वीकृत प्रोजेक्ट मे १ जनवरी सन् १६५० के बाद विनियोग की गई हो, किसी भी समय मूल विनियोग एव पुनर्विनियोग की सीमा तक लौटा दी जावेगी, लेकिन अमेरिकी पूँजी के सम्बन्ध मे अभी ऐसी सुविधाओ का अभाव है। अब सरकार अमेरिका की एक गारन्टी योजना पर विचार कर रही है।

(४) सीमित आय.—रिजर्व बैंक द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार यू० के० एव यू० एस० ए० कम्पनियो को विनियोगो पर होने वाली आय सन् १६५५ मे १०% थी, जबकि सन् १६५३ मे इससे अधिक अर्थात् १२% थी। अमेरिकी कम्पनियो को ब्रिटिश कम्पनियो की अपेक्षा अधिक लाभ हुआ है। कहा जाता है कि विदेशी कम्पनियो की आय मे कमी होना विदेशी पूँजी को आकर्षित करने के मार्ग मे एक बाधा है। किन्तु इस सम्बन्ध मे यह नही भूलना चाहिए कि भारतीय कम्पनियो की अपेक्षा विदेशी कम्पनियो की आय अधिक है (क्रमश. ६ ४ एव ६ ६% सन् १६५५ मे एव ६ ८% एव १२ १% सन् १६५३ मे)। यही नही, विदेशी कम्पनियो का कार्य

पैंट्रोल, प्लान्टेशन, सिग्रेट व तम्बाकू तथा अन्य चुने हुये क्षेत्रो तक सीमित था, जबकि भारतीय कम्पनियो को एक विस्तृत क्षेत्र मे कार्य करना पडता है । स्वदेश मे भी विदेशी कम्पनियाँ इतनी आय नही प्राप्त करती जितनी कि वे अपने विनियोगो पर भारत मे प्राप्त करती हैं ।

(५) भारी करारोपण—यह तर्क दिया जाता है कि अर्द्धविकसित देशों मे करारोपण का ऊँचा स्तर होने से वहाँ विदेशी पूजी के आगमन मे बाधा पडती है । लेकिन यह तर्क गलत है । अमेरिका के प्राइवेट विनियोजक विकसित देशो मे अपनी आय का ४०% भाग करा के रूप मे देते है, जबकि अर्द्धविकसित देशो मे उन्हें २५% भाग ही देना पडता है । यह भी कहा गया है कि दुहरे कर की व्यवस्था भी पूँजी के आवागमन मे बाधक है । पूजी निर्यात करने वाले देश मे कर-अधिकारी अपने कर-क्षेत्र मे निवासी व्यक्तियो व कम्पनियो की कुल विश्व आय पर कर लगाते व वसूल करते हैं । पूँजी आयात करने वाले देश म वहाँ के कर-अधिकारी भी विदेशी कम्पनियो की आय पर कर लगाते है । यह दुहरा करारोपण व्यापार व विनियोग दोनो पर ही बुरा प्रभाव डालती है । दुहरे करारोपण की समस्या सौभाग्य से अब लगभग सुलझ गई है, क्योकि प्रमुख पूँजी निर्यात करने वाले देशो ने अपनी ओर से करारोपण मे छूट देना आरम्भ कर दिया है । यू० के०, लका, अदन, युगान्डा व अन्य कुछ देशो मे जिस आय पर कर लगता है उस पर भारत मे भी कर लगाने की दशा मे सरकार विशेष राहत देती है । अभी हाल मे भारत सरकार के कुछ अधिकारी यूरोपीय देशो के भ्रमण पर गये थे । उनके प्रयासो से प० जर्मनी और स्वीडन की सरकारो से कर सम-झौते हो गये हैं । अन्य देशो से भी वार्ता जारी है । इस प्रकार दुहरे कर की समस्या बहुत कुछ हल की जा चुकी है ।

(६) विनियोग के अवसरो की अनभिज्ञता—भारत मे विनियोग के अव-सरो के बारे में सूचना के अभाव तथा गलत सूचना होने के कारण विदेशी पूँजी का प्रवाह धीमा रहा है । विदेशी विनियोजको को विनियोग के विभिन्न क्षेत्रो की केवल सूचना देना ही पर्याप्त नही है वरन् उसकी रुचि को भी जाग्रत करना चाहिये । इसके लिये 'भारत मे विनियोग पथ प्रदर्शिका' जैसी पुस्तको के प्रकाशन की आवश्यकता है । यह कार्य वित्त मन्त्रालय या कोई प्राइवेट सस्था भी भारत सरकार के सहयोग से कर सकती है । पूँजी निर्यात करने वाले देशा का भी अपने विनियोजको के प्रति यह कर्त्तव्य है कि वे विनियोग सम्बन्धी सुअवसरो की सूचना का सग्रह करें । अमेरिका के वाणिज्य विभाग ने तो एक विदेशी विनियोग कार्यालय पृथक ही स्थापित कर दिया है ।

(७) कर्मचारियो का भारतीयकरण—विदेशी कर्मचारियो की नियुक्ति पर प्रतिबन्ध लगाना भी एक बाधक घटक माना जाता है । सन् १९५२ से सरकार समय समय पर विदेशी पूँजी और विदेशी सम्बन्ध रखने वाली सभी फर्मों मे काम करने वाले उच्च कर्मचारियो की गणना कराती रहती है । इससे पता चला है कि कर्मचारियो के भारतीयकरण की प्रवृत्ति तेजी पर है । उच्च पदो पर भारतीयो की सख्या विशेष

रूप से बढ रही है। विदेश नियत्रित फर्मों मे १,००० रु० या इससे अधिक वेतन पाने वाले भारतीय कर्मचारियों का प्रतिशत सन् १९४७ मे ७.९ से बढ कर सन् १९५६ मे ४२% हो गया था, जबकि निम्न वेतन वर्ग (३०० रु० से ४०० रु० तक) सभी कर्मचारी भारतीय थे। विदेशी स्वार्थ भारतीयकरण की प्रवृत्ति को पसन्द नही करते। अत. यह सुझाव दिया गया है कि विदेशी कम्पनी को अपना राष्ट्रीय स्वभाव रखने की अनुमति होनी चाहिये, उच्च प्रबन्ध पदो पर अपने ही देशवासी नियुक्त करने का अधिकार होना चाहिये और उचित प्रमोशन देने की सुविधा होनी चाहिये। इस सम्बन्ध मे हमारा मत है कि विदेशी फर्में भारतीयो को सरल प्रमोशन तो न दें किन्तु उनकी ट्रेनिंग की पूर्ण व्यवस्था कर तथा उच्च प्रबन्ध-पदो पर अपने ही देशवासियो का एकाधिकार रखने की मनोवृत्ति छोड दें।

(८) भारतीय व्यवसाइयो द्वारा विरोध—विदेशी विनियोजक यह आरोप लगाते हैं कि भारतीय व्यवसाइयो का दृष्टिकोण विदेशी पूँजी के आगमन के प्रति हिचकिचाहट पूर्ण है। उदाहरण के लिये, जब एक साबुन बनाने वाली विदेशी कम्पनी ने अपना उत्पादन बढाने के लिये विदेशो से मशीनें मगानी चाही या अपने मूल्य कम करने चाहे तो देशी साबुन निर्माताओ ने सरकार से इसमे हस्तक्षेप करने को कहा। इस आरोप का उत्तर यह है कि सरकार ने अपने रुख मे देशी उत्पादको के दबाव पर कोई परिवर्तन नही किया। वह अपने विदेशी सहयोग की नीति पर पूर्ववत कायम है। अतः विदेशी विनियोजको का उक्त तर्क निराधार है।

उपसहार—विदेशी पूँजी का भविष्य—

यदि हम विदेशी पूँजी के प्रयोग से लाभ उठाना चाहते हैं, तो उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी होंगी, ऐसी शर्तो पर विदेशी पूँजी प्राप्त करनी होगी जोकि हमारी आकाक्षाओ की पूर्ति मे बाधक न हो और साथ ही विदेशी विनियोजकों को आकर्षण भी रहे। विदेशियो को व्यावसायिक सुरक्षा का आश्वासन देना चाहिये, जिसके लिये देश मे एक सवैधानिक, ईमानदार तथा स्थाई सरकार की आवश्यकता है। विदेशी पूँजी का निर्यात करने वाले देशो का भी चाहिये कि अर्द्ध-विकसित देशो के प्रति वे अपनी जिम्मेदारियो को अधिक उदारता से निभावें। उनको स्वेज नहर व ईरान तेल कम्पनी के राष्ट्रीयकरण की घटनाओ से व्यर्थ आतकित नही होना चाहिये, क्योकि इन घटनाओ के पीछे तो साम्राज्यवादी शोषण का लम्बा इतिहास है। इन घटनाओ मे आर्थिक घटको की अपेक्षा राजनैतिक घटको का प्रमुख प्रभाव था। औद्योगिक देशो का चाहिये कि आर्थिक उद्देश्यो के लिये सहायता कार्यक्रमो एव सामरिक तथा अनार्थिक सहायता कार्यक्रमो मे भेद करे।

यह भी आवश्यक है कि सहायता देने वाले देश सहायता के उद्देश्यो पर पुनविचार करें। अभी तक विकास कार्यक्रमो को लाभ का साधन माना जाता है और यह आशा की जाती है कि सहायता देने वाले देश अधिक सम्पन्न हो सकेंगे। परन्तु

वास्तविकता यह है कि सम्पन्नता अविभाज्य है एव किसी देश मे दरिद्रता होना शेष ससार के लिये खतरा है। अत. यदि विकसित देश पिछड़े हुये देशों को आर्थिक सहायता देते है और उनके विकास मे सहायक होते है, तो इससे उनकी अपनी सम्पन्नता का वर्तमान स्तर कायम रह सकेगा, अन्यथा सम्पन्नता बढ़ना तो दूर उसके घटने की ही सभावना है।

विदेशी सहायता की सभावनाओ का पता लगाने के लिये भारत के जो प्रतिनिधि एव शिष्ट मडल विदेशो मे गये है उन्हे वहा से अच्छा प्रत्युत्तर मिला है। उनकी रिपोर्टों से पता चलता है कि यदि अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर दिया जाय, तो अपार मात्रा मे विदेशी पूँजी प्राप्त हो सकती है। विदेशी व्यवसाइयों व फाइनेन्सरो से हुई वार्ता के दौरान मे शिष्ट मण्डल को उनकी अनेक शकाओ का ज्ञान हुआ। हमारी नवीन प्रशुल्क एव कर नीतियो से उन्हे हमारी आर्थिक नीति के सम्बन्ध मे बहुत भ्रम हो गया है, जैसे प्राइवेट क्षेत्र की भविष्य मे क्या भूमिका होगी, राष्ट्रीयकरण कैसे होगा। अनिवार्य डिपाजिट योजना व अत्यधिक करो की भी बहुत आलोचना की गई है। समाजवाद के बारे मे हमारे असावधानी से दिये गये वक्तव्यो से उनको बहुत भय उत्पन्न हो गया है। अत. विदेशी पूजी किस सीमा तक उपलब्ध हो सकती है, यह बहुत कुछ भारत सरकार की नीतियो एव विदेशी विनियोजको की दूरदर्शिता पर निर्भर है। यह नितान्त आवश्यक है कि हम विदेशी सहायता प्राप्त करें किन्तु ऐसा करते समय अपनी अमूल्य स्वतन्त्रता व सम्मान को न खो दें तथा यह भी ध्यान रखें कि विदेशी पूँजी को प्राप्त करने की लागत भी उचित हो।

STANDARD QUESTIONS

1 What is the role of foreign capital in the economic development of a country? Describe it with special reference to India?

2 Briefly discuss the various forms in which foreign capital entered India What is the present policy of the Government towards foreign capital.

3 Examine the role of foreign capital under our Five Year Plans.

4 What are the factors which have shaken the confidence of foreign capital in India? How are they being set right?

5. Examine the measures which are proposed to be taken for creating appropriate conditions for the use of foreign capital.

अध्याय ४३

औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धान्त

(Principles of Industrial Location)

प्रारम्भिक—

किसी भी औद्योगिक इकाई की सफलता काफी सीमा तक उसके स्थानीयकरण (Location) पर निर्भर करती है। अवैज्ञानिक अथवा अनियोजित औद्योगीकरण केवल सस्था विशेष के लिए नही, वरन् समस्त राष्ट्र के लिए अनेक सामाजिक व आर्थिक समस्यायें उत्पन्न कर देता है। यदि किसी सस्था के कार्य-स्थान का चुनाव उपयुक्त ढङ्ग से अथवा यों कहें कि औद्योगिक स्थानीयकरण के सिद्धान्तो के अनुसार नही किया गया है, तो एक अच्छी सस्था की सफलता भी खटाई मे पड सकती है। स्थान के चुनाव की समस्या नई सस्थाओ के लिए ही नही, वरन् पुरानी विद्यमान सस्थाओं के लिये भी महत्त्वपूर्ण है, क्योकि बाजार व यातायात एव सदेशवाहन सम्बन्धी दशायें नित्य-प्रति तेजी से बदल रही है।

महत्त्व—

अव्यवस्थित औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप अनेक सामाजिक समस्याओ का प्रादुर्भाव होता है। किसी स्थान विशेष पर ही विभिन्न प्रकार के उद्योगो के केन्द्रीयकरण से श्रमिको के प्रवास, उनमे स्वास्थ्य, नैतिक पतन आदि सम्बन्धी अनेक समस्यायें पैदा हो जाती है। इन समस्याओ के समाधान के हेतु सरकार पर भी व्यय का बहुत बोझ बढ जाता है। राजनैतिक दृष्टि से भी उद्योगो का केन्द्रीयकरण देश के लिये घातक हो सकता है। विदेशी शक्तियाँ प्रायः उन स्थानो पर ही आक्रमण करती हैं जहाँ उद्योग धन्धे केन्द्रित होते हैं, जिससे कि सम्पूर्ण राष्ट्र का आर्थिक ढाँचा छिन्न-भिन्न हो जाय। ऐसी परिस्थिति में हमे उन आर्थिक सिद्धान्तो व घटको का पूर्ण *विचार रखना चाहिए जो कि औद्योगिक स्थानीयकरण को प्रभावित करते हैं।*

स्थानीयकरण के सिद्धान्त

(Theories of Localisation)

(1) एल्फ्रेड वेबर का निगमनात्मक सिद्धान्त (Weber's Deductive Theory)—

जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान एल्फ्रेड वेबर ने औद्योगिक स्थानीयकरण के सम्बन्ध

मे विशद व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने उद्योगो के स्थानीयकरण सम्बन्धी कारणों को दो भागो मे विभाजित किया है :—

(१) वे कारण जो उद्योगो के प्रादेशिक वितरण पर प्रभाव डालते है; और

(२) वे कारण जो किसी विशेष प्रदेश के भीतर ही उद्योगो के वितरण पर केन्द्रीयकरण एव विकेन्द्रीयकरण की रीतियो द्वारा प्रभाव डालते हैं।

चूंकि स्थान की समस्या उत्पादन की न्यूनतम लागत से सम्बन्धित है। इसलिये उद्योग का प्रादेशिक वितरण पूर्णत. लागत विचार से प्रभावित होता है। वेबर के विचार मे यातायात व्यय एव श्रम सम्बन्धी व्यय लागत के ऐसे दो तत्त्व हैं जो कि औद्योगिक इकाइयो के स्थान-निर्धारण से महत्त्वपूर्ण रूप मे सम्बन्धित हैं।

यातायात व्यय—उस स्थान का ही चुनाव करना उपयुक्त होगा जहाँ कच्चा माल औद्योगिक केन्द्रो मे लाने व तैयार माल बाहर भेजने मे न्यूनतम यातायात व्यय हो। तैयार माल के बाजार और कच्चे माल के श्रोतो का जहाँ तक परस्पर सम्बन्ध है, इनमे से किस का प्रभाव अधिक महत्त्वपूर्ण होना चाहिए, यह कच्चे माल के स्वभाव और उनके निर्माण की रीतियो पर निभर है। कच्चे माल का उन्होने दो तरह से वर्गीकरण किया है —(अ) साधारण कच्चा माल (Ubiquities), जो कि प्रत्येक स्थान पर मिल सकता है, और विशेष कच्चा माल (Localised Materials), जो कि कुछ विशेष क्षेत्रो मे मिलता है। ईट मिट्टी, बालू, पानी आदि की गणना साधारण कच्चे माल मे की जा सकती है। सभी जगह सुलभ होने के कारण इनका उद्योगो के स्थान-चुनाव पर प्रभाव नही पड़ता। इसके विपरीत, लोहा, कोयला, लकडी, चूने का पत्थर आदि 'विशेष कच्चे माल' की श्रेणी मे आते है। चूंकि ये कुछ विशेष क्षेत्रो मे मिलते है, इसलिए उद्योग इन्ही क्षेत्रो की ओर आकर्षित होते हैं। (ब) स्थानान्तरण मे भार खोने वाला कच्चा माल (Gross Materials) एव स्थानान्तरण मे भार न खोने वाला कच्चा माल (Pure Materials)। शुद्ध माल (Pure Materials) प्रयोग करने वाले उद्योग प्रायः बाजार की ओर आकर्षित होते हैं और मिश्रित माल (Gross Materials) स्तैमाल करने वाले उद्योग उस माल के श्रोतो की ओर खिचते हैं।

श्रम-लागत—सस्ता श्रम भी, जो कुछ क्षेत्रो मे ही उपलब्ध होता है, कुछ सीमा तक औद्योगिक स्थानीयकरण पर प्रभाव डालता है। वेबर का विचार है कि कुछ ऐसे निश्चित श्रम-केन्द्र हैं जहाँ से श्रम अन्य केन्द्रो मे नही जा सकता। इस गतिहीनता के कारण उद्योग श्रम के निश्चित केन्द्रो (Fixed Centres of Labour) की ओर आकर्षित होते हैं, जिसमे कि वे सस्ती-श्रम लागत का लाभ उठा सकें।

एक विशेष क्षेत्र मे ही उद्योगो के पुनर्वितरण के बारे मे, कुछ कारण (Agglomerative factors) ऐसे होते हैं जो कि उद्योगो को उस क्षेत्र के कुछ भागो मे ही केन्द्रित या एकत्र कर देते हैं, जबकि कुछ कारण (Deglomerative factors)

ऐसे भी होते हैं जो उद्योगों को उस क्षेत्र मे सब ओर फैला सा देते हैं। बैंकिंग, बीमा और विपणन सेवाओं की सुविधायें तथा बाहरी बचत प्राप्त करने की सम्भावनायें भी उद्योगो को एक विशेष क्षेत्र मे एकत्र करने की प्रवृत्ति रखती हैं। लेकिन उद्योगों का बिखरना किराये व करो की अधिकता तथा आवास सम्बन्धी समस्याओं का परिणाम होता है।

वेबर के सिद्धान्त की आलोचना—

वेबर का सिद्धान्त तत्कालीन परिस्थितियों के आधार पर उद्योग-धन्धो के स्थानीयकरण के कारणों का एक अच्छा विश्लेषण प्रस्तुत करता है। किन्तु यह सिद्धांत स्थानीयकरण की प्रवृत्ति पर पूर्ण प्रकाश नही डाल सका है। सार्जेन्ट फ्लोरेन्स, डेनीसन एव विल्सन द्वारा विभिन्न आधारों पर इस सिद्धान्त की कटु आलोचनायें की गई है। प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित हैं :—

वेबर के सिद्धान्त की ४ आलोचनायें
(१) अवास्तविक, आवश्यकता से अधिक सरल एव काल्पनिक।
(२) श्रम-लागत का स्थानीयकरण पर अधिक प्रभाव नहीं।
(३) ऐतिहासिक एवं सामाजिक कारणों की उपेक्षा।
(४) वास्तविक वस्तुस्थिति पर पूर्ण प्रकाश नही।

(१) वास्तविक आवश्यकता से अधिक सरल एव काल्पनिक—वेबर का सिद्धान्त अवास्तविक, आवश्यकता से अधिक सरल एव कुछ काल्पनिक घटकों तक सीमित होने के कारण स्थानीयकरण को अनेक विषम परिस्थितियों पर प्रकाश नही डालता। वेबर ने अपना सिद्धान्त यातायात व्यय और श्रम लागत पर ही विशेष रूप से आधारित किया है। इसमें भी उन्होंने यातायात व्यय में वस्तु का भार और दूरी को ही ध्यान में लिया है, जबकि यातायात व्यय में वस्तुओं के मूल्य, वस्तुओं के वर्गीकरण व उनके लाने ले जाने के प्रदेशों की भौतिक परिस्थितियों पर निर्भर है।

(२) श्रम लागत का स्थानीयकरण पर अधिक प्रभाव नहीं—वेबर ने कुछ निश्चित श्रम-केन्द्रों की कल्पना की है, जहाँ से श्रम की पूर्ति असीमित मात्रा मे हो सकती है। परन्तु वास्तव मे ऐसा नही होता। इसके अतिरिक्त, समय के परिवर्तन तथा उद्योगों के विकास से श्रमिकों के पारिश्रमिक में भी परिवर्तन होता रहता है। अतः श्रम-लागत ही स्थानीयकरण को अधिक प्रभावित और निर्धारित नही कर सकती।

(३) ऐतिहासिक और सामाजिक कारणों की उपेक्षा—उद्योग-धन्धों का स्थानीयकरण केवल आर्थिक और अनिश्चित कारणों से ही निर्धारित नही होता। वरन् ऐतिहासिक और सामाजिक कारण भी उसे प्रभावित करते हैं। किन्तु वेबर ने इन कारणों का कोई संकेत नहीं किया है। इसके अतिरिक्त वेबर का वर्गीकरण भी अन्य विचारकों को स्वीकार नही है।

(४) वस्तु स्थिति पर पूर्ण प्रकाश नहीं—वेबर ने अपनी व्याख्या में गुणक (Multiplier) और निर्देशांक (Index Number-) का प्रयोग किया है। इससे एक शुद्ध सिद्धान्त (Pure Theory) की रचना तो अवश्य हो गई है, लेकिन वह वास्तविक बात पर पूर्ण प्रकाश नहीं डाल सका है।

वेबर के सिद्धान्त में आवश्यक सुधार—

यदि वेबर के सिद्धान्त में निम्न सुधार कर दिये जाय तो उसे एक व्यावहारिक रूप दिया जा सकता है—

वेबर के सिद्धान्त को व्यावहारिक बनाने के ४ सुझाव

(१) यातायात व्यय सम्बन्धी मान्यता में सुधार।
(२) स्थिर श्रम केन्द्रों सम्बन्धी मान्यता में संशोधन।
(३) उपभोग केन्द्रों के प्रति व्यापक दृष्टिकोण।
(४) लागतों व कीमतों के संदर्भ में गणनायें।

(१) **यातायात व्यय सम्बन्धी मान्यता में सुधार**—यातायात व्यय को केवल तौल एवं दूरी के संदर्भ में ही नहीं देखना चाहिये वरन् यातायात के विभिन्न साधनों की वास्तविक दर अनुसूचियों (rate schedules) को विचार में लेना अधिक उचित होगा।

(२) **स्थिर श्रम केन्द्रों सम्बन्धी मान्यता में संशोधन**—श्रम केन्द्रों सम्बन्धी मान्यता में भी संशोधन करना चाहिये क्योंकि श्रम की प्रवासी प्रवृत्ति में वृद्धि होने के साथ साथ विशेष श्रम केन्द्रों का महत्त्व अनुपातन कम होता जाता है। इसके अतिरिक्त यह भी असत्य है कि किसी क्षेत्र में श्रम की असीमित पूर्ति उपलब्ध हो सकती है। श्रम केन्द्रों में मजदूरी स्तर भी स्थाई नहीं होता, क्योंकि वह औद्योगीकरण की प्रगति के साथ परिवर्तित होता है।

(३) **उपभोग केन्द्रों के प्रति व्यापक दृष्टिकोण**—उपभोग केन्द्रों पर संकुचित क्षेत्रों के संदर्भ में विचार न करके विस्तृत क्षेत्रों के संदर्भ में विचार करना चाहिये। यह भी संभव है कि किसी उद्योग के केन्द्रीयकरण पर उपभोग केन्द्रों का कोई प्रभाव न पड़े क्योंकि देश भर में वस्तु का एक ही मूल्य रखने के आशय से सरकार यातायात व्यय की पूर्ति के लिये आर्थिक सहायता दे सकती है।

(४) **लागतों व कीमतों के संदर्भ में गणनायें**—यदि लागतों एवं कीमतों के संदर्भ में गणनायें प्रचलित कर दी जायें, तो इस सिद्धान्त के विरुद्ध यह आरोप समाप्त हो जायगा कि वह केवल Technical Coefficients के संदर्भ में ही विचार करता है।

(II) सार्जेंट फ्लोरेन्स का आगमन-विश्लेषण
(Sargent Florence's Inductive Analysis)

आधुनिक युग में सार्जेंट फ्लोरेन्स का आगमन विश्लेषण बहुत लोकप्रिय हो गया है, क्योंकि वह औद्योगिक वितरण की प्रवृत्तियों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता

है। सार्जेन्ट फ्लोरेन्स ने उत्पादन-गणना (Census of Production) से विभिन्न उद्योगो के लिये स्थानीयकरण की सीमा का सांख्यकी माप निकाला है। वे स्थानीयकरण के प्रचलित अर्थ को (जो यह है कि उद्योग और भौगोलिक क्षेत्र के मध्य सम्बन्ध को प्रगट करने वाला विचार ही 'उद्योगो का स्थानीयकरण' है) स्वीकार नही करते। उनका कहना है कि किसी क्षेत्र से उद्योग का सम्बन्ध इतना महत्त्वपूर्ण नही है जितना कि सम्पूर्ण जन-संख्या के वितरण से उद्योग का सम्बन्ध होता है। उन्होने दो नये विचार दिये है, जो कि निम्न है—

(१) स्थापन भाज्य (Location Factor)—यह किसी विशेष स्थान मे किसी उद्योग के केन्द्रीयकरण की मात्रा का सूचक होता है। यह सूचक (Index) किसी विशेष क्षेत्र मे पाये जाने वाले किसी विशेष उद्योग मे काम करने वाले सभी श्रमिको का प्रतिशत लेकर और फिर उसे देश मे कुल औद्योगिक श्रमिको के उस विशेष क्षेत्र मे अनुपात से भाग देकर प्राप्त किया जाता है। चुने गये क्षेत्र देश के राजनैतिक विभाग होने चाहिये, औद्योगिक विभाग नही। इस सूचक अंश की सहायता से स्थानीयकरण को देश की जन-संख्या एव उद्योग के भौगोलिक वितरण के मध्य असमानता की मात्रा के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है। यदि कोई उद्योग सारे देश मे समान रूप से फैला हुआ है, तो प्रत्येक क्षेत्र का 'स्थानिक घटक' यूनिटी के बराबर होगा, क्योकि क्षेत्र के कुल औद्योगिक श्रमिको का अनुपात उस विशेष उद्योगो मे श्रमिको के अनुपात के बराबर होता है। यदि स्थानिक घटक यूनिटी से कम या अधिक है तो इसका आशय है कि उद्योग देश मे असमान रूप से वितरित है। जब वह यूनिटी से अधिक हो, तो इसका मतलब है कि उस क्षेत्र का उद्योग मे उचित से अधिक भाग है और यदि स्थानिक घटक यूनिटी से कम है, तो इसका आशय है कि उद्योग मे उस क्षेत्र का उचित से कम भाग है।

(२) स्थानीयकरण सहगमक (Co-efficient of Localisation)—यह किसी उद्योग के केन्द्रित होने की प्रवृत्ति को सूचित करता है। यद्यपि इसका आशय किसी विशेष उद्योग से है तथापि वह किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित नही होता। वह देश के किसी भी क्षेत्र मे उद्योग की केन्द्रीयकरण प्रवृत्ति से सम्बन्धित होता है। इसकी गणना निम्न प्रकार की जा सकती है—

When workers are divided up region by region as percentages of the total in all regions, the coefficient is the sum (divided by 100) of the plus deviations of the regional percentages of workers in the particular industry form the corresponding regional percentages of workers in all industry.

स्थानीयकरण सहगमक के आधार पर किसी देश के सभी उद्योगो को तीन श्रेणियो मे बाँटा जा सकता है—(१) उच्च सहगमक वाले उद्योग (जैसे कोयला खान उद्योग), जो विशेष क्षेत्रो मे ही केन्द्रित होते हैं; (२) निम्न सहगमक वाले उद्योग, जो

विभिन्न क्षेत्रों मे विकसित हो सकते है और इस प्रकार विकेन्द्रित हो जाते हैं, तथा (३) मध्यम सहगमक वाले उद्योग।

फ्लोरेन्स के सिद्धात की आलोचना—

सार्जेंट फ्लोरेन्स का दृष्टिकोण वेबर के दृष्टिकोण से अधिक वास्तविक और व्यापक है। औद्योगिक आविष्कार एवं निरन्तर होने वाला आर्थिक विकास उद्योगो के स्थानीयकरण को प्रभावित करते रहते है। इस तथ्य पर वेबर ने ध्यान नही दिया था। इसके अतिरिक्त ऋतु परिवर्तन, राज्य परिवर्तन समय परिवर्तन एव टेक्नालाजीकल परिवर्तन भी उद्योगो के स्थानीयकरण पर प्रभाव डालते है। वर्तमान युग मे तो राष्ट्र की सुरक्षा व प्रादेशिक एव वैयत्तिक भावनायें भी अपना महत्त्व रखती हैं। जहाँ सार्जेन्ट फ्लारेन्स ने वेबर के सिद्धान्त की अनेक त्रुटियो को दूर किया है वहाँ उनका अपना सिद्धान्त भी त्रुटियो से मुक्त नही है। कुछ त्रुटियाँ इस प्रकार है—

> **सार्जेन्ट फ्लोरेन्स के सिद्धान्त के मुख्य ३ दोष**
> (१) विद्यमान औद्योगिक वितरण पर ही प्रकाश डालने म समर्थ।
> (२) केवल सहगमक के आधार पर उद्योग की केन्द्रीयकरण प्रवृत्ति का पता लगाना कठिन।
> (३) स्थानिक भाज्य उद्योग के केन्द्रीयकरण की मात्रा का विश्वस्त सूचक नही।

(१) विद्यमान औद्योगिक वितरण पर प्रकाश डालने मे समर्थ—सार्जेन्ट का सिद्धान्त किसी विशेष देश मे उद्योगो के वितरण की वर्तमान दशा पर ही प्रकाश डालने मे समर्थ है। वह किसी विशेष प्रकार के केन्द्रीयकरण के कारणो को नही समझा सकता। इसके अतिरिक्त, वह विभिन्न प्रदेशो मे उद्योगो के सही वितरण की समस्या पर भी कोई उपयोगी प्रकाश नही डालता। इस तरह वह किसी देश मे उद्योगो के भावी स्थानीयकरण से सम्बन्धित नीति निर्माण करने मे पथ प्रदर्शन नही कर पाता।

(२) केवल सहगमक के आधार पर उद्योग की केन्द्रीयकरण प्रवृत्ति का पता लगाना कठिन—स्थानीयकरण का सहगमक (Coefficient of Localization) आवश्यक रूप से प्रत्येक देश म वितरण के स्वरूप पर निर्भर है। अत. वह स्थानीय परिस्थितियो के अनुसार देश देश मे भिन्न भिन्न होता है। यही कारण है कि केवल सहगमक के आधार पर ही उद्योग की केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति का पता लगाना कठिन है। अधिक से अधिक वह सत्यता की पुष्टि कर सकता है। अत केन्द्रीयकरण के लिये किसी उद्योग की सहज प्रवृत्तियो की भी परीक्षा की जानी चाहिये।

(३) स्थानिक भाज्य उद्योग के केन्द्रीयकरण की मात्रा का सूचक नही है—क्योकि वह प्रत्येक क्षेत्र मे कार्य सलग्न औद्योगिक श्रमिको की सख्या पर आधारित होता है। तुलना का एक अधिक अच्छा आधार विभिन्न क्षेत्रो के उत्पादन की मात्रा हो सकती है।

निष्कर्ष—

यह उल्लेखनीय है कि फ्लोरेन्स व वेबर के सिद्धान्त एक दूसरे के पूरक हैं। वेबर के विशुद्ध सिद्धान्त को फ्लोरेन्स के सूचक अंको के साथ प्रयोग करके किसी देश के लिये उद्योगो के वैज्ञानिक स्थापन की एक नीति बनाई जा सकती है। किन्तु उक्त दोनो ही सिद्धान्त समाज की पूँजीवादी रचना पर आधारित है। अतः भारत के लिये उनकी सहायता से बनाई गई नीति उपयोगी नही हो सकती है, क्योंकि उसने समाजवादी समाज का लक्ष्य अपनाया हुआ है और ऐसे समाज मे लागत सम्बन्धी विचार कल्याण सम्बन्धी विचारो के आधीन रखे जाते हैं।

STANDARD QUESTIONS

1. Critically examine the Woker's Theory of Industrial location.
2. Write a note on Sargent Florence's Ind ctive Analysis of Industrial loation.

अध्याय ४४

औद्योगिक स्थानीयकरण के घटक

(Factors Affecting Industrial Location)

'स्थानीयकरण' से आशय—

किंचित सुविधाओं के परिणामस्वरूप किसी उद्योग के विशिष्ट केन्द्र या स्थान मे केन्द्रित होने की प्रवृत्ति को ही 'औद्योगिक स्थानीयकरण' कहते हैं। कलकत्ते मे जूट मिल उद्योग, बम्बई मे सूती वस्त्र मिल उद्योग, टाटानगर मे स्पात उद्योग, आदि औद्योगिक स्थानीयकरण के ज्वलन्त उदाहरण हैं। कुछ विशेष क्षेत्रो मे जिस प्रकार कुछ उद्योग सम्बन्धित हो गए है, उससे स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाले घटको के महत्व का आभास होता है। इसमे कई सन्देह नही है कि अब स्थानीय असमानताओ का समान करने की दशा मे काफी प्रगति की गई है। मशीनो व इमारतो के प्रमापीकरण, मजदूरी एवं ब्याज की दरो का समानीकरण और विभिन्न क्षेत्रो मे उपभोग सम्बन्धी आदतो के प्रमापीकरण द्वारा स्थानीय असमानताएँ बहुत कुछ कम हो गई हैं, तथापि यह मानना होगा कि निर्माणी संस्थाओ के लाभदायक संचालन पर 'स्थान' का अब भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यह बात छोटे उद्योगो के सम्बन्ध मे अधिक सही है। एक छोटी संस्था के पास मुख्यतः स्थानीय बाजार होता है और वह निकटवर्तीय विनियोगको से ही पूँजी प्राप्त कर पाती है। जब एक बार उद्योग किसी स्थान मे स्थापित हो जाता है, तो वहाँ से फिर उसे हटाने मे बहुत असुविधा होती है।

स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाले कारण—

किसी संस्था के स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाले कारण तो अनेक हैं, परन्तु मुख्य एवं सार सिद्धान्त यह है कि किसी कारखाने का स्थान इस प्रकार निश्चित किया जाय कि वह कम से कम मूल्य पर माल का निर्माण करके अधिक से अधिक मूल्य पर बेच सके। किसी कारखाने के स्थानीयकरण को प्रभावित करने वाले विभिन्न घटक अग्र प्रकार वर्णित किये जा सकते हैं :—

औद्योगिक स्थानीयकरण के प्रमु ४ घटक

(I) क्रय सम्बधी घटक—
(१) कच्चे माल का सामीप्य
(२) कच्चे माल की उपलब्धता।

(II) निर्माण सम्बधी घटक—
(१) श्रम की सुविधा।
(२) औद्योगिक शक्ति की सुविधा।
(३) मरम्मत आदि की सुविधा।
(४) साख व बैंकिग सुविध य।
(५) यातायात व सन्देश वाहन की सुविधा।
(६) प्लान्ट के निर्माण व विकास की सुविधाएँ।
(७) राजकीय नियमन व सहायता।
(८) अग्नि से सुरक्षा।
(९) अनुसन्धान की सुविधाय।
(१०) उपयुक्त प्राकृतिक रचना व जलवायु।

(III) अन्य उद्योगो से सम्बधित घटक—
(१) पूरक उद्योग।
(२) प्रतिस्पर्धात्मक उद्योग।
(३) भौगोलिक प्रादुर्भाव।

(IV) विक्रय सम्बधी घटक—
(१) बाजार की निकटता।
(२) जन सख्या का घनत्व।
(३) फैशन व स्टाइल।

(I) क्रय सम्बधी घटक—

(१) कच्चे माल का सामिप्य—उद्योग धधो की प्रगति बहुधा उहा स्थानो मे देखी जाती है जहाँ कच्चा माल पाया जाता है, विशेषकर उस दशा में जबकि कच्चा माल अचल हो अथवा अपने बोझ के अनुपात मे सस्ता हो। उदाहरण क लिए, खान खोदने का काम खानो के निकट ही पाया जाता है, लकडी का काम जङ्गलो के समीप ही होता है और कपडे के कारखाने भी प्राय उन्ही स्थानो मे होते हैं जहाँ कपास पर्याप्त परिमाण मे सुलभ है।

(२) कच्चे माल की उपलब्धता—किसी कच्चे माल का निकट मे अपरिमित मात्रा मे उपस्थित होना ही पर्याप्त नही है, वरन् उस तक पहुँच होना भी आवश्यक है। यदि कच्चे मल के स्रोत तक पहुँच सम्भव नही है, तो उसका शोषण नही किया जा सकेगा। कच्चे माल के स्रोत तक पहुँच न होने का एक प्रधान कारण यह होता है कि काम करने वाले श्रमिकों को जीवन निर्वाह के साधन वहाँ उपलब्ध नही हाते या बहुत कठिनता से उपलब्ध हाते हैं। यदि कच्चे माल के साधनो का शोषण करने की लागत बहुत अधिक बैठती है, तो कहा जायगा कि कच्चे माल तक पहुँच नही है। इस प्रकार किसी विशेष क्षेत्र मे कच्चे माल के उपलब्ध होने का महत्त्व पर्याप्त यातायात सुविधाओ, उपजाऊ मिट्टी व उपयुक्त जलवायु आदि पर निर्भर होता है।

(II) निर्माण सम्बधी घटक—

(१) श्रम की सुविधा—प्रत्येक

उद्योग मे श्रम की आवश्यकता होती है। किसी किसी उद्योग मे तो अधिक मात्रा एव विशेष ज्ञान से सम्पन्न कुशल श्रमिको की आवश्यकता पडती है, जैसे कि रेशम-उद्योग मे। अस्तु, ये उद्योग वही स्थापित होने का प्रयत्न करेंगे जहाँ कुशल श्रम सरलता और कम दामो पर मिल सके। फरुखाबाद मे रँगाई और छपाई का उद्योग श्रम की सुलभता के कारण केन्द्रित हो गया है। वास्तव मे श्रम की पूर्ति किसी स्थापित उद्योग को शक्ति प्रदान करने वाला सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव है। औद्योगिक श्रमिक वर्ग का निर्माण होने म कुछ समय लगता है और एक बार निर्मित हो जाता है तो उसे यातायात करना सरल नही होता। उदाहरण के लिये, भारतीय औद्योगिक श्रमिक मुख्यतः गाँवो से प्राप्त होते हैं। यद्यपि वे बहुत प्रवासी प्रकृति के होते हैं तथापि बम्बई, जमशेदपुर, मद्रास, नागपुर, और अहमदाबाद जैसे शहरो मे औद्योगिक जन सख्या स्थायी होती जा रही है। इस नये औद्योगिक वर्ग मे औद्योगिक कुशलता का विकास हो गया है और स्थानीयकरण को प्रभावित करता है।

(२) औद्योगिक शक्ति की सुलभता—औद्योगिक शक्ति की निकटता स्थानीयकरण को बडा प्रभावित करती है। कल कारखाने उन्ही स्थानो मे उन्नति कर सकते हैं जहाँ कि उनको चलाने की शक्ति सुलभ हो। कोयला औद्योगिक शक्ति का सबसे प्रमुख साधन है। अतएव ऐसा देखा गया है कि उद्योग अधिकतर कोयले की खानो के समीप मे ही केन्द्रित है। परन्तु कोयले मे औद्योगिक शक्ति के साधन की दृष्टि से जो एक बडा दोष है, वह यह है कि अपने भार के अनुपात मे यह सस्ता है और इस कारण दूर के स्थानो मे इसे लाया नही जा सकता। अत. औद्योगिक शक्ति के क्षेत्र मे अनेक अनुसन्धान हुए और नवीन साधन निकाले गये। तेल बडी सुविधा से पाइपो द्वारा दूर-दूर तक ले जाया जा सकता है। अत. इस अनुसन्धान के फलस्वरूप उद्योगो मे विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति का जन्म हुआ, ।अर्थात् उद्योग एक जगह केन्द्रित न रहकर बिखरने लगे, जिससे अन्य सुविधाओ का, जो ऐसा करने से मिल सकती हो, लाभ उठाया जा सके। विद्युत-शक्ति के आविष्कार (विशेषकर जल-विद्युत) से विकेन्द्रीयकरण की यह प्रवृत्ति और भी बढ रही है।

(३) मरम्मत आदि की सुविधा—यह घटक छोटे पैमाने के उद्योगो के लिए विशेष महत्त्व रखता है। जहाँ अधिक आदेश प्राप्त होते रहते है वहाँ किसी भी स्तर पर मशीन मे टूट-फूट हो जाने से फर्म को व्यापार मे हानि होती है और उसकी प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचता है। अतः यह आवश्यक है कि मरम्मत कार्य तत्काल किया जाय। एक बडी सस्था मे मरम्मत कार्य कारखाने में ही कराया जा सकता है, क्योकि वह अपने यहा एक मरम्मत वर्कशॉप खोल लेती है।

(४) औद्योगिक साख व बैंकिंग की पर्याप्त सुविधाये—आधुनिक युग मे यह स्थानीयकरण का महत्त्वपूर्ण कारण है। पूँजी उत्पत्ति का एक ऐसा साधन बन गई है जिसे अलग करके या जिसके बिना कोई उद्योग या धन्धा पनपने की आशा नही कर सकता। अत जहाँ पूँजी प्राप्त करने की सुविधाये है वहाँ उद्योग विशेष रूप

से स्थापित होगे, जैसे कि वे स्थान जहाँ जन सख्या बचत कर सकती है और जहाँ औद्योगिक अधिकोष इत्यादि हो।*

(५) यातायात एव सन्देशवाहन के साधनो की पर्याप्तता—प्राय. ऐसा देखा गया है कि उद्योग-धन्धे उस स्थान पर ही केन्द्रित होते है, जहाँ माल लाने-ले जाने व समाचार शीघ्र मगाने व भेजने की विशेष सुविधायें हो। यातायात तथा सदेश-वाहन के सस्ते, सरल तथा शीघ्रगामी साधनो से बाजार की दूरी की हानियाँ कम हो जाती हैं। यहाँ पर यह कहना अनावश्यक न होगा कि ऐसे साधनो की उन्नति से वेन्द्रीयकरण भी हो सकता है।

(६) प्लान्ट के निर्माण व विकास की सुविधायें —प्लान्ट (Plant) को इस तरह स्थापित करना चाहिए जिससे समय एव सामग्री का न्यूनतम व्यय करते हुए निर्माण क्रिया सम्बल की जा सके। साथ ही विस्तार एव पुनर्गठन के लिये चारो ओर पर्याप्त स्थान छोड दना चाहिए, जिससे कि कार्य चलते हुए ही विस्तार सम्भव हो सके।

(७) राजकीय नियम व सहायता—आजकल केन्द्रीय एव राज्य सरकारें सभी प्रकार के व्यापार मे अधिकाधिक भाग लेने लगी हैं और उनके नियन्त्रण मे बहुत वृद्धि हो गई है। निर्माणी उद्योगो पर उन नियमो का अधिक प्रभाव पडता है जो कि कर्मचारियो की सुरक्षा, क्षतिपूर्ति व अन्य करो मे, इमारतो के प्रयोग करने से, अग्नि निरोधक उपायो, लाइसेन्स, पेटेन्ट, कायशील घण्टे आदि से सम्बन्ध रखते है। जब ये प्रतिबन्ध अधिक भार युक्त हो जाते है, अर्थात् उद्योगो को लाभ की दृष्टि से चलाना कठिन हो जाता है, तो निर्माता किसी अन्य अधिक अनुकूल क्षेत्र मे जाने की योजना बनाता है। नये उद्योगो की स्थापना करते समय उद्योगपति पहले उपरोक्त तत्वो को ही विचार मे लते है। सरकार आर्थिक सहायता देकर भी उद्योगो के विकास को प्रभावित करती है। प्रशुल्क प्रतिबन्ध विदेशी स्पर्द्धा से देशी उद्योगो को बचाते है।

(८) अग्नि से सुरक्षा—आग बाहर से लग सकती है और अन्दर से भी। अन्दरूनी आग पर अग्नि निरोधक यत्रो से काबू पाया जा सकता है, लेकिन बाहर से लगने वाली आग पर नियन्त्रण पाना प्राय कठिन होता है। भारत के अधिकाँश नगरो मे अग्नि निरोधक व्यवस्था बहुत दुबल दशा मे है। गाँवो मे तो ये सुविधायें बिल्कुल भी नही हैं। परिणामस्वरूप अग्नि बीमे की प्रीमियम की दर बहुत ऊँची है। अग

---

* 'In Great Britain during the nineteen thirties the opportunities provided for financing new industries thtough the special Areas Reconstruction Association and the Nuffield Trust induced many entrepreneurs to choose a site in the distressed areas,' (A. Beacham)

उद्योग की स्थापना के लिए वह स्थान विशेष उपयुक्त है जहाँ कि अग्नि से अधिक सुरक्षा हो।

(९) अनुसन्धान की सुविधायें—नये व पुराने सभी उद्योगो की उन्नति निर्माण क्रियाओ से सम्बन्धित अनुसन्धाना की प्रगति पर निर्भर होती है। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि शिक्षित एव ट्रेन्ड कर्मचारी यथेष्ठ सख्या मे बराबर मिलते रहें। अत. अनुसन्धान की प्रगति एव ट्रेन्ड कर्मचारियो की उपलब्धि के लिए शैक्षिक एव अनुसधान सस्थाओ का होना आवश्यक है।

(१०) उपयुक्त रचना एव जलवायु—किसी स्थान विशेष की प्राकृतिक रचना एव जलवायु का भी स्थानीयकरण पर गहरा प्रभाव पडता है। उदाहरण के लिए, एक पहाडी, ऊबड-खाबड एव चट्टानी प्रदेश मे कृपि काम बहुत कठिनता से हो पाता है। अत. वहाँ औद्योगिक प्रगति भी प्राय. कम ही होती है। हाँ, यदि वहाँ खनिज पदार्थ मिलते हो, तो किसी उद्योग विशेष की प्रगति होना सभव है। पहाड, पठार व तूफानी नदियाँ औद्योगिक विकास मे बाधा डालती हैं, क्योकि इनके कारण यातायात कठिन हो जाता है। जन सख्या की वृद्धि पर भी इनका कुप्रभाव पडता है, जिससे स्थानीय बाजार विकसित नही होने पाते।

इसी प्रकार जलवायु का भी औद्योगिक स्थानीयकरण पर प्रभाव पडता है। उदाहरण के लिए, सूती कपडो के मिलो के लिए नम जलवायु उपयुक्त होती है, क्योकि नम जलवायु मे कपास से पतला और सुन्दर सूत काता जाता है। यही कारण है कि सूती कपडे का उद्योग बम्बई मे ही विशेष रूप से केन्द्रित है।

(III) अन्य उद्योगो से सम्बन्धित घटक—

(१) पूरक एव (२) प्रतिस्पर्धात्मक उद्योग—कुछ निर्मातागण अपने कारखानो की स्थापना के लिए ऐसे स्थान चुनते हैं जहाँ पूरक अथवा सहायक उद्योगो का (जो कि उनके निर्माण कार्य मे प्रयोग की जाने वाली सामग्री बनाते हो) बाहुल्य हो। इस प्रकार पूरक उद्योगों की उपस्थिति उद्योगो के केन्द्रीयकरण का बढावा देती है। किन्तु, इसके विपरीत, प्रतिस्पर्धात्मक उद्योगो की उपस्थिति विकेन्द्रीयकरण को बढावा देती है। एक कारखाने का श्रम सघर्ष अन्य कारखानों मे भी फैलना, श्रमिको के प्राप्त करने मे होड, नवीन रीति का उपयोग करने मे प्रथा का बाधक होना आदि बातें हानिकारक हैं। तथापि, जैसा कि श्री जोन्स ने अपनी पुस्तक Administration of Industrial Enterprises मे बताया है, उद्योग प्रायः 'समूह' मे ही विशेष उन्नति करते हैं, क्योकि (i) एक ही स्थान मे स्थापित समान उद्योगो को सामग्री सुविधा से व सस्ती मिल जाती है, (ii) एक विशिष्ट-श्रम बाजार विकसित हो जाता है, जिससे देश के कोने-कोने से उस लाइन में कुशल श्रमिक खिचे चले आते हैं। यह बात श्रम व उद्योग दोनो के लिए लाभकारी है। (iii) बैंक भी विशिष्ट केन्द्रो के प्रमुख उद्योग की आवश्यकताओ से परिचित हो जाते है। उन्हे इस उद्योग मे सलग्न विभिन्न फर्मों की आर्थिक दशा की जानकारी हो जाती है तथा वे उनके बिलो को अधिक

तत्परता से भुना लेते हैं। (iv) कुछ कारखाने मिल कर ऐसी माँग उत्पन्न कर सकते हैं जिसकी पूर्ति के लिए औद्योगिक सेवा उद्योग निकटवर्ती क्षेत्र मे कायम होने लगते हैं, जैसे—ढलाई के कारखाने, मशीन, औजार व मिल स्टोर सप्लाई करने वाली सस्थायें आदि। (v) एक विशिष्टीकृत औद्योगिक केन्द्र की ख्याति का लाभ वहाँ की कुशल एव कम कुशल सभी प्रकार की सस्थाओ को मिलता है, जिसमे वस्तु विकने मे आसानी हो जाती है। (vi) विशिष्ट औद्योगिक केन्द्रो मे बैंकरो, बीमको, प्रपको, श्रेणी विभाजन करने वालो, विज्ञापन सस्थाओ, सार्वजनिक भण्डारगृहो आदि की सुविधाओं का भी बाहुल्य हो जाता है।

(३) शीघ्र प्रारम्भ का आवेग अथवा पूर्वारम्भ (Geographical Inertia or Momentum of an Early Start)—कभी-कभी उद्योगो की उन्नति एक विशिष्ट स्थान पर इसलिए भी हुई है कि सबसे पहले वह उद्योग वही पर प्रारम्भ किया गया था। कालान्तर मे वहाँ उस उद्योग की सभी सुविधायें एकत्र हो जाती हैं, यहाँ तक कि भविष्य मे इन उद्योगो की वही स्थापित होने की प्रवृत्ति हो जाती है।* ये लाभ इस प्रकार है :—विशिष्ट श्रम की उन्नति, अनुपूरक उद्योगो का जन्म तथा उनका विकास, अन्वेषण तथा उन्नति की विशेष सुविधायें, आदि। दृष्टान्त के लिए, फिरोजाबाद मे चूडी उद्योग का केन्द्रित होना प्रमुख रूप से 'शीघ्र प्रारम्भ के आवेग' के कारण है।

(IV) विक्रय सम्बन्धी घटक—

(१) बाजारो की निकटता—बाजारो की निकटता उद्योगो के स्थानीयकरण मे एक महत्त्वपूर्ण कारण है। बाजार की निकटता' से हमारा तात्पर्य यह है कि उन स्थानो के क्रेता माल की माग कर, वहा पर स्पर्धा इतनी तीक्ष्ण न हो कि माल का आना ही असम्भव हो जाय और न वहाँ माल का आवागमन रोकने वाले ऊँचे आयात व निर्यात कर या चुङ्गी हो। ऐसी सुविधा के स्थानो पर ही प्राय उद्योगो का केन्द्रित होना देखा जा सकता है।

(२) जन-सख्या का घनत्व एव लोगो का स्वभाव—सभी निर्माणी उद्योगो का लक्ष्य ऐसी वस्तुयें उत्पन्न करना है जो कि लोग खरीद ले। किन्तु किसी वस्तु का बाजार कैसा होगा, यह जन सख्या के घनत्व, उसकी सम्पन्नता एव जीवन-यापन के ढङ्ग पर निर्भर होता है। जिस वस्तु को लोग उपयोगी नही समझते हैं उसे बनाना निरर्थक है। उपभोग-वस्तुओ की बिक्री तभी हो सकती है जबकि लोगो को उनका उपभोग करने के लिए प्रेरित किया जा सकता हो।

(३) फैशन एव स्टायल—लोग पुराने फैशन की वस्तुओ को खरीदना पसन्द नही करते। एेसे स्थान जहाँ से नये फैशन की वस्तुयें जनता मे शीघ्र फैल सकती है, वस्तुओ के लिए अच्छे बाजार प्रमाणित होते हैं। इस सम्बन्ध मे यह देखा गया है कि फैशन बडे नगरो से छोटे नगरो मे और धनाढ्य क्षेत्रो से कम धनाढ्य क्षेत्रो मे फैलता है।

---

* When an industry is known to have concentrated in a particular area it is always easy to discover natural advantages attaching to the site." (A Beacham Economics of Industrial Organisation, p. 136)

औद्योगिक स्थानीयकरण के गुण-दोष

भारत मे औद्योगिक स्थानीयकरण के आलोचनात्मक अध्ययन के पूर्व स्थानीयकरण के गुण व दोषो की विवेचना अनावश्यक न होगा। स्थानीयकरण के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :—

स्थानीयकरण के लाभ—

(१) श्रमिको की कुशलता मे वृद्धि—जब कोई उद्योग किसी स्थान विशेष मे ही केन्द्रित हो जाता है, तब स्वभावतया उस स्थान के श्रमिक उस उद्योग की कला मे निपुण हो जाते हैं। श्रमिक ही नही वरन् कारीगरो की सन्तान भी अपने पूर्वजो के धन्धे मे कुशल हो जाती हैं, क्योकि प्रति दिन वे अपने चारो ओर उसी का वातावरण देखते हैं।

स्थानीयकरण के लाभ हैं पांच

(१) श्रमिको की कुशलता मे वृद्धि।
(२) श्रम विभाजन से अनुसन्धान तथा उन्नति।
(३) स्थान को प्रसिद्धि।
(४) अन्य उद्योगो का जन्म।
(५) व्यापारिक मशीनरी की उन्नति।

(२) श्रम-विभाजन से अनुसन्धान तथा उन्नति— स्थानीयकरण से श्रम का अधिक विभाजन सभव हो जाता है तथा नई-नई खोज करना भी सरल हो जाता है।

(३) स्थान की प्रसिद्धि—जब किसी स्थान विशेष मे ही उद्योग केन्द्रित हो जाता है तब जनता मे माल किसी विशेष मिल के नाम से न होकर केन्द्र के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है, जैसे फिरोजाबाद काँच-उद्योग के लिए प्रसिद्ध है, फर्रुखाबाद छपाई के लिए। एक केन्द्र मे बडे-छोटे, अच्छे-बुरे सभी प्रकार के कारखाने होते हैं, किन्तु माल किसी विशेष मिल के नाम से नही वरन् केन्द्र के नाम से बिकता है। इस प्रकार घटिया मिलो का माल भी बढिया मिलो के माल के साथ बिक जाता है।

(४) अन्य उद्योगो का जन्म—उद्योग के किसी क्षेत्र मे केन्द्रित हो जाने पर वहाँ अन्य अनेक गौण उद्योग भी प्रकट हो जाते हैं, जैसे शक्कर के कारखानो के पास शीरे आदि का काम प्रारम्भ होता है। इन अन्य उद्योगो की उन्नति से अनेक मनुष्यो को काम मिल जाता है और प्रधान उद्योग का निरर्थक पदार्थ भी प्रयोग मे आ जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि उपरोक्त विभिन्न घटको का सापेक्षिक महत्त्व समय के साथ बदलता रहता है और विशेष परिस्थितियो मे जो स्थान किसी उद्योग के लिए आदर्श रूप से उपयुक्त था वही उत्पादन की टेक्नीक, यातायात के साधन आदि मे परिवर्तन हो जाने के कारण उपयुक्त नही रहता। सरल शब्दो मे, किसी विशेष अवधि मे और किसी विशेष क्षेत्र मे औद्योगिक स्थानीयकरण उस विशेष समय के आर्थिक विकास की विशेष अवस्था पर निर्भर होता है। अत. विभिन्न घटको मे परिवर्तन होने से औद्योगिक क्रिया के स्थानीयकरण मे परिवर्तन हो सकता है। इन परिवर्तनो को परिवर्तन-

शील लागत सम्बन्धी घटकों (Cost factors) की सहायता से स्पष्ट कर सकते हैं। स्थानिक सन्तुलन (Locational Equilibrium) कभी भी प्राप्त नहीं होता और समायोजन की प्रक्रिया में कठिनाइयों के कारण अनेक समस्यायें पैदा हो जाती हैं। स्थानिक परिवर्तन (Locational Changes) के मूल कारणों को हूवर (E. M. Hoover) ने निम्न चार वर्गों में बाँटा है—(१) मौसमी (seasonal) चाक्रिक (cyclical) (३) दीर्घकालीन (secular) एवं (४) संरचनात्मक (structural)।

(५) व्यापारिक मशीनरी की उन्नति—उद्योगों के स्थानीयकरण से उन केन्द्रों में बड़ी मात्रा में सामान आना तथा जाता है और इस वृहत् कार्य के लिए कुशल यातायात मशीनरी की आवश्यकता होती है। अतः उन केन्द्रों में यातायात तथा सन्देश वाहन के साधनों की वृद्धि हो जाती है व अनेक व्यापारिक संस्थाएँ भी खुल जाती हैं, जैसे अधिकोष, आगोप, प्रमण्डल आदि।

स्थानीयकरण से हानियाँ—

केन्द्रीयकरण में नीचे लिखे दोष हैं —

(१) श्रमिक की सीमित उन्नति—केन्द्रीयकरण से केन्द्र स्थान के श्रमिक केवल उस उद्योग सम्बन्धी कला में निपुण होते हैं अतएव यदि वह उद्योग दुर्भाग्य से कहीं समाप्त हो जाय तो वे श्रमिक बेकार हो जाते हैं। दूसरे केन्द्रीयकरण से श्रम जीविया के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की शक्ति भी कम हो जाती है।

(२) आर्थिक तथा सामाजिक हानियाँ—आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टिकोण से भी केन्द्रीयकरण हानिकारक है। एक ही स्थान पर उद्योगों के बढ़ने से उस स्थान की जन संख्या आवश्यकता से अधिक बढ़ जाती है इससे स्थान की समस्या तथा अनेक अन्य आर्थिक समस्याएं पैदा हो जाती हैं।

(३) राजनैतिक दृष्टिकोण—इससे भी उद्योगों का एक स्थान पर केन्द्रित होना वाञ्छित नहीं क्योंकि यदि कभी अभाग्यवश उस केन्द्र पर ही बम वर्षा हुई तो समस्त उद्योग नष्ट प्राय हो जायगा और इससे सम्पूर्ण राष्ट्र को क्षति पहुँचेगी।

STANDARD QUESTIONS

1. Discuss carefully the factors which affect the location of industries
2. Briefly summarise the merits and demerits of centralisation

अध्याय ४५

भारतीय उद्योगों के स्थानीयकरण का स्वरूप

(Form of Localisation of Indian Industries)

भूमिका—

आरम्भ मे भारतवष मे उद्योग-धन्धे कुछ उन्ही चुने हुये स्थानो मे थे जहा केन्द्रीयकरण के लिये विशेष सुविधायें थी, विशेषकर समुद्रतट के निकट के नगरो मे, जैसे कि बम्बई और कलकत्ता के आस-पास। भौगोलिक तथा आर्थिक दोनो ही दृष्टियो से ये स्थान बडे उपयुक्त है। निर्मित तथा अनिर्मित माल के लाने तथा ले जाने के साधनो की सुविधायें तो यहा है ही, इसके अतिरिक्त यहाँ औद्योगिक शक्ति के भी भण्डार है। पूँजी की यहाँ सदैव सुविधा रही और अब भी है। इन स्थानो मे ही देशी-विदेशी प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के प्रधान कार्यालय रहे और अब भी है। अग्रेज प्रवर्तकों ने सबप्रथम कलकत्ते मे आकर अपने व्यापार के जाल को पिरोना प्रारम्भ किया था। बम्बई मे भारतीय पूँजीपतियो ने उद्योग प्राप्त किये थे। सक्षेप मे, यो कह सकते हैं कि वहाँ उत्पत्ति के सम्पूर्ण साधनो की सुविधा थी। बम्बई मे सूत की मिले और कलकत्ते में जूट के मिल दिन पर दिन बढने लगे। इन दो क्षेत्रों के अतिरिक्त कुछ स्थान थोडे से और है जहाँ कि उद्योग केन्द्रित हुए, जैसे कानपुर नागपुर, अहमदाबाद, मद्रास, टाटानगर व इन्दौर। इन नगरो के बाद भारत के औद्योगिक नगरो की नामावली समाप्त हो जाती है। उद्योगो के इन इने-चुने स्थानो पर ही केंद्रित होने का एक कारण अंग्रेजो का अपना स्वार्थ भी था। ये विदेशी कभी भी यह नही चाहते थे कि भारत मे उद्योग किसी वैज्ञानिक योजना के अनुसार पनपें। उनको तो अपना स्वार्थ सिद्ध करना था। यदि भारत मे उचित ढग से उद्योग विकसित होते, तो फिर उनके देश के कारखानो का कार्य कैसे चलता ? वे तो भारत से कच्चा माल ले जाते और उससे अपने देश के उद्योगो को चलाते थे। देश के किंचित स्थानो पर अवश्य कुछ साहसी विदेशी व्यक्तियो ने अपने निजी लाभ की दृष्टि से उद्योग प्रारम्भ किये थे। आइय, अब हम अपने देश के विचित्र औद्योगिक केन्द्रीयकरण की झाकी करें।

(१) सूती वस्त्र उद्योग—

सूती कपडे की अधिकतर मिलें बम्बई तथा अहमदाबाद मे ही हैं। यह सत्य

है कि इन नगरो के आस-पास की भूमि कपास की उपज के लिये बडी उपयुक्त है। यातायात के साधन भी यहा पर सबसे अधिक हैं। अतएव कपडे की मिलें यही पर केन्द्रित हुई, परन्तु कपास एक हल्का पदार्थ है और कम खर्च मे भी काफी दूर तक सरलता से भेजा जा सकता है, इसलिये औद्योगिक शक्ति (विशेषकर जल-विद्युत) की उन्नति के साथ कपडे की मिले भी इधर-उधर बिखरने लगी, जैसे—नागपुर, कानपुर, इन्दौर, मद्रास आदि मे कपडा मिल खोले गये। किन्तु यह विकेन्द्रीयकरण किन्ही वैज्ञानिक सिद्धान्तो के आधार पर नही हुआ और न आज ही है। उदाहरण के लिये, ग्वालियर मे कपडे का एक बहुत बडा मिल है (जीवाजी रॉव कॉटन मिल्स), यद्यपि वहा कपास पैदा नही होती। वास्तव मे यहा पर इस मिल की स्थापना किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त के आधार पर नही, अपितु 'कर' की बचत करने के लिये हुई। कानपुर, नागपुर आदि नगरा मे कपडे का उद्योग यातायात के साधनो की उन्नति के कारण ही बढ गया है। बम्बई तथा अहमदाबाद के नगरो मे सूती कपडे के उद्योग के विकेन्द्रीयकरण के कुछ और भी कारण हैं। बम्बई व अहमदाबाद मे उद्योगपतियो को अधिक किराये, अधिक मजदूरिया तथा जल एव अन्य सेवाओ के लिय अधिक दाम देने पडते हैं, अत विकेन्द्रीयकरण की ओर उद्योगा का विशेष झुकाव है। जल-विद्युत के विकास के साथ-साथ कपडे की मिल दक्षिण-भारत के अनेक नगरो मे फैल गई है, जैसे मदुरा, तूतीकोरन तथा कोयम्बटूर मे।

(२) जूट उद्योग—

जूट उद्योग अधिकतर बगाल प्रान्त तक ही सीमित है और वह भी कलकत्ता तथा इसके आस-पास के क्षेत्र मे ही। जूट की कुल ६५ मिलो मे से ६० कलकत्ता तथा इसके इद गिद केन्द्रित है। जूट उद्योग मे विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति (जैसा कि कपडे के उद्योग मे है) नही देखी जाती। इसका मुख्य कारण यह है कि इस उद्योग मे स्थानीयकरण का एक विशेष नियम लागू होता है। कच्चा जूट बहुत सस्ता होता है, अतएव जूट का उद्योग कही अन्य स्थान पर स्थापित किया जाय तो कच्चा माल वहा पर ले जाने मे खर्चा बहुत बढ जायगा। 'जितने की बुढिया नही, उससे अधिक कडराई" वाली कहावत यहा चरितार्थ होती है, अर्थात् कच्चा माल वैसे अधिक सस्ता है, पर भाडे के कारण उसका कुल दाम बहुत बढ जायगा। इस कारण जूट-उद्योग जूट की पैदावार के क्षेत्र मे केन्द्रित है। बगाल मे गगा की अनेक सहायक शाखाओ द्वारा बहुत कम खर्च मे कच्चा माल जूट के कारखानो तक भेजा जा सकता है। किन्तु बगाल के अतिरिक्त अन्य स्थानो पर कच्चा माल भेजने के लिये ऐसी सुविधायें नही हैं, जिनके फलस्वरूप जूट उद्योग बगाल मे ही केन्द्रित है।

जूट की भांति कोयला भी भारी होने के कारण दूर दूर के स्थानो पर केवल अधिक भाडा देने पर ही भेजा जा सकता है। अत. कोयला उद्योग भी कोयले की खानो के निकट ही केन्द्रित हो गया है। इसके विकेन्द्रीयकरण की भी कोई सम्भावना

नहीं है । उद्योग के मुख्य केन्द्र रानीगज, भरिया तथा बकारो हैं; इन केन्द्रों से ९०% कोयला मिलता है । कोयला औद्योगिक शक्ति का एक प्रमुख साधन है, अतः अन्य उद्योग भी प्रायः कोयले की खानों के आस-पास ही केन्द्रित हुए और होते हैं, क्योंकि उनको वहाँ सुविधा से कोयला प्राप्त हो जाता है, परन्तु वर्तमान युग मे जब से जल-विद्युत का आविष्कार हो गया है, ऐसी बात नहीं रही । अब औद्योगिक शक्ति तार की लाइन द्वारा बहुत दूर तक भी सरलता से पहुँचाई जा सकती है ।

(३) लौह उद्योग—

लौह उद्योग भी वहीं सम्भव है जहाँ कच्चा लोहा, कोयला तथा पत्थर का चूना विद्यमान हो । ये चीजें अन्य स्थानों से अधिक व्यय करने पर ही भेजी जा सकती हैं, अतः लौह उद्योग सिंघभूमि जिले से उड़ीसा तक ही केन्द्रित है, क्योंकि यहाँ पर ही ये पदार्थ प्रचुर मात्रा मे पाये जाते हैं ।

(४) शक्कर उद्योग—

शक्कर उद्योग भारत मे केवल उत्तर-प्रदेश तथा बिहार के प्रान्तों मे ही सीमित है, क्योंकि ये गन्ने के प्रदेश हैं । परन्तु अब सिंचाई के साधनों की उन्नति के साथ शक्कर-उद्योग बम्बई तथा मद्रास मे भी बढ रहा है । इस उद्योग का विकेन्द्रीयकरण केवल उन्हीं भागों मे सम्भव है जहाँ पर गन्ना पैदा होता हो अथवा हो सकता हो, क्योंकि यह बड़ा आवश्यक है कि शक्कर के कारखानों के अधिक से अधिक १६ मील के इर्द-गिर्द गन्ना निकलता हो, नहीं तो अधिक दूर से अलग करके लाये हुए गन्ने कारखाने तक आते आते सूखकर खराब हो जाते हैं ।

(५) कागज उद्योग—

कागज उद्योग भी अभी तक बगाल तथा रानीगज मे ही केन्द्रित है । बम्बई, पजाब, मद्रास तथा लखनऊ में भी कागज की कुछ मिलें हैं । यह उद्योग सबाई घास (अथवा कागज की लुग्दी या बाँस) तथा सस्ती औद्योगिक शक्ति पर निर्भर है । शक्ति की सुलभता के कारण ही यह उद्योग अभी तक बगाल तथा रानीगज के निकट ही केन्द्रित है । किन्तु अब आशा की जाती है कि शक्ति के साधनों की उन्नति के साथ-साथ इस उद्योग का भी विकास तथा विकेन्द्रीयकरण होगा ।

(६) सीमेन्ट उद्योग—

सीमेंट उद्योग भारत मे गिने-चुने स्थानों पर ही केन्द्रित है, जैसे—डालमियाँ नगर, कटनी, जबलपुर, काठियावाड तथा ग्वालियर मे । यद्यपि पत्थर का चूना इस देश मे आधिकता से अन्य अनेक स्थानों पर भी पाया जाता है ।

STANDARD QUESTIONS

1. Briefly describe the locational pattern in Indian Industries.

अध्याय ४६

उद्योगों का प्रादेशिक वितरण

(Regional Distribution of Industries)

भूमिका—

उद्योगों का प्रादेशिक या विकेन्द्रित विकास आधुनिक युग की एक प्रमुख आवश्यकता बन गया है। विशाल क्षेत्रफल वाले देशों के लिए इस दृष्टिकोण का विशेष महत्त्व है। औद्योगिक विकास की प्रादेशिक प्रणाली विवेकपूर्ण आर्थिक नियोजन की एक प्रमुख विशेषता है। श्री बैलरबी (Bel erby) अपनी पुस्तक Economic Reconstruction मे लिखते हैं कि, "औद्योगिक क्रिया के अत्यधिक केन्द्रीकृत स्वभाव के कारण एक राष्ट्रीय योजना के सहज निष्पादन मे बड़ी रुकावट पड़ती है। अतः आर्थिक योजना के एक अग के रूप मे प्रत्येक क्षेत्र के लिए एक प्रादेशिक विकास योजना भी होनी चाहिये।"*

प्रादेशिक आधार पर विकास के सम्बन्ध मे मतभेद—

यह देखते हुए कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों मे औद्योगिक विकास के लिये एक सी सुविधायें नही हैं, प्रादेशिक आधार पर उद्योगों का वितरण करना सरल नही जान पड़ता। इस आधार पर वितरण हो भी या नही, यह स्वय विवाद का प्रश्न है। एक ओर तो यह कहा जाता है कि राष्ट्रीय आर्थिक हित और औद्योगिक निपुणता सदा ध्यान मे रखनी चाहिये और साधारणतया उद्योग के वहाँ स्थापित होने मे, जहाँ लागत मूल्य न्यूनतम पड़े, काई बाधा नही डालनी चाहिये, क्योंकि वैसा करना आजकल की प्रतिद्वन्दिता के युग मे औद्योगिक विकास के लिये बड़ा अहितकर सिद्ध होगा। दूसरी ओर यह कहा जाता है कि राज्य ही प्रत्येक प्रदेश के लिए आर्थिक हितों के अधिक

---

* The extremely localised character of industrial activity presents a serious stumbling block to the smooth performance of a national plan Super imposed on the national plan and becoming part of it there must be a regional plan in each area for dealing specifically with the large local residue of unemployment." (J. R. Bellerby :—Economic Reconstruction, p. 287.)

उचित वितरण का प्रयत्न करे। वितरण एवं उत्पादन व्यय की दृष्टि से जहाँ केन्द्रीय-करण सस्ता पडता हो वहा भी अधिकतर दशाओ मे यह देखा जायेगा कि अन्त मे सामाजिक एवं आर्थिक दोनो प्रकार के उद्योगो का विकेन्द्रिन किया जाना ही राष्ट्रीय हित मे है। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित मत उल्लेखनीय है—

(१) 'राष्ट्रीय आर्थिक नीति का उद्देश्य यह होना चाहिये कि देश के विभिन्न *भागो मे औद्योगिक विकास का यथासम्भव उचित सन्तुलन हो एवं सम्पूर्ण देश के प्रत्येक भाग मे उचित रीति से सब प्रकार के उद्योग फैलें।"*

(बारलो कमीशन)

(२) 'राजनैतिक तथा आर्थिक योजना समुदाय ने भी उद्योगो के लिये अवाछित सामाजिक, आर्थिक और रक्षात्मक परिणामो एव कुछ शहरी क्षेत्रो के अति औद्योगिक हो जाने को रोकने के लिए नपे-तुले प्रादेशिक विकास पर जोर दिया है। इससे न केवल बहुमुखी आर्थिक व्यवस्था के लाभ प्राप्त होगे, वरन् गाँव की पिछडी हुई दशा भी सुसगठित हो जायेगी।

यदि इस व्यापक दृष्टिकोण से देखे तो 'आर्थिक' और 'सामाजिक' आधारो म कोई अन्तर मालूम नही होगा। राष्ट्रीय नीति का उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ कम से कम व्यय पर प्राप्त करना है, अर्थात् राज्य को न केवल आय प्राप्त करने की शक्ति बढ़ानी है, वरन् औद्योगीकरण की सामाजिक कीमत भी कम करनी है। वास्तविक समस्या तो यह है कि किन केन्द्रो का विकास समस्त राष्ट्र के दृष्टिकोण से अधिक हितकर है। अत देश के आर्थिक हित के विचार से यह आवश्यक है कि उद्योगो का प्रादेशिक आधार पर पुन सगठन हो।

उद्योगो के प्रादेशिक वितरण के लक्ष्य—

उद्योगो का प्रादेशिक वितरण करने के मुख्य लक्ष्य निम्नलिखित है—

उद्योगो का प्रादेशिक वितरण क्यो ?

(१) देश के स्थानीय प्रसाधनो का अधिक समान विकास करने के लिये।

(२) अनुकूलतम औद्योगिक क्रिया के लिये।

(३) सीमित साधनो का मितव्ययिता से प्रयोग करने के लिय।

(४) रोजगार के अवसरो का न्यायोचित वितरण करने के लिए।

(५) सामाजिक उद्देश्यो की पूर्ति करने के लिये।

(१) देश के स्थानीय प्रसाधनो का अधिक विकास करने के लिये— इस प्रकार के औद्योगिक वितरण के अन्तर्गत स्थानीय उद्योगो मे विविधता आती है और उनका सतुलित विकास होता है। इससे देश के विभिन्न क्षेत्रो मे सतुलित जीवन सभव हो जाता है। यह उल्लेखनीय है कि प्रादेशिक विकास का लक्ष्य, आत्म निर्भरता नही होना, क्योकि कोई भी प्रदेश इतना सम्पन्न नही होता कि वह एक समुचित सभ्य जीवन के लिए आवश्यक सभी औद्योगिक वस्तुओ की पूर्ति कर सके। वस्तुत एक प्रदेश की आधिक्य वस्तुये दूसरे प्रदेशो मे आती जाती है

और प्रादेशिक वितरण के फलस्वरूप अन्तर्प्रादेशिक व्यापार के स्वभाव एवं सामग्री मे थोड़ा परिवर्तन हो जाता है।

(२) अनुकूलतम औद्योगिक क्रिया के लिये—उद्योगों के प्रादेशिक वितरण के अन्तर्गत प्रादेशिक संघर्षों को प्रोत्साहन देने के बजाय राष्ट्रीय प्रगति के व्यापक हितो को ध्यान मे रखते हुए समन्वित (harmonize) किया जाता है। श्री बालकृष्ण के शब्दो मे, "प्रादेशिक विकास का उद्देश्य उपलब्ध प्रसाधनो के उपयोग मे अधिकतम कुशलता प्राप्त करना है, न कि अपने-अपने उद्देश्यो एव स्वप्नो को पूरा करने के लिए विभिन्न क्षेत्रो के प्रतियोगी दावो का समायोजन करना"।*

(३) सीमित साधनो का मितव्ययिता से प्रयोग करने के लिए—भावी पीढ़ी के लाभ को ध्यान मे रखते हुए प्रादेशिक विकास के अन्तर्गत सीमित एव समाप्त होने वाले प्रसाधनो का मितव्ययिता से प्रयोग किया जाता है।

(४) रोजगार के अवसरो का न्यायोचित वितरण करने के लिए—प्रादेशिक विकास इस सत्य पर आधारित है कि सम्पन्नता एव निर्धनता अविभाज्य है। उद्योगो का न्यायपूर्ण प्रादेशिक वितरण होने से रोजगार के अवसर कुछ ही प्रदेशो तक सीमित नही रहते, वरन् समस्त देश म व्यापक रूप से सुलभ हो जाते हैं, जिससे विभिन्न प्रदेशो की प्रति व्यक्ति आय मे असमानता कम हो जाती है। इस प्रकार सभी प्रदेशो के विकास का प्रयत्न किया जाता है।

(५) सामाजिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिये—प्रादेशिक विकास कुछ सामाजिक उद्देश्यो की पूर्ति मे भी सहायक होता है, जैसे—श्रम के प्रवास को रोकना, पिछड़े हुए प्रदेशो को उन्नत करना, प्रति व्यक्ति आय मे समता लाना, कुछ बडे औद्योगिक केन्द्रो म जन-सख्या के केन्द्रीयकरण को रोकना।

भारत मे उद्योगो के प्रादेशिक वितरण की आवश्यकता—

भारत मे औद्योगिक स्थानीयकरण के स्वरूप का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यहां उद्योगो की स्थापना बडी बेतुकी हुई है। कुछ चुने हुये क्षेत्रो मे कुछ वृहत उद्योगो का अनुपातातीत विकास हो गया है, जबकि शेष क्षेत्रो मे इनका नितान्त अभाव है। इस सम्बन्ध मे भारत सरकार के आर्थिक सलाहकार द्वारा प्रकाशित "भारतवर्ष मे उद्योगो का स्थानीयकरण" शीर्षक पुस्तिका से निम्न उदाहरण बहुत रोचक प्रतीत होगा :—

---

* 'The aim of a regional development should be to secure maximum efficiency in the utilisation of available resources rather than the adjustment of rival claims of different areas to achieve their own aims and ambitions.' (Regional Planning in India 1, p. 73)

"भारतवर्ष में उद्योगों का वितरण बड़ा अनुचित और बिना किसी सिद्धान्त के अनुसार है। जन-संख्या के वितरण से भी इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल बड़े नगर (विशेषतः समुद्र के निकट वाले) ही उद्योगों के केन्द्र हैं, गाँवों में उद्योग कहीं भी उन्नति पर नहीं हैं। विकेन्द्रीयकरण भी केवल अन्दर के बड़े शहरों में ही है, गाँवों की ओर यह प्रवृत्ति लेशमात्र भी नहीं।"

निम्न तालिका से यह प्रगट होता है कि उद्योगों का प्रादेशिक वितरण बहुत असमान है। अधिकांश वृहत् उद्योग बम्बई व कलकत्ता में ही केन्द्रित हैं।

बम्बई व कलकत्ता में उद्योग का केन्द्रीयकरण (१९५१)

	बम्बई व कलकत्ता	कुल भारत	%
रजिस्टर्ड कारखानों की संख्या	२,९२१	६,९७८	४२
दत्त पूँजी १० लाख रुपयों में	५,१८७	७,७५४	६७
स्थाई पूँजी १० लाख रुपयों में	१,५१६	२,७५२	५५
शुद्ध उत्पादन (मूल्य १० लाख रु० में)	२,२७९	३,४७२	५६
मजदूरी १० लाख रु० में	१,०३३	१,५३५	६७
मजदूरों की संख्या हजारों में	९३३	१,४७८	६३

सन् १९५१ में बम्बई व कलकत्ता में कुल भारत के ४२% कारखाने थे, जिनमें कुल पूँजी का ६७% लगा था, जिन्होंने ६६% उत्पादन किया व जिनमें ६३% मजदूर लगे हुये थे। उद्योगों के अत्यधिक केन्द्रीयकरण के फलस्वरूप बम्बई व कलकत्ता की जन-संख्या में बहुत वृद्धि हो गई है। वहाँ गृह समस्या ने विकट रूप धारण कर लिया है, जीवनोपयोगी वस्तुओं के मूल्य बहुत बढ़ गये हैं, श्रमिकों की शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं पर बुरा प्रभाव पड़ा है तथा उनकी कुशलता बहुत घट गई है।

अतः स्पष्ट है कि भारत में उद्योगों का वितरण उचित होना परमावश्यक है। डाक्टर राधाकमल मुकर्जी के शब्दों में, "स्वतन्त्र भारत में समस्त देश के हित के लिये एक राष्ट्रीय आर्थिक योजना होनी चाहिए और विकेन्द्रीयकरण यातायात के साधनों की उन्नति तथा जल विद्युत के विकास के साथ-साथ एक वैज्ञानिक ढङ्ग पर होना चाहिये, जिससे समस्त राष्ट्र उन्नति करे।

प्रादेशिक आधार पर औद्योगिक विकास के लिये आवश्यक उपाय—

भारत की औद्योगिक योजना में उद्योगों के युक्तिसंगत वितरण को उचित स्थान मिल गया है, किन्तु प्रादेशिक आधार पर औद्योगिक विकास की सफलता के लिए निम्न उपाय करना आवश्यक है :—

भारत मे प्रादेशिक आधार पर औद्योगिक विकास के लिये ६ उपाय

(१) देश के राजनैतिक विभागो का आर्थिक आधार पर पुनर्गठन ।
(२) उद्योगो के स्थानिक स्वरूप का क्षेत्रक्रम से अध्ययन ।
(३) लघु एव मध्यम आकार के उद्योगो की महत्वपूर्ण भूमिका ।
(४) यातायात प्रणाली की सरचना एव भाडा नीतियो मे उचित सशोधन ।
(५) विद्युत शक्ति के उत्पादन का विकास ।
(६) विभिन्न उद्योगो की विकेन्द्रीकरण प्रवृत्तियो का विश्लेषण ।

(१) देश के राजनैतिक विभागो का आर्थिक आधार पर पुनर्गठन—देश के राजनैतिक विभागो का पुनर्गठित करना चाहिए, जिससे काफी बडे आर्थिक क्षेत्र बन सके । प्रत्येक क्षेत्र को एक स्वतत्र आर्थिक इकाई माना जाय, जो अपने प्रसाधनो का उस क्षेत्र की विभिन्न राजनैतिक इकाइयो के सयुक्त प्रयत्न द्वारा उचित शोषण कर सके । प्रत्येक क्षेत्र के लिये एक 'क्षेत्रीय योजना बोर्ड' (Regional Planning Board) गठित किया जाय । ये बोर्ड नये उद्योगो की स्थापना के सम्बन्ध मे योजना आयोग को अमूल्य परामर्श दे सकते हैं । इन बोर्डों मे विभिन्न राज्यो के (जो कि उस क्षेत्र मे आते हैं) प्रतिनिधि सम्मिलित होने चाहिय । बोर्ड निम्नलिखित कार्य कर सकते है :—(i) स्थूल, हलके एव लघु व कुटीर उद्योगो की स्थापना की दृष्टि से कच्चे माल की उपलब्धि, शक्ति, यातायात सुविधा तथा बेरोजगार श्रम शक्ति के सन्दर्भ मे प्रदेश के सतुलित विकास की सभावनाओ का अध्ययन करना । (ii) नगर नियोजको (Town planners) के सहयोग स, अपने क्षेत्र मे औद्योगिक विकास के विभिन्न पहलुओ को ध्यान मे रखते हुए, आवास अस्पताल, स्कूल और पार्क आदि की योजनायें बनाना । (iii) योजना आयोग को समय-समय पर स्थानीय परिस्थितियो एव आवश्यकताओ से अवगत कराना । (iv) अपने क्षेत्र के उद्योगपतियो को उद्योगो की स्थापना के लिये स्थान सम्बन्धी परामर्श व सूचना देना । (v) जिला एवं स्थानीय बोर्डों के द्वारा प्रत्येक स्तर पर जनता से विभिन्न योजनाओ के क्रियान्वन मे सहयोग प्राप्त करना ।

इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि उद्योगो की स्थापना के प्रश्न पर बोर्ड को राजनैतिक दबाव का सामना करना पड सकता है, जो सम्भव है कि सम्पूर्ण राष्ट्र के सामाजिक एव आर्थिक हित मे न हो । उदाहरण के लिये, जब कभी सरकारी क्षेत्र मे किसी उद्योग की स्थापना का प्रश्न बोर्ड के समक्ष आता है, तो विभिन्न राजनैतिक दल अपने राजनैतिक स्वार्थ को दृष्टि मे रख कर उसे अपने प्रभाव क्षेत्र मे रखवाने का प्रयास करते है । ऐसे अस्वास्थ्यकर प्रभाव को कम से कम करने का प्रयास आवश्यक है ।

(२) उद्योगों के स्थानिक स्वरूप का क्षेत्र क्रम से अध्ययन—प्रत्येक

उद्योग की केन्द्रीयकरण के लिये प्रवृत्ति का पता लगाने के हेतु विभिन्न उद्योगों के स्थानिक स्वरूप (Locational Pattern) या क्षेत्रक्रम में अध्ययन करना चाहिए। प्रो० सार्जेंट फ्लोरेन्स ने इस अध्ययन की एक सुन्दर टेक्नीक बनाई है, जिसके आधार पर उद्योगों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है :—(i) उच्च सहगमक वाले उद्योग (High Coefficient industries) जो विशेष क्षेत्र में केन्द्रित होने की प्रवृत्ति रखते हैं, (ii) निम्न सहगमक वाले उद्योग (Low Coefficient industries) जो विकेन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति रखती हैं, एवं (iii) मध्यम सहगमक वाले उद्योग (Medium Coefficient industries)। इस वर्गीकरण के आधार पर अन्तर-प्रादेशिक समायोजनों की समस्या सरलता से हल की जा सकती है। औद्योगिक वितरण में प्रादेशिक असमानता को कम करने के लिये केवल विद्यमान उद्योगों के सम्बन्ध में ही नहीं, वरन् नये उद्योगों के सम्बन्ध में भी (जो कि प्रत्येक क्षेत्र में विकसित किए जा सकते हैं) सम्भावनाओं का अध्ययन करना चाहिये।

(३) लघु एवं मध्यम आकार के उद्योगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका—लघु एवं मध्यम आकार के उद्योगों में बड़े उद्योगों की अपेक्षा विकेन्द्रीयकरण की स्वाभाविक प्रवृत्ति पाई जाती है। अतः वे विकेन्द्रीयकरण के लिए अधिक उपयुक्त हैं। प्रादेशिक वितरण की योजना के अन्तर्गत क्षेत्रों का औद्योगिक पुनर्निर्माण करते समय इनकी सहायता से आवश्यक है कि इन उद्योगों के स्थायी रहने की क्षमता का अध्ययन किया जाय और केवल उन्हीं उद्योगों को बढ़ावा दिया जाय, जो काफी समय तक स्थाई रह सकते हों।

(४) यातायात प्रणाली की संरचना एवं भाड़ा नीतियों में उचित संशोधन—चूंकि उद्योगों के स्थान-निर्णय में 'यातायात सम्बन्ध' (Transport Relations) एक महत्त्वपूर्ण भाग लेते हैं, इसलिये यह भी जरूरी है कि यातायात प्रणाली की विद्यमान रचना एवं भाड़ा नीतियों में उचित संशोधन किये जायें, ताकि उद्योगों की स्थानिक प्रवृत्तियों (Locational Trends) में आवश्यक परिवर्तन लाये जा सकें। प्रादेशिक आधार पर संतुलित औद्योगिक विकास की गति को तीव्र करने के लिये आधुनिक सड़क यातायात की सहायता ली जा सकती है। यातायात के विभिन्न साधनों में समन्वय स्थापित किया जाय। एक केन्द्रीय सत्ता द्वारा उनके कार्य-क्षेत्र बाँट दिये जायें और उनके कुशल उपयोग को प्रोत्साहित करने के लिये आवश्यक कदम उठाये जायें।

(५) विद्युत शक्ति के उत्पादन का विकास—प्रादेशिक वितरण का आधार विद्युत शक्ति का विकास है। प्रादेशिक अर्थव्यवस्था प्रसाधनों की मितव्ययिता एवं विविध तथा विकेन्द्रित उद्योगों के विकास के सिद्धान्तों पर निर्भर होती है। मितव्ययिता का प्रारम्भ जल-धारा के उपयोग से किया जाता है, जो कि शक्ति का अनन्त एवं निरन्तर साधन है। औद्योगीकरण की प्रगति के साथ-साथ शक्ति का

प्रयोग भी बढ जायेगा। अत. शक्ति उत्पादन की योजनायें निर्बाध रूप से बनती रहनी चाहिए।*

(६) विभिन्न उद्योगों द्वारा प्रदर्शित विकेन्द्रीयकरण प्रवृत्तियों पर अनुसंधान—उद्योगो का अधिक अच्छा प्रादेशिक वितरण सम्भव बनाने के लिये यह आवश्यक है कि विभिन्न उद्योगो द्वारा विकेन्द्रीयकरण की जो प्रवृत्तियां प्रदर्शित की जायें उनका सावधानी से विश्लेषण एव अध्ययन किया जाय।

अन्त में, यह कहना अनावश्यक न होगा कि प्रादेशिक विकास किसी भी तरह से केन्द्रीय योजना के उद्देश्यो एव लक्ष्यो का विरोधी नही है, वरन् इसके द्वारा एक राष्ट्रीय आकार पर उद्योगो का सतुलित विकास सम्भव होगा।

STANDARD QUESTIONS

1 What do you mean by 'Regional Development of Industries'? Discuss its aims and objectives

2 Make out a case for Regional Development of Industries in India What are its essential requisites?

---

* "In the nature of things a target such as this cannot be regarded as being rigid, adjustments will certainly be needed from time to time o as to take account of changes in the scope of industrial programmes, location of industrial units and the growth and pattern of consumption." (Second Five Year Plan, p 325)

अध्याय ४७

राज्य एवं औद्योगिक स्थानीयकरण

(State & Industrial Location)

सरकार द्वारा औद्योगिक नियंत्रण के उपाय—

सरकार द्वारा औद्योगिक स्थानीयकरण का नियमन करने के लिए जो नीति अपनाई जाय उसमे निम्न उपायो का समावेश किया जा सकता है :—

(१) प्रेरणात्मक उपाय—

औद्योगिक स्थानीयकरण का नियमन करने मे सरकार को प्रेरणात्मक उपायो से बडी सहायता मिल सकती है। इन उपायो का उद्देश्य उद्योगपतियो मे कुछ विशेष क्षेत्रो मे अपने उद्योगो की स्थापना करने को प्रेरित करना है। इन उपायो की प्रकृति स्थानीय परिस्थितियो एव उद्योग के स्वभाव के अनुसार अलग अलग हो सकती है। मोटे तौर पर प्रेरणात्मक उपायो को इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है :—

(१) सार्वजनिक जनोपयोगी सेवाओ की व्यवस्था करना—सार्वजनिक जनोपयोगी सेवाओ (जैसे यातायात, भूमि-विकास, जल एव बिजली) की स्थापना करने को दूर करना है, जिनके कारण उन क्षेत्रो का विकास नही हो पाया है। सरकार को इन सेवाओं की स्थापना के साथ-साथ इनके प्रचार की भी व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे इनका ज्ञान सम्भावित उद्योगपतियो को हो सके।

(२) चुने हुये औद्योगिक क्षेत्रो मे सामाजिक सुविधाये देना—मनोरजन, शिक्षा एव स्वास्थ्य सम्बन्धी सामाजिक आर्थिक सुविधाओ का आयोजन करके भी सरकार कुछ क्षेत्रो के विकास मे सहायता कर सकती है। बडे-बडे नगरो के बाहर इन सुविधाओ की उपलब्धि न होने से उद्योगो के विकेन्द्रीयकरण मे बाधा पडती है, क्योकि कुछ उद्योगपति अपने कारखानो की स्थापना के लिये उपयुक्त स्थान का चुनाव करते समय इन बातो पर भी ध्यान देते हैं। इन सामाजिक सुविधाओ के अतिरिक्त कुछ पूरक आर्थिक सुविधाओ का भी आयोजन किया जा सकता है, जैसे—श्रमिको को टेक्नीकल ज्ञान प्रदान करना, स्थानीयकृत उद्योगो के लाभार्थ विपणन सम्बन्धी सगठन स्थापित करना आदि।

(३) भावी उपक्रमियो की आर्थिक सहायता करना—आर्थिक सहायता दो प्रकार से दी जा सकती है—प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से। प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक सहायता तभी दी जानी चाहिए जबकि यह स्पष्टतः विदित हो जाय कि अमुक आवश्यक उद्योग का विकास ऐसी वित्तीय सहायता के बिना हो ही नही सकेगा। अप्रत्यक्ष आर्थिक सहायता कुछ सेवाओ की लागत कम करने अथवा प्रतिकूल तत्वो के कुप्रभावों का सामना करने के लिये दी जा सकती है।

औद्योगिक नियन्त्रण के ढंग

(१) प्रेरणात्मक उपाय—
(१) सार्वजनिक जनोपयोगी सेवाओ की व्यवस्था करना।
(२) चुने हुए औद्योगिक क्षेत्रो मे सामाजिक सुविधायें देना।
(३) भावी उपक्रमियों की आर्थिक सहायता करना।
(४) पर्याप्त एव सस्ती वित्त सुविधाओ का आयोजन करना।
(५) स्टोर्स क्रय नीति।
(६) औद्योगिक बस्तियो की स्थापना

(२) निषेधात्मक उपाय—
(१) स्थानीय करो मे वृद्धि।
(२) औद्योगिक विकास कर।
(३) स्थानीयकरण पर प्रतिबन्ध।
(४) औद्योगिक लाइसेन्स देने की प्रथा।

(४) पर्याप्त एव सस्ती वित्त सुविधाओ का आयोजन—कुछ क्षेत्रो मे रियायती दरो पर औद्योगिक विकास के लिये ऋण देने की व्यवस्था की जा सकती है। इन क्षेत्रो म बैंकिंग एव वित्त सम्बन्धी सुविधायें भी बढ़ानी चाहिये। आय और अन्य स्थानीय करो के सम्बन्ध मे भेदात्मक व्यवहार द्वारा भी सरकार अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक सहायता कर सकती है।

(५) स्टोर्स क्रय नीति—सरकार यह आश्वासन दे सकती है कि कुछ चुने हुए क्षेत्रो मे जो उद्योग स्थापित होंगे उनमे ही सरकार अपनी स्टोर्स सम्बन्धी आवश्यक वस्तुएं खरीदेगी। सरकार इन उद्योगो के उत्पादन को अपने ही विभागो के काम मे ला सकती है अथवा उनके लिए बाजार का सगठन भी कर सकती है। नेशनल स्माल इन्डस्ट्रीज कॉरपोरेशन ऐसा कार्य कर रहा है। इसने लघु उद्योगो के उत्पादन के लिये विदेशो से आर्डर भी प्राप्त किये हैं।

(६) औद्योगिक बस्तियो की स्थापना—यू० के० की भाँति भारत मे भी औद्योगिक बस्तियो का आयोजन किया जा सकता है। औद्योगिक बस्तियो की योजना के अन्तर्गत सरकार उन क्षेत्रो मे, जिनका वह विकास करना उचित समझती है, *विशाल भू-भाग लेकर वहां समस्त औद्योगिक सुविधाएं जुटाती है तथा भावी उद्योग-*पतियो को भूमि व बिल्डिङ्ग आदि के रूप मे भारी विनियोग नहीं करना पड़ता और न औद्योगिक सम्भावनाओ की खोज मे अपना श्रम लगाना पड़ता है। इस प्रकार, औद्योगिक बस्तियों की योजना के द्वारा औद्योगिक विकेन्द्रीयकरण मे बहुत सहायता मिल सकती है।

(२) निषेधात्मक उपाय—

इन उपायो के अन्तर्गत उन विधियो को सम्मिलित किया जाता है जो कि सरकार द्वारा अनुचित औद्योगिक केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए अपनाया जाता है। किन्तु यह स्मरणीय है कि इन निषेधात्मक विधियो की अपेक्षा प्रेरणात्मक विधियाँ अधिक प्रभावशाली होती हैं, क्योकि उद्योगपतियों को कुछ करने की प्रेरणा देना उन्हे कुछ करने से रोकने की अपेक्षा प्रायः सरल होता है। अत सरकार को निषेधात्मक उपायो पर बहुत निर्भर नही रहना चाहिए। ये उपाय निम्नलिखित हैं :—

(१) स्थानीय करो मे वृद्धि—कुछ क्षेत्रो मे अत्यधिक औद्योगिक केन्द्रीयकरण की रोकथाम के लिए सरकार कुछ सामान्य रोकें लगा सकती है, जैसे कि वह स्थानीयकरण करो मे वृद्धि कर दे।

(२) औद्योगिक विकास कर—चुने हुए क्षेत्रो मे नये औद्योगिक संस्थाओ के लाभार्थ सरकार स्थापित उद्योगो पर औद्योगिक विकास कर लगा सकती है।

(३) स्थानीयकरण पर प्रतिबन्ध—कुछ दशाओ मे सरकार यह आदेश जारी कर सकती है कि अब से अमुक क्षेत्र या क्षेत्रो मे कोई नये औद्योगिक कारखाने स्थापित नही होने दिये जायेंगे।

(४) औद्योगिक लाइसेन्सिंग—विभिन्न क्षेत्रो मे औद्योगिक क्रिया का अधिक सन्तुलित वितरण करने के लिये सरकार औद्योगिक लाइसेन्सिंग की प्रथा का प्रचलन कर सकती है। इस योजना के अन्तगत देश को तीन क्षेत्रो मे बाँटा जा सकता है—स्वतत्र क्षेत्र (Free Zones), निषिद्ध क्षेत्र (Prohibited Zones) एव निष्पक्ष क्षेत्र (Neutral Zones)। प्रत्येक क्षेत्र मे नियन्त्रण की मात्रा भिन्न-भिन्न होगी। लेकिन इस बात का ध्यान रखा जाय कि जब तक उपक्रमी की इच्छा राष्ट्रीय नीति के व्यापक सामाजिक एव आर्थिक हितो के विरुद्ध न हो तब तक उस पर अधिक प्रतिबन्ध न लगाया जाय।

सरकारी नीति का मूल्याकन—

अप्रैल सन् १९४५ की औद्योगिक नीति सम्बन्धी घोषणा मे भारत सरकार ने औद्योगिक सस्थाओ के लाइसेन्सिंग की व्यवस्था करने का प्रस्ताव किया था, क्योकि औद्योगिक उपक्रमो के प्रवर्तन की निर्बाध स्वतन्त्रता होने के फलस्वरूप कुछ क्षेत्रों मे उद्योगो का बहुत केन्द्रीयकरण हो गया, जबकि अन्य क्षेत्र उनसे वचित रह गये। कुछ दशाओ मे निस्सदेह केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहित करने वाले उचित कारण थे, किन्तु ऐसी भी दशायें पाई गई जिनमे कोई विशेष प्रोत्साहन न होने पर उद्योगो का केन्द्रीयकरण हो गया। इसके अतिरिक्त देश मे अनेक क्षेत्र ऐसे भी हैं जिनमे औद्योगिक विकास के अवसर उपलब्ध हैं, किंतु उसका कुछ लाभ नही उठाया गया है। इन विषमताओ की जाँच करके सिफारिशें देने के हेतु सरकार ने कई औद्योगिक पैनल बनाये। अक्टूबर सन् १९४६ मे एडवाइजरी प्लानिंग बोर्ड की नियुक्ति की गई, जिसका कार्य सभी केन्द्रीय एव राज्य योजनाओ का तुरन्त सर्वे करना और समन्वय व कार्य-

वाहन के सम्बन्ध मे उचित परामर्श देना था। इस बोर्ड ने अपनी रिपोर्ट मे कई महत्त्वपूर्ण विषयो पर सुझाव दिए, जैसे—विद्युत-विकास, रेलवे, कृषि अनुसन्धान, उद्योग आदि। किन्तु देश के विभाजन के फलस्वरूप १५ अगस्त सन् १९४७ से पूर्व तैयार की गई योजनाओ की कोई उपयोगिता नही रही।

अप्रैल सन् १९४८ मे औद्योगिक नीति सम्बन्धी दूसरी घोषणा हुई, जिसके अन्तर्गत भारत सरकार ने यह जांच-पड़ताल करने का निश्चय किया कि जिन उद्योगो का अधिक केन्द्रीयकरण हो गया है उन्हे किस प्रकार एव किस सीमा तक विकेन्द्रित किया जा सकता है। इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिये उसने औद्योगिक (विकास एव नियन्त्रण) अधिनियम सन् १९५१ मे पास किया।

उक्त अधिनियम के अन्तर्गत औद्योगिक नियोजन के सम्बन्ध मे दोनो ही प्रकार के (प्रेरणात्मक एव निषेधात्मक) उपाय बनाये गये हैं। निषेधात्मक उपाय लाइसेन्सिंग प्रणाली का है। जिन औद्योगिक इकाइयो की पूंजी १ लाख रुपये से अधिक है तथा जो अधिनियम मे दी हुई अनुसूची मे अन्तर्गत दिखाये गये है उन्हे केन्द्रीय सरकार से लाइसेन्स लिये बिना प्रारम्भ अथवा विकसित नही किया जा सकता। लाइसेन्स मे कुछ शर्तों का भी उल्लेख होता है, जो कि लाइसेन्स पाने वालो को पूरी करनी पड़ती हैं। लाइसेन्स देने या न देने का निर्णय करने वाली कमेटी मे वाणिज्य एव उद्योग, रेलवे, वित्त व उत्पादन मन्त्रालयो तथा योजना आयोग के प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। यह कमेटी लाइसेन्स देने के पूर्व जांच करती है और फिर अपनी रिपोर्ट वाणिज्य एव उद्योग मन्त्रालय को देती हैं। सेन्ट्रल एडवाइजरी कॉउन्सिल की एक उप-समिति भी इश्यू किये गये, अस्वीकृत, बदले गये व रद्द किये गये लाइसेन्सो पर पुनर्विचार करने तथा नये उपक्रमो की स्थापना एव पुराने उपक्रमो के विस्तार के लिए लाइसेन्स इश्यू करने के सम्बन्ध मे सरकार को सामान्य सिद्धान्तो के सुझाव देने के हेतु नियुक्त की गई है।

जहाँ तक अधिनियम के प्रेरणात्मक आयोजनाओ का सम्बन्ध है, अधिनियम ने सेंट्रल एडवाइजरी कॉउन्सिल और डेवलपमेंट कॉउन्सिलो की स्थापना की व्यवस्था की है। सेंट्रल एडवाइजरी कॉउन्सिल मे कर्मचारियो, सेवायोजको, उपभोक्ताओ एव कच्चे माल के उत्पादको के प्रतिनिधि सम्मिलित किये गये हैं। केन्द्रीय सरकार उक्त अधिनियम के प्रशासन के सम्बन्ध मे इस कॉउन्सिल से परामर्श लेती है। विकास परिषदो की स्थापना किसी उद्योग विशेष के लिये अथवा कई उद्योगो के लिये (जिनके नाम अधिनियम से सलग्न सूची म दिये गये हैं) सम्मिलित रूप से की जाती है। इन्हे 'प्राइवेट उद्योग की धाय' (Nurses for the private industry) की सज्ञा दी गई है। इन परिषदो मे सम्बन्धित उद्योग मे सलग्न इकाइयो के सेवायोजको, कर्मचारियो, उपभोक्ताओ एव अन्य हित रखने वाले वर्गों के प्रतिनिधि सम्मिलित किए जाते हैं। इन विकास परिषदो के कार्यों की सूची बहुत लम्बी है, मुख्यत. यह (1) लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास की दृष्टि से उत्पादन क्रियाओ के विकेन्द्रीयकरण

सम्बन्धी सम्भावनाओं की जाँच करती है ; (ii) अपव्यय को समाप्त करने और अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने के लिये कुशलता के प्रमाप निश्चित करती है ; (iii) स्थापित क्षमता (installed capacity) का पूर्ण उपयोग करने से सम्बन्धित सुझाव देती है। अब तक १३ विकास परिषदें संगठित की जा चुकी हैं।

यह उल्लेखनीय है कि एक्ट में प्रेरणात्मक उपायों की अपेक्षा निषेधात्मक उपायों पर ही अधिक बल दिया गया है। इस बात की आवश्यकता है कि डेवलपमेंट कॉउन्सिलों को उद्योग के स्थानीयकरण की समस्या के अध्ययन का भी कार्य सौंपा जाय और वह सम्बन्धित उद्योगों के लिये सही प्रकार के स्थान का चुनाव करने में भी सहायता दे। केन्द्रीय एडवाइजरी कौंउन्सिल का भी केवल एक परामर्शदाता संस्था की तरह काम न करके समन्वय करने वाली संस्था के रूप में कार्य करना चाहिए। विभिन्न उद्योगों के एक उचित क्षेत्रिक वितरण, लघु एवं वृहत उद्योगों के संतुलित विकास तथा देश के प्रसाधनों का उचित उपयोग करना उसके प्रमुख उद्देश्य होने चाहिए।

पंच-वर्षीय योजनायें एवं औद्योगिक स्थानीयकरण--

पंच वर्षीय योजना आयोग ने यह स्वीकार किया था कि एक अल्प काल में ही देश के औद्योगिक स्थानीयकरण का ढाँचा अधिक नहीं बदला जा सकता। बहु-मुखी योजनाओं के द्वारा विद्युतशक्ति सम्बन्धी सुविधाओं के विस्तार के कारण पंजाब, बिहार एवं उड़ीसा में औद्योगिक विकास की विशाल संभावनायें पैदा हो गई हैं। नये उपक्रमों की स्थापना के सम्बन्ध में अर्द्ध-विकसित देशों को प्राथमिकता दी जायेगी।

द्वितीय एवं तृतीय पंच-वर्षीय योजयाओं में क्षेत्रिक विषमताओं पर अधिक विस्तार से विचार किया गया है। यह अत्यन्त स्वाभाविक है कि विकास की एक राष्ट्रीय योजना में अर्द्धविकसित राज्यों को प्राथमिकता दी जाय। विनियोग की योजना इस प्रकार बनाई जानी चाहिए कि देश का संतुलित औद्योगिक विकास हो। ऐसा विकास प्रारम्भिक अवस्थाओं में, जबकि कुल उपलब्ध प्रसाधन आवश्यकता की दृष्टि से कम हैं, कठिन होता है। लेकिन जैसे-जैसे विकास होता जाय और अधिक साधन उपलब्ध होने लगें वैसे वैसे अर्द्ध-विकसित क्षेत्रों को विनियोग का अधिक लाभ दिया जाना चाहिए।

- औद्योगिक नीति प्रस्ताव (सन् १९५६) में भी इस बात पर जोर दिया गया है कि विभिन्न क्षेत्रों के बीच विकास के स्तरों में अन्तर को कम करते जाना चाहिए। ' तभी देश का जीवन-स्तर ऊँचा उठ सकता है। औद्योगिक विकेन्द्रीयकरण को बढ़ावा देने के लिये प्रस्ताव में औद्योगिक बस्तियों की स्थापना पर जोर दिया गया है।

अभी हाल में नेशनल डेवलपमेंट कौंउन्सिल ने भी उद्योगों के क्षेत्रीय वितरण की समस्या पर विचार किया था और यह भी स्वीकार किया है कि उपलब्ध साधनों

की सीमा तक देश के विभिन्न भागो के सतुलित विकास का भरसक प्रयत्न किया जाना चाहिये। इस सम्बन्ध मे उमने निम्नलिखित सुझाव भी दिये—

(१) विकेन्द्रित औद्योगिक उत्पादन के लिये उचित कार्यक्रम बनाये जायें।

(२) नये उपक्रमो (सरकारी एव प्राइवेट दोनो ही क्षेत्रो मे) की स्थापना करते समय सतुलित अर्थ व्यवस्था का लक्ष्य सामने रखना चाहिये।

(३) श्रम की गतिशीलता बढ़ाने के लिये कदम उठाये जायें और कम घने बसे प्रदेशो मे उनके आवास को प्रोत्साहन दिया जाय।

(४) क्षेत्रिक विषमताओ का गम्भीरता से अध्ययन किया जाय तथा क्षेत्रिक विकास के उपयुक्त प्रमाप निर्धारित किये जायें।

STANDARD QUESTIONS

1. What are the various measures which may be adopted by the Government for the proper and scientific location of industries Please mention the positive and negative approaches

---

अध्याय ४८

अनुकूलतम परिमाण का सिद्धान्त

(Theory of Optimum Size)

प्रारम्भिक—

अधिकतम् लाभ प्राप्त करने के लिए औद्योगिक इकाइयो का परिमाण 'अनुकूलतम्' होना आवश्यक है। यो तो औद्योगिक इकाइयो के विभिन्न साइज हो सकते हैं। परन्तु 'अनुकूलतम् परिमाण' (Optimum size) ही एक ऐसा साइज है, जिसमे उत्पादन व्यय न्यूनतम् होते हैं। अब प्रश्न यह है कि किसी औद्योगिक इकाई के अनुकूलतम् परिमाण से क्या अभिप्राय है। वास्तव मे इसका उत्तर देना जितना महत्त्वपूर्ण है

उतना ही कहने मे कठिन और अनिश्चित भी है। जब औद्योगिक इकाई के परिमाण की चर्चा की जाती है, तो प्रायः 'इकाई' (Unit) शब्द का विभिन्न प्रकार से प्रयोग किया जाता है। 'अनुकूलतम् परिमाण' की परिभाषा के पहले 'इकाई' शब्द का स्पष्ट अर्थ समझ लेना चाहिए, जिसमे 'परिमाण' और 'निपुणता' मे सम्बन्ध स्थापित करने मे सरलता हो।

'इकाई' शब्द से आशय—

'इकाई' शब्द को प्रायः तीन प्रकार से प्रयोग किया जाता है—'प्लान्ट', 'फर्म' या 'उद्योग' के रूप मे। प्रोफेसर सार्जेन्ट फ्लोरेन्स के शब्दो मे, 'प्लान्ट' (Plant) से आशय उस व्यक्ति-समूह से है जो कि एक निश्चित स्थान एव समय पर एकत्र होता है।" इस प्रकार 'प्लान्ट' शब्द एक कारखाना, एक मिल, एक वर्कशॉप, एक खान, एक गोदाम या एक खेरीज की दूकान का पर्यायवाची है। एक 'फर्म' (Firm) से अभिप्राय उस इकाई का है जो कि प्लान्ट या प्लान्टो का स्वामित्व, नियन्त्रण एवं प्रबन्ध करती है। उदाहरण के लिए, यदि एक व्यक्ति (या कम्पनी) दो या अधिक मिलो या कारखानो का स्वामी है, तो उसे वित्तीय एवं प्रशासनिक दृष्टिकोण से एक 'फर्म' या एक औद्योगिक इकाई माना जायगा। कभी-कभी एक 'प्लान्ट' और 'फर्म' समान अर्थ वाले शब्द जान पडते हैं, जैसे कि तब, जब एक फर्म केवल एक ही मिल या कारखाना चलाती हो। लेकिन अधिकाश फर्म एक से अधिक कारखाने चलाती हैं, अतः आकार, लाभ, उत्पादनशीलता एव व्ययो के विचार से सम्पूर्ण विभिन्न कारखाने, जो एक ही स्वामित्व मे हो, एक ही 'फर्म' माने जायेगे। यह फर्म या केन्द्रीय सत्ता अपने अधीनस्थ प्लान्टो की वित्तीय, विपणन एव लेखाकर्म सम्बन्धी नीतियाँ निर्धारित करती है। इसके विपरीत 'उद्योग' (Industry) शब्द से अभिप्राय उन व्यक्तियो से है जो कि प्लान्टो या फर्मो मे कार्य करते हो या उनसे सम्बन्धित हो। दूसरे शब्दो मे, एक सा माल बनाने वाले कारखानो का स्वामित्व एव प्रबन्ध करने वाली सभी फर्मों को मिला कर 'उद्योग' कहा जाता है।

हमारे देश मे उद्योगो के प्रबन्ध की दृष्टि से एक विशेषता पाई जाती है और वह है प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली। बहुत से छोटे-बडे कारखानो पर सयुक्त पूँजी वाली कम्पनियो का ही स्वामित्व विद्यमान है। इनमे से पब्लिक कम्पनियो का प्रबन्ध सामान्यत: अभिकर्त्ताओ द्वारा किया जाता है। ये प्रबन्ध अभिकर्त्ता अधिकाँश दशाओ मे, एक ही या कई केन्द्रो मे, और एक समान या अलग-अलग प्रकार का उत्पादन करने वाली कई सस्थाओ का प्रबन्ध करते हैं। जब एक प्रबन्ध अभिकर्त्ता गृह दो या अधिक कारखानो का प्रबन्ध करता है, तो सामान्यतः सामूहिक क्रय एव विक्रय द्वारा व्यय मे कमी कर प्रत्येक कारखाने को लाभ अवश्य ही पहुँचता है और इसी तरह छोटी सस्थाएँ या कारखाने भी बडी सस्थाओ या कारखानो की तुलना मे अपनी वस्तुओ के विक्रय करने मे नुकसान मे नही रहते। ये प्रबन्ध अभिकर्त्ता (जो विभिन्न प्रकार के यन्त्रो के निर्माताओ का भी प्रतिनिधित्व करते है) सब (छोटी एव बडी) सस्थाओ को यन्त्रादिक एक

ही मूल्य पर देने मे समर्थ होने हैं। फिर उनका सगठन प्रत्येक सस्था अथवा इकाई के सगठन का भाग हो जाता है और इस प्रकार उनमें से प्रत्येक को विक्रय सम्बन्धी सब मितव्ययिताएँ प्राप्त हो जाती है। भारत मे उद्योगो की इस विशेष रचना को ध्यान में रखते हुये यह कहा जा सकता है कि 'इकाई' का अभिप्राय एक औद्योगिक केन्द्र मे उत्पादन की उन समस्त मिलो या कारखानो के समूह से है, जिनका प्रबन्ध कोई एक ही प्रबन्ध अभिकर्तृत्व सस्था करती हो।

यो तो उपर्युक्त परिभाषाओ के समर्थन मे बहुत कुछ कहा जा सकता है फिर भी अधिक लाभ इसी मे रहेगा कि हम इकाई से अपना अभिप्राय उन मिलो अथवा कारखानो तक ही सीमित रखें जो कि एक ही स्वामित्व मे हों। एक ही स्वामित्व को आधार मानना विशेष रूप मे उचित इसलिए है कि भिन्न भिन्न कारखानो से होने वाले आर्थिक परिणामो का उत्तरदायित्व, चाहे वह लाभ के रूप मे मिले अथवा हानि के रूप मे भुगतना पडे, उनके स्वामियो पर ही रहता है।

अनुकूलतम परिमाण का आशय—

बहुत समय से यह माना जाता रहा है कि प्रत्येक उद्योग मे इकाइयो का एक ऐसा न्यूनतम् परिमाण होता है जिसमे कि उत्पादन की निपुणता बनी रहे और इस परिमाण से कम परिमाण वाली कठिनाइयाँ न तो कम व्यय पर उत्पादन कर सकती हैं और न ही वे पतियोगिता करने मे पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकती हैं। किन्तु अभी गत कुछ वर्षों से न्यूनतम परिमाण के विचार का स्थान 'अनुकूलतम् परिमाण' ने प्राप्त कर लिया है। **यदि औद्योगिक इकाई इस परिमाण से छोटी या बडी होगी, तो वह अवश्य ही आर्थिक दृष्टि से अच्छी नहीं हो सकती।** यह परिवतन स्वाभाविक एव समयोचित ही है। ससार परिवर्तनशील है। अत, यदि परिस्थितियो एव आवश्यकता के अनुसार परिमाण सम्बन्धी विचारो म परिवर्तन हो गया है, तो इसम आश्चर्य की क्या बात! जब उद्योग छोटी-छोटी इकाइयो के रूप मे चलाया जाता था तब यह प्रश्न, कि 'क्या' इकाइयाँ इतनी बडी है कि वे कार्य मितव्ययिता से कर सकें, महत्त्वपूर्ण था, किन्तु आधुनिक काल म औद्योगिक क्रान्ति के बाद, जब से उत्पादन, यन्त्रो की सहायता से बडी मात्रा मे होने लगा है और उद्योगो की इकाइयाँ भी परिमाण मे बढती जा रही हैं, तब से यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो गया है कि क्या यह इकाइयाँ उचित परिमाण को हैं, अथवा वे इतनी अधिक बडी तो नहीं है कि निपुणता से सचालित न की जा सकती हो ? हम यह कहावत जानते हैं कि 'अति सवत्र वर्जयेत' यानी अति सबकी बुरी होती है। इसी आधार पर हमारा उपर्युक्त प्रश्न उठता है कि कहीं उद्योगो की इकाई का *परिमाण आवश्यकता से अधिक तो बडा नहीं हो गया, नहीं तो लाभ की जगह हानि* पहुँचेगी। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने सबसे उचित परिमाण का नाम 'अनुकूलतम परिमाण' रखा है। राबिन्सन ने अनुकूलतम फर्म की परिभाषा निम्न प्रकार की है —"अनुकूलतम फर्म की परिमाण वाली फर्म वह है जो विद्यमान टेक्नीक एव सगठन योग्यता की दृष्टि से प्रति इकाई सबसे कम औसत उत्पादन लागत

रखनी हो जबकि सभी दीर्घकालीन लागतो को भी विचार मे लिया जाय।"* यही परिमाण ही औद्योगिक इकाइयो के लिए वांछनीय माना गया है और निपुणता की यही सबसे ऊँची सीढी है। इस सीढ़ी से आगे बढने या नीचे उतरने पर निपुणता मे कमी आवेगी।

इस परिमाण की स्थापना व्यापारियो की सूझबूझ और निर्णय का फल है, जो बराबर यह विचार करते रहते है कि अपने साधनो का किस प्रकार अधिकतम विनियोग किया जाय। प्रतिस्पर्द्धा भी, अकुशल फर्मो को हतोत्साहित एव कुशल फर्मो को प्रोत्साहित करके, अनुकूलतम परिमाण की फर्मो की स्थापना मे योग देती है।

किन्तु अनुकूलतम फर्म की तीन त्रुटियाँ है :—(१) पूर्ण प्रतियोगिता की दशायें व्यवहार मे नही देखी जाती तथा पूर्ण प्रतियोगिता की माप करना भी कठिन है; (२) यद्यपि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत फर्मो का अनुकूलतम परिमाण होता है, लेकिन पूर्ण प्रतियोगिता की अनुपस्थिति मे फर्म अनुकूलतम परिमाण से बहुत भिन्न हो जायेंगी ऐसा भी नही कहा जा सकता, और (३) तथ्यो के अवलोकन द्वारा प्रायः यह पता लगाना कठिन है कि विभिन्न उद्योगो मे फर्मो का अनुकूलतम आकार क्या है।

'अनुकूलतम परिमाण' को प्रभावित करने वाले तत्त्व

(Factors Affecting Optimum Size)

रोबिन्सन के अनुसार एक औद्योगिक इकाई के सर्वोत्तम परिमाण को प्रभावित करने वाले कारणो को पाँच श्रेणियो मे बाँटा जा सकता है, यथा—टेक्नीकल कारण, प्रबन्ध सम्बन्धी कारण, वित्तीय कारण, विपणन सम्बन्धी कारण एव जोखिम से सम्बन्धित कारण। कारणो की प्रत्येक श्रेणी से सम्बन्ध रखती हुई एक अनुकूलतम इकाई होती है। इन्हे क्रमशः अनुकूलतम टेक्नीकल इकाई (Optimum Technical Unit), अनुकूलतम प्रबन्ध इकाई (Optimum Managerial Unit), अनुकूलतम वित्तीय इकाई ((Optimum Financial Unit), अनुकूल विपणन इकाई (Optimum Marketing Unit) एव अनुकूलतम जोखिम इकाई (Optimum Survival Unit) कहते हैं। किसी औद्योगिक इकाई का जो वास्तविक या अन्तिम परिमाण होगा, उसका निर्धारण इन विभिन्न अनुकूलतमो के समन्वय पर निर्भर करता है।

---

* "The optimum firm is one is which existing condition of technique and organisation ability has the lowest average cost of production per unit, when all those costs which must be covered in the long run are included."

अनुकूलतम इकाई के स्वरूप हैं पाँच

(१) अनुकूलतम टेक्नीकल इकाई ,
(२) अनुकूलतम प्रबन्ध इकाई ,
(३) अनुकूलतम वित्तीय इकाई ,
(४) अनुकूलतम विपणन इकाई ,
(५) अनुकूलतम जोखिम इकाई ।

(१) अनुकूलतम टेक्नीकल इकाई—एक अनुकूलतम टेक्नीकल इकाई का निर्धारण टेक्नीकल विशेषज्ञ द्वारा होता है और अन्य चार अनुकूलतम बिल्कुल छूट जाते हैं। यह श्रम विभाजन और प्रक्रियाओं के समन्वीकरण (Integration of processes) का परिणाम है। श्रम विभाजन की मुख्य मुख्य मितव्ययितायें निम्नलिखित हैं—प्रत्येक कारीगर की दक्षता में वृद्धि होना, एक काम से दूसरे काम को बदलने में समय खोने की बचत होना, विशाल मशीनों का आविष्कार, जो श्रम को बचाती हैं एवं सुविधाजनक बनाती हैं। श्रम विभाजन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि फर्म इसका लाभ उठाने के लिए यथेष्ठ बड़ी हो। इसके विपरीत, प्रक्रियाओं के समन्वयीकरण में अभिप्राय एक ऐसी विशाल मशीन की रचना से है, जो कि उस कार्य को करने लगे जिसे अब तक कई शारीरिक प्रक्रियाओं द्वारा या कई यान्त्रिक क्रियाओं द्वारा किया जाता था। श्रम विभाजन का रूप उलट जाता है अर्थात् किसी कार्य को पूरा करने के लिए पहले की अपेक्षा कम सख्या में प्रक्रियायें करनी पड़ती हैं। विभिन्न प्रक्रियाओं में इस सयुक्तीकरण या समन्वयीकरण से निम्न लाभ होते हैं .—स्थाई परिव्ययों का कम होना और उत्पादन की वृद्धि के अनुपात में निर्माण एवं सचालन व्ययों का कम बढ़ना। टेक्नीकल अनुकूलतम इकाई का निर्धारण प्रक्रियाओं के सतुलन (Balance of processes) से होता है। मितव्ययितायें होना बन्द हो सकता है, लेकिन अमितव्ययितायें होना आरम्भ नहीं होता। इस प्रकार टेक्नीकल अनुकूलतम इकाई एक न्यूनतम आकार नियत कर देती है, अधिकतम आकार नहीं। अधिकतम आकार तो अन्य कारणों द्वारा निर्धारित किया जाता है।

(२) अनुकूलतम प्रबन्ध-इकाई—ऐसी इकाई भी प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यों में श्रम-विभाजन एवं प्रक्रियाओं के सयुक्तीकरण की मितव्ययिताओं और अमितव्ययिताओं का परिणाम होती है। इस दशा में श्रम विभाजन की मितव्ययितायें निम्न हैं—विशिष्ट योग्यताओं का पूर्णता तक लाभ उठाया जा सकता है और एक ही कार्य पर ध्यान देने से उस कार्य का अधिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए, एक मैनेजर को, जिसके जिम्मे कच्चा माल खरीदने का काम है, पुराने मैनेजरों की भाँति सैंकड़ों अन्य कामों में व्यस्त नहीं रहना पड़ता। इसी प्रकार एकाउन्टेन्ट को केवल हिसाब पर ही ध्यान देना पड़ता है, टायपराइटर पर नहीं। प्रक्रियाओं के सयुक्तीकरण का उदाहरण है बुक कीपिङ्ग मशीन। अनुकूलतम प्रबन्ध इकाई की दशा में अमितव्ययितायें, मितव्ययिताओं की समाप्ति के तुरन्त बाद ही आरम्भ हो जाती हैं। (यह बात अनुकूलतम टेक्नीकल इकाइयों में नहीं होती)। एक निश्चित परिमाण के परे समन्वय करने की कठिनाइयाँ 'अनुकूलतम प्रबन्ध इकाई' के परिमाण की न्यूनतम एवं अधिक-

तम दोनो ही मात्रायें निर्धारित कर देती है। अनुकूलतम प्रबन्ध इकाइयो के साइज को बढाने के लिए स्टाफ का संगठन करने की विभिन्न युक्तियों को अपनाया जा सकता है।

(३) अनुकूलतम वित्तीय इकाई—किसी औद्योगिक इकाई की उत्पादन-लागत फर्म द्वारा अपने कार्यों के लिए पूँजी उधार लेने की क्षमता पर भी निर्भर होती है। पूँजी जुटाने की कठिनाइयों का फर्मों की सरचना एव परिमाण दोनो पर ही प्रभाव पडता है। विभिन्न फर्में विभिन्न ब्याज दर पर और विभिन्न सीमा तक पूँजी जुटाने मे समर्थ होती हैं। एक बडी फर्म को यह लाभ है कि जैसे-जैसे उसका परिमाण या आकार बढता जायेगा, वैसे-वैसे वह अधिक मितव्ययिता के साथ पूँजी जुटाने मे समर्थ बनती जायगी। इस प्रकार उत्पादन की मात्रा के बढाने से वित्तीय लागतें (Financial Cost) कम हो जाती है। अत वित्तीय कारण किसी औद्योगिक इकाई का न्यूनतम या अधिकतम कोई भी परिमाण निश्चित नही करते।

(४) अनुकूलतम विपणन इकाई—एक सस्था के कुल व्यय मे क्रय और विक्रय महत्त्वपूर्ण भाग रखते हैं। अत उनका उद्योग की सरचना एव अनुकूलतम परिमाण पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडता है। अनुकूलतम विपणन इकाई बडे पैमाने के क्रय विक्रय की मितव्ययिताओ एव अमितव्ययिताओ का फल है। एक बडी फर्म विशाल मात्रा मे क्रय करती है, अत उसकी सौदा करने की शक्ति बढ जाती है, वह कम दाम पर सामग्री खरीद सकती है। इस कार्य के लिए विशेषज्ञ कर्मचारी रख सकती है और यातायात व्ययो मे भी बचत कर सकती है, लेकिन क्रय मे जो त्रुटियाँ हो उन्हें एक बडी फर्म सरलता से दूर नही कर सकती। बड पैमाने के विक्रय से यात्रा व्ययो मे, स्टॉक रखने मे (अत ब्याज के खर्च मे भी) और विविध प्रकार के स्टॉक रखने मे मितव्ययितायें होने लगती है। भले ही टैक्नीकल अनुकूलतम या प्रबन्ध अनुकूलतम की सीमा आ गई हो, एक सस्था अपना परिमाण (Size) बढा कर विक्रय सम्बन्धी मितव्ययितायें प्राप्त कर सकती है। अपूर्ण प्रतिस्पर्द्धा की दशाओ मे, विक्रय की मितव्ययिताओ और विशाल मात्रा के उत्पादन का प्रबन्ध करने से सम्बन्धित अमितव्ययिताओ के सन्तुलन के फलस्वरूप अनुकूलतम साइज उदय होता है। किन्तु अपूर्ण प्रतिस्पर्द्धा की दशाओ मे सस्था विक्रय अनुकूलतम तक नही पहुँच सकेगी।

(५) अनुकूलतम जोखिम इकाई—अब तक हमने इस आधार पर विवेचन किया है कि उत्पादन के लिए माग वृद्धिशील है। लेकिन व्यवहार मे माग मे बहुत परिवर्तन होता रहता है। माग के घटने-बढने की सम्भावना बडी अनिश्चितता उत्पन्न कर देती है, जिसे एक उत्पादक को अपनी फर्म का परिमाण निश्चित करते समय विचार म रखना पडता है। जब माग स्थाई हो और वृद्धिशील हो तो उत्पादक सस्था के सबसे अधिक निपुणता वाले साइज को प्राप्त करना चाहेगा और अधिक से अधिक विशिष्ट मशीनरी का उपयोग करेगा, लेकिन जब माँग परिवर्तनशील होती है तो विशिष्ट मशीनें आवश्यकता पडने पर किसी अन्य माल के उत्पादन मे प्रयोग नही की

जा सकती और इसलिए बेकार हो जाती है। इसके विपरीत एक छोटी फर्म जिसमे कम विशिष्ट प्रकार की मशीनें प्रयोग की जाती हैं, मुख्य माल की माँग घटने पर अन्य माल के बनाने मे सरलता स जुट सकती है। अन माँग मे परिवर्तन की सम्भावनायें एक छोटी, 'अनुकूलतम जोखिम इकाई' को प्रेरित करती हैं।

(विभिन्न अनुकूलतमो का समन्वय)

(Reconciliation of OPtima)

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई सस्था कारणो के एक वर्ग की दृष्टि से अनुकूलतम परिमाण की हो सकती है, जब कि अन्य कारणो के वर्गो की दृष्टि से वह इस परिमाण से छोटी पड सकती है। शायद ही कोई उद्योग ऐसा हो, जिसमे सस्था का परिमाण सभी दृष्टियो से अनुकूलतम हो और जिस उद्योग या सस्था के लिये ऐसा होना सम्भव होता है उसमे साहसी के लिये कोई समस्या नही है। परन्तु वास्तविक जगत मे टेक्नीकल, वित्तीय, प्रबन्ध, विक्रय एव जोखिम सम्बन्धी विभिन्न दशायें कई अनुकूलतम परिमाण स्थापित कर देती हैं, क्योकि ये कारण प्रायः एक ही दिशा मे काम नही करते। अत साहसी के सामने विभिन्न अनुकूलतमो मे समन्वय करने की समस्या उत्पन्न होती है। सवश्रेष्ठ अनुकूलतम परिमाण की स्थापना विभिन्न अनुकूलतमो के पारस्परिक समायोजन (Mutual adjustment) के फलस्वरूप होती है, जबकि कुल मितव्ययितायें कुल अमितव्ययितायों के बराबर हो जाती हैं। "एक उत्पादक को चाहिये कि वह उत्पादन के भिन्न भिन्न साधनो का इस मात्रा और अनुपात मे सयोजन करे कि उसकी उत्पत्ति यथासम्भव अधिकतम हो तथा प्रति इकाई लागत कम से कम रहे। उत्पत्ति के प्रत्यक साधन को दूसरे साधन के साथ इस मात्रा तक एकत्रित करना चाहिये कि वह सयोजन सर्वश्रेष्ठ हो और अन्य किसी भी मात्रा मे सयोजन करने से इससे अधिक लाभ न हो सके।" वास्तव मे यह सयोजन इतना सर्वश्रेष्ठ होता है कि यदि साधनो के आकारो मे कुछ कमी या वृद्धि कर दी जावे, तो उत्पादक का लाभ पहले की अपेक्षा कम हो जावेगा। प्रत्येक उत्पादक अपने आधीन उद्योगो मे सामान्य लागत को कम स कम रखने का प्रयत्न करता है, ताकि उसकी सस्था अनुकूलतम परिमाण पर पहुँच सके और ऐसी स्थिति के आने पर उत्पादन की सीमान्त लागत औसत लागत के बराबर हो जाती है। यही परीक्षा है, जबकि हम कह सकते हैं कि वह सस्था अनुकूलतम परिमाण पर पहुँच चुकी है।

यह नही भूल जाना चाहिये कि जिस प्रकार जन सख्या सम्बन्धी ('अनुकूलतम जन सख्या') आधुनिक विचारो के अनुसार उसका वाछनीय अनुकूलतम होना सदा के लिये निश्चित बिन्दु नही है, उसी प्रकार व्यावसायिक सस्था का भी अनुकूलतम परिमाण सदैव के लिये निश्चित नही किया जा सकता। इसी प्रकार विभिन्न देशो मे एव एक ही देश के विभिन्न भागो मे अनुकूलतम फर्म का परिमाण अलग अलग हो सकता है।

औद्योगिक इकाई के परिमाण का मापदण्ड

अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए प्रत्येक उद्योग एवं उसकी इकाइयों का एक 'अनुकूलतम परिमाण' होना अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव मे परिमाण का औद्योगिक इकाई की निपुणता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। अब यह देखना आवश्यक हो जाता है कि क्या उद्योग के प्रत्येक वर्ग की प्रत्येक इकाई इस परिमाण की है कि उसमे अधिकतम् निपुणता प्राप्त की जा सके। यहाँ पर औद्योगिक इकाइयो का परिमाण नापने का प्रश्न उदय होता है। इस मापदण्ड के कई आधार हो सकते हैं। इनमें से कौनसा मापदण्ड किस उद्योग के लिये उपयुक्त होगा, यह सम्बन्धित उद्योग की प्रकृति एवं उपलब्ध आँकडो की सत्यता पर निर्भर है। मापदण्ड के मुख्य चार आधार हो सकते हैं :—

मापदण्ड का आधार—

(१) उद्योग की इकाई मे लगी हुई पूँजी—सर्व प्रथम पूँजी के आधार को ही लें। हम देखते हैं कि एक ही उद्योग के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न इकाइयो मे लगी हुई पूँजी की मात्रा अलग अलग होती है। इतना ही नही, पूँजी भी कई प्रकार की होती है, क्योकि भिन्न भिन्न इकाइयो की आर्थिक आवश्यकतायें भिन्न-भिन्न साधनो से पूरी की जाती हैं। कोई-कोई संस्था या इकाई केवल स्वयं की पूँजी (चाहे वह कम हो या अधिक) से ही काम चलाना चाहती है। कोई इकाई स्वयं की थोड़ी पूँजी लगा कर बाकी आवश्यक ऋण लेकर या सार्वजनिक निक्षेप (Public deposits) द्वारा पूरा कराने मे विश्वास करती है। इन विभिन्नताओ के कारण उत्पादन मे लगी हुई पूँजी की इकाई का परिमाण नापने के लिए उचित मापदण्ड मानना कठिन सा प्रतीत होता है।

(२) औद्योगिक इकाइयो का ब्लॉक मूल्य—यह भी परिमाण मापने का एक अच्छा आधार माना जा सकता है। लेकिन इसमे एक कठिनाई है—प्रत्येक इकाई की सम्पत्ति (जैसे गृह, सज्जा, उपस्कर, सामग्री इत्यादि) मे लगी हुई पूँजी के मूल्यांकन के ढंग इतने अलग-अलग होते हैं कि प्रत्येक इकाई का मूल्यांकन एक सा महत्त्व नही रखता।

(३) प्रति तकुआ या करघा पर लगी हुई औसत पूँजी—कपड़े तथा पटसन के कारखानो की साइज के माप के लिए प्रति तकुआ या करघा पर लगी हुई औसत पूँजी एक उपयोगी माप हो सकती है। किन्तु इसमे कठिनाई यह आती है कि प्रत्येक इकाई में पाये जाने

औद्योगिक इकाई के परिमाण का माप दण्ड

(१) उद्योग की इकाई मे लगी हुई पूँजी।
(२) औद्योगिक इकाइयो का ब्लॉक मूल्य।
(३) प्रति तकुआ या करघे पर लगी औसत पूँजी।
(४) करघो या तकुओ की संख्या।
(५) काम करने वाले श्रमिको की संख्या।
(६) प्रयोग की जाने वाली शक्ति की मात्रा।
(७) उत्पादन की मात्रा।
(८) कच्चे माल की मात्रा।

वाले तकुये या करघे पर लगाई हुई पूँजी का निर्धारण कई बातो पर निर्भर है, जैसे—औद्योगिक इकाई की स्थिति, उसमे श्रमिको की सुलभता, अर्थ-प्रबन्ध के ढङ्ग, श्रमिक कल्याण पर व्यय की जाने वाली राशि, शक्ति के उपलब्ध साधन एव उन पर किया जाने वाला खर्च, बैंको से प्राप्त सुविधायें, कच्चे माल को लाने तथा पक्के माल को भेजने के उपलब्ध यातायात के साधन, इत्यादि। उदाहरण के लिए, जिस इकाई को बैंको मे अधिक सुविधायें प्राप्त होती है उसे कम ब्याज पर सरलता से ऋण मिल सकता है। इसके विपरीत जिन इकाइयो को इस प्रकार की सुविधा नही होती, उनको अपनी कायशील पूँजी पर ही या अन्य लोगो से ऊँचे ब्याज पर ऋण लेने को बाध्य होना पडता है, जो मँहगी पडती है, फलत पूँजी अधिक चाहिये। अतः जिन इकाइयो को उपर्युक्त जितनी भी सुविधाय प्राप्त होगी, पूँजी की आवश्यक मात्रा भी उतनी कम होगी। फलत प्रति करघा या तकुये पर लगी हुई औसत पूँजी की मात्रा भी कम होगी। विपरीत दशा मे औसत पूँजी अधिक होगी। अत इस आधार को मापदण्ड मानना भी हमारी आवश्यकता को पूरी तरह सन्तुष्ट नही करता।

(४) करघो या तकुओ की सख्या—वस्त्र उद्योगो के लिये उनमे पाये जाने वाले करघो या तकुओ की सख्या पर निर्भर रहना अधिक सुविधाजनक होगा। लोह एव स्पात उद्योगो मे इकाइयो मे पाई जाने वाली भट्टियो की सख्या एव उनकी क्षमता परिमाण के माप का एक विश्वसनीय आधार मानी जा सकती है।

(५) काम करने वाले श्रमिको की सख्या—परिमाण के माप का एक अन्य आधार विभिन्न इकाइयो म काम करने वाले श्रमिको की सख्या हो सकती है। इस आधार का उपयोग केवल समान प्रकृति वाली औद्योगिक इकाइयो के लिए किया जा सकता है, विभिन्न प्रकृति वाली इकाइयो के माप का यह उपयुक्त आधार नही हो सकता। उदाहरणार्थ, कुछ औद्योगिक इकाइयो मे जो उत्पादन होता है वह श्रमिको के हस्त-कौशल पर निर्भर रहता है और उनकी सख्या उत्पादन की मात्रा के अनुपात पर निभर रहती है। यदि उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि करना हो, तो श्रमिको की सख्या मे तत्काल वृद्धि की जा सकती है और विपरीत स्थिति मे जब उत्पादन में कमी करनी हो, तो श्रमिको की सख्या मे मात्रा के अनुपात से आवश्यक कमी की जाती है। अन्य उद्योग स्वयचालित यन्त्र पर आश्रित रहते है। अत. उनमे श्रमिको की सख्या उत्पादन के अनुपात पर नही किन्तु यन्त्रो की सख्या पर निर्भर रहती है। यन्त्रो की सख्या मे कमी या वृद्धि होने पर काम करने वाले श्रमिको की सख्या मे कमी या वृद्धि होती रहती है। अतः यदि उपर्युक्त परिस्थितियो तथा औद्योगिक इकाइयो की प्रकृति का विचार न करते हुए केवल उन इकाइयो मे काम करने वाले श्रमिको की सख्या को ही परिमाण का माप माना जावेगा, तो इसमे प्राप्त हुए निष्कर्ष भ्रमात्मक होगे।

(६) उपयोग की जाने वाली शक्ति की मात्रा—औद्योगिक इकाई मे उपयोग की जाने वाली शक्ति की मात्रा का भी एक माप हो सकता है। अतः ऐसी

निर्माण-इकाइयाँ जहाँ सम्पूर्ण उत्पादन केवल शक्ति की सहायता से ही किया जाता हो, वहाँ शक्ति के परिमाण के अनुसार औद्योगिक इकाई का परिमाण निश्चित करने मे सहायता मिल सकती है।

(७) उत्पादन की मात्रा—कुछ उद्योगो मे, जैसे सीमेंट, चीनी या कोयला उद्योग, जिनका उत्पादन एक सा होता है, उत्पादन की मात्रा को परिमाण का एक उचित मापदण्ड माना जा सकता है, लेकिन सूती वस्त्र जैसे उद्योग मे, जोकि विविध प्रकार का सामान बनाते है, उत्पादन की मात्रा उसके परिमाण का उचित माप न होगी।

(८) कच्चे माल की मात्रा—किसी इकाई द्वारा प्रति वर्ष कच्चे माल का जितना उपयोग होता है वह उसके परिमाण का एक उचित माप हो सकता है, बशर्ते इकाइयाँ आत्म निर्भर हो और उत्पत्ति के स्वभाव म अधिक विशेषतायें न हो।

उपरोक्त विवरण मे यह स्पष्ट है कि एक व्यापारिक इकाई का साइज, एक निश्चित सिद्धान्त के अनुसार निकाला जाना चाहिए, क्योंकि फर्म का परिमाण फर्म की निपुणता एव लाभदायकता को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण तत्वो मे से एक है। परिमाण का माप प्रत्येक उद्योग के स्वभाव को देखकर निश्चित किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, जिन उद्योगो मे अत्यधिक पूँजी विनियोग की आवश्यकता पडती है (जैसे शक्कर साफ करना), जिन उद्योगो को एकाधिकार प्राप्त है या जिनका विस्तृत बाजार होता है। (जैसे कि जनसेवा उद्योग), अथवा वे उद्योग जिनमे उत्पादित वस्तु बड जटिल स्वभाव की (जैसे टाइपराइटर) या बडे आकार की (जैसे रेल क इन्जन) होती है, प्राय बड पैमाने पर चलाये जाने योग्य हैं, जैसे—वे उद्योग जिनके माल का प्रमापीकरण नही हो सकता, क्योंकि उनको विभिन्न रुचियो के अनुकूल बनाना पडता है (जैसे उच्च कोटि का फर्नीचर, कला का सामान, इत्यादि) या ऐसे उद्योग जिनका स्थानीय बाजार बहुत सीमित होता है और जिनका यातायात व्यय बहुत अधिक है (जैसे ईंट) या वे उद्योग जिनमे अत्यधिक कुशल श्रम की आवश्यकता पडती है (जैसे नक्काशी, चित्रकारी) इत्यादि। कुछ एसे भी उद्योग हैं जो मध्यम आकार पर निपुणता म चलाये जा सकते है, जैसे—दूध वितरण, आटा पीसना इत्यादि।

STANDARD QUESTIONS

1 Critically examine the different standards employed to measure the size of a business unit.

2. Explain the term 'Optimum Size' Examine the factors which determine the size of such a unit. How can the different optima be reconciled ?

अध्याय ४६

भारत में औद्योगिक इकाइयों का परिमाण

(Size of Industrial Units In India)

प्रारम्भिक—

विभिन्न भारतीय उद्योगो मे औद्योगिक इकाइयो का परिमाण कहाँ तक अनुकूलतम है, इसका अध्ययन करते समय हमे प्रत्येक उद्योग मे 'प्रतिनिधि इकाइया' (Representative firms) के परिमाण पर विचार करना होगा और यह देखना होगा कि उनमे मितव्ययिता एव अधिकतम निपुणता को कितना प्रोत्साहन मिल रहा है।

(I) सूती वस्त्र मिल उद्योग (Cotton Textile Industry)—

एक सूती वस्त्र मिल का टैक्नीकल अनुकूलतम परिमाण अपेक्षत छोटा होता है, क्योकि टैक्नीकल विशेषताओ के कारण इस उद्योग मे ऐसी कोई क्रिया नही है जिसे बडे पैमाने पर चलाया जा सके। उत्पादन के क्षेत्र मे बडे कारखाने खोलने की ओर जो प्रवृत्ति दिखाई देती है, प्रमुखत प्रबन्ध एव अ निर्माणी क्रियाओ से सम्बन्धित व्ययो को कम करने के प्रयासो का परिणाम है। इसके अतिरिक्त किसी मिल द्वारा जो सामान बनाया जाता है उसका स्वभाव भी किसी सस्था के आर्थिक परिणाम को निर्धारित करने मे प्रभाव डालता है। बडी मात्रा मे प्रमापित माल के उत्पादन के लिए, एक बडा प्लान्ट निर्माण व्ययो को कम करने मे सहायक होता है। लेकिन जहाँ उत्पादन विविधता रखता हो, वहाँ एक छोटी इकाई अधिक उपयुक्त होगी। "भारत मे जनता की रुचि, आदतो एव प्रथाओ को देखते हुए कहा जा सकता है कि एक लघु या मध्यम परिमाण के मिल का सगठन अति उपयुक्त रहेगा।' *

टैरिफ बोर्ड (सन् १६३२) ने यह स्वीकार किया है कि भारत के लिए एक उपयुक्त मिल के लिए न्यूनतम आर्थिक परिमाण निश्चित करना दो बातो के कारण कठिन है—प्रथम, कई मिलो की सम्मिलित सेवा के लिए एक केन्द्रीय सगठन बना

---

1. 'The existence of marked preferences and tastes of a local or sectional character which has hither to characterised the Indian market on the whole, favours the organization of the small or moderate sized mills Report of the Indian Tariff Board on Cotton Industry 1932, p 97).

होने से व्यक्तिगत मिलों का साइज अमहत्त्वपूर्ण सा हो जाता है और दूसरे, एक छोटा मिल जो कि योग्य एव अनुभवी प्रबन्ध के अन्तर्गत चलाया जा रहा है वह एक बडे मिल की अपेक्षा, जो कि त्रुटिपूर्ण प्रबन्धन के आधीन है, अधिक अच्छे परिणाम दिखा सकता है।

फिर भी टेरिफ बोड ने यह स्वीकार किया है कि ३५ से ४० हजार तकुये एवं १,००० करघे वाली मिल न्यूनतम लागत मूल्य के विचार से अनुकूलतम इकाई है। बम्बई मे एक औसत कताई मिल का यही परिमाण है, जब कि अहमदाबाद के लिए आदर्श परिमाण २५ हजार तकुये और ६०० से ७०० करघे स्वीकार किया। इस स्तर से तुलना की जाय, तो भारत मे ५६% कताई मिल और ८२% बुनाई मिल अनुकूलतम परिमाण से छोटे थे।

भारत के सूती वस्त्र मिलो के परिमाण मे बहुत क्षेत्रीय अन्तर दृष्टिगोचर होता है। दक्षिण-क्षेत्र (मद्रास, केरल और मैसूर) की इकाइयो का परिमाण सबसे छोटा है—१० से १५ हजार तकुये एव २०० से ४०० करघे। पूर्वी पजाब और राजस्थान में भी यही दशा है। उत्तर-प्रदेश, मध्य प्रदेश, आन्ध्र और बम्बई प्रेसीडेन्सी के शेष भाग मे मध्यम आकार की मिलें पाई जाती है, जिनमे १५ से ३० हजार तकुये और ४०० से ६०० करघे होते है। बम्बई शहर एव द्वीप मे इकाइयो का परिमाण काफी बड़ा है, लगभग ३० से ६० हजार तकुये और ७५० से १,५०० करघे। अहमदाबाद की मिलो का साइज औसतन बम्बई मिलो के साइज से छोटा है।

बम्बई के मिलो का बडा परिमाण (और अहमदाबाद की मिलो का अपेक्षाकृत छोटा परिमाण) निम्न कारणो से है—

(१) बम्बई मे उद्योग प्रारम्भ से ही सूत निर्यात व्यापार के लिए सगठित हुआ है, इसलिये फर्मों का बडे परिमाण पर स्थापित होना स्वाभाविक था। इसके विपरीत अहमदाबाद मे उद्योग 'घरेलू बाजार' का लाभ उठाने के लिये स्थापित हुआ था, इसलिये वे छोटे पूँजीपति और साधारण योग्यता के परन्तु मेहनती व्यक्तियो के लिये काफी आकर्षक थे।

(२) जिन लोगो ने बम्बई मे फर्में स्थापित की, उन व्यापारियो ने कपडे के व्यापार मे बडा लाभ कमाया था, इसलिये वे कुछ साहसिक और बडे परिमाण पर उद्योग स्थापित कर सके।

'(३) अहमदाबाद मे सूती मिलें अलोक-सीमित (Private limited) उत्तरदायित्व के आधार पर स्थापित हुई, जबकि बम्बई मे लोक-सीमित (Public limited) उत्तरदायित्व के आधार पर। अस्तु अहमदाबाद की मिलो को उनकी अधिकाँश पूँजी प्रबन्ध-अभिकर्त्ता व उनके मित्रो से ही प्राप्त होती है। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के साधन सीमित होते हैं, इसलिये आवश्यक रूप से उनका परिमाण छोटा होगा, क्योंकि विशेष विकास के लिए उन्हें जनता की धरोहरो पर निर्भर रहना होता है। परन्तु बम्बई की मिलें स्कन्ध-विपणि (Stock Exchange) की हलचलो

द्वारा सरलतापूर्वक अतिरिक्त अश निर्गमित करके पर्याप्त पूँजी प्राप्त कर सकती हैं, इसलिए उन्होंने अपना परिमाण विशेष विकसित कर लिया।

उत्तरी भारत के केन्द्रों मे छोटी इकाइयाँ सरलतापूर्वक कार्य कर रही हैं, क्योंकि कच्चे माल के सामिप्य एव तैयार माल के बाजार की निकटता के कारण उन्हे बम्बई मिलो की तुलना मे रेल-भाडो के सम्बन्ध मे, जो कि कुल लागत का एक महत्वपूर्ण भाग है, अधिक सुविधा मिल गई है। यही नहीं, उपभोक्ताओ के निकट सम्पर्क मे रहने की वजह से वे माँग के अनुसार उत्पादन को सरलता मे समायोजित कर सकती हैं। कुछ पुरानी रियासतो मे छोटी इकाइयो को भी सफलता मिली, क्योंकि उन्हे निशुल्क भूमि, चुंगी की छूट, बिजली की सुविधा, आय-कर से मुक्ति इत्यादि लाभ प्राप्त थे।

साधारणतः बम्बई एव अहमदाबाद के केन्द्रो को छोड कर अन्य केन्द्रो मे इकाइयाँ छोटी है, तथापि कानपुर, मद्रास, नागपुर, दिल्ली जैसे केन्द्रो मे काफी बड़ी इकाइयाँ स्थापित हैं। इन्हे अनुभवी और धनी योरोपियनो द्वारा स्थापित किया गया था और यथेष्ठ वित्तीय साधन, कच्चे माल की समीपता एव उपभोग केन्द्रो की निकटता तथा चतुर एव सस्ते श्रमिको का पर्याप्त मात्रा मे मिल सकना ऐसे कारण थे जिन्होंने इन केन्द्रो मे काफी बडे पैमाने पर उद्योगो की स्थापना को सम्भव बना दिया था। सन् १९०५ तक इन केन्द्रो मे ४०,००० तकुओ एव ५०० करघो से कम परिमाण का एक भी मिल न था। यह तो सन् १९२१ के पश्चात् ही था, जब कि कुछ साहसी पूँजीपतियो द्वारा छोटी छोटी इकाइयाँ कायम की गई।

सन् १९५१-५६ के औद्योगिक विकास कार्यक्रम मे योजना आयोग ने १५० अकुशल एव अनार्थिक इकाइयो का विश्लेषण किया था। कुछ समय हुआ, इनमे से २५ इकाइयाँ तो बन्द हो गई हैं, जबकि ३५ इकाइयाँ हानि सहित चलाई जा रही हैं। ९० इकाइयो को बहुत कम या नहीं के बराबर लाभ (अथवा साधारण हानि तक) हो रहा है। इन इकाइयो को अपना परिमाण आर्थिक साइज तक बढा लेने के हेतु सहायता देना बडा आवश्यक है। योजना आयोग ने यह सुझाव दिया है कि ऐसी इकाइयो का विस्तृत अध्ययन करने के लिये विशेषज्ञ समिति नियुक्त की जावे, जो फिर अभिनवीकरण एव नवकरण का कार्यक्रम बनावे। सन् १९५८ मे कॉटन टैक्सटाइल इन्क्वायरी कमेटी ने यह सिफारिश की कि बहुत ही अनार्थिक इकाइयो को उचित सतुलन द्वारा या अन्य समर्थ सस्थाओ के साथ सयुक्तीकरण द्वारा आर्थिक बनाया जाय। सीमावर्ती इकाइयो (Marginal Units) को आपत्ति से बचाने के लिये कमेटी ने यह सुझाव दिया है कि उद्योग (विकास एव नियमन) अधिनियम मे ऐसा संशोधन कर दिया जाय, जिससे सरकार ऐसी मिलो का प्रबन्ध अपने हाथ मे ले सके। सरकार द्वारा जिन मिलो को प्रबन्ध के हेतु ले लिया गया हो, उन्हे चलाने के लिये पर्याप्त पूँजी वाला एक स्वतन्त्र निगम बनाया जाय।

(II) जूट उद्योग (Jute-Industry)

जूट मिल वस्त्र उद्योग मे औद्योगिक इकाइयों के अनुकूलतम आकार का निर्धारण बहुत सीमा तक विपणि एव प्रबन्ध सम्बन्धी घटको द्वारा प्रभावित होता है। इस उद्योग मे टेक्नीकल अनुकूलतम छोटा है और आकार को प्लान्ट को सख्या बढ़ा कर बडा किया जा सकता है।

उद्योग के अन्तर्राष्ट्रीय स्वभाव एव विश्व व्यापार की बढती हुई माँग के कारण इकाइयाँ प्रारम्भ मे काफी बडे पैमाने पर स्थापित की गई थी, किन्तु प्रथम विश्व युद्ध के बाद इकाइयो का आकार कुछ छोटा हो गया, क्योंकि प्रबन्ध सम्बन्धी कठिनाइयाँ अनुभव की गई थी।

स्थानीयकरण के घटक ने भी इस उद्योग मे इकाइयों के आकार को प्रभावित किया है। उदाहरण के लिये, बगाल मे स्थापित होने वाले मिलो का आकार देश के अन्य भागो मे स्थापित हुये मिलो से बडा है। इसका कारण वहाँ कच्चे जूट की पर्याप्त मात्रा मे उपलब्धि होना है। सन् १९५१ मे बगाल के ६२ मिलो मे से ४१ मिलो की करघा क्षमता ५०० से १,४०० तक थी, जबकि अन्य भागो म यह क्षमता ५०० से कम है।

भारत के औसत जूट मिल का आकार विदेशी जूट मिलो के आकार से बहुत बडा है। उदाहरण के लिये, ब्रिटेन मे मॉडल श्रेणी के मिलो की क्षमता केवल २०० है और किसी भी मिल की क्षमता १,००० करघे से अधिक नही है। इसका कारण प्रबन्ध या वित्त सम्बन्धी घटक नही है, क्योंकि प्रबन्ध योग्यता एव वित्तीय सुविधायें इङ्गलैण्ड मे पर्याप्त है। वास्तविक कारण यह है कि वहाँ के मिल केवल स्थानीय बाजार की पूर्ति के लिये उत्पादन करते हैं, जबकि भारतीय मिलस अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के लिये माल बनाते हैं।

भारत मे सन् १९५१ मे ८५ जूट मिल कम्पनियो मे से ४० मिल कम्पनियों का प्रबन्ध ६ प्रबन्ध अभिकर्त्ता गृहो के हाथ मे है। इनमे से २ प्रबन्ध अभिकर्त्ता गृहो का २१ मिलों पर नियन्त्रण है। एक प्रबन्ध अभिकर्त्ता गृह द्वारा कई मिलो का प्रबन्ध होने की प्रणाली से प्रबन्ध एव निरीक्षण सम्बन्धी, केन्द्रीय क्रय एव विक्रय की तथा वित्त की मितव्ययितायें प्राप्त होने लगती हैं।

जूट उद्योग से वास्तविक उत्पत्ति आयोजित क्षमता से बहुत कम रहती है। उद्योग का विपणि-अनुकूलतम (Marketing Optimum) बहुत अधिक है और कुछ समय से उद्योग मे उत्पादन का नियमन व नियन्त्रण करने की योजनायें चल रही हैं।

अभी हाल मे उद्योग के अनुकूलतम आकार की समस्या अन्य देशो मे स्थानापन्न वस्तुओं का प्रयोग बढने, पाकिस्तान मे जूट मिल खुलने और विभाजन के बाद कच्चे माल का अभाव होने से अधिक जटिल हो गई है। लेकिन पच-वर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत कच्चे जूट की पूर्ति बढाने मे काफी सफलता हुई है।

सन् १६५८ मे बगाल के चैम्बर ऑफ कामर्स की वार्षिक सभा मे अध्यक्ष पद से बोलते हुये श्री मिचेलमोर ने बताया था कि बढती हुई प्रतिस्पर्द्धा का सामना करने के लिये अनार्थिक छोटी-छोटी इकाइयो को समाप्त करने के लिये कदम उठाये गये हैं। जैसे, सन् १६५७ मे ६ मिल बन्द कर दिये गये। उनके करघे अन्य मिलो को हस्तान्तरित कर देने से उत्पादन पर प्रभाव नही पडने पाया है।

(III) शक्कर उद्योग (Sugar Iudustry)

शक्कर उद्योग म किसी इकाई का आर्थिक आकार कितना हो, यह गन्ने की उपलब्ध यातायात सुविधायें एव बाजारो की निकटता पर निर्भर है। सन् १६३८ मे शक्कर उद्योग सम्बन्धी प्रशुल्क बोर्ड के मतानुसार ५०० टन की क्षमता का कारखाना समस्त भारत के लिए एक उचित आर्थिक इकाई है, यद्यपि यातायात व्यय सम्बन्धी विशेष सुविधा होने से इसमे भी कम क्षमता के छोटे कारखाने स्थानीय बाजार मे सफलतापूर्वक प्रतियोगिता कर सकते हैं।

अधिकाश इकाइयाँ सन् १६३० के बाद स्थापित हुई थी। इन्होने एक मामूली आकार पर कार्य प्रारम्भ किया। इनकी क्षमता केवल ४०० ५०० टन थी। छोटा आकार रखने के निम्न कारण थे—(1) इन इकाइयो के सस्थापको के साधन अधिक नही थे, यद्यपि उनम सगठन-योग्यता की कोई कमी न थी। (11) मदी के भय से उद्योगपति अधिक जोखम उठाने को तैयार न थे, और (111) यू०पी० एव बिहार मे औद्योगिक टेक्नीकल का उस समय अधिक विकास न था।

इस समय उत्तर प्रदेश और बिहार म अधिकाश शक्कर मिलो की क्षमता ७०० से १,००० टन प्रति दिन है, जबकि अन्य राज्यो मे अधिकाश मिलो की क्षमता ५०० से ८०० टन है। जिन भागो मे गन्ने की पर्याप्त पूर्ति उपलब्ध है, वहाँ बडा मिल भी लाभ सहित खोला जा सकता है। लेकिन देश के अनेक भागो मे गन्ने के खेत छोटे-छोटे हैं और गुड व खडसारी की प्रतियोगिता भी बाधक है। पजाब मे कारखानो का छोटा आकार अच्छे गन्ने के अभाव के कारण है। मद्रास मे कारखानो की कठिनाई यह है कि उन्हे छोटे छोटे उत्पादको से गन्ना खरीदना पडता है जो गन्ने की खेती के लिए सीमित क्षेत्रफल ही प्रयोग मे लाते हैं। इसी प्रकार बम्बई मे गन्ने की कृषि के व्यय ऊँचे होने से कारखानो को असुविधा होती है। फिर भी इन राज्यो के कारखानो को स्थानीय बाजारो मे उत्तर-प्रदेश व बिहार के गन्ना मिलो की तुलना मे यातायात व्यय सम्बन्धी लाभ रहता है, जिससे वे उन मिलो से सफलतापूर्वक प्रतियोगिता कर लेती हैं।

यह उल्लेखनीय है कि भारत मे गन्ना मिलो का औसत आकार क्यूबा, हवाई आस्ट्रेलिया और जावा की तुलना मे, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के लिए उत्पादन करते हैं, बहुत छोटा है। अभी हाल मे, योजना आयोग ने यह पता लगाया था कि देश मे प्रति दिन २०० से ३,२०० टन तक गन्ना पेरने की क्षमता रखने वाले मिल हैं। वर्तमान परिस्थितियो मे प्रति दिन ७००-८०० टन गन्ना पेरने की क्षमता वाला

मिल एक आर्थिक इकाई कहा जा सकता है। सन् १९५५-५६ मे १४३ गन्ना-मिलो मे ८१ मिलो की क्षमता ७०० टन से कम थी। इसमे से ९ मिलो को क्षमता बढाने के लिये लाइसेन्स स्वीकृत किये गये। सन् १९५५-५६ मे जिन मिलो को बन्द रहना पडा था उनमे से अधिकाश मिल वे थे जिनकी क्षमता आर्थिक आकार से कम थी। सन् १९५४ मे गन्ना विकास परिषद् की स्थापना हुई थी, जिसने बन्द रहने वाले मिलो के विषय मे उपयोगी सुझाव दिये थे।

द्वितीय पच वर्षीय योजना के अन्तर्गत सन् १९६०-६१ तक गन्ना उद्योग की कुल आयोजित क्षमता २५ लाख टन तक बढा देने का प्रस्ताव था। अत. ५६ नये कारखानो की स्थापना के लिये ६८ विद्यमान कारखानो को क्षमता के विस्तार के लिये लाइसेन्स स्वीकृत किये गये। ५६ नये कारखानो मे से ३९ कारखाने सहकारी आधार पर स्थापित किये गये हैं।

(IV) लौह एवं स्पात उद्योग

लौह एव स्पात उद्योग मे प्लाटो का आकार मुख्यत कच्चे माल (जैसे खनिज लोहा, कोयला, चूने का पत्थर) की प्लान्ट मात्रा मे तथा उचित दूरी के भीतर उपलब्धि से, प्रब ध य ग्यता एव वित्तीय सुविधा की विद्यमानता, प्रमापीकरण की सीमा, सरक्षण की मात्रा और बाजारो के स्वभाव, सीमा एव निकटता से प्रभावित होता है। टेक्नीकल अनुकूलतम इस उद्योग मे काफी ऊँचा है, क्योकि प्लान्ट का आकार बडा होने पर व्यय कम हो जाते है।

इस उद्योग की औसत इकाई का आकार देश म भिन है। इगलैण्ड की इकाइयो का आकार अमेरिका और जमनी की इकाइयो के आकार से छोटा है। भारत मे एक बडी इकाई अधिक आर्थिक प्रमाणित होगी, क्योकि यहाँ भौगोलिक एव जियोलोजिकल घटक एक बड आकार की इकाई स्थापित करने के अनुकूल है। लेकिन प्रबन्ध योग्यता की कमी तथा खनिज लोहे के भण्डारो से कोयला दूर मिलने के कारण अधिक इकाइयाँ स्थापित करने म कठिनाई अनुभव की जाती है।

प्रथम योजना के पूर्व देश मे तीन प्रमुख उत्पादक थे —टाटा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी, इडियन आइरन एन्ड कम्पनी और मैसूर आइरन एव स्टील वर्क्स। तत्पश्चात् पच वर्षीय योजनाओ का प्रगति के दौरान मे सार्वजनिक क्षेत्र मे तीन नये प्लान्ट स्थापित किये गये हैं—रूरकेला (उडीसा), भिलाई (मध्य-प्रदेश), और दुर्गापुर (पश्चिमी बगाल)। इनमे विदेशी टेक्नीशियनो का सहयोग प्राप्त है।

टाटा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी की प्रारम्भिक क्षमता सन् १९११ मे ३५,००० टन कच्चा लोहा व ५०,००० टन तैयार स्पात थी। द्वितीय महायुद्ध काल मे इसने १'२४ मि० टन कच्चा लोहा, १'०८ मि० टन स्पात पिन्ड तथा ८,१९,००० टन बिक्री योग्य स्पात तैयार किया। युद्धोत्तर काल मे इसने दो विस्तार कार्यक्रम अपनाये। इनका लक्ष्य उत्पादन मे वृद्धि करना था, ताकि वह प्रति वर्ष २ मि० टन स्पात पिन्ड या १'५ मि० टन बिक्री योग्य स्पात तक पहुँच जाय। इस लक्ष्य की पूर्ति

का अर्थ है उत्पादन क्षमता का लगभग दो गुना हो जाना। यह कार्यक्रम सन् १९५८ तक पूर्ण कर लिया गया है।

इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी सन् १९१८ में बनी। सन् १९५२ में इसमे स्टील कॉरपोरेशन आफ बगाल को भी मिला दिया गया। सन् १९५५-५६ के अन्त तक इसकी क्षमता तैयार स्पात के लिये ३,५०,००० टन थी, जबकि सन् १९५०-५१ मे वह केवल २,२५,००० टन ही थी। द्वितीय योजना के अन्त तक इसकी क्षमता ८,००,००० टन प्रति वर्ष कर देने की थी।

मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स ने सन् १९२० मे जब उत्पादन आरम्भ किया, तो उसकी क्षमता २८,००० टन कच्चा लोहा थी। धीरे-धीरे इसमे नये-नये प्लाट बढाये गये और विविधमुखी उत्पादन के लिये कई विकास योजनायें भी कार्यान्वित की गई। द्वितीय योजना के अन्तर्गत जो विकास कार्यक्रम बनाया गया था उसके पूरा होने पर इसकी क्षमता १,००,००० टन तैयार स्पात तक पहुँच जायेगी।

सन् १९५५ मे सरकार ने ६ मि० टन इस्पात पिण्डो के उत्पादन का लक्ष्य घोषित किया, जिसकी पूर्ति सन् १९६०-६१ तक होनी थी। इसमे सार्वजनिक क्षेत्र मे स्थापित किये जाने वाले प्लान्टो का सहयोग भी अपेक्षित था। टाटा कम्पनी का उत्पादन ०·९ मि० टन से बढाकर २·० मि० टन, इण्डियन आयरन स्टील कम्पनी का उत्पादन ०·०३ मि० टन से बढाकर ०·१ मि० टन हो जाना था। सार्वजनिक क्षेत्र मे प्रत्येक प्लान्ट की क्षमता १ मि० टन रखी जानी थी।

सन् १९५८ के एक प्रेस नोट मे भारत सरकार की एक नवीन योजना का सकेत किया गया है, जिसके अन्तगत देश के उन भागो म जहाँ लोहे के सम्पन्न भण्डार हैं, लघु-उद्योगो के रूप मे स्टील प्लान्टो की स्थापना की जावेगी।

STANDARD QUESTIONS

1. Briefly discuss the desirability of the size of industrial units obtainable in India these days with special reference to Cotton Textile Indu try
2. What are the factors which affect the size of units in (a) Jute, (b) Sugar and (c) Iron Steel Industry in India ? Account for their present prosition

---

अध्याय ५०

प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली

(उद्गम एवं विकास)

(Managing Agency System—Origin & Development)

भूमिका—

भारतवर्ष के किसी महत्त्वपूर्ण उद्योग मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का बडा भाग रहा है। भारतीय प्रशुल्क मण्डल ने सूती वस्त्र उद्योग के बारे मे जो रिपोर्ट सन् १९३१ मे प्रकाशित की थी, उसमे यह स्वीकार किया गया था कि "केवल उन बडे उद्योगो को छोड कर जिन्हे भारत मे राज्य ने सगठित किया अथवा जो उसकी देख-रेख मे स्थापित किये गये, लगभग प्रत्येक महत्वपूर्ण उद्योग इन्ही प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के साहस के कारण जन्म पा सका है।" अब भी अधिकतर औद्योगिक सस्थायें, विशेषकर सीमित उत्तरदायित्व वाली पब्लिक कम्पनियाँ इन्ही के हाथ मे हैं। उदाहरण के लिए, जमशेदपुर का लोहे व इस्पात का उद्योग, बम्बई व अहमदाबाद का सूती वस्त्र उद्योग, बगाल व बिहार का जूट उद्योग देश के सबसे अधिक सगठित उद्योगो मे से है, परन्तु इन उद्योगो मे ऐसा शायद ही कोई मिल हो जो किसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता के परोक्ष नियन्त्रण मे नही है। प्रबन्ध अभिकर्त्ता देश के औद्योगिक क्षेत्र मे यह स्थिति कैसे प्राप्त कर सके, इस प्रश्न का उत्तर हमे उन परिस्थितियो मे मिलेगा जो भारत की अपनी अनोखी विशेषता रही है।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली को जन्म देने वाली परिस्थितियाँ—

(१) पूँजी की कमी—वास्तव मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति का उदय भारत के औद्योगिक विकास के साथ-साथ हुआ। यहाँ कुछ उद्योगो के प्रारम्भिक प्रमुख विकासकर्त्ता अग्रेज व्यवसायी थे, जो पहले यहाँ कुछ व्यापारिक सस्थाओ के प्रतिनिधियो की भाँति आये। पहले तो इन्होने सामान्य व्यापार का काम किया, परन्तु बाद मे अन्य कामो की ओर भी आकर्षित हुए। इन्होने देखा कि भारत एक विशाल कृषि देश है, भरपूर प्राकृतिक साधन है, जाकि विशाल आबादी, पर्याप्त श्रम की सुलभता होते हुए भी औद्योगिक दृष्टि से बिल्कुल पिछडा हुआ है, क्योकि जनता दूसरो को उद्योग मे

लगाने के लिये द्रव्य देने मे सकोच करती है। पूँजी के अतिरिक्त और साधन यहाँ है, जिनका होना औद्योगिक उन्नति के लिये आवश्यक है।

अस्तु अपने लाभ के लिए उन्होने आवश्यक पूँजी स्वय प्रदान करने का निश्चय किया एव अपने मित्रो को भी इसके लिये तैयार किया। उद्योग स्थापित कर दिए गए, साझेदारी बन गई और उद्योग चलाने के लिये आवश्यक पूँजी दे दी गई। हानि एवं अन्य आपत्तियो के समय मे भी उन्होने उद्योग को बचाने के लिये आर्थिक मदद दी, क्योकि बाहरी जनता से तब ही पूँजी प्राप्त करने की आशा की जा सकती थी जबकि यह उद्योग स्पष्टत: सफल होता प्रतीत हो। जब यह दशा पहुँच जाती थी तो वे उसे कम्पनी मे परिवर्तित कर देते और अपनी पूँजी का बडा भाग वापिस लेकर उसे फिर किन्ही अन्य प्रयत्नो मे लगा देते थे। कम्पनी के जन्मदाता तथा प्रमुख पूँजी प्रदान करने वाले एव अनुभवी प्रबन्धकर्त्ता होने के रूप मे उनका उस कम्पनी के नियन्त्रण मे काफी हाथ रहता था। एक ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता गृह के आधीन कई प्रमण्डल नियन्त्रित रहते थे। प्रबन्ध अभिकर्त्ता-पद्धति बगाल मे शुरू हुई और फिर अन्य भागो मे भी फैल गई। कुछ भारतीय पूँजीपतियो ने भी उनकी देखा-देखी उनकी सफलता से प्रेरित हो इस प्रकार का काय करना प्रारम्भ किया और इसमे उन्हें विदेशियो से बडी सहायता मिली।

(२) बैंको का विचित्र दृष्टिकोण—एक दूसरी बात जो इस पद्धति के जन्म का कारण बनी वह थी बैंको की यह हठ कि प्रमण्डलो को तब ही ऋण दिया जाय (वह भी लम्बे समय के लिए नही, थोडी ही अवधि के लिये) जबकि उसके प्रबन्ध अभिकर्त्ता इस ऋण की गारन्टी दे। उनका यह आग्रह इस कारण था कि वे प्रमण्डलो की आन्तरिक स्थिति से तो परिचित होते नही थे, परन्तु प्रबन्ध अभिकर्त्ता सब कुछ जानते थे, अस्तु यह स्वाभाविक ही था कि बैंक उनकी गारन्टी की माग करें। ऊँची आर्थिक स्थिति के प्रमण्डल भी बैंको से तब ही ऋण प्राप्त कर सकते थे जबकि उनके प्रबन्ध अभिकर्त्ता गारन्टी देने को तैयार हो।

(३) कम्पनी अधिनियम की दुर्बलतायें—तीसरे, उस समय के भारतीय कम्पनी अधिनियम की दुर्बलताओ ने भी प्रबन्ध अभिकर्त्तत्व पद्धति को प्रोत्साहित किया। सन् १९१३ तक कम्पनियो के लिये सञ्चालको की नियुक्ति करना अनिवार्य न था, अत: जो भी व्यक्ति किसी कम्पनी के निर्माण मे हित रखते थे वे स्वय उसके प्रबन्ध अभिकर्त्ता बन जाते थे। जब सन् १९१३ के अधिनियम ने पब्लिक कम्पनियो के लिए सञ्चालकों की नियुक्ति अनिवार्य कर दी, फिर भी प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के लिए कोई कठिनाई पैदा न हुई, क्योकि अपने व्यापारिक सहयोगियो एव मित्रो मे से ही वे कुछ लोगो को चुन कर सञ्चालक नियुक्त कर देते थे और इस प्रकार नियन्त्रण की बागडोर वास्तव में उन्ही के हाथ मे रहती थी।

अस्तु इन परिस्थितियों मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का औद्योगिक संगठन मे प्रमुख स्थान पा लेना स्वाभाविक ही था।

ंध अभिकर्त्ताओं का संगठन—

प्रबन्ध अभिकर्त्ता गृहों का सगठन वैयक्तिक, साझेदारी अथवा कम्पनी के रूप हो सकता था, किन्तु मुख्यत. इनका सगठन साझेदारी की सस्थाओं अथवा प्राइवेट पनियों के रूप मे ही हुआ है। कुछ ऐसी भी सस्था है जो पब्लिक कम्पनी के रूप मे र्माण की गई। अभिकर्त्ता गृहो मे से कुछ सस्थाय भारतीय हैं और कुछ योरोपीय । योरोपीय सस्थाओं मे बड एण्ड कम्पनी का नाम प्रमुख है। इनके सङ्गठन का रूप कुछ भी हो, यह विशेषत कौटुम्बिक व्यवसाय की भाँति होते है, जिनमे किसी टुम्ब विशेष का ही अधिक महत्व रहता है, जैसे—बिरला ब्रादर्स लिमिटेड। ये ानी फर्म के सदस्यो मे अधिकतर अपने कुटुम्बियो को ही लेते हैं। बाहरी लोगो के ये इसमे प्राय. कोई स्थान नही होता। यह प्रवृत्ति भारतीय अभिकर्त्ता गृहो में शेष रूप से देखी जाती है, किन्तु योरोपीय अभिकर्त्ता गृहो मे अनुभव, विशेष योग्यता थवा अन्य किसी गुण को ध्यान म रखने हुए बाहरी लोगो को भी सदस्यता दी ाती है।

बंध अभिकर्त्ता के कार्य—

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं :—(१) कम्पनी का प्रव-न व निर्माण करना, (२) अर्थ पूर्ति करना, और (३) कम्पनी की व्यवस्था रना।

(१) कम्पनी प्रवतन एव निर्माण—किसी भी नई कम्पनी की स्थापना पूर्व कुछ प्रारम्भिक अनुसधान आवश्यक होता है। प्रबन्ध अभिकर्त्ता इन प्रारम्भिक *ार्यों को करते है एव समस्त असुविधाओं और उत्तरदायित्व को सहन करते हुये* सकी व्यवस्था करते है। इस प्रकार जहाँ औद्योगिक विकास की कमी रहती है अथवा ो कहे कि जहाँ लोग अधिक जोखिम उठाने के लिए तैयार नही होते वहाँ प्रबन्ध भिकर्त्ता अखाड मे कूद कर अपने अथक परिश्रम एव कर्त्तव्यपरायणता द्वारा व्यवसाय ो उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचा देते है। भारतवर्ष मे प्रवर्त्तकों का सर्वथा अभाव । ये प्रबन्ध अभिकर्त्ता भिन्न-भिन्न व्यवसायो के लिए आवश्यक अनुभव एव तान्त्रिक ोग्यता प्राप्त करते हैं तथा अपने अभिकत्ता गृहो म कुशल एव अनुभवी व्यक्तियों को नयुक्त करते है, जिससे वे भिन्न भिन्न व्यावसायिक कम्पनियो का स्थापन एव सगठन रने मे सफल होते हैं।

भारत मे टाटा एण्ड सन्स लिमिटेड, डालमिया जैन लिमिटेड, बर्ड एण्ड कम्पनी, ार्टिन एण्ड कम्पनी, जेम्स फिनले एण्ड कम्पनी लिमिटेड, जे० पी० श्रीवास्तव एण्ड न्स, करमचन्द थापर एण्ड ब्रादर्स लिमिटेड आदि प्रसिद्ध प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की स्थायें हैं, जिन्होने अनेक कम्पनियो का प्रवर्तन किया है।

(२) अर्थ पूर्ति करना—प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं :का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य

कम्पनी की आर्थिक व्यवस्था करना है। ये लोग धनाभाव की दशा में उसकी पूर्ति के लिये पूर्ण प्रयत्न करते हैं। यही कारण है कि कम्पनी की समस्त आर्थिक समस्याओं को सुलझाना उनका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाता है। प्रबन्ध अभिकर्त्ता न केवल प्रारम्भिक स्थायी पूँजी का ही, किन्तु बाद मे पुनसङ्गठन, विकास तथा आधुनिकीकरण व कार्यशील पूँजी के लिये भी अर्थ का प्रबन्ध करते है। यह सच है कि गत कुछ वर्षों मे, जबकि जनता के पास काफी मात्रा मे द्रव्य था, सहसा कम्पनियाँ केवल जनता के द्रव्य से स्थापित हुई, परन्तु यह सम्पन्नता अधिक ठहरने वाली नहीं है और अब भी जब से 'कन्ट्रोल ऑफ कैपिटल इश्यूज' लागू हुआ है, इस बात की आवश्यकता होती है कि प्रवर्तक भी कुछ पूँजी प्रदान करें। वे अर्थ प्रबन्ध निम्न ढङ्गो से करते हैं —

(अ) वे स्वय कम्पनी के अशा व ऋण पत्रो को लेते हैं और अपने मित्रो तथा नातेदारो को भी खरीदवा देते है।

(आ) जिस समय बैक से ऋण लेने की वार्त्ता चलती है तो कम्पनी द्वारा माँगे हुय ऋण के लिए प्रतिभूति प्रदान करते है।

(इ) उनकी ख्याति के बल पर प्रमण्डल अपनी स्थायी पूँजी का बहुत बडा भाग जनता से धरोहर के रूप मे प्राप्त कर लेता है।

(ई) सङ्कटावस्था मे, जबकि अन्य ढङ्गो से उसे सहायता मिलना सम्भव नही, उनका आडे आना प्रशसनीय है। कई उदाहरण ऐसे हैं जिनमे प्रमण्डल टूटने स कवल इस कारण बच गये कि उन्होने उनको समय पर आर्थिक सहायता दे दी और उनके पुनर्सङ्गठन मे मदद की।[1]

(उ) नई कम्पनी जनता को अपन अश व ऋण पत्र खरीदने के लिए प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ के नाम के बल पर ही आकर्षित कर पाती है। किसी अनुभवी एव ख्याति प्राप्त प्रब ध अभिकर्त्ता का नाम जब कम्पनी के प्रविवरण मे दिया होता है तो उससे जनता का कम्पनी के प्रति विश्वास बढ आता है।

(ऊ) वे कम्पनिया के अशो और ऋण पत्रो का अभिगोपन करते हैं, इससे कम्पनी निडर होकर कार्य आरम्भ कर सकती है, क्योंकि निश्चित मात्रा मे अश न बिके तो यह अभाव प्रब ध अभिकर्त्ता स्वय पूरा कर देंगे।

(३) कम्पनी की व्यवस्था—प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने तान्त्रिक ज्ञान एव व्यावसायिक अनुभव द्वारा कम्पनी की लाभाजन शक्ति बढाते है। यह डके की चोट पर कहा जा सकता है कि भारत मे कम्पनियो की यशस्विता तथा व्यवस्थापन एव प्रब ध कार्य की सफलता का सम्पूर्ण श्रेय इ ही प्रब ध अभिकर्त्ताओ को है।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता के गुण-दोष

प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रथा के लाभ—

भारत के औद्योगीकरण के इतिहास मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है, क्योकि इनकी विभिन्न सेवाओ द्वारा ही देश की औद्योगिक प्रगति सम्भव हो सकी। इस प्रणाली के प्रमुख लाभ निम्नलिखित है—

प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली के गुण दोष

गुण एवं लाभ—

(१) उद्योगो का प्रवर्तन।
(२) उद्योगो को आर्थिक सहायता।
(३) वैज्ञानीकरण एव सूचीकरण।
(४) विशेषज्ञो की सेवाओ को सुविधा।
(५) विनियोगो की सुरक्षा।
(६) प्रतिभूतियो का अभिगोपन।
(७) प्रतिस्पर्धा का अन्त।

दोष अथवा हानियाँ—

(१) आर्थिक प्रभुत्व।
(२) अशो का अत्यधिक सट्टा।
(३) सचालकीय नियत्रण की शिथिलता।
(४) अन्तर्विनियोग।
(५) अयोग्य व्यवस्था।
(६) शोषण।
(७) ऋण का ऋण पत्रो मे परिवर्तन।
(८) नये प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के साधनो मे कमी।

(१) प्रवर्तन एव निर्माण—जैसा हम ऊपर सकेत कर चुके हैं, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ ने प्रारम्भिक अनुसन्धान करके एव असुविधाओ तथा असफलताओ का सामना करते हुए अनेक सफल उद्योगो की नीव डाली थी। इनकी सहायता के बिना चाय, जूट, कपास, कोयला आदि बडे बडे व्यवसाय न तो स्थापित ही किये जाते और न उनकी शीघ्र उन्नति ही होती। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का कम्पनियो से घनिष्ट सम्बन्ध होता है, अत. वे सुदृढ कम्पनियो की ही स्थापना करते हैं। यही नही, कम्पनी की स्थापना के लिए समस्त वैधानिक कार्यवाही करते है और योग्य एव अनुभवी व्यक्तियो को सञ्चालक पद के लिए चुनते है।

(२) आर्थिक सहायता—प्रबन्ध अभिकर्त्ता विभिन्न रीतियो से, जिनका उल्लेख हम कर चुके है, कम्पनी को आर्थिक सहायता पहुँचाते हैं। इनके व्यावसायिक जीवन और वाणिज्य जगत मे ख्याति के बल पर जनता को नव निर्मित कम्पनियो से सम्पर्क स्थापित करने मे सुविधा रहती है।

(३) वैज्ञानीकरण एव सूचीकरण—इन सेवाओ के अतिरिक्त प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने अन्तर्गत कम्पनियो की व्यवस्था मे एकसूत्रता लाते हैं, जिससे उनमे मितव्ययिता होती है और कार्यक्षमता बढती है। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक संस्थाएं होती है, जिनके विशिष्टीकरण के लिए वे अपने कार्यालय मे अलग-अलग विभाग रखते हैं, जिससे उनके अन्तर्गत जितनी कम्पनियाँ है उनकी

विशेष योग्यता का लाभ हो सके। व्यक्तिगत रूप मे कम्पनियो के लिए यह सम्भव नही होता कि विशिष्ट योग्यता वाले अनुभवी व्यक्तियो की नियुक्ति कर सके, किन्तु प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के माध्यम से न्यूनतम व्यय पर उन्हे विशेषज्ञो की सेवा का लाभ प्राप्त हो जाता है। दूसरे, पूरक व्यवसायो की दशा म एक व्यवसाय का माल दूसरे व्यवसाय मे सुविधा से खप जाता है। उदाहरण के लिए, सूती वस्त्र, यातायात तथा कोयला ये तीन उद्य ग एक दूसरे क पूरक होने के कारण कोयले की खपत वस्त्र मिल उद्योगो मे हो सकती है एव वस्त्र व्यवसाय को यातायात की सुविधायें मिल जाती हैं तथा यातायात उद्योग को स्थाई ग्राहक मिल जाते है। यदि ये तीन उद्योग अलग-अलग प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के नियन्त्रण मे हैं तो सम्भवत. यह लाभ न होगा। तीसरे, प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपना क्रय-विक्रय विभाग भी रखते है, जिससे उनके प्रबन्ध मे जो व्यवसाय है उनकी आवश्यक्ताओ का क्रय तथा विक्रय इसी विभाग के द्वारा सुगमता से हो जाता है।

(४) विशेषज्ञो द्वारा सहायता—प्रत्येक प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने यहाँ कुशल एव अनुभवी विशेषज्ञ रखता है। इस प्रकार थोडे से व्यय मे ही सरलतापूर्वक इन विशेषज्ञो का परामश प्राप्त हो जाता है, जिससे समय-समय पर व्यवसाय को अत्यन्त लाभ होता है।

(५) विनियोगो की सुरक्षा—प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपनी ख्याति का बडा ध्यान रखते हैं और जहाँ तक बन पडता है, इस पर कलङ्क नही लगने देते, इसलिए जनता तथा विनियोगिताओ को यह विश्वास हो जाता है कि प्रतिष्ठित प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के प्रबन्ध मे जो कम्पनियाँ हैं उनमे उनका धन सुरक्षित रहेगा।

(६) प्रतिभूतियो का अभिगोपन—अन्य देशो की भाँति हमारे देश मे औद्योगिक प्रतिभूतियो का अभिगोपन करने के लिए विशेष सस्थाओ का अभाव है, अतः परिस्थितिवश यह कार्य बिचारे प्रबन्ध अभिकर्त्ता को ही करना पडता है; इसलिए इनकी इन सेवाओ के परिणामस्वरूप कम्पनी के अश, ऋणपत्रादि शीघ्र बिककर उन्हे पूँजी की प्राप्ति हो जाती है तथा जनता के निष्क्रिय धन का भी उद्योगो मे सदुपयोग हो जाता है।

(७) प्रतिस्पर्धा का अन्त—एक ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता के नियन्त्रण मे रहने से कम्पनियो की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा का उन्मूलन हो जाता है, अतः उनमे सहयोग की भावना बढती है, जिससे प्रबन्ध एव व्यवस्था मे मितव्ययिता आती है।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति के दोष—

उपरोक्त गुणो के होते हुए भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति को दोष रहित नही कहा जा सकता। यही कारण है कि इसके दोषो का उन्मूलन करने के लिए समय-समय पर कम्पनी अधिनियम मे सशोधन किये गये एव सन् १९५६ के कम्पनी अधिनियम मे तो कायापलट ही कर दिया गया है। इस प्रणाली के प्रमुख दोष निम्नांकित हैं :—

(१) आर्थिक प्रभुत्व—प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति मे प्राय सभी उद्योगो के अन्तर्गत औद्योगिक प्रतिफल की अपेक्षा आर्थिक प्रभुत्व की ही महत्ता दिखाई देती है। इसका कारण यह है कि इन सस्थाओ मे मुख्यत पूँजीपति ही होते है, जो तान्त्रिक योग्यता उतनी नही रखते जितनी कि आर्थिक सहायता प्रदान कर सकते है। रोते हुए बच्चे को पुचकारने की भाँति ये लोग सकट की अवस्था मे कम्पनी को केवल आर्थिक सहायता देकर उनमे पुनर्जीवन का सचार कर देते हैं, परन्तु उस कम्पनी की सच्ची प्रगति के लिए जिस तान्त्रिक एव व्यापारिक योग्यता की आवश्यकता होती है, उसकी पूर्ति ये नही कर पाते। फलतः कम्पनी की व्यवस्था मे अनेक दोष आ जाते हैं। इस आर्थिक प्रभुत्व का यह परिणाम होता है कि यदि किसी समय कम्पनी अर्थ-सकट के दलदल मे फँस जाती है और इन लोगो के पास भी पर्याप्त धन नही होता तो ऐसी कष्टकापूर्ण परिस्थितियो मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने अधिकार दूसरे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को, जिनके अच्छे आर्थिक साधन होते है, सौंपकर स्वय अलग हो जाते है। ऐसा करते समय वे अशधारियो के हितो की लेशमात्र भी चिन्ता नही करते।

(२) अशो की अधिक परिकल्पना—इस प्रणाली के अनुसार अनेक स्कन्ध विपणियो मे, विशेषकर बम्बई मे कम्पनियो के अशो मे अत्यधिक परिकल्पना (Speculation) पाई जाती है। ये लोग प्राय कम्पनी या अशधारियो के हितो की ओर ध्यान न देते हुए सट्टेबाजी मे व्यस्त हो जाते हैं। अपने हित के लिए कम्पनी के धन की बलि चढा देते है, जिससे कभी-कभी कम्पनी को महान् आर्थिक सङ्कट का सामना करना पडता है। आर्थिक स्थिति बिगडने पर अशो का मूल्य दिन पर दिन गिरने लगता है। यही नही, ये लोग एक प्रकार के अशो को दूसरे प्रकार के अशो मे परिणित करके भी उनके मूल्यो को प्रभावित करते हैं। जिन अंशो को वे स्वय खरीदना चाहते हैं उन पर लाभाश की दर कम कर देते हैं, जिससे उनका मूल्य गिर जाये तथा गिरे हुए मूल्य पर वे उन्हे खरीद लें। इसके विपरीत जिन अशो को वे बेचना चाहते हैं उन पर लाभाश की दर बढा देते है। इन दूषित कार्यवाहियो से विनियोक्ताओ को बडी हानि होती है।

(३) सचालकीय नियन्त्रण की शिथिलता—अभी तक सचालको की नियुक्ति मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का बहुत बडा हाथ रहता है, अत यद्यपि कम्पनी की व्यवस्था का समस्त भार सचालको पर ही होना है और उन्ही को प्रबन्ध नीति का निर्धारण करना चाहिए, किन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि सचालकगण कठपुतली की भाँति नाचते है और उनको नचाने वाले हैं परदे के पीछे कार्य करने वाले प्रबन्ध अभिकर्त्ता। नये अधिनियम मे इस सम्बन्ध मे काफी सुधार कर दिये गये है।

(४) अन्तर्विनियोग—प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ ने अपने नियन्त्रण के अन्तर्गत आधिक्य राशि को दूसरी कम्पनियो को ऋण देने मे भी लगाया। यदि दोनो ही कम्पनियो की आर्थिक स्थिति अच्छी होती तब तो इसमें कोई हानि नही थी, किन्तु विपरीत परिस्थिति मे यदि अच्छी स्थिति की कम्पनी का कोष एक दुर्बल कम्पनी को

दे दिया जाय तो इससे अच्छी स्थिति वाली कम्पनी को हानि उठानी पडती है। नये अधिनियम के अन्तर्गत अन्तर्विनियोग पर रोक लगा दी गई है।

(५) अयोग्य व्यवस्था—प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति के अन्तर्गत कौटुम्बिक अनुशासन के कारण व्यावसायिक सङ्गठन मे स्थिरता आ जाती है। व्यवसाय मे कार्य-कुशल व्यक्तियो का प्रवेश रुक जाता है। पिता के बाद पुत्र को, पुत्र के बाद प्रपौत्र को तथा इसी प्रकार अनेक प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को पौत्रिक अधिकार मिलते है। इससे यह आशङ्का रहती है कि पुत्र अथवा प्रपौत्र उतने कार्य-कुशल न हो जितने कि उनके पूर्वज थे।

(६) शोषण—प्रबन्ध अभिकर्त्ता विभिन्न ढङ्गो से कम्पनियो का शोषण करते रहते हैं। प्रथम तो, इन लोगो को कम्पनी की व्यवस्था सम्बन्धी समस्त आन्तरिक बातो का ज्ञान रहता है, जो कि अशधारियो को नही होता अत वे आन्तरिक व्यवस्था मे ऐसा परिवर्तन करते है कि जिससे केवल इनको ही लाभ होता है, अन्य अशधारियो को तो उसकी हवा भी नही लगती। अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए ही ये लाभाश की दर कम या अधिक करते रहते है। दूसरे, प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने पारिश्रमिक के लिये जो अनुबन्ध करते हैं वे अनुचित एव न्याय विरुद्ध होते हैं। ये निम्न प्रकार के विभिन्न रूपो मे पारिश्रमिक लेते रहते हैं—व्यक्तिगत भत्ता, उत्पादन पर कमीशन, कच्चे माल के क्रय पर कमीशन, निर्मित माल के विक्रय पर कमीशन, लाभ पर कमीशन, अन्य विशेष कमीशन तथा कार्यालय भत्ता आदि। इस प्रकार कम्पनी के लाभ का एक बहुत बडा भाग, जिसे 'शेर का भाग' (Lion's Share) कह सकते हैं, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ की जेब मे जाता है एव झूठन-जाठन बिचारे अशधारियो को जाती है। तीसरे, कभी-कभी ये लोग कम्पनी के धन को व्यक्तिगत कार्यों मे प्रयोग कर लेते है। चल लेखे (Current A/c) की चाल द्वारा ये लोग कम्पनी का धन पर्याप्त मात्रा मे ऋण लेकर अपना काम चलाया करते है। चौथे, प्रबन्ध अभिकर्त्ता बहुधा कम्पनी के लाभ को लाभांशो के रूप मे वितरण न करके कम्पनी के कार्यों मे लगा देते है और अन्य लोगो को दिखाने के लिए कम्पनी की कार्यशीलता बढ जाती है। कभी कभी भवन निर्माण और मशीनरी के क्रय मे रुपया लगा देते हैं। यह विस्तार चाहे अनुचित भले ही हो, किन्तु ये कार्यक्षमता का आडम्बर करने के लिए ऐसी रचना करते रहते हैं।

(७) ऋण का ऋणपत्रो म परिवतन—किन्ही किन्ही प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ ने अपने दिए हुए ऋण को ऋण पत्रो मे परिवर्तित कर लिया और इस प्रकार सस्थायें उनके हाथ मे पहुँच गई। बिचारे अशधारियो की वह पूजी जो उन्होंने कम्पनी मे लगाई थी, उनके हाथ मे चली गई।

(८) नए प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के साधनो व उनकी योग्यता मे कमी—कम्पनियो की सख्या मे लगातार वृद्धि से प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ की सख्या मे भी बरसाती नदी के पानी की भाँति वृद्धि होने लगी है। नए प्रबन्ध अभिकर्त्ता गृह पुराने

की भाँति अनुभवी, योग्य और साधन सम्पन्न भी नहीं है, जो सुन्दर सेवायें कर सकें, जैसे कि इस पद्धति के अन्तर्गत अब तक होती रही हैं।

STANDARD QUESTIONS

1 Define the term 'Managing Agent' and differentiate between 'Manager' and 'Managing Agent' 'Briefly describe the functions of a managing agent in the running of joint stock company

2 Write a lucid note on the origin of Managing Agency system in India, pointing out the circumstances which have given a fillip to this institution in this country

3 Discuss the merits and defects of the managing agency system of organisation and control of a joint stock company.

अध्याय ५१

प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली

(वर्तमान स्थिति एवं भविष्य)

(Managing Agency System—Present Position & Future)

भूमिका—

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की वर्तमान स्थिति का अनुमान कम्पनी अधिनियम सन् १९५६ के नये आदेशों से लगाया जा सकता है। प्रस्तुत अध्याय में प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं से सम्बन्धित आदेशों पर प्रकाश डाला गया है।

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं से सम्बन्धित
कम्पनी अधिनियम सन् १९५६ के आदेश

प्रबन्ध अभिकर्त्ता की परिभाषा—

'प्रबन्ध अभिकर्त्ता' से आशय उस व्यक्ति, फर्म या समामेलित संस्था से है, जो किसी कम्पनी के साथ हुए ठहराव या उसके पार्षद सीमानियम अथवा अन्तर्नियमो के अन्तर्गत कम्पनी के सम्पूर्ण या अधिकाश कार्यों के प्रबन्ध करने का इस अधिनियम के आदेशो के आधीन अधिकारी है। प्रबन्ध अभिकर्त्ता संचालक-सभा के प्रशासनिक नियन्त्रण तथा निरीक्षण के आधीन कार्य करता है।

प्रबन्धक तथा प्रबन्ध-अभिकर्त्ता मे अन्तर—

प्रबन्धक तथा प्रबन्ध-अभिकर्त्ता दोनो ही कम्पनी के सम्पूर्ण अथवा लगभग सम्पूर्ण कार्यों के प्रबन्ध के लिए अधिकृत होते हैं और ये दोनो ही संचालक सभा के प्रशासनिक नियन्त्रण एव निरीक्षण के आधीन कार्य करते हैं। फिर भी एक प्रबन्धक निम्नलिखित बातो मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता से भिन्न होता है —

क्रम संख्या	अन्तर का आधार	प्रबन्धक	प्रबन्ध अभिकर्त्ता
(१)	रूप	प्रबन्धक एक व्यक्ति होता है।	प्रबन्ध अभिकर्त्ता एक व्यक्ति फर्म या कम्पनी भी हो सकती है।
(२)	नियुक्ति	प्रबन्धक के लिए यह अनिवार्य नही है कि उसकी नियुक्ति किसी सेवा सम्बन्धी अनुबंध के अन्तर्गत ही हो।	प्रबन्ध अभिकर्त्ता सदैव ही कम्पनी के साथ एक औपचारिक अनुबन्ध के आधीन सेवा करता है।
(३)	पारिश्रमिक	प्रबन्धक का दिया जाने वाला अधिकतम पारिश्रमिक शुद्ध लाभ के ५% तक सीमित है।	प्रबंध अभिकर्त्ता को कम्पनी के शुद्ध लाभ के १०% तक पारिश्रमिक दिया जा सकता है।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता की नियुक्ति, पद से हटना, हस्तांतरण आदि

(I) प्रबन्ध अभिकर्त्ता की नियुक्ति—

प्रबन्ध अभिकर्त्ता की नियुक्ति के सम्बन्ध मे निम्न बातें उल्लेखनीय हैं :—

(१) केन्द्रीय सरकार को यह घोषित करने का अधिकार है कि अमुक तिथि से अमुक वर्ग के उद्योग या व्यापार मे पूर्णतः या अशतः संलग्न कम्पनियो के प्रबन्ध अभिकर्त्ता न हो सकेंगे तथा उस विशेष श्रेणी के उद्योग अथवा व्यापार मे सलग्न किसी कम्पनी के प्रबन्ध अभिकर्त्ता का कार्य-काल उस निर्दिष्ट तिथि से ३ वर्ष के अन्त होने पर या १५ अगस्त सन् १९६०, दोनो मे से जो भी तिथि बाद मे पड़े, समाप्त हो जावेगी और घोषित उद्योग अथवा व्यवसाय मे सलग्न कम्पनी द्वारा बाद मे किसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता की नियुक्ति अथवा पुनर्नियुक्ति नही की जा सकेगी।

(२) कोई भी प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ की कम्पनी स्वय अपने लिए कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता नियुक्त नही कर सकती। इसी प्रकार एक ऐसी कम्पनी जिसका कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता है, किसी अन्य कम्पनी की प्रबन्ध अभिकर्त्ता नही बन सकती।

(३) अन्य कम्पनियो के सम्बन्ध मे, जिनको उपरोक्त प्रतिबन्ध लागू नही होते प्रबन्ध अभिकर्त्ता तभी नियुक्त या पुनर्नियुक्त किए जा सकते है जबकि कम्पनी साधारण सभा मे प्रस्ताव पास करे और केन्द्रीय सरकार ऐसी नियुक्ति या पुनर्नियुक्ति के लिए सहमति प्रदान करे। केन्द्रीय सरकार तभी अपनी सहमति प्रदान करेगी जबकि वह निम्न विषयो के सम्बन्ध मे सन्तुष्ट हो जाय :—

(अ) कि कम्पनी को प्रबन्ध-अभिकर्त्ता रखने की आज्ञा देना सार्वजनिक हितो के विरुद्ध न होगा।

(आ) कि प्रस्तावित प्रबन्ध अभिकर्त्ता एक उपयुक्त व्यक्ति है और प्रबन्ध अभिकर्त्तत्व की शर्तें भी उचित तथा न्यायपूर्ण हैं।

(इ) कि प्रस्तावित प्रबन्ध अभिकर्त्ता उन शर्तों को पूरा करता है जो कि केन्द्रीय सरकार आवश्यक समझती है।

(४) प्रबन्ध-अभिकर्त्ता का कार्यक्रम—इस अधिनियम का आरम्भ होने के पश्चात् कोई कम्पनी (यदि वह पहली बार अपना मैनेजिंग एजेन्ट नियुक्त कर रही है) १५ वर्ष से अधिक के लिए नियुक्त न कर सकेगी।* अन्य किसी दशा मे मैनेजिंग एजेन्ट को एक समय पर १० वर्ष से अधिक के लिये नियुक्त नही किया जा सकता। नई अवधि के लिए पुनर्नियुक्ति तभी की जा सकती है जब चालू कार्य काल २ वर्ष से कम रह गया हो। हां, यदि केन्द्रीय सरकार कम्पनी के हित मे आवश्यक समझे तो इससे पहले भी वह पुनर्नियुक्ति की आज्ञा दे सकती है। यदि इन आदेशो का पालन नही किया जाता तो सम्पूर्ण अवधि के लिए ही वह नियुक्ति या पुनर्नियुक्ति अवैध होगी।

(५) केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति लेकर मैनेजिंग एजेन्सी के अनुबन्ध की शर्तों को साधारण सभा मे कम्पनी द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है।

---

* कम्पनी कानून सलाहकार आयोग की सलाह पर सरकार ने यह तय किया है कि मैनेजिंग एजेन्ट, सेक्रेटरी या खजाची की पहली नियुक्ति १० साल की और पुनर्नियुक्ति ५ साल की होनी चाहिये। (नवभारत टाइम्स, अक्तूबर सन् १९५६)

(६) विद्यमान मैनेजिंग एजेन्सीज के बारे में कम्पनी अधिनियम के निम्न आदेश हैं :—

(अ) इस अधिनियम का प्रचलन होने पर यदि किसी कम्पनी के कोई मैनेजिंग एजेन्ट हैं तो उनका कार्य काल (यदि वह पहले ही समाप्त न हो जाय) १५ अगस्त सन् १९६० तक समाप्त हो जायगा। हाँ, इस अधिनियम के ऊपर बताये गये नियमो के अनुसार उनको नई अवधि के लिए पुर्नानियुक्त किया जा सकता है।

(आ) मैनेजिंग एजेन्ट के कार्य-काल सम्बन्धी आदेशो को छोड़कर इस अधिनियम के अन्य सभी आदेश उनको तत्कालिक रूप से लागू होंगे।

(II) मैनेजिंग एजेन्सी की सख्या पर प्रतिबन्ध—

१५ अगस्त सन् १९६० के पश्चात् कोई व्यक्ति एक समय मे १० से अधिक कम्पनियो का मैनेजिंग एजेन्ट नही रह सकता। यदि कोई व्यक्ति इस तिथि के पहले उक्त आदेश की पूर्ति नही करता तो केन्द्रीय सरकार उसका केवल उन १० कम्पनियों का मैनेजिंग एजेन्ट रहने दे सकती है जिन्हे वह (केन्द्रीय सरकार) निर्धारित करे। कोई व्यक्ति कितनी कम्पनियो का मैनेजिंग एजेन्ट रह सकता है, इसकी गणना करते समय निम्न को छोड़ दिया जायगा :—

(१) एक प्राइवेट कम्पनी, जो किसी पब्लिक कम्पनी की सहायक या सूत्रधारी कम्पनी नही है।

(२) एक असीमित दायित्त्व वाली कम्पनी।

(३) वह सघ जो लाभ के लिए व्यापार नही करता या लाभांश के भुगतान का निषेध करता है।

उपरोक्त आशय के लिए निम्न प्रत्येक व्यक्ति कम्पनी का मैनेजिंग एजेन्ट गिना जायगा :—

(१) जबकि कम्पनी की मैनेजिंग एजेन्ट कोई फर्म है तो फर्म का प्रत्येक साझीदार।

(२) जबकि कम्पनी की मैनेजिंग एजेन्ट कोई कम्पनी है तो उसका प्रत्येक सचालक, सेक्रेटरी एव कोषाध्यक्ष या मैनेजर तथा प्रत्येक सदस्य, जिसको २०% मताधिकार या नियन्त्रण प्राप्त हो।

यदि कोई व्यक्ति इस धारा के आदेशो की अवहेलना करता है, अर्थात् १० से अधिक कम्पनियो का मैनेजिंग एजेन्ट बना रहता है तो वह प्रत्येक अधिक कम्पनी के लिए प्रति दिन १,०००) तक के अर्थ दण्ड का भागी होगा।

(III) प्रबन्ध अभिकर्त्ता के पद का रिक्त होना—

निम्नलिखित दशाओ मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता का पद खाली (Vacated) समझा जायगा :—

(१) यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता कोई व्यक्ति है तो उसके दिवालिया होने पर अथवा दिवालिया घोषित होने का प्रार्थना-पत्र देने पर।

(२) यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता कोई फर्म है तो उसके किसी भी कारण से भंग होने पर।

(३) यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता कोई कम्पनी है तो उसके समापन की कार्यवाही प्रारम्भ होने पर।

(४) प्रबन्ध अभिकर्त्ता द्वारा प्रबन्धित कम्पनी के समापन की कार्यवाही प्रारम्भ होने पर।

(५) यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता की सम्पत्ति का किसी न्यायालय द्वारा या उनके लेनदारो द्वारा या उनकी ओर से कोई रिसीवर नियुक्त कर दिया जाय तो वह कम्पनी के प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद से मुअत्तिल (Suspend) समझा जायेगा। हाँ, यदि न्यायालय उसे कार्य करते रहने की आज्ञा दे दे तो बात दूसरी है, किन्तु न्यायालय किसी भी समय अपनी आज्ञा को बदल सकता है या रद्द कर सकता है।

(६) यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता (अथवा मैनेजिंग एजेन्सी फर्म का कोई साझेदार या मैनेजिंग एजेन्सी कम्पनी का कोई सचालक या पदाधिकारी) किसी अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है तथा कम से कम ६ माह की अवधि के लिये कारावास का दण्ड दे दिया जाता है तो प्रबन्ध अभिकर्त्ता का पद खाली समझा जायगा। यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने दोषी साझेदार, सचालक या अधिकारी को सजा की तिथि से ३० दिन के भीतर निकाल दे, तो उसकी अयोग्यता दूर हो जायगी।

(IV) प्रबन्ध अभिकर्त्ता को पदच्युत करना—

किसी कम्पनी की साधारण सभा एक साधारण प्रस्ताव द्वारा अपने प्रबन्ध अभिकर्त्ता को निम्न कारणो पर पदच्युत (Remove) कर सकती है :—

(१) कम्पनी अथवा इसकी सहायक या सूत्रधारी कम्पनी के मामलो के सम्बन्ध में कपट या प्रन्यास-भङ्ग (Fraud or Breach of Trust) के लिए।

(२) किसी दूसरी कम्पनी के मामलो के सम्बन्ध मे कपट अथवा प्रन्यास भङ्ग करने के लिये, जबकि ऐसा आरोप किसी न्यायालय मे प्रमाणित कर दिया गया हो।

(३) यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता कोई फर्म या कम्पनी है तो फर्म के किसी साझेदार, सचालक या मुख्तार-आम का अधिकार रखने वाले किसी अन्य अधिकारी द्वारा अपने या अपनी सहायक अथवा सूत्रधारी कम्पनी के कार्यों मे कपट या प्रन्यास भङ्ग के लिए।

(४) साधारण सभा मे विशेष प्रस्ताव द्वारा एक कम्पनी अपने प्रबन्ध अभिकर्त्ता को अपने या अपनी सहायक कम्पनियो के कार्यों मे उसकी किसी बडी लापरवाही (Gross Negligence) के लिये हटा सकती है। कपट, प्रन्यास भङ्ग

अथवा अत्यधिक लापरवाही के लिये किसी मैनेजिंग एजेंट को पद से हटाने के हेतु कम्पनी की साधारण सभा (यदि इस अधिनियम अथवा अन्तर्नियमों में कोई विपरीत आदेश नहीं है) कम्पनी के किन्हीं दो सचालकों द्वारा बुलाई जा सकती है। प्रस्ताव की सूचना मिलने पर कम्पनी उसकी एक प्रति मैनेजिंग एजेंट को भेजगी। सचालकों की भाँति मैनेजिंग एजेन्ट को भी यह अधिकार होगा कि वह कम्पनी को उसका लिखित उत्तर दे, उत्तर को मीटिंग में पढ़वाये तथा अपनी बात समझाये।

(V) मैनेजिंग एजेण्ट का पद से त्याग-पत्र देना—

यदि मैनेजिंग एजेंसी के ठहराव में विपरीत आशय का कोई नियम न हो तो मैनेजिंग एजेंट सचालक सभा को सूचना देकर उसमें दी गई तिथि से त्याग पत्र दे सकता है। ऐसी दशा में मैनेजिंग एजेंट इस प्रकार निर्दिष्ट की गई तिथि से या किसी अन्य बाद की तिथि से (जो परस्पर ठहर जाये) कार्य करना बन्द कर देगा, किन्तु उसका त्याग पत्र तभी प्रभावपूर्ण होगा जब सचालक सभा कम्पनी के अन्तिम खाते बनवा ले उन पर अकेक्षक की रिपोर्ट प्राप्त कर ले अकेक्षित अन्तिम खाते साधारण सभा में कम्पनी के सामने रख दे और कम्पनी उन्हें स्वीकार कर ले अथवा उनके सम्बन्ध में किसी अन्य कार्यवाही को करने का निश्चय करे।

(VI) मैनेजिंग एजेन्ट द्वारा पद का हस्तांतरण—

कोई मैनेजिंग एजेंट अपने पद का तभी हस्तांतरण कर सकता है जबकि कम्पनी की साधारण सभा और केन्द्रीय सरकार दोनों ही की अनुमति प्राप्त हो जाये।

(VII) मैनेजिंग एजेन्ट का पद पैतृक (Heritable) नहीं है—

इस अधिनियम का प्रचलन होने के बाद किसी कम्पनी द्वारा अपने मैनेजिंग एजेन्ट से किया गया कोई ठहराव, जिसमें पद को विरासत द्वारा हस्तांतरित करने की बात हो, व्यर्थ होगा। यदि अधिनियम का प्रचलन होने पर कोई व्यक्ति किसी कम्पनी के मैनेजिंग एजेंट पद पर आसीन है और मैनेजिंग एजेंसी ठहराव पद के विरासत द्वारा हस्तान्तरित होने का आयोजन करता हो तो इस व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् कोई अन्य व्यक्ति विरासत से पद तभी ग्रहण कर सकता है जब इसके लिये केन्द्रीय सरकार यह आज्ञा दे और केन्द्रीय सरकार आज्ञा तभी देगी जब उसकी सम्मति में वह व्यक्ति कम्पनी के मैनेजिंग एजेंट का पद सभालने के उपयुक्त है। ये बातें एक प्राइवेट कम्पनी को, जो किसी पब्लिक कम्पनी की सहायक नहीं है, लागू नहीं होंगी।

(VIII) मैनेजिंग एजेन्सी फर्म या कॉरपोरेशन के सङ्गठन में परिवर्तन—

इस अधिनियम में किसी विपरीत आशय वाले नियम के अभाव में जब किसी पब्लिक कम्पनी या इसकी सहायक प्राइवेट कम्पनी का मैनेजिंग एजेंट एक फर्म या कम्पनी है और इसके संगठन में कोई परिवर्तन हो जाता है तो मैनेजिंग एजेंट अपने पद पर इस परिवर्तन की तिथि से ६ महीने अथवा इस आशय के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा बढ़ाई गई अवधि की समाप्ति में कार्य करना बन्द कर देगा, यदि केन्द्रीय सरकार ऐसे परिवर्तन के लिए स्वीकृति प्रदान नहीं करती।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता के अधिकार

सन्नियम ने पारिश्रमिक पर प्रतिबन्धो तथा आचरण सम्बन्धी कडे नियमो के अतिरिक्त प्रबन्ध अभिकर्त्ता के अधिकारो पर भी प्रतिबन्ध लगा दिये हैं। भले ही वतमान अधिनियम के प्रभावशाली होने के पहले प्रबन्धित कम्पनियो के सम्बन्ध में प्रबन्ध अभिकर्त्ता के अधिकारो की कुछ भी स्थिति रही हो, १ अप्रैल सन् १९५६ के पश्चात् तो वे अपने अधिकारो का प्रयोग केवल सचालक-सभा के नियन्त्रण तथा निर्देशन मे और कम्पनी के सीमानियम तथा अन्तर्नियमो के आधीन और कम्पनी अधिनियम मे वर्णित प्रतिबन्धो के आधीन ही कर सकेंगे।

कम्पनी अधिनियम के अनुसार एक प्रबन्ध-अभिकर्त्ता सचालक-सभा की पूर्व स्वीकृति के बिना निम्नलिखित अधिकारो का प्रयोग नही कर सकता :—

(१) किसी व्यक्ति को कम्पनी का प्रबन्धक नियुक्त करना।

(२) अपने किसी सम्बन्धी को कर्मचारी नियुक्त करना।

(३) किसी कर्मचारी का सभा द्वारा निर्धारित सीमाओ से अधिक पारिश्रमिक पर नियुक्त करना।

(४) ऐसी परिस्थितियो के अतिरिक्त जो कि सचालक-सभा द्वारा निर्धारित सीमाओ के भीतर है, पूँजीगत सम्पत्ति का क्रय या विक्रय करना।

(५) अपने विरुद्ध कम्पनी के किसी दावे की रकम को कम करना या इसके भुगतान के लिये अवधि बढाना।

(६) अपने या अपने सहयोगियो द्वारा कम्पनी के विरुद्ध किये गये किसी दावे मे समझौता करना।

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को क्रियाओ पर प्रतिबन्ध

निम्नलिखित कुछ ऐसे अन्य कार्य हैं जिनके दोषो के कारण प्रबन्ध-अभिकर्त्ता पद्धति की बडी आलोचना की गई है। अब इन कार्यों पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं, जिससे उनमे विद्यमान दुर्बलायें दूर हो जायें और दोष उत्पन्न होने की सम्भावनायें कम से कम रह जायें।

(I) प्रबन्ध अभिकर्त्ता को ऋण—

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की क्रियाओं पर १० प्रमुख प्रतिबन्ध
(१) प्रबन्ध अभिकर्त्ता को ऋण।
(२) एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत कम्पनियों को ऋण।
(३) अन्य कम्पनियों के शेयर आदि खरीदना।
(४) प्रतिस्पर्धी व्यापार करने पर रोक।
(५) कम्पनी के पुनर्सङ्गठन या सयुक्तीकरण का विरोध।
(६) सचालकों की नियुक्ति करने के अधिकार पर प्रतिबन्ध।
(७) विक्रय प्रतिनिधियों के रूप मे नियुक्ति।
(८) क्रय प्रतिनिधियो के रूप मे नियुक्ति।
(९) अन्य सस्थाओं के प्रतिनिधि के रूप मे नियुक्ति।
(१०) कम्पनी मे क्रय विक्रय का अनुबन्ध।

कोई पब्लिक कम्पनी एव इसकी सहायक प्राइवेट कम्पनी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निम्न को या निम्न के द्वारा दिये गये ऋण, या ऋण की गारन्टी अथवा प्रतिभूति नही दे सकती :—

(अ) प्रबन्ध अभिकर्त्ता या इसका सहयोगी, अथवा।

(ब) कोई भी समामेलित सस्था, जिसके सम्बन्ध मे केन्द्रीय सरकार ने एक आदेश द्वारा यह घोषित कर दिया है कि उसका सचालक मण्डल, प्रबन्ध अभिकर्त्ता, प्रबन्ध संचालक, सेक्रेटरी एव कोषाध्यक्ष अथवा मैनेजर, प्रबन्ध अभिकर्त्ता या इसके सहयोगी के निर्देशो के अनुसार कार्य करता है, भले ही उक्त समामेलित सस्था स्वयं प्रबन्ध अभिकर्त्ता की सहयोगी न हो। [धारा ३६९(१)]

यह उल्लेखनीय है कि उक्त धारा उस साख पर लागू नही होती जो कि कम्पनी द्वारा अपने प्रबन्ध अभिकर्त्ता को कम्पनी का व्यापार चलाने की सुविधा के लिये दी जाती है तथा ऐसे अभिकर्त्ता द्वारा अपने ही नाम मे खुले हुए एक या कई चालू खातो मे रखी जाती है। हाँ, इस प्रकार की साख सचालको द्वारा पूर्ण स्वीकृत सीमाओ से अधिक नही होनी चाहिये तथा कभी भी वह कुल मिलाकर २०,००० से अधिक नही हो सकती। इसी प्रकार यह धारा एक सूत्रधारी कम्पनी द्वारा अपनी सहायक को दिये जाने वाले ऋण पर भी लागू नही होती। [धारा ३६९(२)]

(II) एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत कम्पनियों को ऋण—

कोई भी कम्पनी (जिसे इस धारा मे ऋणदाता कम्पनी (Lending Company) कहा गया है) किसी समामेलित सस्था (जो कि उसी प्रबन्ध के अन्तर्गत चलाई जा रही है जिसमे कि ऋणदाता कम्पनी चल रही है) को न तो कोई ऋण देगी और न किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसे दिये गये ऋणो के सम्बन्ध मे कोई गारन्टी या प्रतिभूति प्रदान करेगी, जब तक कि ऋणदाता कम्पनी के एक विशेष प्रस्ताव द्वारा

इसकी पूर्व अनुमति न हो। यदि उक्त समामेलित संस्था किसी अन्य व्यक्ति को कुछ ऋण दे, तो ऋणदाता कम्पनी उसकी प्रतिभूति की गारन्टी भी न दे सकेगी।

[धारा ३७०(१)]

जब कोई ऋणदाता कम्पनी किसी फर्म को, जिसमे समान प्रबन्ध वाली कोई समामेलित सस्था पार्टनर है, कुछ ऋण देती है या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उस फर्म को अथवा उक्त फर्म द्वारा उस अन्य व्यक्ति को दिये गये ऋण की गारन्टी या प्रतिभूति देती है तो यह ऋण (गारन्टी अथवा प्रतिभूति) समान प्रबन्ध वाली समामेलित सस्था को ही दिया गया माना जावेगा। [धारा ३७० I A]

दो समामेलित सस्थाओ को एक ही अथवा समान प्रबन्ध के अन्तर्गत तब समझा जायगा जबकि (१) उनमे से एक सस्था का प्रबन्ध अभिकर्त्ता, प्रबन्ध सचालक या मैनेजर अथवा जबकि प्रबन्ध अभिकर्त्ता एक फर्म हो तो उस फर्म का कोई पार्टनर अथवा जबकि प्रबन्ध अभिकर्त्ता एक प्राइवेट कम्पनी हो तो उस कम्पनी का कोई सचालक दूसरी सस्था मे (i) प्रबन्ध अभिकर्त्ता, प्रबन्ध सचालक या मैनेजर है, अथवा (ii) दूसरी सस्था की प्रबन्ध अभिकर्त्ता का कार्य करने वाली फर्म मे एक पार्टनर है; अथवा (iii) दूसरी सस्था की प्रबन्ध अभिकर्त्ता का कार्य करने वाली प्राइवेट कम्पनी मे एक सचालक है, अथवा (२) एक सस्था के बहुमत सचालक अब या अब से तत्काल ६ माह पूर्व दूसरी सस्था के भी बहुमत सचालक है, अथवा (३) दोनो सस्थाओ मे किसी भी मामले के सम्बन्ध मे कुल मतदान शक्ति का कम से कम $\frac{1}{3}$ भाग एक ही व्यक्ति या समामेलित सस्था के पास या उसके नियन्त्रण मे है, अथवा (४) यदि एक समामेलित सस्था की सूत्रधारी कम्पनी उस प्रबन्ध मे है जिसमे कि दूसरी समामेलित सस्था है।

[धारा ३७०, स्पष्टीकरण I B]

धारा ३७० उस ऋण, प्रतिभूति या गारन्टी को लागू नही होती जो कि किसी सूत्रधारी कम्पनी द्वारा अपनी सहायक को अथवा, प्रबन्ध अभिकर्त्ता या सेक्रेटरी एवं कोषाध्यक्ष द्वारा अपने ही प्रबन्ध के अन्तर्गत किसी कम्पनी को या एक बैंकिंग कम्पनी द्वारा अपने कारोबार की समान प्रगति मे दिया जाय।

यदि कोई ऋण (गारन्टी या प्रतिभूति) इस अधिनियम का चलन प्रारम्भ होने के पूर्व ही दिया हुआ था तो उसे इस अधिनियम के लागू होने के ६ माह के अन्दर वापस ले लेना चाहिये, भले ही विपरीत आशय का ठहराव हुआ था। इस अवधि को केन्द्रीय सरकार द्वारा एवं कम्पनी के विशेष प्रस्ताव द्वारा बढाया जा सकता है।

यदि कोई ऋण, प्रतिभूति या गारन्टी धारा ३६९ अथवा धारा ३७० के आदेशो के विरुद्ध दी गई हो तो दोषी व्यक्ति को (उस व्यक्ति को भी जिसके हित मे यह ऋण, गारन्टी या प्रतिभूति दी गई है, ५,०००) तक अर्थ दण्ड दिया जा सकता है अथवा ६ माह तक की सजा भी हो सकती है। यदि उक्त ऋण, गारन्टी या प्रतिभूति का निष्पादन हो गया है, तो उस धारा के अन्तर्गत सजा नही दी जा सकती और यदि आशिक निष्पादन हुआ है तो सजा भी अनुपातत. कम हो जावेगी। सभी व्यक्ति जिन्होंने

दोष में भाग लिया है, संयुक्त एवं प्रथक रूप से ऋण की वापिसी के लिए अथवा गारन्टी या प्रतिभूति देने से हुई हानि की पूर्ति के लिये कम्पनी के प्रति दायी होंगे।

[धारा ३७१]

(III) अन्य कम्पनियों के शेयर आदि खरीदना —

एक कम्पनी (जिसे इस धारा में और अगली धारा ३७३ में विनियोग करने वाली कम्पनी Investing Company कहा गया है) किसी अन्य समामेलित संस्था में शेयरों को केवल उसी सीमा तक तथा उन प्रतिबन्धों व शर्तों के आधीन जो कि नीचे बताई गई है, खरीद सकती है, [धारा ३७१] :—

(१) विनियोग करने वाली कम्पनी का संचालक मंडल किसी अन्य समामेलित संस्था के शेयरों में उस अन्य समामेलित संस्था की प्रार्थित पूँजी (subscribed capital) के १०% तक विनियोग कर सकता है। लेकिन सभी अन्य समामेलित संस्थाओं में इस प्रकार किया गया कुल विनियोग, विनियोग करने वाली कम्पनी के ३०% से अधिक नहीं होना चाहिए।

(२) यदि उक्त सीमा से अधिक विनियोग करना हो, तो इसके लिए विनियोग करने वाली कम्पनी को साधारण सभा में एक प्रस्ताव पास करना होगा तथा केन्द्रीय सरकार से भी सहमति लेनी होगी।

(३) विनियोक्ता कम्पनी किसी भी समय किसी भी रकम तक शेयर खरीद सकती है, जो कि उसे धारा ८१ (१) a) के अन्तर्गत सौंपे जायें। इन शेयरों को Rights Shares कहा जाता है।

(४) जब विनियोक्ता कम्पनी किसी समय Rights Shares के अतिरिक्त अन्य शेयरों में कोई विनियोग करना चाहे तो उपरोक्त प्रतिशतों की गणना करने में उस समय तक Rights Shares में यदि कोई हों, किए गये सभी विद्यमान विनियोग सम्मिलित किये जायेंगे।

(५) संचालक मण्डल तभी विनियोग कर सकता है जबकि सभी संचालकों की सहमति से (जो कि सभा में उपस्थित हों और वोट देने के अधिकारी हों) एक प्रस्ताव पास हो जाय और इस प्रकार का प्रस्ताव रखे जाने की सूचना प्रत्येक संचालक को धारा २८६ में वर्णित विधि से दे दी गई है।

प्रत्येक विनियोक्ता कम्पनी समामेलित संस्थाओं के शेयरों में अपने द्वारा किए गए सभी विनियोगों का रजिस्टर रखेगी और उसमें समामेलित संस्था का नाम, विनियोग करने की तिथि, जहाँ उक्त समामेलित संस्था विनियोक्ता कम्पनी के ही ग्रूप में है, वह तिथि भी जब कि वह ग्रूप में सम्मिलित हुई तथा अन्य सब समामेलित संस्थाओं के नाम जो कि उसी ग्रूप में दिखाने चाहिए। विनियोग का विवरण उनकी तिथि के ७ दिन के अन्दर ही नोट हो जाना चाहिए। यदि विनियोग कम्पनी संशोधन अधि-

नियम सन् १९६० के पूर्व किए गए थे, तो इस अधिनियम के लागू होने के ६ माह के अन्दर (जिसकी अवधि केन्द्रीय सरकार द्वारा कम्पनी की प्रार्थना पर बढाई जा सकती है) ही उनका विवरण रजिस्टर मे दर्ज कर लेना चाहिए।

इस धारा के आदेशो का उल्लङ्घन करने पर कम्पनी तथा कम्पनी के प्रत्येक दोषी अधिकारी को ५०० रु० तक का अर्थ दण्ड दिया जा सकता है। दोष का सर्व प्रथम पता लगने पर भी यदि वह जारी रहे, तो ५० रु० प्रति दिन तक जुर्माना किया जा सकता है।

यह धारा एक बैंकिंग अथवा बीमा कम्पनी को, एक प्राइवेट कम्पनी को, जो कि पब्लिक कम्पनी की सहायक नही है, फाइनेन्सिंग कम्पनी व सूत्रधारी कम्पनी को (उसकी सहायक कम्पनी के सम्बन्ध मे) लागू न होगी।

(IV) प्रतिस्पर्धी व्यापार करने पर रोक—

कोई प्रवन्ध अभिकर्त्ता अपने लाभार्थ ऐसे किसी व्यापार म सलग्न नही हो सकता जिसकी प्रकृति उसकी कम्पनी के (जिसका वह प्रबन्ध अभिकर्त्ता है) अथवा ऐसी कम्पनी की किसी सहायक कम्पनी के व्यापार के समान है और उससे प्रतिस्पर्धा करने वाला है। यदि वह ऐसा करता है तो इससे अर्जित समस्त लाभ वह उस कम्पनी के लिए ट्रस्ट मे रखेगा।

उक्त आशय के लिए निम्नलिखित दशाओ मे मैनेजिंग एजेन्ट को अपने लाभार्थ व्यापार मे सलग्न समझा जायगा :—

(१) यदि ऐसा व्यापार किसी फर्म द्वारा, जिसमे वह साझेदार है, चलाया जाता है।

(२) यदि ऐसा व्यापार एक प्राइवेट कम्पनी द्वारा चलाया जाता है, जिसकी किसी साधारण सभा मे निम्नलिखित एक या अधिक व्यक्तियो द्वारा (मिला कर) कुल मताधिकार के कम से कम २०% पर नियन्त्रण हो :—

(अ) उक्त प्रबन्ध अभिकर्त्ता।

(आ) यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता एक फर्म है तो उस फर्म का कोई साझेदार।

(इ) यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता एक समामेलित सस्था है तो उसका कोई अधिकारी।

(३) यदि व्यापार एक समामेलित सस्था द्वारा, (जो एक प्राइवेट कम्पनी नहीं है) चलाया जाता है, जिसकी किसी साधारण सभा मे निम्नलिखित किसी एक (व्यक्ति या कई व्यक्तियो द्वारा मिल कर) का कुल मताधिकारो के कम से कम २०% पर नियन्त्रण हो :—

(अ) उक्त प्रबन्ध अभिकर्त्ता।

(आ) यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता एक फर्म है तो उसका कोई साझेदार।

(इ) यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता एक समामेलित संस्था है तो उसका कोई अधिकारी।

(V) कम्पनी के पुनर्सङ्गठन या संयुक्तीकरण का निषेध—

यदि कम्पनी के पार्षद सीमानियम अथवा अन्तर्नियमों में या कम्पनी द्वारा साधारण अथवा सचालक सभा द्वारा पास किये किसी प्रस्ताव में अथवा कम्पनी और उसके प्रबन्ध अभिकर्त्ता या किसी अन्य व्यक्ति के मध्य हुए किसी ठहराव में कोई ऐसा आयोजन हो कि कम्पनी का पुनर्सङ्गठन या सयुक्तीकरण तभी हो सकता है जबकि वह प्रबन्ध अभिकर्त्ता ही पुनर्सङ्गठित कम्पनी या सयुक्तीकरण के परिणामस्वरूप बनी नई कम्पनी का प्रबन्ध अभिकर्त्ता नियुक्त किया जाये तो ऐसा आयोजन इस अधिनियम का चलन होने के बाद से व्यर्थ होगा।

(VI) संचालकों को नियुक्ति करने के अधिकार पर प्रतिबन्ध—

यदि कम्पनी के अन्तर्नियम आज्ञा दें तो प्रबन्ध अभिकर्त्ता अधिक से अधिक दो (यदि सचालकों की कुल सख्या ५ से अधिक है) नियुक्त कर सकता है। यदि सचालकों की सख्या ५ से कम है तो वह केवल एक ही सचालक नियुक्त कर सकेगा। अपने नियुक्त किये सचालक को प्रबन्ध अभिकर्त्ता चाहे जब हटा सकता है या उसका पद खाली होने पर किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त कर सकता है।

(VII) प्रबन्ध अभिकर्त्ता की एक विक्रय-प्रतिनिधि के रूप में नियुक्ति—

प्रबन्ध अभिकर्तृत्व प्रणाली का एक दोष यह भी रहा है कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपनी कम्पनी के लिए माल के क्रय अथवा विक्रय के एजेन्ट बन जाया करते थे और इस पर कमीशन वसूल करते थे। अब इस दिशा में भी प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं। अब किसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता या उसके किसी सहयोगी को कम्पनी के माल को बेचने के सम्बन्ध में कोई कमीशन या पुरस्कार पाने का अधिकार नहीं होगा। हाँ, भारत के बाहर किसी स्थान से की गई बिक्री के सम्बन्ध में प्रबन्ध अभिकर्त्ता या उसके सहयोगी को निम्न दो शर्तों के आधीन विक्रय प्रतिनिधि नियुक्त किया जा सकता है :—(१) उनका ऐसे स्थान पर निजी व्यापार के लिए कोई कार्यालय हो। (२) उनका बिक्री कमीशन इस सम्बन्ध में कम्पनी द्वारा पास किये गये विशेष प्रस्ताव के अनुसार हो। यह नियुक्ति पाँच वर्ष से अधिक के लिए नहीं की जा सकती। हाँ, बाद में उसका नवकरण किया जा सकता है।

(VIII) क्रय प्रतिनिधि के रूप में मैनेजिंग एजेण्ट की नियुक्ति—

किसी मैनेजिंग एजेण्ट या उसके किसी सहयोगी को कम्पनी से उसकी ओर से भारत में खरीदे गये माल के सम्बन्ध में कोई कमीशन प्राप्त करने का अधिकार नहीं होगा। हाँ, कार्यालय भत्ते के बदले में मिलने वाले खर्च तो उनको मिलेंगे ही, किन्तु भारत के बाहर किसी स्थान से मैनेजिंग एजेण्ट या उसके सहयोगी द्वारा कम्पनी की ओर से खरीदे गये माल के सम्बन्ध में कम्पनी की इच्छा पर मैनेजिंग एजेण्ट या

सहयोगी को या तो उसके कार्यालय का खरीद सम्बन्धी खर्च या कमीशन दिया जा सकता है। हां, शर्त यह है कि उक्त कार्यालय मैनेजिंग एजेन्ट के व्यक्तिगत व्यापार के लिए होना चाहिए। कम्पनी अपने विशेष प्रस्ताव मे इस भुगतान की सीमा निश्चय कर देगी। नियुक्ति का यह विशेष प्रस्ताव तीन वर्ष से अधिक के लिए न होगा। बाद मे उसका नवकरण कराया जा सकता है।

(IX) अन्य संस्थाओ के क्रय अथवा बिक्री प्रतिनिधि के रूप में कमीशन—

कभी-कभी यह होता है कि एक ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता के आधीन दो कम्पनियाँ परस्पर सेवा या माल का क्रय-विक्रय करती हैं। ऐसी दशा मे एक कम्पनी अपने प्रबन्ध अभिकर्त्ता को दूसरी कम्पनी से उस क्रय-विक्रय के लिए प्राप्त कमीशन को रखने की अनुमति दे सकती है। इसके लिए कम्पनी को अपनी साधारण सभा मे एक प्रस्ताव पास करना पडेगा। यह आवश्यक है कि उक्त क्रय-विक्रय की दरें कम्पनी के लिए बाजार दरो से या उचित दरो से कम अनुकूल न हो।

(X) प्रबन्ध अभिकर्त्ता और कम्पनी के मध्य क्रय-विक्रय का अनुबन्ध—

एक कम्पनी विशेष प्रस्ताव द्वारा अपने प्रबन्ध अभिकर्त्ता या उसके सहयोगी के साथ किसी अचल या सचल जायदाद के खरीदने, बेचने या सप्लाई करने अथवा मैनेजिंग एजेन्सी के अतिरिक्त किसी अन्य सेवा की सप्लाई के लिए अथवा कम्पनी द्वारा निर्गमित या बेचे गये अशो या ऋण-पत्रो के अभिगोपन के लिए किये जाने वाले अनुबन्ध की अनुमति प्रदान कर सकती है। यह आवश्यक है कि किसी कम्पनी द्वारा माल की बिक्री या सप्लाई की गई सेवा का भुगतान कम्पनी को प्रबन्ध अभिकर्त्ता १ महीने के अन्दर कर दे। यह नियम उस माल या सेवा के सम्बन्ध मे लागू नही होता जिसमे कम्पनी या प्रबन्ध अभिकर्त्ता नियमित रूप से व्यापार करते है। शर्त यह है कि ऐसी जायदाद का मूल्य और सेवा की लागत अनुबन्ध की अवधि मे शामिल किसी भी कलेण्डर वर्ष के लिए कुल ५,०००) से अधिक न हो।

यदि उक्त आदेशो के विरुद्ध प्रबन्ध अभिकर्त्ता कोई पुरस्कार प्राप्त करता है तो वह आधिक्य कम्पनी मे जमा करना पडेगा।

पद की हानि के लिए हर्जाना

निम्नलिखित दशाओ मे पद की हानि (Loss of office) के लिए कोई कम्पनी अपने मैनेजिंग एजेन्ट को हर्जाना नही देगी :—

(१) जबकि प्रबन्ध अभिकर्त्ता कम्पनी के पुनर्सङ्गठन या किसी अन्य समामेलित सस्था के साथ सयुक्तीकरण (Amalgamation) के लिए अपने पद से त्याग पत्र देता है और फिर वही पुनर्सङ्गठित कम्पनी या सयुक्तीकरण के फलस्वरूप बनी नई समामेलित सस्था का प्रबन्ध अभिकर्त्ता, सेक्रेटरी एव कोषाध्यक्ष, मैनेजर या अन्य अधिकारी नियुक्त हो जाय।

(२) जब प्रबन्ध अभिकर्त्ता कम्पनी के उक्त पुनर्सङ्गठन या सयुक्तीकरण के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से त्याग-पत्र दे।

(३) जब प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने पद को इस कारण छोडने के लिए विवश होता है कि केन्द्रीय सरकार ने इस प्रकार की कम्पनियो मे मैनेजिग एजेण्ट रखने का निषेध कर दिया है, अथवा अधिनियम के आदेशानुसार उसका कार्य काल १५ अगस्त सन् १९६० तक अवश्य समाप्त हो जाना है, अथवा १० कम्पनियो से अधिक मैनेजिंग एजेन्सी न रखने के नियम का पालन करना पडा है ।

(४) जब प्रबन्ध अभिकर्त्ता का पद उसके दिवालिया होने (यदि वह एक व्यक्ति है) या फर्म के भग होने (यदि वह एक फर्म है) अथवा समापन की कार्यवाही आरम्भ होने (यदि वह एक समामेलित सस्था है) के कारण या प्रबन्ध अभिकर्त्ता को किसी अपराध का दोषी पाये जाने पर उसका पद खाली मान लिया जाता है ।

(५) जबकि प्रबन्ध अभिकर्त्ता का पद इस कारण खाली समझ लिया जाता है कि उसके द्वारा प्रबन्धित कम्पनी के समापन की कार्यवाही आरम्भ हो गई है और कम्पनी का समापन प्रबन्ध अभिकर्त्ता की लापरवाही या त्रुटि के कारण हो ।

(६) जबकि प्रबन्ध अभिकर्त्ता को उसके पद से रिसीवर की नियुक्ति हो जाने से मुअत्तिल मान लिया गया है ।

(७) जबकि प्रबन्ध अभिकर्त्ता को कपट या न्यास भग के लिए अथवा अत्यधिक लापरवाही एव कुप्रबन्ध के लिए विशेष प्रस्ताव द्वारा पद से हटा दिया गया हो ।

(८) जबकि प्रबन्ध अभिकर्त्ता ने स्वय अपने पद की समाप्ति के लिये प्रेरणा दी है या समाप्ति के लिए प्रयत्न किया है ।

कम्पनी अपने प्रबन्ध अभिकर्त्ता को पद की हानि के लिये जो हर्जाना दे सकती है वह उतने धन से अधिक नही हो सकता जितना उसने अपने शेष कार्यकाल मे अथवा तीन वर्ष मे (जो कम हो) अर्जित कर लिया होता । हर्जाने की गणना प्रबन्ध अभिकर्त्ता द्वारा पद की समाप्ति के तत्काल पहले तीन वर्ष की अवधि मे अर्जित औसत पुरस्कार के आधार पर की जायेगी । प्रबन्ध अभिकर्त्ता का पद समाप्त होने के पहले या बाद मे किसी भी समय १२ महीने के अन्दर यदि कम्पनी का समापन आरम्भ हो गया है और कम्पनी की सम्पत्ति, अश पूँजी (प्रीमियम सहित) चुकाने के लिये अपर्याप्त है तो प्रबन्ध अभिकर्त्ता कोई हर्जाना पाने का अधिकारी नही होगा ।

पद के समाप्त होने पर प्रबन्ध अभिकर्त्ता के अधिकार—

जब किसी मैनेजिंग एजेण्ट का पद समाप्त हो जाय, तो प्रबन्ध अभिकर्त्ता एवं कम्पनी एक दूसरे से पद की समाप्ति के पहले किये गये या न किये गये कार्य के सम्बन्ध मे अपनी मांग या दावे को पूरा कर सकेंगे । किसी अन्य रूप मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता के जो अधिकार या कर्त्तव्य हो, उन पर पद की समाप्ति का कोई प्रभाव नही पड़ता ।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति का समापन—

कम्पनी अधिनियम सन् १९५६ का उद्देश्य प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति को निम्न-लिखित ढग से समाप्त करना है—

(१) १५ अगस्त सन् १९६० तक तो इस पद्धति मे कोई परिवर्तन नही होगा, किन्तु तत्पश्चात् इसका महत्व कम होने लगेगा। कोई भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता १० से अधिक कम्पनियो का प्रबन्ध नही कर सकेगा। १ अप्रैल सन् १९५६ के बाद किसी भी समय केन्द्रीय सरकार यह सूचित करने का अधिकार रखती है कि एक विशेष उद्योग या व्यापार मे सलग्न सभी कम्पनियाँ कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता नही रख सकेंगी। इस सूचना का प्रभाव यह होगा कि जिन कम्पनियो मे सूचना की तिथि पर प्रबन्ध अभि-कर्त्ता नही थे वे भविष्य मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता नही रख सकेंगे और जिन कम्पनियो मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता है उनका कार्यकाल निर्दिष्ट तिथि से तीन वर्ष की अवधि समाप्त होने पर या १५ अगस्त सन् १९६० से जो भी तिथि बाद मे पडे, समाप्त हो जायगा।

(२) वे कम्पनियाँ जो उपरोक्त नियम मे नही आती तब तक प्रबन्ध अभि-कर्त्ता नियुक्त नही कर सकेंगी जब तक केन्द्रीय सरकार से विशेष स्वीकृति प्राप्त न हो जाय और केन्द्रीय सरकार ऐसी स्वीकृति निम्न बातो का सन्तोष प्राप्त होने पर ही देगी—

(अ) कि कम्पनी को प्रबन्ध अभिकर्त्ता नियुक्त करने की अनुमति देने से जन-हित को नुकसान नही पहुँचेगा।

(आ) कि प्रस्तावित प्रबन्ध अभिकर्त्ता एक उपयुक्त एव योग्य व्यक्ति है।

(इ) कि उसके ठहराव की शर्तें उचित हैं। और

(ई) कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता ने उन तीन शर्तों को पूरा कर दिया है जो केन्द्रीय सरकार ने उसके लिए निश्चित की हो।

इस प्रकार सन् १९६० के पश्चात् प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति का भविष्य बड़ा अनिश्चित और बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगा कि इन पाँच वर्षों की अवधि के भीतर प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का आचरण कैसा रहता है। यदि उनका आचरण समाज-वादी ढांचे के अनुकूल रहता है, यदि उन पर लगाये गए प्रतिबन्धो के फलस्वरूप इस पद्धति के सब मुख्य दोष दूर हो जाते हैं और आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण नही होता तो उनके बने रहने की सम्भावनायें बढ जायेंगी। यद्यपि सिद्धान्तत. प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का उन्मूलन उचित है, किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से उनके उन्मूलन की समय सीमा निश्चित कर देना बुद्धिमानी नही होगी।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति का भविष्य

(Future of the Managing Agency System)

१५ अगस्त सन् १९६० की निर्धारित तिथि अब व्यतीत हो चुकी है, अंतः अब हमे इस विषय पर गम्भीरता से विचार करना है कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली का

पूर्ण समापन होना चाहिये अथवा देश की वर्तमान आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों के अन्तर्गत आज भी इसकी आवश्यकता है। यह सत्य है कि गत वर्षों में अनेक दोषों व दुर्बलताओं के कारण प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति का बड़ा घोर विरोध हुआ है। प्रो० के० टी० शाह (Prof K. T Shah) ने तो यहां तक कहा है कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति जड़ से चोटी तक सड़ चुकी है और शीघ्रता शीघ्र इस प्रणाली का समापन होना चाहिए।[1] सम्भवत: प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली के दोषों ने ही भारत सरकार को कम्पनी अधिनियम में संशोधन करने के लिए अनेक बार विवश किया। सन् १९१३ के भारतीय कम्पनी अधिनियम में, सन् १९३६, १९४६, १९४८ तथा सन् १९५१ में महत्त्वपूर्ण संशोधन किए गए और प्रत्येक बार संशोधन करने का मुख्य उद्देश्य प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली के दोषों पर विजय पाना ही था। अनेक बार संशोधन किए जाने पर भी भारतीय जनता (विशेषत: विनियोगी वर्ग) सन्तुष्ट न हुआ, अत: सन् १९५६ में पुराने कम्पनी अधिनियम का पूर्णत: मंथन करके नया अधिनियम बनाया गया, जिसका नाम है 'भारतीय कम्पनी अधिनियम, सन् १९५६।' यहाँ पर एक उल्लेखनीय बात यह है कि गत ३०-३५ वर्ष की अवधि में प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के सम्बन्ध में अनेक नये-नये नियम बनाये गए एवं इस प्रणाली के दोषों को दूर करने के उद्देश्य से उन पर प्रतिबन्ध लगाए गए, परन्तु किसी भी बार लोगों को यह मालूम नहीं हुआ कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली को जड़ से उखाड़ दिया जाय। इस प्रणाली में सुधार किये गए, इसका समापन नहीं। भारतीय प्रशुल्क आयोग सन् १९४९-५०, योजना आयोग सन् १९५० तथा कम्पनी लॉ कमेटी सन् १९५२ (जो कि भाभा कमेटी के नाम से प्रचलित है) आदि सभी ने इस संस्था में सुधारों की ही सिफारिशें की हैं। भाभा कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि "अनेक दोषों व दुर्बलताओं के होते हुए भी, भारत के वर्तमान औद्योगिक संगठन में इस प्रणाली पर निर्भर रहना ही अधिक हितकर होगा, क्योंकि निजी उपक्रम का विकास व विस्तार बहुत कुछ इस प्रणाली पर ही अवलम्बित है।"[2]

---

1 "Managing Agency System is rotten root and branch, leaves and bark and blossom and must be abolished at the earliest opportunity, so that no ground remains for retaining them, either on the score of providing finance or managerian talent to the industries." —K T Shah.

2 "Bhabha Committee in its report observes, "It feels that notwithstanding the many abuses and malpractices which have disfigured the working of this system, in the present state of industrial organisation of the country, it may still be on balance an advantage to continue and rely on it. Short of these abuses and mal practices, the committee feels that the system may yet prove to be a potent instrument for taking the sprangs of private enterprise"

अगस्त सन् १९५५ में लोक सभा में कम्पनी लॉ बिल पर बड़ी बहस हुई और अधिकांश वक्ताओं ने प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति की कड़ी आलोचना की थी। स्वयं कांग्रेस दल के आलोचकों ने इस पद्धति के उन्मूलन की माँग की और इस सम्बन्ध में एक निश्चित समय निर्धारित कराने का प्रयास किया। वे 'सेक्रेटरी एवं कोषाध्यक्ष' की नई व्यवस्था से भी सन्तुष्ट नहीं थे, क्योंकि उनके विचार में इससे आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण नहीं रुक सकता। दूसरे शब्दों में, वे कम्पनियों में प्रबन्ध पर अधिक नियन्त्रण रखना चाहते थे, किन्तु सरकार ऐसा नहीं करना चाहती थी, क्योंकि इसमें व्यक्तिगत उपक्रम को धक्का पहुँचता और पंच वर्षीय योजना की सफलता खटाई में पड़ जाती। तत्कालीन वित्त मन्त्री श्री देशमुख ने प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के पक्ष में निम्न दलीलें प्रस्तुत कीं—

(१) द्वितीय पंच-वर्षीय योजना में औद्योगिक विकास के लिये व्यक्तिगत उपक्रमों पर बहुत सीमा तक निर्भरता रखी गई है। अब बीच में ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति को किसी उद्योग विशेष में न रखने की घोषणा से व्यक्तिगत उपक्रम को बड़ा धक्का लगेगा और वह अपने दायित्व ठीक तरह से नहीं निभा सकेगा।

(२) स्वतन्त्रता के पूर्व जब प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति के विरोध में आवाज उठाई गई थी तो अधिकांश व्यापार विदेशियों के हाथ में था, किन्तु अब परिस्थिति बदल गई और व्यापार देशवासियों के हाथ में आ गया है। फिर भी अनेक दोष प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति के ऐसे हैं जो कि, उन्हीं परिस्थितियों में, सचालक-सभा या सेक्रेटरी एवं कोषाध्यक्ष अथवा अन्य प्रबन्ध व्यवस्था के अन्तर्गत भी उत्पन्न हो सकते हैं। यही नहीं, आज अनेक ऐसे प्रबन्ध अभिकर्त्ता भी है जो अपने ज्ञान और अनुभव से देश को लाभ पहुँचाना चाहते हैं।

(३) हमें प्रबन्ध अभिकर्त्ता के कार्यों का लेखा-जोखा केवल समापित कम्पनियों की सख्या से नहीं लगाना चाहिए, वरन् नई रजिस्टर्ड कम्पनियों को भी विचार में लेना चाहिए। युद्धोत्तर काल में कम्पनियों की सख्या दुगुनी से अधिक हो गई है और प्राप्त पूँजी भी पहले से तिगुनी हो गई है, जो कि देश के हित में है।

(४) यह कहना असत्य है कि कम्पनियों के प्रवर्तन और अर्थ-प्रबन्धन में प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं का अधिक भाग नहीं। १,७२० कम्पनियों की परीक्षा से यह पता लगा है कि लगभग १३.६% अंश पूँजी एवं २६.६५% ऋण एवं अग्रिम प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा प्राप्त हुआ था। यदि प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओं को हटा दिया जाय तो इतने वित्त की व्यवस्था सरकार कहाँ से करेगी ?

(५) जहाँ तक आर्थिक सत्ता के कतिपय हाथों में केन्द्रीयकरण का प्रश्न है, यह दोष केवल प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति का ही हो, ऐसी बात नहीं। उदाहरण के लिए, अमेरिका में भी, जहाँ कि ऐसी पद्धति प्रचलित नहीं है, आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण की समस्या पाई जाती है। फिर थोड़े ही (लगभग ३३) प्रबन्ध-अभिकर्त्ता देश में ऐसे हैं जिनके पास १० या अधिक कम्पनियों का प्रबन्ध है।

(६) प्रबन्ध-अभिकर्त्ता देश की व्यावसायिक वृद्धि के प्रतीक हैं। यदि केवल नियन्त्रण द्वारा इनका सहयोग देश के अधिक आर्थिक विकास मे प्राप्त हो सकता है तो फिर इनके उन्मूलन की हिंसात्मक नीति अपनाने से क्या लाभ ?

(७) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का पुरस्कार शुद्ध लाभ का १०% निर्धारित किया गया है, जो कि अधिक नही है। प्रबन्ध सचालको को वेतन के अतिरिक्त शुद्ध लाभ का ५% मिलता है और सेक्रेटरी एव कोषाध्यक्ष को ७½% निश्चित किया गया है। इनकी तुलना मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता को १०% पुरस्कार अधिक नही कहा जा सकता, क्योकि प्रबन्ध अभिकर्त्ता विभिन्न प्रकार का अनुभव रखते हैं और वित्त की व्यवस्था भी करते हैं, जबकि सचालक और सेक्रेटरी एव कोषाध्यक्ष इतनी चहुँमुखी योग्यता नही रखते और न ही इनको वित्त व्यवस्था का भार उठाना पडता है। अभी तक प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को मिलने वाला पुरस्कार औसतन शुद्ध लाभ का २७% था, अत पुरस्कार मे इतनी बडी कमी करना वास्तव मे भारी असफलता है, जो कि समाज के समाजवादी ढांचे के अनुकूल है।

(८) यदि किसी विशेष उद्योग या व्यापार मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता रखना उचित न समझा जाय तो भी अन्य क्षेत्रो मे, जहाँ प्रवर्तन एव अर्थ प्रबन्धन की आवश्यकता है, उस पद्धति का लाभ क्यो न उठाया जाय, जो कि भूतकाल मे उपयोगी थी और भविष्य मे उपयोगी होगी।

उपर्युक्त दलीलो के आधार पर तत्कालीन वित्त मन्त्री श्री चिंतामणि देशमुख ने कहा था कि, 'अभी प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली के समापन के लिये उपयुक्त समय नहीं आया है, क्योंकि यदि इसको समाप्त किया गया तो देश के औद्योगीकरण को गहरा आघात पहुँचेगा। अतएव बुद्धिमता का मार्ग तो यह होगा कि जब तक हम अपने देश का पुनर्निर्माण करें, तब तक के लिये इस प्रणाली मे केवल उचित सशोधन कर दिये जाय।'*

यही कारण है कि भारत सरकार ने शास्त्री कमेटी सन् १९५७ की सिफारिशों के आधार पर कम्पनी अधिनियम सशोधन आलेख सन् १९५९ मे भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली पर कठोर नियन्त्रण करने की ही चेष्टा की है। भारतीय उद्योग एव वाणिज्य मण्डल के आग्रह पर राष्ट्रीय आर्थिक अनुसधान परिषद (National Council of Applied Economic Research) ने प्रबन्ध अभिकर्त्ता पद्धति के विभिन्न पहलुओ एव उसकी उपयोगिता का अध्ययन करके सम्मति प्रगट की है कि देश के

---

* 'The time has not come for eliminating Managing Agency System because it would deal a very severe blow to industrialisation in the country. The way of prudence dictates reforming the existing institutions while this process of building up new ones proceeds a pace'
—C D Deshmukh

आर्थिक विकास मे यह प्रणाली महत्त्वपूर्ण भाग अदा कर रही है, अतः इस पद्धति को समाप्त करने के लिये कोई महत्त्वपूर्ण कारण नही दिखलाई देता। परिषद् का कहना है कि देश की बदलती हुई परिस्थितियो को दृष्टि मे रखते हुए इस पद्धति मे समय-समय पर आवश्यक परिवर्तन, परिवर्द्धन एव सुधार किये जा सकते हैं। कुछ बेईमान व्यक्तियो द्वारा इस पद्धति का दुरुपयोग करके अनुचित लाभ उठाना इस बात का प्रमाण नहीं है कि यह पद्धति ठोस नही है, इसलिये इसे समाप्त कर दिया जाय। परिषद् के महा सचालक डा० पी० एस० लोकनाथन (Dr. P. S. Loknathan) ने कहा है कि यह पद्धति निजी क्षेत्र को विशेषत. दो दिशाओ मे सक्रिय योग दान दे रही है—(१) यह अपने आय स्रोतो व बचत से प्रबन्धकृत कम्पनियो की पूँजी की व्यवस्था करती है, और (२) अपने प्रबन्ध के उद्योगो का बहुमुखी विस्तार कर रही है।

प्रबध अभिकर्त्ता प्रणाली का समापन वांछनीय क्यो नहीं है ?—

भारत की वर्तमान आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियो के अन्तर्गत यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली का पूर्ण समापन हितकर न होगा। इस सम्बन्ध मे निम्न दलीलें दी जा सकती हैं :—

प्रबंध अभिकर्त्ता प्रणाली का पूर्ण समापन क्यो नहीं ?

(१) प्रवर्तन की भावी आवश्यकतायें।
(२) बचत तथा उसका एकत्रीकरण।
(३) तृतीय पच-वर्षीय योजना की सफलता।
(४) पूँजी की सुविधा।
(५) अभिगोपन सम्बन्धी सस्थाओ का अभाव।
(६) प्रबन्ध-योग्यता की आवश्यकता।

(१) प्रवर्तन की भावी आवश्यकतायें—भारतवर्ष मे उद्योग धन्धो के प्रवर्तन के लिए अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र है। हमारा देश प्राकृतिक प्रसाधनो की दृष्टि से बहुत धनी है, परन्तु अपनी प्राकृतिक सम्पदा का विदोहन करने के लिये उपक्रम (Enterprise) की आवश्यकता है। हमारी सरकार अनेक राजनैतिक व अन्य घरेलू समस्याओ मे व्यस्त है एव वह आर्थिक क्षेत्र मे अधिक ध्यान नही दे सकती। अतएव निजी उपक्रम को ही आगे बढ़कर औद्योगीकरण की दिशा मे देश को अग्रसर करना होगा। गत ५-७ वर्षो के आर्थिक व औद्योगिक विकास के आँकड़ो से यह स्पष्ट लगता है कि हमारे देश मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ ने प्रारम्भिक अनुसन्धान करके अनेक नये उद्योग-धन्धो की स्थापना की है। औटोमोबाइल्स, लोकोमोटिव्स औद्योगिक यन्त्र व उपकरण, रसायनिक पदार्थ, रेयन व प्लास्टिक पदार्थों से सम्बन्धित उद्योगो के प्रवर्तन व स्थापना का श्रेय प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को ही है। भविष्य मे भी अपनी पच-वर्षीय योजनाओ की सन्तुष्टि के लिए हमे अनेक उद्योग-धन्धो की स्थापना करनी होगी, जिसके लिए प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली को चालू रखना नितान्त आवश्यक है।

(२) बचत तथा उनका एकत्रीकरण—तृतीय पंच-वर्षीय योजना की सफलता काफी सीमा तक घरेलू बचत पर निर्भर करती है।* इस घरेलू बचत को प्रोत्साहित करने एव औद्योगीकरण हेतु उसको एकत्र करने मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली ने बहुत बडा योगदान किया है तथा भविष्य मे भी इससे बहुत आशा है।

(३) तृतीय पंच-वर्षीय योजना के उद्देश्यो की सफलता के लिए—जून सन् १९५९ मे उटकमण्ड मे होने वाले अखिल भारतीय कांग्रेस कमटी के योजना सम्बन्धी सेमिनार मे यह निश्चय हुआ था कि तृतीय पंच वर्षीय योजना मुख्यत 'उत्पादन वृद्धि की योजना' होनी चाहिए। वास्तव मे निम्नलिखित कारणो से आज हमारा नारा 'उत्पादन करो अथवा नष्ट हो जाओ' (Produce or perish) ही होना चाहिए —(i) उपभोग के स्तर को बढाने के लिये, (ii) बढती हुई जन सख्या की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिये, (iii) रहन-सहन के स्तर की वृद्धि के लिए, (iv) अतिरिक्त श्रम शक्ति व प्राकृतिक प्रसाधनो के सदुपयोग के लिए, (v) मुद्रा-प्रसार के दानव पर विजय पाने के लिए, एव (vi) अन्य प्रगतिशील औद्योगिक राष्ट्रो के साथ कदम-ब-कदम मिलाकर चलने के लिये। यही एक कारण है कि अभी हाल मे प्रकाशित हमारी तृतीय पंच वर्षीय योजना मे भी औद्योगीकरण के विकास व विस्तार पर बहुत बल दिया गया है। हमारे देश मे आज पूँजीकृत उद्योगो की बहुत कमी है, जो कि ऐसे यन्त्रो का उत्पादन करते हो जिनका उपयोग उपभोक्ता उद्योगो मे किया जाता है। परन्तु औद्योगिक विकास व विस्तार की कल्पना कोरी मृग-तृष्णा होगी, यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का अन्त कर दिया गया है। हमारे प्रबन्ध अभिकर्त्ता आधुनिक उद्योगो के नायक या कैप्टन हैं। जिस प्रकार बिना कैप्टन के कोई खेल सफलतापूर्वक सचालित नही हो सकता, उसी प्रकार बिना अभिकर्त्ताओ के औद्योगीकरण का विस्तार करना कठिन है। अतएव तृतीय पंच-वर्षीय योजना की सफलता के लिए प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली को चालू रखना ही हितकर होगा।

(४) पूँजी के बाजार का सकुचित होना—यद्यपि द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् हमारे देश मे औद्योगिक सस्थाओ की अर्थ-सम्बन्धी आवश्यकताओ की सतुष्टि के लिए अनेक विशिष्ट संस्थाओ का निर्माण किया गया (जैसे औद्योगिक अर्थ निगम, राज्य अर्थ-निगम, राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम, पुनर्वित्त निगम, इत्यादि)। परन्तु

---

* According to the Report (1959) of the NCAER, "The Marginal propersity to save, which is a crucial determinant of economic development in under developed countries depends upon —(a) Increase in National Income (b) Restraints on consumption and (c) Incentives for savings... The Managing Agency System not only attracts savings of others, but also provide personal savings and savings of their companies of firms for the use of the companies under their management,"

आज भी पूँजी का बाजार अत्यन्त सकुचित है। हमारी पूँजी बडी लजीली है। औद्योगिक अंशो व ऋण पत्रा मे विनियोग करने की प्रवृत्ति अभी अधिक लोकप्रिय नही हुई है। अतएव ऐसी परिस्थिति मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली को समाप्त करना पेड की उस डाल को काटने के समान है, जिस पर स्वय बैठे है।

(५) साधारण अंश पूँजी व अभिगोपन सम्बन्धी सस्थाओ की कमी– हमारे देश में साधारण अंश पूँजी (Equity Capital) को प्राप्त करने मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की 'साख' बहुत सहायता पहुँचाती है। अभिगोपन सस्थाओ (Underwriting Institutions) की भी देश मे बडी कमी है। प्रबन्ध अभिकर्त्ता ही इस कार्य को करते आ रहे हैं। अतएव उनके समापन से पूँजी के बहुत बडे श्रोत पर कुठाराघात हो जायगा।

(६) प्रबन्ध सम्बन्धी योग्यता की आवश्यकता–भारत के औद्योगीकरण को सफल बनाने के लिए योग्य प्रबन्धको की बडी आवश्यकता है। 'कल' का भारत इन्ही पर निर्भर करता है। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को जड से समाप्त करना बडी भारी मूर्खता हो सकती है। अतएव इस प्रणाली को चालू रखना ही राष्ट्रीय हित मे होगा।

निष्कर्ष—

सक्षेप मे, हम यह कह सकते हैं कि (१) प्रवर्तन, (२) अर्थ और (३) व्यावसायिक प्रबन्ध व व्यवस्था सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली चालू रखना ही श्रेष्ठ होगा।

STANDARD QUESTIONS

1. Briefly sumarize the principal provisions of the Indian Companies Act 1956 with regard to the appointment of a managing agent
2. In what circumstances is the office of a managing agent deemed to have been vacated ?
3. Can the managing agents of a company be removed from office before the expiry of his term ? Is so how ?
4. Can the managing agents of a company resign his office ? If so, subject to what conditions ?
5. (a) Can the managing agents of a company be appointed its selling or buying agents ? If so how ?
   (b) Can a company give loans to (i) its managing agent and (ii) any other company under the same managing agents.
6. What restrictions have been imposed by the Indian Companies Act, 1956 on the powers of Managing Agents.
7. "In theory managing agencies should go in practice it may not be prudent to set a time limit for their exist Do you agree with this statement ? Please give arguments for your answer.

अध्याय ५२

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र

(Public Sector in Mixed Economy)

प्रस्तावना—ऐतिहासिक विवेचन—

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का विचार न केवल भारत के लिए वरन् समस्त विश्व के लिए भी नया है। प्राचीन काल में 'निर्बाध व्यापार की नीति' का अनुमान किया जाता था, जिसके अन्तर्गत व्यक्तियों एवं आर्थिक संगठनों को आर्थिक मामलों में पूर्ण स्वतन्त्रता दी गई थी। सरकार आर्थिक मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं करती थी और न उसने कोई उद्योग ही प्रारम्भ किया। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के लेखों में भी यह पता चलता है कि उन दिनों मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का प्रचलन नहीं था। प्रतिष्ठित विचारधारा के प्रवर्तक आदम स्मिथ (Adam Smith) का मत था कि, "आर्थिक स्वतन्त्रता ही समस्त आर्थिक प्रगति की कुन्जी है। सरकार को आर्थिक मामलों में अहस्तक्षेप की नीति केवल इस कारण ही नहीं अपनानी चाहिए कि उस व्यक्तियों को आर्थिक स्वतन्त्रता प्रदान करनी है, वरन् इसलिए भी कि वह कुशल एवं व्यावहारिक रीति से आर्थिक कर्तव्यों का निभाने की स्थिति में भी नहीं है ... कोई भी दो व्यक्तित्व इतने असंगत नहीं हैं, जितने कि एक व्यापारी और शासक होते हैं ... समस्त शासक, बिना कोई अपवाद, समाज में सबसे अधिक मितव्ययी होते हैं।"*

सरकार द्वारा आर्थिक क्रियाओं में भाग लेने के विरुद्ध एक मुख्य तर्क यह दिया जाता है कि जब कोई व्यक्ति व्यय करता है, तो वह अपना ही धन व्यय करता है और जब कोई सरकार व्यय करती है, तो वह किसी विशेष व्यक्ति का धन नहीं वरन् सबका

---

* The State should not interfere in economic affairs not only because the State has to offer economic liberalism to the individuals but also because the State is not in a position to perform economic functions in an efficient, economic way ... No two characters seem more inconsistent than those of trader and sovereign ... sovereigns are always and without any exception, the greatest spendthrifts in the society.' —Adam Smith.

सम्मिलित धन व्यय करती है, जिससे उसके कार्यों मे उत्साह एव उत्तरदायित्व की वह भावना नही होती जो कि एक व्यक्ति के कार्यों मे पाई जाती है। इसके अतिरिक्त एक व्यक्ति विशेष की आय बहुत कुछ स्थिर होती है, अत. वह अपने बढते हुए व्यय के अनुसार ही अपनी आय को नही बढा सकता, जिससे व्यय करते समय उसे बहुत सावधान रहना पडता है। जे० बी० से (J. B Say), डेविड रिकार्डो (David Ricardo) और मिल (Mill) ने इन विचारो को अन्य देशो मे फैलाया।

निर्बाध व्यापार की नीति कुछ समय तक विश्व मे अपना प्रभुत्व जमाये रही, लेकिन बाद मे यह प्रभुत्व जाता रहा, क्योंकि अर्थशास्त्रियो ने इन विचारो से सम्बन्ध तोड लिया, क्योकि इस नीति के दोष (जैसे गला-काट प्रतियोगिता, अत्यधिक आर्थिक उतार-चढाव और आर्थिक सकटो का बार-बार आना) सब पर भली भाँति प्रगट हो हो गये थे। कीन्स और पीगू के नाम इन अर्थशास्त्रियो मे विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। धीरे धीरे निर्बाध व्यापार की नीति का स्थान समाजीकरण (Socialisation) के सिद्धात ने ले लिया। इस सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण उत्पादन एव वितरण व्यवस्था पर सरकार का ही स्वामित्व एव नियत्रण होना चाहिए। पीगू ने इस सिद्धान्त का प्रबल समर्थन किया। उसका कहना था कि "उत्पादन के साधनो का समाजीकरण आर्थिक शान्ति की स्थापना के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है, जितना शीघ्र इसे अपनाया जायगा उतना ही यह श्रेष्ठ होगा।"* लेकिन प्रोफेसर कीन्स पूर्ण समाजीकरण के विरुद्ध थे। उनकी सम्मति मे सरकार का उद्योगो पर पूर्ण नियन्त्रण नही होना चाहिए, क्योकि लाभ-भावना के अभाव के कारण सरकार मे एक व्यक्ति के समान उत्साह और कार्य-कुशलता नही आ सकती। अत. एक व्यावहारिक अर्थशास्त्री की भाँति उन्होने बीच का मार्ग अपनाने का सुझाव दिया अर्थात् कुछ सीमा तक सरकार का नियन्त्रण हो और कुछ सीमा तक व्यापार की स्वतन्त्रता भी रहे। दूसरे शब्दो मे; उन्होने आर्थिक क्षेत्र मे पूर्ण सरकारी स्वामित्व व नियन्त्रण स्थापित करने तथा पूँजीवाद का जड से उन्मूलन कर देने की अपेक्षा सरकार को व्यक्तिवादी उपक्रम के साथ मिल कर आर्थिक कार्यो म भाग लेन का सुझाव दिया।

सर्व प्रथम सोवियत रूस ने निर्बाध व्यापार की नीति का परित्याग किया और पूँजीवाद का उन्मूलन करने तथा सरकारी नियन्त्रण स्थापित करने का कदम उठाया। यह उल्लेखनीय है कि उन दिनो सोवियत सरकार, जिसके अध्यक्ष लेनिन (Lenin) थे, उत्पादन के साधनो का एकदम से समाजीकरण करने के पक्ष मे नही थी, क्योकि वह अनुभव करती थी कि नियत्रित व्यवस्था तभी सफल हो सकती है जबकि मजदूर वर्ग प्रबन्ध करने की कला मे निपुण हो जाय। अतः वहाँ सरकारी योजनाओ के द्वारा धीरे-

* "Socialisation of the means of production was Sine qua non of economic peace and that sooner it was adopted the better."
—Pigou.

धीरे ही उत्पादन के साधनों का पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त किया गया। अन्त में फरवरी सन् १९२१ को सरकारी योजना आयोग के विधान की स्वीकृति होने से आर्थिक नियोजन की वह प्रणाली स्थापित हो गई जो आज तक भी उस देश में चालू है। इस प्रणाली के अन्तर्गत जो सफलतायें उस देश में प्राप्त की गई हैं वे शेष विश्व को भी उस प्रणाली के ग्रहण करने के लिये प्रेरणा प्रदान कर रही है। किन्तु यह तो प्रारम्भ ही है; अन्त तो अभी देखना बाकी है।

सोवियत रूस, चीन व अन्य देशों में सरकारी नियोजन की सफलता को देखने के पश्चात् पूँजीवाद के प्रबल समर्थक भी उस विद्रोह-भावना की भावना का अनुभव करने लगे हैं जो कि पूँजीवाद के विरुद्ध उमड़ रही है। इस भावना को शान्त करने के लिये पूँजीवादी देश पूँजीवाद को समाप्त करने या उसके स्थान में सरकारी उपक्रम को अपनाने के बजाय पूँजीवादी व्यवस्था में ही उपयुक्त संशोधन करने का प्रयास कर रहे हैं। अर्द्ध-विकसित देशों ने भी इसी मार्ग को ग्रहण किया है। विशेषतः संयुक्त अरब गणराज्य, भारत, पाकिस्तान आदि देशों में सरकारी नियोजन किया जा रहा है, किन्तु उसका उद्देश्य वर्तमान में पूर्ण समाजीकरण करना नहीं वरन् समाज को एक उत्तम रहन-सहन स्तर प्रदान करना है। परन्तु अन्त में यह स्वीकार करना ही होगा कि समाजीकरण की विचारधारा दिनों दिन जोर पकड़ रही है और पूँजीवादी प्रणाली को बीते हुए समय की वस्तु माना जाता है।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का आशय एवं इसकी विशेषतायें

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का अर्थ—

'मिश्रित अर्थ व्यवस्था' (Mixed Economy) वह आर्थिक प्रणाली है जिसमें सार्वजनिक एवं प्राइवेट दोनों ही क्षेत्रों के लिये स्थान होता है और दोनों ही साथ-साथ कार्य करते हैं। इस प्रकार यह प्रणाली दो विरोधी विचारधाराओं का—उत्पादन के समस्त साधनों और सम्पूर्ण आर्थिक क्रिया का समाजीकरण करने की विचारधारा तथा निर्बाध व्यापार की नीति का अनुसरण करने की विचारधारा—एक समन्वित परिणाम है। इसके अन्तर्गत व्यक्तिगत उपक्रमी एवं सरकार दोनों का उत्पादन और वितरण के क्षेत्र में संयुक्त दायित्व होता है। मिश्रित अर्थ व्यवस्था में व्यक्तिगत उपक्रमी को एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी पड़ती है, लेकिन ऐसा करते समय उसे सर्व शक्तिमान सरकार का मार्ग दर्शन प्राप्त होता है, जो समाज के व्यापक हितों की रक्षक होती है। इस प्रकार, मिश्रित व्यवस्था के अन्तर्गत सरकार प्राइवेट उपक्रम का इस प्रकार नियन्त्रण करने का प्रयास करती है कि अधिकतम सामाजिक हित हो।

विशेषतायें—

मिश्रित व्यवस्था के अन्तर्गत प्रायः दो या तीन क्षेत्र कार्यशील होते हैं, जो कि निम्नलिखित हैं :—

(१) सार्वजनिक या सरकारी क्षेत्र—'सार्वजनिक' या 'सरकारी क्षेत्र'

(Public Sector) से उस आर्थिक क्षेत्र का अभिप्राय है, जिसमे उत्पादन और वितरण की सम्पूर्ण प्रणाली का प्रबन्ध, नियन्त्रण एव अर्थ प्रबन्धन सरकार के हाथ मे होता है तथा व्यक्तिगत उपक्रम को इसमे प्रवेश नही करने दिया जाता। प्राय. सुरक्षा एव आधारभूत उद्योग इस क्षेत्र मे सम्मिलित किये जाते हैं।

(२) सरकार व व्यक्तिगत उपक्रमियो का सयुक्त क्षेत्र—यह क्षेत्र (Public cum-Private Sector) एक सयुक्त सत्ता के नियन्त्रण व प्रबन्ध मे होता है। सयुक्त सत्ता से सरकार व व्यक्तिगत उपक्रम दोनो का ही आशय है। किन्तु अपनी मुख्य स्थिति बनाने के लिए सरकार पूँजी मे ५१% भाग ग्रहण करती है तथा व्यक्तिगत उपक्रम के लिये केवल ४६% भाग रहता है। गौण महत्त्व के उद्योग इस क्षेत्र मे सम्मिलित होते हैं।

(३) व्यक्तिगत उपक्रम का क्षेत्र—व्यक्तिगत उपक्रम का क्षेत्र (Private Sector) प्राइवेट उपक्रमियो के पूर्ण नियन्त्रण, प्रबन्ध व अर्थ प्रबन्धन के अन्तर्गत होता है। मुख्यत अमहत्त्वपूर्ण उद्योग ही इस क्षेत्र मे रखे जाते हैं जैसे उपभोग वस्तुयें बनाने वाले कुछ उद्योग, कन्स्ट्रक्शन इन्डस्ट्रीज आदि।

कौनसा उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र मे रखा जाय और कौनसा उद्योग किसी अन्य क्षेत्र मे रखा जाय इसका निर्णय सरकार करती है। सरकार द्वारा नियुक्त योजना-आयोग विभिन्न क्षेत्रो के मध्य आवश्यकतानुसार समायोजन करता रहता है।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के प्रचलन के कारण

मिश्रित अर्थ व्यवस्था का प्रचलन होने के अनेक कारण हैं। कुछ मुख्य-मुख्य कारण इस प्रकार है —

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था क्यो ?

(१) पर्याप्त पूँजी की प्राप्ति के लिए।

(२) ट्रेन्ड स्टाफ की पूर्ति के लिए।

(३) प्रशासन-व्यवस्था के कुशल सचालन के लिए।

(४) पूँजीवाद के गुणो को प्राप्त करने, किन्तु इसके दोषो को दूर रखने के लिए।

(१) पर्याप्त पूँजी की प्राप्ति के लिए—पृथक पृथक रूप से व्यक्तिगत और सार्वजनिक दानो ही क्षेत्रो मे पर्याप्त पूँजी का अभाव होना है। विशेषत. अर्द्ध-विकसित देशो म न तो अकेले सरकार के पास और न अकेले व्यक्तिगत उपक्रमियो के पास ही इतनी पूँजी होती है कि वह सम्पूर्ण राष्ट्र की अधिकतम प्रगति के लिए पर्याप्त हो। ऐसी परिस्थितियो म मिश्रित अर्थ-व्यवस्था अधिक लाभदायक होती है।

(२) ट्रेन्ड स्टाफ की पूर्ति के लिए—अनेक दशा म यह अनुभव किया जाता है कि एक विशेष प्रकार का प्रशिक्षित श्रम-वर्ग (Trained Personnel) असीमित मात्रा मे नही होता। यदि कार्यों का प्राइवेट और पब्लिक क्षेत्रो मे नहीं बाँटा गया, तो इस अभाव के बढ जाने की

आशंका है। किन्तु उन्हें सम्मिलित कर दिया जाय तो कुछ सीमा तक यह अभाव पूरा हो सकता है।

(३) प्रशासन-व्यवस्था के कुशल सचालन के लिए—यदि आर्थिक क्षेत्र को प्राइवेट और पब्लिक क्षेत्रों मे विभाजित कर दिया जाय, तो प्रशासन-व्यवस्था अधिक कुशलता से चलाई जा सकती है। यह लाभ तब प्राप्त होना कठिन है जबकि पूर्ण समाजीकरण या पूर्ण स्वतन्त्र व्यापार की नीति अपनाई जाय।

(४) पूँजीवाद के गुणों को प्राप्त करने किंतु इसके दोषों को दूर रखने के लिये—इस व्यवस्था के अन्तर्गत पूँजीवाद के समस्त गुणों को प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु इसके दोषों को नही भुगतना पडता, क्योंकि पूँजीवादी प्रणाली को सशोधित रूप से ही ग्रहण किया जाता है। प्राइवेट उपक्रम इस तरह कार्य करने का प्रयास करता है कि उसे भी लाभ हो और समाज का भी हित हो, क्योंकि यदि उसके कार्य समाज के हित मे न हुए तो उसे सरकार का कोप-भाजन बनना पडेगा।

भारत मे मिश्रित अर्थ-व्यवस्था—

भारत की वतमान आर्थिक परिस्थितियों के सन्दर्भ मे मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का विशेष महत्त्व है। सरकार के सामने जनता के जीवन-स्तर मे वृद्धि करके उनकी आर्थिक दशा मे सुधार करने की तत्कालिक समस्या है। इसका हल तभी सम्भव है जबकि सभी दिशाओं मे पर्याप्त सीमा तक उत्पादन बढाया जाय। औद्योगिक और कृषिक उत्पादन की भारी वृद्धि के लिए बहुत पूँजी एव प्रयास की आवश्यकता है, जिसे सरकार अपने साधनो से ही नही जुटा सकती। यही कारण है कि भारत सरकार ने मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को अपनाने का निश्चय किया और यह आशा की है कि वह प्राइवेट उपक्रम का इस प्रकार अधिकतम उपयोग कर सकेगी कि सम्पूर्ण समाज के आर्थिक कल्याण मे अधिकतम वृद्धि हो। भारत के प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने प्राइवेट और पब्लिक सैक्टरों की चर्चा करते हुए यह कहा था कि "लोग प्राय. प्राइवेट और पब्लिक सैक्टरो मे विरोध होने की आशका प्रकट करते है। कुछ लोग यह अनुभव करते है कि प्राइवेट उपक्रमो को पूर्ण एव अनियन्त्रित रूप से कार्य करने देना चाहिए। लेकिन मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि प्राइवेट उपक्रमो को इस प्रकार अनियन्त्रित रूप से कार्य करने की छूट नही दी जा सकती है तथा सरकार को एक व्यापक मात्रा मे हस्तक्षेप करना होगा। हमारे साधन सीमित है, अतः हम व्यक्तियों को सभी दिशाओं म कार्य करने की अनुमति नही दे सकते। चाहे पब्लिक सैक्टर हो या प्राइवेट सैक्टर, दोनो के लिए नियोजन करने की आवश्यकता है। प्राइवेट क्षेत्र को अधिक से अधिक भूमिका प्रदान की जायगी, किन्तु उसे योजना मे फिट होकर ही कार्य करना होगा। यदि हमारी योजना सम्पूर्ण क्षेत्र (प्राइवेट व पब्लिक) मे विस्तृत न हो सकी, तो उपयोगिता कुछ भी नही रहेगी। पब्लिक सैक्टर को तो विशेष रूप से निश्चित एव नियमित होना चाहिए।"

यद्यपि अनेक पश्चिमी देशों मे मिश्रित अर्थ-व्यवस्था की विचारधारा काफी

समय से प्रचलित थी तथापि भारत मे इसका प्रचलन थोडे समय से ही हुआ है। स्वतन्त्रता के पूर्व सरकारी क्षेत्र विद्यमान नही था। हाँ, रेल, डाक व तार, कस्टम विभाग पोर्ट ट्रस्ट्स, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, आर्डनेन्स एव एयरक्राफ्ट फैक्टरियाँ तथा कुछ अन्य उद्योग अवश्य सरकारी स्वामित्व व नियत्रण मे थे। स्वतन्त्रता के पश्चात् सरकार ने कृषि व सम्बन्धित क्रियाओ की उन्नति, उद्योगो के विस्तार तथा अन्य सेवाओ का विकास करने का निश्चय किया। इसके लिए तथा विश्व के औद्योगिक उन्नतिशील देशो से सफलतापूर्वक प्रतिस्पर्धा करने के लिए एक ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता थी जो किसी को असतोष दिए बिना सबको सतोष प्रदान करे। बहुत दिनो से सरकार ऐसी उपयुक्त प्रणाली की खोज मे थी। अन्त मे देश के प्रमुख अर्थ-शास्त्रियो की सम्मति से उसने देश मे मिश्रित-व्यवस्था का श्रीगणेश किया। इस व्यवस्था के अन्तर्गत अर्थ-व्यवस्था को तीन क्षेत्रो मे विभाजित किया गया है :—सरकारी क्षेत्र, प्राइवेट क्षेत्र एव सरकार व प्राइवेट उपक्रम का सम्मिलित क्षेत्र।

मिश्रित अर्थ-व्यवस्था मे पब्लिक सेक्टर—

भारत मे पब्लिक सैक्टर (सार्वजनिक या सरकारी क्षेत्र) का आरम्भ थोडे समय पूर्व से ही हुआ है, किन्तु योरोपीय देशो मे वह काफी समय से विद्यमान था। चीन और रूसी समूह के देशो मे यह अपनी पूर्णता को प्राप्त हो गया है। भारत मे सन् १६४८ की औद्योगिक नीति की घोषणा से इसे महत्त्व प्राप्त हुआ है। राष्ट्रीयकरण के तथा इस सामान्य सिद्धान्त की स्वीकृति से, कि प्राइवेट सैक्टर मे चलने वाले उद्योगो का भी सरकार नियमन व नियत्रण कर सकती है, अब तक अनुसरण की गई विचारधारा व नीतियों मे एक महान् परिवर्तन आ गया है और तब से पब्लिक सैक्टर का तेजी से विकास हो रहा है।

सन् १६४८ से पब्लिक सैक्टर मे आरम्भ किये गये विभिन्न उपक्रमो को पाँच मुख्य शीर्षको मे इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है :—

(१) सुरक्षा उद्योग (Defence & Strategic Establishments)—जैसे, हथियार, गोला-बारूद, हवाई जहाज, अणु-शक्ति बनाने से सम्बन्धित उपक्रम।

(२) जन उपयोगी सेवायें (Public Utility Undertakings)—जैसे डाक व तार विभाग, रेलवे व अन्य यातायात उपक्रम, विभिन्न विद्युत योजनायें आदि। जन उपयोगी सेवाओ के सहायक उद्योग भी सरकार ने आरम्भ किए, जिनमें निम्न विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :—बगलौर का टेलीफोन निर्माण उद्योग, हिन्दुस्तान केबिल्स लि० पश्चिमी बगाल, चितरजन लोकोमोटिव वर्क्स, इन्टीगल कोच फैक्टरी, पैरम्बूर।

(३) उद्योग (Industries)—इस वर्ग के उद्योगो का महत्त्व धीरे-धीरे बढ रहा है। इनमे निम्न विशेष महत्त्वपूर्ण है—सिंदरी का खाद कारखाना, असोसि-

येटेड सीमेन्ट कम्पनी, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लिमिटेड नेशनल इन्स्ट्रूमेन्ट फैक्टरी कलकत्ता, जर्गपुरा की सरकारी हाउसिंग फैक्टरी, दुर्गापुर, भिलाई और रूरकेला के लौह एवं इस्पात कारखाने।

(४) शिपिंग (Shipping)—शिपिंग (विशेषतः तटवर्ती शिपिंग) का विकास करने के लिए सरकार द्वारा शिपिंग टनेज क्षमता बढ़ाने के समय-समय पर लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं। सन् १६५० में ईस्टर्न शिपिंग कारपोरेशन लि० की स्थापना हुई। हिन्दुस्थान शिपयार्ड जहाजों के निर्माण का कार्य करता है एवं वह और भी यार्ड खोले जाने की प्रगति में है।

(५) विविध उपक्रम (Other Projects)—इस शीर्षक में निम्नलिखित विविध प्रकार के औद्योगिक संस्थान सम्मिलित किए जाते हैं—इण्डियन रेयर अर्थ लिमिटेड (ट्रावनकोर-कोचीन), पिम्परी की पेनिसिलिन फैक्टरी, दिल्ली का डी० डी० टी० कारखाना, मंडी का नमक का कारखाना, यू० पी० सरकार की सीमेंट फैक्टरी, मध्यप्रदेश का नेपा कागज का कारखाना, बिहार सरकार की सुपरफास्फेट फैक्टरी, आदि। इनमें से अधिकांश संस्थानों का पब्लिक लिमिटेड कम्पनियों के रूप में संगठन किया गया है, जिसमें सरकार ने बहुमत शेयर खरीदे हैं। इसका प्रबन्ध सरकार द्वारा नियुक्त प्रबन्ध संचालक के हाथ में है, जिसको परामर्श देने के लिए एक बोर्ड होता है।

पंच-वर्षीय योजनायें एवं पब्लिक सैक्टर—

प्रथम पंच वर्षीय योजना में पब्लिक सैक्टर के उपक्रमों पर कुल व्यय ६४ करोड़ रु० रखा गया था। इसके अतिरिक्त रेलों को छोड़कर अन्य आधारभूत उद्योगों व यातायात के लिए ५० करोड़ रु० अलग थे। प्राइवेट सैक्टर में २२३ करोड़ रु० के व्यय की व्यवस्था थी।

द्वितीय पंच-वर्षीय योजना की रिपोर्ट में यह बताया गया है कि आधुनिक टेक्नोलाजी का प्रयोग करने के लिए बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की तथा कुछ विशेष प्रकार की आर्थिक क्रियाओं में प्रसाधनों के समन्वित नियन्त्रण एवं वितरण की व्यवस्था करना आवश्यक होता है। ऐसी क्रियाओं में खनिजों एवं आधारभूत तथा पूँजीगत माल बनाने वाले उद्योगों को सम्मिलित किया जाता है। इन पर ही अर्थ व्यवस्था का विकास मुख्यतः निर्भर होता है। इन क्षेत्रों में विकास करने का दायित्व सरकार को ही ग्रहण करना चाहिए तथा विद्यमान इकाइयों को नए नमूने के अनुसार ढलना होगा। इसी प्रकार, जिन क्षेत्रों में टैक्नालॉजिकल घटक इस प्रकार के होते हैं कि आर्थिक शक्ति व सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण को बढ़ावा मिले, उनमें सरकारी स्वामित्व (आंशिक या पूर्ण) और सरकारी नियंत्रण विशेष रूप से आवश्यक होता है। कई क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें प्राइवेट उपक्रम सरकार से सहायता मिले बिना तरक्की नहीं कर सकते। अतएव इसमें इस्तैमाल किए गए प्रसाधनों के स्वभाव पर ध्यान देना आवश्यक है। एक विकासशील अर्थ-व्यवस्था में पब्लिक और प्राइवेट सैक्टर दोनों के विकास के लिए

विशाल क्षेत्र हैं। किन्तु, व्यापक सामाजिक हितों की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि पब्लिक सैक्टर प्राइवेट सैक्टर की अपेक्षा अधिक विकसित हो।

पब्लिक सैक्टर की समस्यायें—

पब्लिक सैक्टर की निम्नलिखित समस्यायें है :—

(१) **सगठन की समस्या**—विभिन्न देशों मे राष्ट्रीयकरण की योजनाओं का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि सगठन का कौन-सा रूप अपनाया जाय। यह मुख्यत. काम मे आने वाले साधनो के स्वभाव पर निर्भर है। विभिन्न सगठन प्रणालियाँ निम्न है—सिडीकेट प्रणाली, मैनेजिंग डाइरैक्टर अथवा बोर्ड आफ डाइरैक्टर्स की प्रणाली, आदि। प्रत्येक प्रणाली के अपने-अपने गुण-दोष है। इन सब पर विचार करके यह निश्चय किया गया है कि राष्ट्रीयकृत उद्योगो को अर्द्ध-स्वतन्त्र निगमो द्वारा प्रबन्धित किया जाय।

(२) *मूल्य निर्धारण एव उपभोक्ता—पब्लिक सैक्टर के लिए सबसे कठिन* समस्या उद्योग व सेवाओं के उत्पादन का मूल्य निश्चित करने की है। सामान्यत: प्राइवेट उत्पादन का बाजार-मूल्य इतना होने की प्रवृत्ति रखता है कि उत्पादन की लागत निकल आये और साहसी को कुछ लाभ भी बच रहे। पब्लिक सैक्टरो के उद्योग की स्थिति भी इससे अधिक भिन्न नही है। अन्तर केवल इस बात का है कि प्राइवेट सैक्टर को वस्तुओं का इतना मूल्य रखना पडता है जिससे कि लागत के ऊपर कम से कम पूंजी को आकर्षित करने लायक लाभ बचे। किन्तु पब्लिक सैक्टर को अ-व्यापारिक घटको का भी मूल्य निर्धारण मे ध्यान रखना पडता है। दूसरे शब्दो मे, पब्लिक सैक्टर म मूल्य का निर्धारण सरकार की नीति पर भी निर्भर होता है।

> **पब्लिक सैक्टर की मुख्य समस्याये तीन है**
>
> (१) सगठन की समस्या।
> (२) मूल्य-निर्धारण एव उपभोक्ता।
> (३) श्रम की माग।

(३) **श्रम की माँग**—पब्लिक सैक्टर मे वास्तविक सघर्ष उपभोक्ता और श्रमिक के बीच मे है। श्रमिक कम काम, अच्छी मजदूरी और अपनी सेवा की स्थिरता की माँग करते है। लेकिन उपभोक्ता अधिक उत्पादन, अधिक चुनाव का अवसर तथा कम कीमतें चाहते हैं। ये दोनो विचारधारायें सदैव ही सतुलित नही हो पाती है।

पब्लिक सैक्टर की आलोचना—

पब्लिक सैक्टर के कार्य के विरुद्ध निम्न आलोचनाये की जाती हैं :—

(१) **सरकारी पूंजीवाद के पनपने की आशका**—यदि आर्थिक क्षेत्र में सरकारी उपक्रम का अबाध विकास होता रहा, तो सरकारी अधिकारियो का प्रभाव

बहुत बढ जायगा, जिससे पब्लिक सैक्टर के कालान्तर मे सरकारी पूँजीवाद मे परिणित हो जाने की आशका है।

(२) करो से होने वाली आय मे कमी आने का भय—यदि सरकारी व्यापार को अधिकाधिक बढावा दिया गया, तो इसमे लाभ के इन श्रोतों मे कमी आ सकती है, जिनसे सरकार को अब कर की आय हो रही है।

(३) पहलपन, लोच एवम् जोखिम उठाने की क्षमता में कमी—पब्लिक सैक्टर के अधिकारियों मे पहलपन, लोच एव जोखम उठाने की भावना को कार्यान्वित होने का अधिक अवसर नहीं मिलता, जिसमे इन गुणो के लुप्त हो जाने की आशका है।

पब्लिक सैक्टर की चार प्रमुख आलोचनायें

(१) सरकारी पूँजीवाद के पनपने की आशका।

(२) करो से होने वाली आय मे कमी आने का भय।

(३) पहलपन, लोच एव जोखम उठाने की क्षमता का अभाव।

(४) लोक-कल्याण कार्यों पर सरकारी खर्चे मे कमी।

(४) लोक-कल्याणकारी कार्यों पर सरकारी व्यय मे कमी—सरकार के आर्थिक साधन सरकारी व्यापार मे लग जाने पर सरकार को अपना व्यय लोक हितकारी कार्यों पर घटाने के लिए विवश होना पडता है।

फिर भी भारत जैसे पिछडे देशो मे सरकारी उपक्रम के इतने अधिक लाभ है कि उक्त दोषो को विशेष महत्त्व नही दिया जा सकता। भारत ने शीघ्र औद्योगीकरण एव समाजवादी समाज की स्थापना सम्बन्धी जो नीति अपनाई है उसकी पूर्ति के लिए पब्लिक सैक्टर का धीरे-धीरे बाल विस्तृत होना जरूरी है।

STANDARD QUESTIONS

1. What do you understand by the conception of 'Mixed Economy'? What are the special peculiarities of such an economy?
2. Discuss the causes of the intoduction of mixed economy with particular reference to India?
3. Define 'Public Sector' and discuss its problems.
4. Write short notes on :
   (a) Public Sector, (b) Private Sector,
   (c) Public-cum-Private Sector; and (d) Laissez-faire.

अध्याय ५३

राजकीय उपक्रमों की व्यवस्था एवं प्रबन्ध (१)

(गोरवाला, गैलब्रेथ, श्रप्पल बी तथा इकेफी की रिपोर्टों के सदर्भ सहित)

(Administration & Management of State Enterprises)

'राजकीय उपक्रम' से आशय—

'राजकीय उपक्रम' (Public or State Enterprise) से हमारा आशय ऐसी औद्योगिक सस्था से है, जिस पर राज्य का स्वामित्त्व हो और जिसकी व्यवस्था एव प्रबन्ध का सचालन राजकीय यत्र द्वारा किया जाता हो। इसे 'सरकारी' अथवा जन-सस्था' भी कहते है। राजकीय उपक्रम की उपर्युक्त परिभाषा स्पष्ट होते हुए भी पूर्णत ठीक नही है, क्योकि इसमे लोच का अभाव है। यदि उपर्युक्त परिभाषा को ही हम आधार मानकर चलें तो केवल ऐसी औद्योगिक सस्था ही सरकारी या सार्वजनिक सस्था (State or Public Enterpise) कही जा सकती है, जिस पर–(i) पूर्णत राज्य का स्वामित्व हो, और (ii) जिसका प्रबन्ध एव सचालन राजकीय यन्त्र द्वारा किया जाता हो। अतएव लोच के तथ्य को मस्तिष्क मे रखते हुए राजकीय उपक्रम की परिभाषा निम्न शब्दो मे दी जा सकती है—**"राजकीय उपक्रम एक ऐसी सस्था है, जिस पर या तो राज्य का स्वामित्व हो अथवा जिसकी प्रबन्ध-व्यवस्था राजकीय यत्र द्वारा सचालित की जाती हो अथवा दोनो हो (अर्थात् स्वामित्व एव प्रबन्ध) राज्य के आधीन हो"** यह परिभाषा अधिक लचीली (elastic) प्रतीत होती है। इसके अनुसार 'राजकीय सस्था' से आशय केवल ऐसी ही सस्था से नही है, जिस पर पूर्णत राज्य का स्वामित्व हो एव जिसका प्रबन्ध भी राजकीय कर्मचारियो द्वारा ही किया जाता हो, वरन् ऐसी सस्थाये भी राजकीय सस्थाओ की परिभाषा के अन्तगत *सम्मिलित की जा सकती है, जिन पर राज्य का केवल स्वामित्व ही हो* (और उनका सचालन गैर-सरकारी अधिकारियो द्वारा किया जाता हो) अथवा जिनका केवल प्रबन्ध ही राज्य के हाथो मे हो (भले ही उनका स्वामित्व व्यक्तिगत उद्योगपतियो के पास हो)।

राजकीय स्वामित्त्व एव नियत्रण के उद्देश्य—

कुछ विशेष प्रवृति की औद्योगिक सस्थाओ पर राजकीय स्वामित्व एव नियत्रण (Public Ownership and Control) क्यो हो, इस विषय पर एशिया तथा

सुदूर-पूर्व के आर्थिक आयोग (E. C. A. F. E —Economic Commission for Asia & Far East) के आधीन मार्च सन् १९५४ मे रगून मे हुये एक सेमिनार मे विचार किया गया एव राजकीय स्वामित्व नियत्रण के निम्न उद्देश्य बताये गये :—*

राजकीय स्वामित्व एव नियन्त्रण के उद्देश्य है ग्यारह

(१) आधारभूत सेवाये प्रदान करना।
(२) व्यक्तिगत नियन्त्रण के स्थान पर सार्वजनिक नियन्त्रण की स्थापना करना।
(३) आय बढाना।
(४) एकाधिकार पर नियत्रण करना।
(५) धन का पुनर्वितरण करना।
(६) एक आवश्यक उद्योग को सहायता देना।
(७) औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करना।
(८) अन्य उद्योगो के लिए आधार तैयार करना।
(९) स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को बढावा देना।
(१०) अकुशल प्राइवेट उपक्रम को हटाना।
(११) आर्थिक एव औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करना।

(१) आधारभूत सेवाये प्रदान करना—राजकीय स्वामित्व एव नियत्रण का प्रमुख उद्देश्य जनसाधारण की सेवा करना होता है। इसी हेतु प्रायः सभी आधारभूत सेवाओ पर राज्य का स्वामित्व एव नियत्रण देखा जाता है। आधारभूत सेवाओ (Basic Service) के कुछ उदाहरण ये है :—जल-पूर्ति, विद्युत-शक्ति की व्यवस्था, यातायात की व्यवस्था, इत्यादि। ये सेवायें जनसाधारण के आर्थिक कल्याण एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से नितान्त आवश्यक होती हैं, अतः सरकार राष्ट्रीयकरण द्वारा इन सेवाओ को एक उचित स्तर पर बनाये रखने का प्रयास करती है।

(२) व्यक्तिगत नियत्रण के स्थान पर सार्वजनिक नियत्रण की स्थापना करना—ऐसी अनेक परिस्थितियाँ हो सकती है, जिनमे व्यक्तिगत नियंत्रण की अपेक्षा सार्वजनिक नियत्रण (Public Control) अधिक वाछनीय कहा जा सकता है। ऐसी परिस्थिति तब कही आ सकती है जबकि निजी एव सार्वजनिक हितो मे सघर्ष होता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी इलेक्ट्रिक सप्लाई कम्पनी पर केवल व्यक्तिगत नियत्रण रहता है, तो ऐसी दशा मे सार्वजनिक हित कुप्रभावित हो सकते हैं, क्योकि व्यक्तिगत उपक्रमी Private Entrepreneur) अधिक से अधिक लाभ कमाने की भावना से बिजली की अधिक से अधिक रेट चार्ज करेगा और जनहित मे कभी भी उद्योग की मशीनरी आदि का नवकरण नही करेगा और न कार्यक्षमता को बढाने का प्रयास करेगा, क्योकि वह जानता है कि कितनी ही खराब मशीनरी एव कितनी ही कम कार्यक्षमता से बिजली का उत्पादन करे, जनता को विवश होकर उसकी ही शरण आना पडेगा और ऊँचे मूल्य पर भी बिजली का उपभोग करना पडेगा। इसी प्रकार, कभी-कभी कुछ

---

* Vide Report of the Seminar on 'Organisation and Administration of public Enterprises in the Industrial field' held at Rangoon under the auspices of E. C A F. E in the month of March, 1954, pp 28-29.

निजी व्यवसायी सार्वजनिक हित वाले महत्त्वपूर्ण स्थानो पर अपना पूर्ण अधिकार जमा लेते हैं एवं जनहित का ध्यान रखे बिना कार्य करते है । ऐसी परिस्थिति मे भी यह आवश्यक है कि व्यक्तिगत नियन्त्रण के स्थान मे सार्वजनिक नियंत्रण का प्रतिस्थापन किया जाय ।

(३) राजकीय आय बढाना—कुछ उद्योग ऐसे होते है जो कि आय की दृष्टि से बडे उत्पादक हैं और यदि उन पर सरकार का पूर्ण नियन्त्रण हो जाय, तो राजकीय आय मे बहुत अधिक वृद्धि हो सकती है एव जनता पर कर का कम से कम बोझ डालते हुये अनेक सार्वजनिक हित के कार्य किये जा सकते है । ऐसे उद्योगो पर राजकीय स्वामित्व एव नियंत्रण होना ही चाहिए । यदि उनको निजी उपक्रम के लिये छोड दिया जाय, तो समाज की आय मुट्ठी भर लोगो के हाथो मे केन्द्रित हो जायगी। यही नही, फिर, निजी उपक्रमो पर अधिक टैक्स लगाकर भी सरकार उसे सरलता से वापिस नही ले सकती ।

(४) एकाधिकार पर नियन्त्रण करना—राष्ट्रीयकरण के पक्ष में यह सबसे महत्त्वपूर्ण तर्क है । ऐसे उद्योगों का स्वामित्व एव नियंत्रण निश्चय ही सरकार के ही हाथो मे रहना चाहिये, जिनसे एकाधिकार (Monopoly) की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिले । यदि एकाधिकार की प्रवृत्ति का उन्मूलन नही किया गया, तो इससे जनता का अनावश्यक शोषण (exploitation) होने की आशका रहती है । प्रायः प्रत्येक सभ्य देश मे एकाधिकार के विरोध मे सनियम बनाये गए हैं, परन्तु एकाधिकार का रोकने का श्रेष्ठ उपाय राष्ट्रीयकरण ही है ।

(५) धन का पुनर्वितरण करना—आज विश्व के सभी देशो में यह आवाज सुनाई देती है कि निजी उपक्रम से धन का असमान वितरण होता है । इससे धनवान अधिक धनी और निधन अधिक दरिद्र होते जा रहे हैं । अतएव आधुनिक युग की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या धन के समान वितरण की है । इस समस्या के हल मे उद्योगो पर राजकीय स्वामित्व एव नियन्त्रण होने से बहुत सुविधा हो जाती है, क्योकि सरकार का उद्देश्य 'लाभ कमाना' नही वरन् 'सेवा करना' होना है । सरकार अपने मस्तिष्क मे व्यक्तिगत अथवा किसी वर्ग विशेष के हित को नही, वरन् सार्वजनिक हित को रखती है । समाज मे धन का समान वितरण करना उसका एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होता है ।

(६) एक आवश्यक उद्योग को सहायता देना – कुछ उद्योग ऐसे भी होते हैं, जो लाभ पर नही चलाए जा सकते एव जिनमे या तो हानि होती है अथवा केवल नाममात्र को ही लाभ होता है । उदाहरण के लिए, दो-तीन छोटे से गाँवो मे यातायात की व्यवस्था करना । कोई भी व्यक्तिगत उपक्रमी कम जन-सख्या वाले गाँव मे यातायात की व्यवस्था नही करना चाहेगा, क्योकि यदि वह निजी बस चलाए भी, तो पर्याप्त सवारियो और माल के अभाव मे या तो उसे हानि होगी अथवा नाम मात्र का लाभ होगा । अतएव ऐसे उद्योगों व सेवाओ का राष्ट्रीयकरण करके उनको सहायता देनी चाहिए ।

(७) औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करना—किसी देश मे उपयुक्त औद्योगिक वातावरण पैदा करने के उद्देश्य से यह जरूरी हो जाता है कि राज्य सर्व प्रथम अगुआ बन कर पथ प्रदर्शन करे, जिससे कि बाद म निजी उपक्रमी भी उसके पीछे औद्योगीकरण की दिशा मे प्रयास कर सकें।

(८) अन्य उद्योगो के लिए आधार तैयार करना—राजकीय स्वामित्व एव नियत्रण का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य अन्य उद्योगो के लिए उपयुक्त आधार तैयार करना भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि सरकार कुछ मूलभूत कच्चे माल का निर्माण करे अथवा औद्योगिक शक्ति प्रदान करे अथवा सस्ते यातायात की सुविधायें प्रदान करे, इत्यादि, तो इन सेवाओ से भविष्य मे अनेक नए उद्योग पनप सकते हैं। इसलिए यदि कभी सरकार ऐसा अनुभव करे कि अमुक कच्चे माल के उत्पादन मे अथवा अमुक सेवा की पूर्ति से अन्य उद्योगो के विकास का माग खुल सकता है, तो इसे अवश्य अपने स्वामित्व एव नियत्रण म ले लेना चाहिए।

(९) स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को बढावा देना—यदि कभी सरकार को ऐसा अनुभव हो कि कुछ उद्योगो पर राजकीय स्वामित्व एव नियत्रण के द्वारा समाज मे स्वस्थ प्रतिद्वद्विता को जन्म मिलेगा, उत्पादन अधिक आर्थिक हो सकेगा, एकाधिकार की प्रवृत्ति समाप्त होगी एव निजी उपक्रम मे कार्यक्षमता की वृद्धि होगी, तो निश्चय ही सरकार को ऐसा करना चाहिए।

(१०) अकुशल प्राइवेट उपक्रमो को हटाना—कभी कभी किंचित परिस्थितियो के परिणाम-स्वरूप किसी उद्योग म अकुशल इकाइयाँ बढने लगती है। जनहित एव राष्ट्रीय प्रगति की दृष्टि स ऐसी इकाइयो की वृद्धि न्याय सगत नही कही जा सकती। अतएव यह वाछनीय ही नही वरन् अनिवाय है कि सरकार ऐसे उद्योगो को अपने स्वामित्व एव नियत्रण मे ले ले जिससे कि उसका विकास उचित प्रकार से हो सके।

(११) आर्थिक एव औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करना—अन्त म, यह लिखना अनावश्यक न होगा कि देश के आर्थिक व औद्योगिक विकास का भार मुख्यत सरकार पर ही होता है। अत इस दिशा म नेतृत्व करना उसका कर्त्तव्य है।

राजकीय उपक्रमो के विरुद्ध आरोप

(Objections against State Enterprises)

सरकारी उपक्रमो के कार्यवाहन की कुशलता के विषय मे बहुत वाद विवाद किया जाता है। कुछ लोगो का मत है कि सरकारी उपक्रम प्राइवेट उपक्रमो की भाँति कुशलतापूर्वक कार्य नही कर सकते, जबकि अन्य लोगो की सम्मति है कि सरकारी उपक्रम प्राइवेट उपक्रमो से अधिक कुशलतापूर्वक काय करने की सामर्थ्य रखते हैं। सत्यता की खोज के लिये हमे प्राइवेट एव सरकारी उपक्रमो की तुलनात्मक प्रगति

का अध्ययन करना होगा। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि प्राइवेट उपक्रमो की संख्या बहुत अधिक है, जबकि सरकारी उपक्रम इने-गिने हैं। अतः एक सबसे अच्छी प्राइवेट सस्था की तुलना एक सबसे बुरी सरकारी सस्था से करके कोई उपयोगी निष्कर्ष नही निकल सकता। कुछ प्राइवेट उपक्रमो को छोडकर शेष प्राइवेट उपक्रमो की दशा भी कुशलता की दृष्टि से आदर्श नही है। औद्योगिक वित्त निगम ने अनेक प्राइवेट उपक्रमो के अपने अनुभव के आधार पर बताया है कि उनके कार्य-वाहन मे बडी अकुशलता का प्रमाण मिलता है। अप्रेल सन् १९५६ मे एक उद्योग-पति श्री जी० डी० सोमानी के गैर सरकारी प्रस्ताव पर (जोकि सरकारी उपक्रमो के सचालन की जाँच पडताल करने के हेतु एक कमेटी की नियुक्ति के सम्बन्ध मे था) बोलते हुए तत्कालीन वित्तमन्त्री श्री देशमुख ने कहा था कि प्राइवेट उद्योगपति स्वय काच के घरो में रहते हुए पब्लिक सैक्टर के लोगो पर पत्थर न फेंकें।

प्राइवेट उपक्रम के समर्थको ने भारत मे राजकीय उपक्रमो के कार्यवाहन के विरुद्ध निम्न आरोप लगाए हैं :—

(१) राजकीय उपक्रमो को अनेक प्रकार की छूटे—यह कहा जाता है कि राजकीय उपक्रमो को अनेक प्रकार की छूटें प्रदान की गई है, जाकि प्राइवेट उपक्रम के प्रति घोर अन्याय है, क्योकि ये छूटें बहुत असाधारण हैं और उसी प्रकार के क्षेत्र मे काम करने वाले राष्ट्रजनो के हितो को हानि पहुँचाती है। उदाहरण के लिए, भारतीय कम्पनी अधिनियम सन् १९५६ की धारा ६२० ने सरकार को सरकारी उपक्रमो को अधिनियम की कुछ धाराओ से मुक्त रखने का अधिकार दिया है।

(२) सरकारी अधिकारियो मे स्वतन्त्र विचार शक्ति का अभाव—कुछ सरकारी उपक्रमो के सरकारी अधिकारियो मे, जो कि कुछ प्रशासनिक कार्यो मे बहुत कुशल हो सकते हैं, स्वतन्त्र विचारशक्ति का अभाव पाया जाता है, क्योकि उन्होने बहुत समय तक सेक्रेटेरियट द्वारा दिए गए निर्देशो के पालन कराने मात्र का ही कार्य किया है, स्वय सोचने का अधिक काम नही किया।

(३) उच्च कर्मचारियो के बार बार ट्रान्सफर—उच्च कर्मचारियो के प्रायः ट्रान्सफर होते रहते है, जिससे न केवल मौद्रिक हानि होती है और नीति के कार्यवाहन मे रुकावट पडती है वरन् राजकीय उपक्रम से सम्बन्धित व्यक्तियो मे अनिश्चितता का वातावरण छा जाता है।

(४) निहित स्वार्थो को नौकरी देने का साधन—राजकीय उपक्रम निहित स्वार्थ वालो को नौकरी देने के साधन बने हुए हैं। सत्तारूढ राजनैतिक दल के भाई भतीजो को नौकरी दे दी जाती हैं उनकी कुशलता-अकुशलता का कोई विचार नही रखा जाता। इस प्रकार राष्ट्र को बहुत हानि उठानी पड़ती है।

राजकीय उपक्रमो के विरुद्ध आठ आरोप
(१) राजकीय उपक्रमो को अनेक प्रकार की छूटें दी जाती हैं।
(२) सरकारी अधिकारियो मे स्वतन्त्र विचारशक्ति का अभाव।
(३) उच्च कर्मचारियो के बार बार ट्रान्सफर।
(४) निहित स्वार्थों को नौकरी देने का साधन।
(५) सरकारी विभाग का ही एक सुधरा हुआ रूप होना।
(६) कार्य सचालन मे अवाछनीय हस्तक्षेप।
(७) बोर्ड आफ डाइरैक्टर्स की दोषपूर्ण रचना।
(८) आडिट व्यवस्था की सीमायें।

(५) सरकारी विभाग का ही एक सुधरा हुआ रूप—अनेक राजकीय उपक्रम सेक्रेटेरियट के आधीन कार्यालय मात्र बने हुए हैं। उन्हे नाम मात्र को स्वतन्त्रता एव ढील प्राप्त है, लेकिन वास्तव मे उन्हे थोडे से भी महत्त्व के सभी मामलो मे मत्रालय की पूर्व अनुमति लेनी पडती है तथा अधिकारियो की अधिकाश नियुक्तियाँ मत्रालय की अनुग्रह नियुक्तियाँ होती हैं।

(६) कार्य-सचालन मे अवाछनीय हस्तक्षेप—सरकारी उपक्रमो के सामान्य कार्य-कलाप मे बहुत ही अवाछनीय क्षेत्रो मे प्राय हस्तक्षेप हुआ करता है। क्रय विक्रय और ठेके आदि के सम्बन्ध मे तो बहुत ही बुरी तरह से प्रभाव डाला जाता है।

(७) बोर्ड आफ डाइरैक्टर्स की त्रुटिपूर्ण रचना—सरकारी उपक्रमो के बार्ड आफ डाइरैक्टर्स मे कुछ उद्योगपतियो और व्यापारियो को भी सम्मिलित करने की प्रथा है। किन्तु इस नीति की कई सीमाये है जो कि इस प्रकार है—(i) उन्हे सस्था म कोई स्वाथ तो होना नही है, अत वे उसमे विशेष रुचि नही लेते, (ii) उन दशाओ मे वे कोई परामश देने मे सकोच करते है, जिनमे उन्ह यह डर हो कि सरकार मे उनका सम्मान कम हो जायगा, (iii) ये सरकार को प्रसन्न करके कुछ और सुविधायें प्राप्त करने की भावना रखते है और प्रयास भी करते है, (iv) जब उनके हितो की सरकारी उपक्रमो के हितो से टक्कर होती है, तो वे सरकारी उपक्रम को सही एव ईमानदारी की राय नही दे पात, (v) इनकी राय भले ही वह कितनी सही एव राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत हो, हैड क्वार्टर के निर्देशो द्वारा समर्थित सरकारी अधिकारियो की आवाज के सामने दब जाती है।

(८) आडिट सम्बन्धी दोष—आडिटर जनरल द्वारा सरकारी उपक्रमो का जो वार्षिक आडिट किया जाता है वह ऐसे अफसरो की सहायता से किया जाता है जिन्हे इन उपक्रम के व्यापार से सम्बन्धित टेक्नीकल पहलुओ का कुछ भी ज्ञान नही होता। इसके अतिरिक्त इन अफसरो द्वारा उठाई गई आपत्तियो की उपेक्षा भी कर दी जाती है।

सरकारी उपक्रमों की कठिनाइयाँ--

भारत सरकार ने सन् १९५६ मे सरकारी उपक्रमो के प्रबन्ध के सम्बन्ध मे परामर्श देने के लिये हारवार्ड यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर गैलब्रेथ की नियुक्ति की थी। उन्होंने यह बताया है कि सरकारी उपक्रमो के प्रबन्ध की उक्त आलोचनायें बहुत सीमा तक उन सीमाओं एवं कठिनाइयों के कारण हैं जो कि सरकारी उपक्रमों के स्वभाव मे ही निहित हैं। ये सीमायें एवं बाधायें निम्नलिखित हैं—

सरकारी उपक्रमो की पाँच सीमायें

(१) सरकारी उपक्रमो से ऊँची आशायें रखी जाती हैं।
(२) प्रबन्धक अफसरो मे आलोचनाओ से बचने की प्रवृत्ति होती है।
(३) एक उत्पादक सस्था का प्रबन्ध सरकार के साधारण प्रशासन से भिन्न होता है।
(४) सरकारी उपक्रम की सफलता व्यक्तियो की अपेक्षा सगठन पर अधिक निर्भर है।
(५) प्रतियोगिता का अभाव अकुशलता को बढावा देना है।

(१) सरकारी उपक्रमो से ऊँची आशाये रखी जाती है--एक प्राइवेट फर्म मे वेतन एव स्टाफ की व्यवस्था के सम्बन्ध मे अपर्याप्तता एव असमानता होना कोई असाधारण बात नही समझी जाती है। यदि उच्च कर्मचारियो की नियुक्ति मे कोई त्रुटि हो भी जाय, तो उसे सुधारने के लिये उस कर्मचारी को अधिक सम्मानपूर्ण किन्तु कम महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जा सकता है। इनमे प्रबन्ध की कठोरता न केवल एक साधारण घटना समझी जाती है वरन् उसका समर्थन भी किया जाता है। प्राइवेट सस्थाओ मे अतिम परिणामो पर अधिक ध्यान दिया जाता है और जनता की ओर से आलोचना का डर भी नही होता। लेकिन ये सब बाते एक सरकारी उपक्रम के बारे मे उचित नही समझी जाती हैं।

(२) प्रबन्धक अफसरो मे आलोचनाओ से बचने की प्रवृत्ति होती है-- चूँकि सरकारी उपक्रमो के लिए ऊँचे ऊँचे आदर्श निर्धारित होते हैं, इसलिए एक जनतन्त्री सरकार मे अधिकारियो एव मन्त्रियो की प्रवृत्ति आलोचना से बचने की होती है। विकेन्द्रीकरण एव स्वशासन के सिद्धान्त पर केवल व्याख्यानों में ही बल दिया जाता है, लेकिन व्यवहार मे इन उपक्रमो मे 'सुरक्षा प्रथम' (Safety First) के सिद्धान्त को ही प्रमुखता दी जाती है।

(३) एक उत्पादक सस्था का प्रबन्ध सरकार के साधारण प्रशासन से भिन्न होता है-- उसमे प्रायः अधिक टेक्नीकल योग्यता की आवश्यकता पडती है।

(४) सरकारी उपक्रम की सफलता व्यक्तियो की अपेक्षा सगठन पर अधिक निर्भर होती है--एक व्यक्ति जितनी सफलता प्राप्त कर सकता है उससे कही अधिक सफलता एक सगठन को प्राप्त हो जाती है। 'सगठन' (Organisation) के अन्तर्गत व्यक्तिगत कार्यवाहन की अनिश्चितताओ एव कमियो की पूर्ति हो जाती है। प्रा० गैलब्रेथ ने इस बात को जनरल मोटर्स और टी० वी० ए० का उदाहरण देकर स्पष्ट

किया है। ये दोनो संस्थायें मिलकर किसी भी उत्पादन कार्य को भली प्रकार कर सकती हैं। लेकिन, यदि इन दोनों मे कोई एक व्यक्ति नियत कर दिया जाय, तो वह एक ऑटोमोबाइल या डीजल लोकोमोटिव उद्योग का उचित विकास करने मे कदापि सफल नही हो सकता।

(५) प्रतियोगिता का अभाव अकुशलता को बढावा देता है—चूंकि एक सरकारी उपक्रम की निर्मित वस्तुओ को स्वतन्त्र बाजार मे प्रायः प्रतियोगिता का सामना नही करना पडता, इसलिए उनमे निर्णय की शीघ्रता व कार्य करने की तत्परता उतनी मात्रा मे नही होती है जितनी वे एक प्राइवेट उपक्रम मे होती है। इसके अतिरिक्त एक सरकारी उपक्रम मे न केवल उपभोक्ता की वरन् राष्ट्रीय सम्पत्ति होने के नाते एक कर-दाता, नागरिक, सरकार, संसद सभी की रुचि होती है। वे उसके कार्यवाहन के सम्बन्ध मे ज्ञान प्राप्त करने के लिये उत्सुक रहते हैं। चूंकि सरकारी उपक्रम का उद्देश्य एक उचित मूल्य पर जनता की आवश्यकता को पूरा करना होता है, इसलिए वह प्राइवेट उपक्रम की भांति ऊँचे लाभ नही कमा सकता और न केवल लाभ कमाने से जनता सन्तुष्ट हो सकती है। इस प्रकार एक सरकारी उपक्रम के मार्ग मे अनेक कठिनाइयां स्वभाव से ही मौजूद होती है, जो कि प्राइवेट संस्था की दशा मे नहीं पाई जाती हैं।

राजकीय उपक्रमों के विभिन्न रूप*

(Forms of Public Enterprises)

जैसा कि हम राजकीय उपक्रम की परिभाषा देते समय संकेत कर चुके हैं, राजकीय उपक्रम के विभिन्न रूप हो सकते हैं, जिनमे से कुछ प्रमुख रूपो का विस्तृत विवेचन नीचे प्रस्तुत किया गया है :—

(1) संस्थाये जिन पर स्वामित्व राज्य का हो एवं प्रबन्ध प्राइवेट एजेन्सियों द्वारा किया जाता है (Enterprises Owned by the State but Managed by Private Agencies)—

इस प्रकार के राजकीय उपक्रमो का सबसे ज्वलन्त उदाहरण रूरकेला की हिन्दुस्तान स्टील कम्पनी है, जिस पर यद्यपि स्वामित्व भारत सरकार का है तथापि प्रबन्ध एक जर्मन फर्म क्रप-डेमग के हाथ मे है। प्रारम्भिक स्थापना के उद्देश्य से सिन्दरी खाद व रसायन कारखाने का प्रबन्ध भी अमेरिका के कैमीकल कन्स्ट्रक्शन कॉरपोरेशन के हाथ मे दे दिया गया था। इस प्रकार का राजकीय उपक्रम उन दशाओ के लिये उपयुक्त होता है जिनमे संस्थाओ का सरकारी स्वामित्व जन-हितो की रक्षा

---

* Vide "A Study of Public Enterprise in the State of Madhya Bharat during the last fifty years.' —Approved Thesis of S. C. Saxena for the Ph. D. degree of Agra University, pp. 42-61.

के लिये आवश्यक हो, किन्तु पूँजी, व्यापारिक योग्यता एवं टेक्नीकल ज्ञान के अभाव के कारण सरकार उस संस्था का प्रबन्ध करने में असमर्थ हो।

(II) संस्थायें जिनका स्वामित्व एवं प्रबन्ध एक सरकारी विभाग के पास हो (Enterprises Owned and Managed by a Government Department)--

इस प्रकार के उपक्रमों के निम्न उदाहरण है--रेलवे, डाक व तार, सुरक्षा उद्योग, राजकीय व्यापार, हीराकुण्ड और भाखरा नागल परियोजनायें आदि। चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स, डी० डी० टी० फैक्टरी, पैनिसिलिन फैक्टरी, नेशनल इन्स्ट्रूमेन्ट्स फैक्टरी एवं सरकारी नमक कारखाना अन्य उदाहरण है। यद्यपि भारत मे पृथक एवं स्वशासित एजेन्सियो की स्थापना की प्रवृत्ति बढ रही है तथापि विभागीय प्रबन्ध अब भी व्यापक रूप से प्रचलित है। इस प्रकार के सगठन की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित है :--

राजकीय उपक्रम के रूप हैं सात

(I) संस्थायें जिन पर स्वामित्व राज्य का हो एवं प्रबन्ध प्राइवेट एजेन्सियो द्वारा किया जाता है।

(II) संस्थायें जिनका स्वामित्व एवं प्रबन्ध एक सरकारी विभाग के पास हो।

(III) कमेटी अथवा बोर्ड के अन्तर्गत विभागीय प्रबन्ध वाली राजकीय संस्थाये।

(IV) पब्लिक कम्पनियो के रूप मे राजकीय संस्थायें।

(V) वैधानिक अथवा लोक-निगम।

(VI) मिश्रित स्वामित्व वाले निगम।

(VII) पब्लिक ट्रस्ट।

विशेषतायें--

(१) उपक्रम के अर्थ-प्रबन्धन के लिये वार्षिक रकम ट्रेजरी से प्राप्त होती है और उसकी समस्त आय ट्रेजरी मे जमा होती रहती है।

(२) अन्य सरकारी क्रियाओ के समान इस उपक्रम पर भी बजट व आडिट सम्बन्धी नियम लागू होते हैं।

(३) उपक्रम का स्थाई स्टाफ सिविल सर्विस से लिया जाता है। उनकी भरती का ढग एवं सेवा सम्बन्धी शर्तें अन्य सरकारी नौकरो के समान होती है।

(४) उपक्रम का सगठन केन्द्रीय सरकार के एक विभाग के ब्यूरो के रूप मे किया जाता है और विभागीय प्रमुख के प्रत्यक्ष नियन्त्रण मे होता है।

(५) उपक्रम पर सरकार की अनुमति के बिना मुकद्दमा नही चलाया जा सकता है।

गुण-दोष--

इस प्रकार की सगठन प्रणाली का उपयोग तब किया जाता है जबकि उपक्रम का मुख्य उद्देश्य आय प्राप्त करना या उपभोग पर नियन्त्रण करना हो।

विभागीय प्रबन्ध की मुख्य दुर्बलता इस बात मे है कि यह पहल करने की भावना और लचकता के विरुद्ध है। इस संगठन-प्रणाली के अन्तर्गत, राजकीय उपक्रम मे लाल फीता, विलम्ब, अपर्याप्त सेवा, उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के प्रति उपेक्षा आदि दोष पाये जाते हैं। किसी कार्य को करने के सम्बन्ध मे बहुत से अधिकारियों से परामर्श लेना पड़ता है। अधिकार क्षेत्रो के स्पष्ट रूप मे परिभाषित न होने के कारण विभिन्न स्तरों पर अधिकारी गण निर्णय करने मे हिचकते है, जिसके परिणाम-स्वरूप कार्य विधि बहुत देर से पूर्ण होती है। विभागीय प्रबन्ध मे शीघ्र कार्यवाही करने की क्षमता का अभाव होता है। एक साधारण व्यापारिक संस्था मे वार्तालाप या तो टेलीफ़ोन पर अथवा इन्टरव्यू द्वारा किया जाता है। तत्पश्चात् एक संक्षिप्त पत्र पुष्टि के लिए इस्यू होता है। लेकिन विभागीय प्रबन्ध के अन्तर्गत यह कार्यवाही बहुत विलम्बपूर्ण होती है। किसी खाली समय मे काफी लम्बा पत्र उस अधिकारी को लिखा जाता है जिससे परामर्श लेना है। पत्र प्राप्त होने पर वह अधिकारी उस पर विचार करता है तथा सूचित करता है। इसमे यदि महीनो की नहीं तो कम से कम कई सप्ताह की देर तो लग ही जाती है।

विभागीय प्रबन्ध वाले राजकीय उपक्रम मन्त्री एव संसद के नियन्त्रण मे होते है और उनके प्रशासन की छोटी से छोटी बात पर भी संसद मे वाद-विवाद किया जाता है। इससे इस प्रकार के संगठन मे बहुत दुर्बलता आ गई है। व्यवहार मे इसका आशय यह होता है कि सम्बन्धित मन्त्रि महोदय एवं उनके तात्कालिक परामर्श-दाताओं पर छोटी छोटी बातो का कार्य ही इतना अधिक हो जाता है कि वे नीति एव योजना सम्बन्धी बड़ी बड़ी बातो पर ध्यान नहीं दे सकते।* नीति एव वित्त सम्बन्धी प्रश्नो पर विधान सभा की स्वीकृति की आवश्यकता होती है। राष्ट्रीय विधान सभा द्वारा आलाचना एव अनुचित हस्तक्षेप का भय कार्य करने की स्वतन्त्रता को कुंठित कर देता है। इन सब दोषो के कारण यह संगठन प्रणाली उन व्यापारिक उपक्रमो के लिये उपयुक्त नहीं है जिनमे शीघ्र विकास की आवश्यकता है।

(III) कमेटी अथवा बोर्ड के अन्तर्गत विभागीय प्रबंध वाली राजकीय संस्थायें (Departmental Management under Committee or Boards)—

लचक लाने एव निर्णय का अवसर देने की दृष्टि से कुछ विभागीय प्रबन्ध वाले उपक्रमो के लिये विभिन्न मन्त्रालयो के प्रतिनिधियो की कमेटी या बोर्ड की स्थापना का गई है। उदाहरण के लिए, सिंदरी खाद कारखाने की स्थापना एव निर्माण के लिए तथा सरकारी हाउसिंग फैक्टरी के लिए अन्तर मन्त्रालय कमेटी (Inter-ministerial Committee) की रचना हुई थी। ऐसी कमेटी बनाने का कारण यह था कि योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करने के विभिन्न स्तरो पर प्रायः कई मन्त्रालयो की सहमति एव स्वीकृति की आवश्यकता पड़ा करती थी। भूमि

---

* "The Government department is a strictly hierarchical institution at whose head is a Minister answerable to cabinet and to Parliament for its activities. The administration of the department naturally is largely in the hands of its senior civil servants and financial control rests with the treasury."

(Hugh Clogg : Industrial Democracy and Nationalism, p 38)

जुटानी पड़ती है, जल-पूर्ति और बिजली की व्यवस्था करनी पडनी है, रेलवे अथवा अन्य यातायात सुविधाओं का प्रबन्ध करना पडता है, स्टाक खरीदने होते हैं तथा बिल्डिंग इत्यादि की आवश्यकता पडती है, अतः कमेटियो और बोर्डो मे फाइनेन्स मिनिस्ट्री के प्रतिनिधियो की उपस्थिति के कारण व्यय के बारे मे तुरन्त निर्णय करना सुविधाजनक हो जाता है।

(IV) पब्लिक कम्पनियों के रूप में राजकीय संस्थायें (State Enterprises Managed like a Company)—

राजकीय उपक्रम जो चौथा रूप ग्रहण कर सकते हैं वह है एक स्वशासित संस्था का। ऐसी स्वशासित सस्था (autonomous authority) के दो प्रकार हो सकते है—(i) एक सयुक्त स्कन्ध कम्पनी, जिसकी रजिस्ट्री कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत कराई जाय और (ii) एक सार्वजनिक निगम, जिसका जन्म एक विशेष विधान के निर्माण द्वारा होता है।

सयुक्त स्कन्ध कम्पनी और कम्पनी प्रबन्ध के अन्य प्रकारो के सम्बन्ध मे सनियम के विकास के साथ साथ सरकारो ने राज्य स्वामित्व वाले उपक्रमो का प्रबन्ध करने के हेतु स्वशासित कम्पनियो के सगठन पर अधिकाधिक ध्यान देना आरम्भ कर दिया है। इस प्रकार सरकार उपक्रम मे एक शेयर होल्डर बन जाती है और सम्बन्धित मन्त्रालय अथवा केबिनेट या राज्य के प्रमुख द्वारा शेयर होल्डर के अधिकारो का प्रयोग करती है।

राज्य उपक्रमो के प्रबन्ध का कम्पनी-प्ररूप व्यापारिक प्रकृति वाले उपक्रमों के लिए, अपने लोचपूर्ण स्वभाव के कारण, विशेष रूप से उपयुक्त होता है। गत कुछ वर्षो मे इस सिद्धान्त ने भारत सरकार की नीति पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। इस प्रकार की प्रबन्ध-व्यवस्था के अन्तर्गत कार्यपालिका अधिकारियो को अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती है और उन्हे केवल कम्पनी अधिनियम के प्रतिबन्धों का ही ध्यान रखना पडता है। वस्तुओ के निर्माण एव विक्रय से सम्बन्ध रखने वाली अनेक राजकीय सस्थाओ ने इस प्रबन्ध व्यवस्था को अपनाया है, जैसे—सिंदरी खाद व रसायन कारखाना, चितरञ्जन लोकोमोटिव, हिन्दुस्तान एयर क्राफ्ट फैक्ट्री, हिन्दुस्तान शिपयार्ड आदि।

यद्यपि इस प्रकार की प्रबन्ध-व्यवस्था के अन्तर्गत स्वशासन के विकसित होने की आशा थी तथापि व्यवहार मे ऐसा नही हो पाया है। बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स मे विभागीय प्रतिनिधियो को सम्मिलित किया जाता है और ये अपनी व्यक्तिगत स्थिति मे कुछ कार्य करने के लिये प्रायः अनिच्छुक अथवा असमर्थ होते हैं। अतः उन्हे प्रश्नों पर अपने विभागो से विचार-विमर्श करना पडता है। अतः भारत मे बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स की सदस्यता न केवल ससद-सदस्यो अथवा मन्त्रियो के लिये खुली रखी गई है वरन् व्यापक अनुभव वाले गैर-सरकारी व्यक्तियो को भी सम्मिलित किया जाता है।

(v) वैधानिक अथवा लोक निगम द्वारा प्रबन्धित राजकीय संस्थायें (State Enterprises Managed by a Statutory or Public Corporation)–

साधारणत वैधानिक अथवा लोक निगम (Public Company) को सार्वजनिक कम्पनी (Public Corporation) का पर्यायवाची समझते हैं। पब्लिक कम्पनी वास्तव मे संयुक्त पूंजी वाली एक ऐसी संस्था होती है, जिसका प्रबन्ध पूर्ण रूप से व्यक्तिगत उपक्रमियों द्वारा होता है तथा सरकार का उसकी क्रियाओं पर विशेष नियन्त्रण रहता है। यह नियन्त्रण कम्पनी अधिनियम द्वारा किया जाता है। इसके विपरीत लोकनिगम या पब्लिक कॉरपोरेशन से आशय एक ऐसी संस्था से है, जिसका हेतु व्यक्तिगत उपक्रमियों की भांति लोच अथवा औद्योगिक कुशलता प्राप्त करना होता है और जिसकी सामान्य नीति पर सरकार का नियन्त्रण होता है तथा जिसके संचालक की नियुक्ति सरकार करती है जो सरकार के प्रति उत्तरदायी होते हुये भी स्वतन्त्र रूप से कार्य करते हैं अर्थात् संचालकों की दैनिक क्रियाओं मे सरकार हस्तक्षेप नहीं करती है। इस प्रकार पब्लिक कारपोरेशन एक स्वतन्त्र अस्तित्व रखने वाली संस्था है, जिस पर वाद प्रस्तुत किया जा सकता है एवं जो स्वयं भी वाद प्रस्तुत कर सकती है तथा जो अपने अर्थ प्रबंध के लिये उत्तरदायी होती है।[1]

जो संस्थायें व्यापारिक प्रकृति की नहीं हैं उनके प्रबन्ध एवं नियन्त्रण के लिये *यह स्वरूप अत्यन्त श्रेष्ठ है क्योंकि, जैसा कि स्वर्गीय प्रसीडेन्ट रूजवेल्ट ने कहा है कि,* "पब्लिक कारपोरेशन को वे समस्त लाभ एवं अधिकार प्राप्त होते हैं जो कि राजकीय संस्था को होने चाहिए और इसके अतिरिक्त इनमे वह लोच और स्वतन्त्रता भी होती है जो कि व्यक्तिगत उपक्रम की विशेषता है। हर्बट मौरिसन ने भी कहा है पब्लिक कारपोरेशन की श्रेष्ठता का कारण यह है कि इसमे सार्वजनिक हित की दृष्टि से राजकीय स्वामित्व, राजकीय उत्तरदायित्व एवं व्यापारिक प्रबन्ध तीनों का मिश्रण होता है।'[2]

स्वामित्व तथा पूंजी के आधार पर पब्लिक कारपोरेशनों को दो वर्गों मे बांटा जा सकता है —

---

1. 'The Public Corporation is a body with a separate existence which can sue and be sued and is responsible for its own finances

(Earanest Davies M P The Future of Public Corporations)"

2 Public Corporations are though to be the ideal form of business because in the words of the Late President Roosevelt they are Clothed with the power of Government but Possessed of the flexibility and initiative enterprise Or again in the words of Herbert Morrison because in them is to be found a combination of public ownership public accountablity and business management for public ends'

(१) ऐसा पब्लिक कारपोरेशन जिसकी कुल पूंजी, केन्द्रीय अथवा राजकीय या केन्द्रीय एव राज्यीय सरकार द्वारा खरीद ली जाती है। ऐसे लोक निगमो का उदाहरण है दामोदर घाटी निगम (Damodar Valley Corporation)।

(२) मिश्रित निगम—मिश्रित निगम (Mixed Corporations) वे निगम है, जिनकी पूंजी का अधिकाश भाग केन्द्रीय एव राज्यीय सरकारो द्वारा तथा कुछ भाग, जो कुल पूंजी के साधारणतः २०% से अधिक नही होता, व्यक्तिगत उपक्रमी द्वारा खरीदा जाता है। ऐसे निगम के उदाहरण है—औद्योगिक अर्थ निगम (Industrial Finance Corporation), राज्य वित्त निगम (State Finance Corporation) इत्यादि।

पब्लिक कारपोरेशन की विशेषतायें

पब्लिक कारपोरेशन की कुछ प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं :—

(१) राज्य का पूर्ण स्वामित्व—पब्लिक कारपोरेशन पर पूर्णतः राज्य का ही स्वामित्त्व होता है।

(२) विशेष अधिनियम द्वारा निर्माण—पब्लिक कारपोरेशन का उद्गम पार्लियामेंट के विशेष अधिनियम (Special Statute of the Parliament) द्वारा होता है, जिसमे उसकी शक्तियो, कर्तव्यो एव छूटो का उल्लेख किया जाता है। उसके प्रबन्ध की क्या व्यवस्था होगी तथा सरकारी विभागो एव मन्त्रालय से उसका क्या सम्बन्ध हो, इस पर भी उसमे प्रकाश डाला गया होता है। इस प्रकार एक पब्लिक कारपोरेशन की एक विशेष स्थिति होती है, क्योकि उसकी शक्तियो एव कर्तव्यो की स्पष्ट व निश्चित परिभाषा कर दी जाती है। इससे निगम उस स्वशासन का उपभोग कर सकता है जो कि सस्था की कुशलता के लिये बहुत आवश्यक होता है। लेकिन स्वशासन का यह अर्थ नही लगाना चाहिये कि वह साधारण सिविल व क्रिमिनल कानूनो के प्रभाव से मुक्त है। उसे भी देश के कानूनो का उसी तरह पालन करना पडता है जिस तरह अन्य सस्थायें करती हैं।

(३) स्वतन्त्र वैधानिक अस्तित्त्व—पब्लिक कारपोरेशन एक स्वतन्त्र वैधानिक अस्तित्व वाली सस्था होती है, जिस पर दावा हो सकता है और जो स्वय भी दावा कर सकती है। यह अनुबन्ध करने की क्षमता रखती है और अपने नाम मे सम्पत्ति भी प्राप्त कर सकती है। टामलिन बनाम हन्ताफोर्ड के मामले मे लार्ड जस्टिस डैनिंग द्वारा दिये गये निम्न निर्णय से एक पब्लिक कारपोरेशन की वैधानिक स्थिति भली प्रकार स्पष्ट हो जाती है—"सनियम की दृष्टि मे, कारपोरेशन स्वय अपना स्वामी होता है और अन्य व्यक्तियों व निगमो की भाँति ही पूर्णतः जबावदेह होता है। किन्तु वह राजा नही है और उसे राजा के समान विशेष छूटें भी प्राप्त नहीं होती हैं।

इसके कर्मचारी सरकारी कर्मचारी नही कहलाते। वह राजा के किसी अन्य प्रजा-जन की भाँति पालियामेंट के अधिनियमो से बाधित होता है। निस्सदेह वह एक सार्वजनिक सत्ता है और उसके उद्देश्य भी सार्वजनिक होते है, लेकिन वह एक सरकारी विभाग नही है और न इसकी शक्तियाँ सरकार के क्षेत्र मे आती हैं।"*

(४) निजी स्वार्थ का अभाव—एक पब्लिक कॉरपोरेशन की चौथी महत्त्वपूर्ण विशेषता उसमे 'निजी स्वार्थ का अभाव' होना है। रोबसन (Robson) ने इसे 'उदासीनता' (Disinterestedness) की सज्ञा दी है। इसका यह अर्थ है कि पालियामेंट के अधिनियम द्वारा उसके लिये जो उद्देश्य या स्वार्थ निश्चित कर दिया गया होता है उसके अतिरिक्त कोई अन्य स्वार्थ कारपोरेशन को नही होता। दूसरे शब्दो मे, वह अपने वैधानिक उद्देश्य के अतिरिक्त अन्य उद्देश्यो की पूर्ति करने मे रुचि नही लेता अथवा उदासीन रहता है। किन्तु अपने वैधानिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह बहुत सचेत रहता है, क्योकि उसका जन्म ही इस हेतु हुआ था। उसमे लाभ कमाने का उद्देश्य नही होता है। किन्तु इसका यह आशय नही है कि उसे लाभ पर नही चलाया जा सकता। वास्तव मे 'लाभ" शब्द का प्रयोग इसके लिये कुछ अनुपयुक्त है। इससे अधिक श्रेष्ठ शब्द 'आधिक्य' (Surplus) है, जिसका हमे प्रयोग करना चाहिए।

(५) स्वतन्त्र वित्त-व्यवस्था—पब्लिक कारपोरेशन का अर्थ प्रबन्ध स्वतन्त्र रूप से होता है। उसे अपनी पूँजी ट्रेजरी अथवा पब्लिक से ऋण लेकर या वस्तुओ और सेवाओ के विक्रय की आय से प्राप्त होती है और वह आय का पुन विनियोग भी कर सकता है।

(६) सार्वजनिक कोषो के व्यय सम्बन्धी नियमो से मुक्ति—साधारणतः एक पब्लिक कारपोरेशन सार्वजनिक कोषो के व्यय सम्बन्धी अनेक नियमो एव प्रतिबन्धो से मुक्त होता है।

---

* In the eye of the law the corporation is its own master and is *answerable as fully as any other person or corporation*. It is not the Crown and has none of the immunities or privileges of the Crown Its servants are not civil servants and its property is not Crown property. It is as much bound by Acts of Parliaments as *any other subject of king* It is, as much bound by Acts of Parliaments as any other subject of king It is, of course, a public authority, and its purposes, no doubt, are public purposes. But it is not a Government Department, not do its powers fall within the *province of Government*"

(Judgement of Lord Justice Benning given in the Tamlin Vs Harnaford cases. Quoted by W A. Robson in his book "Problems of Nationalised Industry" 1952, pp. 40-41)

(७) बजट सम्बन्धी नियमों से मुक्ति—बजट, लेखा कर्म एवं आडिट सम्बन्धी नियमों तथा कार्य-विधियों से भी जो कि एक असमामेलित (non-corporate) संस्थाओं को लागू होते है, पब्लिक कारपोरेशन मुक्त होता है।

(८) कर्मचारियों की नियुक्ति आदि—अधिकांश दशाओं मे पब्लिक कॉरपोरेशनो के कर्मचारी सरकारी नौकर नही माने जाते और कॉरपोरेशन द्वारा निर्धारित शर्तों के अन्तर्गत ही उनकी भरती की जाती है व पुरस्कार दिया जाता है।

पब्लिक कॉरपोरेशन के लाभ—

पब्लिक कॉरपोरेशन के आधीन सरकारी उपक्रमो के प्रबन्ध से निम्नलिखित लाभ होते हैं :

(अ) सरकार का उद्योग की दैनिक प्रबन्ध सम्बन्धी क्रियाओं मे हस्तक्षेप नहीं होता, जिससे उसकी कार्यक्षमता मे बाधा नही पडती।

(आ) पब्लिक कारपोरेशन की क्रियाओं मे अधिकतम लोच तथा औद्योगिक निर्णय की स्वतन्त्रता होती है।

(इ) पब्लिक कॉरपोरेशन सरकार के वैधानिक नियन्त्रण मे होने के कारण उसकी सामान्य नीति राष्ट्रीय सरकार की नीति के अनुकूल होती है।

(ई) पब्लिक कॉरपोरेशन उद्योग के प्रबन्ध सम्बन्धी आन्तरिक मामलो मे पूर्ण स्वतन्त्र होता है, फलतः उद्योग का विकास अच्छी तरह होता है।

(उ) पब्लिक कॉरपोरेशन में राष्ट्रीयकृत उद्योग की क्रियाओं का दायित्व सरकार द्वारा नियुक्त विशेषज्ञो पर होता है, जिनकी नियुक्ति योग्यता एव निपुणता के आधार पर होती है।

(ऊ) पब्लिक कॉरपोरेशन अपने प्रबन्ध मे जन-सेवा का परिचय देते हैं एवं नौकरशाही का अन्त करने के लिए तत्पर रहते हैं तथा अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के हेतु आर्थिक स्वावलम्बता की ओर प्रयत्न करते हैं। इन्ही लाभो के कारण किसी ने ठीक ही लिखा है कि पब्लिक कॉरपोरेशन का भविष्य अत्यन्त ही उज्जवल है और प्रायः सभी प्रगतिशील देशो के निर्माण मे इनका अद्वितीय भाग रहेगा।

पब्लिक कॉरपोरेशन के दोष —

(१) इतने लाभ होते हुए भी पब्लिक कॉरपोरेशन का सबसे बडा दोष यह है कि परिस्थितियो मे परिवर्तन होने के साथ-साथ इसके सविधान मे परिवर्तन करना कठिन हो जाता है। जब तक कि उस अधिनियम मे, जिसके द्वारा कि इसका जन्म हुआ है, संशोधन न कर दिया जाय, तब तक इसके सविधान मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही हो सकता है।*

---

* The advantage of the Corporation is that it has a special legislation made for peculiar needs; its disadvantage is that when conditions alter substantially, no change can be made without amending the Legislation."

(A. D. Gorwala Report on Efficient Conduct of State Enterprises, pp. 18-19).

(२) कॉरपोरेशन प्रणाली की प्रबन्ध व्यवस्था के अन्तर्गत बिल्कुल नया स्टाफ भरती करना पड़ता है। अतः यह सम्भव है कि पर्याप्त एवं उपयुक्त स्टाफ न मिल सके। दामोदर घाटी निगम को भी इसी कठिनाई का सामना करना पड़ा था। उसे अपना कार्य आरम्भ करने से ३० माह तक बिना मुख्य इञ्जीनियर के काम चलाना पड़ा था।

(३) इसके अतिरिक्त, कॉरपोरेशन की स्थापना करने से सरकारी अधिकारों एवं संसदीय नियंत्रण में कमी हो जाती है। इससे सरकारी क्षेत्रों में द्वेष भावना विकसित होने का भय है। वास्तव में इसी प्रकार की कठिनाई का सामना भी दामोदर घाटी निगम को करना पड़ा था। निगम के इतिहास का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसे अपनी स्वशासनता कायम रखने के लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ा।[1]

(४) आजकल इन कॉरपोरेशनों के विरुद्ध यह आरोप भी लगाया जाता है कि वे जाँच-पड़ताल और आडिट सम्बन्धी सरकारी अधिकारों का उल्लंघन करने का यत्न करते हैं। पब्लिक अकाउन्ट्स कमेटी और एस्टीमेट्स कमेटी भी इस सम्बन्ध में अपने को असमर्थ पाती है। यह सुझाव दिया जाता है कि पब्लिक कारपोरेशनों के निरीक्षण के लिये एक पृथक संसदीय कमेटी नियुक्त की जानी चाहिये।

इन दोषों के होते हुये भी, दामोदर घाटी निगम के सम्बन्ध में नियुक्त की गई राव कमेटी इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि बहुमुखी योजनाओं के कुशल एवं मितव्ययितापूर्ण संचालन के लिये सर्वोत्तम प्रबन्ध व्यवस्था कारपोरेशन प्रणाली ही है। यह इसलिये ऐसा है कि कॉरपोरेशन प्रणाली के अन्तर्गत विभागीय हस्तक्षेप, वित्त नियन्त्रण और लाल फीताशाही के दोष, जो कि सरकारी प्रशासन की विशेषतायें हैं और जो कार्य-संचालन की गति एवं कुशलता में बाधक होते हैं, नहीं पाये जाते हैं। वस्तुतः यदि कहीं कारपोरेशन असफल हुये हैं तो कारपोरेशन-प्रणाली के किसी स्वाभाविक दोष के कारण नहीं वरन् कारपोरेशन के कर्मचारी वर्ग या सरकारी विभागों की त्रुटि से हुये हैं।[2] अतः यह निश्चित है कि २०वीं शताब्दी में पब्लिक कारपोरेशन वही भूमिका अदा करेंगे जो कि गत १०० वर्षों में पब्लिक कम्पनियों ने की है।[3]

---

1. "The history of D. V C. appears to have been a series of unedifying episodes in which, so far as one can make out, the corporation has had to use a great deal of its energies in attempting to maintain its autonomy .. . . "

(Gorwala A D. : Report, cited above, p 33)

2. "Where is has failed, the fault lies with the personnel of the corporation or of Government departments or of both, rather than with anything inherent in the corporation concept itself."

(The Statesman, Calcutta, Dated 4-11-1953)

3. There is little doubt, therefore, that the public corporation is destined to play as important a role in the latter part of the 20th Century as the joint stock company has played during the first 100 years."

(Robson : Problems of Nationalised Industry.)

पब्लिक कारपोरेशन क्यों कर सफल हो ?

पब्लिक कॉर्पोरेशन की सफलता के लिये अरनेस्ट डेविस ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं :—

(१) सरकारी उपक्रम पर उत्तरदायी मन्त्री के माध्यम से सरकार का अधिकतम नियन्त्रण हो, जिससे कि उद्योग का सचालन राज्य की सामान्य नीति के अनुसार हो सके, परन्तु यह आवश्यक है कि जो भी नियन्त्रण हो वह राष्ट्रीय हित की दृष्टि से होना चाहिये। प्रतिदिन की क्रियाओ मे किसी प्रकार का सरकारी हस्तक्षेप नही होना चाहिए।

(२) मन्त्री के अधिकारो को इस प्रकार सीमाबद्ध किया जाय कि जिससे इनका उपयोग स्वच्छन्दता से न होते हुए सद्भावना और सहयोग के साथ हो, इसलिये ऐसा उपयोग करने के पूर्व मन्त्री को नीति सभा (Policy Board) की सलाह लेना अनिवार्य है। यह सभा उद्योग के तान्त्रिक सचालन के लिये विशेषज्ञ सभा होती है और उद्योग सम्बन्धी मामलो मे मन्त्री की अपेक्षा अधिक जानकार होगी।

(३) मन्त्री नीति सभा की सफलता के लिए सम्पूर्ण समाज के प्रति उत्तरदायी होगा, इसलिए उसको समाज का हित भी देखना चाहिये। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक त्रिपक्षीय सलाहकार समिति होनी चाहिये, जो उद्योग की जाँच कर सके तथा स्वय अपनी इच्छा से समाज का प्रतिनिधित्व करे। ऐसी समिति मे समाज के सभी वर्गों—श्रम, पूँजी, उपभोक्ता, व्यापार परिषद् आदि के प्रतिनिधि होगे।

(४) सरकारी उद्योगो के प्रबन्ध मे जन साधारण की रुचि और उसका विश्वास पैदा करने के लिये आवश्यक है कि उसमे स्थानीय निपुणता को स्थान मिले, तथा स्थानीय समस्याओ की दृष्टि से सम्बन्धित उद्योग की स्थानीय नीति अपनाई जाय। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक उद्योग के विभिन्न स्थानीय उपक्रमो के प्रबन्ध की नीति देश-हित मे रखी जाय, किन्तु स्थानीय नीति एव उत्तरदायित्व का विकेन्द्रीयकरण हो।

(५) सरकारी उपक्रम के कर्मचारियो मे उत्तरदायित्व की भावना जागृत करने के लिये प्रत्येक स्तर पर श्रमिको एव कर्मचारियो के प्रतिनिधित्व का आयोजन होना चाहिये।

(६) पब्लिक कारपोरेशन के सम्बन्ध मे पार्लियामेंट ही अन्तिम मध्यस्थ रहेगी। सरकारी स्वामित्व के लिये सरकारी उत्तरदायित्व भी आवश्यक है, इसलिये किसी मन्त्री को अपना दायित्व टालना नही चाहिए, वरन् ससद मे पूछे गये सम्बन्धित सभी प्रश्नो का उत्तर देने की तत्परता होनी चाहिए तथा ऐसी सामयिक चर्चाओ को प्रोत्साहन देना चाहिए, क्योंकि कारपोरेशन की क्रियाओ का प्रकाशन ही कुशलता के विरुद्ध सुरक्षा का सबसे सुन्दर साधन है।

इस सम्बन्ध मे यह कहना अनावश्यक न होगा कि भारतीय ससद मे ऐसी चर्चायें नाम मात्र को ही होती है। सच बात तो यह है कि विभिन्न सरकारी उपक्रमों

के सम्बन्ध में जनता को विशेष ज्ञान नही है, इसलिये भारत सरकार को• समय-समय पर विभिन्न सरकारी उपक्रमो की पूर्ण जानकारी देने वाला साहित्य प्रकाशित करना चाहिए।

(७) नीची समिति के सदस्यो की नियुक्ति करते समय उपलब्ध व्यक्तियो मे से अधिकतम् निपुण एव अनुभवी व्यक्तियो की नियुक्ति करनी चाहिए, जो सस्था की बागडोर भली प्रकार सभाल सकें एव सुचारु प्रबन्ध के हेतु उचित सलाह दे सकें।

इस दिशा मे भारत सरकार को चाहिए कि केन्द्रीय औद्योगिक सेवा आयोग (Central Industrial Service Commission) का निर्माण करे और उसे विशेषज्ञो की नियुक्ति करने का भार सौप दे। केवल इसी मार्ग द्वारा देश की उपलब्ध औद्योगिक एव तान्त्रिक कुशलता का लाभ सरकारी उपक्रमो को मिल सकेगा।

(VI) मिश्रित स्वामित्व वाले निगम (Mixed Ownership Corporations)—

कम्पनी नमूने के उपक्रम मे अनेक रूपान्तर हो गये हैं, क्योकि सरकार विनियोग मे केवल आंशिक भाग लेना चाहती थी अथवा प्रबन्ध कार्य पूर्णत आशिक रूप से प्राइवेट उपक्रम पर ही छोड देना चाहती थी। इस प्रकार की मिश्रित कम्पनियो अथवा निगमो को प्राइवेट उपक्रम द्वारा आरम्भ किये गये उद्योगो मे सार्वजनिक हितो को अथवा सरकार द्वारा स्थापित उद्योगो मे प्राइवेट उपक्रम को प्रतिनिधित्व प्रदान करने का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। उदाहरण के लिये, भारत सरकार ने कुछ सरकारी औद्योगिक सस्थाओ का प्रबन्ध भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत प्रवर्तित की गई प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियों को सौंपने का निश्चय किया था। अब तक सिंदरी फर्टिलाइजर एण्ड कैमीकल्स लिमिटेड, हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लिमिटेड, हिन्दुस्तान केबिल्स लिमिटेड, हिन्दुस्तान हाउसिंग फैक्टरी लिमिटेड, महान फाउन्ड्री लिमिटेड आदि की इस प्रकार स्थापना की गई है। इन कम्पनियो मे, सम्पूर्ण अश पूंजी सरकार द्वारा नही ली जाती है। बोर्ड आफ डाइरैक्टर्स मे अन्य पार्टियो के भी कुछ प्रतिनिधि लिये जाते है। यहाँ तक कि पूर्ण सरकारी *स्वामित्व वाली सस्थाओ के बोर्ड मे भी गैर सरकारी डाइरैक्टर रखना अच्छा समझा* जाता है। सरकार ब ड को अधिक से अधिक स्वशासन देने का प्रयास करती है। केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त राज्य सरकारें भी कम्पनी नमूने की प्रबन्ध प्रणाली अपनाकर राजकीय उपक्रमो को अधिक स्वशासन देने का प्रयास कर रही हैं। ये

प्रयास प्रयोग के रूप मे है। यदि यह प्रणाली ठीक तरह से कार्य नही करती है तो अन्य प्रणालियों को अजमाया जायगा।*

प्रमुख विशेषतायें—

मिश्रित स्वामित्व वाले निगमो की निम्न प्रमुख विशेषायें है—

(१) कारपोरेशन की पूँजी मे सरकार और प्राइवेट व्यक्ति दोनो ही भागी होते है।

(२) सरकार व प्राइवेट शेयर होल्डर दोनो को ही डाइरैक्टर चुनने का अधिकार होता है।

(३) मिश्रित स्वामित्व वाले निगमो की स्थापना एक विशेष विधान बनाकर अथवा सामान्य सनियमो के आदेशानुसार भी की जा सकती है।

(४) एक समामेलित सस्था होने के नाते मिश्रित स्वामित्व वाले निगम कानूनी उद्देश्यो के लिये एक पृथक अस्तित्व रखते है और अपने नाम से दावा कर सकते हैं तथा उन पर दावा हो सकता है। वे अपने ही नाम से अनुबन्ध कर सकते हैं तथा सम्पत्ति खरीद सकते है।

(५) एक मिश्रित स्वामित्व वाला निगम अपने कोष सरकार एव जनता को स्टॉक (अंश) बेच कर, ट्रेजरी या जनता से उधार लेकर और वस्तुओ एव सेवाओ के विक्रय द्वारा प्राप्त हुई आय मे से जुटाता है।

(६) मिश्रित स्वामित्व वाले निगमो को साधारण पब्लिक कारपोरेशनो की अपेक्षा भी अधिक छूटें प्राप्त होती है।

ऐसे सगठनो मे, सरकारी नियन्त्रण बोर्ड आफ डाइरैक्टर्स मे सरकार द्वारा मनोनीत व्यक्तियो की नियुक्ति करके और कारपोरेशन के अन्तर्नियमो मे उपयुक्त नियमो का समावेश करके कायम रखा जाता है। इस दूरस्थ नियत्रण के अतिरिक्त ससद को इन कम्पनियो के निरीक्षण करने का और कोई अधिकार नही होता।

---

* The adoption of the method of promotion under the Indian Companies Act does not mean that we are wedded to this method of managing our undertakings. What we have now attempted to do is only by way of experiment. We have to see how this system works If after a time, it is found to be not satisfactorily working, our idea is to try out other methods. There is no finality about these things We are experimenting and, in course of time, we will evolve a type of management which will be satisfactory from all points of view."

(Minister of Production, Mr. K C. Reddy, in the Council of States in September, 1953.)

मिश्रित स्वामित्व वाले कारपोरेशन तब अच्छे बहुत समझे जाते हैं जबकि उपक्रम का बहुत कम राजनैतिक महत्त्व हो अथवा जब अन्तिम उद्देश्य पूर्ण प्राइवेट स्वामित्व की स्थापना करना ही हो। यह विश्वास किया जाता है कि इस युक्ति के द्वारा सरकार नये उद्योगों की स्थापना का प्रोत्साहन कर सकती है तथा एक सह-स्वामी के रूप में उद्योग के कार्य संचालन के सम्बन्ध में प्रथम सूत्रीय सूचना प्राप्त कर सकती है। अपने मनोनीत संचालकों द्वारा वह कारपोरेशन की नीतियों को भी, उन्हें राजनैतिक विवाद का विषय बनाये बिना, प्रभावित कर सकती है।

ऐसे संगठनों से मुख्य लाभ यह है कि उनका कार्य संचालन, प्रबन्ध, वित्त-व्यवस्था और अंकेक्षण एक प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी के समान ही व्यापारिक आधार पर किया जा सकता है, जिसके फलस्वरूप कार्य कुशलता से, शीघ्रता व सुगमता से होने लगता है।

यद्यपि मिश्रित स्वामित्व वाले कारपोरेशन को इस आधार पर बुरा बताया जा सकता है कि वह एक सरकारी सहायता प्राप्त प्राइवेट कारपोरेशन की अपेक्षा कुछ ही अधिक कार्य कर सकता है तथापि इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि यदि सरकार और प्राइवेट उपक्रम के मध्य विश्वास बना रहे तो वह सफलता-पूर्वक कार्य कर सकेगा। कम से कम एक भारतीय राज्य मैसूर में इस प्रकार के संगठन के साथ सफल प्रयोग किया गया है। चूँकि सरकार के मनोनीत चेयरमैन को सरकार (जो कि एक प्रमुख शेयर-होल्डर है) एवं साधारण शेयर-होल्डर दोनों के ही प्रति रिपोर्ट देनी होती है, इसलिए वह इस बात का प्रयत्न करता है कि अपने उपक्रम के संचालन में व्यापारिक ईमानदारी तथा समुचित कुशलता से काम ले। लेकिन बहुत कुछ सरकार अथवा संसद या राज्य विधान सभा के ऊपर ही निर्भर है। यदि सरकार या संसद या राज्य विधान-सभा मिश्रित स्वामित्व वाले निगमों के कार्य में बहुत हस्तक्षेप करती है, तो निगम के कार्यवाहन में प्राइवेट उपक्रमों जैसी कार्य-गति, पहलपन की भावना एवं साहसिकता नहीं रहेगी तथा वह एक विशुद्ध सरकारी स्वामित्व वाले कारपोरेशन से किसी भी मात्रा में अच्छा न कहा जा सकेगा, क्योंकि उसके अधिकारी राजनीतिज्ञों की आलोचना से बचने के लिए सदैव अत्यधिक सावधानी की नीति अपनायेंगे। मैसूर के सरकारी उपक्रम को जो सफलता मिली है उसका मुख्य कारण यह है कि तत्कालीन मैसूर सरकार और कम्पनी के प्रशासकों के मध्य सद्भावना का वातावरण था।

(VII) पब्लिक ट्रस्ट (Public Trust)—

राजकीय उपक्रमों के प्रबन्ध का एक अन्य ढंग पब्लिक ट्रस्ट है। इस ढंग का प्रयोग बन्दरगाहों के प्रबन्ध के सम्बन्ध में अधिक किया गया है, जैसे कोचीन पोर्ट ट्रस्ट। अन्य उदाहरण हैं इन्वेस्टमेन्ट ट्रस्ट, म्यूनिसिपल इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट, डेवलमेन्ट ट्रस्ट आदि।

सरकारी कम्पनियाँ
(Government Companies)

कोई भी कम्पनी जिसकी कम से कम ५१ प्रतिशत अंश पूँजी केन्द्रीय अथवा एक राज्य सरकार द्वारा ग्रहण की हुई है, एक सरकारी कम्पनी मानी जाती है। एक सरकारी कम्पनी (Government Company) एक मैनेजिंग एजेन्ट द्वारा प्रबन्धित नहीं हो सकती है। केन्द्रीय सरकार कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों को उनके सरकारी कम्पनियों पर लागू होने के सम्बन्ध में संशोधित कर सकती है।

एक सरकारी कम्पनी का अंकेक्षक केन्द्रीय सरकार द्वारा भारत के कम्पट्रोलर तथा आडीटर जनरल के परामर्श पर नियुक्त किया जाता है और आडीटर जनरल को उस विधि का निर्देश करने का जिसके अनुसार सरकारी कम्पनी के लेखे कम्पनी के अंकेक्षक द्वारा अंकेक्षित किये जाने चाहिये तथा उसके कर्त्तव्यों के निष्पादन के सम्बन्ध में अन्य निर्देश देने का भी अधिकार है। ऑडिटर जनरल को एक सरकारी कम्पनी के लेखों का एक पूरक (Supplementary) अथवा परीक्षण अंकेक्षण (Test Audit) करने का भी अधिकार है, और इस उद्देश्य के लिये वह ऐसी कोई भी सूचना माँग सकता है जिसकी उसे आवश्यकता पड़े।

एक सरकारी कम्पनी के अंकेक्षक को अपनी अंकेक्षण रिपोर्ट की एक प्रति कम्पट्रोलर तथा आडीटर जनरल के पास भी भेजनी पड़ती है जिसे रिपोर्ट के सम्बन्ध में समालोचना (Comment) करने तथा पूरक रिपोर्ट देने का भी अधिकार है। रिपोर्ट पर उसकी समालोचना तथा पूरक रिपोर्ट भी अंकेक्षक की रिपोर्ट की भाँति ही कम्पनी की वार्षिक व्यापक सभा के सम्मुख रखी जानी चाहिये।

गुण—

इस प्रकार के प्रबन्ध के निम्न गुण हैं :—

(१) सरकारी उद्योग व्यापारिक ढङ्ग से चलाये जा सकते हैं।

(२) प्रबन्धकों को इसकी निपुणता बढ़ाने के लिए अधिक उत्साह रहता है।

(३) राजकीय उद्योग प्राइवेट उद्योगों से तुलना करके अपनी निपुणता की परीक्षा कर सकते हैं।

(४) कम्पनी प्ररूप प्रबन्ध को सरकार के सामान्य नियन्त्रण के आधीन समुचित स्वतन्त्रता प्रदान करता है। अतः प्रबन्धक अपने को दायित्व लेने से नहीं बचा सकते।

(५) चूँकि सरकारी कम्पनी की समस्यायें पार्लियामेण्ट में प्रस्तुत होती हैं इसलिये प्रबन्धक वर्ग सदैव जागरूक एवं सावधान रहता है।

दोष—

(१) जब कोई सरकारी कम्पनी पूर्णतः सरकार के स्वामित्व में हो तो वह अपने उत्तरदायित्व को पब्लिक की आलोचना में बचाने के लिए टाल सकती है।

(२) विभागीय सेक्रेटरियो एवं डिप्टी सेक्रेटरियों को एवत ग्रोफिसियो डाइरेक्टर बना दिया जाता है ग्रौर वे प्रबन्ध कार्य पर समुचित समय व ध्यान नही दे पाते।

(३) सरकार के प्रतिनिधि होने के कारण वे अन्य साधारण सचालको के सामान्य रूप मे काय करने म बाधा डालने वाले बन जाते हैं और जब-तब उन पर 'रोब' जमाते रहते हैं।

(४) स्टेटुटरी कॉरपोरेशनो की भाँति वे खुले-ग्राम काम नही करते, उनके गुप्त सौदे व कर्मचारियो का चुनाव जनता के मन मे सन्देह उत्पन्न कर सकता है।

सरकारी कम्पनी की सफलता बहुत कम इस बात पर निर्भर होगी कि बोर्ड ग्राफ डाइरेक्टर 'नीति निर्धारक' होगा या "नीति पालक"। यदि वह राज्य मन्त्रालय की नीतियो को कार्यान्वित कराने वाला मात्र है, तो प्रबन्ध की यह पद्धति 'विभागीय प्रबन्ध पद्धति' (Departmental Form of Management) की ग्रपेक्षा श्रेष्ठ न होगी। जैसा श्री गोरवाला का सुझाव है बोर्ड एक स्वतन्त्र नीति निर्धारक होना चाहिए, जिससे कि वह राजनैतिक प्रभाव मे मुक्त रह सके ग्रौर प्राइवेट क्षेत्र की कम्पनियो के समान लोच के साथ काम कर सके।

STANDARD QUESTIONS

1. Define the term 'Public Enterprise' Discuss carefully the objectives of State ownership as outlined by E C A F E
2. What objections are usually raised against the State ownership and management of business enterprises ?
3. Discuss carefully the various forms prevalent for the management of public enterprises
4. Discuss in details the merits and demerits of the following forms of management
   (a) Departmental management, (b) State enterprises managed like a company
5. Define a Public Corporation Mention its special features, advantages and disadvantages and suggest measures to make it a success
6. What do you understand by a mixed ownership cooperation ? Give your personal observations regarding the utility of such corporations
7. Define a Government Company What are its merits and demerits

अध्याय ५४

राजकीय उपक्रमों की व्यवस्था एवं प्रबन्ध (२)

(गोरवाला, गालब्रेथ, अप्पल बी तथा इकेफी की रिपोर्टों के संदर्भ सहित)
(Administration & Management of State Enterprises)

राजकीय उपक्रमों के प्रबन्ध से सम्बंधित समस्याओं के प्रति बढ़ती हुई चेतना

उद्योग एव व्यापार मे सरकार का भाग दिनो दिन बढता जा रहा है। इससे इनके प्रबन्ध से सम्बन्धित समस्याओ के अध्ययन का महत्व भी बहुत बढ गया है। यदि राजकीय उपक्रमो को सफल बनाना है, तो यह आवश्यक है कि इनके प्रबन्ध की कुशलता बढाई जाय। राजकीय औद्योगिक सस्थाओ का प्रबन्ध करने की किसी उपयुक्त व्यवस्था का विकास करने की समस्या कई वर्षों से हमारे सन्मुख है, किन्तु अभी तक इसका कोई सतोषजनक हल नहीं ढूंढा जा सका है। इस सम्बन्ध मे किये गये विभिन्न प्रयासो का सक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है :—

राजकीय उपक्रमो के प्रबंध की समस्या को हल करने के प्रयास

(१) भारत सरकार की उत्पादन समिति सन् १९५०।
(२) गोरवाला रिपोर्ट सन् १९५१।
(३) योजना आयोग के सुझाव सन् १९५२।
(४) इकेफी रिपोर्ट सन् १९५४।
(५) एस्टीमेट कमेटी सन् १९५५-५६।
(६) कम्पनी अधिनियम सन् १९५६
(७) औद्योगिक नीति प्रस्ताव सन् १९५६।
(८) द्वितीय योजना का ड्राफ्ट।
(९) गेलब्रेथ रिपोर्ट।

(१) भारत सरकार की उत्पादन समिति, सन् १९५०—नवम्बर सन् १९५० मे भारत सरकार की उत्पादन समिति के सन्मुख राजकीय उपक्रमो के प्रबन्ध की सर्वोत्तम व्यवस्था का प्रश्न आया, जिस पर विचार विमर्श के पश्चात् समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची कि प्रत्येक औद्योगिक सस्था की विशेष आवश्यकताओ के अनुसार ही प्रबन्ध की व्यवस्था की जा सकती है। कोई एक प्रबन्ध व्यवस्था सब सस्थाओ के लिए उपयुक्त नही हो सकती है। यह भी स्वीकार किया गया था कि सरकारी औद्योगिक उपक्रमो के लिए विभागीय प्रबन्ध की व्यवस्था करना अनुपयुक्त है। इसके विपरीत कम्पनी प्रणाली के प्रबन्ध का सुझाव दिया गया।

(१०) अप्पल की रिपोर्ट।
(११) राजकीय उपक्रमों पर सेमिनार सन् १९५७।
(१२) छागला कमीशन सन् १९५८।
(१३) कृष्णा मेनन कमेटी १९५८।
(१४) इकेफी सेमिनार सन् १९५९।
(१५) एस्टीमेट कमेटी सन् १९६०।

(२) गोरवाला रिपोर्ट, सन् १९५१—योजना आयोग के निर्देश पर श्री ए० डी० गोरवाला ने सरकारी उपक्रमों के कुशल प्रशासन का अध्ययन किया और अपनी रिपोर्ट (The Efficient Conduct of State Enterprise) सरकार को दी। इसमें उन्होंने विभिन्न सरकारी उपक्रमों के प्रबन्ध के लिए एक स्वशासित अथारिटी की स्थापना का सुझाव दिया, क्योंकि इसके अन्तर्गत सार्वजनिक हितों की पूर्ति के लिए तीनों विशेषतायें—राजकीय स्वामित्व, राजकीय उत्तरदायित्व एवं व्यापारिक प्रबन्ध—सम्भव हो जाती हैं। उन्होंने प्रशासन सम्बन्धी अन्य समस्याओं पर भी विचार किया था, जैसे संसदीय एवं मन्त्रिमण्डलीय नियन्त्रण, आन्तरिक प्रबन्ध, प्रबन्ध व्यवस्था की रचना, उपभोक्ताओं एवं करदाताओं के हितों की रक्षा।

(३) योजना आयोग के सुझाव, सन् १९५२—योजना आयोग ने प्रथम पंच-वर्षीय योजना के ड्राफ्ट में यह कहा कि राजकीय औद्योगिक उपक्रम का विकास एक नवीन घटना है, जिसके बढ़ते हुए महत्त्व का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि केन्द्रीय सरकार की अधिकांश औद्योगिक संस्थाओं का प्रबन्ध संभालने के लिए एक पृथक मंत्रालय (Ministry of Production) स्थापित करने का सुझाव दिया गया है। उसने यह स्वीकार किया था कि इन संस्थाओं के कार्यसंचालन का इतना पर्याप्त अनुभव नहीं हो पाया है कि उसके आधार पर समुचित निष्कर्ष निकाला जा सके। फिर भी उसने एक सेंट्रल बोर्ड की स्थापना का सुझाव दिया, जो कि प्रबन्ध-समस्याओं पर विस्तृत ध्यान दे सकता और सम्पूर्ण सार्वजनिक क्षेत्र के लिये सामान्य महत्त्व के प्रश्नों पर सरकार को परामर्श दिया करेगा।

(४) इकेफी रिपोर्ट, सन् १९५४—एशिया और सुदूरपूर्व के लिए संयुक्त राष्ट्रीय आर्थिक आयोग (U N. Economic Commission for Asia and Far East or E C. A F E) की मार्च सन् १९५४ की कान्फ्रेन्स में भी औद्योगिक क्षेत्र की राजकीय संस्थाओं के संगठन एवं प्रशासन सम्बन्धी समस्याओं पर विचार किया गया। भारत ने भी इस कान्फ्रेन्स में भाग लिया था। इकेफी कान्फ्रेन्स की राय में प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी एक उपयुक्त प्रबन्ध प्रणाली नहीं है। सामान्य धारणा पब्लिक कॉरपोरेशन का संगठन करने के पक्ष में थी।

(५) एस्टीमेट कम्पनी सन् (१९५५-५६)—इस कमेटी ने अपनी सोलहवीं रिपोर्ट में विभागीय इकाई के रूप में राजकीय उपक्रमों का प्रबन्ध करने का विरोध किया और संयुक्त स्कन्ध कम्पनी की प्रबन्ध प्रणाली का समर्थन किया, किन्तु इसने यह जोर दिया कि जनता की रुचि एवं सहयोग प्राप्त करने के लिये कम से कम २५% पूँजी जनता के विनियोग के लिए सुरक्षित की जाय। मैनेजिंग डाइरेक्टर का विभिन्न

विषयो पर समय समय पर परामर्श देने के लिए उसने एक एडवाइजरी कमेटी बनाने की सिफारिश भी की थी। आन्तरिक प्रशासन के सम्बन्ध मे औद्योगिक उपक्रमो को बहुत सीमा तक स्वशासन का अधिकार देना उचित बताया।

(६) कम्पनी अधिनियम, सन् १९५६—नये कम्पनी अधिनियम मे प्रथम बार सरकारी कम्पनियो की चर्चा हुई और इस तरह इस प्रबन्ध प्रणाली को वैधानिक मान्यता दी गई।

(७) औद्योगिक नीति प्रस्ताव, सन् १९५६—सन् १९५६ की औद्योगिक नीति के अनुसार सरकार ने औद्योगिक क्षेत्र मे नये उपक्रम स्थापित करने मे प्रमुख भूमिका ग्रहण की और शीघ्र निर्णय दायित्व ग्रहण की सुविधा की दृष्टि से इन उपक्रमो के प्रबन्ध का विकेन्द्रीयकरण करने व उनको व्यापारिक आधार पर सचालित करने पर बल दिया।

(८) द्वितीय योजना का ड्राफ्ट—द्वितीय योजना के ड्राफ्ट मे भी योजना आयोग ने पर्याप्त अनुभव के अभाव मे राजकीय औद्योगिक उपक्रमो के लिये कोई उचित प्रणाली सुझाने मे असमर्थता प्रगट की थी, किन्तु उसने यह कहा कि हमे अपने मौलिक आदर्श सदैव ध्यान मे रखने चाहिए तथा प्राप्त अनुभव के प्रकाश से अपनी सस्थाओ के प्रबन्ध को ढालने के लिये तैयार रहना चाहिए।

(९) गालब्रेथ रिपोर्ट—भारत सरकार द्वारा परामर्श देने के हेतु आमन्त्रित अमरीकन विशेषज्ञ श्री गॅलब्रेथ ने इस बात पर जोर दिया था कि राजकीय उपक्रमो की कुशलता एव सफलता मे हमारा अडिग विश्वास होना आवश्यक है। उन्होने स्वशासित पब्लिक कॉरपोरेशनो की स्थापना का समर्थन किया। किन्तु प्रत्येक उपक्रम के लिये अलग अलग उपक्रम बनाने की आवश्यकता नही है। कई उपक्रमो के लिए एक सम्मिलित कॉरपोरेशन रखा जा सकता है। उन्हाने वित्तीय स्वशासन तथा सत्ता के विकेन्द्रीयकरण का भी समर्थन किया।

(१०) अप्पल बी रिपोर्ट—डाक्टर पाल अप्पल बी को भी भारत सरकार ने सन् १९५६ म अमरीका स परामर्श के लिए आमन्त्रित किया था। इन्होने अपनी रिपोट (Re examination of India's Administrative System with Special Reference to Administration of Government's Industrial and Commercial Enterprises) मे यह बताया कि भारत एक सकटकाल न अवस्था मे है, जिसकी तुलना युद्धकालीन राष्ट्र से की जा सकती है। अत. उसकी सफलता शीघ्र निर्णय एव शीघ्र कार्यवाही की क्षमता पर निर्भर है। यह आवश्यकता उस क्षेत्र मे सर्वाधिक है जहाँ कि नये नये उपक्रम तेजी से बनते जा रहे है।

(११) राजकीय उपक्रमो की प्रबन्ध समस्याओ पर सेमिनार सन् १९५७—इस सेमिनार म ससद, सरकार, जनता एव प्राइवेट उपक्रम, यूनीवर्सिटी व सार्वजनिक कार्यकर्ताओ एव प्रतिनिधियो न भाग लिया था और बाह्य नियन्त्रण, शिखर प्रशासन तथा आन्तरिक प्रबन्ध की समस्याओ का विवेचन किया था।

(१२) छागला कमीशन, सन् १९५८—जीवन बीमा निगम द्वारा मूँदड़ा के उपक्रमो मे विनियोग करने की जाँच पड़ताल के सम्बन्ध मे विचार करते हुये छागला कमीशन ने सरकार एव ससद द्वारा वैधानिक कॉरपोरेशनो पर किये जाने वाले नियन्त्रण पर भी विचार-विमर्श किया। इसने निम्न सुझाव दिये :—(i) सरकार को चाहिए कि स्वशासित पब्लिक कॉरपोरेशनो के कार्य मे हस्तक्षेप न करे और यदि हस्तक्षेप करना चाहे तो लिखित निर्देश देने मे कोई सकोच नही करना चाहिए; (ii) ऐसे कॉरपोरेशनो का चेयरमैन व्यापारिक एव वित्तीय अनुभव रखने वाले व्यक्तियो मे से चुना जाय, (iii) मन्त्रियो को चाहिए कि प्रारम्भ मे ही ससद को आवश्यक सूचना जुटा दें, ताकि आगे चलकर अन्य स्रोतो से सूचना मिलने पर ससद विचित्र स्थितियो मे न फँस जाय, (iv) सम्बन्धित मन्त्री को अपने आधीन अधिकारियो के कार्यो का पूर्ण दायित्व ग्रहण करना चाहिए।

(१३) कृष्ण मेनन कमेटी सन् १९५८—ससद मे कांग्रेस पार्टी की इस सब-कमेटी ने प्रबन्ध समस्याओ पर अपनी रिपोर्ट नवम्बर सन् १९५९ मे प्रकाशित की थी। इसने निम्न दो आधारभूत समस्याओ पर मुख्य बल दिया है :—कुशलता एवं दायित्व। इसने यह सुझाव दिया था कि सरकारी उपक्रमो के सम्बन्ध मे रचना, प्रबन्ध एव नीति ऐसी होनी चाहिए कि एक ओर जन-भावना और दूसरी ओर श्रमिक एव प्रबन्धकर्त्ता उन्हे राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत उत्साह से आदर दें तथा स्वामित्व एव स्वाभिमान की भावना का अनुभव करें।

(१४) इकॅफी क्षेत्र की सरकारी उपक्रमों के प्रबन्ध पर नई दिल्ली का सेमिनार सन् १९५९—इस सेमिनार मे निम्न बातो पर विचार किया गया था :—(i) सरकारी उपक्रमो के प्रबन्ध का आदर्श राष्ट्रीय उद्देश्यो के अनुकूल होना चाहिए। (ii) विशेष दशाओ को छोड कर सामान्य सरकारी उपक्रमो को लाभ पर चलना चाहिए, ताकि वे अपने पैरो पर खडी हो सकें। (iii) किसी सरकारी उपक्रम की सफलता का अनुमान उपक्रम के लक्ष्यो की पूर्ति, उत्पादन व्यय के कम करने तथा वस्तुओ व सेवा की किस्म मे सुधार होने से लगाना चाहिए। (iv) उपक्रमो की स्थापना के पूर्व एव बाद मे भी पर्याप्त नियोजन (Planning) की आवश्यकता है। (v) सरकार को दैनिक कार्य-कलापो मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए, वरन् व्यापक नीति सम्बन्धी प्रश्नो तक सीमित रहना चाहिए। (vi) सरकारी उपक्रमो मे मैनेजमेट अकाउटिंग की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(१५) एस्टीमेट कमेटी, सन् १९६०—एस्टीमेट कमेटी की नवीन रिपोर्ट मे भी कई महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये गये है : (i) प्रत्येक नये कार्य के लिए पृथक संगठन नही होना चाहिए, जब तक कि वह विशेष महत्त्व का न हो। स्थापित सगठनों से ही नये उपक्रमो के प्रबन्ध का काम लिया जा सकता है। (ii) कुछ सरकारी उपक्रमो को मिला कर उनकी सख्या मे कमी कर देना उपयुक्त होगा। (iii) एक विशेषज्ञ कमेटी

स्थापित की जाय, जो प्रत्येक नये उपक्रम के लिये प्रबन्ध की उपयुक्त प्रणाली के सम्बन्ध मे सरकार को सुझाव दिया करेगी।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत मे सरकारी उपक्रमो के प्रबन्ध से सम्बन्धित समस्याओ मे गहरी रुचि ली जा रही है और धीरे-धीरे प्रबन्ध-व्यवस्था मे आवश्यक सुधार किये जा रहे हैं।

सरकारी उपक्रमों के प्रबन्ध से सम्बन्धित कुछ मुख्य समस्यायें

(I) प्रबंध का प्रारूप (Pattern of Management)—

एक सरकारी उपक्रम सगठन की कोई भी प्रणाली अपनाये, किन्तु वह तब तक कुशलता से कार्य नही कर सकती है जब तक कि उसका उच्च प्रबन्धक वर्ग कुशल एव क्षमतावान् न हो। श्री गोरवाला (A. D Gorwala) ने सरकारी उपक्रमों के प्रबन्ध बोर्डों (Board of Management) के बारे मे कहा था कि इनकी रचना इस प्रकार नही होनी चाहिए कि जिससे चोर द्वार के जरिये नियन्त्रण एव हस्तक्षेप प्रचलित हो जाय। अत. बोड की सदस्यता ससद के सदस्यो, मन्त्रियो एव विभागीय प्रतिनिधियो के लिये ब द कर देनी चाहिए।* बोर्ड की मीटिंगो को विभिन्न हितो के मतभेदो को निपटाल का स्थान भी नही बनने देना चाहिए। वरन् प्रत्येक सदस्य सस्था का प्रबन्ध जनहित की दृष्टि से अच्छी प्रकार चलाने मे सहयोग दे। बोर्ड के सदस्यो का चुनाव इस प्रकार होना चाहिए कि सार्वजनिक हित की भावना और एक प्राइवेट उद्योगी की कुशलता दोनो के गुण प्राप्त हो जाये। कृष्णामेनन कमेटी ने भी यह सुझाव दिया था कि बोर्ड आफ डाइरैक्टर्स मे वित्त-विशेषज्ञ, टेकनीकल विशेषज्ञ, एडमिनिस्ट्रेटिव कुशलता प्राप्त व्यक्ति एव श्रमिको के प्रतिनिधि होने चाहिए। डाईरैक्टर्स का चुनाव कम्पनी मे से ही किया जाय तथा चेयरमैन का पद रिटायर होने वाल सिविल सर्वेन्टस को या राजनैतिक सेवा करने वाले व्यक्तियो को पुरस्कार स्वरूप नही दिया जाना चाहिए। बोर्ड को व उसके चेयरमैन को एक टीम के रूप मे कार्य करना चाहिए।

सरकारी उपक्रमो की प्रमुख ६ प्रबन्ध समस्यायें

- (I) प्रबन्ध का प्रारूप।
- (II) प्रबन्ध की स्वतन्त्रता।
- (III) आन्तरिक प्रशासन।
- (IV) अकेक्षण।
- (V) ससदीय नियन्त्रण।
- (VI) जनता को सूचना।

सन् १९५४ ५५ की अपनी सोलहवी रिपाट मे लोक-सभा की एस्टीमेट कमेटी ने बतलाया था कि सरकारी उपक्रमो के बोर्ड ऑफ डाइरैक्टर्स अच्छा कार्य नही कर

* A D Gorwala · The Efficient Conduct of State Enterpri es, p 19

रहे हैं, क्योंकि उनके सदस्यों को सरकार ने विभिन्न मन्त्रालयों के सरकारी अफसरों में से मनोनीत किया है। ये लोग दीर्घकाल के पश्चात् मीटिंग करते हैं और कोई उपयोगी कार्य नहीं कर पाते। हाँ, कम्पनी नमूने के प्रबन्ध का बिल्ला जरूर इन संस्थाओं को मिल गया है, अत: कमेटी ने यह राय दी है कि बोर्ड आफ डाइरैक्टर्स नियुक्त करने की प्रथा को समाप्त करके सरकारी उपक्रमों के लिए एक मैनेजिंग डाइरैक्टर्स या संस्था के आकार के अनुसार कई मैनेजिंग डाइरैक्टरों का पैनल बनाया जाय। ये लोग व्यापारिक अनुभव वाले व्यक्ति होने चाहिए। कुछ सदस्य टेक्नीकल ज्ञान रखने वाले भी हों। इस पैनल का एक चेयरमैन होना चाहिये, जो अपने साथियों के साथ सामूहिक रूप से और एक कार्य विभाजन आधार पर कार्य करे। बोर्ड चेयरमैन के द्वारा नीति सम्बन्धी व्यापक प्रश्नों के सम्बन्ध में मन्त्री के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। इस व्यवस्था के अन्तर्गत मन्त्री को राष्ट्रीय महत्त्व के सरकारी उपक्रम के कार्यकलापों की प्रत्यक्ष जानकारी मिलती रहेगी और बोर्ड को भी प्रत्यक्ष रूप से मन्त्री का तथा मन्त्री के द्वारा मन्त्रिपरिषद के विचारों की सूचना मिलती रहेगी और उसके निर्णयों को वह अधिक शीघ्रता से कार्यान्वित कर सकेगा।

एस्टीमेट कमेटी की उक्त सिफारिश को इस आधार पर अनुपयुक्त बताया गया है कि कार्य विभाजन आधार पर सदस्यगण व्यापक दृष्टि से विचार करने में असमर्थ रहेंगे। सम्भवतः इस आलोचना का कमेटी को भान था। इसलिए उसने समय-समय पर विभिन्न मामलों में मैनेजिंग डाइरैक्टर को परामर्श देने के लिए एक एडवाइजरी कमेटी की नियुक्ति का भी सुझाव दिया था। इस एडवाइजरी कमेटी में व्यापारियों, श्रमिकों, उपभोक्ताओं और संसद या स्थानीय विधान सभाओं के प्रतिनिधि होंगे। इस बोर्ड को असीमित आलोचना करने का अधिकार होगा। वह किसी भी विषय पर सूचना माँग सकती है। मैनेजिंग डाइरैक्टर खुद भी रिपोर्टें, हिसाब-खाते की नकलें आदि भेजकर स्थिति से भिज्ञ रखेगा। लेकिन यह भय है कि इस कमेटी के सुझाव केवल परामर्श के रूप में न होने के कारण मैनेजिंग डाइरैक्टर पर बाधित न होंगे और इस प्रकार विशेष उपयोगी प्रमाणित न हो सकेंगे। कमेटी भी परामर्श के कार्य में विशेष रुचि नहीं लेगी।

मैनेजिंग डाइरैक्टर का चुनाव प्राइवेट क्षेत्र से किया जाय या सिविल सर्विस से किया जाय, इस सम्बन्ध में एक आदर्श सिद्धान्त यह होना चाहिये कि योग्य व्यक्ति जहाँ से भी मिल सकें, लिये जाने चाहिये। डाक्टर अप्पल बी का कहना था कि व्यापारिक विश्व से सरकारी उपक्रमों के प्रशासकों का चुनाव करना उपयुक्त नहीं है। उनकी यह धारणा निराधार है। हाँ, उन्होंने उत्तरदायित्व के हस्तान्तरण पर उचित जोर दिया है। बोर्ड को अधिकांश अधिकार मैनेजिंग डाइरैक्टर को, मैनेजिंग डाइरैक्टर द्वारा अधिकांश अधिकार अपने आधीन कर्मचारियों को सौंप देने चाहिए, ताकि तुरन्त कार्यवाही की जा सके।

(II) प्रबंध की स्वतंत्रता (Autonomy of Management)—

यह आवश्यक है कि कार्यकारी मन्त्रालयो (Operating Ministries) के हस्तक्षेप को घटाकर सरकारी उपक्रमो के स्वशासन की रक्षा की जाय। एस्टीमेट कमेटी ने यह अनुभव किया था कि जिस प्रकार सेक्रेटेरियल सरकारी विभागो और कार्यालयो का नियन्त्रण रखता है उसी प्रकार सरकारी उपक्रमो को भी मन्त्रालयो का एक विभाग मान कर नियन्त्रण किया जा रहा है। इसका उन सस्थाओ की उत्पादकता पर बहुत असर पडा है, क्योकि एक सरकारी विभाग के समान ही उनमे भी लाल फीते का जोर बढ गया है। अन· सरकारी उपक्रमो को व्यापारिक सिद्धान्तो पर ही चलाना चाहिए अर्थात् दैनिक प्रशासन मे उनको बहुत स्वतन्त्रता होनी चाहिये। सच तो यह है कि स्वशासन और नियन्त्रण के बीच एक उचित सतुलन रखने की समस्या बडी नाजुक है। इकेफे सेमिनार (दिसम्बर १९५९) मे सरकारी नियत्रण की आवश्यकता को स्वीकार करते हुये यह सुझाव दिया गया था कि सरकारी उपक्रमो मे सरकारी नियन्त्रण को दैनिक काय सचालन मे हस्तक्षेप करने का रूप ग्रहण नही करना चाहिये। जहाँ तक व्यापक नीतियो का सम्बन्ध है, उपक्रमो को सरकार के सामान्य नियन्त्रण एव सचालन मे कार्य करना चाहिए, किन्तु इन नीतियो की सीमा के भीतर सरकारी सस्थाओ को कार्य की अधिक से अधिक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। स्वशासन का समथन करने का आशय सरकार के उत्तरदायी उच्च अङ्गो को इस बात के लिए शिक्षित करने की आवश्यकता पर बल देना है कि वे सयम से काम लें और वास्तविक महत्वपूर्ण बातो मे हस्तक्षेप करने तक ही अपने को सीमित रखें। साथ ही यह भी समस्या है कि ऐसी सस्थाओ के मुख्याधिकारियो को सेक्रेटरियो व मन्त्रियो द्वारा उनको दिए गए परामर्शो से भयभीत होने से बचाया जाय।

(III) आन्तरिक प्रशासन (Internal Administration)—

सरकारी उपक्रमो की सफलता के मार्ग का एक रोडा उनको प्रबन्ध करने के लिए प्रशिक्षित कर्मचारियो का अभाव होना है एक उत्पादक सरकारी उपक्रम का प्रशासन काय सरकार के सामान्य प्रशासन से बहुत भिन्न होता है। सरकार के सामान्य प्रशासन के लिए इतने अधिक टेक्नीकल ज्ञान की आवश्यकता नही पडती, जितने कि उत्पादक सरकारी उपक्रमो के प्रशासन के सम्बन्ध मे आवश्यकता होती है। अतः टेक्नीकल व अनुभव ज्ञान रखने वाले विशिष्ट कर्मचारियो की सेवायें प्राप्त करना आवश्यक है। एस्टीमेट कमेटी ने सरकारी उपक्रमो के अब तक के अनुभव के आधार पर यह सम्मति प्रगट की है कि एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस के द्वारा सरकारी उपक्रमो का प्रबन्ध चलाने के लिये उपयुक्त कमचारी प्राप्त नही हो सकते।* एडमिनिस्ट्रेटिव

---

* It has been noticed that the managing directors of the State undertaking at present are mosty senior officers of the Administrative Department of the Government and that consequently, managements in these undertakings find themselves unable to adopt business methods as the officers have been accustomed all along to the procedure of business in Government departments quite unsuitable for the running of a commercial enterprise."

सर्विस के लोगो को जहाँ-तहाँ औद्योगिक सेवाओ का प्रबन्ध नियुक्त करके उन्हे ट्रेनिंग देना उनके लिये तो लाभदायक हो सकता है लेकिन इन सस्थाओ के लिए नही। प्रबन्ध सेवाओ मे भरती की उक्त समस्या को दो तरह से हल किया जा सकता है—प्राइवेट सैक्टर मे कुशल एव व्यापारिक अनुभव वाले व्यक्तियो को नियुक्त किया जाय अथवा विशेष भरती बोर्डो द्वारा नवयुवको की प्रत्यक्ष भरती की जाय तथा उन्हे औद्योगिक प्रबन्ध की विशिष्ट ट्रेनिंग दी जाय। हर्ष का विषय है कि उत्पादन, यातायात, सवादवाहन, लौह एव इस्पात और व्यापार एव उद्योग मन्त्रालयो के आधीन सरकारी उपक्रमो के स्टाफ की पूर्ति के लिए अभी हाल मे ही एक इण्डस्ट्रियल मैनेजमेन्ट सर्विस स्थापित करने का निश्चय किया गया। इस सर्विस द्वारा सामान्य प्रबन्ध, वित्त एवं खाते, विक्रय, क्रय, स्टोर्स यातायात, श्रम प्रबन्ध एव कल्याण, नगर प्रशासन आदि के लिए औद्योगिक सस्थाओ को प्रबन्ध कुशल कर्मचारियो की व्यवस्था की जायगी। इस सेवा मे पब्लिक सर्विसेज तथा बाहर दोनो ही से भरती की जायगी। प्राइवेट क्षेत्र की प्रतिस्पर्द्धा से बचने के लिए सरकारी उपक्रम के कर्मचारियो को अच्छा वेतन मिलना चाहिये, ताकि कुशल व्यक्ति सरकारी सेवाओ की ओर आकर्षित हो। भरती के पश्चात् उन्हे विशिष्ट ट्रेनिंग के लिए देश-विदेश भेजना चाहिए।

सरकारी उपक्रमो के प्रबन्ध मे श्रमिको को भाग देने की समस्या भी महत्त्वपूर्ण है। इस समस्या पर हमे न केवल कार्य कुशलता की दृष्टि से वरन् समाज की स्वीकृत नीति एव उद्देश्य की दृष्टि से भी विचार करना चाहिये। भारत ने समाजवादी नमूने के समाज की स्थापना को अपना लक्ष्य बनाया है, जिसकी व्याख्या करने से यह आशय निकलता है कि श्रमिको को भी प्रबन्ध मे भाग मिलना चाहिय। कुछ देशो मे श्रमिको से केवल परामर्श किया जाता है, कुछ मे उनका कल्याण कार्यों के प्रबन्ध मे ही भाग दिया गया है और कुछ देशो मे उनको ऊपर से नीचे तक प्रबन्ध मे भाग मिल गया है। भारत मे सरकार ने पब्लिक सैक्टर मे श्रमिको के प्रबन्ध की योजना सर्वप्रथम हिन्दुस्थान मशीन औजार कारखाने में सन् १९५८ मे आरम्भ की थी। सितम्बर सन् १९५९ मे डी० डी० टी० के कारखानो मे भी योजना प्रारम्भ कर दी गई है।

सभी सरकारी उपक्रमो के लिये भरती करने को एक सम्मिलित प्रबन्ध-सेवा (Common Management Cadre) का आयोजन करने के विषय मे एस्टीमेट कमेटी ने निम्न महत्त्वपूर्ण सिफारिशे की थी —

(१) अकुशल श्रमिक अधिकाशत उस स्थानीय क्षेत्र से ही भरती किए जाय जहाँ कि सरकारी उपक्रम स्थापित है।

(२) अर्द्ध-कुशल श्रमिको की भरती मुख्यतः स्थानीय जन-सख्या मे से की जाय। कुछ श्रमिको की भरती देश के विभिन्न भागो से भी की जाय, जिससे कि सस्था का राष्ट्रीय स्वभाव झलके।

(३) अफसरो व उनके स्टाफ को सम्पूर्ण देश से भौगोलिक अनुपात मे स्पेशल रेक्रूटिंग बोर्ड द्वारा भरती किया जाय।

(४) अगले दो-तीन वर्षों मे रिक्त होने वाले एवं सभावित नये पदो की सूचना प्रकाशित करा दी जाया करे, जिससे कि इनके लिये विद्यार्थी अध्ययन कर सकें।

(५) प्रशासन एव प्रबन्ध स्तर के अधिकारियो की नियुक्ति संस्थाओ के ४-५ साल की अवधि के लिये ही की जाय, जिससे वे बहुत समय तक एक ही सस्था मे रुकने से अकुशल न हो जायें। एक उपक्रम से दूसरे उपक्रम मे उनका ट्रान्सफर करते रहना चाहिये, ताकि एक सस्था के अनुभव का लाभ वे दूसरी सस्थाओ को पहुँचा सकें।

(६) नये भरती होने वाले कर्मचारियो की ट्रेनिंग के लिए सुव्यवस्था की जाय। 'कार्य करते हुए काम सीखने' की योजनायें भी बनानी चाहिए।

(IV) सरकारी उपक्रमों का अकेक्षण (Audit of Government Enterprises)—

डा० अप्पल बी ने भारत मे सरकारी उपक्रमो के अकेक्षण की व्यवस्था की बडी आलोचना की है। उनकी सम्मति मे आडिटर जनरल की कार्य-प्रणाली औपनिवेशिक शासन की एक दूषित विरासत है। आजकल सरकारी अफसरो मे निर्णय लेने और तदनुसार कार्य करने के सम्बन्ध मे जो संकोच व्यापक रूप से विस्तृत है उसका एक मुख्य कारण यह आडिटर जनरल ही है। वह सरकारी अफसरो पर अप्रत्यक्ष अथवा ससद के द्वारा प्रभाव डालता है। मन्त्रालयो एव सम्बद्ध सगठनो के बारे मे किसी सामान्य निर्णय पर पहुँचने मे अथवा सामाजिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिये अपनाये गये ढङ्ग का एक सामान्य मूल्यांकन करने मे सहायता देने के बजाय उसकी आडिट रिपोर्ट पार्लियामेंट का ध्यान छोटी-छोटी बातो पर केन्द्रित कर देती है। वास्तव मे आडीटर जो चीज जानता है वह आडिटिंग है एडमिनिस्ट्रेशन नही। बहुत अधिक आडिट रिपोर्टें उपयुक्त अवसर पर उठाये गये विशिष्ट कदमो की महत्ता को कम कर देती है।*

किन्तु डाक्टर अप्पल बी का उक्त तर्क एक ऐसे नुस्खे के रूप मे है जो कि रोग का उपचार करने के बजाय रोग को बिगाड देता है। उन्होने आडिटर जनरल के विरुद्ध जो अविश्वास प्रगट किया है उससे यह झलकता है कि उनके मस्तिष्क मे इंजन युक्त किन्तु ब्रेक रहित एडमिनिस्ट्रेटिव कार का ही चित्र था। निस्संदेह आडिटरो की कुछ आलोचनायें उस विवेक का उदाहरण है जो कि घटना घटित होने के पश्चात् उदय हो और इस कारण उनकी कोई उपयोगिता नही होती है। लेकिन सब ही आलोचनायें

* "Too many of audit reports are mere substitutions of hindsight for the kind of judgment possible and necessary and proper at the time of action. What auditors know is auditing—which is not administration." (Dr Apple by)

इस वर्ग मे नहीं आती है। यदि डाक्टर अप्पल बी ने आडिट रिपोर्टों का आडिट किया होता, तो उन्हे मालूम पड जाता कि कितनी आलोचना निर्णय की त्रुटि से सम्बन्धित है और कितनी आलोचना वास्तव मे उचित है। पब्लिक कभी भी इस बात के लिये तैयार न होगी कि आडिट का नियन्त्रण सरकारी उपक्रमो से हटा लिया जाय, क्योंकि इससे अधिकारियो और मन्त्रियों की वित्तीय त्रुटियो और अनियमितताओ को बढावा मिलने का डर है। फिर पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत घाटे की व्यापक व्यवस्था की गई है। इससे भी जनता का सरकारी उपक्रमो के खर्चों के बारे मे जागरूक रहना स्वाभाविक है। यदि आडिट व्यवस्था को निम्न स्थान दिया गया, तो वित्तीय प्रशासन के स्तर मे गिरावट आने का भय है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि आडिट के सम्मान को कम करने के बजाय उसमे इस प्रकार का सुधार किया जाय कि वह अधिक व्यापारिक और कल्पनाशील किन्तु कम औपचारिक हो सके। भ्रष्टाचार की दशाओ और निर्णय सम्बन्धी त्रुटि की दशाओ के साथ एक-सा व्यवहार नही करना चाहिए, वरन् आडिट रिपोर्ट मे प्रस्तुत करते समय उचित सावधानी रखनी चाहिये। यह कहना भी गलत है कि आडिट 'पोस्ट-मार्टम' (अर्थात् घटना घटित होने के बाद उसकी आलोचना के रूप मे) होने के कारण बेकार होता है। इस सम्बन्ध मे सिडनी वेब (Sidney Webb) ने तर्क दिया है कि "यह तथ्य कि पोस्टमार्टम रोगी को जीवित नही कर सकता, इस बात का प्रमाण नही है कि पोस्टमार्टम परीक्षा हत्याओ का रहस्य पता लगाने मे कोई सहायता नही करती है।"*

आजकल वैधानिक निगमो का अकेक्षण केन्द्रीय सरकार द्वारा आडिटर जनरल के परामर्श से, नियुक्त अकेक्षको द्वारा किया जाता है। कम्पनी अधिनियम सन् १९५६ मे सरकारी कम्पनियो के अकेक्षण के लिये भी यही व्यवस्था है। अकेक्षण पद्धति के सम्बन्ध मे यह प्रश्न किया जाता है कि क्या सरकारी उपक्रमो के खातो के अकेक्षण के लिये किसी बाहरी आडिटर को रखना अच्छा होगा या आडिटर जनरल स्वय ही इस कार्य को करे (जैसा कि हवाई यातायात निगमो मे है) अथवा फ्रास व सोवियत रूस की भाँति किसी अत्यन्त विशिष्ट एव स्वतन्त्र सस्था से वित्तीय एव कार्य-क्षमता सम्बन्धी अकेक्षण कराना अधिक लाभप्रद रहेगा। रूस मे Khozrachyot इस प्रकार की एक विशिष्ट सस्था है। इसके कार्यों को वहाँ बहुत महत्व दिया जाता है। भारत मे भी ऐसी विशिष्ट सस्था की आवश्यकता है जो सरकारी उपक्रमो की न केवल वित्तीय वरन् कार्य-कुशलता का अकेक्षण भी करे।

---

* "The fact that post-mortem examination does nothing to keep the patient alive is no proof that the existence of a system of post-mortem examinations does not prevent merders."

(The control of Public Expenditure, p. 196)

(V) संसदीय नियंत्रण की समस्या (Problem of Parliamentary Control)—

विभागीय सस्थाओ की अपेक्षा सरकारी उपक्रमो को जनता के धन को एक विशाल मात्रा का अधिकार सौंपा जाता है तथा वे अपने कार्यो मे अधिक स्वतन्त्रता का उपभोग करते है। इन बातो को देखने हुये यह स्वाभाविक है कि पार्लियामेट की जिम्मेवारी भी ऐसी सस्थाओ के सम्बन्ध मे अधिक हो। इसमे किसी व्यक्ति को कोई भी आपत्ति नही हो सकती है कि सरकारी उपक्रम ससद के प्रति और इसके द्वारा जनता के प्रति जबावदेह हो। किन्तु कठिनाई तो तब उदय होती है जबकि इस सिद्धात के लागू करने का समय आता है और इसके रूप तथा विस्तार की परिभाषा करनी पडती है। सरकारी उपक्रमो पर ससद के नियन्त्रण की सीमा के सम्बन्ध मे दो मत है—कुछ विद्वानो की राय में पार्लियामेट ने स्वशासित सस्थाओ का निर्माण करके स्वय अपने विरुद्ध यह प्रतिबन्ध स्वीकार कर लिया है कि वह उनके मामलो मे नियत्रण नही करेगी, क्योकि ऐसा करने से उसकी कुशलता के कुप्रभावित होने का डर है। इसके विपरीत अन्य विचारको का मत यह है कि पार्लियामेट द्वारा स्वशासित सस्थाओ पर पर्याप्त नियत्रण होना उनके कुशल सचालन और सार्वजनिक जिम्मेदारी के उचित निष्पादन के हित मे है। लेकिन इन सस्थाओ के स्वस्थ विकास, कुशल सचालन एव कोषो के सदुपयोग की दृष्टि से उक्त दोनो ही मार्ग (यथेच्छारिता एव अत्यधिक हस्तक्षेप) गलत है। वास्तव मे इनके बीच का स्वर्णिम मार्ग (Golden Mean) ही अपनाना सर्वोत्तम है। चूँकि पार्लियामेट ने इन सस्थाओ की स्थापना कुछ भिन्न स्तर पर की है, इसलिये यह स्वाभाविक है कि वह इन पर अपने नियन्त्रण की मात्रा मे कुछ कमी कर। यह कमी कितनी होनी चाहिए, यह उस सरकारी उपक्रम के स्वभाव पर, उसकी प्रगति की अवस्था एव अन्य सम्बन्धित परिस्थितियों पर निर्भर होती है। चूँकि इन सस्थाओ के लिये व्यापारिक सिद्धान्तो पर कार्य करना जरूरी बना दिया गया है, इस कारण भी ससद को इन सिद्धान्तो को मान्यता देनी चाहिए तथा उन पर नियत्रण करने समय उचित छूट रखनी चाहिए। डाक्टर अप्पल बी ने भारत मे ससद द्वारा रखे गये नियन्त्रण की कडी आलोचना की है। उनका कहना है कि भारत मे ससद-सदस्य सरकार को उसके बढते हुए कार्य-भार के अनुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता प्रदान करने को तैयार नही है। उन्हे सरकारी अफसरो पर घोर अविश्वास है, जिससे वे शीघ्रता से उपयुक्त कदम उठाने की जिम्मेदारी सँभालने को तैयार नही होते।[1] उनके मत मे एक सबसे सरल तरीका (जिसे अपनाकर ससद प्रशासन के

---

1 "The sift from an agitational function directed against government to a positive responsibility for the large scale operation of a dynamic government has naturally been slowest here among Parliamentarians, it is a difficult sift to make. The lag in this necessary sift entails a lingering distrust of the bureaucracy, and this is hostile to the achievement of the system of delegation necessary to speedy and magnified action." (Dr. Appele by)

ऊपर अपना अनुकूल प्रभाव डाल सकती है) यह है कि वह प्रशासन के कार्यों की आलोचना की बातें ढूंढने के बजाय प्रशंसा की बातें तलाश किया करें। किन्तु डाक्टर अप्पल बी का यह तरीका हमारी सम्मति मे उपयुक्त नही है, क्योंकि साहस, पहलपन व सूझ-बूझ के कार्यों की प्रशंसा की जा सकती है, लेकिन यह भूलना ठीक नही है कि ससद पर जनता के धन की सुरक्षा का भी भार है। अनेक ऐसे अवसर उदय हो सकते हैं जबकि सरकार के कार्यकारी अग को नियन्त्रित एव सावधान करने की आवश्यकता हो। अतः सरकारी अफसरो को हर मौके पर हरी झण्डी नही दिखाई जा सकती है।

सरकारी उपक्रमो पर ससद का नियन्त्रण चार प्रकार से होता है—(१) प्रश्नोत्तर, (२) ग्राट की वार्षिक माँग के समय वाद-विवाद, (३) कम्पनी अधिनियम की धारा ६३६ के अन्तर्गत सरकारी कम्पनियो के सम्बन्ध मे वार्षिक रिपोर्टों के प्रस्तुत करने के अवसर पर वाद-विवाद और (४) पब्लिक एकाउन्ट्स कमेटी तथा एस्टीमेट कमेटी की रिपोर्टों का विवेचन। लोक-सभा मे कम्पनी नमूने की सरकारी सस्थाओ के सम्बन्ध मे जो प्रश्न पूछे जाते हैं उनके विश्लेषण से यह पता लगता है कि सरकारी उपक्रमो के कार्यवाहन के सम्बन्ध मे कितनी दिलचस्पी ली जाती है। ससद के प्रति सरकारी उपक्रमो की जिम्मेदारी को सुधारने के लिए निम्न कदम उठाये जा सकते है :—

(१) इन उपक्रमो के खाते एव वार्षिक रिपोर्टें काफी विस्तृत बनाई जायँ, जिससे उन पर वाद-विवाद करने मे सुगमता हो।

(२) ससद मे सरकारी उपक्रमो पर नियमित रूप से वाद-विवाद के आयोजन होने चाहिए, किन्तु उनका मध्यान्तर काफी दीर्घ हो।

(३) सस्थाओ को व्यापारिक नमूने के बजट तैयार करने के लिये प्रोत्साहन दिया जाय तथा सरकार के मुख्य बजट के साथ सलग्न करके उसे सामान्य रूप मे स्वीकार करा लिया जाय।

(४) पब्लिक एकाउन्ट्स कमेटी एव एस्टीमेट कमेटी उन पर पर्याप्त नियन्त्रण रखे। पब्लिक एकाउन्ट्स कमेटी कई वर्षों से उनकी रिपोर्टों एवं खातो की सफलतापूर्वक परीक्षा करती आ रही है। ऐस्टीमेट कमेटी ने भी अपने कर्तव्य को केवल एस्टीमेटो की ऊपरी परीक्षा तक सीमित नही रखा है वरन् वह वर्तमान, भविष्य एवं भूतकालीन कार्यों के सदर्भ मे उनकी विवेचना करती है, ताकि वे वास्तविक परिणाम का प्रतिनिधित्व कर सकें। पाँच-पाँच वर्षों के पश्चात् अथवा इससे पहले यदि ऐसा सभव हो सके, सरकारी उपक्रमो के कार्यवाह की परीक्षा कराते रहने से ससद का उन पर प्रभावपूर्ण नियन्त्रण कायम हो जायगा तथा ऐस्टीमेट कमेटी एक अतिरिक्त सुरक्षा का कार्य करेगी और संसद एव सरकारी उपक्रमो के बीच एक स्वस्थ सम्बन्ध विकसित करने मे सफल होगी।

(५) प्रत्येक सरकारी उपक्रम के लिये ससदीय नियन्त्रण का रूप एव उसकी सीमा पृथक पृथक रूप से निर्धारित करना चाहिये, क्योकि सब उपक्रमों के लिए कोई एक तरीका नही बनाया जा सकता ।

(६) ससद का अन्य देशो के अनुभव से भी लाभ उठाना चाहिए और अपनी नियत्रण पद्धति का निरन्तर पुनर्विचार करते रहना चाहिए, जिसमे वह अधिक से अधिक प्रभावशाली बन सके ।

(७) ब्रिटेन की भाँति भारत मे भी एक ऐसी रूढि (Convention) को जन्म देना आवश्यक है कि ससद मे आन्तरिक प्रबन्ध, निगम के व्यक्तिगत सदस्यो के वेतन अथवा उनके कर्मचारियो की साम्प्रदायिक आधार पर नियुक्ति तथा क्रय विक्रय की विस्तृत बातो से सम्बन्धित प्रश्न न पूछे जावें । यह भी आवश्यक है कि सरकारी उपक्रमो को राजनैनिक दलबन्दी से बचाया जाय ।

(८) ब्रिटेन मे स्टैन्डिग आर्डर्स के अन्तर्गत एक सिलेक्ट कमेटी हाउस ऑफ कामन्स द्वारा नियुक्त की गई थी, जिसका उद्देश्य सरकारी उपक्रमो को देखभाल करना तथा उनके हिसाब-किताब की जाँच करना था, किन्तु उनके कार्यवाहन मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप वे नही कर सकती थी । भारत मे भी एक ऐसी स्टैन्डिग कमेटी नियुक्त करने की आवश्यकता है, जो प्रकाशित खातो और रिपोर्टों का ध्यान करके, सम्बन्धित सस्थाओ से अन्य आवश्यक सूचना प्राप्त करके तथा इन निगमो के अधिकारियो से वार्तालाप करके सरकारी उपक्रमो की देखभाल करे । यह स्टैंडिग कमेटी ससदीय उत्तरदायित्व के निष्पादन मे अधिक सुविधा दे सकेगी, क्योकि ऐस्टीमेट कमेटी व पब्लिक एकाउण्ट्स कमेटी कार्यभार की अधिकता के कारण इस दिशा मे अधिक समय नही दे सकती हैं ।

कृष्णमैनन कमेटी ने भी सरकारी उपक्रमो के सम्बन्ध मे ससद की एक समिति नियुक्त करने का सुझाव दिया था, जो कि एक दोष ढूँढने वाली सस्था या उच्च स्तरीय प्रबन्ध बोर्ड न होकर एक ऐसी कमेटी होगी जिसे उन परिस्थितियो की पूर्ण जानकारी है जिनमे कि सस्थाओ को कार्य करना पडता है ।

स्टैंडिग कमेटी की नियुक्ति के द्वारा पार्लियामेट के अनेक सदस्यो को सरकारी उपक्रमो के कार्यवाहन से परिचित होने का अवसर मिल सकेगा और तब वे ससद मे उनकी रिपोर्टों पर अधिक योग्यता से विचार-विमश कर सकेंगे ।* दुर्भाग्य से देश मे अभी ऐसे जानकार व्यक्तियो का ससद मे अभाव है ।

---

* But the vast majority feel themselves lost and it is absolutely necessary to provide an opportunity to them to keep themselves fully acquainted so that they can exercise Parliamentary Control in a well-informed and vigilant manner."

(Report on Administrative Problems of State Enterprises in India 1957, p. 9)

(VI) जनता को सरकारी उपक्रमों की प्रगति के बारे में सूचना देना
(Public Accountability)

जनता को सरकारी उपक्रमो की प्रगति के बारे मे सूचना देने के स्तर मे बहुत सुधार की आवश्यकता है। ससद या जनता के लिये इस सूचना की उपयोगिता इस बात पर निर्भर होती है कि वार्षिक खातो मे कितनी सूचना दी गई है। दुर्भाग्य से भारत मे सरकारी उपक्रमो के बारे मे वित्तीय रिपोर्टें उतनी सुगमता से जनता को उपलब्ध नही होनी जितनी सुगमता मे ब्रिटेन मे होती हैं। रिपोर्टें अपूर्ण भी होती है और बहुत कम सूचना प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त सरकारी उपक्रमों के हिसाब-किताब भी सरकार के नियमित विभागो की भाँति रखे जाते है, व्यापारिक आधार पर नही रखे जाते। लागत लेखो (Cost accounts) का महत्त्व भी इन सस्थाओ मे अनुभव नही किया जाता। ऐसे लेखो के अभाव मे व्यय का नियन्त्रण और कुशल कार्य सचालन कठिन हो जाता है। मन्त्रियो की वार्षिक रिपोर्टों मे सरकारी उपक्रमो के बारे मे इतनी सक्षिप्त और सामान्य सूचना दी जाती है कि इनसे किसी भी प्रकार का कोई निष्कर्ष निकालना कठिन होता है। अत. सरकारी उपक्रमो की प्रगति के बारे मे सूचना देने के ढग में निम्न सुधार किये जायें :—

(१) सरकारी उपक्रमों की वार्षिक रिपोर्टें एव खाते व आडिट रिपोर्टें अधिक विस्तार से बनाये जायें, ताकि उनके आधार पर विचार विमर्श सुगमता से हो सके। उपक्रम की प्रत्येक क्रिया—संगठन सम्बन्धी हो या कार्य-वाहन सम्बन्धी, उत्पादन अर्थ-प्रबन्धन अथवा कर्मचारी-वर्ग सम्बन्धी—के बारे मे उचित रिपोर्ट होनी चाहिये। प्रत्यक क्रिया के वित्तीय परिमाण को भी स्पष्ट कर देना चाहिये। मन्त्रियो द्वारा दिये गये निर्देश विशेष रूप से लिखे जायें।

(२) लागत लेखे रखे जायें, व्यापारिक नमूने के बजट प्रत्येक उपक्रम के लिये बनाकर राज्य के मुख्य बजट के साथ नत्थी किये जाये और मुख्य बजट के साथ-साथ उनको भी पास कर लेना चाहिये।

(३) जहाँ-जहाँ सम्भव हो वहाँ परामर्शदाता समितियो एव उपभोक्ता समितियो की स्थापना की जाय और उनसे कहा जाय कि वे ससद को अपनी सामयिक रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

(४) एस्टीमेट कमेटी का सुझाव है कि प्रत्येक सरकारी उपक्रम गत वर्ष की अपनी क्रियाओ के बारे मे अपनी एक विस्तृत वार्षिक रिपोर्ट दे, जिसमे गत वर्ष की प्रगति, व्यय, उत्पादन आदि से सम्बन्धित पिछले वर्षों के तुलनात्मक आँकडे, चिट्ठा एव लाभ-हानि खाता, प्रशासनिक परिवर्तन, वर्ष की महत्त्वपूर्ण घटनायें एव अगले वर्ष की सभावित नीति व कार्य-क्रम के बारे मे उल्लेख हो। ये रिपोर्टें सम्बन्धित मत्रालय का बजट पेश होने के पूर्व ही संसद को प्रस्तुत कर देनी चाहिये।

एस्टीमेट कमेटी ने कुछ सरकारी कम्पनियो की वार्षिक रिपोर्टों की प्रकाशन तिथियो का सकलन एव विश्लेषण करके यह पता लगाया था कि रिपोर्टों को प्रस्तुत करने मे ४ से लेकर ३५ महीने तक की देर हो जाती है। अतः उसका यह सुझाव था कि सभी सरकारी उपक्रमो के खाते एव रिपोर्टें अगले वर्ष के सामान्य बजट को ससद मे प्रस्तुत करने से पहले ही पेश कर दी जानी चाहिए।

(५) जनता मे सरकारी उपक्रमो के बारे मे उचित प्रचार करना चाहिए। इस विषय मे अनुमान (Estimate) समिति की यह सिफारिश है कि देश मे होने वाली सभी मुख्य प्रदर्शिनियो मे सार्वजनिक क्षेत्र की प्रगति का प्रचार करने के लिये स्टाल लगाने चाहिए। इस सम्बन्ध मे सूचना एव प्रसार मत्रालय के पब्लिकेशन्स डिवीजन की सहायता भी ली जा सकती है।

मन्त्रियो का दायित्व—सरकारी उपक्रमो की स्थापना करने वाले कानूनो मे ससद ने सरकार को कुछ शक्तियाँ प्रदान की हुई हैं, जिनमे निम्न को सम्मिलित किया जाता है :—(i) सस्था का प्रशासन मडल नियुक्त करना, (ii) पूँजी मे वृद्धि करने की सम्मति देना, (iii) उधार लेने के अधिकार को सीमित करना, (iv) निश्चित से अधिक व्यय करने की शक्ति देना, (v) सरकारी उपक्रमो को निर्देश देना। इन शक्तियो के देने का उद्देश्य इस बात की व्यवस्था करना है कि ये स्वशासित उपक्रम इस प्रकार से शासित किये जायें कि वे सरकार की एव राष्ट्र की नीतियो से असगत हो। व्यवहार मे मन्त्रियो के लिये यह सम्भव नही है कि वे अपने को केवल उन शक्तियो के प्रयोग तक ही सीमित रख सके जो कि उन्हे कानून मे दी गई हैं। अत. सम्बन्धित मत्री का सस्थाओ की नीतियो का मार्ग-दर्शन एव नियन्त्रण करने मे बहुत हाथ होता है। उसे सस्था की सामान्य सफलता एव विफलता की जिम्मेदारी उठानी चाहिए। उसके दायित्व का क्षेत्र विस्तृत होना चाहिए।

कृष्ण मेनन कमेटी ने भी इस बात पर जोर दिया है कि प्रत्येक दशा मे मन्त्री को ससद के विरुद्ध दायी होना पडेगा और 'निर्देशो द्वारा जिम्मेदारी के हस्तातरण' (Delegation by Directives) की आड मे अपने को ससदीय दायित्व से नही बचा सकता। किन्तु यह आवश्यक है कि बोर्ड ऑफ डाइरैक्टर्स एव मन्त्री के कार्यों के मध्य एक स्पष्ट अन्तर हो। यदि मत्री को कम्पनियो के सामान्य कार्यों पर तथा उन मामलो पर जो कि बोर्ड ऑफ डाइरैक्टर्स के अधिकार मे हैं, प्रश्नो का उत्तर देना पडता है, तो इसका अर्थ यह होगा कि वह अपने क्षेत्र से बाहर दायित्व स्वीकार कर रहा है। यदि ऐसे प्रश्नो पर कोई मन्त्री उत्तर देने मे सकोच करे, तो इसका यह अर्थ कदापि नही लगाना चाहिए कि वह अपने दायित्व से बच रहा है।

समन्वय समिति

मितव्ययिता अनुभव-लाभ एव सार्वजनिक नीति के दृष्टिकोण से यह

आवश्यक है कि विभिन्न सरकारी उपक्रमो मे समन्वय रहे। एस्टीमेट्स कमेटी ने इस आशय के लिये एक सेंट्रल प्लानिंग अथारिटी की स्थापना का सुझाव दिया था। लेकिन कृष्ण मेनन कमेटी ने इस सुझाव को अस्वीकृत कर दिया क्योंकि ऐसी अथारिटी गाडी के पाँचवें पहिये का कार्य देगी, मन्त्रियों के कार्य मे सहायक होने के बजाय बाधक होगी और संस्थाओं के उत्साह एव पहलपन की भावनाओं पर आघात करेगी। समिति की राय मे, समन्वय मन्त्रि-स्तर पर होना चाहिये। मंत्री अपनी अन्तर्गत संस्थाओं को परस्पर परामर्श करने का सुझाव (और निर्देश भी) दे सकता है।

सार्वजनिक क्षेत्र का महत्त्व बढ़ जाने के कारण वाणिज्य एव उद्योग मंत्रालय ने सितम्बर सन् १९५७ मे सार्वजनिक क्षेत्र के लिये वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री की अध्यक्षता मे एक समन्वय समिति (Coordinating-Committee) की स्थापना की थी। इस समिति का उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की प्रगति पर निरीक्षण रखना है। यह समिति विभिन्न इकाइयों के सामने आने वाली सभी मुख्य एव महत्वपूर्ण समस्याओं के एक क्लियरिंग हाउस (अर्थात् समाधान गृह) का कार्य करेगी और सरकार और औद्योगिक इकाइयों के मध्य समन्वय व सम्पर्क रखेगी। इसके विशेष उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

(१) सभी उपक्रमो की प्रगति पर विचार करना।

(२) विभिन्न इकाइयों के समस्त प्रशिक्षण एव उत्पादन-कार्यक्रमो का समन्वय करना।

(३) श्रम, वित्त, उत्पादन एव विकास नीतियों पर विचार-विमर्श करना।

(४) अनुसंधान कार्यक्रमों का विवेचन करना।

यह समिति विभिन्न बोर्डों को उनके सामान्य कार्य मे सहायता करने के अतिरिक्त उन्हें आवश्यकता पड़ने पर टैक्नीकल पथ प्रदर्शन भी प्रदान करेगी। वह विभिन्न इकाइयों के कार्यकलापों का स्वतंत्र मूल्यांकन करने के हेतु देश के विशेषज्ञों की सहायता लेगी। समिति की बैठक ३ से ६ महीने की अवधि मे कम से कम एक बार अवश्य होगी।

समिति ने निम्न विभिन्न समस्याओं के हल के लिये उपसमितियों की स्थापना कर दी है :—(अ) श्रम एव अन्य कर्मचारियों से सम्बन्धित समस्याएँ, (ब) वित्त, क्रय एव विक्रय संगठन सम्बन्धी समस्याएँ और (स) उत्पादन एव प्रशिक्षण सम्बन्धी समस्याएँ। ये समितियाँ विभिन्न इकाइयों के साथ सम्पर्क मे रहेंगी और उनके बोर्डों के साथ उनकी विभिन्न समस्याओं पर विचार विमर्श करके केन्द्रीय समन्वय समिति को अपनी उपयुक्त रिपोर्ट व सिफारिश दिया करेंगी। समन्वय समिति को तभी सफल कहा जा सकेगा जबकि वह संसदीय नियन्त्रण एव मन्त्रित्व सम्बन्धी दायित्व की सीमाओं के भीतर कुशलता, मितव्ययिता एवं प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य करती रहे। उसमे कार्य करने की इतनी ही लोच होनी चाहिए जितनी कि एक प्राइवेट उपक्रम मे होती है।

STANDARD QUESTIONS

1. The Government of India is highly conscious of the problem pertaining to the management of State owned industrial enterprises." Discuss the various steps taken by the Government of India since independence to evolve a suitable structure for the management of State owned concerns.
2. Discuss the following problems relating to the management of State enterprises in India :—
   (a) Autonomy of management
   (b) Internal Administration
   (c) Audit.
   (d) Parliamentary Control.
   (e) Ministrial Responsibility.

अध्याय ५५

प्राकृतिक प्रसाधन

(Natural Resources)

भूमिका—

किसी एक प्रसाधन के स्वाभाविक गुण या उसकी विशेषतायें अकेले ही उसे उत्पादन करने योग्य बनाने के लिये पर्याप्त नही हैं और उसका एकाकी रूप से कोई आर्थिक मूल्य हो सकता है। यह आवश्यक है कि उत्पादन मे भाग लेने वाले अन्य पूरक प्रसाधन भी उपलब्ध हो तथा जो वस्तु बन कर तैयार हो उसके लिये समुचित बाजार भी हो। सक्षेप मे, किसी एक प्रसाधन का मूल्य अन्य प्रसाधनो के मूल्य पर निर्भर होता है। यही कारण है कि देश के आर्थिक विकास के सदर्भ मे हमे किसी विशेष प्रसाधन का एकाकी रूप मे नहीं वरन् अन्य प्रसाधनो के साथ-साथ अध्ययन करना चाहिये। यह भी नही भुलाना चाहिये कि प्राकृतिक प्रसाधनो पर टेक्नोलॉजी की अवस्था, उत्पादन या सगठन के ढग, सरकार की कुशलता एव नीतियो तथा समाज की सामान्य रचना भी प्रभाव डालती है।

प्राकृतिक प्रसाधन ही औद्योगीकरण के लिये सब कुछ नहीं—

प्राकृतिक प्रसाधन ही किसी देश के औद्योगिक विकास के एक मात्र निर्धारक नही होते । देशो की सम्पन्नता या विपन्नता उनमे किसी प्राकृतिक साधन के विद्यमान होने या समाप्त होने से सम्बन्धित नही है । विश्व के कुछ देशो ने बहुत अधिक उन्नति कर ली है, किन्तु इसके लिये सम्पूर्ण श्रेय केवल उनके प्राकृतिक साधनो को ही नही दिया जा सकता । यह तर्क करना अनुचित है कि प्रगतिशील देशो मे प्रचुर प्राकृतिक साधन हैं, जबकि अर्द्ध विकसित देशो मे प्राकृतिक साधनो की कमी है । वास्तव मे, "ईश्वर ने ससार को दो क्षेत्रो मे—विकसित एव अर्द्ध विकसित, जिनमे से प्रथम मे प्रचुर प्राकृतिक साधन हो और दूसरे मे कम, नही बाटा है । जिन देशो को आज प्रगतिशील कहा जाता है उन्होने भी अर्द्ध विकसित कहे जाने वाले देशो के स्तर से ही अपनी उन्नति की है ।" बहुत दिनो तक वे अर्द्ध विकसित दशा मे ही पडे रहे । अतः पहली महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्राकृतिक प्रसाधन ही औद्योगीकरण के लिये सब कुछ नही हैं । दूसरे, औद्योगिक एव व्यापारिक नेतृत्व प्राय. एक देश से दूसरे देश को, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को हस्तान्तरित होता रहा, यद्यपि उन क्षेत्रो के प्राकृतिक साधनो मे कोई विशेष भेद न था । तीसरे, प्रगतिशील देश किसी विशेष जलवायु-खण्ड मे ही पाये जाते हो, ऐसी बात भी नही है । चौथे, जो देश किसी समय प्रगतिशील माने जाते थे वे भी बाद म अपनी शान खो बैठ और अर्द्ध विकसित देशो की श्रेणी मे सम्मिलित हो गये । उदाहरण के लिये, दक्षिणी यूरोप एव भूमध्य रेखीय प्रदेशो के साथ यही दुर्भाग्य हुआ ।

उन्नतिशील देशो ने अपने प्राकृतिक साधनो का, पूँजी, सगठन एव टेक्नीकल योग्यताओ तथा श्रम के प्रयोग द्वारा, पता लगाकर और विकसित करके मूल्य बढा लिया है । उनके पास पहले उत्पादन के जिस साधन की कमी थी उसकी पूर्ति करके उन्होने प्राकृतिक प्रसाधनो की उपयोगिता मे वृद्धि कर दी है । उदाहरण के लिये, सयुक्त राज्य अमेरिका को ही लीजिये । इसमे प्रचुर प्राकृतिक साधन उपलब्ध है, लेकिन एक लम्बे अरसे तक वे अशोषित पडे रहे, क्योकि वहाँ के आदिवासियो ने उनका प्रयोग नही किया । प्राकृतिक साधनो के होते हुये भी वे निर्धनता एव कष्टो का जीवन व्यतीत करते रहे । इसी प्रकार, यदि किसी देश मे प्राकृतिक साधनो का अभाव है, तो केवल इस कारण ही उसका विकास नही रुकता, बशर्ते अन्य दृष्टियो से वह देश अभावमय न हो । वस्तुओ व सेवाओ का निर्यात करके वह देश अन्य देशो से अपनी कमी के प्रसाधन खरीद सकता है । अत यदि प्राकृतिक प्रसाधन उचित आर्थिक शर्तों पर उपलब्ध हो, तो इस बात का कोई महत्त्व नही है कि उन प्राकृतिक साधनो का स्वामी कौन है, अथवा वे कहाँ पर स्थित है । हाँ, यह अवश्य है कि विदेशी प्राकृतिक साधनो की उपलब्धता मे राजनैतिक कार्यवाही द्वारा बाधा पड सकती है । ऐसी दशा मे प्राकृतिक साधनो के स्वामित्व एव स्थान का प्रश्न महत्त्वपूर्ण बन जाता है ।

प्राकृतिक प्रसाधनो का मूल्य उनकी आर्थिक उपलब्धता पर निर्भर है—

यह मान लिया कि किसी देश की आर्थिक उन्नति केवल उसके ज्ञात प्राकृतिक

साधनो पर ही निर्भर नही होती। अतः यदि किसी देश के प्राकृतिक साधनो से सम्बन्धित आंकडे एकत्र करके हमारे सामने रखे जायें, तो केवल उनके ही आधार पर हम उस देश की औद्योगिक उन्नति का अनुमान नही लगा सकते। फिर आँकडे एकत्र करने मे त्रुटि भी हो सकती है। आँकडे अप्रचलित या पुराने भी पड सकते है, क्योकि वस्तुओ एव साधनो के बाजार मे मूल्य प्रायः घटते-बढते रहते है और मूल्यो के घटने-बढने से प्राकृतिक प्रसाधनो की पहुँच बाजारो तक तथा पूरक प्रसाधनो तक अधिक-कम हो जाती हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राकृतिक साधनो का मूल्य आर्थिक पहुँच या उपलब्धता (Economic accessibility) और मूल्यो के उतार-चढाव पर निर्भर होता है। आर्थिक पहुँच एव मूल्यो के उतार-चढाव बहुत ही अनिश्चित एव अस्थाई घटक हैं। आर्थिक उपलब्धता ने अनेक अर्द्ध विकसित देशो की आर्थिक दशा को बहुत प्रभावित किया है। आर्थिक उपलब्धता के अनुकूल हो जाने पर बहुत थोडे ही समय मे उन्होने अपना विकास कर लिया। उदाहरण के लिये, स्वेज नहर के खुलने पर इङ्गलेड के लिये आर्थिक उपलब्धता अधिक अनुकूल हो गई और उसका व्यापार व्यवसाय बहुत बढ गया। अब हम कुछ प्रमुख प्राकृतिक प्रसाधनो पर विचार करगे।

भारत के प्राकृतिक प्रसाधन—

योजना कमीशन की नियुक्ति दो बातो के लिये हुई थी :—प्रथम, देश के प्राकृतिक एव मानवीय साधनो का अनुमान लगाना और जो साधन देश की आवश्यकताओ को देखते हुये कम प्रतीत हो उनकी वृद्धि की सभावनाओ पर विचार करना, तथा, दूसरे, देश के विभिन्न साधनो के सतुलित और प्रभावशाली प्रयोग के लिये एक योजना बनाना। अत. प्रथम पच-वर्षीय योजना ने उस समय उपलब्ध सूचना के आधार पर देश के साधनो का विवरण प्रस्तुत किया, उनकी समस्याओ का सकेत किया और सर्वे व अनुसन्धान के लिये कायक्रम निश्चित किये। सर्वे सगठनो को विस्तृत एव सुसज्जित करने के उपयोगी सुझाव भी दिये। आजकल अनेक सर्वे व अनुसन्धान सगठन कार्यशील है, जिनमे से कुछ प्रमुख के नाम इस प्रकार है :—The Indian Council of Agricultural Research, The Central Water and Power Commission, Central Board of Irrigation and Power, Geological Survey of India, Oil and Natural Gas Commission, Indian Bureau of Mines, Survey of India, Forest Research Institute, Atomic Energy Commission, The Council of Scietnific Research आदि। इन्होने कई नये सर्वे व अनुसन्धान

किये हैं जिनसे देश के प्राकृतिक साधनो का अधिक सही अनुमान लग सका है। किन्तु प्राकृतिक साधनो के लिये बढी हुई मांग ने टेक्नोलॉजीकल विकासो को प्रेरित किया है, जिससे कुछ पिछले दोष दूर होकर साधनो की पूर्ति बढ गई है। प्राकृतिक साधनो की माग एव पूर्ति मे परिवर्तन लाने वाले गतिशील घटक यह आवश्यक करते हैं कि प्राकृतिक साधनो का निरन्तर अध्ययन किया जाता रहे तथा तत्सम्बन्धी नीतियो मे भी सशोधन किये जावे। प्राकृतिक प्रसाधनो पर एक समन्वित ढग से विचार करना चाहिये और दीर्घकालीन आवश्यकताओ के लिये उनका अनुसन्धान व प्रयोग नियोजित करना चाहिये। जिस सीमा तक साधनो का अध्ययन किया गया है तथा भावी आवश्यकताओ के सदर्भ मे उनके प्रयोग की सम्भावनाओं पर विचार किया गया है। वह हमारी अर्थव्यवस्था के भावी विकास की दर को निर्धारित करने मे एक महत्त्वपूर्ण घटक है। सतुलित विकास के लिये यह भी आवश्यक है कि देश के प्रत्येक प्रमुख क्षेत्र के लिये उपलब्धनाओ, आवश्यकताओ एव सम्भावनाओ का अनुमान लगाया जाय। अभी हाल मे ही योजना कमीशन के अन्तर्गत एक राष्ट्रीय सगठन प्राकृतिक साधनो के अध्ययन के लिये स्थापित किया गया है, जो अन्य सगठनो की सहायता करता है तथा उनके कार्यों का समन्वय करता है।

(I) भूमि (Land Resources)—

देश का सबसे महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक साधन भूमि (Land) है, जो कि कृषि उत्पादन के लिये आधार का काम करता है। जबकि जन सख्या वृद्धिशील है भूमि का क्षेत्रफल स्थिर है तथा उसका एक निश्चित अनुपात ही कृषि के लिये उपलब्ध है। भूमि से सम्बन्धित कई समस्याओ पर ध्यान देना आवश्यक है ,–(I) सिचाई एव अन्य उपायों द्वारा भूमि की उत्पादकता मे काफी वृद्धि की जा सकती है , (II) कुछ बेकार पडी हुई भूमि को भी कृषि के अन्तर्गत लाया जा सकता है, (III) बढती हुई जन सख्या के लिये मकान आदि बनाने से कृषि भूमि कम हो जायेगी, (IV) यातायात के साधनो के विकास के कारण भी उपजाऊ भूमि कम होने की सम्भावना है, एव (V) शीघ्र नगरीयकरण एव बडे शहरो के विकास के कारण पार्क आदि के लिये भूमि की आवश्यकता होगी। इन सब बातो के सदर्भ मे यह प्रयास होना चाहिये कि जो कुछ उर्वरा भूमि बच सके बचाई जाय।

भूमि का उपयोग (Land Utilisation)—

देश का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल ८०६ मि० एकड है, जिसमें से रिपोर्ट मिलने वाले क्षेत्रफल की मात्रा ७२१ मि० एकड है। शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल ३१८ मि० एकड है। भूमि उपयोग के वर्तमान एव सभावित स्वरूप पर निम्न तालिका मे प्रकाश डाला गया है :—

Table 1.

Land utilisation in 1965-66

Particulars of Area	(Area in million acres)		
	1955-56	1960-61	1965-66
Tatal reporting area	720·0	721·0	721·0
Forests	125 6	131 0	132·0
Land under miscellaneous tree crops and groves	13·9	14 0	15·0
Permanent pastures and other grazing lands	28 4	32 0	32·0
Culturable waste	54·8	47·0	40·0
Barren and uncultivated land and land put to non agricultural use	118·7	114·0	114 0
Fallow lands other than current fallows	30·9	28 0	26 0
Current fallows	29·5	28 0	25·5
Net area sown	318·2	327·0	335·0
Area sown more than once	44 4	51·5	67 0
Gross area sown	362 6	378·5	402·0

भारत मे प्रति व्यक्ति कृषि भूमि की उपलब्धता लगभग ०·८२ एकड है, जबकि इगलैंड मे ०·४२, जर्मनी मे ०·४८, जापान मे ० १७, चीन मे ०·५०, अमेरिका मे २·६८ तथा रूस मे २ ५६ है।

मिट्टी सम्बन्धी सर्वे (Soil Surveys)—

मिट्टी सम्बन्धी सर्वे कराने का मुख्य उद्देश्य विभिन्न प्रकार की मिट्टियो का वर्गीकरण करना तथा स्थान निश्चित करना, विभिन्न मिट्टियो के अन्तर मालूम करना तथा विभिन्न मिट्टियो के ज्ञान का समन्वय करना है, जिससे भूमि के अधिक उत्तम प्रयोग की योजनायें बना सक। सन् १९५५ मे भारतीय कृषि अनुसन्धान सस्था द्वारा एक अखिल भारतीय मिट्टी सर्वे योजना प्रारम्भ की गई थी। चूँकि एक से अधिक राज्यो की मिट्टी सम्बन्धी सामान्य समस्यायें है तथा प्रत्येक राज्य का अपना मिट्टी-सर्वे-सगठन नही है, इसलिये भारत के चार प्रमुख मिट्टी प्रदेशो के लिये प्रादेशिक आधार पर लेबोरेटरियां खोलने का निश्चय किया गया—प्रथम दिल्ली मे नदी या बाढ द्वारा लाकर छोडी गई मिट्टी के प्रदेश के लिये, दूसरी पूना (अब नागपुर) मे काली मिट्टी के प्रदेश के लिये, तीसरी खडगपुर (अब कलकत्ता) मे लाल एव लेटेराइट मिट्टी के प्रदेश (I) के लिये तथा चौथी बगलौर मे लाल एव लेटेराइट मिट्टी के प्रदेश (II) के लिये। तीन वर्ष बाद उक्त योजना को केन्द्रीय भूमि सरक्षण बोर्ड द्वारा बनाई गई मिट्टी एव भूमि

प्रयोग सम्बन्धी योजना से समन्वित कर दिया गया, जिससे छह प्रमुख नदी घाटी योजनाओ (मचकुड, हीराकुड, चम्बल, भाखरा नगल, कोसी एव दामोदर) के प्रभाव-क्षेत्र मे मिट्टी एव भूमि प्रयोग सम्बन्धी सर्वे करने मे सुविधा हो जाय। नदी घाटी योजनाओ के प्रभाव क्षेत्र (Catchment areas) मे सर्वे करने का उद्देश्य भूमि सरक्षण के उपाय करने की दृष्टि से विभिन्न मिट्टियो की सरक्षण क्षमता का पता लगाना है। कुल ५,००,००० वर्ग मील का सर्वे करना है। सन् १९६१ तक १८,००० वर्ग मील का अखिल भारतीय योजना के अन्तर्गत सर्वे हो चुका है। इसमे से ३,००० वर्ग मील नदी घाटी योजनाओ के प्रभाव क्षेत्र मे आते है। राज्यो मे मिट्टी सर्वे सगठनो ने लगभग ५०,००० वर्ग मील का सर्वे किया है। तृतीय योजना काल मे अखिल भारतीय कार्यक्रम के अन्तर्गत लगभग २३,००० वर्ग मील क्षेत्रफल के सर्वे की योजना है।

बिना जोती भूमि का सर्वे —

बिना जोती हुई भूमि को कृषि के अन्तर्गत लाकर, एक फसल वाले क्षेत्र मे दो फसलें पैदा कर तथा गहन कृषि के अन्य उपायो द्वारा कृषि उत्पादन मे बहुत वृद्धि की जा सकती है। दुहरी फसल पैदा करके बोये गये कुल क्षेत्रफल मे वृद्धि करने की बहुत गुजाइश है। यह आशा की गई है कि एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्रफल सन् १९६०-६१ मे ५२ मि० एकड से सन् १९६५-६६ तक ६७ मि० एकड हो जायगा। सन् १९५५-५६ मे कृषि योग्य अन-जोती भूमि का क्षत्रफल लगभग ५५ मि० एकड था। जून सन् १९५६ मे भारत सरकार ने एक कमेटी नियुक्त की थी, जिसका उद्देश्य भूमि का सर्वे करके उसे 'ऊसर भूमि के अतिरिक्त अन जोती भूमि एव 'ऊसर भूमि' की श्रेणियो मे वर्गित करना तथा ऐसे क्षेत्र का पता लगाना था जहाँ सुधार एव पुनर्वास के लिये विशाल भूमि खड उपलब्ध हो। कमेटी ने ७ राज्यो मे सर्वे पूरा कर लिया है। इनमे कृषि के लिये उपलब्ध अन-जोती भूमि २५० एकड या अधिक के खण्डो मे उपलब्ध है और इसका कुल क्षेत्रफल लगभग १ मि० एकड है। किन्तु कमेटी ने यह स्वीकार किया है कि ये आकडे विश्वसनीय है। अधिक विश्वसनीय आकडे प्राप्त करने के लिये reconnaissance surveys करानी चाहिये।

(II) वन सम्बन्धी प्रसाधन (Forest Resources)—

१'२६ मि० वर्ग मील के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल मे से लगभग २,७४,००० वर्ग मील अर्थात् २१'८% क्षेत्रफल वनो से ढका है। जलवायु एव ऊँचाई के अन्तरो के कारण भारतीय वनो मे विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक वनस्पति पाई जाती है। वनो को निम्न प्रकार वर्गित किया जा सकता है :—

Table 2.

Classification of forests

Serial No.	Particulars	Percentage
(I)	Temperate forests	
	(a) Coniferous	3
	(b) Broad-leaved	4
(II)	Tropical forests	
	(a) Deciduous	80
	(b) Evergreen	12
(III)	Others	1

भारतीय वनो की उत्पादकता काफी बढाई जा सकती है। वनो की गणना प्रगति के कुछ नवकरण योग्य साधनो मे की जाती है। यदि इनका सुप्रबन्ध किया जाय, तो वे बिना घटी हुई दर पर तथा अनिश्चित समय तक उत्पत्ति प्रदान कर सकते हैं। इस समय इमारती लकडी एव ईधन की लकडी तथा दवाइयो, कागज व लुग्दी के लिये कच्चे माल की एव पशुओ के लिये चारे की कमी अनुभव हो रही है। भूतकाल मे स्थानीय वन-प्रसाधनो का कोई अनुमान नही लगाया था तथा बाहर से अनेक वन-उत्पत्तियो का आयात स्वतन्त्रतापूर्वक होता रहा था। ऐसे वन-उद्योग देश मे ही विकसित करने की दृष्टि से इन कच्चे मालो की स्थिति का पता लगाना बहुत महत्त्वपूर्ण है। भारत मे औद्योगिक लकडी का प्रति व्यक्ति उपभोग केवल ० ६ घनफुट है, जबकि फ्रान्स मे यह १६ ० घन फुट तथा जापान मे १३ ४ घन फुट है। भारत की औद्योगिक लकडी सम्बन्धी वर्तमान आवश्यकता लगभग ४ ५ मि० टन है और सन् १९७५ तक ६ मि० टन हो जाने की आशा है। ईधन सम्बन्धी लकडी की माग १०० मि० टन हो जाने की सम्भावना है।

उपरोक्त आवश्यकता को देखते हुये यह आवश्यक हो जाता है कि गहन विकास योजनाओ के प्रति वर्ष उत्पादन मे वृद्धि की जाय। गहन विकास योजनाओ (Intensive development schemes) म निम्न का समावेश है—उच्च उत्पादकता वाले क्षेत्रो का चुनाव, जल्दी बढने वाली किस्मो को बोना, सुधरी हुई प्रोसेसिंग टेक्नीको का प्रचलन व यातायात के साधनो का विकास। यद्यपि इस समय औद्योगिक लकडी की आवश्यकता एव पूर्ति का न्यूनाधिक सतुलन है तथापि विशेष उपाय न करने की दशा मे अगले १०-१५ वर्षों मे बहुत अभाव अनुभव होने लगेगा। अतः उत्पादन की गति को बढाने की आवश्यकता है। पहाडी वनो का विकास करना चाहिये, निम्न ग्रेड की इमारती लकडी का सुधरे हुये ढग से प्रयोग करना, ईंधन की लकडी के उपयोग मे

मितव्ययिता करना तथा विशिष्ट उद्योगों के सदर्भ मे वन-प्रसाधनो का व्यवस्थित सर्वेक्षण कराना भी आवश्यक है।

(III) जल प्रसाधन (Water Resources)—

जल प्रसाधनो का मोटे तौर पर दो भागो मे विभाजन किया जा सकता है : भूमि की सतह का जल (surface water) एवं भूमि के नीचे का जल (Underground Water)। सिचाई, बाढ नियत्रण, जल-निकासी, घरेलू एव औद्योगिक उपयोग की दृष्टि से भी इनके विकास पर विचार करना आवश्यक है।

भूमि की सतह का जल—

सम्पूर्ण देश का वार्षिक वर्षाजल ३,००० मि० एकड फीट से भी अधिक है। इसमे से लगभग १,००० मि० एकड फीट जल वाष्प बन कर तत्काल नष्ट हो जाता है और ६५० मि० एकड फीट जल मिट्टी मे चला जाता है। शेष १,३५० मि० एकड फीट जल नदियो मे प्रवाहित होता है। भूमि की सतह पर बहने वाले सम्पूर्ण जल का प्रयोग नही किया जा सकता, क्योकि भूमि की रचना, जलवायु एव मिट्टी सम्बन्धी दशायें पूर्णत. अनुकूल नही हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि केवल ४५० मि० एकड फीट जल ही सिचाई के लिये प्रयोग किया जा सकता है। सिचाई के लिये जल प्रयोग की वास्तविक प्रगति निम्न प्रकार हुई है:—

Table 3

Surface water utilisation for irrigation

Period of Utilisation	Million acre feet	As percent of usable flow	*As percent of tatal flow
Up to 1951	76	17	6
Up to 1960 61	120	27	9
Up to 1965-66 (anticipated)	160	36	12

भूमि के अन्दर का जल—

जो ६५० मि० एकड फीट जल प्रति वर्ष मिट्टी मे चला जाता है उसमे से लगभग ३५० मि० एकड फीट जल ऊपरी परतो मे रह जाता है और वनस्पति की पैदावार के लिये मिट्टी को आवश्यक नमी प्रदान करता है। शेष ३०० मि० एकड पानी गहरी परतो मे पहुँचकर भूमि के अन्दर के जल की वार्षिक वृद्धि करता है। किसी विशेष समय पर ऐसे जल का कुल भण्डार उक्त मात्रा से कई गुना हो सकता है। इस समय भूमि के भीतरी जल का प्रयोग वार्षिक वृद्धि का केवल २०% है। पिछले आठ वर्षों मे भीतरी जल के अनुसन्धान की कई योजनायें कार्यान्वित की गई हैं, जिससे नलकूप बनाने के लिये अनुकूल क्षेत्रो का पता लग सके। तीसरी योजना विधि मे लगभग

५०० खोजात्मक छेदन (exploratory borings) किये जायेंगे। इनकी सुविधा के लिये भू-भौतिकी अनुसन्धान भी कराये जायेगे।

जल का प्रयोग—

जल का प्रमुख प्रयोग सिंचाई एव बिजली-उत्पादन के सम्बन्ध मे है, लेकिन सार्वजनिक जल पूर्ति, औद्योगिक एव नौवहन कार्यों के लिये भी जल का प्रयोग होता है। सिचाई के लिये जलपूर्ति भूमि पर बहने वाले और भूमि के अन्दर वाले दोनो ही जल-साधनो से प्राप्त की जा सकती है। केन्द्रीय जल एव शक्ति आयोग ने सन् १९५४ मे देश के विभिन्न भागो मे बडी एव मध्यम सिंचाई-योजनाओ के लिये जल-उपलब्धि का अनुमान लगाने के हेतु एक सर्वे का प्रारम्भ किया था। इसके लिये सम्पूर्ण देश को ५ क्षेत्रो मे *बाटा गया है और इनमे से चार क्षेत्रो के सम्बन्ध मे सर्वे पूर्ण हो गई* है। प्रारम्भिक अनुमान के अनुसार बडी एव मध्यम योजनाओ से सिंचाई सभावनाओ का अनुमान १०० मि० एकड रखा गया है, जिसका विस्तृत विवरण इस प्रकार है :-

Table 4.

Irrigation potential of major and medium projects

Zone	Particulars	Irrigation potential (million acres)
1	West flowing rivers (covering river basins in Kerala, Mysore and Maharashtra States and the basins of Tapti, Narmada & others)	10
2	East-flowing rivers (covering the basins of Tambraparani, Vaigai, Cauveri, Mahanadi, Godavari, Krishna, Pennar and others)	33
3	Indus basin	13
4	Ganga basin (covering Chambal, Jamuna, Ramganga, Tons, Gomti, Sone, Ganga and its tributaries)	41
5	Brahmaputra basin	3
	Total	100

छोटी सिंचाई योजनाओ के लिये सभावनाओ का निर्धारण करने के हेतु सन् १९५५ मे खाद्य एव कृषि मत्रालय की छोटी सिंचाई योजना समिति ने प्रथम व्यापक प्रयास किया था। राज्य सरकारो ने भी ऐसे सर्वे कराये है। इन सर्वे-परिणामो के अनुसार लघु सिंचाई योजनाओ की कुल सभावनायें ७५ मि० एकड है। द्वितीय योजना

के अन्त मे बड़ी एवं छोटी योजनाओं द्वारा सीचा गया शुद्ध क्षेत्रफल लगभग ३१ मि० एकड है। अतः स्पष्ट है कि सीचित क्षेत्रफल की वृद्धि करने के हेतु काफी गुंजायश है। सिंचाई की कुल सभावनाओं (१७५ मि० एकड) का अगले २०-२५ वर्षों मे प्रयोग करके (जब कि जोता गया क्षेत्रफल ३५० मि० एकड तक बढ जायेगा) सीचित भूमि का अनुपात ५०% हो जायेगा और जल प्रयोग की मात्रा ३५०-४०० मि० एकड फीट हो जायेगी, जोकि वार्षिक जल पूर्ति (ऊपरी एवं भीतरी) का ६०% है। इस प्रकार अन्य प्रयोगो के लिये पर्याप्त जल पूर्ति बच जायेगी।

उद्योग मे जल का प्रमुख प्रयोग वायलर को ठंडा करने एवं प्रोसेसिंग के लिये होता है। जल सम्बन्धी औद्योगिक आवश्यकतायें तेजी से बढ रही है। अत. उद्योगो मे जल के सरक्षण एवं पुनर्प्रयोग की समस्या पर ध्यान देना अति आवश्यक है। औद्योगीकरण एवं नगरीकरण से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण समस्या यह है कि उपलब्ध जल पूर्ति (विशेषत नदियो का जल) औद्योगिक निष्कासनो से खराब हो जाता है। इसका मछलियो के जीवन पर बुरा प्रभाव पडता है तथा पीने का पानी भी दूषित हो जाता है। इस सम्बन्ध मे अखिल भारतीय स्वास्थ्य एवं स्वच्छता सस्था, भारतीय चिकित्सा परिषद तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य इंजीनियरिंग अनुसधान सस्था द्वारा अध्ययन किये जा रहे है। इनके सर्वे एवं प्रयोग सम्बन्धी कार्यो मे समन्वय लाने की बडी आवश्यकता है।

(IV) मत्सय केन्द्र (Fisheries)—

अन्तर्देशीय मत्सय केन्द्र—

नदियाँ एवं उनकी शाखायें, नहरें, झीलें, जल भडार व तालाब, जिनमे जल पूर्ति निरन्तर रहती है, अन्तर्देशीय मत्सय केन्द्रो के सभावित क्षेत्र हैं। प्रति वर्ष पकडी जाने वाली मछलियो की कुल १४ मि० टन मात्रा मे से लगभग ३,००,००० टन मात्रा अन्तर्देशीय जल (Inland Water) से प्राप्त होती है। प्रथम योजनावधि मे अन्तर्देशीय जल के एक मि० एकड से भी अधिक का सर्वे किया गया तथा ६८,००० एकडीय जल क्षेत्र का सुधार किया गया। द्वितीय योजना मे लगभग ३,४०,००० एकडीय जल क्षेत्र का सर्वे किया गया तथा ७,२०,००० एकडीय जल-क्षेत्र का स्टाक किया गया। तीसरी योजना म ५०,००० एकडीय जल के क्षेत्र का विकास प्रदर्शन मछली केन्द्रो के रूप मे किया जायेगा, १,५०० एकडीय जल क्षेत्र नदी के मुहाने की मछलियो के पालन के लिये और १,५००-२,००० एकड दलदली एवं उसर भूमि को मछली पालन के हेतु सुधारने के लिये रखा गया है। ऐसे सब जल-क्षेत्र का पूर्ण सर्वे कराने की आवश्यकता है, जो गर्मियो मे सूखें नही और जहाँ मछली स्टाक की जा सकें।

सामुद्रिक मछली केन्द्र—

वार्षिक कुल मछली उत्पादन १'४ मि० टन है, जिसमे से १ १ मि० टन सामु-

द्रिक मछलियो का उत्पादन है। सामुद्रिक मछलियो की प्रमुख फसले मेकेरेल, सार्डिन एव प्रोन हैं। भारत की कुल आवश्यकता ४ मि० टन के बराबर है, लेकिन उत्पादन की दर आवश्यकता की एक चौथाई है। सामुद्रिक मछलियाँ तट से ६ से १० मील तक पकड़ी जाती है। अभी तक भारत के सामुद्रिक मछली केन्द्रो का उचित प्रकार से अनुमान नही लगाया है। इस सम्बन्ध मे पूर्ण सर्वे की आवश्यकता है, क्योकि सामुद्रिक प्रसाधन भू-प्रसाधनो का उपयोगी पूरक हो सकते हैं।

(V) खनिज साधन (Mineral Resources)

खनिज पदार्थों का वर्तमान औद्योगिक अर्थव्यवस्था मे महत्त्वपूर्ण स्थान है, कुछ खनिज पदार्थ (जैसे कोयला एव खनिज तेल) शक्ति के स्रोत हैं और कुछ उद्योग के लिये कच्चे माल का काम करते हैं, जब कि कुछ खांड, कपास आदि प्राकृतिक पदार्थों के लिये स्थानापन्न का कार्य करते है।

कोयला—

देश मे कोयले के भडारो का अनुमान ५०,००० मि० टन है, जिसमे से कोकिंग कोयले का कोष २,८०० मि० टन के लगभग है। कोकिंग कोयले के कोष भविष्य की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। १ टन स्टील के लिये २ २ टन कोयले की आवश्यकता पडती है। अगले १५ वर्षों मे स्टील के उत्पादन की वृद्धि सम्बन्धी जो योजना बनाई गई है उसके कारण कोकिंग कोयले की माग बहुत बढ जायेगी। अत कोकिंग कोयले के सीमित भडारो को सावधानी से प्रयोग करना जरूरी है। गैर कोकिंग कोयले की स्थिति असन्तोषजनक नही है। किन्तु घटिया कोयले की ही मात्रा अधिक होने से बढिया कोयले के उपभोग मे मितव्ययिता बरतनी चाहिये।

कुल पर कोयले के भडार कुछ विशेष क्षेत्रो मे केन्द्रित हैं। कोयले की पूर्ति का लगभग ८०% बिहार एवं प० बगाल के २०० मील के क्षेत्र मे विस्तृत खान-समूह से प्राप्त होता है और दक्षिणी एव पश्चिमी भारत मे उपभोग हेतु ले जाने के लिये उसको ४०० से १,४०० मील तक यातायात करना पडता है। बिहार व प० बगाल से बाहर की कोयला खानो का उत्पादन बढाने का प्रयास किया जा रहा है। सन् १९५१ मे उनका उत्पादन ५ ७ मि० टन था (कुल का १६%), जो सन् १९६० मे बढकर १० २ मि० टन (कुल का २०%) हो गया। तीसरी योजना के अन्त तक यह २८ मि० टन हो जायेगा (कुल का लगभग २१%)।

खनिज तेल एवं प्राकृतिक गैस—

कोयले के बाद व्यापारिक शक्ति के प्रमुख साधन हैं पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस। अब तक भारत ने इनका कोई विशेष विकास नही किया है। लेकिन तेल के लिये विस्तृत जांच जारी है। आसाम मे नये तेल कूपो से लगभग २ ७५ मि० टन तेल प्रति वर्ष मिलने का अनुमान है। पेट्रोलियम के सम्बन्ध मे आसाम मे प्राकृतिक

गैस की विशाल मात्रा पाई जाती है। इसके अतिरिक्त असम्बद्ध प्राकृतिक गैस भी काफी मिलती है। सम्बद्ध प्राकृतिक गैस (Associated Natural Gas) का प्रयोग करने के लिये योजनायें बनाई गई है। अभी हाल मे कैम्बे और अकालेश्वर क्षेत्र मे जो ड्रिलिंग अभियान हुआ है उसके उत्साहजनक परिणाम सामने आये हैं और यह आशा की जाती है कि सन् १९६५-६६ के अन्त तक इन क्षेत्रो से उत्पादन की मात्रा २ मि० टन तक पहुँच जायेगी।

पैट्रोलियम उत्पादो की माग मे वार्षिक वृद्धि पिछली दशाब्दी मे ४.५% थी। वर्तमान दशाब्दी मे इसके १०-११% हो जाने की सभावना है। कुल माग जो सन् १९६० मे ७·५ मि० टन थी, सन् १९६५-६६ तक ११ मि० टन हो जाने की आशा है। ५ मि० टन के इस घाटे को आयात द्वारा पूरा करने के लिये ५० करोड रु० के लगभग विदेशी विनिमय की आवश्यकता पडेगी। घरेलू आवश्यकता (रोशनी के लिये मुख्य मिट्टी के तेल की) कुल उपभोग का २५%, यातायात के लिये आवश्यकता (डीजल तेल व गैसोलीन) लगभग ३०%, फर्नेस तेल के हेतु उद्योग की आवश्यकता लगभग २०% है।

अन्य खनिज पदार्थ—

यद्यपि प्रमुख खनिज क्षेत्र निश्चित व निर्धारित हो गये थे तथा देश की खनिज सम्पदा का एक मोटा अनुमान लगाया जा चुका था तथापि विस्तृत अनुसन्धान अभी कुछ वर्षो पहले तक नही किये गये थे। किन्तु जब से देश का नियोजित विकास प्रारम्भ हुआ तब से Geological Survey of India, Indian Bureau of Mines, National Laboratories एव Atomic Energy Commission द्वारा इस सम्बन्ध मे विस्तृत एव नियमित अनुसधान किये जाने लगे है। अत. अब खनिज सम्पदा के बारे मे सही-सही परिमाणात्मक एव गुणात्मक अनुमान सुलभ हो गये है। मैंगनीज का अनुमान २० मि० टन से बढ कर अब १८० मि० टन हो गया है। बिहार के अमजोर क्षेत्र मे सल्फर युक्त माक्षिक (Sulpher Containing pyrites) मिलने से सल्फर सम्बन्धी माग आन्तरिक उत्पादन द्वारा काफी सीमा तक पूरी हो सकेगी। तांबा, लोहा, क्रोमाइट, बाक्साइट, मैगनैसाइट, जिप्सम, चूने का पत्थर, जस्ता आदि के भडारो का भी अनुमान लगा लिया गया है और उपलब्धता तथा माग का अन्तर मालूम पड गया है।

राष्ट्रीय प्रयोगशालाओ ने अनुसधानो द्वारा खनिजो के गुण को, उनकी उपयोगिता को सुधारने का प्रयास किया है तथा दुर्लभ खनिजो के स्थानापन्न खनिज जायदादो को पट्टे पर उठाने एव उनके विकास मे समानता लाने का प्रयास किया गया है। कोयला खान सरक्षण एव सुरक्षा अधिनियम कोयले के प्रयोग मे मितव्ययिता लाने का प्रयास करता है। निम्न तालिका मे कुछ प्रमुख खनिजो के ज्ञात भडार हैं। उनका वर्तमान उत्पादन एव उनकी वर्तमान माग दिखाई गई है —

Table 5

Production and demand for minerals

Mineral	Unit	Estimated reserves	Present production	Current consumption
Coal (non coking)	Million tons	50000	37 0 }	51 8
Coal (coking)	Million tons	2800	14 8 }	
Lignite	Million tons	2073	negligible	negligible
Mineral oil	Million tons	not assessed	0 2	6 0
				1 3
Manganese ore	Million tons	180	1 2	0 3
Iron ore	Million tons	21870	10 5	8 0
Chromite	Million tons	2 3	0 10	0 02
Vanadium ore	Million tons	26 7		
Tungsten (metal)	Tons	not assessed	~0	3 0
Nickel (metal)	Tons	negligible		1020
Ilmenite (titanium ore)	Million tons	350	0 25	0 01
Copper (ore)	Million tons	32 9	0 44	0 07 (metal)
Lead o e	Million tons	10 7	3670 Tons (metal)	0 03 (metal)
Bauxite (aluminium ore)	Million tons	260	0 38	0 10
Zinc ore	Million tons		0 01	0 06
Gypsum	Million tons	1117	0 98	0 98
Magnesite	Million tons	100	0 15	0 14
Limestone	Million tons	15740	12 5	12 5
Phosphatic nodules	Million tons	2 0		
Apatite	Million tons	0 87	0 014	0 22
Tin (metal)	Tons	negligible		4550
Graphite	Tons	not assessed	1500	2500
Sulphur (element)	Million tons	negligible		0 18
Pyrites 40 percent s	Million tons	384		
Asbestos	Tons	580000	1683	30000

(VI) शक्ति (Energy)—

औद्योगीकरण के कारण भारत में शक्ति के लिये माँग तेजी से बढ रही है। यातायात सुविधाओं की वृद्धि व जीवनयापन के स्तर म सुधार के कारण भी शक्ति के लिये माग मे वृद्धि हो गई है। अभी भारत मे प्रति व्यक्ति उपभोग विश्व मे सबसे कम है। सन् १९६०-६१ मे भारत मे शक्ति का कुल उत्पादन १६५ मि० टन कोयले के तुल्य था। शक्ति के व्यापारिक श्रोत कोयला, पेट्रोल एव गिरता हुआ पानी है। वायु शक्ति, सौर-शक्ति व ज्वार-शक्ति भी भावी साधन हैं। इस समय लगभग ६१% शक्ति अ-व्यापारिक स्रोतो से (जैसे गोबर, कडी, कोयला, खेतो का घास फूँस आदि) प्राप्त होती है। यह बात निम्नलिखित तालिका स विदित हो जाती है (इसमे पशु शक्ति को सम्मिलित नही किया गया है, जो लगभग ७६ मि० टन कोयला तुल्य प्रति वर्ष है) :,

Table 6

Consumption of Energy in 1960-61

Source	Energy consumed (million tons of coal equivalent)	As percent of commercial energy	As percent of total energy
Coal	54·6	84 0	33·0
Oil	9 5	14 6	5·8
Water	0 9	1 4	0 6
Total Commercial	65 0	100 0	39 4
Cattle dung	46 0		27 9
Fuel wood	35 0		21 2
Agricultural wastes	19 0		11·5
Total non-Commercial	100 0		60 6
Total-all sources	165 0		100 0

विद्युत शक्ति—

शक्ति के उत्पादन के लिये कोयला खानो पर निम्न श्रेणी के कोयले की विशाल मात्रायें उपलब्ध हैं। अत वहाँ कोयले की शक्ति से चलने वाले स्टेशन (Coal fired Stations) सुविधा से कायम किये जाते हैं। विद्युत स्टेशनो (Hydel Stations) की स्थापना मे बहुत समय लग जाता है, खर्चा भी उन पर अधिक होता है तथा दूरस्थ स्थानो मे स्थापित किये जाते है, जहाँ से शक्ति को दूर-दूर तक ले जाना पडता है। किन्तु ये शक्ति के अत्यन्त सस्ते साधन हैं। विभिन्न प्रकार के प्लान्टो की उत्पादन क्षमता नीचे दी गई है :—

Table 7

Generating capacity by source

Plants	(Million kilowatts)			
	1951	1956	1961	1966
Hydel plant	0 56	0 94	1 93	5'10
Coal	1 59	2 27	3 46	7 08
Oil	0 15	0 21	0 31	0 36
Nuclear			.	0 15
Total	2 30	3'42	5'70	12 69

आजकल भारत मे बिजली की शक्ति का उपभोग लगभग ४५ किलोवाट प्रति व्यक्ति है। सन् १९६५-६६ तक इसके ९५ किलोवाट हो जाने की आशा है। अन्य देशो की तुलना मे भारत का उपभोग बहुत कम है। जापन मे प्रति व्यक्ति उपभोग ६३० किलोवाट और इटली मे ९२८ किलोवाट है।

जल शक्ति—

जल शक्ति की क्षमता ४१ मि० किलोवाट आकी गई है और इसका विनरण इस प्रकार है —

Table 8

Water power potential

	(Million kW)
West flowing south Indian rivers	4 35
East flowing south Indian rivers	8 63
Central Indian rivers	4 29
Rivers of Ganga basin	4 83
Rivers of Indus basin	6 58
Brahmaputra and others	12 49
Total	41 17

परमाणु शक्ति—

एक आत्मनिभर परमाणु शक्ति कार्यक्रम के लिये ईधन सामग्री की पर्याप्त पूर्ति होना एक पूर्व आवश्यकता है। कई दशाब्दा से इस बात की जानकारी है कि केरल और मद्रास के समुद्र तटीय क्षेत्रो मे मोनाजाइट बालू मे विश्व मे थ्योरियम के सबमे विशाल डिपाजिट उपलब्ध है। बिहार राज्य मे मोनाजाइट बालू के विस्तृत

डिपाजिटो का पता लगा है। थ्योरियम के भारतीय रिजर्व विश्व के कुल यूरेनियम के बराबर हैं। देश के विभिन्न भागो मे यूरेनियम के डिपाजिट भी मिलने की आशा है। बिहार मे हजारो टन यूरेनियम वाले डिपाजिट का पता चला है तथा प्रतिदिन एक हजार टन खनिज निकालने के लिये एक खान स्थापित की जा रही है।

उपसंहार—

प्राकृतिक प्रसाधनो का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। पिछले १० वर्षों मे देश के प्राकृतिक प्रसाधनो से सम्बन्धित नई सूचना उपलब्ध हो गई है। अब तो हमारे सर्वे सगठन भी पूर्ण रूप से सुसज्जित हो गये हैं तथा उच्च कोटि के प्रशिक्षित एव अनुभवी विशेषज्ञो की सेवायें भी उपलब्ध हैं। यूनीवर्सिटी एव प्राइवेट सस्थायें भी सर्वे कार्य मे महत्त्वपूर्ण योग दे रही है। प्राकृतिक प्रसाधनो के सही मूल्याकन के आधार पर देश के आर्थिक विकास की ठोस योजनायें बनाई व कार्यान्वित की जा सकती हैं।

STANDARD QUESTIONS

1. "The economic prospects of a country or a region cannot be assessed properly on the sole basis of ane muneration of its known natural resources". Discuss.
2. Write an essay on the natural resources of India under the following heads .—
   (a) Land Resources.
   (b) Forest Resources
   (c) Water Resources.
   (d) Fisheries
   (e) Energy, and
   (f) Mineral Resources

अध्याय ५६

मानवीय प्रसाधन

(Human Resources)

भूमिका—

व्यक्ति एव राष्ट्रो के गुणो एव उनकी क्षमताओ मे महत्त्वपूर्ण अन्तर हाते हैं और इन अन्तरो का उनकी आर्थिक कुशलता पर गहरा प्रभाव पडता है। इन अन्तरो के लिये बायोलॉजिकल, वातावरणात्मक एव ऐतिहासिक कारण उत्तरदायी होते हैं। अर्थशास्त्रियो से इन कारणो पर प्रकाश डालने की आशा नही की जा सकती, क्योकि आर्थिक सिद्धान्तो का इन कारणो से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही होता। प्रस्तुत अध्याय मे कुछ जन-सख्या सम्बन्धी कारणो पर प्रकाश डाला गया है, जो कि व्यक्तियो एव समूहो के आर्थिक व्यवहार से सम्बन्ध रखते हैं।

जन-संख्या एवं वास्तविक आय—

जन-सख्या के आकार एव वास्तविक आय मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। जन-सख्या सम्बन्धी स्थिति एव प्रवृत्तियाँ सभी अर्द्ध-विकसित देशो मे समान नही हैं। विभिन्न देशो मे जन-सख्या के घनत्व, आयु रचना एव जन-सख्या के परिवर्तन की दर सम्बन्धी अन्तर पाये जाते हैं। अधिक घने बसे हुये देश आवश्यक रूप से वे देश नही हैं जिनमे जन-सख्या की वृद्धि की दर सबसे तेज हो। सन् १८०० से भारत मे जन-संख्या के बढने की दर उसी अवधि मे पश्चिमी यूरोप के कई देशो मे जन-सख्या की वृद्धि दर से बहुत भिन्न नही थी। आजकल भी भारत मे जन-सख्या के बढने की दर अमेरिका की तुलना मे कोई विशेष अधिक नही है। अन्तर की महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि अर्द्ध-विकसित देशो मे तुलनात्मक दृष्टि से पिछडी हुई कृषि पर अत्यधिक निर्भरता पाई जाती है, जिससे विशाल क्षेत्र उस अर्थ मे अति-जन-सख्या वाले माने जाते हैं जिसमे पश्चिम मे नही माने जाते। 'अति जन सख्या' (Over population) शब्द से अभिप्राय उस स्थिति का है जिसमे एक दी हुई टेक्नीक एव प्राकृतिक साधनो के आधार पर प्रति व्यक्ति वास्तविक आय बहुत अधिक होगी, यदि जन सख्या का आकार कुछ छोटा होता। 'न्यून जन सख्या' (Under Population) का इससे विपरीत अर्थ होता है।

'अनुकूलतम जन सख्या' (Optimum Population) का अभिप्राय जन सख्या की उस स्थिति से है जिसमे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय अधिकतम होती है। लेकिन यह विचार बहुत कल्पनापूर्ण है। यदि उचित हो तो भी इस विचार के आधार पर जन सख्या के आकार का नियत्रण करना सम्भव नही है। दी हुई परिस्थितियो मे अनुकूलतम जन सख्या क्या होगी, इसका निधारण करना असम्भव है। अनुकूलतम जन सख्या के विचार की सबसे बडी दुर्बलता, जिसका अर्द्ध विकसित देशो के सदर्भ मे विशेष महत्त्व है, यह है कि दिये हुये प्राकृतिक प्रसाधनो की दशा मे प्रति व्यक्ति उत्पादन केवल सख्याओ का फलनात्मक है (Output per head *is a function of numbers alone*)। वास्तव मे, वास्तविक आय पर न केवल निवासियों की सख्या का वरन् उनके गुणो का भी प्रभाव पडता है तथा अनुकूलतम (सख्या के अलावा) जनता की योग्यता, क्षमता एव मितव्ययिता पर निभर होता है।

अर्द्ध-विकसित देश का यह सामान्य अनुभव है कि बढी हुई उत्पत्ति के साथ जन सख्या की भी वृद्धि हो जाती है। अधिक प्रगतिशील देशो के साथ घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित होने से जो प्रमुख सुधार हुये हैं उनमे से एक यह है कि मृत्यु दर कम हो जाती है, जबकि कुल उत्पादन मे कोई विशेष वृद्धि नही होती। इस प्रकार जन-सख्या उसी गति से बढती है जिस गति से उत्पादन बढता है। अत जीवन स्तर मे कोई सुधार नही हो पाता, क्योकि बढी हुई उत्पत्ति बढी हुई जन सख्या के काम मे आ जाती है। जब निधन देशो मे बहुत घनी आबादी होती है तथा जन सख्या मे बहुत निरपेक्ष वृद्धि हो जाती है, तो उनकी स्थिति बडी नाजुक होती है 'क्योकि एक भी फसल खराब हो जाने पर उत्पादन व उपभोग मे बहुत घाटा हो जाता है, जिसकी पूर्ति विदेशो से करनी पडती है तथा भुगतान सतुलन सम्बन्धी समस्यायें सामने आती है।

आर्थिक विकास के साथ मृत्यु दर मे कमी आने के अतिरिक्त जन्म दर भी कम हो सकती है, क्योकि विकास होने पर अनेक प्रकार के मनोरजन उपलब्ध होने लगते है तथा स्त्रियो की सामाजिक स्थिति भी सुधर जाती है। इस प्रकार जन सख्या के परिवर्तनो का आर्थिक विकास के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। अब हम भारत की जन-सख्या सम्बन्धी समस्याओ पर विचार करेंगे।

भारत में जन-संख्या का वितरण

प्रारम्भिक—

सभ्यता के आरम्भ और सन् १८७२ ई० के बीच के भारतीय इतिहास की अनेक शताब्दियो तक की जन गणना के विषय मे बहुत कम ज्ञान है। भारत मे प्रथम जन गणना सन् १८८१ मे हुई। इसके पूर्व श्री मोरलैण्ड की जन गणना के आधार पर सन् १६०५ (अकबर की मृत्यु का वर्ष) मे भारत की जन-सख्या लगभग १० करोड थी, किन्तु श्री शिरान और प्रोफसर डेविस का मत है कि इस समय भारत की जन सख्या

लगभग १३ करोड थी। उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे डाक्टर मुकर्जी ने जन-गणना अक १५ करोड निश्चित किया है, अत इस सम्बन्ध मे जो कुछ भी कहा जाता है उसका सार यह है कि योरुप की भाँति भारत मे भी अतीत काल मे जन-सख्या आज की अपेक्षा कम ही थी, किन्तु शनैः-शनैः इसमें वृद्धि होती गई है। सन् १८८१ के बाद प्रत्येक १०वें वर्ष जन-गणना होती चली आई है। विभिन्न जन-गणनाओ के आधार पर भारत की जन-सख्या अग्रलिखित रही है :—

वर्ष	जन सख्या (दस लाख मे)	दशाब्दी की वृद्धि (दस लाख मे)	वृद्धि का प्रतिशत
१८८४	२३५.५	—	—
१९०१	२३५ ९	० ४	— ० २
१९११	२४९ ०	१३ ५	+ ५ ६
१९२१	२४८ १	० ९	— ० ६
१९३१	२७५ ५	२७ ४	+ १० ४
१९४१	३१२ ८	३७ ३	+ १२ ७
१९५१	३५६ ९	४४.१	+ १३ २
१९६१	४३६ ४	७९ ५	+ २२ २

उपरोक्त आकडो से यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष की जन-सख्या मे प्रति वर्ष वृद्धि हो रही है। सन् १९४१ की अपेक्षा सन् १९५१ मे १३ २% और सन् १९५१ की अपेक्षा सन् १९६१ मे २२ २% की वृद्धि हुई है। इस प्रकार इस समय भारत की जन-सख्या विश्व की कुल जन सख्या का १/७ भाग है। अर्थात् विश्व के प्रत्येक ७ व्यक्तियो मे एक भारतीय है। चीन की जन-सख्या विश्व मे सबसे अधिक है। ३० जून सन् १९५३ को वहाँ की जन सख्या ६०,१९,१२,३७१ थी। चीन के बाद घनी जन-सख्या वाले देशो मे भारत का ही स्थान है। दूसरे शब्दो मे, जन-सख्या की दृष्टि से विश्व मे भारत का दूसरा नम्बर है।

राज्यानुसार जन-संख्या—

सन् १९६१ की जन-गणना के अनुसार, भारत के विभिन्न राज्यो मे जन-सख्या के आकडे इस प्रकार है :—

सन् १९६१ की जनगणना

राज्य	क्षेत्रफल (वर्गमील मे)	कुल आबादी	पुरुष	महिलायें
आध्र	१,०६,०५२	३,५६,७७,९९९	१,८१,७५,३४९	१,७८,०२,६५०
असम	४७,०६८	१,१८,६०,०५९	६३,१८,२२९	५५,४१,८३०
बिहार	६७,१९८	४,६४,५७,०४२	२,३३,२८,१७८	२,३१,२८,८६४
गुजरात	७२,१५४	२,०६,३१,२८३	२,०६,३६,४७०	९९,८४,८१३
जम्मू-काश्मीर	—	३५,८३,५८५	१९,०२,९०२	१६,८०,६८३
केरल	१५,००३	१,६८,७५,१९९	८३,४५,८९७	८५,२९,३०२
मध्य-प्रदेश	१,७१,२१०	३,२३,९४,३७५	१,६५,६८,८२६	१,५७,९५,८४९
मद्रास	५०,१३२	३,३६,५०,९१७	१,६९,१५,४५४	१,६७,३५,४६३
महाराष्ट्र	१,१८,८८४	३,९५,०४,२९४	२,०४,१९,०५९	१,९०,८५,२३५
मैसूर	७४,१२२	२,३५,४७,०८१	१,२०,२१,२४८	१,१५,२५,८३३
उड़ीसा	६०,१६२	१,७५,६५,६४५	८७,७२,१९४	८७,९३,४५१
पजाब	४७,०८४	२,०२,९८,१५१	१,०८,६६,९१०	९४,३१,२४१
राजस्थान	१,३२,१५०	२,०१,४६,१७३	१,०५,५८,१३८	९५,८८,०३५
उत्तर-प्रदेश	१,१३,४५४	७,३७,५२,९१४	३,८६,६४,४६३	३,५०,८८,४५१
प० बगाल	३३,९२८	३,४९,६७,६३४	१,८६,११,०८५	१,६३,५६,५४९
अण्डमान-निकोबार	३,२१५	६३,४३८	३९,२५९	२४,१७९
दिल्ली	५७३	२६,४४,०५८	१४,८०,७०८	११,६३,३५०
हिमाचल प्रदेश	१०,८७९	१३,४८,९८२	७,००,७३८	६,४८,२४४
लक्षद्वीप, मिनिकाय व अमीन द्वीप	११	२४,१०८	११,९२७	१२,१८१
त्रिपुरा	४,०३६	११,४१,०९२	५,९१,२१४	५,५०,२७८
जोड	११,२७,३४५	४३,६४,२४,४२९	२२,४९,५७,९४८	२१,१४,६६,४८१

भारत में जन-संख्या का घनत्व—

जन-सख्या के घनत्व (Density of Population) से आशय यह है कि किसी देश अथवा किसी राज्य मे १ वर्ग मील मे कितने व्यक्ति रहते है। यदि किसी राज्य का क्षेत्रफल २,००० वर्ग मील और वहां की जन-सख्या १ लाख है, तो वहाँ पर १ वर्ग मील मे औसतन ५० व्यक्ति रहते हैं और इस प्रकार उस राज्य की

जन-सख्या का घनत्व ५० हुआ। अत. यदि हमको किसी देश की जन-सख्या का घनत्व पता लगाना है, तो पहले यह पता लगाना चाहिये कि उसका क्षेत्रफल कितना है और वहा की जन-सख्या कितनी है। तब जन-सख्या को क्षेत्रफल से भाग देना चाहिये और जो भजनफल निकले वही उस जन-सख्या का घनत्व होगा।

हमारे देश मे जन-सख्या का घनत्व प्रति वर्ग मील ३८४ है। यह समस्त देश का औसत घनत्व है, किन्तु देश के विभिन्न भागो की झाँकी करें, तो पता चलता है कि भारत के विभिन्न राज्यो मे जन-सख्या का घनत्व भिन्न है, जैसे—

दिल्ली	४,५७३
केरल	१,१२५
बङ्गाल	१,०३०
बिहार	६६०
उ० प्र०	६५०
पजाब	४३१
राजस्थान	१५०
अण्डमान व निकोबार द्वीप	२०

जन-संख्या के घनत्व की भिन्नता के कारण—

जन सख्या के घनत्व की इस प्रादेशिक भिन्नता के कारण निम्नलिखित हैं —

जन-सख्या के घनत्व को भिन्नता के १४ कारण

(१) प्राकृतिक रचना
(२) जलवायु
(३) चावल की उपज के क्षेत्र
(४) औद्योगिक उन्नति
(५) सुरक्षा
(६) विभाजन के फलस्वरूप आवास
(७) प्रवासी प्रवृत्ति का प्रभाव
(८) सिंचाई के साधन
(९) नदियो के डेल्टे
(१०) विशेष वस्तुओ के उत्पादन केन्द्र
(११) खनिज पदार्थों के क्षेत्र
(१२) यातायात के साधनो की सुविधा
(१३) अनुकूल स्थिति
(१४) अन्य कारण

(१) प्राकृतिक रचना— जन-सख्या का घनत्व किसी देश की प्राकृतिक रचना पर निर्भर करता है। जो स्थान पहाडी अथवा पठारी हैं अथवा जहा की मिट्टी उपजाऊ नही है वहाँ घनत्व कम होता है और उपजाऊ मैदानी क्षेत्रो मे प्राय जन सख्या का घनत्व अधिक होता है। पजाब, उत्तर प्रदेश एव बङ्गाल राज्यो मे भूमि की उवरता के कारण ही जन सख्या का घनत्व अधिक है एव राजस्थान के मरुस्थल और दक्षिण के पठारी प्रदेशो मे घनत्व कम है।

(२) जलवायु—भूमि की रचना के साथ साथ सु दर जलवायु का होना भी आवश्यक है। जलवायु पर लोगो का स्वास्थ्य ही नही वरन् फसलो का उत्पादन अधिक हो सकता है, यदि भूमि भी उपजाऊ हो। ऐसे प्रदेश अधिक व्यक्तियों के लिये जीवन निर्वाह का साधन प्रस्तुत कर

सकते है। यही कारण है कि भारत के दक्षिणी-पूर्वी भागो मे अपेक्षाकृत जन-सख्या अधिक है।

(३) चावल की उपज के क्षेत्र—बङ्गाल तथा बिहार मे भी जन-सख्या का घनत्व अधिक है, क्योकि :—

(अ) अन्य अनाजो की अपेक्षा चावल की उतनी मात्रा से अधिक आदमियो की उदरपूर्ति हो जाती है।

(आ) चावल मे भोजन के अधिक पौष्टिक तत्त्व होते हैं।

(इ) चावल की प्रति एकड पैदावार भी अधिक होती है।

(ई) चावल की फसल तैयार भी बहुत शीघ्र हो जाती है।

(४) औद्योगिक उन्नति—ऐसे प्रदेश जहाँ उद्योग-धन्धो की प्रगति के लिये समस्त नैसर्गिक साधन उपलब्ध हो तथा आर्थिक दृष्टिकोण से भी जो भाग समृद्धिशाली है, वहाँ भी जन सख्या का घनत्व अधिक देखा जाता है, जैसे—बिहार, उडीसा इत्यादि।

(५) सुरक्षा—जिन प्रदेशो मे मनुष्य को अपने जान व माल का भय नही होता, वहाँ भी घनत्व अधिक होता है। जैसे—मध्य-प्रदेश। इसके विपरीत पर्वतीय तथा सीमावर्तीय क्षेत्रो मे जान व माल का भय होने के कारण जन-सख्या का बहुत कम घनत्व है।

(६) विभाजन के परिणामस्वरूप आवास—भारत के बँटवारे के बाद हमारे देश मे अनेक व्यक्ति पाकिस्तान से आये और वे ऐसे प्रदेश मे बस गये जहाँ की जलवायु उनके अनुकूल थी, अत. उन प्रदेशो मे जन-सख्या का घनत्व बढ गया, जैसे—दिल्ली राज्य मे।

(७) प्रवासी प्रवृत्ति का अभाव—भारतवर्ष मे प्रवासी प्रवृति का अभाव भी अधिक घनत्व के लिए उत्तरदायी है। अन्य क्षेत्रो मे प्रवास करने की अपेक्षा लोग अपने ही क्षेत्र मे रहना अधिक पसन्द करते है, फलत उन्हे निम्न जीवनस्तर अपनाना पडता है। भाषा, धर्म एव सस्कृति की विषमता भी प्रवासी प्रवृत्ति मे बाधक है।

(८) सिंचाई के साधन—जिन प्रदेशो म वर्षा का अभाव है, परन्तु सिंचाई के साधन उपलब्ध है, वहाँ भी प्राय जन-सख्या का घनत्व देखा जाता है। उदाहरणार्थ, उत्तर-प्रदेश के पश्चिमी भाग, राजस्थान के उत्तरी-पश्चिमी भाग और दक्षिणी पजाब मे यद्यपि अपेक्षाकृत कम वर्षा होती है, परन्तु सिंचाई की उपलब्ध सुविधाओ के अनुसार इन भागा म अच्छी जन-सख्या है।

(९) नदियो के डेल्टे—नदियो के डेल्टो मे भी अनेक सुविधाये होने के कारण जन-सख्या के घनत्व मे वृद्धि हो जाती है, जैसे—महानदी, कृष्णा, गोदावरी तथा कावेरी नदियो के डेल्टो मे अच्छी आबादी है।

(१०) विशेष वस्तुओ के उत्पादन केन्द्र—कुछ प्रदेशो मे किंचित महत्वपूर्ण व्यापारिक वस्तुओ का उत्पादन होता है, जिससे आकर्षित होकर लोग वहाँ बस जाते हैं। जैसे असम मे चाय के हरे-भरे बगीचो ने अनेक व्यक्तियो को आकर्षित कर लिया है। इसी प्रकार बगाल मे जूट के उत्पादन और काली मिट्टी के क्षेत्र मे रुई के उत्पादन के कारण उन क्षेत्रो मे जन-सख्या का अधिक घनत्व है।

(११) खनिज पदार्थों के क्षेत्र—जिन भागो मे खनिज पदार्थ पाये जाते हैं वहाँ अन्य कठिनाइयो के होते हुए भी लोग जाकर बस गये है। उदाहरणार्थ, छोटा नागपुर का पठार खनिज सम्पदा की दृष्टि से अत्यन्त धनी है, अतः वहाँ अनेक लोग आकर बस गये है। इसी प्रकार राजस्थान मे जैसलमेर के निकटवर्ती क्षेत्र मे पेट्रोलियम की खोज हो रही है। यदि वहाँ पेट्रोल मिल जायगा, तो जन-सख्या के घनत्व मे अवश्य वृद्धि हो जायगी।

(१२) यातायात के साधनो की सुविधा—जिन भागो मे यातायात के साधनो का जाल बिछा हुआ है वहाँ भी प्रायः जन-संख्या का केन्द्रीयकरण देखा जाता है। जैसे, गङ्गा एव सतलज के मैदान मे, तटीय मैदान एव डेल्टा क्षेत्रो मे थल एव जल मार्गो की सुविधा होने के कारण वहाँ घनी आबादी पाई जाती है। इसके विपरीत पर्वतीय एव पठारी क्षेत्रो मे मरुस्थली भागो एव घने वनो मे यातायात के साधनो की अपर्याप्तता अथवा अभाव के कारण जन-सख्या की मात्रा बहुत ही कम है।

(१३) अनुकूल स्थिति—जिन नगरो अथवा क्षेत्रो की भौगोलिक स्थिति अनुकूल होती है वहाँ भी जन-सख्या का आधिक्य हो जाता है। उदाहरणार्थ, दिल्ली, कानपुर, आगरा, इलाहाबाद आदि नगरो की अनुकूल स्थिति होने के कारण ही वहाँ जन-सख्या का अधिक घनत्व है।

(१४) अन्य कारण—प्राय. ऐसा भी देखा जाता है कि जो स्थान सुरक्षा की दृष्टि से अधिक श्रेष्ठ होते है, वहाँ भी जन सख्या का केन्द्रीयकरण हो जाता है। भारत और पाकिस्तान की सीमा, काश्मीर व आजाद काश्मीर की सीमा तथा गोआ मे सुरक्षा की मात्रा कम होने से आबादी भी कम है। इसी प्रकार घने जङ्गलो मे जङ्गली पशुओ के भय से वहाँ मनुष्य नही रहते। चम्बल के खण्डहरो मे चोर व डाकुओ के भय के कारण लोग रहना पसन्द नही करते।

जन-संख्या के घनत्व के अनुसार देश के तीन भाग—

भारत एक विशाल देश है, जहाँ विभिन्न प्रकार की जलवायु तथा नाना प्रकार की रचना पाई जाती है। खनिज पदार्थों का वितरण भी समान नही है। परिणामस्वरूप यहाँ जन सख्या का घनत्व भी देश के भिन्न भिन्न भागो मे अलग-अलग है। जन-सख्या के घनत्व के दृष्टिकोण से देश को तीन क्षेत्रो में—ऊँचे, मध्यम तथा कम घनत्व वाले भागो मे विभक्त किया गया है :—

जन सख्या के घनत्व के अनुसार देश के भाग हैं पाँच
(१) घनी जन सख्या के क्षेत्र ।
(२) अधिक जन सख्या वाले भाग ।
(३) मध्यम जन सख्या वाले भाग ।
(४) कम जन-सख्या वाले भाग ।
(५) अत्यन्त कम जन सख्या वाले भाग ।

(१) घनी जन सख्या के क्षेत्र–इन क्षेत्रो के अन्तर्गत प० बङ्गाल पू० पजाब द० प्रायद्वीप का दक्षिणी पूर्वी समुद्री तट केरल उडीसा आन्ध्र प्रदेश तथा मद्रास का तट सम्मिलित हैं जहाँ प्रति वर्ग मील मे ५०० से अधिक व्यक्ति रहते है। यह प्रदेश विश्व के सबसे अधिक घने बसे भागो मे से है। यहाँ समतल भूमि घनी वर्षा उपयुक्त गर्मी और यातायात के साधनो की सुगमता के कारण ही जन-सख्या का घनत्व अधिक है।

(२) अधिक जन सख्या वाले भाग—यहाँ प्रति वर्ग मील मे ३०० से ५०० व्यक्ति तक रहते है। ऐसे भागो मे दक्षिणी भारत की नदियो के डेल्टे, पूर्वी बिहार महाराष्ट्र व गुजरात द० पजाब कोकन तथा प० उत्तर प्रदेश सम्मिलित है। यहाँ की भूमि उपजाऊ है और जिन भागो मे वर्षा की कमी है वहाँ उन्नत सिचाई के साधनो द्वारा वह भाग पूरा हो गया है।

(३) मध्यम जन-सख्या वाले भाग—यहाँ प्रति वर्ग मील १५० से ३०० व्यक्ति रहते हैं। इसमे सम्पूर्ण द० प्रायद्वीप एव उत्तर तथा पूर्वी पहाडी जङ्गलो मे कम बस्ती के जङ्गलो को छोडकर आसाम व हिमालय प्रदेश सम्मिलित हैं। मध्य-प्रदेश, बिहार के खनिज क्षेत्र, आन्ध्र प्रदेश, मैसूर, मद्रास तथा ब्रह्मपुत्र की घाटी इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

(४) कम जन-सख्या वाले भाग—यहाँ प्रति वर्ग मील मे १०० से १५० व्यक्ति से भी कम मनुष्य रहते हैं। इसमे राजस्थान का पूर्वी भाग, मध्य-प्रदेश का उत्तरी पश्चिमी भाग तथा आन्ध्र प्रदेश का दक्षिणी भाग सम्मिलित है। यहाँ की भूमि कम उपजाऊ है तथा जलवायु विषम है एव यातायात के साधनो का भी अभाव है।

(५) अत्यन्त कम जन सख्या वाले भाग—यहां प्रति वर्ग मील मे १०० से भी कम व्यक्ति रहते है। उत्तर-प्रदेश, राजस्थान, तराई, असम की पहाडियाँ, हिमाचल प्रदेश, मर्नपुर, कच्छ राज्य, जम्मू-काश्मीर, सुन्दरवन, छोटा नागपुर का पठार तथा उडीसा के सूखे भाग सम्मिलित हैं।

जन-सख्या सम्बन्धी विशेषतायें—

भारत की वर्तमान जन सख्या (सन् १९६१ की जन गणना के आधार पर) की कुछ महत्वपूर्ण विशेषतायें अग्रलिखित है :—

भारतीय जन संख्या की प्रमुख ७ विशेषतायें

(१) प्रादेशिक विभिन्नता।
(२) निरन्तर वृद्धि।
(३) ग्रामीण जन-सख्या मे कमी।
(४) साक्षरता मे वृद्धि।
(५) स्त्री-पुरुष अनुपात।
(६) आयु के आधार पर जन-सख्या।
(७) व्यावसायिक आधार पर विभाजन।

(१) प्रादेशिक विभिन्नता—सन् १९६१ की जन-गणना के आकडो से यह स्पष्ट प्रगट होता है कि देश के विभिन्न भागो मे जन-सख्या का घनत्व अलग-अलग है। उदाहरण के लिए, दिल्ली राज्य मे जन-सख्या का घनत्व ४,५७३ है, जबकि राजस्थान मे यह सख्या केवल १५० ही है।

(२) निरन्तर वृद्धि—जन-सख्या के अनुसार विश्व मे चीन के बाद भारत का दूसरा नम्बर है। सन् १९६१ की जन-सख्या के अनुसार भारत मे लगभग ४३$\frac{1}{2}$ करोड व्यक्ति निवास करते हैं। यदि हम पिछली अर्द्ध-शताब्दी के जन-गणना सम्बन्धी आंकडो का अध्ययन करें, तो हमको पता लगता है कि सन् १९०१ से सन् १९६१ तक लगभग २० करोड व्यक्ति बढे। वृद्धि की दर पिछले दशाब्दो की अपेक्षा गत दशाब्दो मे अधिक रही है।
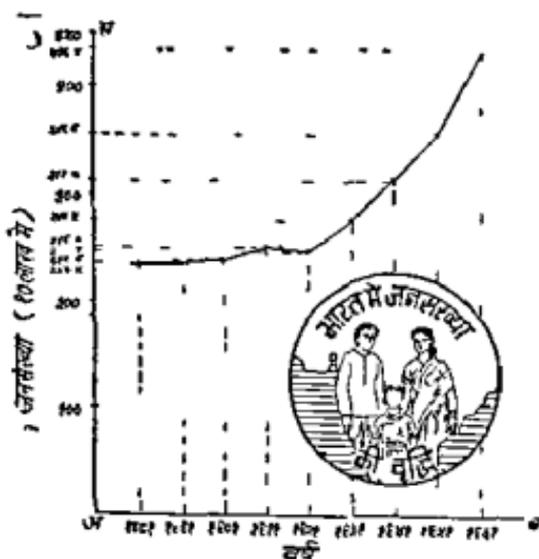
(३) ग्रामीण जन सख्या मे कमी—सन् १६५१ मे २६,०४,५८,५६७ से जन-सख्या सन् १६६१ मे ३३,८५,८४,५२६ तक पहुँच गई, जबकि शहरी जन-सख्या (जोकि सन् १६५१ मे ६,१८,६५,३६२ थी) मे १,५६,७४,५०८ की वृद्धि हुई है। इससे स्पष्ट है कि विचाराधीन अवधि (१६५१-१६६१) मे, कुल जन सख्या मे ग्रामीण जन-सख्या का अनुपात ० ४६% कम हो गया, जबकि शहरी जन सख्या का अनुपात इतना ही बढ गया है। यही नही, दस लाख से अधिक जन-सख्या रखने वाले नगरो की सख्या मे भी वृद्धि हुई है। सन् १६५१ मे इतनी जन-सख्या के केवल ४ नगर थे। लेकिन सन् १६६१ मे यह सख्या ५ हो गई है। (पाचवाँ शहर अहमदाबाद है।) इन नगरो की जन-सख्या नीचे दिखाई गई है :—

नगर	सन् १६६१	सन् १६५१
हैदराबाद	१२,५२,३३७	१०,८५,७२२
अहमदाबाद	११,४६,८५२	७,७८,३३३
मद्रास	१७,२५,२१६	१४,१६,०५६
बम्बई	४१,४६,४६१	२६,६४,४४४
कलकत्ता	२६,२६,४६८	२६,६८,४६४

नगरी जन-संख्या के अनुपात मे वृद्धि के प्रमुख कारण निम्नलिखित है :—

(अ) गाँव मे व्यक्ति अधिक हैं और भूमि कम है। इसके अतिरिक्त वहाँ सहायक उद्योग धन्धो की भी कमी है। अत. पेट की खातिर गाँव से नगरो की ओर प्रवास बढ रहा है।

(ब) आर्थिक नियोजन के परिणामस्वरूप शहरी क्षेत्रो मे गाँव की अपेक्षा अधिक औद्योगीकरण हुआ है, जिसमे नगरो की ओर लोगो का आकर्षण बढ गया है।

(स) नगरो मे गाँवो की अपेक्षा जीवन को सुखमय बनाने के लिये अधिक सामग्रिया उपलब्ध होती हैं। यही कारण है कि प्राय सभी लोगो मे नगरीय जीवन के प्रति रुचि बढती जा रही है।

(द) जमीदारी व जागीरदारी उन्मूलन के उपरान्त जमीदारो व जागीरदारो का गाँवो मे नगरो की ओर प्रवास बढ रहा है।

(य) देश के विभाजन के उपरान्त विस्थापितो ने अधिकाशत. नगरो मे ही रहना पसन्द किया है, क्योकि वहाँ उनको जीविकोपार्जन की अधिक सुविधायें मिलती हैं।

(४) साक्षरता मे वृद्धि—सन् १६६१ की जनगणना से पता चलता है कि देश की जन-सख्या का २३ ७% भाग साक्षर (literate) हो गया है। सन् १६५१ में यह प्रतिशत केवल १६ ६ था। इस प्रकार साक्षरता मे ७ १% की वृद्धि हो गई है। लेकिन जब कि ३३ ६% पुरुष जन-सख्या साक्षर है तब स्त्री जन सख्या का केवल १२ ८% भाग ही साक्षर है। सन् १६५१ मे ये प्रतिशत क्रमश २४ ६% एव ७·६% थे। इस प्रकार साक्षरता मे प्रति वर्ष कुल जन सख्या के आधार पर ० ७% औसतन वृद्धि हुई, पुरुष जन-सख्या मे ० ६% एव स्त्री जन-संख्या मे ०·५% औसतन प्रति वर्ष वृद्धि है। हिमाचल प्रदेश को छोडकर अन्य किसी भी राज्य मे साक्षरता-प्रतिशत दो गुना नही हो पाया है। मध्य-प्रदेश व राजस्थान मे साक्षरता प्रतिशत काफी बढा है।

(५) स्त्री-पुरुष अनुपात—किसी देश की सच्ची प्रगति के लिये स्त्री-पुरुषो का सतुलित अनुपात श्रेष्ठ होना है। कुल जन-सख्या मे २२,४६,५७,६४८ पुरुष और २१,१४,६६,४८१ स्त्रियाँ हैं। सन् १६५१ मे ये सख्यायें क्रमश १८,२८,७१,४२८ और १७,३०,७६,६३१ थीं। सन् १६६१ मे प्रति १,००० पुरुषो की तुलना मे ६४० स्त्रियाँ हैं, जबकि सन् १६५१ मे ६४६ थी। सन् १६०१ के पश्चात् स्त्री-पुरुषो के अनुपात मे इस प्रकार की कमी पहली बार हुई है। इस सम्बन्ध मे एक अनोखी बात पाई गई है। २२° latitude के उत्तरवर्ती राज्यो मे सेक्स अनुपात बहुत कम है, जबकि दक्षिणवर्ती राज्यो में (केवल मध्य प्रदेश व बिहार को छोड कर) सेक्स अनुपात अधिक है। गुजरात, महाराष्ट्र, मैसूर, केरल, मद्रास, आध्र, उडीसा, मध्य प्रदेश, उ० प्र० और बिहार के कुछ जिलो मे प्रति १०० पुरुष १०० से अधिक स्त्रियाँ हैं। मध्य प्रदेश, पजाब एव उत्तर-प्रदेश मे कुछ छोटे-छोटे क्षेत्र ऐसे भी हैं जहाँ स्त्री-पुरुष अनुपात असाधारण रूप से कम है। ७०-८० आयु वर्ग मे पुरुषों की अपेक्षा महिलायें दुगुनी हैं। सम्भवत. इसका कारण यह है कि पुरुषों का जीवन अधिक जोखिमपूर्ण होता है।

(६) आयु के आधार पर जन-सख्या—आयु के आधार पर अध्ययन करने से भारतीय जन-सख्या के बारे मे निम्न आकडे प्राप्त होते हैं :—

शिशु व बच्चे	३८ ३%
युवा स्त्री-पुरुष	३३ ०%
प्रौढ स्त्री-पुरुष	२० ०%
वृद्ध स्त्री-पुरुष	८ ३%

इन आंकडो के विश्लेषण से हम निम्न निष्कर्ष निकाल सकते हैं :—

(अ) भारत मे शिशुओ तथा बच्चो की जन-सख्या अधिक है, यद्यपि यह अभी सक्रिय नही है, किन्तु वास्तव मे देश की प्रगति का कार्य-भार इन्ही के कन्धो पर आना है।

(आ) भारत मे वृद्ध स्त्री पुरुषो की सख्या बहुत थोडी है, अर्थात् वृद्ध होने से पहले ही प्राय लोग मर जाते है, इससे देश को बडी हानि होती है, क्योकि एक तो अनुभवी वृद्ध व्यक्तियो के उचित पथ-प्रदर्शन का लाभ नही मिल पाता। दूसरे, उनके अभाव मे उत्पादनशीलता भी घटती है।

(इ) हमारी औसत आयु भी अन्य देशो की अपेक्षा बहुत कम है।

(ई) देश मे युवा एव प्रौढो की जन-सख्या (३३ ०+२० ४)=५३ ४% है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि देश के ३६-३७ करोड व्यक्तियो मे से केवल १८ करोड व्यक्ति ही काम करने वाले है, अतः जितने व्यक्ति उत्पादन मे सलग्न है उनके अतिरिक्त लगभग उतने ही व्यक्तियो का पोषण भी इन्ही को करना पडता है।

(उ) भारत मे बच्चो का अनुपात ३८% और वृद्धो का केवल ८% यह सकेत करता है कि देश मे जन्म एव मृत्यु दर दोनो ही अधिक है।

(७) **व्यावसायिक आधार पर विभाजन**—भारत एक कृषि प्रधान देश है और सन् १९६१ की जन गणना के अनुसार कुल जन-सख्या के लगभग ६६% लोग कृषि से आजीविका प्राप्त करते है तथा शेष ३४% अन्य व्यवसायो मे लगे है। सौराष्ट्र, कच्छ, अजमेर व दिल्ली राज्यो को छोड कर भारत के अन्य सभी राज्यो मे कृषि की प्रधानता है। बगाल तथा बम्बई जैसे औद्योगिक राज्यो मे भी कृषि पर निर्भर लोगो की संख्या अधिक है। हिमाचल प्रदेश व सिक्कम जैसे पहाडी राज्यो मे तो ९०% लोग कृषि द्वारा अपनी आजीविका पालते है।

इङ्गलैण्ड तथा अमेरिका मे लगभग आधे लोग कृषि पर और शेष उद्योगो मे तथा अन्य कार्यों मे लगे हैं अतः यदि इन देशो मे कभी कृषि की दशा बिगडती भी है तो कोई विशेष चिन्ता नही करनी पडती, परन्तु हमारे देश मे ऐसी परिस्थिति होने पर आर्थिक सन्तुलन ही बिगड जाता है। यही कारण है कि तृतीय पच-वर्षीय योजना के द्वारा कृषि पर जनता के भार को कम करने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि कृषि पर अधिक निर्भरता के कारण हमारे देश के खेत बहुत छोटे-छोटे है एव प्रति एकड़ उत्पादन भी अन्य देशो की अपेक्षा बहुत कम है,

इसी कारण दरिद्रता एव बेकारी बढ रही है तथा लोगो का जीवन-स्तर बहुत नीचा है। आशा है कि आर्थिक नियोजन के द्वारा यह समस्या भविष्य मे हल हो सकेगी।

क्या भारत मे जन-सख्या का आधिक्य है ?—

कुछ लोगो के मतानुसार भारत मे जन सख्या का आधिक्य नही है, क्योकि वहाँ जन-सख्या का घनत्व केवल ३८४ व्यक्ति प्रति वर्ग मील है, जबकि हालैण्ड का ८२५.३, बेल्जियम का ७३४.४, जापान का ५७५.४ और इङ्गलैण्ड का ५३७.८ है। इस विचारधारा के समथक यह दलील देते है कि भारत के प्राकृतिक प्रसाधनो का अभी पूर्णरूपेण उपयोग नही हुआ है, अत. जन-सख्या अधिक प्रतीत होती है। यदि हम अपने नैसर्गिक साधनो का पूर्ण उपयोग करके उत्पादन मे वृद्धि करें, तो कही अधिक जन-सख्या का पालन कर सकते है। इसके विपरीत, दूसरी विचारधारा के समर्थक यह कहते है कि जन-सख्या के आधिक्य की कोई समस्या न समझना, वास्तव मे सत्यता का गला घोटना है। जहाँ तक पहली दलील का सम्बन्ध है, उत्तरी-पश्चिमी भारत व मध्यवर्ती भारत के राज्यो को छोडकर भारत के शेष राज्यो मे जन-सख्या का घनत्व योरोप के घने आबाद देशो की तुलना मे कम नही है, जैसे—दिल्ली मे ४,५७३ व्यक्ति प्रति वर्ग मील, केरल मे १,१२५, बगाल मे १,०३०, बिहार मे ६९०, उत्तर-प्रदेश मे ६५० और पजाब मे ४३१ है। इस द्वितीय विचारधारा के समर्थक निम्न दलीलो के आधार पर ऐसा कहते हैं कि भारत मे जन-सख्या का आधिक्य है।

भारत मे जन-सख्या का आधिक्य एवं उसके कारण—

(१) मालथस के सिद्धान्तानुसार—मालथस के जन-सख्या के सिद्धान्तानुसार यदि किसी देश मे निवारक प्रतिबन्धो, जैसे—ब्रह्मचर्य पालन, कम आयु मे विवाह न करना, गर्भ निरोधक साधनो का प्रयोग, जीवन स्तर मे सुधार, आदि का अभाव होता है और इनके स्थान पर प्राकृतिक प्रतिबन्ध, जैसे—बीमारी, बेकारी, भूकम्प इत्यादि, क्रियाशील होते हैं, तो ऐसा समझा जाता है कि देश मे जन-सख्या का आधिक्य है। भारत मे निवारक प्रतिबन्धो का अभाव है। छोटी उम्र मे विवाह होने के कारण एव दूषित मिले वातावरण के कारण लोग ब्रह्मचर्य पालन मे असमथ होते हैं। यहाँ विवाह एक धार्मिक कर्त्तव्य और सन्तानोत्पत्ति एक सामाजिक आवश्यकता समझी जाती है। आजकल देश मे केवल बाल-विवाह एव बहु-विवाह का ही प्रश्न नही है, वरन् वृद्ध विवाह का प्रचलन भी हमारे देश का बहुत बडा अभिशाप है। फलत. सिद्धान्तानुसार प्राकृतिक प्रतिबन्ध देश मे अधिक क्रियाशील रहे है, जैसे—महामारियाँ, दुर्भिक्ष, बाढ, भूकम्प, दगे इत्यादि। यहाँ मलेरिया से प्रति वर्ष १५ लाख व्यक्ति मर जाते हैं। सन् १९४३ के बंगाल दुर्भिक्ष मे ३५ लाख व्यक्तियो की बलि चढी। सन् १९५७ के ग्रीष्म काल मे फ्लू के दानव ने अनेक व्यक्तियो के प्राण लिये। सन् १९५८ मे रेल-दुर्घटनाओ एव बाढ़ की आपत्तियो से भी सहस्रो व्यक्तियो की जानें चली गई, अतः स्पष्ट है कि निवारक प्रतिबन्धो के अभाव मे प्रकृति अपना कार्य तीव्रता से कर रही है। यह जन-सख्या के आधिक्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

(२) खाद्य समस्या के आधार पर—हमारे देश मे जन सख्या जिस गति से बढी है, भोज्य सामग्री का उत्पादन उस अनुपात मे नही बढा है। सन् १६३८ मे श्री वी० के० वत्तल ने अखिल भारतीय जन सख्या सम्मेलन के समक्ष अपने अध्यक्षीय भाषण मे बताया था कि सन् १६१४ और सन् १६४० के बीच की अवधि में भारत मे जन-सख्या की वृद्धि १% हुई, परन्तु भोज्य सामग्री म वृद्धि केवल ० ६५% हुई। द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त हमारी खाद्य समस्या ने एक उग्र रूप धारण कर लिया और देश के विभाजन ने जले पर नमक छिडकने का कार्य किया। बँटवारे के परिणामस्वरूप यद्यपि भारत को कुल क्षेत्रफल का ७७% भाग मिला, किन्तु जन-सख्या ८१% मिली। भारत से पाकिस्तान मे केवल ७५ लाख लोग गये, किन्तु वहाँ से हमारे देश म १ करोड से भी अधिक व्यक्ति आये। राष्ट्रीय योजना समिति सन् १६४७, पच-वर्षीय योजना आयोग सन् १६५३ एव खाद्यान्न जाँच समिति सन् १६५७ की रिपोर्टों के अनुसार भी इसी मत की पुष्टि होती है कि जन सख्या की वृद्धि के अनुपात मे खाद्यान्न उत्पादन मे वृद्धि नही हो रही है।

(३) वृद्धि की अत्यधिक गति—देश मे जन सख्या बडी तेजी से बढ रही है। परन्तु जहाँ जन सख्या मे वृद्धि हो रही है, वहाँ प्रति व्यक्ति बोई गई भूमि निरन्तर घटती जा रही है। यही नही हमारे देश मे गेहूँ और चावल उतनी तेजी से नही बढ रहा है, जितनी तेजी से अन्य मोटे अनाजो का उत्पादन। खाद्य सामग्री के अतिरिक्त हमारे देश मे चीनी, सब्जी, दूध इत्यादि का उपभोग भी निरन्तर कम होता जा रहा है।

(४) बेकारी की समस्या—यदि जन सख्या अनुकूलतम बिन्दु से कम होती, तो बेकारी की समस्या इतनी भीषण न होती, जितनी कि आज है। योजना आयोग ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि शिक्षित एव अशिक्षित दोनो ही वर्गों मे बेकारी बढ रही है और समस्या इतनी विशाल है कि इसको थोडे समय मे हल नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसका सम्बन्ध जन-सख्या के आधिक्य से है।

(५) प्रोफेसर कैनन का अनुकूलतम जन सख्या का सिद्धान्त—यदि देश की जन-सख्या अनुकूलतम जन सख्या से अधिक है, तो जन-सख्या की अत्यधिक वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति आय मे उसी अनुपात मे वृद्धि न होगी, जैसा कि भारत मे घटित हो रहा है, अत. कैनन के सिद्धान्तानुसार भी हम इसी निष्कष पर पहुँचते हैं कि हमारे देश मे अति जन सख्या की समस्या विद्यमान है।

बढती हुई जन सख्या को रोकने की आवश्यकता इसलिये उत्पन्न होती है कि हमारा उपभोग स्तर बहुत नीचा है, जिसे ऊपर उठाने की विशेष आवश्यकता है। जब तक हम इस अनावश्यक वृद्धि को न रोकेंगे, तब तक हमारी प्रति व्यक्ति आय नही बढ सकती।

हमारी पच-वर्षीय योजना मे जन सख्या की समस्या को हल करने के उद्देश्य से निम्न कार्य क्रम अपनाया गया है :—

(१) सरकारी अस्पतालो एव स्वास्थ्य केन्द्रो मे इच्छुक विवाहित व्यक्तियों

के लिए पारिवारिक नियोजन के सिद्धान्तो के सम्बन्ध मे उचित परामर्श दिए जाने की व्यवस्था करना।

(२) जनता के विभिन्न वर्गो मे पारिवारिक नियोजन के सिद्धान्तो के प्रभाव, अनुकूलता तथा स्वीकृति के सम्बन्ध मे अधिक खोज करके आँकडे इकट्ठे करना। इस सम्बन्ध मे 'रिदमिक प्रणाली' (Rhythmic Method) पर अधिक जोर दिया जाना। इसमे किसी कृत्रिम साधन के अपनाने की आवश्यकता नही पडती तथा यह ग्रामीण जनता के लिए भी उपयुक्त सिद्ध हो सकता है।

(३) जन-सख्या के विभिन्न वर्गो मे प्रजनन दर एव प्रजनन प्रकार (Reproduction pattern) के सम्बन्ध मे आँकडे इकट्ठे करने एव पारिवारिक नियोजन के कौन से सिद्धान्त किस क्षेत्र एव किस वर्ग के लिए उपयुक्त हो सकते हैं, यह जानने के लिए इन आँकडो की बडी आवश्यकता होनी है।

(४) इनके अतिरिक्त योजना आयोग का सुझाव है कि खोज एव प्रयोगो के परिणामो का मूल्याकन करने, जन-सख्या का नियन्त्रण करने तथा सरकार को पारिवारिक नियोजन सम्बन्धी परामर्श देने के लिए एक जन-सख्या आयोग (Population Commission) की नियुक्ति वांछनीय हैं।

आयोजन एवं रोजगार—

भारत के आयोजन का एक मुख्य उद्देश्य लोगो को रोजगार दिलाना रहा है। विकास की काफी लम्बी अवधि के बाद ही जनशक्ति के उपलब्ध साधनो का पूरा उपयोग किया जा सकता है। फिर भी, तीसरी योजना के मुख्य उद्देश्यो मे से एक उद्देश्य यह रखा गया है कि योजना की अवधि मे श्रमिक वर्ग मे जितनी वृद्धि हो उतनी वृद्धि रोजगार के अवसरो मे भी होनी चाहिए।

(१) सख्या की दृष्टि से, रोजगार के पर्याप्त अवसर प्रदान करना उन अत्यन्त कठिन कार्यो मे से एक है, जिन्हे अगले पाँच वर्षो मे करना है। ग्रामीण क्षेत्रो मे बेरोजगारी और अर्द्ध-बेरोजगारी, ये दोनो ही साथ साथ दिखाई पडती है और उनके बीच कोई स्पष्ट अन्तर प्रतीत नही होता। ग्रामो मे साधारणतया बेरोजगारी का स्वरूप अर्द्ध-बेरोजगारी है। यह अर्द्ध-बेरोजगारी मन्दी के मौसमो मे और अधिक उल्लेखनीय हो जाती है। शहरी क्षेत्रो मे व्यापार, यातायान और उद्योग की स्थिति मे जो उतार-चढाव होता है, उसी के अनुसार रोजगार मे भी उतार-चढाव आता है। इस प्रकार परिस्थितियो मे जो अन्तर होता है, उसका रोजगार के आकडो में होने वाली वृद्धि या कमी से पता चलता है। सामान्यतः गावो मे अर्द्ध-बेरोजगारी की जो परेशानी है, वही कस्बो मे भी कुछ मात्रा मे है।

(२) रोजगार के बारे मे इस समय प्राप्त सामग्री अधूरी है। फिर भी जो सीमित जानकारी उपलब्ध है, उसके आधार पर यह अनुमान किया गया है कि द्वितीय पच-वर्षीय योजना के अन्त तक जिन लोगो को रोजगार नही दिलाया जा सका, उनकी सख्या लगभग ९० लाख है। दूसरी पंच-वर्षीय योजना की अवधि मे ५३ लाख लोगो

के बेरोजगार रह जाने का अन्दाजा था, किन्तु इसकी तुलना मे बेरोजगार रहने वाले लोगो मे जो वृद्धि हुई उसका यह अर्थ है कि यद्यपि रोजगार की समस्या पर आयोजन का पर्याप्त प्रभाव पडा, किन्तु फिर भी श्रमिक वर्ग मे नए शामिल होने वाले लोगो की सख्या मे जो निरन्तर वृद्धि हुई, उस हिसाब से लोगो को रोजगार नही दिलाया जा सका। पूरा बेरोजगारी के अतिरिक्त, जिन लोगो के पास कुछ काम है, किन्तु जो अतिरिक्त कार्य भी करना चाहते हैं, उनकी दृष्टि से अर्द्ध-रोजगार वाले लोगो की सख्या लगभग १ करोड ५० लाख से १ करोड ८० लाख तक है। सन् १९६१ की जनगणना से प्राप्त सामग्री के आधार पर यह अनुमान है कि तीसरी योजना की अवधि मे श्रमिक वर्ग मे लगभग १ करोड ७० लाख लोगो की वृद्धि होगी, इस वृद्धि की एक तिहाई शहरी क्षेत्रो मे होगी। इसके विपरीत यह अनुमान है कि तीसरी योजना मे १ करोड ४० लाख लोगो को—१ करोड ५ लाख लोगो को कृषि-भिन्न कार्यों मे और ३५ लाख लोगो को कृषि मे अतिरिक्त रोजगार दिलाया जाएगा। नीचे की तालिका मे कृषि-भिन्न-कार्यों मे रोजगार का विवरण दिया गया है :

अतिरिक्त कृषि-भिन्न रोजगार

(लाखो मे)

क्षेत्र	तीसरी योजना मे अतिरिक्त रोजगार
१ निर्माण[1]	२३ ००
२ सिंचाई और बिजली	१ ००
३ रेल	१ ४०

१. चूकि निर्माण कार्य से बहुत बडी सख्या मे रोजगार मिलता है, इसलिए विभिन्न विकास क्षेत्रो मे रोजगार का निम्न रूप से दिया गया विवरण उपयोगी होगा :

	(लाखो मे)
क. कृषि और सामुदायिक विकास	६ १०
ख सिंचाई और बिजली	४·६०
ग उद्योग और खनिज, जिसमे कुटीर और लघु उद्योग भी सम्मिलित हैं	४ ६०
घ. यातायात और सचार, (रेल सहित)	३ ४०
ङ सामाजिक सेवाए	३ ५०
च विविध	० ५०
कुल योग	२३·००

४. अन्य यातायात और सचार	८·८०
५. उद्योग और खनिज	७·५०
६. छोटे उद्योग	६·००
७. वन, मछलीपालन और सम्बद्ध सेवाए	७·२०
८. शिक्षा	५·६०
९. स्वास्थ्य	१·४०
१०. अन्य सामाजिक सेवाए	० ८०
११. सरकारी सेवा	१·५०
योग	६७ ५०
१२ 'अन्य' जिनमे उद्योग और व्यापार सम्मिलित हैं, १ से ११ तक की मदो के कुल योग का ५६ प्रतिशत	३७ ८०
कुल योग	१०५·३०

इस प्रकार श्रमिक वर्ग में नए शामिल होने वाले लोगो को काम दिलाने के लिए ३० लाख लोगो के लिए अतिरिक्त रोजगार होना चाहिए।

(३) रोजगार की समस्या को तीन मुख्य रूपो मे सुलझाने का विचार है। पहला, योजना के ढाचे के अन्तर्गत ऐसे प्रयत्न करने होगे जिनमे पहले की अपेक्षा रोजगार के प्रभावो का फैलाव अधिक व्यापक और सतुलित रूप से हो। दूसरा, ग्रामीण क्षेत्रो के औद्योगीकरण का एक काफी बडा कार्यक्रम हाथ मे लेना चाहिए, जिसमे इन बातो पर विशेष जोर दिया जाए—ग्रामीण क्षेत्रो में बिजली लगाना, ग्रामीण औद्योगिक सम्पदाओ का विकास, ग्रामीण उद्योगो की उन्नति, और जनशक्ति को प्रभावशाली रूप मे फिर से काम मे लगाना। तीसरा लघु उद्योगो द्वारा रोजगार बढाने के अन्य उपायो के अतिरिक्त ग्रामीण निर्माण कार्यक्रमो को सगठित करने का विचार है, जिससे लगभग २५ लाख और सम्भवतः इससे भी अधिक लोगो को साल मे औसतन १०० दिन तक काम मिलेगा।

(४) समूचे देश अथवा बडे-बडे प्रदेशो जैसे राज्यो की दृष्टि से बेरोजगारी की समस्या का विश्लेषण करना पर्याप्त नही है। प्रत्येक जिले के विकास कार्यक्रम हैं, जिनका सम्बन्ध कृषि, सिंचाई, बिजली, ग्राम और लघु उद्योग, सचार और सामाजिक सेवाओ से है और जिनका उद्देश्य अपने क्षेत्र मे आर्थिक क्रियाकलाप के स्तर को ऊँचा उठाना है। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक राज्य मे बेरोजगारी की समस्या को हर स्तर पर—जिला, ग्राम और खण्ड स्तर पर अधिक रूप मे सुलझाने का प्रयत्न करना चाहिए। स्थानीय रोजगार के इस प्रकार के विश्लेषण से अधिकारियो को इस बात मे सहायता मिलेगी कि वे विशिष्ट वर्ग के बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार दिलाने के लिए साधन जुटा सके और स्थानीय परिस्थितियो एव साधनो को ध्यान में

रखते हुए प्रत्येक क्षेत्र मे इस समस्या को जैसी परिस्थिति हो, उसके अनुसार सुलझा सकें ।

(५) बहुत बडे पैमाने पर बेरोजगारी और अर्द्ध-बेरोजगारी, और तीसरी योजना की अवधि मे श्रमिक वर्ग मे नए शामिल होने वाल लोगो की विशाल सख्या को ध्यान मे रखते हुए इस बात की बडी आवश्यकता है कि निर्माण क्षेत्र मे हाथ से काम करने वाले लोगो को और कितना अधिक रोजगार दिया जा सकता है, इस बात की फिर से जाच की जाए । श्रम उद्दीपक उपाय बरते जाने चाहिए, किन्तु जहा इनकी आवश्यकता न हो वहा इन्हे नही बरतना चाहिए । यदि पूर्वायोजन और आवश्यक सगठन किया जाय तो हाल ही के वर्षों की अपेक्षा जनशक्ति का और बडी हद तक उपयोग करना सम्भव है ।

(६) यद्यपि हाल के वर्षों मे ग्रामो और लघु उद्योगो की उन्नति के लिए बहुत-कुछ किया गया है, फिर भी इस क्षेत्र मे और अधिक बडी सख्या मे लोगो को रोजगार दिलाने की सभावनाएँ निकालनी हैं । यह कार्य तभी हो सकता है जबकि मौजूदा उद्योगो के कच्चे माल की यथेष्ठ पूर्ति, प्रोसेसिंग तथा अन्य सुविधाओ की व्यवस्था की जाए । इन सुविधाओ मे ऋण तथा हाट-व्यवस्था भी सम्मिलित हैं । इस बात के लिए विशेष प्रयत्न किए जाने चाहिए कि छोटे उद्योगो (चाहे वे कारीगरो की सहकारी समितियो द्वारा अथवा वैयक्तिक उपक्रमियो द्वारा चलाए जा रहे हो) को अपना अधिकतम उत्पादन-सामर्थ्य प्राप्त करने मे सहायता की जाए । ग्रामीण औद्योगीकरण और गाँवो मे बिजली लगाना, ये दोनो सम्बद्ध कार्यक्रम है और ग्रामीण क्षेत्रो मे स्थिर रोजगार के अवसर बढाने के लिए इनका सबसे अधिक महत्त्व है । प्रत्येक क्षेत्र मे और छोटे-छोटे कस्बो और गावो मे औद्योगिक विकास के केन्द्र स्थापित करना आवश्यक है और ये सुधरे हुए यातायात एव अन्य सुविधाओ के द्वारा एक दूसरे से जुडे हुए होने चाहिए । प्रत्येक जिले मे अग्रिम आयोजन के द्वारा कृषि सम्बन्धी और औद्योगिक विकास का कार्यक्रम बिजली की पूर्ति के साथ समन्वित होना चाहिए ।

(७) अर्द्ध-रोजगारी की समस्या के स्थायी समाधान के लिए यह आवश्यक है कि न केवल सभी लोग कृषि कार्य मे विज्ञान का प्रयोग करें, बल्कि ग्रामीण आर्थिक ढाँचे को विभिन्न क्षेत्रो मे विस्तृत करना और उसे सुदृढ बनाना भी आवश्यक है । ग्राम और लघु उद्योगो तथा प्रोसेसिंग उद्योगो के विकास के लिए कार्यक्रमो को और अधिक बढाना होगा और ग्रामीण क्षेत्रो मे नए उद्योग स्थापित करने होगे । इस प्रकार जहाँ ग्रामीण अर्थव्यवस्था का निर्माण किया जा रहा है, वहाँ समस्त ग्रामीण क्षेत्रो मे व्यापक निर्माण कार्यक्रमो की आवश्यकता है । खास तौर पर इन क्षेत्रो मे ऐसा होना चाहिए जहा अधिकाश लोग भूमि पर निर्भर हैं और जहाँ काफी बेरोजगारी और अर्द्ध बेरोजगारी है । इस कार्यक्रम मे खण्ड और ग्राम स्तर पर मुख्यत. स्थानीय निर्माण-कार्य किये जाएगे । विशेषत. कृषि के मन्दे मौसम में कार्यान्वित करने के लिए निर्माण कार्यक्रम बनाए जाएगे । गावो मे जो निर्माण कार्य होगे, उन सभी

मे ग्राम की दरो पर मजदूरिया दी जाएगी। ऊपर जो बातें बताई गई हैं, मोटे तौर पर उनका अनुसरण करते हुए हाल ही मे ३४ प्रारम्भिक परियोजनाए चालू की गई हैं। इनमे सिंचाई, वन लगाना, भूमि सरक्षण, नालियाँ बनाना, भूमि का पुनरुद्धार, सचार साधनो मे सुधार आदि की पूरक योजनाए सम्मिलित है। प्रारम्भिक परियोजनाओ के आधार पर अन्य क्षेत्रो मे एक बडे पैमाने पर इस कार्यक्रम को विस्तृत करने का विचार है। अस्थायी तौर पर यह अनुमान है कि निर्माण कार्यक्रमो द्वारा पहले वर्ष मे १ लाख व्यक्तियो को रोजगार दिया जाना चाहिए, दूसरे वर्ष मे ४ लाख से ५ लाख तक व्यक्तियो को और तीसरे वर्ष म लगभग १० लाख व्यक्तियो को रोजगार दिया जाना चाहिए और इस प्रकार बढते-बढते योजना के अन्तिम वर्ष मे लगभग २५ लाख व्यक्तियो को रोजगार मिल जाना चाहिए। योजना की अवधि मे इस समूचे कार्यक्रम पर कुल व्यय १५० करोड रुपया हो सकता है। कार्यक्रम के आगे बढने के साथ-साथ इस बात पर भी विचार किया जा सकता है कि मजदूरी की अदायगी आशिक रूप मे हो। निर्माण कार्यक्रमो को कार्यान्वित करने के लिए मुख्यतः राज्यो मे और जहाँ तक जरूरी हो वहाँ तक केन्द्र मे पर्याप्त सगठन स्थापित करने की आवश्यकता होगी।

(८) शीघ्रता से औद्योगीकरण किए जाने के परिणामस्वरूप पढे-लिखे लोगो के लिए रोजगार के अवसर और अधिक बढ जाएगे। इसलिए उद्योगो के लिए जिस प्रकार के कर्मचारियो की आवश्यकता होगी, उसको पूरा करने के लिए शिक्षा-पद्धति मे भी परिवतन करने होगे। माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के विस्तार के कारण इस बात की ओर अधिक ध्यान देना होगा कि पढे-लिखे लोग लाभदायक रोजगार मे लगाए जाए। अनुमान है कि इस समय लगभग १० लाख पढे-लिखे बेरोजगार हैं। तीसरी योजना की अवधि मे हाई स्कूल तथा इससे ऊपर की शिक्षा-प्राप्त लोगो की सख्या लगभग ३० लाख हो जाने का अनुमान है, जिन्हे रोजगार दिलाना होगा। कृषि, उद्योग और यातायात की उन्नति होने से कुशल और व्यावसायिक अथवा प्राविधिक प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियो की अधिक माँग होगी और उनके लिए रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त होगे। हाल के वर्षो मे हाथ के काम के प्रति पढे-लिखे लोगो के रुख मे परिवर्तन हुआ है और उन्हे विकासशील अर्थ व्यवस्था की आवश्यकताओ के अनुकूल बनाने के लिए बडे पैमाने पर कार्यक्रम हाथ मे लेन का विचार है। सहकारी समितियो और वैज्ञानिक खेती तथा लोकतांत्रिक सस्थाओ की स्थापना हो जाने से ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत पढे-लिखे लोगो के लिए नियमित और निरन्तर रोजगार का क्षेत्र काफी बढ जाएगा। ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था मे प्राप्त रोजगार से उन्हे सही मायनो मे उतनी ही आय होगी, जितनी कि शहरो मे होती है। यह भी सभव हो जाएगा कि काफी बडी सख्या मे पढे लिखे नवयुवको को ग्रामीण केन्द्रो मे, जहाँ बिजली उपलब्ध की जा सके, छोटे-छोटे उद्योग स्थापित करने मे सहायता दी जाए।

(९) इस बात की आवश्यकता है कि जो परियोजनाए पूरी हो चुकी है या

जो पूरी होने वाली हैं, वहाँ से कुशल कर्मचारियों को लेकर उन परियोजनाओं मे लगाया जाए जिनका आरम्भ होने वाला है। दूसरी योजना मे इस कार्य के लिए बनाए गए सगठन ने सन्तोषजनक रूप से कार्य किया है। इस सगठन को बनाए रखते हुए यदि किसी प्रकार की परियोजनाओं की अवस्थाओं का विभाजन और अधिक अच्छे ढग से किया जाए तथा पूर्वायोजन किया जाए तो इस समस्या का अधिक आसानी से सामना किया जा सकता है।

STANDARD QUESTIONS

1. Discuss the relationship between population and real income of a country.
2. Why is the density of population so different in different states of India ? Analyse its economic effects.
3. Summarize the main features of Indian population.
4. Write a short note on Employment under the Third Five Year Plan.

अध्याय ५७

भारतीय अर्थ व्यवस्था में कुटीर एवं लघु उद्योगों का महत्त्व

(Importance of Cottage & Small Scale Industries in India's Economy)

कुटीर उद्योगो से आशय—

कुटीर उद्योग से हमारा आशय उन उद्योगो से है जिनके अन्तर्गत काम करने वाले एव काम लेने वाले प्राय एक ही परिवार के सदस्य होते हैं। इनमे विद्युत शक्ति एव यन्त्रो का प्रयोग होना अथवा न होना कोई विशेष महत्त्व नही रखता। दूसरे शब्दो मे, यह कोई विचार का विषय नही है कि कुटीर उद्योगो मे बिजली की शक्ति व छोटे मोटे यन्त्रो का उपयोग किया जाय अथवा नही। सन् १६४६-५० के प्रशुल्क मण्डल के प्रतिवेदन के अनुसार, "कुटीर उद्योग" की परिभाषा के अन्तर्गत केवल ग्राम्य-उद्योग ही नही आते, वरन् ऐसे नगरीय या शहरी उद्योग, जो कुटीर उद्योगो के लक्षणो से मेल खाते हो, इनकी परिभाषा मे सम्मिलित किये जा सकते है।

लघु-उद्योगो से आशय—

इसके विपरीत, "लघु उद्योगो" से तात्पर्य उन उद्योगो से है, जिनमे पाँच लाख तक की पूँजी लगी हो एव इसमे काम करने वाले श्रमिको की सख्या १० व ५० के मध्य हो। लघु उद्योगो की आधुनिक परिभाषा के अनुसार इस द्वितीय लक्षण पर अधिक बल नही दिया जाता, अर्थात् यदि किसी उद्योग-धन्धे मे ५० से भी अधिक श्रमजीवी काय करते हो, परन्तु भूमि, पूँजी, साहस एव सगठन का आकार बहुत बडा नही है, तो निश्चय ही ऐसा उद्योग "लघु उद्योग" की श्रेणी मे गिना जावेगा। जहाँ तक शक्ति व यन्त्रो के प्रयोग का सम्बन्ध है, लघु उद्योगो मे प्रायः इन दोनों का ही उपयोग किया जाता है।

भारतीय अर्थ व्यवस्था मे महत्त्व—

भारतीय अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत कुटीर एव लघु उद्योगो के महत्त्व के विषय मे जो कुछ भी कहा जाय, कम ही होगा। ग्राम्य एव लघु उद्योगो के अत्यधिक महत्त्व

के ही कारण पूज्य बापू प्राय. कहा करते थे कि, "भारत की आर्थिक समृद्धि कुटीर एव लघु उद्योगो के विकास मे ही निहित है। कुटीर एव लघु उद्योगो के महत्व को भली प्रकार समझने के लिए भारतीय अर्थ व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओ पर प्रकाश डालना अनावश्यक न होगा।

भारतीय अर्थ-व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं—

भारत की अर्थ-व्यवस्था का गहन अध्ययन करने से इसकी निम्नलिखित विशेषताओ का आभास मिलता है—

(१) कृषि पर जन संख्या का अत्यधिक भार। भारतवर्ष मूलतः कृषि प्रधान देश है। "भारत सन् १९६१" के आंकडो के अवलोकन से यह स्पष्ट पता लगता है कि यद्यपि आर्थिक नियोजन के गत दस वर्षो से हमारे देश ने औद्योगीकरण की दिशा मे सराहनीय प्रगति की है, किन्तु फिर भी आज लगभग ६६% व्यक्ति कृषि व्यवसाय मे ही लगे हुए हैं। भारत गावो का देश है और गावो की ८०% जन-संख्या का प्रमुख व्यवसाय कृषि ही है।

(२) वर्ष मे ४-६ माह खाली रहना। कृषि के शाही कमीशन ने लिखा है कि भारतीय कृषि की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इस पर काम करने वाले कृषक को वर्ष भर कृषि कार्य मे व्यस्त नही रहना पडता। साल मे कम से कम ४ ६ माह वह खाली रहता है। डा० राधा कमल मुकर्जी की खोज के अनुसार 'उत्तरी भारत मे ऐसे अनेक देश है जहां कृषक वर्ष मे लगभग २०० दिन बेकार रहते है। कही-कही, जहां सिचाई के अच्छे और उत्तम साधन प्राप्त है, वहा इससे भी अधिक समय तक बेकार रहते हैं। जिस कृषक के पास भूमि कम है, उसके सारे परिवार को उस पर काम करने की आवश्यकता नही पडती।" अतः जिन दिनो हमारे कृषक हाथ पर हाथ रखे बैठे रहते है, उन दिनो के लिए उनको व्यस्त रखने तथा खाली समय का सदुपयोग करने एव उनकी आय का कोई अन्य साधन खोज निकालना, भारतीय अर्थ-व्यवस्था की एक अनोखी विशेषता है।

(३) निम्न जीवन स्तर। उपर्युक्त दो विशेषताओं के परिणामस्वरूप हमारे अधिकांश देशवासियो का जीवन स्तर अत्यन्त निम्न है। अशिक्षा, अज्ञानता एव कूपमडूकता के वातावरण मे पले हुए हमारे अधिकाश ग्राम-वासी दरिद्रता के दानव के शिकार हैं। यदि किसानो की वास्तविक आर्थिक स्थिति का अवलोकन करे तो सचमुच रोना आ जाता है। आय कम होने के कारण वे जीवन की परम आवश्यक वस्तुओ को उपलब्ध नही कर पाते। उनके पास भूमि इतनी कम है कि वे वर्ष भर पूरी महनत भी नही कर सकते।

(४) सापेक्षिक पिछड़ापन। विश्व के अन्य प्रगतिशील राष्ट्रो की तुलना मे हमारा देश अभी बहुत पिछडा है। भारत की गणना अर्द्ध-विकसित राष्ट्रो मे की जाती है। जब हम विश्व के अन्य देशो की आर्थिक सामाजिक एव राजनैतिक प्रगति का अध्ययन करते हैं तो पता लगता है कि एक ओर जबकि दुनिया के कुछ राष्ट्र चन्द्रलोक की ओर

बढने का प्रयास कर रहे हैं, भारत मे अभी 'स्वचालन' (Automation) भी पूर्णता की दशा पर नही पहुँच सका है। अन्य उन्नतिशील औद्योगिक राष्ट्रो के साथ कदम ब-कदम मिलाकर चलने के लिए हमे अभी बहुत कुछ करना शेष है। इस हेतु हमे अपनी अर्थ व्यवस्था को सुदृढ करना होगा। (५) राजनैतिक परिस्थितियाँ। अर्थ नीति का राजनीति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होते हुए भी, वर्तमान युग मे किसी भी देश की अर्थ-व्यवस्था, राजनैतिक परिस्थितियों से बिना प्रभावित हुए नही रह सकती। कभी-कभी ऐसा अनुभव होता है कि विश्व के अत्यन्त सभ्य एव उन्नत कहे जाने वाले राष्ट्र युद्ध की तैयारियो मे सलग्न है। भारत भी अपने पडौसी देशो की राजनीतिक कार्य विधियो से सतुष्ट नही है। ऐसी अवस्था मे अर्थ व्यवस्था को अत्यन्त सुदृढ रखना नितान्त आवश्यक हो जाता है।

अर्थ-व्यवस्था की सुदृढता मे कुटीर लघु उद्योगो का योगदान—

भारत जैसे विशाल जन सख्या वाले एव कृषि प्रधान देश मे अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ करने के लिए कुटीर एव लघु उद्योगो का विकास नितान्त आवश्यक है। औद्योगीकरण की किसी भी देशव्यापी योजना मे इनको सम्मिलित करना अनिवार्य हो गया है। अपने एक लेख मे डा० बी० बी० नारायण स्वामी नायडू ने एक स्थान पर लिखा है कि, 'कुटीर एव लघु उद्योगो का महत्त्व भली प्रकार न समझने का एक कारण यह है कि हमको इस बात का पूर्ण ज्ञान नही है कि विश्व के अन्य उन्नतशील औद्योगिक राष्ट्रो मे कुटीर उद्योगो को क्या स्थान प्राप्त है। गत महायुद्ध के पूर्व जापान का नाम ऐसे एक आदर्श राष्ट्र के रूप मे लिया जाता था, जहाँ की औद्योगिक प्रगति का श्रेय वहाँ के छोटे-मोटे उद्योग धन्धो को ही था। आज भी पश्चिम के अधिक उन्नतिशील देशो, जैसे सयुक्त राष्ट्र अमेरिका, मे सामुदायिक विकास योजनाओ के अन्तर्गत जो छोटे उद्योग धन्धे चलते है वे बडे सफल तथा प्रचलित है एव उनके द्वारा निर्मित पदार्थ कारखानो द्वारा बने हुए माल से अच्छे समझे जाते हैं।" श्री ग्रीन ने भी एक स्थान पर लिखा है कि, 'यदि खराब मौसम तथा शीतकाल मे प्राचीन काल की तरह कुछ आय देने वाला काम कृषको को मिले तो यह एक महत्त्वपूर्ण वरदान होगा।" इसी प्रकार इटली के सम्बन्ध मे भी कहा जाता है कि जहाँ मालबरी के वृक्ष है वहाँ की कृषक महिलाए पूर्ण रूप से कताई मे व्यस्त रहती हैं। अब यह विचारणीय प्रश्न हो जाता है कि जब औद्योगिक दृष्टि से उन्नत एव कम जन-सख्या वाले देशो मे कुटीर-धन्धो का इतना अधिक महत्त्व है, तो भारत म, जहाँ भूमि पर जन-सख्या का प्रभाव अधिक है, चारो ओर समस्याये है तथा बेकारी फैली हुई है, कुटीर एवं छोटे परिमाण के धन्धो का महत्त्व और भी अधिक हो जाता है। इसी दृष्टि से पूज्य गाधी जी ने एक स्थान पर लिखा है कि 'यन्त्रीकरण तब ही उचित है जबकि कार्य के लिए श्रमिक बहुत ही कम हो। किन्तु यदि काम के लिये आवश्यकता से अधिक श्रमिक है, जैसी कि स्थिति भारतवर्ष मे है, तो यह एक बुराई है। हमारे सामने समस्या यह नही है कि गाँवो मे बसने वाले करोडो नर-नारियो के लिए कैसे अवकाश प्राप्त करें, अपितु समस्या यह है कि खाली समय का सदुपयोग कैसे किया जाय।" पूज्य महात्माजी यन्त्रो के उपयोग के विरुद्ध नही थे, किन्तु वे यह नही चाहते थे कि मनुष्य उनका दास हो। उन्होने देखा कि देश मे एक ओर तो बेकारी बढती जा रही है और दूसरी ओर पूँजी की कमी है, अत. उन्होने कुटीर-धन्धो को अपनाने का ही विशेष आदेश दिया है।

पहली और दूसरी योजना में ग्राम और लघु उद्योगों में रोजगार बढ़ाने, उत्पादन में वृद्धि करने और आय के अधिक उचित वितरण के उद्देश्यों की दिशा में काफी योगदान किया। तीसरी योजना में और अधिक बड़े काम करने हैं, इसलिए इनके योगदान का महत्त्व और अधिक बढ़ जाएगा। इस क्षेत्र में नियोजन का एक प्रमुख लक्ष्य लोगों को उत्पादन के नए तरीके अपनाने में मदद करना और इनके संगठनों को अधिक कार्यकुशल बनाना है, ताकि देश में ग्राम आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप जो सुविधाएं और सेवाएं उपलब्ध हों, उनसे पूरा लाभ उठाया जा सके और कुछ अवधि बाद यह पूरा क्षेत्र आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी बन जाए। लेकिन इसके साथ ही प्राविधिक परिवर्तन पर इस तरह का नियन्त्रण रखना पड़ेगा जिससे बड़े पैमाने की प्राविधिक बेरोजगारी को बचाया जा सके। इसलिए उन उद्योगों की समस्याओं पर बराबर पुनर्विचार करने और आवश्यक उपाय करने की आवश्यकता है, जिससे ये उद्योग राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था के आवश्यक और अभिन्न अंग के रूप में अपना पूरा योगदान कर सकें।

कुटीर एवं लघु उद्योगों का महत्त्व—

अब हम निम्नलिखित दृष्टिकोणों से कुटीर एवं लघु उद्योगों के महत्त्व पर प्रकाश डालेंगे :—

कुटीर धन्धों के महत्त्व के ११ कारण

(१) कृषि से जन-संख्या का भार घटाना।
(२) न्यून पूंजी से ही उद्योग का प्रारम्भ।
(३) पूंजी की कुशलता एवं गतिशीलता में वृद्धि।
(४) पूर्ण रोजगार की प्राप्ति।
(५) औद्योगिक उत्पादन का समान वितरण व औद्योगिक विकेन्द्रीकरण।
(६) आय का समान वितरण।
(७) श्रम व पूंजी में उत्तम सम्बन्ध।
(८) युद्ध तथा सुरक्षा।
(९) उत्पादन व्यय में कमी।
(१०) उत्पादन की किस्म में श्रेष्ठता।
(११) समाज के लिए महत्त्व।

(१) कृषि पर जन-संख्या का भार घटाना—ऊपर हम यह संकेत कर चुके हैं कि कृषि पर जन-संख्या का अत्यधिक बोझ होना भारतीय अर्थ-व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता है। आज से लगभग १४-१५ वर्ष पूर्व भारत की ८०% जन-संख्या कृषि पर निर्भर थी और अब भी, औद्योगीकरण की देश-व्यापी योजनाओं के होते हुये भी, लगभग ६९% व्यक्ति कृषि पर अवलम्बित हैं। अतः समस्या यह है कि कृषि से जन-संख्या का अत्यधिक बोझ क्योंकर कम हो। इस समस्या के समाधान के लिये दो ही मार्ग अपनाये जा सकते हैं—एक तो वृहत उद्योगों के विकास द्वारा और दूसरे, कुटीर व लघु उद्योगों को प्रोत्साहन देकर। जहाँ तक प्रथम उपाय का सम्बन्ध है, इससे समस्या सुलझ नहीं सकती, हाँ, हो सकता है कि इससे और भी उलझनें पैदा हो

जाये। कृषि पर से जन-संख्या का भार कम करने के लिये कुटीर एव लघु उद्योगो को ही विकसित करना होगा। इनके विकास से सतुलित अर्थ-व्यवस्था स्थापित की जा सकती है।

(२) न्यून पूँजी से उद्योगो का प्रारम्भ—बडे पैमाने के उद्योगो की स्थापना के लिये बहुत अधिक मात्रा मे पूँजी की आवश्यकता होती है तथा अनेक वैधानिक कार्यवाहियाँ करनी पडती है, परन्तु भारत एक अविकसित निर्धन देश है। इसके पास पूँजी का अभाव है, जिसमे वृहत आकार के उद्योगो की स्थापना मे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडेगा। कुटीर-उद्योग पूँजी-प्रधान (Capital Intensive) न होकर श्रम-प्रधान (Labour-Intensive) होते है। इन्हे प्रारम्भ करने के लिये न तो मूल्यवान मशीनो एव बडी-बडी इमारतो की ही आवश्यकता पडती और न जटिल वैधानिक कार्यवाहियाँ ही करनी पडती हैं। इनमे तात्रिक ज्ञान की भी बहुत कम आवश्यकता पडती है। अत. वर्तमान परिस्थितियो मे द्रुति गति से औद्योगिक विकास के लिये कुटीर उद्योगो पर अधिक बल देना नितात आवश्यक है।

(३) पूँजी की कुशलता और गतिशीलता मे वृद्धि—कुटीर-उद्योगो के विकास से पूँजी और कुशलता की गतिशीलता मे वृद्धि होती है, अन्यथा देश की बहुतसी पूँजी एव कुशलता बेकार हो जाती है। इस प्रकार कुटीर-उद्योगो की स्थापना से भारत जैसे विशाल जन-सख्या वाले देश मे पूँजी एव कुशलता का पूर्णरूपेण उपयोग संभव हो सकेगा।

(४) पूर्ण रोजगार की प्राप्ति—आर्थिक, सामाजिक अथवा राजनैतिक दृष्टि से किसी भी देश मे बेकारो की सख्या अधिक रहना अथवा पूर्ण रोजगार न रहना एक अभिशाप है। सर विलियम बेवरिज एक स्थान पर लिखते हैं कि—"बेकारी का सबसे बडा दोष भौतिक नही वरन् नैतिक है। इससे केवल अभाव ही नही वरन् घृणा तथा भय को भी जन्म मिलता है।' भारत की वर्तमान परिस्थिति मे, जबकि साम्यवाद का प्रसार बडी जोर से हो रहा है तथा बेकारी एव अन्य समस्याओ के कारण साम्यवाद की ओर जनता की प्रवृत्ति होती जा रही है, बेकारो की अधिक सख्या राजनैतिक अशान्ति के लिए बाधक हो सकती है। अतएव बेकार लोगो के लिये पूर्ण रोजगार का आयोजन करना अत्यन्त आवश्यक है। श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल के अनुसार सन् १९४१ मे लगभग २ करोड श्रमिक बेरोजगार थे। आज की स्थिति तो और भी गम्भीर हो गई। सन् १९६१ की जन-गणना के अनुसार भूमिहीन श्रमिकों की सख्या चार करोड है। भारत वास्तव मे गाँवो का देश है। अधिकाश लोगो का व्यवसाय भी या तो कृषि है अथवा वे कृषि श्रमिक हैं जिसमे उन्हे पर्याप्त आमदनी नही होती। भारतीय कृषक वर्ग वर्ष की सम्पूर्ण अवधि मे कृषि कार्य न करते हुये कुछ मास तक बेकार रहता है, इसलिये कृषि को कार्यक्षम बनाने के लिये पूरक धन्धो की आवश्यकता है। यहाँ प्रश्न है कि क्या बडी मात्रा के उद्योग बेकारी की समस्या को हल नही कर सकते ? पिछली एक शताब्दी मे भारत मे सगठित उद्योगो का इतना विकास होने पर भी केवल ४७-

४८ लाख मजदूरो को रोजगार मिला है, अतएव यदि बडे बडे उद्योगो को ही और अधिक विकसित किया जाय, तो कुछ व्यक्तियो को और रोजगार मिल जायेगा। उनसे बेकारी की समस्या पूर्ण रूप से हल न होगी। इसके अतिरिक्त सगठित उद्योग-धन्धो का विकास होने से श्रमिको का केन्द्रीयकरण विशेषत औद्योगिक नगरो मे होता है। नई-नई औद्योगिक एव श्रम सम्बन्धी समस्यायें उपस्थित होती है तथा सरकार एव उद्योगपतियो को सामाजिक सुरक्षा अथवा सामाजिक बीमा पर अधिक खर्च करना पडता है, इसलिय यदि कुटीर-उद्योगो का विकास किया जाय, तो इसमे बचत हो कर बेकारी की समस्या का हल हो सकता है। आज देश के सम्मुख एक और भी समस्या है। जमीदारी प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया है, अतएव विस्थापित जमीदारो को रोजगार देना होगा। ऐसी परिस्थिति म ऐसे व्यक्तियो को कुटीर-धन्धो के विकास मे सरकार को सहयोग देना चाहिये और आर्थिक सहायता भी करनी चाहिए। उद्योग व्यापार पत्रिका फरवरी सन् १९५९ की एक सम्पादकीय टिप्पणी के अनुसार हमारी कुल जन-सख्या का शायद २९ प्रतिशत भाग ही आत्म-निर्भर है जब कि लगभग ११ फीसदी आबादी की कमाई बहुत कम है और वह उनके गुजारे के लिये काफी नही। इस तरह आबादी का ६० प्रतिशत भाग ऐसा है जो स्वय कमाई नही करता। इनमे से अधिकाश ग्रामीण क्षेत्रो मे एकत्र हैं और भूमि पर बोझ बने हुए है जो उनका पोषण नही कर सकती। श्रमिक शक्ति के रूप मे १५ से लेकर ५५ वर्ष तक की आयु म आने वाले इन लोगो की सख्या १५ करोड है। विभिन्न प्रकार की सम्भावनाओ को मद्देनजर रखते हुए कहा जा सकता है कि करीब १० करोड लोगो के लिए काम खोजना जरूरी है। पूर्ण रूप से बेकार इन लोगो के इस चिन्ताजनक बडे अक के अलावा अर्द्ध बेकारी का भी पहलू है। कृषि काय मे लगे करीब ६ करोड किसान साल मे ४ महीने से अधिक समय बेकार रहते है। सन् १९६१ की जन गणना के अनुसार यह अनुमान है कि तीसरी योजना की अवधि मे श्रमिक वर्ग मे लगभग १ करोड ७० लाख लोगो की वृद्धि होगी। इस वृद्धि की एक तिहाई शहरी क्षेत्रो में और दो-तिहाई ग्रामीण क्षत्रो मे होगी। इनमे से १ करोड ४० लाख लोगो को काम मिल सकेगा—१ करोड ५ लाख लोगो को कृषि-भिन्न कार्यों म और ३५ लाख लोगो को कृषि मे। इनके लिए पूरक धन्धे और आमदनी के जरिए खोजने हैं। इस विकट समस्या के साथ साथ गरीबी और लाचारी की मानवीय समस्या की ओर से भी आखें नही मूँदी जा सकती। खादी और ग्रामोद्योग अपनाना ही ऐसा एक-मात्र तरीका है जिससे इस समस्या को सफलता-पूर्वक हल किया जा सकता है।

(५) औद्योगिक उत्पादन का समान वितरण—देश की चहुँमुखी उन्नति के लिये भी कुटीर धन्धा की शरण लेनी ही पडगी। बडे बड उद्योगो द्वारा देश का समान औद्योगिक विकास सम्भव नही है। वर्तमान समय मे सगठित उद्योगो का केन्द्रीयकरण किंचित नगरो म ही है, जैसे—बम्बई, कलकत्ता, कानपुर इत्यादि। इसमे उत्पादन का समान वितरण नही होता, देश की चहुँमुखी उन्नति नही होती तथा

राज्यो मे परस्पर वैमनस्य होता है, जो एकता की दृष्टि मे हानिकारक है। इनके अतिरिक्त केवल नगरो का ही विकास होने मे गाँव की ओर ध्यान न देने मे देश की आय एव उद्योग का समान वितरण न होकर देश का आर्थिक विकास एकागी होता है, अतएव उद्योगो का विकेन्द्रीयकरण अनिवार्य है, जिससे आधुनिक ढग पर सचालित कुटीर धन्धो का विकास होकर वे सगठित बड बड उद्योगो के लिये पूरक हो सके।

(६) आय का समान वितरण—बडे परिमाण के उद्योगो द्वारा राष्ट्रीय आय का एक बहुत बडा भाग केवल कुछ भागो मे ही केन्द्रित हो जाता है और आय का समान वितरण नही होता तथा असमानता बढती है। कुटीर उद्योगो को प्रोत्साहन देने मे ही यह असमानता काफी सीमा तक दूर की जा सकती है। इस दृष्टि से गाडगिल ने अपनी आर्थिक नीति सम्बन्धी वक्तव्य मे कहा है कि आधारभूत एव छोटे परिमाण के उद्योग धन्धो के विकास पर एव रोजगार के अवसरो को बढाने पर पर्याप्त बल देना चाहिए, जिससे आर्थिक असमानता का अन्त हो।

(७) श्रमजीवी-पूँजीपतियो के सम्बन्ध—वर्तमान औद्योगिक अशान्ति का मुख्य कारण बड-बड उद्योग हैं, अतएव औद्योगिक शान्ति लाने के लिये कुटीर उद्योगो को प्रोत्साहन देना अनिवार्य हो जाता है। कुटीर उद्योगो के अन्तर्गत प्रत्येक सेवायुक्त ही सेवा-योजक होता है, श्रम एव पूँजी मे अधिक अन्तर नही रहता। यदि किसी कुटीर उद्योग मे अधिक श्रमिक होते भी है तो 'स्वामी और नौकर' की भावना नही होती। हडतालें तथा तालेबन्दी नही होती। आर्थिक उथल पुथल भी कम हो जाती है। प्रतिद्वन्दिता रहती है, लेकिन उसका रूप स्वस्थ होता है और गला घोटने वाली प्रतिस्पर्धा नही होती। इस प्रकार कुटीर-उद्योग द्वारा ही औद्योगिक शान्ति की आशा की जा सकती है।

(८) युद्ध तथा सुरक्षा—यह कहना तो अतिशयोक्ति होगी कि कुटीर-उद्योग व्यवस्था के अन्तर्गत युद्ध न होंगे, किन्तु इतना अवश्य कह सकते है कि ऐसी अर्थ-व्यवस्था मे राजनैनिक अशान्ति की शका कम हो जाती है। यह डके की चोट पर कहा जा सकता है कि यदि आज विश्व महात्मा गाधी की अहिंसात्मक नीति का पालन करे तो युद्ध कभी न हो, किन्तु अहिंसा का सच्चा पुजारी बनना कोई खेल नही है। भारत मे ही महात्माजी की इस विचारधारा का वह स्वागत नही हुआ, जो होना चाहिए था। कुटीर उद्योग पूज्य बापू की अहिंसात्मक नीति का एक प्रधान अग है।

राजनैतिक सुरक्षा की दृष्टि से भी कुटीर उद्योगो को प्रोत्साहन देना राष्ट्र के हित मे होगा। औद्योगिक केन्द्रीयकरण का सबसे बडा दोष यह है कि यदि किसी एक विशेष स्थान पर सैनिक आक्रमण हो जाय, तो उस स्थान के समस्त उद्योग नष्ट हो जायँगे, अतएव विकेन्द्रीयकरण का महत्त्व स्पष्ट है। विकेन्द्रीयकरण के इस कार्य मे कुटीर उद्योगो द्वारा ही सबसे अधिक सहायता मिल सकती है, क्योकि भारत मे गाँवो का वितरण प्राय. समान है और यदि उनमे कुटीर उद्योगो को विकसित किया जाय, तो केन्द्रीयकरण की समस्या तो हल होगी ही, साथ मे समस्त भारत का समान

औद्योगिक विकास होगा। कुटीर धन्धो के विकास की ओर इसीलिए पर्याप्त ध्यान दिया गया है।

(६) उत्पादन व्यय—जहाँ तक उत्पादन व्यय का सम्बन्ध है, यह सभी जानते हैं कि बडी मात्रा मे उत्पादन करने से अनेक प्रकार की बचतें होती हैं, जिन्हे अर्थशास्त्री मार्शल ने 'आन्तरिक' एव 'बाह्य' बचत कहा है। अतः कुटीर उद्योगो की अपेक्षा वृहत उद्योगो मे उत्पादन का व्यय बहुत कम होता है। एक साधारण उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है। कल्पना कीजिये कि एक उपभोक्ता को अपने पलग के लिये चादर की आवश्यकता है। वह पहले हैन्डलूम की बनी हुई एक चादर देखता है, जिसका मूल्य है १० रु०। अधिक मूल्य के कारण वह उसको क्रय करने मे हिचकिचाता है और निकट ही दूसरी दुकान पर वृहत उद्योग द्वारा निर्मित एक अन्य चादर को देखता है, जिसका मूल्य है केवल ४ रु०। कम मूल्य के कारण वह मिल-निर्मित चादर को खरीद लेता है। यहाँ, जहाँ तक द्राव्यिक मूल्य का सम्बन्ध है, मिल निर्मित चादर की विजय हुई। परन्तु श्रद्धेय बापू के अनुसार हमे केवल वस्तु के द्राव्यिक मूल्य पर ही ध्यान नही देना चाहिये। द्राव्यिक मूल्य की अपेक्षा सामाजिक मूल्य का अधिक महत्त्व है। सामाजिक मूल्य से हमारा तात्पर्य यह है कि हमको यह नही देखना चाहिये कि (i) टिकाऊपन की दृष्टि से समाज के लिये कौन सी वस्तु उपयोगी होगी और (ii) रोजगार प्रदान करने की दृष्टि से समाज के लिये कौन से पदार्थ का क्रय अधिक हितकर होगा। इन दोनो दृष्टिकोणो से कुटीर उद्योगो एवं कुटीर पदार्थो की ही विजय होगी। मिल निर्मित चादर भले ही कुटीर उद्योग-निर्मित चादर से सस्ती हो परन्तु धोबी के घाट की पिटाई उसके लिये असहनीय होगी और इसके विपरीत हैन्डलूम की चादर अधिक टिकाऊ होगी। इसके अतिरिक्त, हस्त-करघा उद्योग एव अन्य कुटीर उद्योगो मे वृहत उद्योगो की अपेक्षा कही अधिक लोगो को रोजगार मिला हुआ है। अतः सामाजिक दृष्टि से मूल्याकन करने पर कुटीर उद्योगो की उपादेयता स्पष्ट हो जाती है।

ग्राम उद्योगो के नैतिक मूल्य के विषय मे ससद सदस्य श्री ए० सी० गुहा के निम्नलिखित विचार उल्लेखनीय है—"ग्रामोद्योगो मे अपने धन्धे से ही अपनी रोजी कमाने मे मनुष्य का मनोबल ऊँचा उठता है और उसमे नैतिक गिरावट या अमानवीय प्रभाव नही आने पाते, जो वेतन-भोगी रोजगार के साथ आने अनिवार्य हैं, चाहे वह नौकरी सामाजिक नियन्त्रण मे चलने वाले कारखाने मे ही क्यो न की जाती हो। अपनी कुटिया मे काम करते समय कारीगर का अपने पडोसियो से सम्पर्क होता है, जो प्रायः उसके बनाये हुए माल के ग्राहक होते हैं। वे एक-दूसरे की बनायी हुई चीजो का आदान-प्रदान करते हैं। वहाँ रुपये का महत्त्व गौण होता है। लेकिन वहाँ मानवीय संस्पर्श का सर्वथा अभाव होता है।

(१०) उत्पादन की किस्म—इसमे तो कोई सदेह नही कि कारखाने मे बने हुए माल की अपेक्षा हस्त-निर्मित माल मे अधिक कला एव टिकाऊपन होता है।

कुटीर उद्योगों मे श्रमिक वस्तु के निर्माण मे अपनी आत्मा निकाल कर रख देता है। अपनी ख्याति के लिये वह भरसक प्रयत्न करता है, इसलिये कुटीर उद्योग-निर्मित माल की किस्म अच्छी होती है। इस सम्बन्ध मे श्री गुहा ने लिखा है कि "राष्ट्रीय जीवन मे कला का महत्त्वपूर्ण मूल्य होता है। नगरो मे जिस प्रकार की कला के दर्शन होते है, वह कभी-कभी अत्यधिक बनावटी हो जाती है और उसमे मनुष्य की नैसर्गिक कलात्मक भावना का अभाव होता है। इन ग्रामोद्योगों के माध्यम से हम अपनी जनता की स्वाभाविक कला-प्रियता तथा कलात्मक भावना के दर्शन कर सकते हैं। देहातो के लोग शहरी लोगो की अपेक्षा प्रकृति के अधिक निकट रहते है, इससे उनका प्रकृति के साथ अधिक घनिष्ट सम्पर्क होता है और वे प्रकृति को अधिक अच्छी तरह समझते हैं। इसलिए उनकी कलात्मक अभिव्यक्तियो का एक विशेष मूल्य होता है, जिसका पुनरुत्थान किया जाना चाहिए और जिन्हे सजोया जाना चाहिए।

(११) समाज के महत्त्व—बड बडे उद्योगो मे यन्त्रो के अधिक प्रयोग होने के कारण मनुष्य, मनुष्य न रह कर यन्त्रो का गुलाम हो जाता है, जिससे उसकी नैतिक एव आध्यात्मिक शाति का ह्रास होता है और स्वास्थ्य भी गिरता है। यह बुराइयाँ कुटीर उद्योगो मे नही रहती, क्योकि उसमे वह अपनी इच्छानुसार कलात्मक वस्तुओ का उत्पादन कर सकता है। कुटीर उद्योग व्यवस्था का प्रधान लक्षण सरलता है और आवश्यकताओ की सरलता मे ही मानव जाति की मुक्ति निहित है—"सादा जीवन उच्च विचार, है मानव जीवन का सार"—जीवन की सरलता एवं सार, कुटीर उद्योग व्यवस्था के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।

क्या कुटीर उद्योग प्रतियोगिता मे टिक सकेंगे ?—

कुटीर उद्योगो के महत्व सम्बन्धी उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट कि किसी भी देश की अर्थ व्यवस्था मे उनको उपयुक्त स्थान मिलना ही चाहिये। फिर भारत जैसे विशाल जन-संख्या वाले देश मे, जहाँ विस्तृत बेरोजगारी हो, कुटीर एवं लघु उद्योगो का तो और भी अधिक महत्व है। परन्तु कभी-कभी उनकी सफलता के सम्बन्ध मे मन मे आशकायें पैदा होती हैं। जो व्यक्ति इस सम्बन्ध मे निराशावादी दृष्टिकोण रखते है, वे प्राय. यह दलील देते है कि यन्त्र निर्मित वस्तुओ की तुलना मे कुटीर पदार्थ प्रतिस्पर्धा मे टिक न सकेंगे, क्योकि—

प्रतिस्पर्धा का भय क्यो—

(i) वृहत उद्योगो के पदार्थो की अपेक्षा कुटीर पदार्थों का द्राव्यिक मूल्य कही अधिक होता है और उपभोक्ता प्रायः तत्कालीन द्राव्यिक मूल्य पर ही अधिक बल देता है।

(ii) कुटीर उद्योगो मे अधिकतर यन्त्रो के प्रयोग का अभाव होता है। फलतः उनके उत्पाद भी एक रूप एव सस्ते नही हो सकते।

(iii) इसी प्रकार विद्युत शक्ति के प्रयोग के अभाव के कारण भी कुटीर

पदार्थों का उत्पादन-व्यय यन्त्र निर्मित पदार्थों की अपेक्षा कहीं अधिक होता है ।

(१४) हमारे देश मे राजकीय प्राशुल्किक नीति भी कुटीर उद्योगो को सरक्षण की दृष्टि से कोई विशेष हितकर नही है । वृहत, लघु एव कुटीर उद्योगो के लिये कोई विशेष भेदभाव नही बरता जाता । सबको एक घाट उतारने से अर्थात् वृहत उद्योगो के ही समान कर देने के कारण इनका उत्पादन व्यय और भी अधिक होता है ।

(१५) सामान्य उपभोक्ता भी कुटीर पदार्थों को प्राथमिकता नही देता ।

कुटीर उद्योग प्रतिस्पर्धा मे टिक सकते हैं—

परन्तु गम्भीरता से उपर्युक्त समस्या पर विचार करने से यह स्पष्ट पता लगता है कि इस सम्बन्ध मे हमे निराशावादी नही होना चाहिये । जब डूबते हुये व्यक्ति को तिनके का एक सहारा ही काफी होता है, तो कुटीर उद्योगो के विकास के लिये तो आशा की अनेक किरणें है, जिनमे से प्रमुख निम्नलिखित है —

(१) **विद्युत शक्ति का प्रसार**—भारत के आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत विद्युत शक्ति के प्रचार एव प्रसार के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों म जहाँ कुटीर उद्योगों का साम्राज्य छाया हुआ है, विद्युतीकरण बडी तेजी के साथ बढ रहा है । अतः छोटे-मोटे उद्योग धन्धो को सचालित करने मे अब सस्ती विद्युत शक्ति का सुगमता से प्रयोग किया जा सकता है । विद्युत शक्ति का प्रसार कुटीर उद्योगो के विकास में निश्चय ही सहायक सिद्ध होगा ।

(२) **यन्त्रीकरण का प्रसार**—द्वितीय पच वर्षीय योजना अवधि में हमारे देश मे ऐसे अनेक कल-कारखाने खुल गये है, जिनमे उन मशीनो का निर्माण किया जाता है, जिनके द्वारा कुटीर एव लघु-उद्योगो की कार्यक्षमता बहुत अधिक बढाई जा सकती है । तृतीय योजनावधि के अन्तगत ऐसे कारखानो का और भी अधिक विकास और विस्तार होगा । इसके विस्तार के साथ-साथ कुटीर उद्योगो की यन्त्र निर्मित वस्तुओ से प्रतियोगिता करने की शक्ति बढेगी ।

(३) **तान्त्रिक प्रशिक्षण का विस्तार**—जब से हमारा देश स्वतन्त्र हुआ है तब से तान्त्रिक प्रशिक्षण के क्षेत्र मे अनेक उल्लेखनीय विकास हुये हैं । खडगपुर, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास व कानपुर की टेक्नोलॉजीकल इन्स्टीट्यूट्स इस क्षेत्र में हमारी प्रगति के प्रतीक हैं । इनके अतिरिक्त अनेक छोटी-मोटी प्रशिक्षणशालायें स्थापित की गई है, जिनसे निश्चित रूप से कुटीर एव लघु-उद्योगो के विकास को प्रेरणा मिलेगी ।

(४) **सामान्य शिक्षा का प्रसार**—तान्त्रिक प्रशिक्षण सुविधाओ के अतिरिक्त सामान्य शिक्षा का प्रसार भी सतोषजनक गति से हो रहा है । शिक्षा के प्रसार से हमारी अज्ञानता एव कूप मडूकता शनैः-शनैः कम होती जा रही है और इससे निश्चय ही कुटीर उद्योग पनपेंगे ।

(५) औद्योगिक व प्राशुल्किक नीति—स्वतन्त्रता के उपरान्त हमारी जनप्रिय सरकार ने देश की सच्ची प्रगति के लिये एक स्वतन्त्र औद्योगिक व प्राशुल्किक नीति का निर्माण किया है, जिसमे कुटीर एव लघु-उद्योगों के विकास के लिये पर्याप्त आयोजन है।

(६) राजकीय स्टोर्स क्रय-नीति—केन्द्रीय सरकार एव राज्य सरकारो ने अपनी स्टोर्स क्रय-नीति मे इस प्रकार सशोधन कर लिया है जिससे कि कुटीर उद्योगो को लाभ हो। इस सशोधन से कुटीर उद्योगो का आत्म विश्वास बहुत कुछ बढ गया है और उनकी प्रतियोगिता शक्ति भी विकसित हो गई है।

(७) राष्ट्रीय भावना का प्रसार—भले ही कुछ लोग इस बात से सहमत न हो परन्तु मेरा यह अनुभव है कि जबसे हमारा देश स्वतन्त्र हुआ है तब से आज राष्ट्रीय भावनाओ मे काफी वृद्धि हो गई है। अब हम 'विदेशी' की अपेक्षा 'स्वदेशी' को अधिक प्राथमिकता देने लगे हैं। इसी प्रकार वृहत उद्योगो के पदार्थों की अपेक्षा कुटीर एव लघु उद्योगो के पदार्थों को भी प्राथमिकता मिलने लगी है। जैसे-जैसे इन भावनाओ का प्रसार होगा, कुटीर उद्योगो के पैर भी मजबूत होते जायेंगे तथा उनकी प्रतियोगिता शक्ति भी बढ जायेगी।

STANDARD QUESTIONS

1. Discuss carefully the importance of Cottage Industries in India's economy
2. "Cottage Industries are Labour Intensive and not Capital Intensive, hence they must be developed in India" Comment.
3. Di cuss the role of Rural Cottage Industries in the present day economy of the country.
4. Admitting the definite role of cottage industries in India's economy, do you think they can successfully compete with large-scale industries?

अध्याय ५८

कुटीर एवं लघु उद्योगों की समस्यायें

(Problems of Cottage and Small Scale Industries)

प्रारम्भिक—

हमारे कुटीर उद्योगो की कुछ ऐसी कठिनाइयाँ हैं जिनके कारण कुटीर धधे आवश्यक उन्नति नही कर पाये हैं। यद्यपि विभिन्न प्रकार के उद्योगो को विभिन्न भाँति की कठिनाइयो का सामना करना पडता है किन्तु उनमे स कुछ सबम विद्यमान हैं। भारतीय कुटीर उद्योगो की कुछ सामान्य समस्यायें इस प्रकार है —

कुटीर उद्योगो की समस्याय

(१) कच्चे माल की कठिनाई।
( ) पूँजी का अभाव।
(३) विक्रय की कठिनाई।
(४) शिल्पियो की अप्रशिक्षा तथा रूढिवाद।
(५) वैज्ञानिक यन्त्रो का अभाव।
(६) कर की समस्या।
(७) मिल निर्मित वस्तुओं से प्रतियोगिता।
(८) सगठन का अभाव।
(६) जनता द्वारा पूरा सहयोग का अभाव।

(१) कच्चे माल की कठिनाई— घरेलू उद्योग धन्धो की सबसे बडी समस्या आवश्यक मात्रा मे उत्तम कोटि का कच्चा माल प्राप्त करने की है। हमारे कारीगरो को पर्याप्त मात्रा मे उन्नत श्रेणी का कच्चा माल नही मिलता। वे अधिकतर स्थानीय व्यापारियो से कच्चा मान खरीदते है। छोटे पैमाने पर खरीद होने के कारण इन्हे वस्तुओ के लिए बहुधा अधिक मूल्य चुकाना होता है और वस्तु भी अच्छी नही मिलती। साथ ही ये खरीदने की कला मे भी दक्ष नही होते जिसके फल स्वरूप ये प्राय ठगे जाते हैं। दश का अधिकाश कच्चा माल तो बड-बड़े कारखानो मे ही खप जाता है और जो शेष बचता है, वह कुटीर कारीगरा की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए पर्याप्त नही होता।

(२) पूँजी का अभाव— पूँजी का अभाव कुटीर उद्योगो की सबसे बडी समस्या है। इन लोगो के पास न तो कच्चा माल खरीदने को पैसा है न ये मशीन खरीद पाते हैं और न इनकी इतनी सामर्थ्य होती है कि माल बनाने के बाद अच्छे

भावो की प्रतीक्षा कर सकें। माल तैयार करते ही उन्हे बेचना पडता है, भाव चाहे अनुकूल हो या प्रतिकूल। ये लोग अधिकांश रूप मे गाँव के महाजन से अथवा कच्चा माल देने वाले व्यापारी से रुपया उधार लेते है, जोकि ऊँची ब्याज की दर पर रुपया देते हैं और अधिकतर तो उन्हें अपना माल ही ऋण देने वाले महाजन अथवा व्यापारी के हाथ सौपना पडता है। पूँजी के अभाव मे कारीगर कभी-कभी महाजन के यहाँ ही एक निश्चित वेतन पर काम करने लगते हैं। बैंकिंग सुविधाओं का भी उनके लिए अभाव ही है। सरकार का भी इस सम्बन्ध मे कोई समुचित प्रबन्ध नही है।

(३) विक्रय की कठिनाई—घरेलू उद्योगो द्वारा निर्मित माल की विक्रय प्रणाली भी दोषपूर्ण है। कुटीर-उद्योगो के सामने सगठित बाजार के अभाव की समस्या सचमुच बडी महान है। सगठित बाजार के अभाव मे हमारे कारीगरो को अपनी वस्तुओ के विक्रय के लिये स्वय इधर-उधर घूमना पडता है, जिससे समय की हानि होती है। कारीगर अपनी वस्तुओ की बिक्री उचित मूल्य पर नही कर सकता। उन्हे कठिन प्रतियोगिता का सामना करना पडता है। वे अपनी वस्तुओ की माँग का ठीक-ठीक अनुमान नही लगा सकते। वे अपनी वस्तुओ का विज्ञापन भी नही कर पाते। विक्रय के लिये अभी तक कोई भी केन्द्रीय सस्था न होने के कारण कारीगरो के लाभ का एक बहुत बडा भाग मध्यस्थो की जेब मे चला जाता है।

(४) शिल्पियो की अशिक्षा तथा रूढिवादी एवं प्रशिक्षण का अभाव—अधिकाँश कुटीर कारीगर साधारण लिखना-पढना भी नही जानते। नवीन तरीको एवं औजारो को वे व्यवहार मे नही लाते और न कभी ऐसा ही प्रयत्न करते हैं कि उनके माल मे नवीनता आये। उत्पादन व्यय सम्बन्धी आँकडे लगाने मे भी वे अनभिज्ञ ही होते है। अशिक्षा के कारण वे समरूप तथा उच्च कोटि का माल तैयार नही कर पाते। यह बात भी निर्विवाद कही जा सकती है कि कुटीर-उद्योगो की पिछडी हुई अवस्था का एक मुख्य कारण उनमे अनुसन्धान तथा प्रशिक्षा का अभाव है। इसी कारण ये उद्योग वृहत उद्योगो की स्पर्धा मे टिक नहीं पाते। सच तो यह है कि आर्थिक कठिनाई के कारण हमारे लघु उद्योगो के लिये यह सम्भव नही होता कि वे औद्योगिक विशेषज्ञो एव वैज्ञानिको की सेवायें प्राप्त कर सकें। देश मे जितने भी ऐसे विशेषज्ञ उपलब्ध हो सकते है उनकी सेवाओ को वृहत उद्योग ले लेते है, अतः लघु-उद्योगो मे अनुसन्धानो की सम्भावनायें कम हो जाती हैं।

(५) वैज्ञानिक यन्त्रो का अभाव—वैसे तो कुटीर-उद्योगो मे औजारो की अधिक आवश्यकता नही होती, किन्तु हमारे कारीगर इतने दरिद्र हैं कि उनको थोडे से आवश्यक औजार भी दुलभ हैं। हमारे अधिकाश कारीगर उत्पादन की पुरातन रीतियो का ही अनुकरण करते हैं। गाँव मे चमडा पकाने, बर्तन बनाने तथा खद्दर बुनने की विधियाँ इतनी भद्दी, पुरातन, गँवार तथा अवैज्ञानिक होती हैं कि अधिकाँश मे लोग उनसे निर्मित पदार्थो का उपभोग करना कम पसन्द करते हैं। परम्परागत

विधियो का पालन करने के ही कारण हमारे कुटीर कारीगरो की कार्यक्षमता भी बहुत कम है। परिणामस्वरूप वस्तु की मात्रा के साथ किस्म भी अत्यन्त भद्दी तथा गँवारू हो जाती है, जिसके कारण ये पदार्थ यन्त्र निर्मित पदार्थों की प्रतिस्पर्धा मे टिक नही पाते।

(६) कर की समस्या—केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारो ने कुटीर-उद्योगो द्वारा निर्मित पदार्थों पर कर लगाया है। वास्तव मे ये उद्योग इस भार को सहन नही कर सकते। आवश्यकता तो इस बात की है कि इन्हे कर से मुक्त करके आर्थिक सहायता दी जावे, जिससे ये कारखानो द्वारा निर्मित माल से सफलतापूर्वक प्रतियोगिता कर सकें।

(७) मिल-निर्मित वस्तुओ से प्रतियोगिता—कुटीर-उद्योगो को मिल की बनी हुई वस्तुओ से घोर प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। मिल की बनी हुई वस्तुएँ कुटीर पदार्थों की अपेक्षा प्राय. सस्ती होती है। अत इन्ही वस्तुओ को खरीदना लोग अधिक पसन्द करते हैं। फलस्वरूप कारीगरो की वस्तुओ की माँग कम हो जाती है।

(८) सगठन का अभाव—प्राय. ऐसा देखा जाता है कि हमारे देश मे कुटीर-उद्योगो मे लगे कारीगरो मे सगठन का अभाव रहता है। कारीगर स्वय अपना काम चलाया करता है तथा किसी प्रकार के सगठन का प्रयत्न नही करता। उचित सगठन के अभाव मे इन उद्योगो को तरह तरह की कठिनाइयो का सामना करना पडता है। यदि सगठन रहता तो इन्हे सुगमतापूर्वक कच्चा माल प्राप्त हो जाता है। पूँजी तथा बाजार की व्यवस्था म भी सुधार हो जाता तथा सरकार भी इनकी स्थिति सुधारने का प्रयत्न करती है।

(९) जनता द्वारा पूर्ण सहयोग का अभाव—प्राचीन काल म कुटीर-उद्योगो को राजा-महाराजा तथा जागीरदारो द्वारा प्रोत्साहन एव सहायता मिलती थी। अग्रेजो के शासन काल मे यह बातें प्राय लुप्त हो गई और घोर विरोध के कारण उद्योग की अवनति हो गई। आज यद्यपि हमारा देश स्वतन्त्र है, परन्तु अधिकांश जनता मे राष्ट्रीय भावनाओ का अभाव है। अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जो देश मे निर्मित कुटीर पदार्थों की अपेक्षा मिल निर्मित विदेशी पदार्थों को प्राथमिकता देते हैं। फिर, ऐसे भी अनेक व्यक्ति हैं जो मुख से तो स्वदेशी कुटीर पदार्थो का प्रचार करते हैं परन्तु स्वय विदेशी वस्तुओ का उपभोग करते हैं। सरकार की क्रय नीति भी विशेष सन्तोषजनक नहीं है।

इस प्रकार कुटीर-उद्योगो के समक्ष उपर्युक्त समस्याएँ हैं, जिनके समाधान के बिना इनका विकास सम्भव नही है।

कुटीर-उद्योगो की समस्याओं के समाधान के उपाय—

यद्यपि भारत की अर्थ-व्यवस्था मे कुटीर-उद्योगो को एक महत्वपूर्ण स्थान

प्राप्त है, किन्तु फिर भी इनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय है। अतः इनकी स्थिति मे सुधार करना नितान्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध मे हमारे निम्नलिखित सुझाव है :—

कुटीर उद्योगो की समस्याओ के उपचार

(१) कच्चे माल की समुचित व्यवस्था।
(२) पूँजी की समुचित व्यवस्था।
(३) विक्रय की समुचित व्यवस्था।
(४) शिक्षा की समुचित व्यवस्था।
(५) कर्मचारियो मे सगठन की आवश्यकता।
(६) करो मे कमी।
(७) मिल निर्मित पदार्थो की प्रतियोगिता से रक्षा।
(८) आधुनिक यन्त्रो व नवीनतम उत्पादन प्रणालियो की व्यवस्था।
(९) जन-सहयोग की आवश्यकता।
(१०) अन्य सुझाव।

(१) कच्चे माल की समुचित व्यवस्था—कुटीर कारीगरो को प्रायः पर्याप्त मात्रा मे एव उचित मूल्य पर कच्चा माल प्राप्त करने मे कठिनाई होती है। अतः उनके विकास के लिए कच्चे माल की समुचित व्यवस्था होना आवश्यक है। इसके लिए राज्य सरकारो को अधिक सक्रिय सहयोग देना होगा।

इस समस्या को दूर करने के लिए आवश्यक है कि उद्योगपतियो की अपनी सहकारी समितियाँ हो, जो उन्हे कच्चा माल लाकर दें। ये ही समितियाँ उनके माल को अच्छे भावो पर बेचने का प्रबन्ध करें। उत्तर-प्रदेश, मद्रास तथा बम्बई मे कपड़ा बुनने वाले उद्योगियो की सहकारी समितियाँ हैं, जो सदस्यो को कच्चा माल देती हैं तथा उनके कपड़ो को ऊँचे से ऊँचे भाव पर बेचने का प्रबन्ध करती हैं। ऐसी समितियो के होने से मध्यस्थ लोग उद्योगियो का शोषण न कर सकेंगे। ऐसी समितियाँ प्रत्येक औद्योगिक क्षेत्र मे होनी चाहिए।

(२) पूँजी की समुचित व्यवस्था—कुटीर कारीगरो की दरिद्रता के कारण इनके समक्ष पूँजी की कठिनाई सदैव बनी रहती है। पूँजी के अभाव के कारण इन्हे अनेक प्रकार की सुविधाओ का शिकार होना पड़ता है। पूँजी सम्बन्धी कठिनाई को दूर करने के लिए केन्द्रीय बैंकिङ्ग जाँच समिति ने यह सुझाव दिया कि कारीगरो को अपनी सहकारी समिति स्थापित करनी चाहिए, जो सदस्यो को कम एव उचित ब्याज पर ऋण देकर उनकी पूँजी की आवश्यकता को पूरी करे। सहकारी समितियो द्वारा इन्हे उचित समय तथा ब्याज पर पूँजी प्राप्त हो सके। साथ ही सरकार को भी समय-समय पर इन्हे वित्तीय सहायता प्रदान करनी चाहिए। कुटीर-उद्योगो की आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये विभिन्न राज्यो मे अर्थनिगम (State Finance Corporation) स्थापित किये जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि महाजनो और साहूकारो को नियन्त्रित किया जाय अथवा साख पूर्ति की इस पद्धति का क्रमशः उन्मूलन कर औद्योगिक सहकारिता (Industrial

Co-operaitves) का आयोजन किया जाय। इसी से कुटीर उद्योगो का आर्थिक सगठन एवं सस्थापन सुदृढ होगा।

(३) विक्रय की समुचित व्यवस्था—कुटीर कारीगरो द्वारा बनाई गई वस्तुओ के लिए भी समुचित व्यवस्था होना आवश्यक है। इसके लिए इनके बीच सहकारी विक्रय समितियो का सगठन होना चाहिए, जिससे उचित मूल्य पर इनकी वस्तुओ का विक्रय सम्भव हो सके। विदेशो मे इनके उपयोग को बढाने के लिए विज्ञापन एव प्रचार की भी आवश्यकता है। केन्द्रीय कुटीर-उद्योग इम्पोरियम की स्थापना होने मे विक्रय की कठिनाई काफी सीमा तक हल हो गई है, किन्तु जब तक ऐसी सस्था प्रत्येक राज्य मे न हो, तब तक इस कठिनाई का निवारण न हो सकेगा। अतः इस दिशा मे सुधार करने के लिए इन उद्योगो को अपने माल की किस्म मे सुधार करना चाहिए, सहकारी समितियो की स्थापना करनी चाहिए तथा उत्पादन व्यय में मितव्ययिता करनी चाहिए। योजना आयोग के मतानुसार सरकार को चाहिए कि अपने लिये स्टोर की खरीद करके तथा आयात को समाप्त करके इन उद्योगो को प्रोत्साहित करे और इनको निर्माण विधि मे सुधार करे।

(४) शिक्षा की समुचित व्यवस्था—कुटीर कारीगरो की अशिक्षा व अज्ञानता भी इन उद्योगो के विकास के मार्ग मे बाधक है। अत. कुटीर-उद्योगो के विकास के लिए कारीगरो के प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था होना नितान्त आवश्यक है। देश मे विशेष प्रकार की औद्योगिक शिक्षा का प्रचार होना चाहिए। आजकल विभिन्न राज्य सरकारो द्वारा इनके प्रशिक्षण की व्यवस्था के लिए सस्थाये स्थापित की जा रही हैं। सरकार स्वय इस प्रकार की सस्थाओ की स्थापना कर रही है तथा शिक्षार्थियो को छात्रवृत्ति भी प्रदान की जाती है। साथ ही, विभिन्न सस्थाओ को इस कार्य के लिए अनुदान भी दिया जाता है। इस सम्बन्ध मे हमारे अन्य सुझाव निम्न-लिखित है :—(अ) प्राइमरी स्कूलो मे अनिवार्य रूप से शिक्षा दी जाय। (ब) तात्रिक शिक्षा के केन्द्र खोले जायें। जेलो मे भी इस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाय। (स) आधुनिक प्रणाली से कार्य करने के लिए अनुसन्धान किया जाय। उत्पादन नये ढंग से नवीन औजारो द्वारा किया जाय। (द) कारीगरो को व्यावसायिक शिक्षा देने के हेतु प्रदर्शन केन्द्र खोले जायें, जिनमे कारीगरो को शिक्षा दी जावे। जेलखानो और सुधार सस्थाओ मे भी औद्योगिक दस्तकारी सिखाई जाय, जिनमे कि यहाँ से निकले हुए व्यक्ति सुन्दर नागरिक जीवन व्यतीत कर सकें। (य) कुटीर-कला प्रदर्शन-केन्द्रों की स्थापना की जाय, जहाँ सीखने वाले लोगो को नई-नई डिजायनो, नवीन उत्पादन विधियो, आदि का ज्ञान कराया जाय।

(५) कुटीर कर्मचारियो मे सगठन की स्थापना करना—कुटीर-उद्योगो के विकास के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि कारीगरो के बीच सगठन हो। अशिक्षा एव अज्ञानता के कारण वे प्राय. सगठन की महिमा को नही समझते। अतः इनके बीच सगठन को प्रोत्साहित करना चाहिए। सरकार द्वारा इनके सगठन को

आर्थिक सहायता भी प्रदान करनी चाहिए। कारीगरो का सच्चा सगठन ही औद्योगिक सहकारिता को प्रेरित कर सकता है।

(६) करो मे कमी—कुटीर पदार्थों को विक्रय-कर, निर्यात-कर आदि से मुक्त कर देना चाहिए तथा इनके लिए रेल-भाडा भी कम होना चाहिए। ऐसा करने से इनकी वस्तुओ के विक्रय मे सुविधा होगी तथा ये मिल-निर्मित माल से सफलतापूर्वक प्रतियोगिता कर सकेंगी।

(७) मिल निर्मित पदार्थों की प्रतियोगिता से रक्षा—आजकल भारत सरकार ने उत्पादन के सामान्य कार्य-क्रम (Common Production Programme) की नीति को अपनाया है, जिसके अनुसार उत्पादन के क्षेत्रो का विभाजन व वर्गीकरण करके उनको सुरक्षित बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। जहाँ तक विदेशी प्रतिस्पर्धा का प्रश्न है, भारत सरकार को इनके आयात पर इस प्रकार नियन्त्रण रखना चाहिए, जिससे कि हमारे कुटीर उद्योगो का माल बडी सुगमतापूर्वक खप सके। मिल निर्मित वस्तुओ की प्रतिस्पर्धा से कुटीर पदार्थों की रक्षार्थ यह उचित होगा कि इन दोनो प्रकार के उद्योगो के उत्पादन क्षेत्र का निग्रह तथा उत्पादन की मात्रा सीमित कर दी जाये। ऐसा करने से प्रतियोगिता की आशका समाप्त हो सकती है।

(८) आधुनिक यन्त्रो व नवीनतम उत्पादन प्रणालियो की व्यवस्था—कुटीर-उद्योगो की निरन्तर प्रगति के लिए यही नितान्त आवश्यक है कि इनमे आधुनिकीकरण का प्रवेश हो। हमारे कुटीर कारीगरो को आधुनिक तरीको से कार्य करने की प्रणालियाँ बतलाई जायँ तथा उनको नये-नये यत्र प्रदान किये जायें। ऐसा करने से उत्पादन अधिकतम व श्रेष्ठतम हो सकेगा। सरकार को कम मूल्य पर या ऋण एवं अनुदान के रूप मे आधुनिक औजारो के वितरण की व्यवस्था करनी चाहिए। इस क्षेत्र मे औद्योगिक सहकारी समितियाँ भी महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान कर सकती हैं। साथ ही, स्थान-स्थान पर विशेषत ग्रामीण क्षेत्रो मे नये नये यन्त्रो के प्रदर्शन की भी व्यवस्था की जानी चाहिये, जिससे यह अधिक लोकप्रिय हो सके।

(९) जन-सहयोग की आवश्यकता – आज हमारा देश स्वतन्त्र है। हमको चाहिए कि 'स्वदेशी वस्तु उपयोगी आन्दोलन' करें तथा कुटीर निर्मित पदार्थों की मांग बढ़ायें। यह सचमुच बडे लज्जा का विषय है कि आज भी ऐसे अनेक भारतीय है, जो स्वदेशी वस्तुओ की अपेक्षा मिल निर्मित विदेशी पदार्थों को प्राथमिकता देते है। ऐसा करना वास्तव मे राष्ट्र के प्रति कुसेवा है। कुटीर उद्योगो के विकास के लिए जनता को अधिक सहयोग देना चाहिए। हमारी राष्ट्रीय सरकार को भी चाहिए कि वह इन वस्तुओ के निर्यात की ओर विशेष ध्यान दे और ऐसे प्रयत्न करे जिससे भारतीय कुटीर निर्मित पदार्थ विश्व के कोने-कोने मे पहुँचकर देश की ख्याति को बढ़ाये।

(१०) अन्य सुझाव—उपरोक्त सुझावो के अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रो मे जल विद्युत शक्ति का प्रसार, हमारे कुटीर धन्धो की उन्नति एव उनकी आर्थिक सुदृढता

मे सहायक होगा। इनके विकास से बेरोजगारी का निवारण होगा और अधिकांश लोगो का जीवन स्तर ऊँचा होगा तथा उनमे जीवन के प्रति उत्साह जागृत होगा।

उपर्युक्त उपचारो के अध्ययन से दो निष्कर्ष निकाले जा सकते है। प्रथम तो यह कि कुटीर-उद्योगो के विकास के लिए सरकार को बहुत अधिक तत्परता से काम लेना चाहिए। इन उद्योगो की स्थिति इतनी खराब हो गई है कि बिना राजकीय सहायता के इनका विकास बिल्कुल सम्भव नही है। दूसरे, औद्योगिक सहकारिता (Industrial Co-operatives) के विकास के द्वारा इनकी अधिकाश कठिनाइयो को दूर किया जा सकता है। ये समितियाँ इनके लिए पूँजी, यन्त्र, कच्चे माल आदि की व्यवस्था सुविधा से कर सकती है साथ ही, ये इनके द्वारा उत्पादक वस्तुओ के विक्रय का भी उत्तरदायित्व ले सकती है।

भारी, लघु एव कुटीर उद्योगो मे समन्वय—

भारत की अर्थ व्यवस्था मे कुटीर उद्योगो का अधिक महत्त्व होते हुए भी यह सुझाव कि बड परिमाण के उद्योग जड से उखाड देने चाहिए, राष्ट्र के लिए हितकर न होगा। देश के औद्योगीकरण के लिए आज बडे-बडे उद्योगो की भी आवश्यकता है तभी हम विश्व के अन्य उन्नतिशील देशो के स्तर तक पहुँच सकेंगे, अतएव यदि हम केवल कुटीर-उद्योग के आधार पर ही अपने आर्थिक विकास का स्तम्भ स्थापित करने की चेष्टा करें, तो हमे विश्व के अन्य देशो से पृथक रहना पडेगा, अत एकाकी जीवन भी व्यतीत करने के लिए हमको तैयार रहना चाहिए, किन्तु आज विश्व की स्थिति भिन्न है। हम किसी अन्य देश से अलग होकर रह नही सकते, अतएव आवश्यकता है इनके समन्वय की। हमारी अर्थ-व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जिसमे बडे पैमाने के उद्योग एव कुटीर धन्धे सभी को उचित स्थान मिले। हाँ, इतना अवश्य है कि प्रत्येक प्रकार के उद्योग का क्षेत्र निश्चित कर देना चाहिए। उदाहरणार्थ, स्थूल उद्योग और आधारभूत उद्योगो का बडे पैमाने पर ही विकास होना चाहिए, क्योकि ये उद्योग कुटीर आधार पर टिक ही नही सकते। ऐसे उद्योगो के उदाहरण है— लोह एव स्पात उद्योग, मशीन टूल्स एव वाहन उद्योग, विद्युत तथा शक्ति उद्योग, रासायनिक पदार्थ उद्योग, रक्षा सम्बन्धी उद्योग इत्यादि। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य उद्योग भी, जिनके उत्पादन देश के निर्यात के प्रधान अग है, बडी मात्रा पर ही विकसित होने चाहिये, जैसे—जूट उद्योग, सूती वस्त्र मिल उद्योग आदि। कुछ ऐसे भी उद्योग है जो कि बडे पैमाने एव कुटीर आधार पर भी चलाये जा सकते हैं, जैसे—कताई-बुनाई उद्योग, काच का उद्योग, चमडे का उद्योग, कागज का उद्योग, शक्कर का उद्योग आदि। कुछ उद्योग केवल कुटीर आधार पर ही विकसित होने चाहिये जैसे—गलीचा एव दरी का बुनना, जरदोजी, कामदानी और चिकन उद्योग, कढाई का काम, बर्तन बनाने का उद्योग, होजियरी, सिल्क तथा ऊन उद्योग, दूध-दही से सम्बन्धित उद्योग, साबुन बनाना, गुड बनाना, तेल निकालना, खिलौने बनाना,

फर्नीचर उद्योग आदि। इन उद्योगो मे कलात्मक वस्तुयें बनाने का विस्तृत क्षेत्र है। दूसरे, इनके लिए अधिक पूँजी की भी आवश्यकता नही पडती। तीसरे, इन वस्तुओ का उपभोग भी प्राय. स्थानीय होता है और यदि इनका निर्यात भी किया जाय, तो वे सफलतापूर्वक कारखाना निर्मित माल से टक्कर ले सकते है। चौथे, कार्य करने वाले श्रमिक के परिवार के अन्य सदस्य भी इन कामो मे सहायता पहुँचा सकते हैं। सच बात तो यह है कि कुटीर एव बडे पैमाने के उद्योगो के बीच अन्तर की कोई निश्चित रेखा नही खीची जा सकती। उदाहरण के लिए, सूती वस्त्र उद्योग को ही ले ले। यह उद्योग बडे परिमाण पर भी चलाया जा सकता है एव कुटीर आधार पर भी, किन्तु इस सम्बन्ध मे एक सुझाव यह है कि कताई का काम मिलो मे हो और बुनाई का काम कुटीर कारीगरो को सौपना चाहिए, क्योकि मिल का कता हुआ सूत सुन्दर होगा एव उसमे एकरूपता होगी और फिर ऐसे सूत को यदि कुटीर कारीगरो के द्वारा बुनवाया जाय, तो वे उसमे अपनी सम्पूर्ण कला दिखला सकते हैं। दूसरा सुझाव यह है कि २० अथवा ३० काउन्ट्स के नीचे कताई तथा बुनाई दोनो का कार्य कुटीर श्रमिको द्वारा कराया जाय और बढिया किस्म का कपडा बनाने के लिए मिलो से सहायता ली जाय। इसी प्रकार अन्य उद्योगो मे भी कार्य विभाजित किया जा सकता है।

कुटीर एव बडे पैमाने के उद्योगो के बीच अस्वस्थ प्रतिद्वन्द्विता को दूर करने के लिए सरकार को भरसक प्रयत्न करना चाहिये। सुन्दर सन्नियम के द्वारा दोनो प्रकार के उद्योगो म समन्वय सम्भव है। कुटीर-उद्योगो द्वारा निर्मित माल का क्रय करके भी राज्य सरकार कुटीर-उद्योगो को प्रोत्साहन प्रदान कर सकती है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने एक स्थान पर लिखा है—"यह समन्वय राष्ट्रीय योजना द्वारा सम्भव है, किन्तु एक प्रभावशाली योजना राजनैतिक एव आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना नही बन सकती। राज्य नियन्त्रण के बिना भी युक्तिपूर्ण योजना का निर्माण असम्भव है। आधारभूत उद्योग, जन-सेवा उद्योग एव यातायात उद्योग पर तो राज्य का पूर्ण नियन्त्रण रहना चाहए। अन्य उद्योगो पर नियन्त्रण की मात्रा कम हो सकती है। कोई भी बडा उद्योग जो किसी कुटीर-उद्योग के मार्ग मे रोडा बने, उस पर तो राज्य का नियन्त्रण अनिवार्य रूप से होना चाहिए। इसी नीति द्वारा सामंजस्य सरल एवं सम्भव होगा।"

भारतीय पार्लियामेण्ट मे बोलते हुये ९ मार्च सन् १९४९ को डाक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने भी एक बार यह कहा—"भारत का भविष्य दोनो प्रकार के उद्योगो के विकास मे ही निहित है। यदि हम ग्राम्य जीवन का पुनर्निर्माण करना चाहते हैं तथा बकारी की समस्या को हल करना चाहते हैं, तो यह कार्य केवल बडे पैमाने के उद्योगो के द्वारा ही सम्भव न होगा, वरन् प्रादेशिक योजना के द्वारा ही

हो सकता है, जिसमे वड उद्याग, लघु उद्योग एव कुटीर-उद्योग सभी को यथोचित स्थान मिले।

STANDARD QUESTIONS

1 Discuss carefully the principal prob ems fo Indian Cottage Industries

2 What are your suggestions to solve the problems of Indian Cottage Industry

3 The solution to the problems of Indian Cottage Industries lies in Irdustrial Co-operation Explain

4 Heavy Small and Cottage Industr es—all need to be deve oped at the same t me in the present economic condi tions of India How far do you agree with this statement ? Give reasons for your answer and fa scheme for co-ordination between different types of Industries

---

अध्याय ५६

सरकार द्वारा कुटीर-उद्योगों के विकास के लिये प्रयत्न

(प्रथम, द्वितीय एव तृतीय योजनाओ के विशेष सन्दर्भ सहित)

(Governmental Steps To Encourage Cottage Industries)

स्वतन्त्रता के पूर्व सरकार की नीति—

सन् १९४७ के पूव भारत मे अग्रजी राज्य था और उन विदेशियो ने सद्भावना से कभी भी देश के विकास की ओर ध्यान नही दिया। हमारे कुटीर उद्योग अवनति की दशा मे पड रहे। सन् १९३० के बाद दश क विभिन्न प्रा ता मे कुटीर ध धो को

पुनर्जीवित करने के लिये अवश्य कुछ प्रयत्न किये गये और उनका निरीक्षण करने के लिये सन् १६३३ मे भारत के प्रत्येक प्रान्त मे उद्योग विभाग की स्थापना की गई। किन्तु इन विभागो ने जितनी तत्परता एव आत्मीयता से काम करना चाहिए था, नही किया। सन् १६३३ मे कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलो की स्थापना के उपरान्त कुटीर-धन्धो के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया, जो कांग्रेस का एक राजनैतिक एवं भावनात्मक पहलू है।

आधुनिक काल में किये गए सरकारी प्रयत्नो का विवरण—

कुटीर-उद्योगो के भाग्य का सितारा तो १५ अगस्त सन् १६४७ की अर्द्ध-रात्रि को चमका। हमारी जन-प्रिय सरकार अपने पूर्व वचनानुसार कुटीर-उद्योगो के विकास के लिये पूर्ण प्रयत्न कर रही है। अप्रैल सन् १६४८ मे घोषित अपनी प्रथम औद्योगिक नीति मे सरकार ने कुटीर-उद्योगो पर उचित बल दिया। प्रथम पच-वर्षीय योजना ने भी राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था मे कुटीर-उद्योगो के महत्त्व को स्वीकार किया है। द्वितीय पच-वर्षीय योजना ने तो रोजगार को बढाने और उपभोग पदार्थों मे वृद्धि करने के लिये ऐसे उद्योगो पर विशेष निर्भरता प्रकट की है।

ऐसे उद्योगो के विकास को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से सरकार ने कुछ ठोस कदम उठाये है। सन् १६४८ मे कुटीर-उद्योगो का विकास प्रोत्साहित करने के लिये एक कुटीर-उद्योग बोड (Cottage Industries Board) विशेष रूप से स्थापित किया गया। विद्यमान उद्योगो के बारे मे विस्तृत सूचना प्राप्त करने के लिए बोर्ड ने एक सर्वे कराने का निर्णय किया, जो कि अब पूर्ण हो गया है। नवम्बर सन् १६५२ मे एक अखिल भारतीय दस्तकारी बोर्ड (The all India Handicrafts Board) का गठन किया गया, जिसका उद्देश्य कुटीर पदार्थों की किस्म में सुधार करना और भारत ने तथा विदेशो मे उसका प्रचार एव बिक्री बढाना था। हैन्डलूम उद्योग की, जोकि भारत का सबसे बडा लघु उद्योग है, सहायता करने के लिए अखिल भारतीय हैन्डलूम बोर्ड (All India Handloom Board) की सन् १६५२ मे स्थापना की गई। यह बोर्ड उद्योग मे सहकारिताओ के विकास पर और उत्पादन के विपणन पर विशेष जोर दे रहा है। बोर्ड के अन्तर्गत एक केन्द्रीय विपणन सगठन (Central Marketing Organisation) स्थापित किया गया है, जिसकी शाखायें मद्रास, बम्बई और बनारस मे रखी गई हैं। यह सगठन देश भर मे प्रचार-कार्यक्रम चलाने मे बोर्ड की मदद करता है। अखिल भारतीय खादी और ग्राम्य उद्योग बोर्ड (All India Khadi and Village Industries Board), जिसका गठन फरवरी सन् १६५३ मे हुआ था, ग्रामीण उद्योगो की प्रधान सस्था है। खादी एव १० अन्य ग्राम्य उद्योग इसके आधीन कर दिये गये है और इनके विकास के लिए यही बोर्ड कार्यक्रम बनायेगा। सन् १६५४ मे सरकार ने लघु-उद्योग-बोर्ड (Small-scale Industries Board) की भी स्थापना की। इन बोर्डों का

कर्तव्य लघु उद्योगो को तानिक सहायता प्रदान करने के लिए, विभिन्न केन्द्रो मे स्थापित किये गये सगठनो की क्रियाओ मे समन्वय करना है।

सरकार तथा बैंकिग सस्थान छोटे उद्योगों की वित्तीय सहायता देते हैं। सन् १९५७-५८ में छोटे पैमाने के उद्योगो के विकास के लिए राज्य सरकारो के लिए ३ ३० करोड रुपये के ऋणो तथा १'१० करोड रुपये के अनुदानों की स्वीकृति दी गई। अब तक ७२ औद्योगिक बस्तियो की स्थापना के लिए स्वीकृति दी जा चुकी है, जिनमे से सितम्बर सन् १९५८ तक ७२ औद्योगिक बस्तियो की स्थापना के लिए स्वीकृति दी जा चुकी है, जिनमे से सितम्बर सन् १९५८ तक १७ औद्योगिक बस्तियो का निर्माण पूरा हो चुका था और इन पर ३'६८ करोड रुपये व्यय हुए। इन औद्योगिक बस्तियों के लिए योजना मे निर्धारित राशि १० करोड रुपये से बढाकर १५ करोड रुपये कर दी गई है।

केन्द्रीय सरकार ने 'औद्योगिक विस्तार सेवा' के नाम से छोटे उद्योगो को प्राविधिक सहायता देने का एक कार्यक्रम आरम्भ कर दिया है। कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई तथा मद्रास स्थित ४ प्रादेशिक सस्थाओ, १२ बडी सस्थाओ, ५ शाखा सस्थाओ तथा ६२ विस्तार केन्द्रो का भी कार्य आरम्भ हो चुका है। प्रत्येक राज्य मे भी ऐसी एक सस्था की व्यवस्था करने के लिए दिसम्बर सन् १९५८ मे इस सेवा का पुनर्सङ्गठन किया गया। लघु उद्योगो को प्राविधिक मामलो म सहायता देने के लिए विदेशो से विशेषज्ञ बुलाये जाते हैं तथा फर्ड प्रतिष्ठान की सहायता से भारतीय प्राविधिज्ञो को प्रशिक्षण के लिए विदेश भेजा जाता है।

फरवरी सन् १९५५ मे एक 'राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम' स्थापित किया गया। सन् १९५५ ५६ मे केन्द्रीय सरकार ने कुटीर तथा लघु उद्योगो द्वारा निर्मित ३'४० करोड रुपये की वस्तुएँ खरीदी। निगम ने मशीनो तथा उपकरणो के क्रय-विक्रय (हायर परचेज) के लिए एक योजना लागू की, जिसके अन्तर्गत लघु उद्योगो को १'४३ लाख रुपये की मशीन दी जा चुकी हैं। छोटे पैमाने के उद्योगो के विकास के लिए 'सामुदायिक योजना कार्य प्रशासन' ने कई सामुदायिक योजना कार्य तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्डो में खण्ड स्तर के औद्योगिक अधिकारी नियुक्त किये हैं।

दस्तकारी की वस्तु के उत्पादन मे सुधार करने तथा उनके विक्रय की व्यवस्था के लिए सन् १९५२ मे स्थापित 'अखिल भारतीय दस्तकारी मण्डल' ने देश तथा विदेश, दोनों स्थानो मे विशेष रूप से ध्यान दिया। इस मण्डल के निर्यात् प्रोत्साहन सम्बन्धी कुछ कार्यों के लिए 'भारतीय दस्तकारी विकास निगम' स्थापित किया जा चुका है। विभिन्न राज्यो मे 'दस्तकारी सप्ताह' मनाये जाते हैं। दस्तकारी की वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि हुई है। प्रति वर्ष १ अरब रुपये के मूल्य का उत्पादन होने का अनुमान लगाया गया है और प्रति वर्ष लगभग ७ करोड रुपये के मूल्य की वस्तुओ का निर्यात किया जाता है।

नारियलजटा उद्योग मुख्यत एक कुटीर उद्योग है। इसके कुछ कारखानो मे

लकडी के करघे है, जिन पर हाथ से काम किया जाता है। १'२० लाख टन के अनुमानि
वार्षिक उत्पादन मे से ६० प्रतिशत उत्पादन केरल मे ही होता है। औसतन ५०,०
टन नारियलजटा तथा इससे बनी २१,००० टन वस्तुओ का निर्यात किया जाता है
'नारियलजटा मण्डल' भारत मे नारियलजटा से बनने वाली वस्तुओ को लोकप्रिय ब
तथा उनको प्रोत्साहन देने के काम मे लगा हुआ है। नारियलजटा से बनी वस
विदेशी विनिमय के अर्जन के महत्त्वपूर्ण स्रोत होने की दृष्टि से द्वितीय योजन
नारियलजटा उद्योग के लिए की गई व्यवस्था अब बढाकर २'३० करोड रुपय को
दी गई है।

सन् १६५८ मे ३४'०१ लाख पौण्ड कच्चे रेशम का उत्पादन हुआ, जिस
लगभग आधे का उत्पादन मैसूर राज्य मे ही हुआ। मैसूर के बाद इसके महत्त्व
उत्पादन-क्षेत्रो मे आसाम, जम्मू तथा काश्मीर, पश्चिमी बगाल तथा मद्रास के र
आते हैं। अप्रै सन् १६५८ मे पुनर्सङ्गठित 'केन्द्रीय रेशम मण्डल' रेशम उद्योग
रेशम-कीट पालन के विकास की देखभाल करता है। सन् १६४३ मे बरहाम
(पश्चिमी-बगाल) मे एक 'केन्द्रीय-रेशम कीडा-पालन शोध केन्द्र' स्थापित किया गय
इनकी एक शाखा कलिम्पोग मे भी स्थापित की गई। द्वितीय योजना मे इस केन्द्र
विस्तार किया जायगा। 'केन्द्रीय रेशम मण्डल' की ओर से मैसूर मे एक 'अ
भारतीय रेशम-कीडा-पालन प्रशिक्षण सस्था' तथा श्रीनगर मे एक 'केन्द्रीय रेशम-क
(विदेशी) पालन केन्द्र' स्थापित किया गया।

इसके अतिरिक्त, सरकार ने इन उद्योगो की सहायता करने के लिए कुछ
सिद्धान्त स्वीकार किये हैं। उदाहरण के लिए, कुटीर और लघु उद्योगो की सहा
करने के लिए उनके प्रतियोगी वृहत उद्योग पर उत्पादन कर लगाया जाता है, जै
मिल के बने कपडे पर एक पैसा प्रति गज कर लगाया गया है, जिसमे लगभग ६ क
रुपया प्रति वर्ष आय होगी। इस धन का उपयोग हैन्डलूम उद्योग के अधिक विका
लिए किया जायगा। इसी प्रकार एक अन्य सिद्धान्त यह भी है कि विशेष परिस्थि
मे कुटीर उद्योग को, उत्पादन का कुछ क्षेत्र उसके लिए विशेष रूप से सुरक्षित क
अस्थाई सहायता प्रदान की जा सकती है, जैसे—साडियो का उत्पादन केवल हैन
उद्योग के लिए सुरक्षित कर दिया गया है।

उपरोक्त वाक्यो के अतिरिक्त सरकार कुटीर एव लघु उद्योगो के लिए
सुविधाओ के विस्तार के प्रयत्न भी कर रही है। ऐसे उद्योगो की आर्थिक सह
करने के हेतु १० राजकीय वित्त निगमो की स्थापना की जा चुकी है। रिजर्व
एक्ट के एक सशोधन के अनुसार, रिजर्व बैंक को यह अधिकार दे दिया गया है
वह ऐसे उद्योगो के उत्पादन एव विपणन के लिए राज्य सहकारी बैंको और राज
निगमो को धन दे। सरकार ने अपनी विभाग-सामग्री क्रय नीति मे भी उदारता दि
है। कुटीर-उद्योगो के उत्पादको को एक निश्चित प्रतिशत तक प्राथमिकता दी
है। इन्टरनेशनल प्लानिंग टीम की सिफारिशो के आधार पर भारत सरकार ने नि

२, मद्रास और कलकत्ता मे चार लघु उद्योग सेवा इन्स्टीट्यूट (Small Industries Service Institutes) स्थापित कर दिये हैं। सरकारी आर्डरो की पूर्ति के लिए उत्पादन का सगठन करने के हेतु दिल्ली मे एक लघु उद्योग निगम (National Small Industries Corporation) की भी स्थापना की गई है। लघु उद्योगों के सगठन का चार्ज समालने के लिए एक विकास कमिश्नर (Development Commissioner) नियुक्त कर दिया गया है। अम्बर चर्खे का प्रचलन करने के लिए भी प्रस्ताव है। यह चर्खा उत्पादन की लागत मे बडी कमी कर देगा और देश के लाखो व्यक्तियो को अपार लाभ पहुँचायेगा। सन् १६५६-६० मे विभिन्न-विकास योजनाओ को अमल मे लाने के लिये सरकार ने खादी और ग्रामोद्योग आयोग के लिये १८·०३ करोड रुपये निर्धारित किये, जिनमे १०·७० करोड रुपये अनुमान और ७·३३ करोड रुपये ऋण रूप मे थे। इसमे से ३·५० करोडं रुपये पुरानी चाल की खादी, ११·२८ करोड रुपये अम्बर चर्खा कार्यक्रम और ३·२५ करोड रुपये ग्रामोद्योग की योजनाओ के लिये थे।

प्रथम योजना मे कुटीर-उद्योगों की प्रवृत्ति—

प्रथम पच वर्षीय योजना काल (सन् १६५१-५६) मे लघु तथा ग्रामोद्योग के विकास के लिये विभिन्न परिषदो द्वारा केन्द्रीय सरकार ने जो व्यय किया वह इस प्रकार है :—

(करोड रुपयो मे)

विवरण	व्यय की राशि
१ हस्त करघा परिषद्	१२·२
२. खादी ”	१२·३
३. ग्रामोद्योग ”	२·६
४. लघु उद्योग ”	४·४
५. हस्तकला ”	०·८
६ सिल्क ”	०·७
७. नारियलजटा ”	०·२
कुल योग	३३·६

प्रथम पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत हस्त करघा उद्योग को विशेष रूप मे प्रोत्साहन दिया गया, जिसके फलस्वरूप इस प्रकार के कपडे का उत्पादन सन् १६५१ मे ७,४२० लाख गज मे बढकर सन् १६५४-५५ मे १३,५४० लाख गज और सन् १६५५-५६ मे १४,५०० लाख गज हो गया। प्रथम योजना काल मे खादी उत्पादन का मूल्य सन् १६५०-५१ मे १·३ करोड रुपए से बढकर सन् १६५५-५६ मे ५ ४ करोड रुपए

के लगभग हो गया। भारत सरकार ने अपनी स्टोर क्रय नीति में भी प्रसशनीय सुधार किया, जिसके अनुसार कुटीर एवं लघु उद्योगों के उत्पादन को सरकार द्वारा खरीद के समय प्राथमिकता दी जाती है। इस नीति के परिणामस्वरूप भारत सरकार को जबकि सन् १९५२-५३ में ६६ लाख रु० का सामान इन उद्योगों से खरीदा गया था, सन् १९५५-५६ में यह राशि बढ़कर ३०४ लाख रुपए हो गई। इसी काल में कुटीर व लघु उद्योगों के विकास के हेतु उत्पादन के सामान्य कार्य क्रम (Common Production Programme) की नीति अपनाई गई, जिसके अनुसार लघु उद्योगों की सहायतार्थ इनके अनुरूप बड़े पैमाने के उद्योगों पर कर लगाने, उत्पादन क्षेत्र के निग्रह (Reservation of Spheres of Production) तथा आर्थिक सहायता द्वारा लघु उद्योगों को अल्पकालीन सुरक्षा प्रदान करने के सिद्धान्त को अपनाया गया है। इन उद्योगों की प्रगति के लिये औद्योगिक सहकारिता के विकास पर पर्याप्त बल दिया गया। सामुदायिक विकास योजना क्षेत्र तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा खंडों में भी इन उद्योगों के विकास के लिये रचनात्मक काम किए गए। योजना में कुल मिलाकर ४३·७ करोड़ रुपया इस मद में खर्च किया गया था। इसमें केंद्रीय सरकार द्वारा ३३ ६ करोड़ रुपया और विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा १० १ करोड़ रुपया व्यय किया गया।

कर्वे समिति की नियुक्ति—

कुटीर व लघु उद्योगों की समस्या पर गम्भीरता से विचार करने के लिए जून सन् १९५५ में योजना आयोग ने प्रो० डी० जी० कर्वे की अध्यक्षता में एक 'ग्राम एवं लघु उद्योग समिति' की नियुक्ति की। इस समिति ने निम्नलिखित उद्देश्यों को अपने सम्मुख रखा—

(अ) द्वितीय योजना काल में परम्परागत ग्रामोद्योगों में होने वाली प्राद्योगिक बेकारी को रोकने का यथासम्भव प्रयास करना।

(ब) इन उद्योगों के द्वारा रोजगार के साधनों में अधिक से अधिक वृद्धि करना।

(स) विकेंद्रित समाज के ढांचे पर तीव्र गति से प्रगतिशील आर्थिक विकास के लिए आधार तैयार करना।

कर्वे समिति का यह सुझाव कि गाँव को औद्योगिक इकाई—'प्रजातन्त्रीय ग्रामीण अर्थ व्यवस्था पर आधारित उद्योग का पैरामिड' अथवा आधार मानकर औद्योगिक व्यवस्था के निर्माण की आदर्श योजना बनाई जाये। ऐसी योजना निम्नलिखित मान्यताओं पर निर्भर होगी —(क) समान उद्योग की बड़ी एवं छोटी इकाइयों के लिये सामान्य उत्पादन कार्यक्रम, (ख) औद्योगिक उत्पादन के स्थानीय क्षेत्रों को महत्त्व देना, तथा (ग) छोटी इकाइयों को कच्चे माल, वित्त, प्रशिक्षण आदि के द्वारा सहायता प्रदान करना। कर्वे समिति ने द्वितीय पंच-वर्षीय योजना के अंतर्गत कुटीर एवं लघु उद्योगों के विकास के हेतु एक विस्तृत कार्य-क्रम तैयार किया, जिसके अनुसार योजना काल में २६० करोड़ रु० व्यय का आयोजन था।

प्रथम एवं द्वितीय योजना के अन्तर्गत प्रगति की समीक्षा –

(१) पहली योजना मे हाथकरघा उद्योग, खादी और ग्रामोद्योग, रेशम, नारियल रेशा, दस्तकारी और लघु उद्योगो के विकास के कार्यक्रमों के बनाने मे मदद करने और परामर्श देने के लिए अखिल भारतीय मण्डल नियुक्त करके इन उद्योगो की प्रगति के लिए एक बडा कदम उठाया गया। विकास कार्यक्रमो का एक महत्त्वपूर्ण अंग इनमे लगे दस्तकारो की विविध रूप से सहायता पहुँचाने का था, जैसे प्रशिक्षण सुविधाए, तकनीकी परामर्श, सुधरे हुए औजार आसान किस्तो पर देने का प्रबन्ध और बिक्री की दूकानो की स्थापना। दूसरी योजना मे इन सब प्रकार की सहायता बहुत अधिक बढा दी गई। इसके लिए १८० करोड रुपये से कुछ कम खर्च किया गया, जब कि पहली योजना मे केवल ४३ करोड रुपया खर्च किया गया था। राज्यो के उद्योग विभागो को भी बढाया गया।

(२) इस समय उपलब्ध सूचना के अनुसार हथकरघे के कपडे का उत्पादन सन् १६५०-५१ मे ७४ २ करोड गज से बढकर सन् १६६०-६१ म लगभग १६० करोड गज हो गया। इसमे लगभग ३० लाख बुनकरो को पहले से अधिक रोजगार मिला। सहकारी समितियो मे हथकरघो की सख्या सन् १६५३ मे ७ लाख से बढ कर सन् १६६० के मध्य तक १३ लाख हो गई। खादी (सूती, रेशमी और ऊनी) का उत्पादन सन् १६५०-५१ मे ७० लाख गज से बढकर सन् १६६० ६१ मे ४८ करोड गज हो गया और अम्बर खादी का उत्पादन सन् १६५६-५७ मे १६ लाख गज से बढकर सन् १६६०-६१ मे लगभग २६० लाख गज हो गया। इन कार्यक्रमो से लगभग १४ लाख कातने वालो को अर्द्ध-रोजगार मिला और लगभग १'६ लाख बुनकरो और बढइयो इत्यादि को पूरा रोजगार मिला।

ग्रामोद्योगो के कार्यक्रमों से दूसरी योजना में लगभग ५ लाख दस्तकारो और गांवो की महिला श्रमिको को कुछ रोजगार मिला। दूसरी योजना मे ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था के विकास के लिए खादी और ग्रामोद्योगो के सघन विकास के लिए एक सघन क्षेत्र योजना चलाई गई। कच्चे रेशम का उत्पादन सन् १६५१ के २५ लाख पौंड से बढकर सन् १६६० मे ३६ लाख पौंड हो गया। दूसरी योजना के अन्त मे यह अनुमान था कि इस उद्योग मे ३५,००० व्यक्तियो को पूरा रोजगार और लगभग २७ लाख व्यक्तियो को आंशिक रोजगार मिला। नारियल के रेशे के धागे और सामान का निर्यात पहली पच वर्षीय योजना के अन्त के स्तर से नीचे रहा। इस उद्योग मे इस समय लगभग ८ लाख व्यक्तियो को रोजगार मिल रहा है। दस्तकारियो की चीजो की देश और विदेश दोनो मे बिक्री बढी। यह अनुमान है कि गलीचो समेत लगभग ६ करोड रुपये प्रति वर्ष का सामान दूसरी पच-वर्षीय योजना के अन्तिम तीन वर्षो मे विदेश भेजा गया।

दूसरी पच वर्षीय योजना की अवधि मे अनेक छोटे उद्योग जैसे मशीनी औजार, सिलाई की मशीन, बिजली के पखे और मोटरें, साइकिलें, राजगीरो के औजार तथा लोहे की चीजो का बहुत विकास हुआ और इनमे २५ से ५० प्रतिशत प्रति वर्ष उत्पादन

बढा। छोटे उद्योगपतियो को किस्तो पर मशीन देने के लिए एक औद्योगिक विस्तार सेवा शुरू की गई, जिसमे लगभग ४ २ करोड रुपए की मशीनें बिक्री-खरीद शर्तों पर दी। छोटे कारखानो ने निर्यात के लिए ६ लाख जोडी चमडे के जूते तैयार किए। लगभग ६० औद्योगिक बस्तिया सन् १९६०-६१ मे पूरी हो गई, जिनमे सन् १९५२ मे १,०३५ कारखाने थे, जिनमे १३,००० लोग काम करते थे। लघु उद्योगो के कार्यक्रम से अनुमान है कि लगभग ३ लाख लोगो को पूरा रोजगार मिला।

तीसरी योजना का मार्ग निर्धारण—

तीसरी योजना मे ग्राम और लघु उद्योगो के कार्यक्रम चलाते समय निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य सामने रखे जाएगे :—

(क) कारीगर की उत्पादन क्षमता को बढाना और उसे कार्यकुशल बनाने, प्राविधिक परामर्श देने, बढिया औजार और ऋण आदि की सहायता देकर उत्पादन-व्यय घटाना।

(ख) बिक्री मे सहायता, उत्पादन मे सहायता और आश्रय प्राप्त विक्रय आदि को धीरे-धीरे कम करना।

(ग) गावो और छोटे कस्बो मे उद्योगा की वृद्धि को प्रोत्साहन देना।

(घ) छोटे उद्योगो का बडे उद्योगो के सहायक के रूप मे विकास करना।

(ङ) दस्तकारो की सहकारी समितिया बनाना।

इन उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए जो नीति और उपाय किए जाएगे, वे नीचे दिए जा रहे हैं।

कार्यकुशलता और उत्पादकता मे सुधार—

प्राविधिक और प्रबन्धकीय कार्यकर्ताओ को तैयार करने के लिए प्रशिक्षण की सुविधाए तीसरी योजना मे बहुत बढाई जाएगी। ग्रामीण कारीगरो के लिए चुने हुए क्षेत्रों मे एक विशेष प्रकार की सस्थाए चलाने की योजना बनाई गई है, जो आस-पास के गावो को लोहारी, बढईगिरी इत्यादि पेशो का प्रशिक्षण देगी। औद्योगिक विस्तार तकनीक का प्रशिक्षण देने के लिए एक अखिल भारतीय सस्था बनाई जाएगी। विभिन्न उद्योगो मे लगे हुए कारीगरो और दस्तकारों को सुधरे हुए औजार और मशीनें देने के अलावा उन्हे तकनीकी परामर्श देने की भी व्यवस्था की जाएगी।

ऋण और पूंजी—

तीसरी योजना मे ऋण देने की सुविधाओ का और अधिक विस्तार किया जाएगा और ऋण उचित शर्तों और न्यूनतम समय मे दिया जाएगा। इसके लिए लक्ष्य यह रहेगा कि जितने ऋण की आवश्यकता पडती है, वह साधारण बैंकिंग तथा अन्य वित्तीय सस्थाओ से मिले।

संयुक्त उत्पादन कार्यक्रम—

पहली और दूसरी योजनाओ मे सगठन और सहायता के व्यावहारिक उपायों को 'सयुक्त उत्पादन कार्यक्रम' के तत्त्व कहा गया था। सयुक्त उत्पादन कार्यक्रम से भाव

यह है कि किसी उद्योग के विभिन्न विभागो के विकास कार्यक्रम को बनाते समय उसमें बड़े उद्योगो, छोटे उद्योगो और कुटीर उद्योगो का योगदान क्या रहेगा, जिसमे समाज की सारी माग सामाजिक और दूसरे उद्देश्यो के अनुरूप पूरी की जा सके। इस कार्यक्रम के दूसरे तत्व थे उत्पादन के क्षेत्र नियत करना, उद्योग के बडे अगो की क्षमता के विस्तार पर रोक लगाना, बडे कारखानो पर शुल्क लगाना और टैक्सो, बिक्री मे छूट, सहायता आदि देकर छोटे कारखानो को मूल्य की दृष्टि से लाभ पहुँचाना। यह महसूस किया गया कि सयुक्त उत्पादन कार्यक्रम के आम असूलो को उद्योग विशेष की समस्याओ का पूरा अध्ययन और छानबीन करने के बाद ही लागू किया जाय।

सरकारी सहायता, बिक्री मे छूट आदि की भूमिका—

व्यवहार्य सहायता के कायक्रमो के क्रमिक विकास से यह आशा है कि तीसरी योजना मे सरकारी सहायता और बिक्री मे छूट आदि की आवश्यकता कम हो जाएगी। सकता है कि कुछ पारस्परिक उद्योगो के मामले मे इस प्रकार की सहायता देने और उनमे बने माल के लिए बाजार ढूढने आदि के उपायो को अन्य लघु उद्योगो की अपेक्षा अधिक समय तक जारी रखना आवश्यक हो।

ग्रामीण क्षेत्रो और छोटे कस्बो का औद्योगिक विकास—

तीसरी योजना मे ग्रामीण क्षेत्रो और छोटे कस्बो तथा ऐसे कम विकसित क्षेत्रो मे जहा उद्योग खोलने की साफ सम्भावनाए हो, उद्योगो की और अधिक वृद्धि को प्रोत्साहन देने पर जोर दिया जाएगा। इसलिए जिन क्षेत्रो मे अन्य विकास कायक्रमो के कारण विभिन्न मौलिक सुविधाए उपलब्ध हो जाए गी, उनके मामले पर गौर करना होगा और उन ग्रामीण क्षेत्रो और छोटे कस्बो मे छोटे उद्योगो को विभिन्न प्रकार की सहायता देनी होगी। इस प्रकार अनेक सफल केन्द्र बनाने होगे, ताकि वे और अधिक विस्तृत विकास के लिए केन्द्र या आदर्श का काम दे सके। विशेषकर माल को विविध रूप मे तैयार करने वाले उद्योग छोटे पैमाने पर और सहकारी समितियो द्वारा अधिकतम सीमा तक खोले जाने चाहिए। जहा बिजली तथा अन्य मूल सुविधाए उपलब्ध नही हैं, वहा ग्रामीण कारीगरो को सहकारी समितियो मे सगठित करने मे मदद करनी चाहिए।

छोटे उद्योगो का सहायक उद्योगो के रूप मे विकास—

बडे उद्योगो के सहायक के रूप मे छोटे उद्योगो के विकास को प्रोत्साहन देने के विभिन्न उपायो पर एक विशेष समिति विचार कर रही है। सार्वजनिक और निजी दोनो क्षेत्रो मे बडे कारखानो और छोटे-छोटे कारखानो का पारस्परिक सहयोग बढाने का प्रस्ताव है। उद्योग के हर पहलू मे समाज की आवश्यकताओ का विस्तृत दृष्टिकोण लेना आवश्यक है जिससे पता चल सके कि बडे और छोटे उद्योग क्या योगदान कर सकते हैं और उत्पादन का विभिन्न चरणो मे किस प्रकार विकेन्द्रीकरण किया जा सकता है। ऐसे समन्वित विकास की दृष्टि से अनेक उद्योगो का अध्ययन किया जा रहा है।

औद्योगिक सहकारी संस्थाएं—

तीसरी योजना मे वर्तमान सहकारी सस्थाओ के सगठन और पूंजी को मजबूत बनाने और अधिकाधिक कारीगरो को उनमे भर्ती करने पर जोर दिया जाएगा। इसके लिए जिन प्रमुख उपायो का प्रस्ताव है, वे हैं कुछ समय तक प्रबन्धकीय और निरीक्षक कर्मचारियो पर होने वाले व्यय के लिए वित्तीय सहायता की व्यवस्था और प्रारम्भिक समितियो से केन्द्रीय सहकारी वित्तीय एजेन्सी जो सूद ले, उसके लिए सरकारी सहायता देना। जिन छोटे उद्योगो मे एक या कुछ थोडे मालिक लोग हो, वहाँ सगठनो के निर्माण को प्रोत्साहन दिया जाए।

समन्वय के लिए प्रबन्ध—

इन कार्यक्रमो को जो विभिन्न मण्डल और एजेन्सियाँ विशेष तौर पर क्षेत्रो मे चलाएगी, उनके काम मे सामञ्जस्य लाने के उपायो की बडी आवश्यकता है। गावो मे खेती, बिजली, परिवहन आदि का विकास हो जाने से यह आवश्यक हो जाएगा कि ग्रामीण औद्योगीकरण की समस्या पर व्यापक दृष्टिकोण अपनाया जाए, जो वर्तमान मण्डल आदि नही कर सकेंगे, क्योंकि उनका कार्यक्षेत्र अपने विशेष उद्योग तक ही सीमित है। इस प्रश्न के विभिन्न पहलुओ पर राज्य सरकारों और विभिन्न मण्डलो के साथ मिल कर आगे विचार करने का प्रस्ताव है।

व्यय और व्यय-परिमाण—

तीसरी योजना मे ग्रामोद्योगो और लघु उद्योगो के लिए २६४ करोड रुपये के व्यय का प्रस्ताव है। दूसरी योजना मे इन पर १८० करोड रुपये से कुछ कम व्यय होने का अनुमान है। यह राशि विभिन्न उद्योगो पर निम्नलिखित रूप मे व्यय की जायगी :—

(करोड रुपये मे)

उद्योग	दूसरी योजना (अनुमित व्यय)	तीसरी योजना (व्यय)		
		राज्य और केन्द्रीय प्रदेश	केन्द्र	योग
हथकरघा उद्योग क्षेत्र	२६.७	३१.०	३.०	३४.०
हथकरघा क्षेत्र मे बिजली के करघे	२.०	—	४.०	४.०
			३७.०	
खादी—पारस्परिक, अम्बर, ग्रामोद्योग	८२.४	३.४	३२.० २०.०	९२.४

रेशम उद्योग	३ १	५'५	१ ५	७ ०
नारियल रेशा उद्योग	२ ०	२ ४	० ८	३ २
दस्तकारी	४ ८	६ १	२ ५	८ ६
लघु उद्योग	४४४	६२ ६	२२ ०	८४ ६
औद्योगिक बस्तियां	११ ६	३० २	—	३० २
योग	१८०० *	१४१ २	१२२ ८	२६४ ०

ऊपरलिखित व्यय के अलावा सामुदायिक विकास कार्यक्रम मे भी इन उद्योगो के विकास के लिए २० करोड रुपये की व्यवस्था है। इसके अलावा विस्थापितो के पुनर्वास कार्यक्रम और समाज कल्याण तथा पिछड़े वर्गों के कल्याण कार्यक्रमो मे भी इन उद्योगो के लिए कुछ व्यवस्था है। निजी तौर पर जिनमे बैंक भी शामिल है लगभग २७५ करोड रुपये इन उद्योगो मे लगाए जाने का अनुमान है। हर कार्यक्रम के लिए यह आवश्यक है कि भवन निर्माण और ऊपरी खर्चों को न्यूनतम रखा जाय।

विकास के कार्यक्रम

हथकरघा और बिजली करघा उद्योग—

हथकरघो पर बुनने वाले जुलाहो को पहले से अधिक काम देकर, उन्हे शेयर पूंजी के लिए ऋण देकर और सुधरे हुए तरीको को प्रचलित किया जाएगा और साथ-साथ बिक्री छूट इत्यादि के महत्त्व को कम करके अन्य प्रकार की, उद्योग को दृढ बनाने वाली, सहायता देकर कमजोर सहकारी समितियो को बडा और सूक्ष्म बनाने का प्रस्ताव है। हथकरघे के कपडे के निर्यात को प्रोत्साहन देने के भी उपाय किए जाएंगे। सहकारी समितियो मे शामिल हथकरघा जुलाहो की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए अगले कुछ वर्षों मे नौ-साढे नौ हजार बिजली करघे लगाने का प्रस्ताव है। सन् १९६५-६६ मे कपडे के कुल उत्पादन का लक्ष्य ९३० करोड गज है। उसमे से हथकरघा, बिजली करघा और खादी उद्योग का हिस्सा ३५० करोड गज रखा गया है। लेकिन इन उद्योगो मे अलग-अलग कितना-कितना उत्पादन होगा इसका निश्चय अभी नही किया गया। प्रत्येक क्षेत्र मे हुई उन्नति को देखकर समय-समय पर स्थिति पर पुनर्विचार किया जाएगा।

पारस्परिक और अम्बर खादी—

खादी और ग्रामोद्योग आयोग ने सघन क्षेत्रो या ग्राम इकाइयों के रूप मे ग्रामीण विकास का जो कार्यक्रम बनाया है उसी के अनुसार तीसरी योजना मे खादी के विकास का कार्य चलेगा। इस कार्यक्रम मे ३ हजार ग्राम इकाई खोलने का प्रस्ताव है, जिसमे से हरेक मे एक या एक से अधिक गांव होंगे, जिनकी जन-सख्या लगभग ५

* खर्च का अनुमान लगभग १७५ करोड़ रु० है

शहतूत और गैर शहतूत वाली रेशम का उत्पादन सन् १९६० मे ३६ लाख पौंड से बढ़कर सन् १९६५-६६ मे ५० लाख पौण्ड होने की आशा है।

नारियल रेशा उद्योग—

तीसरी योजना मे इस उद्योग के माल का निर्यात बढ़ाने और उसमे सहकारी सस्थाओ को दृढ आधार पर सङ्गठित करने पर जोर दिया जाएगा। नारियल रेशे को कातने वालो को मशीनें दी जाएँगी, ताकि काम की किस्म बढ़िया हो सके। इसके साथ ही प्रारम्भिक सहकारी समितियो के कार्यकलाप पर और अधिक देख-रेख रखी जाएगी। इस उद्योग के उत्पादको और निर्यात करने वालो की सहायता के लिए एक विशेष निर्यात प्रोत्साहन योजना बनाई गई है। इस कार्यक्रम मे उत्पादन की नई प्रणालियो को प्रोत्साहन देना नारियल के सार भाग तथा रेशो मे से बचे हुए हिस्सों को उपयोग मे लाना इसके अन्तर्गत है। गद्दो तथा ब्रुश रेशो के कार्य को भी बढ़ाया जाएगा।

दस्तकारियाँ—

अखिल भारतीय दस्तकारी मण्डल ने १२ चुनी हुई दस्तकारियो के विकास के लिए विशेष कार्यक्रम बनाये है। पिछले वर्षों मे जो विकास कार्य हुआ है उससे विभिन्न दस्तकारियो की मुख्य समस्याओ की जानकारी प्राप्त हुई। तीसरी योजना मे इन समस्याओ को हल करने के लिए विशेष कदम उठाये जाएँगे। विकास अधिकतर सहकारी समितियो द्वारा ही किया जाएगा, लेकिन कुछ छोटे उपक्रमियो के सघ बनाने का भी प्रस्ताव है, ताकि किस्म पर नियन्त्रण किया जा सके और कारीगरो की दशा मे सुधार हो तथा व्यावसायिक स्तर मे भी सुधार हो। निर्यात को प्रोत्साहन देने के साथ ही दस्तकारियो के उत्पादन का इस तरह नए ढङ्ग से सङ्गठन करना होगा ताकि देश के विभिन्न आय-वर्गों की आवश्यकताओ के अनुरूप ही सामान तैयार किया जा सके और ग्रामीण दस्तकारियो का भी विकास हो। तीसरी योजना के अन्तर्गत ये काम भी होगे : बाहर भेजे जाने से पहले वस्तुओ का निरीक्षण तथा निर्यात करने वालो की ऋण सुविधा, डिजाइन तैयार करने के केन्द्र, अन्तर्राज्य व्यापार को प्रोत्साहन, कुछ दस्तकारियो मे प्रशिक्षण सुविधाएँ, बिक्री सम्बन्धी अनुसन्धान और विक्रय भण्डारो के प्रबन्ध और बिक्री सम्बन्धी प्रशिक्षण।

लघु उद्योग—

दूसरी योजना मे प्राविधिक परामर्श देने, उधारवित्त और प्रशिक्षण सुविधाएँ, मशीन देने, बिक्री की व्यवस्था और कच्चे माल की उपलब्धि आदि की व्यवस्था के जो कार्यक्रम आरम्भ किए गए थे उन्हे तीसरी योजना के बडे कामो को देखते हुए और अधिक बढाया जाएगा। उत्पादन मे वृद्धि और उसके विकेन्द्रीयकरण के साथ ही तीसरी योजना के कार्यक्रमो का एक लक्ष्य यह भी रहेगा कि अधिक से अधिक उद्योगो के छोटे और बडे कारखानो मे समन्वय रहे। छोटे कारखाने बडो के रूप मे बढे और छोटे उद्योग छोटे कस्बो और ग्रामीण क्षेत्रो मे खुलें तथा उन्हे चलाने वाली सहकारी

समितियों और नए उद्योगपतियों और उपक्रमियों को और अधिक सुविधाएँ मिलें। विकास का एक महत्वपूर्ण अङ्ग यह भी है कि कारखाने की क्षमता का पूरा फायदा उठाया जाए, इसके लिए एक से अधिक पालियाँ शुरू की जाएँ और आवश्यक कच्चा माल उपलब्ध किया जाए। राज्य सरकारों और केन्द्रीय सरकार की मांग भी अधिकतर छोटे उद्योगों से ही पूरी करने की नीति और कड़े ढङ्ग से लागू की जाए। राज्यों के साथ ही केन्द्र मे स्टोर की क्रय सम्बन्धी नीतियों तथा सम्बद्ध कार्यक्रम को और भी विस्तृत रूप से विकसित करने की आवश्यकता है। अन्य विकास कार्यक्रमों मे ये हैं: राज्य सरकारों द्वारा मुश्किल से मिलने वाले कच्चे माल के भण्डार स्थापित करना, औद्योगिक बस्तियाँ बनाने, कच्चे माल के भण्डारों का संचालन करने और सर्व सेवा सुविधा केन्द्र चलाने के लिए लघु उद्योग निगमों को स्थापित करना।

औद्योगिक बस्तियाँ—

तीसरी योजना मे लगभग ३०० नई विभिन्न प्रकार की औद्योगिक बस्तियाँ खोलने का विचार है। ये यथासम्भव छोटे और मझोले कस्बों के समीप बसाई जाएँगी। जिन ग्रामीण क्षेत्रों मे बिजली, पानी और अन्य सुविधाएं उपलब्ध हो सकती है वहाँ भी अनेक औद्योगिक बस्तियाँ खोलने का विचार है। बड़े शहरों और विकसित कस्बों के पास छोटे उद्योगपतियों को कारखाने बनाने के लिए केवल विकसित स्थान देने का भी प्रस्ताव है। छोटे उद्योगों को सहायक के रूप मे विकसित करने के लिए यह सुझाव है कि बड़े उद्योगों के आस-पास उनके सहायक के रूप मे पनप सकने वाली एक ही प्रकार के लघु उद्योगों की बस्तियाँ खोली जाए। नई बस्तियाँ खोलते समय भवन निर्माण आदि कार्यों मे कम से कम खर्च करने के अनेक सुझाव आ चुके हैं और उन पर पूरा अमल करना आवश्यक होगा।

रोजगार—

तीसरी योजना मे सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों मे ऊपर लिखित कार्यक्रमों जो रुपया लगाया जाएगा, आशा है उससे ८० लाख लोगों को आंशिक या पहले अधिक रोजगार और लगभग ९ लाख लोगों को पूरा रोजगार मिलेगा।

निर्यात—

नारियल रेशे का सामान, हथकरघे का कपड़ा और दस्तकारियों का सा[illegible] लगभग प्रतिवर्ष २१ करोड़ रुपये का निर्यात होता है। लघु उद्योगों का भी कुछ [illegible] निर्यात होने लगा है। लघु उद्योगों के माल की किस्म बढ़िया करके, कीमत घट और नए डिजाइन आदि बनाकर उनके और अधिक माल को बाहर भेजना स[illegible] होगा।

किसी कार्यक्रम का क्या प्रभाव हुआ, इसको आंकने के लिए देश भर के [illegible] अत्यन्त आवश्यक होते हैं, लेकिन लघु उद्योगों सम्बन्धी पूरे आंकड़े अभी उपलब्ध है। सन् १९६१ की जनगणना से उम्मीद है कि औद्योगिक इकाइयों की एक पूरी [illegible] मिल जाए। उसको ढांचा मानकर जो कारखाने दस या उससे अधिक क[illegible]

रखने हैं या जिनकी पूंजी ५ लाख से अधिक है उन सबका छमाही सर्वेक्षण करने का एक प्रस्ताव है।

लघु उद्योगों के प्रोत्साहन मे सरकार का योग

(जापानी प्रतिनिधि मंडल द्वारा विकास के लिए अनेक सुझाव)

देश मे छोटे उद्योगो को बढाने के लिए भारत सरकार ने पिछले कुछ वर्षों मे जो विभिन्न कदम उठाए हैं, उनसे लघु उद्योगो सम्बन्धी जापानी प्रतिनिधि मण्डल बहुत ही प्रभावित हुआ है। उसका कहना है कि इन कदमो की जापान मे किए गए उपायो से भली प्रकार तुलना की जा सकती है। भारत की अर्थ-व्यवस्था के वर्तमान चरण मे, हाल मे उठाए गए ये कदम सर्वथा स्वाभाविक ही है। लेकिन प्रतिनिधिमडल का यह भी कहना है कि "देश के सभी भागो मे इन उपायो का प्रभाव फैलना तथा वांछित उद्देश्य प्राप्त करना अभी शेष है। उदाहरण के तौर पर राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, राज्य वित्त निगम तथा स्टेट बैंक आफ इण्डिया जैसी सस्थाओ ने इस दिशा मे काम की शुरुआत ही की है। लघु उद्योग सेवा सस्थाओ जैसे सगठन भी जो इस काम के लिए अपेक्षाकृत अधिक ठीक हैं, अभी इसी तरह की स्थिति मे है।"

सरकारी संरक्षण एवं पोषण—

जापानी प्रतिनिधि मडल ने आगे कहा है कि सरकारी कार्यक्रम पर सामान्य रूप से दृष्टिपात करने मे हमे यह पता लगा कि सरकार द्वारा किये जा रहे कुछ उपाय, लघु उद्योगो का आवश्यकता से अधिक सरक्षण तथा पोषण करते हैं, जिसका परिणाम यह होगा कि उनकी उद्यम की भावना को खुल कर प्रयोग होने का अवसर नही मिल सकेगा। उदाहरण के तौर पर सहकारी समितियो को अत्यधिक उदारता-पूर्ण संरक्षण दिया जाता है। कुछ राज्य तो आदर्श केन्द्र जैसी सस्थाएँ तक स्थापित कर रहे हैं, इससे तो यह भय है कि गैर सरकारी उद्योगो की स्थापना या वृद्धि मे बाधा पडेगी। पश्चिमी बगाल मे सिरैमिक इन्स्टीट्यूट आफ सेन्ट्रल इन्जीनियरिंग इसका एक उदाहरण है।

"प्रत्येक उद्योगपति की उद्यमशीलता की भावना लघु उद्योगो के विकास के लिए आवश्यक शर्त है, इसलिए सरकारी कार्यक्रम ऐसे ढग से बनाया जाना चाहिए कि उन्हें सरकार या अन्य लोगो पर निर्भरता घटाने तथा स्वतन्त्रता एव स्वावलबन की भावना पैदा करने की ओर प्रवृत्त किया जा सके। अतएव राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की वृद्धि के साथ-साथ सरकारी उपायो का मूल उद्देश्य सरक्षण एव पोषण से हटकर मार्ग-दर्शन एव प्रोत्साहन होते जाना चाहिए।

प्रतिनिधिमडल ने लघु उद्योगो को बिजली की अधिकाधिक व्यवस्था करने तथा औद्योगिक बस्तियो की स्थापना पर अधिक बल दिया है। वह यह अनुभव करता है कि कम दर पर ब्याज आदि के रूप मे मूल्य विभेदक आर्थिक सहायता देना कार्य-कुशलता, उद्यमशीलता तथा आविष्कारिणी प्रतिभा आदि की दृष्टि से दीर्घकाल मे लाभप्रद न होगा। उसने यह विचार भी प्रकट किया है कि जैसे-जैसे राष्ट्रीय अर्थतन्त्र

का विकास होगा, वैसे-वैसे भारत मे इस समय विद्यमान अधिकांश श्रम-प्रधान उद्योगो मे धीरे-धीरे मशीनें आते जाना निश्चित है और इस प्रकार वे आधुनिकीकरण का रास्ता अपनायेंगे।

औद्योगिक बस्तियाँ—

लघु उद्योगो के विकास का मार्ग प्रशस्त करने मे औद्योगिक बस्तियाँ जो योग दे रही हैं, उसकी जापानी प्रतिनिधिमंडल ने प्रशसा की है। लघु उद्योगो को बढावा देने की यह अद्वितीय प्रणाली है, जो शायद ही किसी अन्य देश मे चल रही हो। उसने यह सुझाव दिया है कि औद्योगिक बस्तियो की सख्या और बढायी जाय और देश भर मे उन्हे फैला दिया जाय। ये बस्तियाँ उन इलाको मे खास तौर से स्थापित की जाएँ जहाँ कच्चे मालो और बाजार की स्थितियो की दृष्टि से औद्योगिक विकास की उत्कृष्ट सभावनाएँ हो और जहाँ शारीरिक श्रम प्रधान धन्धो के आधुनिकीकरण की सख्त आवश्यकता हो। औद्योगिक बस्तियो का कार्यक्रम बढाने के लिए इस प्रतिनिधि मडल ने यह सुझाव दिया है कि केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारो को चाहिए कि वे किसी गैर सरकारी उद्योगो अथवा सहकारी समितियो को इन प्रयोजनाओ मे भाग लेने के लिए प्रोत्साहन दें। ये प्रोत्साहन आर्थिक सहायता देकर या अन्य उपयुक्त उपायो के द्वारा दिए जा सकते हैं।

प्रतिनिधिमडल की अन्य सिफारिशो मे से कुछ ये हैं—जिन क्षेत्रो मे विद्युत शक्ति सुलभ नही है, वहाँ डीजल शक्ति की व्यवस्था की जाए, एक औद्योगिक बस्ती मे अनेक प्रकार के कारखानो का मिश्रण बचाया जाए, औद्योगिक बस्तियो के किराएदारो से धीरे-धीरे किराया बढाया जाए और कारखाने की जगह को आसान किश्तो पर बेचा जाय।

उद्योगो के अनुसार लघु उद्योग सहकारी समितियाँ बनाने के महत्त्व पर प्रतिनिधिमण्डल ने जोर दिया है। लघु उद्योगो की परिभाषा मे आने वाले लघु उद्योग, मालिक तथा कर्मचारी इन नयी सहकारी समितियो के सदस्य होंगे। ये सहकारी समितियाँ कच्चे माल की सम्मिलित खरीद, सम्मिलित बिक्री, भडारन, माल की ढुलाई तथा तैयार माल की उत्कृष्टता के परीक्षण मिल-जुल कर करायेंगी। सहकारी समितियो की छोटी से छोटी इकाई जिले से कम होगी और बडी से बडी इकाई राज्य भर के लिए शीर्षस्थ सहकारी समिति या छोटी सहकारी समितियो का सघ होगा। यह भी सुझाव दिया गया है कि हर राज्य मे प्रत्येक उद्योग के लिए व्यापारिक संघ हो, जिनके मुख्य कामो मे सामान्य हित की बातें जैसे निर्मित होने वाली वस्तुओ के बारे मे गवेषणा, टैक्नीकल जानकारी जमा करके सदस्यो मे वितरण, व्यवसाय-प्रबन्ध मे मार्ग दर्शन, जन सम्पर्क कार्य एव सरकार से सम्पर्क रखना भी होगा।

वित्तीय सहायता—

वित्तीय सहायता के सम्बन्ध मे इस प्रतिनिधि दल ने यह मत व्यक्त किया कि

भारत सरकार द्वारा उठाए गए विभिन्न कदमो के बाद भी सरकारी वित्तीय संस्थाएं एव गैर सरकारी बैक अब भी सतर्कतापूर्ण एव अनुदार नीति अपना रहे है। लघु उद्योगो को अनुभव होने वाली दिक्कतें दूर करने के लिए प्रतिनिधि मण्डल ने निम्न उपाय सुझाये हैं —

(क) ऋण गारटी योजना अपनाना, जिसके अधीन प्रत्येक राज्यीय वित्त निगम के अ तर्गत एक ऋण गारटी निधि स्थापित की जाए, जिससे वित्त सस्थाओं द्वारा छोटे कारखानो को दिए जाने वाले ऋणों की गारटी दी जा सके।

(ख) एक ऋण बीमा योजना चालू करना, जिसके अनुसार मुख्य रूप से केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त धन से रिजर्व बैंक आफ इण्डिया मे एक ऋण बीमा निधि स्थापित की जाए। इस योजना के अनुसार ऋण बीमा योजना का एकमात्र बीमा कर्त्ता ऋण गारटी फड होगा और योजना तभी अमल मे आ सकेगी जब ऋण गारटी फड कर्जदार लघु उद्योग की तरफ से धन अदा कर चुका हो और कजदार से धन न ले सका हो।

(ग) प्रत्येक राज्य म एक राज्य सहकारिता बैंक या शीर्षस्थ सहकारिता बैंक स्थापित की जाए, जो छोटे पैमाने की औद्योगिक सहकारिता समितियो को ऋण दिया करे।

(घ) सरकारी ऋण राज्यो के वित्त निगमो की मार्फत दिए जाएं और

(ङ) स्टेट बैंक आफ इण्डिया की शाखाओं को राज्यो के वित्त निगमो के एजेण्ट के रूप मे प्रयोग किया जाए।

प्रतिनिधि मण्डल ने यह सिफारिश भी की है कि राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम के कर्मचारियो की सख्या बढायी जाय तथा उसका सगठन भी बढाया जाए। उसने हर राज्य मे लघु उद्योग निगम स्थापित करने का भी सुझाव दिया है, जो देश मे निर्मित मशीनें किराया-खरीद प्रणाली के अधीन दिलाएंगे, राज्य सरकारो द्वारा लघु उद्योगो मे बने माल की खरीद कराएंगे और लघु उद्योगो के लाभार्थ कच्चे माल के डिपो चलाएंगे। किराया खरीद प्रणाली के नियमो को उदार बनाने, कुछ सरकारी विभागो द्वारा केवल लघु उद्योगो से खरीदी जाने वाली वस्तुओं की सख्या बढवाने और इस तरह की खरीद अन्य विभागो जैसे—रेला, प्रतिरक्षा, छापाखाना आदि तक बढवाने की भी सिफारिश की गयी है।

शैल्पिक सुविधाएं—

शैल्पिक सुविधाओं के सम्बन्ध मे प्रतिनिधिमडल ने यह पाया है कि सरकार लघु उद्योगो का शैल्पिक स्तर ऊंचा करने की दृष्टि से तरह-तरह की सुविधाएं दे रही है। किन्तु उसके विचार से इनमे से कुछ सुविधाओं के प्रबन्ध मे कुछ सुधार किये जाने चाहिए। वर्तमान सुविधाओं के पूरक के रूप मे कुछ अतिरिक्त सुविधाओं की

व्यवस्था की जानी वांछनीय है। प्रतिनिधिमण्डल का विचार है कि यदि ये अतिरिक्त सुविधाएं और दी जा सकी तो वर्तमान सुविधाओ को और भी अधिक लाभ हो सकेगा। उसने सिफारिश की है कि लघु उद्योग सेवा संस्थानो तथा विस्तार केन्द्रो में अधिकाधिक मशीनें तथा औजार आने चाहिए तथा बढिया इन्जीनियर रखे जाने चाहिए। गवेषणा प्रयोगशाला तथा परीक्षण की सुविधाओ पर विशेष रूप से बल दिया गया है और अधिक सेवा-सस्थान खासकर हर प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र मे एक-एक संस्थान स्थापित करने की भी सिफारिश की गई है।

प्रतिनिधिमण्डल ने यह भी सुझाव दिया है कि शैल्पिक ज्ञान के व्यावसायिक प्रशिक्षण पर जोर दिया जाना चाहिए। उसने अनुरोध किया है कि सरकारी क्षेत्र के कारखानो मे शिक्षित कर्मचारियो को रखना चाहिए, जिसमे वे उन्नत शैल्पिक ज्ञान हासिल कर सकें।

विदेशी विशेषज्ञ--

प्रतिनिधिमण्डल ने इस बात की वकालत की है कि उपयुक्त मामलो मे विदेशी विशेषज्ञो को भारत मे काम करने के लिये आमन्त्रित किया जाए और भारतीय शिल्पज्ञो को विदेश भेजा जाए, लेकिन यह दोनो काम उचित रूप से योजना बनाकर किए जाएं, ताकि इनका अधिक से अधिक फायदा उठाया जा सके। प्रत्येक राज्य मे एक टैक्नीकल समिति स्थापित करने का भी सुझाव दिया गया है, जो स्थानीय प्राकृतिक साधनो का सर्वेक्षण करे और उनके विकास तथा उपयोग की सभावनाओ का अध्ययन करे। उसने प्रत्येक लघु उद्योग सेवा सस्थान मे व्यावसायिक शैल्पिक समिति स्थापित करने का भी सुझाव दिया है, जो व्यवसाय सम्बन्धी शैल्पिक समस्याओ को बराबर निबटाती रहे।

सहायक उद्योग

जापानी विशेषज्ञो ने सहायक उद्योगो के विकास के बारे मे भी सुझाव दिये है, जैसे राष्ट्रव्यापी आधार पर समान पुर्जे, सहायक सामान तथा कच्चे मालो का औद्योगिक मानदण्ड स्थापित किया जाय, सरकारी क्षेत्र के नये कारखानो से कहा जाय कि वे अपनी आवश्यकता के हिस्से तथा सहायक सामान लघु उद्योगो से ही खरीदे; राज्य सरकारें एवं लघु उद्योग सेवा-शालायें इन सहयोगी कारखानो का प्रत्यक्ष शैल्पिक मार्ग दर्शन करें; सरकारी तथा गैर सरकारी क्षेत्रो के वर्तमान बडे कारखानो का सहयोग कुशल सहायक कारखाने स्थापित करने मे प्राप्त किया जाय और औद्योगिक बस्तियो मे कारखानो को स्थान देने मे सहयोगी लघु उद्योगो को प्राथमिकता दी जाए।

लघु उद्योगो द्वारा निर्मित वस्तुओ का निर्यात बढाने की आवश्यकता स्वीकार करते हुए प्रतिनिधिमण्डल ने कहा कि लघु उद्योगो को पहले देश के बाजार पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखना चाहिए और उन्हे अपना माल तभी निर्यात करना चाहिए जब माल की किस्म मे उत्कृष्टता हासिल हो चुकी हो और उनके माल का मूल्य प्रति-

योगितापूर्ण हो। उसका कहना है कि हथकरघों तथा दस्तकारियों की चीजों का निर्यात करने की अच्छी गुंजाइश है। उसने कहा है कि विदेशी बाजारों में जन-सम्पर्क कार्य तथा बिक्री व्यवस्था सम्बन्धी गतिविधियाँ उसी प्रकार चलानी चाहिए जिस प्रकार 'जापानी निर्यात व्यापार पुनः प्राप्ति सगठन' चलाता है।

औद्योगिक आँकड़े—

प्रतिनिधिमण्डल ने सभी उद्योगों से सम्बन्धित पूरे आँकड़े रखने की आवश्यकता पर जोर दिया। उसने सिफारिश की है कि आयोजन की दृष्टि से अंक सकलन की सस्था का पूर्णतः पुनर्गठन किया जाय और औद्योगिक अंक सकलन निदेशालय वाणिज्य तथा उद्योग मन्त्रालय में स्थापित किया जाए।

प्रतिनिधिमण्डल ने यह सुझाव दिया है कि इण्डियन स्टैटिस्टीकल इंस्टीट्यूट को चाहिए कि वह योजना निर्माण तथा अंक सकलन सम्बन्धी सर्वेक्षणों को तालिकाबद्ध करने में सहायता दे तथा व्यवसायी एवं नौसिखिये अंकशास्त्रियों को प्रशिक्षण दे।

उत्कृष्टता-मानदण्ड—

लघु उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं के उत्कृष्टता सम्बन्धी मानदण्ड बनाये रखने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। प्रतिनिधिमण्डल ने सिफारिश की है कि जहाँ तक सम्भव हो, भारतीय मानक सस्था के प्रतिमान अपनाये जाएँ। लघु उद्योग सेवा सस्थान लघु उद्योगों को ठीक-ठीक कच्चा माल, परिचालक नियन्त्रण, प्रक्रिया नियन्त्रण तथा अन्य मानदण्ड सम्बन्धी सलाह दें, जिससे अपेक्षित मानदण्ड हासिल किये जा सकें।

STANDARD QUESTIONS

1. What steps have been taken by the Government of India to encourage our cottage and small scale industries ?
2. Discuss carefully the Indian Cottage Industries under (a) First Five year Plan and (b) Second Five year Plan.
3. Comment upon the suggestions of the Japanese Delegation for the development of Indian Cottage Industries.

अध्याय ६०

अन्तर्राष्ट्रीय आयोजन मण्डल, कर्वे-समिति की रिपोर्ट आदि

(International Plann'ng Team, Karve Comm'ttee Report, Etc.)

(१) अन्तर्राष्ट्रीय आयोजन मण्डल

प्रारम्भिक—

सन् १९५३ मे फोर्ड फाउन्डेशन (Ford Foundation) की सहायता से भारत सरकार ने लघु उद्योगो की उत्पादन सम्बन्धी समस्याओ एव उनको रोजगार प्रदान करने की क्षमता के अध्ययन के लिये विदेशी विशेषज्ञो के एक दल को आमन्त्रित किया था। इस अन्तर्राष्ट्रीय आयोजन मण्डल (International Planning Team) ने देश के समस्त लघु उद्योगो का सर्वेक्षण किया। इस मण्डल की रिपोर्ट सन् १९५४ मे प्रकाशित हुई। रिपोर्ट मे इस बात पर बल दिया गया था कि भारत में लघु उद्योगो की धीमी प्रगति का प्रधान कारण त्रुटिपूर्ण उत्पादन और प्रबन्ध है। इन उद्योगो के विकास की शिथिलता का मुख्य कारण निजी क्षेत्र मे आवश्यक प्रेरणा का अभाव है। इसके अतिरिक्त मण्डल ने यह भी बतलाया कि राजकीय सहायता एव सरकारी खरीद पर अत्यधिक निर्भरता, उत्पादन की रूढिवादी रीतियाँ, विपणन की असुविधायें, साख व बैंकिंग की समुचित सुविधाओ का अभाव, आयोजन का अभाव आदि भी इनके लिये कम उत्तरदायी नही हैं। "युक्तिकरण एवं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को रोकना, केवल तर्कहीन ही नही है, वरन् इससे भारतीय लघु उद्योगो मे गतिहीनता तथा प्रतिगामिता को आश्रय देना होगा।"* अन्तर्राष्ट्रीय आयोजन मण्डल की समिति मे स्थायी औद्योगिक विकास के हेतु निजी प्रेरणा एव पूँजी को अत्यधिक प्रोत्साहित करना बहुत आवश्यक है।

---

* "To prevent rationaliz tion to stop the process of modernization is not only illogical. it will force stagnation and retrogression of Indian small industries."

—International Planning Team.

सुझाव—

भारतीय लघु उद्योगो के विकास के लिये आयोजन मण्डल ने निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये :—

(१) देश के विभिन्न भागो मे चार बहु उद्देशीय औद्योगिक संस्थायें (Multi-purpose Institutes of Technology) खोली जायें। यह संस्थाये छोटे-छोटे उद्योगो को व्यावसायिक प्रबन्ध, वित्त तथा विक्रय सम्बन्धी परामर्श दिया करेंगी।

(२) नमूना सम्बन्धी एक राष्ट्रीय विद्यालय (National School of Design) की स्थापना की जाय।

(३) लघु उद्योगो की बनायी हुई वस्तुओ की समुचित विक्रय व्यवस्था के हेतु एक विक्रय सेवा निगम (Marketing Service Corporation) की स्थापना की जाय।

(४) एक लघु उद्योग निगम (Small Scale Industries Corporation) की स्थापना की जाय।

(५) उत्पादन एव प्रशिक्षण के लिए एक कारखाना और प्राविधिक विकास के लिए प्रदर्शनार्थ छोटे-छोटे केन्द्रो की स्थापना की जाय।

(६) दो निर्यात-विकास कार्यालय (Export Promotion Offices) एक उत्तरी अमरीका मे तथा दूसरा योरोप मे खोले जाएँ।

राजकीय कार्यवाही—

भारत सरकार ने ऊपर की सभी सिफारिशो मे से चार बहु उद्देश्यीय प्रौद्योगिक संस्थान, एक विक्रय सेवा निगम तथा एक लघु उद्योग निगम सम्बन्धी सिफारिशो को स्वीकार कर लिया है। इन सभी संस्थाओ की स्थापना भी की जा चुकी है एव ये बडी सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

(२) कर्वे समिति की रिपोर्ट

प्रारम्भिक—

द्वितीय पंच-वर्षीय योजना प्रारम्भ करने के पूर्व कुटीर एवं लघु उद्योगो की समस्याओ पर गम्भीरता से विचार करके उसके समाधान के हेतु व विकास की एक योजना प्रस्तुत करने के लिये योजना आयोग ने प्रो० डी० जी० कर्वे की अध्यक्षता मे एक समिति नियुक्त की। इस समिति को 'ग्राम एव लघु उद्योग' (द्वितीय-पंच-वर्षीय योजना) समिति (Village and Small-Scale Committee) कहते हैं। इस समिति से उद्योग-क्रम और जहाँ भी सम्भव हो राज्य क्रम मे एक ऐसी योजना बनाने को कहा गया जो कि पूर्ण रूप से द्वितीय पंच वर्षीय योजना मे ग्रामीण एवं लघु-उद्योगो के विकास के साधनो मे प्रयुक्त की जा सके।

उद्देश्य—

कर्वे समिति ने अपनी सिफारिशों को प्रस्तुत करते हुए निम्नलिखित उद्देश्यों को अपने सामने रखा था :—

(१) द्वितीय पंच-वर्षीय योजना की अवधि मे जहां तक हो सके, प्रौद्योगिक बेरोजगारी (Technological Unemployment) को दूर करना, विशेषकर परम्परागत कुटीर उद्योगो मे।

(२) द्वितीय पंच-वर्षीय योजना की अवधि मे विभिन्न ग्रामीण एवं लघु-उद्योगो के माध्यम से अधिक से अधिक व्यक्तियो को रोजगार देना, और

(३) विकेन्द्रित समाज के ढांचे पर तीव्र गति से आर्थिक उन्नति के लिए आधार का निर्माण करना।

ग्राम एवं लघु उद्योग अथवा कर्वे कमेटी के अनुसार भारत मे कुटीर एवं लघु-उद्योगो की बहुत दिनो से उपेक्षा होती आ रही है। यद्यपि प्रथम पंच-वर्षीय योजना काल मे इन उद्योगो के विकास के लिये प्रयत्न किए गए, परन्तु उन्हे अधिक सन्तोष-जनक या पर्याप्त नही कहा जा सकता। प्रथम योजनावधि मे इनके विकास के लिये ६ विशिष्ट मण्डलो की स्थापना की गई थी तथा केन्द्र द्वारा इनके विकास के लिए ३३'६ करोड़ रु० व्यय किये गये। किन्तु समिति के मतानुसार इन उद्योगो की स्थिति को देखते हुए अभी तक जो कुछ किया गया वह सागर मे एक बूंद के समान था। अतः कर्वे समिति ने इस बात की जोरदार सिफारिश की कि द्वितीय योजनावधि मे उन लघु एवं कुटीर उद्योगो के विकास पर पूरा जोर दिया जाय जो दैनिक आवश्यकता की वस्तुओ का निर्माण करते है, जैसे सूती व ऊनी कपडे, हाथ द्वारा कुटे हुए चावल, वनस्पति तेल, गुड, खाँडसारी, दियासलाई, जूते आदि। इनके अतिरिक्त रेशम के कीडे पालना, रेशम बुनना, हस्तकरघा उद्योग, नारियल की जटा कातना तथा बुनना आदि उद्योगो के विकास पर भी समिति ने काफी जोर दिया।

कर्वे समिति की सिफारिशें—

कर्वे समिति ने लघु एवं कुटीर उद्योगो के विकास के लिये योजना आयोग के सम्मुख अनेक सुझाव प्रस्तुत किये, इनमे से कुछ प्रमुख सुझाव निम्नलिखित हैं :—

(१) सहकारी समितियो को प्रोत्साहन—राज्य सरकारो को चाहिए कि सहकारी समितियो को अधिक से अधिक मात्रा मे वित्त एवं अनुदान प्रदान करने की व्यवस्था करें, जिससे ये ग्रामीण एवं लघु उद्योगों की अधिक से अधिक सहायता कर सके। समिति के मतानुसार रिजर्व बैंक तथा स्टेट बैंक भी इन उद्योगो को अनेक रूपो से सहायता प्रदान कर सकते हैं। समिति ने इस बात की भी सिफारिश की कि जब तक इन उद्योगो के सहायतार्थ संस्थागत रूप मे ऋण की व्यवस्था न हो जाय, तब तक अखिल भारतीय प्रमंडलों, राज्य विभागों तथा राज्य वित्त निगमो को इन्हें आवश्यक सहायता प्रदान करते रहना चाहिए।

(२) वृहत उद्योगों के उत्पादन पर प्रतिबन्ध—ग्रामीण एवं लघु उद्योग को विस्तार का अवसर प्रदान करने के लिए समिति ने इस बात की भी सिफारिश की कि अनुरूप बड़े पैमाने के उद्योगों के उत्पादन की अधिकतम सीमा निश्चित कर दी जाए, जिससे अधिक होने वाली माँग की पूर्ति लघु उद्योगों द्वारा निर्मित पदार्थों से ही की जाय।

(३) लघु एव ग्राम उद्योगो की वस्तुओं का न्यूनतम मूल्य निर्धारण—सहकारिता के आधार पर सगठित लघु एव ग्राम उद्योगो की वस्तुओ का न्यूनतम मूल्य सरकार द्वारा निश्चित कर देना चाहिये तथा इस मूल्य से कम पर बेचने मे जो घाटा हो उसे राज्य द्वारा पूरा करना चाहिये।

(४) बृहत उद्योगो पर उत्पादन शुल्क—कर्वे समिति ने यह भी सुझाव दिया कि वृहत उद्योगो पर एक विशेष प्रकार का उत्पादन शुल्क लगाया जाये, जिससे प्राप्त आय लघु एव कुटीर उद्योगो के सहायतार्थ व्यय की जाय। इस प्रकार के शुल्को के निम्नलिखित तीन उद्देश्य हो सकते हैं :—

(अ) लघु उद्योगो के विकास के लिये धन एकत्रित करना ;

(ब) मूल्य वृद्धि के फलस्वरूप बडे उद्योगो को प्राप्त अधिक लाभ को ले लेना, और

(स) छोटी मात्रा मे उत्पादन करने वालो के हित मे मूल्य मे अन्तर निश्चित करना।

(५) लघु एव ग्रामीण उद्योगों के हेतु पृथक मत्रालय—कर्वे समिति ने केन्द्र मे लघु एव ग्रामीण उद्योग के लिये एक पृथक मत्रालय की भी स्थापना का सुझाव दिया था।

समिति ने सुझाव दिया है कि ग्रामीण उद्योगो का आधुनिकीकरण और निरन्तर विकास तभी हो सकता है, जबकि छोटी-छोटी औद्योगिक इकाइयो का बडे-बडे गाँव व छोटे-छोटे कस्बो मे देश के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक जाल सा बिछा दिया जाये। इनके साथ ही साथ आवश्यक सेवाओ की भी व्यवस्था की जानी चाहिये। उद्देश्य यह है कि समस्त औद्योगिक गतिविधियो का मूल आधार गाँव हो—"प्रगतिशील ग्राम्य अर्थ व्यवस्था के ऊपर आधारित उद्योग का पैरामिड।" रिपोर्ट मे इन उद्योगों के महत्त्व के सम्बन्ध मे लिखा है कि दस्तकारी का महत्त्व अपने उत्पादन की मात्रा और मूल्य से कहीं अधिक है, क्योंकि उनसे देश की पुरातन सास्कृतिक परम्पराओ का ज्ञान होता है और यह निर्माणात्मक तथा कलात्मक रुचि का आदर्श है। अतः दस्त-

कारी का विकास न केवल कुछ दस्तकारो को इनके परम्परागत धन्धो मे पुनर्स्थापित करने का एक विषय है, वरन् लोगो के परम्परागत कला को जीवित रखने तथा निर्माणात्मक सुविधाओ और वशानुगत निपुणताओ को उदार अवसर भी प्रदान करना है।*

राजकीय कार्यवाही—

कर्वे समिति की सिफारिशो के आधार पर द्वितीय पच-वर्षीय योजना मे कुटीर एव लघु उद्योगो के विकास के लिये एक विस्तृत कार्य-क्रम तैयार किया गया तथा योजना काल मे इस मद मे २६० करोड रुपये व्यय की सिफारिश की। परन्तु योजना आयोग ने द्वितीय योजना काल मे कुटीर एव लघु उद्योगो के पुनरुत्थान के लिये केवल २०० करोड रु० व्यय का आयोजन किया।

आलोचना—

लघु एव कुटीर उद्योगो के विकास की दिशा मे कर्वे समिति ने जो सुझाव प्रस्तुत किये वे सचमुच सराहनीय हैं। किन्तु फिर भी कर्वे समिति की सिफारिशो की तीव्र आलोचना की गई है। यह निश्चय है कि लघु एव ग्रामीण उद्योगो मे लगे हुए लाखो व्यक्तियो की कार्यक्षमता, आय तथा जीवन स्तर मे वृद्धि से राष्ट्रीय हित मे अवश्य वृद्धि होगी, परन्तु परम्परागत उद्योगो मे कार्य करने वाले श्रमिको को उनके घर पर ही काम देने से, (जिसकी सिफारिश समिति ने अपनी रिपोर्ट मे की है) श्रमिको की गतिशीलता मे तो कमी होगी ही, साथ ही उनको कुशल प्रविधियो को अपनाने के लिये उचित प्रोत्साहन भी नही मिलेगा। कुटीर एव लघु उद्योगो के विकास के लिये भी कुशल प्रविधियो को अपनाना जरूरी हो जाता है, अन्यथा दीर्घकाल मे इन उद्योगो को कठिन प्रतियोगिता का सामना करना पडेगा। कर्वे समिति ने उपभोक्ता उद्योगो की अधिकतम उत्पादन की सीमा निर्धारित करने की सिफारिश की है, जिसका उद्देश्य अतिरिक्त माँग को लघु उद्योगो की ओर प्रेरित करना है। इसके अतिरिक्त लघु एव ग्राम उद्योगो के विकासार्थ विपणन (Marketing), आवश्यक प्रसाधनो की पूर्ति एव वित्तीय सहायता आदि के लिये सिफारिश की गई है। किन्तु प्रो० बी० के० मदन (Prof B. K Madan) के अनुसार इस प्रकार की सिफारिश निश्चय ही अप्रयोगात्मक एव अव्यवहारिक है, क्योकि इसको कार्यान्वित करने के लिये बहुत

---

* 'Handicrafts have far greater importance than is indicated by the volume or value of their production because they embody ancient cultural traditions of the country and are expression of its creative and artistic genius Development of handicraft is therefore, not merely a matter of rehabilitating a few craftsmen in their ancestral trades but of keeping alive traditional art and giving free scope to the creative faculties and inherited skill of the people' (Para 19 of the Karve Committee Report.)

अधिक धन राशि की भी आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त बडे उद्योगो के उत्पादन की मात्रा निर्धारित कर देने से लघु उद्योगो मे अकुशल प्रविधि के प्रयोग के अस्थायी बनने की आशका है। कर्वे समिति ने लघु एव ग्रामीण उद्योगो के आधुनिकीकरण व वैज्ञानिकन की सिफारिश इसी शर्त पर की है कि इनके फलस्वरूप बेरोजगारी मे वृद्धि न हो। परन्तु गम्भीरता से विचार करने पर यह पता लगता है कि यह तर्क पूर्णतया निराधार है। आधुनिकीकरण का स्वाभाविक परिणाम श्रमिको की छटनी होती है। इससे देश के दीर्घकालीन आर्थिक विकास को निश्चय ही आघात पहुँचेगा।

अन्त मे यह कहा जा सकता है कि किंचित आलोचनाओ के होते हुए भी, कर्वे समिति की सिफारिशो ने कुटीर, ग्राम्य एव लघु उद्योगो की समस्याओ को सुलझाने मे अच्छा मार्ग दर्शन किया है।

STANDARD QUESTIONS

1 Briefly summarise the recommerdations of the Karve Committee Report.

2 Write a note on the recomendations of International Planning Team

अध्याय ६१

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम

(National Small Industries Corporation)

प्रारम्भिक—

भारत की वर्तमान आर्थिक परिस्थितियो के अन्तर्गत यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यदि हम अपने राष्ट्र का सतुलित आर्थिक विकास करना चाहते हैं तो वृहत, कुटीर एव लघु सभी प्रकार के उद्योगो की उन्नति होनी चाहिये। उद्योगो की इन तीन श्रेणियो मे वृहत उद्योग सबसे अधिक शक्तिशाली है एव प्राय. पूँजीपतियो एवं कुशल प्रबन्धको द्वारा उनके प्रचलन के कारण इनको अधिक कठिनाइयो का सामना नही करना पडता। कुटीर उद्योग अत्यन्त निम्न स्तर के होने के कारण भारत सरकार के लाडले पुत्र हो रहे हैं। अब प्रश्न है लघु उद्योगो के विकास का। देश के आर्थिक विकास मे लघु उद्योगो का कुल महत्त्वपूर्ण भाग नही है। दुर्भाग्यवश, अभी तक इनके विकास के लिए कोई सक्रिय प्रयत्न नही किया गया। हाँ, गत कुछ वर्षों से भारत सरकार का ध्यान इनकी ओर आकर्षित हुआ है। हमारी जनप्रिय सरकार ने लघु उद्योगो के पुनरुत्थान के लिए अनेक अध्ययन मण्डल आमन्त्रित किये एवं उनकी सिफारिशो के आधार पर रचनात्मक कदम भी उठाए गए। लघु उद्योगो के विकास के लिये भारत सरकार ने अभी तक जो कार्य किये हैं उनमे सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (N. S. S. I .C.) की स्थापना है।

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम की स्थापना व उद्देश्य—

फोर्ड फाउन्डेशन दल के प्रस्ताव के अनुसार, लघु उद्योगो को विपणन एवं यन्त्र सम्बन्धी सुविधायें प्रदान करने के उद्देश्य से फरवरी सन् १९५५ मे राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम की स्थापना की गई। यह निगम भारत सरकार का निजी प्रमण्डल (Private Company) है। इस निगम के द्वारा ऐसे लघु उपक्रमो को सहायता प्रदान की जाती है, जिनमे ५ लाख रु० से कम की पूँजी का विनियोग हुआ हो तथा शक्ति द्वारा प्रचलित उद्योगो में अधिक से अधिक ५० एवं बिना शक्ति द्वारा प्रचलित उद्योगो मे अधिक से अधिक १०० व्यक्ति काम करते हो।

इस निगम का समामेलन भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत १० लाख

रु० की अधिकृत पूँजी से किया गया। इसकी सम्पूर्ण पूंजी भारत सरकार द्वारा प्रदान की गई है। अब इसकी पूँजी को ४० लाख रु० तक करने का प्रस्ताव है।

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, लघु उद्योग प्रमण्डल (Small Scale Industries Board) के निकटतम सम्पर्क मे कार्य कर रहा है। यह छोटे छोटे उद्योगो को किराया खरीद प्रणाली (Hire Purchase System) के आधार पर यन्त्र प्रदान करता है। हायर परचेज की शर्त इस प्रकार है—साधारण प्रकार के यन्त्रो के लिये प्रारम्भ में मूल्य का २० प्रतिशत तथा विशेष प्रकार के यन्त्रों के लिये मूल्य का ४० प्रतिशत देना पड़ता है। ब्याज की दर ४४% से ५% तक होती है। राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम भविष्य मे लघु उद्योगो की वस्तुओं के विक्रय की भी व्यवस्था करेगा। यह निगम लघु उद्योगो को बैंकों द्वारा दिये गये ऋणो की प्रत्याभूति भी दे सकता है।

प्रबन्ध—

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम का प्रबन्ध भारत सरकार द्वारा मनोनीत (nominated) शासकीय सदस्यो की एक संचालक परिषद द्वारा होता है। सचालको की इस परिषद का मुख्य कार्य सामान्य नीति का निर्धारण करना एव व्यय की योजनाओ पर विचार करना है। आवश्यकतानुसार शासन की आज्ञा प्राप्त करने के लिए भी प्रस्ताव किये जाते हैं। प्रबन्ध सचालक, जो कि निगम का प्रमुख अधिकारी है, अपने ४ विभागीय अध्यक्षों की सहायता से उस नीति को कार्यान्वित करता है।

निगम के विभाग—

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम के पाँच विभाग हैं—(१) स्टोर क्रय विभाग; (२) विपणि विभाग, (३) किराया खरीद विभाग, (४) औद्योगिक क्षेत्र विभाग; तथा (५) प्रशासन एव लेखा-जोखा विभाग।

निगम के कार्यों का ब्यौरा—

प्रारम्भ मे राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम की स्थापना लघु उद्योगों को शासकीय क्रय सस्थाओ से आर्डर दिलवाने के लिये की गई थी। परन्तु आजकल इसका कार्य-क्षेत्र बढ गया है। यह शासकीय अनुबन्ध (Government Contracts) लेकर उनकी पूर्ति लघु उद्योगो से कराता है। यह उनको प्रत्यक्ष अनुबन्ध की प्राप्ति मे भी सहायता करता है। नवम्बर सन १९५९ तक इसकी सूची मे ५,१५२ ऐसे लघु उद्योग थे जिनको इसने शासकीय आर्डर दिलवाया।

शासकीय क्रय विभाग—

शासकीय क्रय विभाग राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम के कार्यों का प्रमुख केन्द्र है। यह विभाग उन वस्तुओ की सूची तैयार करता है, जिनका निर्माण लघु उद्योगो द्वारा किया जा सकता है। इस निगम की सहायता से अभी तक लघु उद्योगो को जितनी राशि के अनुबन्ध मिले, उसका अनुमान निम्न आंकडो से लगाया जा सकता है—

वर्ष	अनुबन्ध की मूल्य राशि रुपये
१९५५-५६	४,६७,७५०
१९५६-५७	११,१९,३५३
१९५७ ५८	६२,१४,९६४
१९५८-५९	२,२६,१२,३३७

स्टेट बैंक की सहायता से लघु उद्योगो को वित्तीय सहायता भी प्रदान की जाती है। इसकी प्रादेशिक सेवा सस्थायें तानिक सहायता भी देती हैं।

विपणि विभाग—

लघु उद्योगो को अपने द्वारा निर्मित पदार्थ को बेचने मे प्राय. घोर असुविधा का सामना करना पडता रहा है। उनके व्यापार चिन्हो (Trade Mark) से भी बहुत कम लोग परिचित हैं। अतएव डा० लिंकन क्लार्क के प्रस्तावानुसार एक चल वाहन (*Movi'e Van*) *दिल्ली केन्द्र से प्रारम्भ किया गया। कुछ समय पश्चात्*, लघु उद्योग पदार्थों को अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास से भी ऐसे ही वाहन चलाये गये। इससे वस्तुओ के प्रचार, प्रसार, विज्ञापन एव विपणि शोध (Market Re~earch) मे बडी सहायता मिलती है।

थोक-डिपो—

देश के जिन भागो मे बहुत अधिक सख्या मे इसी प्रकार के उद्योग होते हैं वहाँ निगम द्वारा थोक डिपो (Whole Sale Depots) खोले गये है। उदाहरण के लिये, अलीगढ मे ताला भडार, आगरा मे जूता भडार, खुर्जा मे मिट्टी बरतन भडार, बम्बई मे रग भडार, कलकत्ता मे हौंजरी वस्तु भडार आदि थोक डिपो की स्थापना की गई। इनकी कार्य प्रगति सचमुच बडी उत्साहवर्द्धक है।

सहायक निगमों की स्थापना—

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम के विपणि एव अन्य सहायक कार्यों को विकेन्द्रित करने के उद्देश्य से ४ सहायक निगमो की स्थापना की गई है—पूर्वी (कलकत्ता में), पश्चिमी (बम्बई म), उत्तरी (दिल्ली मे), और दक्षिणी (मद्रास मे)। इनकी अधिकृत पूँजी १० लाख रु० तथा निगमित पूँजी २५ लाख रु० है।

सन १९५९ म निगम ने दिल्ली तथा देश के अन्य औद्योगिक नगरो मे एक औद्योगिक डिजायन प्रदर्शनी का भी आयोजन किया, जिसका नाम था—"Design To-day in Americ1 & Europec"

विपणि विभाग का निर्यात कक्ष—

विपणि विभाग का यह कक्ष (Export Section) विदेशो से व्यापार दिलवाने मे सक्रिय सहायता करता है। उदाहरण के लिये रूस तथा अनेक अन्य देशो

से जूतों का व्यापार तथा न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया आदि देशो से अन्य विभिन्न प्रकार की वस्तुओ के आदेश प्राप्त करने मे इसने लघु उद्योगो को बडी सहायता दी है।

औद्योगिक बस्तियाँ—

लघु उद्योगों के विकास के लिये सरकार द्वारा चालू की गई विभिन्न योजनाओ मे से औद्योगिक बस्तियो की योजना सबसे अधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई है। बहुत से छोटे कारखानो के पास अपनी इमारतें बनाने के लिये पर्याप्त वित्तीय साधन नही हैं और जहाँ वे धन इकट्ठा कर भी लेते है वहाँ पानी और शक्ति आदि की सुविधाएँ प्राप्त करने और इमारतो के नक्शे मजूर कराने आदि मे काफी विलम्ब होता है और उन्हें कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है। छोटे उद्योगपतियों को इस योग्य बनाने के लिये कि वे इन कठिनाइयो को दूर कर सकें और उनमे सहकारिता की भावना को प्रोत्साहन देने के लिये सरकार ने देश भर म उपयुक्त डिजाइन वाले कारखानो की इमारतो सहित औद्योगिक बस्तियो का एक जाल सा बिछा दिया है। इन बस्तियो मे छोटे कारखानो को अधिक सख्या मे एक स्थान पर केन्द्रित कर दिया है और वे अपना उत्पादन उचित कार्य की दशाओ मे कर सकते है। द्वितीय पचवर्षीय योजना की अवधि मे १२ करोड रुपयो की कुल लागत वाली १२० से अधिक ऐसी औद्योगिक बस्तियो के लिए स्वीकृति दी जा चुकी है और उनमे से एक तिहाई से अधिक तैयार हो चुकी हैं, जिनमें कारखाने चलाये जा रहे है। अन्य योजनाएँ भी विभिन्न अवस्थाओ मे है। जब सब औद्योगिक बस्तियाँ तैयार हो जायेंगी तो आशा है कि इनमे विभिन्न आकार के ४,००० कारखाने चलाये जा सकेंगे, जिनसे करीब ५०,००० व्यक्तियो को रोजगार मिलेगा।

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम द्वारा विपणन सहायता—

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम का एक प्रमुख उद्देश्य छोटे औद्योगिक कारखानो को विपणन सम्बन्धी सहायता प्रदान करना रहा है। यह स्पष्ट है कि भारत जैसे विशाल देश मे किसी भी एक अकेले सगठन के लिये छोटे कारखानो के उत्पादनो की बिक्री व्यवस्था की जिम्मेदारी लेना न तो सम्भव ही है और न आवश्यक ही। ठीक किस्म की वस्तुयें बनाने तथा बाजार मे उनकी माँग बनाये रखने की जिम्मेदारी व्यक्तिगत उद्योगपतियो की ही रहती है। परन्तु उद्योगपतियो को उनकी वस्तुओं की बिक्री मे सहायता देने के लिये निगम ने कुछ सम्वर्द्धनात्मक उपाय किये हैं। निगम द्वारा चलायी गयी विपणन सहायता सम्बन्धी योजनाओ मे एक महत्त्वपूर्ण योजना यह है कि सरकार के विभिन्न अधिकरणो द्वारा खरीदे जाने वाले माल का बडा भारी भाग छोटे उद्योगपतियो को उपलब्ध कराया जाय। इस देश मे उपभोक्ता की वस्तुओ की सबसे बडी खरीदार केवल सरकार ही है और छोटे उद्योगपति सरकारी अभिकरणो द्वारा माँग किये जाने वाले विविध प्रकार के माल को तैयार कर सकते हैं। चूँकि सभी प्रकार की सरकारी खरीद प्रतिस्पर्धात्मक भावो के उद्धरणो पर आधारित है अत. टैण्डरो के द्वारा ठेका देने की प्रक्रिया को छोडा नही जा सकता। फिर भी

छोटे कारखानो द्वारा तैयार की जाने वाली लगभग २७ प्रकार की वस्तुयें छोटे कारखानो से ही खरीदे जाने के लिये रक्षित कर दी गयी हैं। छोटे बडे दोनो प्रकार के कारखानो द्वारा बनायी जाने वाली वस्तुओ के बारे में, सम्भरण और निपटान का महा-निदेशालय बडे उद्योगो द्वारा स्वीकृत उद्धरण के मुकाबले छोटे उद्योगो के उद्धरण १५ प्रतिशत अधिक होने पर भी उन्ही को प्राथमिकता देता है। ऐसी वस्तुओ के विशिष्ट विवरण देने वाले टेण्डर फार्म प्रमाणित छोटे कारखानो को निशुल्क दिये जाते हैं। सरकार से आर्डर प्राप्त करने वाले छोटे कारखानो को लघु उद्योग सेवा सस्थाओ द्वारा प्राविधिक सलाह और स्टेट बैंक द्वारा ऋण दिये जाते हैं। इस योजना के अन्तर्गत छोटे कारखानो को स० नि० म० नि० (डी० जी० एस० एण्ड डी०) से ७ ८३ करोड रुपये के सविदा मिले हैं।

छोटे उद्योगो के उत्पादनो के निर्यात के लिये निगम को भी काफी आर्डर मिल रहे हैं। जूनो के आर्डर को पूरा करना इस क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण सफलता है। पिछले कुछ वर्षों मे निगम द्वारा पूरे किये गये इस प्रकार के आर्डरो का मूल्य लगभग ४० लाख रु० है।

किराया-खरीद प्रणाली के आधार पर मशीने—

छोटे कारखानो को किराया-खरीद प्रणाली के आधार पर मशीनो का सम्भरण करना भी राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम का एक महत्वपूर्ण कार्य रहा है। आवेदको को मशीन की कीमत का २० प्रतिशत भाग बयाना के रूप मे चुकाना होता है और शेष कीमत आसान किस्तो मे ५-७ वर्षो मे चुकायी जा सकती है। इस योजना के शुरू होने के समय से अक्तूबर सन् १९६० तक की अवधि मे लगभग १४ करोड के मूल्य की मशीनो के लिये प्राप्त हुये आवेदन पत्रो की सख्या ३६९ थी। अल्प साधन वाले छोटे औद्योगिको के लिये यह योजना बडी ही लाभदायक सिद्ध हुई है।

भारत मे छोटे उद्योग विभिन्न किस्म की वस्तुएं तैयार करते हैं, जैसे, कृषि उपकरण, भवन निर्माण मे काम आने वाली चीजें, बाइसिकले तथा उनके हिस्से, सिलाई की मशीनें तथा उनके हिस्से, खेल का सामान, साबुन, रगलेप तथा वार्निश, फाउनटेनपेन, मौजा-बनियानें, शल्य चिकित्सा के औजार, डीजल तथा तेल से चलने वाले इजन, चमडे की वस्तुयें, घरेलू वैद्युत उपकरण, वैज्ञानिक शीशे का सामान तथा उपकरण, छोटी मशीन तथा मशीनी औजार आदि। आयात पर प्रतिबन्ध लग जाने से छोटे औद्योगिको को अधिकाधिक वस्तुयें बनाने के लिये प्रोत्साहन मिला है। ये बडे क्षेत्र के कारखानो द्वारा काम मे लाये जाने वाले कई किस्म के हिस्सो और सहायक वस्तुओ को भी तैयार करते है। सरकार द्वारा चलाई गई विभिन्न प्रकार की योजनाओ की सबसे अधिक उत्साहवर्द्धक बात यह है कि छोटे उद्योग इन सुविधाओ का पूरा लाभ उठाने के लिये अग्रसर हैं। इस बात ने सरकार को तीसरी योजना की अवधि मे १०७ करोड रु० परिव्यय करने की व्यवस्था करने के लिये प्रोत्साहित किया है, जो कि दूसरी योजना मे निर्धारित की गयी राशि से लगभग दुगनी है।

STANDARD QUESTIONS

1. Write an essay on the National Small Scale Industries Corporation, under the following captions :—
   (a) Its Origin.
   (b) Its Objects,
   (c) Management and sub divisions.
   (d) Progress & present position.

अध्याय ६२

सूती वस्त्र मिल उद्योग

(Cotton Mill Industry)

प्रारम्भिक—

भारत का सूती वस्त्र मिल उद्योग देश के अतीत का गौरव, वर्तमान और भविष्य का सन्देह, परन्तु सदैव आशा की वस्तु रहा है। यह भारत का सबसे प्राचीन उद्योग है, किन्तु परिमाण एव गति की दृष्टि से इसके विकास मे विशेष रूप से विगत शताब्दी का समय अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। आजकल कृषि उद्योग के बाद सूती वस्त्र उद्योग ही देश के सबसे अधिक व्यक्तियो को जीविका प्रदान करता है। इस उद्योग मे ८·६ लाख श्रमिक लगे हुए है तथा १२२ करोड़ रुपये की पूँजी लगी हुई है। सन् १९६१ के प्रारम्भ मे, हमारे देश मे ४८३ सूती वस्त्र मिले थी, जिनमे १३५·५ लाख स्पिण्डिल्स तथा लगभग २ लाख लूम्स (जिनमे १५,००० स्वचालित लूम्स भी सम्मिलित हैं) लगे हुए थे। आज यह उद्योग ४०० करोड रु० की उत्पत्ति कर रहा है। सूती वस्त्र के परिमाण को ध्यान मे रखते हुए यह विश्व मे तीसरे दर्जे का उद्योग है और सूत उद्योग मे इसका विश्व मे द्वितीय स्थान है। निम्नलिखित विवरण से सूती वस्त्र मिल उद्योग का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है :—

उद्योग का महत्त्व—

(१) सूती वस्त्र मिल उद्योग देश के विभिन्न राज्यो मे स्थापित लगभग ७५ नगरो मे फैला हुआ है।

(ii) यह राष्ट्र का सबसे अधिक संगठित उद्योग है, जिसकी प्रदत्त पूँजी लगभग १२२ करोड रु० है, जो कि देश की कुल कम्पनियों मे विनियोगित प्रदत्त पूँजी की १२% है।

(iii) देश के समस्त औद्योगिक उत्पादन का ३५% भाग केवल सूती वस्त्र मिल उद्योग से प्राप्त होता है।

(iv) करो व चुगी आदि के रूप मे सूती वस्त्र मिल उद्योग का अशदान लगभग १०० करोड रु० वार्षिक है।

(v) कपास, जिसे प्रायः 'सफेद स्वर्ण' (White Gold) की संज्ञा दी जाती है और जो इस उद्योग का प्रमुख कच्चा माल है, के उत्पादन मे देश के अनेक कृषको व व्यवसायियो को रोजगार मिला हुआ है। इसके अतिरिक्त वस्त्र मिल उद्योग (अर्थात् मिलो व कारखानो मे) से भी अनेक श्रमिको व कर्मचारियो को मजदूरी व वेतन प्राप्त होता है। मिल उद्योग मे लगभग ८·६ लाख श्रमिको को रोजगार मिला हुआ है। यह उद्योग मजदूरी के रूप मे प्रति वर्ष करीब १०० करोड रु० वितरित करता है एव प्रत्येक श्रमिक को औसतन १,६०० रु० प्रति वर्ष प्राप्त होता है।

(vi) गत तीन वर्षों मे, भारतीय वस्त्र मिलो ने लगभग ५० लाख देशी व विदेशी गाँठो का प्रति वर्ष उपभोग किया, जिनका मूल्य २०० करोड रु० से भी अधिक होता है।

(vii) हैण्डलूम उद्योग, जो स्वय करीब १५ लाख कारीगरो को रोजगार देता है, अपनी सूत सम्बन्धी आवश्यकताओ को मिल उद्योग से ही पूरी करता है। इससे भी मिल उद्योग का महत्त्व स्पष्ट है।

(viii) भारतीय सूती वस्त्र मिले अनुमानत. १६ करोड रु० वार्षिक के मूल्य का कोयला, लकडी, तेल व विद्युत शक्ति प्रयोग करती हैं।

(ix) सूती वस्त्र मिल उद्योग अनेक सहायक उद्योगो का भी भरण पोषण करता है, जिनमे विविध प्रकार के पदार्थ बनाए जाते है, जैसे बॉबिन, स्पिण्डिल्स, हील्ड्स, रीड, रासायनिक पदार्थ, पैंकिंग का सामान, आदि। इन सब पदार्थों का मूल्य लगभग ४१ करोड रु० वार्षिक होता है।

(x) चाय व जूट को छोडकर, सूत व सूती माल के निर्यात से देश को सबसे अधिक मात्रा मे विदेशी विनिमय प्राप्त होता है। द्वितीय योजना के अन्त तक इस साधन से हमे लगभग ३७५ करोड रु० का विदेशी विनिमय प्राप्त हुआ।

(३।) यही एक ऐसा उद्योग है जो समठित व यान्त्रिक उद्योगो मे सबसे अधिक लोगों को रोजगार प्रदान करता है। मिल उद्योग के अतिरिक्त (जिसमे करीब ८ ६ लाख श्रमिक लगे हुए हैं) कपास की कृषि में, कपास, सूत व वस्त्रों में व्यापार मे, यातायात सेवाओं मे, जिनिंग व व बेलिंग फैक्टरीज मे, टेलर्स आदि के रूप मे अनेक लोगों को रोजगार मिला हुआ है।

उद्योग का अतीत एवं विकास—

हमारे देश मे सूती वस्त्र उद्योग बहुत प्राचीन काल से ही उन्नत स्थिति मे था। भारतीय सभ्यता के प्राचीन स्मारक मोहनजोदडो के अवशेषा मे सूती वस्त्र भी प्राप्त हुए है, प्रसिद्ध वैज्ञानिक जेम्स टर्नर और ए० एन० गुलाटी के मतानुसार ये प्राप्त सूती वस्त्र रुई से बनाये गये होगे। ग्रीस के सुप्रसिद्ध इतिहासकार हैरोडाइटस आश्चर्य चकित होकर कहते है कि "भारतीय एक ऐसे ऊन के वस्त्र पहनते हैं, जो भेड-बकरियो के शरीर से प्राप्त नही होती, वरन् पेडो पर उगाई जाती है। अजन्ता की कला कृतियाँ भी इस उद्योग के गौरवपूर्ण अतीत की कहानी कहती है। भारतीय वस्त्र उद्योग को मुस्लिम काल मे बहुत गौरव प्राप्त हुआ। श्री टी० एन० मुकर्जी के मतानुसार मलमल का एक २० गज लम्बा तथा १ गज चौडा सुन्दर टुकडा अँगूठी के बीच म से सुगमता-पूर्वक निकल सकता था, इस कपडे के निर्माण मे लगभग ६-७ माह लगते थे। श्री टैवनियर के शब्दो मे—'भारतीय मलमल इतनी महीन थी कि हाथ से वह अनुभव नही की जा सकती थी।"

सूती कपडे बनाने की मिल यद्यपि भारत मे सन् १८१८ मे हुगली नदी के किनारे घूसरी नामक स्थान पर स्थापित की गई थी, परन्तु वास्तविक रूप मे इस उद्योग की प्रगति का प्रारम्भ सन् १८५४ में उस समय हुआ जब कि एक पारसी उद्योगी श्री कावस जी नाना भाई डावर ने बाम्बे स्पिनिंग एण्ड वीविंग कम्पनी की स्थापना की और इसके बाद एक अंग्रेज उद्योगपति ने भडौच मे दूसरा मिल स्थापित किया। इन दोनो कारखानों की प्राप्त सफलता के परिणामस्वरूप सन् १८७५ तक समस्त देश मे ४८ वस्त्र मिलें स्थापित हुई। इन कारखानों की प्रगति से प्रभावित होकर अहमदाबाद, शोलापुर, मद्रास, नागपुर आदि नगरों म सूती वस्त्र मिलों की स्थापना की गई। सन् १८७६ से १६४७ तक की प्रगति का अनुमान निम्न आँकडों से भी लगाया जा सकता है :—

सूती वस्त्र मिल उद्योग का विकास (१८७९–१९४७)

वर्ष	मिलो की सख्या	स्पिण्डिल्स की सख्या (हजारो मे)	लूम्स की सख्या (हजारो मे)	उत्पादन (लाख पौण्ड)	
				सूत	पीस गुड्स
१८७९–८०	५८	१४,०८	१३·३	—	—
१८८९–९०	११४	२९,३५	२२ १	—	—
१९०१	१७८	४८,७१	४०·५	५७,३०	१२,००
१९११	२३३	६०,९५	८५ ८	६२ ५०	२६,७०
१९२१	२४९	७२ ७८	१३३ ५	६९ ४०	४०,३०
१९३१	३१४	९०,७८	१७५ २	९६,६०	६७,२०
१९४१	३९६	१ ००,२६	२०० २	१५७,७०	१०९,३०
१९४७	४२३	१,०३ ५४	२०३ ०	१२९ ६०	३७६,२० (लाख गज)

प्रथम महायुद्ध काल मे उद्योग की स्थिति—

देशी सूती कपडा मिल की उन्नति और खासकर सन् १९१४ के बाद की प्रगति मे, पूर्णत नही तो मुख्य रूप से महायुद्ध, स्वदेशी आन्दोलन एव इस उद्योग के उत्पादन से विदेशी प्रतियोगिता की समाप्ति, आदि का योग रहा। किन्तु इस उद्योग के विकास को सर्वाधिक रूप से देश मे बढ़ी हुई कपड की माँग ने प्रभावित किया।

प्रथम महायुद्ध काल मे इस उद्योग को विशेष प्रोत्साहन मिला, क्योकि इस समय विदेशो से कपड का आयात बन्द होगया और साथ ही भारतीय सैनिको की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए शासन ने देश मे ही बहुत सा सामान खरीदा। युद्धोपरान्त ६ वर्ष तक यह उद्योग निर्बाध रूप से चलता रहा, किन्तु इसके बाद जापान एव अमरीका से प्रतिस्पर्धा, युद्ध के पश्चात् माँग मे कमी, हड़ताल एव कोयले के मूल्य मे वृद्धि होने से, उद्योग को भारी क्षति उठानी पडी। इस समय तक सूती वस्त्र मिलो की सख्या बढ कर २७१ होगई थी। इन परिस्थितियो मे, जबकि उद्योग की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी, सरक्षण की माँग की गई। सन् १९२७ में स्थापित टैरिफ बोर्ड द्वारा आयात मशीनो के कर को सरक्षण दिया गया। सन् १९३० मे वस्त्र उद्योग सरक्षण अधिनियम बना इस अधिनियम के अनुसार ब्रिटिश आयात पर १५ प्रतिशत तथा अन्य देशो के आयात पर २० प्रतिशत कर लगाया गया। इस कर मे सन् १९३४ म ५ प्रतिशत की वृद्धि की गई। सन् १९३४ मे एक अधिनियम और पास हुआ, जिसके अनुसार सरक्षण की अवधि सन् १९४७ तक बढ़ा दी गई।

द्वितीय महायुद्ध काल में उद्योग की स्थिति—

द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ मे ३८८ सूती वस्त्र मिलें थी। युद्ध की शाह्व ध्वनि के साथ ही उद्योग को पुनः प्रोत्साहन मिला। युद्ध के कारण मूल्यो मे वृद्धि हुई। साथ ही ब्रिटिश वस्त्र उद्योग युद्ध की आवश्यकताओ के उत्पादन मे लग गया एव जापान से शत्रुता होने के कारण भारत को उपभोक्ताओ एव मित्र देशो की सेनाओ की आवश्यकता पूर्ति का एकाधिकार प्राप्त हो गया। उद्योग की स्थिति से विवश होकर सरकार को कपडे पर कण्ट्रोल लगाना पडा, इसके लिए सरकार ने चार आदेश जारी किये। प्रथम आदेश Cotton Cloth and Yarn Control Order, 1943 के अनुसार कपडे का उत्पादन, वितरण एव कीमत पर सरकार द्वारा नियन्त्रण किया गया। दूसरे आदेश द्वारा कपडे का स्थानीय उत्पादन बढाने का प्रयत्न एव तीसरे आदेश के अनुसार कपडे के यातायात पर नियन्त्रण रखने का प्रयत्न किया गया एवं चौथे आदेश का उद्देश्य कपडे के उत्पादन के लिए आवश्यक कच्चे माल तथा अन्य साधनो के मूल्यो पर नियन्त्रण करना था। इस नियन्त्रण के प्रभाव से सन् १६४६ मे उद्योग की स्थिति मे प्रभाव हुआ, अत सन् १६४७ मे वस्त्र-उद्योग पर से नियन्त्रण सम्बन्धी सभी आदेश हटा लिए गए। नियन्त्रण से पूर्व सन् १६४२ मे कपडे का मूल्य सन् १६३६ की अपेक्षा चार गुना बढ गया, साथ ही भारतीय वस्त्रो का निर्यात भी बढता जा रहा था एव देश म भी कपडे की माँग मे वृद्धि हो रही थी। किन्तु सन् १६४८ तक उद्योग की स्थिति सामान्य हो गई और इस समय तक कपडा मिलो की सख्या बढकर ४०७ होगई।

देश के विभाजन का वस्त्र-उद्योग पर प्रभाव—

१५ अगस्त सन् १६४७ को देश स्वतन्त्र होने के साथ-साथ भारत एव पाकिस्तान, दो हिस्सो मे विभाजित हो गया, जिसके परिणामस्वरूप सूती वस्त्र उद्योग को गहरा धक्का लगा। ७५ प्रतिशत श्रेष्ठ कपास उत्पन्न करने वाली भूमि तथा १४ सूती वस्त्र कारखाने पाकिस्तान को हस्तातरित किये गये। इस समय उद्योग के लिए कपास एक समस्या बन गई। भारत एव पाकिस्तान के मध्य अनेक व्यापारिक समझौते होते हुए भी पाकिस्तान के दुर्व्यवहार से भारत को हानि उठानी पडी। अन्त मे विवश होकर भारत ने मिस्र, अफ्रीका आदि देशो से समझौते किये एव देश मे 'अधिक कपास आन्दोलन' चलाया गया, परिणामस्वरूप वस्त्र उद्योग पुन. प्रगति के मार्ग पर बढ़ने लगा एव उत्पादन मे वृद्धि हुई।

प्रथम पंच-वर्षीय योजना मे सूती वस्त्र-उद्योग—

प्रथम पच-वर्षीय योजना के अधीन ४७० करोड गज कपडा और १६४ करोड पौण्ड सूत पैदा करने का लक्ष्य था और उत्पादन के ये लक्ष्य अपनी योजना की अवधि ३१ मार्च सन् १६५५ के समाप्त होने के बहुत पूर्व ही पूरे कर लिये गये थे। प्रथम पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत वस्त्र उद्योग हेतु रखे गये एक निश्चित कार्य-क्रम के अनु-

सार लक्ष्य था कि भारत पर्याप्त मात्रा मे वस्त्रो का निर्यात करता रहे और देश के आन्तरिक उपभोग के लिए भी आवश्यकता से अधिक कपडा प्राप्त हो।

कर्वे कानूनगो समिति की सिफारिशो के अनुसार योजना काल मे हस्त करघा उद्योग को विशेष प्रोत्साहन दिया गया, जिसके कारण करघो की सख्या मे अपेक्षित वृद्धि से कम वृद्धि हुई। समिति की सिफारिशो के अनुसार हस्त-चलित एव शक्ति-चलित करघो का उद्योग मे अधिक उपयोग होना चाहिए, जिससे बेकार बैठे लोग रोजगार पर लग सकें। सरकार ने इस योजना-काल मे कपडे का निर्यात बढाने के लिए एक 'सूती वस्त्र निर्यात प्रवर्तक परिषद्' (Cotton Textile Export Promotion Council) की नियुक्ति की, जिसका कार्य वस्त्र निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिये हर सम्भव उपाय करना था।

द्वितीय योजनावधि मे उत्पादन—

द्वितीय पच-वर्षीय योजनावधि मे कपडे का उत्पादन इस प्रकार रहा :—

वर्ष	सूत (लाख पौण्ड)	सूती कपडा (लाख गज)
१९५६	१६,७१२	५३,०६६
१९५७	१७,८०१	५३,१७४
१९५८	१६,८५४	४९,२७०
१९५९	१७,२२८	४९,२५४
१९६०	१७,७७१	५०,४८३
१९६१		
जनवरी	१,५५१	४,३६६
फरवरी	१,४५५	४,०८३
मार्च	१,५१३	४,३१७

द्वितीय योजनावधि मे भारत सरकार ने सूती वस्त्र उद्योग के सम्बन्ध मे अपनी नई नीति घोषित की, जिसके अनुसार मिलो द्वारा ३५·३ करोड गज, विद्युत चलित करघो द्वारा २० १ करोड गज और हस्तकरघा द्वारा १०० करोड गज अतिरिक्त कपडा बुना जाना था। सरकार की इस नीति की प्रमुख बातें निम्न हैं —

(अ) नवीन तकलियो के लायसेंस केवल उन्ही व्यक्तियो को दिये जायें जो उन्हे शीघ्र चालू करने का प्रबन्ध कर सकें, जिससे बढती हुई माग को शीघ्र पूरा किया जा सके।

(ब) सूती वस्त्र मिलो को १४,६०० नवीन करघा को लगाने की अनुमति

इस कारण दी गई कि उनका समस्त उत्पादन, जो लगभग ३५ करोड गज है, प्रति वर्ष निर्यात किया जा सके।

(स) ३५ हजार विद्युत चलित करघे सहकारी समितियो द्वारा लगाये जाने की व्यवस्था की गई, और

(द) इस नीति के अन्तर्गत अम्बर-चरखो को विशेष महत्त्व दिया गया।

उपरोक्त नीति के अनुसार कुटीर एव ग्रामोद्योगो का पर्याप्त विकास हुआ है। अम्बर चरखा एव नई सूती मिलो के बीच के राजनैतिक मतभेद भी बहुत कुछ समाप्त हो गये हैं। भारतीय सूती वस्त्र के निर्यात व्यापार पर भी इसका कोई बुरा प्रभाव नही पडा है।

तृतीय पच वर्षीय योजना एव सूती वस्त्र उद्योग—

तृतीय पच वर्षीय योजना के अत तक ६३० करोड गज कपडे की आवश्यकता का अनुमान है। इसमे ८५ करोड गज निर्यात के लिए होगा। ६३० करोड गज के लक्ष्य मे से ३५० करोड गज हस्त करघा बिजली का करघा और खादी उद्योग मे बनेगा। कपड की मिलो का उत्पादन बढाने के लिए तृतीय पच-वर्षीय योजनावधि मे २५ हजार स्वचालित करघे लगाये जायगे। मिलो मे तकुओ की सख्या भी १६५ लाख कर दी जावेगी, जो कि दूसरी योजना के अन्त मे १२७ लाख थी।

सूती वस्त्र उद्योग की वर्तमान समस्याएँ—

हमारे सूती वस्त्र-उद्योग के सम्मुख वर्तमान काल मे अनेक कठिन समस्याएँ हैं, जिनका निवारण करना इस उद्योग की प्रगति के लिए नितान्त आवश्यक है। इन समस्याओ मे से कुछ प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं :—

(१) वस्त्र की माग मे सकुचन—गत कुछ समय से देश मे कपडे की माग मे बहुत अधिक कमी अनुभव की जा रही है। यहाँ यह स्मरणीय है कि कुछ समय पूर्व लोक सभा मे ऐसी घोषणा की गई थी कि जनता की क्रय शक्ति मे अप्रत्याशित वृद्धि का एक बहुत बडा सकेत यह है कि मिलो मे कपडे का स्टॉक घट कर औसतन २० दिन के उत्पादन के बराबर रह गया है और कुछ मिलो मे तो इतना भी नही है। किन्तु आज मिलो म इतना अधिक जमाव हो गया है कि उत्पादन स्थगित करने की चर्चा चलने लगी है। इस समस्या के निवारणार्थ विभिन्न विधियो से माग मे वृद्धि करना नितान्त आवश्यक है।

(२) करो का भार—उत्पादन करो का उपभोक्ता पर कितना अधिक भार पडा है, इसका सामान्य अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि किसी-किसी कपडे पर उत्पादन कर ३८/३६ प्रतिशत हो जाता है। इस समय भिन्न भिन्न प्रकार के उत्पादन-कर लगे हुए हैं। उत्पादन-कर की वसूली के लिए कपडे को मोटे, साधारण, महीन और अति महीन इन चार वर्गों मे विभाजित किया गया है और कर ११½% से ३६% तक है। उत्पादन करो के भार का एक अन्य अनुमान इस बात से

लगाया जा सकता है कि सरकार को इस दशा मे प्रति वर्ष ७५ करोड रु० प्राप्त होने हैं। उत्पादन करो का यह असहनीय भार बिचारे उपभोक्ताओ के कन्धो पर ही पड़ता है।

(३) पर्याप्त कच्चे माल का अभाव—देश के विभाजन के पूर्व हमारे देश में पर्याप्त मात्रा मे कपास उत्पन्न होती थी। अपनी आवश्यकताओ की सन्तुष्टि के बाद हम विदेशो को भी कपास का निर्यात करने मे समर्थ थे, किन्तु देश के दु.खद विभाजन के परिणामस्वरूप कपास की उपज का एक बहुत बडा क्षेत्र पाकिस्तान मे चला गया, फलत. हमारे देश मे कच्चे माल के अभाव की एक महत्वपूर्ण समस्या बन गई। हमे अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए विदेशो से अधिक मूल्य देकर कपास का आयात करना पड़ा। यद्यपि आर्थिक नियोजन की गत दशाब्दि मे कपास के उत्पादन मे काफी वृद्धि हुई है, किन्तु फिर भी पर्याप्त मात्रा मे एव उच्च श्रेणी के कच्चे माल के अभाव की समस्या आज भी विद्यमान है। इस समस्या के समाधान के लिए अच्छे किस्म की एव लम्बे रेशे वाली रुई का उत्पादन बढाने के लिए अनुसन्धान होना चाहिये, जिससे कच्चे माल के उत्पादन मे हम आत्म निर्भर हो सकें। साथ ही वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित अन्वेषण सस्था की स्थापना की जाय, जिससे कच्चे माल के उत्पादन एवं गुणो मे सुधार हो सके।

(४) अनार्थिक इकाइयों की समस्या—वर्तमान काल मे हमारे देश मे लगभग १५० मिलें ऐसी हैं जो अपने विस्तार की अपेक्षा कम उत्पादन करती हैं। इनमे से कुछ तो बन्द हो चुकी हैं, किन्तु कुछ अभी विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त अनेक मिले ऐसी भी हैं जिनमे उत्पादन केवल सीमान्त रेखा तक होता है। पूँजी का अभाव, कच्चे माल का अभाव तथा कुप्रबन्ध की समस्याएँ इसी के कारण हैं, अतः इस बात की आवश्यकता है कि इन मिलो का पुनर्संङ्गठन करके इनकी व्यवस्था मे सुधार किया जाय।

(५) हस्त करघा एवं मिलों मे समन्वय—भारत जैसे विशाल जन-संख्या वाले देश के लिए हस्त करघा उद्योग का महत्त्व निर्विवाद है। किन्तु यदि मिल उद्योग तथा करघा उद्योग में प्रतिद्वन्दिता रहे तो इसमे दोनो को ही हानि हो सकती है। अतः आज इस उद्योग के समक्ष यह समस्या उपस्थित है कि इन उद्योगो का किस प्रकार समन्वय किया जाय, जिससे ये दोनो प्रतिद्वन्दी न होकर एक दूसरे के पूरक हो जायें।

(६) विदेशी प्रतिस्पर्धा—विदेशो में भारतीय माल को जापान, ब्रिटेन एवं अन्य देशो के मध्य तीव्र प्रतियोगिता का सामना करना पडता है। भारत की वस्त्र मिलें, सरकार की वस्त्र उद्योग सम्बन्धी अनिश्चित नीति के कारण अपने निर्यात के अनुबन्ध पूरे नही कर सकी हैं। इसके साथ ही भारतीय माल की किस्म एव पैकिंग भी निर्यात की शर्तों के अनुरूप नही होती है, परिणामत. हमारे हाथ मे निर्यात बाजार छिनते जा रहे हैं एवं विदेशो मे भारतीय वस्त्र उद्योग की प्रतियोगिता शक्ति दुर्बल होती जा रही है यह वस्त्र उद्योग की सबसे गहन समस्या है, जिन पर हमारे व्यवसाइयों को

तुरन्त ध्यान देना चाहिये। बदलती हुई माँग को ध्यान मे रखते हुये विदेशी बाजारों का गहन अध्ययन ही इस समस्या का उचित हल है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजारो मे ग्राहक की इच्छा का विशेष ध्यान रखना पडता है। यही नही माल की किस्म एव उसका मूल्य भी ग्राहक को विशेष रूप से प्रभावित करते है। जापान की अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे दृढ स्थिति का कारण उसके द्वारा माल के गुण एव मूल्य मे प्रतियोगिता करने की शक्ति है। अत भारतीय उद्योग को विदेशी प्रतियोगिता म अपना स्थान सर्वोच्च बनाने के लिए यह आवश्यक है कि यहाँ भी नवीनतम साधनो को अपनाया जाये।

(७) किस्म पर नियन्त्रण—वर्तमान युग मे वस्तुओं की किस्म (Quality) पर विशेष ध्यान दिया जाता है। विदेशी बाजारो मे आज प्राय इस बात की चर्चा है कि जहाँ तक "किस्म' का सम्बन्ध है, भारतीय माल अधिक श्रेष्ठ नही होता। यही कारण है कि गिरी हुई किस्म का माल निर्यात करने पर, आयातक उसे वापस कर देते हैं, अत किस्म पर नियन्त्रण करना समय की सबसे बडी माँग है। इस समस्या के समाधान के लिए हमे उच्चकोटि का माल निर्माण करने हेतु प्रयास करना चाहिए, उत्पादन-यन्त्रो मे सुधार होना चाहिये एव श्रमिको की कार्यक्षमता को बढाने के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय करना चाहिये।

(८) वस्त्र उद्योग के लिये आवश्यक यन्त्रो का निर्माण—विज्ञान के क्षेत्र मे हमारा देश पिछडा होने के कारण, वस्त्र उद्योग देश का प्राचीनतम उद्योग होते हुए भी, उद्योग के लिए आवश्यक यन्त्र सामग्री के लिए विगत १०० वर्षों से विदेशी आयात पर निर्भर था। इसके अलावा विदेशो मे, विशेषकर अवमूल्यन के बाद, यन्त्र सामग्री के दाम बहुत ऊँचे हो गये हैं। अत विदेशी विनिमय की सुरक्षा एव आत्म-निर्भरता की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हमारे देश मे आवश्यक यन्त्रो का निर्माण हो, जिससे हम विदेशो पर निर्भर नही रहे। हमारे देश मे विगत कुछ समय से वस्त्र-उद्योग मे प्रयुक्त होने वाले कई यन्त्र एव उनके हिस्से बनाने की दिशा मे काफी प्रगति हुई है। आज हमारे देश मे तकुए, सादा करघे, रिंग फ्रेम इत्यादि का निर्माण पर्याप्त परिमाण मे होता है, साथ ही स्वचालित करघो, ड्रा फ्रेम्स, फ्लाई फ्रेम्स, आदि यन्त्रो का निर्माण कार्य भी प्रारम्भ कर दिया गया है। बहुत शीघ्र ही यन्त्र सामग्री के अन्य कई भागो का निर्माण देश मे ही प्रारम्भ किया जायगा। वस्त्र-उद्योग से सम्बन्धित यन्त्रो के निर्माण के लिए नियुक्त की गई काम चलाऊ समिति द्वितीय पच वर्षीय योजना काल मे वस्त्र-उद्योग मशीनरी के हिस्सो के तैयार करने के सम्बन्ध मे शीघ्र उठाये जाने वाले कदमो पर विचार करेगी। इस दिशा मे कुछ उद्योग-पतियो द्वारा भी कदम उठाये गये है।

(९) अभिनवीकरण की समस्या—पिछले दो महायुद्धो मे अत्यधिक उत्पादन के कारण यन्त्र सामग्री बहुत घिस गई है। युद्ध का एव उसके पश्चात् यन्त्रो के मिलने मे कठिनाई होने एव उनका अधिक मूल्य होने के कारण उन यन्त्रो को परिवर्तित नहीं किया गया, अत इन पुरानी मशीनो म अत्यधिक टूट-फूट एव

घिसाई हुई है। साथ ही अन्य देशो की अपेक्षा हमारा उत्पादन व्यय भी उपरोक्त कारणो से अधिक हो गया है। वर्तमान समय मे इस उद्योग मे लगी हुई सभी मशीनें लगभग ४० वर्ष पुरानी है। अत आज इस उद्योग की महत्वपूर्ण समस्या यन्त्र सामग्री के पुन. सस्थापन एव आधुनिकीकरण की है। "समस्त उद्योग मे उपयुक्त आधुनिकीकरण के बिना लागत मे कमी अथवा क्वालिटी मे कोई बडा सुधार होना सम्भव नही है।" सूती वस्त्र उद्योग मे विश्व ने अत्यधिक प्रगति की है। भारत जो कि सूती वस्त्र का सबसे बडा उत्पादक है, उसे प्रगति के साथ चलना होगा, यह विश्व की बढती प्रतियोगिता मे अपना स्थान बनाये रखने के लिए भी नितान्त आवश्यक है। आज विश्व के अन्य देशो मे स्वचालित करघो का उपयोग होता है, हम पुरान यन्त्रो के प्रयोग मे इस उद्योग मे सूती वस्त्र के उत्पादन मे गुण एव सख्या मे वृद्धि नही कर सकते। सूती वस्त्र मिलो में जिस तेजी के साथ पुरानी यन्त्र सामग्री के स्थान पर नवीनतम उपकरणो का प्रतिस्थापन किया जायेगा, वैसे-वैसे सूती वस्त्र के उत्पादन मे गुण एव सख्या मे वृद्धि सम्भव होगी। इस समय आधुनिकीकरण की आवश्यकता केवल उद्योग की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नही है, अपितु स्वदेश एव विदेश की निरन्तर बदलती हुई मॉग की योग्यता एव सुविधा से पूरा करने के लिये भी आधुनिकीकरण आज की मॉग है।

अभी कुछ दिन हुए राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम के कार्य-कारी दल ने कपडा मिलो के आधुनिकीकरण एव अभिनवीकरण के विषय मे एक रिपोर्ट दी है। हमारे देश के कपडा उद्योग की स्थिति की जॉच तथा उसके विकास के लिए आवश्यक सुझाव देने के वास्ते पहले भी ऐसे ही एक दल को आदेश दिया गया था और श्री ए० रामस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता मे गठित उस दल ने सन् १९५२ मे ही अपनी रिपोर्ट दे दी थी। अब तक प्राप्त सकेतो से तो ऐसा ही लगता है कि वह रिपोर्ट 'दडबे' मे डाल दी गई। क्योंकि उसकी प्रमुख सिफारिशों पर भी अब तक कोई अमल नहीं हुआ है। इतना जरूर हुआ है कि तब से लेकर अब तक सरकारी नेता बार-बार यह घोषणा करते रहे हैं कि भारतीय मिलो की उत्पादकता बढाने के लिए उनके आधुनिकीकरण और अभिनवीकरण की जरूरत महसूस की जा रही है। कहना नही होगा कि सन् १९५२ की उस रिपोर्ट और सन् १९६१ की इस रिपोर्ट के बीच की अवधि मे भारतीय मिला की स्थिति और भी खराब हो गई है और इस तथ्य को इस नयी रिपोर्ट मे जोरदार शब्दों मे स्वीकार किया है। सम्भवत सूती वस्त्र-उद्योग ही एक ऐसा उद्योग है जो नवीनीकरण एव अभिनवीकरण के लाभ से वचित रह गया है। पिछली दो पच-वर्षीय आयोजनाओ की प्रेरणार्थ लहर इस उद्योग को आन्दोलित नहीं कर सकी। पिछले दस वर्ष मे अनेक नये उद्योग खुले और चालू उद्योगो का विस्तार हुआ। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे हमारा सबसे अधिक कमाऊ "पूत" ही पिछड गया। मिला मे प्रति व्यक्ति उत्पादन अभी ११'५० गज से अधिक नही है, जबकि सन् १९५६ मे १४०६ गज और सन् १९५१ मे १२५० गज था।

पिछले दस वर्ष सम्पूर्ण संसार के लिए औद्योगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहे हैं। अनेक देशों ने दासता की बेड़ियां तोड़ी, आगे बढने के लिए तैयार हुए, तो कई देशों में औद्योगिक और आर्थिक जागरण का नया अध्याय आरम्भ हुआ। यह सम्भावना सन् १९५० में ही दिखाई पडने लगी थी कि यदि भारतीय मिलों ने अपने आपको आधुनिक तकनीक प्रगति के सांचे में नहीं ढाला, तो कालान्तर में उसे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से निकल जाना पडेगा। मुदालियर समिति ने भी इन तमाम सम्भावनाओं की ओर सकेत किया था, परन्तु कभी मजदूरों की बेकारी, तो कभी विदेशी मुद्रा के अभाव के नाम पर अभिनवीकरण और आधुनिकीकरण का मामला टलता रहा।

मौजूदा रिपोर्ट में सूती कपड़ा उद्योग की समस्या के इसी पहलू पर सबसे अधिक जोर दिया गया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि यदि देशवासियों के लिए कपडा पर्याप्त मात्रा में और उचित ढङ्ग से पहुँचाना हमारा ध्येय है, तो कपडा उद्योग को इस महान उत्तरदायित्व के वहन के योग्य बनाना ही पडेगा। कपडा उद्योग को अब भी अन्य देशों की अपेक्षा सस्ती रुई तो मिलती ही है, कम पैसे पर मजदूर भी उपलब्ध होते हैं, फिर भी प्रति गज उत्पादन-लागत अन्य देशों के मुकाबले बहुत अधिक बैठती है। रिपोर्ट के अनुसार ही—

"यदि समय रहते ही हमारी मिलें आधुनिक यन्त्रों से सज्जित नहीं की जा सकीं, तो आगे चलकर वही सङ्कट और बेकारी की स्थिति पैदा हो जायगी जिससे बचने के लिए मजदूर इतने चिंतित हैं। यह सर्वविदित है कि भारत में कई मिलें बहुत ही पुरानी और जाकड़ मशीनों से काम चला रही हैं। इनमें से कई सकटग्रस्त रही हैं और कई तो बिल्कुल बन्द ही गई है, फलत. इनमें काम करने वाले मजदूर स्थायी तौर पर बेकार हो गये है। यदि अन्य मिलों को इस स्थिति में पहुँचने से बचाना है, तो उनका आधुनिकीकरण एक अपरिहार्य आवश्यकता है।" (जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती)।

रिपोर्ट में यह भी साफ कर दिया गया है कि आधुनिकीकरण का अर्थ क्या है। आधुनिकीकरण का अभिप्राय सिर्फ यह नहीं कि पुरानी मशीनों की जगह नई मशीनें बैठा दी जाएँ। बल्कि इसका उद्देश्य है ऐसी स्थिति व पद्धतियों का निर्माण, जिससे भारतीय मिलें अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के अप्रत्याशित उतार-चढाव तथा अन्य देशों की प्रतियोगिता में न केवल ठहर सकें, बल्कि आगे बढ जाने को भी समर्थ हो जायें।

सम्भावित व्यय—

ख्याल है कि यदि भारतीय मिलों का आमूलचूल आधुनिकीकरण किया जाये, तो इस पर कोई ८ अरब रु० खर्च होगा, जिसके लिए देश आगामी कई वर्ष तक तैयार नहीं हो सकता। इसलिए यह सुझाव दिया गया है कि आधुनिकीकरण का काम थोडा-थोडा करके शुरू किया जाये। इस पर भी कम से कम १ अरब ८० करोड रु० लगेगा। रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया है कि इस राशि में से कम से कम ८० करोड रु० की व्यवस्था स्वयं मिलों को करनी चाहिए।

अपनी वर्तमान परिस्थिति मे आगामी पाच वर्ष की अवधि मे मिलें ८० करोड रु० की अतिरिक्त राशि जुटा सकेंगी, यह सन्देहास्पद दीखता है। यह रकम कैसे जुटायी जाये, इस पर रिपोर्ट मे कुछ नही कहा गया है। फिर भी वस्तुस्थिति से तो कतराया जा नही सकता। जरूरत है अनुकूल वातावरण बनाने की—और इसमे सरकार महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है। यदि नियोजकों को यह विश्वास हो जाये कि कपडा उद्योग का भविष्य अत्यन्त उज्जवल है, तो वे इस उद्योग मे पैसा लगाने को आसानी से तैयार हो सकते हैं।

(१०) वस्त्र उद्योग की अन्य समस्याएँ—उपरोक्त समस्याओ के अतिरिक्त हमारे सूती वस्त्र मिल उद्योग के सम्मुख कुछ अन्य समस्याएँ भी हैं, जिनका सुलझाना अत्यन्त आवश्यक है। इनमे से विकन्द्रीयकरण की समस्या, स्थिति की समस्या, शक्ति के साधन के अभाव की समस्या, अपर्याप्त अनुसन्धान की समस्या, विशेषज्ञो का अभाव, प्रशिक्षणो के साधना का अभाव तथा विपणन की समस्याएँ प्रमुख है। इनके अतिरिक्त श्रम एव पूँजी के बीच पारस्परिक सहयोग तथा विश्वास की भावना होना भी अत्यन्त आवश्यक है। श्रमिक वर्गों को सुखी एव सन्तुष्ट रखने के लिये पर्याप्त मजदूरी, उत्तम कार्य की दशाएँ, उचित काम के घटे तथा उनकी बेकारी दूर करना अत्यन्त आवश्यक है।

अन्य सुझाव—

वस्त्र मिल उद्योग की समस्याओ को हल करने के लिये **राष्ट्रीय योजना आयोग** ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं—(अ) मशीनो की उत्पादन-शक्ति का पूरा उपयोग किया जाय, (ब) व मिलें जो घाटे पर काम कर रही है, उनका विस्तार करके उन्हे आर्थिक बनाया जाय, (स) ३॥ लाख नये तकुये लगाये जायें, (द) केवल श्रेष्ठ माल का निर्यात करके विदेशी बाजार मे अपना स्थान बनाने का प्रयत्न किया जाय, और (य) जहा तक सभव हो, धागे का निर्यात न किया जाय।

उत्पादकता अध्ययन—उद्योग की उन्नति मे उत्पादकता अध्ययन का भी अत्यधिक महत्त्व है। इसलिये प्रबन्ध एव श्रम दोनो वर्गों के हित मे यह आवश्यक प्रतीत होता है कि वे अपनी अधिक शक्ति इस प्रकार के अध्ययन मे लगाएँ। निश्चयात्मक रूप से ऐसे अध्ययन प्रबन्ध, श्रम एव सारे उद्योग के लिए ही लाभप्रद होगे।

यन्त्र सामग्री की देख-रेख—यन्त्र सामग्री की उचित देख-रेख की आवश्यकता से इन्कार नही किया जा सकता। इस पर जितना ध्यान दिया जाना चाहिये था, अभी तक नही दिया गया। मिल के उत्पादक यन्त्र को सुचारु एव सुव्यवस्थित बनाये रखने के लिए, यन्त्रो के हिस्सो को बदलना, उचित निरीक्षण एव देखभाल बहुत जरूरी है। इस कार्य मे तान्त्रिको को मिल के प्रबन्धको के साथ ज्यादा से ज्यादा मदद करनी चाहिए।

लागत मूल्य मे कमी एवं किस्म मे सुधार—वस्त्र-उद्योग मे लागत मूल्य मे

कमी एवं किस्म मे सुधार लाने के लिए आवश्यक है कि मिल-उद्योग के उत्पादन, आधुनिकीकरण एवं पुरातन यन्त्रो के स्थान पर नवीनतम यन्त्रो का प्रतिस्थापन किया जाये। इसमे गति लाने के लिए निश्चित कार्य क्रम की आवश्यकता है। उत्पादन कार्यों में दक्ष व्यक्तियो को मिल के प्रबन्धको को इस बात की सलाह दी जानी चाहिये कि उद्योग मे किस प्रकार से शीघ्र आधुनिकीकरण एव पुनः सस्थापन हो सकता है। इस ओर तांत्रिको को भी महत्त्वपूर्ण कार्य करना है, क्योंकि वे प्रबन्ध एव श्रम को मिलाने वाली एक कडी हैं। तृतीय पच वर्षीय योजना मे तीव्र औद्योगीकरण पर बल दिया गया है, इसलिए यह आवश्यक है कि तांत्रिक प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था हो।

निर्यात करना आवश्यक—भारतीय वस्त्रो का निर्यात न सिर्फ वर्तमान स्तर पर, अपितु उसके बढाये जाने के लिए निरन्तर प्रयत्न अति आवश्यक है। मिल-उद्योग मे सामान्य आर्थिक स्थिरता एव विदेशो से आयात की जाने वाली ४०-५० करोड रुपये की रुई, आवश्यक यन्त्र सामग्री एव अन्य माल के आयात के भुगतान के लिए यह आवश्यक है। निर्यात बढाने के लिये हमे जिन बाजारो मे भारतीय वस्त्र की मांग है, वहाँ मांग कायम रखने एव बढाने के लिये तो प्रयत्न करने ही चाहिये, साथ ही साथ उन बाजारो मे भी कपडा बेचने के प्रयत्न बहुत आवश्यक हैं, जहां पर हमारे यहाँ के कपडे का विक्रय खास बडे पैमाने पर नही होता। मध्य योरोप के पश्चिमी जर्मनी जैसे देशो मे जहाँ हमारे वस्त्रो की अच्छी खासी बिक्री हो सकती है, बशर्ते कि वहाँ के बाजारो के प्रतिमानो के अनुसार हम माल निर्यात कर सकें। बिक्री बढाने के नये मार्ग निकालने के लिये माल के उत्पादन मे विविधता लाना, प्रमापित माल तैयार करना एवं अधिक निर्यात करना जरूरी है।

STANDARD QUESTIONS

1. Trace the history of Indian Cotton Textile Industry since Independence upto date.
2. What are the present problems of our Cotton Textile Industry ? Give suggestions to solve them

अध्याय ६२

भारतीय जूट-उद्योग

(Indian Jute Industry)

प्रारम्भिक—

जूट-उद्योग भारत का गौरव है। ससार के आर्थिक इतिहास मे भारत के जूट-उद्योग को प्रथम एव महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। देश मे उत्पादित विभिन्न प्रकार के रेशो मे, जो औद्योगिक कच्चे माल के रूप मे प्रयुक्त किये जाते है, रुई के बाद केवल जूट को स्थान प्राप्त है। यह उद्योग सुव्यवस्थित, सुसगठित एव केन्द्रित उद्योग है। इस उद्योग मे ८३४ करोड रुपये की पूँजी लगी हुई है एव ३ लाख श्रम-जीवियो को कार्य मिला हुआ है। सपूर्ण देश मे ११३ जूट की मिलें है। देश का जूट-उद्योग वास्तव मे निर्यात उद्योग है। भारत मे निर्मित जूट के माल का लगभग ८० प्रतिशत विदेशो को निर्यात किया जाता है। अमरीका भारत के जूट निर्मित माल का सबसे बडा ग्राहक है, इसलिये यह उद्योग डालर प्राप्ति का एक महत्त्वपूर्ण साधन है।

भारतीय जूट उद्योग की महत्त्वपूर्ण दो विशेषतायें हैं—प्रथम, यह उद्योग सगठित उद्योगो मे एक आदर्श उद्योग है, जिसमे प्रबन्ध निर्देश एव अर्थ-व्यवस्था सुनियन्त्रित है। दूसरे, यह उद्योग एक स्थान पर व्यवहारिक रूप मे केन्द्रित है। केवल ११ मिलो को छोडकर जो उत्तर-प्रदेश, बिहार, मद्रास एव मध्य-प्रदेश मे हैं, शेष १०२ मिलें, अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियो, यातायात के साधन, पर्याप्त श्रम एव सस्ती शक्ति के कारण, पश्चिमी बगाल मे स्थित हुगली नदी के किनारे कलकत्ते से ३५ मील ऊपर एव २५ मील नीचे की ओर लगभग २ मील चौडे एव ६० मील लम्बे क्षेत्र मे स्थित है।

विदेशी मुद्रा का उपार्जन करने की दृष्टि से जूट के द्वारा निर्मित वस्तुओ का सर्वोच्च स्थान है। देश में निर्मित समस्त जूट के माल का ८० प्रतिशत निर्यात माल के कारण हमे इसके द्वारा कुल विदेशी विनिमय के लगभग २० प्रतिशत की प्राप्ति होती है। यद्यपि माल का अधिकांश उत्पादन देश मे ही हो जाता है, किन्तु जो माल निर्यात किया जाना है उससे हमे अमूल्य विदेशी विनिमय प्राप्त होता है, जिससे हम विदेशो से आयात की हुई खाद्य एव अन्य वस्तुओ के भुगतान कर सकते है।

उद्योग का अतीत एवं विकास—

देश मे जूट की खेती अत्यन्त प्राचीन काल से होती है। पूर्व मे यह उद्योग यहाँ पर कुटीर-उद्योग के रूप मे सगठित था, किन्तु योरोपीय देशो से जूट का व्यापार ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के बाद प्रारम्भ हुआ। पालो से चलने वाले जहाजो के लिए रस्सी की आवश्यकता थी। इसके द्वारा बिछौने एव बोरो का भी निर्माण होता था। सन् १७६५ से १८३० तक भारत ने भारी मात्रा मे टाट के टुकडो का निर्यात किया, किंतु सन् १८३५ मे डडी चलित करघे के आविष्कार से कच्चे जूट की मांग बढ गयी। अतः कुटीर-उद्योग नष्ट होने लगा। शनैः-शनैः जूट के उद्योग को प्रोत्साहन मिला, १६वी शताब्दी के पूर्व ही स्काटलेंड का जूट-उद्योग भारत मे स्थापित हुआ। प्रारम्भ मे उद्योग की धीमी गति से उद्योग के असफल होने का भय था, किन्तु इसके निरन्तर विकास ने इसे भारत का प्रमुख उद्योग बना दिया। विगत १०० वर्षों से जूट उद्योग मे यन्त्रो द्वारा निर्माणी क्रिया प्रारम्भ हुई है।

हमारे देश मे सबसे पहला जूट मिल श्रीरामपुर मे सन् १८५४ मे स्थापित हुआ, परन्तु आर्थिक विषम परिस्थितियो के कारण कुछ समय बाद यह मिल बद हो गई। इसके बाद सन् १८१६ मे भारत मे एक जूट मिल की और स्थापना हुई और सन् १८८२ तक मिलो की सख्या २२ तक पहुँच गई, जिनमे २०,००० श्रमजीवी कार्य करते थे। इन मिलो को आर्थिक लाभ एव सफलता प्राप्त हुई, इन सभी मिलो के स्वामी अग्रेज थे। मिल उद्योग की उन्नति से डन्डी के जूट मिलो को काफी हानि हुई। मिल-उद्योग की उन्नति के कारण भारत ने अमरीका एव आस्ट्रेलिया को बडी मात्रा मे निर्यात प्रारम्भ किया, जिसमे जूट-उद्योग को प्रोत्साहन मिला। उपरोक्त २२ जूट कारखानो मे से १७ कलकत्ते के ही समीपवर्ती क्षेत्रो मे थे। विदेशो की बढती हुई मॉग से जूट-उद्योग को प्रोत्साहन मिला। परस्पर मिलो मे अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा का वातावरण भी पैदा नही हुआ और सगठन भी अच्छा रहा। पटसन का उत्पादन हमारे देश की माँग की अपेक्षा विदेशी की माँग पर अधिक निर्भर करता था, यत्रो से दबाया हुआ पटसन विदेशो को निर्यात किया जाने लगा। विदेशो मे पटसन से निर्मित माल की माँग की वृद्धि होने से मिलो की सख्या मे वृद्धि हुई। इसमे लगे श्रमजीवियो की संख्या लगभग दुगुनी हो गयी, करघो एव तकुओ की सख्या भी बढकर लगभग ढाई गुनी एव तीन गुनी हो गयी। उत्पादन वृद्धि ने उत्पादन व्यय मे कमी की, साथ ही लाभ की मात्रा मे वृद्धि हुई। कच्चे माल की समीपता ने उद्योग के विकास मे सहयोग दिया।

यद्यपि सन् १८६६ से सन् १६०० के मध्य पडे दुर्भिक्ष मे इस उद्योग को क्षति उठानी पडी, परन्तु २०वी शताब्दी के प्रारम्भ मे कृषि की उन्नति ने पाट के धन्धे मे गति प्रदान की। जूट-उद्योग की समस्याओ के हल एव उनम समन्वय स्थापित करने के लिए सन् १८८४ मे जूट निर्माण सघ की स्थापना प्रतिस्पर्धा माल की खपत के लिये नये बाजारो की खोज के उद्देश्य से की गई। सन् १६०२ म इस उद्योग का नाम

जूट-मिल सघ रखा गया। सन् १९०५-०६ मे विश्वव्यापी मन्दी के कारण पुनः उद्योग मे शिथिलता आ गई, इसके साथ ही जर्मनी व अमरीका आदि देशो मे पटसन की स्थानापन्न वस्तुओ को प्रोत्साहन दिया जा रहा था, किन्तु इसके कारण उद्योगो को विशेष क्षति नही उठानी पडी। सन् १९१३-१४ तक जूट मिलो की सख्या बढ कर ६४ हो चुकी थी।

प्रथम महायुद्ध काल मे उद्योग की दशा—

प्रथम महायुद्ध काल मे जूट-उद्योग अत्यत लाभप्रद स्थित मे रहा। एक तो फौजी आवश्यकताओ के लिए जूट की माँग बढ गई, दूसरे यत्र सामग्री का विदेशो से आयात बन्द हो गया, जिससे नई मिलो की स्थापना एव उनसे प्रतिस्पर्धा का डर नहीं रहा, तीसरे विदेशो मे भी जूट की माँग बढ गई। मिल मालिको मे दृढ सगठन था, इसलिए जूट का उत्पादन पूर्ण क्षमता से किया गया। कच्चे माल का निर्यात एकदम रोक दिया एव कारखाना अधिनियम भी ढीला कर दिया गया। सन् १९१५-१८ की इस अवधि मे मिल मालिको ने खूब लाभ कमाया। जूट की खपत भी ५५ लाख गाँठ प्रति वर्ष हो गयी, जबकि युद्ध के पूर्व ४४ लाख गाँठे प्रति वर्ष की खपत थी। इसी समय मजदूरी की दर एव पाट के मूल्य मे भी विशेष वृद्धि हुई।

मन्दी के समय उद्योग—

युद्ध समाप्ति के पश्चात मन्दी का एक झोका आया। सरकारी माँग लुप्त हो गयी, किन्तु मजदूरी एव कच्चे माल के दाम बढ गये। युद्धकालीन लाभ से उत्साहित होकर कुछ नई मिलो की स्थापना हुई एव कुछ पुरानी मिलो ने अपने कार्य-क्षेत्र मे वृद्धि की। इस प्रकार उत्पादन वृद्धि तो होने लगी, किन्तु खपत घटने से मन्दी बढती गई। फसल अच्छी होने से कच्चे जूट की पूर्ति बढ गई, जिससे मूल्य मे कमी हुई। कोयले की भी कमी अनुभव हुई। अस्तु, जूट मिल सघ के निर्णयानुसार काम के घटे घटा दिये गये एव किसी भी मिल का और अधिक विस्तार न करने का निश्चय किया गया। सन् १९२१ मे काम करने के घटो की सख्या ४० प्रति सप्ताह कर दी गई एवं १५ प्रतिशत अतिरिक्त करघे भी बद कर दिये। यह निर्णय सन् १९२८ तक चलता रहा। यद्यपि इस नियत्रण मे कुछ मिलो ने सहयोग नही दिया, फिर भी सगठन अच्छा होने के कारण स्थिति मे धीरे धीरे सुधार हुआ।

द्वितीय महायुद्ध मे उद्योग की दशा—

सन् १९३९ मे द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ के साथ ही देश के जूट-उद्योग को बहुत प्रोत्साहन मिला। विदेशी माँग मे वृद्धि होने से, बोरे और अन्य जूट निर्मित सामान के लिए सरकार की माँग मे वृद्धि होने से, उत्पादन मे बहुत वृद्धि हुई, फलतः कार्य अवधि पर से रोक-थाम हटाकर सभी मिलें अपनी पूरी क्षमता से ६० घन्टे प्रति सप्ताह कार्य करने लगी। सन् १९४० तक तो उद्योग की स्थिति ठीक रही, इसके बाद माँग कम हो जाने से उद्योग मे संकट की स्थिति दृष्टिगोचर होने लगी, परिणामस्वरूप

कार्यावधि ४५ घन्टे प्रति सप्ताह कर दी गई। उद्योग मे समय-समय पर इस प्रकार से उतार-चढाव होते रहे। सन् १६४२ मे जूट मिल संघ द्वारा उद्योग के विवेकीकरण का सुझाव दिया गया, सन् १६४३ मे तो कोयले की कमी के कारण कुछ मिलो को स्वयं ही अपना कार्य बन्द करना पडा। यहाँ तक कि जौलाई के अन्तिम सप्ताह मे तो सभी मिलें कोयले व विद्युत-शक्ति की कमी, यातायात की कठिनाई एव सन् १६४३ के बगाल के अकाल के कारण बन्द रही और इसके पश्चात् जूट-उद्योग मे विवेकीकरण की नयी योजना लागू की गई, जो सन् १६४४ की जौलाई से सन् १६४६ के मार्च तक लागू रही। इस प्रकार सन् १६४७ तक जूट-उद्योग की ऐसी ही स्थिति रही।

देश के विभाजन का उद्योग पर प्रभाव—

सन् १६४७ मे देश का भारत एव पाकिस्तान के दो हिस्सो मे विभाजन होने के बाद उद्योग की स्थिति पर गंभीर प्रभाव पडा। विभाजन से पूर्व देश मे विश्व का ६७ प्रतिशत जूट उत्पन्न होता था, किन्तु विभाजन के परिणामस्वरूप जूट उत्पन्न करने वाली ७५ प्रतिशत भूमि पाकिस्तान को हस्तान्तरित कर दी गई। भारत मे प्राय. शत प्रतिशत जूट मिले थी, किन्तु पाकिस्तान द्वारा पाट के निर्यात पर कर लगा देने के कारण, कच्चे माल के अभाव मे देश की जूट मिलें कई माह तक बन्द रही। पाकिस्तान भारत को सन् १६४८ के एक समझौते के अनुसार ५० लाख गाठे जूट की देता था, परन्तु यह समझौता सन १६४६ मे टूट गया। सितम्बर सन् १६४६ मे भारतीय रुपये का अवमूल्यन हो गया, पाकिस्तान द्वारा ऐसा नही किया गया, फलत. पाकिस्तान से कच्चा माल प्राप्त करने के लिए ४४ प्रतिशत मूल्य अधिक देना पडा और सन् १६४६-५१ के बीच तो भारत-पाक के मध्य व्यापार भी रुक गया, इस कारण देश की कुछ मिलें बन्द हो गई एव कुछ की कार्यावधि मे कमी करनी पडी। उधर पाकिस्तान जूट के निर्यात का चिटगाँव बन्दरगाह को केन्द्र बनाना चाहता है एव पाक सरकार ने ब्रिटिश विशेषज्ञो को जूट उद्योग के विकसित करने के लिए आमन्त्रित किया है एव वहाँ नई जूट मिलें खोलने के आदेश भी दिये गये हैं। ऐसी दशा म देश मे जूट-उद्योग के विकास एव कच्चे माल की आत्मनिर्भरता के लिए विशेष रूप से प्रयत्न किये गए हैं। जूट-उद्योग को सहायता प्रदान करने के लिए सन् १६५२ मे निर्यात शुल्क मे कमी की जाना शुरू हुई, जो सन् १६५६ मे बिलकुल उठा ली गई। इस प्रकार सन् १६४५ से सन् १६५५ तक के ये १० वर्ष जूट-उद्योग के लिए बहुत नाजुक थे।

विभाजन के फलस्वरूप जूट-उद्योग पर आई कठिनाइयो को दूर करने के लिए अब देश को अपने कारखानो की पूर्ति हेतु स्वय अत्यधिक मात्रा मे कच्चा माल उत्पन्न करना होगा। यह हर्ष का विषय है कि बिहार, उडीसा, उत्तर प्रदेश एव केरल आदि राज्यो मे जूट की खेती को प्रोत्साहित करने के प्रयत्न किये जा रहे है। अब एक पृथक विभाग के द्वारा गाँव-गाँव जाकर जूट की खेती का प्रचार किया जाता है, उत्तम बीज बाटता है एव खेती सम्बन्धी सभी प्रकार की जानकारी देता है एव कृषकों को विक्रय सम्बन्धी असुविधाओ से बचाने के लिए स्थान-स्थान पर उत्पन्न माल क खरीदने

का प्रबन्ध करता है। जूट-उद्योग से सम्बन्धित नवीन अनुसंधान किये जा रहे हैं। इस समय उत्तर-प्रदेश ने जूट उत्पादन क्षेत्र से कई सौ मील दूर होते हुए भी जो प्रगति की है, वह सराहनीय है। यहाँ तीन बड़ी जूट की मिलें हैं। कच्चे माल की पर्याप्तता के लिए यहाँ चार क्षेत्र, लखीमपुर, सीतापुर, गोंडा तथा गोरखपुर, "अधिक जूट उत्पादन" के हेतु बनाए हैं। राजकीय प्रयत्नों के परिणामस्वरूप अब उत्तर-प्रदेश में जूट का उत्पादन ६,००० मन पाट से बढ़कर ६,००,००० मन पाट उत्पन्न होना है। यद्यपि यहाँ का पाट घटिया किस्म का "जगली पाट" है, किन्तु अच्छे पाट के उत्पादन के लिए प्रयत्न जारी है। इसी प्रकार अन्य राज्यों में भी जूट-उद्योग के विकास के लिए हर सम्भव प्रयत्न किये जा रहे हैं।

प्रथम एवं द्वितीय पंच-वर्षीय योजना में उद्योग की दशा—

योजना आयोग के द्वारा जूट-उद्योग के विकास के लिए भविष्य की कोई योजना नही बनाई गई है, अपितु वर्तमान स्थिति को ही दृढ एव ठोस बनाने का निश्चय किया गया है। आयोग द्वारा कच्चे जूट के उत्पादन पर अधिक बल दिया गया है, क्योंकि उसके अनुसार भारतीय जूट मिलो की उत्पादन क्षमता तो अधिक है किन्तु आवश्यकता कच्चे जूट की है। अतः सरकार द्वारा जूट उत्पादन के लिए खेती व फसल के तरीको मे सुधार, सिंचाई की उचित व्यवस्था, उत्तम बीज व खाद के वितरण एव आर्थिक सहायता प्रदान करके विभिन्न राज्यों मे समुचित प्रयत्न किये जा रहे है। विभाजन के समय पटसन का वार्षिक उत्पादन १'७ मिलियन गाँठे था। विभाजन के उपरान्त जूट के माल के उत्पादन का अनुमान निम्न आँकडो से लगाया जा सकता है।*

वर्ष	उत्पादन (हजार टनो मे)
१९४७	१०,५२
१९५०	८,३६
१९५५	१०,२७
१९५६	१०,९३
१९५७	१०,३०
१९५८	१०,६२
१९५९	१०,५०
१९६०	१०,६७

उद्योग की वर्तमान समस्यायें एवं हल—

जूट उद्योग की वर्तमान समस्याओं के हल द्वारा ही उद्योग की उन्नति सम्भव है। भारतीय जूट मिल एसोसियेशन के प्रधान श्री के० डी० जालान के मतानुसार

* India 1961, Page 315.

उद्योग की निम्न समस्यायें हैं—बढ़िया किस्म के जूट की कमी, जूट के मूल्य में कमी एव प्रतियोगिता आदि।

(१) अच्छी किस्म व सस्ती जूट का अभाव—देश के विभाजन से उद्योग के एकाधिकार की अवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी है, आज सबसे जटिल समस्या जूट के उत्पादन की है। पाकिस्तान से आने वाली जूट पर देश की मिलें निर्भर नही रह सकती हैं, क्योंकि न मालूम कब पाकिस्तान भारत को जूट देना बन्द कर दे। आवश्यकता इस बात की है कि देश में ही अच्छी किस्म का, सस्ता जूट उत्पन्न किया जावे, इसी उद्योग से 'अधिक जूट उपजाओ आन्दोलन' प्रारम्भ किया गया, फलतः १५'८ लाख एकड़ भूमि पर ४१'४ लाख गाँठे जूट सन् १९५५-५६ मे उत्पन्न हुआ, जबकि सन् १९४६-४७ मे केवल ५'४ लाख एकड भूमि पर १३'२ लाख गाँठो का उत्पादन हुआ था। प्रथम योजना का जूट उत्पादन का लक्ष्य ५३ ९ लाख गाँठें यद्यपि पूरा नहीं हो सका, फिर भी हम अब पाकिस्तान पर अधिक निर्भर नही है। इस समय देश को अपनी आवश्यकता का केवल १० प्रतिशत कच्चा जूट पाकिस्तान से आयात करना पड़ता है। जूट के उत्पादन के लिये किये गये प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप सन् १९६०-६१ मे जूट की फसल देश में बहुत अच्छी रही, अतः कच्ची जूट तथा जूट निर्मित माल के भाव गिर गये। सरकार द्वारा जूट उत्पादक विभिन्न राज्यों की गतिविधियों का एकीकरण करने के लिये एक केन्द्रीय देख-रेख सगठन स्थापित किया गया है। यह सगठन जूट-उत्पादन के कार्यक्रम को कार्य रूप देता है, प्रति एकड अधिक उपज करने एव फसल की किस्म आदि सुधारने का भी ध्यान रखता है। यह सङ्गठन जूट-उद्योग से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण कार्यों को करता है। यदि इस वर्ष किसानों को कच्ची जूट का उचित मूल्य नही मिल पाया तो फिर जूट का उत्पादन देश मे कम हो सकता है।

यद्यपि पाट उत्पादन के नवीन क्षेत्रो मे जलवायु सम्बन्धी (जैसे—सूखा, बाढ़, आदि) कठिनाइयाँ भी एक प्रधान समस्या है। फिर भी सरकार कृत्रिम वर्षा, बाढ नियन्त्रण, उन्नति बीज एवं खाद द्वारा जूट की फसल प्रति एकड बढाने के लिये प्रयत्न कर रही है।

(२) जूट की स्थानापन्न वस्तु का भय—विज्ञान ने आज के युग मे बहुत प्रगति की है, अतः विकसित देशो ने जूट की स्थानापन्न वस्तुओ का निर्माण किया है। अब उपभोक्ताओं को माल देने के लिये उत्पादन की नई-नई प्रणालियो का विकास हुआ है। जूट के स्थान पर अब एक ऐसी वस्तु का उत्पादन किया जाने लगा है जो कपडे के समान है एव जूट के बोरो की जगह उपयोग मे आती है। अन्य देशो मे जूट के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले नये रेशे खोज निकाले गये है तथा नवीनतम उपकरणों मे पूर्ण जूट मिल खोले जा रहे हैं, ऐसी स्थिति मे यदि ये जूट की स्थानापन्न वस्तुएँ जूट से सस्ती प्राप्त होने लगी, तो इस उद्योग के नष्ट हो जाने का भय है। अतः आज इस बात की आवश्यकता है कि जूट निर्मित माल का उत्पादन बढ़ाया जाये,

उसके गुणो मे सुधार किया जाये तथा विभिन्न एव नवीन क्षेत्रों मे उसके प्रयोग के लिये अनुसन्धान किये जायें।

(३) प्रतियोगिता—देश के विभाजन के परिणामस्वरूप जूट उत्पन्न करने वाली ७५ प्रतिशत भूमि पाकिस्तान को सौंप दी गई और वहाँ की सरकार इस उद्योग को हर प्रकार से प्रोत्साहित कर रही है, नवीन उपकरणो से सुसज्जित कारखानो का निर्माण किया जा रहा है एव इस सम्बन्ध मे ब्रिटिश विशेषज्ञो द्वारा भी सहायता ली जा रही है। अत निश्चित है कि वहाँ की मिले भारत की अपेक्षा अधिक कार्यक्षम होगी तथा वहाँ जूट की भी अधिकता है। भारत को पाकिस्तान से कठिन प्रतियोगिता का सामना करना पडगा और हो सकता है कि हानि भी उठानी पडे। इसलिए सरकार को अधिक मात्रा मे जूट उत्पन्न करने के लिये कारखानो मे आधुनिकतम उपकरणो के प्रयोग पर बल एव अच्छी से अच्छी किस्म की जूट उत्पन्न करने के प्रयत्न करना चाहिए।

(४) आधुनिकीकरण—जूट उद्योग मे आधुनिकीकरण के प्रयत्न विगत कई वर्षो से हो रहे है। सरकार ने उद्योग मे आधुनिकीकरण की आवश्यकता को स्वीकार किया है। इस समय जूट उद्योग की सहायता प्रदान करने से सरकार को ४० करोड रुपया की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता है एव ८ हजार श्रमिको को बेरोजगारी की समस्या का सामना करना पडेगा, फिर भी ऐसी यन्त्र सामग्री को बदलने की व्यवस्था की गई है, जो या तो उत्पादन के बिलकुल अयोग्य है या जिसके प्रयोग से उत्पादन व्यय अधिक आता है। उद्योग आधुनिकीकरण की ५० प्रतिशत योजना पूरी कर चुका है। सरकार ने उद्योग को राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम द्वारा सहायता प्रदान करने की भी व्यवस्था की है। जूट उद्योग के आधुनिकीकरण के लिये राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम द्वारा ३१ मार्च सन् १९५९ तक ४५९ करोड रु० ऋण दिया गया, जिससे जूट मिलो में आधुनिकीकरण का कार्य पूरा करने मे बहुत सहायता मिली है तथा कई मिलो ने तो भविष्य की योजनाएँ भी बना ली हैं। आशा है कि दो या तीन वर्षों मे उद्योग आधुनिकीकरण योजना का ७५ प्रतिशत पूर्ण कर लेगा। यद्यपि उद्योग मे सम्पूर्ण रूप से आधुनिकीकरण की आवश्यकता है, किन्तु मिलो के कताई बुनाई विभाग मे नवीनतम उपकरण होना बहुत आवश्यक है, क्योंकि इससे उत्पादन लागत मे कमी के साथ काम भी अच्छा होगा।

(५) जलवायु सम्बन्धी कठिनाई—देश के विभाजन के बाद जूट का उत्पादन अधिक मात्रा मे करना बहुत आवश्यक है। उद्योग मे कच्चे माल मे आत्मनिर्भर होना है, इसके लिये किये गये प्रयत्नो मे, जूट उत्पादन के जो नये क्षेत्र बनाये गये हैं, वहाँ जलवायु सम्बन्धी (जैसे—सूखा, बाढ, अनावृष्टि आदि) कठिनाई की एक प्रधान समस्या है। इसके हल के लिये कृत्रिम वर्षा, बाढ़ नियन्त्रण, उत्तम बीज एव खाद का प्रयोग करना बहुत आवश्यक है, जिससे प्रति एकड फसल अधिक बढाई जा सके।

(६) पाकिस्तान का असन्तोषजनक व्यवहार—भारत एवं पाकिस्तान के बीच ठीक सम्बन्ध नहीं होना भी, जूट-उद्योग की प्रगति मे बाधक सिद्ध हुआ है। पाकिस्तान ने दोनो देशो के मध्य हुए समझौतो को कभी पूरा नही किया। ५ अगस्त सन् १९५२ को नई दिल्ली मे हुआ एक समझौता भी पूरा न हो सका, जिसमे भारतीय व्यापारियो मे निराशा छा गई। समझौते के अनुसार भारत को आशा थी कि २½ रु० प्रति मन का विवेचनात्मक लाइसेंस शुल्क (Discriminating License Fee) जोकि पाकिस्तान ने लगा रखा था, हटा दिया जायेगा, परन्तु इसके विपरीत पाकिस्तान द्वारा समझौते का तोडा गया। यही नही, पाकिस्तान अन्य देशो को निर्यात की जाने वाली जूट की गाँठो पर निर्यात कर ३ रु० प्रति मन प्राप्त करता था और भारत से पौने चार रु० प्रति मन निर्यात कर वसूल करता था। अतः पाकिस्तान के इस असन्तोषजनक व्यवहार से पाकिस्तानी जूट का निर्यात करने एव उसके द्वारा वस्तुएँ तैयार करने मे बहुत अधिक व्यय करना पडता है।

(७) मुद्रा सम्बन्धी कठिनाई—२१ सितम्बर सन् १९४९ को भारत ने सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के डालर के सम्बन्ध मे अपने रुपये का अवमूल्यन किया। स्टर्लिङ्ग क्षेत्र के सभी देशो ने अपनी मुद्रा का अवमूल्यन किया, परन्तु पाकिस्तान न इन सबके विपरीत अपनी मुद्रा का अवमूल्यन नही करने का निश्चय किया। परिणामस्वरूप पाकिस्तान को १०० रु० के स्थान पर भारत द्वारा १४४ रु० दिये गये। इस प्रकार भारत द्वारा पाकिस्तानी माल निर्यात करने के लिये ४४ प्रतिशत मूल्य अधिक दिया गया। भारत अपने जूट के मिल के दाम नही बढा सकता, क्योंकि ऐसा करने से भारतीय निर्यात व्यापार पर प्रभाव पडेगा। विवश होकर पाकिस्तानी जूट का निर्यात भारत की जूट मिल ऐसोसियेशन द्वारा कम कर दिया गया। इससे उद्योग को बडी हानि उठानी पड़ी और आज भी हानि उठानी पड रही है।

निसदेह इस अभाव को पूरा करने के लिये जूट टैक्नालॉजिकल इंस्टीटयूट ने केन्द्रीय जूट समिति के सकेत पर अलसी के छिलके से रेशा निकालने की कला मे विकास किया है, इस रेशे को जूट से मिलाते हैं। किन्तु इससे कोई विशेष लाभ नही हो सकता, क्योकि स्थानापन्न रेशे का मूल्य अधिक है।

(८) विदेशी प्रतिस्पर्धा का भय—भारतीय जूट-उद्योग की एक बहुत बडी समस्या विदेशी माल, विशेषकर जूट की स्थानापन्न वस्तुओ से प्रतिस्पर्धा की है। विश्व के विभिन्न देशो मे जूट की स्थानापन्न वस्तुओ के निर्माण मे काफी प्रगति हुई है एव देश के विभाजन के बाद तो इन देशो को और भी प्रोत्साहन मिला है। भारतीय मिलो की उत्पादन-क्षमता भी कम हो गई है, अतएव अपेक्षाकृत अन्य देशो का जूट मिल उद्योग काफी उन्नति कर रहा है। पाकिस्तान भी जूट निर्माण के लिये प्रयत्न कर रहा है, ऐसी परिस्थितियो मे भारत को सावधान होकर कार्य करना चाहिये।

(६) पाट के मूल्य का प्रश्न—जूट के दामो मे अन्य स्थानापन्न वस्तुओ के मूल्य की अपेक्षा जो अधिक वृद्धि हुई है, उसका एक कारण यह भी है कि पाकिस्तान से आयात किये गये पाट के मूल्य मे वृद्धि हो गई है। सन् १६४७ मे अन्तिम दिनो मे पाकिस्तान की सीमा से बाहर जाने वाले पाट पर वहाँ की सरकार द्वारा जूट पर चुंगी कर लगा दिया गया तथा पाकिस्तान से आयात की गई जूट मे मौसम के कारण नमी अधिक होने से १६४ लाख रु० की हानि हुई। दूसरे श्रम लागतो मे भी बढोतरी हुई। भारतीय मजदूरों की कार्य करने की शक्ति कम होने के कारण १ मजदूर का कार्य ४ मजदूर करते है। अत इन सब कारणो का उद्योग पर कुप्रभाव पडा। अन्य देशो मे आधुनिकीकारण की तीव्र गति की अपेक्षा भारत मे यह गति बहुत कम हो गई, क्योकि उपरोक्त कारणो से उद्योग की आय पर बुरा प्रभाव पडा था। अत: यदि हमने उद्योग के वैज्ञानिकीकारण एव आधुनिकीकरण के लिये उचित प्रयत्न नही किये तो लागत मूल्य मे कमी नही हो सकती, इसके लिये सरकार द्वारा जूट के माल पर निर्यात कर की दरें भी कम करनी आवश्यक है, जो भारतीय रुपये के अवमूल्यन के बाद बहुत बढ गई है। साथ ही, सरकार निर्यात की कोटा पद्धति को समाप्त करे। हाँ, वह अश बना रहे जो विदेशो म हुए द्विपक्षीय समझौते की पूर्ति के लिये आवश्यक हो।

भारतीय जूट उद्योग पर संकट—*

भारतीय जूट उद्योग की वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध मे सरकारी तथा गैर-सरकारी पक्ष से गत कुछ समय मे इतने अधिक वक्तव्य जारी किये गये हैं कि सही स्थिति का पता लगाना कठिन है, किन्तु गहराई से विचार करने पर यह पता चलता है कि आजकल मूल समस्या कच्चे जूट की उपलब्धि अथवा कम या ऊँचे भावो की नही, वरन् जूट उद्योग तथा जूट माल-बाजार को स्थायित्व देने की है। इन्डियन जूट मिल ऐसोसियेशन ('इजमा') का कहना है कि कच्चे जूट की सप्लाई स्थिति जटिल बनी हुई है और मिलें अपना उत्पादन घटाकर कच्चा माल बचा कर रखने के लिए बाध्य हो गई है। कुछ बडी बडी जूट मिलो ने १६% तक करघे बन्द कर दिये है। इस प्रकार कुल ३०% तक करघे बन्द हैं। कई मिलो मे ४२½ घटे की जगह ४० घन्टे काम हो रहा है। एक मिल ने तालाबन्दी घोषित कर दी है। मिलो द्वारा माल न उठाये जाने के कारण भाव गिरते जा रहे हैं और यदि इस गिरावट की गति की रोक थाम के लिए कोई पग न उठाया गया, तो भाव और गिर जायेंगे। जूट उद्योग की वर्तमान स्थिति कितनी चिन्तनीय है, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि यह प्रश्न राज्य सरकार की सीमा को लाघ कर केन्द्र तक पहुँच गया है। केन्द्रीय श्रम-मन्त्री के सन्मुख दो सुझाव आये हैं—(१) जूट का सकटकालीन भण्डार बनाया जाय, जिसकी व्यवस्था के लिए राज्य सरकार तथा 'इजमा' के

---

* नवभारत टाइम्स १ सितम्बर, १६६१।

प्रतिनिधियो की एक समिति गठित हो, और (२) जूट का न्यूनतम भाव निर्धारित किया जाय।

जूट उद्योग की वर्तमान शिथिलता से श्रमिक भी बहुत चिन्तित हो गये हैं। यदि मिलो मे पूरे पैमाने पर काम शीघ्र ही चालू नही हुआ, तो उनके सन्मुख पूर्ण बेरोजगारी की समस्या पैदा हो जायेगी। श्रमिको ने माँग की है कि जूट उद्योग के वतमान गतिरोध को दूर करने के लिए अध्यादेश जारी किया जाय। उनका कहना है कि इजमा न केवल विदेशी व्यापार मे रुकावट डाल रहा है वरन् उसकी नीति से जूट उत्पादको और जूट उद्योग म लगे श्रमजीवियो की आजाविका भी छिनी जा रही है। इस समस्या के समाधान के लिए अल्पकालीन उपाय कारगर न होगे, इसके लिए तो स्थाई उपाय करना होगा। वर्तमान समस्या के एक समाधान के रूप मे कच्चे जूट का निम्नतम भाव निश्चित कर देना चाहिये। यदि भारत व पाकिस्तान दोनो ही देश मिल कर जूट-भावो के नियमन क लिए कोई सहयोग सगठन बनाय तो श्रेष्ठकर होगा।

उपसहार—

सचमुच ही यह सन्तोप का विषय है कि हमारे जूट उद्योग के समक्ष उपस्थित कठिनाइयो के प्रति जूट उद्योगपति तथा सरकार दोनो जागरूक हैं। इन्डियन जूट मिल ऐसोसियेशन ने जूट की माँग मे वृद्धि करने के उद्देश्य से अमेरिका व इङ्गलैण्ड मे अपने कार्यालय खोल रखे हैं तथा अन्य देशो मे भी प्रतिनिधि मण्डल भेजे जा रहे हैं। इजमा नई नई वस्तुओ के निकालने के अनुसन्धान कर रहा है। हमारी जूट मिलो ने परदे, दरियाँ, मोटे वपडे तथा छोटे-छोटे बोरे आदि बनाने प्रारम्भ कर दिये हैं। ऐसी परिस्थिति मे यह आशा की जाती है कि साहस, धैर्य एव बुद्धिमत्तापूर्ण नियोजित कार्य करने से हमारे जूट उद्योग की समस्याय सुलझ जायगी। तृतीय पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत ६५ लाख गाँठ कच्चा पटसन पैदा करने का लक्ष्य रखा गया है। इससे हम जूट उद्योग के लिए कच्चे माल की उपलब्धि के विषय मे बहुत कुछ निश्चित हो जायेगे। इस प्रकार जूट उद्योग को पूर्णरूपेण प्रोत्साहन दिया जा रहा है और वह दिन दूर नही जब भारत को विश्व मे जूट उत्पादन एकाधिकार पुन. प्राप्त हो जायेगा।

STANDARD QUESTIONS

1. Discuss briefly the effects of partition on India's Jute Mill Industry How have they been tackled ? What are your suggestions in this connection
2. Write a brief essay on the present position and problems of Indian Jute Industry.

अध्याय ६४

भारतीय लौह एवं स्पात उद्योग

(Indian Iron & Steel Industry)

प्रारम्भिक—

आज के युग मे किसी देश की औद्योगिक उन्नति की कसौटी यह है कि वहाँ कितना इस्पात बनता है और उपयोग मे आता है। विश्व के आधारभूत उद्योगो मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण लोहा एव इस्पात उद्योग है। वर्तमान युग यन्त्रीकरण का युग है, क्योकि चाहे कोई भी उद्योग हो, सभी मे यन्त्रो के प्रयोग द्वारा उत्पादन एव विकास किया जाता है और यन्त्रीकरण लौह एव इस्पात उद्योग पर ही निर्भर है। किसी देश की आर्थिक प्रगति, विकास एव राजनैतिक सुरक्षा के लिए भी इस उद्योग द्वारा महत्वपूर्ण कार्य किया जाता है। लोहे की महिमा के सम्बन्ध मे ऐसा कहते हैं कि :—'सोना महल की रानी के लिए आवश्यक है, चाँदी महल की दासी के लिए और तांबा एक साधारण कारीगर के लिए, किन्तु लोहा इन सभी धातुओ का स्वामी है।"

इस उद्योग मे अमरीका का प्रथम स्थान है, जहाँ १० करोड टन से भी अधिक इस्पात बनता है। रूस मे ५ करोड टन एव ब्रिटेन तथा जर्मनी मे २-२ करोड टन प्रति वर्ष इस्पात का उत्पादन होता है। यह उद्योग भारत मे बहुत तीव्र गति से विकास कर रहा है। उद्योग के लिये आवश्यक कच्चा माल देश मे पर्याप्त मात्रा मे है। योरोपीय देशो मे स्वीडन को छोडकर अन्य कोई ऐसा देश नही जहाँ भारत के समान उच्च कोटि का लोहा एव कोयला मिलता हो। हमारे देश मे लोहे के भण्डार साधारण नही हैं, केवल सिन्ध भूमि क्षेत्र मे ही १ हजार करोड टन से भी अधिक लोहा है, जिसका प्रयोग यदि वर्तमान गति से हो, तो भी वह २,००० वर्ष तक चल सकता है। भारत ने द्वितीय योजना के अन्त तक ६० लाख टन प्रति वर्ष इस्पात तैयार करने का लक्ष्य निर्धारित किया है।

उद्योग का अतीत एवं विकास—

लौह एव इस्पात उद्योग भारत का अति प्राचीन उद्योग है। आज से ६-७ हजार वर्ष पूर्व भी भारतीय लौह का उपयोग जानते थे। भारतीय इस्पात का माल

विदेशो मे भी जाता था एवं अपनी सुन्दरता के लिए लोकप्रिय था। दिल्ली का लौह स्ताम्भ हमारे देश के प्राचीन इन्जीनियरो की कला का जीता-जागता उदाहरण है। इस उद्योग की प्राचीनता पर प्रकाश डालते हुये प्रोफेसर विल्सन ने लिखा है कि—"लोहे की ढलाई तो इङ्गलैण्ड मे थोडे ही वर्षों से प्रारम्भ की गई है, परन्तु हिन्दू लोग लोहा गलाने, ढालने तथा इस्पात बनाने की कला का ज्ञान अत्यन्त प्राचीन काल से रखते हैं।"

आधुनिक समय मे इस उद्योग का इतिहास विगत १५० वर्षों का है। इसके पूर्व कुछ योरोपियो ने इस उद्योग को चलाने का प्रयत्न किया, पर वे सफल न हो सके। इन प्रयत्नो मे सन् १७७७ मे झरिया की कोयले की खान के निकट एक लोहे एव इस्पात का कारखाना खोला गया, जो दो वर्ष के बाद बन्द हो गया। इसके बाद सन् १८५७ मे बारकपुर आयरन स्टील कम्पनी की स्थापना की गई, ६ वर्षों तक यह कारखाना कार्य करता रहा, फिर इसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने खरीद लिया। दो वर्ष के बाद इस कारखाने का नाम बदलकर "दी बगाल आयरन एन्ड स्टील कम्पनी" रखा एव कारखाने का आधुनिकीकरण भी किया गया। यह कारखाना इस्पात उत्पादन मे तो असफल रहा, किन्तु इसमे आधुनिक पद्धति से पिग आयरन का उत्पादन किया जाने लगा।

आधुनिक काल मे लौह एव इस्पात उद्योग की नीव डालने का श्रेय श्रीजमशेद जी नौसेरवान जी टाटा को है, जिन्होने सन् १९०४ मे जर्मनी एव अमेरिकन विशेषज्ञो द्वारा देश के मध्य-प्रान्त की जाँच करवाई। सरकारी विभाग से स्वीकृति लेकर विदेशो मे भ्रमण करके एव अन्य अनेकानेक कठिनाइयो को पार करने के पश्चात् कारखाना प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया है, किन्तु यह कारखाना जिस स्थान पर स्थापित करना था, वह कोयले एवं लोहे की खानो से समान दूरी पर था, अतः अस्वीकार कर दिया गया। तत्पश्चात् श्री पी० एन० बसु की सहायता से निरीक्षण आदि करा कर मयूरभज (उडीसा) मे सन् १९११ मे जिस स्थान पर कारखाने का प्रारम्भ किया गया, वही स्थान आज जमशेदपुर के नाम से प्रसिद्ध है। इस कारखाने का नाम "दी टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी" (TISCO) रखा गया। इस कारखाने मे कार्य प्रारम्भ होने के बाद सन् १९१२ मे इस्पात तैयार होने लगा। 'टिस्को' (TISCO) आज भारत ही नही वरन् एशिया का गौरव है।

प्रथम महायुद्ध में उद्योग की स्थिति—

सन् १९१४ मे योरोपीय महासमर का प्रारम्भ लौह-इस्पात उद्योग के लिए स्वर्ण अवसर लाने वाला सिद्ध हुआ। इस समय देश की माँग मे वृद्धि हुई एव विदेशो से लौह-इस्पात का आयात कम हो गया। इस समय टाटा द्वारा अत्यधिक लाभ कमाये गये, टाटा की प्रगति से प्रभावित हो सन् १९१८ मे हीरापुर नामक स्थान पर 'इन्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी' की तथा सन् १९२१ मे मनोहरपुर मे 'युनाइटेड स्टील

कॉर्पोरेशन ऑफ एशिया' और सन् १९२३ मे भद्रावती मे 'मैसूर आयरन एण्ड स्टील वर्क्स' की स्थापना हुई।

इस काल मे भारतीय बढी हुई माँग एव विदेशो की युद्ध के कारण उत्पन्न हुई माँग को पूरा करने के लिये, उद्योग द्वारा काफी उत्पादन हुआ एव इस उद्योग का देश मे विकास हुआ। प्रशुल्क मण्डल के अनुसार सन् १९१६-१७ मे टाटा कम्पनी का उत्पादन क्रमश. १,४७,४९७ टन कच्चा लोहा एव १,३९,४३३ टन इस्पात व ९८,७२६ टन पक्का इस्पात उत्पन्न हुआ। परन्तु युद्धोपरान्त आर्थिक मन्दी के कारण उद्योग को हानि उठानी पडी। माँग एव मूल्य गिर जाने से एवम् मजदूरी ऊँची होने से तथा कोयले की मँहगाई के कारण उत्पादन व्यय कम हो गया। सन् १९२३ मे प्रशुल्क सभा की नियुक्ति की गई, परिणामत सन् १९२४ मे उद्योग को तीन वर्ष के लिये संरक्षण दिया गया, यह सरक्षण "इस्पात सरक्षण कानून" के अन्तर्गत दिया गया, जिसकी अवधि बाद मे ७ वर्ष के लिये और बढा दी गई। सरक्षण के फलस्वरूप ही उद्योग सन् १९२९-३० की विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी का सामना सफलतापूर्वक कर सका। "इस्पात सरक्षण कानून" के अन्तर्गत उद्योग को आर्थिक सहायता भी दी गई। आरम्भ मे यह सहायता ५० लाख रुपये की थी, किन्तु बाद मे यह राशि बढा दी गई। सन् १९३४ मे सप्त वर्षीय सरक्षण का काल समाप्त हो गया, इस समय तक उद्योग यथेष्ठ उन्नति कर चुका था। सन् १९३५ तक पिग आयरन का उत्पादन १३,४३,००० टन हो गया था। इस समय सरक्षण की आवश्यकता नही थी, किन्तु सरकारी आय मे कमी आने के भय से सरक्षण जारी रखा गया।

द्वितीय महायुद्ध की उद्योग स्थिति—

दूसरे महायुद्ध का प्रारम्भ उद्योग की समृद्धि का एक नया युग लेकर आया। देश के कई भागो मे नये-नये कारखाने खुले एव विद्यमान कारखानो के कार्य क्षेत्र मे भी वृद्धि हुई। विदेशी यातायात के बन्द हो जाने से, फौजी आवश्यक्ताओ मे वृद्धि हो गई, अतः उद्योग मे मूल्य, लाभ एवम् उत्पादन सब ऊँचे हो गये। इस्पात का उत्पादन दो वष मे ही ५ प्रतिशत बढ गया। अत्यधिक माँग वृद्धि के कारण सरकार को सर्व साधारण के उपभोग पर भी नियन्त्रण लगाना पडा। सरकार ने सन् १९३८ मे टाटा के तत्पश्चात अन्य कम्पनियो से युद्ध कार्य हेतु आवश्यक स्टील के मूल्य के विषय मे समझौते किये, जो वर्तमान मे भी किसी न किसी रूप मे चल रहे हैं। सन् १९४१ मे युद्ध की माँग की पूर्ति करने के लिये टाटा ने जमशेदपुर मे व्हील टायर एण्ड एक्सिल प्लान्ट की स्थापना की, जिसमे रेल के पहियो का निर्माण होने लगा। सन् १९४६ मे पूर्ति मन्त्रालय द्वारा बताया गया कि वार्षिक उत्पादन २५ लाख टन होना चाहिये, मूल्य पर नियन्त्रण रखा जाना चाहिये एव उद्योग को आर्थिक सहायता प्रदान करनी चाहिये। सरकार ने उद्योग को निम्न रूप से उत्पादन बढाने के लिए सहायता दी— टाटा को १० करोड रु०, बङ्गाल स्टील कॉरपोरेशन को ३ करोड व इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी को १ करोड़ रु० ऋण के रूप मे दिया गया।

युद्धोत्तर काल मे उद्योग का उत्पादन गिर गया एवम् निर्यात् कम हो गया। इसके अनेक कारण हैं, जैसे—कोयला प्राप्त करने मे कठिनाई, मजदूरी बढवाने के लिए श्रमिको द्वारा हडतालें आदि और यातायात की असुविधा, इत्यादि। फलतः देश मे विदेशी विनिमय को हानि उठानी पडी। देश के अन्तर प्रान्तीय कोटे कम कर दिये गये, व विकास की योजनाएँ खटाई मे पड गयी।

प्रथम पंच-वर्षीय योजना मे उद्योग—

देश के विभाजन के बाद हमारे देश मे बनी राष्ट्रीय सरकार ने लोह एवम् इस्पात उद्योग की उन्नति एवम् विकास का भार अपने ऊपर ले लिया। प्रथम पंच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत सरकार ने उद्योग को विशेष सहायता देने का यत्न किया। योजनानुसार सरकार ने सन् १६५६ तक सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) मे ३० करोड रु० खर्च करने एवम् निजी उद्योगपतियो को उनकी विकास योजनायें कार्यान्वित करने के लिए ४३ करोड रु० देने का निश्चय किया। सरकार को उद्योग की उत्पत्ति निम्न ढङ्ग से बढने की आशा थी—

	सन् १६५०-५१ मे उत्पत्ति	सन् १६५५-५६ मे उत्पत्ति
लगा हुआ लोहा	*१७ ८ लाख टन*	*१६ ५ लाख टन*
तैयार स्पात—	१० ७५ ,, ,,	१२ ८ ,, ,,

प्रथम पंच-वर्षीय योजना मे सरकार द्वारा, ५ लाख टन इस्पात पिण्ड तैयार करने की क्षमता वाला एक कारखाना स्थापित करने का कार्यक्रम रखा गया था, किन्तु उस समय विदेशी सहयोग प्राप्त करना कठिन था। अत सन् १६५३ मे दो जर्मनी की क्रप्स व डेमग फर्मो के सम्मिलित सहयोग से एक कारखाने के निर्माण का समझौता किया गया। यह कारखाना 'हिन्दुस्तान स्टील लि०' के नाम से प्रारम्भ हुआ तथा इस पर १० करोड रु० व्यय किया गया। सरकार द्वारा, देश मे लोहे एवम् इस्पात का उत्पादन बढाने के लिए १ जनवरी सन् १६५३ को स्टील कॉरपोरेशन ऑफ बङ्गाल तथा इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी का एकीकरण (IISCO and SCOB Merger) किया गया।

द्वितीय पंच-वर्षीय योजना मे उद्योग—

भारत की विकास योजनाओ के साथ ही साथ देश मे लोहे एवम् इस्पात की माँग मे भी वृद्धि हुई, अतः भारत सरकार ने उद्योग के महत्व को समझकर इसे द्वितीय पंच-वर्षीय योजना मे महत्वपूर्ण स्थान दिया। इस उद्योग पर ४३१ करोड रुपया व्यय करने का निश्चय किया गया। इस योजना के अन्तर्गत उद्योगो की उत्पादन क्षमता बढाने तथा नये कारखाने खुलने का भी निश्चय किया गया। इस योजना के अन्तर्गत स्वय सरकार ने तीन नये कारखाने खोले है—प्रथम रूरकेला (उडीसा), द्वितीय भिलाई (मध्य प्रदेश) एवम् तृतीय दुर्गापुर (पश्चिमी बङ्गाल)। भिलाई का कारखाना रूस सरकार की सहायता से स्थापित किया गया है। रूरकेला इस्पात कारखाने की

प्रथम धमन भट्टी का कार्य ३ फरवरी सन् १६५६ को एवम् भिलाई इस्पात कारखाने की धमन भट्टी का कार्य दिनाक ४ फरवरी सन् १६५६ को प्रारम्भ हो गया। दुर्गापुर इस्पात कारखाने को धातु कर्म सम्बन्धी बढिया किस्म का कोयला उपलब्ध कराने के लिये पश्चिमी बङ्गाल द्वारा स्थापित कोयला भट्टी सयन्त्र का मार्च सन् १६५६ मे उदघाटन हुआ।

योजना के अन्तर्गत सरकार द्वारा-स्थापित नवीन कारखाने

(१) रूरकेला (उड़ीसा)—

कलकत्ते से २५७ मील दूर शंख और कोयल नदियो के सगम पर स्थित रूरकेला, जहाँ से कलकत्ता बम्बई रेल लाइन जाती है, एक छोटा सा गांव है। यहाँ पर सरकार द्वारा इस्पात का कारखाना बनाया जा रहा है, जिसमे १० लाख टन इस्पात बनाया जायेगा, किन्तु इसके यन्त्रो मे थोडा सा विस्तार करके इसका उत्पादन १५ लाख टन तक किया जा सकेगा। योजनानुसार इसकी उत्पादन क्षमता २० लाख टन रखी गई है। ३ फरवरी सन् १६५६ को रूरकेला इस्पात कारखाने की प्रथम धमन भट्टी का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा था कि "रूरकेला, भिलाई एवम् अन्य योजनाएं हमारी महत्त्वाकांक्षाओ की प्रतीक हैं। हमने हितकारी राज्य की स्थापना का सकल्प किया है, जिसमे प्रत्येक व्यक्ति का अपना घर हो और उसे पर्याप्त भोजन तथा कपडा मिले। ये भारी उद्योग उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रथम प्रयास है। मुझे आज रूरकेला कारखाने के उदघाटन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मुझे आशा है कि इस कारखाने से हमे अपने हितकारी राज्य का स्वप्न पूरा करने मे बहुत मदद मिलेगी।" राष्ट्रपति ने आगे कहा कि इस क्षेत्र मे खनिज काफी मात्रा मे है। रूरकेला और अन्य छोटे कारखानो मे इसका उपयोग होगा। राष्ट्रपति ने आशा प्रगट की कि कुछ समय बाद यह जर्मनी के प्रसिद्ध औद्योगिक केन्द्र रूट का मुकाबला करने लगेगा। रूरकेला कारखाने एव हीराकुण्ड बाँध से इस क्षेत्र के लोगो की उन्नति होगी। यही नही, बल्कि इससे देश की आर्थिक स्थिति भी सुधरेगी। रूरकेला कारखाने के समीप ही पर्याप्त कच्चा माल उपलब्ध है। खनिज लोहा प्राप्त करने के लिये यहाँ से ४५ मील दूर बरसुआ मे नई खान खोदी जा रही है। इस कारखाने के लिये कोयला विहार की करगली, बोकारो एव झरिया की खानो से प्राप्त किया जावेगा। करगली मे कोयला धोने का कारखाना भी स्थापित किया जायेगा। इसके अलावा कारखाने के लिये चूने के पत्थर की व्यवस्था हाथीबाड़ी और वीरमित्रपुर से की जा रहा है, जो कारखाने से १५ मील दूर है।

(२) भिलाई (मध्य-प्रदेश)—

दिनाक ४ फरवरी सन् १६५६ को राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने भिलाई कारखाने की धमन भट्टी का उद्घाटन करते हुए कहा कि—"कारखाने का यह आरम्भ देश की आर्थिक स्थिति को बदलने तथा अपने अनन्त प्राकृतिक साधनो का उपयोग करके लोगो

के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाने की हमारी आशाओं का प्रतीक है। मैं समझता हूँ कि वह दिन दूर नहीं, जब देश के लोगों के ये प्रयत्न फलदायी होंगे। उन्होंने कहा कि यह विशाल कारखाना उज्वल भविष्य के प्रति देश के विश्वास और बाधाओं को पार करके आगे बढ़ने का निश्चय प्रतीक है। भारी उद्योग खड़े करने के हमारे कार्यक्रम में इन इस्पात कारखानों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कल मैंने रूरकेला का उद्घाटन किया और आज इस भिलाई कारखाने का उद्घाटन कर रहा हूँ। ये दोनों दिन भारत के औद्योगीकरण के इतिहास में अविस्मरणीय रहेंगे।"

नागपुर से १५६ मील दूर बम्बई कलकत्ता की मुख्य रेल्वे लाइन पर स्थित है भिलाई। भिलाई कारखाने में ७,७०,००० टन इस्पात की सिलें तैयार की जायेंगी, जिनमें रेल की पटरियाँ और स्लीपरें, इमारतों में काम आने वाला सामान तथा चद्दरें आदि बनाई जायेंगी। योजनानुसार कारखाने का विस्तार कर इसकी उत्पादन क्षमता को २५ लाख टन इस्पात की सिलों तक बढ़ाया जा सकता है। इस कारखाने के लिये रजहड़ा की खानों से खनिज लोहा मँगाया जायेगा, यह भिलाई से ६० मील दूर है। कोयला बिहार की करगली, बुकारो एवं झरिया तथा मध्य प्रदेश की कोरबा की खानों से आयेगा। चूने का पत्थर भिलाई से १२ मील दूर नन्दनी की खानों से लिया जायेगा। भिलाई इस्पात कारखाना रूस के सहयोग से खोला गया है। रूस के द्वारा इस कारखाने को आर्थिक तथा शिल्पिक सहायता दी जा रही है।

(३) दुर्गापुर (पश्चिमी बंगाल)—

दुर्गापुर का इस्पात कारखाने का निर्माण अन्य दोनों कारखानों के बाद प्रारम्भ हुआ, फिर भी काम विधिवत एवं अत्यन्त शीघ्रता से चल रहा है। इस कारखाने के निर्माण में कुछ ब्रिटिश फर्में भी सहयोग दे रही हैं। दुर्गापुर कारखाने की लागत के लिये ब्रिटेन के बैंकों की एक सिण्डीकेट ११५ लाख पौण्ड और ब्रिटिश सरकार १५० लाख पौण्ड दे रही है। दुर्गापुर कारखाने के लिये बारकर तथा झरिया की खानों का कोयला उपयोग में लाया जायेगा। चूने का पत्थर बीरमित्रपुर तथा हाथी बाड़ी क्षेत्र से मँगाया जायेगा। दुर्गापुर का दामोदर घाटी निगम १ लाख ५० हजार किलोवाट क्षमता का एक ताप बिजलीघर बना रहा है। इसके अलावा कारखाने का अपना १५ हजार किलोवाट की क्षमता का ताप बिजलीघर काम करेगा।

उद्योग की वर्तमान स्थिति एवं भविष्य—

देश में लोह एवं इस्पात के लगभग १३६ कारखाने बिहार, बंगाल, मद्रास, उड़ीसा, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में केन्द्रित हैं। इस उद्योग में लगभग ८६ हजार श्रमजीवी कार्य करते हैं। इस समय निजी क्षेत्र में, हमारे देश में टिस्को', 'इस्को' तथा स्काब की संयुक्त संस्था एवं 'मैसूर आयरन वर्क्स भद्रावती'—तीन प्रमुख कारखाने लोहे एवं इस्पात का उत्पादन कर रहे हैं। इन सबकी उत्पादन शक्ति १८,७८,००० टन वाला हुआ लोहा व १०,५०,००० टन इस्पात है। इन उत्पादकों की पूँजी ६४ करोड़ रु० है।

उत्पादन—

निम्न तालिका मे लौह एव स्पात का वर्तमान उत्पादन दिखलाया गया है —

लोहा और इस्पात

वर्ष	कच्चा लोहा (००० टन)	सीधी ढलाई (००० टन)	लौह मिश्रित धातु (००० टन)	इस्पात के पिण्ड और ढलाई (००० टन)	अधूरा तैयार इस्पात (००० टन)	तैयार स्पात (००० टन)
१९५२	१,६८४.८	१२६.६	४० ८	१,५७८.०	१,३०८.०	१,१०२ ८
१९५३	१,६५४ ८	११४ २	७ २	१,५०७.२	१,२३०.०	१,०२३ ६
१९५४	१,७१२ ८	१२७ २	४०.८	१,६८४ ८	१,४५२ ०	१,२४३ २
१९५५	१,७५६ ८	१२६ ०	१२ ०	१,७०४ ०	१,४५६ ८	१,२६० ०
१९५६	१,८०७ २	१२२ ४	२८.८	१,७३७ ६	१,४८४.४	१,३३८.०
१९५७	१,७८९ २	११२ ८	९ ६	१,७१४.८	१ ४४० ०	१,३४६ ४
१९५८	२,०११,२	७२.०	२६.४	१,८१३ २	१,४९९.६	१,२९९.६
१९५९	२,९९४.०	४४.४	२१ ६	२,४४३ ६	२,२२०.०	१,७३६.४
१९६०	४,१४९.६	३६.०	७ २	३,२८६ ८	३,४६३.२	२,२०८ ०
१९६१ जनवरी	४११.०	६ १	० ८	३४१ ३	१००.७	२३८ ७
फरवरी		३ ९	०.७	२९५.१	९२ ३	२२२ ३

उद्योग की समस्याएं—

भारतीय लौह एवं इस्पात उद्योग की निम्नलिखित मुख्य समस्याएं हैं—

(१) वित्त—इस उद्योग को नई मशीने लगाने तथा पुरानी मशीनो को ठीक करने के लिए बहुत धन की आवश्यकता है। इस कार्य के लिये ३ १५ करोड डालर का एक ऋण विश्व बैंक से प्राप्त किया गया है।

(२) श्रम—उद्योग के सम्मुख दूसरी मुख्य समस्या श्रम की है। श्रमिक कार्य तो करना चाहते है, परन्तु वे ऊँची मजदूरी लेकर कार्य करने को तैयार होते है। श्रम की कार्यक्षमता मे भी कोई वृद्धि नही हुई है।

(३) सरकारी नीति—सरकार की इस उद्योग के प्रति कोई सन्तोषजनक नीति नही है। सरकार निजी पूँजी को अधिक प्रोत्साहित नही करना चाहती, वह उसकी ओर शका की दृष्टि से देखती है। इस कारण से उद्योगपति अपना धन उद्योग मे लगाने से डरते है।

(४) श्रेष्ठ कोयले का अभाव—उद्योग के लिये आवश्यक श्रेष्ठ कोयले का अभाव है। भारत मे श्रेष्ठ कोयला (कोकिंग) बहुत कम मात्रा मे उपलब्ध है। साथ ही, यहाँ पर अच्छे कोयले का प्रयोग रेलगाडियो को चलाने मे भी किया ।। है।

(५) कर्मचारियो का प्रशिक्षण—नव निर्मित इस्पात के प्रत्येक कारखाने के लिये ६७० इन्जीनियर तथा अन्य उच्च निरीक्षक एव कर्मचारियो की आवश्यकता होगी, इसके साथ ही ६,३०० कारीगर एव शिक्षित मजदूर भी चाहिये। भारत मे योग्य कारीगरो, इन्जीनियरो, श्रमिको, कर्मचारियो का अभाव है, क्योकि इस उद्योग का विकास हुए यहाँ अधिक समय नही हुआ है। अतः उद्योग के लिये कर्मचारियो को प्रशिक्षण देने की भी महत्त्वपूर्ण समस्या है।

इस समस्या के हल के लिये निजी क्षेत्र मे प्रयत्न जारी हैं। सरकार की ओर से २४१ इन्जीनियर रूस मे प्रशिक्षण प्राप्त करने भेजे गये है, कुल ६८३ इन्जीनियरो को प्रशिक्षण देना है। रूरकेला एव दुर्गापुर कारखानो के लिये फोर्ड फाउण्डेशन की सहायता से अमेरिका मे बहुत से इन्जीनियरो को प्रशिक्षण दिया जावेगा। कोलम्बो योजना के अन्तर्गत ब्रिटेन मे भी ३०० इन्जीनियरो को दुर्गापुर कारखाने के लिये प्रशिक्षण दिया जायगा।

जमशेदपुर मे भी प्रशिक्षण का एक विशाल केन्द्र चल रहा है, जिसमे विदेशो को जाने के पूर्व इन्जीनियरो को प्रशिक्षण दिया जायेगा। इस प्रकार सरकार इस समस्या की ओर पूरा ध्यान दे रही है।

(६) उत्पादन की लागत—इन कारखानो मे निर्माण पर जो अधिक खर्च पड रहा है, उससे तैयार इस्पात की लागत भी अधिक पडगी। इन कारखानो मे पूँजी अधिक लगने के कारण उत्पादन लागत अधिक पडेगी। किन्तु इस समस्या को

सचालन लागत कम करके हल किया जा सकता है। नये कारखानो मे नये यन्त्रो को चलाने से कम मनुष्यो की आवश्यकता होगी। इनका अच्छा संगठन होने की आशा है, फलतः पूँजीगत लागत अधिक होने पर भी उत्पादन लागत के बराबर ही पडेगी।

(७) विवेकीकरण एव आधुनिकीकरण—उत्पादन की लागत की समस्या को सुलझाने के लिये उद्योग का विस्तार एव नवीनीकरण किया जाना चाहिये। उत्पादन व्ययो मे अभिनवीकरण एवं वैज्ञानिक प्रबन्ध के द्वारा भी कमी की जा सकती है। हमारी औद्योगिक नीति भी ऐसी होनी चाहिये, जिससे उद्योग का पर्याप्त विकास हो सके। फोर्ड फाउण्डेशन की रिपोर्ट के अनुसार बिना विवेकीकरण के भारतीय श्रमिकों की कार्य-क्षमता एव दक्षता का अनावश्यक रूप से ह्रास होता है। आधुनिकीकरण के अभाव मे वे वर्तमान टेक्नोलॉजी का सदुपयोग नही कर पाते। फलतः अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा मे भी टिकना कठिन हो सकता है। आधुनिकीकरण के विरोध मे श्रम सघो की जो दलीले है वे पूर्णत थोथी प्रतीत होती है और उनका दृढता के साथ सामना किया जाना चाहिये। हाँ, यह अवश्य है कि विवेकीकरण के परिणामस्वरूप जिन श्रमिको की छटनी की जाये, उनको रोजगार देने की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिये।

(८) कर की समस्या—गगनचुम्बी करारोपण ने भी भारतीय उद्योगपतियो को निरुत्साहित किया है। सन् १९४८ की अपेक्षा आज भारत सरकार ने सम्पत्तियो पर मूल्य-ह्रास की दर को काफी बढा दिया है और इसके लिये भारत सरकार बधाई की पात्र है, परन्तु फिर भी हमारे उद्योगपति यह अनुभव करते हैं कि आय कर व सुपर टैक्स की दरे बहुत ऊँची है, जिसके कारण वे विस्तार व आधुनिकीकरण से सम्बन्धित योजनाओ को कार्यान्वित करने के लिए पर्याप्त मात्रा मे पूँजी का सचय नही कर पाते।

लौह-इस्पात परामर्शदाता समिति—

९ फरवरी सन् १९६० को लौह एव इस्पात परामर्शदाता समिति की प्रथम बैठक हुई, जिसमे देश के विभिन्न इस्पात उद्योगपतियो ने इस उद्योग से सम्बन्धित समस्याओ पर विचार-विमर्श किया। एसोसियेटेड चेम्बर ऑफ कॉमर्स के सर वाल्टर मिचिल मोरा (Sir Walter Michelmora) ने श्रेष्ठ किस्म के कोयले एवं विद्युत के अभाव पर प्रकाश डाला। उन्होने सकेत किया कि रेलो के विद्युतिकरण से लौह एव इस्पात उद्योग के लिये 'शक्ति' की समस्या अत्यन्त गहन हो जायेगी, क्योंकि उत्पादित विद्युत शक्ति का उपयोग रेलो मे अधिक किया जायेगा। 'टिस्को' के श्री स्लीटस (Mr. Sleetus) ने यह सुझाव दिया कि इस्पात के मूल्यो मे कुछ कमी की जानी चाहिये। इन्होने इस बात की भी सिफारिश की कि देश के इस्पात उद्योग की उचित प्रगति के लिये एक उच्च स्तरीय वैधानिक बोर्ड स्थापित किया जाये। इण्डियन आयरन एण्ड स्टील के श्री कपूर (Mr. Kapoor) ने सुझाव दिया कि देश मे इस्पात के उपभोग की प्रवृत्ति का अध्ययन करने से भी बहुत लाभ हो सकता है। मद्रास के स्वामी एम० एल० ए० ने बतलाया कि भारत के दक्षिण मे इस्पात की

बहुत कमी है, अतएव इसके उत्पादन को बढाने की चेष्टा करनी चाहिये। फेडरेशन ऑफ इण्डियन चैम्बर एण्ड कॉमर्स इण्डस्ट्रीज के श्री जी० एल० बन्सल (Mr G. L. Bansal) ने इस्पात के वितरण पर से नियन्त्रण हटाने का सुझाव दिया।

तृतीय पंच-वर्षीय योजना मे उद्योग—

इसमे १०२ लाख टन इस्पात के ढोके और १५ लाख टन बिक्री के लिए लोहा बनाने का लक्ष्य है। निजी उद्योग का हिस्सा ३२ लाख टन इस्पात होगा। इस समय निजी उद्योगो की क्षमता ३० लाख टन की है। २ लाख टन इस्पात, निजी क्षेत्र मे कतरनो और पुराने लोहे को गलाने वाली बिजली की भट्टियो मे बनेगा। इसी तरह निजी क्षेत्र के कारखानो मे बिक्री के लिए ३ लाख टन लोहा भी बनेगा। सरकारी क्षेत्र मे सबसे जरूरी काम होगा कि दूसरी योजना मे जो इस्पात कारखाने कायम हुए हैं उनमे पूरी क्षमता से उत्पादन कराना। तीसरी योजना मे भिलाई, दुर्गापुर, राउरकेला और मैसूर लोहा और इस्पात कारखाने के विस्तार का और बोकारो मे नया इस्पात कारखाना लगाने का कार्यक्रम है। इसके अलावा नैवेली के लिगनाइट से चलने वाला लोहे का कारखाना भी खोला जायगा। बोकारो मे २० लाख टन इस्पात के ढोके बनाने का लक्ष्य है, पर प्रारम्भ मे १० लाख टन बनाने की मशीन लगायी जाएँगी। सरकारी क्षेत्र मे इस्पात बनाने के इन कार्यक्रमो पर कुल ५२५ करोड ८० खर्च होने का अनुमान है। मोटे तौर पर अनुमान है कि तीसरी योजना की अवधि मे देश मे २४० लाख टन तैयार इस्पात बनेगा। इसमे ३ लाख सन् १९६५-६६ मे बोकारो के कारखाने मे बनने की आशा है।

इसके अतिरिक्त १½ मिलियन टन पिग आयरन के उत्पादन की आशा है, जिसका उपयोग विक्रय के लिए किया जायेगा।

उपसंहार—

६ फरवरी सन् १९६० को हुई लोह-इस्पात परामर्शदाता समिति की प्रथम बैठक मे केन्द्रीय इस्पात एवम् ईंधन मन्त्री सरदार स्वर्णसिंह ने बतलाया कि देश मे लोह एवम् इस्पात उद्योग का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। उन्होने यह सकेत किया कि निकट भविष्य मे एक ऐसी सस्था का निर्माण किया जायेगा, जो निजी व राजकीय क्षेत्र के इस्पात के कारखानो की बढती हुई आवश्यकताओ (विशेषतः कच्चे माल की पूर्ति से सम्बन्धित) की सन्तुष्टि का ध्यान रखेगा।

उसी अवसर पर उद्योग मन्त्री श्री मनुभाई शाह ने बतलाया कि अभी एक-दो वर्ष तक हमारे पास इस्पात का आधिक्य नही होगा। क्योंकि हमारी निजी आवश्यकताएँ ही बहुत हैं। यदि थोडा बहुत आधिक्य होगा भी तो उसके लिए हमको निश्चय बाजार मिल जायगा। जिन जिन देशो से भारत के व्यापारिक सम्बन्ध हैं, उनमे से अनेक ने ५-५, ७-७ वर्ष के लिए लोह इस्पात आयात करने की इच्छा प्रकट की है। इससे उद्योग के उज्ज्वल भविष्य का आभास मिलता है।

STANDARD QUESTIONS

1. Briefly trace the origin, progress, present position and problems of the Iron and Steel Industry.
2. Discuss the principal problems of the Indian Iron and Steel Industry and suggest remedies to solve them.

———

अध्याय ६५

भारतीय चीनी उद्योग

(Indian Sugar Industry)

प्रारम्भिक—

भारत के सगठित उद्योगो मे सूती कपडे के बाद चीनी उद्योग ही प्रमुख उद्योग है। यह उद्योग भारत का प्राचीन उद्योग है। जब विश्व के अन्य देश इस वस्तु के नाम से अनभिज्ञ थे, उस समय भारत इससे परिचित था। ईसा के चार शताब्दी पहले कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' मे गन्ने के द्वारा चीनी बनाने तथा शीरे से मद्यसार निकालने की विधियों का उल्लेख किया है। १७वी शताब्दी के प्रारम्भ मे सूरत व कालीकट से बहुतसी सफेद चीनी और खाड निर्यात की जाती थी। बनारस की निर्मित चीनी विदेशो मे बड़ी प्रसिद्ध थी और देश की आन्तरिक आवश्यकताओ की पूर्ति भी इससे होती थी। आज भी हमारे देश मे ससार की कुल गन्ने की उपज का २६% भाग होता है। सरकार को इस उद्योग से लगभग ८५ करोड़ रुपये की वार्षिक आय होती है। उद्योग की कार्यशील पूँजी भी १०० करोड रुपये से अधिक है।

उद्योग का विकास—

भारत मे आधुनिक चीनी उद्योग की नीव सन् १८६६ मे पडी; जबकि सरकार ने चीनी के आयात पर कर लगा दिया। इस प्रतिबन्ध की आड़ मे चीनी के आधुनिक कारखाने उत्तरी भारत मे खोले गये, परन्तु शताब्दी के आरम्भ मे प्रायः यह कुटीर-उद्योग अवनति कर रहा था। उत्पादन के ढग अवैज्ञानिक थे, जिससे कीमत

अधिक होती थी और भारत अन्य देशो की स्पर्धा से लड़खड़ा रहा था। प्रथम युद्ध तक आते-आते भारत इसके उपभोग के लिये आयात पर निर्भर हो गया। सन् १९०१-१९१० के मध्य भारतीय गन्ने की नस्ल सुधारने तथा उत्पादन मे वृद्धि करने के प्रयत्न किये गये। सन् १९०१ मे गन्ने के सुधार के लिए एक अनुसन्धान केन्द्र खोला गया। सन् १९१९-२० मे एक चीनी समिति भी स्थापित की गई। इन प्रयत्नो के फलस्वरूप गन्ने का उत्पादन बढा।

उद्योग को संरक्षण—

सन् १९२९ मे चीनी समिति ने सिफारिश की कि आधुनिक ढग के चीनी के कारखाने खोलने पर विचार किया जाय और विदेशो से चीनी आयात करने मे करोडो रुपयों की हानि को रोका जाय। फलत. भारत सरकार ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिए टैरिफ बोर्ड नियुक्त किया, जिसकी सिफारिशो के आधार पर सरकार ने इस उद्योग को सन् १९३१ से १५ वर्ष के लिए सरक्षण देना स्वीकार किया। सरक्षण के लिए चीनी के आयातो पर पहले सात वर्षो के लिए ७½ प्रति हन्डरवेट के हिसाब से सरक्षण कर लगाया। सन् १९३१ मे चीनी का आयात १० लाख टन था, जो सन् १९३६-३७ मे १९ हजार टन रह गया। आयात के कम होने से जो हानि हुई उसकी पूर्ति के लिए आबकारी कानून के अन्तर्गत २।) प्रति हन्डरवेट की दर से कर लगाया गया। गन्ने के क्षेत्र मे भी वृद्धि की गई। सन् १९३१-३२ मे भारत मे कुल ३२ चीनी मिलें थी, किन्तु अगले पाँच वर्षो मे ही सख्या ३२ से बढकर १३० हो गई। निम्न-लिखित तालिका से चीनी उद्योग का आभास मिलता है—

चीनी उद्योगो का विकास

वर्ष	मिलो की सख्या	गन्ने का उत्पादन (हजार टनो मे)
१९३१-३२	३२	१,६०
१९३८-३९	१३२	६,४२
१९४५-४६	१३८	९,२३
१९५०-५१	१३९	११,१६
१९५५-५६	१४३	१८,५६
१९५६-५७	१६६	२०,३९
१९५७-५८	—	२०,०६
१९५९	—	२०,८४

उत्पादन बढने ही चीनी का मूल्य बहुत बढ गया तथा पारस्परिक प्रतिस्पर्धा बहुत बढने लगी।

सन् १९३७ मे भारतीय चीनी संघ की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य पारस्परिक प्रतिस्पर्धा दूर करना, बिक्री का नियमन एव उद्योगो को सङ्गठित करना था। इसके प्रयत्नो से चीनी बाजार की दशा मे सुधार हुआ। सरकार ने कुछ कानून बनाये, जिससे सब मिलें इस सघ की सदस्य बन जायें। जब मूल्य अनुचित रूप से बढने लगे, तो सरकार ने इससे मान्यता हटा ली। फलतः अधिकाश मिलें इस सघ से हट गई और पारस्परिक प्रतिस्पर्धा फिर बढ गई। सन् १९४० मे उद्योगपतियो की प्रार्थना पर सरकार ने सघ को फिर मान्यता दे दी, किन्तु निम्न शर्तों का पालन आवश्यक कर दिया— सघ केवल विक्री एजेन्ट का कार्य करेगा, प्रत्येक मिल के लिए उत्पादन-कोटा निश्चित किया जायगा और सघ को एक चीनी आयोग की देख-रेख मे काम करना पडेगा। एक चीनी आयोग नियुक्त हुआ, जिसका कार्यवाहक एक सरकारी अफसर था।

द्वितीय महायुद्ध एवं इसके बाद—

द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ होते ही चीनी का मूल्य बढने लगा। देश मे चीनी का उत्पादन इतना कम हो गया था कि देश की भीतरी माँग भी पूरी न हो सकी। सन् १९४२ मे सरकार ने चीनी के मूल्य और वितरण पर नियन्त्रण लगा दिया। नगरो मे चीनी का राशनिग चालू किया गया। चीनी कन्ट्रोलर गन्ने और चीनी का मूल्य निश्चित करता था। एक राज्य से दूसरे राज्य मे चीनी का आयात भी नियन्त्रित हो गया। गन्ने की स्थिति मे सुधार करने के लिए सन् १९४४ मे एक भारतीय केन्द्रीय गन्ना समिति स्थापित की गई। फिर भी चीनी का उत्पादन कम होता चला गया और आयात न होने के कारण देश मे चीनी की कमी हो गई, कीमत ५ गुनी बढ गई और चोरबाजारी का प्रकोप हो गया। नियन्त्रण सन् १९४७ तक चलता रहा, किन्तु बाद को गान्धीजी के प्रयत्नो के कारण इसे हटा लिया गया। नियन्त्रण हट जाने से उत्पादन मे बहुत वृद्धि हुई, किन्तु चीनी उद्योग पर इसका बुरा प्रभाव पडा, अतः सरकार को फिर नियन्त्रण चालू करना पडा। सरकार ने मूल्य, वितरण तथा उत्पादन के नियमन का उत्तरदायित्व अपने अन्तर्गत कर लिया। चीनी का उत्पादन बढने के कारण सरकार ने चीनी सघ के परामर्श से चीनी का मूल्य ३५।≋) मन निश्चित किया और गन्ने का मूल्य उत्तर-प्रदेश मे १।) मन से बढाकर २) मन कर दिया। इस प्रकार नियन्त्रण अधिक व्यापक हो गया।

सन् १९५० मे १८ वर्ष पुराना सरक्षण समाप्त कर दिया गया और सन् १९५०-५१ मे भारत सरकार ने एक 'मुक्त-चीनी' योजना बनाई, जिसके अनुसार चीनी मिलें अपना अधिकतम कोटा उत्पन्न करने के बाद अपनी फालतू चीनी खुले बाजार मे बेच सकती थी। परिणामत. उत्पादन बढने लगा। सन् १९५०-५१ मे १२ लाख टन उत्पादन था, जो सन् १९५१-५२ मे १४·९ लाख टन हो गया। ३० जून सन् १९५६ तक चीनी की उत्पत्ति १८¾ लाख टन हो गई। देश मे चीनी की खपत इस समय १८ लाख टन है। इस प्रकार आज हम केवल आत्म-निर्भर ही नही, विदेशों को निर्यात करने की स्थिति मे भी हैं।

चीनी उद्योग की वर्तमान स्थिति—

भारत में चीनी-उद्योग एक प्रमुख वृहत् उद्योग है। देश मे आजकल १५८ चीनी मिलें हैं। गन्ने की उत्पत्ति करने मे २ करोड किसान लगे हुए हैं और उद्योग में ७७,००० मजदूर काम करते है। देश मे केवल २५% गन्ना चीनी बनाने के काम आता है, बाकी का गुड बनाया जाता है। देश मे हर साल लगभग ८८ करोड रुपये की चीनी व १ अरब रुपये का गुड तैयार होता है। देश मे ईख के क्षेत्र का आधे से अधिक भाग (२०,४६,००० एकड) उत्तर-प्रदेश मे है। इसके बाद पजाब में ३,२४,००० एकड मे, बिहार में ३ लाख एकड मे, बम्बई मे १,६२,००० एकड में, मद्रास मे १ लाख १७ हजार एकड मे, आन्ध्र मे १.२२,००० एकड मे, हैदराबाद में ६२ हजार एकड मे, मैसूर मे ५७ हजार एकड मे, पश्चिमी बगाल मे ४७ हजार एकड मे और मध्य प्रदेश मे १४,००० एकड मे ईख बोई जाती है। उत्तरी भारत में ईख की उपज बढाने का यत्न किया जा रहा है। इसके लिये उत्तर-प्रदेश, बिहार और पजाब के किसानो को रासायनिक खाद उधार दी जा रही है, जिसे फसल के बाद चुकाया जा सकता है। भारत सरकार इन तीन राज्यो मे गन्ने की उपज बढाने का प्रयत्न कर रही है, जिससे देश आत्म निर्भर हो सके। इसके अलावा एक विशेषज्ञ समिति समस्त देश के ईख क्षेत्र के लाभार्थ योजना तैयार कर रही है। उन्नति का कार्य मद्रास, आन्ध्र, पश्चिमी बगाल मे भी किया जा रहा है।

उत्पादन—

निम्न आंकडो से चीनी के वर्तमान उत्पादन का अनुमान लगाया जा सकता है—

वर्ष	उत्पादन (हजार टनो मे)
१९५३	१,२९१ २
१९५४	१,००२ ०
१९५५	१,५९४ ८
१९५६	१,८५६ ४
१९५७	२,००७ ६
१९५८	२,००७·६
१९५९	१,९१९ ०
१९६०	२,४४४ ०
१९६१—	
जनवरी	५४१ ३
फरवरी	५३१ ८

पंच-वर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत उद्योग—

प्रथम पंच-वर्षीय योजना में सरकार ने सन् १९५५-५६ तक उत्पादनक्षमता लक्ष्य १·५५ मि० टन रखा था तथा प्रति व्यक्ति उपभोग का लक्ष्य ८·७ पौंड रखा था, जबकि युद्ध-पूर्व का उपभोग औसत ६ ६ पौंड था। गन्ने का अतिरिक्त उत्पादन-लक्ष्य ७,०३,००० टन (गुड) रखा गया था। योजना के प्रथम वर्ष में गन्ने की ऊँची कीमत के कारण गन्ने के उत्पादन तथा खेती में बडी वृद्धि हुई और चीनी का उत्पादन लगभग १५ लाख टन हुआ, परन्तु सन् १९५१-५२ में १ रु० १२ आना प्रति मन से सन् १९५२-५३ में १ रु० ५ आना तथा सन् १९५३-५४ में १ रु० ७ आना गन्ने का मूल्य हो जाने से खेती तथा पैदावार दोनों में कमी हो गई थी। तीसरी योजना में प्रतिवर्ष ३५ लाख टन चीनी बनाने का लक्ष्य है। आशा है कि इसका २५% सहकारी कारखानों में बनेगा। देश की जरूरत पूरी होने के बाद कुछ चीनी बच रहेगी जो निर्यात की जायेगी।

चीनी-उद्योग की विशेष समस्यायें—

चीनी-उद्योग के सामने निम्न समस्यायें हैं, जो इसकी प्रगति में बाधक हैं—

(१) प्रति एकड पैदावार में कमी—उत्तरी भारत में प्रति एकड लगभग १४-१५ टन और दक्षिणी भारत में २० टन गन्ना उगाया जाता है, जबकि जावा तथा हवाई द्वीपों में यह क्रमश. ५६ और ६२ टन है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण भाई देश के अधिकतर गन्ने का गुड बना लेते हैं। इससे चीनी उद्योग को पर्याप्त क्षति होती है।

(२) गन्ने की निम्न कोटि—भारतीय गन्ने की किस्म भी बहुत खराब है। गन्ने में चीनी की मात्रा कम होती है। सन् १९४७ ४८ में गन्ने से केवल ८·८५% चीनी निकलती थी, जबकि जावा, फारमूसा और क्वींसलैंड में क्रमश. ११·४६, १२ ०५ और १४·२२% निकलती है।

(३) गन्ने का अधिक मूल्य—भारत में सरकार गन्ने का मूल्य निश्चित करती है, जो चीनी की कुल लागत का ६०% होता है, अतः मिल मालिकों का कथन है कि उनकी कुछ भी बचत नहीं होती। गन्ने का इतना अधिक मूल्य इसलिए है कि भारत में चीनी मिलों के पास अपने बडे-बडे खेत नहीं हैं, वरन् किसानों पर निर्भर रहना पडता है, जो उसे छोटे-छोटे अनार्थिक खेतों पर उगाते हैं। मूल्यों के सम्बन्ध में एक समस्या यह भी है कि गन्ने का मूल्य केवल तौल के आधार पर तय किया जाता है, किस्म से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसमें मिलों को काफी हानि होती है।

(४) त्रुटिपूर्ण स्थानीयकरण—देश की अधिकाश मिलें उत्तरी भारत में स्थित हैं, जहाँ गन्ना बहुत कम होता है और उनमें पारस्परिक स्पर्धा बढ जाती है, लेकिन मद्रास में जहाँ पर्याप्त गन्ना उत्पन्न होता है, मिलों की कमी है।

(५) ऊँचे कर—भारत में चीनी पर उत्पादन कर केन्द्रीय सरकार लगाती है और गन्ने पर उप-कर (Cess) राज्य सरकारें लगाती हैं। इन करों की आय का बहुत सा धन दूसरे कामों में लगा दिया जाता है।

(६) उतोत्पाद का अभाव—चीनी के उद्योग के सहारे अल्कोहल तथा पट्ठे के उद्योग भी चल सकते हैं, परन्तु अभी तक इस प्रकार के उद्योग बहुत कम चलाये गये हैं। चीनी से और भी बहुत सी चीजें बनाने की सम्भावना है, जैसा कि डाक्टर एच० बी० हेस (यू० एस० सुगर रिसर्च फाउन्डेशन के अध्यक्ष) ने कहा था—"यदि हमारा वश चलेगा तो एक दिन तुम चीनी पहनोगे, चीनी से सफाई करोगे, चीनी को रंगों व प्लास्टिक के काम मे लाओगे, अपने पौधों पर छिड़कोगे, अपने पशुओं को खिलाओगे।"

(७) ईंधन की कमी—ईंधन की कमी को दूर करने के हेतु वाष्प के प्रयोग मे मितव्ययिता करने की आवश्यकता है, जिससे उत्पादन व्यय कम हो कर कीमत भी गिरें।

उन्नति के लिए सुझाव—

उद्योग की प्रगति के लिए उक्त समस्याओं का हल करना आवश्यक है। चीनी के उद्योग के सुधार के लिए योजना आयोग ने निम्न सुझाव दिए हैं :—

(अ) नई मिलो की स्थापना करने की अपेक्षा पुरानी मिलो के विस्तार का प्रयत्न करना चाहिए।

(आ) जो मिलें गन्ने की पूर्ति के स्थानों से दूर बसी हैं उनको अपनी स्थिति बदलनी चाहिए, जिससे भाड़े मे बचत हो।

(इ) गन्ने के उप-कर को गन्ने के अनुसन्धान पर खर्च किया जाय।

(ई) उद्योग को मशीनें प्राप्त करने की सुविधा दी जाय, जिससे वे घिसी हुई पुरानी मशीनों को हटा सकें।

(उ) सरकार को समय-समय पर चीनी के उत्पादन पर नियन्त्रण, गुड़ व चीनी के मूल्यों के उतार-चढ़ाव पर विचार करते रहना चाहिए, जिससे उद्योग की उचित उन्नति हो सके।

(ऊ) किसान के गन्ने का मूल्य वजन के अनुसार न दिया जाय, वरन् गन्ने मे चीनी की मात्रा के अनुसार दिया जाय, जिससे किसान गन्ने की किस्म को सुधारने का प्रयत्न करे।

चीनी उद्योग की विकास सभा के सुझाव पर भारत सरकार ने एक प्रतिनिधि मण्डल आस्ट्रेलिया व इण्डोनेशिया भेजा था, जिसकी रिपोर्ट सन् १९५६ मे प्रस्तुत हुई। इसमे चीनी-उद्योग की उन्नति के लिए निम्न सुझाव दिए गये हैं :—

(१) चीनी के मूल्य पर कन्ट्रोल न लगाया जाय, क्योंकि भारत तथा आस्ट्रेलिया का अनुभव है कि इनके कारण उद्योग के विकास मे बाधा पड़ती है। (२) चीनी व गुड़ की बिक्री के लिए कोई केन्द्रीय सभा नियुक्त न की जाय। (३) चीनी के मूल्य तथा बँटवारे पर जो नियन्त्रण है तथा सरकार जो २५% चीनी को नियन्त्रित मूल्य पर बेचने का अधिकार रखती है और चीनी को विदेशों मे मँगाकर उसको निश्चित मूल्य पर बेचती है, उस नीति को वर्तमान मे कायम रखा जाय। (४) सरकार को

चाहिए कि हर वर्ष गुड की न्यूनतम कीमत निश्चित करे, जिससे गुड व चीनी के मूल्य तथा उत्पत्ति मे समतोल रहे। यदि गुड का मूल्य बाजार मे निश्चित मूल्य से कम हो, तो स्वय उसे खरीदे तथा गुड के खरीदने के लिए गुड के मुख्य उत्पादन क्षेत्रो मे सहकारी समितियाँ स्थापित करे। (५) गन्ने का मूल्य निश्चित करने मे परामर्श देने के लिए सरकार को एक स्थायी सलाहकार समिति नियुक्त करनी चाहिये, जिसमे गन्ना उगाने वालो व मिलो के बराबर-बराबर प्रतिनिधि हो और जिसका सभापति एक जज हो। (६) गन्ना उगाने वालो को गन्ने का मूल्य उसके गुण के अनुसार दिया जाय। (७) गन्ने की प्रति एकड उपज को बढाने के लिए निम्न उपाय किये जायें— (अ) गन्ने का उन्नत बीज होना तथा गन्ने को बीमारियो से बचाना, (आ) आस्ट्रेलिया तथा जावा से बढिया गन्ने का आयात करना और उसे भारत मे उत्पन्न करने का प्रयत्न करना। गन्ने के विभिन्न प्रकारो को अलग-अलग मिट्टियो तथा जलवायु मे उगा कर देखना व किसानो को उगाने के लिए देना, (इ) चीनी उत्पन्न करने के विषय मे एक अखिल भरतीय पत्रिका चालू करना, (ई) एक से अधिक मिलो वाले क्षेत्रो मे गन्ने के कीडो तथा रोगो को रोकने वाले बोर्ड स्थापित करना। (८) शीरे पर अनुभव करके देखना कि वह कहाँ तक पशुओ के उपयोग मे काम आ सकता है, उससे शक्ति उत्पादन की सम्भावनाएँ देखना व खोई से पट्ठा बनाना। शीरे का उचित बँटवारा करने के लिए उसे केन्द्रीय सरकार के आधीन लाना। (९) गन्ने के मोम को साफ करने के लिए अनुसन्धान करना, जिससे वह बहुत से उद्योगो के काम आ सके। (१०) आस्ट्रेलिया की भाँति गन्ना उगाने तथा चीनी बनाने वालो की सस्थाएँ स्थापित करना। (११) भारतीय ट्रेड मिशनो तथा दूतावासो द्वारा विदेशो मे गुड के बाजार तलाश क ना। (१२) चीनी अनुसन्धान की स्थापना करना व अनुसन्धान करने वाले लोगो को विदेशो मे भेजना। (१३) फल वाली वस्तुओ तथा दूध वाले उद्योगो को कम मूल्य पर चीनी देना। (१४) वर्तमान मिलो को बढाना, न कि नई मिलें स्थापित करना। (१५) विदेशों से खेती के औजार तथा चीनी उत्पन्न करने वाली मशीनो को बिना किसी आयात कर लगाये मँगाना।

अध्याय ६६

भारतीय कोयला उद्योग

(Indian Coal Industry)

प्रारम्भिक—

'काला हीरा' अर्थात् कोयला आधुनिक उद्योग का जन्मदाता है। यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण औद्योगिक ईंधनों मे से एक है। सारे ब्रिटिश कॉमनवैल्थ मे भारत दूसरे नम्बर का एवं विश्व मे आठवें नम्बर का उत्पादक है। कोयला निकालने के सम्बन्ध मे सबसे पहला अधिकृत वर्णन सन् १७७४ का है, जबकि वारेन हेस्टिंग्ज ने मैसर्स सैमनर एण्ड व्हीटले को बङ्गाल मे कोयले की खानो से कोयला निकालने की आज्ञा प्रदान की। यह प्रयत्न असफल रहा और इसके बाद सन् १८१४ तक अन्य कोई प्रयत्न न हुआ। इसी वर्ष रानीगज के निकट कोयला निकालने का काम पुनः आरम्भ किया गया। सन् १८६० तक वार्षिक उत्पादन ३,००,००० टन हो गया। सन् १८५५ मे कलकत्ते की ई० आई० रेल्वे ने इस क्षेत्र का उपभोग किया और इस प्रकार उद्योग का भविष्य सुरक्षित हो गया। सन् १८६८ के बाद कोयले के उत्पादन में प्रशसनीय प्रगति हुई। निम्नलिखित आँकडे इस बात के साक्षी हैं .—

कोयले का उत्पादन*

वर्ष	उत्पादन (लाख टनो मे)
१८६८	५
१८८०	१०
१८६०	२२
१६००	६१
१६१०	१२०
१६२०	१८०
१६३०	२३८

* India 1961, Page 324

१९४०	२५१
१९४६	२६०
१९५०	३२०
१९५५	३८२
१९५६	३९४
१९५७	४३५
१९५८	४५३
१९५९	४७०
१९६०	५१३

सन् १८७१ मे रेलवे ने गिरडीह क्षेत्र मे प्रवेश किया और शताब्दी के आरम्भ से इस क्षेत्र का उत्पादन ३० लाख टन हो गया। भरिया के क्षेत्र मे भी विकास हुआ। डाल्टनगंज क्षेत्र, रीवा राज्य, मध्य प्रान्त, हैदराबाद, आसाम और बिलोचिस्तान के क्षेत्र भी विकसित हुए। सन् १९००-०१ मे आयात १,४२,४६७ टन, निर्यात ५,४२,०२१ टन और उत्पादन ६१,१८,६९२ टन था, जिसका लगभग ९०% बगाल व बिहार से प्राप्त हुआ। सन् १९१४ तक कुल उत्पादन बढकर २६० लाख टन हो गया।

प्रथम महायुद्ध और उद्योग—

बढ़ी हुई औद्योगिक कार्यवाहियो के दबाव से कोयले की मांग उसकी पूर्ति से अधिक हो गई और इस अवधि भर उद्योग का यह प्रयत्न रहा कि यह बढ़ती हुई मांग के साथ अपनी गति कायम रखे। उत्पादन तेजी से सन् १९१८ मे २०० लाख टन हो गया। इसका ८५% उत्पादन रानीगज और भरिया क्षेत्र से प्राप्त हुआ। कोकिंग कोल की मांग एक दम बढ गई थी, अतः बोकारो के कोयला क्षेत्र का अत्यधिक विकास किया गया। कोक के यन्त्र कुल्टी मे और भरिया क्षेत्र की लोदना कोयला खान के पास लगाये गये। यही नही, कोयला-क्षेत्रो का विद्युतीकरण तेजी स किया गया और दो केन्द्रीय विद्युत स्टेशन बनाये गये।

लेकिन युद्ध-काल का यह विकास सीमित था और मशीन एव यन्त्र मिलने की कठिनाई के कारण जारी न रह सका। वृद्धि का क्रम सन् १९१९ मे अपने सर्वोच्च बिन्दु पर पहुँच गया और इसके बाद उत्पादन मे कमी आरम्भ हुई। आशावादी प्रबन्धको मे अपने लाभो को भी उद्योगो मे ही विनियोग कर दिया। युद्धोत्तर-काल की अन्य घटना इंडियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी द्वारा भट्टियाँ बनाना था, जिन्होने सन् १९२२ से कार्य आरम्भ किया। मांग मे कमी होने के साथ यह कठिनाई भी हुई कि श्रम सघर्ष हुये और निर्यात व्यापार मे तेजी से कमी आई। सरकार की नीति के कारण स्थिति मे सन् १९३६ तक कोई सुधार नही हो सका। आर्थिक मन्दी का तत्कालीन प्रभाव मूल्य गिराना था और वास्तव मे इस गिरावट के कारण ही उत्पादन मे अधिक कमी हुई। सन् १९३६ के बाद औद्योगिक कार्यों मे तीव्रता से वृद्धि हुई, जिनका प्रभाव यह हुआ कि कोयले की मांग पुनः बढ़ने लगी।

द्वितीय महायुद्ध के बाद—

द्वितीय महायुद्ध ने, जो सितम्बर सन् १९३९ मे आरम्भ हुआ, कोयला उद्योग को पिछले दो दशाब्दो मे हुई गम्भीर निराशा से उभरने की सामर्थ्य प्रदान की। माँग बढने से मूल्यो मे सुधार हुआ। कोयले की कमी घटती हुई यातायात सम्बन्धी कठिनाइयो और कोयले के गिरते हुये आयात के कारण और भी अधिक अनुभव होने लगी। फिर सैनिक योजनाओ मे श्रमिको को अधिक अच्छा काम मिलने लगा, अतः उत्पादन मे बडी कमी आगई। अन्त मे, सन् १९४४ के मध्य तक मूल्यो पर कडा नियन्त्रण रखना आवश्यक हो गया। इस बात का भी प्रबन्ध किया गया कि आवश्यक उपभोक्ताओ को कोयला एक योजनाबद्ध क्रम से ही प्राप्त हो। सरकार ने उत्पादन बढाने के लिये कोयला क्षेत्रो से बाहर श्रमिको की भरती करके, बोनस, ह्रास और अतिरिक्त लाभ-कर के सम्बन्ध मे रियायतो के रूप मे आर्थिक प्रलोभन देकर उत्पादन बढाने का प्रयत्न भी किया। इन उपायो से उत्पादन मे वृद्धि हुई।

पच-वर्षीय नियोजन के अन्तर्गत कोयला उद्योग—

प्रथम पच-वर्षीय योजना के लिए कोई लक्ष्य निर्धारित नही किया गया था; अत. सन् १९५५ मे केवल ३८१,३० लाख टन कोयले का उत्पादन हुआ। किन्तु द्वितीय योजना मे ६ करोड टन कोयला खोदने का लक्ष्य रखा गया था। अर्थात् सन् १९५५ के उत्पादन से २ करोड २० लाख टन अधिक। इसमे मे १ करोड २० लाख टन सरकारी खानो के जिम्मे रखा गया और शेष १ करोड टन निजी खानो के। जो सरकारी निजी खानें पहले से चल रही थी, उनके उत्पादन को बढाने मे तो कठिनाई नही हुई, किन्तु नई खानो के विकास मे काफी कठिनाइयाँ पडी। खानो का पता लगाने और उन्हे प्राप्त करने मे काफी समय लगा। इसके अलावा विदेशी मुद्रा और खनन कार्य मे दक्ष कर्मचारियो की भी कमी थी। इसलिए सन् १९६०-६१ से ५ करोड ४६ लाख २० हजार टन का ही उत्पादन हो सका, जबकि लक्ष्य ६ करोड टन का था। परन्तु सन् १९६०-६१ वष की अन्तिम तिमाही मे जिस गति से कोयला खोदा गया है उससे वार्षिक उत्पादन ६ करोड टन से अधिक हो जायेगा। सन् १९५० मे ३ करोड २३ लाख १० हजार टन कोयला खोदा गया था, जबकि सन् १९५५ मे ३ करोड ८२ लाख ३० हजार टन और सन् १९६०-६१ मे ५ करोड ४६ लाख २० हजार टन कोयला खोदा गया।

सन् १९५२ मे कोयला खान सुरक्षा और बचाव कानून बनाया गया, जिससे सरकार को कोयला भण्डारो की बरबादी रोकने का अधिकार मिला। खानो मे खुदाई के बाद पोली जगहो को भरना अनिवार्य बना दिया गया, लोहा बनाने के काम आने वाले कोयले की खुदाई पर नियन्त्रण किया गया, ताकि इसकी बरबादी न हो। घटिया कोयले को धो कर अच्छा बनाने के लिये ४ केन्द्रीय धुलाई करखाने खोले गये और एक दुर्गापुर के इस्पात कारखाने मे खोला गया। दूसरी योजना मे ६४ लाख टन कोयले की धुलाई का लक्ष्य था। इसमे से २४ लाख टन की क्षमता के धुलाई-खाने

कायम हो गये हैं और बाकी तीसरी योजना के शुरू के वर्षों में तैयार हो जायेंगे। कोयले की बरबादी रोकने के लिए, गैर जरूरी कामो मे कोकिंग या अच्छे कोयले के इस्तेमाल पर रोक लगायी गई और खानो को विशेष सहायता दी गई, जिनमे खुदाई बहुत गहराई मे होती है या जिनमे गैस अधिक है। इसके अलावा छोटी छोटी और घाटे पर चलने वाली खानो को मिलाकर एक प्रबन्ध मे लाने की कार्यवाई भी की जा रही है।

वर्तमान उत्पादन—

निम्नलिखित तालिका व मानचित्र से कोयले के वतमान उत्पादन का अनुमान लगाया जा सकता है —

(In million tons)

Year	Private sector	Public sector		Total
		N C D C	Singareni	
1955	33 83	2 ˢ6	1 52	38 21
1956	34 76	2 99	1 68	39 43
1957	38 20	ɔ 38	1 92	43 50
1958	39 54	3 66	2 11	45 31
19ɔ9	40 33	4 48	2 22	47 03
1960	43 34	5 95	2 48	51 78
1961		3 88	0 86	20 42
upto April 1961	15 68			(million tonnes)
upto June				29 20 (million tonnes)
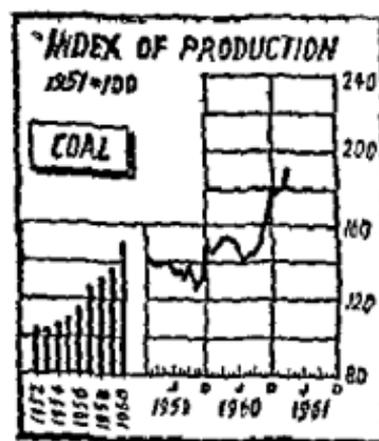
तृतीय पंच-वर्षीय योजना में कार्यक्रम—

अनुमान है कि तीसरी योजना के अन्त तक ९७० लाख टन की मांग होगी। इसका अर्थ यह है कि दूसरी योजना के लक्ष्य से, जो ६ करोड़ टन था, ३७० लाख टन कोयला और बनाना होगा। यद्यपि दूसरी योजना का लक्ष्य पूरा नहीं हो सका, पर लक्ष्यानुसार क्षमता उत्पन्न हो गयी है। तीसरी योजना मे जितने अधिक कोयले की जरूरत है उसको निकालने के लिए सरकारी क्षेत्र मे बहुत-सी नई खानें खोदनी पड़ेंगी। सन् १९६० म बढ़िया किस्म का कोकिंग कोयला १३० लाख टन निकाला गया था और २० लाख टन ऐसा था जो मिलाकर (ब्लेंड) काम आ सकता था। धातु उद्योग के लिये तीसरी योजना के अन्त तक कम से कम १०० लाख टन कोकिंग कोयला और २० लाख टन ब्लेण्डेबुल या मिलवां कोयला की मांग होगी। रेलो के लिए और अन्य उद्योगो के लिए करीब १०० लाख टन बढ़िया किस्म के गैर-कोकिंग कोयले की जरूरत होगी। इसलिए तीसरी योजना मे मुख्य काम यह होगा कि इस्पात कारखानो को और रेलो आदि अन्य उद्योगो को उपयुक्त कोटि का कोयला यथेष्ठ मात्रा मे मिलता रहे।

सरकार की नीति यह है कि नयी खानें सरकारी क्षेत्र मे खोली जायें और निजी क्षेत्र में केवल वर्तमान खानो के विस्तार की ओर इससे लगी हुई खानो को खोदने की अनुमति दी जाए। इसलिये सरकारी क्षेत्र को २०० लाख टन और निजी क्षेत्र को १७० लाख टन कोयला और खोदने का काम सौंपा गया।

सरकारी क्षेत्र के कार्यक्रम—सरकारी क्षेत्र मे आन्ध्र प्रदेश की सिंगारेणी खानो का उत्पादन ३० लाख टन बढाया जाये और बाकी १७० लाख टन, नेशनल कोल डेवलमैंट कॉरपोरेशन, अन्य खानो से निकालेगा। निजी क्षेत्र की खानो मे ११० लाख टन का अतिरिक्त उत्पादन वर्तमानो खानो से और उन नयी खानो से होगा जो पट्टे पर दिये गये क्षेत्र मे हैं।

सुरक्षा—अपने देश मे कोकिंग कोयले का भण्डार केवल २८० करोड टन है। पर बढ़िया किस्म के लाहे का भण्डार बहुत अधिक है। इसलिए एक ओर तो कोकिंग कोयले की बरबादी रोकनी होगी और दूसरी ओर उसकी खानो की रक्षा करनी होगी और घटिया कोयले की धुलाई या बढ़िया के साथ दूसरा कोयला मिलाकर इसका भण्डार बढाना होगा। बढ़िया कोयले की बरबादी रोकने के लिए कोयला परिषद की ईंधन कमेटी ने यह तय कर दिया है कि किसी उद्योग को किस किस्म का कोयला कितनी मात्रा मे दिया जाये।

खानो मे भराई—तीसरी योजना मे खानो की पोली जगह को भरने पर अधिक जोर दिया जायेगा, क्योंकि इनमे से और कोयला खोदा जाएगा। खानो मे भरने के लिए दामोदर नदी से बालू भेजी जाएगी। बालू ले जाने के लिए भरिया की खानो तक तार द्वारा परिवहन की चार लाइनें और रानीगंज की खानो तक ३ लाइनें लगाई जायेंगी, जिन पर बाल्टियो मे बालू ले जाया जाएगा।

परिवहन—कोयले की अधिकांश खानें बङ्गाल और बिहार मे हैं। इसलिए इनके परिवहन मे दिक्कत होती है। तीसरी योजना मे अन्य क्षेत्रो मे भी कोयला निकालने की कोशिश की जाएगी। साथ ही ट्रको और जहाजो के जरिये भी कोयला भेजने की व्यवस्था की जाएगी।

कोयला धुलाई के कारखाने—तीसरी योजना मे इस्पात के अधिक उत्पादन के लिए १२७ लाख टन कोयले की धुलाई का और इन्तजाम करना पडेगा। जो धुलाई-खाने अभी है या जो बन रहे हैं उनमे ३२ लाख टन और कोयले की धुलाई हो सकेगी। बाकी के लिए नए धुलाई-खाने खोलने पडेंगे। इन धुलाई-खानो मे रेलवे की जरूरत का गैर-कोकिंग कोयला भी धोया जाएगा और खानो के कोयले की जाँच करके देखा जाएगा कि उनकी धुलाई हो सकती है या नही।

नैवेली लिगनाइट योजना—मद्रास के दक्षिण अरकाट जिले मे नैवेली में भूरे कोयले का जो भण्डार है उसके विकास के लिए दूसरी योजना मे निम्नलिखित कार्यक्रम थे :—

(१) ३५० टन भूरा कोयला निकाला जाये जिससे

(क) २५० मे० वा० बिजली बनाने के कारखाने की आवश्यकता पूरी हो जाए,

(ख) यूरिया के रूप मे ७० हजार टन नत्रजन-युक्त खाद बनाने के कारखाने की जरूरत को पूरा किया जाए, और

(ग) भूरे कोयले को फूँक कर ३ लाख ८० हजार टन कोयले के पिण्ड तैयार हो सकें।

(२) एक मिट्टी-धुलाई का कारखाना खुले, जिसमे प्रति वर्ष ६ हजार टन सफेद चीनी मिट्टी बन सके।

तीसरी योजना मे उपर्युक्त कार्यक्रम पूरे किये जाएँगे। बिजलीघर की क्षमता १५० म० वा० और बढ़ायी जाएगी तथा लिगनाइट का उत्पादन ३५० लाख टन से बढ़ाकर ४८० लाख टन किया जाएगा, जो बिजलीघर मे काम आएगा।

कोयला उद्योग की समस्याएँ—

भारतीय कोयला उद्योग के सम्बन्ध मे अनेक समितियाँ और बोर्ड कायम हुये तथा उनकी रिपोर्ट सरकार की आलमारियो मे समाती जा रही है। वास्तव मे द्वितीय महायुद्ध ने ही कोयले के उत्पादन, वितरण और मूल्यो पर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से समझाया। वर्तमान कोयला उद्योग की निम्न समस्यायें उल्लेखनीय हैं—

(१) श्रेष्ठ कोयले के भण्डार सीमित—कोक बनाने के कोयले के हमारे भण्डार सीमित है। मैटालर्जिकल कोल कन्जर्वेशन कमेटी के अनुसार, उच्च कोटि के कोयले का भण्डार केवल ३,२९६ लाख टन है, जो भारत की आवश्यकताओ को देखते हुये कम है। अगले वर्षो मे इसकी खपत और बढने की सम्भावना है, क्योकि

देश मे तीन नये स्पात कारखाने खुल रहे है। सही स्थिति का पता लगाने के लिए सरकार भूगर्भ सर्वे विभाग द्वारा पुन. कोयला भण्डारो की खोज करा रही है। इसके प्रतिरिक्त हमारी सरकारो ने बढिया कोयले के इन भण्डारो को अधिक से अधिक समय तक चलाने के लिये निम्न कदम उठाये हैं—(१) बढिया कोयले का उत्पादन सीमित करना और धातु-शोधन के अतिरिक्त अन्य कार्यो मे इस कोयले का प्रयोग रोकना, (२) कोयले की धुलाई को प्रोत्साहित करना, जिससे उसमे राख का अश कम हो जाय और पहल व दूसरे ग्रेड का धोया हुआ कोयला धातु शोधन के कार्य मे प्रस्तुत किया जा सके और (३) जो खाने कोयला निकालने के बाद खाली हो गई हैं, उन्हें रेत आदि से भरना, जिससे शेष कोयला सुगमता से निकाला जा सके।

(२) रेलो की व्यवस्था—यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है कि अतिरिक्त वार्षिक उत्पादन मे से कोयला इधर से उधर जाने की व्यवस्था रेलें कर भी सकेंगी या नहीं। कोयला अधिक ढाने की सामर्थ्य बढा लेना कोई खिलवाड नही है। रेल प्रशासन की एक कठिनाई यह भी है कि जब किसी उद्योग को देश के दुर्गम भाग मे स्थापित करने की योजना बानाई जाती है, तो रेल विभाग से यह सलाह नही ली जाती कि रेल आवश्यक परिमाण मे बिना कठिनाई के उस उद्योग के लिये कोयला आदि पहुँचा भी सकेगी या नही।

(३) कोयला उद्योग का युक्तियुक्त संगठन—तृतीय पंच-वर्षीय योजना का लक्ष्य है कि कोयले का चिर प्रतीक्षित युक्तियुक्त संगठन करना, जिसकी आवश्यकता एक तो कोयले के प्रादेशिक वितरण की दृष्टि से भी है और दूसरे, धातु शोधन के लिए श्रेष्ठ कोयले को सुरक्षित रखने की भी दृष्टि से है। कायले के प्रादेशिक उत्पादन मे वृद्धि होने से रेले निकटस्थ कोयला क्षेत्र मे माल को निर्दिष्ट स्थान तक जल्दी पहुँचा सकेंगी और रेल कोल बनाने का बढिया कोयला बचा सकेंगी, क्योंकि रेल बढिया कोयला या तो लम्बे सफर मे भाप बनाने के लिये प्रयोग करती है अथवा दुर्गम प्रदेशो मे जाने पर। जब कम दूर माल ढाना होगा, तो वे योग्यतानुसार घटिया कोयला ही जलाने लगेंगी। इस प्रकार कोयला उत्पादन की तृतीय योजना के अनुसार भले ही निर्दिष्ट लक्ष्यो की पूर्ति म एक या दो वर्षों का विलम्ब हो जाये, फिर भी इससे कोयला उद्योग का काफी सीमा तक युक्तियुक्त पुनर्गठन हो सकेगा।

(५) कोयला उद्योग का यन्त्रीकरण—भारत मे प्रति व्यक्ति पाली उत्पादन २ ७ टन है, जब कि संयुक्त राज्य मे ६ २१ टन, जमनी मे ८ ६६ टन और अमेरिका मे २१ ६८ टन है। इसमे प्रगट होता है कि प्रति पाली उत्पादन भारत मे बहुत कम है। कोयले के मूल्य का ७५% श्रमिको को, १५ से २०% करो को और केवल ५·१०% मालिको को प्राप्त होता है। इसका कारण ढूंढने के लिये दूर जाने की आवश्यकता नही है। उद्योग इस बात की बडी आवश्यकता मे है कि उत्पादन का तक तार के विस्तृत प्रयोग मे विवेकीकरण किया जाय। सन् १९५० मे कोयला जायेंगी, भाव दिया था कि भारत मे कोयले के उत्पादन मे वृद्धि करने के लिये

मशीनो का प्रयोग करना परम आवश्यक है। यह भी सिफारिश की गई थी कि यन्त्रीकरण का काम एक अवधि पर फैला दिया जाय और एक कोयला खान से दूसरी कोयला खान मे धीरे-धीरे किया जाय, जिससे परिवर्तन एव सुधार सरल हो जाय। भारत सरकार ने सिफारिश को स्वीकार कर लिया है और कोल बोर्ड को यह पता लगाने का आदेश दिया है कि विद्यमान कोयला खानो मे बिना अधिक बेकारी उत्पन्न किये विद्युतीकरण किस सीमा तक किया जा सकता है। साथ ही, एक ऐसी शर्त भी लगा दी गई, जिससे मालिको को यह अनिवार्य हो गया है कि जब नई खान खोलने की आज्ञा मिले, तो समस्त नये विकास-कार्यक्रम, कोयला खोदने और ले जाने मे मशीनो का अधिक से अधिक प्रयोग करेंगे।

(५) राष्ट्रीयकरण का प्रश्न—राष्ट्रीयकरण के बारे मे भी बहुत अधिक चर्चा है। हमें विश्वास है कि सरकार केवल राष्ट्रीयकरण की ही खातिर वर्तमान कोयला खानो का राष्ट्रीयकरण नही करेगी, किन्तु जब सरकार यह देखे कि राष्ट्रीय हित की दृष्टि से कोक बनाने के कोयले के भण्डारो को सुरक्षित रखने के लिये क्षति पूर्ति करके कोयला खानों का अधिग्रहण आवश्यक है अथवा ५०० टन प्रति घन्टा धोने वाले विशाल कारखानो मे, जिसकी लागत एक करोड रुपये से अधिक होगी और जिसे स्थापित करना निजी पूँजीपतियो के वश की बात न होगी, प्रयोग करने के लिये कोयले का उत्पादन बढाना आवश्यक है अथवा जब सरकार बेची जाने वाली ऐसी भूमि खरीदे, जिसमे बढिया कोयले की खाने हो और जिन्हे उसके मालिक प्रतियोगितापूर्वक न खोद सके या उन्हे खोदने मे इतना खर्चा हो, जो उनके साधनो से बाहर हो तो सरकार द्वारा खानें अपने अधिकार मे लेने मे किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

(६) श्रमिको की समस्या—खानो मे काम करने वाले श्रमिको की दशा भी खराब है, जिसके सुधार के लिए भारत सरकार प्रयत्नशील है। एक नये अधिनियम के अनुसार अब कोयला खानो मे काम करने वाले श्रमिको से ४८ घन्टे प्रति सप्ताह से अधिक कार्य नही लिया जा सकता। इसमे भूमि के ऊपर कार्य करने वालो के लिये ६ घन्टे प्रति दिन तथा भूमि के नीचे कार्य करने वालो के लिए ८ घन्टे प्रतिदिन का कार्य निर्धारित किया गया है।

STANDARD QUESTIONS

1. Briefly trace the origin, progress, present position and problems of the Indian Coal Industry.
2. Discuss the principal problems of the Indian Coal Industry and suggest remedies to solve them

अध्याय ६७

प्लास्टिक उद्योग

(Plastic Industry)

प्रारम्भिक—

देश के औद्योगिक विकास मे प्लास्टिक उद्योग को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस उद्योग मे आज २५ करोड रु० के विनियोजन का अनुमान लगाया जाता है, जो प्रति वर्ष तेजी से बढता जा रहा है। इससे करीब २५,००० श्रमिको को रोजगार मिला हुआ है। भव्य भवन से लेकर साधारण कुटिया तक और जन्म से लेकर मृत्यु तक प्लास्टिक की विविध वस्तुओ का उपयोग किया जाता है। प्लास्टिक की कुछ लोकप्रिय वस्तुओ के उदाहरण निम्न है—खिलौने, कन्घे, साबुनदानियाँ, बालो मे लगाने की क्लिपें, चूडियाँ, बटन, पर्स, बेग, हैन्ड-बेग, अटैचियाँ, पी० वी० सी० की चादरें और फिल्मे, चश्मो के फ्रेम, दाँतो के ब्रुश, फाउन्टेन पेन, बिजली का सामन, पेपर वेट, ऐशन्ट्रे, पैकिग का सामान, क्राकरी, पाइप, इत्यादि। कुरूप को सुरूपा बनाने मे भी इसका योगदान कम महत्त्वपूर्ण नही है। इसके निरन्तर बढते हुए प्रभाव एवं लाभप्रद उपयोग के कारण चिकित्सा विज्ञान मे "प्लास्टिक सर्जरी" एक विशिष्ट शाखा बन गई है। इन विविध विशेषताओ के कारण वर्तमान युग को यदि "प्लास्टिक युग" कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति न होगी। निम्न ग्राफ से प्लास्टिक के बढते हुए उपयोग का अनुमान लगाया जा सकता है —

Estimated Rise in Domestic Demand for Plastics

Unit = 10 lakh gross
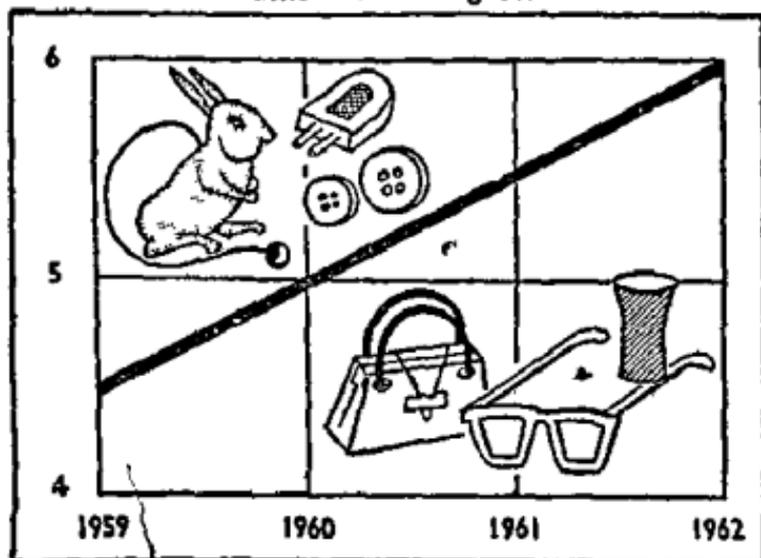
कच्चे माल का उत्पादन—

भारत मे प्लास्टिक उद्योग ने कच्चे माल तैयार करने मे भी काफी प्रगति की है। भारत मे फेनोल फार्मल्डीहाइड मोल्डिङ्ग पाउडर, पोलीस्टीरिन तथा पोलीथिलीन मोल्डिङ्ग पाउडर् पहले से ही तैयार किया जा रहा है। सेल्युलोज एसीटेट मोल्डिङ्ग पाउडर, पी० वी० सी० रेजिन और प्लास्टीसीजर बनाने के कारखाने खडे किये जा रहे हैं। कुछ अर्द्ध-तैयार वस्तुएँ भी बनाई जा रही हैं, जैसे पी० वी० सी० की चादरें, ट्यूबें, पोलीथिलीन के पाइप और नाइलोन के कडे बाल इत्यादि। ये सारी चीजें नवीनतम सयन्त्रो और उपकरणो से बनायी जाती है, जो बडे ऊँचे स्तर की होती हैं। देश मे ही कच्चा माल तैयार करने के क्षेत्र मे विकास हो जाने से आशा की जाती है कि इस उद्योग द्वारा जो माल तैयार किया जायगा वह विदेशी बाजारो मे जो माल आता है उससे अच्छी तरह मुकाबला कर सकेगा।

संक्षिप्त इतिहास—

भारतीय प्लास्टिक उद्योग का विकास द्वितीय महासमर के पश्चात् हुआ। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इसके इतिहास को तीन खण्डो मे विभक्त किया जा सकता है—I सन् १९४५-४९, II. सन् १९५०-५५ और सन् १९५६ से आज तक।

प्रारम्भिक इतिहास—

द्वितीय महायुद्ध के समाप्त होने पर सरकार ने इस उद्योग के विकास के हेतु एक प्लास्टिक तथा सेल्यूलोज औद्योगिक पैनल की नियुक्ति की तथा इसकी सिफारिशो को कार्यान्वित करने के लिये एक विकास समिति की नियुक्ति की गई। इस उद्योग के विकास तथा देखभाल के लिये एक पृथक निरीक्षण विभाग स्थापित किया गया। इसके विकास के लिये एक त्रिसूत्री योजना बनाई गई—(i) विभिन्न साधनो द्वारा औद्योगिक वस्तुओ के निर्माण का विस्तार करना, (ii) आयात किये हुये रसायन तथा देश मे उपलब्ध कच्चे माल से नकली प्लास्टिक का निर्माण करना, और (iii) उद्योग मे प्रयोग होने वाले आधारभूत रसायनो का निर्माण करना। सन् १९४९ में भारत सरकार ने प्लास्टिक बनाने वालो का एक प्रतिनिधि मण्डल अमेरिका तथा इङ्गलैण्ड का दौरा करने के लिये भेजा, जिसका उद्देश्य उन देशो द्वारा प्लास्टिक के क्षेत्र मे की गई प्रगति का अध्ययन करना था।

संरक्षण के पश्चात्—

टटकर आयोग ने पी० एफ० मोल्डिङ्ग पाउडर तथा वेकेलाइट का बिजली का सामान बनाने के लिये सन् १९४९ मे सरक्षण दिया। ऐसे रसायनो पर जो पी० एफ० मोल्डिग पाउडर बनाने के काम आते है, दी हुई ड्यूटी लौटाने के लिए तथा कुछ ऐसे प्लास्टिक के कच्चे माल पर जो उपयोगी सामान बनाने के काम आता है, आयात कर कम करने की सिफारिश की। इसके अतिरिक्त प्लास्टिक के तैंयार माल का आयात

बहुत सीमित कर दिया गया तथा उनके निर्माण को बढावा देने के विचार से उन्हे बनाने की मशीनो, खाल बनाने तथा अन्य सामान बनाने व साधनो का आयात सुलभ कर दिया गया। इन कारणो से परिष्करण करने के उद्योग ने पर्याप्त प्रगति की। सन् १६४८-४६ मे खोल बनाने का पाउडर का आयात २०.५८ लाख रुपये का हुआ था। परत से बने सामान का उत्पादन सन् १६४८ के ३ लाख ७० हजार के उत्पादन से बढकर सन् १६४६ मे १० लाख २० हजार हो गया तथा पौलिसटाइरीन का उपयोग बढकर १,००० टन हो गया। प्लास्टिक से बने सामान तथा कच्चे प्लास्टिक का मूल्य जो सन् १६४५ म मुश्किल से ५० लाख रु० का था, सन् १६४६ मे बढकर १ करोड ५० लाख रु० का हो गया था।

सन् १६५०-५५ की अवधि—

सन् १६५० से प्रारम्भ होने वाले दशक मे औद्योगिक माल के उत्पादन की ओर ध्यान दिया गया। उस समय दैनिक आवश्यकता के सामान का एक-तिहाई केवल कघे होते थे, जबकि औद्योगिक सामान का दो-तिहाई केवल बोतलो की डाटे होती थी, लेकिन लेदर क्लाथ, इन्सुलेटिड, केबिल, तार तथा आसानी से मुडने वाले अन्य पदार्थ भी इस समय तक भली प्रकार बनने प्रारम्भ हो गये थे। उस समय से वी० पी० सी० के प्रयोग के इन दोनो विभागो ने काफी अच्छी उन्नति की, जिसके कारण देश मे बने प्लास्टिक की काफी खपत होने लगी। सन् १६५४-५५ मे कच्चे माल का आयात १,६४१ टन हुआ, जिसका मूल्य १८५.६१ लाख रुपये का था तथा प्लास्टिक के बने हुये माल तथा कच्चे प्लास्टिक का माल जो सन् १६५० के आरम्भ मे १॥ करोड रुपये का था, सन् १६५५ के अन्त तक बढकर ७ करोड रु० का हो गया था और प्लास्टिक से बने सामान का निर्यात जो उस समय केवल ६ लाख रुपये का था, बढकर १५ लाख रुपये का हो गया था। प्लास्टिक का सामान बनाने के औजार तैयार करने के काम ने भी एक प्रविधिक ज्ञान से पूर्ण व्यक्ति की देखरेख मे काफी प्रगति की है। इस विशेषज्ञ की सेवाएं सयुक्त राष्ट्र सघ से लेकर भारत सरकार ने इस उद्योग को उपलब्ध करा दी थी।

सन् १६५५-६१ तक होने वाली महत्त्वपूर्ण प्रगति—

सन् १६५० के दशक के दूसरे अर्द्ध भाग मे भी यह उद्योग निरन्तर प्रगति करता रहा। इसके विकास मे एक महत्त्वपूर्ण घटना पोलिसटाइरीन के उत्पादन के प्रारम्भ होने की थी। इस उद्योग द्वारा सन् १६५१ मे बड़े पैमाने पर थरमो प्लास्टिक कच्चा माल परिष्करण द्वारा प्रयोग किया गया था। सन् १६५८ मे यू० एफ० मोल्डिङ्ग पाउडर तथा सन् १६५६ मे पोलिथिलीन बननी प्रारम्भ हुई। इसी समय दो कलैण्डरिंग प्लाटो से पी० वी० सी० बिना सहायता वाली फिल्मो का उत्पादन हुआ। इसी समय पोलीथीन का प्रयोग इन्जेक्शन बनाने के लिये तथा फूक कर साचे बनाने के लिये

काफी लोकप्रिय हुआ और पोलिथिलीन पाइपिंग के उत्सारण का कार्य भी शुरू हो गया। इस समय पौलिथिलीन से बनी बड़े आकार की चीजें जैसे—कारबाय, बाल्टियाँ तथा टोकरियाँ इत्यादि बननी प्रारम्भ हो गई। इसके बाद खोल निर्माताओं का ध्यान स्टीयरिंग व्हील तथा रेफ्रीजरेटर के हिस्से जैसी बड़ी बड़ी चीजें बनाने की ओर आकर्षित हुआ। इस समय कच्चे माल का आयात दुगुना हो गया और सन् १९६० मे कुल आयात ६ करोड रुपये का हुआ। प्लास्टिक का सामान तथा इससे बनी अन्य चीजों का मूल्य भी इस समय मे बढकर १६ करोड रुपये हो गया। इसी काल के दौरान इस उद्योग के लिये मानक भी बनने आरम्भ हो गये तथा एक प्लास्टिक के सामान के निर्यात को उत्साहित करने के लिये निर्यात सम्बन्धी समिति ने भी, कार्य प्रारम्भ कर दिया। इस समिति ने इस उद्योग द्वारा बनाई जाने वाली चीजो की विस्तृत सूचना को एक पुस्तिका के रूप मे प्रकाशित किया। इसका उद्देश्य विदेशी बाजारो मे खपत के आधार पर इन चीजो का विभागीयकरण करना था। विदेशी बाजारो की नवीनतम आवश्यकताओं की जानकारी हासिल करने के लिये इस समिति ने तीन प्रतिनिधि-मण्डल भेजे, जिन्होने मध्यपूर्व तथा सुदूरपूर्व के देशों का दौरा किया, जिसके परिणामस्वरूप प्लास्टिक के सामान विशेषकर लेदर क्लाथ के निर्यात मे पर्याप्त वृद्धि हुई और प्लास्टिक से बनी चीजो का कुल निर्यात ५० लाख से अधिक का हुआ।

विकास के दस वर्ष—

इस उद्योग के विकास के दस वर्ष तथा इसकी वर्तमान अवस्था निम्नांकित सारिणी मे दिखलाई गई है :—

सारिणी संख्या—१

वर्ष	दबाव द्वारा राह (क्षमता टनो मे)	इन्जेक्शन माउल्डिङ्ग (क्षमता औंसो मे)	रिसने का कार्य करने वाली मशीनें (संख्या)
१९४५	३,३९३	४	—
१९५०	७,०७४	४०३	३२
१९५५	११,२००	५५०	५५
१९६०	१७,४४५	७४८	९५

सारिणी संख्या—२

विधिवत् तैयार किया हुआ माल (क्षमता और उत्पादन)

मद	इकाई	उत्पादन			प्रतिष्ठापित क्षमता
		१९५०	१९५५	१९६०	१९६०
१. फैनोलिक लैमाइनेट	टनो में	—	१८३	५६७	६०० कार्यरत
२ पी० वी० सी० अनसपोर्टिड चादरें	टनो मे	—	१५१	९६१	१,२३५ ,,
३. पोलिथीन फिल्म तथा ट्यूबिंग	टनो मे	—	३५०	१,२४१	८३७ ,,
४. लैदर क्लाथ	हजार गजो मे	९३०	२,६००	६,०८१	८,७०० ,,
५. सांचो द्वारा बनाया गया सामान	मिल प्रास मे	२·२९	२·५०	५·७	— ,,
६. उपभोक्ताओ का					
(क) दातो के ब्रुश	मिल पीस	—	५·२०	११·७०	२५ ,,
(ख) चश्मो के फ्रेम	मिल पीस	०·३५	०·८०	२·३०	२·५ ,,
(ग) फाउन्टेन पेन	मिल पीस	३·२३	६·००	१०·००	बदलती रही ,,
(घ) प्लास्टिक के बटन	हजार ग्रोस मे	—	१,२३२	४,७७६	३,०३२ एक शिपट मे

सारिणी संख्या—२

कच्चा माल, क्षमता और उत्पादन

मद	१९५०		१९५५		१९६०		कुल प्रतिष्ठापित क्षमता १९६० (टन
	इकाइयो की सख्या	उत्पादन (टनो मे)	इकाइयो की सख्या	उत्पादन (टनो मे)	इकाइयो की सख्या	उत्पादन (टनो मे)	
१. पी० एफ० मोल्डिङ्ग पाउडर	३	३२४	३	७१५	४	२,०४१	३०० (२ शिफ्टें)
यू० एफ० मोल्डिङ्ग पाउडर	—	—	—	—	४	३५३	६४० (लगातार काम करके)
पोलिसटाइरीन	—	—	—	—	१	३,७०८	५,४०० (लगातार काम करके)
पोलिथिलीन	—	—	—	—	२+	३,३६१	६,२०० (लगातार काम करके)
पी० वी० सी०	—	—	—	—	१=	—	२,८८० (लगातार काम करके)

= निकट भविष्य मे ही उत्पादन प्रारम्भ होने की सम्भावना है।

\+ ... टन की क्षमता की एक इकाई निकट भविष्य मे ही उत्पादन करना प्रारम्भ कर देगी।

तीसरी योजना मे आधारभूत लक्ष्य—

आगामी तीसरी तथा चौथी योजना को ध्यान मे रखते हुये हम कह सकते हैं कि देश मे औद्योगिक क्रान्ति अपनी पूर्ण शक्ति के साथ चल रही है। सन् १९६० का दशक प्लास्टिक उद्योग के भविष्य के लिये अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होगा। अत इस उद्योग के भावी कार्यक्रम को तय करने का काय काफी महत्त्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध मे सरकार द्वारा आठ प्लास्टिक औद्योगिको का एक प्रतिनिधि मण्डल सन् १९५९ मे इङ्गलंड, अमेरिका, इटली तथा जापान वहाँ की परिस्थितियो का अध्ययन करने के लिए भेजा, जो एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण काय रहा। इस प्रतिनिधि मण्डल ने इन सभी उन्नत देशो मे इस उद्योग द्वारा तेजी से की गई उन्नति के कारणो का अध्ययन किया; जिससे भारतीय उद्योग योजना के लिए उचित नीति तथा लक्ष्य निर्धारित हो सके। दूसरा उद्देश्य उन सभी गुप्त बातों का अध्ययन करना था जिनके कारण इस उद्योग ने उन्नत देशो मे आश्चर्यजनक उन्नति की है, ताकि हमारी योजना की प्रारम्भिक आवश्यकताओ तथा लक्ष्यो की पूर्ति हो सके।

इस प्रतिनिधि मण्डल के सुझावो के आधार पर इस उद्योग के लिए निर्धारित लक्ष्य इस प्रकार है —(१) एक सम्पूर्ण स्वदेशी साधन से कच्चा माल बनाने का एक प्लाट लगाया जाये। (२) स्थानीय जोडकर बनाई हुई मशीनें तथा कनर्वेटर के लिय औजार आसानी से सुलभ हो जायें तथा (३) उद्योग के अन्दर ही प्राद्योगिकीय और प्रब धकीय कामो के लिए काफी मनुष्य शक्ति का विकास हो जाये। सक्षेप मे, स्वाभाविक साधनो से घरेलू सामान का विकास, स्वदेशी उपकरण और औजार, स्थानीय ज्ञान तथा देश मे और बाहर स्थित बाजारो का विकास प्लास्टिक योजना के मुख्य उद्देश्य ह। सार समय प्लास्टिक उद्योग को साधन, परत तथा मशीन मिलने की कठिनाई का सामना करना पडा है। तीसरी योजना मे निर्धारित उद्देश्य अपने ढङ्ग का एक नया उद्देश्य है तथा उसका लक्ष्य प्लास्टिक उद्योग के लिए अनन्त साधन उपलब्ध करना तथा प्लास्टिक के सामान के लिए नये बाजारो को ढूढना है और विशेष रूप से सिंचाई तथा खेती और निर्माण तथा उद्योग आदि के लिए इसमे एक ही रुकावट जो बीच मे आती है वह है स्वदेश तथा विदेश दोनों मे इस प्रकार के सामान की भारी माँग का होना।

न्यूनतम लक्ष्य—

तीसरी योजना का उद्देश्य दूसरे विकसित देशो में बने प्लास्टिक के माल के मुकाबले का माल बनाना है। योजना मे यह तथ्य ध्यान मे रखा गया है कि यह उद्योग अभी विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे है तथा अन्य विकसित राष्ट्रो की अवस्था तक पहुँचने के लिए अभी बहुत कुछ करना है। प्लास्टिक के सामान के लिए लक्ष्य निर्धारित करने मे प्रति व्यक्ति को होने वाली आय, जन सख्या मे बढोतरी तथा औद्योगिक उत्पादन के स्तर म चढाव को ध्यान मे रखा गया था तथा इङ्गलंड, अमेरिका, इटली

और जापान जैसे अधिक विकसित देशों मे भारी प्लास्टिक के सामान के निर्माण के रास्ते मे आने वाले मुख्य मोडो को ध्यानपूर्वक देखा गया था। इसके अतिरिक्त उनके भावी कार्यक्रम तथा ऐसे नये सामान जिनके तेजी से विकास की आशा है उनका भी अध्ययन किया गया है। इन सारी ही बातो का सार यह है कि ऐसे सुझाव रखे गये हैं जिनका उद्देश्य दूसरी पच-वर्षीय योजना (सन् १९६१) के काल मे उत्पादन क्षमता को २०,००० टन से तीसरी पच-वर्षीय (सन् १९५६) योजना मे ८५,००० टन तक लगभग ३५ से ४० करोड के मूल्य पर आगे बढा देना है। योजना मे १४,००० टन की वर्तमान खपत के मुकाबले मे ७४,००० टन के उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है, जिसमे से कम से कम १०,००० टन प्लास्टिक के सामान का निर्यात किया जायेगा। तीसरी योजना के अन्त तक लगभग १२,००० टन थरमो सेट, मुख्यतः फैनोलिक्स यूरिया तथा पौलइस्टर और ६२,००० टन थरमो-प्लास्टिक जिसमे से ५०,००० टन पोलियोलिफेर, पोलिसटाइरीन तथा पी० वी० सी० क्राइलेट, नाइलोन-६, सैल्युलोज एक्टेट तथा पोलिविनाइल एक्टेट होगा, का निर्माण होना है।

उत्पादन एवं निर्यात—

प्लास्टिक उद्योग के वर्तमान उत्पादन एव निर्यात का अनुमान नीचे के आंकडो से लगाया जा सकता है :—

प्लास्टिक का उत्पादन

वर्ष	करोड रु०
१९५६	८
१९५७	१२
१९५८	१४
१९५९	१६
१९६०	२०

निर्यात

वर्ष	लाख रु०
१९५६–५७	७·४
१९५७–५८	१९ ८७
१९५८–५९	२७ २८
१९५९–६०	७३·६६
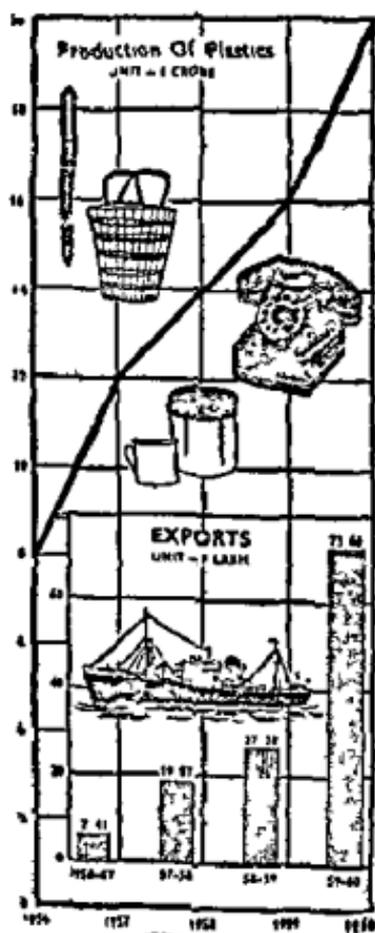
निर्यात बढ़ाने के क्षेत्र मे उद्योग को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और उसने उन पर विजय प्राप्त की। भारत को हागकांग जैसे—उन्नत बन्दरगाह, जापान तथा औद्योगिक दृष्टि से आगे बढे पश्चिमी देशो के बाजारो से निर्यात के मामले मे मुकाबिला करना पडता है। प्लास्टिक की बनी वस्तुओ के निर्यात के लिये हमारे यहाँ कोई सुव्यवस्थित व्यापार के साधन नही हैं। प्लास्टिक की वस्तुओ का विदेशो के बाजारो मे व्यापार जमाने के लिये हमे न केवल मूल्यो को कम करना होगा बल्कि उनकी किस्म मे सुधार करना होगा, उनकी पैकिंग और लेबिलो को अधिक आकर्षक बनाना होगा तथा बिक्री की उदार शर्तें रखनी होगी। हमे विदेशी खरीदारो मे किस्म, मूल्य और माल देने व समय के बारे मे विश्वास उत्पन्न करना है। इन उद्देश्यो को ध्यान मे रखते हुये सरकार ने प्लास्टिक निर्यात सवर्द्धन परिषद् की स्थापना करने को प्रोत्साहन दिया है। इस परिषद् से उद्योग, निर्यात व्यापार तथा सरकार सभी का सम्बन्ध रहता है। निर्यात किये गये माल मे जो कच्चा माल लगता है उस पर अब आयात शुल्क की वापसी दी जाती है। निर्यात करने वाले निर्माताओ को जितने कच्चे माल की जरूरत होती है उसके लिए उन्हे आयात के लाइसेन्स भी दिये जाते हैं। निर्यात करने वाले निर्माताओ को जितने देशी कच्चे माल की जरूरत होती है वह उनको रियायती दामो पर दिये जाते है। ऐसा करने से निर्यात बढाने मे काफी सहायता मिली है।

निर्यात बढ़ाने के उपाय—

देश के प्लास्टिक की बनी वस्तुओ के प्रति विश्वास और रुचि पैदा करने के लिये परिषद् ने इनका निर्यात बढाने के सम्बन्ध मे निम्न उपाय किये हैं :—

(१) विदेशो मे होने वाली प्रदर्शनियो और मेलो मे भाग लेना।
(२) भारत सरकार के विदेश स्थित प्रदर्श-कक्षो को नमूने भेजना।
(३) प्लास्टिक की वस्तुओ के निर्माताओ और निर्यातको की निर्देशिका प्रकाशित करना।
(४) सदस्यो के उत्पादनो का सूची-पत्र तैयार करना।
(५) मासिक बुलेटिन प्रकाशित करना।
(६) विदेश व्यापार का सर्वेक्षण करना।
(७) प्लास्टिक की बनी वस्तुओ का प्रमापीकरण करने मे सहायता करना।
(८) जहाँ कही आवश्यक हो वहाँ किस्म के स्तर की जाँच करना।
(९) शिकायते सुनना और जहाँ कही आवश्यक हो वहाँ मध्यस्थता का सहारा लेना।
(१०) निर्यात व्यापार सम्बन्धी जानकारी और आँकडे एकत्र करना तथा देना।
(११) विदेशो को व्यापारियो के प्रतिनिधि मण्डल भेजना।
(१२) निर्यातको की सामान्य रूप से सहायता करना और उनका मार्ग प्रदर्शन करना।

भविष्य—

देश के प्लास्टिक उद्योग का रुझान पहले ही निर्यात की ओर है। इस उद्योग के कोने-कोने मे उत्पादनशीलता को बढाने के प्रति दिलचस्पी है। यह आशा की जाती है कि वर्तमान उत्पादनशीलता के स्तर को निम्न रखने वाले बादल शीघ्र ही हट जायेंगे। अब इस तथ्य को भी समझा जाने लगा है कि इस उद्योग का संचालन इन्जीनियरी तथा प्राविधिक ज्ञान से पूर्ण व्यक्तियो द्वारा होना है, न कि वित्त विशेषज्ञो द्वारा। दक्ष मानव-शक्ति के विकास की योजनाएँ बनाने की आवश्यकता को अब अनुभव किया जाने लगा है तथा इस तेजी से बढने वाले उद्योग के लिए अत्यधिक आवश्यक, इस दक्षता के संकेत भी मिलने प्रारम्भ हो गये हैं। कच्चे माल के निर्माताओ के द्वारा घर मे तथा बाहर नये-नये बाजारो की खोज प्रारम्भ कर दी गई है। इस प्रकार हम कह सकते है कि इस उद्योग का भविष्य काफी उज्वल है। ऐसी अवस्था मे यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि सन् १९६१ से प्रारम्भ होने वाले दशक मे यह उद्योग पूर्णरूपेण आत्म-निर्भर हो जायगा तथा उस अवस्था में यह उद्योग बिना किसी बाहरी सहायता के दिन प्रति दिन उन्नति के शिखर की ओर बढता चला जायगा।

STANDARD QUESTIONS

1. Briefly trace the origin, growth and present position of Indian Plastic Industry

अध्याय ६८

भारतीय कागज उद्योग

(Indian Paper Industry)

प्रस्तावना—

ज्ञान सवर्द्धन का आधार स्तम्भ कागज-बनाने का काम सम्भवतः सबसे पहले चीन मे आरम्भ हुआ। यद्यपि कागज ईसा से ३०वी शताब्दी पूर्व भारत मे प्रयोग मे आने लगा था, किन्तु ऐतिहासिक प्रमाण ८वी शताब्दी के बाद ही मिलते है। उस समय कागज हाथ से बनाया जाता था। चीन के सम्पर्क से ही कई सदियो पूर्व भारत को भी हाथ से कागज बनाने की प्रेरणा मिली। भारत मे मशीन से कागज बनाना सन् १८७० मे आरम्भ हुआ, जब हुगली के तट पर सर्व प्रथम कारखाने मे उत्पादन आरम्भ हुआ। हमारे देश मे कागज उद्योग का विकास विशेष महत्त्व रखता है। भारत मे कागज की प्रति व्यक्ति खपत २ पौण्ड है, जबकि अमरीका मे ४१२ पौण्ड और योरोपियन देश तथा जापान मे १०० व २२२ पौण्ड तक है।

संक्षिप्त इतिहास—

१९वी शताब्दी के अन्त मे डा० केरे ने बगाल मे आधुनिक कागज के मिल की स्थापना की, किन्तु इस उद्योग की वास्तविक स्थापना सन् १८६८ मे बगाल के बाली मिल (Bally Paper Mills) के निर्माण के साथ हुई। इस मिल का निकटवर्ती क्षेत्र आज भी कागज उद्योग का प्रधान भाग है। भारत का दूसरा प्रमुख कागज का कारखाना टीटागढ कागज मिल सन् १८८२ मे प्रारम्भ हुआ था और सन् १९०३ मे इम्पीरियल कागज मिल का भी इसमे सम्मिश्रण हो गया। सन् १९०० तक देश मे सात कागज के कारखाने स्थापित हो चुके थे, जिनमे प्रति वर्ष १९ हजार टन कागज तैयार होता था। इसके बाद देशी उद्योग को सस्ते विदेशी कागज से कडी प्रतिद्वन्दिता करनी पडी। फिर भी सन् १९२४ तक कागज का उत्पादन २३ हजार टन तक हो गया और कागज मिलो की सख्या ९ हो गई।

युद्धोपरान्त काल मे विदेशी प्रतिस्पर्द्धा के कारण उद्योग को भारी क्षति पहुँची, अत. सन् १९२४ मे तटकर आयोग के सम्मुख आवेदन-पत्र सरक्षणार्थ रखा गया। सन् १९२५ में इस उद्योग को तटकर सरक्षण प्राप्त होगया और आयात किये जाने

वाले कई प्रकार के कागज पर २५ प्रतिशत शुल्क लगा दिया गया। ऐसा करने का एक उद्देश्य यह भी था कि यह उद्योग अधिक से अधिक देशी कच्चा माल प्रयोग करने लगे। सन् १९२५ से सन् १९३३ तक की अवधि मे कागज का उत्पादन निरन्तर बढता गया। सन् १९३२-३३ मे ४४ हजार टन कागज का वार्षिक उत्पादन हुआ था, जो सन् १९३८-३९ मे बढ कर ५९ हजार टन हो गया। पजाब पेपर मिल्स (१९३५), स्टार पेपर मिल्स (१९३६), ओरिएण्ट पेपर मिल्स (१९३६) आदि अनेक नई मिलो की स्थापना हुई। सन् १९२३ मे आयात की लुगदी मे ३१ ३% प्रयोग की जाती थी; सन् १९३१ मे यह सख्या ५५% हो गई। सन् १९३२ मे दूसरे तटकर बोर्ड ने छापने और लिखने के कागज पर लगने वाला शुल्क बढा कर १८ ७% कर दिया और अखबारी कागज तथा पुराने अखबारो पर यह आयात शुल्क २५% कर दिया। आयात की हुई लकडी की लुगदी पर भी आयात शुल्क बढा दिया गया। सन् १९३८ मे लकडी की लुगदी पर तो आयात शुल्क घटा दिया गया, किन्तु लिखने व छपाई के कागज पर शुल्क बढाकर २५% और अखबारी कागज पर शुल्क बढाकर ३०% कर दिया गया।

सन् १९३९ मे द्वितीय महायुद्ध छिडने से कागज उद्योग ने बहुत प्रगति की। सन् १९४१ तक देशी कागज के दाम आयात किये गये कागज से कम थे, उन दिनो कागज की कमी अनुभव होने लगी थी। सन् १९४२ मे सरकार ने मूल्य नियन्त्रण लागू कर दिया, जो सन् १९५१ मे ही समाप्त हुआ। इस अवधि मे कागज उद्योग ने पर्याप्त प्रगति की। सन् १९५१ मे उद्योग विकास एव नियमन अधिनियम के बनने से कागज उद्योग का नियमन योजना के अनुसार होने लगा। नीचे दी हुई तालिका से कागज उद्योग की प्रगति का अनुमान लगाया जा सकता है :—

वर्ष	मिलो की संख्या	क्षमता (हजार टनो मे)	कुल उत्पादन (हजार टनो मे)
१९१३	५	३४	२७
१९२३	६	३७	२६
१९३७	१०	—	४८
१९४८	१६	१०५	९८
१९४९	१६	११०	१०३
१९५०	१६	११४	१०९
१९५२	१८	१४७	१३९
१९५४	१९	१५५	१५४
१९५७	१९	२५०	२१०
१९६०	२०	२६१	२१५

वर्तमान स्थिति—

इस समय हमारे देश मे कागज बनाने की २० मिले हैं, जिनकी वार्षिक उत्पादन क्षमता २६१ हजार टन है। इनमे से ४ मिलें बगाल मे, २-२ मिले उत्तर-प्रदेश और मैसूर मे तथा बिहार, उडीसा, पजाब, मध्य-प्रदेश, आध्र प्रदेश, मद्रास और केरल में एक-एक मिले है तथा महाराष्ट्र मे भी ४ मिलें हैं। आसाम, बंगाल, उडीसा और आन्ध्र प्रदेश मे कागज के नये कारखाने खोलने के लिये भी अनुज्ञा-पत्र प्राप्त हो चुके हैं। इन विस्तार योजनाओ के क्रियान्वित होने तथा नये कारखाने स्थापित हो जाने पर देश की कागज उत्पादन की क्षमता ३,५०,८०८ टन कागज बनाने की हो जायेगी। इस समय हमारा कागज उद्योग लिखने के कागज का ८०%, लपेटने का ३०%, विशेष कागज का ५०% तथा गत्तो का ६५% की आवश्यकता पूर्ति करता है, शेष कमी कागज का आयात करके पूरी की जाती है।

श्रम एव पूंजी—सन् १९५५ तक स्थायी रूप से कागज उद्योग मे २७,५०० श्रमिक कार्य करते थे। अनुमान है कि सन् १९६२ तक ३४॥ हजार नये स्थायी श्रमिक हो जायेंगे। सन् १९२३ के पूर्व अधिकाश पूंजी विदेशी थी, सन् १९५३ में इस उद्योग मे ६५% पूंजी भारतीय थी। द्वितीय पच-वर्षीय योजना काल मे ६६ करोड रु० की पूंजी विनियोग का आयोजन था, यह पूंजी मुख्यत. निजी क्षेत्र मे लगाई गई।

पंच वर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत प्रगति

प्रथम पंच वर्षीय योजना जब प्रारम्भ हुई थी, उस समय देश मे १० मिलें कार्य कर रही थी। इन मिलो मे कागज एव कागज के गत्तो का उत्पादन १ लाख १४ हजार टन था। अखबारी कागज का उत्पादन नही के बराबर था। स्ट्रा-बोर्ड का उत्पादन २२ हजार टन के लगभग था। प्रथम पच-वर्षीय योजना मे विभिन्न प्रकार के कागजो के उत्पादन लक्ष्य इस प्रकार निर्धारित किये गये—(i) कागज एव कागज बोर्ड २ लाख टन; (ii) अखबारी कागज २७ हजार टन, (iii) स्ट्रा-बोर्ड ५२ हजार ६०० टन। जहाँ तक कागज एवं कागज के गत्तो के उत्पादन के लक्ष्य का प्रश्न है, हम उस पर पहुँच गये है, किन्तु अखबारी कागज व स्ट्रा-बोर्ड का लक्ष्य पूरा नही किया जा सका।

द्वितीय पंच वर्षीय योजना मे कागज तथा कागज के गत्ते का उत्पादन लक्ष्य ४,५०,००० टन रक्खा गया था। अखबारी कागज तथा स्ट्रा बोर्ड का उत्पादन लक्ष्य क्रमश: ६०,००० व ४०,००० टन रक्खा गया था। ये लक्ष्य काफी सीमा तक प्राप्त कर लिए गए हैं।

तृतीय योजनावधि के अन्त तक ७ लाख टन अखबारी और अन्य कागज की माँग होगी। इस समय कागज उद्योग की क्षमता ४ लाख १० हजार टन है, जिसे बढाकर तीसरी योजना के अन्त तक ८ लाख २० हजार टन कर दिया जायगा। अखबारी कागज की क्षमता ३० हजार टन से बढाकर १½ लाख टन करने का प्रस्ताव है। कागज बनाने मे अधिकतर गन्ने की खोई का प्रयोग करना होगा।

करोड और जारी शुदा पूँजी १·५ करोड रु० थी और यह मध्य-प्रदेश मे अखबारी कागज का कारखाना खोलने के उद्देश्य से लगाई गई थी। मध्य प्रदेश की सरकार ने १० लाख रु० के हिस्से खरीदे तथा कम्पनी को दिये गये अधिकारो और रियायतो के बदले मे उसे १० लाख रु० के पूरी तौर पर मूल्य चुकता हिस्से आवंटित किये गये थे। कम्पनी के प्रवतक निजी विनियोजको के हाथ मुश्किल से ५० से ६५ करोड रु० के हिस्से बेच सके थे। इस कारण मध्य-प्रदेश की सरकार ने ५० लाख रु० के मूल्य के और हिस्से खरीदे। इस कारखाने की वर्तमान पूँजी रचना इस प्रकार हैं :—

	रु०
आवेदित तथा निजी हिस्सेदारो द्वारा भुगतान की गई पूँजी	६२,४८,५००
आवेदित तथा मध्य-प्रदेश सरकार द्वारा भुगतान की गई पूँजी	१,६६,७२,६००
आवेदित तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा भुगतान की गई पूँजी	२,५५,००,०००
जब्त किये गये हिस्सो की पूँजी	१२,७८,६००
योग	५,००,००,०००

नेपा के कारखाने मे देशी घास की लुग्दी से व्यावारिक स्तर पर उत्पादन सन् १९५६ ५७ के वित्तीय वर्ष से शुरू हो गया था। तब से उत्पादन धीरे-धीरे बढता ही रहा है, जैसा निम्न आँकडो से स्पष्ट है .

१९५६-५७	१३,५३४ टन
१९५७-५८	१४,१४३ टन
१९५८-५९	२१,८३७ ७५ टन
१९५९-६०	२२,४११ टन

कागज उद्योग की समस्याये

कागज उद्योग की प्रमुख समस्याये निम्नलिखित हैं —

(१) कच्चे माल का अभाव—हमारे देश मे कागज उद्योग के विकास के लिए पर्याप्त मात्रा मे कच्चा माल उपलब्ध नही है। रेयन श्रेणी की लुग्दी, जिसकी बिसकोस सूत, स्टेपल फाइबर तथा सेलोफेन कागज बनाने के लिए आवश्यकता होती है, वर्ष मे लगभग ४०,००० टन आयात की जाती हैं और इसम लगभग ४ करोड रु० का बहुमूल्य विदेशी विनिमय व्यय होता है। तृतीय पच-वर्षीय योजना के अन्त तक रेयन श्रेणी की लुग्दी की आवश्यकता लगभग १,१०,००० टन की होगी। स्केन्डेनविया तथा कनाडा के देशो मे रेयन श्रेणी की लुग्दी के उत्पादन मे जिस कच्चे माल की आवश्यकता होती है, वे देवदार व सरो के

वृक्ष की छाल है। इस प्रकार के प्रसाधन भारत मे उपलब्ध नही हैं। इस कार्य के हेतु सख्त लकडी का उपयोग करने की दिशा मे काफी प्राविधिक उन्नति हुई है। भारत मे अधिकतर बाँस का उपयोग किया जाता है। केरल राज्य मे रेयन श्रेणी की लुग्दी प्रतिदिन १०० टन पैदा करने की योजना क्रियान्वित हो रही है। मैसूर राज्य मे उत्तरी कानरा के वनो मे प्राप्त बाँस के प्रसाधनो पर आधारित दूसरी योजना भी सरकार द्वारा स्वीकार कर ली गई है। बाँस से लुग्दी बनाने की एक अन्य योजना भी सरकार के विचाराधीन है, जिसके अन्तर्गत कुछ जापानी साथों के सहयोग से आसाम के बाँस प्रसाधनो पर आधारित १०० टन प्रतिदिन लुग्दी पैदा करने वाली इकाई स्थापित की जाने वाली है। इन योजनाओ के पूर्ण हो जाने पर, जहाँ तक रेयन श्रेणी की लुग्दी का प्रश्न है, सन् १९६३ तक देश आत्मनिर्भर हो जाएगा। कच्चे माल के अभाव की समस्या को सुलझाने की दिशा मे निम्न अन्य सुझाव भी दिए जा सकते हैं :—

(i) बाँस के उत्पादन का सुनियोजित एव क्रमबद्ध कार्य राज्य के वन-विभागो को अपने हाथ मे ले लेना चाहिए।

(ii) बाँस के वनो मे रेल एव सडको का विकास किया जाना चाहिए।

(iii) बाँस के मूल्य का निर्धारण अखिल भारतीय स्तर पर होना चाहिए।

(iv) चिथडे, फटे-पुराने कपडो तथा अन्य वस्तुओ का उपयोग इस उद्योग मे किया जाना चाहिए।

(v) गन्ने के छिलके का उपयोग भी किया जा सकता है।

कच्चे माल की समस्या का दूसरा स्वरूप रासायनिक पदार्थों की कमी है। विदेशी मुद्रा की कठिनाई और आयात पर प्रतिबन्ध भी इस समस्या को उत्तेजित करते है। अत सरकार को आयात सम्बन्धी नीति मे सशोधन करना चाहिए। कागज उद्योग के लिए सोडियम सल्फेट की भी कमी अनुभव की जा रही है। उत्तर-प्रदेश, मध्य प्रदेश व राजस्थान राज्यो मे इसका कारखाना स्थापित किया जा सकता है।

(२) आर्थिक कठिनाई—कागज उद्योग के विकास, विस्तार व अभिनवीकरण के लिए धन राशि की आवश्यकता होगी, जिसकी पर्याप्त व्यवस्था करना इस उद्योग की प्रमुख समस्या है।

(३) अभिनवीकरण एव यन्त्रीकरण—कागज उद्योग मे अधिकतर पुरानी मशीनें ही कार्य कर रही है। जब तक आधुनिक यन्त्रो व उत्पादन विधियो का प्रयोग नहीं किया जाएगा, तब तक उत्पादन क्षमता एक न्यूनतम सीमा तक नही पहुँच सकती। आज कागज की काफी मात्रा मे पूँजी लगान तथा देश मे मशीनो के जो पुर्जे नही मिलते, उनको अपने पास अतिरिक्त मगाकर रखने के लिए काफी चालू पूँजी की आवश्यकता होगी। यहाँ यह बात उल्लखनीय है कि अधिकांश मशीनो तथा कागज बनाने मे प्रयोग होने वाली कुछ चीजो तक का आयात करना होता है, इसलिए हमारे इजीनियरी उद्योग को शीघ्र से शीघ्र कागज बनाने की मशीनें तैयार करने मे लगाना चाहिए। विदेशो म कागज उद्योग ने बढिया उत्पादन-प्रणाली

के कारण जितनी कार्यकुशलता प्राप्त कर ली है, उसकी तुलना मे भारतीय उद्योग को कागज की किस्म म और कच्चे माल से रसायनिक पदार्थ प्राप्त करने मे काफी सुधार करना होगा, जिससे उत्पादन लागत मे काफी कमी हो सके।

(४) गवेषणा कार्यो मे समुचित समन्वय का अभाव—देहरादून मे भारतीय वन गवेषणाशाला मे सेलूलोज तथा कागज की एक शाला है। इस गवेषणाशाला ने बाँस से लुग्दी बनाने की एक प्रक्रिया निकाली है। हाल ही मे कागज बनाने की एक आधुनिक मशीन तथा अन्य उपकरण भी इस गवेषणाशाला मे लगा दिये गये हैं। बहुत से प्रगतिशील कागज मिलो मे अपनी अनुसधानशालाएँ हैं, किन्तु दुर्भाग्य से उनके कार्यों मे किसी प्रकार का समन्वय नही है। भारत के कागज उद्योग के व्यापक हित की दृष्टि से इनके गवेषणा कार्यों मे समुचित समन्वय होने की आवश्यकता है, जिससे इस उद्योग की विभिन्न समस्याओ को हल किया जा सके।

(५) तान्त्रिक प्रशिक्षण का अभाव—कागज उद्योग की उन्नति के लिए प्रशिक्षित जन शक्ति की आवश्यकता है। अत. विभिन्न श्रेणी के श्रमिको को प्राविधिक प्रशिक्षण देने की योजना बनाना आवश्यक है।

(६) करो का अत्यधिक भार—करो का भार भी कागज उद्योग के लिए असहनीय होता जा रहा है। शिक्षा प्रसार के हेतु उचित मूल्य पर कागज दिलवाना सरकार का कर्त्तव्य है। अत. सरकार को चाहिए कि उद्योग को करो के भार से मुक्त करे।

(७) कागज की दरो की समस्या—कुछ कागज व्यवसायियो के मतानुसार, कागज की वर्तमान दरें, कच्चे माल एव श्रम को देखते हुए, बहुत कम हैं। सन् १६५० के बाद कागज के प्रमुख पदार्थ कोयले मे ३०% की वृद्धि, चाइना वालो मे ६०% की वृद्धि तथा श्रमिको की लागत मे ३०% की वृद्धि हुई है, जबकि कागज के मूल्यो मे केवल १२% की वृद्धि हुई है। साथ-ही साथ मिल मालिको का यह भी कहना है कि उत्पन्न होने वाले कागज का ३०% से ४०% माल सरकार द्वारा लागत मूल्य पर ही लिया जाता है। अत इस भाग पर कागज उद्योग को कुछ भी लाभ नही होता है। सरकार का कथन है कि कच्चे माल तथा मजदूरी की वृद्धि को देखते हुए कागज मिल २ नए पैसे प्रति पौंड की दर से मूल्य बढा सकते हैं, किन्तु मिल वाले ३ ५ नए पैसे प्रति पौंड की दर से वृद्धि करना चाहते हैं। कागज के उचित मूल्य निर्धारण के लिए सितम्बर सन् १६५८ मे प्रशुल्क परिषद की स्थापना की गई। आशा है परिषद इस समस्या को सुचारु रूप मे हल कर सकेगा।

उपसहार—

उपर्युक्त समस्याओ के हल होन पर निश्चय ही भारतीय कागज उद्योग का विकास होगा। एक अनुमान के अनुसार भविष्य मे कागज की मॉग १५% तक बढ़ेगी। इसी अनुमान के आधार पर मॉग उप समिति ने सन् १६६५-६६ के अन्त

तक उत्पादन का लक्ष्य ७,२०,००० टन और उत्पादन की क्षमता का लक्ष्य ६,००,००० टन कर दिया है। इन लक्ष्यों को देखकर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कागज उद्योग का भविष्य उज्ज्वल है।

STANDARD QUESTION

1 Briefly trace the history, present position and problems of the Indian Paper Industry

---

अध्याय ६६

सीमेन्ट उद्योग

(Cement Industry)

प्रारम्भिक—

किसी देश के औद्योगीकरण के लिये कोयला, स्टील तथा सीमेन्ट अत्यन्त आवश्यक पदार्थ हैं। अनेक महत्त्वपूर्ण वस्तुओं के निर्माण मे इनका प्रयोग किया जाता है। देश की सामाजिक व आर्थिक प्रगति भी बहुत कुछ इन्ही उद्योगो पर निर्भर करती है। यद्यपि ये तीनो ही महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु सीमेन्ट का महत्त्व अद्वितीय है। सीमेन्ट उद्योग की गणना भारत के प्रमुख सगठित उद्योगो मे की जाती है। यह उन उद्योगों मे से है, जो बिना सरक्षण के प्रथम विश्व युद्ध के बाद द्रुत गति से विकसित हुये है। इसने अपने उत्पादन को पिछले १६ वर्षों मे तिगुना कर दिया है। आजकल सीमेन्ट के ३२ कारखाने क्रियाशील है। उत्पादन-क्षमता लगभग ८५·७ लाख टन है, जो सन् १६६०-६१ तक ९३ ७ लाख टन हो जाने की आशा है। कारखानो की सख्या भी बढ कर ३४ हो जावेगी। उद्योग की प्रगति का अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है :—

सीमेन्ट का उत्पादन

(हजार टन)

वर्ष	उत्पादन
१९१४	१
१९१८	८४
१९३०	५,९३
१९४०	१७,१२
१९४७	१४,४७
१९५०	२६ १०
१९५५	४४,८७
१९५६	४९,२८
१९५७	५६,०२
१९५८	६०,६८
१९५९	६८,१४
१९६० (अस्थाई)	७७,००

विकास का संक्षिप्त इतिहास—

भारत मे सगठित ढग से पहली बार सीमेन्ट तैयार करने का श्रेय मद्रास को है। वहाँ सन् १९०४ से मुख्यत समुद्री सीपियो से सीमेन्ट बनाने का कारखाना खोला गया, परन्तु कारखाना चला नही। यह सचमुच बड़ आश्चय की बात है कि यद्यपि भारत मे सीमेन्ट के उपभोग के लिये विशाल आन्तरिक बाजार है और इसके निर्माण के हेतु सभी सुविधायें तथा अनुकूल परिस्थितिया है, किन्तु फिर भी सन् १९१४ तक इस उद्योग ने हमारे देश म काई उल्लेखनीय प्रगति नही की। सीमेन्ट की किस्म भी ज्यादा अच्छी न थी। प्रथम महासमर के पूव भी भारत एक बडी मात्रा मे सीमेन्ट का आयात करता था (लगभग १,८०,००० टन प्रति वष)। वास्तव मे माग तो सन् १९१४ के महायुद्ध स बढी। बडी मात्रा पर सीमेन्ट का उत्पादन सन् १९१२-१३ से आरम्भ हुआ, जबकि तीन कम्पनियाँ स्थापित हुई—'इण्डियन सीमेन्ट कम्पनी, पोरबन्दर, कटनी सीमेन्ट तथा इन्डस्ट्रियल कम्पनी और बूँदी पोर्टलण्ड सीमेन्ट कम्पनी। प्रथम महायुद्ध के युग मे इस उद्योग को प्रोत्साहन मिला। सीमेन्ट के उत्पादन का अधिकांश भाग तो भारत सरकार ने ही क्रय किया। अनेक कम्पनियाँ और स्थापित हुई। पुरानी तीन कम्पनियो ने अपना उत्पादन दुगुना कर दिया और सन् १९२३ तक ६ नई कम्पनियाँ खुल गई। प्रगति बडी तेजी से हुई और उत्पादन की मात्रा ९४५ टन (सन् १९१४ मे) से २,३९,०४३ टन (सन् १९२४ मे) हो गई। आयात की मात्रा घट

गई। सन् १९३२-३३ मे उत्पादन ५,९३,००० टन हो गया और सन् १९३७-३८ मे तो लगभग दुगुना हो गया। सीमेन्ट की किस्म भी काफी सुधर गई।

सीमेन्ट कम्पनियो की सख्या में वृद्धि के साथ-साथ पारस्परिक स्पर्धा भी तेज होती गई। इससे उद्योग को काफी चोट पहुँची, यहाँ तक कि इसका अस्तित्व भी खतरे मे पड गया। सन् १९३० मे "सीमेन्ट मार्केटिंग कम्पनी" का जन्म हुआ और इस कम्पनी को सदस्यो के द्वारा उत्पन्न की हुई कुल वस्तुओ को, सस्ते मूल्य पर बेचने का अधिकार दिया गया। प्रत्येक सदस्य फैक्टरी को उत्पादन के लिये एक निश्चित मात्रा दी गई। भिन्न-भिन्न रेलवेज पर भाडो की व्यवस्था की गई। तेज भाडो को रोका गया और बाजार मे भिन्न-भिन्न नमूनो के सीमेन्टो के ढेर लग गए।

सन् १९३६ मे सीमेंट कम्पनियो का सम्मिश्रण—

सन् १९३६ मे उद्योग की युक्तिपूर्ण प्रगति के हेतु एक ठोस कदम उठाया गया, जिसके अनुसार समस्त विद्यमान सीमेन्ट कम्पनियो का एकीकरण कर दिया गया और 'एसोसियेटेड सीमेन्ट कम्पनीज लिमिटेड' (A C. C) के नाम से उसका रजिस्ट्रेशन कराया गया। देश की प्रधान दस कम्पनियो के इस महत्वपूर्ण सम्मिश्रण से उद्योग की दशा बहुत सुधर गई। पारस्परिक स्पर्धा का अन्त हो गया तथा तान्त्रिक विकास सम्भव हुआ।

द्वितीय महासमर और उद्योग—

सन् १९३९ मे महायुद्ध क प्रारम्भ होने से सीमेन्ट उद्योग को और भी प्रोत्साहन मिला। सीमेन्ट की माँग बहुत बढ गई, उत्पादन भी काफी बढा। सीमेन्ट का मूल्य भी चढ गया। साधारण जनता को सीमेन्ट प्राप्त करना भी कठिन हो गया, क्योकि अधिकतर युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताये पूरी हो रही थी। एक उल्लेखनीय बात यह भी हुई कि ए० सी० सी० तथा डालमिया कम्पनियो के समूह म एक समझौता भी हुआ, जिससे आन्तरिक स्पर्धा पर और भी अधिक नियन्त्रण लगा दिया गया।

देश का विभाजन—

अगस्त सन् १९४७ मे देश का विभाजन होने पर १८ कारखाने, जिनकी कुल स्थापित उत्पादन क्षमता २१ १५ लाख टन थी, भारत मे रह गये। पाँच कारखाने पाकिस्तान मे रहे। देश मे सीमेन्ट की माँग इतनी अधिक रही है कि कारखानो की उत्पादन क्षमता बढाई गई और सन् १९५०-५१ के अन्त तक भारतीय कारखानो की स्थापित उत्पादन क्षमता म १० लाख टन की और वृद्धि हो गई।

पंच-वर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत सीमेन्ट उद्योग—

प्रथम पंच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत सीमेन्ट उद्योग सम्बन्धी विभिन्न लक्ष्य इस प्रकार थे—

	१९५०-५१	१९५५-५६
कारखानो की सख्या	२१	२७
वास्तविक वार्षिक उत्पादन (हजार टन)	३,२८०	५,३०६
कुल उत्पादन (हजार टन)	२,६९२	४,८००
निर्यात (हजार टन)	२६	३००

प्रथम पच वर्षीय योजना के पूर्ण हो जाने से वार्षिक उत्पादन क्षमता ७० लाख टन तक हो गई है। **द्वितीय पच-वर्षीय योजना** के अन्तर्गत सरकार ने सीमेन्ट का वार्षिक उत्पादन १३० लाख टन तक लाने का लक्ष्य निर्धारित किया। इस योजना काल मे इस उद्योग के विस्तार की निम्न रूपरेखा बनाई गई—वर्तमान २८ कारखानो की उत्पादन क्षमता मे वृद्धि करना और ३१ नये सीमेन्ट कारखाने खोलने की व्यवस्था करना। वर्तमान कम्पनियो द्वारा ९ नये कारखानो और नये लोगो द्वारा १८ नये कारखाने खोलने के लिये सरकार स्वीकृति दे चुकी है। इस विस्तार के फलस्वरूप सीमेन्ट उद्योग की स्थिति इस प्रकार हो जाने की आशा है :—

(लाख टनो मे)

वर्ष	कारखानो की सख्या	वर्तमान कारखानो की वार्षिक क्षमता	नये कारखानो की क्षमता	योग (वार्षिक उत्पादन)
१९५९	४२	८०·३२	१४ ८९	१०५ २२
१९६०	४४	९१·७१	२८ ५३	१२०·२५
१९६१	५३	९९·५९	४९·६८	१४८·२७
१९६२	५५	९८·५९	५२ ९८	१५१·५७

तीसरी पच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत सन् १९६५-६६ के लिये सीमेण्ट की उत्पादन क्षमता को बढाकर १५ मि० टन करने का लक्ष्य रखा गया है। यह द्वितीय योजना के अत तक होने वाले उत्पादन का ड्योढा है। सीमेण्ट के लिये माग की आधुनिक प्रवृत्तियो से यह अनुमान लगता है कि सन् १९६०-६१ के लिये आवश्यक मात्रा का जो अनुमान लगाया गया है वह कुछ कम है। अगले वर्षों मे इस पर पुन. विचार किया जायेगा। इस तरह यह सम्भावना है कि उक्त लक्ष्य को बढाना पडेगा।

सीमेण्ट का मूल्य—

पहली नवम्बर सन् १९६१ से भारत सरकार ने तीसरी पच-वर्षीय योजना के अन्त तक तमाम देश मे सीमेण्ट की बिक्री के मूल्य मे १३ रु० प्रति टन की वृद्धि की है। सीमेण्ट का बिक्री मूल्य अब १२२ रु० ६० न० पै० से बढकर १३५ रु० ६० न० पै० हो जायेगा। सरकार ने ऐसा टटकर आयोग की सिफारिशो के आधार पर किया है।

उद्योग की समस्यायें एवं उनके हल—

(१) सीमेण्ट की कमी की समस्या—एक वर्ष पूर्व भारत सरकार ने सभी राज्य सरकारों को सलाह दी कि वे सीमेण्ट स्टाकिस्टों को लाइसेन्स देना बन्द करें। उस सलाह का कारण यह बताया गया कि सीमेण्ट के वितरण पर उतना नियन्त्रण रखना जरूरी नहीं रहा, जितना लाइसेन्सिंग प्रणाली लागू करने के समय था, क्योंकि पूर्ति आवश्यकता से अधिक होने लगी है। एक ओर यह स्थिति सामने आई और दूसरी ओर गत दो वर्ष से बम्बई में सीमेण्ट की कमी की समस्या बनी हुई है। वह उत्तरोत्तर विकट बनती गयी है। उसका अवसर अब सारे महाराष्ट्र राज्य पर ही नहीं, वरन् देश के अनेक भागों में दिखाई देने लगा है। उडीसा सरकार ने फिर सीमेण्ट के वितरण के लिए परमिट-प्रणाली दो महीने पूर्व जारी कर दी है। दिल्ली में भी सरकार को सीमेण्ट के वितरण में हस्तक्षेप करना पड़ा है।

ऐसा मालूम होता है कि गत नौ-दस महीनों में निजी क्षेत्र में निर्माण की गति बढ़ी है। शायद सरकारी क्षेत्र में भी सीमेण्ट की आवश्यकता अधिक हो गई है। बाढ़ों से जो क्षेत्र प्रभावित हो गये थे, उनमें मरम्मत के लिए भी सीमेण्ट की आवश्यकता में आकस्मिक वृद्धि हुई। स्टेट ट्रेडिंग कार्पोरेशन (राज्य व्यापार निगम), जिसका सीमेण्ट के वितरण पर नियन्त्रण है, छः माह पूर्व यह तर्क दे सकता था कि आवश्यकता में आकस्मिक वृद्धि से वह अवगत नहीं था। अब उसमें आकस्मिकता का तत्त्व नहीं रह गया है।

सीमेण्ट की माग में जो वृद्धि हुई है, उसका सामना करना कठिन नहीं होना चाहिए। सीमेण्ट-उद्योग में वर्तमान जरूरतों को पूरा करने योग्य क्षमता है ही। वह थोड़ा समय मिलने पर भी उत्पादन बढ़ाने की स्थिति में है। पता लगाया जाना चाहिए कि क्या कारखानों का उत्पादन आवश्यकता के अनुसार न बढ़ने की वजह रा० व्या० निगम की भपकी लेना है अथवा रेल वैगनों के अभाव के कारण उन्हें कोयला पर्याप्त परिमाण में न मिलना।

इस्पात का उत्पादन तेजी से बढ़ाया जा रहा है। ऐसी हालत में सीमेण्ट की आवश्यकता का तेजी से बढ़ना अपरिहार्य ही है। यदि उसकी पूर्ति न हुई, तो इस्पात के उत्पादन में वृद्धि से लाभान्वित होना सम्भव न होगा। अनेक औद्योगिक योजनाएँ कार्यान्वित होती जा रही हैं। आवास-निर्माण का काम भी तेजी पर ही है। पंच-वर्षीय योजना को कार्यान्वित करने वालों को ये सम्भावनाएँ ध्यान में शायद नहीं आई थीं। यह तो इस बात से ही झलकता है कि दूसरी योजना का सीमेण्ट-उत्पादन लक्ष्य १ करोड़ ६० लाख टन से घटाकर डेढ़ करोड़ टन कर दिया गया। इसके अलावा जो लाइसेंस जारी हुए, वे १ करोड़ ४० लाख टन के ही हैं। उनमें से भी केवल उतने का ही उपयोग दूसरी योजना के अन्त तक हो सकेगा, जितने से उत्पादन अधिक से अधिक १ करोड़ १० लाख टन तक पहुँच सकेगा। यदि सरकार अब भी समस्या के प्रति झपकी लेने की नीति त्याग दे एवं उद्योग संचालकों को आवश्यक क्षमता बढ़ाने

मे मदद देने के उपाय करे, तो स्थिति की विकटता धीरे-धीरे दूर हो सकेगी। सीमेण्ट कारखाने बनाने के लिए कल-पुर्जे देश म मे ही प्राप्त करने पर जो अत्यधिक बल दिया जा रहा है, उसमे कमी न होने पर लाइसेन्स बेकार ही पडे रहेंगे।

(२) सरकार की उपेक्षा—सरकार की इस उद्योग के प्रति विशेष उत्साहवर्द्धक नीति नही रही है, जैसी कि इस्पात उद्योग आदि के प्रति है। समस्त भारत के लिये सीमेण्ट का मूल्य भी समान नही है। इससे उद्योग के सम्मुख एक उलझन आ गई है।

(३) यातायात की समस्या—इसके अतिरिक्त देश मे यातायात के साधनो की कमी है, यद्यपि हाल ही मे इस दिशा मे काफी सुधार हुआ है, किन्तु अभी बहुत कुछ करना शेष है। यह आवश्यक है कि रेल भाडा नीति ऐसी हो जिसमे कि सभी स्थानो पर सीमेण्ट को बिना मूल्य बढाये आसानी से पहुँचाया जा सके।

(४) बिक्री कर एव उत्पादन कर—सरकार सीमेण्ट पर लगे बिक्री कर तथा उत्पादन कर को वसूल करने के लिये बडी सख्ती स काम लेती है। प्रत्येक सीमेण्ट के कारखाने पर ४-५ कर्मचारी रहते हैं, जो सीमेण्ट की पैकिंग तथा उसके प्रेषण (Despatch) पर कडी निगाह रखते है। इससे कारखानो को बडी कठिनाई का सामना करना पडता है।

(५) सीमेण्ट की सरकारी बिक्री—सरकार ने १ जुलाई सन् १९५६ से सीमेण्ट को स्वय बेचने का निश्चय किया है तथा सारे भारत के लिए सीमेण्ट का एक मूल्य १०२ रु० ५० नये पैसे रखा है। इससे सीमेण्ट के उत्पादन पर प्रभाव पडने की आशंका है।

(६) उत्पादन व्ययो की समस्या—भारतीय सीमेण्ट उद्योग का उत्पादन व्यय भी अधिक है। हमारी कुछ इकाइयाँ अलाभकारी भी हैं।

उक्त समस्याओ को सुलझाने के लिये योजना कमीशन ने निम्न सुझाव दिये है—(अ) वर्तमान कारखानो का प्रसार करके उनके उत्पादन मे वृद्धि करना। (आ) कार्यक्षमता मे वृद्धि करने तथा लागत व्यय को कम करने के उद्देश्य से उद्योग को अपनी मशीनो का अभिनवीकरण करना चाहिए। (इ) राज्य सरकारो को चाहिये कि वे दीर्घकालीन पट्टे देकर इस उद्योग की उन्नति मे सहायता दें। (ई) देश मे फालतू सीमेण्ट की मात्रा को ध्यान मे रखकर विदेशो मे भारतीय सीमेण्ट के लिए बाजारो की खोज करनी चाहिये। (उ) अलाभकारी कारखानो का कम से कम एक न्यूनतम लाभकारी आकार तक प्रसार करना चाहिये।

उद्योग का भविष्य—

सीमेण्ट उद्योग का भविष्य बडा उज्जवल है। देश मे जितना सीमेण्ट बनता है उसकी अपेक्षा माँग अधिक रहती है। जिस तेजी से हम प्रगति कर रहे हैं उसे देखते हुये अभी बहुत दिनो तक माँग की यही दशा बनी रहेगी। इसके सिवाय भाकडा, नागल,

हीराकुण्ड, भवानी, भोसार, दामोदर घाटी योजना, कोयना, कोसी आदि बाँध बनाने के काम भी अभी चलेंगे, जिनके लिए बहुत अधिक सीमेण्ट की आवश्यकता होगी। देश की सबसे बड़ी समस्या खाद्य की है। इस समस्या को केवल वर्तमान आबादी को देखते हुए ही नही वरन् भावी-जन-संख्या को भी ध्यान मे रखते हुए हल करना है। एक ओर तो देश के कुछ भागो मे सूखा पड़ती है और दूसरी ओर बाढ से विनाश होता है। बाढ वाली नदियो का नियन्त्रण करना आवश्यक है, जो जल विद्युत तथा सिंचाई योजना चलाकर ही किया जा सकता है। यह कार्य सीमेण्ट के बिना नहीं हो सकता। देश को बढ़िया सड़को की आवश्यकता है। साथ ही अच्छे ढग के मकान, अस्पताल और स्कूल भी बनाये जाने हैं। इनके अतिरिक्त नागरिक तथा सैनिक दोनो ही कार्यों के लिये हवाई अड्डे भी बनाये जायेंगे। इन सभी कार्यों के लिये सीमेण्ट की आवश्यकता होगी।

अध्याय ७०

भारतीय जहाजरानी

(Indian Shipping)

प्रस्तावना—

इमरसन का यह कथन कि 'संसार के सबसे प्रगतिशील वे देश हैं जो सबसे अधिक नाविक होते हैं, बिल्कुल सत्य है। वास्तव मे जिसका समुद्र पर अधिकार है, उसका विश्व के व्यापार पर भी अधिकार होता है। प्राचीन युग मे भारतवर्ष 'पूर्वीय सागरो की रानी' के नाम से विख्यात था। अतीत काल में जहाज निर्माण कला मे भी यहाँ के निवासी बडे चतुर थे। प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से पता लगता है कि भारत मे बने मजबूत और सुन्दर जहाजो द्वारा ही ईरान, अरब, पूर्वी अफ्रीका, मलाया, पूर्वीय द्वीपो इत्यादि देशो से व्यापारिक सम्बन्ध थे और जहाजरानी की सहायता से ही मसाले तथा विभिन्न प्रकार के अन्य सामान इन देशो को भेजे जाते थे। डा० मुकर्जी ने इस विषय मे लिखा है कि भारत की प्राचीन सभ्यता इसलिए विश्व के कोने-कोने तक पहुँची कि इसे बड़ी सामुद्रिक शक्ति प्राप्त थी। इतिहास से पता चलता है कि जब सिकन्दर महान् अपने देश को वापस जा रहा था, तब २ हजार

भारतीय जहाजो पर ही उसकी सेना तथा सामान लदा हुआ था। मुगल शासन-काल मे भी जहाजरानी उद्योग विकास की ओर बढ रहा था। इस उद्योग की प्रशसा करते हुए बाबरी फायर ने लिखा है कि 'उस समय भारत मे मजबूत जहाज बनाये जाते थे। योरोपीय देशो मे इतने विशाल जहाजो का अभाव था"। शिवाजी के पास भी मजबूत जहाजी बेडा था, जिससे अग्रेजो को सदैव भय रहता था। उसके बाद के काल मे भी जहाजरानी की दशा अच्छी रही, परन्तु २०वी शताब्दी मे प्रारम्भ होते ही यह उद्योग अवनति करता गया, जिसका मुख्य कारण था अग्रेजो का भारत पर शासन स्थापित होना।

भारतीय जहाजरानी का संक्षिप्त इतिहास—

भारत मे रेल-यातायात की स्थापना हो जाने के बाद रेल तथा समुद्री यातायात मे प्रतिस्पर्द्धा प्रारम्भ हो गई। अँग्रेज सरकार ने इस प्रतिस्पर्द्धा को नष्ट करने के लिए कभी कोई कदम नही उठाया, वरन् जब कभी भारतीय कम्पनियो ने समुद्र मे अपने जहाज चलाने के प्रयत्न भी किए तब उनको विदेशी जहाजी कम्पनियो से प्रतिस्पर्द्धा करनी पडी, जिससे उनको काफी हानि का सामना करना पडा। यह प्रतिस्पर्द्धा दो प्रकार से लडी जाती थी— एक तो, भाडा कम करके और दूसरे, विलम्बित कटौती प्रथा द्वारा।

प्रथम महायुद्ध के बाद भारतियो मे जागृति का सचार हुआ और उन्होने इस बात की माग की कि भारतीय जहाजरानी उद्योग को अपना विकास करने का अवसर प्रदान किया जाय। सन् १९२३ मे इण्डियन मर्केन्टाइल तथा मैरिन कमेटी की नियुक्ति की गई। इसने निम्न सुझाव दिये —(१) भारतीय व्यापारिक जहाजरानी के लिए अनिवार्य अफसरो की प्रशिक्षा हेतु सरकार द्वारा बम्बई मे जलयान प्रशिक्षण की स्थापना की जानी चाहिए। (२) तटीय व्यापार लाइसेन्स प्राप्त जहाजो के लिए सुरक्षित रखा जाय। (३) भारतीय कम्पनियो को व्यापार हेतु अनुदान देने के प्रश्न पर विचार किया जाये। (४) कलकत्ता को स्वत चालित जलयानो के निर्माण का केन्द्र बनाया जाये। (५) भारतवासियो को विदेशी कम्पनियो मे ट्रेनिङ्ग दी जाय। सिवाय इसके डफरिन मे जहाजी कर्मचारियो की शिक्षा की व्यवस्था हो गई। सिफारिश को नही माना गया। इसके बाद सन् १८२८ मे श्री हाजी साहब ने असेम्बली मे तटीय यातायात भारतीय जहाजो के लिए सुरक्षित रखने के हेतु एक बिल पेश किया, किन्तु वह अस्वीकार कर दिया गया। इसके बाद सन् १९३९ मे हाजी साहब ने विलम्बित बट्टे के अन्त के लिये प्रस्ताव रखा, परन्तु इसमे भी सफलता न मिल सकी।

द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व भारतीय जहाजरानी के विकास के लिये जो भी प्रयत्न किये गये, वे सब असफल रहे। युद्ध काल मे अँग्रेजी सरकार को भारतीय नौ सेना के महत्व का पता चल गया जहाजरानी की गम्भीर समस्याओ पर विचार करने के लिए सर सी० पी० रामा स्वामी ऐय्यर की अध्यक्षता म एक युद्धोत्तर पुनर्निर्माण उप-समिति की नियुक्ति की गई, जिसने अपनी विज्ञप्ति सन् १९४७ मे पेश

की, जिसमे सरकार की नीति की आलोचना की गई। इसने सिफारिश की कि भारतीय जहाजरानी उद्योग की क्षमता २० लाख टन कर दी जाय। दूसरे, भारत के तटीय व्यापार का १००%, निकटवर्तीय देशो के साथ होने वाले व्यापार का ७५%, दूरवर्तीय देशो के साथ होने वाले व्यापार का ५०% तथा जर्मनी आदि शत्रु राष्ट्रो के खोये हुये व्यापार का ३०% भाग भारतियो के हाथ मे पांच से सात वर्ष तक आ जाना चाहिए, परन्तु इस सम्बन्ध मे सरकार ने कोई उल्लेखनीय कार्यवाही नही की। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद उपर्युक्त लक्ष्य प्राप्त करने के लिए भारत सरकार ने जहाजी कम्पनियो को सहायता देने का निश्चय किया। उपरोक्त लक्ष्य पर पहुँचने के लिये शिपिंग एक्ट सन् १६४७ मे पास किया गया, जिसके द्वारा जहाजो का लाइसेन्सिंग किया गया। इसके बाद एक सम्मेलन द्वारा जहाजी निगमो की स्थापना का निर्णय किया गया। इन निगमो का उद्देश्य भारतीय जहाजों की टन क्षमता तथा जहाजी यातायात मे वृद्धि करना है। ईस्टर्न शिपिङ्ग कॉर्पोरेशन आज पूर्ण रूप से सरकारी स्वामित्व मे है।

भारतीय जहाजरानी की स्थिति—

स्वाधीनता के बाद राष्ट्रीय सरकार अपने जहाजी व्यापार के विकास के लिए काफी प्रयत्न कर रही है। नवीन बन्दरगाहो का निर्माण जारी है और योजनायें बनाई जा रही हैं। भारत सरकार अब इस बात को भली-भांति जानती है कि भारतीय जलयानो को राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे तथा राष्ट्र की रक्षा मे बडा कार्य करना है। इसके लिए वाणिज्य विभाग की अध्यक्षता मे बम्बई मे एक डाइरेक्टरेट जनरल ऑफ शिपिङ्ग की स्थापना की गई है, जिसका उद्देश्य भारतीय जलयान नीति का एकीकरण करना है। विजगापट्टम बन्दरगाह को सरकार आर्थिक सहायता भी प्रदान कर रही है। सरकार ने यह भी निश्चय कर लिया है कि भविष्य मे भाडे आदि के संघर्ष के कारण भारतीय जहाजरानी या जलयान उद्योग की कोई हानि नही होनी पायेगी। इसके परिणामस्वरूप भारतीय जलयान कम्पनियां भारत, यूरोप तथा उत्तरी अमरीका के बीच अच्छी सेवायें कर रही हैं। भारत सरकार ने सन् १६५१ मे अंग्रेजी प्रभुत्व के जहाजी सम्मेलन के स्थान पर एक नया भारतीय तटीय सम्मेलन की स्थापना की, जिसके द्वारा सारा तटीय व्यापार भारतीय जहाजो द्वारा किया जाता है। जहाजरानी को इतना प्रोत्साहित करने के बाद भी भारतीय जहाजरानी पूर्ण विकसित नही हो पाई है। इसके अतिरिक्त विदेशी व्यापार का कुल ५% भाग भारतीय जहाजो द्वारा किया जाता है, जबकि लक्ष्य ५०% था। इस प्रकार जहाजरानी के विकास के लिए बहुत कुछ करना है। यह अनुमान है कि भारतीय जहाजी कम्पनियो का समुद्रीय व्यापार कुल समुद्री व्यापार का ६% है तथा पडोसी व्यापार का ८% भाग है। प्रथम योजना के अन्त मे ६,००,७०७ जी० आर० टी० के जहाज थे और द्वितीय योजना के अन्त मे ६,०१,७०७ जी० आर० टी० के जहाजो की व्यवस्था करने का लक्ष्य रखा गया है। दिसम्बर सन् १६५६ के अन्त मे ७'३६ लाख जी० आर० टी० के १५७ जहाज

थे, जिनमे से २.७४ लाख जी० आर० टी० के ८६ जहाज तटीय व्यापार मे तथा ४.६५ जी० आर० टी० के ६८ जहाज विदेशी व्यापार मे लगे थे। ८०,८०० जी० आर० टी० के जहाजो का निर्माण किया जा रहा है, जो द्वितीय योजना काल के पूर्व ही प्राप्त हो जावेंगे। द्वितीय योजना काल मे प्रस्तावित ३ लाख जी० आर० टी० के जहाजों के निर्माण के लक्ष्य से विदेशी विनिमय की कमी तथा आन्तरिक वित्तीय स्थिति सुदृढ न होने के कारण कटौती कर दी गई। भारत सरकार की नीति के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय समुद्री व्यापार मे भारतियो का हिस्सा ५०% तक बढाना है।

भारतीय जहाजरानी की कुछ प्रमुख समस्यायें--

(१) जहाजी सम्मेलनो का प्रभुत्व--अन्तर्राष्ट्रीय समुद्रीय व्यापार मे अनेक जहाजी सम्मेलन है, जिनमे विदेशी जहाजी कम्पनियो का प्रभुत्व है। इन सम्मेलनो मे भारतीय जहाजी कम्पनियो को सदस्यता नही दी जाती है, जिससे वे इन सम्मेलनो के मार्ग पर अपना व्यापार नही कर पाती। विदेशी जहाजो की इस बढती हुई गति के कारण भारतीय जहाजी कम्पनियो को बडी हानि उठानी पड रही है। देशी जहाज खाली चलते है, जबकि विदेशी जहाज भरे जाते है। राष्ट्रीय जहाजी बेडे को शक्तिशाली बनाने के लिये हमारी जन प्रिय सरकार को चाहिए कि वह इस अनावश्यक विदेशी हस्तक्षेप को रोकने के लिये कटिबद्ध हो जाय। सरक्षण की कोई ऐसी योजना निकाली जाय, जिसके द्वारा राष्ट्रीय जहाजी बेडा फले-फूले एव प्रतियोगिता मे भी सफल हो।

(२) तडाग जहाजो (Tanker Tonnage) का अभाव--अभी तक भारत के पास अपने निजी तडाग जहाज नही हैं, तथापि भारत सरकार ने ऐसे जहाज लेने का निश्चय कर लिया है। हमारे जहाजी बेडे की यह बहुत बडी कमी है, क्योकि देश मे ३ तैल शोधनशालायें (Oil refineries) बनाई जा रही हैं, जिनके लिये हमे लगभग ३८ लाख टन कच्चा तेल बाहर से मँगाना पडेगा। शोधनशाला मे भी बाहर से तेल लाने के हेतु ही नही, वरन् परिशोधित तेल को देश के विभिन्न भागो मे समुद्री मार्ग से भेजने के लिए तडाग जहाजो की आवश्यकता पडेगी। इस समस्या पर भी गम्भीरता से विचार करना चाहिए।

(३) यात्री जहाजो का अभाव--देश की प्रतिष्ठा के हेतु एव यात्रियो की आवश्यकता पूर्ति के लिए यात्री जहाजो का होना आवश्यक है। ऐसे जहाजो के सचालन मे बहुधा व्यय अधिक होता है, अतएव अन्य अनेक देशो मे ऐसी सेवायें राजकीय सहायता के बल पर चलती हैं। हमारे देश मे भी भारत और ब्रिटेन के बीच सिंधिया कम्पनी कई वर्षो तक इस आशा मे यात्री सेवा प्रदान करती रही कि सरकार उसे इस कार्य मे प्रोत्साहित करेगी, परन्तु सरकार ने इधर लेशमात्र भी ध्यान न दिया। परिणामस्वरूप उसे सेवा समाप्त करनी पडी। इससे केवल देश के यात्रियो को ही कठिनाई नही हुई, वरन् विदेश से आने वाले भ्रमणकारियो को भी बडी असुविधा उठानी पड़ी।

(४) उपयुक्त बन्दरगाहो के लिए सुविधाओं का अभाव—भारतीय समुद्रतट ४००० मील लम्बा होते हुये भी इस पर उपयुक्त बन्दरगाहो के लिए सुविधाओं का अभाव है, क्योकि किनारे सपाट हैं, कटे-फटे नही। कृत्रिम सुविधायें जुटाने पर भी विशेष ध्यान नही दिया गया, अतः हमारे देश मे अच्छे बन्दरगाहो का अभाव है। इस कारण भी भारतीय शिपिङ्ग अधिक प्रगतिशील नही है।

(५) जहाजों को मरम्मत—स्वतन्त्रता के बाद भारतीय व्यापारिक जहाजी बेडे की टन क्षमता मे जो उन्नति हुई है, उसने एक और समस्या पैदा कर दी है। यह समस्या है देश मे ही जहाजो की मरम्मत की सुविधाओं के विस्तार की आवश्यकता। आजकल हमारे देश मे ८ ऐसे कारखाने हैं, जिनम जहाजो की मरम्मत होती है। परन्तु टन क्षमता के विस्तार की दृष्टि से ये सुविधायें जहाजी बेडे को समुचित दशा मे रखने के लिए कम हैं।

(६) रेल जहाजी प्रतियोगिता—भारत के तटीय यातायात मे कुछ ऐसी वस्तुओं का समावेश है (जैसे नमक, कोयला) जिनका परिमाण कुल तटीय-यातायात (२८ लाख टन) मे लगभग १·७५ लाख टन होता है। परन्तु ऐसी वस्तुओं के तटीय-यातायात मे रेलवे की ओर से जहाजी कम्पनियो को कडी प्रतियोगिता का सामना करना पडता है, क्योकि रेल-यातायात माल को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए भाडे को आवश्यकतानुसार कम कर देता है, जो जहाजी यातायात मे सम्भव नही होता। इस समस्या को हल करने के लिए भारत सरकार ने जून सन् १९५५ मे रेल-समुद्र सामजस्य समिति की नियुक्ति की थी, जिसने अपनी रिपोर्ट सरकार को दे दी है। इसमे जहाजी तटीय यातायात की भाडा दरें बढाने की सिफारिश भी की गई है, जिसे भारत सरकार ने कुछ अपवादो के साथ लागू कर दिया है।

(७) देश मे जहाज निर्माण कारखानो की कमी—हमारे देश मे जहाज बनाने का एक ही कारखाना है, जिसकी विकास योजना की पूर्ति पर वह सन् १९५९ के लगभग ४ जहाज वार्षिक बना सकेगा। अत भारत को विदेशी आयातो पर निर्भर रहना पडता है।

(८) आर्थिक साधनो की कमी—जहाजी टन क्षमता बढाने के लिए देशी एव विदेशी विनिमय की आवश्यकता पडती है। जहाजी कम्पनियो को देशी मुद्रा मे ऋण देने की सुविधा के लिए भारत सरकार ने सन् १९५८ मे एक स्थायी जहाज विकास कोष का १ करोड रुपए से निर्माण किया है। परन्तु विदेशी विनिमय की कमी जहाजी टन क्षमता बढाने के मार्ग म एक बहुत बडी रुकावट है। इस कठिनाई का दूर करने के लिए भारत सरकार प्रयत्नशील है।

(९) गोदी कर्मचारियो की समस्या—गोदी कर्मचारियो की समस्या के उग्र रूप का परिचय भारतीय जनता को १५ जून सन् १९५८ को आरम्भ होने वाली गोदी कर्मचारियो की हडताल से मिला। यह हडताल निम्न माँगो की पूर्ति के लिए हुई थी :—(अ) प्रॉवीडेण्ट फण्ड एव ग्रेचुइटी के सम्बन्ध मे तत्काल निर्णय की

माँग, (आ) अवार्ड से सम्बन्धित अन्य विषयों तथा स्थानीय मांगो पर बन्दरगाह स्तर पर तत्काल वार्तालाप की मांग। गोदी कर्मचारी भारत सरकार के लिए एक बहुत बडी समस्या है, जिनका समुचित हल न होना हमारे नव-विकसित उद्योग को खतरे मे डाल सकता है।

पंच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत भारतीय जहाजरानी—

प्रथम पच-वर्षीय योजना—योजना आयोग की सिफारिश के अनुसार प्रथम योजना मे जहाजी उद्योग की टन शक्ति ६ लाख टन बढाने की थी, जिसके लिए जहाज खरीदने के लिए १६'५ करोड रुपये की सहायता देने की सिफारिश थी। योजना मे पूर्वी कॉरपोरेशन के लिए इतनी धन राशि का आयोजन किया था कि वह ६०,००० टन के जहाज खरीद सके। योजना आयोग ने सिफारिश की थी कि सरकार इस उद्योग को आर्थिक सहायता प्रदान करे। इसके अतिरिक्त यह भी कहा था कि जहाजी बेडे की विकास योजना को 'दी हिन्दुस्तान शिपयार्ड विशाखापट्नम' की योजना से मिला देना चाहिए, जिससे अधिक उन्नति हो सके। यह भी आवश्यक है कि प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त करने का प्रयत्न किया जाये, जिसके लिए भाडे उचित और एक समान होने चाहिए। सरकार ने उपरोक्त सभी सुझावो को मान्यता प्रदान की और हर प्रकार से इस उद्योग के विकास मे सहयोग प्रदान कर रही है।

द्वितीय पच वर्षीय योजना—द्वितीय योजना मे जहाजरानी के विकास के लिये ४५ करोड रु० का आयोजन किया गया (इसमे ८ करोड रु० की पहली योजना की शेष धन राशि भी सम्मिलित है)। प्रथम योजना मे ६ लाख टनेज के पूरा होने मे कुछ कमी रह गई थी। दूसरी योजना के अतर्गत ९०,००० टन के जहाज बदले जाने थे। टनेज का लक्ष्य ९,००,००० टन रखा गया। यह आशा है कि द्वितीय योजना के अन्त तक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे भारतीय जहाजो का भाग १५% हो जायेगा। बडे बन्दरगाहो के विकास पर ५८'३१ करोड रुपया, प्रकाश गृह के ऊपर ४ करोड रु०, छोटे बन्दरगाहो के विकास पर ४ करोड रु० व्यय किये गये। उत्पादन की वृद्धि के लिये दूसरा शिपयार्ड कोचीन मे बनाया गया है।

सरकार ने मार्च सन् १९५२ मे विशाखापटनम शिपयार्ड सिंधिया स्टीम शिपयार्ड नेवीगेशन कम्पनी से ग्रहण कर लिया था तथा प्रबन्ध का कार्य हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटड को दिया, जिसमे ⅔ पूँजी सरकार की थी और ⅓ पूँजी सिंधिया कम्पनी की थी। यह शिपयार्ड अब ४ आधुनिक डीजल सचालित जहाज प्रति वर्ष बना सकता है। पहला जहाज सन् १९४८ मे बनाया गया। कुछ प्रमुख जहाज जो इस यार्ड मे बन कर समुद्र पार भेजे गये, निम्नलिखित हैं :—

जहाज का नाम व वजन		स्वामियो का नाम
१. जगरानी \ C १०८	(८,००० DWT)	ग्रेट ईस्टर्न शिपिंग कम्पनी लि०

२. जल प्रपात VC १११	,,	सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कं० लि०
३ जल पुष्पा	,,	,,
४. भारत रत्न	,,	भारत लाइन लि०
५ जल पुत्र VC ११५	,,	सिंधिया स्टीम नेवीगेशन क० लि०
६ जल विहार VC ११६	(७०० DWT)	,,
७ जल विजय	,,	,,
८. जल विष्णु VC ११६	,,	,,
९ स्टेट ऑफ कच्छ VC ११८	(८,००० DWT)	ईस्टर्न शिपिंग कॉरपोरेशन
१० कोर्ट नोजल टग VC १२४		मद्रास पोर्ट
११. अन्डमन VC १३५	(४,००० DWT)	गृह मत्रालय
१२ स्टेट ऑफ उडीसा VC १२०	(८,००० DWT)	ईस्टर्न शिपिंग कॉरपोरेशन
१३ जल विक्रम VC १२१	(७,००० DWT)	सिंधिया स्टीम नेवीगेशन क० लि०
१४. जल वीर		,,

अब तक उक्त शिपयार्ड ने २४ समुद्र पार जाने वाले जहाज और २ छोटे क्राफ्ट व एक मूरिंग वैसल (कुल G R T १,१६,६४३) बनाये है। शिपयार्ड के विकास के लिये २ ६० करोड को लागत से एक योजना भी कार्यान्वित की जा चुकी है। द्वितीय योजना के अन्त मे इसकी उत्पादन क्षमता ५०,००० से बढा कर ७५,००० से ८०,००० GRT तक करने का प्रस्ताव था।

भारतीय जहाजरानी देश के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मे अधिकाधिक योग दे रही है। इसका अनुमान नीचे दी हुई तालिका से लगाया जा सकता है, जिसमे भारतीय बन्दरगाहो से विदेशों को माल लेकर जाने वाले जहाजो का टनेज दिया गया है .—

	आने वाले जहाजो का माल सहित टनेज	जाने वाले जहाजो का माल सहित टनेज
१९४८-४९	३५०	४०१
१९५१-५२	५८२	७५०
१९५६-५७	७८३	१,४१९
१९५७ ५८	६९३	१,३६७
१९५८-५९	७८८	१,८५५
१९५९-६०	७७०	२,४११
१९६०-६१	९४४	१,९७०

जहाजरानी उद्योग का भविष्य—

जहाजरानी के विकास का कायक्रम अधिकतर इस काम के लिए उपलब्ध विदेशी मुद्रा पर निभर करता है। अभी हम इस ओर धीरे धीरे बढ़ना है। तीसरी योजना म जहाजरानी के लिए ५५ करोड रुपये की व्यवस्था की गई है। इसके अलावा जहाजरानी विकास निधि के ४ करोड रुपये और जहाजरानी कम्पनियो के अपने साधनो से ७ करोड रुपये और इस कायक्रम म लगेंगे। आधे से कुछ अधिक राशि निजी क्षेत्र म और शेष सावजनिक क्षेत्र के दो निगमो के कायक्रम मे लगेगी। आशा है कि इस योजना की अवधि म ५७ जहाज खरीदे जायेंगे, जिनकी क्षमता ३,७५ ००० टन होगी। इसमे से १,६४,००० टन क्षमता तो पुराने जहाजो को बदलने मे लगेगी और शेष १,८१,००० टन क्षमता बढ़ जायेगी। इस प्रकार कुल क्षमता ११ लाख टन हो जायगी। लगभग २,१६,००० टन के जहाज निजी कम्पनियो द्वारा और शेष १,५६,००० टन के जहाज सार्वजनिक क्षेत्र मे आयेंगे। इसमे से १,३२,५०० टन के जहाज तटवर्ती व्यापार के लिए और शेष २ ४२,००० टन जहाज विदेशी व्यापार के काम आयगे। तटवर्ती व्यापार के लिए योजना की अवधि म अधिकाश काम पुराने जहाजो की जगह नए लाने का है। जहाजरानी के और तीन कार्यक्रम मे चार तेलवाही जहाज भी खरीदे जायेंग, जिनम से एक तटवर्ती व्यापार के लिए विदेशी व्यापार के लिये होंगे।

बन्दरगाह—मौजूदा बडे बन्दरगाहो के लिये जो कायक्रम तीसरी योजना मे बनाए गए है, उनका पमुख ध्येय यहाँ उपलब्ध सुविधाओ मे सुधार करना है। यह अनुमान है कि तीसरी योजना के अन्त म बडे बन्दरगाहो की क्षमता ४६ करोड टन हो जायेगी। योजना म कलकत्ता बन्दरगाह के रख रखाव की दृष्टि से दो महत्त्वपूर्ण कायक्रम शामिल किये गए है। पहला हलदिया मे सहायक बन्दरगाह बनाने का और दूसरा फरक्का पर गंगा पर एक बाँध बाधने का। हलदिया कलकत्ते से ५ मील नीचे की तरफ होगा। यहा कोयला, लोहा, अनाज आदि बडी मात्रा वाला माल उतारा चढाया जाएगा। गंगा पर बाध बनाना हुगली नदी की स्थिति मे सुधार के लिए आवश्यक समझा गया है। कलकत्ता बन्दरगाह के कायक्रमो के साथ ही बेलारी चैनल क सुधारने का काम भी शामिल है। बम्बई बन्दरगाह के कार्यक्रम मे मुख्य बन्दरगाह के समीपवर्ती समुद्र को गहरा करने, प्रिंसेस और विक्टोरिया गोदियो के आधुनिकीकरण और बैलार्ड पायर के विकास क कायक्रम हैं। मद्रास मे कोयला और लोहा आदि सामान के लिए याड बनाने और इन्हे उतारने-चढाने के लिए मशीनें आदि खरीदने की व्यवस्था है। विशाखापत्तनम के कायक्रम म कच्चा धातु लादने की मशीनें लगाने का कायक्रम है। और नावो के अलावा कोयला ले दे अतिरिक्त बर्थ पूरा करने का काय म है। बडे बन्दरगाहो क कायक्रमा म तूतीकोरण और मगलौर के छोटे बन्दरगाहो को सब मौसमो मे काम आने वाला बनाना भी शामिल है।

बन्दरगाह विकास कायक्रम पर कुल ११५ करोड रु० खर्च होंगे। इसमे से

८० करोड रु० बडे बन्दरगाहो पर, २५ करोड रु० फरक्का के बाध पर और १० करोड रु० मगलौर और तूतीकोरण के नए बन्दरगाहो के विकास पर खर्च होगा।

योजना मे छोटे बन्दरगाहो के कार्यक्रमो पर १५ करोड रुपये खर्च करने की व्यवस्था की गई है। यह कार्यक्रम बिचौलिया बन्दरगाह विकास समिति की सिफारिशो के आधार पर बनाया गया है। तीसरी योजना मे शामिल कार्यक्रमो के पूरा होने पर छोटे बन्दरगाहो की क्षमता ६० लाख से बढ कर ८० लाख टन हो जाएगी।

प्रकाश-स्तम्भो और प्रकाश जहाजो के विकास के लिए ६ करोड रुपये की व्यवस्था है। नए कार्यक्रमो मे एक प्रकाश स्तम्भ खरीदने की भी बात है, जिस पर १४० लाख रुपया व्यय होगा।

अध्याय ७१

मशीन टूल्स उद्योग

(Machine Tools Industry)

भूमिका—

विश्व के विभिन्न औद्योगिक देशो मे मशीन टूल्स उद्योग को गत १८५ वर्षो मे अनेक परिवर्तन देखने पड है। उद्योग का ज म सन् १७७५ के लगभग हुआ, जबकि जेम्स वाट ने स्टीम इ जन और विलकिन्सन ने वाट के इ जन का सिलिडर बनाया। पिछले महायुद्ध म एव इसके बाद इस उद्योग की इतनी अधिक प्रगति हो गई है कि आधुनिक मत के अनुसार मशीन टूल उच्चकोटि की शुद्धता के कार्य के लिये एवं बडे पैमाने पर उत्पादन तथा स्वचालन के लिये उपयोगी समझा जाने लगा है। प्रथम महा-युद्ध के पूर्व विश्व मे केवल कुछ ही देशो (जैसे इङ्गलैंड, अमेरिका, जर्मनी, फ्रास, स्विटजर-लैंड और रूस) म मशीन टूल उद्योग का अस्तित्व था। वास्तव मे, इगलैंड और अमेरिका मशीन टूल्स के निर्माण मे अग्रणी थे। प्रारम्भिक मशीन औजार (जैसे ब रिंग मशीनें) इगलैण्ड मे सर्व प्रथम बनाये गये थे। विलकिन्सन ने सन् १७७५ मे ब रिंग मशीन का आविष्कार किया। इस आविष्कार की सहायता से बोल्टन और वाट ने अपने स्टीम इ जनो मे बहुत सुधार कर लिया। अठारहवी शताब्दी मे फ्रासिसी

विश्व के सर्वश्रेष्ठ मिकेनिक थे। किन्तु इस पर भी मोड्सले को अपनी स्लौटिंग और प्लानिंग मशीन आदि का आविष्कार करने मे बहुत समय लगा।

विदेशों में मशीन टूल उद्योग की झाँकी—

अमेरिका के मशीन औजार निर्माताओ ने मशीन औजारो का निर्माण १६वी शताब्दी के आरम्भ मे शुरू किया। उनका प्रयास विशेष उद्देश्यो वाली मशीनें बनाने का रहा। प्राट, विटने और नार्थ के प्रयासो से ही अमेरिका वर्तमान शताब्दी मे मशीन औजारो के निर्माण मे अग्रणी बन सका है। जर्मनी का मशीन टूल उद्योग नया-नया ही विकसित हुआ है, कि तु कुछ ही समय मे यह अपने कई पुराने प्रतिस्पर्धियो से आगे निकल गया। स्विटजरलैंड घडी निर्माताओ का देश है। उसे उच्चकोटि की शुद्धता वाले यन्त्रो व औजारो की आवश्यकता पडती है। अत. उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्वचालित यन्त्र व उपकरण बनाये और उसमे वह काफी सफल रहा। सोवियत रूस का मशीन औजार उद्योग कुछ समय पूर्व ही स्थापित हुआ था, लेकिन ४० वर्ष की अल्प अवधि मे ही इसने काफी प्रगति कर ली है। इन सब देशो मे मशीन औजारो का उत्पादन द्वितीय महायुद्ध की अवधि मे काफी बढ गया था और युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओ के कारण मशीन औजारो के निर्माण मे क्रान्तिकारी टैक्नोलॉजीकल परिवर्तन हुये। युद्ध के पश्चात् इन टैक्नीकल परिवर्तनो को बहुत दृढ कर लिया गया है और उनका प्रयोग आधुनिकतम मशीन औजार बनाने मे किया जाता है। औद्योगिक देशो मे मशीन औजार उद्योग की टेक्नोलॉजी जकल प्रगति दो दशाओ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है—प्रथम, हाई स्पीड कटिंग और द्वितीय ऑटोमेशन। Numerical control की प्रगतिशील टेक्नीक के प्रचलन ने तो मशीन औजार-उद्योग को पूर्णत. स्वचालित (automatic) बना दिया।

भारत में मशीन टूल उद्योग

सरकारी क्षेत्र के कारखानो मे हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लि० की प्रगति अनेक मामलो मे उल्लेखनीय है। इसने प्रति वर्ष अपने उत्पादन के केवल नये रिकार्ड ही स्थापित नही किये वरन् अनेक नयी वस्तुओ का उत्पादन भी किया है। छोटी सी अवधि मे ही इसने काफी मुनाफा भी दिखाया है और साथ ही ऐसी नीतियाँ भी अपनाई हैं जिनमे कि आयात की गई मशीनो की तुलना मे अपने मशीनी औजार सस्ते मूल्य पर बेचे जा सकें। इस कम्पनी की एक और विशेषता यह है कि अपनी ही कमाई का एक बडा हिस्सा इसने अपने ही विकास और विस्तार के हेतु भी लगाया है।

मशीनी औजारो को अक्सर 'जननी मशीनें' भी कहा जाता है, जो अन्य मशीनो को जन्म देती है और इस प्रकार वे किसी देश के औद्योगिक विकास के मूल-आधार की नींव रखती हैं। हमारे देश के बढते हुए औद्योगीकरण के कारण मशीनी औजारो की माग काफी बढ गई है। गणना की गई है कि तीसरी योजना के अन्त तक यह माग प्रतिवर्ष ५५ से ६० करोड रु० के आस-पास तक हो जायगी। उद्योग मन्त्री श्री

मनुभाई शाह ने अभी हाल म ही कहा था कि तीसरी योजना की अवधि मे भारत को प्रतिवर्ष ४५ करोड रु० के मूल्य के मशीनी औजार बनाने का लक्ष्य रखना चाहिए।

यहा यह बता देना आवश्यक नही होगा कि सन् १९६० मे मशीनी औजारो का उत्पादन लगभग १० करोड रु० का होने का अनुमान लगाया गया है, लगभग ६ से ७ करोड रु० का विशाल उद्योगा द्वारा और लगभग ३ से ४ करोड का लघु उद्योगो द्वारा। उक्त उत्पादन का लगभग ४० प्रतिशत सरकारी कारखानो द्वारा किया बताया जाता है। हाल ही मे मशीनी औजारो के आयात मे काफी वृद्धि हो गई है। जो आयात सन् १९५१ मे २·५ करोड रु० था वह सन् १९५६ मे बढकर ८.३७ करोड रु० हो गया। दूसरी योजना की अवधि मे, औद्योगिक विस्तार के चरणो की गति बढ जाने के कारण यह अक और भी बढ गया था। सन् १९५८ और सन् १९५६ मे ये आयात क्रमश. १२.३१ करोड रु० और १७.०० करोड रु० रहा।

एच० एम० टी० की प्रगति—

मशीनी औजारो के उत्पादन करने म, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लि० का स्थान अद्वितीय सा है। इसका कारण है कि जो कुछ लोगो द्वारा कभी अनिश्चित प्रकार का सार्वजनिक विनियोग माना जाता था, अब यह सफलता का एक आदर्श बन गया है। आरम्भ के दिनो म इसकी प्रगति अनेक कारणो से कुछ धीमी सी थी। स्विट्जरलैंड स्थित ज्यूरिख के प्रसिद्ध मैसर्स ओरलीकन मशीन टूल्स वर्क्स के साथ हुए सहयोग-करार के फलस्वरूप यह प्रायोजना सन् १९५६ के उत्तरार्द्ध में अस्तित्व मे आई।

मैं० ओरलिकन मशीन टूल्स वर्क्स के साथ परामर्श करके कम्पनी के उत्पादन का प्रारम्भिक कार्यक्रम सन् १९६०-६१ तक ४०० मशीनें प्रतिवर्ष बनाने का रखा गया था। जबसे द्वितीय योजना आरम्भ हुई है तब से अनेक उपाय किये गये हैं जैसे अनेक पारियां चलाना, अतिरिक्त कर्मचारियो की आपत्तिकालीन भर्ती, प्रशिक्षण की अधिकाधिक सुविधाएं देना, आवश्यकतानुसार पुर्जों और कच्चे माल की आपत्तिकालीन खरीद और कारखाने मे लगे कर्मचारियों की अधिकाधिक देखभाल तथा कुशलता मे उन्नति—इनके परिणामस्वरूप इस कारखाने मे मशीनी औजारो के उत्पादन मे ठोस वृद्धि हुई है।

वास्तविक और आयोजित उत्पादन के आकडे नीचे दिये गये हैं :

वर्ष	वास्तविक उत्पादन	दूसरी योजना का लक्ष्य
१९५६-५७	१३५	५७
१९५७-५८	४०२	१३१
१९५८-५९	५५२	२३८
१९५९-६०	७०१	३१४
१९६०-६१	१,०००	४००

अपने उत्पादन मे अनेकरूपता लाने की दृष्टि से हिंदुस्तान मशीन टूल्स लि० ने दो प्रसिद्ध जर्मन फर्मों अर्थात् मैसर्स फिट्ज वानर के साथ जनवरी सन् १६५७ मे और कोयलिन के मैसर्स हरमन कोल्ब के साथ जून सन् १६५८ मे प्रविधिक सहायता करार किये। इन करारो के अनुसार कारखाने मे हारीजोण्टल, वर्टीकल और यूनिवर्सल मिलिंग मशीनें (आकार २ तथा ३) और दस प्रकार की रेडियल बर्मा मशीनें बननी आरम्भ हो गई है। कम कीमत की खरादें बनाने के लिये फ्रांस के मैसर्स सोसाईट एच० एर्नाल्ट बैटिग्नोल्स के साथ जून सन् १६५६ मे एक अन्य करार पर हस्ताक्षर किये गये। १६ प्रकार की बेलनाकार घिसाई मशीनें बनाने के लिये इटली के मैसर्स आफीसियाना मैक्सानिका ओलिवेट्टी के साथ अक्टूबर सन् १६५६ मे एक और करार किया गया, जो तीन साल के भीतर पाचवा करार था। इन मशीनो की पहली खेप सन् १६६० के मध्य म बाजार मे आई, जिनकी कीमतें २५,००० और इससे ऊपर थी, किन्तु उसी किस्म की बाहर से मगाई गई मशीनो के यहा पर पडे हुए मूल्य से कम ही थी।

सबसे महत्वपूर्ण बात जिसमे भविष्य मे काफी सम्भावनाएं हैं वह है विदेशी फर्मों के साथ वर्तमान करारो को करने के बजाय कम्पनी द्वारा मशीनो की रूपरेखा स्वय ही तैयार करने का प्रयत्न। इसका परिणाम है रूपरेखा और विकास विभाग की स्थापना। इस विभाग ने एक नवीन उच्च गति वाली शुद्ध मापक खराद की रूपरेखा तैयार करने मे सफलता प्राप्त कर ली है। भारी ड्यूटी वाली टरेट खरादें और बड़े आकार के रेडियल बरमा की रूपरेखायें बनाने के प्रयत्न भी किये जा रहे हैं।

उत्पादन की किस्मे—

हिन्दुस्तान मशीन टूल्स के उत्पादनो की किस्म अधिक से अधिक अच्छे स्तर पर रखने की कोशिश की गई। अब कम्पनी नीचे लिखे ६० प्रकार के विभिन्न मशीनी औजार बनाती है।

(१) १४ प्रकार की उच्चगति वाले शुद्ध मापक केन्द्र खरादें, जिनकी ऊंचाई २२५ मिली मी० से २६० मिली मी० और केन्द्र का अन्तर १,००० मिली मी० से ५,००० मिली मी० है।

(२) ६ प्रकार की घिसाई मशीनें—हौरीजोण्टल, यूनिवसल और वर्टीकल प्रत्यक दो आकारो मे।

(३) १० प्रकार के घुमावदार बरमे, हत्थे की लम्बाई १,०५० मिली मी० से २,२०० मि० मी० और ढले लाहे की क्षमता ५० मि० मी० से ६० मि० मी०।

(४) ४४ प्रकार की कम कीमत वाली बेटिग्नाल प्रकार की खरादे, केन्द्र ऊंचाई १७० मि० मी० से २८५ मि० मी० तक।

(५) १६ प्रकार की शुद्ध मापक ढोलाकार की घिसाई मशीन, जो यूनीवसल प्राडक्शन और प्लज प्रकार की है और जिनकी केन्द्र ऊंचाई १३०

मि० मी० से १७० मि० मी० और केन्द्र का अन्तर ४०५ मि० मी० से २,१५० मि० मी० तक।

हिन्दुस्तान मशीन टूल्स के सबसे अच्छे ग्राहक क्रमानुसार निजी उद्योगपति, सरकारी निगम, राज्य सरकारें और भारत सरकार हैं, जिनमे रेलें भी शामिल हैं।

स्वयं वित्त-पोषण द्वारा विस्तार

इसके विकास के लिये आरम्भ मे लगभग एक करोड रुपये का जो भारी खर्च करना पडा था वह अब लाभ मे से पूरा किया जा चुका है, किन्तु अब छोटी सी अवधि में ही कम्पनी ने काफी धन कमा लिया है, जिसके कारण अब कम्पनी अपनी क्षमता दुगुनी करके २,००० मशीनें प्रति वर्ष तक बढाने मे समर्थ हो सकी है। इसके विस्तार कार्यक्रम के लिये खर्च की कुल लागत २८१ करोड रु० आने का अनुमान है और विस्तार का यह कार्यक्रम अगले साल के शुरू तक पूरा हो जाने की आशा है। ३,००० टन क्षमता वाली जो फाउण्ड्री तैयार की जा रही है उसकी क्षमता दुगुनी करके ६,००० टन की जा रही है। इस कारखाने को बढा कर दुगुना करने के लिये जरूरी मशीनो की दो-तिहाई सख्या कम्पनी द्वारा ही बनाई गई खरादो, घिसाई मशीनो, घुमावदार बरमो, पीसने वाली और अन्य मशीनो मे से पूरी की जायगी।

इनके अलावा हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लि० एक उद्योग-बस्ती का प्रवतन करके सहायक-पूरक उद्योगो के विकास प्रोत्साहन देने का प्रयत्न करता रहा है। मशीनी औजारो के निर्माण के लिये, १,००० मशीनें प्रतिवर्ष बनाने की क्षमता के साथ साथ हिन्दुस्तान मशीन टूल्य को २० लाख अधिक विभिन्न प्रकार के पुर्जो के हिस्से प्रतिवर्ष बनाने पडते है। जैसा कि अभी हो रहा है, इन पुर्जों का हिन्दुस्तान मशीन टूल्स के मुख्य कारखाने मे ही निर्माण करने के बजाय उद्योग बस्ती मे इस प्रकार के अनेक सहायक पूरक लघु उद्योगो की स्थापना का विचार है, जिनका स्वामित्व और प्रबन्ध श्रमिक स्वामी प्रकार के लघु उद्योगिको के हाथ मे हो और उन्हे सरल प्रकार के पुर्जों के छोटे-छोटे ठेके दिये जाये, जिनके लिये भारी उपकरणो और बहुत उच्च स्तर की कुशलता और तकनीक की जरूरत नही पडती। आशा है हिन्दुस्तान मशीन टूल्स की उद्योग बस्ती १८ एकड क्षेत्र घेरेगी और इसमे ५० कारखाने होगे। सहायक पूरक उद्योगो को बढावा देकर हिन्दुस्तान मशीन टूल्स अपनी मशीनो का उत्पादन और बढाने की स्थिति मे हो जायगा।

इन उपायो के फलस्वरूप मशीनी औजारो का उत्पादन पहले ही काफी बढ़ गया है। मार्च सन् १९६१ मे हिन्दुस्तान मशीन टूल्स ने १३१ मशीनो का अभूतपूर्व उत्पादन किया था, जबकि मार्च सन् १९६० मे सबसे अच्छा उत्पादन १२९ मशीनो का हुआ था। सन् १९६०-६१ के राजकोषीय वर्ष मे १,००० का उत्पादन हुआ, जबकि आयोजना का लक्ष्य ४०० मशीनो का रखा गया था। यह भी उल्लेखनीय है कि सितम्बर सन् १९६० से हिन्दुस्तान मशीन टूल्स १०० अथवा इससे अधिक मशीनें प्रति मास बनाता रहा है। विस्तार पूरा हो जाने के बाद हिन्दुस्तान मशीन टूल्स द्वारा

उत्पादनो का मूल्य ७ करोड रु० तक हो जायगा। बगलौर के कारखाने की क्षमता के बराबर का एक अन्य कारखाना पजाब मे स्थापित करने की योजना भी हिन्दुस्तान मशीन टूल्स द्वारा बनाई जा रही है।

प्रागा टूल्स कारपोरेशन—

मशीनी औजारो के उत्पादन मे अधिक लोच लाने के लिये भारत सरकार ने हैदराबाद स्थित प्रागा टूल्स कारपोरेशन का विस्तार करना शुरू कर दिया है। मई सन् १६४३ म स्थापित हुई इस कम्पनी ने अनेक उतार चढाव देखे है। इस समय यह कम्पनी अनेक प्रकार के बढिया किस्म के मशीनी औजार, मशीनी औजारो के पुर्जे, शुद्ध मापक औजार, आटोमोबाइल्स और डीज्ल इजनो के हिस्से, रेलो के पुर्जे आदि का निर्माण करती है।

विविध प्रकार के मशीनी औजारो का उत्पादन करने के लिये इस कारखाने का विस्तार किया जा रहा है। प्रविधिक सहयोग के लिए तीन ब्रिटिश फर्मों के साथ करार किया जा चुका है। पहला करार ससेक्स स्थित होके मैसर्स कीने एण्ड ट्रैक्टर सी० वी० ए० लि० के साथ उनके प्रसिद्ध ड्रिल चको का भारत मे निर्माण करने के लिए किया गया है। दूसरा है हलीफाक्स के मैसर्स एफ० प्रैट एण्ड क० लि० के साथ, जिसके अधीन वे अपनी विभिन्न प्रकार की खराद चकें, न्यूमेटिक चक और मैगनेटिक चक और न्यूमेटिक चाकें आदि का निर्माण भारत मे करेंगे। इस प्रकार के औजार उत्पाद-परिष्करण उद्योग के लिए बहुत ही उपयोगी हैं, क्योकि इन औजारो के बिना मशीनी औजार स्वय भी पर्याप्त नही हो सकते। तीसरा करार लीसेस्टर के मै० ए० ए० जोन्स एण्ड शिपमैन के साथ अपने कटाई और घिसाई औजारो का भारत मे निर्माण करने के लिए किया गया है।

मशीनी औजार उद्योग के विस्तार के लिये पोलिश सरकार द्वारा एक करोड रु० का जो ऋण स्वीकार किया गया है उसका उपयोग करके प्रागा टूल्स कारपोरेशन का उत्पादन बढाकर १२० लाख रु० तक कर देने का प्रस्ताव है। ऊपर बताये गये उपायो के परिणामस्वरूप आशा है कि आगामी महीनो मे देश मे मशीनी औजारो का उत्पादन काफी बढ जायगा।

उद्योग का भविष्य—

लघु पैमाने के क्षेत्र से प्राप्त होने वाले लगभग ५ करोड रु० के उत्पादन के अतिरिक्त मशीन औजारो के उत्पादन का लक्ष्य सन् १६६५ ६६ तक ३० करोड रु० का रखा गया है, जबकि द्वितीय योजना के अन्तिम वर्ष का उत्पादन लगभग ७ करोड रु० का था। यद्यपि उत्पादन मे तीन गुनी वृद्धि हो जायेगी तथापि वह तीसरी योजना के अन्त तक मशीन औजारो की सम्भावित माग—५० करोड रु० प्रति वर्ष—से बहुत कम रहगा। कुशल श्रम की कमी के कारण अधिक बड पैमाने पर उत्पादन करना अभी सम्भव नही है। विदेशी मुद्रा की जो व्यवस्था की गई है उसके अन्तर्गत

जलाहली के हिन्दुस्थान मशीन टूल्स (H. M T) एव प्रागा टूल्स हैदराबाद का विकास किया जायेगा तथा रांची के निकट एक नया भारी मशीन औजार कारखाना तथा पंजाब में भी H M T के सदृश एक नया कारखाना खोला जायेगा। यह अनुमान लगाया गया है कि सार्वजनिक क्षेत्र में इन मशीन औजार कारखानों का सम्मिलित उत्पादन तथा रक्षा मन्त्रालय की प्रोटोटायप फैक्टरी (अम्बरनाथ) का उत्पादन कुल १५ करोड तक बढ जायेगा। प्राइवेट क्षेत्र के विकास कार्यक्रम सार्वजनिक क्षेत्र की योजनाओं के पूरक होंगे।

STANDARD QUESTIONS

1. Briefly trace the history, present position and future prospects of the Machine Tools Industry in India

---

अध्याय ७२

ऑटोमोबाइल उद्योग

(Automobile Industry)

प्रारम्भिक—

शान्ति तथा युद्ध दोनों ही परिस्थितियों में मोटरों की आवश्यकता होती है। मोटर निर्माण के लिए लाहे तथा कोयले की आवश्यकता होती है और ये दोनों वस्तुएं भारत में प्रचुर मात्रा में मिलती हैं, किन्तु फिर भी अभी तक हमारे देश में विदेशों से मोटरों का सामान आयात किया जाता है। भारत में लगभग ४ ६ लाख मोटर गाड़ियाँ हैं। जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है, देश के विस्तार और जन-संख्या को देखते हुए, अन्य देशों की तुलना में यह बहुत कम है —

प्रति मोटर पीछे जन-सख्या का अनुमान

देश	जन सख्या
ग्रेट ब्रिटेन	१५
कनाडा	८
स० रा० अमेरिका	३
फ्रांस	१४
न्यूजीलैण्ड	४७
भारत	१,२६६

भारतीय जनता की आय कम होने तथा उनका रहन-सहन का स्तर नीचा होने के कारण यहाँ मोटर गाड़ियों की माँग कम है। इसके अतिरिक्त दो अन्य असुविधाएँ भी हैं—उत्पादन का अधिक मूल्य और सड़कों की हीन व पिछड़ी दशा। भारत सरकार की ओर से इस उद्योग को संरक्षण मिला है। किन्तु फिर भी इसकी आशाजनक प्रगति नहीं हो पाई है, क्योंकि विदेशों से आयात की गई मोटर गाड़ियों तथा डीज़ल इञ्जन के ट्रकों से भी भारतीय उद्योगों को प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है।

उद्योग के प्रमुख केन्द्र—

गत कुछ समय से ही बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास में विदेशों से सामान आयात करके और फिर उसका एकत्रीकरण करके मोटर गाड़ियाँ तैयार करने का उद्योग शुरू किया गया। इस समय हमारे देश में निम्नलिखित १२ कारखाने हैं, जिनमें ८,००० व्यक्ति लगे हुए हैं तथा ४२ करोड़ की पूँजी लगी हुई है।

(अ) महाराष्ट्र में—

(१) जनरल मोटर्स लिमिटेड।
(२) फोर्ड मोटर कम्पनी।
(३) प्रीमियर ऑटोमोबाइल लिमिटेड।
(४) महेन्द्र एण्ड महेन्द्र लि०।
(५) रूट्स ग्रुप।

(ब) मद्रास में—

(१) एडीसन एण्ड क०।
(२) स्टैन्डर्ड मोटर क०।
(३) अशोक मोटर्स।

(स) प० बंगाल (कलकत्ते) में—

(१) हिन्दुस्तान मोटर्स लि०।
(२) फ्रेञ्च मोटर कम्पनी।
(३) पैनिनसुला मोटर कॉरपोरेशन।
(४) देवास गैरेज एण्ड इञ्जीनियरिङ्ग वर्क्स।

उक्त राज्यों के अलावा बर्नपुर व जमशेदपुर केन्द्रों में भी इस उद्योग के विकास के लिए काफी सुविधाएँ हैं। ये दानों ही केन्द्र लौह क्षेत्रों के मध्य स्थित हैं। दूसरे, यहाँ आयात की हुई मशीनों व मोटर के भागों को आसानी से लाया जा सकता है। देश के प्रमुख इञ्जीनियरिङ्ग केन्द्र होने के कारण यहाँ कुशल श्रम भी उपलब्ध है। ऐसा अनुमान है कि निकट भविष्य में यह उद्योग मोटर सम्बन्धी ८०% कल पुर्जे भारत में ही बनाने लगेगा। अभी भारत में पूरी मोटर गाड़ी का निर्माण शुरू नहीं हुआ है। अनुमान है कि तृतीय योजना के अन्तर्गत ३० हजार सवारी गाड़ियाँ, ६० हजार व्यापारी गाड़ियाँ और १० हजार जीपें आदि प्रति वर्ष बनने लगेंगी। सम्भवतः सन् १९६३ तक सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत सस्ती जनता मोटर गाड़ियाँ बनने लगेंगी, जिनका मूल्य ५,००० व ७,००० रु० के मध्य होगा।

उत्पादन—

गत कुछ वर्षों में मोटर गाड़ियों एवं साइकिलों का उत्पादन इस प्रकार रहा है:—

वर्ष		मोटर गाड़ियाँ (सख्या)					साइकिलें	
	कारें	जीप तथा लैंडरोवर गाड़ियाँ	स्टेशन वैगन तथा अस्पताली गाड़ियाँ	ट्रक	सवारी गाड़ियाँ	योग	पूरी तैयार (सख्या)	हिस्से (मूल्य ००० रुपये)
१९५२	६,९४८	—	—	—	—	१५,२८८	१,९३,९५३	८,२४७.२
१९५३	४,९३२	—	—	—	—	१३,९२०	२,३४,१९८	१०,१९४.०
१९५४	५,४३६	—	—	—	—	१४,४६०	३,७२,३३०	१३,०८०.०
१९५५	९,४९२	३,३३३	७६८	६,४५६	३,०३६	२३,०८८	४,९१,१७२	१३,५१६.८
१९५६	१२,९८४	४,१४०	६८४	८,९२०	३,४०८	३२,१३६	६,६३,९७३	२३,२२४.८
१९५७	११,५०४	४,०६८	६१२	११,८९२	३,७५६	३१,९३२	८,००,८३२	२७,९४४.६
१९५८	७,८१२	३,५५२	३००	११,०२८	४,१०४	२६,७९९	९,१२,६२४	२३,०१९.०
१९५९	११,७१२	४,६५६	१२	१०,७२८	४,८४८	४१,१७२	९,९०,८१६	३८,०४०.०
१९६०	१९,०७२	५,४९६	—	२०,९६४	६,१०८	५१,६१०	१०,५०,७४४	५०,७६७.२
१९६१ जनवरी	२,०४०	४५८	—	२,००२	४८९	४,९८९	९०,३४३	३,२७१.९
फरवरी	२,२१३	५१२	—	१,९९९	४५९	५,१५३	९४,०८०	३,३४०.०
मार्च	२,३७०	५६३	—	२,०१२	४७०	५,३४५	९६,४९६	३,६१५.९
अप्रैल	१,६८२	५८८	—	२,१३७	३८८	४,७९५	१,००,१८५	—
मई	१,७३१	६००	—	१,६१४	४६४	४,७१९	—	३,६०९.७

[ग] सन् १९४८ से सन् १९५३ तक के वर्षों के अङ्को मे पूरी साइकिल बनाने वाली फर्मों द्वारा तैयार किए गये हिस्से
... नहीं हैं।

तीसरी पंच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत उद्योग का भविष्य—

तीसरी योजना के लिए उत्पादन के लक्ष्य निम्न रखे गये हैं :—

	संख्या
पैसिन्जरकार	३०,०००
कॉमशियल व्हीकलें	६०,०००
जीप एव स्टेशन वैगन	१०,०००
मोटर साइकिलें, स्कूटर और तीन पहिये वाली गाडियाँ	६०,०००

विदेशी मुद्रा के साधनो पर अधिक दबाव न पडने पाये, इसके लिए यह आवश्यक है कि ८५% पुर्जे देश मे ही बनाये जायें, जबकि अभी ६०% पुर्जे देश मे बन रहे हैं। अत नई इकाइयो की स्थापना या पुरानी इकाइयो के विस्तार के पूर्व देशी पुर्जों का निर्माण करने वे उद्योगो मे विनियोग की वृद्धि करनी होगी। व्यापारिक व्हीकिलो के उत्पादन को प्राथमिकता दी जावेगी। सार्वजनिक क्षेत्र मे छोटी कारो के निर्माण मे विदेशो से सहयोग प्राप्त करने की चेष्टा हो रही है। यूरोप और जापान, के प्रसिद्ध कार निर्माताओ के प्रस्तावो पर पाडे कमेटी ने विचार किया है और शीघ्र ही यह कमेटी अपनी रिपोट सरकार को दे देगी। डाक्टर बी० डी० कालेलकर (भारत सरकार के सीनियर औद्योगिक परामर्शदाता) ने यूरोप का दौरा करते समय प० जर्मनी के निर्माताओ से भी बातचीत की थी।

STANDARD QUESTIONS

1. Briefly trace the present position and future prospects of the Indian Automobile Industry
2. Write a short note of the manufacture of Small car in the sector.

अध्याय ७३

रासायनिक उद्योग

(Chemical Industry)

महत्व—

रासायनिक उद्योग किसी भी राष्ट्र के लिये महत्वपूर्ण है, क्योंकि रासायनिक व यान्त्रिक उद्योगो के विकास पर ही देश का औद्योगिक विकास निर्भर करता है। विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन के लिये रसायनो का उत्पादन आवश्यक है, जैसे कपड़ा, रेयन, शीशा, रबड कागज, साबुन, सिरामिक, उर्वरक, रग, औषधियाँ, पेट, वार्निश, वनस्पति, प्लास्टिक, जानवरो के तेल, पेट्रोलियम, आदि। सामान्यत रासायनिक उद्योगो के अन्तर्गत उन उद्योगो का समावेश किया जाता है जो अन्य उद्योगो के लिए आधारभूत रासायनिक पदार्थ बनाते हैं। इसके अतिरिक्त इस श्रेणी मे वे उद्योग भी आते है, जिनमे रासायनिक क्रियाओ द्वारा पदार्थ उत्पन्न किये जाते हैं। इम्पीरियल रासायनिक उद्योग के अध्यक्ष के अनुसार, "यह उद्योग सभी उद्योगो मे सबसे अधिक बहु पति वाला उद्योग है, क्योकि यह रसायन वैज्ञानिको, उद्योगपतियो, इन्जीनियरो आदि की सहकारिता पर निर्भर करता है।"

रासायनिक उद्योग दो प्रकार के होते हैं —

(१) भारी रासायनिक उद्योग (Heavy Chemicals)—इनके अन्तर्गत गन्धक का तेजाब, हाइड्रोक्लोरिक एसिड, शोरे का तेजाब, विभिन्न प्रकार के सल्फेट, कास्टिक सोडा, सोडा एश, अमोनिया, ब्लीचिंग पाउडर, क्लोरिन, पोटैशियम क्लोरेट और रासायनिक खादें, जैसे–अमोनियम सल्फेट, पोटाशियम नाइट्रेट, सुपर फास्फेट, शोरा आदि का उत्पादन सम्मिलित है।

(२) कीमती व हल्के रासायनिक पदार्थ (Fine Chemicals)—इनके अन्तर्गत फोटोग्राफी मे काम आने वाले रसायन, दवाइयाँ, रग और रोगन आदि शामिल किए जाते हैं।

युद्धोत्तर विकास—

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व हमारे भारी रासायनिक उद्योगो की स्थापना हुए अधिक दिन नही हुए थे। उस समय केवल गन्धक का तेजाब और उससे बनने वाली

वस्तुयें ही बनाई जाती थी, किन्तु युद्ध काल मे विदेशो से रासायनिक पदार्थों के न मिलने के कारण इनका उत्पादन देश मे ही किया जाने लगा । सुनियोजित प्रयत्नो और सरक्षण के लिये किये गये उपायो के फलस्वरूप, पिछले कुछ वर्षों से देश मे थ्रीमीन, कैलशियम कार्बाइड, कारबनडाइ सल्फाइड, डी०डी०टी, वेन्जीन हैक्साक्लोराइड, टाइटेनियम डाइग्रॉक्साइड, अमोनियम क्लोराइड, विशेष लवण, रग, प्लास्टिक आदि बनाये जा रहे हैं।

विशेषतायें—

भारत मे इस उद्योग की निम्न विशेषतायें हैं :—

(१) रासायनिक पदार्थों को तैयार करने के लिए साधारणतः छोटे-छोटे कारखाने हैं।

(२) आधारभूत रासायनिक पदार्थों का मूल्य अधिक पडता है ।

(३) हमारे रासायनिक उद्योग अभी बडी पिछडी दशा मे हैं। अन्य रसायनो की तो बात ही नही, सल्फ्यूरिक एसिड और सोडा एश जैसी जरूरी चीजो का उत्पादन भी हमारे देश की आवश्यकताओ की पूर्ति नही कर पाता ।

(४) रासायनिक पदार्थों की पूर्ति के लिये हमे विदेशी आयातो पर निर्भर रहना पडता है ।

(५) रसायन उद्योगो के निर्माण के लिए आवश्यक कच्चे माल की कमी है ।

(६) रासायनिक पदार्थों का उत्पादन व्यय भी बहुत अधिक पडता है। उत्पादन मूल्यो को घटाने से ही दूसरे उद्योगो मे इन पदार्थों की खपत बढाई जा सकती है। इसका मुख्य उपाय यही है कि इन्हे तैयार करने वाले कारखानो के आकार बढाये जायें और उद्योग ऐसे स्थानो पर कायम किये जायें, जहाँ कच्चे माल, विद्युत आदि की सुविधायें हो ।

उद्योग के मुख्य केन्द्र—

इस उद्योग के मुख्य केन्द्र बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, आगरा, अमृतसर, अम्बाला कानपुर, डालमियानगर, जमशेदपुर, अहमदाबाद, थाना, मद्रास, मैसूर, भद्रावती, बगलोर, त्रावनकोर इत्यादि हैं। समस्त देश मे छोटे-बडे कुल मिला कर १५० कारखाने हैं। सिन्दरी मे रासायनिक खाद बनाई जाती है। बगाल मे तेजाब और बडोदा मे मिटनकोट स्थान पर सोडा एश तथा कास्टिक सोडा बनाया जाता है । त्रावनकोर तथा मैसूर मे भी खाद बनाने के कारखाने है। बङ्गाल केमीकल कम्पनी, कलकत्ता, बगाल इम्यूनिटी कम्पनी, कलकत्ता तथा अलेम्बिक केमिकल कम्पनी, बडोदा मे अग्रेजी दवाइयाँ तथा इजेक्शन बनते हैं ।पेनिसिलीन तथा गन्धक की औषधियाँ बनाने के लिए बम्बई मे एक कारखाना २½ करोड रु० की लागत से बनाया गया है।

नये विकास—

द्वितीय पच-वर्षीय योजना काल मे अग्रलिखित तीन फर्टिलाइजर प्रोजेक्ट्स बनाये गये हैं।

(१) नगल प्रोजेक्ट—फर्टिलाइजर्स प्रोजेक्ट कमेटी की सिफारिशों के अनुसार भारत सरकार ने यह प्रोजेक्ट बनाया है, जिसका कार्य भार नगल फर्टिलाइजर्स एन्ड कैमिकल्स प्राइवेट लिमिटेड नामक कम्पनी के हाथ मे है। इसकी उत्पादन क्षमता ७०,००० टन (अमोनियम नाइट्रेट) प्रति वर्ष होगी और साथ ही हैवी वाटर भी बनाया जाता है।

(२) रूरकेला फर्टिलाइजर प्रोजेक्ट—इस प्रोजेक्ट द्वारा ८०,००० टन नाइट्रोलाइम स्टोन प्रति वर्ष बनता है।

(३) नवेली प्रोजेक्ट—यह प्रोजेक्ट दक्षिण मे बनाया गया है और लिगनाइट प्रोजेक्ट का एक भाग है। यह प्रति वर्ष ७०,००० टन सलफेट नाइट्रेट और यूरिया की खाद बनाता है।

तृतीय योजना मे रासायनिक उद्योग—

उर्वरक—अनुमान है कि सन् १९६५-६६ तक १० लाख टन नत्रजनयुक्त और ४ लाख टन पी$_2$ ओ$_5$ युक्त उर्वरक की जरूरत होगी। नत्रजनी खाद मिश्रित रूप से बनाई जाएगी, ताकि फास्फेट की जरूरत भी कुछ हद तक इसमे पूरी हो सके। नत्रजनी खाद के कारखाने निजी और सरकारी दोनो क्षेत्रा मे खोले जायेंगे। सरकारी क्षेत्र मे उत्पादन क्षमता तीसरी योजना के अंत तक ७ लाख ३० हजार टन हो जायगी। निजी क्षेत्र मे भी ५ नये कारखानो को बढाने की और एक कारखाने का विस्तार करने की इजाजत दे दी गई है। इनम करीब ४ लाख टन नत्रजन तैयार होगा। सुपरफास्फेट बनाने के जिन कारखानो की अनुमति दे दी गई है उनमे और सरकारी तथा निजी कारखानो में बनने वाले मिश्रित उर्वरको से सन् १९६५-६६ तक ४ लाख टन फास्फेट उपलब्ध होने की आशा है, जो हमारी जरूरत के लिए काफी है।

गंधक का तेजाब, कास्टिक सोडा और सोडा ऐश—तीसरी योजना में सन् १९६५-६६ तक गधक का तेजाब १७ लाख ५० हजार टन, कास्टिक सोडा ४ लाख टन और सोडा ऐश ५ लाख ३० हजार टन बनाने का लक्ष्य है। कास्टिक सोडा और सोडा ऐश दोनो मे तीसरी योजना के अन्त तक हम आत्म-निर्भर हो जायगे।

कार्बनिक रसायन—इस क्षेत्र म भी बहुत विकास होगा। प्लास्टिक, रग और दवाओं के उद्योगो के विकास के कारण कार्बनिक रसायन उद्योग के लिए बहुत गुजाइश हो गई है और करीब ४० ऐसे रसायनो को बनाने का इन्तजाम किया जायगा जिनका कुल उत्पादन २५,१६० टन होगा और इसमें १५ हजार टन की और वृद्धि करने की भी व्यवस्था है।

दवायें—आन्ध्र-प्रदेश मे सनत नगर मे कृत्रिम (सिंथेटिक) दवाओ का कारखाना, ऋषिकेश के पास एण्टी-बायोटिक दवाओ का कारखाना और केरल मे फोटो कैमिकल कारखाना खोला जायगा। इनके अलावा निजी कारखानो में जो दवायें बनेंगी उनको मिलाकर तीसरी योजना के अन्त तक हमारा देश मुख्य-मुख्य दवाओ में प्रायः आत्म निर्भर हो जायगा।

STANDARD QUESTIONS

1. Write a note on the pre ent position and future prospectus of Chemical Industry

---

अध्याय ९४

चमड़ा उद्योग

(Leather Industry)

महत्व —

चमडा उद्योग भारत का बडा प्रगतिशील उद्योग है। यह दो वस्तुओ पर निर्भर करता है—(१) जानवरो की खाल, और (२) चमडा कमाने की वस्तुयें। दुनियाँ से सबसे अधिक चौपाये हमारे देश मे ही हैं, अत खालो की यहाँ अधिकता है। चमडा कमाने का सामान भी यहाँ प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। दक्षिणी भारत के शुष्क प्रदेशो मे (विशेषत मैसूर, हैदराबाद तथा मद्रास) तुखार वृक्ष (Avaram) की छाल चमडा कमाने के प्रयोग मे आती है। उत्तरी भारत में बबूल की छाल का प्रयोग किया गया है। मायरोबालान तो भारत के सभी वनो मे पाये जाते हैं। इसके फल को भी चमड़ा कमाने के प्रयोग मे लाते है। बहेडा की छाल भी इस हेतु प्रयोग की जाती है। इनके अलावा रासायनिक पदार्थों की सहायता से भी चमडा कमाया जाता है।

हमारे देश मे जूते बनाने के दो बडे कारखाने हैं—कूपर ऐलन एण्ड कम्पनी, कानपुर और बाटा शू कम्पनी, बाटा नगर (कलकत्ता)। कानपुर मे सरकारी कारखाना घोड़े की जीन आदि भी बनाता है। अन्य मुख्य केन्द्र आगरा, लखनऊ, कलकत्ता, लुधियाना, मद्रास तथा बगलोर हैं। कानपुर मे इस उद्योग के केन्द्रीयकरण के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :—

(१) यहाँ अंग्रेजो ने इस व्यवसाय की नीव डाली एव राज्य सरकार ने भी पूरा सहयोग दिया।

(२) घनी जन सख्या के कारण यहाँ का श्रमिक सस्ता है।

(३) चमडा कमाने के लिए बबूल की छाल प्रचुर मात्रा मे मिल जाती है।

(४) यहाँ यातायात के सभी साधनो का बाहुल्य है ।

(५) युद्ध-युग मे यहाँ के कारखानो को विशेष प्रोत्साहन मिला ।

(६) माँग के लिए भी यहाँ विस्तृत बाजार है ।

कानपुर, मद्रास तथा कलकत्ते मे क्रोम चमडा बनाया जाता है। भारत से कच्चे चमडे का अधिक निर्यात किया जाता है। भारतीय चमडे से सुन्दर-सुन्दर वस्तुए बनाकर हम अपने निर्यात बढा सकते हैं तथा देश को भी धनी कर सकते हैं।

उत्पादन—

निम्न आँकडो से चर्म उद्योग के उत्पादन का अनुमान लगाया जा सकता है—

वर्ष	पश्चिमी ढग के जूते ('००० जोड)	देशी ढग के जूते (००० जोडे)	क्रोम से कमाया गया (०००)	वनस्पतियो से कमाया गाय का चमडा ('०००)	चमडे जैसा कपडा ('००० गज)
१९५३	३,३४८ ०	२,२०४ ४	७०० ८	१,२६८ ४	९८५ २
१९५४	३,२६७ ६	२ ०६० ८	६६८ ४	१,३७० ४	१,२६१ २
१९५५	३ २४२'४	२,३०२ ८	६७६ ४	१,६३६ ६	२,६२३ २
१९५६	३,६२० ४	२,९११ २	७४१ ६	१,६८३'६	२,६४०'०
१९५७	४,३६९ २	३ ०३८ ४	६३०'०	१,७९१ ६	३,६५६'४
१९५८	४,२७६ ८	३,२८६ ८	६७८ ०	२,०६७ ६	४,२४३ २
१९५९	४,१४० ०	४,१०२ ८	६५० ४	२ ४६६ ०	५,४४४'४
१९६०	६,४१८ ४	३,७७७ ६	७९४ ४	२,६७८ ४	५,८४६ ४
१९६१					
जैनवरी	५१५ २	३३० ३	६२ ०	२२० ०	६४५'४
फरवरी	४८२ ८	३२८ ५	७३ ९	२३३ ५	५५९'०
मार्च	४२१ ०	३२० ०	६४'३	२२८ ०	५८३ ३
अप्रिल	४६१ ६	३४८ ४	६३ ०	२१०'०	५८७ १
मई	४०९ ५	३७३ २	७२ ५	१८३'९	—

STANDARD QUESTION

1 Write a short note on the Indian Leather Industry

अध्याय ७५

काँच उद्योग

(Glass Industry)

प्रारम्भिक—

भारतीय शीशे अथवा काँच के उद्योग का योजनाबद्ध विकास करने का तथा इसे अन्य उद्योगों के स्तर पर लाने का प्रयास पिछले दशक के कुछ वर्षों में ही किया गया है। औषधि निर्माण उद्योग ने काँच उद्योग को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया है, क्योंकि दवाइयों तथा अन्य रासायनिक पदार्थों को बन्द करने के लिये बोतलों तथा काँच के सामान की आवश्यकता पड़ती है। काँच उद्योग के प्रारम्भिक विकास की अवस्था में बहु उपयोगी तथा अर्द्ध-स्वचालित ढङ्ग की मशीनों से उत्पादन होता था। उद्योग का सर्व प्रथम अर्द्ध-स्वचालित ढङ्ग का शीशे का कारखाना जर्मन विशेषज्ञों की सहायता से पंजाब में शुरू किया गया था। यद्यपि यह बहुत थोड़े समय तक ही चल सका, किन्तु फिर भी इसने भविष्य में विदेशी विशेषज्ञों की सहायता के द्वारा देश के विभिन्न भागों में स्थापित होने वाले शीशे के उद्योगों के लिए एक आधार प्रस्तुत किया। यही कारण था कि सन् १९१८ तक देश में १४ शीशे के कारखाने चालू हो गये थे। सन् १९२० के द्वितीय स्वदेशी आन्दोलन से उद्योग को बहुत बल मिला। लेकिन सन् १९३९ तक यह उन्नति तीव्रगति से नहीं हो सकी। काँच की चूड़ियाँ बनाने वाले कारखाना समेत शीशे का सामान बनाने वाले कारखानों की संख्या सन् १९३९ की केवल ८० से बढ़कर सन् १९५० में २०० हो गई तथा उत्पादन ४०,००० टन वार्षिक से बढ़कर ८५,००० टन हो गया। शीशे के सामान के निर्माण के ढङ्ग में तेजी से परिवर्तन हुए। मुँह से फूँक मार कर सामान बनाने के ढङ्ग का स्थान अधिक सस्ती तथा अर्द्ध-स्वचालित मशीनों ने ले लिया। इस प्रकार निर्माण में अधिक वैज्ञानिक ढङ्ग को स्थान मिला।

संक्षिप्त इतिहास—

काँच उद्योग की प्रगति का सरकार द्वारा सर्वेक्षण सर्व प्रथम सन् १९३१ में हुआ। तदुपरान्त आयोग ने संरक्षण देने के हेतु इस उद्योग की जाँच की तथा पुनः सन् १९४५ में पुराने योजना तथा विकास विभाग द्वारा नियुक्त ग्लास पैनल ने इस उद्योग का निरीक्षण किया। इस पैनल ने उद्योग के विकास के लिये अनेक महत्वपूर्ण सिफा-

रिशें की। इसके बाद सन् १९५३ में एक बार फिर सरकार ने उस उद्योग की अवस्था की जाँच करने तथा इसके भावी विकास के लिए सिफारिशें करने के हेतु एक तदर्थ समिति नियुक्त की। इस समिति के अनुसार उद्योग की प्रगति तथा उत्पादन का स्तर यद्यपि सन्तोषजनक था तथापि मानव तथा अर्द्ध-स्वचालित मशीनों द्वारा उत्पादन होने के कारण इसका सङ्गठन कुछ ऊँचे स्तर की माग वाले उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपर्याप्त था। इसके अतिरिक्त शीशा गलाने की भट्टियाँ तथा पानी चढाने का तरीका भी ऊँचे स्तर का उत्पादन करने के लिए अनुपयुक्त था और उसमे कोयला भी अधिक परिमाण मे जलता था। यह समिति इस निष्कर्ष पर भी पहुँची कि वस्तु के उत्पादन से पूर्व इसके रासायनिक सम्मिश्रण के तरीको पर उसके स्थाई उपयोग के दृष्टिकोण से विचार नही किया जाता। इसने उद्योग का ध्यान बेकार पड़ी हुई अधिक क्षमता की ओर तथा एक सीमित सख्या मे नई चीजें बनाने की आवश्यकता की ओर आकर्षित किया। आम प्रयोग के शीशे के बर्तन बनाने की आवश्यकता से बेकार पडी हुई क्षमता का होना इस उद्योग के फैलाव मे खराब सङ्गठन के परिणाम-स्वरूप था। सन् १९५६ में कुल १०४ शीशे का सामान बनाने के कारखाने थे, जिनका वार्षिक उत्पादन ३ ४ टन था। लेकिन इनमे से कुल ६२ कारखाने चालू अवस्था मे थे जिनका कुल उत्पादन २'८ टन वार्षिक का था। इस प्रकार वास्तविक उत्पादन वास्तविक क्षमता का केवल आधा ही था। स्थापित क्षमता से कहीं कम उत्पादन की इस असन्तोषजनक स्थिति मे तथा शीशे और शीशे के बर्तनो के भारी आयात के कारण सन् १९५७ मे एक बार फिर इस उद्योग का प्राविधिक दृष्टि से निरीक्षण किया गया। इस निरीक्षक दल ने लगभग सभी कारखानो का दौरा किया तथा कार्यस्थल पर उनकी जाँच करके उनका काम करने का ढङ्ग तथा उनकी कार्यक्षमता बढ़ाने के लिये सभी सम्भव सिफारिशें की।

पिछले कुछ वर्षों मे औद्योगिक उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये इस उद्योग का विकास यन्त्रों द्वारा उत्पादन वाले विभाग मे ही अधिक रहा है।

आजकल कुल १४० कारखाने काम कर रहे हैं, जिनकी कुल उत्पादन क्षमता चार लाख टन वार्षिक की है। इनमे से ९८ कारखाने जिनकी उत्पादन क्षमता ३'७ लाख टन वार्षिक की है, निरन्तर उत्पादन मे रत हैं। वर्तमान वास्तविक उत्पादन २ ५ लाख टन वार्षिक का है, जिसमे यन्त्रों द्वारा उत्पादन क्षमता का अधिक से अधिक तथा अर्द्ध-स्वचालित क्षेत्रो मे आशातीत प्रयोग हो रहा है। मदो के अनुसार उत्पादन की क्षमता इस प्रकार है।

मद	स्थापित क्षमता
शीट ग्लास	१२० ९६
ग्लास शैल	४३'१८
बोतल तथा फाइल	१७४'०५६
लैबोरेटरी मे प्रयोग होने वाले शीशे का सामान	८,३८४

लैम्पवेयर	४२,८१९
टेबल तथा प्रस्ड वेयर	७४,४७४
वैक्युम फ्लास्क	२९
शीशे का विविध सामान	१०,४१०

दूसरी पच वर्षीय योजना म, अर्थात् सन् १९६०-६१ तक उत्पादन का लक्ष्य २,३०,००० टन वार्षिक का था। अत यह स्पष्ट है कि शीशे क उद्योग ने निश्चित समय से बहुत पहले ही उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया था। इस उद्योग की क्षमता भी बोतल, कन्टेनर तथा फॅर्मेसिन वाइल को छोडकर माग को पूरा करने के लिये पर्याप्त है। इन चीजों मे भी कमी इनक पूर्ण रूप म स्वचालित मशीनो पर निर्मित होने के कारण ही है। हाल ही म औद्योगिक उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के बारे मे की गई जाच से पता चलता है कि सम्पूर्ण माग का पूरा करने के लिये कम से कम २४ अतिरिक्त अर्द्ध-स्वचालित मशीनो की आवश्यकता होगी, जो कि वर्तमान कारखानो का विस्तार करके पूरी की जा सकती है।

तीसरी योजना का लक्ष्य ६'२ लाख टन है। मदो के हिसाब से उनके अक नीचे दिए जा रहे हैं।

सख्या	मद		तीसरी योजना म लक्ष्य
(१)	बोतल तथा वाइल	(टनो मे)	२,८०,०००
(२)	टेबिल तथा प्रेस्ड वेयर	(टनो मे)	१,१५,०००
(३)	शीट ग्लास	(लाख स्क्वेयर टनो म)	२,०००
(४)	लैम्पवेयर	(टनो मे)	५०,०००
(५)	लैबोरेटरी ग्लास वेयर	(टनो म)	२१,५००
(६)	थरमोस फ्लास्क	(दर्जनो मे)	३,२०,०००
(७)	ग्लास शॅल, बिजली के लिए	(लाख की सख्या मे)	१,१००
(८)	शीशे का बना विविध सामान	(टनो मे)	३६,०००

तीसरी योजना के लक्ष्य की पूर्ति के लिये ३ ५ लाख टन की अतिरिक्त क्षमता को प्रारम्भ किया गया है।

हाल के विकास क्रम म केन्द्रीय ग्लास तथा सिरेमिक रिसच इन्स्टीट्यूट कलकत्ता मे चश्मो के शीशे, रगीन शीशे की चादरें तथा शीशे की मोटी चादरें, नक्ली पत्थर उचित मात्रा मे मिश्रित तथा परत चढाए हुए सुरक्षात्मक शीशे, शीशे की चमकीली गोलियाँ, इमारतो के खोखल ब्लाक, ग्लास वूल तथा शीशे के रेशे, आदि बनने लगे है। निकट भविष्य मे जो चीजें इस उद्योग द्वारा बनाई जाएँगी वे इस प्रकार है . शीशे के इन्सुलेटर, ग्लास कारबाय, आँखो पर प्रयोग होने वाले शीशे,

(इनका निर्माण पब्लिक सैक्टर मे यू० एस० एम० आर० के सहयोग से होगा) पिट्स वर्ग प्रक्रिया द्वारा शीट ग्लास, अकिन तथा शीशे के रेशे इत्यादि। इस आवश्यकता के प्रति ध्यान होना जा रहा है कि शीघ्र उत्पादन के तरीको का ईधन की बचत वाले जो तरीको का तथा श्रेष्ठ निश्रण प्रणाली को प्रयोग करके सस्ता था उच्च स्तर का शीशे का सामान बनाया जाए। शीशे को गलाने तथा उस पर परत चढ़ाने की प्रक्रिया मे भी नए प्रकार के उपकरण प्रयोग किए जा रहे है।

कच्चा माल—

शीशा बनाने के लिये मुख्य रूप से कच्चे माल मे रेत, बिल्लौर पत्थर, फैल्सपरधातु, चूना अथवा चूने का पत्थर, डोलोमाइट, सोडा ऐश बोरैक्स नया सखिये के अतिरिक्त और कई रसायन और आक्साइड जिनका प्रयोग तरल पदार्थों के रूप मे होता है, रग चढाने वाल पदार्थ तथा रग को साफ करने वाले पदार्थ आते है।

इस उद्योग के सामने आने वाली बडी कठिनाई यह है कि सोडा ऐश के अलावा और सभी कच्चा माल परिमाण तथा आकार मे भिन्न-भिन्न होता है। भारतीय मानक सस्था ने कुछ कच्ची धातुओ के मानक तैयार किए हैं, लेकिन उन मानको के आधार पर अभी समुचित रूप से कच्चे माल को विकसित नही किया गया है। रेत इस उद्योग मे प्रयुक्त होने वाले कच्चे माल का ७० प्रतिशत होता है तथा सारे देश मे और विशेषत उत्तर प्रदेश के शकरगढ जिले मे काफी अधिक परिमाण में मिलता है। दक्षिण भारत म कारखाने सिलिका के लिये बिल्लौर पत्थर का प्रयाग करते है। उत्तर-प्रदेश सरकार न रत को साफ करने का तथा उसका स्तर निश्चित करने के लिए एक कारखाना स्थापित किया है, जिसके कारण उत्पादको को अब स्वच्छ किया हुआ रेत मिलने लगता है। अभी हाल मे ही कुछ उत्पादकों ने रेत साफ करने क अपने प्लाट लगा लिए हैं।

चूने का पत्थर डोलोमाइट, फैल्सपर भी काफी परिमाण मे उपलब्ध है, लेकिन आवश्यकता की पूर्ति करने के लिये बोरैक्स, सखिया तथा सोडा एश (विशेषकर भारी सोडा ऐश) का आयात करना पडता है। भारी सोडा एश का देश मे उत्पादन करने के लिए योजनाएं बनाई जा रही हैं तथा यह अनुमान है कि सन् १९६२-६३ तक इस उद्योग को भारी सोडा एश की आवश्यकता की भी पूर्ति देश में ही हो सकेगी। इसकी वर्तमान आवश्यकता ७०,००० टन वार्षिक की है।

मानक तथा खोज—

कांच, कांच के बर्तन, कांच की चादरें, बोतल, लेबोरेटरी मे प्रयुक्त होने वाला कांच का सामान, कांच के स्रोत तथा अन्य इसी प्रकार के सामान के मानक भारतीय मानक सस्था ने बनाए हैं।

कलकत्ते के कांच तथा चीनी मिट्टी खोज सस्थान ने जिसकी स्थापना सन् १९५० म हुई थी, शीशे के प्राविधिक ज्ञान के सम्बन्ध म सैद्धान्तिक तथा

व्यावहारिक दोनो क्षेत्रो मे महत्त्वपूर्ण खोज की है तथा देश के इस उद्योग की आवश्यकताओ को पहिले स्थान दिया है। इसने प्रयत्नो को सभी क्षेत्रो मे फैलाने की बजाय कुछ विशेष क्षेत्रो मे केन्द्रित करने का प्रयास किया है। कच्चे माल, कन्टेनर तथा दुर्लभ कच्चे माल के स्थान पर स्थानीय साधनो से मिलने वाले कच्चे माल का प्रयोग और आयात होने वाली चीजो की इसके द्वारा की जाने वाली जाँच विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इसके द्वारा खोज किए गए आप्टिकल ग्लास जो रेल के सिगनलों मे प्रयुक्त होते हैं तथा प्रलेम ग्लास की जिनकी माग देश मे बहुत अधिक है सभी ने मुक्त कंठ से प्रशसा की है। ग्राम विकास कार्यों मे प्रयुक्त होने वाली जानकारी के लिए यह सस्था एक बुलेटिन प्रकाशित करती है।

निर्यात—

काँच तथा काँच का सामान काफी सख्या मे पडोसी देशो को निर्यात किया जा रहा है, जिसे सरकार और अधिक बढाने का प्रयास कर रही है। वर्तमान काल मे शीशे का सामान का निर्यात २५ लाख रुपये वार्षिक का है। उनसे सम्बन्धित सामान की निर्यात सम्बन्धी समिति ने ४० लाख रुपये निर्यात के लिये निश्चित किए हैं। आजकल देश के बाजार मे मांग बढ जाने के कारण बडी सख्या मे निर्यात शायद सम्भव नहीं है। निर्यात के लायक की चीजें आवश्यकता से अधिक है। वे इस प्रकार हैं: शीशे की बोतलें, चूडियाँ, लैम्प का सामान, चमकाई हुई टाइल, नकली पत्थर, नकली मोती, शीशे तथा कांच का बना सजावट का सामान इत्यादि।

राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था को श्रेष्ठतर बनाने मे शीशे के उद्योग का महत्त्वपूर्ण भाग है। यह उपभोक्ताओ की बहुत सी दैनिक आवश्यकताओ को पूरा करने के अतिरिक्त औद्योगिक उपभोक्ताओ की भी जरूरतो को पूरा करता है। इसी उद्योग ने बदलती हुई आवश्यकताओ के अनुसार अपने मे परिवतन किया है तथा अगले दशक मे इससे राष्ट्रीय विकास मे और अधिक सहायता की आशा की जाती है।

उपरोक्त सब बातो को देखते हुए यह कहना एक भूल होगी कि इस उद्योग की अपनी समस्याएँ नही हैं। ईधन की समस्या इसके लिये एक बडी समस्या है, क्योंकि बढिया किस्म का कोयला इस उद्योग को उपलब्ध नही हो रहा है। इसके अतिरिक्त भट्टियो मे लगाने की ईंटो को प्राविधिक ज्ञान वाले व्यक्तियों की कमी तथा देशीय साधनो के उपकरण तथा उनके औजारो का न मिलना आदि भी इस उद्योग के सम्मुख प्रमुख समस्याएँ हैं। शीशे का सामान बनाने वाले कुछ कारखानो ने ईधन का प्रयोग (जैसे फरनेस का तेल) शुरू भी कर दिया है तथा अपने विशेषज्ञो को विदेशो मे प्रशिक्षित किया है। जब कि सरकार द्वारा विदेशी प्राविधिक जानकारी के सम्बन्ध में इस उद्योग को पूरी सहायता दी जा रही है, अपनी आवश्यकताओ को देखते हुए इस उद्योग ने स्वय ही एक परामर्श-दात्री सर्विस की स्थापना कर ली है। अभी हाल मे काँच की भट्टियो की ईंटें तथा ग्लास हाउसो की भट्टियो की ईंट बनाने के कार्यों मे

काफी दिलचस्पी दिखाई गई है तथा साँचे और उनके हिस्से, बोतल बनाने की भट्टियाँ तथा आधुनिक ढङ्ग की काँच बनाने की भट्टियों के निर्माण की दिशा मे भी कदम उठाए गए हैं। इस बात की पूरी आशा है कि अगले कुछ वर्षों मे ही इस उद्योग मे प्रयुक्त होने वाले सभी उपकरणों और उनके पुर्जों की आवश्यकताएँ भारतीय साधनों से ही पूरी हो जाएँगी।

STANDARD QUESTION

1. Briefly describe the present position and future prospects of the Indian Glass Industry.

अध्याय ७६

पेट्रोलियम उद्योग

(Petroleum Industry)

प्रारम्भिक—

औद्योगिक ईंधनों मे पेट्रोलियम का विशेष महत्त्व है। 'पेट्रोलियम' लेटिन भाषा के दो शब्दों से बना है—'पेट्रा'+'ओलियम', जिनका अर्थ है 'चट्टान का तेल'। पेट्रोल का प्रयोग विभिन्न प्रकार से होता है, अतः विश्व के राष्ट्रों मे इसका उत्पादन बढाने और इसके स्रोतों पर आधिपत्य प्राप्त करने की स्पर्धा चल रही है। पेट्रोल की रचना 'हाइड्रोजन' और 'कार्बन' के रासायनिक मिश्रण से होती है, जो अन्य खनिजों की तरह संसार मे अनियमित रूप से वितरित है। इसकी उत्पत्ति के लिये स्थिर भूभागों मे दूर छिछले समुद्र एवं विशाल मात्रा मे कार्बनिक द्रव और मृदु शिलायें सर्वोत्तम वातावरण प्रस्तुत करते है। पेट्रोलियम उद्योग का जन्म तो आधुनिक युग मे हुआ है किन्तु इसके प्राचीनतम भण्डार लगभग ५,००,००,००० वर्ष पहले निर्मित हो चुके थे। किसी क्षेत्र मे तेल का होना या न होना केवल कूप खोदने पर ही निश्चित होता है। इसमे करोड़ो रुपये और दीर्घकालीन अनुसन्धान की आवश्यकता होती है। अनुभव बताता है कि २०-

मे से केवल १ कुंआ ही प्राय. कार्य योग्य होता है। खनिज तेल के उत्पादन मे अमरीका सबसे आगे है, इसके बाद रूस और फिर ईरान, अरब, मैक्सिको आदि का स्थान है। भारत मे देश की आवश्यकता का केवल ८% उत्पादन होता है। तेल उत्पादन का सबसे अधिक श्रेय आसाम को है। पजाब व सौराष्ट्र मे भी काफी तेल मिलता है। अनुसन्धान द्वारा तेल उत्पादन क्षेत्र की सीमायें विकसित की जा रही हैं। आशा है कि हमारे आयात दिनो दिन कम होते जायेंगे।

भारत मे तेल की खोज का इतिहास—

भारत मे तेल का पहला कुंआ सन् १८६० मे जैपुर (अ म म) मे खोदा गया था। भारत सरकार ने सन् १८६५ मे तेल की खोज के प्रयत्न किये। आसाम आयल कम्पनी ने डिगबोई के तेल कूपो मे सन् १८८३ मे कार्य आरम्भ किया। उसे सन् १८९२ मे सफलता मिली। इस समय इस कम्पनी के कब्जे में ५० से अधिक तेल कूप है, जो देश की तेल—आवश्यकता की ८% पूर्ति करते है।

तेल शुद्धि का पहला कारखाना भी आसाम आयल कम्पनी द्वारा खोला गया था। इसकी स्थापना ग्रेट ब्रिटेन मे हुई थी। बाद मे देश मे ही बहुत सी कम्पनियाँ खोली गई, जिनमे निम्न के नाम उल्लेखनीय है—(i) बर्मा शैल आयल स्टोरेज एण्ड डिस्ट्रीब्यूटिंग कम्पनी (१९२८), (ii) स्टैन्डर्ड बेकुम आयल कम्पनी (१९३३), (iii) इन्डो-बर्मा पेट्रोल क० (१९०९), (iv) ब्रिटिश बर्मा पेट्रोलियम कम्पनी लि० (१९१०), एव (v) कालटैक्स इण्डिया लि० (१९५७)।

ये कम्पनियाँ देश मे पेट्रोल की खोज व तत्सम्बन्धी अन्य कार्य करती हैं। तेल उद्योग मे पाइप लाइनो का महत्वपूर्ण स्थान है, जो प्राप्त कोष से तेल को सचालयो मे पहुँचाती है। विभिन्न उचित स्थानो पर लगे शक्तिशाली पम्पो द्वारा तेल एक स्थान से अन्य स्थान को पहुँचता रहता है। सचालयो मे वैज्ञानिक रीतियो से इसकी शुद्धि की जाती हैं। यह कार्य देश मे निम्न कम्पनियो द्वारा किया जाता है :—

(१) बर्मा-शैल रिफाइनरीज लिमिटेड—जो सन् १९५२ में २५ करोड रु० की पूँजी से स्थापित हुई। तेल शोधक कारखाना ट्राम्बे मे ४५४ एकड भूमि के क्षेत्र मे बनाया गया है। सचयालय मे ५०,००० बैरल तेल प्रतिदिन सचय करने की क्षमता है। इसमे २,००० कर्मचारी कार्य करते हैं। यहाँ मोटर स्प्रिट, केरोसीन, हाई-स्पीड डीजल, फरनेस आयल, बाइटुमैन तथा लिक्वीफाइड पेट्रोलियम गैस तैयार की जाती है। इस रिफाइनरी के कार्य से देश को ७२ करोड विदेशी मुद्रा प्रतिवर्ष बचती है।

(२) स्टैण्डर्ड बेकुम रिफाईनिंग ऑफ इण्डिया लि०—इस कम्पनी का तेल शुद्धि सचयालय ट्राम्बे मे १७½ करोड रु० की लागत से बनाया गया है। इसमे ७३० कर्मचारी हैं। इसने सन् १९५४ से कार्य आरम्भ किया और अब यह लिक्वीफाइड पेट्रोलियम एव गैस तथा बाईटुमेन का उत्पादन कर रही है।

(३) कालटैक्स आयल रिफाईनिंग इण्डिया लि०—यह सन् १९५५ मे

६ करोड रु० की पूंजी से स्थापित हुई। इसका शुद्धालय १५ करोड रु० की लागत से विशाखापटनम मे बनाया गया है और सन् १९५७ से कार्य प्रारम्भ हो गया है। यहाँ विशुद्ध पेट्रोल, केरोसीन, डीजल तेल व ईंधन तेलो का उत्पादन होता है।

तेल की खोज मे विदेशी सहायता—

हमारे देश मे कुशल भूतात्विको, पर्याप्त भू-भौतिक सूचना एवं भू-भौतिक सर्वेक्षण की कमी रही है। पूंजी का प्रभाव भी बहुत खटकने वाला है। अतः तेल की खोज के सम्बन्ध मे विदेशी सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। स्वतन्त्र भारत में विदेशी सहायता का विवरण इस प्रकार है :—

(१) अमेरिका—टेक्नीकल कोआपरेटिव मिशन (T. C. M) के तत्वाधान मे एक अमेरिकन भूगर्भवेत्ता ने तेल खोज का कार्य किया और तत्सम्बन्धी रिपोर्ट सन् १९५६ मे दी।

(२) रूस—रूसी विशेषज्ञो ने भारत के विभिन्न क्षेत्रो का सन् १९५५-५६ मे भ्रमण किया और अपनी रिपोर्ट मे पंजाब व राजस्थान मे तेल की खोज पर ध्यान देने के लिये बल दिया। इस सिफारिश को तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग ने मान लिया है।

(३) प० जर्मनी—जर्मनी की जियोलॉजिकल सर्वे के डाइरेक्टर डाक्टर बेन्ज ने तेल खोज के परामर्श कार्य के लिये भारत का भ्रमण किया और कई क्षेत्रो का विस्तृत परीक्षण करने का सुझाव दिया।

(४) कनाडा से कोलम्बो योजना के अन्तर्गत प० राजस्थान व गंगा की घाटी मे ऐरो मैगनेटिक सर्वेक्षण की सहायता मिली। फ्रांस ने Refinery Location Committee के लिये एक विशेषज्ञ की सेवायें प्रदान की हैं और भूगर्भ शिक्षा प्राप्त करने की सुविधायें तथा छात्रवृत्तियाँ दी हैं। रूमानिया ने तेल कूपो की गहराई खुदाई का यन्त्र और भारत मे इसका उपयोग सिखाने के लिये विशेषज्ञ भेजे हैं। ब्रिटेन ने भी कोलम्बो योजना के अन्तर्गत एक तेल विशेषज्ञ की सेवायें भारत को दी हैं।

भारत मे इस समय लगभग १०० विदेशी तेल विशेषज्ञ तेल कूप खोदने की कला व सर्वेक्षण कार्य में सहायता कर रहे हैं और ५० से अधिक भारतीय तेल उद्योग के विभिन्न क्षेत्रों मे उनसे आवश्यक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

तेल उद्योग के वर्त्तमान एवं सम्भावित क्षेत्र—

भारत में तेल उत्पादन के वर्तमान क्षेत्रो में सबसे महत्वपूर्ण स्थान असम राज्य का है, जहाँ अधिक से अधिक कुयें खोदे जा चुके हैं। तेल विशेषज्ञों के सर्वेक्षण और अनुमान के आधार पर तेल प्राप्ति के कुछ सम्भावित क्षेत्र इस प्रकार हैं :—

क्षेत्र	अनुमानित क्षेत्रफल (वर्ग मीलो मे)
(१) असम क्षेत्र (त्रिपुरा व मनीपुर सहित)	३०,०००
(२) प० बगाल बेसिन (तटीय उडीसा व सुन्दरवन सहित)	३०,०००
(३) पूर्वी पजाब (हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू काश्मीर सहित)	५०,०००
(४) राजस्थान	४६,५००
(५) खम्भात-कच्छ	६८,५००
(६) गगा-घाटी	१,४२,०००
(७) मद्रास-तट	१७,०००
(८) आन्ध्र तट	६,५००
(९) ट्रावनकोर-तट	६,०००
(१०) अण्डमान एव नीकोबार द्वीप समूह	३,०००

यह अनुमान लगाया जाता है कि देश मे लगभग ४,००,००० वर्ग मील क्षेत्र तेल की खोज के लिये अनुकूल है।

पैट्रोलियम उद्योग सम्बन्धी सरकारी नीति—

विदेशी शासन ने भारत मे पैट्रोलियम उद्योग की प्रगति मे कोई उत्साह नही दिखाया। किन्तु द्वितीय महायुद्ध मे तत्कालीन आवश्यकताओ से विवश होकर उसने सन् १९४५ मे भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग मे एक पैट्रोल भूगर्भ वेत्ता की नियुक्ति की। इसने तल स्रोत के लिये पजाब का सर्वेक्षण कराया। अप्रैल सन् १९४८ मे नई औद्योगिक नीति घोषित की गई, जिसके अनुसार सरकार ने कुछ आधारभूत उद्योगो के विकास की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। किन्तु पैट्रोलियम उद्योग का सरकारी क्षेत्र मे नही लिया गया। सन् १९५१ मे प्रथम पच वर्षीय योजना प्रारम्भ होने पर खनिज तेल के उत्पादन व खोज को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। सन् १९५५ मे प्राकृतिक गैस एव तेल निर्देशनालय की स्थापना हुई। सन् १९५६ मे एक तेल एव प्राकृतिक गैस कमीशन कायम हुआ, जिसके अध्यक्ष केन्द्रीय सरकार के खान एव तेल मन्त्री (Minister of Mines and Oils) हैं। कमीशन के मुख्य कार्य निम्न हैं :—(i) केन्द्रीय सरकार को खनिज तेल की खोज, उत्पादन और उसकी शुद्धि के सम्बन्ध मे सलाह देना, (ii) भूगर्भीय एव भू-भौतिक सर्वेक्षण करना, (iii) सम्भावित तेल और प्राकृतिक गैस क्षेत्रों मे कार्य करके कुछ अनुमान और परिणाम निश्चित करना, (iv) खनिज तेल मे कार्य करने वाली कम्पनियों के साथ प्रमाणित ढग से कार्य कराने की योजनायें बनाना, (v) भू-गर्भीय, रसायनिक एव भू-भौतिक प्रयोगशालायें व इन्जीनियरी कारखानो की स्थापना करना, (vi) विश्व और भारत मे तेल व प्राकृतिक

गैस के उत्पादन आँकड़े सग्रह व प्रकाशित करना एव व्यापार सम्बन्धी सूचना सग्रह व प्रकाशित करना, (vii) प्राकृतिक गैस व खनिज तेल सम्बन्धी पत्रिकायें प्रकाशित करना।

आधुनिक प्रवृत्तियाँ—

प्रथम पंच-वर्षीय योजना के अन्तगत सरकार ने स्टैण्डर्ड वेकुअम कम्पनी के सहयोग से प० बंगाल के क्षेत्र मे तेल-खोज का निश्चय किया। प्रारम्भ मे २३ करोड रु० सरकार ने व्यय करने का प्रस्ताव किया। सन् १९५६ की औद्योगिक नीति के फलस्वरूप खनिज तेल का उत्पादन सरकारी क्षेत्र मे आगया। **द्वितीय पंच-वर्षीय योजना** के प्रारम्भ मे सरकारी क्षेत्र मे तेल की खोज के लिये ११'५ करोड रु० निश्चित किये गये। बाद मे यह राशि ३०'५४ करोड रु० कर दी गई। गैर सरकारी क्षेत्रों मे लगाये गये अनुमान के अनुसार राष्ट्र के तेल-स्रोतो की खोज और विकास के लिये सन् १९७६ तक १,५०० करोड रु० की आवश्यकता का अनुमान है। देश मे पैट्रोलियम की बढती हुई माँग, राष्ट्रीय उत्पादन और विदेशो से तेल के आयात को ध्यान मे रखते हुए सरकार द्वारा सचालित तेल व प्राकृतिक गैस कमीशन ने **तीसरी योजना** मे तेल विकास कार्यक्रम के लिये ४०० करोड रु० की योजना बनाई है।

इस योजना के आधार पर सन् १९६७ तक १० मि० टन प्रति वर्ष तेल की प्राप्ति, शुद्धि एव विपणन का कार्य किया जायेगा। इसके लिये ४५ नये तेल कूप खोदने वाले ड्रिलो की आवश्यकता होगी। कई तेल शुद्धि सचयालयो (Refineries) भी स्थापित करनी होगी। अमेरिकी व रूसी विशेषज्ञो का परामर्श प्राप्त करना होगा। २,००० मील लम्बी पाइप लाइन तैयार की जायेगी, जिस पर ४० करोड रु० व्यय होगा। तेल शुद्धि सचयालय नूनमती (गोहाटी), बरौनी (बिहार) एव खम्भात क्षेत्र मे कायम किये जा रहे हैं। १२ करोड रु० की पूँजी से भारत तेल कम्पनी की स्थापना हुई है, जो सरकारी क्षेत्र मे स्थापित शुद्धि सचयालयो के उत्पादित माल का वितरण और विपणन करेगी। भारत सरकार के तेल मन्त्री श्री केशवदेव मालवीय तेल खोज व तेल आयात नीति मे आवश्यक परिवर्तन का विचार कर रहे हैं। कर्मचारियो का हार्दिक सहयोग प्राप्त करने के लिये तेल गैस आयोग ने पैट्रोलियम उद्योग के कर्मचारियो को अनेक सुविधायें देने का निश्चय किया है, जिनका लाभ ६,६०० से अधिक लोग उठावेगे।

STANDARD QUESTION

1. Trace the development of Petroleum Industry in India.

अध्याय ७७

फिल्म उद्योग

(Film Industry)

प्रारम्भिक—

फिल्म उत्पादन में भारत का विश्व में दूसरा नम्बर है। यद्यपि इस उद्योग को प्रारम्भ हुए केवल ३० वर्ष हुए हैं। किन्तु जिस गति से इसका विकास हुआ है, वह सचमुच सराहनीय है। इस उद्योग में ३३ करोड रुपये की पूंजी लगी है, ८५,००० व्यक्तियो को काम मिला हुआ है और राज्य को प्रति वर्ष २½ करोड रुपया कर के रूप मे मिलता है। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे प्रति वर्ष ४३० फिल्मे बनती है, भारत मे ३००, जापान मे १०३, फ्रास मे १०६ और इङ्गलैण्ड मे केवल ७१। द्वितीय महायुद्ध के बाद से फिल्म उत्पादन दुगुना हो गया है।

संक्षिप्त इतिहास—

७ जुलाई सन् १८९६ को लुमेरे भाइयो ने बम्बई के एस्प्लेनेड मेन्शन्स के एक कमरे मे भारत मे पहली बार सिनेमा दिखाया। दादा साहब फलके का 'राजा हरिश्चन्द्र' भारत की पहली फिल्म है, जो १७ मई सन १९१३ को बम्बई के कोरोनेशन थियेटर मे दिखाई गई। सन् १९१७ मे जे० एफ० मदन ने कलकत्ता मे पहली फिल्म कम्पनी बनाई और बगाल मे पहली फिल्म 'नल दमयन्ती' बनी। पहली बोलती फिल्म 'आलम आरा' १४ मार्च सन् १९३१ को बम्बई के मैजेस्टिक सिनेमा मे दिखाई गई। इस फिल्म को ए० एम० ईरानी ने बनाया था। सन् १९३२ मे मोशन पिक्चर सोसायटी (फिल्म सघ) ऑफ इण्डिया स्थापित की गई। दो साल बाद इसे रजिस्टर कराया। इसने २० फरवरी सन् १९३५ को अखिल भारतीय फिल्म सम्मेलन किया। अप्रैल-मई सन् १९३६ मे बम्बई फिल्म उद्योग की रजत जयन्ती मनाई गई। उस समय इसका भारत के उद्योगो मे आठवां और ससार के फिल्म उद्योगो मे चौथा स्थान था।

केन्द्रीय सरकार ने फिल्म उद्योग को बढाने के लिए बाल चित्रपट समिति, फिल्म वित्त निगम और फिल्म शिल्पियो की शिक्षा के लिए फिल्म सस्था को स्थापित किया। फिल्म सस्था पूना मे है और इसके लिये सरकार ने प्रभात स्टूडियो ले लिया है। अच्छी फिल्मो की रचना को बढावा देने के लिये सन् १९५४ मे राजकीय फिल्म पुरस्कार शुरू किया गया। सर्वोत्तम कथाचित्र और वृत्त चित्र को राष्ट्रपति के स्वर्ण-

पदक और बच्चो की सबसे अच्छी फिल्म को प्रधान मन्त्री का स्वर्णपदक दिया जाता है। इनके अलावा इन श्रेणियो की द्वितीय और तृतीय फिल्मो को श्रेष्ठता प्रमाण पत्र दिये जाते हैं। केन्द्रीय सरकार की फिल्म डिवीजन सरकारी समाचार चित्र और वृत्त चित्र बनाती है। फिल्म डिवीजन ने सन् १९६० मे ८७ वृत्त चित्र बनाये, जिनमे १७ रङ्गीन थे। हर हफ्ते नया समाचार चित्र दिखाया जाता है। २२ जनवरी सन् १९६१ से अंग्रेजी और १२ भारतीय भाषाओं मे समाचार चित्र बनाये जा रहे हैं।

फिल्म बनाने मे ससार भर मे भारत का दूसरा स्थान है। पहला स्थान जापान का है। अनुमान है कि देश में २६० फिल्म कम्पनियाँ, १,१८० फिल्म वितरक और ४,३०० सिनेमाघर है। फिल्म उद्योग के तीन प्रधान केन्द्रो मे स्टूडियो और फ्लोरो (मञ्चो) की सख्या इस प्रकार है—बम्बई ३० स्टूडियो और ६६ फ्लोर, कलकत्ता ११ स्टूडियो एव ३० फ्लोर तथा मद्रास २७ स्टूडियो एव ७२ फ्लोर। सन् १९६० मे ३१५ फिल्मे बनाई गई। सबसे अधिक ११५ हिन्दी की थी। तामिल मे ६२, तेलगू मे ५४, बङ्गला मे ३६, मराठी मे १५, कन्नड मे १२, मलयालय मे ६, उडिया मे ५, पजाबी में ४, उर्दू मे ३, गुजराती मे २ और सिंधी मे १ बनी।

फिल्मो के निर्यात से सन् १९५६ मे १ करड ५३ लाख रु० की विदेशी मुद्रा मिली। लङ्का, मलाया, बर्मा, इण्डोनेशिया, कम्बोडिया, थाई देश, वियतनाम, अदन, फारस की खाडी के बन्दरगाह, ईरान, लेबनान, ब्रिटिश पूर्वी और पश्चिमी अफ्रीका, घाना, ताजियर्स, दक्षिणी अफ्रीका, ब्रिटिश वेस्ट इण्डीज, फीजी, मारिशस, डच गायना, ब्रिटेन और हांग कांग मे भारतीय फिल्मो की काफी माग है।

फिल्म कला की शिक्षा—

दस साल पहले श्री सदाशिव कान्होजी पाटिल की अध्यक्षता मे फिल्म जाँच समिति नियुक्त हुई थी। उसकी रिपोर्ट में ऐसी सस्था खोलने की सिफारिश की गई थी जहाँ फिल्म कला की शिक्षा दी जाए। भारतीय फिल्मो का स्तर सुधारने के लिए यह जरूरी है कि इनके बनाने मे योग्य और प्रशिक्षित शिल्पिक काम करे। इसका उद्देश्य यह था कि शिक्षित और प्रतिभा सम्पन्न युवकों को फिल्म कम्पनियो मे आने का मौका मिले। अस्तु इसी उद्देश्य से भारत सरकार के सूचना और प्रसारण मन्त्रालय ने पूना मे फिल्म सस्था खोली। १६ अगस्त सन् १९६१ को यहाँ फिल्म कला का वैज्ञानिक ढङ्ग से पढाई का पहला सत्र शुरू हुआ, जिसमे ४१ युवक दाखिल हुए। ये लोग आगे चलकर फिल्म निर्माण का स्तर सुधारने मे कैसा काम करेंगे, यह तो समय ही बताएगा। किन्तु इस पढाई की शुरुआत से, भारतीय फिल्मो के इतिहास मे एक नया अध्याय अवश्य शुरू हुआ है।

वास्तव मे यह सस्था मार्च सन् १९६१ मे ही चालू हो गई थी। उस समय यहाँ ध्वनि रिकार्डिंग, फिल्म फोटोग्राफी और फिल्म सम्पादन का तीन मास का पुनर्भ्यास शुरू हुआ। इसम वे लोग लिये गए, जो फिल्मो में तीन साल से काम कर रहे थे। इन विषयो के विशेषज्ञो ने अभ्यासियो को शिक्षा दी। देश के विभिन्न भागो से इन विषयो

के विशेषज्ञ भी भाषण करने के लिए यहाँ बुलाये गये । फ्रांस की फिल्म संस्था के निर्देशक, श्री टेस्सोनो भी यहाँ दो सप्ताह रहे और अपनी सलाह तथा बहुमूल्य सुझाव दिये ।

शिक्षार्थियो को अनेक फिल्मे दिखाई गयी और उनके शिल्प पर विचार विमर्श हुये । इस संस्था के काम मे फिल्म निर्माता भी बड़ा सहयोग दे रहे हैं । कई फिल्म निर्माताओ ने पाटिल जाच समिति से कहा था कि देश मे ऐसी संस्था होनी चाहिए । अब उनकी यह इच्छा पूरी हो रही है ।

आजकल इस संस्था मे चार विषयो की शिक्षा दी जा रही है फिल्म निर्देशन और पट यथा (स्क्रिप्ट) लेखन, चल फोटोग्राफी, ध्वनि अकन और ध्वनि शिल्प और फिल्म सम्पादन । संस्था म जो शिक्षार्थी हैं, वे सभी कालेजो से सीधे निकले स्नातक हैं और उन्हे फिल्म कला का कोई अनुभव नही है । अधिकाश को फिल्मो मे काम करने का चाव है, जो आजकल प्राय युवको को होता है । किन्तु इनमे यह भाव पैदा किया जा रहा है कि इन्हे कडी मेहनत और लगन से काम करना होगा और भारी दायित्व सम्भालना होगा ।

कहते हैं कि कलाकार बनाए नही जा सकते बल्कि उनमे जन्मजात प्रतिभा होती है । किन्तु प्रश्न यह है कि आज फिल्म उद्योग मे ऐसी प्रतिभा वाले कितने व्यक्ति हैं और क्या प्रतिभावान व्यक्तियो को शिक्षा की जरूरत नहीं ? वास्तव मे शिक्षा से तो प्रतिभा और निखरती है । अध्ययन से मनुष्य की कला दृष्टि व्यापक होती है । प्रतिभा की चिगारी को भी अभ्यास और शिक्षा की फूक चाहिए । तभी वह प्रज्वलित होती है । अत फिल्म उद्योग मे प्रवेशेच्छुको को कलात्मक प्रतिभा को निखारने मे यह संस्था बडा योग देगी ।

फिल्म वित्त निगम—

फिल्म वित्त निगम का मुख्य ध्येय बढ़िया फिल्मो के निर्माण को बढ़ावा देना है । उसका अभिप्राय है कि फिल्मे मनोरजक होने के साथ ही शिक्षाप्रद भी हो और उनमे जीवन की वास्तविक झाँकी मिले । दूसरे शब्दो मे ये फिल्मे यथार्थवादी हो, जिनमे दर्शक को पात्रो, परिस्थितियो और समस्याओ म अपने ही जीवन का प्रतिबिम्ब दिखाई द । यह बात सामाजिक व ऐतिहासिक या आख्यानक पर आधारित दोनो प्रकार की फिल्मो पर लागू होती है ।

फिल्म वित्त निगम से सहायता पाने वाली फिल्मे साधारण फिल्मो से भिन्न होगी । उनम तडक भडक, अतिशय भावुकता व अवास्तविकता नही होगी । उनमे सस्ता मनोरजन व मजाक भी नही होगा । निगम ऐसी फिल्मो को भी बढ़ावा देगा, जिनमे ऊँचे आदर्शो की प्रतिष्ठा हो । यदि फिल्म मे एक भी पात्र ऊँचे आदर्श की प्रेरणा देता हो या दो-चार सम्वाद भी ऐसे हो जो दर्शको की सद्वृत्ति को जगावें तो वह फिल्म निगम की सहायता की पात्र हो सकती है । अस्तु निगम राष्ट्रीय विषयो पर आधारित या सामाजिक, सास्कृतिक, फिल्मो तथा सार्वजनीन महत्त्व की फिल्मो को

सहायता देगा। परन्तु इसके माने यह नही हैं कि निगम सुधार का काम करना चाहता है या फिल्मो मे पूँजी लगाने वाले महाजनो का स्थान लेना चाहता है। निगम तो केवल ऐसी फिल्मे बनाने मे मदद देने का प्रयत्न करेगा जो कला की दृष्टि से ऊँचे दर्जे की हो और जिनमे ऐसे विचारो व आदर्शों का प्रतिपादन हो जिनसे राष्ट्र और जाति ऊँची उठे। निगम इस बात की अवहेलना नही कर सकता कि उससे सहायता पाने वाली फिल्में घाटा न दें। पर वह ऐसी फिल्मो को कदापि सहायता नही देगा, जिससे राष्ट्रीय चरित्र का अधपतन हो।

निगम फिल्म उद्योग के खर्चे को भी बढाना नही चाहता। आजकल चोटी के कलाकार तथा प्रसिद्ध स्टूडियो बहुत ऊँची दर पर लिए जाते हैं, ताकि उनके नाम से सिनेमाघरो मे खूब भीड हो। पर फिल्म कही फेल हो गई तो निर्माता का दिवाला पिट जाता है। निगम ऐसी फिल्म के निर्माण मे सहायता देगा, जिनमे खर्च कम हो और होनहार कलाकार हो। इसमे निगम दो उद्देश्य सिद्ध करेगा। एक तो वह फिल्म उद्योग की उन्नति मे योग देगा, दूसरे नये कलाकारो को भी अपनी प्रतिभा विकसित करने का अवसर देगा।

फिल्म उद्योग को सरकारी सहायता देने का विचार नया नही है। ब्रिटेन मे पिछले दस वर्ष से भी अधिक समय मे राष्ट्रीय फिल्म वित्त निगम काम कर रहा है। इटली मे फिल्म निर्माण मे सहायता देने का काम एक बैंक को सौंपा गया है और फ्रांस मे राष्ट्रीय-सिनेमाटोग्राफी-केन्द्र यह काम करता है। देश मे फिल्म वित्त निगम पिछले साल मार्च मे स्थापित किया गया, पर इसने अपना काम इस साल फरवरी से शुरू किया। अक्टूबर के मध्य तक इसके पास कुल ६४ लाख ७० हजार रु० के ऋण के लिए २२ अर्जिया आयी। इनमे से ५ आवेदको को कुल १८ लाख रु० स्वीकार किया गया। ३ आवेदको को ६ लाख ४० हजार रु० दिया जा चुका है, १० अर्जिया अस्वीकार कर दी गयी हैं और ७ अर्जियो पर विचार किया जा रहा है।

निगम सरकारी लिमिटेड कम्पनी है और इसकी अधिकृत पूँजी १ करोड रु० है। इसकी चुकता पूँजी २० लाख रु० है, जो समाप्त प्रायः है। अब निगम शीघ्र ही २४ लाख रु० की पूँजी और एकत्र करने वाला है और तब यह फिल्मो को और ऋण दे सकेगा।

फिल्म को ऋण—

निगम ने ऋण देने के लिए सिद्धान्त निश्चित कर दिए हैं। निगम फिल्म निर्माण का पूरा खर्च नहीं उठाता। फिल्म पर होने वाले खर्च का एक-चौथाई निर्माता देता है और निगम का निर्देशक-मण्डल एक फिल्म को ३ लाख ५० हजार रु० तक ऋण दे सकता है। इससे अधिक के लिये सरकार की अनुमति लेनी पडती है। निगम ने ब्याज की दर बहुत कम रखी है। ७॥ से ९ प्रतिशत तक और यदि ऋण नियमित तौर से चुकाया जाए तो कुछ छूट भी दे दी जाती है। फिल्म-निर्माण पर भी निगम का नियन्त्रण रहता है। यदि फिल्म निश्चित अवधि मे पूरी न हो तो, निर्देशक-मण्डल

को अधिकार है कि वह ऋण लेने वाले से पूरा ऋण जो दिया गया है, मय ब्याज के माँग ले, या फिल्म का निर्माण अपने हाथ में ले ले या किसी अन्य निर्माता से बनवाए। निगम को फिल्म के कथानक को भी जाँचने का अधिकार है, ताकि उसे यकीन हो जाए कि फिल्म उसके सिद्धान्तों के अनुकूल बनेगी। निगम का श्रीगणेश अच्छा हुआ है। सोद्देश्य फिल्मों का निर्माण एक दिन में नहीं हो सकता, पर फिल्म उद्योग ने निगम का जैसा स्वागत किया है, उससे पता चलता है कि इसका भविष्य उज्ज्वल है।

उपसंहार—

कच्ची फिल्मों के निर्माण के लिए एक कारखाना मद्रास राज्य में उटकमण्ड के निकट फ्रांस की एक फर्म Bauchet et Cie के टेक्नीकल सहयोग से सार्वजनिक क्षेत्र में खोला जा रहा है। आशा की जाती है कि उद्योग की कच्ची फिल्म सम्बन्धी समस्या अब हल हो जायगी।

STANDARD QUESTIONS

1 Trace the history, present position and future prospects of Film Industry in India.

अध्याय ७८

दियासलाई उद्योग

(Match Industry)

दियासलाई प्रतिदिन के प्रयोग की वस्तु है, जिसका प्रयोग दरिद्र तथा धनी सभी व्यक्ति करते हैं। इस उद्योग के लिए तीन बातों की आवश्यकता होती है—(१) मुलायम लकड़ी, (२) सस्ता श्रमिक और (३) रासायनिक पदार्थ। भारत में लकड़ी तथा श्रमिक का तो कोई अभाव नहीं है, किन्तु रासायनिक पदार्थों का बाहर से आयात करना पड़ता है।

उत्पादन—

गत कुछ वर्षों मे दियासलाई का उत्पादन इस प्रकार रहा है —

वर्ष		दियासलाई ('००० पैटियाँ)
१६५२	. .	६१६ २
१६५३		६१८'०
१६५४		६२६'२
१६५५		६१५'६
१६५६		६२५ २
१६५७		५७८'३
१६५८		६१४ ४
१६५६		७००'७
१६६० (११ माह)		५६८ ५

STANDARD QUESTION

1 Attempt a lucid note on the Indian Match Industry

अध्याय ७६

उद्यान उद्योग

(Plantation Industry)

प्रारम्भिक—

उद्यान उद्योगो मे पेय पदार्थों से सम्बन्धित उद्योग चाय, कहवा और कोको प्रमुख है और इनमे भी चाय उद्योग का एक विशेष स्थान है। प्रस्तुत अध्याय मे उक्त तीनों उद्योगो के विकास पर प्रकाश डाला गया है।

चाय उद्योग (Tea Industry)

संक्षिप्त इतिहास—

चाय अत्यधिक नम और गरम मानसूनी प्रदेशों का पौधा है, इसके लिये ५०° फा० से ८०° फा० तक तापक्रम और ६०" से १००" तक वर्षा चाहिये। चाय-व्यवसाय के लिये सस्ते और अधिक संख्या में श्रमिकों की भी आवश्यकता होती है। कहा जाता है कि चाय पीने का प्रचार सबसे पहले चीन में हुआ था। यह संसार का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। इसके बाद भारत का नम्बर आता है। सर्व प्रथम सन् १८२० में आसाम में चाय के जंगली पौधों की खोज हुई थी और इसके बाद ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी का ध्यान उस पर गया। सन् १८३५ में कम्पनी ने अपना बगीचा प्रारम्भ किया। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा संचालित एवं पोषित उद्योगों में चाय उद्योग का एक महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि प्रारम्भ से ही यह निरन्तर प्रगति कर रहा है। भारत में सम्पूर्ण उत्पादन की ८७% चाय केवल आसाम और बंगाल में ही पैदा होती है। चाय के उत्पादन का दूसरा क्षेत्र दक्षिणी भारत में नीलगिरि पहाड़ियों का है जहाँ भारत की १६% चाय होती है। उत्तरी पश्चिमी हिमालय के क्षेत्र में भी चाय पैदा की जाती है। भारत के विभाजन के परिणामस्वरूप चाय उत्पादन की लगभग ७४,००० एकड़ भूमि पाकिस्तान में चली गई। विभाजन के बाद भारत में ७·७५ लाख एकड़ भूमि रह गई, जिसमें ५६० करोड़ पौंड चाय उत्पन्न हुई। राष्ट्रीय सरकार ने चाय उत्पादन के क्षेत्र में निरन्तर वृद्धि का प्रयास किया है।

चाय उद्योग की आधुनिक प्रवृत्तियाँ एवं भविष्य—

विश्व में भारत चाय का सबसे बड़ा उत्पादक और निर्यातकर्त्ता है। यह स्थिति उसे तब से प्राप्त हुई जबकि १९वीं शताब्दी में चीन से चाय का निर्यात कम हो गया। यहाँ इस समय ८ लाख एकड़ भूमि पर चाय की पैदावार होती है तथा उत्पादन ७०० मि० पौंड से भी अधिक है। विश्व के बाजार में आने वाली चाय की पूर्ति का आधा भाग भारत भेजता है। चाय उद्योग देश के सबसे बड़े संगठित उद्योगों में से है। इसमें १ मि० से भी अधिक लोगों को काम मिला हुआ है। यह भारत को सबसे अधिक विदेशी मुद्रा अर्जित करने वाला एक अकेला उद्योग है। स्पष्ट है कि इस उद्योग की उन्नति एवं प्रगति के साथ हमारी विदेशी मुद्रा की समस्या का हल जुड़ा हुआ है। अतः यह आवश्यक है कि इस उद्योग की कठिनाइयों को दूर करने के लिये प्रत्येक प्रयास करना चाहिये।

दुर्भाग्य से पिछले कुछ वर्षों से चाय का निर्यात गिरता जा रहा है, जैसा कि निम्न तालिका से भी प्रगट होता है :—

वर्ष	मात्रा (००० पौंड में)	मूल्य (लाख रु० में)
१९५०	४,०३,२३६	७१,९१
१९५१	४,५४,१०८	९०,०१
१९५२	४,१४,८३६	८०,९१
१९५३	५,००,६५५	१,०४,२२
१९५४	४,४७,९६०	१,३०,७५
१९५५	३,६७,५२३	१,१३,६१
१९५६	५,२३,५५७	१,४२,८२
१९५७	४,४२,६५१	१,२३,३९
१९५८	५,०५,९६१	१,३६,५४
१९५९	४,७२,४७५	१,२६,३९
१९६०	४,३० १४७	१,२१,०५

निर्यात घटने का प्रधान कारण यह है कि अन्य देशों ने विश्व बाजार में अपनी पूर्ति बढ़ा दी है। यह बात निम्न तालिका से प्रगट हो जाती है :—

Share of Different Producing Countries in Total World Exports

Exporting Countries	Quantity of export in thousand lbs. 1950	1955	1956	1957	1958	1959
India	403,236	367,523	523,557	442 651	505,961	472,475
	(45 8)	(37 0)	(44.4)	(39 2)	(40 9)	(39.9)
Pakistan	16,760	12,900	23,524	9 836	12,698	12,900
	(1 9)	(1 3)	(2 0)	(0 9)	(1 0)	(1.1)
Ceylon	298 099	362 235	348,129	357,732	4 0 773	383,495
	(33 9)	(36 5)	(29 6)	(32.6)	(33 2)	(32 4)
Indonesia	63,010	72,290	80,514	85,657	83,182	71,300
	(7 2)	(7 3)	(6 8)	(7 6)	(6 7)	(6 0)
Br East Africa*	28,835	38,992	46,539	49,041	52,669	59,603
	(3.3)	(3 9)	(4 0)	(4 3)	(4.3)	(5 0)
China	26 000	70,000	83,000	82,000	99 000	101,000
	(3.0)	(7 1)	(7 0)	(7 3)	(8 0)	(8.5)
Formosa	16,643	17,127	23 507	26 444	26,295	31,685
	(1 9)	(1 7)	(2 0)	(2.3)	(2.1)	(2.7)
Japan	15,798	31,113	21,803	23,566	15,869	16,939
	(1 7)	(3.2)	(1 9)	(2 1)	(1 3)	(1.4)
Malaya	1,660	2,896	2 664	2,803	3 063	3,788
	(0 2)	(0 3)	(0.2)	(0 2)	(0 3)	(0.3)
Other Countries	9,559	16,724	24,863	39 771	26,700	32,115
	(1)	(1 7)	(2 1)	(3 5)	(2 2)	(2 7)
Total.	879 600	991 800	1 178,100	1,129,500	1,236 200	1,185,300
	(00 0)	(100 0)	(100 0)	(100 0)	(100 0)	(100 0)

*Includes Nyasaland

Note Figures in backets relate to Percentage Share to World Exports.

उक्त तालिका मे यह देखा जा सकता है कि भारत का शेयर सन् १९५० मे ४५ ८% से घटकर सन् १९५९ मे केवल ३९ ९% रह गया है। लका का शेयर ३३% के लगभग स्थाई बहुत कुछ रहा है। पूर्वी अफ्रीका का शेयर सन् १९५० मे ३ ३% से बढकर सन् १९५९ मे ५% हो गया है। चीन का शेयर भी ३% से बढ कर ८ ५% बढ गया है। इस प्रकार चीन और पूर्वी अफ्रीका के बढते हुये शेयर के कारण भारत का शेयर घट रहा है। लका भी, जो कि विश्व मे दूसरे नम्बर का बडा निर्यातक है, भारत के लिये एक प्रबल प्रतिद्वन्दी प्रमाणित हो रहा है। लका, पूर्वी अफ्रीका और चीन धीरे-धीरे बढता हुआ उत्पादन एव निर्यात भारतीय चाय के भविष्य के लिये एक चुनौती है। इ डोनेशिया मे भी, जहाँ कि चाय उद्योग गत महायुद्ध मे बहुत ही ध्वस हो गया था, अब धीरे धीरे प्रगति हो रही है। उसका चाय निर्यात सन् १९५० मे ८३ २ मि० पौंड से बढ कर सन् १९५८ मे ८३ २ मि० पौंड हो गया है। अफ्रीका चीन और लका मे चाय का निर्यात बढाने के भरसक प्रयत्न किये जा रहे हैं। इन सबका परिणाम भारतीय चाय के निर्यात लिये शुभ न होगा।

क्या इस दशा से बचने के लिये कुछ नही किया जा सकता ? इस प्रश्न का उत्तर देने के पूर्व हमे यह विचार करना चाहिए कि ऐसी दशा क्यो हुई है। पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि भारतीय चाय के मूल्य अन्य देशो की तुलना मे अधिक हैं। भारत के कुल चाय का उत्पादन का ६०% भाग बिल्कुल उन्ही किस्मो का है जिनका उत्पादन इ डोनेशिया अफ्रीका और चीन द्वारा किया जाता है। चूकि भारतीय किस्मो के मूल्य अधिक हैं इसलिये विदेशी क्रता अन्य देशो से ही चाय खरीदना पसन्द करते हैं क्योकि उन्हे कम मूल्य पर समान किस्म की चाय प्राप्त हो जाती है। यही कारण है कि विश्व के सभी प्रमुख चाय उपभोगी देशो को (जैसे अमरीका, इगलड, कनाडा, आयरलैंड, ईरान आदि) भारत से चाय का निर्यात अभी हाल मे कम हो गया है। भारतीय चाय का मूल्य अधिक क्यो है ? इसका कारण यह है कि हमारे देश मे उत्पादन की लागत एव करो का भार अन्य देशो की अपेक्षा अधिक है। उत्पादन लागत बढने का एक प्रमुख कारण मजदूरी मे वृद्धि होना है, जिसकी व्यवस्था नये बगीचा कानूनो ने की है। इस सम्बन्ध मे हम केवल यही सुझाव दे सकते है कि चूकि चाय उद्योग का विदेशी मुद्रा के अर्जन की दृष्टि से एक विशेष महत्त्व है, इसलिये हम श्रम लागतो मे अनावश्यक वृद्धि नही होने देनी चाहिये। उत्पादन लागत बढने का दूसरा कारण है निर्यात एव उत्पादन कर। इन करो का भार विभिन्न चाय क्षेत्रो मे इस प्रकार है :—

प्रथम क्षेत्र	५७ ५ न० पै० प्रति कि० ग्रा०
द्वितीय क्षेत्र	६२ न० पै० प्रति कि० ग्रा०
तृतीय क्षेत्र (अ)	७१ न० पै० प्रति कि० ग्रा०
तृतीय क्षेत्र (ब)	८० न० पै० प्रति कि० ग्रा०

इस भारी करारोपण का चाय के मूल्य पर बहुत प्रभाव पडा है, जिससे भारतीय चाय की प्रतिद्वंदिता शक्ति विश्व बाजार मे बहुत कम हो गई है। इसके विपरीत इण्डोनेशिया, चीन व अफ्रीका म कोई निर्यात कर नही लगा है। लङ्का मे निर्यात कर लगा होने पर भी वहाँ की चाय भारत की अपेक्षा सस्ती पडती है। सरकार करारोपण के दुष्प्रभाव से परिचित है। इसी कारण उसने सन् १९६१ ६२ के बजट मे कुछ कमियो की घोषणा भी की थी। अब करारोपण का भार इस प्रकार हो गया है :—

प्रथम क्षेत्र	५४ न० पै० प्रति कि० ग्रा०
द्वितीय क्षेत्र	५६ न० पै० प्रति कि० ग्रा०
तृतीय क्षेत्र (अ)	६६ न० पै० प्रति कि० ग्रा०
तृतीय क्षेत्र (ब)	७६ न० पै० प्रति कि० ग्रा०

किन्तु चाय उद्योग की कठिनाइयो को देखते हुए यह राहत बहुत कम है। फिर भी इसका चाय के निर्यात पर कुछ सुप्रभाव अवश्य होगा। करो की कमी के सम्बन्ध मे हमको यह ध्यान रखना चाहिये कि कर इस प्रकार कम किये जायें कि विदेशी क्रेता भारतीय चाय अधिक मात्रा मे खरीदे और साथ ही करो के कम होने पर मूल्य घटने से विदेशी मुद्रा की आय मे कमी न होने पाये। वास्तव मे हमारे निर्यात का उद्देश्य अधिक विदेशी मुद्रा कमाना है, न कि अधिक वस्तु निर्यात करना। सरकार सन्तुलन कायम रखने की भरसक चेष्टा कर रही है।

सन् १९६१-६२ के बजट मे दी गई राहतो के कारण भारत मे उपभोग के लिये चाय मँहगी हो जायेगी, जिसका फल यह होगा कि साधारण चाय की माँग बढ़ेगी और घटिया चाय की माँग कम हो जायेगी, जिससे बढ़िया चाय निर्यात के लिये अधिक मात्रा मे उपलब्ध हो सकेगी।

हमारी विकास योजनाओ के लिए चाय का कितना अधिक महत्त्व है, इसका अनुमान हम इस बात से लगा सकते हैं कि तृतीय पच-वर्षीय योजना मे चाय उत्पादन एव निर्यात के लक्ष्य क्रमश ९०० मि० पौण्ड एव ६०० मि० पौण्ड रखे गये है। यह उत्पादन लक्ष्य तभी पूरा होगा जबकि निम्न उपाय किये जायें:—(1) अमोनियम सलफेट के रूप मे उद्योग को पर्याप्त उर्वरक उपलब्ध किया जाय, (11) उद्योग को चाय की पुरानी झाडियो को प्रतिस्थापित करने के लिए सहायता-ऋण दिये जायें और (111) श्रम-सम्बन्ध शान्तिपूर्ण रहे। हर्ष का विषय है कि सरकार इस ओर ध्यान दे रही है।

यह कहा जाता है कि सन् १९६५-६६ तक निर्यात का जो लक्ष्य निर्धारित किया गया है वह चाय के निर्यात मे घटोतरी की वर्तमान प्रवृत्ति को देखते हुए सुगम नही जान पडता। किन्तु स्थिति के कुछ उज्जवल पहलू भी है। प० एशिया, अफ्रीका और यूरोप के कई देशो मे चाय का उपभोग बढने का पर्याप्त क्षेत्र विद्यमान है। इनमे भारतीय चाय का निर्यात बढाया जा सकता है। इसके लिये विदेशो मे भारतीय चाय के उपभोग को प्रोत्साहन देना होगा और उभयपक्षीय व्यापार समझौते (Bilateral trade agreements) करने होंगे।

चाय बोर्ड की एक निर्यात प्रोत्साहन कमेटी है, जिसमे चाय व्यापार के प्रतिनिधि सम्मिलित है। इसकी सहायता के लिए छ निर्यात प्रोत्साहन परिषदें भी है। भारत सरकार ने अभी हाल मे इङ्गलैण्ड, अमेरिका, आस्ट्रेलिया और मिश्र मे चाय-परामर्शदाता (Tea Advisors) नियुक्त किये हैं, जिनका काम स्थानीय चाय व्यवसाइयो से सम्पर्क बढाना है, ताकि वहाँ भारतीय चाय का निर्यात बढे। कैरो मे एक चाय केन्द्र खोला गया है जो मध्य-पूर्व मे भारतीय चाय का प्रचार करेगा। सरकार ने कई देशो से उभय पक्षीय व्यापार समझौते भी किये हैं।

कहवा (Coffee)

प्रारम्भिक—

कहवा एबीसीनिया की मूल उपज है। इसके लिए गर्म और नम जलवायु

चाहिये, औसत तापक्रम ७०° फा० होना आवश्यक है, भूमि ढालू और उपजाऊ होनी चाहिए। ज्वालामुखी के लावे से बनी मिट्टी कहवे के लिए उत्तम होती है। इसके लिए अधिक श्रम भी आवश्यक होता है। भारत मे यह पौधा तेरहवी शताब्दी में लाया गया था, किन्तु इसका नियमित उत्पादन सन् १८३० से आरम्भ हुआ। यह भारतीय जलवायु के अनुकूल नही पडता, इसलिये देश मे यह अधिक लोकप्रिय नही है।

आधुनिक प्रवृतियाँ—

भारत मे लगभग ५०% कहवा क्षेत्र भारतीयो के तथा ३०% क्षेत्र योरुपियो के अधिकार मे है। दक्षिण भारत मे लगभग ५,००० से अधिक कहवे के बगीचे हैं, जिनमे अकेले मैसूर मे ४,६०० बगीचे हैं। यहाँ ५०% उत्पादन होता है। देश के कुल उत्पादन का आधा भाग देश मे ही प्रयोग हो जाता है और शेष भाग इङ्गलैंड, जर्मनी, फ्रांस, हालैंड, बेल्जियम तथा आस्ट्रिया को निर्यात कर दिया जाता है। भारत का कहवा उत्पादन और निर्यात विश्व के उत्पादन व निर्यात की अपेक्षा बहुत कम है।

गत वर्षो मे भारतीय कहवा समिति को निर्यात सम्बन्धी कठिनाई अनुभव हुई है। फिर भी कहवा उगाने वाले क्षेत्रो मे विकास की योजनाएँ बनाई जा रही है। यह आवश्यक है कि कहवे के नये बाग उन्ही भागो मे लगाये जायें जहाँ बहुत अधिक अच्छे उत्पादन और रोग मुक्त पौधे उगने की आशायें है। चूँकि विदेशी मुद्रा के अर्जन की दृष्टि से कहवा उद्योग का महत्त्व बहुत कम है इसलिए उत्तम तो यह होगा कि इस उद्योग मे श्रम व पूँजी बढाने के बजाय उसको चाय उद्योग मे लगाया जाय।

रबड (Rubber)

उद्यान उद्योगो मे रबड का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राकृतिक रबड के पेड जङ्गली अवस्था मे उगे हुए पाये जाते हैं। अब जङ्गली रबड का उत्पादन कम होकर बागानी रबड का उत्पादन बढ रहा है। भारत मे सर्व प्रथम सन् १६०२ मे ट्रावनकोर मे पेरियार नदी के किनारे रबड के बगीचे लगाये गये। सन् १९२६ तक इनका पर्याप्त विकास हुआ, परन्तु मन्दी कालमे उत्पादन गिर गया। द्वितीय महायुद्ध की आवश्यकताओ से प्रेरित होकर इसे पुन बढाने का प्रयास किया गया है। अब भी उत्पादन की दृष्टि से भारत विश्व के देशो मे सबसे पिछडा हुआ है। देश के औद्योगिक विकास तथा सुरक्षा मे रबड का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः इसके लिये अन्य देशो पर निर्भर होना उचित नही है। योजना आयोग ने भारत मे रबड का उत्पादन कम होने का कारण बगीचो का छोटा व पुराना होना बताया है। अत. राष्ट्रीय विकास समिति ने इनके १५ वर्षीय पुनरुद्धार की योजना बनाई, जिसमे काफी सफलता मिली है। सरकार की ओर से उद्यान पुनर्स्थापन सम्बन्धी सहायता भी दी गई। भविष्य में रबड उद्योग के लगाने के लिए अच्छी किस्म के बीज व पौधो के प्रयोग पर बल दिया जा रहा है।

आधुनिक युग मे रबड से अनेक वस्तुयें जैसे टायर, ट्यूब, बेल्टिंग, पंखो के पट्टे, रेलवे ब्रेक, फिटिंग्स, प्रतिरक्षा की अनेक वस्तुयें बनाई जाती हैं। रबड निर्माण एव रबड बगीचा उद्योग दोनो मिलकर देश के हजारो लोगो को रोजी व रोटी देते हैं। औद्योगिक विकास के साथ-साथ रबड की माग उत्पादन से अधिक बढी है। अत. प्रति वर्ष अधिकाधिक माग मे कच्ची रबड बाहर से मंगानी पडी है। यह बात निम्न आंकडो मे स्पष्ट है :—

वर्ष	उत्पादन (टन)	उपभोग (टन)
१९५०	१५,५९९	१७,७३५
१९५१	१७ १४८	२२ ४२७
१९५२	१९,८६३	२१,०६१
१९५३	२१ १३६	२२,३७३
१९५४	२१ ४९३	२५ ४८७
१९५५	२२ ४८१	२७,५४३
१९५६	१३,४४४	२८ ९९६
१९५७	२३ ६७६	३१ ७६५
१९५८	२४ ३८८	३४,७५६
१९५९	२३ ३९८	३८,६६३

सन् १९६० मे उत्पादन २६ ४०० टन आका गया है जो सन् १९६६ तक ४०,८०० टन हो जाना चाहिये। सन् १९५९ के अन्त तक रबड वृक्षो का क्षेत्र ३ ०५ ४५२ एवड था जिसमे से केवल केरल मे ही २ ८८ ४५० एकड क्षेत्र है और कुल ५५,२६७ उद्यानो मे से ५४ ८८२ उद्यान वहाँ पाये जाते हैं। यह आवश्यक है कि भारत कच्चे रबड के उत्पादन मे जल्द आत्म निर्भर हो जाय अन्यथा बहुमूल्य विदेशी मुद्रा का भारी खर्च होगा। उत्पादन बढाने के लिये पुराने क्षेत्रो मे नये वृक्ष लगाने और अधिक पैदावार वाले पौधे रोपना जरूरी है। इस सम्बन्ध मे केन्द्रीय सरकार ने एक उपयुक्त योजना भी बनाई है। यह योजना सन् १९५ मे प्रारम्भ की गई थी। सन् १९५५ के अन्त मे एक रबड अनुसन्धान सस्था और रबड अनुसन्धान केन्द्र की स्थापना भी की गई। सन् १९५७ से पुनरारोपण के लिय छोटे उत्पादको को आर्थिक सहायता की योजना भी चालू की गई है।

तीसरी योजना मे रबड बोर्ड द्वारा निम्न कार्यक्रम बनाया गया है —

(१) विद्यमान रबड उद्यानो से ही तीसरी योजना के अन्त तक सभी सम्भव उपायों द्वारा अधिक से अधिक ५४ ००० टन रबड का उत्पादन करना।

(२) प्रति इकाई क्षेत्र मे उत्पादन बढाना और उत्पादन की लागत घटाने के हेतु पुराने और अलाभकर रबड के वृक्षो के स्थान म नये व अधिक पैदावार वाले वृक्ष लगाना।

(३) आधुनिक वैज्ञानिक तरीको से रबड उद्यान उद्योग का विस्तार करना।

(४) सामान्य उपभोग के लिये देश मे ही २०,००० स ३०,००० टन तक कृत्रिम रबड का उत्पादन।

(५) १५,००० टन पुन प्राप्त रबड का उत्पादन करना।

STANDARD QUESTIONS

1 Briefly trace the recent trends and prospects of our Tea Industry

2 Write a short essay on (a) Rubber or (b) Coffee production in India

क्षेत्र में सम्मिलित नही है। सन् १९५९-६० के अन्त मे इनके बकाया ऋण १४·१७ करोड रु० थे।

सन् १९५९ के अन्त तक औद्योगिक साख एव विनियोग निगम ने, जिसकी स्थापना जनवरी सन् १९५५ मे प्राइवेट क्षेत्र की औद्योगिक सस्थाओ को सहायता करने के लिये हुई था, अनेक प्रकार के उद्योगो को कुल २०·४० करोड रु० की वित्तीय सहायता देना स्वीकृत किया। वास्तविक दिये गये ऋण ९·०१ करोड रु० थे। ऋण पाने वाले मुख्य-मुख्य उद्योग निम्न हैं—कागज, रसायन, इलैक्ट्रिक इक्विपमेन्ट वस्त्र, चीनी, धातु चूना व सीमेन्ट काच निर्माण आदि।

उद्योगो के पुर्नवित निगम की स्थापना जून सन् १९५८ मे हुई थी। इसका उद्देश्य बैंको द्वारा औद्योगिक सस्थाओ को उत्पादन बढाने के हेतु दिये गये ऋणो के विरुद्ध पुर्नवित प्रबन्ध की सुविधाये प्रदान करना है। पुर्नवित प्रबन्धन की सुविधायें पाने के हेतु यह जरूरी है कि ऋण ३ से ७ वर्ष की अवधि के हो तथा उनकी राशि भी मध्यम आकार की हो व ५० लाख से अधिक न हो। ये सुविधाये केवल उन्ही उद्योगो को उपलब्ध होगी जिनकी दत्त पूँजी एव कोष मिलकर २·५ करोड रु० से अधिक न हो। मार्च सन् १९६० तक पुर्नवित्त प्रबन्धन की सुविधा ४·१६ करोड रु० की दी गईं।

राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम सन् १९५४ म स्थापित किया गया था। वह सूती वस्त्र एव जूट उद्योगो के पुनर्वास एव आधुनिकीकरण के लिये तथा मशीन टूल उद्योगो के विस्तार के लिये विशेष ऋण देने के हेतु सरकार के एजेन्ट का कार्य भी करता है। मार्च सन् १९६० तक इसने उन उद्योगो को १४·७९ करोड रु० के ऋण स्वीकृत किये।

सरकार आवश्यक कच्चे माला तथा आधारभूत अर्द्ध निर्मित मालो के आयात को सुविधाजनक बना कर और नये उद्योगो को प्रारम्भिक वर्षों मे कर सम्बन्धी छूटें देकर तथा सरक्षण प्रदान करके भी प्राइवेट सेक्टर का सहायता पहुँचाती है। अन्तर्राष्ट्रीय टैकनीकल सहायता योजना के अन्तर्गत या प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा विश्व के विभिन्न औद्योगिक देशो से टैकनीकल सहायता प्राप्त करने का भी प्रयास किया गया है।

(V) नई औद्योगिक नीति सन् १९५६—

औद्योगिक (विकास एव नियत्रन) अधिनियम सन् १९५१, प्रथम पच वर्षीय योजना का शुभारम्भ एव सफल समाप्ति भारतीय सविधान का परिचालन तथा उसमे किए हुए सशोधन इत्यादि ऐसे परिवर्तन हुए जिन्होने देश से एक नई औद्योगिक नीति को अपनाने के लिए बाध्य किया। भारतीय ससद द्वारा समाजवादी अर्थ व्यवस्था पद्धति की स्वीकृति तथा उसकी आवडी और अमृतसर कांग्रेस अधिवेशनो मे पुष्टि एव अभी द्वितीय पच वर्षीय योजना का शुभ आरम्भ ऐसी घटनाऐ है जिनकी पृष्ठभूमि मे औद्योगिक नीति को पुन सशोधित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई, अत ३०

अप्रैल सन् १९५६ को प्रधान मत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने ससद मे नई औद्योगिक नीति की घोषणा की। इस नीति के अनुसार वे सभी उद्योग जो आधारभूत उद्योग है तथा देश की सुरक्षा की दृष्टि स जिनका महत्त्व है अथवा वे उद्योग जो सार्वजनिक हित के उद्योग है, उन्हे सावजनिक क्षेत्र मे रखा गया है। इसके अतिरिक्त वे सभी उद्योग जिनकी स्थापना के लिय बहुत मात्रा म पूँजी की आवश्यकता है, जिसे वर्तमान स्थिति मे केवल सरकार ही प्रदान कर सकती है। इस प्रकार के सभी उद्योगो के भविष्य के विकास का उत्तरदायित्व सरकार न अपने हाथ मे ले लिया है। दूसरे शब्दो मे, सार्वजनिक क्षेत्र और अधिक व्यापक बना दिया गया है।

इस नीति के अनुसार सभी उद्योगो को तीन श्रेणियो म बाटा गया है, जो निम्नलिखित है—

(१) प्रथम श्रेणी म १७ उद्योग शामिल किये गये है जिनके भावी विकास का उत्तरदायित्व पूरी तरह सरकार पर निर्भर है। इनमे हथियार, गोला बारूद, अणु शक्ति, लोहा तथा इस्पात, भारी मशीनरी कोयला, खनिज तेल तथा रेल यातायात आदि शामिल है। इन उद्योगो का वर्णन औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव की 'अ' सूची मे किया गया है।

(२) दूसरी श्रेणी मे व उद्योग आते है जो धीरे धीरे सरकार के स्वामित्व मे आते जायगे। इस प्रकार के नये कारखानो को लगाने म सरकार अधिक रुचि रखेगी, किन्तु सरकार के साथ निजी पूँजी को भी सहयोग देने का अवसर मिलगा। इस श्रेणी मे १२ उद्योग है जिनका वर्णन औद्योगिक प्रस्ताव व सूची म किया गया है।

(३) शेष सभी उद्योग तीसरी श्रेणी मे रख गये है, जो निजी क्षेत्र म रहगे, किन्तु सरकार उन पर आवश्यक नियन्त्रण रख सकती है।

इस नई औद्योगिक नीति न भी सरकार के कुटीर तथा छोटे पैमाने के उद्योगो के विकास पर विशेष जोर दिया है। सरकार इस बात का प्रयत्न करेगी कि बड पैमाने के उद्योगो की प्रतियोगिता का मुकाबिला करने के लिए छोटे उद्योगो की शक्ति बढाई जाय।

(IV) पच वर्षीय योजनायें—

भारत सरकार ने अपनी सन् १९४८ की औद्योगिक नीति की घोषणा के बाद ही देश के औद्योगिक विकास की योजना बनाई, जिसका उद्देश्य सरकारी नियन्त्रण मे सन्तुलित अर्थ व्यवस्था बनाना था। हमारे देश की आर्थिक समृद्धि की प्रथम पच वर्षीय योजना सन् १९५० मे बनाई गई और दूसरी सन् १९५६ म। ये दोनो ही योजनाए काफी सफल हुई है और इनकी सफलता का विस्तृत विवरण तृतीय पुस्तिका म दिया गया है। आजकल तृतीय पच वर्षीय योजना चल रही है। तृतीय योजना काल का आलोचनात्मक परिचय भी तृतीय पुस्तिका के १२वें अध्याय मे दिया गया है।

(VII) औद्योगिक उत्पादकता आन्दोलन —

भारतीय उत्पादकता शिष्टमण्डल (Indian Productivity delegation), जोकि अक्टूबर-नवम्बर सन् १९५६ म जापान गया था की सिफारिशो के आधार पर फरवरी सन् १९५८ म भारत सरकार ने एक राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् (National Productivity Council) का स्थापना की है। इस परिषद् मे सरकार, सेवायोजक, श्रमिका तथा अन्य वर्गों के सदस्य हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य सारे देश मे उत्पादकता सम्बन्धी जागृत पैदा करना है। इसका ध्येय यह है कि राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि के लिए नवीनतम साधनो उत्पादन विधिया, आधुनिक यन्त्रा व नई टैकनीक का प्रयोग होना चाहिये। इसी हेतु प्राय औद्योगिक केन्द्रो म ४१ स्थानीय उत्पादकता परिषदा (Local Productivity Councils) की स्थापना की गई है तथा ५ क्षेत्रीय उत्पादकता डाइरक्टोरेट (बम्बई कलकत्ता, मद्रास, कानपुर तथा बगलौर) की स्थापना भी की गई है। आशा है कि इसके प्रयत्नो से औद्योगिक उत्पादन म काफी वृद्धि होगी।

(VIII) अन्य प्रयत्न —

इस प्रकार उक्त सभी राजकीय व गैर सरकारी प्रयत्नो के फल स्वरूप हमारा देश औद्योगीकरण के मार्ग पर प्रगति करता चला जा रहा है। यद्यपि अभी हमे मनोवाछित सफलता नही मिली है फिर भी आज हमारा देश विश्व की आठवी औद्योगिक शक्ति माना जाने लगा है। भारत सरकार ने केवल विभिन्न वस्तुओ के उत्पादन पर ही जोर नही दिया, वरन् निर्यात को प्रोत्साहित करने का भी प्रयत्न किया। जब कभी विदेशी प्रतिस्पर्धा के कारण निर्यात मे बाधा पडती है, तभी निर्यात कर म या तो भारी कमी कर दी जाती है अथवा उसे बिल्कुल हटा दिया जाता है। निर्यात किए जाने वाले माल मे प्रयोग की जाने वाली कच्ची वस्तुओ के आयात शुल्क मे भी कमी करके उद्योगो को बढावा दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त सरकार ने स्वय अनेक आधारभूत उद्योगो की स्थापना की है जैसे रासायनिक खादो के निर्माण के के लिए सिन्दरी का कारखाना जलयान बनाने के लिए हिन्दुस्तान शिपयार्ड, दी मशीन टूल फैक्ट्री नेशनल इन्स्ट्रूमैन्ट्स फैक्ट्री इत्यादि। बिहार मे ४ करोड रु० की अधिकृत पूँजी से इण्डियन एक्सप्लोजिव के नाम म एक नई कम्पनी खोली गई है। भिलाई, रूरकेला और दुर्गापुर के लौह व स्पात के कारखाने हमारी औद्योगिक सफलता के जीते-जागते उदाहरण है। रूपनारायणपुर की टैलीफोन कैबिल फैक्टी मे भी उत्पादन बढ रहा है। चितरजन म रेल के इजिन व डिब्बो के उत्पादन मे आशा से अधिक उत्पादन हुआ है। इनके अतिरिक्त साईकिल की चैन, पम्प, थरमस की बोतल व नकली मोती बनाने के उद्योग भी प्रगति के पथ पर है।

(IX) औद्योगिक उत्पादन—

जैसा कि आगे दी हुई तालिका से प्रगट होता है हमारा औद्योगिक उत्पादन काफी बढ गया है—

औद्योगिक उत्पादन का सूचक अंक
(१६५१—१००)

वर्ष	सूचक-अंक	पहले वर्ष की तुलना में प्रतिशत परिवर्तन
१६५२	१०३·६	३·६
१६५३	१०५·६	१ ६
१६५४	११२·६	६ ६
१६५५	१२२·४	८ ४
१६५६	१३२·६	८ ३
१६५७	१३७ ३	३·५
१६५८	१३६·७	१·७
१६५६	१५१ ६	८ ७
१६६०	१६७ ५	११·७

इस समय औद्योगिक उत्पादन सन् १६५१ की अपेक्षा लगभग ⅔ अधिक हो रहा है। सन् १६५५ से इसमें ३७% से भी अधिक वृद्धि हुई है। सन् १६५१ से नौ वर्षो की अवधि में उपभोक्ता वस्तु उद्योग-समूह के अन्तर्गत उत्पादन में लगभग ४५% की वृद्धि हुई, जबकि मध्यवर्ती वस्तुओं और पूँजीगत सामान का उत्पादन लगभग ८५% बढा है। यद्यपि औद्योगिक उत्पादन के सूचक अक में इन उद्योगो के दोनो समूहो का लगभग बराबर ही महत्व है, फिर भी सूचक अक में लगभग दो-तिहाई वृद्धि मध्यवर्ती वस्तुओं और पूँजीगत सामान के कारण हुई।

औद्योगिक उत्पादन के वास्तविक आँकड़े

	इकाई	वास्तविक उत्पादन	
		१६५८	१६५६
कोयला	लाख टन	४,५३	४,७०
कच्चा लोहा	लाख टन	५७,१२	७७,५२
चीनी	हजार टन	२०,०४	१६,२०
चाय	लाख पौंड	७१,४०	७०,५६
नमक	लाख मन	११,२५	८,५२
वनस्पति तेल प्रोडक्टस्	हजार टन	२,६५	३,१७
सिगरेट	करोड़	२६,८४	३२,१४

सूती वस्त्र—			
सूत	लाख पौंड	१,६८,४८	१,७२,३२
कपड़ा	लाख गज	४,६२,७२	४,६२,६०
जूट टैक्सटाइल्स—			
हैसियन	हजार टन	४ ०८	४,५६
सैकिंग	हजार टन	५,८८	५,०४
फुटवीयर (चमड़ा)	लाख जोड़े	७६	८२
कागज एव पेपर बोड	हजार टन	२,५३	२,६४
फुटवीयर (रबड)	लाख जोड़े	३,७२	३,६६
टायर	हजार	१०,०८	११,४०
सल्फ्यूरिक एसिड	हजार टन	२,२७	२,८१
कास्टिक सोडा	हजार टन	५७	७०
ब्लीचिंग पाउडर	टन	६५ ०४	५१,८४
एमोनियम सल्फेट	हजार टन	३,८४	३,७६
पेन्ट एव वार्निश	हजार टन	४८	५५
दियासलाई	हजार बाक्स	६,२४	६,४८
साबुन	हजार टन	१,२३	१,२५
रेयन	हजार टन	२,८८	३,७०
ग्लास एव ग्लास का सामान	लाख वर्ग गज	७,३६	८,०६
सीमेन्ट	लाख टन	६१	६८
सीरेमिक्स	हजार टन	४,३२	४,६२
लोहा व स्पात—			
पिग आयरन	हजार टन	२१,००	३०,६०
तैयार स्पात	हजार टन	१२,६६	१७,४०
नान फैरस मैटल—			
अल्यूमीनियम	हजार टन	१,३३ ४४	१,५६,७२
कॉपर	टन	३१,५६	२६ ७६
ब्रास	हजार टन	२ ०४	२,१५
सोना	हजार औंस	१,७०	१,६५
हरीकेन लालटेन	हजार	३३,८४	३६,१२
इनेमिल वेयर	लाख टुकडे	१,६२	१,४६
डीजल इजन	सख्या	३०	३६
सीने की मशीन	हजार	२,०५	२,५२
शुष्क सैल	लाख	१६,८०	१८,७२
स्टोर बैट्रियाँ	हजार	३,६०	४,४४
इलेक्ट्रिक लैम्प	लाख	३,०५	३,४८
इलेक्ट्रिक पखे	हजार	६,३६	७,३२
घरेलू रैफ्रीजेरेटर	सख्या	२६,१६	३६,६०
ऑटोमोबाइल	सख्या	२,६७,६६	३,६३,२४
बाइसकिल	हजार	६,१२	६,६६

STANDARD QUESTIONS

1. Briefly trace the development of industries in India since independence
2. Mention the special features of progress made in the field of Industrial Progress since independence with special reference to prospects under the Third Five Year Plan.
3. Write a brief note on—
   (a) Indian Standards Institute.
   (b) Special features of progress in the field of Industrial Finance since independence

---

अध्याय १०

प्रथम पंच-वर्षीय योजना काल में औद्योगिक प्रगति

(Industrial Progress under the First Five Year Plan)

प्रारम्भिक—

स्वाधीनता प्राप्त होने से पहले हमारे देश के औद्योगिक विकास की गति मन्द थी। औद्योगिक दृष्टि से देश का विकास करने के लिए जम कर कोई प्रयास नही किया गया। जनता के प्रति उत्तरदायी सरकार को सन् १९४७ मे सत्ता हस्तातरण होने के बाद से भारत के औद्योगिक विकास की आवश्यकता नए सिरे से प्रकाश मे आई। नई सरकार ने आर्थिक क्षेत्र मे अपनी नीति मे सबसे पहले जो परिवर्तन किए वे औद्योगिक विकास सम्बन्धी थे। सन् १९४८ के औद्योगिक नीति सकल्प मे इस बात

के महत्व पर जोर दिया गया कि अर्थ-व्यवस्था उत्पादन मे सतत वृद्धि कर सकने योग्य हो जाय। उसमे यह बात भी कही गई कि उद्योगो के विकास मे सरकार को धीरे-धीरे सक्रिय भाग लेना चाहिये। औद्योगिक विकास म विदेशी पूँजी का महत्व स्वीकार करते हुए, एक वर्ष बाद प्रधान मन्त्री नेहरू ने विदेशी पूँजी के प्रति सरकार की नई नीति घोषित की। अनेक अवसरो पर विदेशी पूँजी को देशी पूँजी के समान ही समझे जाने का आश्वासन भी दिया गया। मूल पूँजी तथा उससे अर्जित मुनाफ स्वदेश ले जाने की छूट देने का भी आश्वासन दिया गया।

प्रथम पच-वर्षीय योजना

प्रथम पच-वर्षीय योजना की विशेषताएँ—

देश के सुनियोजित आर्थिक विकास के लिए सन् १९५० म भारत सरकार द्वारा प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता म एक योजना आयोग की नियुक्ति की गई। इस आयोग ने देश के आर्थिक पुनरुत्थान के लिए एक पच-वर्षीय योजना तैयार की जा अप्रेल सन् १९५१ से माच सन् १९५६ तक के लिए थी।

प्रथम पच-वर्षीय योजना मे कृषि के उत्पादन बढाने के लिए मुख्य रूप से जोर दिया गया था क्योकि इसी पर काफी सीमा तक राष्ट्रीय आय का स्तर, भारत के सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्योगो—सूती वस्त्र तथा जूट उद्योगो—के कच्चे मालो की उपलब्धि तथा भारत के व्यापारिक सतुलन को पक्ष मे रखने का भार था। प्रथम योजना मे उद्योग धन्धो के विकास पर विशेष जोर नही दिया गया। योजना मे इस बात पर जार दिया गया था कि निजी तथा सार्वजनिक क्षत्र दोना एक दूसरे के पूरक है—वास्तव मे इनक बीच किसी प्रकार की प्रतियोगिता नही है। अत सावजनिक क्षत्र के अन्तगत केवल उन्ही उद्योगा का विकास किया जाय जो निजी क्षत्र की सामर्थ्य के बाहर हो। योजना मे सावजनिक तथा निजी दोना ही क्षत्रा के औद्योगिक विकास तथा उत्पादन के सम्बन्ध मे पृथक पृथक लक्ष्य निर्धारित किए गए थे।

प्रथम पच वर्षीय योजना म सावजनिक क्षत्र के उद्योगो म ९४ करोड रु० के नवीन विनियोग की व्यवस्था थी किन्तु कवल ६० करोड रु० हा वस्तुत विनियोग किया गया। प्राइवट क्षत्र के नवीन प्रोजेक्टा व विस्तार कायक्रमो पर २३३ करोड रु० के विनियोग का अनुमान था और इस लक्ष्य की पूर्ति हो गई। प्राइवेट क्षत्र मे

प्लान्ट व मशीनरी के प्रतिस्थापन एव आधुनिकीकरण पर व्यय अनुमान (२३० करोड रु०) से कम (अर्थात् केवल १०५ करोड रु०) हुआ। कुल मिला कर, आधुनिकीकरण व प्रतिस्थापन के अलावा, नवीन विनियोग ३२७ करोड रु० के लक्ष्य की तुलना मे २९३ करोड रु० के लगभग हुआ। इसका विवरण निम्न तालिका मे दिखाया गया है :—

प्रथम योजना मे उद्योगो पर व्यय

(करोड रु० मे)

	आयोजित	वास्तविक
मेटलर्जीकल उद्योग (लौह व स्पात, अल्यूमीनियम, आदि)	८५'०	६१'०
पेट्रोल साफ करने के उद्योग	६४'०	४५'०
रासायनिक उद्योग (हैवी केमीकल्स एव उर्वरक, ड्रग आदि)	२६'०	२७ ०
इजीनियरिंग उद्योग (स्थूल एव हल्का)	५३ ०	४६'०
सूती वस्त्र	९ ०	२० ०
चीनी	०'१	५'०
रेयन वस्त्र	१६ ५	८'०
सीमेन्ट	१७'७	१७'५
कागज (न्यूज प्रिन्ट आदि)	७ ४	१२'०
इलेक्ट्रिक पावर जेनेरेशन एव वितरण (प्राइवेट क्षेत्र)	१६ ०	३२ ६
अन्य	३२ ३	१८ ९
कुल	३२७'०	२९३'०

प्रथम योजना की औद्योगिक सफलतायें—

प्रथम पच-वर्षीय योजना अवधि मे व निजी क्षेत्रो मे कुल २९३ करोड रु० विनियोग किया गया। इस राशि मे से निजी क्षेत्र का विनियोग २३३ करोड रु० था। अतः स्पष्ट है कि निजी क्षेत्र का विनियोग निर्धारित लक्ष्य के अनुसार ही हुआ, किन्तु सार्वजनिक क्षेत्र मे लक्ष्य से कम विनियोग हो सका।

प्रथम पच-वर्षीय योजना काल मे कुल औद्योगिक उत्पादन मे ३८% की वृद्धि हुई, जिसमे विभिन्न वर्ग के उद्योगो का भाग इस प्रकार था—

तालिका 1

विवरण	वृद्धि की प्रतिशत (१९५०-५१ से १९५५-५६ तक)	
(अ) पूंजीगत पदार्थ (Capital Goods)—		
डिजल इन्जन	८७	७०%
मशीनों के औजार	१३३	
वैगन	१००	
ऊन रिंग व स्पिनिंग फ्रेम	२३०	
ग्राइन्डिंग व्हील	१३४	
ओटोमोबाइल	५३	
रेलवे लोकोमोटिव	६६०	
(ब) मध्यवर्ती पदार्थ (Intermediate Goods)—		
सूत	३६	३४%
जूट का माल	२८	
प्लाइवुड	१०६	
गन्धक का तेजाब	६५	
कास्टिक सोडा	२११	
सोडा ऐस	८०	
रेयन फिलामेंट	१८७	
पिग आयरन	१४	
तैयार इस्पात	३०	
अल्युम्युनियम	९९	
सीमेंट	७१	
(स) उपभोक्ता पदार्थ (Consumers' Goods)—		
सूती कपड़ा	३७	३४%
रबर फुट वीयर	९५	
साबुन	३७	
वनस्पति	८०	
इनामल वेयर	१८५	
बाइसिकल	४०८	
कागज ...	६४	
चीनी	६०	
औद्योगिक उत्पादन में कुल वृद्धि		३८%

प्रथम योजना काल मे कुछ प्रमुख उद्योगो के उत्पादन मे वृद्धि का अनुमान नीचे दी हुई तालिका से लगाया जा सकता है:—

तालिका II

औद्योगिक उत्पादन	१९५०-५१	१९५५ ५६	प्रतिशत वृद्धि
१—कच्चा लोहा (हजार टन)	१५७२	१७८७	१३'७
२—तैयार इस्पात (,, ,)	९७६	१२७४	३०'५
३—सीमेंट (,, ,,)	२६८६	४५९२	७०'८
४—अमोनियम सल्फेट (,, ,,)	४६	३९४	७५६ ५
५—रेलवे इन्जन (Locomotives) की सख्या	३	१७९	
६—डिजल इन्जन की सख्या	५५३६	१०१९९	८७ ३
७—मैशिन टूल्स (मूल्य लाख रुपये मे)	३२'६४	७८'५४	१३३'५
८—अल्मुनियम (टन)	३६७७	७३३३	९९ ४
९—सूती-वस्त्र उद्योग			
(क) सूत (दस लाख पौड)	११७९	१६३३	३९'०
(ख) मिल का कपडा (दस लाख गज)	३७१८	५१०२	३७'२
(ग) हस्त वर्घा का कपडा (, ,,)	८१०	१४४९	७९'०
१०—जूट उद्योग (हजार टन)	८२४	१०५४	२८'०
११—चीनी (,, ,,)	१०६४	१७०१	५९'९
१२—कागज तथा पेपर बोर्ड (,, ,,)	११४	१८७	६४'०

उपर्युक्त तालिकाओ के विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्रथम योजना अवधि मे उद्योग-धन्धो की पर्याप्त वृद्धि हुई है। अनेक उद्योगो मे तो उत्पादन की वृद्धि लक्ष्य से भी कही अधिक हुई। इस अवधि मे अनेक नई-नई वस्तुओ का भी उत्पादन शुरू किया गया, जिनमे वायुयान, पैनिसिलीन, डी० डी० टी०, रेल के डिब्बे, अमोनियम क्लोराइड आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सार्वजनिक क्षेत्र मे चितरजन का कारखाना, सिन्द्री का रासायनिक खाद का कारखाना, इनटैग्रल कोच फैक्ट्री, इण्डियन कोच फैक्ट्री, इण्डियन टेलीफोन इन्डस्ट्रीज की प्रगति काफी सन्तोषजनक रही।

STANDARD QUESTION

(1) Briefly summarise the principal objectives and industrial achievements of the First Five Year Plan

अध्याय ११

द्वितीय पंच-वर्षीय योजना काल में औद्योगिक प्रगति

(*Industrial Progress Under the Second Plan*)

द्वितीय पञ्च-वर्षीय योजना में प्राथमिकता क्रम—

द्वितीय योजना मे पूँजी एवं उत्पादक वस्तु उद्योगो के विकास पर मुख्य बल दिया गया, जिससे कि औद्योगिक प्रगति की नीवें दृढता से पड जायें। प्राथमिकताओ का निम्न क्रम निर्धारित हुआ —

(i) लौह व स्पात तथा हैवी कैमीकल्स (नाइट्रोजन उर्वरक सम्मिलित करते हुये) का उत्पादन बढाना और हैवी इजीनियरिंग एव मशीन-निर्माण उद्योगो का विकास करना।

(ii) अन्य विकासात्मक वस्तुओ और उत्पादक-सामानो (जैसे अल्यूमीनियम, सीमेंट, कैमीकल पल्प, डाइस्टफ आदि) तथा आवश्यक दवाइयो के सम्बन्ध मे क्षमता का विस्तार करना।

(iii) राष्ट्रीय उद्योगो (जैसे जूट, सूती वस्त्र एव चीनी उद्योग) का आधुनिकीकरण एव नव सुसज्जन।

(iv) जिन उद्योगो मे क्षमता और उत्पादन के बीच भारी अन्तर है उनमे विद्यमान उत्पत्ति क्षमता का पूर्ण उपयोग करना।

(v) सम्मिलित उत्पादन कार्यक्रमो तथा उद्योग के विकेन्द्रित सेक्टर के उत्पादन लक्ष्यो का ध्यान रखते हुये उपभोग वस्तुओ की उत्पादन क्षमता बढाना।

द्वितीय योजना अवधि मे सगठित उद्योगो पर १,०९४ करोड रु० के नवीन विनियोग की आशा थी—५२४ करोड रु० सार्वजनिक क्षेत्र मे (राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम द्वारा विनियोजित ३५ करोड रु० इससे पृथक हैं) और ५३५ करोड रु० प्राइवेट क्षेत्र मे। सार्वजनिक क्षेत्र का यह व्यय मुख्यत निम्न उद्योगो के विकास पर होना था—लौह एव स्पात (३५० करोड), उर्वरक (३७ करोड), हैवी इलेक्ट्रीकल प्लान्ट (२०

करोड), लिगनाइट प्रोजेक्ट (५२ करोड) और हिन्दुस्तान शिपयार्ड (९'८ करोड)। राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम के कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्न पर व्यय किया जाना था—सूती एव जूट टैक्सटाइल उद्योगो को आधुनिकीकरण के लिये सहायता, हैवी फाउन्ड्रीज, रिफ्रैक्टरीज, न्यूजप्रिन्ट आदि के विकास कार्यक्रम। इसे अल्यूमीनियम के लिये एक नई इकाई की स्थापना तथा मिट्टी हटाने तथा खानो के लिये भारी मशीनें व साज सामान के निर्माण को भी प्रोत्साहन देना था।

कुल अनुमानित व्यय एव वास्तविक का सावजनिक एव प्राइवेट क्षेत्र के विभिन्न उद्योगो पर वितरण निम्न तालिका मे दिखाया गया है :—

द्वितीय योजना मे उद्योगो पर व्यय

	करोड रु० में व्यय का लक्ष्य	कुल विनियोग का प्रतिशत	वास्तविक व्यय
मेटेलर्जीकल उद्योग	५०२'५	४५ ६	७७०
इजीनियरिंग उद्योग	१५०'०	१३ ७	१७५
कैमीकल इन्डस्ट्रीज	१३२ ०	१२'०	१४०
सीमेन्ट, इलेक्ट्रिक पोरसीलेन एव रिफ्रेक्टर्स	९३ ०	८'५	६०
पैट्रोलियम सफाई	१०'०	०'९	३०
पेपर, न्यूज प्रिन्ट	५४ ०	५ ०	४०
चीनी	५१'०	४'७	५६
सूती, जूट, ऊनी, रेशमी सूत व कपडा	३६'३	३'३	५०
रेयन	२४'०	२ २	२४
अन्य	४१'५	३'८	११५

द्वितीय पंच वर्षीय योजना के लक्ष्य—

द्वितीय योजना काल मे विभिन्न उद्योगो के उत्पादन म निम्न वृद्धि की आशा की गई थी :—

	वृद्धि का प्रतिशत (१९५५-५६ से १९६०-६१ तक)
(अ) पूँजी एव उत्पादक पदार्थों के उद्योग—	
तैयार स्पात	२३१
अल्यूमीनियम	२३३
फैरो मैंगनीज	—
नाइट्रोजन उर्वरक	२७७
फासफेटिक उर्वरक	५००
सोडा एश	१८८
कास्टिक सोडा	२७५
प्लास्टिक वनाने का पाउडर	१,३९२
डाईस्टफ	४५०
पावर अलकोहल	१००
सीमेन्ट	१८३
रिफ्रैक्टरीज	१८६
लोकोमोटिव	१२५
इलेक्ट्रिक ट्रान्सफारमर्स	११६
औद्योगिक मशीनरी	४७१
(ब) उपभोक्ता माल उद्योग—	
चीनी	२४
रेयन	२४६
सूती वस्त्र :—	
सूत	१९ ६
कपडा	२९ २
ऊनी वस्त्र —	
सूत	२५.०
कपडा	३४.२
ग्लास एव ग्लास का सामान	६० ०
बाइसकिल	८१ ८
साबुन	५०.०
वनस्पति	४८.१
पेपर एव पेपर बोर्ड	७५ ०

दोनो योजनाओ के अन्तर्गत हुई औद्योगिक प्रगति का विवरण —

पिछले दशाब्द मे भ रत मे एक औद्योगिक क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ। इस अवधि के भीतर उद्योगो का विकास एव विविधीकरण बहुत आश्चर्यजनक गति से हुआ है। इस अल्प अवधि मे ही १-१ मि० टन की क्षमता वाले तीन नय स्पात-कारखाने सार्वजनिक क्षत्र मे पूरे किये गये है और प्राइवेट क्षेत्र के दो विद्यमान स्पात कारखानो ने दूना विस्तार कर लिया है ताकि उनकी क्षमता भी क्रमशः २ और १ मि० टन हो जाय। हैवी इलेक्ट्रिकल और हैवी मशीन टूल इन्डस्ट्रीज, हैवी मशीन बिल्डिङ्ग एव हैवी इजीनियरिग की अन्य शाखाओ क विकास की बुनियादे रख दी गई हैं। सीमेन्ट एव कागज के उद्योगो के लिये मशीनो के उत्पादन का कार्य प्रथम बार आरम्भ हुआ। कैमीकल उद्योगो के क्षेत्र मे नो काफी प्रगति हुई ह जिससे आधारभूत कैमीकल्स (जैसे नाइट्रोजन उर्वरक, कास्टिक सोडा, सोडा एश एव सल्फ्यूरिक एसिड) की उत्पत्ति मे बहुत वृद्धि हो गई है। कई नये पदार्थ (जैसे अमोनियम फास्फेट, पेनिसिलीन, औद्योगिक विस्फोटक, न्यूजप्रिन्ट आ द) भी बनने लगे है। अन्य अनेक उद्योगो की उत्पत्ति भी काफी बढ गई है, जैसे बाइसकिल, सीने की मशीने, टेलीफोन, बिजली का सामान, वस्त्र एव चीनी मशीनरी। कर्मचारियो ने नये कार्य सीख लिये है, उनकी कुशलता मे काफी वृद्धि हो गई है तथा औद्योगिक मैनेजरो का एक नया वर्ग विकसित हो रहा है। सब कुल मिलाकर पिछले १० वर्षो म औद्योगिक उत्पादन लगभग दूना हो गया है। औद्योगिक उत्पादन का सूचनाक, जो सन् १९५०-५१ मे १०० माना गया था, सन् १९६०-६१ मे १९४ तक बढ गया।

किन्तु यह स्वीकार करना पडेगा कि हमारी सफलतायें अधिक होते हुये भी जनता की सामान्य द ा पर कोई विशेष प्रभाव डालन मे या अर्थ व्यवस्था के स्वरूप मे कोई भारी परिवर्तन करने मे पर्याप्त प्रमाणित नही हुई है। यही नही, देश ने अपने सन्मुख जो औद्योगिक लक्ष्य रखे थे उनमे कही-कही भारी कमियाँ रह गई है। उदाहरण के लिये, तीन नये स्पात कारखानो का उत्पादन लक्ष्य २ मि० टन था, जबकि वास्तविक उत्पादन केवल ० ६ मि० टन ही रहा। इसी प्रकार, टाटा आयरन एन्ड स्टील वर्क्स का उत्पादन भी लक्ष्य (१ २ मि० टन) की तुलना मे कम (अर्थात् ४ ५ मि० टन) रहा। उर्वरको के क्षेत्र मे, सिन्दरी के सरकारी खाद कारखाने का विस्तार तथा अमोनियम क्लोराइड के प्राइवेट प्रोजेक्ट (वाराणसी) का विकास निश्चित तिथि के १२ मे १८ महीने बाद पूर्ण हो पाया। नागल, नैवेली एव रूरकेला के तीन नये सरकारी उर्वरक कारखाने भी एक-दो वर्ष देर से पूरे हो पायेगे। इन कामो मे देरी लगने का मुख्य कारण विदेशी विनिमय सम्बन्धी कठिनाइयाँ है। यही बात भूपाल के हैवी इलेक्ट्रिकल प्रोजेक्ट को लागू होती है। किन्तु हैवी मशीनरी, माइनिंग मशीनरी तथा फाउन्ड्री प्रोजेक्टो के बारे मे यह बात नही कही जा सकती। उत्पादन के प्रारम्भ करने की बात तो दूर उनकी स्थापना का कार्य भी अभी असम्पूर्ण है।

कुछ दशाओं म देर होने का कारण वर्नेनी महयोगरत्ताओं स वार्ता लम्वी खिचना है। इन त्रुटियो स यह स्पष्ट हो जाता है कि पहल म नियोजन कर लना कितना लाभदायक है।

जिन मुख्य औद्योगिक लक्ष्यो का पूर्ति नही हुई है वे निम्न म सम्बध रखते हैं—लौह एव स्पात उवरक कुछ विशेष प्रकार की औद्योगिक मशीनरी (जैसे कागज सीमेन्ट) अल्युमीनियम न्यूजप्रिन्ट वची फिल्म सोडा एश कास्टिक सोडा सीमेन्ट आदि। दुर्भाग्य से कुछ एसे उद्योगो मे लक्ष्य अपूर्ण रह गये हैं जो कि अत्यन्त महत्त्व के थे तथा तृताय पच वर्षीय योजना के आरम्भ के समय निभर रहे जा सकते थे। न्यून रह जाने वाल उक्त लक्ष्य निम्न है —

	इकाई	उत्पादन लक्ष्य	वास्तविक उत्पादन
तैयार स्पात	मि० टन	४ ३	२ २
नाइट्रोजन उवरक	००० टन	२९० ०	११० ०
फास्फटिक उवरक	००० टन	१२० ०	५५ ०
टैक्सटाइल मशीनरी	कर ड रु०	१७ ०	६ ०
सामे ट मशीनरी	करोड रु०	२ ०	० ६
पेपर मशीनरी	करोड रु०	४ ०	—
अल्युमीनियम	००० टन	२५ ०	१८ ५
न्यूज प्रि ट	००० टन	६० ०	२५ ०
कैमीकल्स	टन	३० ००० ०	—
सोडा एश	००० टन	२३० ०	१४५ ०
कास्टिक सोडा	००० टन	१३५ ०	१०० ०
डाईस्टफ	मि० पौन्ड	२२ ०	११ ५
सीमेन्ट	मि० टन	१३ ०	८ ५

अन्य उद्योगो के लक्ष्य लगभग पूण हो गये एव कुछ मे तो लक्ष्य से भी अधिक उत्पादन हुआ है जैसे—पावर डविन पम्प डीजल इजन इलक्ट्रिक मोटस केबिल इलक्ट्रिक फैन रेडियो रिसीवर व चीनी। मोट तौर पर यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक प्रगति इतनी काफी हुई है कि अथ व्यवस्था विकास की दिशा मे आत्म निर्भर हो जाय।

गत दस वर्षो मे उद्योगो के विकेन्द्रीयकरण मे काफी सफलता मिली है। तीन नये स्पात कारखानो हैवी मशीनरी प्लान्ट (राची) और हैवी इलक्ट्रिकल प्रोजेक्ट (भूपाल) के लिये स्थान का चुनाव इस बात का प्रमाण है। पिछड हुये क्षेत्रो को सावजनिक क्षत्र के उद्योगो की स्थापना के सम्बध मे प्राथमिकता दी गई है। प्राइवेट उद्योगो के विकास के लिये लाइसेन्स देने मे भी इस बात का ध्यान रखा गया है।

STANDARD QUESTIONS

1 Briefly summarize the principal achievements in the field of Industry during the Second Five Year Plan
2 Write an essay on Industrial Progress under the two Plans

अध्याय १२

तृतीय पंच-वर्षीय योजना में उद्योग

(Industries Under the Third Plan)

उद्देश्य—

सन् १९६१-६६ की अवधि के लिए, जो औद्योगिक कार्यक्रम बनाया गया है उसका उद्देश्य अगले १५ साल म तेजी से औद्योगीकरण की नीव डालना है ।

औद्योगिक नीति—

उद्योगो का विस्तार अप्रैल सन् १९५६ की उद्योग नीति के सकल्प के अनुसार होगा । दूसरी योजना की तरह इस योजना मे भी सरकारी एव निजी क्षेत्रो को एक दूसरे के सहायक और पूरक की तरह काम करना होगा ।

औद्योगिक प्राथमिकता—

(१) ऐसे उद्योगो को पूरा करना जो दूसरी योजना मे शुरू किये गये थे या जिन्हे विदेशी मुद्रा की कठिनाइयो के कारण सन् १९५७-५८ मे रोक देना पडा था ।

(२) भारी इन्जीनियरी और मशीन बनाने के कारखानो का विस्तार, जैसे गढाई और ढलाई मिश्रित धातु और विशेष किस्म के स्पात, लोहा और स्पात और लौह-मिश्रित धातु उत्पादन कारखाने । उवरक और पेट्रोल के कारखानो का उत्पादन भी बढाना होगा और इनसे नई नई चीजें बनाने का उद्याग शुरु करना होगा ।

(३) अलमूनियम, खनिज तेल, घुलने वाली लुगदी, मूल कार्बनिक और अकार्बनिक रसायन और पेट्रोल के रसायन तथा नय उद्योगो म काम आने वाले रसायन आदि के कारखानो का उत्पादन बढाना होगा ।

(४) दवा, कागज कपडा, चीनी, तेल और इमारती सामग्री आदि के उद्योगो का उत्पादन बढ़ाना होगा ।

औद्योगिक विकास के व्यय का अनुमान—

तीसरी पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत उद्योगो एव खनिजो के लिये जो विकास कार्यक्रम बनाया गया है उस पर २९९६ करोड रु० व्यय होने का अनुमान है। विदेशी मुद्रा की आवश्यकता १३३८ करोड रु० कूता गई है। व्यय का ब्यौरा इस प्रकार है।—

(करोड रु० में)

	सार्वजनिक क्षेत्र		निजी क्षेत्र		सार्वजनिक एव प्राइवेट क्षेत्र	
	कुल	विदेशी विनिमय	कुल	विदेशी विनिमय	कुल	विदेशी विनिमय
(अ) नवीन विनियोग						
(i) खनिज विकास	४७८	२००	६०	२८	५३०	२२८
(ii) औद्योगिक विकास	१,३३०	६६०	१,१२५	४५०	२४५५	१,११०
कुल	१८०८	८६०	१,१८५	४७८	२९९३	१,३३८
(ब) प्रतिस्थापन			१५०	५०	१५०	५०

उक्त व्यय की तुलना मे उपलब्ध साधनो के कम पडने की सम्भावना है। सरकारी क्षेत्र के उद्योगो और खानो के लिये जो रुपया रखा गया है और निजी क्षेत्र के लिये जितने रुपये उपलब्ध होने का अनुमान है उनकी राशि २,५७० करोड रु० होती है। १,४७० करोड रु० सरकारी क्षेत्र के लिए और १,१०० करोड रु० निजी क्षेत्र के लिए। इसके अतिरिक्त यह आशा की जाती है कि उन कारखानो की मशीनें बदलने और उनमे आधुनिक मशीन लगाने के लिये १५० करोड रु० उपलब्ध हो सकेंगे जो कि द्वितीय महायुद्ध के पहले के है।

इन अनुमानो से यह संकेत मिलता है कि दोनो ही क्षेत्रो मे कई कार्यक्रम चौथी योजनावधि पर फैलाने पड़ेंगे क्योकि अभी तक कुछ प्रोजेक्ट प्रगति की अत्यन्त प्रारम्भिक अवस्था मे पहुँचे है विदेशी मुद्रा मिलना अनिश्चित है तथा हैवी इन्डस्ट्रीज की दशा मे विकास की अवस्था काफी लम्बी है। कौन से प्रोजेक्ट पूरे हो सकेंगे और कौन से पूरे नही हो सकेंगे इस बारे मे अभी निश्चितता से कुछ नही कहा जा सकता।

सरकारी क्षेत्र के कार्यक्रम—

सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक एव खनिज कार्यक्रमो (डिफेन्स उद्योगो एव रेलवे तथा यातायात व संचार मन्त्रालयो के निजी आवश्यकता पूर्ति के कार्यक्रमो को छोडकर) की लागत १,८८२ करोड रु० कूती गई है, जबकि उनके लिये कुल १,५२० करोड रु० का आयोजन किया जा सका है—१,४५० करोड केन्द्र मे तथा ७० करोड रु० राज्यो मे। अतः यह सम्भव है कि इन कार्यक्रमो के पूरा होने मे ५ वर्ष से भी अधिक समय लग जाय। केन्द्रीय सरकार के प्रोजेक्टो को तीन श्रेणियो मे बाँटा जा सकता है: -(१) द्वितीय योजना के अधूरे प्रोजेक्ट (२) नये प्रोजेक्ट, जिनके लिए विदेशी ऋणो का आश्वासन मिल चुका है तथा (३) नये प्रोजेक्ट, जिनके लिए अभी विदेशी ऋणो का प्रबन्ध नही हो पाया है। प्रथम श्रेणी के सभी प्रोजेक्ट तो पूरे ही हो जायेंगे, द्वितीय श्रेणी के अनेक प्रोजेक्ट भी पूरे हो सकेंगे किन्तु तीसरी श्रेणी के प्रोजेक्टो की पूर्ति मे सबसे अधिक अनिश्चितता है। सार्वजनिक क्षेत्र के प्रमुख औद्योगिक कार्यक्रम लौह एव स्पात, औद्योगिक मशीनरी, हैवी इलैक्ट्रिक इक्विपमेंट, मशीन टूल्स, उर्वरक, बेसिक कैमीकल्स, आवश्यक दवाइयो व पेट्रोलियम शोधन से सम्बन्धित है।

प्राइवेट क्षेत्र के कार्यक्रम—

सन् १९५६ के औद्योगिक नीति के प्रस्ताव के अन्तर्गत, अ अनुसूची के उद्योगो को छोड कर जो कि राज्य के लिये सुरक्षित हैं, शेष उद्योगो के सम्बन्ध मे प्राइवेट उपक्रम के लिये बहुत ही विस्तृत कार्य क्षेत्र उपलब्ध है। यह उल्लेखनीय है कि गत ५ वर्षो मे सरकारी क्षेत्रो मे जो उन्नति हुई है उससे प्राइवेट उपक्रमो को अपने तृतीय योजनावधि के विकास मे बडी सुविधा हो गई है तथा तृतीय योजनावधि मे सार्वजनिक क्षेत्रो मे जो विकास होगा वह भी इसी प्रकार प्राइवेट उपक्रमो के लिये चौथी योजनावधि के विकास के लिये अनुकूल वातावरण बनायेगा। किन्तु यह आवश्यक है कि प्राइवेट उपक्रम अपने विकास-कार्यक्रम को औद्योगिक विकास के व्यापक लक्ष्यो के अनुसार समायोजित कर लें। विदेशी विनिमय सम्बन्धी प्रभाव के कारण प्राइवेट क्षेत्र के स्वतन्त्र विकास पर कुछ प्रतिबन्ध लगने की सम्भावना है। घरेलू साधनो, यातायान, शान्ति पूर्ति, कुशल कर्मचारियो, प्राथमिकता-क्रम आदि परिस्थितियो को ध्यान मे रख कर औद्योगिक लक्ष्यो मे कुछ परिवर्तन भी करने पड सकते है। उत्पादन-लक्ष्य निश्चित करने मे योजना आयोगो ने सम्बन्धित उद्योगो, विकास परिषदो तथा प्रमुख औद्योगिक एव व्यापारिक सङ्गठनो से विचार विमर्श कर लिया था।

सार्वजनिक एवं प्राइवेट क्षेत्र के उपक्रमो का अर्थ-प्रबन्धन—

सार्वजनिक क्षेत्रो मे औद्योगिक प्रोजेक्टो के लिये अधिकाश कोष सरकार को ही जुटाना होगा। हाँ, कुछ सस्थायें अपने आन्तरिक साधनो से भी वित्त व्यवस्था कर लेगी। अनुमान लगाया गया है कि आन्तरिक साधनो से ३०० करोड रु० का प्रबन्ध हो

जायेगा । राज्य-सरकारो को व केन्द्रीय सरकार को औद्योगिक प्रोजेक्टो के लिये धन की व्यवस्था करते समय अन्य कार्यों के लिये धन जुटाने के अपने दायित्वो को भी ध्यान मे रखना पडा है ।

प्राइवेट क्षेत्र में निम्न साधनो से कुल १,२५० करोड रु० के अर्थ प्रबन्धन का अनुमान है —संस्थागत एजेन्सियाँ १३० करोड केन्द्रीय एव राज्य सरकारो की प्रत्यक्ष सहायता २० करोड नवीन अंश निगमन २०० करोड आन्तरिक साधन ६०० करोड, विदेशी सहयोग पूँजी मे ३०० करोड रु० । कुल व्यय १,३५० करोड रु० प्रस्तावित है । इस प्रकार १०० करोड रु० की कमी पडती है । इसके अतिरिक्त विदेशी मुद्रा प्राप्त करने की समस्या भी जटिल है ।

औद्योगिक कार्यक्रम की मुख्य विशेषतायें—

प्राथमिकताओ का निर्धारण करने म यह ध्यान रखा गया है कि जो उद्योग विदेशी विनिमय का अर्जन करने मे या विदेशी विनिमय का खर्च बचाने म (आयात कम करके) सहायक हो उन्हे अन्य उद्योगो की अपेक्षा विकास का प्रथम अवसर दिया जाय । तीसरी योजना मे प्रमुख उद्योगो के विकास कार्यक्रमो की प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित है —

(I) मेटेलर्जीकल उद्योग—

(१) **लौह एव स्पात—**इस उद्योग के लिये स्पात पिडो (Steel ingots) की उत्पादन-क्षमता का लक्ष्य १० २ मि० टन तथा पिग आयरन की उत्पादन क्षमता का लक्ष्य १ ५ मि० टन रखा गया है । ये लक्ष्य विभिन्न वस्तुओ के उत्पादन के लिये लोहे एव स्पात की भावी माग के आधार पर निर्धारित किये गये है । स्पात सम्बन्धी लक्ष्य मे प्राइवट क्षेत्र का भाग ३ २ मि० टन है । क्षमता की वृद्धि के लिये स्क्रेप बेस की इलेक्ट्रिक फर्नेसेज लगाई जावेगी । पिग आयरन के लक्ष्य में प्राइवट क्षेत्र का भाग ० ३ मि० टन है । सावजनिक क्षेत्र में लक्ष्य की प्राप्ति के लिये नवीन स्पात कारखानो पर भरोसा किया गया है । लौह एव स्पात की योजना मे नये विकास भिलाई, दुर्गापुर एव रूरकेला के स्पात कारखानो के तथा मैसूर आयरन एव स्टील कारखानो के विस्तार से और बोकारो मे नये स्टील प्लाट की स्थापना से सम्बन्धित है । नैवेली मे एक पिग आयरन प्रोजेक्ट स्थापित करने का प्रस्ताव भी है । तीसरी योजना अवधि की समाप्ति पर कुल स्टील उत्पादन २४ १ मि० टन के लगभग हो जायेगा । योजना के प्रारम्भिक वर्षो म उत्पादन कम होने से माग की पूर्ति म कुछ कठिनाई होना स्वाभाविक है, किन्तु योजना की प्रगति के साथ साथ यह कठिनाई कम होती जायेगी ।

(२) **टूल, अलाय एव स्टेनलस स्टील—**दुर्गापुर मे एक अलाय एव टूल स्टील प्लान्ट खोलने का निश्चय किया गया है जिसका वार्षिक उत्पादन ४८,००० टन होगा । इजीनियरिंग उद्योगो के लिए इन कच्चे मालो का बडा महत्व है । अभी तक इनका

आयात किया जाता रहा है, जिसमे बडी कठिनाई अनुभव की गई थी। उक्त प्रोजेक्ट मे आधुनिकतम साज सामान व विधियो का प्रयोग होगा।

(३) **अल्यूमीनियम**—नॉन फैरस धातुओ के क्षेत्र मे अल्यूमीनियम का महत्व सर्वोपरि है। सन् १९६५-६६ के लिये इसके उत्पादन का लक्ष्य ८७,५०० टन रखा गया है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये निम्न योजना बनाई गई है—हीराकुण्ड की इडियन अल्यूमिनियम कम्पनी के प्लान्ट का १०,००० टन से तथा अल्वेई प्लान्ट का ५,००० टन मे विस्तार, रिहान्ड व कोयना पर २०-२० हजार टन के स्मेलटरो की स्थापना तथा अल्यूमिनियम कॉरपोरेशन आफ इन्डिया के प्लान्ट का ५,००० टन वार्षिक विस्तार।

(४) **तांबा**—इन्डियन कॉपर कारपोरेशन द्वारा घाटशिला मे एक इकाई स्थापित करने पर तृतीय योजना के प्रारम्भिक वर्षों मे ही इलेक्ट्रोलिटिक कॉपर का उत्पादन होने लगेगा।

(५) **जस्ता**—राजस्थान की जवार खानो मे पाये जाने वाले जस्ते के आधार पर जिन्क स्मेलटर स्थापित होने पर भारत मे पहली बार जस्ते का उत्पादन होने लगेगा। इस प्लान्ट की क्षमता १५,००० टन प्रति वर्ष होगी।

(II) इन्जीनियरिंग उद्योग—भारी एव हल्के—

पिग आयरन एव स्टील की पूर्ति बढने, मशीन-निर्माण पर बल देने तथा विनियोग की अपेक्षा अधिक रोजगार मिलने की सम्भावनाओ के कारण इस क्षेत्र मे बडे पैमाने के निकासो का प्रस्ताव है। सार्वजनिक क्षेत्र हैवी मशीनरी और हैवी मशीन बिल्डिंग का उत्पादन करने वाले प्रोजेक्टो पर मुख्य ध्यान देगा। शेष कार्य प्राइवेट उपक्रम के सुपुर्द किया गया है, जो कृषि मशीनरी, ट्रक्टर्स, डीजल इन्जन, रोड रॉयल, डम्पर, ट्रान्सफार्मर, इलेक्ट्रिक केबिल एव तार घरो मे लगने वाले मीटर, लोकोमोटिव्ज वैगन, पैसेन्जर कोचेज, बसें एव ट्रक, चीनी, कागज, सीमेंट और वस्त्र उद्योग तथा कैमीकल उद्योगों के लिए पूर्ण प्लान्ट, पैसिन्जर कारे, सीने की मशीनें, साइकिलें, बिजली के पखे आदि बनावेगा। नीचे इन्जीनीयरिंग उद्योगो के प्रमुख क्षेत्रो मे विकास कार्यक्रमो पर सक्षिप्त प्रकाश डाला गया है:—

(१) **फाउन्ड्री एवं फोर्ज शाप**—मशीनरी-निर्माण कार्यक्रमो के लिए फाउन्ड्री एव फोर्ज शापो (Foundry and forge shops) का बडा महत्व है। इस क्षेत्र मे तृतीय योजना के लक्ष्य निम्न है—ग्रे आयरन कास्टिंग १·२ मि० टन, स्टील कास्टिंग एव फोजिंग प्रत्येक के लिए २,००,००० टन। कास्टिंग एव फोजिंग की आवश्यकतायें ओटोमोबाइल उद्योग के विकास तथा वस्त्र, सीमेंट, चीनी, कागज एव अन्य पूंजी माल बनाने वाले उद्योगो के लिए मशीनरी बनाने के विकास के साथ-साथ बढती जायेगी।

(२) **औद्योगिक मशीनरी**—इस क्षेत्र मे सार्वजनिक क्षेत्र के प्रमुख प्रोजेक्ट निम्न हैं—हैवी मशीनरी प्लान्ट (रांची), खान सम्बन्धी मशीनरी प्रोजेक्ट (दुर्गापुर), हैवी इलेक्ट्रिकल इक्विपमेंट प्लान्ट (भोपाल) पर दो अन्य हैवी इलैक्ट्रिकल प्रोजेक्ट, जिनका स्थान अभी विशेषज्ञ समिति के विचाराधीन है। रांची का हैवी मशीनरी प्लान्ट प्रति वर्ष ८०,००० टन की उत्पादन-क्षमता रखेगा तथा स्पात बनाने की क्षमता को प्रति वर्ष १ मि० टन की दर से बढाने के लिये आवश्यक साज-सामान की अधिकाश पूर्ति कर सकेगा। दुर्गापुर के मशीनरी प्रोजेक्ट का विकास इस प्रकार आयोजित किया जायेगा कि वह प्रति वर्ष ४५,००० टन के लगभग साज सामान बना सके। तीनो हैवी इलेक्ट्रिकल इक्विपमेंट प्रोजेक्टस बिजली-उत्पादन के लिये आवश्यक विविध प्रकार का अधिकाश साज सामान तैयार करेंगे, ताकि बिजली का उत्पादन प्रति वर्ष २ मि० किलोवाट की दर से सन् १९७१ के बाद बढाया जा सके। वे हैवी मोटर्स, रेक्टीफायर्स और कन्ट्रोल इक्विपमेंट भी बनायेगे। जैकोस्लोवाकिया की सहायता से एक हैवी इन्जीनीयरिंग प्रोजेक्ट स्थापित करने की योजना भी है, जिसका उद्देश्य हाई प्रेसर के बॉयलर तैयार करना है।

प्राइवेट क्षेत्र मे, विभिन्न प्रकार के मिलो के लिए पूर्ण प्लान्ट बनाने के लक्ष्य रखे गये है। इनमे अधिकतर देशी सामग्री का प्रयोग होगा। सीमेंट मिलो के लिए ६ या ७ प्लान्ट (मूल्य=४ से ५ करोड रु०) कागज मिलो के लिये ८ छोटे बडे प्लान्ट (मूल्य=६.५ से ७.० करोड रु०), चीनी मिलो के लिये १४ प्लान्ट (मूल्य १० करोड रु०), सूती वस्त्र मिलो के लिय मशीनरी (मूल्य २० करोड रु०) तथा सलफ्यूरिक एसिड के १० प्लान्ट (मूल्य १०३ करोड रु०) बनाने का लक्ष्य है। इन लक्ष्यो का पूरा होना अति आवश्यक है, क्योंकि इन पर ही अन्य क्षेत्रो मे प्रगति निर्भर करती है।

(३) **मशीन टूल्स**—लघु पैमाने के क्षेत्र द्वारा ५ करोड रु० मशीन टूल्स का उत्पादन किया जायगा। इसके अतिरिक्त बड़े पैमाने के क्षेत्र मे सन् १९६५-६६ तक मशीन-टूल्स के उत्पादन का लक्ष्य ३० करोड रु० रखा गया है, जबकि वर्तमान उत्पादन ७ करोड रु० के मशीन टूल्स है। यह लक्ष्य तृतीय पच-वर्षीय योजना के अन्त तक बढी हुई माग के अनुमान (=५० करोड रु० मूल्य के मशीन टूल्स) से बहुत कम रहता है। किन्तु कुशल कारीगरो की कमी रहने से इससे अधिक लक्ष्य रखना सम्भव नही है। उक्त लक्ष्य की पूर्ति के लिये हिन्दुस्तान मशीन टूल्स कारखाने का विस्तार किया जायेगा तथा पजाब व बिहार मे एक-एक नया हैवी मशीन टूल कारखाना स्थापित किया जायेगा। प्राइवेट क्षेत्र मे जो विकास होगा वह सार्वजनिक क्षेत्र का विकास का पूरक होगा, ताकि मशीन औजारो सम्बन्धी बढी हुई माग को पूरा करने मे सहायता हो।

(४) **रेलवे रॉलिंग स्टॉक**—इस क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र का एक महत्त्वपूर्ण विकास कार्यक्रम चितरंजन लोकोमोटिव कारखाने में इलैक्ट्रिक इन्जनों के निर्माण से सम्बन्धित है। इन इलैक्ट्रिक इंजनों के लिए ट्रैक्शन मोटर्स का निर्माण भूपाल के हैवी इलेक्ट्रिकल्स कारखाने में किया जावेगा। रेलवे योजना में डीजल इलैक्ट्रिक और डीजल हाइड्रोलिक इंजनों के निर्माण का जो प्रोजेक्ट सम्मिलित है वह रेलवे को अपने साज-सामान के सम्बन्ध में बहुत सीमा तक आत्म निर्भर बना देगा। १० करोड रु० की लागत से स्थापित होने वाला डीजल इंजन प्रोजेक्ट १४० इंजन प्रति वर्ष बनायेगा, जिनका विक्रय मूल्य १० करोड के लगभग है। डीजल हाइड्रोलिक इन्जनों के निर्माण में एक सुधरे हुए डिजायन का प्रयोग किया जायेगा, जिसे हाल में भारतीय रेलवे के एक इन्जीनियर ने विकसित किया है। प्राइवेट क्षेत्र वैगन, मीटर गेज के स्टीम इन्जन तथा इलक्ट्रिकल मल्टीपिल कोचेज का निर्माण करता रहेगा।

(५) **जहाज-निर्माण**—इस शीर्षक के अन्तर्गत जो कार्यक्रम बनाया गया है उसमें विशाखापटनम में एक ड्राइडाक बनाने तथा हिन्दुस्तान शिपयार्ड लि० का विस्तार करने का प्रस्ताव सम्मिलित है। इन विकासों के पूरा होने पर विशाखापटनम शिपयार्ड प्रतिवर्ष कुल ५०-६० हजार टन के जहाज बना सकेगा। कोचीन में एक और शिपयार्ड बनाना तथा समुद्री डीजल इन्जनों का निर्माण करना भी सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यक्रम में सम्मिलित है। इनकी लागत व्यय क्रमशः २० करोड एवं ५ करोड बैठेगा। तटीय एवं नदी-यातायात के लिए छोटे जहाज, नाव, प्रोपेलिंग मशीनरी आदि बनाने का काम प्राइवेट क्षेत्र में चलता रहेगा।

(६) **औद्योगिक एवं शक्ति सम्बन्धी बायलर**—पावर प्लान्टों के लिये तथा विभिन्न उद्योगों की भाप बनाने की आवश्यकता-पूर्ति के लिये बायलरों का उत्पादन बढ़ाने की एक योजना प्राइवेट क्षेत्र के लिये बनाई गई है। सन् १९६५-६६ में बायलरों के उत्पादन का मूल्य २५ करोड रु० होने की आशा है।

(७) **ऑटोमोबाइल एवं सम्बन्धित उद्योग**—इन उद्योगों के लिये जो विकास-लक्ष्य रखे गये हैं वे ऑटोमोबाइल उद्योग की एडहॉक कमेटी की सिफारिशों के अनुरूप हैं। विभिन्न मदों के लक्ष्य इस प्रकार हैं पैसेंजर कारें ३०,०००, व्यापारिक वही किलें ६०,०००, जीप एवं स्टेशन वैगन १०,००० एवं मोटर साइकिलें स्कूटर्स एवं तीन पहिये वाली टैम्पो ६०,०००, विदेशी विनिमय पर अधिक बोझ न पड़ने पावे, इसके लिये यह आवश्यक है कि देशी सामग्री का प्रयोग अब (६०%) की अपेक्षा सन् १९६५-६६ में ८५% कर दिया जाय। व्यापारिक वहीकिलों के निर्माण को प्राथमिकता देनी चाहिए।

(८) **अन्य इंजीनियरिंग उद्योग**—सार्वजनिक क्षेत्र के निम्नलिखित प्रोजेक्टों को छोड़कर 'अन्य इंजीनियरिंग उद्योगों' के शीर्षक के अन्तर्गत क्षमता के विस्तार का भार प्राईवेट उपक्रम पर डाला गया है—(१) प्रिसीजन इन्स्ट्रूमेन्टस् प्रोजेक्ट,

(२) प्रिसीजन इन्स्ट्रूमेन्ट्स फैक्टरी लखनऊ का विस्तार, (३) रूपनरायनपुर की हिन्दुस्तान केबिल्स का विस्तार, (४) बगलौर के सरकारी इलैक्ट्रिक कारखाने का विस्तार, (५) हैवी कम्प्रेशर्स एव पम्प प्रोजेक्ट, (६) बाल एव रोलर बियरिंग प्रोजेक्ट, (७) सर्जीकल इन्स्ट्रूमेन्ट्स प्रोजेक्ट्स। भावी विकास के दृष्टिकोण स प्रिसीजन इन्स्ट्रूमेन्ट्स प्रोजेक्ट का विशष महत्त्व है।

(III) कैमीकल एव सम्बन्धित उद्योग—

तृतीय पच वर्षीय योजना मे इस शीर्षक के अन्तगत सबस बडा एव सबसे महत्त्वपूर्ण विनियोग उर्वरको क क्षत्र म किया जायेगा। कृषि कार्यक्रम के सम्बन्ध मे नाइट्रोजन उर्वरको की माँग बहुत बढ गई है। माँग के बढने तथा पेट्रोलियम शोधक कारखानो की अव शष्ट गैसो की उपलब्धता के कारण बड पैमाने पर उनका निर्माण करना आवश्यक एव सरल हो गया है। नैफ्था (Naphtha) ने भी आर्गेनिक कैमीकल इन्डस्ट्रीज को प्रोत्साहन दिया है, जिन्हे अब तक अलकोहल पर मुख्यत: निर्भर रहना पडता था। आर्गेनिक हाइड्रोकार्बनो के प्राप्त होने से आर्गेनिक इन्टरमीजियेटो का उत्पादन करने के हेतु एक अनुकूल वातावरण उत्पन्न होगया है। इस शीर्षक के अन्तर्गत आने वाल कुछ प्रमुख उद्योगो का विकास कार्यक्रम नीचे दिया जाता है—

(अ) इनआर्गेनिक कैमीकल्स (Inorganic Chemicals)—

(१) **उर्वरक** (Fertilisers)—नाइट्रोजन युक्त एव फास्फेट युक्त उर्वरको की माँग क्रमश १ मि० टन तथा ४,००,००० टन तक बढने की आशा है। द्वितीय योजना काल के अधूरे प्रोजेक्टो को पूरा करने के अतिरिक्त यह भी प्रस्ताव है कि सार्वजनिक क्षेत्र मे केन्द्रीय एव कुछ राज्य सरकारो द्वारा नाइट्रोजन युक्त उर्वरको के लिये अतिरिक्त क्षमता स्थापित की जाय। ८,००,००० टन तक सरकारी क्षेत्र मे तथा २,००,००० टन तक प्राइवेट क्षेत्र मे क्षमता को बढाने का प्रस्ताव है, तभी १ मि० टन का लक्ष्य पूरा हो सकेगा। गुजरात व मैसूर मे उवरक कारखानो की स्थापना पर विचार किया जा रहा है। दुर्गापुर मे भी एक कारखाना बगाल सरकार द्वारा प्राइवेट उपक्रम के सहयोग से खोला जायगा। मद्रास, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश एव राजस्थान मे भी कारखाने खुलेंगे। फास्फेट युक्त उर्वरको के सम्बन्ध म २,००,००० टन की क्षमता का आयोजन किया जा चुका है। इसमे अधिक अभी कुछ नही किया जाना है। उर्वरक विकास-कार्यक्रम पर कुल-विनियोग २२५ करोड रु० होगा, जिसमे १०० करोड रु० विदेशी मुद्रा की आवश्यकता पडगी।

(२) **सलफ्यूरिक एसिड**—इसक लिय १ ७५ मि० टन का लक्ष्य रखा गया है। सलफ्यूरिक एसिड का उत्पादन उर्वरक-उत्पादन के साथ-साथ बढेगा। यह आशा की जाती है कि सन् १९६५ ६६ तक सलफ्यूरिक एसिड की माग सार्वजनिक क्षेत्र मे अब (१,५०,००० टन) की अपेक्षा ५,५०,००० टन हो जायेगी। सलफ्यूरिक एसिड

का प्रयोग उर्वरको, स्पात कारखानो, रेयन, सल्फेट, पेट्रोलियम शोधन व अन्य विविध उद्योगो मे किया जाता है। अब तक सलफ्यूरिक एसिड का उत्पादन सलफर के आधार पर होता था, लेकिन तृतीय पच-वर्षीय योजना मे पिराइट्स (Pyrites) व स्मैलटर गैसो की सहायता से भी उत्पादन किया जावेगा।

(३) सलफर (Sulphur)—यह अनुमान लगाया गया है कि सलफर का उपभोग सन् १९६०-६१ मे १,७५,००० टन से बढ कर सन् १९६५-६६ मे लगभग ६,००,००० टन हो जायेगा। विदेशो मे सलफर की पूर्ति के नय श्रोतो का विकास होने से इस आधारभूत औद्योगिक कच्चे माल की आयात-कीमत मे कोई विशेष वृद्धि होने की संभावना नही है। फिर भी इसका कोई देशी श्रोत होना भी आवश्यक है। अतः योजना के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र मे Pyritas से सलफर बनाने का एक प्रोजेक्ट सम्मिलित किया गया है।

(४) कास्टिक सोडा एवं सोडाएश—यह लक्ष्य रखा गया है कि सन् १९६५-६६ तक इन वस्तुओ की सम्पूर्ण माँग देशी उद्योगो द्वारा ही पूरी होने लगे। इस लक्ष्य की पूर्ति का अधिकतर भार प्राइवेट उपक्रम को सौंपा गया है। सरकारी क्षेत्र मे तो दो ही विकास कार्यक्रम रखे गये है।

(ब) आर्गेनिक कैमीकल्स (Organic Chemicals)—

लगभग सर्वप्रथम आर्गेनिक कैमीकल्स के क्षेत्र मे बडे पैमाने पर विकास कार्यक्रम बनाये गये है। पिछले दशाब्द मे सम्बन्धित कैमीकल इन्डस्टीज मे जो उन्नति हुई है उसके फलस्वरूप उक्त मदो की माग कई गुना बढ गई है। नीचे तीन प्रमुख मदो से सम्बन्धित अस्थाई लक्ष्य दिये गये है:—

Phthalic an hydride	15,000 टन
Phenol	15,000 टन
Methanol	40,000 टन

(IV) पेट्रोलियम का शोधन (Petroleum Refining)—

शोधित पेट्रालियम वस्तुओ के क्षेत्र मे प्रायः सम्पूर्ण विकास सार्वजनिक क्षेत्र मे ही किया जायेगा। बरौनी और नूनमटी मे बन रहे शोधक कारखानो (Refineries) को पूर्ण करने के अतिरिक्त गुजरात मे भी एक कारखाना खोलने का प्रस्ताव है, जिसकी क्षमता २ मि० टन के लगभग होगई। इस कारखाने के लिये विदेशी आर्थिक एव टेक्नीकल सहायता का आश्वासन मिल चुका है। यह ३·५ मि० टन कच्चा तेल शोधित कर सकेगा। अन्य देशो की भाँति भारत को गैसोलीन के अभाव का सामना करना पडेगा। अभी तक मोटर स्प्रिट की अतिरिक्त पैदावार निर्यात कर दी जाती थी लेकिन पडोसी देशो मे भी शोधक कारखाने खुल जाने से निर्यात मे कठिनाई अनुभव की जायेगी। असंतुलन की समस्या को दूर करने के लिये निम्न उपाय करने होगे:—

(१) टेक्नोलॉजिकल उपाय, जिनमे middle distillates का उत्पादन बढ जाय;

(२) उपयुक्त प्राशुल्किव उपाय जो कि हाई स्पीड के डीजल तेल का उपभोग बढने मे रोकेंगे, (३) मिश्रित ईंधनो का प्रयोग प्रात्साहित करना जिसमे H. S. D. के लिये मांग कम हो कर गेसालिन की बिक्री बढ जाय तथा (४) मोटर स्प्रिट के उत्पादन मे कमी करने के लिय नैप्था का प्रयोग मोटर स्प्रिट मे न करके अन्य उत्पादक प्रयोगो मे बढाया जाय।

(V) ड्रग आदि (Pharmaceuticals and Drugs)—

द्वितीय योजना मे आवश्यक दवाइयो के उत्पादन मे विविधीकरण लाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया गया था। हिन्दुस्थान एन्टीबायोटिक्स लि० द्वारा स्ट्रेपटोमाइसिन का निर्माण तथा बम्बई की दो फर्मों द्वारा विटेमिन ए का निर्माण इसका उदाहरण है। अब इस क्षेत्र म नवीन विकासो का लक्ष्य आवश्यक दवाइयाँ देशी कच्चे माल के प्रयोग से बना कर यथासभव उचित मूल्यो पर उपलब्ध करना है। इस कार्य के लिये सार्वजनिक क्षेत्र मे २७ ३ करोड रु० रखे गये है।

(VI) प्लास्टिक (Plastics)—

प्लास्टिक के सामान के लिये ८५ ००० टन का लक्ष्य रखा गया है। आवश्यकता पडने पर इस लक्ष्य को संशोधित किया जा सकता है, क्योंकि कुछ प्लास्टिक सामग्री रबड व चमड जैसी न्यून पूर्ति वाली सामग्री का अच्छा स्थानापन्न है।

(VII) सौफ्ट कोक (Soft coke)—

नेवली म प्रति वर्ष ३,८०,००० टन की दर से लिगनाइट से सौफ्ट कोक का निर्माण किया जा रहा है। जगलो के काटे जाने को कम करने के लिये इस प्रकार के कोयल का उत्पादन बढाना बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस हेतु नीचे तापक्रम वाले कार्बोनाईजेशन प्लान्टो की स्थापना करन का प्रस्ताव सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत रखा गया है।

(VIII) सीमेंट—

सीमेन्ट के लिये सन् १९६५-६६ तक उत्पादन क्षमता को १५ मि० टन तक बढा देने का लक्ष्य रखा गया है। यह लक्ष्य वर्तमान उत्पादन क्षमता पर ५०% वृद्धि का सूचक है। यदि निर्माण कार्यों पर नियन्त्रण ढीला किया गया, तो सीमेंट की माँग बढने की सम्भावना है। सीमेंट उद्योग की आवश्यकतानुसार चूने के पत्थर का उत्पादन बढाने मे जो कठिनाइयाँ हैं उनको ध्यान मे रखते हुये स्टील कारखानो के स्लैग पदार्थ के प्रयोग पर अधिक ध्यान देना चाहिये। द्वितीय योजना मे इस बात की उपेक्षा कर दी गई थी।

(IX) ग्लास एवं ग्लास का सामान—

इस उद्योग का सबसे महत्त्वपूर्ण विकास है आपटीकल ग्लास (Optical glass) का निर्माण होना। यह ग्लास इन्स्ट्रूमेन्ट्स इन्डस्ट्री के लिये बहुत महत्त्व का है। इसका निर्माण तृतीय पच-वर्षीय योजना मे आरम्भ हो जायेगा तथा काउन्सिल ग्राफ साइन्टिफिक एण्ड इन्डस्ट्रियल रिसर्च की सैन्ट्रल ग्लास एन्ड सिरेमिक संस्था द्वारा

इसमे टैक्नीकल सहायता दी जावेगी। Opthalmic glass का निर्माण दुर्गापुर मे रूस के सहयोग से किया जावेगा।

(X) कच्ची फिल्मे (Raw films)—

इस क्षेत्र मे एक महत्त्वपूर्ण प्लान्ट स्थापित होने वाला है, जो सरकारी प्रोजेक्ट मे मद्रास राज्य मे उटकमड के निकट कच्ची फिल्मे, एक्सरे फिल्मे आदि का निर्माण करेगा। इसे फ्रास की एक प्रसिद्ध फर्म M/s. Bauchet et Cie से टैक्नीकल सहयोग प्राप्त होगा।

उपभोक्ता सामान वाले उद्योग

सगठित उद्योगो मे प्रत्यक्ष विनियोग के दृष्टिकोण से सार्वजनिक क्षेत्र के उपभोक्ता सामान बनाने वाले उद्योगो का विकास कार्यक्रम कम महत्त्व रखता है। दवाइयो का निर्माण ही इसका एक मात्र अपवाद है। घडियो और कैमरो का निर्माण सार्वजनिक क्षेत्र मे जापान के टैक्नीकल सहयोग से किया जायेगा। कैमरो के निर्माण मे कलकत्ते की नेशनल इन्स्ट्रूमेन्ट्स फैक्टरी भी सहयोग देगी। सहकारी सस्थाओ को उपभोक्ता सामान वाले उद्योगो की स्थापना करने मे विशेष सुविधाये दी जावेंगी। प्रमुख उपभोक्ता सामान वाले उद्योगो का विकास क्रम निम्न प्रकार है :—

(१) सूती वस्त्र (Cotton Textiles)—यह अनुमान लगाया गया है कि तृतीय पच-वर्षीय योजना की समाप्ति पर ८,४५० मि० गज कपडा आन्तरिक उपभोग के लिये और ८५० मि० गज कपडा निर्यात के लिये आवश्यक होगा। सन् १६६०-६१ मे कपडे की आन्तरिक माग ७,००० मि० गज कूती गई थी, जबकि उस वर्ष उपभोग के लिये केवल ६,७५० मि० गज कपडा ही उपलब्ध था। सभवत. पूर्ति मे इतनी कमी १६५६–६० मे फसल के खराब होने से कच्ची कपास की कमी के कारण रही थी। अत. आन्तरिक उपभोग के लिये सूती वस्त्र उत्पादन का लक्ष्य कुछ अधिक नही है। निर्यात का लक्ष्य भी उस औसत स्तर से विशेष अधिक नही है जो कि पिछले वर्षो मे प्रचलित था। ६,२०० मि० गज सूती वस्त्र के कुल लक्ष्य का ३,५०० मि० गज हाथ करघा, शक्ति करघा व खादी उद्योग के सुपुर्द किया गया है, जबकि मिल उद्योग को ५,८०० मि० गज कपडे के उत्पादन का कार्य सौंपा गया है। वर्तमान स्तर से ८०० मि० गज अधिक कपडा बनाने के लिये मिलो मे २५,००० ओटोमैटिक करघे तृतीय योजनावधि मे लगाये जायेंगे। ६,३०० मि० गज कपडे के उत्पादन लक्ष्य की पूर्ति के लिये व अन्य कामो मे प्रयोग के लिये भी सूत का उत्पादन लक्ष्य २,२५० मि० पौंड रखा गया है।

(२) रेयन (Rayon)—रेयन उद्योग के कार्यक्रम मे क्षमता को द्वितीय योजना की समाप्ति पर २१५ मि० पौंड से बढा कर तृतीय योजना के अन्त तक १०० मि० पौंड करना निश्चित किया गया है। इस उद्योग मे विनियोग को कई अवस्थाओ मे इस प्रकार फैलाया गया है कि विदेशी विनिमय की कठिनाई प्रस्तुत न होने पावे।

(३) पेपर एवं न्यूजप्रिन्ट—इस उद्योग के विकास कार्यक्रम का लक्ष्य आत्म निर्भरता प्राप्त करना है। सन् १९६५–६६ तक अनुमानित माग ७००,००० टन होने की आशा है, जिसे पूरा करने के लिय उद्योग की वर्तमान क्षमता (४,१०,००० टन) को बढा कर ८,२०,००० टन करने का प्रस्ताव है। अनिरिक्त क्षमता की प्राप्ति के लिये तीसरी योजनाअवधि म छोटे-छोटे कागज मिल स्थापित किये जायेंगे, जो कि स्थानीय कच्चे माल का प्रयोग करेंगे। होशगाबाद म १ ५०० टन की वार्षिक क्षमता का एक दस्तावेजी कागज बनाने वाला मिल स्थापित किया जायगा। आजकल इस प्रकार का कागज विदेशो से मगाने मे काफी विदेशी विनिमय व्यय करना पडता है। न्यूजप्रिन्ट की दशा मे वर्तमान उत्पादन क्षमता (३०,००० टन) को ५ गुना बढाया जायेगा। इसके लिये नेपा मिल का विस्तार करना होगा। कुछ नये मिल भी मुलायम लकडी, (जो कि हिमालय क्षेत्र मे पाई जाती है) का प्रयोग करके कागज बनाने के हेतु स्थापित किये जायेंगे। चीनी मिलो मे गन्ने के प्रयोग से बचने वाले अवशिष्ट पदार्थ का प्रयोग करके भी कागज बनाने पर बल दिया जायेगा। आजकल यह पदार्थ शक्कर मिलो मे ईंधन के रूप मे प्रयोग कर लिया जाता है।

(४) चीनी (Sugar)—तीसरी पच वर्षीय योजना के प्रारम्भ मे ही देश चीनी के मामले मे आत्म निर्भर सा हो गया है। चीनी मिल उद्योग की अधिक उन्नति करने के लिये उपलब्ध गन्ने की पूर्ति को बढाना होगा। प्रस्तुत योजना मे गन्ने का उत्पादन बढा कर १०० मि० टन कर देने का प्रस्ताव है। यह वृद्धि मुख्यत प्रति एकड पैदावार को सुधार कर प्राप्त की जायेगी। अन्य प्रयोगो मे काम आने वाल गन्ने को निकाल कर चीनी उत्पादन के लिय ३५ मि० टन गन्ना बचता है। इतनी मात्रा मे गन्ना पेरने की सुविधा को बढाने के लिये क्षमता को ३ ५ मि० टन प्रति वर्ष तक बढावा देने का प्रस्ताव है। इस क्षेत्र मे सहकारी सस्थाओ का सहयोग २५% तक बढ जायेगा। सरकार ने सहकारी चीनी कारखानो की शेयर पूँजी मे भाग लेने के हेतु ६ करोड रु० का आयोजन किया है। घरेलू उपभोग से बचने वाली शक्कर निर्यात कर दी जावेगी।

(५) वनस्पति तेल (Vegetable Oils)—वनस्पति तेलो की दशा मे अब अधिक विकास पाच प्रमुख तिलहनो के कृषि कार्यक्रमो पर निर्भर है। इन तिलहनो का उत्पादन सन् १९६०-६१ मे ७ १ मि० टन से बढा कर सन् १९६५-६६ तक ९·८ मि० टन कर दिया जायेगा। यह अनुभव किया जाता है कि आन्तरिक आवश्यकताओ की पूर्ति के पश्चात् निर्यात के लिये खाने के काम मे आने वाल तेल अधिक मात्रा मे बचेंगे। अतः वनस्पति तेलो की पूर्ति बढाने के लिये निम्न प्रस्ताव रखे गये हैं (1) कपास के बीज के तेल का उत्पादन १ लाख टन प्रति वर्ष तक बढाना, (11) खली से निकलने वाले तेल की वर्तमान मात्रा (४०,००० टन) को बढा कर १,६०,००० टन प्रति वर्ष करना, तथा (111) चावल से तेल का उत्पादन बढाना। कपास के बीज से तेल का

उत्पादन बढा कर मूगफली के तेल पर जोर कम किया जायेगा तथा खली के अतिरिक्त तेल-उत्पादन का प्रयोग मुख्यत: औद्योगिक कार्यो के लिये होगा।

औद्योगिक विकास से सम्बन्धित कुछ समस्यायें—

तीसरी पञ्च-वर्षीय योजना के अन्तर्गत औद्योगिक विकास के जिस उच्च स्तर की कल्पना की गई है वह सार्वजनिक एव प्राइवेट दोनो ही क्षेत्रो के लिये, अपनी विविधमुखी समस्याओ के कारण एक बडी चुनौती प्रस्तुत करता है। प्रसाधनो एवं विदेशी विनिमय की समस्याये ही नही वरन् अन्य कई समस्याये भी उद्योगो को अपने पिछले अनुभव से सुलझाती है। नीचे कुछ प्रमुख समस्याओ पर प्रकाश डाला गया है—

(१) **डिजाइन डेवेलप्मेन्ट एव प्रोजेक्ट इंजीनियरिंग की समस्यायें—** मशीन बिल्डिग क्रियाओ तथा मशीन निर्माण के लिये डिजायनो के विकास एव प्रोजेक्टो के इंजीनियरिंग की विकट समस्या है। प्रोजेक्ट इंजीनियरिंग के सम्बन्ध मे राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (N I D C) ने जिम्मेदारी ग्रहण कर ली है। उसने सन् १९६०-६१ मे एक टेक्नोलॉजिकल परामर्शदाता ब्यूरो स्थापित किया है, जिसके निम्न कार्य होगे—उद्योगो के स्थापना-स्थलो का प्रारम्भिक अध्ययन, जाँच पडताल एव चुनाव; प्रोजेक्ट से सम्बन्धित विस्तृत रिपोर्टो (detailed project reports) की तैयारी तथा रचना सम्बन्धी डिजायन बनाना (designing of structures)। डिजायन-विकास के सम्बन्ध मे हमारा लक्ष्य यह होना चाहिये कि देशी डिजाइनो के आधार पर औद्योगिक मशीनरी निकट भविष्य मे तैयार की जाने लगे, यद्यपि प्रारम्भ मे आयातित डिजाइनो पर निर्भर रहा जा सकता है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये बगलौर मे एक केन्द्रीय डिजायन इन्स्टीट्यूट स्थापित किया जायेगा।

(२) **उत्पादकता बढाने तथा लागत व्यय घटाने की समस्यायें—** चूँकि औद्योगिक क्षेत्र को निर्यात वृद्धि मे बहुत योग देना है, इसलिये यह आवश्यक है कि न केवल उत्पादन का विस्तार करने पर वरन् उत्पादकता बढाने वाले तथा लागत व्यय कम करने वाले सभी घटको पर ध्यान दिया जाय। जहाँ तक उत्पादन-लागतो का सम्बन्ध है, ऊँची लागतें होने के कारणो को कुछ सीमा तक दूर किया जा सकता है, यदि स्थापित होने वाले प्लान्टो का साइज 'अनुकूलतम' रखा जाय तथा व्यय पदार्थो व सह-पदार्थो के आर्थिक प्रयोग का प्रयत्न किया जाय। इसी प्रकार यदि लगाई हुई क्षमता (Installed Capacity) का अधिकतम प्रयोग किया जाने लगे, तो उपरिव्ययो (Overheads) मे काफी मितव्ययिता हो सकती है। इन पहलुओ पर विकास परिषदों को विचार करना चाहिये।

(३) **पर्याप्त जल की पूर्ति एव खराब पानी की निकासी की समस्यायें—** अनेक हैवी इन्डस्ट्रीज (जैसे स्टील प्लान्ट, पैट्रोलियम शोधक कारखाने) के विकास के लिये उत्पादन कार्य मे बहुत अधिक मात्रा मे पानी की आवश्यकता पड़ेगी। जिन विशेषज्ञ

समितियों को उद्योगों की स्थापना के लिये उपयुक्त स्थान के चुनाव का कार्य सौंपा गया था, उनकी रिपोर्टों में जल की उपलब्धता पर काफी जोर दिया गया है। उन्होंने बताया है कि कुछ स्थानों में जहाँ कि अन्य सब सुविधायें उपलब्ध थीं, उद्योगों की स्थापना का सुझाव केवल इस कारण रद्द करना पड़ा, क्योंकि वहाँ पर्याप्त मात्रा में जल उपलब्ध न था। इन स्थानों में जल पूर्ति के दीर्घकालीन नियोजन बिना उनका औद्योगीकरण सदा खतरे में रहेगा। इसके अतिरिक्त, कैमीकल एवं सम्बन्धित उद्योगों के खराब पानी की निकासी की समस्या भी बड़ी विकट है। नदियों में यह पानी छोड़ा जाने से नदी का जल खराब हो जाने का भय है। यह जन स्वास्थ्य के लिये नुकसानदेह प्रमाणित हो सकता है।

सन् १९६५-६६ में योजना की समाप्ति पर औद्योगिक विकास के लाभ—

तीसरी पंच-वर्षीय योजना की पूर्ति पर औद्योगिक विकास में अनेक लाभ होने की आशा की जाती है—(१) सार्वजनिक क्षेत्र के विनियोग एवं उत्पादन की तेज वृद्धि से हम अपने समाजवादी ढाँचे के लक्ष्य की पूर्ति में बड़ी सहायता मिलेगी, (२) अर्थ व्यवस्था के कुछ अत्यावश्यक अंगों (जैसे कृषि, बिजली, रेलें, मोटर यातायात) की निर्भरता विदेशों से साज सामान के आयात पर कम हो जायेगी, (३) औद्योगिक क्षेत्र में भी हैवी इन्जीनियरिंग एवं मशीन-बिल्डिंग का विकास होने से, उद्योगों के लिए आवश्यक पूँजीगत साज सामान काफी मात्रा में देश के अन्दर ही तैयार होने लगेगा। (४) बसिक कच्चे मालों का उत्पादन देश में ही होने लगने से कई महत्त्वपूर्ण उद्योगों के रख रखाव (Maintenance) के लिये आवश्यक आयातों में कमी हो जायेगी। इस प्रकार, तृतीय पंच-वर्षीय योजना के कार्यक्रम पूरे होने पर देश की अर्थ व्यवस्था बहुत सीमा तक आत्म निर्भर हो जायेगी। औद्योगिक उत्पादन का सामान्य सूचनांक, जो कि प्रगति का परम्परागत सूचक है, ३२९ तक पहुँच जायेगा (आधार वर्ष १९५०-५१ =१००) जबकि द्वितीय पंच-वर्षीय योजना की समाप्ति पर वह १९४ और प्रथम पंच-वर्षीय योजना की समाप्ति पर १३९ था।

STANDARD QUESTIONS

1. Describe the aim, policy and priorities of the Industrial development under the Third Five Year Plan Examine its financial implications
2. What are the special features of the industrial programmes as envisaged by the Third Plan ? Give only brief description under different heads
3. Point out the difficulties and problems which have to be faced in course of Industrial development as outlined in the New Plan.

APPENDIX
PUBLIC SECTOR PROJECTS UNDER THIRD PLAN

(I) Industrial projects of Central Government

name of the scheme	location	total investment (Rs crores)	foreign exchange component (Rs crores)	capacity in 1965 66 (final capacity in the case of expansion)
A projects under execution and carried over from the Second Plan (a)				
1 completion of the three steel plants	Rourkela Bhilai Durgapur	50 0	20 0	3 million tons of steel ingots and 700 000 tons of pig iron for sale
2 Rourkela fertiliser factory	Rourkela			120,000 tons of nitrogen
3 heavy machinery plant	Ranchi	80 0	55 0	45,000 tons of finished machinery
4 foundry forge shop	Ranchi			94 000 tons of castings and forgings
5 mining machinery plant	Durgapur			30,000 tons of mining machinery
6 heavy electrical plant	Bhopal	16 0	7 0	Rs 12 5 crores worth of electrical equipment

name of the scheme	location	total investment (Rs crores)	foreign exchange component (Rs crores)	capacity in 1965 66 (final capacity in the case of expansion)
7 drug projects				
(a) synthetic drugs plant	Sanatnagar (Andhra Pradesh)	30 0	15 0	Rs 6 4 crores worth of drugs
(b) antibiotics plant	Rishikesh (Uttar Pradesh)			Rs 25 8 crores worth of antibiotics
(c) phyto chemicals plant	Munnar (Kerala)			Rs 77 lakhs worth of phyto chemicals
(d) surgical instruments plant	Guindy Madras)			Rs 2 8 crores worth of instruments
8 organic intermediates plant	Near Panvel (Maharashtra)	11 0	6 0	25 000 tons of organic intermediates
9 expansion of Hindustan antibiotics	Pimpri (Maharashtra)	0 5	neg	45 000 kgs of streptomycin & 1 5 tons of tetracyclines
10 Trombay fertiliser factory	Trombay (Maharashtra)	25 0	13 0	90 000 tons of nitrogen
11 Nahorkatiya Fertiliser factory	Nahorkatiya (Assam)	12 0	7 0	32 500 tons of nitrogen
12 Neiveli fertiliser factory	Neiveli Madras)	15 68	11 56	70 000 tons of nitrogen
13 briquetting and carbonisation plant		13 84	8 61	380 000 tons of carbonized briquettes
14 Neiveli thermal power plant		9 67	5 86	250 MW
15 Nunmati oil refinery	Nunmati (Assam)	8 5	4 9	0 75 million tons of crude oil
16 Barauni oil refinery	Barauni (Bihar)	23 0	7 5	2 0 million tons of crude oil
		295 19	161 4	

B new projects for which external credits are already assured, wholly or partly

	Project	Location			Capacity
17	expansion of heavy machinery plant	Ranchi	14 0	11 0	80 000 tons of finished machinery
18	expansion of foundry forge	Ranchi	10 0	5 5	153,000 tons of castings and forgings
19	expansion of mining machinery plant	Durgapur	15 0	10 0	45 000 tons of mining machinery
20	second and third heavy electrical projects	not yet decided	69 0	45 0	scope yet to be finally decided in the case of the third project
21	heavy machine tool project	Ranchi	11 0	9 0	Rs 3 4 crores worth of machine tools
22	precision instruments project	not yet decided	8 0	6 0	Rs 20 crores worth of instruments
23	ophthalmic glass project	Durgapur	2 6	2 0	300 tons of ophthalmic glass
24	raw film project	Ootacamund	8 0	5 0	6 3 million sq meters of raw films, photographic paper etc
25	watch factory	Bangalore	2 5	1 5	360,000 watches
26	expansion of Bhilai steel plant	Bhilai	138 0	56 0	2 5 million tons of steel ingots and 300 000 tons of pig iron for sale
27	expansion of Durgapur steel plant	Durgapur	56 0	27 0	1 6 million tons of steel ingots and 300 000 tons of pig iron for sale
28	expansion of Rourkela steel plant	Rourkela	90 0	50 0	1 8 million tons of steel ingots
29	expansion of Hindustan Machine Tools	Bangalore	3 0	2 0	Rs 7 crores worth of machine tools
30	basic refractories project	Bhilai	3 0	1 5	Scope yet to be decided
31	new machine tool works in Punjab	exact location not yet decided	5 0	3 0	1000 machine tools (Rs 3 5 crores)
32	Gujrat oil refinery	exact location not yet decided	30 0	15 0	2,million tons of crude oil
33	expansion of Praga Tools	Secunderabad (Andhra Pradesh)	1 0	0 5	Rs 1 crore worth of machine tools

name of the scheme	location	total investment (Rs crores)	foreign exchange component (Rs crores)	capacity in 1965 66 (final capacity in the case of expansion)
34 heavy structural works	not yet decided	6 0	@ 4 0	10,000 tons of heavy structurals on single shift basis
35 heavy plate and vessel work	not yet decided			18,000—20,000 tons of chemical plant machinery on single shift basis
36 Gorakhpur fertiliser factory	Gorakhpur	18 0	8 0	80,000 tons of nitrogen
37 Security paper mill	Hoshangabad (Madhya Pradesh)	5 5	4 0	1,500 tons of security paper
38 expansion of Hindustan Cables	Rupnarainpur (West Bengal)	3 5	1 2	2,000 miles of dry core cables and 500 miles of plastic insulated city cables on double shift basis
		499 1	267 2	
	C Other projects (b)			
39 Bokaro steel project	Bokaro	200 0	100 0	one million tons of steel ingots and 350,000 tons of pig iron for sale
40 alloy and tool steels plant	Durgapur	50 0	20 0	48,000 tons of finished products
41 expansion of Bhopal heavy electrical plant	Bhopal	19 0	8 0	Rs 25 crores worth of electrical equipment

@ According to the latest estimates these projects will cost Rs 10 1 crores and will need foreign exchange expenditure of Rs 6 4 crores

No.	Project	Location			Remarks
42	expansion of *Hindustan Shipyard* (expansion and subsidy)	Visakhapatnam	10 0	1 5	50,000—60 000 DWT
43	dry dock project of the Hindustan Shipyard.	Visakhapatnam	2 0	0 5	
44	*second shipyard*	*Cochin*	20 0	5 0	
45	expansion of FACT	Alwaye (Kerala)	8 0	5 6	60,000 tons of *nitrogen*
46	*expansion* of Nepa mills	Nepanagar (Madhya Pradesh)	4 0	3 0	60 000 tons of newsprint
47	*salt development*		3 0	0 8	
48	heavy compressors & pumps project	not yet decided	*15 0*	10 0	scope yet to be decided
49	*ball* and roller bearing project	not yet decided	8 0	6 0	2 million bearings
50	additional capacity for *machine* tools	not yet decided	15 0	10 0	scope yet to be *decided*
51	second heavy structural works				
52	*second plate* & vessel works				
53	marine diesel engine factory	not yet decided	3 0	1 5	
54	expansion and modernisation of the Govt alkaloid factory	Ghazipur (Uttar Pradesh)	0 4	neg	
55	lubricating *oil plant*		12 0	6 0	100,000 tons of HVI Lubricants
56	low temperature carbonisation plants		22 0	15 0	2 2 million tons of coal
57	Neiveli lignite high temperature carbonisation plant and connected facilities for pig iron production	Neiveli (Madras)	25 0	13 0	1 million tons of lignite
58	townships	at project sites	50 0		
			466 4	205 9	
		total	1260 69	*634 5*	

(II) Industrial projects of State Governments

name of the scheme	location	total investment (Rs crores)	foreign exchange component (Rs crores)	annual capacity in 1965 66 (final capacity in the case of expansion)
Schemes with a total outlay of Rs 50 lakhs or more				
A projects spilling over from the Second Plan (a)				
1 expansion of Andhra Paper Mills	Rajamundry (Andhra Pradesh)	4 00	2 49	18 000 tons of paper
2 expansion of Mysore Iron and Steel Works	Bhadravati (Mysore)			
(a) steel expansion programme		2 00*	3 50	100 000 tons of steel ingots
(b) expansion of the ferro silicon plant		0 95	0 37	20 000 tons of ferro silicon
3 expansion of Government electric factory	Bangalore (Mysore)	0 90	0 48	electric transformers 200 000 KVA electric motors 60 000 h p switchgear and switch boards worth Rs 40 lakhs
4 Durgapur coke ovens	Durgapur (West Bengal)			
(a) gas grid		2 25		7 5 million c ft of gas per day
(b) tar distillation plant		0 50	0 17	100 tons of tar per day
(c) doubling of coke ovens and by products plant		4 20		coke 650 000 tons benzene 0 725 million gallons toluene 0 235 million gallons napthalene : 1200 tons , and road tar

* Made up of Rs 5 crores in the Central Plan and Rs 2 crores in the State plan

B new projects included in the Third Plan (b)

5 natural gas distribution	(Assam)	1 65	0 30	
6 gas fractionation and transmission scheme	(Assam)	1 50	0 50	
7 expansion of Bihar superphosphate factory	Sindri (Bihar)	0 50	0 15	46 000 tons of superphosphate
8 expansion of high tension insulator factory	Ranchi (Bihar)	0 58	0 17	4 [illegible]00 tons of insulators
9 fertiliser project*		20 00	10 00	80 00[illegible] tons of nitrogen
10 cotton spinning mill	Samba (Jammu and Kashmir)	0 50	0 25	12 000 spindles
11 pilot iron and steel plant	(Madras	0 75		
12 steel rolling mill	(Madras)	1 00		20 000 tons of rolled products
13 distribution of gas in Bombay	(Bombay)	0 50		20 million c ft of gas per day
14 reorganisation of the workshop at Nangal	Nangal (Punjab)	0 50		
15 refractories plant	Churk (Uttar Pradesh)	0 85	0 30	24 000 tons of refractories
16 expansion of the precision instruments factory	Lucknow (Uttar Pradesh)	0 69	0 22	
17 organic chemicals scheme ‡	Durgapur (West Bengal)	4 00	2 00	caustic soda 6 600 tons phenol 6 600 tons chlorine 5 800 tons

* Provisionally indicated in the state sector Final decision about location and agency are yet to be taken

‡ Private participation on a minority basis in the equity capital of the project is envisaged

(II) Industrial projects of ... ment

name of the scheme	location	total investment (Rs crores)	foreign exchange component (Rs crores)	annual capacity in 1965 66 (final capacity in the case of expansion)
				Phthalic anyhydride . 6 600 tons formaldehyde 5000 tons penta chlorophenol 1000 tons
18 cotton spinning mill	(West Bengal)	0 65	0 08	25 000 spindles
miscellaneous schemes costing less than Rs 50 lakhs each		15 61	4 00	
grand total		64 08	24 98	

PRIVATE SECTOR PROJECTS UNDER THIRD PLAN

Expansion of selected major industries and minerals—progress and targets

name of industry	unit	1950-51 production	1955-56 production	1960-61 estimated capacity	1960-61 estimated production	1965-66 capacity	1965-66 production	fixed investment during 1961-66 (Rs crores)	foreign exchange component of fixed investment (Rs crores)
A metallurgical industries									
iron and steel									
(i) steel ingots	million tons	1 4	1 7	6 0	3 5	10 2	9 2	640 0	305 0
(ii) finished steel	,,	0 98	1 3	4 5	2 2	7 5	6 8		
(iii) pig iron for sale	,,	0 35	0 38	0 9	0 9	1 5	1 5		
(iv) alloy tool and special steel (finished)	000 tons			40	40	200	200		
(v) grey iron castings	million tons			n a	n a	1 2	1 2	30 0 (a)	15 0(a)
(vi) steel castings	,,			0 10	0 05	0 20	0 20		
(vii) steel forging	000 tons			60	35	200	200		
ferro manganese, electro thermal	,,	nil	nil	150	100	220	200	2 5	2·0
ferro silicon	,,	n a	n a	5	6	40	40	2 0	1 2
aluminium	,,	3 7	7 3	18 2	18 5	87 5	80 0	65 0	32 0
copper (fire refined and electrolytic)	,,	6 6	7 5	9 0	8 9	22 0	20 0	0 6(b)	0 4(b)

(II) Industrial projects o rnmente

name of industry	unit	1950 51 production	1955 56 production	1960 61 estimated capacity	1960 61 estimated production	1965 66 capacity	1965 66 production	fixed investment during 1961-66 (Rs crores)	foreign exchange component of fixed investment (Rs crores)
6 lead	000 tons	0 8	2 1	(1	3 5	5 5	9 0	7 3	2 7
7 zinc	,			nil	nil	15	15		
8 *tungsten carbide*	*tons*			5 0	4 0	(9	25	1 0	0 5
B mechanical engineering industries									
9 industrial machinery (1)									
i cotton textile machinery	Rs crores	n a	4 0	10 0	9 0	22 0	20 0	5 0	3 0
ii cement machinery			0 34 c)	1 1	0 6	4 5	4 5	3 0	2 0
iii sugar machinery			0 19	10 5	3 3	11 0 to 12 0	10 0		
iv paper machinery	Rs crores			0 7		8 5	6 5 to 7 0	7 0	4 0
v dairy machinery				0 25	Neg	2 5	2 5	0 5	
vi industrial boilers				3 7	0 4	29 0	25 0	10 0(d)	5 0(d)
vii cranes	000 tons			2 5	1 5	60	60		

	Unit								
ix heavy machinery building (steel and chemical machinery)	000 tons					90	(c)	} 119 0	81·5
x coal mining machinery	,,					45	30		
xi heavy plate and vessel works (pressure vessels, heat exchangers & other types of chemical plants and equipment)	000 tons				.	40	30	20 0	12·0
10 structural fabrication (including heavy structural shop)	000 tons		90	5)0	150	1100	1000	25 0	10·0
11 precision instruments, industrial and scientific	Rs crores			3 6	3 0	23	12	9 0	6 5
12 surgical instruments	million pieces					2 5	2 5	2 7	2 0
13 watches	000 nos					360(f)	240(f)	4 0	4 5
14 railway rolling stock and components								2 0	1 0
i locomotives									
steam	nos	7	179	300	295	300	1175 (g)		
diesel	,,					n a	434 (g)		
electric	,,					60	232 (g)		
ii wagons (in terms of 4 wheelers)	,,	2924	41966(g)	26000	20000	33500	109866 (g)		
iii. passenger coaches	,,	479	4354(g)	1300	1210	1420	7837 (a)		
15 automobile and ancillary industries								85·0	40 0
i passenger cars	000 nos	} 16 5	25 3	20	20	30	30		
ii commercial vehicles	,,			28	28	60	60		
iii jeeps and station wagons	,,			5 5	5 5	10	10		

name of industry	unit	1950 51 production	1955-56 production	1960 61 estimated capacity	1960 61 estimated production	1965 66 capacity	1965 66 production	fixed investment during 1961 66 (Rs crores)	foreign exchange component of fixed investment (Rs crores)
iv automobile ancillaries including trailers	000 nos			0 7	na	[illegible] 5	2 5		
v motor cycles and scooters			1 5	24	18	48 to 60	50		
16 ball and roller bearings	million nos	0 08	0 9	1 6	2 9	10 0	14 0(h)		
17 earth moving equipment									
i crawler tractors	nos					[illegible]	500		
ii dumpers and scrapers						600	500		
iii shovels	,					125	100		
18 road rollers				800	400	800	700		
19 agricultural implements and machinery								27 0	18 0
i power driven pumps	000 nos	34	37	184	90	184	150		
ii diesel engines (stationery)		5 5	10	62	40	72	66		
iii tractors				1 05	0 6	12 0	10 0		
20 bicycles	million nos	0 10	0 51	2 2	1 05	2 2	2 0(i)		
21 sewing machines	000 nos	33	111	268	297	700	700(i)		
22 welding electrodes	million r feet			600	350	1080	900		

23 ship building (expansion of Hindustan shipyard, dry dock *and second ship yard*)	000 GRT		50(g)	20	20	50 to 60	·0 to 60	32 0	7·0
			C electrical engineering industries						
24 electric transformers (below 33kv)	million kva	0 18	0 63	2 2	1 2	4 0	3 5		
25 *electric motors* (200 h p & below)	million h p.	0 10	0 27	1 25	0 7	3 0(k)	2 5(k)		
26 electric cables & wires									
i a c s r	000 tons	1 7	8 7	28	22	55	44		
ii v i r and plastic coated	*million yds*	39 4	86 9	500	220	800	600		
iii paper insulated	miles		.	1000	750	4500	4000		
iv dry core cables	miles		525	470(l)	1077	2000 to 2500	2060		
v coaxial cables	miles			300	200	300	300	30 0	18 0
27 electric fans	million nos.	0·19	0 29	1 8	0 98	2 8	2 5		
28 house service meters	,,		0 25(c)	0 6	0 46	2·5	2·1		
29 electric lamps									
(i) G.L.S. and others	million nos	15 0	25 03	43 13(l)	38 05	76 0	68 0		
(ii) fluorescent tubes	million nos	Nil	0 75	1·20(l)	1 46	7 0	6·0		
30 radio receivers (organised sector)	000 nos	49 0	102·0	279 18(l)	254·0	900 0	800 0		
31 storage batteries	000 nos	200 0	258 08	379 3(l)	509 0	900 0	800 0		
32 dry batteries	*million nos*	136 3	161 1	224 50(l)	200 0	400 0	350 0		
33 heavy electrical equipment in the public sector	Rs crores	..	—	—	..	80 0	80 0	104 0	60 0

name of industry	unit	1950 51 production	1955 56 production	1960 61 estimated capacity	1960 61 estimated production	1965 66 capacity	1965 66 production	fixed investment during 1961 66 (Rs crores)	foreign exchange component of fixed investment (Rs crores)
D chemical and allied industries									
34 fertilisers								225 0	100 0
i Nitrogenous (in terms of nitrogen)	000 tons	9	79	248	110	1000	800		
ii phosphatic (in terms of P_2O_5)		9	12	60	55	500	400		
35 heavy chemicals								42 0	18 0
i sulphuric acid		99	164	476	263	1750	1500		
ii soda ash		45	81	265	145	530	450		
iii caustic soda		11	35	124	100	400	340		
iv calcium carbide			3(c)	17	10	67	60		
v sodium hydrosulphite				2 3	0 6	12	10		
vi hydrogen peroxide				3	1 2	9 5	8		
36 miscellaneous chemicals products								15 0	5 0
i carbon black						30	30		
ii industrial explosives •									
(a) blasting explosives	,			5	6	20	20		

(b) liquid oxygen				2	2	9	9		
explosives									
(c) safety fuses	million coils			7	2	25 0	25 0		
(d) detonators	million nos					80	80		
iii rubber chemicals	000 tons			2	n a	3	3		
37 coke									
i soft coke (low tem									
perature carbonisation)	million tons					2 0	1 8	42 0	26 6
ii hard coke by product	000 tons			620	500	1160	1100	29 2	13 0
38 dyestuffs & organic									
intermediates								28 0	13 0
i dyestuffs	million lb		4 0	18	11 5	22 4	18 0		
ii *intermediates*	*tons*					25000	25000		
39 drug and pharma									
ceuticals								39 3	18 0
i sulpha drugs	tons		83(c)	330	150	1000	1000		
ii penicillin	million mega units		6 6	45	40	205	120		
iii streptomycin	tons					150	150		
iv p a s	,,		40(c)	145	100	400	400		
v *anti dysentery*									
drugs	,,		6 0(c)	60	30	75	75		
vi i n h	,		1 0(c)	33	30	100	100		
vii phytochemicals	,,					76 4	76 4		
vii i d d t	,,		284	2800	2800	2800	2800		
40 plastics (polyethy									
lene p v c, polys									
tyrene and others)	000 tons		0 7	15 7	10 0	85 0	74 0	27 5	10 5
41 i soap (2)	000 tons	106	102	254	150	254	500		
ii synthetic									
detergents	000 tons	.		7 2	1 5	20 0	20 0		

name of industry	unit	1950 51 production	1955 56 production	1960 61 estimated capacity	1960 61 estimated production	1965 66 capacity	1965 66 production	fixed investment during 1961 66 (Rs crores)	foreign exchange component of fixed investment (Rs crores)
42 raw films cinemato graphic etc	m llion sq metres					10 0	10 0	9 0	5 5
								11 5	5 0
43 rubber manufactures									
i *automobile tyres*	m llion nos		0 9	1 61	1 35	3 7	3 0		
ii bicycle tyres	million nos		5 8	16 9	11 0	38 6	31 0		
44 synthetic rubber	000 tons					50	50	25 0	12 5
45 i paper and paper board	000 tons	114	187	410	350	820	700	100 0	35 0
ii n wsprint	000 tons		4 2	30	25	150	120		
iii security paper	tons					1500	1500	5 5	4 0
46 cement	million tons	2 7	4 6	9 0	8 5	15 0	13 0	60 0	12 0
47 refractories	million tons		0 28	0 87	0 52	2 0	1 6	22 0	10 0
48 electric porcelain (h t & l t insulators)	000 tons		4 3	12 5	8 4	30	24	3 0	2 2
49 glass & glassware (including opthalmic glass)	000 tons	92 0	125	370	225	615	440	11 0	3 5
50 i petroleum products	million tons		3 6	6 02 (crude oil)	5 67	10 77 (crude oil)	9 86	73 5	33 4
ii lubricating oils	000 tons					100	100		
51 power and industrial alcohol	million gallons	8 6	15 2	40	22	72	60	4 0	0 4
52 industrial gases								11 0	6 5
i oxygen	million cft		.	1000	700	2300	1650		

ii cetylene	million cft			156	90	250	200		
			E textile industries						
3 c tton								32 5	11 0
i yarn	mi lion lb	1173	1640	2100	1750	2250	2250		
ii cloth (*mill made*)	u i l on yds	3720	5102	5300	5127	5800	5800		
jute	000 tons	892	1150	1200	1065	1200	1100	15 0	45 0
rayon and staple fibre									
i rayon filament	m llion lb	0 4	16 0	52 3	47 0	140 0	140 0		
ii staple fibre	million lb		14 0	48 0	47 8	75 0	75 0		
iii chemical pulp	000 tons					100 0	90 0	2 0	1 0
woollen manufactures									
i woollen and worsted yarn	million lb	18 3	21 7	67	28	67	52		
ii wooll n cloth	million yds		15 0	48	15	48	35		
iii wool *tops*	million lb			10		31 5	31 5		
			F food industries						
salt	million tons	2 7	3 0	3 9	3 7	6 5	5 4	9 0	2 0
ugar (3)	million tons	1 12	1 86	2 25	3 0	3 5	3 5	100 0	12 0
et bl oils									
solvent extraction f oil cakes	000 tons			550 (cake)	25 (oil)	2000 (cake	160 (oil)	10 0	2 5
cotton seed oil	000 tons			180(m) (seed,	15(m) (oil)	850 (seed)	100 (o l)		
naspri i	000 tons	153	276	434	330	550	500		
cellan ous industries								16x 0(n)	43 0
total								2454 6	1109 9

N.B Capacity for engineering industries is estimated on the basis of double shift operation

(1) Except in the case of cotton textile machinery, capacity and production under this head are related to the demands for original equipment

(2) Excepting for the production figure in 1965 66 the figures relate to the organised sector only

(3) Figures rel te to crop year

(a) Over and above the expenditure envisaged under Foundry/Forge (included under item 9 (ix) in the table) Mining Machinery Project and steel castings foundry of Chittaranjan Locomotive Works

(b) Investment on the capacity under the public sector is shown under the outlay on Minerals

(c) Relates to calendar year

(d) Expenditure envisaged on private sector schemes only Expenditure envisaged in the public sector are included under items (10) and (33) in the table

(e) Actual production will be linked by and large with the progr mme for expansion of steel capacity.

(f) Relates to the public sector only

(g) Relates to five year period

(h) By working the capacity on three shifts

(i) An additional 0 5 million bicycles are expected to be produced in the small scale sector

(j) An additional 150000 sewing machines are expected to be produced in the small scale sector

(k) These figures are for 300 h p and below

(l) Single shift capacity

(m) Figures relate to organised sector only

(n) Including Rs 50 crores for townships and Rs 47 0 crores for other public sector projects not covered under above industries

अध्याय १३

स्वतन्त्रता के पूर्व भारत सरकार की औद्योगिक नीति

(India's Industrial Policy Prior To Independence)

पराधीन-भारत की औद्योगिक नीति—

ब्रिटिश शासन-काल मे देश के औद्योगिक विकास के लिये कभी भी कोई निश्चित योजना नही बनाई गई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जमाने मे उन भारतीय उद्योगो को प्रोत्साहित किया गया, जिन पर इसका निर्यात् व्यापार निर्भर करता था, किन्तु कुछ दिनो बाद वह इङ्गलैंड के निर्माण उद्योगो के लिए कच्चा माल प्राप्त करने का एक साधन समझा जाने लगा।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की समाप्ति के बाद यद्यपि भारत का शासन महारानी विक्टोरिया को सौप दिया गया था, तो भी हमारे देश के प्रति ब्रिटिश नीति मे कोई परिवर्तन नही हुआ। वह स्वतन्त्र व्यापार (Laissez Faire) का युग था और भारत को भी इस नीति का अनुकरण करना पडा। उस समय उद्योगो के विकास के लिए नियम बनाना विनाशकारी और उसकी सहायता करना व्यर्थ समझा जाता था। इस प्रकार गत १०० वर्षो मे स्वतन्त्र व्यापार नीति का ही बोलबाला रहा। कभी-कभी सरकार ने देश के औद्योगिक विकास के प्रति अपनी सहानुभूति अवश्य दिखाई लेकिन इङ्गलैंड के अधिकारियो ने सदैव इस बात पर जोर दिया कि सरकार ऐसी कार्यवाहियो से दूर रहे।

प्रथम विश्व-युद्ध (सन् १९१४-१८) के छिडने से इस नीति मे थोडा परिवर्तन हुआ। कच्चे माल के लिए योरोपीय बाजार बन्द हो गया। युद्ध की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए किसी प्रकार उत्पादन बढाना आवश्यक समझा गया। परिणामस्वरूप, सरकार को स्वतन्त्र व्यापार की नीति छोडनी पडी और इसका स्थान राजकीय प्रोत्साहन ने ले लिया। सर्वप्रथम सन् १९१६ मे भारतीय औद्योगिक कमीशन की नियुक्ति की गई। इसने देश मे औद्योगिक विकास की सम्भावनाओ की जांच की और उद्योगो को राजकीय सहायता देने की सिफारिश की। उन उद्योगो मे भी, विशेषकर रासायनिक, विद्युत और यान्त्रिक-उपकरण उद्योग की सहायता पर विशेष जोर दिया। सन् १९१७ मे भारतीय प्रसाधनो पर नियन्त्रण करने एव उनको विकसित करने के उद्देश्य से इण्डियन म्युनीशन्स

बोर्ड नियुक्त किया गया, किन्तु इसकी सिफारिशों को कार्यान्वित नहीं किया गया। परिणाम यह हुआ कि जो भी उद्योग युद्धकाल में आरम्भ किये गये थे, वे विदेशी प्रतिस्पर्द्धा का सामना न कर सके और अन्त में नष्ट हो गये।

सन् १९१९ में भारतीय संविधान में जो संशोधन किए गए उनके अनुसार उद्योग एक प्रान्तीय विषय बन गया और प्रान्तीय सरकारों को औद्योगिक विकास के लिए उद्योगों को सहायता देने का अधिकार मिल गया। प्रान्तीय सरकारों ने इस दिशा में जो सक्रिय प्रयत्न किए उनका संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है :—

(१) **उद्योगों की राजकीय सहायता**—सन् १९२२ में मद्रास सरकार ने उद्योग राजकीय सहायता अधिनियम (State Aid to Industries Act) पास किया, जिसका मुख्य उद्देश्य कुटीर तथा अन्य उद्योगों को आर्थिक सहायता प्रदान करना था। इसके बाद क्रमशः ऐसे विधान बिहार में सन् १९२३ में, बंगाल में सन् १९३१ में, मध्य प्रान्त में सन् १९३४ में, पंजाब और संयुक्त-प्रान्त में सन् १९३३ में पास किये गये किन्तु इन प्रयत्नों का कोई आशाजनक परिणाम नहीं हुआ। वृहत् उद्योगों को अवश्य थोड़ा लाभ मिला, किन्तु कुटीर एवं लघु उद्योगों को इन सुविधाओं का पाना अत्यन्त कठिन हुआ।

(२) **औद्योगिक शिक्षा**—सन् १९२६ में धनबाद का भारतीय खनिज विद्यालय भूतत्व शास्त्रियों को ट्रेनिंग देने के लिए खोला गया। अन्य तान्त्रिक संस्थायें भी खोली गईं, जैसे बम्बई की टैक्सटाइल टैक्नोलाजी इन्स्टीट्यूट, लुधियाना इन्स्टीट्यूट, भागलपुर सिल्क इन्स्टीट्यूट और गुलजारीबाग कॉटेज इण्डस्ट्रीज इन्स्टीट्यूट। देश की आवश्यकताओं को देखते हुए औद्योगिक प्रशिक्षण के सम्बन्ध में जो किंचित प्रयास किये गये वे नगण्य थे।

(३) **प्रशुल्क नीति**—उद्योगों को प्राशुल्किक सहायता देने के लिए सन् १९२१ में एक प्रशुल्क कमीशन की नियुक्ति भी की गई, जिसने विवेचनात्मक संरक्षण (Discriminating Protection) देने की सिफारिश की।

(४) **औद्योगिक अनुसन्धान**—सन् १९३५ में इण्डस्ट्रियल रिसर्च ब्यूरो की स्थापना हुई थी, जिसकी अनुसन्धान शाखा अलीपुर में खोली गई। इसके मुख्य कार्य निम्नलिखित थे :—औद्योगिक सूचनाओं का एकत्रीकरण और प्रसार, औद्योगिक अनुसन्धान में उद्योग के साथ सहकारिता, एक पत्रिका में औद्योगिक सूचना का प्रकाशन और औद्योगिक प्रदर्शनियों के संगठन में सहायता। युद्ध-काल में अनुसन्धान करने के लिए बोर्ड आफ साइन्टिफिक एवं इण्डस्ट्रियल रिसर्च की स्थापना भी की गई।

(५) **स्टोर क्रय नीति (Stores Purchase Policy)**—औद्योगिक कमीशन की सिफारिश पर एक स्टोर क्रय समिति नियुक्त की गई। कलकत्ता व बम्बई में स्थानीय क्रय एजेन्सीज का निर्माण किया गया और बम्बई, मद्रास, कानपुर, करांची तथा दिल्ली में इंसपैक्टिङ्ग एजेन्सीज भी कायम की गईं।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश काल के औद्योगिक विकास के लिए कभी भी कोई विस्तृत योजना नही बनाई गई। सन् १९१४-१८ के युद्ध की अपेक्षा सन् १९३९ के द्वितीय महासमर के आरम्भ होने से औद्योगिक उत्पादन की माँग बहुत बढी। यह अनुभव किया गया कि युद्ध के सफलतापूर्वक चलाने के लिए भारत को एक हथियारघर (Arsenal) के रूप मे विकसित करना आवश्यक है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ईस्टर्न ग्रुप कान्फ्रेन्स के लिए ग्रेडी मिशन्स तथा अन्य समितियो की नियुक्ति भी की गई, किन्तु ये सब युद्ध के उपाय (War Measures) समझे जा सकते है, जिनका प्रधान उद्देश्य युद्ध के प्रयत्नो का समन्वय करना है। ब्रिटिश सरकार ने कोई भी ऐसा कदम नही उठाया जिससे युद्धकालीन विकास एक स्थायी आधार पर आ जाता।

द्वितीय युद्ध के उपरान्त भारत सरकार की औद्योगिक नीति—

युद्ध समाप्त होने (सन् १९४५) के दो-तीन वर्ष पहले से युद्धोपरान्त आर्थिक पुर्ननिर्माण योजनाओ की चर्चा हो रही थी। भारत सरकार ने सन् १९४३ के लगभग २९ औद्योगिक समितियाँ (Penals) नियुक्त की और एक योजना तथा विकास विभाग (Planning & Development Department) का भी निर्माण किया। (सन् १९४६ मे यह विभाग समाप्त कर दिया गया और इसके कार्य डिपार्टमेन्ट आफ इण्डस्ट्रीज एण्ड सप्लाई को ट्रान्सफर कर दिये गये)। अप्रैल सन् १९४५ मे सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति घोषित की। नई नीति का उद्देश्य देश मे उपलब्ध प्राकृतिक और आर्थिक साधनो का अधिकतम उपयोग करके राष्ट्रीय धन मे वृद्धि, देश की सुरक्षा का अच्छा प्रबन्ध और रोजगार के ऊँचे स्थायी स्तर की स्थापना करना था। इसकी पूर्ति के लिए सरकार ने स्वेच्छावाद की नीति को छोड कर उद्योगो के सरक्षण की नीति अपनाई। कुछ मूलभूत एव स्थूल उद्योगो को विकसित करने तथा आर्डीनेन्स फैक्टरियो, जन उपयोगिताओ और रेलो के अतिरिक्त राष्ट्रीय महत्त्व के आधार पर उद्योगो का राष्ट्रीयकरण करने का निश्चय किया। इसके अतिरिक्त निम्न उपायो से भी उद्योगो की सहायता करने की घोषणा की —

(१) महत्त्वपूर्ण औद्योगिक सस्थाओ को ऋण देना अथवा पूँजी का अश देना।
(२) न्यूनतम लाभाश की गारन्टी देना।
(३) अनुसन्धान सगठनो को आर्थिक सहायता देना।
(४) भारतीय औद्योगिक उत्पादन को क्रय करना।
(५) औद्योगिक विनियोग निगम आदि का प्रवर्तन करना।
(६) सामाजिक न्याय और औद्योगिक विकास दोनो के सन्तुलित हित की दृष्टि से कर-नीति कार्यान्वित करना।

(७) औद्योगिक आवश्यकताओं की वस्तुओं को विदेशों से मगाने की व्यवस्था करना।

उद्योगों के केन्द्रीयकरण को रोकने तथा नियमित विकास करने के हेतु लाइसेन्सिग प्रथा जारी करने का निश्चय भी किया। साथ ही, ऐसे उपायों को व्यवहार में लाने का निश्चय भी किया, जिससे औद्योगिक श्रमिकों का जीवन-स्तर ऊँचा हो, व्यक्तिगत पूंजीपतियों की जेबों में अत्यधिक लाभों का जाना रुके, भारतीय माल में लोगों का विश्वास बढ़े, इने-गिने लोगों के हाथ में सम्पत्तियों का केन्द्रीयकरण न हो और औद्योगिक शिक्षा की प्रगति हो।

अक्टूबर सन् १९४६ में एक एडवाइजरी प्लानिंग बोर्ड नियुक्त किया गया। इसने अपनी रिपोर्ट में देश के विभिन्न भागों में उद्योग-धन्धों के विकेन्द्रीयकरण का सुझाव दिया, ताकि सभी भागों का सन्तुलित विकास हो सके। अगस्त सन् १९४७ में देश स्वतन्त्र हुआ और इसके शासन की बागडोर राष्ट्रीय सरकार के हाथ में आई। उद्योगों की घटती हुई उत्पादकता पर विचार करने के लिये इसने सन् १९४७ में एक उद्योग सम्मेलन किया, जिसने पब्लिक और प्राइवेट उपक्रमों की भूमिकाओं के स्पष्ट करने पर बल दिया तथा श्रम एवं पूँजी के बीच सद्भावना स्थापित करने का सुझाव दिया।

STANDARD QUESTION

1. Write a full note on India's Industrial Policy Prior to Independence.

अध्याय १४

सन् १९४८ की औद्योगिक नीति

(Industrial Policy of 1948)

औद्योगिक नीति, १९४८ क लक्ष्य एव उसकी विशेषतायें—

स्वर्गीय डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने ६ अप्रैल सन् १९४८ को ससद मे राष्ट्रीय सरकार की औद्योगिक नीति घोषित की। इस नीति मे निम्न सामान्य लक्ष्य थे (i) एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना जिसमे न्याय व उन्नति के सुअवसर सबको बराबर बराबर प्राप्त हो (ii) जीवन स्तर मे तेजी से वृद्धि करना और इसके लिये देश के सुप्त प्रसाधनो का शोषण करना (iii) उत्पादन मे वृद्धि करना और (iv) सबको रोजगार के अवसर प्रदान करना। इसकी निम्नलिखित विशेषताये है —

(१) शस्त्र एव बारूद का निर्माण अणु शक्ति का उत्पादन एव नियन्त्रण रेल यातायात के स्वामित्व एव प्रबन्ध पर केन्द्रीय सरकार का पूर्ण एकाधिकार होगा।

(२) प्रान्तीय या केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित क्षेत्रो मे व्यक्तिगत साहस के साथ कार्य कर सकगी—कोयला लोहा एव इस्पात जहाज निर्माण हवाई जहाज निर्माण टेलीग्राफ एव वायरलेस एप्रेटस का निर्माण तथा खनिज तेल। इस क्षेत्र के वर्तमान कारखाने १० वर्ष तक अपना विकास करते रहेंगे। सरकार उनकी सहायता करेगी लेकिन इस अवधि के बाद उनकी स्थिति का निरीक्षण किया जायगा। सरकारी उद्योगो का प्रबन्ध सार्वजनिक निगमो (Public Corporations) द्वारा किया जायगा

(३) विद्युत शक्ति के निर्माण एव वितरण पर राजकीय नियन्त्रण पूर्ववत् रहेगा।

(४) निम्नलिखित उद्योग सरकारी नियमन एव नियन्त्रण मे रहेंगे—नमक मोटर व ट्रैक्टर बिजली इन्जीनियरिंग मशीन औजार भारी रसायन तथा खाद फार्मेसी की औषधिया व दवाइया व बिजली रासायनिक उद्योग लोहा हीन धातु रबड निर्माण शक्ति तथा औद्योगिक